श्री

योरप का महायुद्ध

प्रथम भाग

लेखक—दुर्गाप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीः ॥

योरप का महा-युद्ध.
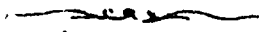
प्रथम भाग।

जर्मनी का इतिहास।

लेखक

दुर्गाप्रसाद पोद्दार

गोविन्द प्रेस,

नं० ८।१ रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता में

मुद्रित।

१९७१ वि०।

Published by Durga Prasad Poddar.
Itihasmala Office 22. Durpanarayan Thakur Street Calcutta.
AND
Printed by Satish Chandra Roy.
GOVIND PRESS
8-1, Ramkumar Rakshit's Lane Calcutta.

॥ श्रीः ॥

जिन महात्मा के शुभ नामपर प्रतिष्ठित

विद्या-मन्दिर में

मैंने शिक्षा पायी है,

उन १९वीं सदी के प्रतापीसन्यासि-सम्राट्

श्री १०८ स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी के

चरण कमलों में

श्रद्धा भक्ति का

उपहार स्वरूप

मेरा यह प्रथम प्रयास

जर्मनी का इतिहास

सादर समर्पित है।

"तत्कुरुष्व मदर्पणम्"।

दुर्गाप्रसाद पोद्दार।

श्रीहरिः।

भूमिका।

—०:#:०—

इतिहास बहुत बड़ी वस्तु है। साहित्य में उसका आसन सब से ऊंचा है। उन्नत देशों के एवं उन्नत जातियों के साहित्य में इतिहास की कमी नहीं है। वस्तुतः उनकी उन्नति का एक प्रबल कारण इतिहास है। इतिहास के प्रभाव से पतित जातियों का भी अपने गत-गौरव को स्मरण कर पुनरुत्थान हो जाता है।

हिन्दी साहित्य में 'इतिहास' के स्थान की पूर्ण प्रकार से पूर्ति नहीं हुई। इसका कारण यह है कि हिन्दी के वर्त्तमान साहित्य का अभी आरम्भ युग है। इसीसे काशी के चटकीले उपन्यासों का जितना लोगो ने आदर किया, उतना इतिहास का नहीं। इतिहास की बातों को और उसकी आवश्यकता को समझने के लिये शिक्षा-प्रचार का प्रयोजन है। शिक्षित होनेपर ही मनुष्य अपनी अवनत दशा का उन्नत दशा के साथ मिलान करके उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न कर सकता है और अतीत बातों को जान सकता है। योरप के देश जर्मनी और एशिया के जापान ने इतनी उन्नति कैसे करली ? वे कौनसी बातें हैं जिनके द्वारा अमेरिका वाले असम्भव को भी सम्भव करनेका साहस रखते हैं ? क्या उनसे हम लोग भी लाभ उठा सकते हैं ?—इन तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन उन्नत देशों के इतिहास को जाननें की अत्यन्त आवश्यकता है।

इस समय योरप में एक महा-संग्राम हो रहा है। ऐसा संग्राम इससे पहले संसार में कभी हुआ नहीं। यह प्रकृति का धर्म है कि, कभी कभी इष्ट से अनिष्ट और अनिष्ट से इष्ट भी हो जाता है, इसी नियम के अनुसार वर्त्तमान महायुद्ध से और चाहे लाभ हो या न हो, परन्तु हिन्दी के प्रचार का लाभ अवश्य होगा। क्योंकि, समस्त भारतवर्ष इस समय युद्ध-संवाद जानने के लिये लालायित हो रहा है। हिन्दी में कितने ही स्थायी अस्थायी समाचार पत्रों की सृष्टि होगयी है, और प्रसन्नता की बात है कि उनका प्रचार भी दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। युद्ध के समाचार जानने के लिये इस समय वे लोग भी संवादपत्र पढ़ना चाहते हैं जो इससे पहले यह भी नहीं जानते थे कि संवाद-पत्र होते क्या चीज हैं। यहां तक कि,—निम्न श्रेणी के लोग भी एकत्र होकर आजकल हिन्दी के संवादपत्रों को पढ़ते, सुनते हैं। मैं समझता हूं कि हिन्दी का इतना अधिक एवं शीघ्र प्रचार मि० गोखले के अनिवार्य्य शिक्षा बिल से भी नहीं होता!

यद्यपि युद्ध के कारण ही हिन्दी के प्रति लोगों का इतना अनुराग उत्पन्न हुआ है, तथापि युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण राष्ट्रों के इतिहास एवं भूगोलादि से अपरिचित होने के कारण वे युद्ध की

दशा को समझ नहीं सकते। इसलिये वे वहाँ के इतिहास को जानने के लिये भी बड़े उत्सुक हैं। पर इतिहासों के अभाव से उनकी यह उत्सुकता पूर्ण नहीं हो सकती।

हमें यह कहते प्रसन्नता होती है कि सर्वसाधारण की योरप का इतिहास और भूगोल समझने और युद्ध की सच्ची दशा को जानने की उत्सुकता को पूर्ण करने का बीड़ा मारवाड़ी समाज में सार्वजनिक भावों के पहले प्रचारक और मारवाड़ी एसोसिएशन जैसी प्रतिष्ठित संस्था के जन्मदाता श्रीयुक्त बाबू रङ्गलालजी पोद्दार के सुयोग्य पुत्र बाबू दुर्गाप्रसादजी पोद्दार ने उठाया है और उसका आरम्भ रूप हैं यह जर्मनी का इतिहास। इसमें जर्मनी की प्राचीन और अर्वाचीन प्रायः सभी बातें सन्निवेशित कर युद्ध सम्बन्धी सुन्दर चित्रों की अधिकता से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ा दी गयी है। इस महायुद्ध की जड़ जर्मन राष्ट्र ही है और उसका पूरा इतिहास लिखा जाय तो एक महाग्रन्थ तैयार हो सकता है : किन्तु सुयोग्य लेखक ने संक्षेप में पर विशद रूप से उसकी जानने योग्य प्रायः सभी बातों का इसमें समावेश कर दिया है, और यह निश्चय किया है कि योरप के इस महायुद्ध के इतिहास का प्रत्येक भाग इतना ही बड़ा, प्रति सप्ताह, प्रकाशित होगा। प्रथम भाग के पश्चात् द्वितीय भाग में सर्विया के इतिहास के साथ युद्ध की उत्पत्ति का विवरण प्रकाशित होगा, तथा भविष्य में आवश्यकतानुसार अन्य शक्तियों के इतिहास भी दिये जायंगे। ऐसा होने से लोगों को युद्ध की किसी बात के जानने के सम्बन्ध में कोई संशय न रह जायगा और आरम्भ से लेकर अबतक के युद्ध के पूरे समाचार भी विदित हो जायंगे। विस्तृति के भय से जिन युद्ध के समाचारों को यहां के समाचार पत्र भी नहीं छाप सकते हैं वे भी इसमें क्रमानुसार जोड़ दिये जायंगे। हमारे ब्रिटिश साम्राज्य का पत्रव्यवहार भी इसमें आगे चलकर आजायगा, जो उसने युद्ध आरम्भ होने से पहले शान्तिरक्षा के लिये किया था। प्रत्येक भाग में लेखक ने युद्ध विषयक अपूर्व चित्रों के अधिकाधिक देने का प्रबन्ध किया है और उन चित्रों में ऐसे दुर्लभ चित्र भी होंगे जो अधिक व्यय करके खास विलायत से इस इतिहास-माला के लिये मंगाये गये हैं एवं आवश्यकतानुसार मंगाये जायंगे।

अब मैं यह बता कर भूमिका को समाप्त करता हूं कि, बाबू दुर्गाप्रसाद पोद्दारजी का यह पहला परिश्रम है और प्रसन्नता की बात है कि इसमें सफलता भी हुई है। इसके लिये मैं उनको बधाई देता हूं। आशा है कि, युद्ध के समाचारो से परिचित होने के लिये वहां का इतिहासादि जानने की अभिलाषा रखनेवाले हिन्दी भाषी लोग इसको अधिक पसन्द करेंगे। इति शुभम्।

कलकत्ता,
"कलकत्ता-समाचार" कार्यालय।
कार्तिक शुक्ला १५
१९७१ वि०।

झावरमल्ल शर्म्मा।

श्रीहरिः।

निवेदन

री सदा से इतिहास में रुचि रहती आयी है। अतएव मैं विचार भी यही करता था कि, हिन्दी भाषा में पुस्तकें लिखूं तो इतिहास के सम्बन्ध में ही लिखूं।

योरप के संसार-व्यापी महासमर के आरम्भ होने पर लोगों का वहां के युद्ध का इतिहास जानने की ओर अधिक झुकाव देखकर मेरे कितने ही मित्रों ने "योरप के महायुद्ध का इतिहास" नामक ग्रन्थमाला तैयार करने का विशेष अनुरोध किया। मुझे उनकी आज्ञा माननी पड़ी और उसी ग्रन्थ माला का पहला भाग यह जर्मनी का इतिहास है। प्रति सप्ताह इसी प्रकार खण्ड रूप से यह इतिहास-माला प्रकाशित होती रहेगी। इसको चित्रादि से सजाने का विशेष प्रबन्ध किया गया है। हिन्दी में मेरी यह पहली पुस्तक है। इसलिये यदि इसमें मनुष्य स्वभाव के अनुसार कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों तो विद्वान् लोग मुझे क्षमा करेंगे। त्रुटियों की सूचना मिलने पर द्वितीय संस्करण में वे सुधार दी जायंगी।

यहां यह कहना भी आवश्यक है कि यदि पूज्य पं० राधाकृष्णजी मिश्र, श्रीयुक्त बाबू रामचन्द्रजी सरावगी, आदि सज्जन मुझे उत्साहित न करते, तो इतनी शीघ्र इस पुस्तक-माला के प्रणयन और प्रकाशन की तैयारी कदाचित् न हो सकती।

श्रीयुक्त सीतारामजी सेठ इस विषय में अपनी अमूल्य सम्मतियां देकर और चित्रादि की आवश्यक व्यवस्था कर, जो अपना आन्तरिक अनुराग प्रकट कर रहे हैं, इसके लिये मैं उनको विशेष धन्यवाद देता हूं।

पण्डित झाबरमल्लजी शर्मा ने इस ग्रन्थ-माला के लिये कृपा कर भूमिका लिख दी है, अतएव उनके प्रति भी कृतज्ञ होना मेरा कर्त्तव्य है।

कलकत्ता.
२२, दर्पनारायण ठाकुर स्ट्रीट,
कार्तिक कृष्णा ३ सं० १९७१

निवेदक
दुर्गाप्रसाद पोद्दार।

लाड किचनर, सम्राज्ञी मेरी और सम्राट् जार्ज।

Printed by K. V. Seyne & Bros. (Copy right).

॥ श्रीहरिः ॥

जर्मनी का इतिहास.

भौगोलिक विवरण।

वर्तमान जर्मन साम्राज्य का क्षेत्रफल २०८८३० वर्ग मील है। इसके उत्तर में उत्तर समुद्र (२९३ मील) हालैंड (४७ मील) तथा वालटिक समुद्र (६२७ मील): पश्चिम में हालैंड (३७७ मील) वेलजियम (७० मील) तथा लक्सेमवर्ग (१११ मील); दक्षिण-पश्चिम में फ्रांस (२४२ मील); दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम में स्वीज़रलैंड (२५६ मील) अस्ट्रिया (१०४३ मील) और पूर्व में रूस (८४३ मील) है। समुद्र पर जर्मनी की सीमा वहुत कम है। श्लेजविग होलसटाइन के पूर्वी तट के वन्दरगाहों को छोड़ जर्मनी के सव वन्दरगाह नदियों पर अवस्थित हैं।

नदियां।

जर्मनी में नौ वड़ी नदियां हैं:—मेमेल, प्रागेल, विसटूला, ओडर, एलवे, वीजर, एम्ज, राइन तथा डैन्यूव। प्रागेल, वीजर और एमूज नदी का पूरा अंश और ओडर का अधिकांश जर्मनी में है। डैन्यूव नदी जर्मनी से निकली है पर उसका पांचवा हिस्सा जर्मनी में है। राइन नदी का मुहाना और उत्पत्तिस्थान जर्मनी में नहीं है।

सीमा पर किलेवन्दी।

पश्चिम में जर्मनी ने वहुत दृढ़ किले वना रखे हैं। पहला किला लीज से २० मील दक्षिण-पूर्व मेलमेडो में है। इस से दक्षिण में लक्सेमवर्ग की सीमा से दस मील दक्षिण टियोनविल के किले हैं। यहां गत कई वर्षो में ३ नये किले वनाये गये। इन किलों से ३० मील दक्षिण मेज का अत्यन्त सुदृढ़ किला है। मेज और टियोनविल के वीच में वूसी (Boussy) में एक किला है। इस के अतिरिक्त मोजेल (Mozelle) नदी के कारण आक्रमणकारी को वाधा पहुंचती है। इस से दक्षिण स्ट्रासवर्ग के सुविशाल सुदृढ़ किले मिलते हैं। ये राइन नदी से आरम्भ होकर पश्चिम में मोलशोन तथा मटज़िग तक चले गये हैं।

स्ट्रासवर्ग से दक्षिण स्वीज़रलैण्ड की सीमा तक राइन नदी पर किलों की एक श्रेणी है। स्ट्रासवर्ग से बाज़ेल (Basel जो स्वीज़रलैंड म है) तक न्यब्रीजाच (New Brisach),न्यूएन बर्ग (Neuenburg), इस्टाइन (Estein) तथा हनिंजेन (Huningen) के किले हैं। यह तो हुई जर्मनी की किलेबन्दियों की पहली श्रेणी। इन की सुदढ़ रक्षा को पार करना कठिन तो है ही, इस के अतिरिक्त स्ट्रासवर्ग से उत्तर राइन नदी के किनारे वहुत ही मजवत किले बनाये गये हैं। स्ट्रासबग से लीप्पे (Lippe) तथा राइन नदी के सङ्गम के बीच में राजटाट (Rastatt), जेरमेर्शाइम (Germersheim) माइन्ज़ (Mainz) कोब्लेंन्ज़ (Coblenz) कलोन (Cologne) तथा बाजे़ल (Wesel) के किले हैं।

पव में रशिया का पोलेंड पूर्वी जर्मनी में बहुत दूर तक चला गया है। वारसौ-पोसेन-बर्लिन (Warsaw-Posen-Berlin) रास्ते पर रूस की सीमा से बर्लिन केवल १८० मील दूर है।

पश्चिमी सीमा में पहाड़ों तथा नदियों के कारण जर्मनी की सीमा प्राकृत है परन्तु पूर्वी सीमा ऐसी नहीं है। इस सीमा को पार करने में शत्र को कुछ कठिनाई नहीं हो सकती। परन्तु सीमा पार कर विशेष अग्रसर होना कठिन है। पूर्वी प्रशिया में दलदल, जङ्गल, और नदियों की भरमार है। इसके सिवा जर्मनी ने उधर ऐसे कई मजवूत किले वनाये हैं जिन पर अधिकार करना कठिन कार्य है।

पश्चिम में राइन (Rhine) नदी ने जो स्थान लिया है वही स्थान पूर्व में विसटूला (Vistula) नदी ने प्राप्त किया है। यह नदी रूस से आकर थोर्न (Thorn) के पास जर्मन सीमा को पार कर उत्तर में डैंटज़ीग (Dantzig) समुद्र में जा मिलती है। विसटूला की चौड़ाई १२०० से २००० फीट तक है इस नदी का वहाव वहुत तेज है और वर्षा ऋतु में इस पर पुल वांधना वहुत कठिन हो पड़ता है। थोर्न में एक रेलवे लाइन ने नदी को पार किया है। यह लाइन अति महत्वपूर्ण है इसलिये जर्मनी ने यहां एक सुदृढ़ किला बना रखा है। आक्रमणकारी को इस स्थान में नदी पार करने में वहुतसी कठिनाइयां उपस्थित होंगी इसलिये रूसी सेना को अपने राज्य में ही नदी पार कर इस किले की ओर अग्रसर होना पड़ेगा।

इस से उत्तर में गौडेंज़ के पास डीरशाउ (Dirschau) में भी एक अति गुरुत्वपूर्ण रेलवे लाइन ने विसटूला नदी पार की है। गौडेंज़ का किला भी थोर्न से कम मजवूत नहीं है

उत्तर प्रशिया में समुद्र तट के निकट कनिग्सवर्ग (Konigsberg) का किला अति महत्वपूर्ण है। इस किले पर अधिकार करना जरा टेढ़ी खीर है। समुद्र से सम्बन्ध रहने के कारण जर्मनी आवश्यकतानुसार सेना समुद्र द्वारा पहुँचा सकती है। किले का घेरा देनेवाली सेना उसमें किसी तरह की बाधा नहीं दे सकती।

हालैंड
नामूर
मेलमेडी
कोबलेंज़
माइंज़
मोजेल नदी
थियोनविल
मेट्ज़
रीम्स
रास्टाट
ऐपिनाल
ट्रॉयस
बेलफोर्ट
स्वीजरलैंड

जर्मन सेना युद्धस्थल के लिये बिदा हो रही है।

K. V. Seyne & Bros.
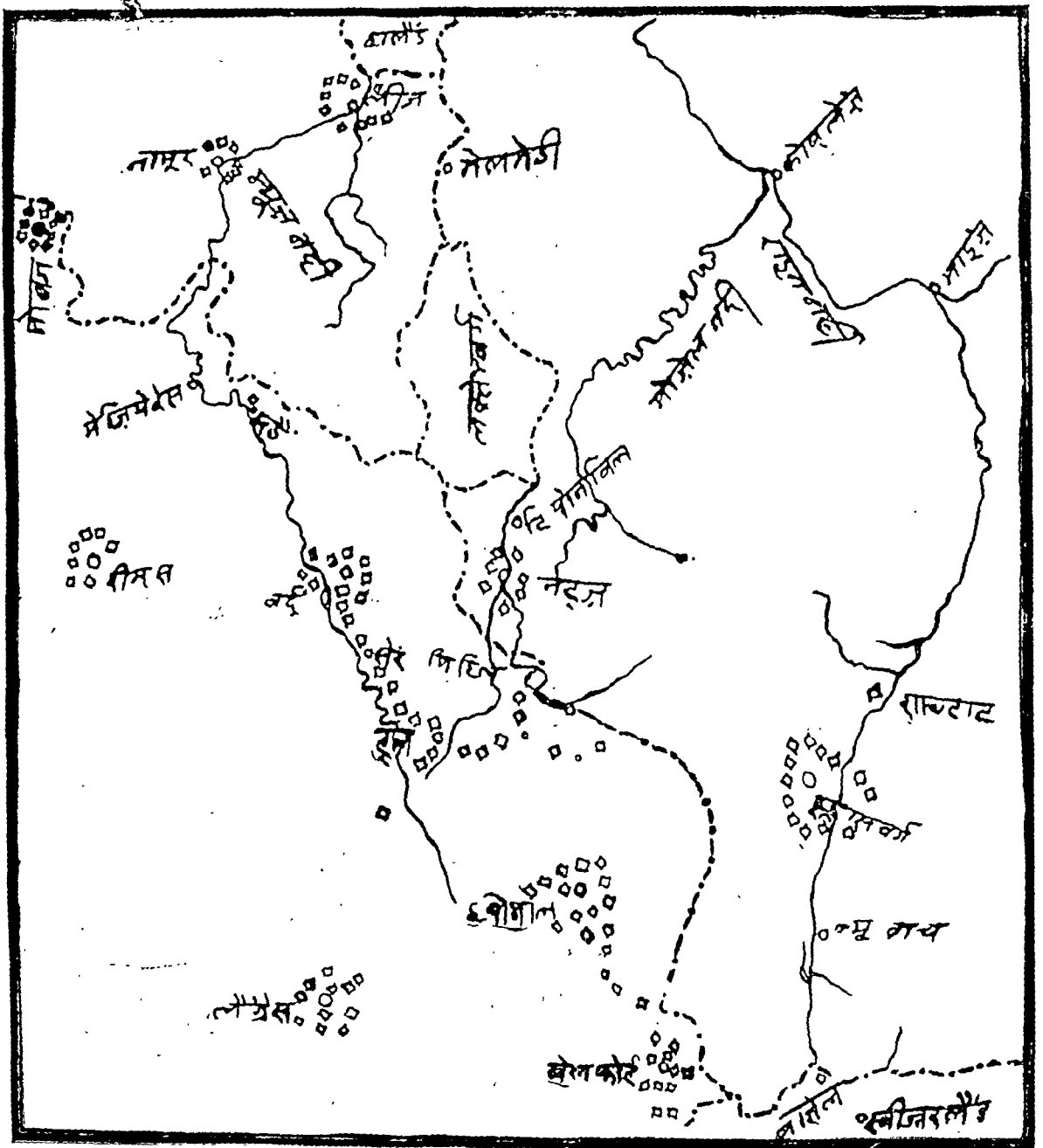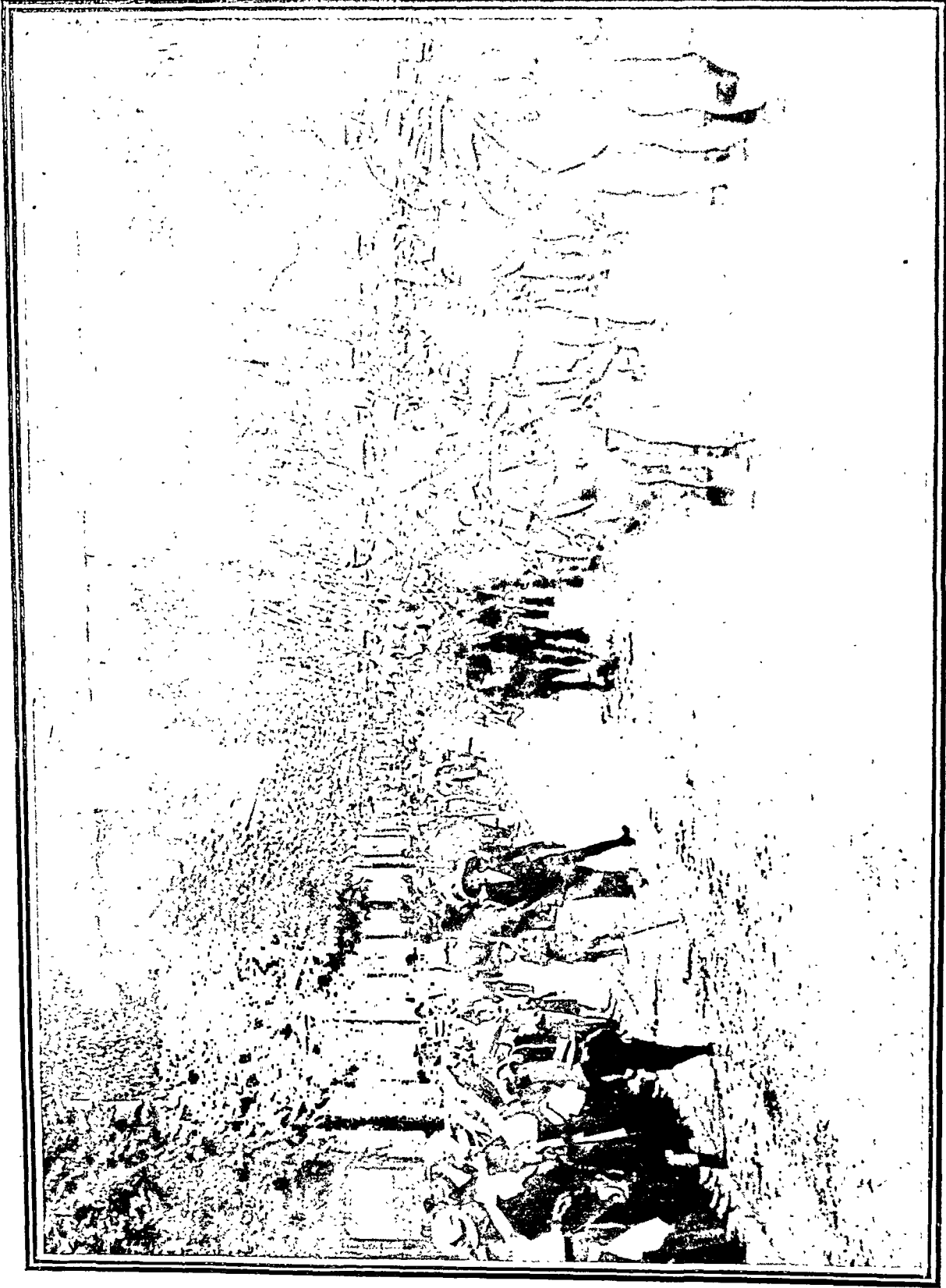
विभाग

जर्मन साम्राज्य २६ विभागों में बंटा हैः—

		क्षेत्रफल।
	राज्य (Kingdoms)	
१	प्रशिया (Prussia)	१३४,६१६
२	वेवेरिया (Bavaria)	२६,२६०२
३	सैक्सनी (Saxony)	५,७८६
४	वर्टैम्बर्ग (Wurtemberg)	७,५३४
	वड़ी रियासतें (Grand Duchies)	
५	वाडेन (Baden)	५८२३
६	हेस (Hesse)	२९६६
७	मेक्लेनबर्ग श्वेरीन (Mecklenburg Schwerin)	५०६८
८	मेक्लेनवर्ग स्ट्रेलिट्ज़ (,, Strelitz)	११३१
६	सेक्स-वाइमार (Saxe-Weimar)	१३६७
१०	आलडेनवर्ग (Oldenburg)	२४८२
	रियासतें (Duchies)	
११	ब्रंज़विक (Brunswick)	१४१८
१२	सैक्स माइनिजेन (Saxe-Meiningen)	६५३
१३	सैक्स-ऐल्टेनवर्ग (Saxe-Altenburg)	५११
१४	सैक्स-कोवर्ग-गोटा (Saxe-Coburg-Gotha)	७६४
१५	आनहाल्ट (Anhalt)	८८८
	छोटी रियासतें (Principalities)	
१६	श्वार्टजवर्ग-जौण्डर्स-हाउजन (Schwarzburg-Sondershausen)	३६३
१७	श्वार्ज़वर्ग-रूडोल्सटाट (Schwarzburg-Rudolstadt) ...	३६३
१८	वाल्डेक (Waldek)	४३३
१९	रौस ग्राइट्ज़ (Reuss-Greiz)	१२२
२०	रौस गेरा (Rruss-Gera)	३१६
२१	शाउमवर्ग लिप्पे (Schaumburg-Lippe)	१३१
२२	लिप्पे (Lippe)	४६६
	स्वतन्त्र नगर (Free towns)	
२३	ल्यूबेक (Lubeck)	११५
२४	ब्रीमेन (Bremen)	९९
२५	हैम्वर्ग (Hamburg)	१६०
	राजकीय सूवा	
२६	आलजास लौरेन (Alsace-Lorraine)	५,६०४
		२०८,७८० मील

जन संख्या।

सन् १८७१ में जर्मन साम्राज्य की जन संख्या ४१,०५८,७९२ थी तब से जन संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। पूरा व्यौरा यों है:—

वर्ष	जन संख्या
१८७०	४०८१८०००
१८७५	४२,७२१०००
१८८०	४६२३६०००
१८८५	४६,८५८,०००
१८६०	४६४२८०००
१८६५	५२,२८०,०००
१६००	५६,३६७०००
१६०५	६०,६४१,०००
१६१०	६४६२५६६३

१६१० में पुरुषों की संख्या ३२०३१६६७ और स्त्रियों की संख्या ३२८७१४५६ थी।

इतिहास।

प्राचीन जर्मन।

प्राचीन जर्मन कद के लम्बे और शक्तिशाली थे। उन के बाल घने और लम्बे थे और नेत्र नीले तथा भयङ्कर थे। युद्ध और शिकार ही उन के प्रधान कार्य थे। यद्यपि उत्साहित होने पर वे बहुत ही क्रूर तथा उग्र हो जाते थे तथापि साधारणतया वे बहुत ही दयालु थे। अपने पूर्वजों की कीर्त्ति में वे बहुत प्रेम रखते थे। वे लोग बहुत सी जातियों में विभक्त थे। आरम्भ से ही उन में साधारण मनुष्यों को अपने नेताओं और राजा को चुनने का अधिकार था।

इटली से युद्ध।

उन जङ्गली जातियों में से ट्यूटोनीज (Teutones) और सिम्ब्राइ (Cimbri) जातियों ने ईसा के जन्म से ११३ वर्ष पूर्व इटली पर आक्रमण करना आरम्भ किया। रोमन लोगों ने उन के विरुद्ध कई बार सेनायें भेजी परन्तु वे उन को रोक नहीं सके। उन्होंने चारों ओर मारकाट और लूट खसोट मचा दी। अन्त में मेरियस (Marius) नामक सेनापति ने बहुत सी सेना इकट्ठी कर 'ए' (Aix) की लड़ाई में ट्यूटोनों को अच्छी तरह से हरा दिया। कुछ समय पश्चात् सिम्ब्राई जाति वालों को भी हार माननी पड़ी (१०२ सी अर्थात् ईसा से १०२ वर्ष पूर्व)। ईसा से ५० वर्ष पहले जूलियस सीज़र (Julius Ceaser) नामक प्रसिद्ध रोमन सम्राट् ने स्वेविक जाति के प्रधान एरियोविस्टस (Ariovistus) को हराया। आगस्टस के राजत्व काल में ड्रूसस (Drusus) और टाइबेरियस (Tiberius) ने सन् ईसवी से १५ वर्ष पूर्व तक प्रायः सब जर्मन जातियों को वश में कर लिया परन्तु ६ ईस्वी में क्विंकटिलियस वेरस (Quinctilius Varus) के प्रधानत्व काल में सब किया कराया चौपट हो गया। उक्त सेनापति ने अपने नीच व्यवहार से सब को उत्तेजित कर दिया। चेरस्की जाति के मुख्य सेनापति वीर आर्मीनियस (Arminnius) ने रोम के अधीन युद्ध कर बहुत निपुणता लाभ कर ली थी। उस ने अपनी जाति वालों को सहायता का वचन देकर ट्यूटोवर्ग (Teutoburg) के जङ्गल में रोमन सेनापति को ला फंसाया और उसे हराकर अपने देश को विदेशियों के पंजे से छुड़ा लिया।

जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय।

K. V. Seyne & Bros.

प्रिन्स बिस्मार्क।

Engraved & Printed by K. V. Seyne & Bros.

इस समाचार से रोम में बहुत घबड़ाहट फैली। सन् १४-१६ ईस्वी में ड्रूसस के पुत्र जर्मेनिसस ने तीन बार आर्मेनियस से युद्ध किया परन्तु उसे कुछ सफलता नहीं हो सकी। इस के पश्चात् जर्मनी में आपस के विवाद होते रहे। अन्त में सन् २१ ई० में वीर आर्मेनियस मार डाला गया।

इस के पश्चात् इन जातियों पर रोमन लोगों का दबाव बढ़ने लगा। डेढ़ सौ वर्ष पीछे जर्मन जातियों की एक बड़ी सेना ने इटली में प्रवेश करने की बहुत चेष्टा की और १३ वर्ष तक युद्ध किया।

चार विभाग विदेशियों के आक्रमणों से पीड़ित होकर सब जातियां एक होकर चार बड़े भाग में विभक्त हो गई। (१) गौथ (Gauths), (२) अलमैनी (Alemanni) (३) फ्रैङ्क (Frank) और (४) सैक्सन (Saxon)। गौथ जाति ने सब से प्रथम एक वृहत् राज्य स्थापित किया किन्तु चौथी शताब्दी में एशिया वासी हन (Huns) जाति ने आक्रमण कर इस राज्य को तहस नहस कर डाला। उन जङ्गली जातियों के भय से कितनी जातियां पश्चिम की ओर चली गई। सैक्सन जाति का एक अंश इङ्गलैण्ड में जा बसा। एक जाति ने इटली में प्रवेश कर राज पर अधिकार कर लिया। एक ने स्पेन में और दूसरी ने अफ्रीका के उत्तरी भाग में राज्य करना आरम्भ किया।

फ्रैंक राज्य फ्रैंक जाति वालों ने धीरे धीरे एक बड़ा राज्य स्थापन किया। फ्रांस और जर्मन राज्य इस जाति के स्थापित किये हुए हैं। सर्व प्रथम क्लोडियो (Chlodio) नामक राजा का पता मिलता है। इस के पुत्र मरेविङ्ग के नाम से यह राजवंश मेरोविंजयन (Meravingian) कहलाया। इस का पौत्र क्लोविस वा क्लुडविग (Chludwig) सन् ४८१ ई० में १५ वर्ष की अवस्था मे राज गद्दी पर बैठा। ४८६ ई० में इस वीर नवयुवक ने स्वासौं में रोमन सेना को हराकर रोमन लोगों को अपने राज्य से निकाल दिया। कुछ वर्षों में उसने अधिकांश देश को अपने अधीन कर लिया। अलमैनी जाति को भी इस की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। क्लुडविग ने ईसाई धर्म्म स्वीकार किया।

सन् ५११ ई० में इसकी मृत्यु के पीछे राज्य इस के चार पुत्रों में विभक्त हुआ। इस विभाग के पश्चात् भी समस्त राज्य की एकता नष्ट नहीं हुई। विदेशियों के लिये चारों अंश एक ही थे।

जेष्ठ भ्राता थियोडरिक (Theudoric) पूर्व वा राइनिश फ्रैंक्स का राजा हुआ और अन्य तीनों भ्रता थूरिंजियन (Thuringian) राज्य के अधिकारी हुए। इन भाइयों में कुछ झगड़ा होने के पश्चात् थियोडरिक ने थरिंजियन राज्य के उत्तर में बसने वाले सैक्सनों की सहायता से थूरजयन राज्य पर अधिकार कर लिया और सहायता के प्रतिदान में उत्तरी भाग सैक्सनों को दे दिया।

पिपिन मेरोविंजियन राजाओं मे एक भी चतुर राजा नही हुआ। धीरे धीरे इनकी क्षमता घटती गई और नगराध्यक्ष (Mayors of the Palace) वास्तव में राज्य करने लगे। इस समय फ्रैंक राज्य के दो अंश थे। अस्ट्रेशिया (Austrasia) और न्युस्ट्रिया (Neustria)। आस्ट्रेशिया मे नगराध्यक्षों का बल अधिक था। इन मे पिपिन (Pippin) नामक नगराध्यक्ष बहुत चतुर था। इसने सब राज्य शासन अपने हाथ मे लेकर फ्रैंक राज्य को नष्ट होने से बचाया। इस के लिये उसे ड्यूकों से लड़ाई भी करनी पड़ी। इस सुकार्य का परिणाम यह हुआ कि इसके पुत्र चार्लस मार्टेल (Charles Martel) के समय मे जब अरब लोगों ने चढ़ाई की तब समस्त राज्य एक था। इस लिये अरब

गये। नही तो यूरोप मे क्रिश्चियन धर्म्म का टिकना असम्भव हो जाता। चार्लस के पीछे उसका पुत्र 'पिपिन दी शार्ट' (Pippin the Short) राज्य करने लगा। इसके समय मे पोप का प्रभाव बढ़ने लगा। पिपिन ने एक्विटेनिया (Aquitania) और लौम्बार्डी (Lombardy) से युद्ध कर सुख्याति लाभ की। उसने जर्मनी मे भी अपनी क्षमता बढ़ाने की चेष्टा की परन्तु वह विशेष सफलता नहीं पा सका। इसका प्रधान कारण सैक्सन जाति का उपद्रव था। ऊपर लिखा जा चुका है कि थियोडोरिक ने थूरिंजियन राज्य का उत्तरी भाग उन को सौंप दिया था। तब से उन की शक्ति बढ़ने लगी। वे लोग अब तक पुराने धर्म्म और आचार व्यवहारों को मानते और फ्रैंकों से हार्दिक घृणा रखते थे। जर्मनी मे जब जब फ्रैंक राज्य के विरूद्ध विप्लव हुआ तब तब सैक्सन जातिने विप्लवकारियों को सहायता दी। फ्रैंक राजाओं ने उनको अधीन करने की बहुत चेष्टा की परन्तु वे कृतकार्य नहीं हो सकें।

शार्लमेन ७६८—८१४ पिपिन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र प्रसिद्ध सम्राट शार्लमेन (Charlemagne) गद्दी पर बैठा। शार्लमेन (चार्लस दी ग्रेट) का शरीर सुडौल विशाल और सुन्दर था। उसकी लम्बाई ७ फीट के लग भग थी। आरम्भ से ही इसके विचार उन्नत और गम्भीर थे। उसने यह समझ लिया था कि सैक्सन ज़ाति को दबाना अत्यन्त आवश्यक है। सन् ७७१ ई० मे अपने भाई कार्लमेन (Carlman) की मृत्यु के पश्चात् उसने सैक्सनों पंर चढ़ाई कर उनको हरा दिया। तीस वरस तक लगातार लड़ाई होनेके पश्चात् सैक्सन जाति ने निराश हो कर अधीनता स्वीकार की।

वेवेरिया के ड्यूक 'थेसिलो' (Thassilo) से पिप्पिन की अनवन थी। शार्लमेन ने उसको भी हरा कर पदच्युत कर दिया। अलमेनी और थूरिंजियन लोगों के ड्यूक पहले ही पदच्युत किये जा चुके थे। इस तरह समस्त ज़र्मनी फ्रैंक राजाओं के अधीन हो गई। इस के फ्रैंक राजाओं पश्चात् शार्लमेन ने स्लैव (Slav) जाति को, जिस मे बोहेमिया (Bohemia) तथा मोरेविया (Morevia) के ज़ेच (Czetch) भी शरीक थे, अधीन कर लिया।

यद्यपि शार्लमेन बहुत राजनीतिज्ञ था तथापि वह सदा प्रजासाधारण का अधिकार कम करना चाहताथा। पहले सब जर्मन जातीय सभा मे एकत्र हो सकते थे। अब इस राजा ने सर्व साधारण को छोड़ कर रईसों की सभा करनी आरम्भ की। इनको भी उसने केवल सलाह देने का अधिकार दिया। वह स्वयं सब काम किया करता। गरीब मनुष्यों को उसके युद्धों मे योग देने के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। प्रजा के दुखों को मिटाने के लिये उसने बहुत प्रबन्ध से किये। मिसी डोमीनिसी (Missi Dominici) नामक कर्मचारी वर्ष मे चार बार सब स्थानों मे भ्रमण कर प्रजा के दुखों की जांच किया करते थे। विद्या प्रचार का भी उसने बहुत प्रबन्ध किया और जर्मनी तथा फ्रांस (Gaul) के गिर्जाघर समुदाय (Cheaches) की शासनप्रणाली सुधारी। वह अपनी इच्छानुसार धार्मिक मठों में पादरियों और महन्तों को (Bishop) नियुक्त करता था और उनपर अपना प्रभुत्व रखता था परन्तु वह धर्म्म से हार्दिक सहानुभूति रखता था। उसका विश्वास था कि धार्म्मिक मठों की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है और इसके सिवाय उससे मेरा अधिकार भी दृढ़ बना रहेगा। इसलिये उसने जर्मनी में स्थान स्थान में गिर्जे और मठ बनवाये और उनके अधीन विस्तृत भूमि कर दी तथा पादरियों को बहुत से शासनसम्बन्धी अधिकार दिये। उस समय तो उसको इससे बहुत लाभ

पहुँचा परन्तु उसके दुर्बल वंशधरों को इस प्रणालीसे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। यही परिणाम उसकी 'फ्यूडल सिस्टम' का हुआ। शार्लमेन ने बड़े रईसों को राजभक्ति की शपथ करने के लिये वाध्य किया। ऐसा न करने वालों को वह जायदाद नहीं देता था। इस लिये राज्य कई बड़े रईसों में विभक्त हो गया। इनकी अधीनता में कई छोटे छोटे ताल्लुकेदार हो गये। शार्लमेन के वंशधरों को इन रईसों के द्वारा बहुत बाधाओं का सामना करना पड़ा था।

सन् ८१४ में अपने पुत्र लुई (Louis the Pious) को राज्य देकर शार्लेमेन ने इस संसार का परित्याग किया। प्रायः सम्पूर्ण जर्मनी, बेलजियम, स्वीजरलैंड, फ्राँस, स्पेन और उत्तरी इटली देश इस के अधीन थे। इस ने रोमन समाट् की उपाधि भी धारण की थी।

लूई दी पायस ८१४-८४० लूई बहुतही कमजोर दिल का मनुष्य था। पहले इस ने अपना राज्य लौटेयर और लूई नामक पुत्रों में बांट दिया था। पीछे अपनी दूसरी स्त्री जूडिथ के दबाव में आकर उसने लूई के राज्य का एक अंश जूडिथ के पुत्र चार्लस (Charles the Bald) को दे दिया। इसके पश्चात् बहुत सी लड़ाइयाँ हुई। अन्त में ८४१ ई० में फाटन्वा (Fontnay) के युद्ध में इस झगड़े का निवटेरा हुआ। लौटेयर को सम्राट् का पद नेदरलैंडस (Netherland), बर्गेंडी (Burgandy) और इटली, लूई को जर्मनी का अधिकांश और चार्लस को फ्रांस का अधिकांश मिला।

लूई अवतक फ्रांस और जर्मनी काइतिहास सम्मिलित था। अब दोनों राज्य पृथक हो गये। यद्यपि अभी तक जर्मनीवालों में जातीय भावों का आविर्भाव नहीं हुआ था तथापि अब आशा होने लगी कि धीरे धीरे वे वे बहुत उन्नति करेंगे। पचास बरस तक लूई का समय अपने पूर्वी निकटवर्त्ती स्लैव जाति वालों को रोकने में कटा। यद्यपि अब तक जर्मन जातियां एक नहीं हुई थी तथापि अन्य भागों से साम्राज्य के अलग हो जाने के कारण अब वे लोग एक होकर अपने शत्रु से लड़ने लगे। यहां से ही उन की एकता का आरम्भ समझना चाहिये।

लुई की मृत्यु के पश्चात् घटनाक्रम से अन्य सब राजाओं की मृत्यु के कारण शार्लमेन का फ्रैंकिश साम्राज्य फिर लुईके पुत्र चार्लस चार्लस दी फैट (Charles the Fat) के अधिकार में आ गया। यह राजा बहुत ही कमजोर था। इसने नार्मन लोगों से सन्धि कर अपनी दुर्बलता का परिचय दिया। इस लिये प्रजा बहुत असन्तुष्ट हो गई और चार्लस को आर्नल्फ राज्य छोड़ना पड़ा। आर्नल्फ ने गद्दी पर बैठ कर डाइल (Dyle) नदी पर नार्मनों (Normans) को हराया। इसके समय भी सामन्तों का अधिकार बढ़ता ही गया और इसके उपरान्त इसके पुत्र चार्लस चार्लस (Charles the Child) का लड़कपन में ही देहान्त होने कारण सब ड्यकों (Dukes) ने मिल कर फ्रैंकोनिया के 'कौनरैड' ताल्लुकेदार कौनरैड को गद्दी पर बैठाया। कई अन्य तअल्लुकेदारों ने बलवा कर फ्रांस के चार्लस (Charles) से मिल कर इस राजा को बहुत कष्ट पहुंचाया और इसने मरते समय सैक्सनी के ड्यूक हेनरी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सैक्सनी से उस समय कानरड की लड़ाई चल रही थी। इसलिये कौनरैड की इस आज्ञा से उसके उदार हृदय का परिचय मिलता है। कौनरैड की प्रजा ने मृत राजा की आज्ञा का पालन कर हेनरी दी हेनरी को राजा बनाया। यह राजा फाउलर बहुत ही ऊंचे दर्जे का राजनीतिज्ञ ९१९-९३६ था। इसने शीघ्र ही समस्त राज्य में शान्ति स्थापन कर दी। हंगेरी की मगयार

(Magyar) नामक जाति बारंबार आक्रमण कर बहुत कष्ट पहुँचाया करती थी। सौभाग्य से उनका एक राजकुमार हेनरी के हाथ बन्दी हो गया और हेनरी ने हंगेरियनों को दबा कर यह सन्धि कर ली कि नौ वर्ष तक वे उस पर धावा न करें। हेनरी ने वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। नौ वर्षों में हेनरी ने अपनी सेना को समुचित शिक्षा देकर तयार कर लिया और शत्रुओं को बुरी तरह से हराया। ६३३ की १५ वीं मार्च की लड़ाई में हंगेरियनों का बल इतना टूट गया कि वे फिर किसी कामके न रहे।

कौनरैड ६११-६१६

हेनरी ने अपने राज्य को दृढ़ बनाने का पूरा प्रयत्न किया और अन्य राज्यों के ड्यूकों को यथा रुचि कार्य करने दिया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र प्रथम ओटो (Otto I the Great) गद्दी पर बैठा। इसने सब ड्यूकों को अपने अधीन कर साम्राज्य स्थापन करने की चेष्टा की। कई विप्लवों के पश्चात् इसने सबों को अपने अधीन कर लिया और 'लौरेन' (Loraine) का राज्य अपने एक मित्र को दे दिया। फ्रांस के चतुर्थ लुई ने लौरेन पर अधिकार करने की चेष्टा की परन्तु वह कृतकार्य्य नहीं हुआ। ओटो ने इटली पर आक्रमण कर रानी एडीलेड (Adelaide) से विवाह किया। इस पर नाराज होकर उसके पुत्र ने बगावत का झण्डा खड़ा किया और बहुत लोगों ने उसका साथ दिया। ओटो का राज्य अन्त होने ही को था कि उसके विद्रोही लड़के ने पुराने शत्रु मेगयार्स लोगों को बुलवा लिया। इस घटना से उसके साथी बिगड़ खड़े हुए और ओटो के पक्ष में चले गये। इस तरह सौभाग्य से बल पाकर ओटो ने विद्रोहियों और मेगयारो को हरा दिया।

ओटो प्रथम

ओटो ने पुनर्वार इटली में जाकर रोम सम्राट् की उपाधि धारण की। इस नवीन पदवी से उसको हानि के बदले लाभ नहीं हुआ। प्रजा यह सोच कर असन्तुष्ट रहने लगी कि अब राजा अपना पूरा ध्यान जर्मनी में नहीं लगावेगा। इसको और इसके वंशधरों को रोम के लिये बहुत कष्ट उठाना पड़ा। ओटो ने साम्राज्य की एकता को नष्ट कर उसको कई भागों में विभक्त कर दिया। अपना अधिकार बढ़ाने और तअल्लुकेदारों का बल घटाने के लिये उसने धर्म्म पुरोहितों का बल बढ़ाया जिसके फलस्वरूप रोम के पोप का प्रभाव बढ़ गया और भविष्य में जर्मनों को बहुतसी विपदों में फँसना पड़ा।

द्वितीय ओटो

इसके समय में फ्रांस के राजा लौटेयर ने ६७८ में चढ़ाई की परन्तु शीघ्र ही सन्धि हो गई। ओटो को फिर इटली जाना पड़ा। इधर स्लैव जाति वालों ने फिर चढ़ाई कर बहुतसा राज्य छीन लिया।

ओटो तृतीय

ओटो की मृत्यु के पश्चात् उसका बालक पुत्र तृतीय ओटो (Otto III) गद्दी पर बैठा। उसके बाल्यकाल में उसकी माता और माइंज़ के प्रधान धर्म्म पुरोहित (Arch-Bishop of Mainz) राज्य का कार्य देखते थे। युवा होने पर ओटो ने अधिक समय इटली में बिताया। जर्मनी में बहुत से उपद्रव उत्पन्न हुए। ओटो ने वहां जाकर पोलैंड वालों को एक तरह की स्वतन्त्रता दे दी। इसका फल यह हुआ कि उसके उत्तराधिकारी हेनरी को तीन बार पोलोंसे लड़ना पड़ा। हेनरी का समय विद्रोहदमन मे ही बीता। उसकी मृत्यु से सैक्सन वंश का अन्त हुआ।

हेनरी दी सेंट १००३-२४

कौनरैड द्वितीय १०२४३-६

हेनरी की मृत्यु के पश्चात् राज्य के रईसों ने फ्रैंक जाति के कौनरैड द्वितीय (Conrad) को राजा बनाया। इसको अपने पुत्र हेनरी के विद्रोहों को बारंबार शान्त करना पड़ा। कौनरैड के राजत्व के आरम्भ में जर्मन राज्य पर तीन विपद् थी। उत्तर में डेनमार्क मे कैन्यूट (Canute the Great)

पोर्टस्मथ में ब्रिटिश बेड़ा।
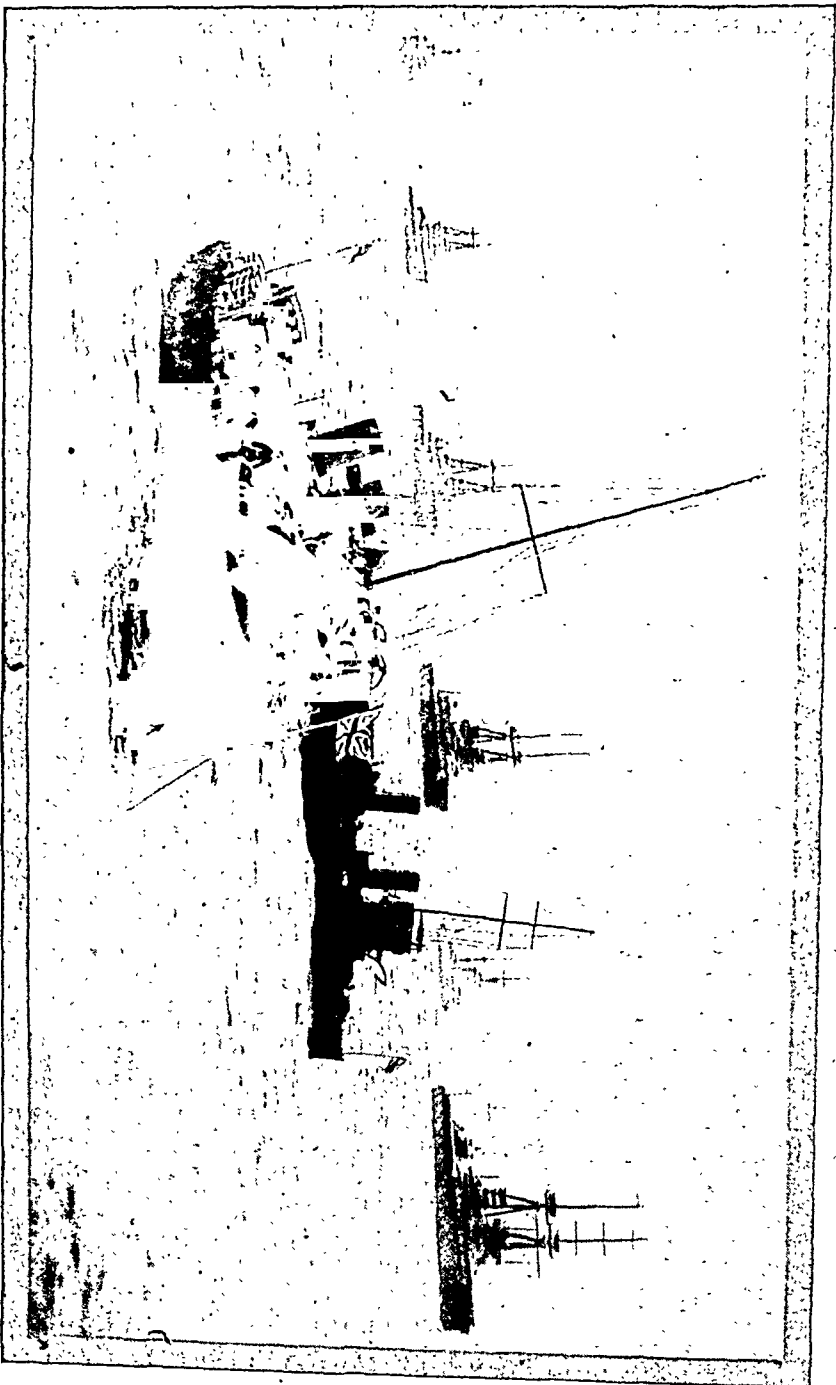
K. V. Seyne & Bros.

होफस्टेड का युद्ध—बेलजियन तोपें।

Copyright by the Daily Mirror.

टर्मोंडी का ध्वंसावशेष।
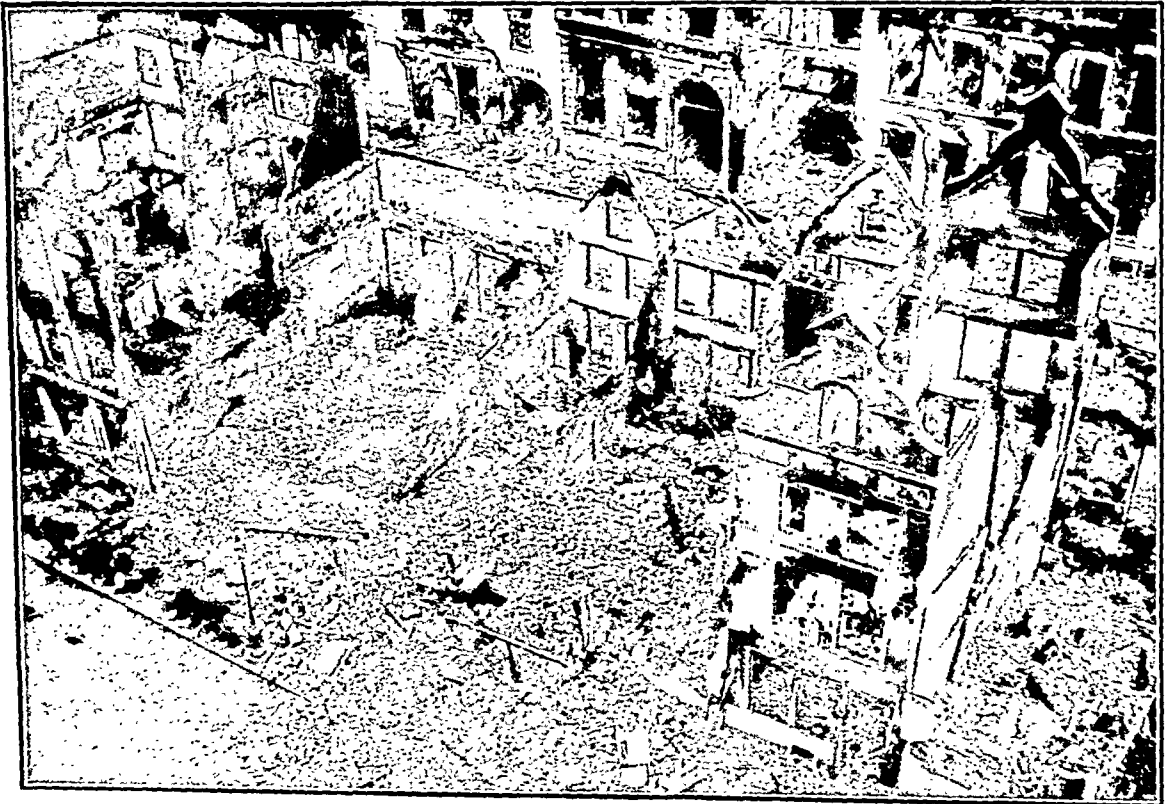
Printed by K. V. Seyne & Bros.

Copyright by the Daily Mirror.

राज्य करता था और पूर्व में हंगेरिया और पोलैंड के राजा बहुत प्रबल हो उठे थे। कैन्यूट और हंगेरिया को कुछ भूमि देकर कानरड ने सन्तुष्ट किया और घर में लड़ाई होने के कारण पोलैंड वालों को दबा लिया। कौनरैड को इटली में अपना अधिकार जमाये रखने के लिये कुछ चेष्टा करनी पड़ी। कौनरैड धर्म्म पुरोहितों पर अपना राजकीय अधिकार बनाये रखने के लिये सदा उत्सुक रहता था।

कौनरैड की पत्नी के चाचा बर्गेंडी के राजा रूडौल्फ तृतीय ने मरते समय बर्गेंडी का राज्य कौनरैड को सौंप दिया। कौनरैड की मृत्युके पश्चात् हेनरी तृतीय राज सिंहासन पर बैठा और बड़ी चतुराई से शासन करने लगा। बोहेमिया के ड्यूक ने पौलैंड वालों को जीत कर अपना बल बढ़ा लिया था। इस लिये हेनरी ने उस पर चढ़ाई कर उसे हरा दिया। विजित शत्रुओं से उत्तम व्यवहार कर हेनरी ने ड्यूक और पोल जाति दोनो को अपना मित्र बना लिया। डेनमार्क वाले भी बहुत प्रसन्न रहे। हंगेरिया से उपद्रव होने के कारण हेनरी ने उसे भी अपने अधीन कर लिया। फ्रांस के राजा हेनरी प्रथम की सहायता पाकर अपर लौरेन के ड्यूक गोडफ्रे ने बलवा किया परन्तु वह सफलता नहीं पा सका। हेनरी ने फ्रांस और इंगलैंड के राजाओं से सन्धि कर अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया।

हेनरी तृतीय

असन्तुष्ट ड्यूकों और रईसों ने पुनः एक बार षड्यंत्र कर हेनरी को पदच्युत करने की चेष्टा की परन्तु वे कुछ नहीं कर सके। इस समय रोम में ३ पोप बने हुए थे। इस के सिवाय अन्य कई कारणों से उस समय धार्मिक संसार में बहुत गड़बड़ फैली हुई थी। हेनरी ने एक बड़ी सेना के साथ रोम में प्रवेश कर कर सब पोपों को पदच्युत कर एक नया पोप बनाया। यद्यपि उस ने बहुत ही उत्तम कार्य किया तथापि साथ ही पोप का बल बढ़ा कर भविष्य में अपने पुत्र की विपद् बढ़ाई।

हेनरी चतुर्थ १०५६-११०६

हेनरी चतुर्थ बाल्यावस्था में राज गद्दी पर बैठा। इस समय महन्तों को शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी। कलोन के और ब्रीमेन के महन्तों ने उस की बाल्यावस्था में राज्य का काम किया। बुरी संगत के कारण हेनरी बहुत ही यथेच्छाचारी हो गया। युवा होते ही उस ने दोनों महन्तों को पदच्युत किया। अपने उद्धतस्वभाव से उसने सब रईसों को क्रुद्ध कर दिया जिस से उन्हों ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। हेनरी को किसी से भी सहायता नहीं मिली और उसे लाचार होकर विद्रोहियों की बातें माननी पड़ी। विद्रोहियों ने किलों को नष्ट करने सिवाय एकाध धर्म्म मन्दिरों को भी नष्ट कर डाला। बस फिर क्या था। हेनरी के पक्ष में बहुत से मनुष्य आ जुटे और उस ने विद्रोहियों को हरा दिया।

इसी समय पोप ग्रेगरी सप्तम ने आज्ञा प्रचारित की कि महन्तों और पुरोहितों को गद्दी देनेका अधिकार पोप को ही है। यह आज्ञा हेनरी को स्वीकृत नहीं हो सकती थी क्योंकि इस से राजा की सब शक्ति नष्ट होकर पोप के अधिकार में जाती थी। हेनरी ने आपत्ति की। पोप ने उसे अपने अनुचित कार्यों के लिये प्रायश्चित करने का आदेश दिया। हेनरी ने पोप को पदच्युत करने का आदेश दिया और पोप ने हेनरी को राज्यच्युत करने की आज्ञा का प्रचार किया।

अब दोनों पक्षों में जिस विरोध का आरम्भ हुआ उस का वर्णन दो सौ वर्ष के इतिहास में प्रचुर परिमाण से भरा हुआ है। हेनरी से सब लोग बिगड़े हुए थे। इस लिये उसे अपनी हार मान कर पोप से अति विनीत भाव से क्षमा मांगनी पड़ी। पोप ने क्षमा कर उस को पुनः राजा बनाया। तिस पर भी कितने रईसों ने उस को राजा मानना अस्वीकार किया। तीन बार हार होने के पश्चात् हेनरी की विजय हुई और

तदुपरान्त उस ने इटली में प्रवेश कर पोप ग्रेगरी सप्तम को पदच्युत कर अवसर पाकर पुरानी शत्रुता का बदला लिया और एक नये पोप का निर्वाचन किया। इस तरह चतुर्थ हेनरी ने अपने शत्रुओं से बदला लिया पर वह अपना जीवन आराम से नहीं बिता सका। उस के पुत्र पंचम हेनरी ने बलवा किया। अन्त में सन् ११०६ में चतुर्थ हेनरी की मृत्यु हुई और पंचम हेनरी राज सिंहासन पर बैठा।

पञ्चम हेनरी (११०६-११२५) हेनरी पञ्चम के शासनकाल का आरम्भ घरेलू झगड़ों को मिटाने में बीता। अन्त में पोप का झगड़ा पुरोहितों को पद देने के अधिकार के विषय में फिर आरम्भ हुआ। बहुत दिनों तक युद्ध होते रहने के पश्चात् दोनों दलों ने हार कर यह सन्धि की कि पुरोहित को पद देने का अधिकार पोप का रहे और उसे राजकीय अधिकार देने का हक राजा का रहे।

हेनरी ने इङ्गलैण्ड के राजा प्रथम हेनरी की कन्या से विवाह किया और अपने श्वसुर को बहुत सहायता पहुँचाई।

हेनरी की मृत्यु के साथ फ्रैंकवंश का अन्त हो गया।

लाटेयर ११२५-३८ बहुत गड़बड़ होने के पश्चात् सैक्सनी के लाटेयर को महाराज बनाया गया। इसने बोहेमिया पर चढ़ाई कर हार खाई। सर्विया के फ्रेडरिक और फ्रैंकोनिया के कौनरैड ने बलवा किया। लाटेयर ने अपनी पुत्री गरट्रूड का विवाह बवेरिया के हेनरी से कर अपनी शक्ति बढ़ा ली। कई वर्षों तक लड़ाई होने के पश्चात् फ्रेडरिक और कौनरैड ने हार मानी।

कौनरैड तृतीय ११३८-५२ लौटेयर के पश्चात् कौनरैड तृतीय राजा बनाया गया। राजकीय वंशों में परस्पर युद्ध होने के कारण बहुत गोलमाल मची रही।

कई वर्षों से जेरूसलम को मुसलमानों के अधिकार से छुड़ाने का प्रयत्न हो रहा था। कौनरैड ने युद्ध के लिये पूर्व की ओर यात्रा की।

फ्रेडरिक प्रथम ११५२-९० सन् ११५२ में इनकी मृत्यु के समय बहुत गड़बड़ मची हुई थी। इसके भतीजे फ्रेडरिक प्रथम बारबरोसा ने राजसिंहासन पर बैठ कर बड़ी चतुराई से राज करना आरम्भ किया। इसने सब ताल्लुकेदारों से अच्छा बर्त्ताव कर उनको सन्तुष्ट कर दिया और इस प्रकार स्वदेश में शान्ति स्थापन कर सन् ११११ में आल्पस (Alps) पार कर रोम में सम्राट् की उपाधि धारण की।

फ्रेडरिक ने हेनरी दी लाइन (Henry the Lion) को बवेरिया का ड्यूक बनाने का वचन देकर सन्तुष्ट किया था परन्तु हेनरी जेसमरगिट (Jasomargitt) अपना पद नहीं छोड़ना चाहता था। इसलिये उसको अस्ट्रिया का अधिकारी बनाकर कई विशेष अधिकार दिये गये। इस घटना को अस्ट्रिया की स्वतन्त्रता का सूत्रपात समझना चाहिये।

हेनरी (दी लायन) ने बवेरिया का ड्यूक बन कर समीपवर्त्ती स्लैव जाति को हरा कर बालटिक समुद्र के तट पर अपना राज दृढ़ किया।

फ्रेडरिक ने डेनमार्क की राजगद्दी का झगड़ा शान्त कर एक तरह से उस राज्य को अपने बस में कर लिया था और सन् ११५७ में पोलैंड पर चढ़ाई कर उसके राजा को अधीन कर लिया। हङ्गरी का राजा भी मित्र बन गया। इस तरह फ्रेडरिक ने चारो ओर अपना दबदबा बढ़ा लिया।

राज्य शासन में भी फ्रेडरिक बहुत अच्छा था और उसकी प्रजा उस से बहुत सन्तुष्ट रहती थी। राज्य प्रबंध में भी उसने बहुत कुछ उन्नति की थी।

इटली के पोप से फ्रेडरिक की बहुत खट

पर रही और बहुतसा समय इटली मे युद्धों में बीता। दो बार फ्रेडरिक की हार होने के पश्चात् पोप एलैक्जेण्डर तृतीय (Alexander III) और फ्रेडरिक की सन्धि हो गई। वेवेरिया के ड्यूक ने इस युद्ध में फ्रेडरिक की सहायता नहीं की थी। इस लिये फ्रेडरिक ने एक बहाना लेकर उसे राज्यच्युत कर उस पर चढ़ाई की। अन्त में उसने हार मान कर सुलह कर ली और उसको राज्य का एक छोटासा भाग फिर दे दिया गया।

इसके उपरान्त इटली में पोप से फ्रेडरिक की खटपट फिर आरम्भ हुई। इधर कई रईसों ने मिल कर बगावत का झंडा खड़ा किया परन्तु फ्रेडरिक के पुत्र ने बलवा शान्त कर दिया।

जेरूसेलेम को स्वाधीन करने की चेष्टा में फ्रेडरिक ने योगदान कर वहां पहुँचने के लिये यात्रा की परन्तु वह रास्ते में डूब कर मर गया।

हेनरी षष्ठ ११९०-९७ इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका पुत्र हेनरी षष्ठ (Henry VI) राजा हुआ। इसके समय में कितने ही रईसों ने बलवा किया और इसने बहुत कड़ाई से उनको दबाया।

फ्रेडरिक फिलिप सन् ११९७ में इस की मृत्यु के पश्चात् इस के पुत्र फ्रेडरिक को रईसों ने राजा स्वीकार नहीं किया। अन्तमें हेनरी के भाई फिलिप और ओटो में राजा बनने के लिये बहुत दिनों तक युद्ध हुआ। पोप ओटो के पक्ष में थे। फिलिप की विजय हुई। परन्तु किसी ने इस को हत्या कर ओटो को राजा बनने का अवसर दिया।

ओटो १२०८-१५ ओटो ने मृत फिलिप की लड़की से विवाह किया। शीघ्र ही पोप से इसकी अनबन हुई और पोप की सहायता से

फ्रेडरिक द्वितीय १२१५-५० हेनरी षष्ठका पुत्र फ्रेडरिक द्वितीय राजा बना।

फ्रेडरिक के शासनकाल में राज्य की बाहरी चमक दमक बहुत बढ़ी। परन्तु जर्मनी की शक्ति का धीरे धीरे ह्रास होता गया। सम्राट की उपाधि धारण करने और अपने पुत्र को रोम का राजा बनाने के लिये उसने अपनी शक्ति घटानेवाले कितने ही प्रस्ताव मंजूर किये। इतने दिनों में, जिन अधिकारों के लिये पोप से वैमनस्य चला था वे अधिकार भी उसने रोम का सम्राट बनकर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लोभ से दे दिये, जिस से पुरोहितों की अधिकृत भूमि में राजा का कुछ अधिकार नहीं रहा और भविष्य मे पुरोहित रोम के पोप को अपना स्वामी समझने लगे। रईसों का अधिकार भी उसने इतना बढ़ा दिया कि धीरे धीरे वे स्वतन्त्र रजवाड़े हो गये और राजा में शक्ति नहीं रही कि उनको दबा सके।

इसके अतिरिक्त फ्रेडरिक ने अधिकांश समय इटली, सिसीली आदि स्थानों में अपने राज्य का प्रबन्ध करने में बिताया और बाकी का लड़ाइयों में। उस के बालक पुत्र हेनरी ने जर्मनी में राजा के पद पर आसीन होकर अन्य पुरुषों के द्वारा राज्य शासन किया। बड़े होने पर पिता से मतभेद होने के कारण हेनरी ने बलवा किया पर हरा कर वह बन्दी कर लिया गया। थोड़े दिनों तक जर्मनी में रहकर फ्रेडरिक ने फिरअपने द्वितीय पुत्र कौनरैड को राज्याधिकार दिया और इटली को पीछा लौट आया। मोगोल जाति ने बड़ी शक्ति लेकर आक्रमण किया परन्तु किसी तरह सिलीशिया के ड्यूक द्वितीय हेनरी ने अपने प्राण देकर उन को रोका। इस समय भी फ्रेडरिक ने जर्मनी की कुछ खबर न ली। अस्ट्रिया के ड्यूक ने पोप की सहायता पाकर जर्मनी मे एक नया राजा बनाने की चेष्टा की। फ्रेडरिक ने जर्मनी जाकर इस बलवे को रोकने का प्रयत्न किया। पोप के अनुयायियों ने जब

हेनरी रास्प हेनरी रास्प (Hnnry Raspe) को राजा बनाया तब फिर घोर युद्ध होने लगा। हेनरी रास्प की मृत्यु होने पर पोप के

द्वितीय विलियम दल ने हालैंड के द्वितीय विलियम को राजा के पद पर बैठाया। इस झगड़े के शान्त होने से पहले ही १२५० ई० में फ्रेडरिक की मृत्यु हो गयी। फ्रेडरिक के पुत्र कौनरैड चतुर्थ को बहुतों ने राजा बनाया परन्तु यह भी इटली में जाकर सन् १२५४ में मर गया।

सन् १२६८ में कौनरैड के पुत्र को फांसी पर चढ़ाने के बाद ही इस होहेनस्टाउफेन वंश का अन्त हुआ। सन् १२७३ तक कितनेही राजा बने जो, मरे और पदच्युत हुए। समस्त राज्य में अशान्ति फैल गयी। अन्त में लोगों ने बहुत व्याकुल होकर हैप्सबर्ग, * स्वीज़रलैंड के रूडोल्फ को १२७३ में एक मत होकर अपना राजा बनाया।

होहेनस्टाउफेन वंश के अन्तिम राजाओं ने इटली के राजा बनने के लोभ से किस तरह जर्मनी का सर्वनाश किया, यह उल्लिखित वृत्तान्त से विदित हो जाता है।

होहेनस्टाउफेन बंशके राजाओं का समय जर्मनी के इतिहास में बहुतही चित्ताकर्षक है। प्रत्येक राजा के शासनकालमें धूमधाम और लड़ाइयों का वर्णन मिलता है। कई राजाओंने सम्राट् की पदवी धारण की। पर साथ ही यह भी देखा जाता है कि इसी बंश के समय जर्मनी की शक्ति का पूरा ह्रास हुआ। यदि वे जर्मनी का प्रवन्ध करते और अन्य छोटे राजाओं को वश में करते तो सम्भव है कि जर्मनी की शक्ति बहुत बढ़ती, पर रोमन सम्राट् की पदवी के लालच ने उनका सर्वनाश किया। प्रतिवर्ष उन को सेना को इटली के लिये कष्ट और क्षति उठानी पड़ती थी। परिणाम यह हुआ कि रईसों और ताल्लुकेदारों का बल बढ़ता गया। डेन्मार्क और पोलैंड ने अधीनता माननी छोड़ दी और बर्गेंडी धीरे धीरे फ्राँस में मिल गया।

रूडल्फ (Rudolph) १२७३–१२९१

सन् १२७३ में पोप के दवाव से रईसों ने हैप्सबर्गके रूडल्फ को राजा बनाया। बोहेमिया के ओटाकर (Ottakar II) की इच्छा स्वयं राजा बनने की थी। इस लिये उसने अधीनता स्वीकार नहीं की। १२७८ के युद्ध में ओटाकर मारा गया और राजा ने विजयश्री लाभ की।

रूडल्फ ने अपना राज्य बढ़ाने के लिये अन्य रजवाड़ों और रईसों को अधिकार देना आरम्भ किया। प्रत्येक राजकीय आइनमें उनकी सम्मति ली जाने लगी। नगरों की स्वतंत्रता बढ़ने से रईसों की हानि होती थी। इस लिये उन की सलाह से राजा ने नगरों पर जुल्म करना आरम्भ किया। परिवर्त्तन में रूडल्फ के पुत्रों को आस्ट्रिया, स्टिरिया (Styria) और कार्नियोला (Carniola) के प्रान्त मिले।

आडोल्फ (Adolf) १२९१–१२९८

१२९१ रूडल्फ की मृत्यु के पश्चात् रईसों ने आडोल्फ को राजा बनाया। इस ने भी अपना राज्य बढ़ाने की चेष्टा की परन्तु कुछ सफलता नहीं हुई। इंगलैंड के प्रथम एडवर्ड से सन्धि कर इसने फ्राँस के चतुर्थ फिलिप से युद्ध घोषणा की पर कार्य कुछ नहीं किया। रूडल्फ के पुत्र ऐलवर्ट ने कई रईसों की सहायता से १२९८ में इस को गोलहाईम (Golheim) में हरा दिया। युद्ध में आडोल्फ मारा गया।

प्रथम ऐलवर्ट १२९८-१३०८ इस ने भी पिता की तरह बोहेमिया और थूरेंजिया को अपने पैतृक राज्य में शामिल करने की चेष्टा की, पर वह सफल नहीं हुआ। हालैंड और ज़ीलैंड में भी इस की दाल नहीं गली। इस ने नगरों की सहायता कर, कई करों को उठा कर और यहूदियों को आश्रय देकर अच्छा कार्य कर दिखलाया। कुछ दिनों तक फ्राँस के चतुर्थ फिलिप के सङ्ग इस ने पोप से लड़ाई की परन्तु सन् १३०३ में सन्धि करली। कई महंतों ने मिल कर इस को पदच्युत करना चाहा पर वे इस

* जर्मन उच्चारण हाप्सवर्ग।

बेलजियन सेना युद्ध करने जाती है।

K. V. Seyne & Bros.

भौन मौल्टके।

K. V. Seyne & Bros.

काम में सफलता लाभ न कर सके। सन् १३०८ में इस की हत्या हुई।

सप्तम हेनरी १३०८-१३१३ इसके उपरांत लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) के काउंट (count) हेनरी सप्तम को राजपद मिला। इस ने अपने पुत्र जौन (John) को बोहेमिया का राज्य दिलाया। पुराने राजाओं की तरह इस को भी इटली का सम्राट् बनने की धुन समा गयी और वह रईसों का बल वढ़ा कर वह १३१० में इटली को चल दिया। वहीं १३१३ में उसकी मृत्यु हुई।

लुई १३१४-१३४५ गद्दी पर बैठते ही लुइ को आस्ट्रिया के फ्रेडरिक से (जो स्वयं राजा बनने की इच्छा रखता था) लड़ाई करनी पड़ी। नौ बरसों तक युद्ध होने के बाद फ्रेडरिक हार कर वन्दी हुआ (१३६२)। इस युद्ध में नगरों ने लूई को बड़ी सहायता दी थी। लूई की शक्ति वढ़ते देख कर बेवेरिया के जान [John], फ्राँस के चतुर्थ चार्लस और पोप जान (२२वां) को बहुत आशङ्का हुई और पोप ने लूई को राज्यच्युत कर दिया। इससे जर्मनी वाले बहुत अप्रसन्न हुए। क्योंकि उनकी इच्छा नहीं थी कि उस राज्य में बाहरी मनुष्य हस्तक्षेप करे। प्रजा का बल पाकर लुई ने इटली में जाकर रोम में सम्राट् की पदवी ली और नये पोप को गद्दी पर बैठाया। जर्मनी में 'कैरिंथिया' राज्य को लेकर बहुत झगड़ा उठा। अन्त में लुई ने अपने लड़के को वहां का राज्य दे दिया। पोप और अन्य रईसों ने मिल कर लुई के पुत्र चार्लस को अपनी ओर से गद्दी पर बैठाया। तब युद्ध होने का ढंग भी हुआ था पर लुई की मृत्यु से सारा मामला अपने आप शान्त हो गया।

लुई ने सन् १५४५ में हालैंड झीलैंड और फ्रीज़लैंड पर अधिकार किया था।

चतुर्थ चार्लस १३४६-१३७८ कई रईसों ने गंथर को राजा बनाया पर उससे असन्तुष्ट होकर फिर चार्लस को राजा बनाया। चार्लस ने कुछ दिनों तक बोहेमिया का राज्य अच्छी तरह किया पर जर्मनी की उसने कुछ परवाह न की। इस समय यहूदियों पर बहुत अत्याचार हो रहे थे। बीमारी फैली हुई थी और लूटखसोट भी मची हुई थी। किन्तु चार्लस ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

इस राजा ने पोप और रईसों के झगड़े से बच कर अपने वंश का बल बहुत बढ़ाया और वह बोहेमिया, लोम्बार्डी (Lanbardy) बर्गैंडी और साम्राज्य का अधिकारी बन गया।

सन् १३५६ में इसने गोल्डन बुल (Golden Bull) प्रकाश कर राजा के चुनाव का नियम बनाया। इस से सात स्थानों के रईसों को राजा चुनने का स्वत्व मिला और स्वतंत्र राज्य करने की अनुमति मिली। इस से यद्यपि नगरों को बहुत हानि पहुंची परन्तु उन्हों ने एक होकर बहुत कुछ कार्य्य किया और डेनमार्क तथा नारवे के राजाओं और वर्टम्बर्ग के काउंट को हरा दिया। साथ ही इनका व्यापार भी बहुत बढ़ गया।

वेनसेसलौस (Wenceslaus) १२७८-१४००

यह राजा सर्वथा अयोग्य था और कुछ ही वर्ष बाद जर्मनी को ईश्वर के भरोसे छोड़ कर विदेशों में चला गया। सन् १४०० में कई रईसों ने मिलकर इसको राजच्युत कर दिया और इस ने कुछ आपत्ति नहीं की।

इस के शासन काल में नगरों और ताल्लुकेदारों का विवाद चरम सीमाको पहुंच गया। बहुत लड़ाइयों के पश्चात् नगरों की हार हुई और रईसों को अत्याचार और भी बढ़ गया। स्वीज़रलैंड वालों ने नगरों का साथ दिया।

रूपर्ट तृतीय १४००-१४१ इस का समय घरेलू झगड़ों में बीता। १४०१ में इसने रोम पहुंचने की चेष्टा करने की बेवकूफी की थी पर अपना सा मुंह लेकर लौट आया। नगरों ने आपस में सन्धि कर फिर जोर बांध लिया।

सिजिसमंड १४११—१४३७

कुछ विवाद के पश्चात् हंगरी का राजा सिजिसमंड जर्मनी के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। इस समय ३ व्यक्ति पोप बने हुए थे। सिजिसमंड ने १४१४ में कॉनस्टैंस की काउंसिल में प्रग के जौन हस (John Huss) और पेरोम को प्राण दण्ड दिला कर बोहेमिया वालों को उत्तेजित कर दिया। प्रसिद्ध सेनापति ज़िसका को मुखिया बना कर उन्हों ने बहुत उत्पात मचाया। परन्तु सिजिसमण्ड धनाभाव से लाचार होकर कुछ नहीं कर सका। अन्त में सेनापति की मृत्यु के पश्चात् शान्ति स्थापित हुई। इस की मृत्यु के पश्चात् हैप्सबर्ग वालों के हाथ में राज आया और १७०६ तक उन्हीं के वंश में रहा। १४१५ में राजा ने होहेनझोलर्न वंश के फ्रेडरिक को ब्राडेनबर्ग का प्रान्त बेच दिया। इसी वंश के अधीन प्रशिया का राज्य बना।

ऐलवर्ट द्वितीय १४३७-३९ अस्ट्रिया का एलबर्ट जर्मनी, हंगरी और बोहेमिया का राजा हुआ यह राजा बहुत अच्छा था। इस ने कई सुधारों का आरम्भ किया पर शीघ्र ही मृत्यु होने के कारण वे अधूरे रह गये। अब से १७४० तक इस के वंशधर राजा बनते गये। ऐलबर्ट ने बेसेल की काउंसिल के बतलाये हुए सुधारों को मंजूर किया था।

राजा फ्रेडरिक चतुर्थ *वा* *सम्राट् फ्रेडरिक तृतीय* } १४३९—१४९३ ई०

सन् १४४८ में फ्रेडरिक ने पोप निकोलस पञ्चम से सन्धि कर रोम से जर्मन गिरजों का सम्बन्ध दृढ़ कर दिया। इस से सुधार की आशाएं नष्ट होगई और उस की फलस्वरूप १६ वीं शताब्दी की हलचल अवश्यम्भाविनी होगयी।

जर्मनी के दुर्भाग्य से इस राजा ने बहुत दिनों तक राज्य किया। इस के शासन काल में जर्मन राज्य बड़ी दुःखावस्था को पहुंच गया। रईसों तथा नगरों का वैमनस्य फिर प्रगट हुआ तथा चार वर्ष तक घोर युद्ध हुआ। अन्त में रईसों की ही कुछ जय हुई।

फ्रेडरिक को स्वीजरलैण्ड वालों से अपने भाई और अस्ट्रियन प्रजा से तथा हंगेरियनों से लड़ना पड़ा। इटली में उस का कुछ भी बल नहीं चलता था। ड्यूक फिलिप (Philip the Good) ने लक्सेम्बर्ग ले लिया। चार्लस (Charles the Bold) ने अलग ही उपद्रव मचाया। चार्लस की मृत्यु के पश्चात् फ्रांस के राजा ने जर्मन राज्य का बहुत सा हिस्सा दबा लिया। पोलैण्डवाले स्वतन्त्र हो गये। श्लेजविग तथा हालस्टाइन हालैंड में मिल गये। फ्रेडरिक सब तरह से शक्तिहीन होकर राज्य की झंझट से अलग रहता था और इसके जीते जी १४८६ में उसका पुत्र मैक्समिलियन गद्दी पर बैठाया गया। १४९३ में फ्रेडरिक की मृत्यु हुई।

मैक्सिमिलियन प्रथम।

१४८६-१५१८

मैक्सिमिलियन का राजत्वकाल जर्मनी के इतिहास में अति महत्व से पूर्ण है। इसी समय राजकीय और धार्मिक सुधारों का आरम्भ हुआ। अतएव इस समय का इतिहास ध्यान पूर्वक मनन करने योग्य है।

मैक्सिमिलियन नेदरलेंड का शासन करता था और अस्ट्रिया के राज्य का उत्तराधिकारी था। इस के अतिरिक्त उसने स्पेन की उत्तराधिकारिणी जोआना से विवाह कर अपनी शक्ति और भी बढ़ाली।

इस राजा का पहला कार्य १४६० में हंगेरियनों को वायना से भगा कर अपने राज्य को सुदृढ़ करना था। सन् १४६१ में फ्रांस के राजा अष्टम चार्लस ने इटली पर चढ़ाई की। इसलिये मैक्सिमिलियन ने भी इटली जाकर उससे युद्ध करना आरम्भ किया। १५१६ तक युद्ध होने के पश्चात् सन्धि हुई।

इस समय रईसों और तअल्लुकेदारों का रुतबा राजा की बराबरी करता था। राजा की तरह उनके भी राजसभा रहती थीं। सिक्के ढालना आदि भी उनके अधिकार में था। परन्तु इतना अधिकार बढ़ने पर भी वे यथेच्छाचारी नहीं हो सके। सब बड़े बड़े नगरों में प्रजासाधारण और छोटे रईसों ने मिल कर डाइट (छोटी पार्लीमेंट) बना रखी थी और कर लगाने तथा व्यय करने का अधिकार माँगती थी।

युद्ध के लिये धन के अभाव से राजा को राजकीय सभा (Diet) का आह्वान करना पड़ा। इसमें Princes (रजवाड़े) Electors (निर्वाचक) और स्वतन्त्र नगरों के प्रतिनिधि थे। नगरों के प्रतिनिधियों के नेता, माईंज के निर्वाचक बर्टोल्ड ने कहा कि जब तक सुधार नहीं होंगे तब तक धन नहीं मिलेगा। बहुत वादाविवाद होने के पश्चात् एक न्याय-सभा स्थापित हुई। इसके व्यय और मैक्सिमिलियन के युद्धों के लिये धन देने के वास्ते एक कर लगा। मैक्सिमिलियन ने एक नई काउन्सिल बना उक्त न्याय सभा से अधिक अधिकार देकर पहली सभा को बेकाम कर दिया। स्वीज़रलैंड वालों ने कर देना अस्वीकार किया। युद्ध में मैक्सिमिलियन की हार हुई और उसे स्वीज़रलैंड की स्वाधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके पश्चात् मैक्सिमिलियन ने प्रजा के दबाव से एक शासन सभा बनायी। इस सभा ने आरम्भ से ही फ्रांस से सन्धि करने की चेष्टा की। इस लिये मैक्सिमिलियन ने इसे भी तोड़ डाला। अब प्रजा और राजा में फिर धींगाधींगी शुरू हुई। पर बर्टोल्ड की मृत्यु से राजा के विरुद्ध विद्रोह ठंडा पड़ गया।

हम लिख चुके हैं कि इस राजा के राजत्व काल में ही सुधारों का आरम्भ हुआ। इस समय सब रईस राजा की अधीनता न मान कर एक तरह से स्वतन्त्र हो गये थे। धार्मिक अधिकारियों का बल जर्मनी में अत्यधिक हो गया था। परन्तु पोप की आज्ञा प्रत्येक मनुष्य को माननी पड़ती थी। धार्मिक विषयों में उनकी आज्ञा सब को शिरोधार्य्य होनी उचित थी पर राजकार्य्य में हस्तक्षेप करना सर्वथा अनुचित होने पर भी किसी की सामर्थ्य नहीं थी कि वह चूं तक भी कर सके। इस कठोर शासन से लोगों का नाकों दम हो गया था।

इसके सिवा धर्म्माधिकारी स्वयं पोप भी स्वार्थलोलुप था और चरित्रहीनता के कारण लोगों की श्रद्धा दिनों दिन उस पर से हट रही थी। धन लेकर पोप की पाप-क्षमा की टिकटें बेची जाती थीं।

लूथर

इन सब दुराचारों को देखकर एक दरिद्र स्लेट बनाने वाले के पुत्र मार्टिन लूथर को बहुत क्रोध हुआ और उसने पोप की क्षमता घटाने और कैथलिकों के पाषण्ड को प्रकाश करने की चेष्टा आरम्भ की। मैक्सिमिलियन के राज्य के अन्त के कुछ ही पहिले १५१७ में उसने प्रकाश्यरूप से पोप के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। इस वर्ष से ही सुधार (Reformation) का आरम्भ समझना चाहिये।

सन् १५१६ में मैक्सिमिलियन की मृत्यु होने पर उसके पोता चार्लस, इंगलैंड के अष्टम हेनरी तथा फ्रांस के प्रथम फ्रैंसिस ने राजा बनाना चाहा। इनमें इंगलैंड के हेनरी का दावा तो अनुचित था। अन्त में चार्लस राजा बनाया गया।

चार्लस

यद्यपि चार्लस की उम्र छोटी थी पर बहुत ही विचारशील और [illegible] था। उसकी इच्छा उत्तरी इटली

अधिकार करने और रोमन सम्राट् बनने की थी। इस उद्देश्य सिद्धि के लिये रोम के पोप का पक्ष लेना उचित समझ कर उस ने लूथर का विरोध किया और उस की पुस्तकें जलवाने की आज्ञा दी। इस आज्ञा को प्रचारित करने में चार्लस ने बहुत भूल की। उसने इन आन्दोलन को साधारण समझ कर इनके भीतरी उद्देश्यों और लोगों के तत्कालीन मानसिक भावों को समझने की चेष्टा नहीं की।

चार्लस ने गद्दी पर बैठते समय धर्म की महासभा में प्रतिज्ञा की थी कि शासन में कई सुधार किये जायँगे। इस प्रतिज्ञा के अनुसार उसने अपनी अनुपस्थिति में राजकार्य के लिये एक सभा बनायी। प्रत्येक राज्य को देश के लिये सेना रखने का आदेश मिला और उसकी संख्या निर्धारित कर दी गयी। इन प्रबन्धों को ठीक कर सम्राट् ने फ्रांस के प्रथम फ्रैंसिस के संग युद्ध करने के लिये गमन किया। इस युद्ध में पञ्चम चार्लस ने वारंवार विजय पायी और लम्बार्डी का सूबा ले लिया। इटली पर उस का अधिकार दृढ़ हो गया तथा पोप उस की आज्ञा में रहने लगे।

सन् १५६० मे चार्लस लौट कर जर्मनी पहुंचा। इस समय मे जर्मनी में बहुत विप्लव हो चुके थे। पहला झगड़ा बड़े (रईसों से जो अब छोटे राजा (Preineis) बन गये थे) और छोटे रईसों में हुआ। इसमें रजवाड़ों की विजय हुई (१५२२)। लूथर के उच्च विचारों से अपनी दुर्दशा से असन्तुष्ट होकर किसानों ने उपद्रव मचाना आरम्भ किया। यह उपद्रव इतना बढ़ने लगा कि स्वयं मार्टिन लूथर को इस झगड़े में भी कहना पड़ा कि इनको दबाना चाहिये। अन्त में रजवाड़ों की जय हुई (१५२५)।

१५२१ में चार्लस ने जो आज्ञा प्रचार की थी लोगों ने दबाव डाल कर स्पायस में राजसभा से १५२६ मे उसको रद्द करा कर सब धर्म्मावलम्बियों को समान अधिकार दिला दिया: सन् १५२९ में उन के विपक्षियों ने इस कानून को रद्द करा लिया। सन १५३० में चार्लस ने लौट कर आगसबर्ग में सभा की और अपनी पुरानी आज्ञा का पुनः प्रचार किया। लूथर के मत वालों ने आपत्ति की प्रोटेस्ट (Protest) किया। इस लिये वे (Potestant) प्रोटेस्टेंट कहलाये। पर फ्रांस से फिर खट पट होने और तुर्कों द्वारा वायना पर आक्रमण होने से उसने शान्ति स्थापन के लिये न्यूरेनबर्ग मे लूथर के मतानुयायियों को समानता दे दी। प्रोटेस्टेंट दल वाले अपना बल बढ़ाते रहे और बहुत से रईसों (Princes) को अनिच्छापूर्वक प्रजा के दबाव से उन से योगदान करना पड़ा।

१५४४ में फ्रांस से सन्धि कर चार्लस फिर जर्मनी पहुँचा और उस की सलाह से रोम के पोप ने ट्रेंटे में एक धर्म महासभा की। प्रोटेस्टेंट धर्म वालों ने असन्तुष्ट होकर युद्ध किया जिस में उन का नेता सैक्सनी का फ्रेडरिक वन्दी हो गया। इस प्रकार एक वार चार्लस ने पूर्ण विजय प्राप्त की पर शीघ्र ही अन्य लोगों ने बलवा कर दिया। फ्रांस के द्वितीय हेनरी ने मौका देख कर धावा किया। चार्लस को सन्धि में एक महासभा कर धर्म्म के झगड़ों का फैसला करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी। इस महासभा में कैथलिकों तथा लूथर के अनुयायियों को समान स्वत्व मिले। सन् १५५५ में चार्लस ने अपने भाई फर्डिनैंड को जर्मनी का और पुत्र फिलिप को स्पेन, सिसीली और हालैंड आदि का राज देकर शान्ति ली। सन् १५५८ में उसकी मृत्यु हुई।

फर्डिनैंड — फर्डिनैंड ने जर्मनी, बोहेमिया और हंगरी का राज्य सन् १५५६ से १५६४ तक किया। बोहेमिया और हंगरी में उपद्रव होते रहे। फर्डिनैंड के पश्चात् उस का पुत्र द्वितीय मैक्समिलियन राजा हुआ। सन् १५७६ में उस की मृत्यु हुई

(Margin note: द्वितीय मैक्समिलियन)

बेलजियन तोपें।
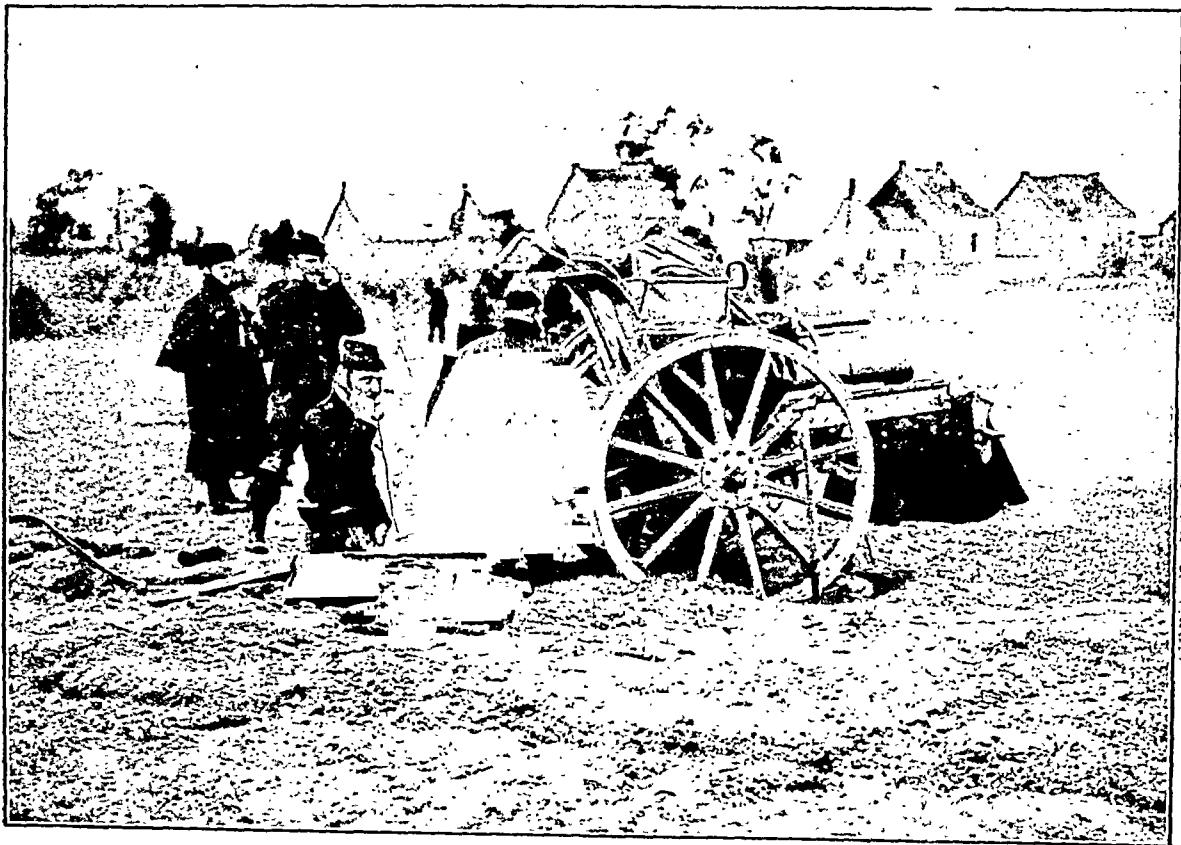
युद्धस्थल में वीर बेल्जियन राज (दरवाजे पर खड़े हैं)
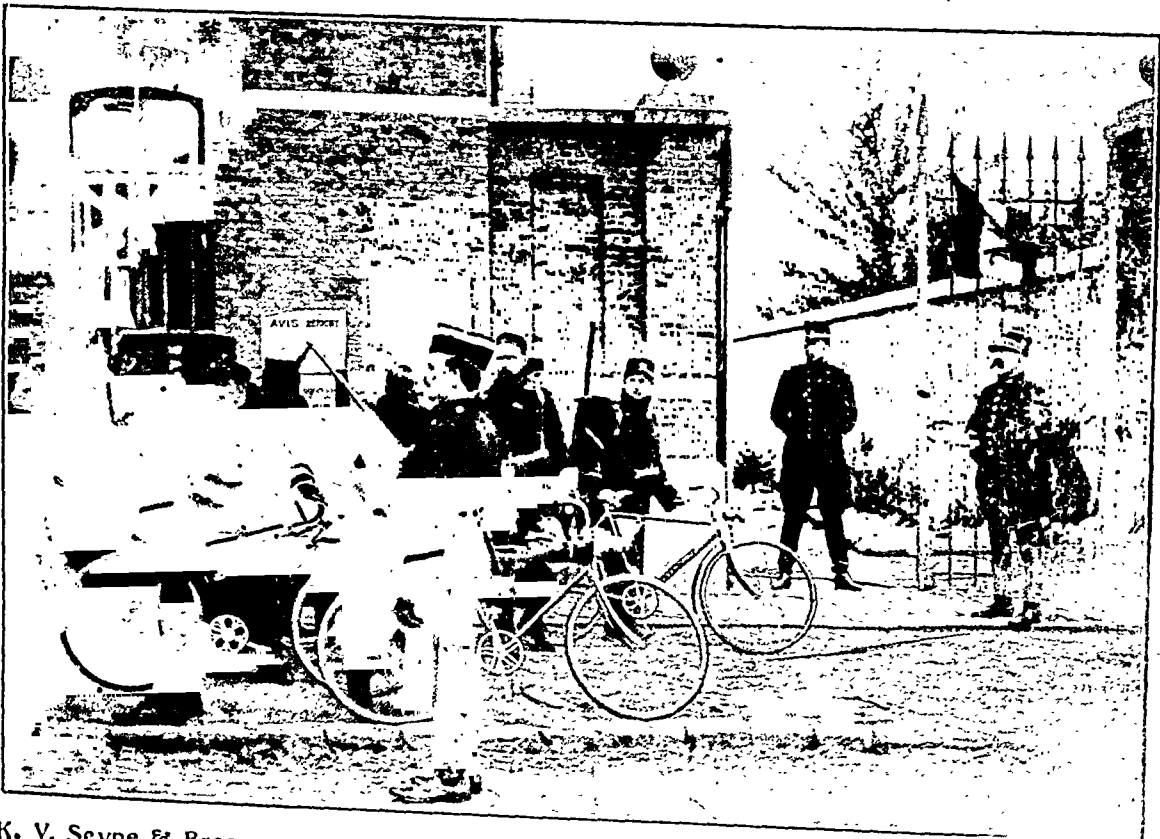
जर्मन सेना लूट का माल ला रही है।
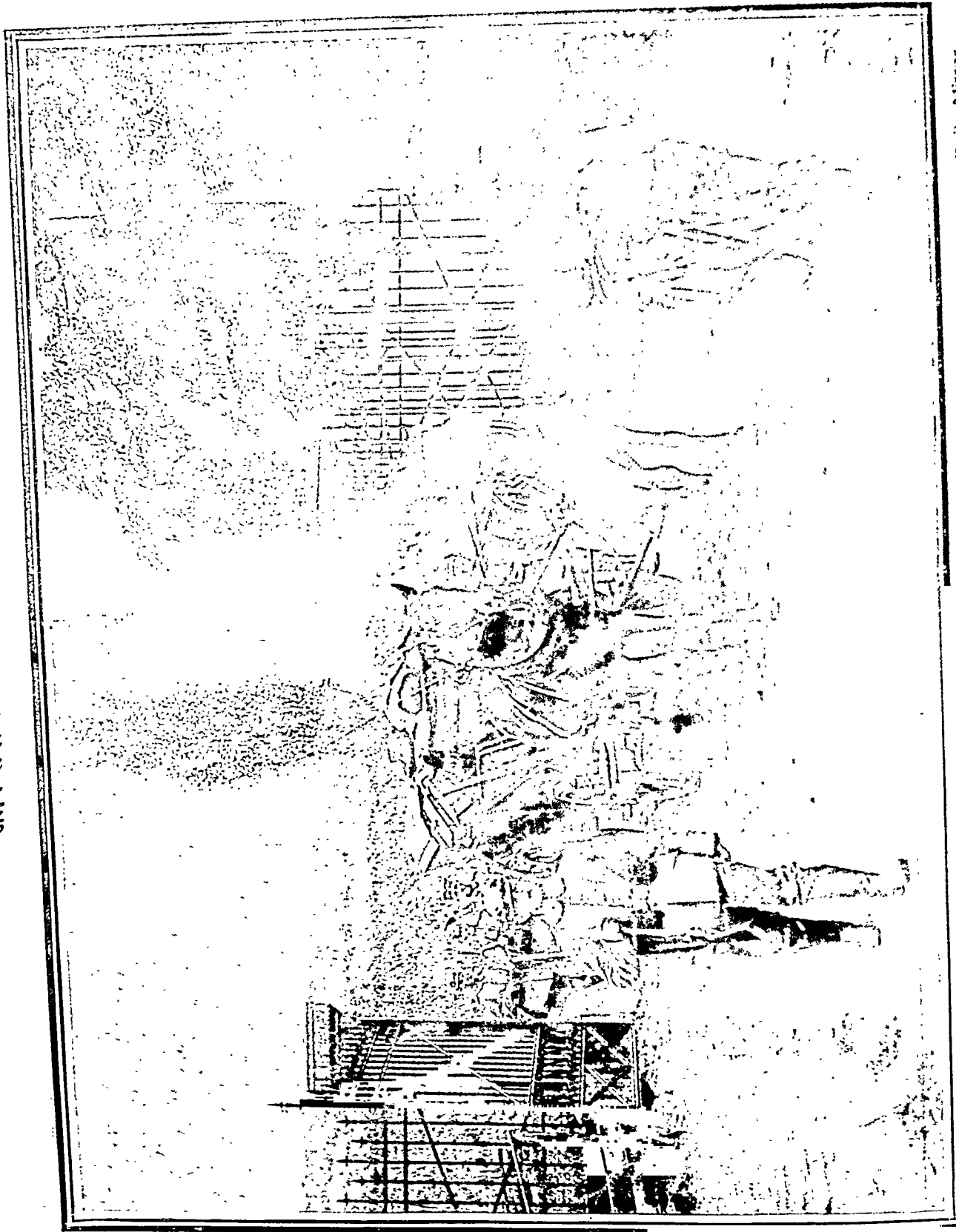
दोनों ने धार्म्मिक विवादों में शान्ति रखने की चेष्टा रखी। मैक्समिलियन के पुत्र

रूडल्फ

रूडल्फ ने सन् १५७७ से १६१२ तक राज्य किया। यह राजा अपने पद के लिये सर्वथा अयोग्य था। इस ने प्रोटेस्टैंटों से युद्ध छेड़ा पर वह निर्वलता के कारण उन की कुछ क्षति नहीं कर सका। १६०६ में रईसों ने

मेटियाज़

मिल कर उस के भाई मेटियाज को राज्यप्रवन्ध सौंप दिया जो १६१२ में रूडल्फ के मृत्यु होने के उपरान्त राजसिंहासन पर बैठा। मेटियाज भी अयोग्य राजा था। इस के समय में कैथोलिक सम्प्रदाय ने फिर जोर करना आरम्भ किया और बेवेरिया के ड्यूक मैक्सिमिलियन और स्टिरिया के ड्यूक फर्डिनैंड को अपना कट्टर पक्षपाती वना लिया। प्रोटेस्टैंटों ने 'यूनियन' और कैथलिकों ने मैक्सिमिलियन की अध्यक्षता में 'लीग' नामक दलों का गठन किया। यूनियन का नेता इंगलैंडराज का दामाद पैलेटिनेट का निर्वाचक फ्रेडरिक था और फ्रांस के द्वितीय हेनरी ने इन का पक्ष लिया। दोनों पक्षों में युद्ध होने वाला ही था कि फ्रांस राज की मृत्यु

फर्डिनैंड १६१९-३७

हो गई। सन् १६१६ में मेटियाज़ की मृत्यु हुई। उपर्युक्त स्टिरिया का फर्डिनैंड राजा वना। इसने वैठते ही अपने मत के प्रतिपक्षियों पर अत्याचार करना आरम्भ किया। इसके विचार कट्टर और संकीर्ण थे जिसके परिणाम स्वरूप जर्मनी को तीस वर्ष के युद्ध (Thirty year's war) में योगदान करना पड़ा।

तीस वर्ष का घोर युद्ध।

'वोहेमिया वालों ने इस कट्टर कैथोलिक को राजा वनाना अस्वीकार कर यूनियन के नेता पेलेटिनेट के निर्वाचक फ्रेडरिक को अपना राजा वनाया। फर्डिनैंड ने सर्व प्रथम वोहेमिया पर आक्रमण कर 'तीस वर्ष के युद्ध' का आरम्भ किया। इस युद्ध में कभी किसी पक्ष की और कभी अन्य पक्ष की जीत होती रही।

सन् १६२० में वाइसेनवर्ग (Weisenburg) के युद्ध में कैथलिकों की हार हुई और फ्रेडरिक को भाग कर नैदरलैंड की शरण लेनी पड़ी। वोहेमिया और पेलिटिनेट पर अधिकार कर वहुत खून खरावी के साथ फर्डिनैंड ने अपने धर्म्म का प्रचार किया।

१६२५ में इंगलैंड तथा हालैंड की सहायता से डेन्मार्क के राजा ने युद्ध आरम्भ किया। जर्मन सेनापति काउंट टिली के साथ एलवर्ट वान वेलिन्सटीन ने अपनी सेना से डेन्मार्क के राजा को हरा दिया। सन् १७२९ में डेन्मार्क ने सन्धि कर ली।

वेलिंसटीन की सेना इस समय बड़ी गड़बड़ कर रही थी और वेलिंसटीन के विचार सन् १६३० में स्वीडनराज गस्टवस रूडल्फ से सात लाख सैनिक लेकर प्रोटेस्टैंटों की सहायता के लिये आया और जर्मन सेनापति काउंट टिली को दो वार वुरी तरह से हराया। आहत हो कर टिली मर गया। तव फर्डिनैंड ने वेलिंसटीन को प्रधान सेनापति नियुक्त कर भेजा और लट्ज़ेन में १६३२ में घोर युद्ध के पश्चात् स्वीडन वालों की जीत हुई पर विजेता वीर स्वीडनराज रणभूमि में सदा के लिये सो गया। वेलिंसटीन पर भी उसके दल वालों को विश्वास नहीं था। इसलिये उन्होंने १६३४ में उसको मार डाला।

सन् १६३७ में फर्डिनैंड की मृत्यु हुई और

फर्डिनैंड तृतीय

उस का पुत्र फर्डिनैंड तृतीय गद्दी पर वैठा। इसने भी युद्ध को जारी रखा। पर इस समय दोनों पक्षवाले युद्ध करते करते थक गये थे।

सन् १६४८ में वेस्टफेलिया की सन्धि में ३० वर्ष के संग्राम का अन्त हुआ। इन धार्म्मिक

झगड़ों और युद्धों से लोग व्याकुल हो गये थे । इस सन्धि से मारा निवटेरा हो कर फ्रांस को अलसास (Alsace) का प्रान्त तथा मेज़, (Metz) टूल (Toul) और वर्द् (Verdun) आदि स्थान मिले । स्वीडन वालों को पश्चिमी पोमेरेनिया मिली । इससे बाल्टिक तथा उत्तरी समुद्र में उन का प्राधान्य हो गया । स्वीज़रलैंड पहले से ही एक तरह से स्वाधीन हो गया था । पर अब वह पूर्णरूप से स्वाधीन होगया । साथ ही हालैंड ने स्वाधीनता पायी ।

वास्तव में इस समय से ही जर्मन साम्राज्य का अन्त हो गया था । पर अस्ट्रिया के हैप्सवर्ग वंशवालों ने सम्राट् की पदवी नहीं छोड़ी । सम्राट् का अधिकार घटता गया । युद्ध में व्यापार और लोकसंख्या में बहुत कमी हो गयी थी । धीरे धीरे रईस बहुत शौकीन तथा लापरवाह हो गये थे । नागरिकों की शक्ति नष्ट हो जाने के कारण वे प्रजा को तंग किया करते और मनमानी कार्रवाई करके उन को लूटा करते थे ।

लियोपोल्ड १६५७-७४

सन् १६५७ में लियोपोल्ड की मृत्यु हुई । उसका पुत्र लियोपोल्ड बहुत दुर्वल हृदय का राजा था । उसको अयोग्य देख कर फ्रांस के चतुर्दश लुई ने अपना राज्य बढ़ाने की इच्छा से षड्यन्त्र रचने शुरू किये । जर्मनी के तालुकेदार और रईस स्वार्थ के वशीभूत हो उससे आ मिले । लुई ने इधर हंगेरियनों और तुर्कों को भी लियोपोल्ड से भिड़ा दिया । राजा को सर्वथा अशक्त देखकर पोलैंड के राजा जान सोबीस्की (John Sobeiski) ने वायना को शत्रुओं के घेरे से छुटाया । यूजेन लियोपोल्ड (Eugene Leopold) और पैलिटेनेट के निर्वाचक (Elector of Palitanate) ने बहुत सहायता की ।

जब दक्षिण जर्मनी में फ्रांस की सेना ने अत्याचार करने शुरू किये तब स्वार्थान्ध रईसों की आँखें खुलीं और उनमें से कइयों ने मिल कर लुई को हराया तथा कई नगरों को वापिस ले लिया ।

सन् १७०१ में स्पेन के राजा चार्लस की मृत्यु हुई । उस की राजगद्दी के लिये फ्रांस तथा जर्मनी के राजा और बेवेरिया के निर्वाचक लड़ने लगे । इङ्गलैंड, हालैंड और पोर्टुगैल के राजाओं ने लियोपोल्ड को सहायता दी । १३ वर्ष तक प्रचंड संग्राम हुआ । ब्लैनहिम (१७०४) रैमिलीज़ (१७०६) उडेनार्ड (१७०८) और माल्प्लेका (१७०९) के युद्धों में फ्रांस को हार हुई । सन् १७१३ में यूट्रे (Utrecht) में संधि हुई । इतनी विजय पाने पर जर्मनी को कुछ लाभ नहीं पहुंचा । स्पेन में फ्रांसराज के पोते को राजगद्दी मिली ।

जोजेफ तथा षष्ठ चार्ल्स १७०५—४०

इस युद्ध के समय सन् १७०५ में लियोपोल्ड की मृत्यु होने पर जोजेफ तथा तदनन्तर उसका भ्राता षष्ठ चार्ल्स गद्दी पर बैठा । चार्लस को जर्मनी से कुछ प्रेम नहीं था । पोलैंड के राजसिंहासनाधिकार के झगड़े में उस ने फ्रांस के एक आश्रित व्यक्ति को ऐलजास का सूबा दे दिया । फ्रांस ने उससे यह सूबा अपने अधिकार में कर लिया । चार्लस के पुत्र नहीं था । इसलिये अपनी पुत्री मेरिया थेरेजा को राज्य देने के लिये उसने प्रेगमेटिक सैंकशन (Pregmatic Sanction) सब राजाओं से स्वीकार करा लिया । सन् १७४० में चार्लस की मृत्यु के पश्चात् मेरिया थेरेजा ने राज्य पर अधिकार करना चाहा । प्रशिया के फ्रेडरिक द्वितीय और बेवेरिया के निर्वाचक (Elector) ने बाधा दी और युद्ध छेड़ दिया । फ्रेडरिक ने सिलीशिया पर अधिकार कर लिया । फ्रांस ने भी योगदान किया और बेवेरिया के निर्वाचक को सप्तम चार्लस की पदवी देकर सम्राट् बना लिया । इस तरह रंग बिगड़ा

देखकर बुद्धिमती मेरिया प्रेग की महासभा में अपने बच्चे जोजेफ को लेकर गई और उससे सहायता की प्रार्थना की। बस, विनय से प्रसन्न होकर सब लोग उस की सहायता पर तत्पर हुए। इंगलैंड ने भी मदद दी। बारंबार हार कर फ्रेडरिक ने संधि कर ली। मेरिया-थेरेजा ने सिलीशिया प्रान्त फ्रेडरिक को दे दिया।

फ्रैंसिस प्रथम १७४५--१७६५ चार्लस की मृत्यु के पश्चात् मेरिया-थेरेजा का पति फ्रैंसिस सम्राट् बनाया गया। राजकार्य मेरिया के हाथ में था। उस ने फ्रांस, रूस, सैक्सनी तथा स्वीडन से मेल कर लिया। मृत महाराज के पुत्र मैक्समिलियन को बेवेरिया की निर्वाचकता दे दी गई।

प्रशिया।

इस समय प्रशिया का राज्य दिनो दिन उन्नति कर रहा था। ब्रैंडेनबर्ग के निर्वाचक को लियोपोल्ड ने प्रशिया के राजा की पदवी दे दी थी। तब से यह राजवंश प्रशिया का राजवंश कहलाया। इस के राजा फ्रेडरिक का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इस ने अब फिर मेरिया थेरेजा की शक्ति बढ़ने देख आशङ्कित होकर इंगलैंड से संधि करली और १७५६ सैक्सनी पर आक्रमण किया। यह युद्ध सात वर्ष का युद्ध (Seven years' war) कहलाता है। सन् १७६३ में इस का अन्त हुआ और सिलीशिया में प्रशिया का अधिकार दृढ़ हो गया। सन् १७८६ में फ्रेडरिक की मृत्यु हुई। अपने गुणों के कारण यह फ्रेडरिक-दी ग्रेट (the great महान्) कहलाया। बहुत उदार होने पर भी इसने प्रजा को अधिकार देने का विचार स्वप्न में भी नहीं किया। वह अपने मंत्रियों से कभी सलाह नहीं लिया करता था। उसने अपने राज्य में विद्या, कलाकौशल और कृषि में बहुत उन्नति की और सेना की भी बहुत सुव्यवस्था की। सात वर्ष के युद्ध से प्रशिया को बहुत लाभ हुआ। अब वह यूरोप की बड़ी शक्तियों में गिनी जाने लगी।

सन् १७७२ में फ्रेडरिक ने रूस और आस्ट्रिया के साथ पोलैंड का बटवारा कर लिया। तब से पोलैंडवाले अभी तक पराधीन रहते आये हैं।

द्वितीय जोजेफ १७६५-९० फ्रैंसिस की मृत्यु के पश्चात् सन् १७६५ मे मेरिया थेरेजा का पुत्र जोजेफ राज सिंहासन पर बैठा। इस की इच्छा अस्ट्रिया के राज्य को फिर बढ़ाने की थी। पर फ्रेडरिक ने बारंबार बाधा दी। अन्त में फ्रेडरिक ने कई छोटे राज्यों को मिला कर एक लीग (League) कायम की।

जोजेफ बहुत भला और सर्वप्रिय राजा था। इसने शिक्षा प्रणाली में बहुत उन्नति की। महंत समुदाय की अवस्था भी उन्नति की गई।

सन् १७९० में जोजेफ की मृत्यु हुई। तदनंतर दो वर्ष तक द्वितीय लियोपोल्ड ने राज्य किया। सन् १७९२ मे फ्रैंसिस द्वितीय राजा हुआ।

फ्रांस का राजविप्लव।

सन् १७८९ में फ्रांस की प्रजा ने अपना असन्तोष प्रगट कर मारकाट मचाई और फ्रांस के बादशाह लुई सोलहवें को कतिपय बातें माननी पड़ी। सन् १७९२ मे जर्मन सम्राट लियोपोल्ड और प्रशिया के फ्रेडरिक दी ग्रेट के पुत्र फ्रेडरिक विलियम द्वितीय ने मिलकर फ्रांस के विप्लवकारियों को दबाने का विचार किया। इस विचार के परिणाम स्वरूप बरसों तक यूरोप में खून खराबी रही॥ सन् १७९३ मे फ्रांस की प्रजा ने

अपने सम्राट लुई और सम्राज्ञी (अस्ट्रिया के राजा की बहन) को फांसी पर चढ़ा दिया। समस्त यूरोप के राजमण्डल मे हाहाकार मच गया और सब रजवाड़े एक हो कर इन बलवाइयों को दण्ड देने के लिये तत्पर हुये। सब को भय होने लगा कि अन्य राज्यों में भी प्रजा इसी तरह बिगड़ खड़ी न हो।

आरम्भ मे जर्मनी के सब छोटे राज्य सम्राट् के साथ इस युद्ध में सम्मिलित हुए। पर पीछे पोलैंड के विषय में मन मोटाव होने के कारण प्रशिया के राजा उदासीन हो गये और १७९५ मे उन्हों ने राइन (Rhine) नदी के पश्चिम में अपनी सब भूमि फ्रांस को देकर संधि कर ली। अस्ट्रिया को हार मानकर १७९७ में कोम्पो फोर्मियो (Compo Formio) की संधि करनी पड़ी। १७९९ में अस्ट्रिया ने रूस और इंगलेंड की सहायता पाकर फिर युद्ध आरम्भ किया पर नेपोलियन के कौशल के सामने कुछ बन नहीं पड़ा और लूनेवाइल में उसे फिर संधि करनी पड़ी। इस से फ्रांस को राइन नदी के पश्चिम की सब भूमि मिल गई। सन् १८०५ मे अस्ट्रिया ने पुनः हार मान कर संधि की। इस युद्ध में बेवेरिया, वर्टम्बबर्ग और बाडेन के ताल्लुकेदारों ने नेपोलियन की सहायता कर बहुत लाभ उठाया। बेवेरिया और वर्टमूबर्ग राज्य कहलाने लगे। अब नेपोलियन दक्षिणी और मध्य जर्मन राज्यों की एक संहति बना कर स्वयं उनका पृष्ठपोषक बना। प्रशिया के राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने इस संहति के गठन से घबड़ा कर नेपोलियन से युद्ध करना आरम्भ किया। जेना (Jena) के युद्ध में प्रशिया ने भारी हार खाई। नेपोलियन ने बहुत सा राज्य लेकर संधि की।

फ्रैंसिस द्वितीय ने अब अपने साम्राज्य और शक्ति को सर्वथा नष्ट देखकर १८०६ में सम्राट् की पदवी को त्याग दिया और भविष्य मे उसके वंशधर अस्ट्रिया का राज्य करने लगे। १८०९ मे नेपोलियन ने अस्ट्रिया को फिर हरा कर जर्मनी पर अपना कब्जा मज़बूत कर लिया।

अब प्रशिया वाले बदला लेने के लिये बहुत प्रयत्न करने लगे और राजा ने प्रजा को अधिक अधिकार देकर सन्तुष्ट किया।

समस्त जाति अब पूर्ण रीति से उत्तेजित हो कर प्रतिहिंसा के लिए तयार होने लगी। शीघ्र ही अवसर आ पहुंचा। रूस से विरोध होने पर सर्वविजयी नेपोलियन ने सफलता की पूर्ण आशा के साथ मास्को पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। इस भयङ्कर भूल का परिणाम उस के लिए बहुत ही बुरा हुआ। रास्ते में सर्दी की अधिकता से बर्फ के कारण उस की सेना का अधिकांश नष्ट हो गया (सन् १८१२)। मृत सैनिकों की संख्या की पूर्ति अनेक काल तक नहीं हो सकी।

आल्प्स पर्वत को पार करने वाले नेपोलियन को अपना सा मुंह लेकर लौट आना पड़ा। बहुत से बुद्धिमान इतिहास लेखकों के मत में इस घटना से ही नेपोलियन का पतन आरम्भ हुआ।

अब प्रशियावालों ने सुअवसर समझ कर अस्ट्रिया तथा रूस से संधि कर युद्ध ठान लिया। इङ्गलैंड सदा से फ्रांस के विरुद्ध था ही। वीर ब्लूचर ने सेनापति बन कर काटबक में शत्रु को हराया तब बेवेरिया ने भी फ्रांस का पक्ष त्याग अपनी जन्मभूमि के लिये शस्त्रग्रहण किया। सन् १८१३ में ९वीं अक्तूबर से १९ वीं अक्तूबर तक प्रचंड युद्ध हुआ। इस में नेपोलियन बुरी तरह से हारा। उस के ७८००० सैनिक मारे गये। अब अंगरेजी और जर्मन सेना पेरिस में जा पहुची और नेपोलियन को राज्यच्युत कर 'एल्बे' द्वीप में भेज दिया तथा १६ वें लुई का भाई राज सिंहासन पर बैठा

दिया गया। १८१५ में नेपोलियन ने एल्बे से भाग कर फिर युद्ध आरम्भ किया पर १८वीं जन को वाटर्लू के प्रसिद्ध समरक्षेत्र में अंगरेज सेनापति वेलिंगटन तथा जर्मन सेनापति ब्लूचर ने उस को हरा दिया। नेपोलियन का अन्तिम समय सेंट हेलेना के द्वीप में वन्दी की अवस्था में बीता। उस का सौभाग्यरवि मध्य गगन में पहुंच कर अस्तमित हो गया। १८९२ में जर्मनी की जो सीमा थी वही अब फिर कायम हुई।

वायना की कांग्रेस ने सालज़वर्ग, वोरार्ल-वर्ग और टाइरोल अस्ट्रिया को लौटा दिये। नेपोलियन के वनाये हुए राज्य तोड़ दिये गये। उस के पक्षपाती छोटे रजवाड़ों के राज्यों के कुछ हिस्से ले लिये गये। प्रशिया को सैक्सनी, राइनलैंड और स्वीडीश पोमेरेनिया प्रदेश मिले। वाइमार, मैक्लेन वर्ग और ओल्डेनवर्ग ग्रैंडड्यूची बनायी गयी और ल्यूवेक, फ्रैंकफोर्ट, हैम्वर्ग तथा ब्रीमेन स्वतन्त्र नगर माने गये।

लोग इस समय यही चाहते थे कि सब जर्मन राज्य एक होकर साम्राज्य पुनः संस्था-पित हो, पर प्रशिया तथा अस्ट्रिया की अन-वन के कारण ऐसा नहीं हुआ और ३६ राज्यों की (जिन में स्वतन्त्र नगर भी शामिल थे) एक संहति बनायी गयी। फ्रैंकफोर्ट में इन के डाइट (कमेटी) के अधिवेशन अस्ट्रियन प्रतिनिधि की अध्यक्षता में होने लगे। इस के नियमानुसार सब राज्यों ने अपने भीतरी प्रवन्धों की स्वतन्त्रता रख कर विदेशीय कार्यों के लिये एकता की। यद्यपि सवों ने नियमित शासन (Constitutional Government) को मंजूर किया था पर किसी ने प्रतिज्ञा की रक्षा नहीं की। इस लिये सर्व साधारण सर्वथा असन्तुष्ट थे। प्रजा के घोर तथा अवि-रल आन्दोलनों से दव कर कई छोटे राज्योंने उनकी बातें मान कर कुछ अधिकार दिये। पर प्रशिया और अस्ट्रिया के राजाओं ने प्रजा को तनिक भी अधिकार देना स्वीकार नहीं किया। सन् १८३० में फ्रांस के विप्लव से प्रजा में उत्तेजना फैली और हैनोवर, ब्रंजविक आदि राज्यों ने एक तरह की पार्लीमेण्ट बनायी और समाचार पत्रों को स्वतन्त्रता दी। पर अस्ट्रिया तथा प्रशिया ने अप्रसन्न होकर फ्रैंकफोर्ट की डाइट (Diet) में इन नियमों को तोड़ दिया। सन् १८४० तक इसी तरह प्रजा तथा राजा में झगड़ा चलता रहा। एक बात अवश्य ही प्रशंसनीय हुई। उस समय के नियमानुसार प्रत्येक राज्य में अलग अलग चुंगी लगती थी। इस से व्यापार में वहुत हानि पहुंचती थी। प्रशिया और अन्य कई राजाओं ने मिल कर 'जोलवेरीन' (Zollveren) नामक संस्था बना कर इस दोष को सुधारने का प्रयत्न किया। धीरे धीरे आस्ट्रिया को छोड़ कर सब राज्यों ने इस में योगदान किया। इसका विशेष विवरण आगे मिलेगा।

फ्रेडरिक चतुर्थ विलियम।

सन् १८४० में प्रशिया की गद्दी पर फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ वैठा। इस ने गद्दी पर बैठते ही धार्म्मिक समानता का प्रचार किया। लोगों को आशा होने लगी कि शीघ्र ही दूसरे दूसरे सुधार भी होंगे। पर यह आशा सर्वथा भ्रान्त निकली। उसने प्रजा को कुछ भी अधिकार नहीं दिया। लोकमत को उत्तेजित देख कर अन्त में उसने सब प्रदेशों की सभाओं को मिला कर एक सभा कर दी, पर मतभेद होने पर उस ने इस सभा को तोड़ डाला।

सन् १८४८ में फ्रांस में फिर विप्लव हुआ। लूई फिलिप को प्रजा ने राज्यच्युत कर प्रजा-तन्त्र स्थापित किया और नेपोलियन को सभा-पति बनाया। इस आन्दोलन का असर जर्मन सर्वसाधारण पर वहुत पड़ा और कई राज्यों को (१) समाचार पत्रों की स्वाधीनता (२)

जूरियों की सहायता से प्रकाश्य रूप से मुकद्दमों का विचार (३) सर्व साधारण को हथियार रखने की अनुमति और (४) महासभा में प्रजा के प्रतिनिधि—इन चार बातों का मानना पड़ा। अस्ट्रिया में घोर विप्लव फैल गया जिस से महाराज फर्डिनैंड को राजसिंहासन छोड़ना पड़ा और उन का भतीजा फ्रैंसिस जोजेफ (वर्त्तमान अस्ट्रियनराज) महाराज बनाया गया। प्रशिया में भी बहुत दंगा हुआ और उस को भी एक सभा बैठानी पड़ी। कई महीनों तक वादाविवाद होने के पश्चात् फ्रेडरिक चतुर्थ विलियम ने यह सभा तोड़ दी।

इस समय प्रजा की इच्छा प्रत्येक राज्य के सुधार की ही नहीं बलिक एक साम्राज्य स्थापित करने की थी। फ्रैंकफोर्ट में समस्त जर्मनी के ६००० प्रतिनिधियों ने एकत्र हो कर इस पर विचार किया। इस विचार में अस्ट्रिया ने बारम्बार बाधा दी पर अन्त मे लोगों ने प्रशिया के राजा को सम्राट् बनाने का प्रस्ताव किया। पर उसने यह पदवी अंगीकार नहीं की और कहा कि जब तक अन्य राजा मिलकर मुझे यह पदवी न दें तब तक मैं इसको स्वीकार नहीं कर सकता। प्रजा ने निराश हो कर फिर आन्दोलन करना आरम्भ किया पर फौज़ ने उनको दबा दिया।

यद्यपि प्रशिया के राजा ने सम्राट् का पद लेना अस्वीकार कर दिया था पर उनकी आन्तरिक इच्छा सम्राट् बनने की और साम्राज्य स्थापित करने की थी। प्रशिया, सैक्सनी तथा हैनोवर ने मिलकर एक संहति बनाई और प्रशिया को प्रधान बनाकर अन्य राजाओं से योगदान करने का अनुरोध किया। बहुतों ने इस अनुरोध को स्वीकार किया और १८४८ ही में एक जातीय पार्लीमेंट का अधिवेशन भी हुआ। अब तक अस्ट्रिया को अपने घराऊ झगड़ों से निवृत्ति मिल गई थी। उसने पुरानी डाइट (Diet) को पुनर्जीवित किया। अब फिर पुराने ढर्रे से काम चलने लगा पर धीरे धीरे इस संहति का बल घटने लगा और प्रशिया की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई।

प्रथम विलियम ।

सन् १८६१ में २री जनवरी को फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हुई और उसका पुत्र प्रथम विलियम प्रशिया की राजगद्दी पर बैठा। इस भाग्यशील राजा के शासनकाल में ही जर्मन साम्राज्य का संगठन हुआ। इस के दीर्घ राजत्वकाल में कितनी ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं हुईं। इन सब से सुप्रसिद्ध सचिव प्रिंस बिस्मार्क का घनिष्ट सम्बन्ध है।

विलियम ने गद्दी पर बैठते ही सन् १८७२ में बिस्मार्क को प्रधान मंत्री बनाया। बिस्मार्क इस के पहले जर्मनी की सांघटनिक समिति में प्रशिया का प्रतिनिधि और पेरिस तथा सेंट-पीटर्सबर्ग में राजदूत रह चुका था। इस अद्भुत मनुष्य की कार्यप्रणाली बहुत ही विचित्र थी। उस को पक्का विश्वास था कि प्रशिया ही जर्मनी की प्रधान शक्ति बन जायगी और ईश्वर ने मुझे इस कार्य को पूरा करने के लिये भेजा है। उसका स्वभाव जन्म ही से उद्धत तथा दृढ़ था और अपने उद्देश्य को पूरा करने में वह किसी की कुछ भी परवाह नहीं करता था।

बिस्मार्क की नियुक्ति के साथ समस्त प्रशिया में आन्दोलन मच गया। लोग पुरानी बातों को लेकर उस पर कटाक्ष करने लगे किन्तु विलियम ने किसी की कुछ नहीं सुनी। मंत्री को नियुक्त करने का अधिकार राजा को था। इसमें पार्लीमेण्ट कुछ आपत्ति नहीं कर सकती थी। प्रतिनिधि सभा से गवर्नमेण्ट की चार वर्ष तक खूब अनबन रही। इसका प्रधान कारण यह था कि प्रतिनिधिगण बिस्मार्क के

भीतरी विचारों से अज्ञात थे और बिस्मार्क उन विचारों को प्रकट नहीं कर सकता था। बिस्मार्क ने दृढ़ प्रण कर रखा था कि अस्ट्रिया को जर्मनी को निकाल बाहर करना होगा। उसने मंत्री बनने के कुछ ही दिनों बाद एक वक्तृता में कहा था :—व्याख्यानों और अधिक मतों से बड़े बड़े कार्य्य नहीं होते। यही भूल सन् १८४८ और १८४६ में की गई थी। कार्य साधन खून और लोहे (Blood and Iron) अर्थात् युद्ध तथा शास्त्रों से ही होगा"। इस लिये उसने सेना बढ़ाने का प्रस्ताव किया परन्तु प्रतिनिधि सभा ने इसे स्वीकार नहीं किया। यद्यपि सर्व साधारण उसका बिरोध करते रहे पर बिस्मार्क ने किसी की कुछ परवा नहीं की और राजा तथा रईसों की सभा को अपने पक्ष में रख कर बिना बजट पास कराये ही अपनी सेना तयार कर ली। काम पड़ने पर उसने दिखला दिया कि प्रतिनिधि सभा की नीति सर्वथा भ्रान्त थी।

सन् १८६३ में रूस के अधीन पोलैंड वालों ने बिप्लव किया। रूस वाले घबड़ा गये और मामला इतना बढ़ गया कि प्रशिया को आशङ्का हुई कि कहीं प्रशियन पोलैंड में गड़बड़ न हो। इस लिये बिस्मार्क ने परस्पर सहायता करने का एक प्रतिज्ञा पत्र तयार कर दोनों राज्यों की सही कराई। इस कारवाई से प्रतिनिधि सभा, फ्रांस, इटली तथा इङ्गलैंड में बहुत धूमधाम मची परन्तु बिस्मार्क ने किसी की बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। प्रशिया और रूस ने मिल कर पोलैंड वालों पर बहुत अत्याचार किया। हजारों पोल मारे गये या साइबीरिया में निर्वासित कर दिये गये। बिचारे पोलैंड वालों ने इङ्गलैण्ड से सहायता की आशा छोड़ अन्त में अधीनता स्वीकार की।

श्लेज़विग (Schleswig) और होलस्टाइन (Holstien) नामक को प्रान्तों के विषय मे वर्षों से झगड़ा चला आता था। सन् १८५२ में लन्दन के सन्धिपत्र के अनुसार डेनमार्क के राजा सप्तम फ्रेडरिक इन के ड्यूक बनाये गये और उनको जर्मन सांहतिक समिति में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला। साथ ही यह शर्त्त हुई कि ये दोनो प्रान्त डेन्मार्क में मिलाये नहीं जायगे। डेन्मार्क के राजा ने किसी उद्देश्य पूर्त्ति के लिये कार्य्य नहीं करने की प्रतिज्ञा तो की परन्तु उसने अपने बचन का पालन नहीं किया। प्रशिया को बार बार आपत्ति करनी पड़ती थी। अन्त में १८६३ की ३० वीं मार्च को सप्तम फ्रेडरिक ने आज्ञापत्र द्वारा दोनो प्रान्तों को पृथक् कर दिया और शासन पद्धति में कुछ परिवर्त्तन कर एक तरह से श्लेजविग को अपने राज्य मे मिला लिया। हौलस्टाइन मे वास करने वाली सम्पूर्ण प्रजा और श्लेज़विगवालों का अधिकांश जर्मन था। डेनिश पार्लीमेंट ने इस नये कानून को पास कर दिया परन्तु उस पर सही करने के पहले ही १५ वीं अगस्त को फ्रेडरिक का देहांत हो गया। नये राजा नवम क्रिश्चियन ने गद्दी पर बैठने के दो दिन पीछे प्रजा के दबाव से उस कानून पर सही कर दी।

प्रशिया ने प्रारम्भ से हो आपत्ति करनी आरम्भ कर दी थी। बिस्मार्क का पक्ष न्यायपूर्ण होने के अतिरिक्त उसके भीतरी विचार बहुत महत्व पूर्ण और गम्भीर थे। उस समय की गूढ़ चाल का ही फल है कि काइल (Kiel) चैनेल (Chanuel) की सहायता से जर्मनी ने इस समय यूरोप की जहाजी शक्तियों में द्वितीय स्थान अधिकार कर लिया है। प्रिंस फ्रेडरिक आफ आउगस्टेनबर्ग (Fredrick of Augustenburg) ने उक्त डयूचियों का दावा पेश किया। जर्मनी का लोकमत उस के पक्ष में उत्तेजित हो उठा और प्रतिनिधि सभा ने एक मन्तव्य स्वीकार कर अपनी सम्मति भी प्रगट की

परन्तु विस्मार्क कीइच्छा तो इन प्रान्तों को स्वयं हथियाने की थी। इसलिये उसने यह अड़चन लगाई कि लन्दन की सन्धि के अनुसार नवम किश्चियन को राजा स्वीकार कर लिया गया है।

प्रशिया तथा अस्ट्रिया ने प्रतिनिधि सभा से हौलस्टाइन पर अधिकार करने की अनुमति ले ली परन्तु श्लेज़विग पर सेना भेजने की स्वीकृति नहीं मिली। इस समय विस्मार्क ने फिर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा का परिचय दिया और उक्त ड्यूची पर भी अधिकार कर लिया। डेनमार्क वालों से युद्ध आरम्भ हुआ। डेनों ने बहुत वीरता दिखाई परन्तु अन्त में उनको हार माननी पड़ी। उक्त दोनों प्रान्त और लाउएनबर्ग (Lauenburg) डेनमार्क के हाथ से छिन गये।

अब अस्ट्रिया और जर्मनी में खटपट होने लगी। अस्ट्रिया की इच्छा ड्यूक आफ आउ-स्टेनबर्ग को गद्दी पर बैठाने की थी और प्रतिनिधि सभा ने इस मत को स्वीकार भी कर लिया। प्रशिया कहा कि इस सभा को इस बात का विचार करने का अधिकार ही नहीं है। अन्त में बड़ी कठिनाई से निबटारा हुआ। लाउएनबर्ग प्रशिया को मिला। हाल्स्टाइन में आस्ट्रिया और श्लेज़विग प्रशिया राज करने लगी। परन्तु विस्मार्क को सन्तोष नहीं हुआ। होलस्टाइन में अस्ट्रियन गवर्नर ने प्रिंस आफ आउगस्टेनबर्ग का पक्ष समर्थन करने के लिये सभा की। विस्मार्क ने इस बात को लेकर अस्ट्रिया से लड़ाई ठान ली। इटली को वीनीशियां दिलाने का लोभ देकर विस्मार्क ने उसको भी शामिल कर लिया। जर्मनी के अधिकांश छोटे २ राज्यों, वेवेरिया, वटेम्बर्ग और वाडेन आदि ने अस्ट्रिया की सहायता की। इस समय प्रशिया की सेना बहुत ही उत्तम अवस्था में थी और अस्ट्रिया की सेना में फूट फैली हुई तथा अफसर भी अयोग्य थे। प्रशिया ने सात सप्ताह के युद्ध के पश्चात् अस्ट्रिया पर विजय पाई। १४ वीं जून को युद्ध आरम्भ हुआ। दो सप्ताह में प्रशिया ने हैनोवर, हेस-केसेल और सैक्सनी पर अधिकार कर लिया।

३री जुलाई को कनिग्रेट्ज़ (Konig-ratz) की लड़ाई में अस्ट्रिया को नीचा देखना पड़ा। इस युद्ध में दोनों पक्षों की सेना की संख्या ४,३०,००० थी। प्रशिया के १०००० सैनिक हताहत हुए। अस्ट्रिया के २२ हजार सैनिक हताहत और १८००० बन्दी हुए तथा १७४ तोपें छिन गई। युद्ध के पहले विस्मार्क ने कहा था कि "एक ही लड़ाई में अस्ट्रिया को सन्धि करनी पड़ेगी" और उस ने यही कर दिखलाया था। अस्ट्रिया ने फ्रान्स के सम्राट् नेपोलियन की मार्फत सन्धि का प्रस्ताव किया। यद्यपि इटली की सेना वेरोना (Verona) में मैदान में अस्ट्रिया से बुरी तरह से हार चुकी थी तथापि प्रशिया की विजय के कारण अस्ट्रिया ने वीनिशया (Venetia) का प्रान्त इटली को सौंपने के लिये नेपोलियन को दे दिया और प्रशिया से सन्धि का प्रस्ताव कर लड़ाई बन्द करने की प्रार्थना की परन्तु विस्मार्क ने वारवार यही उत्तर दिया कि जब तक सन्धि की शर्त्तें स्वीकृत न हो जाय तब तक हम लड़ाई बन्द न करेंगे। इधर प्रशिया की सेना ने प्रेग पर भी अधिकार कर लिया और अन्त में वायना (Vienna) के बाहरी किलों के पास पहुंच गई। अब अस्ट्रिया में पूरी घबड़ाहट फैलने लगी। फ्रेंच राज दूत ने विस्मार्क से कहा कि अस्ट्रिया नेपोलियन के कहे मुताबिक सन्धि करने के लिये प्रस्तुत है। परन्तु विस्मार्क ने फ्रांस वालों को अलग रख कर अपनी इच्छा के अनुसार अस्ट्रिया से २६ वीं जुलाई को सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार

जर्मन इम्पीरियल गार्ड्स।
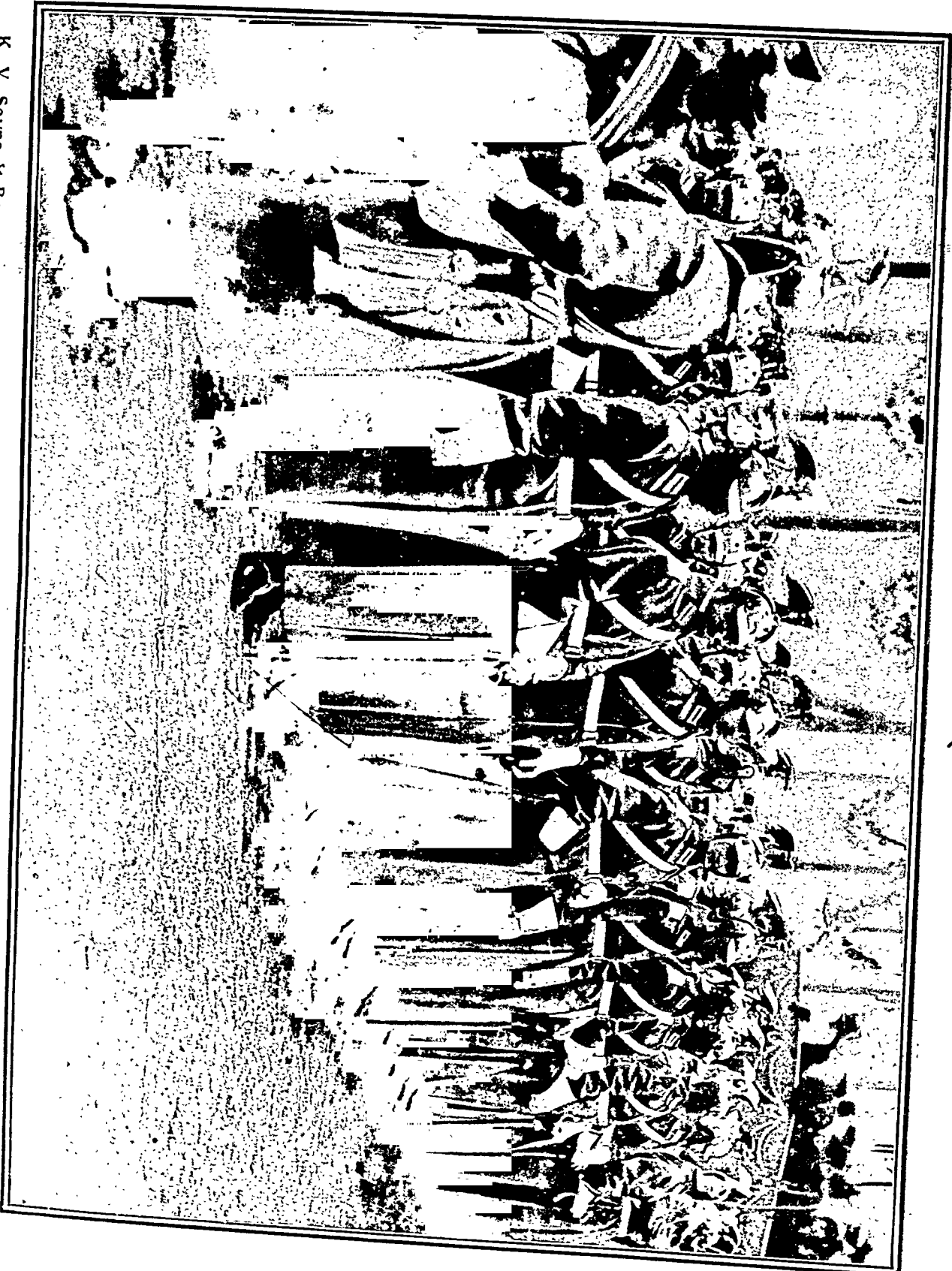
K. V. Seyne & Bros.

यूरोप के सर्व श्रेष्ठ सेनापति जर्मनी के काउण्ट मौल्टके।

K. V. Seyne & Bros.

प्रशिया को श्लेजविग- हाल्स्टाइन, हैनोवर (Hanover) हेस-केसेल (Hesse-Cassel) नेसाउ और फ्रैंकफोर्ट मिल गये। बिस्मार्क की इच्छा सैक्सनी को प्रशिया के अन्तर्गत कर लेने की थी किन्तु अस्ट्रिया तथा फ्रांस की गहरी आपत्तियों को देखकर बिस्मार्क ने अपना विचार का त्याग करना ही ठीक समझा। दक्षिणी जर्मन राज्य-बाडेन, हेसस-डार्मस्टाट (Hesse-Darmstadt) वर्टम्बर्ग (Wurtemburg) और बेवेरिया की एक संहति (Federation) तैयार हुई। सैक्सनी ने इस संहति में योगदान की बहुत चेष्टा की परन्तु बिस्मार्क ने उस को उत्तर राज्यों की संहति में शरीक किया। इस तरह मेन नदी के उत्तर के सब राज्य (जिन में हेस-डार्मस्टाट भी शामिल था) उत्तरी संहति में मिला लिये गये।

दक्षिणी राज्यों को स्वतंत्र रखने में भी बिस्मार्क ने बड़ी चतुराई की। गुप्त रीति से उन्हों ने प्रशिया को समय पर अपनी समस्त सेना की सहायता का वचन दिया था। इस लिये बिस्मार्क ने अपना बल बढ़ता देखकर उन को अधिक दबाना उचित नहीं समझा।

अब तक पार्लियामेंट से बिस्मार्क की अनबन चल रही थी। जर्मनी में बिस्मार्क से कोई मनुष्य प्रसन्न नहीं था। ७वीं मई १८६६ को फर्डिनैंड कोहेन नामक एक नवयुवक ने बिस्मार्क की हत्या करने की चेष्टा की, पर वह सफल नहीं हो सका। २०वीं सितंबर को सम्राट् विलियम ने मौल्टके (Moltke) रून (Roon) और बिस्मार्क के साथ बड़ी धूमधाम से छीनी हुई अस्ट्रियन तोपों के साथ बर्लिन राजधानी में प्रवेश किया। लोगों ने विजयी वीरों का बड़े उत्साह से स्वागत किया और उनको विजय माला पहिनायी।

—*—

२४वीं फरवरी १८६६ में उत्तरीय जर्मन पार्लियामेंट बड़ी धूमधाम से खोली गयी। सब राज्यों की सर्वसाधारण प्रजा ने ३०० प्रतिनिधि चुने। अगस्त महीने तक नयी प्रणाली स्वीकार कर ली गयी। प्रशिया के राजा और उनके वंशधर संहति के प्रधान बनाये गये।

बिस्मार्क ने व्यापारिक विषयों के लिये दक्षिणी जर्मन संहति से एक सन्धि कर उस को धीरे धीरे मिलाने का प्रयत्न किया। परन्तु दक्षिण राज्य प्रशिया और विशेष कर बिस्मार्क को बहुत ही घृणा की दृष्टि से देखते थे किन्तु ईश्वर की प्रेरणा से ही कहिये या बिस्मार्क की नीति कुशलता से कई ऐसे जातीय कार्य आ पड़े जिन से समग्र जर्मन राज्य एक हो गये।

लक्सेमबर्ग की ग्रैंड ड्यूची हालैंड के राजा के अधिकार में थी।

फ्रांस के सम्राट् लूई नेपोलियन ने अस्ट्रिया की सन्धि के साथ मायेंस (Meyence) अर्थात् माइंज़ (Mainz) प्रदेश के लिये बिस्मार्क से बारंबार कहा परन्तु बिस्मार्क ने किसी की नहीं सुनी। नेपोलियन इस बात से बहुत चिन्तित रहता था। उस की इच्छा थी कि इस गड़बड़ के समय फ्रांस को कुछ न कुछ लाभ अवश्य हो। इस पर उस ने बिस्मार्क के पास बेलजियम को हथियाने की इच्छा से एक राजदूत भेजा। बिस्मार्क ने बहुत कौशल से उक्त राजदूत से यह प्रस्ताव सन्धि के मसविदे के रूप में लिखा कर अपने पास रख लिया और अपनी सम्मति या विरोध कुछ भी प्रगट नहीं किया। अब नेपोलियन ने हालैंड के राजा को पत्र द्वारा लक्सेम्बर्ग की ग्रैंड ड्यूची के परिवर्त्तन में बहुत सा धन देने का प्रस्ताव किया। इस प्रान्त में

रहने वालों का अधिक भाग जर्मन था और हालैंड के राजा को जर्मनी की राज-सभा में सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त था। जर्मनी ने प्रकाश्य रूप से किसी तरहकी आपत्ति नहीं की। इस लिये हालैंड के राजा ने फ्रांस का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। किन्तु सन्धिपर सही होने के एक दिन पहिले ही विस्मार्क ने प्रजा में आन्दोलन आरम्भ करा दिया। सारी जर्म्मनी में धम मच गयी। हालैंडराज ने घवड़ा कर सन्धि पर सही करनी अस्वीकार की। नेपोलियन वड़ी विपद् में फंस गया। अन्त में वड़ी कठिनाई से अन्य राष्ट्रों ने दोनों पक्ष-वालों को समझा बुझा कर लन्दन में एक कान्फ्रेंस कर ग्रैंड ड्यूची को स्वतन्त्र कर दिया। हालैंड के राजवंश का उस पर अधिकार रहा परन्तु सब लोगों ने मिल कर उस की उदासीनता का जिम्मा ले लिया।

इस समय बिस्मार्क ने अपनी स्वाभाविक दृढ़ प्रतिज्ञता में कुछ कमी दिखायी। इसके कितने ही कारण थे। राजा विलियम अभी फ्रांस से लड़ना नहीं चाहते थे। साथ ही यह भी भय था कि अस्ट्रिया फ्रांस को योग दान दे। बिस्मार्क ने अस्ट्रिया से एक नयी सन्धि का प्रस्ताव किया था परन्तु अस्ट्रिया ने उसे अस्वीकार किया।। इस लिये बिस्मार्क ने इस समय युद्ध से तरह दे जाना ही लाभदायक समझा।

इस के उपरान्त बहुत दिनों तक बिस्मार्क ने अपना समय घराऊ झगड़ों को सुलझाने और दक्षिणी संहति को मिलाने की चेष्टा में विताया। उधर अस्ट्रिया तथा फ्रांस इस चेष्टा को विफल करने मे लगे हुए थे। बिस्मार्क इटली से फ्राँस की अनबन की और अपनी मित्रता के फेर में था और इसी उद्देश्य से उस ने सेंट गोथार्ड टनेल के लिये इटली को १ करोड़ फ्रैंक (१ फ्रैंक दस आनेका) दिलवाये। इस विषय को लेकर जर्मनी और फ्रांस में हलचल मच ही रही थी कि अचानक एक और झगड़ा आ उपस्थित हुआ, जिस के परिणाम में फ्रांस और जर्मनी का युद्ध ठन गया।

स्पेन के रीजेंट मार्शलने अन्य कई राजकुमारों से वात चीत करने के पश्चात् सन् १८७० के जुलाई मास के आरम्भ से प्रिंस लियोपोल्ड से स्पेन का राजा वनने की प्रार्थना की और प्रिंस लियोपोल्ड ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर प्रशिया के राजा विलियम से, जो उस के परिवार के प्रधान थे, अनुमति भी ले ली। इस पर फ्रांस में वड़ी हलचल मची और राज कर्म्मचारियों ने यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि प्रिंस विस्मार्क ने वहुत कौशल से एक जर्मन राजकुमार को पंचम चार्लस के राजसिंहासन पर बैठा कर अपनी शक्ति वढ़ाने का उपाय किया है। यद्यपि उस समय फ्रांस की प्रजा में इस विषय में विशेष आन्दोलन नहीं था तथापि राजमंत्रियों के परामर्श से कई समाचार पत्रों ने घोर आपत्ति करनी आरम्भ की। फरासीसी राजदूत ने राजा विलियम से साक्षात् कर इस वारे में शिकायत की। उन्हों ने फ्रांस के राजदूत को स्पष्ट समझा दिया कि इस में मैं ने प्रशिया की राजा की हैसियत से अनुमति नहीं दी है और इस विषय में मेरी गवर्नमेंट ने भी कोई कारवाई नहीं की है। इच्छानुसार राजपद को अस्वीकार करने के विषय में उन की इच्छा का अनुसंधान कर आप को लिखूंगा। दूसरे दिन स्पेनिश राजदूत ने प्रकाश किया कि प्रिंस लियोपोल्ड राजपद ग्रहण करना नहीं चाहते। इस पर फ्रांस सरकार ने अपने राजदूत को आज्ञा दी कि तुम राजा विलियम से भेंटकर उन से यह स्वीकार कराओ कि भविष्य में प्रिंस लियोपोल्ड स्पेन का राजपद ग्रहण करने की अभिलाषा न करेंगे। विलियम ने इस

प्रस्ताव को सर्वथा अस्वीकार किया और कुछ देर के पश्चात् अपने अंग रक्षक द्वारा कहला भेजा कि प्रिंस लियोपोल्ड स्पेन के राजा बनना नहीं चाहते। जिस तरह से मैंने उन की अभिलाषा जान कर उन को राजा बनने की अनुमति दी थी उसी तरह अब उन की इच्छा जान कर अपनी सम्मति प्रगट करता हूं। इससे अधिक मैं कुछ कहना नहीं चाहता। अब यदि आप को कुछ बात जाननी हो तो मेरी गवर्नमेंट उस का उत्तर देगी। फ्रेंच राजदूत ने दो बार प्रशियनराज से भेंट करने की इच्छा प्रगट की परन्तु दोनों बार यही उत्तर मिला कि मुझे इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहना है। इधर विलियम ने तार द्वारा इन बातों का पूरा विवरण बिस्मार्क को लिख भेजा। बिस्मार्क ने उक्त तार की नकल सब स्थानों में अपने राजदूतों के पास भेज दी और एक समाचारपत्र द्वारा जर्मनी में प्रकाशित कर दी। कहा जाता है कि उसने जान बूझ कर कई स्थानों में ऐसा परिवर्त्तन कर दिया जिस से इस तार द्वारा यह प्रगट होने लगा कि प्रशिया के राजा विलियम ने फ्रेंच राजदूत का अपमान किया। बस फिर क्या था? समस्त फ्रांसवासी बिगड़ खड़े हुए। गवर्नमेंट ने अवसर को उपयुक्त समझ कर जर्मनी से युद्ध घोषणा कर दी। फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन का विश्वास था कि अस्ट्रिया और इटली मेरा साथ देगी और जर्मनी की दक्षिणी सहंति भी मुझे सहायता देगी। इस विचार से उसने तुरन्त दक्षिणी रजवाड़ों को सूचना दे दी कि उदासीनता की प्रतिज्ञा करने से तुम्हारे राज्यों में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। परन्तु वास्तव में नेपोलियन ने इस समय बहुत ही धोखा खाया। प्रसिद्ध नेपोलियन के समय जर्मनों ने जो कठिनाइयां भोगी थीं उसकी स्मृति अब तक सब जर्मनों के हृदय में जाग्रत थी। एक बाहरी शक्ति से, विशेष कर पुराने शत्रु से, युद्ध करने के समय आपस के सब झगड़े शान्त हो गये और सब राज्यों ने अपनी सेना प्रशिया के अधीन कर दी। फ्रांस की युद्ध घोषणा के समाचार से समस्त जर्मनी में जो उत्साह फैला उसकी तुलना इतिहास में कहीं नहीं मिलती। (उस समय फ्रांस ने जर्मनी के विषय में जो भूल की थी वही भूल इस समय जर्मनी ने ब्रिटिश राज्य के सम्बन्ध में कर डाली है। उसने समझा था कि आयलैंन्ड के विवाद से इंगलैंड अच्छी तरह लड़ नहीं सकेगा, तथा भारत मिश्र आदि स्थानों में बहुत उपद्रव होगा। किन्तु युद्धाशङ्का से आयलैंड का झगड़ा इस तरह मिट गया कि मानों प्रधान मन्त्री ने उसे अद्भुत मन्त्रशक्ति से उड़ा दिया हो। समस्त ब्रिटिश साम्राज्य में विशेष कर भारत वर्ष में युद्ध घोषणा के साथ ही अभूतपूर्व उत्साह और राजभक्ति का सञ्चार हुआ है)। जर्मनों ने उस समय स्तम्भित यूरोप को दिखला दिया कि अवसर पड़ने पर विवाद-ग्रस्त जर्मनी एक हो सकती है। प्रतिनिधि सभा के विशेष अधिवेशन में राजा विलियम ने देश-भक्तिपूर्ण वक्तृता दी और प्रतिनिधियों ने अपनी राजभक्ति प्रगट कर युद्ध के लिये व्यय को स्वीकार किया।

इस समय बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति का परिचय दिया। ऊपर लिखा जा चुका है कि नेपोलियन ने अपने दूत बेनेडेटी (Benedetti) द्वारा बेलजियम की स्वाधीनता हरण करने का प्रस्ताव किया था। इस समय बिस्मार्क ने फरासीसी राजदूत के लिखे हुए सन्धि के मसविदे को प्रकाश कर समस्त संसार को आश्चर्य में डाल दिया। फ्रांस के राजनीतिज्ञ घबड़ा से गये। उन्होंने बिस्मार्क की विश्वासघातकता को प्रमाणित करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे उस प्रयत्न में कृतकार्य नहीं हो सके।

इसका विशेष हाल द्वितीय भाग में फ्रांस के इतिहास में प्रकाशित होगा।

नेपोलियन (प्रथम) के समय फ्रेंच सेना ने अतुल वीरता का परिचय दिया था। उस वीर सेनापति द्वारा परिचालित छोटी सी सेना समस्त यूरोप को विजय करने का दावा रखती थी। यद्यपि प्रसिद्ध वाटरलू (Waterloo) संग्राम में ड्यूक आफ वेलिंगटन की अधीनस्थ सेना और जनरल व्लूचर (Blucher) की अधीनस्थ जर्मन सेना के सामने नेपोलियन की हार हुई तथापि फ्रेंच सेना की वीरता का स्मरण कर समस्त यूरोप सशङ्कित रहता था। परन्तु वास्तव में उस समय फ्रेंच सेना की अवस्था बहुत ही खराब थी। लड़ाई के सामान की भी बहुत कमी थी। उस समय जर्मनी में विख्यात काउंट मोल्टके प्रधान सेनापति और काउंट रून युद्ध सचिव थे। कहा जाता है कि काउंट मोल्टके के सदृश युद्ध विद्या कुशल सेनापति कोई नहीं हुआ। उधर मार्शल मैकमोहन फ्रेंच सेनापति थे। मार्शल मैकमोहन यद्यपि बहुत ही सुचतुर और वीर पुरुष था तथापि सम्राट् नेपोलियन के अनुचित हस्तक्षेप के कारण अपनी इच्छानुसार कार्य करने में वह अक्षम था।

युद्ध घोषणा के साथ ही जर्मनी की सेना वड़ी शीघ्रता के साथ तैयार होने लगी। मोल्टके ने अपनी सेना को तीन भागों में बांट दिया। सेनापति स्टाइनमेट्ज़ (Steinmetz) की अधीनता में सेना का दक्षिण पार्श्व, प्रिंस फ्रेडरिक चार्लस के अधीन में मध्य भाग और प्रशिया के युवराज के अधीन में वाम पार्श्व था। तीनों दलों का अभिप्राय तीन रास्तों से अग्रसर हो कर एक स्थान में एकत्र होने का था। इन सेनाओं के अतिरिक्त रिजर्व सेना को मिला कर प्रायः दस लाख सेना इकट्ठी थी।

उधर फ्रांस वालों में प्रवन्ध की बहुत कमी थी। सेनापतियों ने वारवार रसद की और शस्त्रों की कमी की शिकायत की। यहां तक कि कितनों ही के पास सीमा के नक्शे भी नहीं थे।

पहली वड़ी लड़ाई ४थी अगस्त को (Weissenburg) वाइसेनवर्ग में हुई। युवराज की सेना ने मार्शल मैकमोहन की सेना के एक डिविजन को हराया। इसमें जर्मनी के १५०० और फरासीसियों के १२०० सैनिक मरे और १००० फ्रेंच वन्दी हुए।

६ठी अगस्त को वर्ट (Worth) के निकट दृढ़ पहाड़ी स्थान में मैकमोहन की प्रधान सेना वुरी तरह से हारी। ६००० सैनिक वन्दी हो गये। ३५ तोपें और फ्रेंच सेनापति का अपना सामान भी छिन गया। उसी दिन स्पीकेरेन (Spicheren) में फ्रेडरिक चार्लस की सेना ने फौसड की सेना का मुकाविला किया। यह स्थान बहुत ही दुर्गम था परन्तु अन्त में फौसड को भागना पड़ा। अव फ्रेंच सेना को मेट्ज की ओर हटना पड़ा। इस हार के पश्चात् सम्राट् नेपोलियन ने सेनापतित्व छोड़ कर वाजेन (Bazaine) को सेनापति बनाया और स्वयं मैकमोहन की सेना में योगदान किया। वाजेन ने मैकमोहन की सेना के साथ अपनी सेना एकत्र करने की चेष्टा की परन्तु प्रशियन सेना ने उस का मनोरथ पूरा नहीं होने दिया। १४ वीं, १६ वीं और १८वीं अगस्त को घोर युद्ध होने के पश्चात् ग्राभलोट् (Gravelotte) की लड़ाई में वाजेन की हार हुई और उसको वाध्य होकर मेट्ज़ के सुदृढ़ और दुर्भेद्य किले का आश्रय लेना पड़ा। प्रशियन सेना ने उसको घेर कर चारों ओर का सम्पर्क तोड़ दिया। किले में इतने आदमियों के लिये रसद का अभाव था। तिस पर भी फ्रेंच सेना ने आत्मसमर्पण न कर बहुत दिनों तक युद्ध को स्थायी रखा।

पेरिस से मैकमोहन को वारंवार मेट्ज़ की

सहायता करने की चेष्टा करने के आदेश मिलने लगे और सम्राट् नेपोलियन की भी यही इच्छा देख कर उसने मेट्ज़ की ओर जाना आरम्भ किया। परन्तु रास्ते में इस कार्य को सर्वथा असम्भव देख कर उसने सडैं (Sedan) में आत्मरक्षा करने का विचार किया।

१ली सितम्बर को भगवान दिवाकर के दर्शन के साथ ही मैकमोहन और उसकी सेना ने अपने को चारों तरफ से जर्मन सेना द्वारा घिरा पाया। प्रशियनराज अपने दलबल सहित फ्रेन्वा (Fanois) की पहाड़ी पर इस युद्ध का परिणाम देखने के लिये खड़े थे। प्रातः काल ही युद्ध आरम्भ हो गया। जिस तरह पिंजरे में फँस कर पक्षी चारों ओर टक्कर लेता है, उसी तरह फ्रेंच सेना जिधर लड़ना आरम्भ करे उधर ही जर्मन सेना के दल के दल दिखायी देते थे। जर्मन सेना के पास ६१८ तोपें थीं और उनके गोलों के धूएं से युद्धक्षेत्र का दृश्य बहुत भयावना हो रहा था। बिचारी फ्रेंच सेना के पास इस से आधी तोपें भी नहीं थी और इसके सिवा सैनिकों की संख्या भी आधी ही थी। फिर भी वीर फ्रेंच सैनिकों ने बड़ी वीरता से वारंवार जर्मनों पर आक्रमण किये परन्तु समुद्र की तरङ्ग चाहे कितनी ही प्रबल ...ं न हो? वे गगनस्पर्शी गिरिराज की क्या क्ष... कर सकती है? दस घंटे लगातार युद्ध ... के पश्चात् बहादुर फ्रेंचों को हार माननी ...ई और सडैं (Sedan) के किले पर श्वेत ... उड़ती हुई दिखाई दी। राजा विलियम ... एक अफसर को दूत बना कर किले में ...। वहां पहुंच कर जब अफसर ने स्वयं ... नेपोलियन को देखा तब उस के आश्चर्य ...ी सीमा न रही। फ्रेंच सम्राट् ने जर्मन राज- ... को कहा कि प्रधान सेनापति घायल हो गये और अस्थायी सेनापति शीघ्र ही पत्र भेजेंगे। ... भी एक पत्र भेजूंगा। जब दूत ने प्रशियन ...वर में पहुंच कर स्वयं सम्राट् नेपोलियन के बन्दी होने का समाचार सुनाया तब समस्त मण्डली सन्नाटा मार गयी। विलियम ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। दूसरे दिन फ्रेंच सेना ने आत्मसमर्पण किया। ८३००० सैनिक बन्दी हुए और ३५० तोपें, ७० मिटाल्यूज़ (Mitrailleuses), १२००० घोड़े और बहुत सामान जर्मनों के हाथ लगा।

लोगों ने समझा कि सम्राट् नेपोलियन के आत्म समर्पण के साथ ही युद्ध का अन्त हो जायगा परन्तु पेरिस में एक नया ही गुल खिला। प्रजा साधारण ने उत्तेजित होकर सम्राट को पदच्युत कर प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की एवं मशय फावर और प्रसिद्ध देशभक्त मशय (Monsieur) गौम्बेटा (Gambetta) ने प्रजा में जोश फैलाना आरम्भ किया। इधर जर्मन सेना ने बड़ी शीघ्रता से अग्रसर होना आरम्भ कर शीघ्र ही पेरिस को घेर लिया। प्रजातन्त्र का मन्त्रि-मण्डल पहले ही राजधानी परित्याग कर बोर्डो जा चुका था। मशय गैम्बेटा ने घेरे के पीछे बेलन में बैठ कर पेरिस का परित्याग किया। मेट्ज़ की सेना ने बहुत समय तक प्रतिरोध करने के उपरान्त रसद की कमी और सफलता की आशा न देख कर आत्मसमर्पण किया। इस सेना में १७३००० सैनिक थे।

सडैं के महायुद्ध के पश्चात् ही जमनी में एक नये युग का आरम्भ हुआ। दक्षिण संहति के राज्यों ने पत्र द्वारा उत्तर सहंति में सम्मिलित होने की इच्छा प्रगट की। इतने दिनों बाद बिस्मार्क की आशा के पूर्ण होने के लक्षण दिखाई दिये। बहुत दिनों तक लिखा पढ़ी होने के उपरान्त अन्त में दोनों संहतियां एक हो गयी। बेवेरिया ने कितनी ही बातों में स्वतन्त्र अधिकार रखे। वर्टम्बर्ग बाडेन और हेस-डार्मस्टाट ने भी कई विशेष अधिकार रखे परन्तु बिस्मार्क ने कुछ परवाह न कर सब नियमों को स्वीकार कर लिया। उत्तरी सहंति की

नेपोलियन (प्रथम) के समय फ्रेंच सेना ने अतुल वीरता का परिचय दिया था। उस वीर सेनापति द्वारा परिचालित छोटी सी सेना समस्त यूरोप को विजय करने का दावा रखती थी। यद्यपि प्रसिद्ध वाटरलू (Waterloo) संग्राम में ड्यूक आफ वेलिंगटन की अधीनस्थ सेना और जनरल व्लूचर (Blucher) की अधीनस्थ जर्मन सेना के सामने नेपोलियन की हार हुई तथापि फ्रेंच सेना की वीरता का स्मरण कर समस्त यूरोप सशङ्कित रहता था। परन्तु वास्तव में उस समय फ्रेंच सेना की अवस्था बहुत ही खराब थी। लड़ाई के सामान की भी बहुत कमी थी। उस समय जमनी में विख्यात काउंट मोल्टके प्रधान सेनापति और काउंट रून युद्ध सचिव थे। कहा जाता है कि काउंट मोल्टके के सदृश युद्ध विद्या कुशल सेनापति कोई नहीं हुआ। उधर मार्शल मैकमोहन फ्रेंच सेनापति थे। मार्शल मैकमोहन यद्यपि बहुत ही सुचतुर और वीर पुरुष था तथापि सम्राट् नेपोलियन के अनुचित हस्तक्षेप के कारण अपनी इच्छानुसार कार्य करने में वह अक्षम था।

युद्ध घोषणा के साथ ही जर्मनी की सेना बड़ी शीघ्रता के साथ तैयार होने लगी। मोल्टके ने अपनी सेना को तीन भागों में बांट दिया। सेनापति स्टाइनमेट्ज़ (Steinmetz) की अधीनता में सेना का दक्षिण पार्श्व, प्रिंस फ्रेडरिक चार्लस के अधीन में मध्य भाग और प्रशिया के युवराज के अधीन में वाम पार्श्व था। तीनों दलों का अभिप्राय तीन रास्तों से अग्रसर हो कर एक स्थान में एकत्र होने का था। इन सेनाओं के अतिरिक्त रिजर्व सेना को मिला कर प्रायः दस लाख सेना इकट्ठी थी।

उधर फ्रांस वालों में प्रवन्ध की बहुत कमी थी। सेनापतियों ने वारवार रसद की और शस्त्रों की कमी की शिकायत की। यहां तक कि कितनों ही के पास सीमा के नकशे भी नहीं थे।

पहली बड़ी लड़ाई ४थी अगस्त को (Weissenburg) वाइसेनवर्ग में हुई। युवराज की सेना ने माशल मैकमोहन की सेना के एक डिविजन को हराया। इसमें जर्मनी के १५०० और फरासीसियों के १२०० सैनिक मरे और १००० फ्रेंच वन्दी हुए।

६ठी अगस्त को वर्ट (Worth) के निकट दृढ़ पहाड़ी स्थान में मैकमोहन की प्रधान सेना बुरी तरह से हारी। ६००० सैनिक वन्दी हो गये। ३५ तोपें और फ्रेंच सेनापति का अपना सामान भी छिन गया। उसी दिन स्पीकेरेन (Spicheren) में फ्रेडरिक चार्लस की सेना ने फौसड की सेना का मुकाविला किया। यह स्थान बहुत ही दुर्गम था परन्तु अन्त में फौसड को भागना पड़ा। अव फ्रेंच सेना को मेट्ज की ओर हटना पड़ा। इस हार के पश्चात् सम्राट् नेपोलियन ने सेनापतित्व छोड़ कर वाजेन (Bazaine) को सेनापति बनाया और स्वयं मैकमोहन की सेना में योगदान किया। वाजेन ने मैकमोहन की सेना के साथ अपनी सेना एकत्र करने की चेष्टा की परन्तु प्रशियन सेना ने उस का मनोरथ पूरा नहीं होने दिया। १४ वीं, १६ वीं और १८वीं अगस्त को घोर युद्ध होने के पश्चात् ग्राभलौट् (Gravelotte) की लड़ाई में वाजेन की हार हुई और उसको बाध्य होकर मेट्ज़ के सुदृढ़ और दुर्भेद्य किले का आश्रय लेना पड़ा। प्रशियन सेना ने उसको घेर कर चारों ओर का सम्पर्क तोड़ दिया। किले में इतने आदमियों के लिये रसद का अभाव था। तिस पर भी फ्रेंच सेना ने आत्मसमर्पण न कर बहुत दिनों तक युद्ध को स्थायी रखा।

पेरिस से मैकमोहन को वारंवार मेट्ज़ की

सहायता करने की चेष्टा करने के आदेश मिलने लगे और सम्राट् नेपोलियन की भी यही इच्छा देख कर उसने मेट्ज़ की ओर जाना आरम्भ किया। परन्तु रास्ते में इस कार्य को सर्वथा असम्भव देख कर उसने सडैं (Sedan) में आत्मरक्षा करने का विचार किया।

१ली सितम्बर को भगवान दिवाकर के दर्शन के साथ ही मैकमोहन और उसकी सेना ने अपने को चारों तरफ से जर्मन सेना द्वारा घिरा पाया। प्रशियनराज अपने दलबल सहित फ्रेन्वा (Fanois) की पहाड़ी पर इस युद्ध का परिणाम देखने के लिये खड़े थे। प्रातः काल ही युद्ध आरम्भ हो गया। जिस तरह पिंजरे में फँस कर पक्षी चारों ओर टक्कर लेता है, उसी तरह फ्रेंच सेना जिधर लड़ना आरम्भ करे उधर ही जर्मन सेना के दल के दल दिखायी देते थे। जर्मन सेना के पास ६१८ तोपें थीं और उनके गोलों के धूएं से युद्धक्षेत्र का दृश्य बहुत भयावना हो रहा था। विचारी फ्रेंच सेना के पास इस से आधी तोपें भी नहीं थी और इसके सिवा सैनिकों की संख्या भी आधी ही थी। फिर भी वीर फ्रेंच सैनिकों ने बड़ी वीरता से वारंवार जर्मनों पर आक्रमण किये परन्तु समुद्र की तरङ्ग चाहे कितनी ही प्रबल क्यों न हो? वे गगनस्पर्शी गिरिराज की क्या क्षति कर सकती है? दस घंटे लगातार युद्ध होने के पश्चात् बहादुर फ्रेंचों को हार माननी पड़ी और सडैं (Sedan) के किले पर श्वेत पताका उड़ती हुई दिखाई दी। राजा विलियम ने एक अफसर को दूत बना कर किले में भेजा। वहां पहुंच कर जब अफसर ने स्वयं सम्राट् नेपोलियन को देखा तब उस के आश्चर्य्य की सीमा न रही। फ्रेंच सम्राट् ने जर्मन राजदूत को कहा कि प्रधान सेनापति घायल हो गये हैं और अस्थायी सेनापति शीघ्र ही पत्र भेजेंगे। मैं भी एक पत्र भेजूंगा। जब दूत ने प्रशियन शिविर में पहुंच कर स्वयं सम्राट् नेपोलियन के बन्दी होने का समाचार सुनाया तब समस्त मण्डली सन्नाटा मार गयी। विलियम ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। दूसरे दिन फ्रेंच सेना ने आत्मसमर्पण किया। ८३००० सैनिक बन्दी हुए और ३५० तोपें, ७० मिटाल्यूज़ (Mitrailleuses), १२००० घोड़े और बहुत सामान जर्मनों के हाथ लगा।

लोगों ने समझा कि सम्राट् नेपोलियन के आत्म समर्पण के साथ ही युद्ध का अन्त हो जायगा परन्तु पेरिस में एक नया ही गुल खिला। प्रजा साधारण ने उत्तेजित होकर सम्राट को पदच्युत कर प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की एवं मशय फावर और प्रसिद्ध देशभक्त मशय (Monsieur) गौम्बेटा (Gambetta) ने प्रजा में जोश फैलाना आरम्भ किया। इधर जर्मन सेना ने बड़ी शीघ्रता से अग्रसर होना आरम्भ कर शीघ्र ही पेरिस को घेर लिया। प्रजातन्त्र का मन्त्रि-मण्डल पहले ही राजधानी परित्याग कर बोर्डो जा चुका था। मशय गैम्बेटा ने घेरे के पीछे बेलन में बैठ कर पेरिस का परित्याग किया। मेट्ज़ की सेना ने बहुत समय तक प्रतिरोध करने के उपरान्त रसद की कमी और सफलता की आशा न देख कर आत्मसमर्पण किया। इस सेना में १७३००० सैनिक थे।

सडैं के महायुद्ध के पश्चात् ही जर्मनी में एक नये युग का आरम्भ हुआ। दक्षिण संहति के राज्यों ने पत्र द्वारा उत्तर सहंति में सम्मिलित होने की इच्छा प्रगट की। इतने दिनों बाद बिस्मार्क की आशा के पूर्ण होने के लक्षण दिखाई दिये। बहुत दिनों तक लिखा पढ़ी होने के उपरान्त अन्त में दोनों संहतियां एक हो गयी। बेवेरिया ने कितनी ही बातों में स्वतन्त्र अधिकार रखे। वर्टम्बर्ग बाडेन और हेस-डार्मस्टाट ने भी कई विशेष अधिकार रखे परन्तु बिस्मार्क ने कुछ परवाह न कर सब नियमों को स्वीकार कर लिया। उत्तरी सहंति की

राजकीय सभा में कुछ आपत्ति उपस्थित होने पर बिस्मार्क ने अपने पदत्याग की धमकी देकर मामला शान्त किया और १८वीं जनवरी १८७१ को वरसैलस् (Versailles) के शीश महल (Hall of Minors) में प्रशिया के राजा जर्मन सम्राट् की उपाधि से विभूषित किये गये। कुछ वर्षों पहले जिस मनुष्य ने अन्य राज्यों की दिल्लगियों की परवाह न कर 'राजा' की उपाधि ग्रहण की थी उसी का वंशधर आज जर्मन सम्राट् बन कर यूरोप की सर्व प्रधान और प्रबल पराक्रमशाली जाति का नेता बन गया। कुछ आश्चर्य्य नहीं कि उस समय सम्राट् विलियम की आंखों से आंसू टपक रहे थे। जिस समय सम्राट् विलियम ने अश्रुपूर्ण नयनों से युवराज फ्रेडरिक की ओर देख कर उसे गले लगाया और अपने को उन्नति की इस चरम सीमा पर पहुंचाने वाले बिस्मार्क से हाथ मिलाया, उस समय के दृश्य का वर्णन करना बहुत ही कठिन कार्य है।

२१वीं मार्च को बर्लिन में साम्राज्य की राज सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ और राज्य प्रणाली में आवश्यक संशोधन हुए।

फ्रांस वालों ने अब तक आत्म समर्पण नहीं किया था परन्तु खाद्य पदार्थों की कमी और दुरवस्था से तङ्ग हो कर उन्होंने आत्म समर्पण करना ही उचित समझा एवं बहुत दिनों के वादाविवाद के पीछे जर्मनी ने ऐलसास लौरेन, मेटज़ तथा स्ट्रासबर्ग लेकर सन्धि कर ली। हर्जाने के लिये फ्रांस ने दो सौ करोड़ पाउण्ड देने की प्रतिज्ञा की। निश्चय हुआ कि जब तक यह रकम न चुका दी जाय तब तक जर्मन सेना फ्रांस में रहेगी। फ्रांस वालों ने बहुत चेष्टा कर शीघ्र ही पूरी रकम चुका दी।

जर्मन महासाम्राज्य ।

सम्राट् विलियम　इस तरह असंख्य आपत्तियों को दूर कर बिस्मार्क की नीति कुशलता की सहायता से प्रशिया के राजा जर्मन साम्राज्य के सम्राट् बने। बिस्मार्क और विलियम प्रथम की आकांक्षा एक बृहत् साम्राज्य स्थापन करने की थी। इस उद्देश्य की सिद्धि होने के उपरान्त बिस्मार्क ने उस को स्थायी रखने का प्रयत्न आरम्भ किया।

वैदेशिक नीति ।

फ्रांस　फ्रांस में प्रजातन्त्र राज्य होने के पश्चात् प्रजा में बहुत उत्साह फैला हुआ था। सब राजनैतिक दलों के झण्डों पर 'प्रतिहिंसा' का निशान लगा हुआ था। फ्रांस का वैदेशिक मन्त्रिमण्डल रूस, अस्ट्रिया और इटली—किसी से सन्धि कर जर्मनी से युद्ध छेड़ने के उपाय में था और इधर जर्मनी का कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क सब राज्यों को अपनी ओर मिलाने या फ्रांस से पृथक् रखने की चेष्टा में था।

रूस　पोलैंड में सहायता पहुंचा कर बिस्मार्क ने रूस को अपने पक्ष में कर ही रखा था। सम्राट् विलियम और रूस के जार में निकट का सम्बन्ध होने के कारण दोनों में गाढ़ी मित्रता थी। इस के पश्चात् 'ब्लैक सी' (Black sea) के सम्बन्ध में सहायता देकर जर्मनी ने रूस को बहुत ही अपना लिया।

अस्ट्रिया　फ्रांस के युद्ध के समय अस्ट्रिया को रूस के दबाव से उदासीन रहना पड़ा था। अब जर्मनी की शक्ति बढ़ते देख उसने भी विचार लिया कि "बीती ताहि बिसारि दे।" सन् १८७२ में सम्राट् विलियम और सम्राट् फ्रैंसिस जोज़ेफ की मुलाकात हुई और १८७२ ही में रूस जर्मनी और अस्ट्रिया के सम्राट् बर्लिन में एकत्र हुए। इस विचित्र मिलाप के समाचार से समस्त यूरोप चौंक पड़ा। सन् १८७३ में सम्राट् विलियम बिस्मार्क और मोल्टके को साथ लेकर सेंट पीटर्सबर्ग और वायना गये। इस तरह इन तीनों राज्यों का सम्बन्ध बहुत ही सन्तोषजनक हो चला।

१८७० के युद्ध में फ्रांस ने आशा की थी कि इटली भी जर्मनी के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करेगी परन्तु आरम्भ से ही जर्मनी की विजय देख कर इटली चुपचाप रही।

इटली सन् १८७३ में सितम्बर महीने में इटली के राजा विक्टर इमेन्यूएल (Victor (Emmemeunel) बर्लिन में जाकर जर्मन सम्राट् के मेहमान हो रहे थे।

इटली से जर्मनी आते समय इटली के राजा ने वायना में सम्राट् फ्रैंसिस जोजेफ का आतिथ्य स्वीकार किया था। दूसरे वर्ष दोनों सम्राटों ने इटली जाकर इटलीराज की मेहमानदारी स्वीकार की।

फ्रांस को इन तीनों वृहत् राज्यों से पृथक् रख कर उसे सन्तुष्ट करने का भी बहुत प्रयत्न किया गया और इस विषय में कुछ सफलता भी हुई। सन् १८७८ में रूस और तुर्की का युद्ध छिड़ गया। तुर्कों ने बड़ी वीरता से सामना किया परन्तु अन्त में उनको हार माननी पड़ी।

रूस-तुर्की युद्ध. रूसी सेना कुंस्तुन्तुनिया के निकट पहुंचने लगी। इङ्गलैंड की इच्छा नहीं थी कि रूस कुंस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर डार्डेनेलीज़ प्रणाली का अधिकारी बन बैठे। इस लिये ब्रिटिश बेड़ा उधर रवाना हुआ। ऐसी अवस्था में सैन स्टीफानो (San Stefano) की सन्धि हो गई। रूसी सेनापति इगनाटिएफ (Egnetieff) ने जान बूझ कर इतना अधिक देश अपने अधिकार में कर लिया जिस से सब महाशक्तियों की पञ्चायत द्वारा बहुत घटाये जाने पर भी यथेष्ट स्थान रूस के अधिकार में रह जाय। बिस्मार्क ने इस पञ्चायत का सरपञ्च (President) बनना स्वीकार किया और १३वीं जून को बर्लिन में सब महाराष्ट्रों के प्रतिनिधि सैन स्टीफानो की सन्धि की काट छाँट करने के

बर्लिन की पञ्चायत लिये इकट्ठे हुए। इस समय एक हत्यारे ने सम्राट विलियम को घायल कर बहुत व्याघात पहुंचाया परन्तु बिस्मार्क ने सब कार्य को बहुत खूबी से निभा दिया। कुछ दिनों तक बर्लिन में खूब चहल पहल रही। बलगेरिया को लेकर इङ्गलैंड और रूस में बहुत टानाटानी हुई परन्तु अन्त में बिस्मार्क ने बड़ी बुद्धिमानी से सब कार्य को अच्छी तरह सम्पन्न किया।

बर्लिन की इस पञ्चायत (Congress) की कारवाई से रूस और जर्मनी में अनबन रहने लगी। रूस की सेना बड़ी मुस्तैदी से तयार होने लगी। कांग्रेस के समय बिस्मार्क ने रूस के परराष्ट्रसचिव प्रिंस गोर्चाकोफ (Gortchakoff) से कहा था कि यदि तुम मित्रता नहीं रखोगे तो मुझे बाध्य होकर अस्ट्रिया से मित्रता बढ़ानी होगी। अब बिस्मार्क से रूसकी आशङ्का को दूर करने के लिये वायना जाकर रूस के आक्रमण के विरुद्ध एक होने की संधि कर ली और बहुत समझा बुझाकर तथा अपने पदत्याग का भय दिखला कर सम्राट् विलियम को भी संधि की शर्तों पर राजी कर लिया।

सन् १८७६ में ७ वीं अक्तूबर को इस संधि पर दोनो पक्षों के हस्ताक्षर हुए। बिस्मार्क ने बड़ी सफाई से इस संधि का (जिस को उस समय Dual alliance कहा जाता था) आभास मात्र प्रकाश कर दिया। इस के साथ ही सन् १८८० मे जर्मन पार्लियामेंट में सेना बढ़ाने का प्रस्ताव हुआ। बस, फिर क्या था, रूस के पंजे ढीले हो गये। इस के पश्चात् कुछ दिनों तक दोनों साम्राज्यों में खब गाढ़ी मैत्री रही। सन् १८७४ में रूस और जर्मनी को एक गुप्त संधि भी हुई थी जिस में सम्भवतः यह शर्त्त थी कि यदि अन्य कोई राज्य जर्मनी या रूस पर आक्रमण करे तो दूसरा उदासीन रहेगा। परन्तु बिस्मार्क के पद त्याग के उपरान्त यह संधि फिर नहीं की गयी।

सन् १८८८ में रूस और जर्मनी में फिर मन मोटाव रहने लगा। विस्मार्क ने जांच कर पता लगाया कि किसी षड्यन्त्रकारी ने झूठे पत्र दिखला कर रूस का मन फेर दिया है। विस्मार्क ने ज़ार से मिल कर सब बातें समझा दी। इस के पश्चात् बहुत दिनों तक इन दोनों साम्राज्यों में अच्छा व्यवहार चलता रहा

इटली इटली से मित्रता के आरम्भ का ज़िक्र किया जा चुका है। सन् १८८३ में इटली ने जर्मनी से इस शर्त्त पर सन्धि करने का प्रस्ताव किया कि अस्ट्रिया और फ्रांस के विरुद्ध युद्ध छिड़ने से जर्मनी इटली की सहायता करे। जर्मनी ने उत्तर दिया कि अस्ट्रिया से हमारा सम्बन्ध अविच्छन्न है। हम दोनों से संधि करो तो हो सकती है। अगत्या इटली ने फ्राँस के भय से इस शर्त्त को स्वीकार कर लिया। तब से इन तीन शक्तियों की सन्धि Tripple Alliance के नाम से प्रसिद्ध है।

उपनिवेश प्रति वर्ष जर्मनी से लाखों मनुष्य विदेशों में जाकर अन्य राज्यों में वस जाते थे और इससे जर्मनी को बहुत हानि पहुँचती थी। इङ्गलैण्ड आदि देशों की तरह उपनिवेशों की लालसा बढ़ने लगी और विस्मार्क ने बहुत प्रयत्न कर कुछ सफलता भी पाई। इस चेष्टा में इङ्गलेंएड से मनमोटाव होना अवश्यम्भावी थी पर कई बार बहुत हलचल मचने पर भी दोनों पक्षों ने चतुराई से मामला कभी बढ़ने नहीं दिया।

गृहनीति।

सोशियालिस्ट दल—फ्रेडरिक लासेन नामक व्यक्ति ने अपने व्याख्यानों के प्रभाव से इस दल का गठन किया। इसका सिद्धान्त समस्त संसार में समानता का प्रचार करना है। धनी और दरिद्र का पार्थक्य सर्वथा हेय समझा जाता है और सब को बराबर धनशाली बनाना इस का उद्देश्य है। सम्राट विलियम की हत्या की चेष्टा के पश्चात् गवर्नमेंट ने इस दल को दबाने के लिये बहुत कड़े कानून बनाये परन्तु इस दल की भीतरी शक्ति बढ़ती ही गई। मजदूरों का अधिकांश भाग इस दल से सहानुभूति रखता है।

विस्मार्क ने जर्मनी के भीतरी अड़ङ्गों को धीरे धीरे सुलझाया। इस कार्य में उसको कई बार बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वैदेशिक नीति में सर्वदा स्वतंत्र अधिकार रहने पर भी गृहनीति में सब दल बारंबार विरोध करते थे। पहले सब रियासतों में पृथक् पृथक् कानून, सिक्के और तौल थे। इन सबों में सादृश्य कर दिया गया। बेवेरिया आदि राज्यों में टकसाल अलग है और वे अपने सिक्कों पर अपनी छाप लगा सकते हैं।

विस्मार्क की इच्छा सब प्रादेशिक रेलों को एक कर प्रशिया के अधीन करने की थी परन्तु अन्य राज्य वाले बारंबार बाधा देते रहे। अन्त में इस कार्य में भी उस को सफलता हुई।

धार्म्मिक विवादों से सदा अशांति रहा करती थी। धीरे धीरे सब धर्म्मानुयायियों से समान वर्त्ताव करने के नियम होने लगे और इस रीति से विस्मार्क ने कैथलिक धर्म्म वालों को अपनी ओर मिला लिया।

पोस्ट आफिस, कर आदि कितने ही विभागों में बहुत उन्नति की गई।

सन् १८८८ में सम्राट् विलियम की मृत्यु हुई। जर्मन सम्राज्य की समस्त उन्नति इस भाग्यशाली राजा के राजत्व काल में ही हुई।

फ्रेडरिक तृतीय।

सन् १८८८ में फ्रेडरिक राजसिंहासन पर
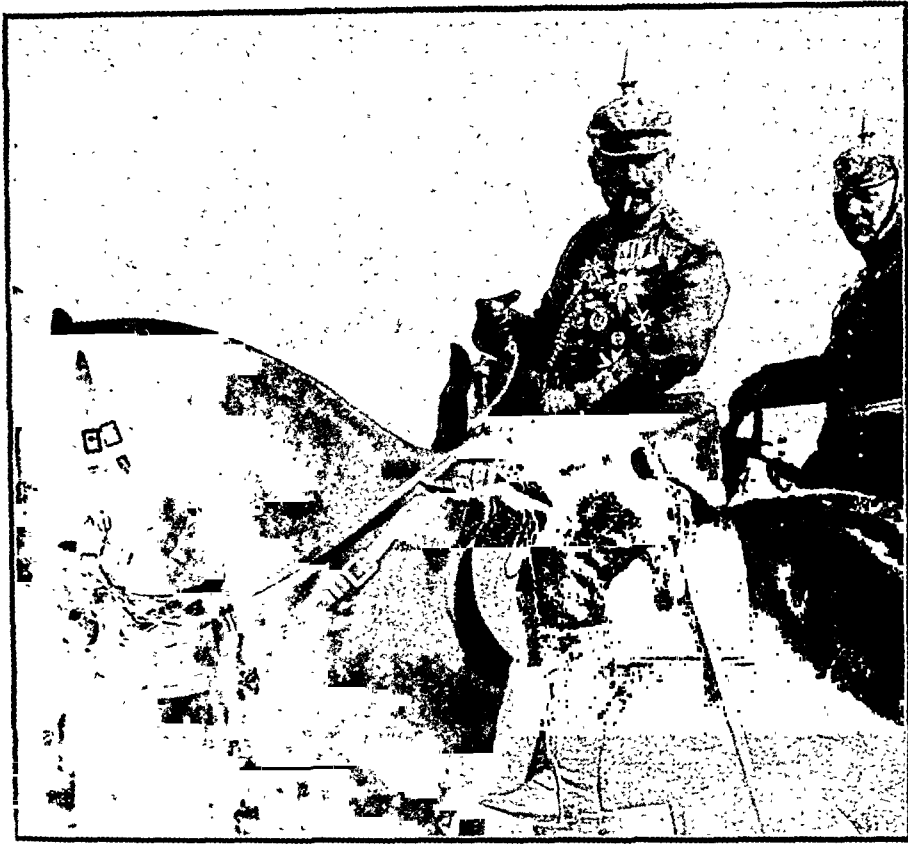
अश्वारोही क़ज़र विलियम।

रूस की फील्ड तोपें।

लन्दनमें जर्मन राजदूत प्रिंस लिक्नाउस्की।

K. V. Seyue & Bros. Copyright by the Daily Mirror.

बैठा। पहले से ही यह सुयोग्य राजा कैन्सर (Cancer) नामक असाध्य रोग से पीड़ित था।

फ्रेडरिक का विवाह महारानी विक्टोरिया की कन्या से हुआ था। इस से बिस्मार्क की सदा अनबन रहा करती थी। फ्रेडरिक के राजत्वकाल में उसकी पुत्री राजकुमारी विक्टोरिया के विवाह के विषय में फिर झगड़ा हुआ। महारानी की इच्छा थी कि बलगेरिया के राज्यच्युत प्रिंस एलेकजेण्डर से उसका विवाह हो। बिस्मार्क ने सोचा कि इससे रूस बहुत नाराज होगा। इस लिये उसने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया और अन्त में उसकी जीत रही। कुछ दिनों के पश्चात् पटमेकर नामक मन्त्री को सम्राट् की इच्छा से पदत्याग करना पड़ा। लोगों ने आशा की कि इस उदार नीति वाले सम्राट् के शासन काल में बिस्मार्क को भी पद त्यागना पड़ेगा। पर यह आशा पूरी नहीं हो सकी। केवल ९९ दिन तक रोगयन्त्रणा सहकर फ्रेडरिक ने इस असार संसार का परित्याग किया। अपने उदार मत और युद्धस्थल में कौशल तथा वीरता के कारण इसने सबों को मुग्ध कर लिया था।

विलियम द्वितीय।

उसकी मृत्यु के पश्चात् कैज़र द्वितीय विलियम राजसिंहासन पर बैठा। यह राजा अपनी उच्चाकांक्षा, और दृढ़ प्रकृति के लिये विख्यात् है। इसके शासन काल में जर्मनी की अवस्था ने पूरा पलटा खाया। सम्राट् बनने से दो वर्ष भीतर ही प्रिंस बिस्मार्क को अपना पद छोड़ना पड़ा अथवा यों कहिये कि बिस्मार्क अपने पद से अलग कर दिया गया। इस समाचार को सुनकर समस्त संसार चकित सा रह गया। किसी ने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक नवयुवक राजा गद्दी पर बैठते ही साम्राज्य को स्थापित करने वाले प्रिंस बिस्मार्क को बरखास्त करने का साहस दिखला सकेगा।

कई कारणों के एकत्र होजाने से यह घटना संगठित हो सकी। बिस्मार्क ने धीरे धीरे अपना बल इतना अधिक बढ़ाया था कि समस्त जर्मन उस पर पूरी श्रद्धा रखते हुए भी उसके कठोर शासन से उकता गये थे और यही मनाते थे कि किसी तरह वह अपना कार्य छोड़ कर अपना समय शान्ति से व्यतीत करे। विलियम का स्वभाव भी बहुत उद्धत और स्वतन्त्र था। मौल्टके ने इस बात का विचार कर पहले से ही अपना पदत्याग कर अवसर ग्रहण किया, पर बिस्मार्क ऐसा नहीं कर सका। परिणाम स्वरूप उसको बुढ़ापे में नीचा देखना पड़ा। कहावत है कि एक राज्य में दो राजा नहीं रह सकते। बिस्मार्क वास्तव में मन्त्री नहीं राजा बना हुआ था, पर अब तक किसी राजा ने उसका विरोध नहीं किया था। विलियम ने अपनी स्वभावसिद्ध स्वतन्त्रता से उसका विरोध किया।

१८८९ के मार्च महीने में बिस्मार्क ने पदत्याग कर बर्लिन का त्याग किया। बर्लिन वासियों ने बड़ी धम धाम से उसको विदा कर अपनी कृतज्ञता और श्रद्धा का परिचय किया।

बिस्मार्क की पदच्युति के साथ ही जर्मनी की नीति में अद्भुत और आकस्मिक परिवर्त्तन हो गया। सन् १८७० के युद्ध के पश्चात् साम्राज्य के स्थापित होने के अनन्तर बिस्मार्क की नीति उस साम्राज्य की रक्षा करने की थी। इस उद्देश्य से उसने अस्ट्रिया तथा इटली से सन्धि कर Tripple alliance बनाया और रूस को सदा फ्रांस से अलग रखा। पर कैज़र विलियम को इतने से ही सन्तोष नहीं हो सका। उसकी इच्छा समस्त पृथिवी में अँगरेजों की तरह अपने साम्राज्य को विस्तृत करने की थी।

इसलिये उसने अपना बल बढ़ाना आरम्भ किया।

बोअर युद्ध के समय उनकी सहायता करने की इच्छा होने पर भी जर्मनी को चुप मार कर बैठना पड़ा क्योंकि उसकी जहाजी शक्ति इङ्गलैंड से बहुत कम थी। इसलिये जर्मनी ने बड़ी शीघ्रता से अपनी सामुद्रिक शक्ति को बढ़ाना आरम्भ किया और सन् १९१४ में महायुद्ध के आरम्भ के समय उसको जहाजी शक्तियों में द्वितीय स्थान प्राप्त था।

स्थल सेना में बहुत उन्नति की गयी और अधिकांश सेना को सदा युद्ध के लिये प्रस्तुत रहने की शिक्षा दी जाती थी। युद्धारम्भ के समय जर्मन सेना संसार में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। तोप और अन्य युद्धसामग्रियों में भी अन्य कोई राष्ट्र उस से बढ़ कर नहीं था।

बिस्मार्क की नीति सदा रूससे मैत्री रखने की थी। इसलिये उसने एक गुप्त संधि रूस से की थी, जिसका कि जिक्र ऊपर आ चुका है। उसके पदत्याग के पश्चात् इस संधि की अवधि पूरी होने पर जर्मनी ने उसको दोहराने की आवश्यकता नहीं समझी। विलियम ने अनुमान किया था कि एशिया में लगे रहने के कारण रूस यूरोप में कुछ विशेष बल नहीं रख सकेगा। इसी उद्देश्य से उसने रूस-जापान युद्ध के समय रूस को उत्तेजना भी दी थी, पर इस युद्ध में रूस की बुरी तरह हार होने से उसने सोच विचार कर यूरोप में अपना बल बढ़ाना श्रेयस्कर समझा।

जर्मनी को अपना बल बढ़ाते देखकर अन्य राज्यों को चिन्ता होने लगी और इसी लिये सन् १९०४ में फ्राँस तथा इङ्गलैंड ने सन्धि कर ली। इस समाचार से बर्लिन में बहुत घबड़ाहट फैली और दूसरे ही वर्ष जर्मनी ने मरोक्को के विषय में फ्रांस से झगड़ा आरम्भ किया। इस अवसर पर इङ्गलैण्ड ने फ्रांस को पूरी सहायता दी। इस लिये सारा झगड़ा शान्त हो गया। सन् १९०७ में फ्राँस तथा रूस में भी संधि हो गयी। इस प्रकार तीन महाराष्ट्रों की एक मण्डली तयार हो गयी जिसको लोग Triple Entete कहने लगे।

इस मैत्री को भंग करने की इच्छा से जर्मनी और अस्ट्रिया ने एक होकर सन् १९०८-९ में बोसनिया तथा हर्जगोविना नामक प्रान्तों का झगड़ा आरम्भ किया। रूस का बल इस समय बहुत कम था। इसलिये उसको चुप्पी साधनी पड़ी किन्तु इङ्गलैण्ड तथा फ्रांस ने उसको बहुत सहायता दी जिससे Triple Entete में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। सन् १९११ में फ्रांस ने फेज पर अधिकार कर लिया। इङ्गलैंड इस समय घराऊ झगड़ों में फंसा हुआ था। जर्मनी ने इसको सुअवसर समझ कर 'पैंथर' नामक रणपोत को ऐगेदिर भेज ही तो दिया। पर इस समय भी फ्रांस तथा इङ्गलैंड ने पूरी एकता और दृढ़ता दिखाई। अगत्या जर्मनी को कांगो में कुछ भूमि लेकर सन्तोष करना पड़ा।

इस प्रकार १९०५ तथा १९१२ में इङ्गलैंड की दृढ़ता के कारण फ्राँस तथा जर्मनी में युद्ध होते होते बचा।

इधर कई वर्षों से जर्मनी तुर्की पर अपना प्रभाव बढ़ा रही थी। जर्मन सेनापति तुर्की सेना को शिक्षा दे रहे थे। सन् १९१२ में इटली तथा तुर्की में युद्ध छिड़ने से इस मित्रता में कुछ अन्तर पड़ा। इटली और जर्मनी में पूरी मित्रता रहने पर भी इटली को युद्ध करते देखकर तुर्की को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इस युद्ध के अन्त होते ही सर्बिया मांटीनोग्रो, बलगेरिया और ग्रीस ने मिलकर तुर्की को हराना आरम्भ किया। इस से

भी जर्मनी को बहुत क्षति पहुंची और अनुमान किया जाता है कि उसी ने बलगेरिया को उकसा कर दूसरा बलकन युद्ध कराया। इसमें बलगेरिया की हार होने के कारण जर्मनी में फिर घबड़ाहट फैली और उसने इङ्गलैंड से एक मत होकर संधि करा कर समस्त अड़ङ्गे को मिटाया। इस युद्ध के पश्चात् ही जर्मनी ने अपनी स्थल सेना को फिर बढ़ाना आरम्भ कर दिया।

सन् १९१४ में यूरोप का महायुद्ध आरम्भ हुआ। इसके कारणों में और उत्पत्ति पर अन्यत्र विचार किया जायगा।

जिस प्रकार बिस्मार्क के समय उसका नाम जर्मनी का पर्यायवाचक समझा जाता था उसी तरह अपने शासनकाल में कैज़र विलियम ही जर्मनी में 'सर्वेसर्वा' था। उसके व्याख्यानों से उसके विचारों का अनुमान हो सकता है। इसलिये उसके कुछ चुने हुए शब्द यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

सोसियालिस्ट दल की वृद्धि देखकर विलियम ने १४वी मई सन् १८८९ वीं को कहा था-"मैं प्रत्येक सोशल डिमोक्रैट को जर्मन जाति और देश का शत्रु समझता हूं"। विलियम के बालकपन में ही उसके लक्षणों से उसके स्वभाव को पहिचान कर विस्मार्क ने कहा था;—यह बालक फ्रेडरिक दी ग्रेट के सदृश स्वेच्छाचारी होगा। ईश्वर की दया से जर्मनी में इस समय पार्लियामेंट स्थापित हैं।

अन्य किसी अवसर पर विलिमम ने कहा था कि "इस देश में एक ही मालिक हैं और वह व्यक्ति मैं हूं। जो मेरा विरोध करेगा उसको मैं पीस डालूंगा।"

ऐसे घमण्डी राजा के समय में ही इस संसार व्यापी महा युद्ध का आरम्भ हुआ।

जर्मन नौ सैन्य।

इस महा संग्राम में जर्मनी की नौ-सेना की शक्ति की परीक्षा के विषय में लोगों में बहुत मत भेद है। सन् १८९८ से सन् १९१४ तक जर्मनी की नौसेना ने इतनी उन्नति की कि सन् १९१४ की उसकी नौसेना की १८९८ की नौसैन्य के साथ तुलना असम्भव हो गयी।

जर्मनी के पुराने इतिहास से ज्ञात होता है कि फ्रेडरिक दी ग्रेट के पहले किसी राजा ने जहाजों की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया था। सन् १८४८ के युद्ध में डेन्मार्क वालों ने समुद्री तट को घेर कर जर्मनी का सारा व्यापार बन्द कर दिया। इस लिये सन् १८५३ में विलियम शेवन का बन्दरगाह मिलने पर प्रशिया में नौसेना विभाग खोला गया। १८६४ के युद्ध में डेन्मार्क वालों ने फिर घेरा देने की चेष्टा की; पर इस बार प्रशिया के ज़हाजों ने बाधा देकर उनका उद्देश्य पूरा नहीं होने दिया।

इस युद्ध के पश्चात् सन्धि के समय 'काइल' पर प्रशिया का अधिकार हुआ। इस स्थान में बालटिक समुद्र से उत्तर समुद्र तक एक नहर बनायी गई और यहीं जर्मन नौसैन्य का प्रधान अड्डा बनाया गया।

कैज़र द्वितीय विलियम ने राजगद्दी पर बैठते ही नौसैन्य की उन्नति करने की उत्सुकता दिखाई। सन् १८९७ में ऐडमिरल भौन हौलमैन ने जहाजों की वृद्धि के लिये बजट पेश किया; पर राइस्टग ने उसके प्रस्तावों को अस्वीकार किया। हौलमेन के पद त्याग के पश्चात् टर्पीट्ज नामक निम्न श्रेणी का एक अफसर नौसैन्य-विभाग का प्रधान बना। उसने सन् १८९८ में राइस्टग से जहाजों को बढ़ाने की अनुमति ली। सन् १८९९

और १६०० में उस ने जहाजों की संख्या दूनी कर ली। १६१४ के महा संग्राम के आरम्भ के समय जर्मनी के जङ्गी जहाजों की संख्या इस प्रकार थीः—

नये ढंग के जङ्गी जहाज	१३
बैटल-क्रूजर	४
पुराने रण पोत	२०
क्रूजर प्रथम श्रेणी के	६
लाइट क्रूजर	३६
नाशक बोट	१४२
टार्पीडो बोट	४७
सबमेरीन	२७

सभी का यह विश्वास है कि सबमेरीनों की संख्या बहुत गुप्त रखी गई है और वास्तव में उन की संख्या अनुमान से कहीं अधिक है।

जर्मन नौसैन्य की वृद्धि का प्रधान कारण कैज़र द्वितीय विलियम की उच्चाकांक्षा और अङ्गरेजों से ईर्ष्या रखना ही समझना चाहिये। बोअर युद्ध के समय विलियम ने कहा था कि हम लोगों को अपनी जहाजी शक्ति बढ़ानी चाहिये। जर्मनी का भविष्य समुद्र पर (समुद्री शक्ति पर) निर्भर है। राइस्टग में बार बार व्यय की अनुमति लेते समय यही कहा गया था कि जर्मनी की जहाजी शक्ति इतनी बढ़ा ली जायगी कि सबसे अधिक बलशाली शक्ति को भी उसकी बाधा की परवाह करनी पड़े।

युद्ध के आरम्भ के समय जर्मन युद्ध जहाजों का ब्यौरा यों थाः—

प्रीड्रेडनाट

कैज़र विलहेलम वर्ट	...	६८४० टन
कैज़र फ्रेडरिक तृतीय	...	,,
कैज़र विलियम द्वितीय	...	१२००० टन
विलियम दी ग्रोसे	...	१११८० टन
वार्वरोजा	...	१११८० टन
कार्ल दी ग्रोसे	...	,,
वीटेल्सवाच	...	१२००० टन
मेक्लेन वर्ग	...	,,
जारिंगेन	...	,,
वेटीन	...	,,
वांशविग	...	१३२०० टन
एलज़ा	...	,,
प्रोइस्सेन	...	,,
लोथरिंजेन	...	,,
डशलैंड	...	,,
हैनोम्वर	...	,,
पोमेरेन	...	,,
श्लेज़विग होल्सटाइन	...	,,
श्लेज़ीन	...	,,

ड्रेडनाटः—

वेस्टफेलेन	...	१८५०० टन
नासो	...	,,
राइनलैंड	...	,,
पोसेन	...	,,
भौन डर टान	...	१६००० टन
थूरिंजेन	...	,,
औस्ट फ्राइजलैंड	...	,,
हेल्गोलैंड	...	,,
ओल्डेनबर्ग	...	,,
मोल्टके	...	२३००० टन
गोबेन	...	,,
फ्रेडरिक डर ग्रोसे	...	२४५०० टन
कैज़र	...	,,
कैज़रिन	...	,,
कनिग ऐलबर्ट	...	,,
प्रिन्स रीजेंट लियोपोल्ड	...	,,
वाइसेनबर्ग	...	,,

पुराने रणपोतः—

सीगफ्रीट	...	४१०० टन
हाइमडाल	...	,,

हागेन ... ... ४१०० टन
फ्रीटजोफ ... ... ,,
हिल्डेब्रैंड ... ... ,,
ओडेन ... ... ४१५० टन
ए जिर ... ... ,,

शस्त्र सज्जित क्रूजर:—

फर्स्ट विस्मार्क ... ... १०७०० टन
प्रिंस हेनरी ... ... ८८३० ,,
प्रिंस ऐडेलवर्ट ... ... ६०५० ,,
प्रिंस फ्रेडरिक कार्ल ... ६०५० ,,
रून ... ... ६५०० ,,
मौल्टके ... ... ६५०० ,,
शार्नहोर्स्ट ... ... ११५०० ,,
नीसेनो ... ... ,,
ब्लूचर ... ... १५००० ,,

क्रूजर:—

कैज़रिन आगस्टा ... ... ६३०० टन
गीफियोन ... ... ४८०० टन
फ्राइया ... ... ४१०८ टन
हर्था ... ... ५६५० टन
विक्टोरिया लूइसी ... ,,
विनेटा ... ... ,,
हैंस ... ... ,,
गैज़ेल्ल ... ... २६६५ टन
नाइयोवी ... ... ,,
नीम्फ ... ... ,,
एरियाडनी ... ... ,,
ऐमेज़न ... ... २६५० टन
मेड्यूसा ... ... ,,
थोटिस ... ... ,,
फ्राउ एन लोब ... ... ,,
आर्कोना ... ... २७१५ टन
अनडीन ... ... ,,
ग्रीमेन ... ... ,,
बर्लिन ... ... ३२५० टन
... ... ,,
ल्यूबेक ... ... ३२५० टन
हैम्बर्ग ... ... ,,
स्यूकेन ... ... ,,
लिपज़िग ... ... ,,
डैनज़िग ... ... ३४०० टन
कनिगज़बर्ग ... ... ३४५० टन
स्टटगार्ट ... ... ,,
नर्नबर्ग ... ... ३४५० टन
स्टेटिन ... ... ,,
एमडेन ... ... ३६०० टन
ड्रेसडेन ... ... ,,
कोलबर्ग ... ... ४३०० टन
माइज ... ... ,,
कोलन ... ... ४३५० टन
आगसबर्ग ... ... ,,
ब्रेसेलाउ ... ... ५५०० टन
मेगडे बर्ग ... ... ,,
स्ट्रालसुंड ... ... ,,

स्थल सेना।

जर्मन सेना की शक्ति पर ही समस्त परिणाम निर्भर है। इस सेना का संगठन बहुत ही पुराना है। सन् १८६६ में प्रशिया के राजा उत्तरी सहंति की समस्त सेना के अधिपति बनाये गये और दक्षिणी सहंति ने एक गुप्त सन्धि से युद्ध के समय अपनी पूरी सेना उनके अधीन करने की प्रतिज्ञा की। १८७१ में जर्मन साम्राज्य स्थापित होने पर सेना की एकता अधिक दृढ़ हो गयी। बवेरिया, वर्टम्बर्ग तथा सैक्सनी ने कुछ विशेष अधिकार पृथक् रखे। शान्ति के समय इन राज्यों के राजा अपनी अपनी सेनाके अधिपति रहते हैं पर युद्ध के समय प्रशिया के राजा ही समग्र जर्मन सेना के प्रधान सेनापति हैं। बवेरिया आदि राज्यों के युद्ध सचिव भी पृथक् हैं। उनकी सेना के लिये पृथक् पृथक् बजट तैयार होता है पर बवेरिया को छोड़ कर सब

का व्यय साम्राज्य के कोषागार से ही होता है। बवेरिया को अपनी सेना का व्यय अलग मिल जाता है।

जर्मनी में प्रत्येक पुरुष को सैनिक कार्य करना पड़ता है। १८ वर्ष की उम्र होने से ही गवर्नमेंट उसको सेना में नाम लिखाने के लिये बाध्य कर सकती है। पर साधारणतया २० वर्ष का वयस होने पर वर्ष Regular सेना में भर्त्ती हो कर सात वर्ष तक काम करना पड़ता है। इसके पश्चात् १२ वर्ष तक लैंडवेहर तथा ६ वर्ष तक लैंडेस्टर्म में रहना पड़ता है। प्रथम सात वर्ष में, २ वर्ष Active तथा ५ वर्ष रिजर्व सेना में बीतते हैं। घुड़सवार पलटन में यह अवधि ३ वर्ष और ४ वर्ष की है। लैंडवेहर के दो विभाग हैं। प्रथम भाग में ५ वर्ष और दूसरे में ७ वर्ष बिताने पड़ते हैं। प्रथम विभाग की अवधि में दो बार ८ से १४ दिनों तक शिक्षा मिलती है। दूसरे विभाग में आवश्यकता होने पर शिक्षा दी जाती है। लैंडस्टर्म में कुछ शिक्षा नहीं दी जाती। यह सेना देश-रक्षा के लिये है तथा अत्यन्त आवश्यकता होने पर युद्ध में भेजी जा सकती है।

सैनिकों को वेतन नहीं मिलता पर युद्ध के लिये सेना एकत्रित होने पर गरीब सैनिकों के परिवारों को सहायता दी जाती है।

जर्मन सेना सदा युद्ध के लिये प्रस्तुत रखी जाती है, इसलिये युद्ध आरम्भ होने के समय उसके १०,०००,०० पदातिक और ४०,०००, अश्वारोही बहुत शीघ्रता के साथ इकट्ठे हो सकते हैं। यह सेना २५ आर्मीकोर्स में बँटी हुई है। प्रत्येक डिविज़न में दो ब्रिग्रेड, प्रत्येक ब्रिगेड में दो रेजिमेंट, तथा प्रत्येक रेजिमेंट में दो बैटेलियन होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कोर्स के साथ एक बैटेलियन बन्दूक वालों का होता है। युद्ध के लिये एकत्र होते समय एक रिजर्व डिविज़न भी तैयार हो जाता है। इस लिये युद्ध के समय एक कोर्स में ४०००० मनुष्य हो जाते हैं। सब मिला कर जर्मनी की सेना में २,७५८,००० मनुष्य गिने जाते हैं जिनमें १,५००,००० सेना बहुत अच्छी तरह शिक्षित है। आवश्यकता पड़ने पर सब तरह के सैनिकों को मिला कर जर्मनी सेना की संख्या ५०,०००,०० तक पहुँच सकती है।

मेशीन तोपें, किला तोड़ने वाली बड़ी तोपें, (सीज़ तोपें) और होवाइज़र तोप आदि में जर्मनी ने बहुत उन्नति की है। कहा जाता है कि उसकी सब से बड़ी सीज़ तोपों से ३१॥ मन का गोला फेंका जा सकता है।

शासन प्रणाली।

जर्मन साम्राज्य की वर्त्तमान शासनप्रणाली की उत्पत्ति १६वीं एप्रिल १८७१ के प्रतिज्ञापत्र से है, जिसमें जर्मनी के सब राजाओं और रईसों (Pusies) ने मिल कर जर्मन साम्राज्य की प्रतिष्ठा कर प्रशिया के राजा और उसके उत्तराधिकारियों को सम्राट् बनाया। सम्राट् को देश-रक्षा के लिये शत्रु के आक्रमणों को रोकने के लिये युद्ध घोषणा करने, सब विदेशी राज्यों में राजदूत नियुक्त करने और सन्धि करने, तथा दोनों पार्लीमेंट की सभा करने, उनको स्थगित करने या बन्द करने का अधिकार है। शान्ति के समय सम्राट् बवेरिया, वर्टम्बर्ग तथा सैक्सनी की सेना को छोड़ अन्य सब सेनाओं के सेनापति हैं। युद्धके समय वे समस्त साम्राज्य की सेना के अधिपति हैं। नौ सेना पर उनका सर्वदा पूरा अधिपत्य है।

राज्य का कार्य दो शासन सभाओं से नियमित है। बंडेसराट (Bundesrath) अर्थात् फेडरेल काउंसिल तथा राइस्टग (Reichstag)। इन दोनों सभाओं की तुलना इंगलैंड की लार्ड तथा कामंस सभाओं से की जा सकती है। फेडरल काउंसिल मे सब States

के प्रतिनिधि रहते हैं जिनकी संख्या ५८ है। इनमें १७ प्रतिनिधि प्रशिया के रहते हैं। राइस्टग में ३९७ प्रतिनिधि प्रजा द्वारा पांच वर्ष के लिये चुने जाते हैं। इस सभा में २३६ सदस्य प्रशिया के हैं। अतएव उनका सदा प्राधान्य रहता है। दोनों सभाओं से स्वीकृत होने पर शासन सम्बन्धी नियम कार्य में परिणत हो सकते हैं।

किसी अन्य देश पर आक्रमण करने के लिये 'वंडेसाट' की अनुमति आवश्यक है। सम्राट् की सही होने पर सब राजाज्ञाओं पर चैंसलर की सही होनी चाहिये (पर यह नियम व्यर्थ है क्योंकि चैंसलर की नियुक्ति सम्राट् के हाथों में है।

वंडेस्ट्राट के सभापति चैंसलर होते हैं और राइस्टग अपना सभापति स्वयं चुनती है।

राइस्टग में १९१२ के चुनाव के अनुसार सब दलों के प्रतिनिधियों की यह संख्या थी :—

सोशियालिस्ट	...	...	११०
सेंटर पार्टी	...	...	९०
नैशनल लिवरल	...	...	४४
कनज़रवेंटिव	...	...	४५
रैडिकल	...	...	४१
पोल	...	...	१८
फ्री कनज़र्वेटिव	...	...	१३
ऐंटी-सीमाइट	...	...	११
अन्य दल	...	...	१५

उपनिवेश।

यद्यपि जर्मनी ने वहुत देरी से उपनिवेशों की वृद्धि पर ध्यान दिया किन्तु तिस पर भी निम्न लिखित उपनिवेश उसके अधिकार में हैं।—

अफ्रीका।	वर्ग	जनसंख्या
टोगोलैंड	३३७०० मील	१,०००,४००
कैमेरून	१९११३०	२,३०२,२००
दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका	३२२४५०	८३६००
पूर्व अफ्रीका	३८४१८०	१०,०३२,०००
	९३१४६०	१३४१८५०१
एशिया :—		
कियाचाउ	२०० मील	१६८९००
अन्य :—		
न्यू गिनी	९५,१७० मील	३०७८००
सैमोआद्वीप	१०८८ ,,	३५०००
कुल जोड़	१०,२७८२० मील	१३९४६२०० मनुष्य।

व्यापार।

गत २० वर्षों में जर्मनी में अपने व्यापार को इतना वढ़ाया है कि समस्त जगत् चकित हो रहा है। जर्मन व्यापारी प्रत्येक देश की आवश्यकता के अनुसार माल तयार करते हैं। यहाँ भारत में दरिद्र मनुष्यों की अधिकता से यहां सस्ता माल अधिक कटता है। इस लिये जर्मन व्यवसायियों ने सस्ता और घटिया माल वना कर भेजना आरम्भ किया। यहां उसकी खपत भी वहुत होने लगी।

व्यापार की उन्नति का पता निम्न लिखित व्योरे से लगेगा :—

साल	आमदनी	रफ्तनी
१८९०	२३१,५००,००० पाउंड	१८८,०००००० पाउण्ड
१९००	३२०,५००,००० ,,	२५५,००००००
१९१०	४६५,४५०,००० ,,	३८२,००००००
१९११	५००,३५०,००० ,,	४११,२०००००
१९१२	५०६,०२८,००० ,,	४३७,०२२०००

१९१२ का व्यापार यों विभक्त हो सकता है:—

माल	आमदनी दसलाख मार्क	रफतनी दशलाख मार्क
खाद्य पदार्थ और उपज	९५६०	१५९२
खनिज पदार्थ	८९९	७२४
तेल, मोम आदि	२४	४५
रासायनिक और औषधि	३६४	७८०
कपड़ा आदि	८०४	१३८४
चमड़ा तथा चमड़े की चीजें	१५२	४८०
रबड़ की चीजें	२८	११२
काच की चीजें	८४	१३ २
कागज	२८	२१०
किताब, तस्वीरें	४०	९२
पत्थर की चीजें	२८	१६
कांच की चीजें	१६	११२
कीमती धातु और उनकी चीजें	३८८	१९६
मट्टी	४	६६
घटिया धातु	५३२	१५९२
कल कांटे	१०८	६६४
खिलौने, घड़ी आदि	३२	२०५

नोट—एक मार्क प्राय: १२ आने का होता है। उपरियुक्त संख्या के आगे ०००००० जोड़ना चाहिये।

ब्रिटिश राज्य में सन् १९१२ में ४०३६२७६७ पाउण्ड का माल जर्मनी से चलान हुआ, जिस में प्रधान चीजों का व्योरा यों हैः—

कोयला	४, ३८६, ११४	पाउण्ड
सूता और कपड़ा	७, ८८७,१७०	,,
मछली	२, १०६,०९१	,,
कल	२, १०६,०९१	,,
धातु	२, ७४७,७८७	,,
Wooltops	१, ०४०,२५०	,,
ऊल	१, ३५६,०७१	,,
उलन सूता	३, २८७,६०८	,,
अलपके का सूता	१, ६३५,५२२	
उलन वाना	२, २५८,५०७	

सब मिलाकर ७००४९१५२ पाउण्ड माल यूनाइटेड किंगडम में जर्मनी से आया-

प्रधान प्रधान पदार्थों का व्योरा यों हैः—

वस्त्र	१३,०५,९७७	पाउण्ड
मोटर और कल	१२,०८,६०८	,,
रासायनिक	१७ १६,६५४	,,
अन्न	१९,६७,४३७	,,
सूते की चीज	६८,६८,०१२	,,
रङ्ग	१६,६८,२३४	,,
चमड़ा	२०,६१,७००	,,
चमड़े की चीज	११,८५,९९८	,,
कल कांटे	२४,३५,९१७	,,
लोहा ईस्पात्	५८,९४,०१४	,,
कागज	१५,१५,६००	,,
जस्ता और चीजें	१६,९१,४२९	,,
रेशम और चीजें	२४,८१,६६७	,,
चमड़े और 'फर'	१४,३६,६०२	,,
चीनी	६१,९१,२८४	,,
खिलौने	१०,६०,५३४	,,
उलन बाना	२०,९६,०७२	,,

कृषि।

यद्यपि जर्मनी में दिनों दिन कल कारखानों की वृद्धि हो रही है तथापि अभी तक प्रति सैकड़े ३२०७ मनुष्य कृषि से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। सन् १९०७ में ७८,६३२,१४० एकड़ भूमि में खेती हुई थी और ३४,२७२,१४१ एकड़ भूमि में जङ्गल थे। जर्मनी में इतने खाद्य पदार्थों की उपज होती है जिससे उसकी समस्त जनसंख्या का $\frac{9}{10}$ हिस्सा प्रतिपालित हो सकता है। सन् १९१२ में निम्नलिखित चीजों की खेती हुई थी।

गेहूं	४८१४०२७	एकड़ भूमि में
जई	१५६७०३९०	,,
जौ	३९७३९८०	,,
ओट	१०९६६३३५	,,
आलू	८३५३६७५	,,
हे	१४८०६८३०	,,
अंगूर	२७२२६५	,,
तमाखू	३९४४०	,,
अन्य	६७५३०	,,
वीट	१२४३६५२	(१९११ म)

खाद तथा खनिज।

अधिकांश खनिज पदार्थ प्रशिया में निकलते हैं। सन् १९११ में निम्नलिखित खनिज निकले :—

कोयला	१६,०७,४७,५८० टन
लिगनाइट	७,३७,६०,८६७ टन
लोहा	२,९८,७६,३६१ टन
नमक (पहाड़ी)	१४,३६,४९२ टन
नमक	९६,०६,८७६ टन
जिंक (जस्त)	६,९६,९७० टन
शीशा	१,४०,१५४ टन
तांबा	८,६८,६०८ टन
अन्य	५,६१,४२६ टन

इन सब का मूल्य अन्दाजन १०,४२,७८,३०० पाउण्ड हुआ।
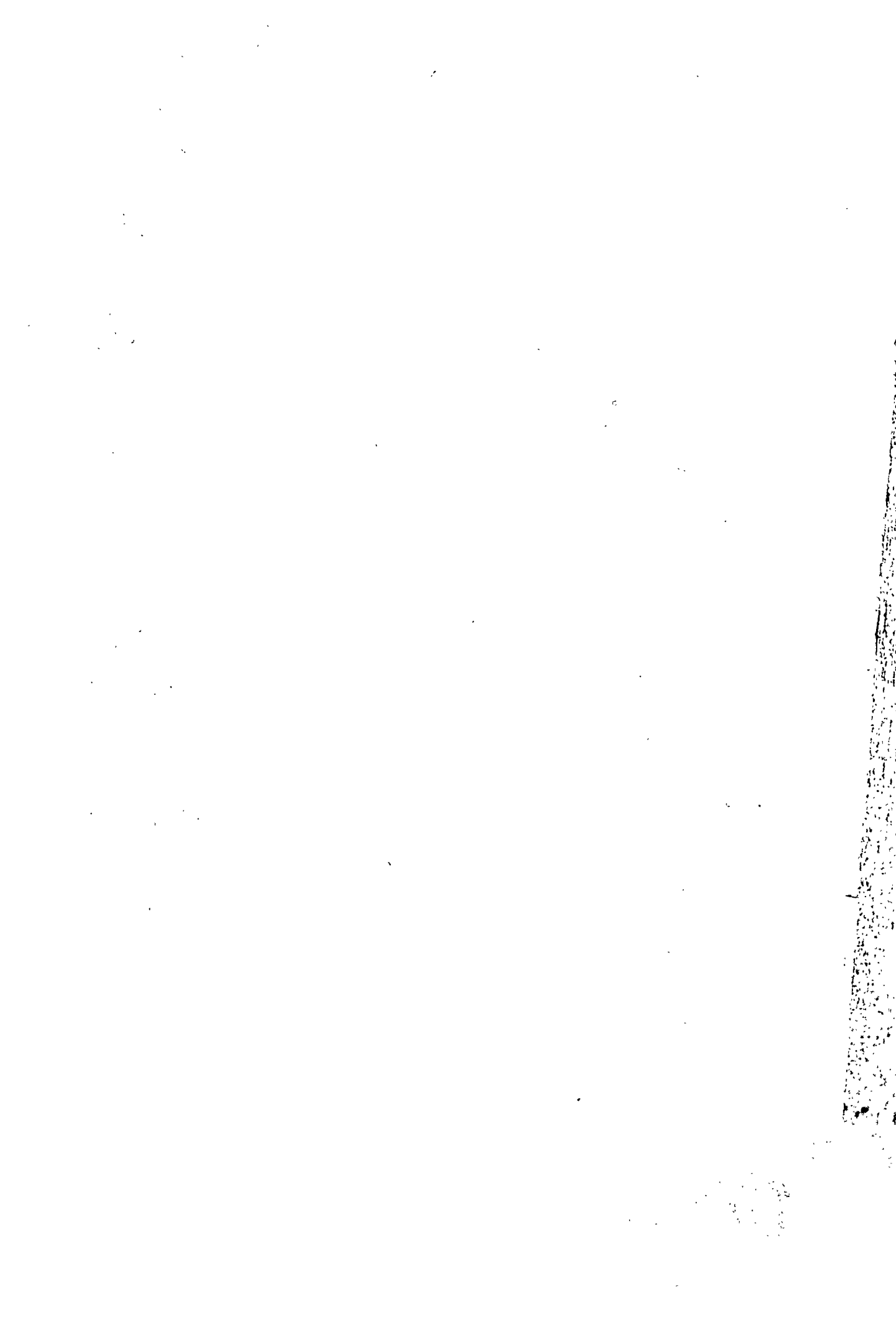
मराठा आतङ्क की छाप

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि बीबी कहै बैन मियाँ कहियत काहिनै।
'भूषण' भनत बूझे आये दरबार ते कम्पत बार-बार क्यों सम्भारत हौ नाहिनै ?
सीनो धकधकत पसीनो आयो अङ्ग सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजू की सङ्क मानि गयो है सुखाय तुम्हें जानियतु दक्खिन को सूबा कर्यो साहिनै।

The Maharathi Press, Delhi.

महारथी

मराठा अंक

पाँचवाँ वर्ष

अक्टूबर १९२९ | विजयादशमी | पूर्ण संख्या ४९

कर्म-पथ

इधर "जी रहे हैं, जी लेंगे" की वाणी निरीह निर्द्वन्द !

उधर सत्य जीवन-अन्वेषण, कठिन कर्म, फिर चिर आनन्द ।

इधर शिशिर की शीत-निशा में सुख से सोने की माया;

उधर जागरण का, जीवन का, आकर्षण बसन्त लाया ।

इधर "नाश हूँ महाकाल हूँ"—कवियों के प्रमाद निस्सार;

उधर शक्ति-सञ्चय में तत्पर व्रत पर दृढ़ नवयुवक उदार ।

वीर विप्लवी कहलाने की इधर मधुर मृदु अभिलाषा;

उधर आत्मबल से बलशाली वीरों की नीरव भाषा ।

इधर बने सिंहासन जिन पर आसन धर कितने उपदेश—

कितनी रीति-नीति की शिक्षा पग पग पर कितने सन्देश—

कितने ओजस्वी शब्दों में देते कितने पुरुष महान !

उधर न इतने आयोजन हैं—केवल कर्म, कर्म ही ज्ञान ।

शत सहस्र वर्षों का बन्धन, अन्धकार का प्रबल प्रवाह—

आह ! न यों निस्तार मिलेगा— पहचानो पहचानो राह ।

—नन्ददुलारे वाजपेयी

महाराष्ट्र के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात
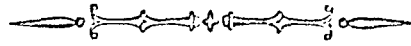
(ईसा के पूर्व काल से मुसलमानों के आक्रमण तक)

संसार के इतिहास में भारतवर्ष की जो विशेषता है, वही भारतवर्ष के अन्तर्गत दक्षिण-महाराष्ट्र प्रान्त की पाई जाती है। भारतवर्ष के तीनों ओर समुद्र और उत्तर की ओर हिमालय पर्वत है, तो दक्षिण के तीनों ओर समुद्र और उत्तर की ओर विन्ध्याचल जैसा दुर्गम पर्वत मौजूद है। उत्तरीय भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त की विशेषता दक्षिण के विभिन्न भूखण्डों में भी विद्यमान है। गङ्गा-यमुना-सरस्वती के बदले कृष्णा-कावेरी-तुङ्गभद्रा जैसी सुजला नदियाँ; आगरा-दिल्ली जैसी पूना-सितारा पुरानी राजधानियाँ; मथुरा-वृन्दावन-काशी जैसे पण्ढरपुर-नाशिक-त्रिम्बकेश्वर आदि तीर्थस्थान हैं। काश्मीर जैसे वन उपवन श्री विभूषित उटकमण्ड; भील मीने जैसी मावले-रामोसी जातियाँ; वन-उपवन-तड़ाग नगर-पर्वत-ग्राम आदि में बहुत कुछ साम्य है। सारी भारतीय सभ्यता का समीकरण रूप महाराष्ट्र देश में पाया जाता है। भारतीय सभ्यता पर आघात पहुँचने के समय उसे दक्षिण में आश्रय मिलने के कारण ही उसकी रक्षा हो सकी थी। शङ्कराचार्य्य, माधवाचार्य्य रामानुजाचार्य आदि महापुरुषों ने अपनी परम्परा अबाधितरूपेण स्थापित करने के लिए दक्षिण को ही पसन्द किया। कारण स्पष्ट है। महाराष्ट्र की प्राकृतिक परस्थिति ही ऐसी है कि विदेशी आक्रमणकारी सरलता से असहाय एवं दुर्गम पर्वतों को लाँघ कर उस प्रान्त में अपना प्रवेश नहीं कर सकते थे; अतएव विदेशियों द्वारा पद-दलित होने वाली भारतीय सभ्यता के लिए दक्षिण ही एक मात्र सुरक्षित एवं निर्भीक स्थान था। दक्षिण की प्राकृतिक परस्थिति ने भारतीय सभ्यता की रक्षा के लिए जो कुछ किया, वह उसके इतिहास से भलीभाँति विदित है। अस्तु—

दक्षिणपथ के इतिहास के विषय में स्वर्गीय-डाक्टर भण्डारकर, इतिहासाचार्य्य राजवाड़े जी आदि मनीषियों ने खूब चर्चा की है। वर्तमान प्रचलित सिद्धान्त के अनुसार वायव्य दिशा की ओर से आर्यों के जो दल भारतवर्ष में आये वे पहले उत्तरीय भारत ही में आकर बसे। दक्षिणपथ का मार्ग निर्गम होने के कारण बहुत समय तक उस ओर आर्यों का प्रयाण नहीं हुआ। अगस्त्य ऋषि जी ने ही सब से पहले दक्षिण में प्रवेश किया था। पाणिनि-कात्यायन-पातञ्जलि के समय तक, अर्थात् ईसा के ७ वीं शताब्दि पूर्व तक, आर्यों को दक्षिण का कुछ भी पता नहीं था। अनन्तर कलिङ्ग, विदर्भ, दण्डकारण्य आदि प्रान्तों में उनका प्रवेश हुआ,

ईसा के ३५० वर्ष के पूर्व समय तक उन्हें तञ्जौर और मदुरा आदि सुदूर दक्षिणी प्रदेशों का पता चलने के प्रमाण पाये जाते हैं। ज्योंही विभिन्न प्रदेशों पर विभिन्न दलों ने अपना अधिकार स्थापित किया, त्योंही अलग अलग गणराज्य महाराष्ट्र में भी स्थापित होगये। विदर्भदेश में भोजवंश का आधिपत्य हुआ, उन्हीं के वंश में दमयन्ती ने जन्म लिया था। अशोक के शिलालेख में उन विभिन्न वंशों का उल्लेख पाया जाता है। अशोक के बुद्ध धर्म के प्रचार के लिए, पैत्तनिक, रास्तिक और अपरान्तिक आदि प्रान्तों में बौद्ध भिक्षुओं को भेजने का भी पता चलता है। गोदावरी नदी के तीर पर प्राचीन प्रतिष्ठान अर्थात् आधुनिक पैठन नगर स्थित है वही भूभाग पैत्तनिक कहलाता था। वर्तमान पूना सोलापुर का मध्यदेश रास्तिक तथा अपरान्त उत्तरी कोकण कहलाता था। अपरान्त की राजधानी शूर्पारक थी, जो बड़ाभारी व्यापारिक केन्द्र था। महावंशो नामक सीलोनी ग्रन्थ में लिखा है कि अशोक ने धर्म रक्षक नामक एक यवन ग्रीक भिक्षु को धर्म प्रचारार्थ अपरान्त में भेजा था। उसने ७० हजार मनुष्यों को अपने व्याख्यान सुनाये। जिससे लगभग दो हजार क्षत्रिय स्त्री पुरुष भिक्षु हो गये। गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्यप्रदेश पर रास्तिकों का राज्य था। रास्तिक राष्ट्रिक शब्द का अपभ्रंश है। विदर्भ तथा पत्तनिक प्रान्त के राजा स्वयं महाभोज कहलाने लगे तो राष्ट्रिक भी महाराष्ट्रिक बन बैठे। महाराष्ट्रिकों का देश ही महाराष्ट्र कहलाया और उसी का प्राकृत अपभ्रंश महारट्ठी-महारट्ठा मरहठा हो गया। कार्ला, भाजे, बेडसा आदि स्थानों की चट्टानों में खुदी हुई गुफाओं के लिए जिन स्त्री पुरुषों ने चन्दा दिया था उनमें महारट्ठा महारट्ठनी जैसे शब्द अङ्कित किये गये हैं। महाराष्ट्र के आर्यों की भाषा और सभ्यता पूर्ववत् ही बनी रही, पर वहाँ के अल्पसंख्यक आदिम निवासी द्रविड़ों की भाषा के आर्यभाषा में मिश्रित होजाने से वह महाराष्ट्रीय भाषा कहलाई। वररुचि के प्राकृत प्रकाश में प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री को प्रमुख और सर्वश्रेष्ठ माना है। महाराष्ट्र के ग्राम, नाम, बनस्पति, जातियों आदि के आधार पर 'महाराष्ट्र का वसाहत काल' नामक एक विस्तीर्ण निबन्ध स्वर्गीय इतिहासाचार्य राजवाड़ेजी ने लिखा है। उससे महाराष्ट्र के पशु, पक्षी, बनस्पति, स्थलचर, नभचर, जलचर आदि के द्वारा महाराष्ट्रीय ग्रामों की उत्पत्ति का पता लगा कर महाराष्ट्र का प्राचीन इतिहास ढूँढ़ निकालने में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। अस्तु—

श्रीयुत चिन्तामणि वैद्य के मतानुसार आर्य क्षत्रियों का जो पहिला झुण्ड महाराष्ट्र में आकर बसा, वह सोमवंशी था, क्योंकि भोज, राष्ट्रिक, मानखेड़ के राष्ट्रकूट और देवगरी के यादव राजा सोमवंशी ही थे। बादामी के चालुक्य सूर्यवंशी थे, पर वे अनन्तर महाराष्ट्र में जाकर बसे थे उन्होंने अपने दान पत्रों में अयोध्या के सूर्यवंशी होना लिखा है। हरिवंश में यदु के नाग कन्या द्वारा उत्पन्न चार पुत्रों के सैह्याद्रि से कुमारी तक चार राज्य स्थापित

करने का उल्लेख पाया जाता है। विदर्भ के भोज राजा भी यदुवंशी ही कहलाते थे इससे वैद्य जी का मत बहुत कुछ प्रामाणिक जान पड़ता है।

प्राचीन राजाओं के इतिहास के विशेष साधन उपलब्ध न होने से हमारे देश का यथार्थ इतिहास प्राप्त नहीं होता है। महाराष्ट्र का प्राचीन इतिहास भी अन्धकार में छिपा पड़ा है। अशोक ने अपने राज्य का विस्तार किया और चक्रवर्त्ती राजा बन बैठा। उस समय भोज, आन्ध्र और राष्ट्रिक राजा उसके माण्डलिक थे। अशोक के स्थापित किये हुए स्तम्भों पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर, राष्ट्रिकों का उल्लेख पाया जाता है। मौर्य्यों के अनन्तर शुङ्ग वंश दक्षिण में नर्मदा नदी तक ही अपना अधिकार स्थापित कर सका था। शुङ्ग के अनन्तर कण्व राजा भी दक्षिण पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सके। वरन दक्षिण के आन्ध्र भृत्यों ने कण्वों पर चढ़ाई करके उनका राज्य नष्ट कर दिया। पुराणों में सालवाहनों को ही आन्ध्र भृत्य लिखा है, वे पहिले आन्ध्र राजाओं के आश्रित थे, किन्तु अनन्तर उन राजाओं से अधिकार छीन कर स्वयं आन्ध्र प्रान्त के राजा बन बैठे। उनकी राजधानी धनकटक थी। उन्होंने पाटलीपुत्र के कण्वों से चक्रवर्त्तित्व छीना था। अतः उस विस्तीर्ण राज्य का सुप्रबन्ध करने के लिए उन्होंने महाराष्ट्र में पैठन को अपनी राजधानी बनाया, अर्थात् धनकटक में तो राजा राज्य करते थे, किन्तु उसका युवराज पैठन में रह कर राज-प्रतिनिधि के रूप में राज्य प्रबन्ध करता था। सालवाहन वंश का पहिला राजा सिमुख ईसा के पूर्व ७३ वीं साल गद्दी पर बैठा। उसके अनन्तर कृष्ण, सातकर्णी तहपाण, वच्छराज, गौतमी पुत्र पुलोमयी, यज्ञश्री सातकर्णी, यज्ञश्री धनकटक, विजयचन्द्रश्री और पुलोमई राजा हुए। इन्हीं के समकालीन शक नामक एक अनार्य जाति ने काठियावाड़, कच्छ और मालव प्रान्त में राज्य स्थापित कर दक्षिण में प्रवेश किया। उन्होंने भारतवर्ष में आकर बौद्ध धर्म स्वीकार किया। सन् ७८ ई० से शक महाराष्ट्र में सत्ताधारी हुए और लगभग ५३ वर्ष तक उनका आधिपत्य रहा। शिलालेखों में पाया जाता है कि गौतमी पुत्र पुलोमायी ने खग राटों का पूर्ण पराभव करके उन्हें दक्षिण से भगा कर पुनः सालवाहन वंश की सत्ता स्थापित की थी; किन्तु शकों का प्रचलित किया हुआ शंवत्-शक-काल अभी तक महाराष्ट्र में व्यवहृत है।

सालवाहनों के समय भारतवर्ष उन्नति के शिखर पर था। उससे ग्रीस, अरब, ईरान आदि दूर-दूर के देशों से वाणिज्य होता था। पश्चिमीय तट पर बड़े बड़े बन्दर स्थापित थे। भडोंच सब से बड़ा बन्दर माना जाता था। शूर्पारक, कल्याण चौल, जयगढ़, विजयन्ती (विजयदुर्ग) आदि बन्दर तथा पैठन, नगर, नासिक जुन्नर, करहट्ट, कोल्हापुर आदि मुख्य शहर थे, जिनका उल्लेख पेरी पलुस के कर्त्ता ने किया है। लोग बड़े सम्पत्तिशाली थे, कार्ला की गुफाओं का मुख्य सभागृह विजय दुर्ग के एक श्रीमान् ने निर्मित किया था, और कान्हेरी की गुफाएँ भी अनेक श्रीमान

व्यौपारियों के दान से बनी थीं। इसीसे हमारे देश की तत्कालीन सम्पत्ति का पता चल सकता है, तत्सम्बन्धी शिलालेखों में दान दाताओं की नामावली में जिन सुदूर प्रान्त के व्यापारियों का नाम पाया जाता है, उससे सिन्ध काश्मीर आदि स्थानों पर उनके आढ़तिया होने का भी पता चलता है। नासिक के शिलालेखों से तो उस समय ग्राम पञ्चायतों तथा औद्योगिक संस्थाओं का होना भी पाया जाता है। उस समय प्रत्येक व्यापार के अलग-अलग सङ्घ थे और उन सङ्घों के द्वारा ही सारा कारोबार किया जाता था, सङ्घ के द्वारा ही ज़रूरतमन्दों को कर्ज़ा दिया जाता था। वाहन राजाओं को विद्या की बड़ी अभिरुचि थी, राजाश्रय ही के कारण उस समय बहुत से संस्कृत और प्राकृत भाषा के ग्रन्थों की रचना हो सकी, पिशाच बृहत् कथा नामक एक ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा गया था, उसी के आधार पर दण्डी ने काव्यादर्श और सोमदेव ने कथासरितसागर लिखे; सर्ववर्मा ने संस्कृत भाषा का व्याकरण तथा हाल कवि की सप्तशती सालवाहनों के ही राज्यकाल में रची गयी। सालवाहन बुद्ध-धर्मावलम्बी थे, इसीसे उनके राज्यकाल में बुद्ध धर्म का बहुत प्रचार हुआ। महाराष्ट्र में यत्र-तत्र जो गुफाएँ पाई जाती हैं, वे विशेषतः बुद्ध भिक्षुओं के वर्षा-काल में रहने को ही बनायी गयी थीं। कोंकण प्रान्त में भी खाड़ियों के निकटस्थ पर्वतों पर गुफाएँ बनायी गयी। दाभोल की खाड़ी के निकट चिपलुन ग्राम में, बाणकोट की खाड़ी के निकट महाड़ में, राजापुर की खाड़ी के निकट कुड़ा स्थान पर, तथा घोड़ बन्दर के निकट कान्हेरी में भी गुफाएँ पाई जाती हैं, सालवाहन राजा ब्राह्मण धर्म के विरोधी नहीं थे। ऊशवदत्त ने अपने खर्चे से चारों दिशाओं के भिक्षुओं के लिए गुफाएँ बनाईं, वहाँ के शिलालेखों में ब्राह्मणों के दानों का भी उल्लेख है। एक दूसरे शिलालेख में गौतमी पुत्र के ब्राह्मणों की वंश-वृद्धि के प्रीत्यर्थ द्रव्य द्वारा सहायता करना पाया जाता है।

सालवाहनों के अनन्तर तीसरी शताब्दि से लगाकर सातवीं शताब्दि तक का इतिहास अज्ञात सा है। उस काल में महाराष्ट्र में छोटे मोटे राजा राज्य करते थे। दक्षिण के उत्तरी भाग में राष्ट्रिकों का आधिपत्य था। ये राष्ट्रकूट दक्षिण के 'राठा' नामक क्षत्रियों में से थे। वे अपने को महाराष्ट्री कहते थे। उनका सालवाहनों के पूर्व महाराष्ट्र पर आधिपत्य था। सालवाहनों के राज्य नष्ट होने पर वे स्वतन्त्र हो गये और राज्य करने लगे। नासिक प्रान्त के उत्तर में और खानदेश में अमीर नामक गड़रिये राजा राज्य करते थे। अजन्ता के शिलालेखों में पैठन में वाकाटक परिव्राजक नामक आर्य क्षत्रियों के राज्य करने का पता चलता है

चालुक्य क्षत्रियों का गोत्र 'मानव्य' था और वे अपने को हारीत वंशज कहते थे। वे अयोध्या से दक्षिण की ओर गये। जयसिंह चालुक्य ने दक्षिण के राष्ट्रकूटों का पराभव करके अपना राज्य स्थापित किया। उसके नाती पुलकेशी ने वातापिपुर (बादामी) में अपनी राजधानी बनाई सत्याश्रय श्रीपुलकेशी वल्लभ महाराज

उसका विरुद था। उसके लड़के कीर्तिवर्मन ने उत्तरीय कोकणके मौर्य्य राजाओं को परास्त किया तथा उत्तरीय कनाड़ा के अन्तर्गत वनवासी के कदम्बों को सन् ५०६ ई० में जीता। कीर्तिवर्मा के भाई मङ्गलेश ने अपना राज्य पूर्व और पश्चिम समुद्र तक बढ़ाया था। उसके अनन्तर उसका भतीजा अर्थात् कीर्तिवर्मा का लड़का पुलकेशी द्वितीय सिंहासन पर वैठा। उसने सौ जहाज लेकर उत्तरीय कोकण के मौर्य्यों की राजधानी पुरी पर चढ़ाई करके उसे हस्तगत कर लिया था। इसी समय कन्नौज के राजा हर्षवर्धन ने सारे उत्तरीय भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करके दक्षिण पर चढ़ाई की थी, पर पुलकेशी ने उसे हटा दिया। उसी समय से पुलकेशी ने 'परमेश्वर' विरुद धारण किया था। अपने राज्य की रक्षा के प्रीत्यर्थ उसने नर्मदा नदी के तट पर वहुत सी फौजरख छोड़ी थी। उसने काँजीवरम तथा कावेरी पार के चोला, पाण्डिया, किर आदि राज्यों पर चढ़ाई करके उनसे सन्धि की। चीनी यात्रियों ने भी लिखा है कि पुलकेशी अत्यन्त बलवान राजा था। उसने पर्शिया के राजा खुसरो द्वितीय के दरबार में अपना एलची भेजा था और राज्य प्रवन्ध के लिए अपने भाइयों को विभिन्न प्रान्तों पर राज्याधिकारी नियत किया था। सितारा और पण्ढरपुर में विष्णुवर्धन और नासिक में जयसिंह की आयोजना की थी। जयसिंह के पुत्र नागवर्मन का एक ताम्रपत्र भी उपलब्ध हुआ है। पुलकेशी के अनन्तर उसका द्वितीय पुत्र विक्रमादित्य गद्दी पर वैठा। विक्रमादित्य के दानपत्रों में पुलकेशी के प्रिय तनय जैसा उल्लेख पाया जाता है। पुलकेशी का ज्येष्ठ पुत्र सावन्त वाड़ी-प्रदेश का अधिकारी था। विक्रमादित्य के राज्य-काल में काँजीवरम के पल्लव राजा तथा चोल, पाण्डेय और केरल राजा स्वतन्त्र वन वैठे, पर युद्ध द्वारा वे पुनः माण्डलीक वनाये गये थे। विक्रमादित्य का भाई जयसिंहवर्म्मन धराश्रय लाट अर्थात् गुजरात का राज्याधिकारी था; जिसने वहाँ पर चालुक्य वंश के एक स्वतन्त्र शाखा की प्रतिष्ठा की। विक्रमादित्य के पुत्र विनयादित्य तथा उसके उत्तराधिकारियों की शक्ति प्रायः पल्लव तथा दक्षिण के अन्यान्य राजाओं से युद्ध करने में ही व्यतीत हुई। इस वंश के अन्तिम राजा कीर्तिवर्मन को सन् ७५३ में दान्ति दुर्ग राष्ट्रकूट ने परास्त करके राष्ट्रकूट वंश की स्थापना की। इस प्रकार लगभग २०० वर्ष तक महाराष्ट्र में चालुक्यों का अधिकार रहा।

सालवाहनों के राज्यकाल में वौद्धों का वड़ा दौरदौरा था; किन्तु चालुक्यवंशीय राजाओं के ब्राह्मण धर्म के अनुयायी होने के कारण प्राचीन वैदिक धर्म का पुनरुज्जीवन हुआ। श्रौत—यज्ञ यागादि का भी खूब प्रचार हुआ। पुलकेशी ने तो अश्वमेध यज्ञ किया था। उसी समय कर्क-स्वामी, देवस्वामी और केशवस्वामी ने यज्ञ-सूत्र पर वड़े वड़े भाष्य लिखे। पुराण मत का भी वड़ा प्रचार हुआ। त्रिमूर्ति के देवालय वनाये जाने लगे तथा पर्वतों की गुफाओं में देवताओं की स्थापना हुई। वदामी की गुफा में मङ्गलेश राजा ने विष्णु की अर्चना की थी। चालुक्य राजाओं की अन्य धर्मों के प्रति भी सहानुभूति

थी। बुद्ध धर्म के कारण अहिंसा का खासा प्रचार हो चुका था; अतएव उस समय दिगम्बर-जैन धर्म का भी खूब प्रचार हुआ। इसीसे उनके द्वारा जैन देवालय के निर्माण तथा जीर्णोद्धार करने में बहुत सहायता मिली।

राष्ट्रकूट

राष्ट्रकूट यदुवंशी थे, समग्र दक्षिण में इनका राज्य होने के कारण इनका देश महाराष्ट्र कहलाया। अशोक के समय वे ही सत्ताधारी थे और सावलाहन भी उन्हें पूर्णतः नष्ट नहीं कर सके थे। इस वंश का पहला राजा गोविन्द था। पर उसके प्रपौत्र दान्तिदुर्ग ने अन्तिम चालुक्य-राजा कक्कल को परास्त करके अपना राज्य स्थापित किया था। इसके पहले वह केरल, चोला, पाण्ड्या तथा पल्लव को भी जीत चुका था। उसने मालवा पर चढ़ाई करके उज्जैन में सोना और जवाहिरात का बड़ा दान धर्म किया था। इसी वंश के तीसरे गोविन्द राजा ने एक साथ बारह राजाओं को परास्त किया था। इसके पिता ने चेरप्रान्त (मलाबार) के राजा गङ्ग को बन्दीगृह में डाला था। किन्तु गोविन्दने उसे छोड़ दिया, गङ्ग ने फिर से गोविन्द पर चढ़ाई की थी पर इस बार उसे मुँह की खानी पड़ी। इस प्रकार गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा, विन्ध्याचल, काँची के पल्लवराजा ने कृष्णा और गोदावरी के अन्तर्गत वेंगी प्रदेश पर भी अपना अधिकार जमा लिया। वेंगी का चालुक्य राजा उनका माण्डलिक भी बना। यह चढ़ाइयाँ सन् ८०४ ई० में हुईं। ठेठ मालवा से दक्षिण में काँजी तक उसका आधिपत्य था और यहाँ के राजा उसे ख़िराज़ देते थे। ताप्ती और माही नदियों के बीच के लाट प्रदेशों पर उसने अपने भाई इन्द्र को राज्याधिकारी बनाया था तभी से राष्ट्रकूटों का गुजरात पर अधिकार हुआ। गोविन्द के अनन्तर अमोघवर्ष प्रथम गद्दी पर बैठा, उसने दिगम्बर जैन की दीक्षा ली थी और मान्यखेट (मालखेड निजाम) को अपनी राजधानी बनाई थी। इस वंश के अन्तिम राजा कक्कल का तैलप नामक चालुक्य ने पराभव किया। इस प्रकार सन् ९७३ ई० से राष्ट्रकूटों का अधिकार जाता रहा।

राष्ट्रकूट राजा बड़े उदार, बलवान और विद्याभिलाषी थे। उन्होंने शिव और विष्णु के भव्य मन्दिर बनाये और ब्राह्मण धर्म का खूब उत्थान किया। समग्र संसार में शिल्प का यदि कोई अनूठा स्मारक है तो वह केवल यलोरा (वेरुल) का कैलास है। उसे राष्ट्रकूट राजाओं ने ही बनाया था। इसीसे उनकी शक्ति और सम्पत्ति का पता चल सकता है। दिगम्बर जैन धर्म को राजाश्रय भी खूब मिला, यहाँ तक कि प्रथम अमोघवर्ष तो जैन धर्मानुयायी ही हो गया था, विद्या प्रचार में भी उसने खूब सहायता दी। इसीसे उसके दान पत्रों के द्वारा उसके वंश, कीर्त्ति, गुण, देश-विस्तार आदि की गाथा अमर हो गयी है। दसवीं शताब्दी के विदेशीय अरब प्रवासियों ने भी उसका गुणगान किया है।

चालुक्य

उत्तरार्ध काल

चालुक्य वंश की दूसरी शाखा के पहले तलप राजा ने अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कक्कल

को परास्त किया और चोला राजा पर चढ़ाई करके चेदी राजा को अपना माण्डलिक बनाया। उसने वारप नामक अपने सेनापति के साथ बहुत सी सेना भेज कर गुजरात के अनहिल-पट्टन के चालुक्य राजा मूलराज पर भी चढ़ाई की थी। परन्तु वहाँ उसे सफलता नहीं मिली, कीर्त्ति कौमुदी में वारप को लाठ प्रदेश का सरदार लिखा है, इससे जाना जाता है कि सम्भवतः तैलप के पास लाठ प्रदेश था, तैलप ने मालवा पर चढ़ाई कर मुञ्ज का पराभव कर कैद कर लिया था पर उसके भाग निकलने का पता चलते ही उसकी दुर्दशा करके शिरच्छेद किया गया था। तैलप ने सन् ९९७ ई० तक राज्य किया। उसके अनन्तर के राजाओं में सोमेश्वर प्रथम और विक्रमादित्य द्वितीय बड़े पराक्रमी हुए। सोमेश्वर सन् १०४० ई० में गद्दी पर बैठा और उसने भोज पर चढ़ाई करके उसका पराभव किया। भोज अपनी राजधानी धारा-नगरी को छोड़ कर भाग गया था। सोमेश्वर के समय पहिला भीमदेव राजा गुजरात में राज्य करता था। उसने चोला राजा को भी पराभूत किया था। सोमेश्वर ने कल्याण (निजाम राज्य) में अपनी राजधानी स्थापित की। सन् १०६९ ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र दूसरा सोमेश्वर बड़ा जुल्मी था। उसने वेंगी के राजा की सहायता से अपने भाई विक्रमादित्य पर चढ़ाई की थी पर उसका पराजय होगया और विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। उसने ५० वर्ष तक राज्य किया। उसने करहाड़ के शिलाहार की कन्या चन्द्रलेखा से विवाह किया और गद्दी पर बैठने के पूर्व चोला राजकन्या से भी उसका विवाह हुआ था। वह बड़ा शूर, न्यायी और प्रजापालक था। विद्याभिरुचि अधिक होने के कारण काश्मीरी पण्डित विल्हण को उसने आश्रय दिया था, उसने विष्णु का एक प्रचण्ड मन्दिर और देवालय के सम्मुख एक विस्तीर्ण तालाब बनाया था। सन् ११२७ ई० में सोमेश्वर तीसरा गद्दी पर बैठा। वह बड़ा विद्वान था इसी से उसे 'सर्वज्ञ भूप' विरुद प्राप्त हुआ था। सोमेश्वर तृ० रचित मानसोल्लास अथवा अभिलषितार्थ चिन्तामणि पाया जाता है, जिसमें हिन्दी कविता भी लिखी है। उसके अनन्तर उसका प्रथम पुत्र जगदेवमल्ल और फिर द्वितीय पुत्र तैलप द्वितीय गद्दी पर बैठा। किन्तु उनके समय चालुक्यों का पतन ही होता गया। तैलप के दण्डनायक अर्थात् सेनापति विजन ने उसको धर दबाया, जिससे तैलप कल्याण से भाग गया। सन् ११६३ ई० में उस चेदि के कलचुरीय वंशीय विजन ने अपने वंश की प्रतिष्ठा की।

कलचुरी

विजन को आरम्भ में लिंगायतों के धार्मिक द्रोह से बराबरी करनी पड़ी थी। विजन का बसव नामक एक प्रधान था, जिसने लिंगायत धर्म की प्रस्थापना की थी। उसने सारा राज-कोष धर्म प्रचार एवं जोगियों के खिलाने में खर्च कर दिया। जिससे शीघ्र ही उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ गयी। कल्याण में हल्लेयग और मधुयेय नामक दो लिंगायती धर्म-गुरु थे, राजाज्ञा से उनकी आँखें निकलवाई गयी थीं, इसी से विद्रोह फैल गया। उसी विद्रोह में सन् ११६७

में विजन मारा गया। उसके अनन्तर उसका पुत्र सोम और फिर दूसरा पुत्र सङ्गम गद्दी पर बैठा। परन्तु शीघ्र ही सन् ११७७ से यादव वंश की प्रतिष्ठा महाराष्ट्र में हो गयी। अनन्तर के चालुक्य और कलचुरी के समय में बुद्ध धर्म का पूर्ण लोप हो चुका था और कलचुरी के समय लिंगायत पंथ का अभ्युदय होने के कारण जैन धर्म भी निर्बल हो गया। पौराण धर्म की अवश्य ही वृद्धि हुई। धर्म-शास्त्र पर टीकाबद्ध ग्रन्थ लिखे गये। अपरार्क ने याज्ञवल्क स्मृति पर एक ग्रन्थ लिखा, जो उत्तरीय कोकण के शिलाहार वंश का एक राजा था और सन् ११२७ में राज्य करता था।

देवगिरि के यादव

यादव राजा मथुरा में राज्य करते थे, किन्तु अनन्तर द्वारावती अर्थात् द्वारका यादवों की राजधानी बनी। सुबाहु नामक यादव राजा ने अपने चार पुत्रों में राज्य विभाजित कर दिया। जिस से उसके पुत्र दृढ़ प्रहार को दक्षिण का राज्य मिला। जिसकी राजधानी चन्द्रादित्यपुर (चाँदोर-नासिक) थी। उसका पुत्र सेऊणचन्द्र दण्डकारण्य के सीमाप्रान्त देवगिरि तथा नासिक के मध्यस्थ सेउण देश अर्थात आधुनिक खानदेश पर राज्य करता था। इन यादवों ने राष्ट्रकूट तथा चालुक्यों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। भिल्लम द्वितीय ने तैलप चालुक्य को मुञ्ज की चढ़ाई में सहायता दी थी। उसका विवाह थाने के शिलाहार राजा झंझा की पुत्री लक्ष्मी से हुआ था। उसके प्रपौत्र तृतीय भिल्लम का विवाह चालुक्य आहवमल्ल की भगिनी के साथ हुआ था। सेऊणचन्द्र द्वितीय ने विक्रमादित्य द्वितीय को कल्याण का राजसिंहासन हस्तगत करने में सहायता दी थी। चालुक्यों के साथ तो यादवों का मित्र भाव था; किन्तु ज्योंही कलचुरी ने कल्याण जीत लिया, त्योंही वे स्वतन्त्र बन बैठे और जब चतुर्थ-सोमेश्वर चालुक्य ने कल्याण जीतने का प्रयत्न किया तब यादव राजा पञ्चम भिल्लम ने उसका विरोध भी किया था। सोमेश्वर के बोमा नामक सरदार को मैसूर के होयेसाल-यादव वीर बल्लाल ने पराजित किया। तब उत्तर का भिल्लम यादव कृष्णा नदी के उत्तर के सारे प्रदेश को आधीन कर बैठा और उसने देवगिरि को अपनी राजधानी बनाई।

भिल्लम ने सन् ११८७ से ११९१ तक राज्य किया, उसने अपना राज्य कृष्णा पार भी बढ़ाने का उद्योग किया, किन्तु दक्षिण के राजा वीर-बल्लाल ने उसे पराजित किया। उसके पुत्र जैतृपाल ने आन्ध्र प्रदेश पर चढ़ाई करके वहाँ के राजा गणपति को क़ैद से छुड़ा कर गद्दी पर बैठाया। जैतृपाल के पुत्र सिहांना ने उत्तर की ओर अपना राज्य बढ़ाया और मालवा के राजा भोज को भी क़ैद कर लिया। उक्त समय परनाला (कोल्हापुर) में शिलाहार राजा राज्य करते थे। उनको भगा कर उसने वह प्रान्त हस्तगत कर लिया, लाठ अर्थात् गुजरात प्रदेश पर चढ़ाई करके राजा लवणप्रसाद से सुलह की और राट्टा नामक मराठा क्षत्रिय राजाओं का नाश किया। उत्तर कनाड़ा के कदम्ब, आग्नेय के पाण्ड्य तथा दक्षिण के होएसाल पर आधिपत्य स्थापित

करके उस पराक्रमी यादव राजा सिंहण ने 'पृथ्वीवल्लभ' विरुद धारण किया। यह यादवों में बड़ा पराक्रमी हुआ, सिंहण के पुत्र कृष्ण ने मालवा कोकण तथा गुजरात पर चढ़ाई की थी, चोलाओं के प्रदेश पर भी उसका राज्य हो गया था और गुजरात के वीसलदेव को भी परास्त किया था. इसने बहुत से यज्ञ आदि करके वैदिक स्रोत धर्म को बड़ा उत्तेजन दिया। कृष्ण के भाई महादेव ने भी वीसलदेव पर विजय प्राप्त की थी, उसने हाथियों का बड़ा दल लेकर कोकण के राजा सोंग शिलाहार पर जो स्वतन्त्र बन बैठा था, चढ़ाई की और अपनी जल सेना के बल पर उसका पराभव किया, तथा कोकण को भी अपना प्रान्त बना कर वहाँ पर एक ब्राह्मण राज्याधिकारी को स्थापित किया।

रामचन्द्रराव ही इस वंश का अन्तिम राजा था। अलाउद्दीन खिलजी ने उसको परास्त करके दक्षिण में मुसलमानी राज्य स्थापित किया, जिसका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक एवं रोमाञ्चकारी है। रामचन्द्रराव के समय यादव राज्य उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चुका था। वह बड़ा विद्वान् गुणग्राही और सद्गुणसम्पन्न था, प्रसिद्ध धर्मशास्त्र विशारद बनस्पति शास्त्रज्ञ एवं मोडी लिपि के आविष्कारक पन्त हेमाद्रि उनके दीवान थे तथा ज्योतिषाचार्य भास्कराचार्य पण्डित प्रवर विद्याधर तथा लक्ष्मीधर, वोपदेव सन्त कवि ज्ञानेश्वर आदि उन्हीं के आश्रित थे। रामचन्द्र उर्फ़ महादेव राव बड़ा प्रजा-प्रेमी और कर्त्तव्य दक्ष था, वह अपने राज्य की सीमा पर बलवती फौज सदा तैयार रखता था। पर विदेशी यवनों की क्रूर दृष्टि अन्त में उसके राज्य की ओर आकर्षित हो ही गई। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापतित्व में अफ़गान फ़ौज चढ़ आई, उस समय रामदेव का बड़ा पुत्र शङ्करदेव अपनी माता सहित तीर्थयात्रा को गया था, द्वितीय पुत्र भीमदेव कोकण का सूबेदार था, तो भी बड़े साहस के साथ उसने चार हज़ार फ़ौज को साथ लेकर राजधानी से चार माल की दूरी पर उसका मुक़ाबिला किया। परन्तु रामदेव को हार हुई और वह किले में प्रविष्ट हो गया। अलाउद्दीन ने भी उसका पीछा किया, उस समय उसके पास सिर्फ़ आठ हज़ार फ़ौज थी। उस समय उसने यह गप्प फैला दी कि अलाउद्दीन बादशाह बीस हज़ार कटक सहित आ रहा है। यह ख़बर पाते ही राजा के माण्डलिक तथा ज़मीन्दार उसके सहायक न होकर अपनी रक्षा करने की चिन्ता में लगे रहे। उस निराशाजनक स्थिति को देख कर उसने पचास मन सोना तथा बहुत से मोती और जवाहिरात दे कर अलाउद्दीन से सुलह कर ली। यादव राजा पीछे से अफ़गान सेना पर चढ़ाई न कर दें, इस डर से अलाउद्दीन ने अपने सेनापति मलिक नज़रत के साथ एक हज़ार फौज़ देकर उसे देवगिरि में ही रख छोड़ा। शङ्करदेव को तीर्थाटन में ही ख़बर लगी और वह असंख्य सेना इकट्ठी करके देवगिरि के पास आ डटा और अलाउद्दीन से बड़ी भीषण लड़ाई लड़ी। अफ़गानियों के पैर उखड़ने ही को थे कि इतने में मियाँ नज़रत की फ़ौज सहायता के लिए आ पहुँची। उसे देखते ही धूर्त अलाउद्दीन ने अपनी सेना में ख़बर पहुँचा दी कि दिल्ली से सहायता के लिए फ़ौज आ पहुँची है। मराठी सेना लड़ते-लड़ते थक गयी थी, एकाएक ताज़े-दम की फ़ौज देख कर वह हतोत्साह हो गयी, और नज़रत की अल्प सेना का परिज्ञान न होने के कारण वह भाग खड़ी हुई। फिर से देवगिरि पर घेरा डाला गया। रामचन्द्र राव को विश्वास था कि क़िले में काफ़ी रसद मौजूद है, पर अनन्तर ज्ञात हुआ कि जो बोरे वहाँ पर भरे हुये रक्खे थे वे अनाज के नहीं थे, कोकण से आये

हुए नमक के थे। उधर दक्षिण तथा कोकण से उसे सैनिक सहायता मिलने की आशा थी। पर चारों ओर से निराशा देख कर उसने पुनः सुलह करने की ठानी। अलाउद्दीन धूर्त था। उसे ज्ञात हो चुका था कि अब रसद का अभाव हो गया है; तथा सैनिक सहायता मिलनी भी कठिन है। इसलिए उसने मन चाही शर्तें लिख भेजीं, तदनुसार एलिचपुर तथा उसके आस-पास का प्रदेश, छः सौ मन सोना, दो मन जवाहिरात, एक हज़ार मन चाँदी तथा चार हज़ार मन रेशमी कपड़ा यादव राजा ने उसे दिया। उस सम्पत्ति को लेकर अलाउद्दीन बङ्गाल की ओर गया और कुछ दिनों के बाद अपने चचा जलालुद्दीन का विश्वासघात से ख़ून करके दिल्ली के तख़्त पर सन् १२६५ ई० में बैठ गया।

सन् १२६६में अलाउद्दीन के भाई अलफख़ाँ ने गुजरात के अनहिलवाड़ा पाटन के राजा करणघेला पर चढ़ाई करके गुजरात जीत लिया और राजपत्नी कमलदेवी को पकड़ कर दिल्ली भेज दिया। तब करणघेला अपनी कन्या देवल देवी सहित यादव राजा के आश्रय में बावलान के किले में रहने लगा।

अलाउद्दीन की चढ़ाई के कारण प्रजा अत्यन्त दुखित हुई, तब यादव राजा उनके लिए सुखोपभोग की सामग्री जुटाने लगा, पर अलाउद्दीन को तो दक्षिण की अपार सम्पत्ति की चाट लगी हुई थी, उसने एक लाख सेना मलिक काफूर के साथ देकर सन् १३०७ ई० में दक्षिण की ओर चढ़ाई के लिए भेजा। और अपने भाई गुजरात के सूबेदार अलफख़ाँ को भी उसकी सहायता के लिए हुक्म भेजा। कमलदेवी अत्यन्त सुन्दरी होने के कारण अलाउद्दीन की पटरानी बन बैठी थी, उसने बादशाह से आग्रह किया कि मेरी कन्या देवल देवी भी लाई जाय। अतः दक्षिण की चढ़ाई में यह उद्देश भी पूरा होना आवश्यक था। रामदेव से वार्षिक ख़िराज यथासमय वसूल नहीं हो पाया था, तथा करणघेला को यादवों ने आश्रय दिया था, अतः करणघेला की ओर सन्देश भेजा गया कि देवल देवी को हमारे पास भेज दो। पर करणघेला को यह बात अपमानजनक प्रतीत हुई। रामदेव राजा ने अपने पुत्र के साथ देवल देवी की मँगनी की थी, परन्तु सूर्यवंशी करणघेला सोमवंशी यादव राजाओं से श्रेष्ठ थे। इसी से वह सम्बन्ध नहीं हो सका था। अफ़गानों की चढ़ाई होते ही शङ्करदेव ने अपने भाई भीमदेव के हाथ करणघेला की ओर यह सन्देशा भेजा कि देवल देवी ही के कारण यह चढ़ाई हुई है, अतः यदि तुम मेरे साथ उसकी शादी कर दोगे तो अफ़गान वापिस चले जायँगे। करणघेला भी राज़ी हो गया। इतने में अलफख़ाँ ने करण पर चढ़ाई कर दी और करण वहाँ से देवगिरि की ओर भाग निकला, तथा भीमदेव के साथ देवल देवी को भेज दिया। वे एलोरा के मार्ग से जा रहे थे, कुछ अफ़गान एलोरा की गुफाएँ देखने में व्यस्त थे, इतने में एकाएक उन्हें उनकी भीमदेव के साथियों से मुठभेड़ हो गई। दोनों में युद्ध हुआ, देवल देवी के घोड़े के गोली लगने से वह आगे न बढ़ सकी। उसकी दासियाँ देवल देवी-सम्बोधन कर के चिल्लाईं। शीघ्र ही अफ़गानों ने उसे बन्दी कर लिया, और अलफख़ाँ उसे दिल्ली ले गया। वहाँ उसके सौन्दर्य पर बादशाह का लड़का ख़िजरख़ाँ मोहित हो गया और उसने उसके साथ विवाह भी कर लिया। करणघेला को अपनी कन्या के एकाएक बन्दी होने का समाचार मालूम होते ही वह पागल हो गया और अन्त में बागलान के पहाड़ों पर घूमते घूमते उसकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि पतिव्रता स्त्री का सतीत्व भङ्ग करने के कारण उसने उसे श्राप दिया था, इसीसे करण को

राज्य-भ्रष्ट होने के साथ ही अपनी पत्नी और कन्या से भी विमुख होना पड़ा था—

मलिक काफ़िर की फ़ौज देख कर रामदेव ने वार्षिक खिराज़ अदा कर दिया। फौज-खर्च के लिए बहुत सा द्रव्य लेकर रामदेव राव सहित मलिक काफ़िर दिल्ली पहुँचा। बादशाह ने यादव राजा का बड़ा सम्मान किया तथा 'राय राया' विरुद देकर नवसारी प्रान्त (सन् १३०८ में) उसको भेंट किया। आन्ध्र प्रदेश के काकतेय राजा बड़े सम्पत्तिशाली थे। अतः उन पर की जाने वाली चढ़ाई में सहायता करने के उद्देश से ही यादव राजा की इतनी आव-भगत की गयी थी। तदनुसार सन् १३०६ में काफ़ूर ने आन्ध्र प्रान्त के काकतेय राजा की राजधानी वारङ्गल पर चढ़ाई कर दी और उसे परास्त किया। सन् १३१० ई० में मलिक काफ़ूर ने मैसूर के होयसाल राजाओं पर चढ़ाई कर दी, उसी वर्ष रामदेव राजा की मृत्यु होने के कारण शङ्करदेव गद्दी पर बैठा था, उसने काफ़ूर को बिलकुल सहायता नहीं दी। मैसूर वाले राजा भाग गये और मलिक को वहाँ पर बहुत सम्पत्ति मिली। तदनन्तर चोरल पाण्डया केरल, पल्लव आदि राजाओं को नष्ट करके वह रामेश्वर तक पहुँचा और वहाँ पर एक मसजिद बनाई। वापिस लौटते समय देवगिरि पहुँच कर उसने शङ्करदेव को मार डाला, तथा सन् १३१२ ई० में यादवों का राज्य दिल्ली में शामिल कर के देवगिरि का नाम दौलताबाद रक्खा। सन् १३१८ में रामदेव के दामाद हरपाल देव कुछ प्रदेश जीत कर स्वतन्त्र बन बैठा था। किन्तु बादशाह मुबारिक को यह संवाद मालूम होते ही वह दक्षिण पर चढ़ आया और उसने हरपालदेव का सिर काट कर दौलताबाद के दरवाज़े पर टाँग दिया और मराठों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए असंख्य आदमियों का वध भी किया। उसी समय से दौलताबाद मुसलमानों का फ़ौजी थाना कायम किया गया।

कोकन में कुछ समय तक मराठों की सत्ता कायम रही, देवलदेवी के युद्ध में भीमदेव कोकण की ओर भाग गया। और उसने थाने को अपनी राजधानी बनाया। उसने कोकण के छोटे छोटे राजाओं को अपने अधीन कर के सन् १४२६ तक अपना राज्य स्थिर रक्खा तदनन्तर समग्र महाराष्ट्र में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया। *

—भा० रा० भा०

---

*सन्दर्भ-ग्रन्थ—जिन सज्जनों को इस विषय की अधिक जानकारी की आवश्यकता हो, वे निम्नाङ्कित ग्रन्थ देखें-

१—डा० सर रा० गो० भाण्डारकर-अर्ली हिस्ट्री ऑफ दी डेकन. (अंग्रेजी)

२—दक्षिणांचा प्राचीन इतिहास-ब्रापट।

३—इतिहास ऐतिहासिक-महाराष्ट्राचा बसाहत काल-राजवाडे।

४—महाराष्ट्र-माध्यन्दिन अर्थात् विविध लेख संग्रह, मुम्बई शाके १८४२।

५—राधामाधव विलास चम्पू, माहिमिची बखर, दलवी कृत मराठा कुलांचा इतिहास प्रथम भाग, करकरे कृत महाराष्ट्राचा इतिहास, प्रथम भाग आदि।

विजयनगर साम्राज्य की अपूर्व कार्यवाही

भारतवर्ष के इतिहास में छत्रपति शिवाजी तथा महाराणा प्रताप का जो महत्व है, उससे भी कहीं अधिक महत्व विजयनगर साम्राज्य का है। कहा जाता है कि देश की परतन्त्र अवस्था में वहाँ के निवासियों के मस्तिष्क को भी पतित बनाये जाने के सभी साधन जुटाये जाते हैं और कौन कहता है कि हमारे भारतवर्ष की वैसी वर्तमान स्थिति नहीं है। प्रातःस्मरणीय राष्ट्रपुरुष छत्रपति शिवाजी को चोर, लुटेरा, डाकू कहने वाले विवेकशून्य इतिहास-लेखकों का असली उद्देश क्या हो सकता है। यही न कि हम अपने पूर्वजों के गुणों पर इतराने की चेष्टा न करें। ठीक यही दशा विजयनगर साम्राज्य के इतिहास की है। हम केवल इतिहास में इतना उल्लेख पाते हैं कि सन् १५६५ में दक्षिण के मुसलमान बादशाहों ने एकत्र होकर तालीकोट का युद्ध किया और विजयनगर का नाश हुआ। पर उस विजयनगर साम्राज्य ने कौनसा महत्वपूर्ण तथा स्थायी कार्य किया, इस बात की कहीं चर्चा तक नहीं दिखाई देती। यहाँ तक कि उसके इतिहास लेखकों में भी उस साम्राज्य के गुण गरिमा के स्थायित्व के विषय में मत-भेद है। प्रसिद्ध उदारचेता अंग्रेज़ मि० सीवेल साहब ने विजयनगर के इतिहास-ग्रन्थ का नाम लिखा है, 'एक विस्मृत साम्राज्य' (forgotten Empire) तो श्रीयुत सूर्यनारायण राव जी ने अपने ग्रन्थ का नाम 'कभी भुलाया न जाने वाला साम्राज्य' (Never to be forgotten Empire) लिखा है। तिस पर भी हमारे देश में विजयनगर साम्राज्य के महत्व के विषय में अधिक उदासीनता है। अतएव यहाँ पर तत्सम्बन्धी संक्षिप्त विवेचन ही लिखा जाता है। मुसलमानों ने अपनी सभ्यता का प्रचार करने के उद्देश से अनेक देश तथा जातियों को नष्ट भ्रष्ट किया। गजनी गोरी के हमलों से परास्त होकर अन्त में भारतवर्ष को भी पृथ्वीराज चौहान के द्वारा मुसलमानों की शरण में जाना पड़ा। उसके अनन्तर सौ वर्ष तक यवनों ने अपने धर्म-प्रचार के प्रीत्यर्थ खूब अत्याचार किये। राजपूतों ने स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के लिए आत्म-समर्पण भी किया पर उसका कुछ परिणाम न हुआ और हिन्दू जाति सदा के लिए दीन और हतबल हो गयी। वास्तव में उत्तर भारत के अत्याचारों से दक्षिण के राजाओं को कुछ पाठ पढ़ना चाहिये था। उनका सामना करने की उनमें शक्ति भी थी, पर वे अपने ही ऐश्वर्य में मस्त रहकर अकर्मण्य बन गये और उनकी इस अकर्मण्यता का परिणाम समग्र दक्षिण भारत को भोगना पड़ा। पहले ही हमले में अलतमश देवगिरि के यादव

राजाओं को परास्त करके तिलङ्गाना, चोला और पाण्डिया को हस्तगत करते हुए ठेठ रामेश्वर तक पहुँच गया। इस प्रकार सन् १२९२ से १३०५ तक यवनों ने समस्त दक्षिण प्रदेश को अपने पैरों तले रौंद डाला। इस प्रकार १४ वीं शताब्दि के आरम्भ में हिमालय से लगा कर कन्याकुमारी तक तथा द्वारिका से जगन्नाथपुरी तक भारत के यवनमय हो जाने से भारतीय सभ्यता, भारतीय तत्वज्ञान आदि का दिन-दहाड़े मटियामेट होने लगा। सहस्रों मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट किये गये; धर्म-ग्रन्थ जलाये गये। स्त्रियों का पातिव्रत धर्म नष्ट किया गया, और हिन्दुओं का जीवन सङ्कट में पड़ गया। सन् १३१३ में देवगिरि के अन्तिम हिन्दू सम्राट हरपालदेव का अमानुषिक वध किया जाने पर तो हिन्दू धर्म अत्यन्त सङ्कट में फँस गया। उस समय हिन्दुओं के राजसिंहासन टूट चुके थे, हिन्दू ध्वजा फट चुकी थीं तथा हिन्दुओं की तलवारें भी विदेशी आघात सहते सहते टूट चुकी थीं। ऐसे ही सङ्कट के अवसर पर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सङ्गठित रूप से स्थायी प्रयत्न होना आवश्यक था। जनता ऐश्वर्य की नींद से चौंक उठी और समाज के नेता प्राण-सङ्कट से मुकाबिला करने का यत्न सोचने लगे। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना का उद्देश उसी उद्योग का अभिनन्दनीय फल था, यदि उस समय वह प्रयत्न न किया जाता तो सम्भवतः ईरान प्रदेश के पारसियों की तरह हिन्दुस्थान भी मुसलमान मय बन जाता। घोरतम सङ्कटावस्था में ही सुख प्राप्ति के मार्ग ढूँढ़ निकालने की इच्छा होती है। तदनुसार हिन्दू जाति भी उस सङ्कट की कसौटी पर कस गयी। तुङ्गभद्रा नदी के तट पर निविड़ वन में एक तपस्वी ब्राह्मण की दिव्य-दृष्टि को एक हिन्दू साम्राज्य का मधुर स्वप्न परतन्त्रता की अँधेरी रात में दिखाई दिया। उसने हिन्दुओं के अपमान का प्रतिकार करने का निश्चय किया। भगवान् रामचन्द्र के पद रज से पुनीत सरोवर के तट पर हिन्दुओं को स्वतन्त्रता के पवित्र शब्द सुनाई दिये तथा स्वतन्त्रता देवी को प्रसन्न करने के उद्देश से सङ्गठन का कार्य आरम्भ हुआ। धर्माचार्य तथा शास्त्राभ्यास में निमग्न श्री माधवाचार्य विद्यारण्य महोदय यवनों के आसुरी अत्याचारों से कुपित हो उठे थे। अतएव धर्मरक्षा के लिए क्षात्रवृत्ति का स्वीकार ही आवश्यक होता है इस बात का निश्चय करके वे स्वतन्त्रता की रक्षा के उपदेशक बने। भगवान रामचन्द्र जी के गुरु वशिष्ठ, चन्द्रगुप्त के चाणक्य तथा छत्रपति शिवाजी के गुरु रामदास जी की तरह श्री माधवाचार्य जी ने विजयनगर के वीर हक बुक बन्धुओं को स्वतन्त्रता और स्वदेशप्रेम का दिव्य उपदेशामृत पिलाया। सन् १३३५ ई० में उस जगद्विख्यात विजयनगर की प्रतिष्ठा करके यवनों की आसुरी सत्ता को चुनौती दी गयी और लगभग अर्ध-शताब्दि तक उन दोनों हिन्दू वीरों ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए अत्यन्त परिश्रम किया। चारों ओर फैले हुए यवनों के टिड्डी दल को उन्होंने मार भगाया और हिन्दू सभ्यता को हिन्दू ध्वजा के आश्रय में लगभग २५० वर्ष तक

जीवित रक्खा। हक्कराय ने अपने जीवन काल में ही विजयनगर साम्राज्य की भित्ति दृढ़ की तथा उसकी सीमा रामेश्वर तक भी फैलाई। एक ओर उत्तरीय भारत में मुसलमानों के पाशविक अत्याचार हो रहे थे तो दूसरी ओर दक्षिण में तुङ्गभद्रा नदी के तट पर वेद घोष एवं याग यज्ञादिक निर्भीकरूपेण हो रहे थे। किसी भी मुसलमान की तलवार में उन पर वार करने की शक्ति नहीं रही थी। हक्कराय के अनन्तर भी विजयनगर के सिंहासन पर एक से एक बढ़ कर महाराजा आसीन हुए, और उन्होंने दक्षिण के यवन बाहमनी राज्य में त्राहि त्राहि मचा दी। तत्पश्चात् जब बाहमनी राज्य के पाँच टुकड़े हो गये, उन पाँचों राज्यों ने जब कभी हिन्दुत्व के अपमान के लिए तलवार उठाई तभी विजयनगर की विजयी तलवार उनको परास्त करने के लिए आगे बढ़ी। महाप्रतापी दूसरे कृष्णराय के राज्यकाल में तो विजयनगर का वैभव-मध्याह्न काल के भास्कर की नाईं तप रहा था। उड़ीसा से रामेश्वर तक विजयनगर का ही साम्राज्य फैला हुआ था। उस समय समग्र संसार में विजयनगर सरीखी सम्पन्न कोई राजधानी नहीं थी। इस बात के साक्षी स्वरूप तत्कालीन फ्रेञ्च प्रवासियों तथा व्यापारियों के लेख मौजूद हैं। यवनों के अत्याचारों से पीड़ित समग्र भारतवर्ष के विद्वान, पण्डित, कवि, शास्त्रज्ञ, लेखक तथा कलानिपुण लोग विजयनगर के आश्रय में जाकर बसते थे, प्रत्युत हिन्दुत्व की रक्षा के लिए विजयनगर एक दुर्गम दुर्ग की नाईं था। जिस प्रकार कंस के अत्याचारों से पीड़ित ब्रज का भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धार किया, उसी प्रकार तत्कालीन सङ्कटमय परिस्थिति में विजयनगर ने ही हिन्दुत्व की रक्षा की। इससे भी अधिक विजयनगर साम्राज्य का महत्व है। छत्रपति शिवाजी का उदय तथा विजयनगर साम्राज्य के पतन में बहुत ही कम अन्तर था। यादव साम्राज्य के नष्ट हो जाने पर जिस प्रकार विजयनगर साम्राज्य ने हिन्दुत्व की रक्षा की ठीक उसी प्रकार विजयनगर के अनन्तर शिवाजी ने हिन्दुत्व को अपनाया। शिवाजी को स्वधर्म रक्षा की स्फूर्ति विजयनगर के इतिहास से ही प्राप्त हुई थी। विजयनगर ने ही शिवाजी के राष्ट्र-निर्माण की भित्ति बनाई और उसी के आधार पर गौ ब्राह्मण प्रतिपालक, अनाथ रक्षक तथा अत्याचार प्रतिहारक महाराष्ट्र साम्राज्य-रूपी भवन निर्माण हुआ। अतएव विजयनगर साम्राज्य के इतिहास का अध्ययन तथा मनन करना प्रत्येक हिन्दू का परम कर्तव्य है।

तालीकोट के युद्ध में दक्षिण के सभी मुसलमान राजाओं ने सङ्गठित हो कर रामराजा पर चढ़ाई कर दी। दुर्भाग्य से रामराजा पराजित हुए, और उनका सिर काट कर बीजापुर के दरवाजे पर लटकाया गया। इस प्रकार विजयनगर साम्राज्य यद्यपि नष्ट भ्रष्ट हो गया, तो भी उसके अमिट कार्यों से हिन्दू जाति नष्ट नहीं होने पाई और उसने पुनः छत्रपति शिवाजी की कर्मण्यता का सुख-स्वप्न भी देखा! अन्त में तो शिवाजी के उन्हीं मराठों ने दिल्ली की मुसलमान बादशाहत को ढा दिया। महाराष्ट्र के उदाहरण को देख कर अन्य भारतीय प्रान्तों में

जागृति हो उठी। छत्रसाल बुन्देला ने मुसलमानों का गर्व हरण किया। राणा प्रताप ने राजपूतों का सिर ऊँचा उठाया। सवाई जयसिंह ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए भरसक प्रयत्न किये, जाट जीवित हो उठे और पञ्जाब के सिक्ख शेरों ने यवनों को सदा के लिए घायल कर दिया। उन प्रयत्नों का इतिहास वास्तव में पतित जातियों के लिए सर्वथा अनुकरणीय रहेगा।

यह तो हुई विजयनगर साम्राज्य के महत्त्व की बात। अब हम जिज्ञासुओं के प्रीत्यर्थ साम्राज्य की स्थापना तथा संक्षेप में उसका इतिहास उद्धृत करते हैं। विजयनगर तुङ्गभद्रा नदी के दक्षिण तट पर बल्लारी से चालीस मील दूर है। वह मारवाड़ की ओर जाने वाली रेलवे के उत्तरी तट पर बसा हुआ है। वालि और सुग्रीव की किष्किन्धा नगरी वहीं पर बसी हुई थी। नदी के उत्तरी तट पर अनागोंदी नामक एक छोटे से शहर पनाह से वेष्टित नगर था, कई शताब्दियों से एक राजवंश वहाँ पर राज्य करता था, जो द्वारसमुद्र के होयसल वल्लाल का माण्डलिक था। वारङ्गल के राज दरबार में हरिहर और वुक्क नामक दो भाई वीर सरदार थे। सन्-१३२६ ई० में मुसलमानों के द्वारा वारङ्गल का राज्य नष्ट हो जाने पर वे लोग अनागोंदी पहुँचे। वहाँ एक भाई दीवान तथा दूसरा खजाञ्ची बनाया गया। सन् १३३४ ई० में दिल्ली के सुलतान-मुहम्मद तुगलक के भतीजे बहुद्दीन ने बग़ावत की, अनागोंदी के राजा ने उसे आश्रय दिया, तब महमूद ने अनागोंदी पर चढ़ाई कर उस राज्य को नष्ट कर, वहाँ मलिक नामक एक सूबेदार रख दिया। क्षणिक काल में दो हिन्दू राज्यों का नाश और मुसलमानों की बढ़ती हुई पाशविक सत्ता को देख कर उन दोनों भाइयों के हृदय में देश-भक्ति की अग्नि धधक उठी और उन्होंने अनागोंदी के ठीक सामने तुङ्गभद्रा के दक्षिण तीर पर माधवाचार्य उर्फ़ विद्यारण्य जी के आदेश से १३३५ ई० में विजयनगर की स्थापना की। अनागोंदी की प्रजा उस नये शहर में ही जाकर बसने लगी और शीघ्र ही वह घनी बस्ती वाला नगर बन गया। मुसलमान सूबेदार मलिक के मार्ग में रोड़े अटकाये जाने से वह उस प्रदेश का यथावत् प्रबन्ध न कर सका। अतएव १३४४ ई० में मुहम्मद तुगलक ने हरिह[र] को ही अनागोंदी का राजा बना कर बुक्क [को] उसका मन्त्री बनाया। सन् १३४० ई० में हरिह[र] ने बदामी नगर में एक दुर्ग बनाया था। उस[ने] अपने को नाम मात्र के लिए सुलतान [का] माण्डलिक घोषित किया था। सन् १३४४ ई[०] में हरिहर की मृत्यु हुई। तुङ्गभद्रा के त[ट] पर हम्पी नामक एक मौजा अब भी ब[सा] हुआ है। वही प्राचीन विजयनगर था। चौसठ कोस की परिधि में अब भी विजयनग[र] के अवशेष पाये जाते हैं। हरिहर का बना[या] हुआ सुन्दर और भव्य विरूपाक्ष मन्दिर अ[ब] भी बना हुआ है।

हरिहर के अनन्तर उसके भाई बुक्कराय [ने] छत्तीस वर्ष तक राज्य किया। उसीने विन्ध्[य] पर्वत से लगा कर समग्र दक्षिण तक अपन[ा] अधिकार स्थापित किया था। मुसलमानों [को] धर दबाने वाला वही पहिला राजा था—ज[ो]

उसने वरङ्गल के राजा कृष्ण नाइक द्वार समुद्र के बल्लाल राजा आदि सभी हिन्दू राजाओं का सङ्गठन करके मुसलमानों को इतना दबाया कि दौलताबाद के अतिरिक्त किसी स्थान पर उनका अधिकार नहीं रहा, तब मुहम्मद तुग़लक ने हुसेनखाँ बहमनी को भेजा। बुक्क और हुसेन में वर्षों लड़ाई छिड़ती रही। हुसेन ने दक्षिण में स्वतन्त्र बहमनी राज्य थापित किया। बुक्कराय ने उसे परास्त करने के लिए फीरोज़शाह से भी सहायता माँगी थी। ऐश्वर्य, राज विस्तार आदि में विजयनगर बाहमनी राज्य से अत्यंत श्रेष्ठ था। बुक्कराय के अनन्तर उसके पुत्र हरिहर द्वितीय ने बीस वर्ष तक राज्य किया। वेदभाष्य के रचयिता सायणाचार्य उसके मन्त्री थे। उसने 'महाराजाधिराज' विरुद धारण कर अनेक मन्दिरों का निर्माण किया था। हरिहर का पुत्र द्वितीय बुक्क और उसके अनन्तर बुक्क का भाई देवराय प्रथम गद्दी पर बैठा। देवराय अत्यन्त विषयी था। एक किसान की सौन्दर्य-सम्पन्ना कन्या पर आसक्त होने के कारण बाहमनी सुलतान से उसका घोर युद्ध हुआ। जिससे उसे बहुत सा द्रव्य, बङ्कापुर का किला तथा अपनी कन्या को देकर अपना पिण्ड छुटाना पड़ा। देवराय के अनन्तर वीरविजय, द्वितीय देवराय, तृतीय देवराय, मल्लिकार्जुन, विरूपाक्ष, राजशेखर विरूपाक्ष ने राज्य किया। उनमें से द्वितीय देवराय के समय विजयनगर उन्नति के शिखर पर चढ़ गया था। नरसिंह-राय नामक एक सेनापति ने विरूपाक्ष से राज्य छीन लिया था। उसने विजयनगर राज्य पर दूसरे वंश की प्रतिष्ठा की। नरसिंह ने मुसलमानों को अच्छी तरह परास्त किया और विजयनगर की गौरव वृद्धि की। उस समय का वर्णन फ्रेञ्च प्रवासियों ने लिखा है। नरसिंह ने आदिल शाह को परास्त करके बहुत से देश जीते थे, इसी के समय बहमनी राज्य के टुकड़े टुकड़े हो गये। उनका लड़का कृष्णदेवराय बड़ा शूर और उदार था, प्रसिद्ध पण्डित् अप्पैय्या दीक्षित उसी के आश्रित थे, उसने आदिलशाह को ऐसा पछाड़ा कि जिससे मुसलमानों के पैर दक्षिण से हमेशा के लिए उखड़ गये, वह बड़ा प्राग्तिक था, अतएव उसने कई विस्तीर्ण मन्दिर, तालाब, नहरें, नगर, मूर्त्तियां आदि निर्माण कीं, कृष्णराय के अनन्तर उसके भाई अच्युतराय के बुरे आचरण से प्रजा उसके विरुद्ध हो गयी, अतएव उसके दीवान रामराय ने राज्य-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। नाममात्र के लिए अच्युतराय के भतीजे सदाशिवराय राजा थे। रामराय मुसलमानों के कट्टर दुश्मन थे, जिससे सभी मुसलमान बादशाह उससे जलते थे, तदनन्तर आदिलशाह, निज़ामशाह आदि दक्षिण के सभी मुसलमानों ने सङ्गठन करके विजयनगर पर चढ़ाई कर दी। बड़ा घनघोर युद्ध हुआ एक लाख हिन्दू मारे गये और रामराय पकड़ा गया, उसका शिर काट कर बीजापुर के दरवाजे पर लटकाया गया। १५६५ ई० में मुसलमानों ने बीजापुर को खूब लूटा। वही तालीकोट की लड़ाई कहलाती है। उसी समय से विजयनगर वीरान हो गया, अब भी रामराय के वंशज अनागोंदी में मौजूद हैं और निज़ाम हैदराबाद की ओर से उन्हें कुछ जागीर भी मिलती है।

विजयनगर साम्राज्य अत्यन्त सम्पत्तिशाली था। गोलकुण्डा की हीरे की खदानें उन्हीं के आधीन थीं। तालीकोट के युद्ध में मुसलमानों को मुर्गी के अण्डे के समान एक हीरा मिला था। कोहेनूर हीरे का जन्मस्थान भी वही कहलाता है, विदेशों से हीरा मोती के वाणिज्य व्यौपार आदि के कारण वह दुनिया में अद्वितीय माना जाता था।

अब हम विजयनगर के स्फूर्तिदाता श्री विद्यारण्य स्वामी जी का संक्षेप में वर्णन

लिख कर इस विषय को समाप्त करते हैं। पाराशर स्मृति की व्याख्या में स्वयं आचार्य महोदय ने लिखा है—

श्रीमती जननी यस्यसुकीर्त्तिर्मायणः पिता।
सायणः सोम (भोग) नाथश्च मनोबुद्धि सहोदरौ॥
यस्य बौधायनमः सूत्रम् शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाज कुलं यस्य सर्वज्ञः स हि माधवः॥

अर्थात् तुङ्गभद्रा नदी के तट पर किष्किन्धा उर्फ हम्पी के निकट अनागोदी के एक ग़रीब ब्राह्मण के कुल में सन् ११६७ ई० में उनका जन्म हुआ था। माधव, सायण तथा सोम तीनों भ्राता प्रकाण्ड पण्डित थे, वेदों के भाष्य, न्याय, मीमांसा, ज्योतिष, व्याकरण, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि विषयों की रचना अब भी अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है। दरिद्रावस्था से दुखी होकर उन्होंने तथा उनके भाई सोमनाथ ने श्रृंगेरी मठ के श्रीविद्यातीर्थ स्वामी से संन्यास की दीक्षा ली और विद्यारण्य नाम धारण किया, उनके गुरु की समाधि के अनन्तर सन् १३३३ ई० में सोमनाथ उर्फ़ भारतीतीर्थ आचार्य बने तथा उनके अनन्तर सन् १३८० ई० में स्वयं विद्यारण्य स्वामी श्रृंगेरी मठ की गद्दी पर आसीन हुए। उसी समय अनागोदी में राज्यक्रान्ति हुई थी अतएव माधवाचार्य जी शीघ्र ही अपनी जन्मभूमि में जा पहुँचे। मुहम्मद तुग़लक के आक्रमण में सफलता न देख कर अनागोदी नरेश जम्बकेश्वर ने स्त्रियों का जौहर करा कर स्वयं भी आत्मसमर्पण किया, उस समय विद्यारण्य जी के उपदेश से हरिहर और बुक्क ने पददलित अनागोदी की सेना का सङ्गठन किया, तथा विजयनगर नामक नगर की प्रतिष्ठा करके हिन्दू सभ्यता की रक्षा के प्रीत्यर्थ मुसलमानों का उच्छेद करने की प्रतिज्ञा की। कहा जाता है कि स्वामी जी को देवी ने स्वप्न में एक स्थान पर गड़ी हुई अपार सम्पत्ति का पता दिया, जिसके बल पर विजयनगर श्री तथा सरस्वती का मुख्य स्थान बन गया था। श्री विद्यारण्यस्वामी जी की धार्मिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक कार्यवाही भारतीय इतिहास में अतुलनीय है। उनके लिखे हुए लगभग बीस ग्रन्थ उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि उन्होंने अपने बन्धु सायणाचार्य के नाम पर वेदभाष्यों की रचना की थी। समर्थ-रामदास जी जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी को उपदेश देते तथा उनकी प्रशंसा भी किया करते थे उसी प्रकार विद्यारण्य जी ने भी हरिहर तथा बुक्कराय के लिए हिन्दू सभ्यता के साधन जुटा कर अपने ग्रन्थों में स्थान स्थान पर उनकी बड़ी प्रशंसा की है। और वास्तव में तत्कालीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस समय श्री विद्यारण्य स्वामी जी का अवतार न होता और उनके विविध कार्यों द्वारा विजयनगर साम्राज्य की स्थापना का महत्वपूर्ण कार्य न होता तो मुसलमानों की बढ़ती हुई आसुरी सभ्यता के सम्मुख हिन्दू सभ्यता का पता तक न चलता। विजयनगर साम्राज्य के नष्ट होते ही छत्रपति शिवाजी को हिन्दू सभ्यता की रक्षा करने की स्फूर्ति और विजयनगर की अपूर्व तथा स्थायी कार्यवाही के आदर्शों के बल पर ही उन्हें अपने उस साधु उद्देश में सफलता प्राप्त हुई।

—मोरेश्व

* सन्दर्भ ग्रन्थ—

(१) नष्टस्मृति साम्राज्य—लेले मा० व्यं०
(२) विद्यारण्य स्वामींची कामिगिरी—का० कृ० ले
(३) रत्नाकर मासिक—सावरकर।
(४) A forgotten Empire—Sewell.
(५) Never to be forgotten Empire—Rao Suryu Narain.
(६) मुसलमानी रियासत—सर देसाई।

मराठे क्षत्रिय राजपूत ही हैं

महाराष्ट्र के मराठे क्षत्रिय राजपूत ही हैं, इस बात के प्रमाण कई ग्रन्थों में पाये जाते हैं। छत्रपति शिवाजी के समय भी कुछ लोग—विशेषकर बुढ़िया पुराण वाले—इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं थे। तब काशी से पण्डितवर्य गागाभट्टजी बुलाये गये और उनके द्वारा छत्रपति के लिए—

यः क्षात्रधर्मस्य नवावतारः

जैसी बात सुनी जाते ही महाराष्ट्रीय पण्डितों ने क्षात्र-धर्मानुकूल ही वैदिक रीति से उनके यज्ञोपवीत संस्कार, राज्याभिषेक आदि कार्य किये। उसी समय छत्रपति ने अपने विश्वासपात्र मुसाहिबों को सीसोदिया कुल का वंशवृत्त लेने के लिए उदयपुर के राणा जी की सेवा में भेजा था और राणाजी ने भी स्पष्टरूप से स्वीकार किया था कि वे राव भोंसाजी के वंशज होने के ही कारण भोंसले कहलाये। कहा जाता है कि राणा लक्ष्मणसिंह के नाती सुजनसिंह सोंधवाड़े में जाकर बसे थे। उनकी चार पीढ़ियों के गुज़र जाने पर देवराजजी नामक पुरुष सन् १४१५ के लगभग नर्मदा लाँघ कर दक्षिण की ओर गये। वहीं के पुत्र भोंसाजी के कारण भोंसावत या भोंसले वंश कहलाया। शिवाजी के पूर्वज सम्भाजी के समय से तो सूत्रबद्ध इतिहास उपलब्ध है, सीसौदियों की तरह श्री सिंघणापुर महादेवजी को एकलिंग कुलस्वामी तथा श्री तुलजापुर भवानी को चित्तौड़ की देवी मानने की प्रथा अब भी भोंसला कुल में प्रचलित है। निम्बालकर, माधव, शिर्के, मोहिते आदि मराठा क्षत्रिय घरानों से उनकी रिश्तेदारियाँ थीं; अतएव उनके क्षत्रिय राजपूत होने में कोई आशङ्का ही नहीं रहती। शिवाजी के पिता शाहाजी महाराज का जयराम नामक एक दरबारी कवि था। उसने तत्काल रचित ग्रन्थ राधामाधव विलास चम्पू में लिखा है—

> जाणा छाँ शाहाराज, राणाजी रो भाई छेजी।
> देस छेजी चित्तौड़, कुल जात राणाजी ॥

तथा शिवाजी के दरबारी कवि भूषण जी ने भी लिखा है—

> लियौ बिरद सीसौदिया × ×
> भूमिपाल—तिन में भयो × ×
> रन भूसिला सो भौंसिला

इन प्रमाणों से साबित है कि शिवाजी तथा उनके भी पूर्व प्रायः सभी लोग मराठों का क्षत्रिय राजपूत होना मानते थे। अस्तु—

राजपूतों और मराठों में सूर्यवंश, सोमवंश, यदुवंश तथा शेषवंश ये चार मुख्य वंश माने गये हैं। मराठों के प्रमुख राजकुल

१६ हैं और राजपूतों के छत्तीस हैं। राजपूतों में सोलङ्की, परमार, प्रतिहार तथा चौहान अग्निकुल कहलाते हैं और उन्हें अन्यों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित मानते हैं। मराठों में भी चालुके-चालकेअथवा सालुंखे, पोवार अर्थात् पवार, चव्हान या चवान तथा प्रतिहार मौजूद हैं, किन्तु वे अन्य मराठों की तरह समान श्रेणी के माने जाते है, इसीसे यह सिद्ध है कि वर्तमान इतिहासविदों के मतानुसार-अग्निकुल की कल्पना पुरानी नहीं, बल्कि रासो के द्वारा उड़ायी गयी है। मराठों के ६६ कुलों में से राजपूतों के समान कुल निम्न हैं।

मराठों के कुल	राजपूतों के कुल
सूर्यवंशी, सुरोशी सुखे	सूर्य
सोमवंशी	सोम
यादव उर्फ़ जादव	यदु
पँवार, पौवार	परमार
चालके, सालुङ्के	सोलङ्की
चह्वान	चौहान
चावरे	चावड़े
रहाठो	राठौर
शेलार, सेलार	सिलार
सैन्द्रक, शिन्दे	सिन्दा
धामपाल	धनपाली
अभीरे	अभीर
अनंग	अनंग
प्रतिहार	प्रतिहार
कलिचुरे	कलचुरके
मारे	मोरी
तुवार (शिरफे, फालके	तवर
गोरे	गोर
गूजर	वड़गूजर, वीरगूजर
काटे	काटी
परिहार	पुरिहार

अर्थात् राजपूतों के ३६ कुलों में से आधे से भी अधिक कुल मराठों में पाये जाते हैं। मराठों के और राजपूतों के कुल में नामों का साम्य होने के कारण उनके एक होने में कुछ आशङ्का नहीं रहती। ग्राम नाम धन्धा या विशेष घटनाओं के कारण मराठों में सैंकड़ों उपनाम भी हो गये हैं। पर उनके गोत्र मूल राजपूतों से मिलते जुलते हैं। फालके उपनाम वाले मराठे तँवर राजपूत हैं। उनके पुरखाओं में से दो भाइयों ने बीजापुर की बादशाहत में बड़ी वीरता के कार्य किया। बादशाह ने प्रसन्न होकर बड़े भाई को खिलअत प्रदान की तो उसने घर जाकर पगड़ी, दुपट्टा आदि के दो-दो टुकड़े करके एक एक छोटे भाई को दे दिया। दूसरे दिन वे आधे टुकड़े ही पहन कर दरबार में पहुँचे। बादशाह ने पूछा, यह क्या? उन्होंने उत्तर दिया 'दो घाँचे फाड़केले' अर्थात् दोनों ने हिस्से बाँट लिये। मराठी में फाड़ हिस्से को कहते हैं। परिहास में वे फाड़केले कहलाये। उसी का अपभ्रंश फाड़केले—फाड़के, फालके, फालके हो गया। तभी से वह कुल फालके कह' लाने लगा। अब भी इस वंश में १॥ पगड़ी पहनने की चाल है, इसी प्रकार मराठों के विभिन्न उपनामों की उत्पत्ति पाई जाती है।

राजपूतों की विशेषताएँ मराठों में भी मौजूद हैं। दोनों जातियाँ वीरता में अद्वितीय हैं। दोनों शिव और भवानी के उपासक हैं, दोनों देशों को वहाँ की जातियों से नाम प्राप्त हुए हैं। दोनों जातियों में असि-अश्व की पूजा का महत्व है। राजपूत तथा मराठों की युद्ध-पद्धति को अंग्रेज़ों ने (Sparten पद्धति) कहा है। राजपूत अर्वली के पहाड़ों में रहे तो मराठों ने सैहाद्रि का सहारा लिया, राजपूताना स्विटज़रलैण्ड कहलाता है तो महाराष्ट्र को दक्षिण का काबुल कहते हैं। सभी राजपूतों में रोटी का व्यवहार होता है, पर बेटी का व्यवहार नहीं होता। मराठों में भी वैसी प्रथा है। दोनों मांसाहारी हैं। जिस प्रकार देश-भिन्नता के कारण महाराष्ट्र ब्राह्मण तथा राजपूताने के ब्राह्मणों के व्यवहार वर्ताव में भेद है, उसी प्रकार राजपूतों तथा मराठों की दशा है। रामराम कहने की प्रथा दोनों जातियों में प्रचलित है। प्राचीन काल में गुजरात तथा महाराष्ट्र के क्षत्रियों में परस्पर विवाह भी होता था। उसी प्रकार राजपूताने के राजपूत तथा मराठों में विवाह हुए थे। कल्याण के जयसिंह चालुक्य के पुत्र मूलराज ने अनहलपट्टन के राजा भोजराज चावड़ा की कन्या से विवाह किया था। पृथ्वीराज रासो से ज्ञात होता है कि कन्नौज के राजा जयचन्द राठौड़ तथा पृथ्वीराज चौहान में सन् ११०५ में देवगिरि के निकट युद्ध हुआ था। जयचन्द की पराजय हुई तथा पृथ्वीराज का जद्दोभालम अर्थात् यादव-भिल्लम की कन्या के साथ विवाह हुआ था। किन्तु तदनन्तर भाषा भेद, प्रान्तीय विशेषताएँ, व्यवहार वर्ताव का भेद तथा प्रवास की झञ्झटों आदि के कारण राजपूत और मराठों में बेटी व्यवहार होना बन्द हो गया। प्राचीन महाराष्ट्र के शासक भोज, राष्ट्रकूट, चालुक्य, यादव आदि असली क्षत्रिय थे। इनके विषय में डा० भण्डारकर, इतिहासाचार्य राजवाड़ेजी, मध्ययुगीन भारत के लेखक चिन्तामणि वैद्य जी आदि विद्वानों के ग्रन्थों में पुष्कल प्रमाण पाये जाते हैं। महाराष्ट्र के मुसलमानी शासन काल में तथा विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य में ही मराठों का बड़ा महत्त्व था जो तत्कालीन इतिहास से प्रमाणित है। विजयनगर के साम्राज्य स्थापक यादव राजपूत थे। जादव, भोंसले, निम्बालकर, घाटके, डफले, घोरपड़े, मोनी, दलवीं आदि मराठा सरदारों के नाम मुसलमानों के इतिहास में भी शूरता तथा राजनीति-निपुणता में प्रसिद्ध थे, उन्हींके वर्तमान वंशज मराठों को राजपूत कहना कदापि कपोलकल्पना नहीं कही जा सकती।

मराठों के राजपूत होने के अनेक आन्तरिक प्रमाण मौजूद हैं। राजपूतों के छत्तीस कुल मराठों के ६६ कुलों में कैसे परिवर्त्तित हुए, तथा अद्यावधि वे मूल वंशों में किस प्रकार गिने जाते हैं, इसका पता मराठों के कुल और क्षत्रिय वंशावलियों के मिलाने से ठीक तरह चल जाता है। हम उसे संक्षेप में लिखे देते हैं। यथा—

सोमवंश

सं०	मराठा कुल	गोत्र	मराठी कुल नाम
१	चह्वान कुल	चौहान	लाड़, तावडे, मोहिते, हंडे, पाँसरे, कालमार, रणदिवे, हमवीर, राव आदि।
२	लाड़ कुल	चौहान	लाड़
३	तावडे कुल	चौहान	थावड़े, सांगल, जाम्बले आदि
४	मोहिते कुल	चौहान	वांडे, कामरे, काँटे आदि
५	मोरे कुल	मोरे या मौर्य्य	घायवर, दरेकर, ढेकले आदि
६	पँवार कुल	पँवार	बागवे, जगदाले, पालवे, बाघ, गूजर, धारराव आदि
७	बागवे कुल	पँवार	दिवटे, मोकाशी आदि
८	गङ्गनाइक कुल	गङ्गनाइक	
९	राष्ट्रकूट-राठौर	राठौर	सकपाल, रायजादा, भाले, चंड आदि
१०	शङ्खपाल(सकपाल)	राठौर	कोकाटे, झुञ्जार, दातार आदि
११	धानपाल(अहीर)	धामपाल	जाधव, यादव, सिरके, फालके ढेकले, भोजके आदि
१२	जाधव कुली	धामपाल	खटतरे, पाठारे, जगपाल, घरत, भालेराव, सिंहणे
१३	वाघले कुल	धामपाल	वाघेला, गुहेला आदि
१४	यादव कुल	धामपाल	घाघ, घोंणे, कणलग आदि
१५	शिरके कुल	धामपाल	फाँकड़े, भोले आदि
१६	जगताप	जगताप	पिंगले, उमढेरे, आउटे, डुबल, वाव्ले, रणसिंह, घुलप
१७	चालुक्य(चालके)	चालुक्य	
१८	कलचुरी(कचरे)	कलचुरी	गोवरे, नागवे, वासकर,

सूर्यवंश

सं०	मराठा कुल	गोत्र	मराठी कुल नाम
१	कदमकुल	कदम (कदम्ब)	धुमाल, फड़तरे, महिपाल, काले आदि
२	धुमाल	कदम	धुलप, कासले, धुले आदि
३	आंगनेय	कदम	उगड़े, हिरवे
४	निकम	निकम	तोवर, बावर, वरगे, गुढ़े आदि
५	घिटक	चिटक	मसकर, मड़ीकर आदि
६	तोवर	निकम	तामटे वुलके, तुरिये

सं०	मराठा कुल	गोत्र	मराठी कुल नाम
७	कालमुख	कालमुख	गुरवे, गाइकवाड़, क्षीरसागर, घाटगे, शितोले, काकड़े, सुरोशी
८	सुखे	कालमुख	राउल, नाइक, करपे, राऊल
९	गाइकवाड़	कालमुख	भागवत् . खरै भाले, देवरे, डिगे, गाइके, ताकटे
१०	क्षीरसागर	कालमुख	गोडे, बोनखडे, होके आदि
११	घाटगे	कालमुख	घोडके, केवडे आदि
१२	गवसे (गवस)	कालमुख	डांगरे, आगलावे
१३	प्रोकतट	प्रोकतट	प्रतिहार, परिहार, ढोले, वाडगरे आदि
१४	राणे	राने	मुलिक, मुले, पाटक आदि ।

ब्रह्मवंश, यदुवंश अथवा हरिवंश

सं०	मराठा कुल	गोत्र	मराठी कुल नाम
१	शेलार शिलाहार	चुलकी	कालेकर, शेलके, म्हातरे आदि ।
२	इंगले	चुलकी	कनवजे, ठुकरूल आदि ।
३	दोरिक	दोरिक	भोइटे, शिशोदे, महाडिंग, काटे, हराड़े आदि ।
४	सालुखे	चुलकी	पटनकर, पाँढरे, पाताड़े, तोम्बे, रणधीर, गुजाँल, नवल, विरजे आदि
५	सावन्त	चुलकी	शेलार, कम्बले शिवले ।
६	चुलकी	चुलकी	सालुँखे, इंगले, सावन्त, पिसाल, डुवल ।
७	भोंसले	दोरिक	घोरपड़े,थोरात, आँग्रे, मालुसरे, लोखड़े, कंक आदि
८	माने	चाँदले	देवमाने, राजमाने, भुजवल राव, पोले आदि ।
९	घोरपड़े	डोरिक	मालव, पारधे ।
१०	सीसोदे	डोरिक	भोंसले, सालव, साइल आदि ।
११	भोगले	डोरिक	आटोले, भोईर, घावेर आदि ।
१२	भोइटे	डोरिक	
१३	चाँदले	चाँदले	माने, दावोड़, ढमाले, गरुड़,कावढ़े आदि ।
१४	महाडिक	डोरिक	भोगले, इदप आदि ।
१५	नलवड़े	अनंग	नलगे, पारवे. दाखे, मावले, बुदले ।
१६	दाभाड़े	चादले	निम्बालकर,
१७	हरू	हरू	नवले, कापसे, मड़गे आदि ।

सं०	मराठा कुल	गोत्र	मराठी कुल नाम
१८	धमाले	चाँदेल	डके, रेवाले।
१६	धर्मराज	धर्मराज	ढोके, साले, पान सम्भले, गोले आदि।
२०	अनंग	अनंग	ढायाल चिकले, नलवड़े, सावढ़े।
२१	तावड़े(सावड़े)	अनंग	चावडे, चापोकत, सावले।

शेषवंश

१	शिन्दे	शिन्दे	दलवी, लाड़, जगताप, उपासे, कवड़े, ललेकर आदि।

अर्थात् चह्वाण,लाढ़, मोहिते आदि उपनामों के महाराष्ट्र के विभिन्न प्रान्तों में भी विशेष कारणवश अलग अलग उपनाम हो गये हैं। किन्तु उन मुख्य वंशों के चिह्नों तथा छत्रों के वर्ण,कुल, देवता, ऋषि ध्वजा का रङ्ग,वेद, मुख्य-स्थान आदि बातें निश्चित होने से उनका मुख्य कुल जानने में कठिनता नहीं होती। इसीसे क्षत्रियों के ३६ मुख्य भेद में अन्य कई उपभेद मिला कर मराठा क्षत्रियों के ६६ कुल हो गये हैं। किन्तु उनके गोत्रों से उनके मुख्य क्षत्रियकुल के जानने में असुविधा नहीं होती। इसी से यह सिद्ध है कि मराठे क्षत्रिय राजपूत ही हैं।

—गुणाकर
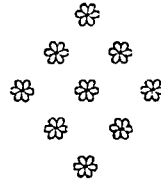
नोटः—शिन्दे के स्फुट १२ कुल माने गये हैं।

* सन्दर्भ ग्रन्थ—जिन सज्जनों को इस विषय की अधिक जानकारी की आवश्यकता हो, वे निम्न ग्रन्थों का अवलोकन करें।

१ क्षत्रिय वर्णाचें अस्तित्व—बिजे तथा आपटे।
२ मराठ्यांच्या सम्बन्धानें चार उद्‌गार—भागवत।
३ शाहाण्णव कुली क्षत्रिय वंशावली—धारकर।
४ मध्ययुगीन भारत भाग २ रा० } वैद्य
५ " भाग ३ रा० } वैद्य
६ सिन्धिया वंश का इतिहास (अप्रकाशित)—भालेराव। आदि

श्री समर्थ रामदास ।

—:※:—

१—प्रारम्भिक परिस्थिति :

श्री समर्थ रामदास स्वामी ने महाराष्ट्र में एक बिलकुल स्वतन्त्र, नयी विचारधारा प्रवाहित की।

साहित्यिक पूर्व-परिस्थिति

पहिले के निवृत्तिमार्ग को हटा कर उसके स्थान पर प्रवृत्ति-मार्ग को प्रतिष्ठित किया। इस बात को अच्छी तरह जानने के लिए रामदास स्वामी की पूर्व-कालीन परिस्थिति को समझ लेना बहुत आवश्यक है। बिना उसको समझे महाराष्ट्र के इतिहास में रामदास का क्या कार्य था इसका आकलन होना बहुत कठिन है। रामदास के पूर्व का जितना मराठी साहित्य प्राप्त है उसमें सभी पद्यग्रन्थ हैं। मराठी में गद्यरचना का प्रारम्भ उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन से हुआ है। श्री कृष्णशास्त्री चिपलूण-कर, श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर आदि विद्वानों के महत्परिश्रम से ही मराठी गद्य-साहित्य की नींव डाली गयी और उन्हीं के स्फूर्तिदायक लेखों से महाराष्ट्र-शारदा के उपासकों में नवविचारों का उद्भव हुआ और आराधनीया देवी का गद्य-पुष्पों के अनेक सुन्दर हार अर्पित किये गये। इसके पहले गद्य-ग्रन्थ नहीं थे, जिनकी परिगणना साहित्य में की जा सके। कुछ ग्रन्थ अवश्य थे जैसे 'बखर' (Chronicles राजवंश या किसी कुल का वृत्तान्त जिसमें संग्रहीत किया हो उसे 'बखर' नाम से सम्बोधित किया जाता है) आदि। पर इनका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है। किन्तु इतिहास के अज्ञात बातों पर प्रकाश डालने का बड़ा भारी काम इनसे होता है। इन बखरों का लिखना भी प्रायः रामदास के बाद ही का है। उसके पूर्व समय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं उनमें सभी पद्य-ग्रन्थ हैं। वे भी विविध विषयों से परिपूर्ण न थे, उनमें केवल भक्ति का साहित्य था। भक्तों, साधुओं और सन्तों के अपने उपास्य दैवत के प्रति प्रेमपूर्ण भक्तियुक्त आलाप और उसके दर्शन के अभाव में करुण क्रन्दन—यही विषय उसमें मिलता है। उस काल के महाराष्ट्र में भगवद्भक्ति की मात्रा अत्युच्च शिखर पर विराज रही थी। उस समय के धार्मिक सम्प्रदायों के इतिहास का, सामाजिक आचार और विचारों का दृश्य उस साहित्य में अङ्कित है।

महाराष्ट्र में भक्तिमार्ग का प्रारम्भ ईसा की तेरहवीं सदी से हुआ है। भक्तिमार्ग में अधि-

भक्तों का उपास्य दैवत—

कांशतः अनुगामी हैं पण्ढरपुर के श्री विठोबा। इन विठोबा की मूर्त्ति सन् १२२८ ई० के लगभग मथुरा से लाकर श्री पुण्डलीक नाम के किसी भगवद्भक्त ने एक ईंट पर पण्ढरपुर में उसकी स्थापना की थी। कहा जाता है कि इसको स्वप्न में उस मूर्त्ति को लाकर प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा हुई थी। इसने एक भक्ति सम्प्रदाय चलाया था

जिसको यादव राजकुल का आश्रय मिला था। विद्वानों की राय है कि कानड़ी (कर्नाटकी) शब्द 'विठ्ठु' को, जो संस्कृत 'विष्णु' का अपभ्रष्ट रूप है, सन्मानदर्शक 'बा' (हिन्दी में 'जी' लगाया जाता है) प्रत्यय लगा कर 'विठ्ठुबा' या 'विठोबा' शब्द बनाया गया है। पण्ढर र के ताम्रपट में उस स्थान का नाम 'पौण्डरीक क्षेत्र' मिलता है और शिलालेख में 'पाण्डुरङ्गपुर'। पौण्डरीक पुण्डरीक (र, ल के अभेद से पुण्डलीक) शब्द से बना है और पाण्डुरङ्ग का अर्थ है शिव या रुद्र। इस प्रकार विष्णु, पुण्डलीक और शिव इन तीनों का इस क्षेत्र से सम्बन्ध है। महाराष्ट्र में भजन या कीर्तन के समय 'पुण्डरीक वरदा हरि विठ्ठल' कहने की जो प्रथा है उसमें भी विठ्ठल (विठोबा) और पुण्डरीक का नाम एक साथ आने से भी यह सम्बन्ध अधिक दृढ़ होता है। सम्भवतः शिव और विष्णु का (शैव और वैष्णवों का) दक्षिण में जो तीव्र विरोध है उसको दूर कर उन दोनों पन्थों में ऐक्यभाव स्थापित करने के विचार से ही यह समन्वय करने का प्रयत्न किया गया हो। अधिकतर मराठी पद्यसाहित्य में इन्हीं 'विठोबा' और उनकी पत्नी रुखमाई (रुक्मिणी बाई) को भक्तिपूर्वक अनुलक्ष्य कर लिखा गया है। पण्ढरी क्षेत्र (पण्ढरपुर) इस लोक का वैकुण्ठ है, विठोबा और रुखमाई श्री विष्णु और लक्ष्मी की जोड़ी हैं, और चन्द्रभागा नदी त्रिपथगा भागीरथी है। इस प्रकार सब तरह से पण्ढरपुर को वैकुण्ठलोक का साम्य प्रदत्त कर इन भक्तों ने अपनी भक्ति की पूर्णता कर दी। इन उपासकों का जो सम्प्रदाय चल पड़ा उसको 'वारकरी' सम्प्रदाय कहा जाता है। मराठी में वारी का अर्थ है, धर्म यात्रा। उसको करने वाले 'वारकरी' शब्द से अभिहित हैं। अपने-अपने निवास-स्थानों से चल कर प्रति वर्ष आषाढ़ी तथा कार्तिकी एकादशी के दिन पण्ढरपुर के विठोबा के दर्शन करने के निमित्त जो धर्मयात्रा की जाती थी, उसी का निदर्शक यह 'वार-करी' शब्द है। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त प्रायः वही हैं, जो महाकारुणिक महायानियों के हैं। इस सम्प्रदाय के कारण महाराष्ट्र की जनता का सामाजिक सङ्घटन बहुत अच्छा हुआ है। इंग्लैण्ड आदि देशों में आमोद-प्रमोद के लिए जिस तरह 'पिक्निक् पार्टीज़' आदि होती हैं, वैसे ही यहाँ धार्मिक भजन कीर्तन के निमित्त समाज की बैठकें बैठती हैं, जिनसे लोगों के धार्मिक विचार के उन्नत होने में सहायता मिलती है। आजकल भी 'क्लब' आदि से लोग सामाजिक सङ्घटन करने का प्रयत्न करते हैं। पर उनकी अपेक्षा यह धार्मिक क्लब चिरकालिक होते हैं। कारण धर्म का नशा बहुत दिनों तक टिकने वाला होता है। अस्तु।

ये सब कवि निवृत्ति का उपदेश देते हैं। "संसार असार है। भगवन्नाम ही उस में एक

निवृत्ति पर उपदेश—

सारवस्तु है। इस के सहारे से मनुष्य इस दुःखद भवसागर को पार कर फिर पुनर्जन्म का भागी कदापि न

होगा। जितनी वस्तुएँ हम देखते हैं, खाते हैं, पीते हैं, सूँघते हैं, स्पर्श के द्वारा प्रतीति लेते हैं और भोगते हैं—सब क्षणिक हैं। माता, पिता, बन्धु, बहिन, भार्या, सुत, सम्पत्ति, गृह उद्यान-सब कुछ बन्धक हैं। इनके सम्बन्ध से मनुष्य माया में फँसता है और जिस प्रकार बड़े बड़े तैराक भी पैरों में पत्थर बाँधने से पानी में डूब कर मर जाते हैं उसी प्रकार इस भवसागर के बीच माया से निगड़ित जीव भी डूब कर कराल काल के कवल होकर सहस्र जन्मों तक निरय-नरक में दारुण दुःख सहन करते रहते हैं। अतः इन अशाश्वत, दुःखपर्यवसायी वस्तुओं का त्याग करो और भगवन्नाम की तुम्बी के आश्रय से इस विशाल भवसागर को पार करो—जन्ममृत्यु के परे चले जाओ" इत्यादि। इस उपदेश से चाहे एक व्यक्ति का पारलौकिक कल्याण भले ही हो जाय; पर राष्ट्र का हित उससे कदापि नहीं हो सकता। राष्ट्रीयता के भावों का परिपोष करना है, उनको सदैव जागृत रखना है और उनसे अपना भविष्य सदैव उज्ज्वल रखना है तो इस निवृत्तिपर 'संसार असार' के उपदेश से काम चल नहीं सकता। इससे राष्ट्र का राजनैतिक हित कदापि नहीं हो सकता। यही स्थिति महाराष्ट्र की इन निवृत्तिपर उपदेशकों के कारण हुई थी।

मुसलमानों ने आक्रमण करके धीरे धीरे अखिल महाराष्ट्र अपने अधिकार में कर लिया।

राजनैतिक अवस्था—

विविध प्रकार के अत्याचार युक्त अन्यायों से प्रजा पीड़ित होने लगी। किसी की भी इतनी हिम्मत न थी कि वह चूँ तक कर सके। मुसलमान शासकों का ख़ासा रोब जम गया। किसी ने ज़रा भी सिर ऊँचा करने की कोशिश की कि उसको ऐसे ताने मारे जाते थे जिससे आगे फिर वैसा करने की उसमें शक्ति भी न रहती। ऐसे बाग़ियों को जो सज़ा दी जाती वह भी किसी सार्वजनिक स्थान ही में, जिससे लोगों को अच्छी तरह विदित हो जाय कि शासकों के विरुद्ध किसी प्रकार की भी कार्रवाई करने से क्या फल प्राप्त होता है। इतनी हीन दशा होने पर भी तीन सौ वर्षों तक राष्ट्रीय स्वायत्त का नाम तक किसी ने नहीं लिया। सब के सब अपने भगवन्नाम के पीछे लट्टू रह गये। जिन लोगों पर राष्ट्रीय जागृति का पूर्णतया भार था वे ही जब बिना घर बार की चिन्ता किये, बिना राष्ट्र का विचार रक्खे, भगवन्नाम की जय-अर्चा में निमग्न हो गये, तब भला देश किसके मुख की ओर ताकेगा। रामदास को अपने भारत के प्रवास में यह बात बहुत खटकी। उन्होंने देखा—'यदि अब भी महाराष्ट्र सोता रहेगा तो कुछ ही दिनों के भीतर यह नींद कुम्भकर्णी सिद्ध होगी। उठने को हिन्दुओं को स्थान न रहेगा, बैठने को अपनी निजकी भूमि न होगी और खाने को-दाने दाने के लिए वे तरस जायेंगे। यवनों से भूमि आक्रान्त होगयी है, सहस्रों क्षत्रिय राजवंश मुसलमानों की सेवा में अपने को धन्य समझ रहे हैं। किसी के भी मन में स्वराष्ट्र-स्वराज्य की भावना नहीं है। पत्नी तथा भगिनी की लज्जा

की रक्षा करने के लिए भी किसी में स्फूर्ति नहीं उत्पन्न होती ... ...'। इस स्थिति को बदलने, उसमें महत्परिवर्तन करने के लिए उन्होंने निवृत्तिपर उपदेश की निन्दा की और प्रवृत्ति-पर उपदेश को प्रारम्भ किया। अकेला यही एक महात्मा उस समय महाराष्ट्र में उत्पन्न हुआ जिसने प्रवृत्तिमार्ग के अङ्गीकार पर ज़ोर दिया। शेष सब के सब निवृत्तिमार्ग के अनुयायी थे। इसी प्रवृत्तिमार्ग के उपदेश के कारण, सुना है, निवृत्तिपर भक्तकवियों के अनुयायी पण्ढरपुर के श्री विठोबा के मन्दिर में रामदासस्वामी के किये हुए श्लोकों का पाठ करने नहीं देते!

सामाजिक दशा—

भक्त कवियों में लगभग सभी 'समाज-सुधारक (Reformers)' थे। प्राचीन घात-की प्रथाओं को शास्त्रसम्मत बता कर उससे लोगों को हानि पहुँचाना उन्हें पसन्द न था। वे सद्सद्विवे-किनी बुद्धि (Conscience) के उपासक थे, विचारशील थे। केवल कर्माडम्बर के वे निन्दक थे और तत्त्व के प्रशंसक। ढोंग से उनको घृणा थी। सामान्य जनता भी सुलभ मराठी भाषा में ही धर्म, दर्शन आदि के उपयुक्त तथा नैतिक सिद्धान्त समझ सकती है और ग्रहण भी कर सकती है। यह बात विचार में आते ही उन्होंने संस्कृत भाषा के रामायण, भारत, योगवाशिष्ठ आदि ग्रन्थों के निगूढ़ तत्त्वों को प्राकृत (Vernacular; मराठी) में रूपान्त-रित किया। इस कारण उनको अनेक आप-त्तियाँ सहनी पड़ीं। धर्म के ठेकेदार उस समय भी मौजूद थे। जिस प्रकार इन सुधारवादियों का केन्द्र था पण्ढरपुर, उसी प्रकार इन पुराण-प्रिय (Conservative) धर्मिष्ठों का जमघट था पैठण में। प्राचीन वाराणसी को जो धार्मिक महत्त्व उत्तरी भारत में था, वह इस पैठण ('प्रतिष्ठान') को दक्षिणी भारत में था। वहाँ के लोगों के बल पर इन साधुसन्तों का छल प्रारम्भ हुआ, समाज से उनको बहिष्कृत किया गया। देवालय में चाण्डाल, क़साई आदि भक्त दर्श-नार्थ जाते थे उनको कोड़ों से पिटवाया। अनेक-विध अत्याचार किये। पर इतना सब सह कर इन लोगों ने अपने आत्मिक प्रभाव से, शास्त्रार्थ से और विविध अद्भुत दैवी चमत्कारों से सब की सहानुभूति आकर्षित कर ली। इनका प्रभाव बैठ गया। यहाँ पर एक बात ध्यान रहे कि इन साधुसन्तों ने नानाविधि से इतने धर्म-समाज-सुधार करते समय भी वर्णाश्रम-धर्म परम्परा को किसी प्रकार से भी उल्लङ्घित नहीं किया। जाँत-पाँत तोड़ने का उनका विचार न था। देवालय में—उस जगत्पालक पिता के घर में उच्च-नीच आदि भेद नहीं हो सकते। सब के लिए मिलने जुलने, बैठने उठने का एक स्थान रहना आवश्यक था। वह स्थान देवालय रहना चाहिये यही उनकी माँग थी। किसी ने भी वेद-उपनिषद् आदि का अनुवाद उस समय मराठी में नहीं किया था। इसका स्पष्ट कारण यह था कि उनके पढ़ने का सब वर्णों को अधिकार न था। इधर समाज की स्थिति सुधारने का यह प्रयत्न हो रहा था तो उधर कट्टर सनातनधर्मी उसका विरोध कर रहे थे। एक ओर संस्कृत का ग्रन्थ-भाण्डार

मराठी में लाने का काम चल रहा था तो दूसरी ओर अनेक देशी आचार विचारों का संग्रह संस्कृत में होने लगा था। जीमूतवाहन, लक्ष्मीधर, हलायुध, शूलपाणि, रघुनन्दन भट्टाचार्य आदि प्रकाण्ड पण्डित भी इसी समय के हैं जो आज भी धार्मिक विवादों आदि में प्रमाण माने जाते हैं।

२—श्री समर्थ रामदास की जीवनी।

देश की इस प्रकार की अवस्था में श्री समर्थ-रामदास का अवतार हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता का यह कथन —

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥' ४–७, ८.

व नितान्त विश्वसनीय प्रमाणित होता है, जब हम ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनी का अनुसन्धान तथा अनुशीलन करते हैं। इस सिद्धान्त की सत्यता को मानने के लिए यह बात कोई आवश्यक नहीं है कि ईश्वर और पुनर्जन्म को भी मान लें। 'नेता' और जन्म को मानने से भी इसकी सत्यता प्रतीत होगी। यही कारण है कि इन ग्रन्थों को हम चिरकालिक, अतः सनातन मानते हैं और इन के सिद्धान्तों को त्रिकालाबाधित बताते हैं। देश की उपरि-निर्दिष्ट अवस्था को सुधार कर सद्धर्म-राष्ट्रधर्म-की संस्थापना करने का दुष्कर कार्य जिसने किया उस महापुरुष की जीवनी और महत्त्व-पूर्ण कार्य का इस लेख में हम थोड़ा बहुत दिग्दर्शन करना चाहते हैं।

श्री समर्थ रामदास स्वामी का शुभ नाम कौन नहीं जानता? भारत का कोई बालक,

समर्थ रामदास की संक्षिप्त जीवनी—

जो थोड़ा बहुत पढ़ा लिखा है, इस प्रातः-स्मरणीय महाराष्ट्रीय साधु पुरुष को जानता होगा। महाराष्ट्र की उज्वल धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थिति की स्थापना तथा उन्नति का श्रेय प्राधान्यतया आप ही के अश्रान्त परिश्रमों को दिया जाता है और वह है भी उचित। आपका जन्म शालिवाहन शक १५३०, चैत्र शुक्ला ६ मी को (ईसवी सन् १६०८) में एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। गोदावरी नदी के तट पर जाँबगाँव नामक एक ग्राम है। वहाँ के सूर्याजी पन्त ठोसर नामक व्यक्ति के आप द्वितीय पुत्र थे। आपकी माता का नाम था राणूबाई। रामदास का मूल नाम था नारायण। बाल्यकाल से आपका चित्त संसार से विरक्त ही रहा। प्रभु-श्री रामचन्द्र की उपासना में आपकी अत्यन्त रुचि थी। नियमानुसार उपनयन हुआ; प्रारम्भिक शिक्षा भी हुई। विवाह का समय प्राप्त हुआ। विवाह को शृङ्खला जान कर और वृत्ति का झुकाव किसी दूसरी ओर होने के कारण उस समय मङ्गल पाठों को सुन कर विवाह से आप भाग निकले और नासिक के पास किसी एकान्त स्थान में रामोपासना तथा अध्ययन किया। कुछ काल के उपरान्त आपने भारत के समग्र स्थानों की यात्रा की। यात्रा से लौट कर घर पर माता के दर्शन किये जो इतने दिनों तक केवल अपने परम

प्रिय पुत्र की भेंट के लिए ही अत्यन्त उत्सुकता के साथ जीवन धारण कर रही थीं। विवाह के समय से अदृश्य हृदय के रत्न को पाकर माता को जो आनन्द हुआ होगा उसका अनुमान पाठक अपनी कल्पनाशक्ति से लगा लें। इतने वर्षों की तपस्या का फल यह हुआ कि श्रीरामचन्द्र के दर्शन तथा कृपा-प्रसाद आपको प्राप्त हुआ। आपकी राम-भक्ति का स्मारक आपका प्रसिद्ध नाम 'रामदास' ही है। स्वयं स्वामी जी के शब्दों में—जिनमें श्रीराम की कृपा के कारण स्वाभिमान कूट कूट कर भरा है—उनका आत्मविश्वास हम यहाँ पर प्रकट करना उचित समझते हैं—

"राघवाचा दास मीझालों पावन।
पतित तो कोण उरों शके॥
उरों शके ऐसे कल्पान्तीं घडेना।
जो कोणी पुसेना त्याली उणें॥
आह्मां नाहीं उणें राघवाच्या गुणें।
ब्रीदची राखणें पावनाचें॥
पावनाचें ब्रीद आह्मां प्राप्त झालें।
प्रचीतीस आले कितीयेक॥
येणंकालें मोक्ष जरी मी देईना।
'दास' म्हणवीना राघवाचा॥
राघवाचा वर पावलों सत्वर।
जनांचा उद्धार करावया॥"

भावार्थ—'मैं, राघव का दास (रामदास) पवित्र हुआ हूँ। अब इस संसार में पतित कौन बच सकता है? यह कदापि नहीं हो सकता कि कोई पाप बच जाय। हाँ, जो कोई आकर (मुझे) पूछेगा नहीं तो अवश्य उसको कमी रहेगी। प्रभु रामचन्द्र का यह एक गुण है कि जो पवित्र हुआ है वे उसके वचन की रक्षा करते हैं और इसी के कारण मुझे (इसलिए कि मैं पावन हुआ हूँ) किसी बात की कमी नहीं है। कई बार मुझे इसका विश्वास हुआ, अनुभव हो गया कि मुझमें उस पावनत्व की सामर्थ्य आ गयी है। इस समय यदि मैं किसी को मोक्ष की प्राप्ति न करा सकूँ तो अपने को 'रामदास' नहीं कहाऊँगा। समस्त जनों के उद्धार के लिए मुझे प्रभु रामजी का वरदान प्राप्त हुआ है।'

इसके पश्चात् स्वामी जी ने उपदेश तथा ग्रन्थ-लेखन का कार्य हाथ में लिया। अन्य साधु-सन्तों और भक्त पुरुषों की जीवनी की भाँति आपकी भी जीवनी नाना विध चमत्कारों से परिपूर्ण है, जिनका वर्णन करना इस लेख के बूते के बाहर है वैसे संसार के प्रत्येक असाधारण, लोकोत[illegible] व्यक्ति के विषय में प्रत्येक प्रदेश में चमत्का[illegible] अवलोकनार्थ मिल सकेंगे। उनसे कोई भ[illegible] अपरिचित नहीं रहता। सम्भव है, इनमें [illegible] बहुत से चमत्कार गढ़ भी लिए गये हों। इसलि[illegible] उनका यहाँ पर वर्णन नहीं किया गया। अ[illegible] हमें स्वामी जी की और रचनाओं की ओ[illegible] मुड़ना चाहिये।

रामदासी सम्प्रदाय और मठ—

आपके नाम से एक सम्प्रदाय चल पड़[illegible] है। जिसको 'रामदासी पन्थ' कहते हैं। स्व[illegible] रामदास के समय में महा[illegible] राष्ट्र में स्थान स्थान प[illegible] मठों की स्थापना हो चुकी थी। इनकी संख्य[illegible] लगभग बारह सौ थी। इनको शिष्यमालिका [illegible] उद्धव, कल्याण, जयराम आदि पुरुष और आक[illegible]

बाई, वेणुबाई, बयाबाई आदि स्त्रियाँ भी थीं। स्वामी जी के जीवन-काल में इन मठों ने लोक-जागृति का बहुत अच्छा कार्य किया, जिससे शिवाजी महाराज के लिए लोक-संग्रह का कार्य अतीव सुकर हुआ। पर स्वामी जी के अनन्तर

छत्रपति शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास

इन सम्प्रदायों में पारस्परिक झगड़े उत्पन्न हुए, जिनका परिणाम सम्प्रदायों की स्थापना की मूल आधार-भित्ति को हानि पहुँचाने के पक्ष में हुआ। राष्ट्रीय जागृति का कार्य पतित हो गया। देश को शीघ्र ही दुर्दिन देखने पड़े।

दासबोध—

समर्थ रामदास की अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिन का सम्पादन तथा प्रकाशन धुले (Dhulia, East Khandesh) से श्रीशङ्करराव देव ने किया है। इनमें 'दास-बोध, नाम का एक ग्रन्थ है, जिसने श्रीरामदास की कीर्त्ति को चिरकालिक बना दिया है। इस ग्रन्थ को महाराष्ट्र में श्रीमद्भगवद्गीता के समान सम्मान दिया गया है, और प्रायः सभी घरों में इसका गीता की ही भाँति नित्य पाठ होता है। महाराष्ट्र में एक कथा प्रचलित है कि "किसी राजा ने एक दिन विद्वत्सभा बुलाई, जिसमें दूर-दूर से पण्डितवर्ग उपस्थित हुए। राजा ने अपनी आज्ञा प्रकट की कि 'सब साहित्य-ग्रन्थ जलाये जायँगे, प्रत्येक भाषा का केवल एक ही ग्रन्थ अवशेष रह सकेगा। अतः आप लोग पूर्ण विचार के उपरान्त अपनी सम्मति प्रकट कीजिये।' बहुत सोच विचार कर मराठी के विद्वानों ने 'दासबोध' का नाम, हिन्दी के पण्डितों ने 'तुलसी-रामायण' का और संस्कृतज्ञों ने 'हितोपदेश' का

नाम सूचित किया।" इस कथा में कुछ सत्यांश हो चाहे न हो किन्तु एक बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि उपरिनिर्दिष्ट ग्रन्थों में उन भाषाओं का सारसर्वस्व संग्रहीत है। संस्कृत के आदर्श निगूढ़ हैं, और उसके उक्त ग्रन्थ में प्राचीन सभ्यता का मूर्तिमान् चित्र अङ्कित है। इसी प्रकार दासबोध की महत्ता है। उसमें क्या है, और क्या नहीं है? उसमें सब कुछ है। श्रीसमर्थ रामदास के सब भावों और विचारों का संग्रह उसमें है। वह प्रत्यक्ष 'रामदास' ही है। जैसा कि स्वयं उन्होंने ही 'दास-बोध' में लिखा है—

"माझी काया आणि वाणी।
गेली म्हणाल अन्त:करणीं।
परि मी आहें जग जीवनीं। निरन्तर ॥१॥
आत्माराम दास बोध।
माझें स्वरूप स्वत:सिद्ध।
चित्तीं न करावा खेद। दासजनीं ॥२॥"

भावार्थ—'(मेरी मृत्यु के पश्चात्) यदि कोई कहेगा कि मेरा अस्तित्व अब नहीं रहा, अब उपदेश का कार्य कौन करेगा? तो ऐसे लोगों को ध्यान रहना चाहिये कि मैं इस संसार में अनन्त (अन्त रहित) हूँ। 'दास बोध' ही मेरा प्रत्यक्ष रूप है, मेरी अन्तरात्मा है। अतः दास जनों को चाहिये कि किसी भी प्रकार का खेद न करें।

इसी ग्रन्थ ने तो महाराष्ट्रियों को निवृत्ति-मार्ग का त्याग कराके प्रवृत्ति-मार्ग में प्रवृत्त किया है। अकर्मण्यता को छुड़ा कर कर्म-प्रधान बनाया है। राष्ट्रीय-शिक्षा का यह एक आदर्श ग्रन्थ है। राष्ट्र को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान यह कराता है। संक्षेप में, महाराष्ट्र के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक—विशेष रूप से राजनैतिक - उत्थान का यही मूल और प्रधान कारण है। राष्ट्रीयता के भावों का सञ्चालन तथा सम्प्रोषण महाराष्ट्र की जनता में इसी ग्रन्थराज ने किया है। 'महाराष्ट्र-धर्म' क्या वस्तु है, इसका बीज इसी ने बोया है। प्रवास और स्वानुभव से जिस अन्तःस्थिति का अवलोकन और अनुशीलन स्वामीजी ने किया था, उसका उत्कृष्ट वास्तविक शब्दचित्र आपको 'दास-बोध' में अङ्कित मिलेगा। एकता के बन्धन में सारे समाज को सम्बद्ध कर उससे राष्ट्रीय कार्य करवाने का प्रयत्न इस ग्रन्थ-द्वारा उन्होंने किया है। 'सब कार्य रामचन्द्र के नाम से स पादन करने चाहियें और अर्पण भी उसी को करने चाहियें। इस राम नाम में ऐसी अजब शक्ति है, जो सबका कल्याण कर सकती है।' इस भावना से, निश्चयात्मिका बुद्धि से जिनका उद्योग होता रहेगा, उनको प्रत्येक कार्य में सिद्धि प्राप्त होगी—वे समर्थ होंगे। 'दास-बोध' का इसी भाँति का उपदेश है।

अन्य रचनाएँ और अंत—

आपकी रचना में दूसरी विशेषता है करुण-रस। आपके नाम पर कई 'करुणाष्टक' प्रकाशित हैं, जिनमें भक्ति, वात्सल्य और प्रेम इतनी बहुतायत से है कि पढ़ने वाला गद्गद हुए बिना, तल्लीन हुए बिना कदापि रह नहीं सकता। कहीं-कहीं पर तो आपकी करुण पुकार इतनी आर्द्र रहती है कि उसको सुन कर पत्थर के समान हृदय भी पिघल जाता है और नयन से अश्रुओं की

वर्षा होने लगती है। महाराष्ट्र में छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को भी ये 'करुणाष्टक' और 'मनाचे श्लोक' (मन को बोध) पढ़ाये जाते हैं।

आपका एक 'युद्ध-काण्ड' मिला है। उसको पढ़ कर वीर रस की सच्ची कल्पना जागरित हो उठती है। उसकी कठोर तथा आवेश लाने वाली वर्णरचना पाठकों को वस्तुतः समराङ्गण पर उपस्थित करती है। उसको पढ़ने वाला निर्वीर्य भी अपनी दुर्बलता को भूल कर रणमद से स्फुरित हो उठता है। आप के समकालीनों में जो मुख्य व्यक्ति थे, जिनका महाराष्ट्र के धार्मिक, साहित्यिक और राजनैतिक सङ्घटनों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था, उनमें से साधुश्रेष्ठ भक्तप्रवर श्री तुकाराम, कवि शिरोमणि भक्त-श्री वामन पण्डित तथा श्री शिवाजी महाराज के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके कार्यों का उल्लेख इसी लेख में यथासम्भव आ जायगा। शिवा जी ने स्वामी जी को गुरु मान लिया था और उस का चिन्ह भगवा (गेरुआ) झण्डा अपने राज्य में प्रचलित किया था। आपकी ही प्रेरणा से शिवाजी ने 'राज व्यवहार कोष' की रचना करवायी थी, जिसमें शुद्ध संस्कृत राजकीय परिभाषा का अङ्गीकार किया गया है। अपनी असाध्य तपश्चर्या, निःस्पृहता तथा निर्भीकता आदि गुणों के कारण महाराष्ट्र की जनता पर रामदास स्वामी का अच्छा प्रभाव था। जनता का विश्वास है कि आप श्री हनूमान् जी के अवतार थे और उन्हीं की कृपा से आपको प्रभु रामचन्द्र जी का साक्षात्कार हुआ था। आपका मुख्य मठ 'चाफल' नामक ग्राम में था और आप के रहने का प्रबन्ध शिवाजी के प्रयत्न से एक क़िले में किया गया था जिसको 'सज्जनगढ़' कहा जाता है। उसी क़िले पर आपकी समाधि है। इस बालब्रह्मचारी का वैकुण्ठवास शालिवाहन शक* १६०३, माघ कृष्णा ६ मी (फरवरी, सन् १६८२) के दिन हुआ। यह दिन महाराष्ट्र में "दास-नवमी" के नाम से प्रसिद्ध है और उस दिन भिन्न भिन्न स्थानों पर पुण्यतिथि-उत्सव भी मनाया जाता है। बहुत से भावुक सज्जन उस दिन व्रत भी रखते हैं।

३—श्री समर्थ रामदास का कार्य और उनकी योग्यता

आज और चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व—

यह वैज्ञानिक युग है। इसमें पैसे वालों को किसी बात की भी कमी नहीं हो सकती। जिस पदार्थ की कमी भासमान होगी, नूतन आविष्कारों से शीघ्र ही उसकी पूर्ति की जायगी। किन्तु इतना होने पर भी कमी है, एक बात की। मानसिक शान्ति या समाधान किसी को भी नसीब नहीं है। इसी न्यूनता की तृप्ति करने के लिए इतने भारी व्यापक कार्य का आयोजन हो रहा है। आवश्यकताओं की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ती जायगी, वैसे वैसे ही समाधान कोसों दूर पलायन करता रहेगा। छाया के पीछे दौड़ने से छाया हाथ थोड़े ही लग सकत

* महाराष्ट्र और प्रायः दक्षिण भारत में सर्वत्र यही गणना वर्तमान है। इतिहास आदि में भी इसी शक का प्रयोग किया जाता है, जैसा कि उत्तरी भारत में विक्रम संवत् का। —लेखक

है ? यह केवल लिखने भर की बात नहीं है, अनुभव ने उसको प्रत्यक्ष कर दिया है। रेल जब तक न थी तब तक शीघ्रजवशाली घोड़ों से ही काम चला कर समाधान माना जाता था। जब से रेल का अवतार हुआ घोड़ों की उपयुक्तता कम होने लगी। भिन्न भिन्न नये वाहनों का आविष्कार प्रारम्भ हुआ। फिर भी समाधान न हुआ। न जाने तृष्णा का कहाँ अन्त होगा ?

आज से पाँच सौ वर्ष की पूर्व स्थिति का अवलोकन कीजिये। तब सब प्रकार का व्यवहार पैदल या घोड़ा-गाड़ी पर ही हो सकता था। ऐसी अवस्था में यात्रा का जो महत्व था वह कुछ और ही था। आज-कल सम्पूर्ण संसार की यात्रा करना भी उतने महत्त्व की बात नहीं हो सकती। उसमें न उतना साहस लगता है और न उतनी भय की आशङ्का होती है। उस समय का प्रवास मानो जीवित को मृत्यु की कराल दंष्ट्रा में ढकेलना ही था। यदि कोई सुदूर प्रवास को निकलता तो सारा गाँव उसकी भेंट कर लेता था—शायद आगे भेंट न हो। इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव उसको गले लगाते और वृद्ध मङ्गलसूचक शुभ आशीर्वादों की उस पर वर्षा करते, जिससे बीच में कोई अन्तराय खड़ा न हो। माता पिता आदि का रोना रोकना कठिन हो जाता था। फिर भी ऐतिहासिकों का कथन है कि अनेक पुरुषों ने, चाहे पुण्य के विचार से हो चाहे और किसी भी कारण से, अखिल-भारतवर्ष की यात्रा कर उसका कोना-कोना टटोला था। कम से कम रामदास स्वामी का उदाहरण तो सामने ही है। इस प्रका[र] अपने प्रियतम जीवन को सङ्कटों का ग्रास बन[ा] कर भी इन महापुरुषों ने पैदल प्रवास का ज[ो] यह विकट काम करना स्वेच्छा से स्वीका[र] किया, उसका क्या कारण था ? किस बात [के] वशीभूत होकर, किस हेतु के विवश करने प[र] इन महात्माओं ने ऐसे भयावह कार्य में पद-प्रक्षेप किया ? **देश की दुरवस्था से।** इसके अतिरिक्त और दूसरा क्या कारण हो सकता है?

स्वामी का कार्य— देश की गुलामी उनके हृदय को छेद रही थी। मुसलमानों के विविध अत्याचारों को देख कर उनकी आत्मा तड़प रही थी। धर्म भ्रष्ट होने लगा, आचार भ्रष्ट होने लगा, विचार भ्रष्ट होने लगा और भाषा भ्रष्ट होने लगी, हिन्दू अपना हिन्दुत्व भूल क[र] भेड़ियों के सङ्ग में भेड़िये बन गये थे। उनको सत्यस्वरूप का दर्शन करानेवाला 'मृगराज' कोई न मिला था। चहुँओर से पतन हो चल[ा] था। अन्धकार में सब के सब व्याप्त थे। इ[स] विचित्र करुण-दशा को देखकर महात्मा रामदा[स] से न रहा गया। उन्होंने सोचा, देश की इ[स] दशा को सुधारना चाहिये। भारत की गरिमा-मयी परम-पुनीता भूमि को दासता से मु[क्त] करने के लिए इसकी सुप्त सन्तान को सिंहनाद से जगाना चाहिये। फिर क्या था ? उन्होंने मातृभूमि की सेवार्थ अपने सुख-दुःखों पर पानी फेरा। विवाह कर वैषयिक सुख के उपभोग करने की इच्छा को लात मार कर आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का परिपालन किया। राजभवन में सुख की नींद लेने की अपेक्षा देश की अवस्था

उन्नत करने के लिए पैदल घूम कर, जङ्गलों में, पहाड़ों की चट्टानों पर सो कर भी देश को जागृत करने का कष्टतम मार्ग अवलम्बित किया। भक्ति के अतिरेक से संसार से निवृत्त होकर लोग अपने कर्त्तव्यों को भूल गये थे; उनको संसार में रह कर ही राष्ट्र-कार्य करने का उचित उपदेश देने के लिए यह कठिन व्रत अङ्गीकार किया।

वे स्वयं विद्वान्, बहुश्रुत और देशकालज्ञ थे। उन्होंने लोकनिरीक्षण और स्वानुभव इन दो बातों में आधे से अधिक जीवन व्यतीत किया। उनका स्वभाव अत्यन्त मृदु और मिलनसार था। लोगों का चित्त आकर्षित करने में वे सिद्धहस्त थे। उन्होंने आसेतु हिमाचल की यात्रा की। उसमें सब धर्म, पंथ, आचार, सम्प्रदाय आदि का रहस्य जान लिया। लोगों में दोष कहाँ हैं, उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है, किस प्रकार की विचारमाला की राष्ट्र को आवश्यकता है आदि बातों का उन्होंने खूब अनुभव किया। पहले समय के पैदल प्रवास में इस प्रकार के बहुत से लाभ होते थे। समर्थ रामदास के इस प्रवास ने महाराष्ट्र का बड़ा लाभ किया। वहाँ राष्ट्रीयता की नयी लहर फैला दी। महाराष्ट्र के लिए यह बात कम गौरव की नहीं है।

किसकी महत्ता अधिक है—रामदास या शिवाजी की?—

श्री शिवाजी महाराज जैसे सुयोग्य व्यक्ति ने स्वामी के विचारों को कार्य रूप में परिणत किया। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यदि शिवाजी महाराज न होते तो समर्थ-रामदास के कार्य का कुछ भी फल न रहता, वह निष्फल हो जाता। और कुछ सज्जनों का कहना है कि यदि समर्थ रामदास न होते तो शिवाजी जैसा व्यक्ति, जो राज्य के झञ्झटों से समय समय पर ऊब कर संन्यास लेने को प्रवृत्त होता था, स्वराज्य-स्थापन के दुष्कर कार्य में सफल न होता। जो हो, हमको तो दोनों पक्षों के मतों में सत्यांश भासमान होता है। रामदास और शिवाजी के एक मन प्राण होने से स्वराज्य संस्थापन का प्रयत्न यशस्वी हो गया। इनमें से किस में उसकी वास्तविक योग्यता थी यह प्रश्न ही व्यर्थ है। 'इंधन श्रेष्ठ या अग्नि श्रेष्ठ' इसी स्वरूप का यह विवाद है। दोनों अन्योन्याश्रित थे। कार्य का श्रेय परस्पर समान रूप से विभक्त हो सकता है। एक के बिना दूसरा निस्तेज था, कार्य में असमर्थ था। एक में जो कमी थी दूसरे ने वह पूरी कर दी और कार्य को परिफलित कर दिया। शिवाजी क्षत्रिय था, राज्य की बागडोर उसने सँभाली। रामदास ब्राह्मण थे, राजनीति के प्रश्नों का रूप प्रसङ्ग प्रसङ्ग पर उन्होंने शिवाजी के सम्मुख रक्खा और उसे उसकी पूर्ति के लिए उत्तेजित किया। एक ढङ्ग से अर्जुन-श्रीकृष्ण या चन्द्रगुप्त-चाणक्य का सा ही सम्बन्ध शिवाजी-रामदास का था। यह दृष्टान्त सर्वाङ्ग परिपूर्ण है, ऐसा कोई भी न समझे। उसके कुछ अंशों में आपत्ति भी उठायी जा सकती है। रामदास आदि सन्तों का कार्य था—लोक जागृति। इनके शिष्यों ने सारे महाराष्ट्र में आग उत्पन्न कर दी थी—सर्वत्र चैतन्यता

उत्पन्न की थी। इस चैतन्यता का लाभ उठा कर उसके आश्रय से मृत-महाराष्ट्र सजीव हुआ और 'हिन्दूपदपातशाही' की स्थापना हुई।

इन दोनों में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध था, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। सन्देह है एक बात में। शिवाजी ने जो स्वराज्य स्थापना की थी, क्या वह स्व-आत्म प्रेरणा से थी अथवा अपने गुरु श्री रामदास की प्रेरणा से? इस पर विवाद चल रहा है, पर अब तक कोई समाधान-कारक निर्णय नहीं हो सका। राज्यस्थापना की प्रेरणा कहीं से भी हुई हो, किन्तु राज्य-स्थापना के पश्चात् उसको व्यवस्थित रूप से चलाने की सूचना बीच बीच में रामदास की ओर से हुआ करती थी। रामदास ने मार्ग-प्रदर्शक (Guide) का काम किया। राज्य के कामों में कभी कभी आने वाली नाना प्रकार की विपत्तियों को देख कर शिवराज के मन में औदासीन्य तथा त्यागवृत्ति उत्पन्न होती थी। तब अपने गुरु-चरणों के दर्शन और उपदेश लेने के लिए वे सज्जनगढ़ या चाफली ग्राम में जाया करता था। रामदास अपने उपदेश से उसकी इस उदासीनता को कर्त्तव्य-परिपालन में परिवर्तित कर देते थे। एक बार साधुवर्य तुकाराम का कीर्त्तन सुन कर शिवाजी ने राज-काज से मन हटा कर एकान्त-सेवन किया था। जब तुकराम को इसका संवाद मिला कि उनके उपदेश से ही यह वैराग्य समुत्पन्न हुआ है तब उन्होंने फिर उपदेश-कर शिवाजी को राज-

गुरु और शिष्य—

कर्त्तव्य का स्मरण कराया और पुनः स्वकर्त्तव्य में नियुक्त कर दिया। इसी प्रकार एक दिन विरक्त हो कर रामदास को राज्य की गुरु-दक्षिणा देकर स्वयं एकान्त में समाधि का योग-साधन करने को शिवाजी ने अनुमति माँगी। उस समय रामदास ने उसको उपदेश दिया, मोह-पटल को दूर हटाया और कहा कि 'यह राज्य 'धर्म' का है, धर्म-राज्य का तुम सञ्चालन करो। इसकी ध्वजा का भगवा (गेरुआ) वर्ण रक्खो और नमस्कार करते समय जौहर ('जयहर' का अभीष्ट रूप) कहने की प्रथा को तोड़ कर 'राम राम' कहने की प्रथा को प्रचलित करो।' तब से भगवा झण्डा मराठों का राष्ट्रीय झण्डा हुआ। इस कथा से रामदास के त्याग और शिवाजी की आज्ञा-पालनतत्परता का पता चलता है। रामदास की प्रेरणा से ही कर्नाटक (तञ्जावर) प्रान्त पर आक्रमण कर शिवाजी ने उसको जीत लिया।

समर्थ रामदास पश्चात् के उनके स्थापित मठों में साम्प्रदायिकता ने प्रवेश किया। मठ के महन्त की गद्दी पर किसको बैठना चाहिये इसी पर विवाद प्रारम्भ हो गया और इसी कारण रामदासी मठों का राष्ट्र-जागृति करने का जो कार्य था वह शिथिल हो कर शीघ्र ही नष्ट हो गया। कुछ काल के पश्चात् तो इन मठों ने राजनीति से अपना सम्बन्ध हटा लिया। श्री समर्थ रामदास ने यद्यपि गुरु-ही परम्परा को तोड़ने के लिए स्वयं न किसी को गुरु किया और न किसी मनुष्य को अपना गुरु

तत्पश्चात्—!

ताया, तथापि आज उनके पीछे उनके मठों में ़ु-परम्परा का राज्य चल रहा है। रामदास । कहना था कि मुझे श्रीरामचन्द्र से ही ाक्षात् हुआ है। रामदास के शिष्यों ने ही यह ़ु-परम्परा प्रस्थापित तथा सञ्चालित की ी।

मराठी साहित्य ने भी उसके पश्चात् किसी ाजनैतिक ग्रन्थ को जन्म नहीं दिया। अनेक ़वित्वपूर्ण ग्रन्थ उसके पश्चात् निकले, इसमें ोई सन्देह नहीं। पर उनमें राष्ट्रीयता की गन्ध ाक न थी। इसका कारण स्पष्ट ही है। वराज्य था, लोग आनन्द में मौज ़ड़ाते रहे। उसमें राष्ट्रीयता को स्थान ा था। राजपूतों की चारण, भाट, वन्दी ्रादि रखने की प्रथा कितनी अच्छी थी। उनके ुख से पूर्वजों की कथाओं का वीर-रस-प्रधान वर्णन सुन कर अपने पूर्वजों के कृत्यों को सहसा स्मरण करके उस संरक्षित कीर्ति-धन की रक्षा के लिए प्रत्येक राजपुरुष लालायित हो जाता था। मराठों के इतिहास में ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं। शाहीरों के पोवाड़े हुआ करते थे। पर उनको राजाओं की ओर से कभी उत्तेजना न मिलती थी। राजाश्रय के अभाव में वह बात नष्ट हो गयी। पेशवाई के अन्तिम दिनों में तो महाराष्ट्र में शृङ्गारमय कवित्त का ज़ोर बढ़ गया और सो भी तमाशों में गाने योग्य थे। इसका नतीजा जो होना था वही हुआ। रामदास के शिष्य 'शिवबा' का स्थापित 'स्वराज्य' परकीयों के नारकीय हाथों में गया और अब तक उसमें परिवर्त्तन करने का शौर्य किसीने भी नहीं दिखाया। जिन्होंने दिखाया वे अयशस्वी सिद्ध हुए। देखें, कौन 'माई का लाल' इस काम में सफलता प्राप्त कर 'जननी' को मुक्त करेगा?

—हरिगोविन्द चोरवणकर

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध ।

शिवाजी ने ज्येष्ठ सं० १७३१ में राजगद्दी पर बैठने का उत्सव मनाया। अब तक वे राज्य-शक्ति का सङ्गठन नहीं कर सके थे, उन्हें अपने विजयों से ही अवकाश नहीं था। जब औरङ्गज़ेब ने 'पहाड़ी चूहे' से पराजय स्वीकार करके उनके प्रभुत्व को मान लिया, तब शिवाजी ने बड़े समारोह के साथ रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक कराया।

मराठा साम्राज्य की नींव शिवाजी ने अपने हाथों से रक्खी। यदि शिवाजी जैसा कर्मण्य वीर तथा राजनीति कुशल सम्राट प्रारम्भ में उत्पन्न न होता तो मराठा शक्ति वैसे समृद्धि-शिखर पर कदापि न पहुँच सकती।

हम प्रस्तुत लेख में शिवाजी के विजयों पर विस्तृत विचार नहीं करना चाहते, हमारा अभिप्राय उनकी राजनीति-दक्षता को प्रदर्शित करने का है। शिवाजी न केवल साम्राज्य का निर्माण करना जानते थे। अपितु वे साम्राज्य शक्ति का सङ्गठन करना भी जताते थे। उनकी शासन-प्रणाली, यद्यपि वर्त्तमान जनतत्व-प्रणाली के अनुकूल न थी। तथापि अपने समय में वह अद्वितीय थी। शिवाजी स्वयं बहुत पढ़े-लिखे न थे। उन्होंने कभी राजनीति शासन का क्रमबद्ध अध्ययन न किया था। समर्थ गुरु रामदास से भी उन्होंने सामान्य राजनीति-तत्वों का परिशीलन किया था। वे बाल्यावस्था से ही विजय की महत्वाकांक्षाएँ रखते थे, उनका हृदय वीरत्व के अद्भुत कार्यों का प्रदर्शन करने में ही व्याकुल रहता था। अपनी पूज्या माता से भी उन्होंने युद्ध विद्या के अभ्यास का ही प्रेम प्रकाशित किया था। बीजापुर के राज्य में रहते हुए ही उन्होंने समीपवर्त्ती इलाकों पर छापा मारना प्रारम्भ कर दिया था और अनेक स्थानों से चौथ वसूल करने में उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई थी।

शिवाजी ने इसी सिलसिले में अफ़ज़ल खाँ का सामना किया। इस अवसर पर उन्होंने प्रथम बार अपनी राजनीति विशारदता का परिचय देकर अपने शत्रु का, उसके कुटिल अभिप्राय के सफल होने से पूर्व ही, प्राणान्त कर दिया। धार्मिक दृष्टि से चाहे उस बध को अनुचित बतलाया जाय, परन्तु राजनैतिक दृष्टिकोण से इसमें कोई अनौचित्य नहीं हो सकता। हम यहाँ पर आचार-शास्त्र के विशेष विश्लेषण में नहीं पड़ना चाहते, हमारे उक्त घटना की ओर सङ्केत करने का प्रयोजन इतना ही है कि शिवाजी अपने विजयों में भी विजेतृत्व के साथ अपूर्व राजनीतिज्ञता का प्रकाशन करते थे। मराठे संख्या में बहुत न्यून थे, परन्तु उन्होंने मुग़लशक्ति का सफल साम्मुख्य किया। यह केवल शिवाजी की कूट राजनीति-कुशलता का परिणाम था। पर्वतों में छिप कर उन्होंने

शत्रु के नाकों-दम कर दिया। मुग़लों से उन्हें पराजय भी प्राप्त करनी पड़ी, परन्तु उससे उनकी सङ्गठित-शक्ति का विशेष ह्रास न हो सका। इसके विपरीत मुग़ल-शक्ति का, एक विजय से भी पर्याप्त ह्रास हो जाता था। एक ऐतिहासिक के निम्न शब्द उक्त कथन को अधिक स्पष्ट कर देते हैं:—

They (Marathas) suffered very little by their defeats and gained much by their victories. This guerrilla tactics wore down the Moghals and exhausted their resources and they proved unequal to the task of hunting down such an agile foe.

औरङ्गज़ेब ने हार कर अपने आप स्वीकार कर लिया था कि वह शिवाजी को वश में न ला सका। उसकी दक्षिणनीति (Deccan Policy) सर्वथा असफल रही। वास्तव में शिवाजी के प्रयत्नों से ही मुग़ल साम्राज्य औरङ्गज़ेब के जीवनकाल में ही खोखला हो गया था। वृद्ध मुग़ल बादशाह तो उस जीर्ण वृक्ष को केवल थामे हुए था। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही वह विशाल भवन भग्न होकर भूमिसात् हो गया।

शिवाजी की राजनीति कुशलता के सम्बन्ध में इतने ही प्रारम्भिक कथन के उपरान्त हम उनकी शासन-प्रबन्ध-कुशलता का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

शिवाजी ने अपने राज्य को तीन भागों में बाँट रक्खा था। उत्तर का इलाका मोरो त्रिम्बक पिङ्गले के हाथ में था। दक्षिण देश आणा जी दत्तों के हाथ में तथा दक्षिण पूर्व देश दत्ता जी पन्त के हाथ में था। इनके अतिरिक्त मैसूर राज्य का उत्तरी भाग, मद्रास का बेलारी, चित्तूर और आर्काट भी शिवाजी ने अपने राज्य प्रबन्ध के अन्तर्गत कर लिए थे। इन सब इलाकों में स्थान स्थान पर क़िले खड़े कर दिये गये थे और उनमें सेनाएँ रख दी गयी थीं। शिवाजी की सेना अनेक स्थानों से चौथ वसूल किया करती थी, तभी वे लूट मार से बच सकते थे।

अष्ट-प्रधान

दादा जी कोण्डदेव के ज़माने में कुल चार प्रधानों की एक कौन्सिल हुआ करती थी। उनके निम्न चार सदस्य हुआ करते थे—

१ पेशवा

२. मजमूआदार

३. दबीर

४. सबनीस़

पेशवा प्रधानामात्य (Chief minister) होता था। अन्य अमात्य सेना, कोष आदि विभागों का निरीक्षण किया करते थे। शिवाजी ने राज्याभिषेक कराने के पश्चात पुनर्वार शासन-प्रणाली को नियमबद्ध बनाने का निश्चय किया। उन्होंने केन्द्र-शासन (Central Government) को निम्न पद्धति पर सङ्गठित किया।

समस्त राज्य-शासन के उत्तराधिकारी स्वयं शिवाजी थे। उनकी शक्तियाँ अपरिमित (Unlimited) थीं। वे राष्ट्र के किसी विभाग

के कार्य को अपने आप कर सकते थे। यद्यपि उन की शक्तियों पर कोई शासन-विहित (Constitutional check) अङ्कुश न था; तथापि उन्होंने अपने आप अपनी शक्तियों को सीमित कर लिया था। दूसरे शब्दों में वे एक प्रजाप्रिय राजा (Benevolent King) थे।

उन्होंने राज्य-शासन को आठ विभागों में बाँट दिया था, जिन पर एक-एक अमात्य नियुक्त था। चितनीज़, फतनीज़, ओटनीज़ आदि उन अमात्यों के सहायक होते थे।

निर्दिष्ट अष्ट प्रधान की रचना निम्न रूप में थी। उसके आठ सदस्य होते थे—

१.—मुख्य-प्रधान
२.—अमात्य
३.—मन्त्री
४—सुमन्त्र
५.—सचिव
६—न्यायाधीश
७—सेनापति
८—पण्डितराव

अनेक ऐतिहासिकों का कथन है कि इस कौन्सिल के ६ सदस्य होते थे। परन्तु नाम के अनुकूल आठ सदस्यों का होना ही अधिक तर्क-सङ्गत प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त सम्भवतः शिवाजी ने अष्ट-प्रधान की रचना के लिए मनुस्मृति प्रभृति प्राचीन शास्त्रों की सहायता ली हो। उनमें आठ सदस्यों का ही एक मन्त्रिपरिषत् बनाने का विधान पाया जाता है—

मौलान् शास्त्रविदः शूरान्, लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्
सचिवान् सप्तचाष्टौ वा, कुर्वीत सुपरीक्षितान् ॥ मनु

इसी प्रकार—

सुमन्त्रः, पण्डितो मन्त्री, प्रधानः सचिवस्तथा।
अमात्यः प्राड्विवाकश्च, तथा प्रतिनिधिः स्मृतः ॥

श्लोक के अनुसार शुक्राचार्य ने भी आ[ठ] सभासदों की ही व्यवस्था की है। कौटिल्य क[ा] मन्त्रिपरिषत् भी आठ सदस्यों का है।

देश भक्त महादेव गोविन्द रानाडे ने अप[ने] महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विवेचन में अष्ट-प्रधा[न] की वर्तमान Governer General's Executive Council से उपमा दी है। यद्य[पि] यह तुलना सर्वांश में सत्य नहीं हो सकत[ी] तथापि कुछ अंशों में हम अष्ट प्रधान को उस वैज्ञानिक शैली पर निर्मित हुआ पाते हैं, जि[स] पर आधुनिक वायसराय की कौन्सिल क[ा] निर्माण है।

इसी सम्बन्ध में अष्ट-प्रधान के प्रत्ये[क] सदस्य का कर्तव्य वर्णन करना भी आवश्य[क] है। हम संक्षेप में ही उनका निर्देश करेंगे।

मुख्य प्रधान की स्थिति वर्तमान गृ[ह] सदस्य (Home Member) के समान होत[ी] थी। वह साधारणतया सारे शासन-प्रबन्ध क[ा] निरीक्षण करता था। राजनीति-विभाग उसी [के] अधीन होता था और वही राज्य के आय-व्य[य] की आयोजना करता था। परन्तु मुख्यत[या] अमात्य उसको इस काम में सहायता करत[ा] था। उसकी स्थिति वर्तमान अर्थ सदस[्य] (Finance Member) के समान थी।

मन्त्री राजनीति विभाग (Politica[l]

department) का अध्यक्ष था। वही राजा की देख-रेख करता था। मन्त्री ही चर-विभाग (C. I. D.) का मुख्य अधिकारी था।

सुमन्त्र परराष्ट्र सचिव (Foreign minister) होता था। वही अन्य देशों के साथ पत्र-व्यवहार करता और अपनी राष्ट्र-सत्ता की अन्य देशों में रक्षा करता था। दूतों का स्वागत आदि करना उसी के अधिकार में था। अपने राज्य के दूतों की व्यवस्था भी वही करता था।

सचिव चिट्ठी-पत्री आदि के विभाग का अध्यक्ष था। वही राजा के आज्ञापत्र लिखा करता था।

न्यायाधीश हिन्दू शास्त्रों के अनुसार न्याय किया करता था। उसके निर्णय को राजा प्रायः अन्तिम निर्णय माना करता था। यहाँ पर इतना कथन आवश्यक है कि शिवाजी के समय में न्यायविभाग (Judiciary) तथा शासन-विभाग (Executive) के पृथकत्व का राजनैतिक सिद्धान्त उदित न हुआ था। अतएव मन्त्रिपरिषद् में ही न्यायाधीश के स्थान की व्यवस्था की गयी थी।

सेनापति का पद वर्त्तमान Commander-in-Chief के सदृश था। वह पैदल तथा सवार सेनाओं का अध्यक्ष होता था। शिवाजी प्रायः स्वयं भी अपनी सेना शक्ति का निरीक्षण किया करते थे।

पण्डितराव का स्थान राज्यपुरोहित के समान था। वह राष्ट्र के धर्म-विभाग का अध्यक्ष होता था। राज्याभिषेक तथा अन्य अवसरों पर पण्डितराव ही राजा का परामर्शदाता होता था। उस समय राष्ट्र का धर्म (State Religion) हिन्दू धर्म था। राजा की ओर से अनेक बार धर्म विधान होते थे। इन सब के लिए पण्डितराव की अत्यन्त आवश्यकता होती थी। आजकल धर्माध्यक्ष की संख्या प्रायः सब देशों से लुप्त हो चुकी है। परन्तु शिवाजी के समय में वह विद्यमान थी। उस समय तक धर्म और राष्ट्र पृथक् न होसके थे।

अष्ट-प्रधान की रचना के सम्बन्ध में इतना कथन और भी शेष है कि सेनापति के पद को छोड़ कर अन्य सब पदों पर ब्राह्मण ही नियुक्त होते थे। प्रायः वे वंशागत न होते थे। उन्हें किसी प्रकार को जागीर भी न दी जाती थी। सेनाओं में भी जागीर देने की प्रथा न थी। शिवाजी जागीर देने की प्रथा के दुष्परिणामों को भली प्रकार जानते थे। वस्तुतः इससे उनकी दूरदर्शिता का पता चलता है। राज्यशक्ति को खोखला करने के लिए जागीर-प्रथा से बढ़ कर अन्य कोई प्रथा नहीं हो सकती। फिरोज़-शाह ने इस प्रथा को प्रचलित किया, बड़े-बड़े जागीरदार और जमींदार राज्यशक्ति का मुक़ाबला करने के लिए खड़े होगये। अतएव दिल्ली सल्तनत का सहसा अधःपात हो गया। विजेता विलियम ने इंग्लैण्ड में इसी प्रथा का प्रारम्भ किया, परन्तु उसने अपनी बुद्धिमत्ता से इसके दुष्परिणामों को दबाये रक्खा। अन्त में जाकर इस प्रथा का बुरा फल दृष्टिगोचर हुआ और हेनरी द्वितीय ने अपने शासनविधानों से इस की इति श्री की।

शिवाजी की राजनीति-विशारदता इसी एक दूरदर्शिता के कार्य से स्पष्ट हो सकती है। अपठित होते हुए भी उन्होंने शासन-प्रबन्ध में अपूर्व कुशलता प्रदर्शित की।

न केवल केन्द्र-शासन में, परन्तु ग्राम-शासन में भी शिवाजी ने अद्भुत दक्षता दिखाई। उन्होंने ग्राम्य संस्थाओं को उत्साहित किया। जिन स्थानों पर पञ्चायतों की रचना अभी न हुई थी, शिवाजी ने उनकी रचना करवाई। इन पञ्चायतों के हाथ में गाँव के सब प्रबंध करने का अधिकार था। वे न केवल स्थानीय सफ़ाई, शिक्षा आदि का प्रबन्ध करते थे, वरन न्याय करने की शक्ति भी उन्हें पर्याप्त मात्रा में दी गयी थी। दीवानी अभियोग तथा छोटे छोटे फ़ौजदारी के अभियोग भी वे आपस में स्वयं निर्णय कर लिया करते थे। ग्राम के प्रधान का नाम पटेल होता था। यह नाम आज तक भी चला आता है। यही अधिकारी केन्द्र-शासन के प्रति ग्राम के लिए उत्तरदाता होता था। प्रायः वही गाँव का भूमि कर एकत्रित करता था और राजा के कोष में दे देता था।

ज़िलों का शासन केन्द्रशासन की पद्धति पर होता था। प्रत्येक ज़िले का एक अधिकारी होता था, जिसकी सहायता के लिए आठ सहायक होते थे। जो लेख, कोष तथा पत्र-व्यवहार आदि का काम करते थे। इस प्रकार सारे देश का, विभागों में, सुचारु रूप से शासन-प्रबन्ध होता था, जिससे प्रजा समृद्ध तथा सम्पन्न होगयी थी।

सैनिक प्रबन्ध

शिवाजी की शक्ति का मूल उनका एक क़िला तथा दो पैदल सेना थी।

क़िले पहाड़ों पर होते थे। ये बहुत पक्के पत्थरों से बनाये जाते थे। इन्हीं में शिवाजी की सेनाशक्ति निवास किया करती थी। इन क़िलों में तीन अधिकारी होते थे, जो सब समान पद (equel status) के व्यक्ति होते थे। इन अधिकारियों के नाम निम्न थे :—

१. हवालदार

२. सबनीज़

३. सरनौबत

सरनौबत सैनिकों को व्यायाम (Drill) कराता था। सबनीज़ सब क़िले वालों की उपस्थिति अङ्कित करता था। रात को क़िले के सब दरवाज़े बन्द कर दिये जाते थे।

इन क़िलों में तोपें, बन्दूकें तलवारें तथा पत्थर आदि बन्द रहते थे जो अवसर पर काम आते थे। डाकों द्वारा रसद लूट लिया जाता था और अधिकांश में उसी से गुज़र की जाती थी।

पैदल सेना के पाँच अधिकारी होते थे—

(१) **नायक** सब से छोटा अधिकारी होता था। इसके अधीन सात सिपाही होते थे।

(२) हवालदार पाँच नायकों के ऊपर होता था।

(३) जुमलेदार पाँच हवालदारों के ऊपर होता था।

(४) सूबेदार पाँच जुमलेदारों पर होता था।

(५) पाँचहज़ारी दस सूबेदारों के ऊपर होता था।

इन सब अधिकारियों के पास गुप्तचर, दूत आदि भी होते थे। शिवाजी की एक सेना में

८०० अफ़ग़ान भी थे। सेना सम्बन्धी नियम भी बड़े कड़े थे। युद्ध में कोई स्त्री साथ नहीं जा सकती थी। मद्य आदि नशे की वस्तुएँ भी, लड़ाई के स्थान पर निषिद्ध थीं। जो इन नियमों का उल्लङ्घन करता था, उन्हें कठिन दण्ड दिया जाता था।

पैदल सेना के अतिरिक्त शिवाजी ने राज्य तथा अश्व-विभाग का भी आयोजन कर रक्खा था। थोड़ी बहुत सामुद्रिक सेना की भी व्यवस्था थी। इन सब शक्तियों से उन्होंने मराठा साम्राज्य की जड़ों को मज़बूत बना दिया था। पुलिस का प्रबन्ध भी था, परन्तु बहुत उत्तम न था। शिवाजी ने मर्दुमशुमारी का भी प्रबन्ध किया था।

शिवाजी के समय अनाथों, स्त्रियों तथा असहायों के प्रति बड़े दया-भाव से देखा जाता था। लड़ाइयों में भी उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया जाता था। अनेक बार मुस्लिम महिलाएँ शिवाजी के हाथ में पड़ गयीं परन्तु उन्होंने कभी उनको दुःख देने का प्रयत्न नहीं किया। अपितु उन्हें अपने अपने घरों में सादर पहुँचा दिया। मुसलमानों के इतिहास प्रसिद्ध अत्याचारों के विरुद्ध शिवाजी का यह दयापूर्ण व्यवहार अत्यन्त सराहनीय है।

शिवाजी के छापों के सम्बन्ध में प्रायः आक्षेप किये जाते हैं। ऊपर बतलाया जा चुका है कि उस समय डाके मार कर रसद और ख़ज़ाना लूट लिया जाता था। उनकी सेनाओं के इन डाकों से बचने के लिए, चौथ नामक एक टैक्स था, जिसके देने पर उनसे मुक्त हुआ जा सकता था। शिवाजी ने इस प्रथा को बहुत काल तक प्रचलित रक्खा।

नैतिक दृष्टि से सेनाओं के ये आक्रमण अनुचित तथा असभ्यतापूर्ण थे। परन्तु आवश्यकतावश यदि शिवाजी ने ऐसा किया तो हम उन आक्रमणों को सभ्य मान सकते हैं। यदि शिवाजी इनके बिना भी अपनी साम्राज्यशक्ति का सङ्गठन कर सकते तो अधिक उचित था।

शिवाजी के सैनिक सबल तथा सुदृढ़ाङ्ग होते थे। छोटे कद वाले, सुडौल घोड़ों पर चढ़ कर वे बड़ी स्फूर्ति से पहाड़ों की चोटियों पर कूदते फाँदते रहते थे। मुग़ल-सेनाओं का उनके साथ किसी तरह सामना न हो सकता था। मराठों के शरीर हलके और भरे हुए थे। वे अपने साथ थोड़ी सी रसद का सामान रख कर किसी जगह लड़ाई करने के लिए प्रस्तुत हो जाते थे। उनकी युद्ध-क्षमता अपूर्व थी। इसी सैनिक शक्ति के कारण शिवाजी को विस्मयजनक सफलता प्राप्त हुई। वस्तुतः यदि ऐसे कार्य परायण, कुशल सैनिक शिवाजी को प्राप्त न होते तो कदाचित् मराठा साम्राज्य की स्थापना न हो सकती।

आर्थिक प्रबन्ध

अन्त में हम दो चार शब्द शिवाजी के आर्थिक प्रबन्ध के सम्बन्ध में भी लिख देना उचित समझते हैं।

शिवाजी की आय-व्यय-व्यवस्था अवैज्ञानिक न थी। विशेषतः भूमिकर का प्रबन्ध अत्युत्तम था। इस प्रबन्ध के अनुसार

भूमि चार भागों में विभक्त की गयी थी। जिस पर क्रमशः १२, १०, ८ तथा ६॥ मन गेहूँ प्रति एकड़ कर लगाया जाता था। कर नक़द भी दिया जा सकता था। वंशागत-क्रम के इस कर के संग्रहकर्त्ता (Collector) पटेल होते थे। ज़मीनों का समय समय पर परिवीक्षण (Survey) भी किया जाता था, जिसके अनुसार कर पद्धति में परिवर्तन किया जाता था।

किसानों को आवश्यकतानुसार तक़ावी, बीज, बैल आदि भी दिये जाते थे। नहरों आदि का प्रबन्ध भी उत्तम था।

शिवाजी ने रैयतवारी प्रथा को प्रचलित किया था। ग़रीब किसानों से अत्याचार पूर्वक कभी कर नहीं लिया जाता था। शिवाजी ने मीरासदारी, कुलकर्णी, देशमुख आदि पहले वाले अधिकारियों को अधिकारों से वञ्चित कर दिया था, क्योंकि वे अत्याचार से भूमि कर लिया करते थे। साधारणतया कृषि-उत्पत्ति का दो तिहाई भाग राज्य-कोष में जाया करता था।

शिवाजी ने नक़द वेतन देने का ही प्रबन्ध रक्खा था। जागीरें देना बन्द कर दिया था। इससे वे अपनी साम्राज्यशक्ति को सुरक्षित तथा सङ्गठित रख सके थे।

भूमि कर के अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का श्रोत सिक्के बनाना (Coinage) था। सिक्के बनाने का कार्य साम्राज्य तथा राज्य की ओर से किया जाता था। उसके लिए मुद्रा कर भी लिया जाता था। अपने आप सिक्के बनाने के लिए व्यक्तियों को राज्य से विशेष आज्ञा पत्र (License) लेना पड़ता था।

राष्ट्रीय आय का एक और स्रोत चौथ तथा सर्वसमुखी कर था। ये कर उन्हीं स्थलों से लिये जाते थे, जो अपने को मराठा सेनाओं के डाकों तथा लूट से मुक्त करना चाहते थे।

निस्सन्देह राष्ट्रीय आय व्यय का वैज्ञानिक प्रकार शिवाजी को विदित न था। परन्तु तत्कालीन अवस्थाओं में शिवाजी का अनुचित रूप से अर्थसञ्चय करना अत्यन्त आपत्तिजनक नहीं है।

यदि हम उन कठिनाइयों को अपने सम्मुख रख सकें, जिन्हें उस मराठा वीर ने साम्राज्य-स्थापन के लिए सहन किया तो हम शिवाजी-की इन अपूर्णताओं को क्षम्य समझ सकते हैं। आँग्ल राज्य के संस्थापकों ने, क्या भारतवर्ष में ऐसे ही अनुचित कार्य नहीं किये ? वारन-हेस्टिङ्ग्ज का बेगमों से बलात धन हरण करना, चेतसिंह को अत्याचारों से पीड़ित करना इत्यादि इन्हीं अशिष्ट कार्यों के उदाहरण हैं।

शिवाजी का शासन नैतिक तथा राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। आधुनिक समय के राजनीति-विशारद शिवाजी के राज्य-प्रबन्ध से अनेक उदात्त तत्वों को ग्रहण कर सकते हैं। कम से कम हम भारतीयों के लिए शिवाजी का शासन-प्रबन्ध गौरव का विषय है। हम शिवाजी को न केवल वीर विजेता की भाँति वरन कुशल राष्ट्रनिर्माता की भाँति भी अभि-मानपूर्वक स्मरण करते हैं।

—इन्द्र विद्यालङ्कार

छत्रपति शिवाजी का जंगी ज़ोर

जिस प्रकार नैपोलियन वोनापार्ट सैन्य-सङ्गठन और उसके सञ्चालन का प्रकाण्ड पण्डित था, अपनी सेना को हर प्रकार से प्रसन्न रखते हुए उनको वश में रखने में सिद्ध-हस्त नायक था, उसी प्रकार वीर श्रेष्ठ शिवाजी सङ्गठन विधि के अनुपम ज्ञाता और शासन-प्रबन्धकारिणी संस्थाओं के निर्माण-शास्त्र में असाधारण योग्यता रखते थे। नैपोलियन के सिपाही कहा करते थे—"हमको हमारे नायक (नैपोलियन वोनापार्ट) ने क्या नहीं दिया ? सब कुछ दिया; हाँ उसे उपभोग करने का समय अवश्य नहीं दिया।" कारण यह था कि उसकी सेना वर्ष भर प्रायः चढ़ाइयों में ही लगी रहती थी। शिवाजी की सेना भी उसी प्रकार परिश्रम, कष्ट-सहिष्णुता, लक्ष-रत रहने के अटल सिद्धान्तों पर सङ्गठित थी। किसी के आश्रित जीव को जिस प्रकार उदर-पोषण के अतिरिक्त और चिन्ता नहीं रहती, शिवाजी के सैनिकों को भी उसी प्रकार रण-क्षेत्र और शत्रु-मर्दन के अतिरिक्त कोई चिन्ता नहीं थी। नैपोलियन के समस्त जीवन में उसके सैनिकों ने केवल एक बार उसे रोते देखा था; सो भी उस समय जब आस्ट्रिया विजय करने पर उसका जनरल मारा गया। ठीक ऐसी ही अवस्था शिवाजी की हुई। उसने १७-फ़रवरी सन् १६७० ई० में 'सिंहगढ़' क़िला (अहमदनगर) फ़तह किया पर सामन्त तानाजी काम आये। तब वे 'गढ़ आला पण सिंह गेला' कह कर खूब रोये। वे अपने वीरों पर कितना उत्कृष्ट प्रेम रखते थे !

शिवाजी की शासन-सभा में आठ मन्त्री थे। प्रधान मन्त्री मोरोपन्त पिङ्गले पेशवा था। उसकी बैठक राजसिंहासन के दायीं ओर पहिली होती थी। उसे १२००० हुण वार्षिक वेतन मिलता था। उस पर प्रायः प्रत्येक विभाग का उत्तरदायित्व होता था। युद्ध-मन्त्री का स्थान एक था पर अधिकारी दो रक्खे जाते थे। प्रत्येक को १०००० हुण वार्षिक वेतन दिया जाता था।* राजकाज के बदले में जागीरें किसी को नहीं मिलती थीं। सब का वेतन नक़द सिक्कों में चुकाया जाता था। रायगढ़ में उन की टकसाल अलग थी।

कोई सैनिक इस बुनियाद पर पद नहीं पा सकता था कि उसके पुरखा उक्त पद पर रह चुके थे, बल्कि भर्ती होने के समय प्रत्येक की जाँच वे स्वयं करते थे। तब अपने किसी सेनापति की ज़मानत पर योग्यतानुसार नौकरी के पद पर नियुक्त करते थे। अपने ग़दर के तुमुल-

* एक हुण साढ़े तीन रुपये के बराबर होता था।

मानों से उनका कोई द्वेष न था। हिन्दुओं की भाँति उन्हें भी योग्यतानुसार सेना में पद मिलते थे। अनधिकार चेष्टा-निरत अथवा सशङ्क यवन ही उनकी आँखों के काँटा हुआ करते थे। उनके जल-सेनाध्यक्ष प्रायः मुसलमान ही थे। पैदल सेना में राघोजी वल्लाल की मातहती के १००० सैनिकों में ७०० पठान थे।

प्रधान मन्त्रि-मण्डल केवल ज़बानी आय-व्यय करने वाला न था, अपितु वह लोग भी सिपाही थे—पण्डितराव (राज्य पुरोहित) और न्यायाधीश (Lord Justice) को छोड़ कर शेष छहों सेना में भी काम करते थे। प्रधान-सेनापति के पद पर प्रतापराव गुर्जर और हम्मीरराव मोहिते थे। सेना सम्बन्धी प्रत्येक प्रश्न के ये ही उत्तरदाता थे, पर घुड़सवार सेना (Cavalry) पर इनका नेतृत्व सीधा (Direct) रहता था।

सम्पूर्ण सेना चार मुख्य अङ्गों से बनी थी, (१) पैदल (२) घुड़सवार (३) जल-सेना (४) जासूसी विभाग। राजधानी में इनको समय पर सहायता देने के लिए तोशख़ाना (शस्त्रागार) फ़ीलख़ाना, अस्पख़ाना, नक्कारख़ाना, तोपख़ाना, शुतुरख़ाना, फ़रासख़ाना (खेमे, तम्बू आदि) रसदख़ाना और रिज़र्व्ड सैनिक कोर अलग खुले हुए थे. एक-एक दारोग़ा प्रत्येक की देख-भाल के लिए स्थित था।

सेना की हिफ़ाज़त और लड़ाई के सुभीते के लिए शिवाजी ने अपने ४०० मील लम्बे-चौड़े राज्य में २८० क़िले बनवा रक्खे थे। प्रत्येक क़िले का भार एक मराठा हवल्दार के अधीन होता था। लिखा पढ़ी और हिसाब-किताब करने के लिए उसे सबनीस (मुंशी) और कारखानीस (Accountant) दिये गये थे। ये तीनों क़िले की देख-भाल, उसके शासित प्रदेश की नज़रखानी, कर वसूली, गोला-बारूद और मरम्मत का प्रबन्ध किया करते थे। हवल्दार का कर्तव्य था कि प्रतिदिन सूर्यास्त होने पर वह क़िले के चारों फाटक बन्द करे, प्रातःकाल खोले, फाटकों की चाभियाँ अपने सिरहाने रक्खे और रात को पहरेदारों की जाँच करे। सेनापति भी रात को सेना और क़िले का निरीक्षण करने निकला करता था। कोंकण के आस-पास सैह्याद्रि के पहाड़ी प्रदेशों में पूर्व वाले मैदान में आज भी बहुत से टूटे-फूटे क़िले और गढ़ मिलते हैं। इन में से लगभग ३०० शिवाजी के बनवाये हुए थे। उनमें अनाज और गोला-बारूद यथेष्ट मात्रा में रहता था ताकि कभी घेरा पड़ जाने पर कठिनाई न पड़ जाय। क़िले पहाड़ियों पर बने थे, उनके भीतर जाने के मार्ग बड़े पेचीदे और बेढब होते थे; उनमें गुप्त मार्गों का रखना अनिवार्य था।

पूना के आस-पास की जागीर शिवाजी की पैतृक सम्पत्ति थी, उसका शासन उनकी पूज्या माता श्री जीजा बाई के अधीन था। उसे छोड़ कर शेष राज्य को दो नामों से पुकारा जाता था (१) स्वराज्य—जो शिवाजी ने अपने बाहुबल से जीता था और किसी अन्य का उसमें हस्तक्षेप न था। (२) मुग़लाई—जो इलाक़े मुग़ल साम्राज्य अथवा अंग्रेज़ या पुर्चगीज़ की ज़मीन्दारी में थे और जिनसे शिवाजी को चौथ

अथवा सरदेशमुखी मिला करती थी।*

क़िले—

स्वराज्य-रक्षा के निमित्त उन्होंने निम्न-लिखित क़िले बनवा रक्खे थेः—

(१) मावल प्रान्त—मावल, सासवड़ अथवा खेड़ा के ताल्लुकों में १८ बड़े-बड़े पहाड़ी क़िले।

(२) वाई, सितारा और करहड के प्रान्त में १५ क़िले।

(३) पन्हाला प्रान्त—कोल्हापुर के पश्चिमी भाग में १३ क़िले।

(४) कोंकण प्रान्त - रत्नागिरि के इलाके में ५८ पहाड़ी क़िले और सामुद्रिक गढ़ थे।

(५) थाना प्रान्त—कोंकण के उत्तरी भाग में १२ क़िले।

(६) त्र्यम्बक प्रान्त, बागलण प्रान्त — नासिक के पश्चिमी भाग में ६२ क़िले।

(७) घनगड़ प्रान्त—धारवाड़ के दक्षिणी भाग में २२ क़िले।

(८) बेदनोर, कोल्हर और श्री रङ्गपट्टम (आधुनिक मैसूर राज्य) में १८ क़िले।

(९) कर्नाटक प्रान्त—कृष्णा नदी के दक्षिण में १८ क़िले।

(१०) वेलोर प्रान्त—आधुनिक मद्रास हाते के करनाटक प्रान्त में २५ क़िले।

(११) तंजोर प्रान्त में ६ क़िले।

ये पहाड़ी क़िले, राज्य के पहरेदार और पैदल सेना उनके प्राणों की नाईं थे।

पैदल सेना—

इस सेना में घाट, मावल और कोंकण प्रान्त से ही रँगरूट भर्ती किये जाते थे—वहाँ के 'हेटकरी' जाति के सिपाही परम विश्वासी और पहाड़ी लड़ाईमें बड़े दक्ष होते थे। वे स्वयं अपने हथियार लाते थे। गोली बारूद, बख्तर आदि लड़ाई का सामान राज्य देता था। ये लोग विलक्षण लक्ष्यवेधक होते थे। पोशाक में जाँघिया, कमरबन्द साफ़ा और दुपट्टा रखते थे। मावल प्रान्त वाले प्राणों की बाजी लगा कर लड़ने वाले होते थे। महाराणा प्रतापसिंह के लिए जिस प्रकार 'भील' सर्वस्व थे, शिवाजी के लिए 'मावल' उसी प्रकार प्राण न्योछावर करते थे।

पदाधिकारी—

पैदल सेना में १० सिपाहियों पर १ नायक, ५ नायकों पर १ हवल्दार, २ हवल्दारों पर १ जुमलेदार, १० जुमलेदारों पर १ 'एक हजारी' सर्दार और ५ एक हजारी पर १ सरनौबत (सेनापति) हुआ करता था।

जुमलेदार को १०० हुन वार्षिक और 'एक हजारी सर्दार' को ५०० हुन वार्षिक वेतन मिलता था। कुछ अफ़सरों को पालकी भी दी जाती थी। स्थायी अफ़सरों की अनुपस्थिति में कार्य-भार सँभालने के लिए सहायक अफ़सर नियत थे, वे 'मुतालिक' कहलाते थे। पैदल सेना की संख्या निश्चित रूप से तो नहीं कही जा

* [illegible]

सकती। परन्तु थी बहुत; क्योंकि प्रत्येक क़िले में चार से पाँच हजार तक सेना रक्खी जाती थी।

घुड़ सवार—

यह सेना मराठा राज्य की प्राण थी; यह दो प्रकार की होती थी—(१) बरगीर (२) शिलेदार। बरगीर को घोड़ा राज्य देता था, शिलेदार अपने निज का घोड़ा रखते थे। जिस प्रकार नैपोलियन बोनापार्ट को अपने घुड़-सवारों पर असीम विश्वास था, दस हजार मँजे-मजाये सवार जिन्हें वह "गार्ड" कहा करता था सदैव अपने साथ रखता था और उन्हीं के सहारे एक दिन वह यूरोप का भाग्य-विधाता (Dictator) बन गया था, सेण्ट-हलीना में प्राण छोड़ते समय भी "मेरी सेना! मेरा गार्ड! हाय गार्ड!" करता हुआ मरा था। वीर केशरी शिवाजी को भी उसी प्रकार अपने अश्वारोही प्राणों से अधिक प्यारे थे। जिस दल को वे सदैव अपने साथ रखते थे, उसे "पाँगा" कहा करते थे। और उसकी स्वामि-भक्ति के कारण ही हिन्दू राज्य पुनः स्थापित कर सके थे। अफ़ज़ल ख़ाँ के वध के समय इस की संख्या दस हजार थी। जिनमें सात हजार बरगीर और तीन हजार शिलेदार थे। राज्य के अधिक विस्तार होने पर बहुत सम्भव है कि यह संख्या और भी बढ़ गयी हो। घुड़सवारों के सेनापतियों को प्रधान मन्त्रि-मण्डल में स्थान नहीं मिलता था। वह कैवल्री कमाण्डर्स के अधीन रहता था।

मराठे सवारों की वर्दी—

ये लोग जाँघिया, चुस्त पाजामा या धोती, रुईदार कुर्ता, साफ़ा और कमरबन्द लगाते थे। पीठ पर ढाल, कमरबन्द में तलवार, दाहिने हाथ में राष्ट्रीय अस्त्र 'भाला' और बायें में घोड़े की लगाम रखते थे; कोई कोई तोड़ेदार बन्दूकें भी रखते थे। इनके अतिरिक्त उन्हें किसी वस्तु के रखने की आवश्यकता न पड़ती थी—प्रत्येक सवार अपना काम बड़ी स्फ़ूर्ति और तैयारी के साथ करता था; वे मुग़ल सेना की सी चहल पहल तथा ऐयाशी को लात से ठुकरा देते थे। राजा शिवप्रसाद के० सी० एस० आई० ई० ने 'इतिहास तिमिर नाशक' (दूसरा भाग) में मुग़ल और मराठे सवारों का चित्र चित्रण करते हुए लिखा है—

"मुग़ल सैनिक अपना काम स्वयं नहीं कर सकते थे। उन्हें नौकर चाकर और बहुत अधिक सामान की आवश्यकता पड़ती थी; उनके सरदारों के घोड़े खूब सजाये जाते थे। उनकी पूँछें और अयालें रँगी हुई, सोने चाँदी के साज़ सिर से पैर तक लदे हुए, लम्बी लम्बी कँलगियाँ, पैरों में झाँझनें बजती हुई तथा एक समान लम्बाई और चौड़ाई के चारजामे जिन पर मख़मली जरदोज़ी के लबादे पड़े रहते थे। दोनों ओर सुरागाय की दुम के चँवर लटकते थे। सवार घोड़ों से भी अधिक देखने योग्य थे। वे अपने से अधिक भारी दगला और जिरह-बख़्तर पहिनते थे, कोई पाजामा और शाल दुशाले लपेटे रहते थे। किन्तु उनके मस्तक जर्द रहते थे। रात में जागने और नशे में चूर

[illegible]ते थे। घोड़े को पसीना आया कि सवार [illegible]होश हो गया। यदि दूर चलना पड़ा तो दोनों [illegible]दम होकर गिर पड़े। जैसे सर्दार वैसे उनके [illegible]घोड़े और सवार। लश्कर में दस सिपाही [illegible]ते तो सौ बनिये दूकानदार, भाँड़ [illegible]नतिये, वेश्याएँ नौकर खिदमतगार [illegible]और खानसामे आदि रहते थे। रसद [illegible] को मिल सकती। उनके डेरे डण्डे में ऐश-[illegible]इशरत का इतना साज़-सामान रहता था कि [illegible] अच्छी तरह बारबर्दारी की तदबीर न हो [illegible]सकती। तलवार पीछे रह जाय तो चिन्ता [illegible]नहीं पर तम्बूरा साथ रहना चाहिये। शत्रु सिर [illegible]पर आ पड़े तो चिन्ता नहीं पर चिलम न जलने [illegible]पाये। एक फ्रान्सीसी दर्शक उस फ़ौज की [illegible] करता है—"उनके वेतन बहुत अधिक [illegible]थे। पर वे काम कुछ न करते थे न कोई पहरा [illegible] देता है और न शत्रु से सामना करता है। [illegible] से बड़ा दण्ड मिला तो एक दिन का वेतन [illegible] गया।" जिनेली करेरी (Genelle curreri) [illegible] मार्च १६९५ में औरङ्गज़ेब की छावनी गलगले [illegible] देखी थी। वह लिखता है—"उनमें दस लाख [illegible] अधिक व्यक्ति थे, डेढ़ कोस में तो केवल [illegible] बेगमों और शाहज़ादों के डेरे खड़े थे [illegible]और [illegible] काम पड़ा उन मरहठों से जो [illegible], जाँघिया, एक पेंची पगड़ी पहिने, [illegible], हाथ में भाला, दक्षिणी घोड़ों पर [illegible] कोस तक तो वायु सेवनार्थ पर्यटन [illegible]थे। न थकते न माँदे होते थे। [illegible] बाजरे [illegible] और प्याज ही उनका भोजन था। [illegible] तकिया, पृथ्वी बिछौना और आकाश तम्बू था।" शिवाजी सैनिकों की स्वास्थ्य-रक्षा का बड़ा ध्यान रखता था। उसने उनके लिए व्यायामशाला, मल्लशाला और आखेटशाला खुलवा रक्खी थी। वह स्वयं प्रतिदिन भोजन के पहिले डण्ड, मुग्दर की कसरत करता था और जैसा संयमी स्वयं था वैसे ही उसने अपने सैनिक बना रक्खे थे। लश्कर में किसी को स्त्री, वेश्या आदि ले जाने की आज्ञा न थी, और यदि कोई भूल से भी ऐसा कर बैठता था तो उसकी गर्दन तलवार से उड़ा दी जाती थी।

अश्वारोही पदाधिकारी—

घुड़सवारों की सेना में २५ सवारों पर १ हवल्दार, ५ हवल्दारों पर १ जुमलेदार, ५ जुमलेदारों पर १ सूबेदार, १० सूबेदारों पर १ पंचहज़ारी, और ५ पंचहज़ारी पर २ सरनौवत (Commanders) होते थे। सूबेदार का वेतन चालीस हुण वार्षिक होता था। जुमलेदार को एक मुन्शी, पंचहजारी को एक मुन्शी और एक अमीन लिखा पढ़ी के लिए मिलता था।

जल-सेना—

शिवाजी के राज्य की पश्चिमी सीमा समुद्र-तट से मिली थी। अतः नव-सेना विभाग का सुदृढ़ रखना नितान्त आवश्यक था। उनके जहाज़ी बेड़े के समान सुसङ्गठित और मजबूत बेड़ा उस समय किसी पाश्चात्य देश के अधीन नहीं था। शिवाजी के पास लगभग ५०० जङ्गी जहाज (मुराब, [illegible], [illegible] और [illegible]) थे। इनमें तीस बड़े-बड़े मुराब

तो पश्चिमी किनारे की दिन रात चौकसी रखते थे। ये "गुर्वा" कहलाते थे। मध्यम और कुछ छोटे आकार के तीन सौ से अधिक जङ्गी जहाज थे। लगभग ८५ जहाज एक-मस्तूली थे, जिनका वजन तीस टन से एक सौ पचास टन तक था।

मालवन और कुलाबा शिवाजी के प्रधान जहाज़ी अड्डे थे। नव-सेना विभाग में पाँच हज़ार मनुष्य काम करते थे। मलाबार के समुद्री डाकू जिनसे अंग्रेज़ों की रूह काँपती थी—शिवाजी की नव-सेना में भर्ती हो गये थे; ये पक्के स्वामिभक्त थे। नव-सेनाध्यक्ष "दरिया सरङ्ग" (Admiral) कहलाता था। इस पद पर समय-समय पर कान्हों जी, आँग्रे, मियाँ नायक, सिद्दी मुसलमान, मिसरी, दौलत ख़ाँ तथा इब्राहीम ख़ाँ ने काम किया था।

कान्हों जी आँग्रे नवकला-विज्ञान में इतना चतुर था कि शिवाजी की मृत्यु के १०-१२ वर्ष पश्चात् कोंकण प्रान्तों के किनारे उसने अंग्रेज़ों के नाकों दम कर दिया था। वे उसके नाम से रात में भी चौंक उठते थे। शिवाजी को जल-युद्ध, विशेष कर जञ्जीरा के सिद्दियों, पोर्चगीज़ तथा अंग्रेज़ों के साथ, करने पड़े थे। इनमें ज़ञ्जीरा के सिद्दियों के सामने उन्हें ख़म खानी पड़ी थी।

समुद्री क़िले—

उक्त हार मानने पर उन्होंने समुद्री किनारे को दृढ़ करने की ठानी। मल्लाह कोली आदि पर समुद्र के पानी की गहराई नापने और क़िले बनाने का उपयुक्त स्थान निर्दिष्ट करने का भार दे दिया। जो उन्होंने प्राणपण से चेष्टा करके पूरा किया। शिवाजी ने इसके उपलक्ष में उनमें से बहुतेरों को अपनी नव-सेना-विभाग में कप्तान के पद तक पहुँचाया और उन्हें एक गाँव वंश-परम्परागत के लिए दे दिया। फिर उन्होंने मालवन, अञ्जनवेल, रत्नागिरी, पद्मदुर्ग, सरजाकोटी, गोपाल-दुर्ग, काकेरी और राज-कोट में समुद्री क़िले बनवाये। कोंकण के तट पर यद्यपि बहुत से छोटे-छोटे दुर्ग थे, पर उनमें सुवर्ण दुर्ग और विजय दुर्ग बहुत प्रसिद्ध थे।

मालवन द्वीप का समुद्री क़िला 'सिन्धु दुर्ग' के नाम से विख्यात था, समुद्री क़िलों में यह सबसे पहिले बना था, और था भी बहुत प्रसिद्ध। इसके बनाने में शिवाजी ने पूर्ण मनोयोग से काम किया। जिस प्रकार नैपोलियन बोनापार्ट दिन भर युद्ध करता था और रात में हथौड़ा लेकर तोपखाने में काम करता था, एक आध घण्टे नींद आ जाने पर किसी तोप की चर्खी के नीचे एक चद्दर बिछा कर सो लेता था। वैसे ही वीर श्रेष्ठ शिवाजी ने 'सिन्धु दुर्ग' बनवाते समय कई दिन मज़दूरों की नाईं काम किया था। समुद्र के भीतर क़िले की बड़ी मज़बूत नींव रखवाई थी, नीचे का खण्ड अपनी इच्छानुसार निज की देख-रेख में तैयार कराया था। शेष भार गोविन्द विश्वनाथ प्रभु, सूबेदार पर छोड़ कर पन्हाला दुर्ग में चले आये थे। उसके बन जाने पर बड़ी धूमधाम से प्रवेश-प्रतिष्ठा की गयी।

जहाज़ों ने तोपों की सलामी दागी, सभी कारीगर मज़दूरों और नायकों को पोशाक, पुरस्कार और ख़िलअत दिये गये थे। इस क़िले के बनाने में तीन हज़ार आदमी, तीन वर्ष और एक करोड़ पगोड़े* लगे थे। इसे बनाने के लिए गोवा के पोर्चुगीजों ने भी अपने यहाँ के प्रसिद्ध शिल्पकार भेजे थे। समुद्री लहरों का बल रोकने के लिए 'दरिया बुर्ज' नामक अवरोध बनाया गया था। सिन्धु दुर्ग में तीन हज़ार मावलियों का एक सैन्य-दल ज़ागीरदारों के अधीन रक्खा जाता था। उसके अतिरिक्त नायक, सिरनायक, और तत्तासिरनौबत (Rampart Master) भी नियुक्त थे। कुछ दिन हुए 'सिन्धुगढ़' के कुछ भग्नावशेष मालवन समुद्री किनारे पर मिले हैं। उन्हीं पर शिवाजी की एक मूर्ति स्थापित कर दी गयी है—मावल लोग उसकी नित्य पूजा करते हैं। पूजा के लिए कोल्हापुर दरबार आर्थिक सहायता देता है।

शिवाजी के जहाजी बेड़े से व्यापारी बड़े घबड़ाते थे, क्योंकि जो जहाज बिना आज्ञा उनकी सीमा में आते थे, उनसे कर वसूल किया जाता था। आना-कानी करने पर वे लूट लिए जाते थे और उसका समाचार तथा [illegible] प्रधान केन्द्र स्थान कुलाबा भेज दिया जाता था। अंग्रेज़ और पोर्चुगीज़ व्यापारियों ने शिवाजी से सन्धि कर रक्खी थी। तदनुसार वे प्रति वर्ष मराठों को लड़ाई का सामान देते थे और मराठे उनके जहाजों को अपनी सीमा में [illegible] बिचरने देते थे। ये सन्धियाँ प्रति वर्ष दुहराई जाती थीं।

जासूसी विभाग—

मराठे जासूस जर्मन जासूसों से किसी तरह कम न थे; अफ़ज़ल ख़ाँ ने जब चढ़ाई की उस समय गोपीनाथ पन्त ने जासूसी द्वारा शिवाजी की जो सहायता की थी, वह मराठा इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण घटना है, उस चढ़ाई में शिवाजी स्वयं घबड़ा रहे थे। इस विभाग का मुखिया भैरोजी नायक था। बालाजी आवाजी, विश्वासराव नाना और गोपीनाथ पन्त बड़े चतुर और कार्यकुशल जासूस थे। बालाजी-आवाजी शिवाजी के सचिव का भी काम करता था।

सैनिक समारोह—

आश्विन मास की विजय दशमी को 'सीमोलङ्घन' नामक उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था। समस्त सेनाएँ परेड कर के नया देश विजय करने निकलती थीं। वर्षा इनका कुछ बिगाड़ न करती थी। क्योंकि मावल, जो इनकी सेना में थे, बरसते हुए पानी में सरपट पहाड़ियों पर चढ़ जाते थे। प्रत्येक सैनिक के पास सरकारी सामान की लिपि रहती थी; काम से लौट आने पर सब सामान उसीसे मिला कर जमा किया जाता था। जिसकी जो वस्तु नष्ट हो जाती थी, उसकी पूर्ति कर दी जाती थी। घोड़े के मर जाने या घायल होकर बेकाम हो जाने पर उसका मूल्य लेकर नया दे दिया जाता था। लूट का माल सरकारी ख़ज़ाने में जमा होता था, कोई अपने पास न

* [illegible] एक प्रकार का सिक्का था, जो [illegible]

रख सकता था, यदि कोई हड़पने की चेष्टा करता तो पता चल जाने पर उससे उतना मूल्य वसूल कर लिया जाता था। किसी सैनिक को गाय, ब्राह्मण, किसान, स्त्रियों और बच्चों पर हाथ उठाने या उन्हें लूटने की आज्ञा न थी। साहस और वीरता के कार्यों के उपलक्ष में सम्मान-सूचक उपाधियाँ दी जाती थीं। जल-युद्ध प्रायः उनके जल सेनापतियों की ही देख-रेख में हुआ करते थे; केन्द्रीय सरकार को प्रतिक्षण के समाचार मिलते रहते थे। शिवाजी ने केवल एक बार जल-सेना का नेतृत्व ग्रहण किया था और वह बारसीलोर की चढ़ाई थी। नैपोलियन की भाँति शिवाजी भी जल-युद्ध को आपत्तियों का भाण्डार कहा करते थे।

शिवाजी को अस्त्र-शस्त्र और युद्ध-विद्या दादा जी कोड़ देव ने सिखाई थी, दादा जी स्वयं ईमान के पक्के और बात के सच्चे थे। वही गुण उन्होंने शिवाजी में भर दिये थे। सदैव समय देख कर काम करने की शिक्षा श्री दादा जी और स्वयं उनकी पूज्या माता जीजा बाई देती रहती थीं। शिवाजी शक्ति के उपासक और समर्थ गुरु रामदास के आज्ञाकारी शिष्य थे। "प्यारे बाद यशवन्त" नाम की कवन्द इन्हें बड़ी प्यारी थी। उसके सहारे उन्होंने २७ किले जीते थे। "भवानी" और "तुलजा" नामक तलवारों की वे आजीवन पूजा करते रहे। पहिली इन्होंने गोवलकर सामन्त से पाई थी, दूसरी इनके पिता ने कर्नाटक से लाकर दी थी। शिवाजी के पास तलवार चलाने वाले सामन्तों में जीवा महाला और सम्भू जी कावजी अपनी सानी न रखते थे। ऐसे साहसी आत्मसंयमी, दृढ़-प्रतिज्ञ वीर नर-रत्न को 'पहाड़ी चूहा', चोर, डाकू, और लुटेरा कहना कदापि युक्तिसङ्गत नहीं प्रतीत होता। वह वीरात्मा यद्यपि आज नहीं है, परन्तु उसका यश, जानग्राण्डडफ़ जैसे इतिहासकार के लाख आक्षेप करने पर भी, अटल और अविच्छिन्न बना रहेगा। जब संसार की राजनीति का "Politics knows no law" (राजनीति के आगे न्याय कुछ नहीं है) ही गुरु मन्त्र है तब शिवाजी ने समयानुसार दाँव पेंच खेल कर यदि स्वराज्य स्थापित किया तो कौन सी अनधिकारचेष्टा की जो उनके पवित्र चरित्र को कलङ्कित कर सके।

—विश्वनाथ चतुर्वेदी।

* * *
* *
*

बलिदान

सन् १६५७ के दिन थे।

बीजापुर की रियासत पर शिवाजी (बार-बार) डङ्क मार रहा था। अपनी मुट्ठी भर उद्दण्ड और अशिक्षित सेना को साथ-साथ दौड़ाये वह क़िले-पर-क़िले लिये जा रहा था। यवन क़िलाधीशों के लिए तो यह समय बड़े ही सङ्कट का था। किस समय शिवाजी अपने तूफ़ानी, छबीले, ठिंगने मरहठों को लेकर आ-धमकेगा—इसका किसी को पता न था। बस, ज़रा-सी आहट—क़िले के थोड़ी दूर परे—सुनाई पड़ती, और लोग सतर्क भी न हो पाते कि चहुँ ओर मरहठे सिपाही टीढ़ी-दल की भाँति फैल जाते थे। न रक्त की नदियाँ बहतीं, न तोप, बन्दूक़ अथवा मशीनगन गड़गड़ातीं, न हवाई जहाज़ मँडराते,—बस, क़िले में घुसे और अधिकार कर लिया! शिवाजी के नाम का आतङ्क पलक भपकते शत्रुओं से आत्म-समर्पण करा लेता था। किसी क़िले में मुसल-मान सिपाहियों ने सामना भी किया तो कुछ मारे गये, कुछ बाँधे गये, कुछ भगा दिये गये।

एक ऐसे-ही क़िले की बात है—

क़िले का नाम तोरणगढ़ था और क़िलेदार था तैयबख़ाँ। तैयबख़ाँ अपने अत्याचारों के लिए काफ़ी बदनाम था, पर चहुँ ओर से अशान्ति में घिरी हुई बीजापुर रियासत को इन क़िलेदारों पर नियन्त्रण रखने का अवकाश न था। इसका कारण था, योग्य अधिकारियों की कमी। बृटिश सरकार की भाँति बीजापुर की सरकार उस प्रान्त के निवा-सियों को अपने 'विश्वस्त-गुलाम' नहीं बना पायी थी; यही योग्य अधिकारियों की कमी का कारण था।

तैयबख़ाँ शिवाजी के प्रति घोर उपेक्षा का भाव प्रकाशित करता था। ग़रीब प्रजा पर अपने अत्याचारों का आतङ्क जमा देख कर उसने शिवाजी की शक्ति का अनुमान लगाने में घोर अनुदारता और लापर्वाही से काम लिया।

सारी सूचना शिवाजी को मिली।

अब की बार तैयबख़ाँ या तोरणगढ़ की बारी आई। बर्छे साफ़ हुए, पहाड़ी घोड़े अकड़ कर खड़े हुए, सिपाही कपड़े भाड़ कर तैयार हुए।

और जब—एक गहन अँधेरी रात में—ऊँची-नीची पहाड़ियों पर पहाड़ी टट्टू, बैठे हुए हाथियों से सादृश्य दिखा रहे थे तो इस संक्षिप्त सेना ने अपने दुर्दान्त सेनापति के पीछे-पीछे तोरणगढ़ की ओर निर्भय, निर्बाध प्रस्थान किया।

तैयबख़ाँ के बड़े हौसले थे। शराब के नशे से चौंक कर उसने सुना—क़िले के द्वार-रक्षकों ने डर के मारे शिवाजी की सेना को रास्ता दे दिया है और सेना बड़े वेग से उसे पकड़ने आ रही है।

तयबख़ाँ का स्थूल शरीर बिजली की भाँति तड़पा और बादल की नाईं कड़का। बड़ा दूरदर्शी था;--सेना सदा कसी-कसाई तैयार रहती थी। मिनटों में ही एक हज़ार सवार शिवाजी के 'मर-हटे' जवानों से मोर्चा लेने को तैयार हो गये।

मरहठों के घोड़े क्षण-भर में इस तैयार सेना के सामने आ पहुँचे। शिवाजी ने घोड़ा आगे निकाला, तलवार हवा में तानी और प्रलयङ्करी आवाज़ से कहा—"हथियार छोड़ो, या मरो!"

तैयबख़ाँ गर्जा—"मारो काफ़िर को!"

निःशब्द युद्ध आरम्भ हुआ। आध घण्टे के पश्चात् काई-सी फट गयी, पर्दा-सा हट गया;--बहुत-सी यवन-सेना भाग गयी थी, कुछ सिपाही घायल पड़े थे और कुछ मरहठों के बन्दी थे!

तोरणगढ़ पर शिवाजी का झण्डा फहराने लगा, मरहठा क़िलेदार नियुक्त हुआ। कुछ मरहठी सेना ने क़िले में सर्वत्र अधिकार जमाया और प्रातः होते-होते, शिवाजी--प्रजा की जय-जयकार के बीच में से हो कर--क़ैदियों सहित, जिधर-से आया था उधर-ही लौट गया।

रायगढ़ के बन्दीगृह में बन्दी-सिपाही बन्द कर दिये गये।

(२)

इसके दूसरे दिन देखा गया—रायगढ़ में सर्वत्र हर्ष की हवा बह रही थी। शिवाजी की वीर पत्नी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ था!

शिवाजी भी हर्ष से विह्वल थे। पुत्र-जन्म के उपलक्ष में उन्होंने सब बन्दियों को छोड़ देने की आज्ञा दी।

बन्दी उनके सम्मुख लाये गये, और बारी-बारी से बन्धन-मुक्त हो, अभिवादन कर, जाने लगे। सब के अन्त में एक पन्द्रह-वर्षीय सुकुमार बालक आया। उसने पृथ्वी पर लेट कर शिवाजी को प्रणाम किया और कहा--"वीर-पुरुष! आपके बल-पराक्रम पर मुग्ध होकर मैं इन सिपाहियों में मिल गया था, जिससे क़ैद हो कर आपके सामने पहुँच सकूँ। मेरी इच्छा आपकी सेवा में रहने की है, मेरे उपयुक्त जो सेवा आप मुझे सौंपेंगे, प्राण दे कर भी उसे पूर्ण करूँगा।"

शिवाजी मुस्कुराये। कहने लगे—"बालक! सिपह-गिरी के सिवा हमारे यहाँ और क्या काम है; और सिपह-गिरी तुम्हारे सुकुमार व्यक्तित्व के लिये नहीं है।"

बालक ने छूटते ही कहा—"महाराज, अभिमन्यु तो मुझसे भी अधिक सुकुमार था, जिसने बड़े-बड़े रथी-महारथियों के नाकों-दम कर दिया था।"

शिवाजी महाभारत का अनन्य भक्त था। बालक की बात ने उस पर पूरा प्रभाव डाला। इस वीर बालक को अपने पास रखने की उसकी बड़ी लालसा हुई, पर इसी समय बूढ़े मन्त्री ने उसके कान में कहा—"महाराज, भगाइये इसे, कोई भेदिया प्रतीत होता है।"

तब शिवाजी ने बालक की प्रार्थना अस्वीकार कर दी, और उसके निर्वाह के लिए कुछ द्रव्य देना चाहा।

बालक ने शिवाजी का पारितोषिक न लिया, और निराश होकर चला गया।

शिवाजी इस अद्भुत बालक की सुकुमारता और निर्भीक वाचालता को मन में आमने-सामने रख कर बहुत देर तक देखता रहा।

(३)

अली आदिलशाह ने अन्त में झल्लाकर इस कीड़े को मसल डालने का निश्चय किया

अपने प्रधान-सेनापति अफ़ज़ल खाँ को बारह हज़ार फ़ौज और कई पहाड़ी तोपखाने देकर शिवाजी के दमन को भेजा।

शिवाजी प्रतापगढ़ में थे। अफ़ज़ल के आगमन का समाचार मिला। मन्त्रियों से सलाह की। बूढ़े मन्त्री ने उसके कान में फुस-फुसा कर कुछ कहा। शिवाजी ने एक आदमी अफ़ज़ल के पास भेजा। कहलाया—"मेरी क्या ताब है, जो मैं आपसे लड़ूँ। यदि आप मेरे पिछले सब अपराधों को भूल जायँ, तो रियासत के सब क़िले आपको वापस कर दूँ।"

अफ़ज़ल खाँ ने मूँछों पर हाथ फेर कर 'तुच्छ' शिवाजी का सन्देश सुना, विचार किया, और तब मानो बड़ी उदारता के साथ गोपीनाथ मराठे (अपने दूत) को सन्धि की विस्तृत शर्तें जानने को शिवाजी के पास भेजा।

गोपीनाथ शिवाजी से मिला। नीति-विशारद शिवाजी ने मन की बात उसके सामने रख दी। धर्म के खून ने जोश मारा और गोपीनाथ शिवाजी का बे-दाम-गुलाम होकर लौटा।

निश्चय हुआ—प्रतापगढ़ के क़िले से कुछ दूर एक तम्बू में अफ़ज़ल और शिवाजी की भेंट हो, और साथ में एक अर्दली के अतिरिक्त और कोई न हो। दोनों ओर से शर्त मञ्जूर कर ली गयी।

\+ + + +

शिवाजी अफ़ज़ल से मिलने के लिए जाने को तैयार हुए। एँड़ी से गर्दन तक, फ़ौलादी कवच और उसे ढँकने के लिए ऊपर साधारण कवच पहन लिया, फिर मस्तक पर फ़ौलादी टोपी, कमर में तलवार और हाथ में बघनखा छिपा कर कपड़े पहने। तब एक आदमी को साथ लेकर निर्दिष्ट शिविर की ओर चले।

क़िले और शिविर के बीच में सघन झाड़ी थी, उसमें मराठी सेना छिपी हुई थी। शिवाजी की आज्ञा थी—तम्बू से ज्योंही कुछ शोर सुनाई पड़े—अफ़ज़ल की सेना पर धावा कर दिया जाय।

शिवाजी के मनमें कपट था, पर अफ़ज़ल की ओर से उन्हें किसी प्रकार के धोखे की आशङ्का न थी। इसीलिये उन्होंने अपनी रक्षा का विशेष प्रबन्ध नहीं किया।

परन्तु ऐसा था नहीं। शिवाजी का काम-तमाम कर देने के लिए अफ़ज़ल ने शिविर के चहुं ओर आदमी छिपा रखे थे। दूर से आते हुए शिवाजी का छोटा आकार देखकर वह मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ, और मिलकर स्वयं ही उनका वध कर देने का संकल्प करने लगा।

वचनानुसार शिवाजी अर्दली को बाहर छोड़कर अकेले शिविर में घुसे। दोनों की आँखें चार हुईं, और दोनों ने एक-दूसरे के भाव पढ़े।

अफ़ज़ल शिवाजी को गले लगाने के लिए आगे बढ़ा और तलवार निकाल कर उसने उनकी पीठ पर आघात किया।

फ़ौलाद के कवच ने शिवाजी की रक्षा की। अफ़ज़ल की तलवार झनझनाती-ही रही, उसने बघनखा उसके पेट में घुसेड़ दिया।

अफ़ज़ल चिल्लाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय शिविर के बाहर तलवार चलने की आवाज़ आयी। शिवाजी ने मांस से सना हुआ बघनखा उतार कर फेंक दिया, और द्वार की ओर दौड़ा। बाहर निकल कर देखा—उसका अर्दली घायल पड़ा है और एक अपरिचित मराठा सैनिक बीस-पचीस मुसलमान सिपाहियों का सामना कर रहा है।

देखते देखते मराठा सैनिक एक मुसलमान सिपाही की तलवार खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

शिवाजी ने तलवार हाथ में ली। और सिंह की तरह दहाड़ कर शत्रुओं के झुण्ड में कूद पड़ा।

उधर मरहठे सिपाहियों ने अफ़ज़ल की बे-ख़बर सेना को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ कर दिया। नायक की आवाज़ सुनकर कुछ सिपाही दौड़े हुए उधर भी आये।

अब क्या था? मुसलमान-सिपाही सिर पर पैर रख कर भागे।

उधर अफ़ज़ल ख़ाँ की सेना भी बे-लगाम घोड़े की तरह सब कुछ छोड़-छाड़ कर भागी जा रही थी।

शिवाजी दौड़ कर उस वीर मराठे के पास गये, जिसने अकेले-ही दो दर्जन मुसलमानों का सामना किया था, जो उनकी प्राण-रक्षा के प्रयत्न में पृथ्वी पर पड़ा दम तोड़ रहा था। यह देख कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही कि यह वही सुकुमार बालक था, जिसे उन्होंने अपनी सेवा में रखना अस्वीकृत कर दिया था।

तनिक और पास गये। शिवाजी अचरज-से चीत्कार कर उठे—जब उन्होंने उस सुकुमार बालक के लम्बे-लम्बे बाल धूल में, और छोटे-छोटे स्तन खून में भरे हुए देखे।

महान् आश्चर्य!—सुकुमार बालक नहीं, वह कोई सुकुमारी स्त्री थी!

बड़े कष्ट से बोली—"नाथ! मैंने मन ही मन तुम्हें पति माना था; मेरा जीवन सफल हुआ!"

रक्त के वमन के साथ युवती ने हँसते-हँसते प्राण त्याग दिया! शिवाजी स्थिर-दृष्टि से इस अमूल्य शरीर को देखते रहे, और फिर उन्होंने आँखों में आँसू भर कर बड़े यत्न के साथ उसका मस्तक चूम लिया।

(४)

अफ़ज़ल की सेना जो कुछ छोड़ कर भागी और शिवाजी के हाथ जो कुछ लगा, उसकी गणना करके सारा रायगढ़ आनन्द से उन्मत्त था। सब की जीभ पर यही शब्द थे।

बारह हजार ऊँट, छप्पन हाथी, चालीस घोड़े, बहुमूल्य वस्त्रों की दो सौ गाड़ियाँ, दस लाख का सोने-चाँदी का सामान और बहुत-सा गोला बारूद।

पर शिवाजी के चेहरे पर हँसी न थी। वे दुःख और विषाद से भरे थे। लोगों ने इसका कारण पूछा तो कुछ उत्तर न मिला; बूढ़े मन्त्री के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने केवल यह कहा—"मैंने जो कुछ पाया, उससे सैकड़ों गुणा मूल्यवान रत्न खो दिया!"

शिवाजी इस भेद को अपनी मूल्यवान छाती में छिपाये हुए आज भी स्वर्ग में विद्यमान हैं!

—ऋषभचरण जैन

❀ ❀ ❀

मराठा-राज्यश्री की चरमसीमा ।

(उसका क्रम-विकास)

चाहे कोई इस बात को माने या न माने किन्तु यह एकान्त सत्य है कि अंग्रेज़ों ने भारतवर्ष के राजनैतिक सूत्र मराठों से ही अपने हाथ में लिये हैं। अंग्रेज़ों के राज्यासीन होने के समय मुग़लशाही का पता तक नहीं था। मराठा और मुग़ल बादशाह को कठपुतली की भाँति हस्तगत करके मन चाहे नाच नचाया करते थे। औरङ्गज़ेब की मृत्यु के अनन्तर मुग़ल बादशाहत में घुन लग चुकी थी और जब मराठों ने शाहआलम बादशाह को सन् १७७२ ई० में इलाहाबाद से लाकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया तभी मुग़ल बादशाहत की इतिश्री हो चुकी थी। सन् १७७२ ई० से लगाकर सन् १८१५ ई० अर्थात् राजपूत राजाओं से अंग्रेज़ों के सुलह करने के समय तक मराठे ही भारतवर्ष में सब कुछ थे। एक समय था जब लाहौर का सिंह रणजीतसिंह और मैसूर का शेर टीपू मराठों से मित्रता के बन्धन आबद्ध करने में परम-सौभाग्य मानते थे। ढाका (बङ्गाल) तक मराठों का रोब जम चुका था और गुजरात पर तो मराठों ही का राज्य था। सन् १७७३ ई० में वीरवर राघोबा पेशवा के घोड़े अटक पार करके काबुल की नदी में नहा चुके थे और काबुल तक दौड़ लगा कर ईरान के बादशाह की सहायता से कन्दहार तक मराठा राज्य की सीमा फैलाने की आयोजना हो चुकी थी। सन् १७८५ में दिल्ली के बादशाह ने पेशवाओं को सर्व श्रेष्ठ बादशाह सम्बोधित किया। तब नाना फड़नवीस जैसे राजनीति-निपुण और महादजी सेंधिया जैसे असि-कला-पारङ्गत बहादुर पुरुष उपस्थित थे। अतएव मराठों के वैभव के लिए किस बात की कमी पड़ सकती थी। सन् १७९४ ई० में जब महादजी सेंधिया पूना पहुँचे और नाना फड़नवीस से मिले उस समय पेशवा राज्य के चतुर मुत्सद्दी निज़ाम दरबार के वकील ने एक पत्र में मराठों के उन्नति की चरम सीमा का बड़ा सुन्दर चित्र खचित किया है। अटक नदी से दक्षिण समुद्र तक हिन्दुओं का ही स्थान है। पाण्डवों से लगा कर विक्रमादित्य तक के राजाओं ने यहाँ का राज्य किया। उनके उत्तराधिकारी अकर्मण्य हो गये, यवन प्रबल हो उठे, चकत्तों (बाबर के वंशजों) ने हस्तिनापुर का राज्य छीन लिया। औरङ्गज़ेब के राज्य काल में तो जज़िया कर देने और पका हुआ अन्न मोल लेने की नौबत आगयी। उस समय छत्रपति शिवाजी महाराज धर्म-रक्षणार्थ उत्पन्न हुए। उन्होंने एक

कोने से धर्म-रक्षा का कार्य आरम्भ किया। तदनन्तर सूर्य की भाँति प्रतापी नाना साहब और भाऊ साहब पेशवा अवतरित हुए। ऐसे

बाजीराव पेशवा

पुरुष विरले ही होते हैं। अब तो श्रीमन्त के पुण्य प्रताप से और पाटिल बाबा (महादजी-सेंधिया) की बुद्धि और बल पर सब कुछ साध्य होगया।

अब हमें संक्षेप में यह देखना है कि मराठा राज्य की चरम सीमा का क्रम-विकास कैसे हुआ।

छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी महाराज ने बीजापुर के आदिलशाही बादशाहों की सेवा करके पूना तथा उसके आस-पास थोड़ी सी जागीर प्राप्त की थी। तदनन्तर कर्नाटक पर चढ़ाई करके तञ्जावर के नाइक राजाओं को परास्त कर वहाँ पर भी आदिलशाही का शासन स्थापित किया। अतएव उस ओर भी उन्हें कुछ जागीर मिली थी। तत्कालीन राज्य-क्रान्तियों से स्वतन्त्र बन बैठने की इच्छा उनके मन में स्वयं ही उत्पन्न हुई थी। किन्तु वास्तव में उस कार्य की पूर्ति छत्रपति शिवाजी के द्वारा ही होने को थी। सन् १६४६ ईसवी में छत्रपति की स्थिति यवनों के जागीरदारों की

सी थी। अर्थात् वीरोचित आदर्श से बड़ी-बड़ी जागीरें अर्जित करना ही मराठों का ध्येय था। समय पाकर शिवाजी को हिन्दू-स्वराज्य स्थापित करने की स्फूर्त्ति हुई और उन्हीं के पुण्य-बल पर कुछ समय पश्चात् उसका साम्राज्य में परिवर्तन हो गया। शिवाजी ने सूरत से लगा कर कर्नाटक तक अपनी धाक जमा ली थी और मुग़लों की सत्ता स्वीकार करके चौथ और सरदेशमुखी के अधिकार उनके राज्य से भी प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य था। फिर महाराष्ट्र में क्रान्ति हुई और जब मुग़लों के नाक में दम आ गयी, तब सन् १७०५ ईसवी में दक्षिण के छः सूबों की आय में से दस सैंकड़ा मराठों के देने के विषय में औरङ्गज़ेब परामर्श करने लगा था। सन् १७०७ ईसवी में औरङ्गज़ेब की मृत्यु हो गयी। तब तक साहू छत्रपति मुग़लों के ही बन्दी थे। बन्दीगृह से मुक्ति पाने पर साहू ने अपना एक वकील स्थायी रूप से दिल्ली के दरबार में स्थिर किया। सन् १७०७ में ही मुग़ल सूबेदार दाऊद ख़ाँ ने मराठा सरदारों से सन्धि करके मालवा और गुजरात के कुछ भागों का चौथ देना स्थिर किया। सन् १७१५ ईसवी में साहू छत्रपति को मुग़ल सम्राट ने दस हज़ार की मनसबदारी प्रदान की। अन्त में सन् १७१७ ईसवी में पेशवा— बाला जी पेशवा—ने दिल्ली पहुँच कर औरङ्गज़ेब, बरार, बीजापुर हैदराबाद खानदेश तथा बेदर आदि सूबों से चौथ वसूल करने के प्रमाण-पत्र भी प्राप्त कर लिये। चौथ के अधिकार प्राप्त करने के अनन्तर सरदेशमुखी के अधिकार प्राप्त करने के लिए पौने बारह करोड़ की भेंट देने की शर्त निश्चित हुई। तीन करोड़ एक मुश्त और एक करोड़ की किश्त भी ठहर गयी। सरदेशमुखी की वार्षिक आय लगभग दो करोड़ के थी बाला जी के साथ उनके पुत्र बाजीराव भी दिल्ली गये थे। दरबार की निर्बल परिस्थिति देख कर उन्होंने उससे लाभ उठाने का निश्चय किया। इस प्रकार सबसे पहिले बाजीराव पेशवा ने ही मराठों का राज्य स्थापित करने की नींव डाली और सन् १७१४ ईसवी में अपने सेनापति सिन्धिया होलकर और पवार के साथ कुछ सेना देकर मालवा और मेवाड़ के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर लिया। उधर दक्षिण के सूबेदार हैदराबाद के निज़ाम को अपने राज्य से मराठों को चौथाई देने की बात बहुत खटकी। अतएव ज्योंही उसकी भृकुटि बङ्किम प्रतीत हुई, त्योंही बाजीराव पेशवा ने उसे धर दबाया और सन् १७२८ ईसवी में उससे युद्ध करके स्थायी रूप से चौथाई और सरदेशमुखी देने के लिए बाध्य किया। सन् १७२७ ईसवी में गुजरात के सूबेदार सरबुलन्दख़ाँ ने गुजरात की चौथ और सरदेशमुखी देना स्वीकार किया था। सन् १७३३ ईसवी में बाजीराव ने मुहम्मदख़ाँ बंगश के आक्रमण से छत्रसाल बुन्देला का छुटकारा किया। अतएव बुन्देला ने झाँसी के निकट की जागीर और अपने राज्य का तीसरा भाग पुरस्कार में दिया। सन् १७३४ ईसवी में बाजीराव ने मालवा से चौथाई वसूल करके जागीर में मालवा प्राप्त पाने की ही, बादशाह से इच्छा प्रकट की। और महेश्वर के क़िले [illegible]

नदी के दक्षिण के समग्र प्रदेश के लिए भी जिज्ञासा की। निज़ामको यह बात बहुत खटकी। अतएव वह दिल्ली पहुँचा और बाजीराव से युद्ध करने का विचार करने लगा। बाजीराव भी अस्सी हजार सेना लेकर उत्तरी भारत की ओर चल पड़े और सन् १७३७ ईसवी में भूपाल के समीप निजाम का पराभव करके पचास लाख रुपया नकद और चम्बल तथा नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश स्थायी रूप से ले लिया। सन् १७३४ ई० में बाजीराव के भाई चिमाजी अप्पाने बड़ी वीरता से पुर्तगाल वालों से लड़ कर बसीन तथा उसके आस-पास का क़िला जीत लिया। उसी समय नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई की। तब बाजीराव भी दल-बल सहित दिल्ली की ओर कूँच कर गये। किन्तु नादिरशाह के शीघ्र ही लौट जाने के कारण वे दिल्ली न पहुँच सके थे। दक्षिण की ओर प्रत्यावर्तित होते समय सन् १७४० ईसवी में नर्मदा तट पर ही बाजीराव की मृत्यु हो गयी।

नादिरशाह की चढ़ाई के कारण ईरानी और अफ़गानियों का दिल्ली दरबार में महत्व बढ़ने लगा। नये-नये मुसलमान नवाब बन बैठे। राजपूतों ने दिल्ली से सम्बन्ध छोड़ दिया। रुहेलों ने अपनी खिचड़ी अलग बनाना प्रारम्भ किया। जाटों ने मराठों से मित्रता कर ली। बाजीराव के पुत्र बाला जी ने भी उस परिस्थिति से लाभ उठाना चाहा। नागपुर के भोंसला ने उड़ीसा हस्तगत करके बङ्गाल के हुगली नगर पर भी अधिकार कर लिया। बालाजी प्रयाग को हस्तगत करने की चिन्ता में लगे। अन्त में बङ्गाल के नवाब और बादशाह ने भोंसला से मुक्ति पाने की प्रार्थना की। तब पेशवा ने मुर्शिदाबाद पहुँच कर भोंसलों का पराभव किया। उसके उपलक्ष में पेशवाओं को दरबार से समग्र मालवा जागीर में मिला। बालाजी के समय सिन्धिया तथा होलकर ने राजपूतों के भाईबन्दी झगड़ों में सत्य-पक्ष को सहायता देकर फौज के घास दाना के रूप में वार्षिक खिराज लेने की सन्धि की थी। शाह छत्रपति ने अन्त में भोंसला और पेशवा में सन्धि करा के बङ्गाल, लखनऊ, पटना, बिहार तथा कटक प्रान्तों से खिराज वसूल करने की सन्धि देकर पेशवा को कोंकन, मालवा, प्रयाग, आगरा, अजमेर, पटना – पटना के तीन जिले, तथा आर्काट प्रदेश से वार्षिक कर वसूल करने की सनद दी गयी। १७४७ ई० में साहू महाराज की मृत्यु हुई। उन्होंने एक सनद द्वारा पेशवा को ही अपने राज्य का रक्षक बनाया।

सन् १७४७ ई० में सिन्धिया और होलकर ने बादशाह को कई उन्मत्त रुहेला सरदारों को पराजय करने में सहायता दी। अतएव सफदर-जङ्ग बजीर ने गङ्गा, यमुना के बीच अर्थात् दुआब का कुछ भाग उन्हें जागीर में दे दिया। जब सन् १७५४ ई० में दरबार में पारस्परिक झगड़े हो गये, तब होलकर ने दिल्ली में पहुँच कर आलमगीर सोनो को गद्दी पर बैठाया। पेशवा ने १७५६ ई० में राघोबा के साथ उत्तरी भारत पर चढ़ाई करने के लिए बड़ी भारी सेना भेजी। उन्होंने दिल्ली पर अपना अधिकार करके लाहौर, मुल्तान अटक तक चढ़ाई कर

श्री मल्हारराव होल्कर
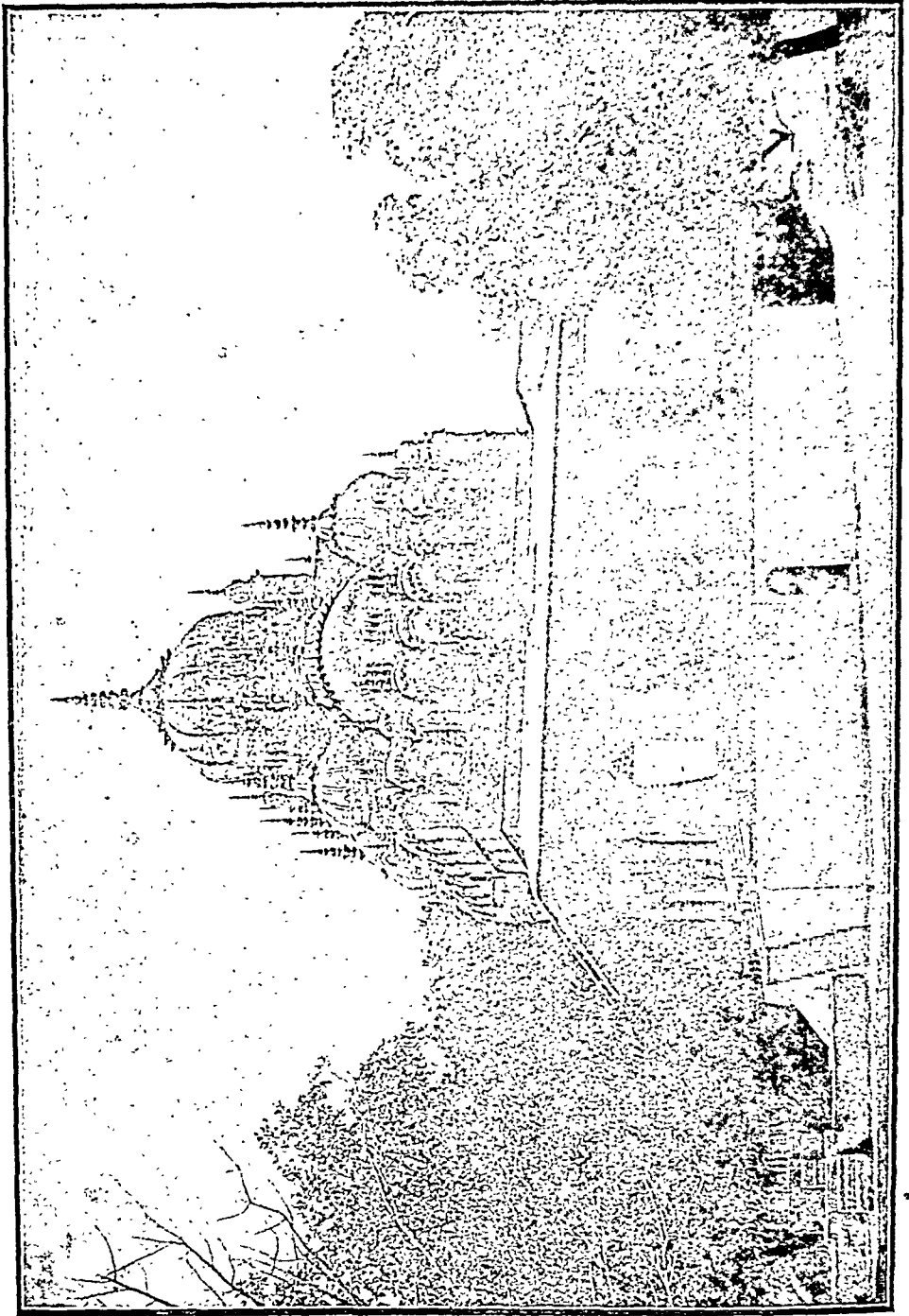
श्रीमल्हारराव की आलमपुर की छत्री

दी। इसी समय जयपुर, जोधपुर और भरतपुर से युद्ध हुए। वे काबुल की ओर बढ़ने ही को थे कि धन पास न होने के कारण दिल्ली को लौट गये। दिल्ली दरबार के घरेलू वैमनस्य के कारण अन्त में अहमदशाह अब्दाली चढ़ आया और सन् १७६१ ई० में पानीपत का घनघोर युद्ध हुआ। जिससे ५-७ वर्ष तक मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को कुछ आघात अवश्य पहुँचा। किन्तु, दिल्ली दरबार की अव्यवस्था देख कर सन् १७६७ ई० में महादजी सिन्धिया और तुकोजी राव होल्कर दिल्ली की ओर चल दिये। बेचारा शाहआलम बादशाह दर-दर सहायता के लिए घूम रहा था। अंग्रेज़ निर्बल थे। अतः मराठों ने बादशाह को उनके चङ्गुल से छुड़ा कर सन् १७७१ ई० में बड़ी धूम-धाम से उन्हें फिर से दिल्ली के सिंहासन पर आसीन कराया और द्रोही सरदारों का पराभव करके राज्य के समग्र सूत्र महादजी सिन्धिया ने अपने हाथ ले लिये। मराठों से अंग्रेज़ द्वेष करने लगे थे। अतएव बड़गाँव स्थान पर उनके छक्के छुड़ाये गये और सन् १७८२ ई० में अंग्रेज़ों से सालबाई की सुलह भी हुई। शाह आलम की ओर से महादजी ने राजपूत राजाओं से वार्षिक कर लेना चाहा, पर इस्माइलबेग मुहम्मदशाह हमदानी आदि द्रोही सरदारों ने राजपूतों को मराठों से भिड़ा दिया। जिससे सन् १७९० ई० में लालसोट में राजपूतों को मराठों के अधीन होना पड़ा। तदनन्तर १७८८ ई० में गुलाम-क़ादिर के द्वारा दिल्ली में पुनः पठानशाही स्थापन किये जाने का प्रयत्न किया गया और बादशाह पर घोर अत्याचार किया गया। पर महादजी सिन्धिया ने उचित समय पर सहायक होकर द्रोहियों को परास्त किया और दिल्ली तथा बादशाह को सर्वदा के लिए अपने अधीन कर लिया। उस समय सिक्खों का उदय हो रहा था। पर उन्होंने भी मराठों से सर्वदा मित्रता ही रक्खी। उधर दक्षिण में हैदरअली और टीपू को मराठों ने सुलह से जकड़ रक्खा था। सन् १७९४ ई० में महादजी सिन्धिया की मृत्यु हुई। बस, तभी से मराठों की सैनिक स्थिति क्षीण होने लगी। सन् १७९५ ई० में मराठों का निज़ाम से अन्तिम युद्ध हुआ। उस समय मराठों को बड़ी सफलता मिली। उनकी वही अन्तिम सफलता थी। सन् १७९५ ई० में मराठों का वैभव मध्याह्न सूर्य की भाँति प्रखर था। भारतवर्ष में एक मात्र मराठों की ही तूती बोल रही थी। अंग्रेज़ धीरे धीरे अपना पञ्जा सरका रहे थे और धूर्त बिल्ली की भाँति छींका टूटने के अवसर की ओर टकटकी लगाये बैठे थे। शीघ्र ही माधवराव-पेशवा की मृत्यु हुई। राज्याधिकार पाने के लिए झगड़े बखेड़े हुए। सन् १८०० ई० में नाना साहब की मृत्यु हो गयी। अकर्मण्य बाजीराव गद्दी पर बैठा। कोई चतुर और अनुभवी व्यक्ति मराठों के दरबार में न रह गया। सूत्रधार भी मूर्ख निकले। जिससे मराठों के उत्कर्ष का नाश हो गया और भारत का शासन-सूत्र अंग्रेज़ों के हाथ में आया।

—[illegible]

मराठे-वीर ।

१.

परम प्रतापी और शक्ति वाले सूरमा थे,
बात के धनी थे वे तो गौरव की खान थे।
उनकी नसों में ऐसा दौड़ता था रक्त तेज,
देख जिसे नर क्या विधाता परेशान थे।
मारे-मारे घूमते थे डर से बिचारे वैरी,
नाम सुने शाह के भी भागते गुमान थे।
आन भारतीयता की, शान वे स्वदेश की थे,
प्यारे मरहट्टे सारे हिन्दुओं की जान थे।

२.

रक्षक दुखीजन के, भक्षक विधर्मियों के,
'सेवक' स्वधर्म के, बला के बलवान थे।
सर को झुकाया नहीं सामने किसीके, उन्हें—
काल को छकाने के भी दावे, अरमान थे।
विमल सुयश की जमी थी कुछ ऐसी धाक—
शिवा-शिव सुनते उन्हीं के गुणगान थे।
भारती प्रफुल्लित हो वारती थी मणि-माल,
फूल बरसाके देव होते कुरवान थे।

३.

छक्के थे छुड़ाए ऐसे दुष्ट, ज़ालिमों के जिन्हें—
फ़ौज फाटे-धन पै बड़े ही अभिमान थे।
कर के असम्भव को सम्भव दिखाया खूब—
धुन के थे पक्के औ सुदृढ़ कर्मवान थे।
हिम्मत न हारी कभी, सुपथ को छोड़ा नहीं,
दारा, धन, धाम उन्हें तृण के समान थे।
त्याग की तपस्या में भी साधना अटल ऐसी—
माँगे बिना भूतनाथ देते बरदान थे।

—रामसेवक त्रिपाठी

उत्तरीय भारत पर महाराष्ट्रीय सभ्यता का प्रभाव
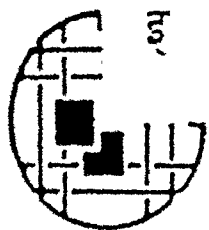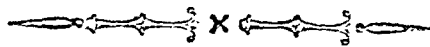
इतिहास का यह एक अटल सिद्धान्त है कि जितनी जातियाँ संसार में शासक के रूप में अवतीर्ण होती हैं उन्हें किसी विशेष उद्देश की पूर्ति के लिए ही उस रूप में काम कर दिखाने का अवसर मिलता है। और काम समाप्त होते ही उस जाति को पतन की ओर विवश होकर अग्रसर होना पड़ता है एवं अवसर पाकर दूसरी जाति आगे बढ़ती है। प्रायः इसी से इतिहासकार पूर्व जाति के दुर्गुण पता कर दूसरी जाति के सद्गुण-पूर्ण महत्व के प्रतिपक्षी बन जाते हैं। किन्तु दूसरी जाति के उत्थान का कारण ऐसी स्थिति में पहली जाति ही होती है।

प्राचीन ग्रीक और रोम की सभ्यता के फलस्वरूप ही योरप का वर्तमान इतिहास इतना प्रोज्ज्वल है। हिन्दू-धर्म के अटल सत्य संस्कार तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त की भाँति इतिहास में भी पुनर्जन्म एवं आत्म-शान्ति का रस कूट कूट कर भरा होता है। यदि किसी मनुष्य को अकारण ही दुःखों का सामना करना पड़े तो उसे संस्कारों के कारण आत्म-शान्ति एवं सत्कार्यों के द्वारा पुनर्जन्म के सुखों की आयोजना में आशावाद का पाठ मिलता है, इसी प्रकार किसी जाति के पद-भ्रष्ट हो जाने के कारण उसके संस्कार तथा उत्क्रान्तिमय पुनर्जन्म के लिए सत्कार्य्यों के सिंहावलोकन की आवश्यकता होती है। History repeats itself अर्थात् इतिहास स्वयं ही दोहराता है—जिसका भूतकाल सुन्दर है उसका भावीकाल भी अवश्य ही सुन्दर होता है। आशावाद का क्या ही अच्छा सन्देश है! इसी से आगे के लिए फूँक फूँक कर पाँव बढ़ाने के उद्देश से भूत-कालीन त्रुटियों से बचने तथा अतीत आदर्शों के आधार पर भावी जीवन उच्च बनाने की महत्वाकांक्षा रहती है। मराठों के अत्युच्च अतीत आदर्श क्या थे और उनका महाराष्ट्र तथा अन्य प्रान्तों पर क्या प्रभाव पड़ा, यह विचारणीय बात है।

महाराष्ट्र के प्राचीन राजा पुलकेशी ने कन्नौज के राजा हर्षदेव का पराभव किया था। अथवा प्राचीन महाराष्ट्री भाषा का सारे भारतवर्ष पर प्रभाव था। इन पुरानी बातों को दुहराने की आवश्यकता नहीं। हमें तो छत्रपति शिवाजी के उदय से ही तत्कालीन परिणाम पर विचार करना है। उत्तरी भारत पर मुसलमानों का चार सौ वर्षों तक शासन होने के कारण जो पतन हुआ था, छत्रपति शिवाजी ने उस के प्रतिकार में क्या किया इसका वर्णन कवि-वर भूषण के शब्दों में सुनिये—

वेद राखे विदित पुराण राखे सारयुत
राम नाम राखो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कान्धे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।
मीड़ राखे मुगल मरोरि राखें पादशाह,
बैरी पीस राखे वरदान राखो कर में।
हिन्दुन की हद राखी तेग बल शिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में।

और हमें विश्वास है कि भूषण के उक्त मत से किसी का वैषम्य नहीं है। शिवाजी के अनन्तर महाराष्ट्र में शीघ्र ही राज्यक्रान्ति हो गयी और घरेलू तथा प्रान्तीय झगड़ों के सुलझाने में उन्हें कुछ वर्ष अतिवाहित करने पड़े। पहले पेशवा ने मराठों का राजनैतिक अधिकार प्रस्थापित करने के उद्देश से दिल्ली तक धावा लगाया। किन्तु, केवल चौथ सरदेशमुखी के अधिकार ही मराठों के प्राप्त कर लेने से पर-हित या हिन्दू सभ्यता का भला होना असम्भव था। शिवाजी के अनन्तर मराठों के इतिहास में सर्व प्रथम महान पुरुषार्थी बाजीराव पेशवा हुए। उन्हीं के समय से वास्तव में उत्तरी-भारत पर मराठों का स्थायी प्रभाव पड़ा। मुहम्मद शाह बादशाह के समय दिल्ली दरबार में अन्धेर मचा था। दक्षिण का सूबेदार निजाम स्वतन्त्र बन बैठने की चिन्ता में था। विभिन्न प्रान्तों के मुगल सूबेदार प्रजा पर नृशंस अत्याचार करते थे। अकाल के कारण मालवे की प्रजा यों ही दुखी थी, मुसलमानों का टिड्डी-दल तथा सूबेदार की जोंकें प्रजा को चूसने में तत्पर थीं। सवाई जयसिंह भी दरबार से रूठा हुआ था. अतएव मालवा की प्रजा ने उनके पिण्ड से छुटकारा पाने के लिए जयसिंह से सलाह की तब जयसिंह ने बाजीराव पेशवा को दल-बल सहित मालवे पर चढ़ जाने को निमन्त्रित किया और मालवा के हिन्दू नेताओं ने अपने भाई-बन्दों को कटवा कर मराठों का अधिकार स्थापित कराया। जिसका सप्रमाण और विस्तृत वर्णन इन पंक्तियों के लेखक द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

मुगलों के स्थान पर उत्तरी भारत पर मराठों का प्रभाव स्थापित होते ही उन्होंने अनेक ऐसे कार्य किये जो यावचन्द्र दिवाकरौ स्मरण रहेंगे। मराठे श्रुति स्मृति पुराणोक्त कर्तव्यों को अपना महाराष्ट्र धर्म कहते थे। उस महाराष्ट्र धर्म की रक्षा के हेतु शिवाजी का अवतार हुआ था, तथा उस महाराष्ट्र धर्म के अन्तर्गत गौ ब्राह्मण तथा अनाथ का पालन, अत्याचार का प्रतिकार तथा धर्म-वृद्धि के कारण ही 'महाराष्ट्र धर्म राहिला को ही तुम्हा करिता' जैसे समर्थ रामदास जी के उद्गार निकले थे। शिवाजी के सुपुत्र मराठा वीरों ने भी उस परिपाटी को खूब निभाया। मालवा पर अपना राज्य स्थापित करते ही मराठों ने सब से पहिले ग्राम सङ्गठन का कार्य अपनाया। विदेशी यवन सत्ता की अपेक्षा अपने राज्य को लोकप्रिय बनाने की उन्हें महत्वाकांक्षा थी। अतएव उन्होंने महाराष्ट्र की भाँति मालवा में भी चाकराने के रूप में भङ्गी, चमार, सुनार, लुहार

बराड़ आदि ग्राम्य जातियों को यथावश्यक माफ़ियाँ दीं। विद्वान् तथा ग़रीब ब्राह्मणों को राज्य की शुभचिन्तना के लिए धर्मादा, नगदी या पृथ्वी पुरस्कार में दिया। प्रतिष्ठित तथा विद्वान् ब्राह्मणों के लिए नकद माफ़ियाँ नियुक्त कीं तथा पुराने और नये देवस्थान बना कर, उनके लिए वेतन स्थिर किया। इस प्रकार चाकराना, धर्मादा, माफ़ी तथा देवस्थान के रूप में राज्य-कोष से प्रजा की सहायता करने के कारण जाग्रत प्रदेशों में मराठा राज्य बड़ा लोकप्रिय हुआ। और कौन कह सकता है कि उनके उक्त उद्देश हिन्दू सभ्यता के अनुकूल नहीं थे। मुसलमानों के राजत्व काल में प्रत्येक तहसील व टप्पा के शासन-प्रबन्ध का हिसाब-किताब रखने के लिए चौधरी और क़ानूनगो नियत थे। उसी प्रकार मराठों ने भी फड़नवीस (फड़नीस), चिट्ठीनवीस (चिटनीस), मुजमीदार (मुजूमदार) नामक कर्मचारी नियत किये थे। वे लोग प्रायः मराठे ही हुआ करते थे। जिन-जिन प्रदेशों पर मराठों का आधिपत्य हुआ, वहाँ पर उक्त प्रकार की महाराष्ट्र प्रणाली प्रचलित हुई। यदि किसी राजपूत राजा से भी मराठों ने सुलह की तो एक मुश्त खिराज वसूल न होने की स्थिति में अथवा वार्षिक खिराज वसूली के बदले में कोई परगना अपने अधीन कर लिया जाता था और वहाँ पर भी वही प्रथा प्रचलित कर दी जाती थी। गुजरात, मद्रास, पञ्जाब संयुक्तप्रदेश, राजपूताना तथा मध्य भारत के भिन्न-भिन्न हिस्सों पर मराठों का पहिले अधिकार था, अथवा अब है, वहाँ पर पुराने कुटुम्बों तथा मन्दिरों को दी हुई मराठी सनदें अब भी पाई जाती हैं, और उन प्रदेशों में, जो किसी मराठा देशी राज्य या बृटिश शासन के अधीन हैं, वे पुरानी नियुक्तियाँ अद्यावधि प्रचलित हैं।

मराठों के साथ राज्य-शासन अथवा सैनिक-प्रबन्ध के लिए अनेक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय कुटुम्ब भी उत्तरी भारत में आकर बसे। उनके पुरोहित, शास्त्री, वैद्य, कथावाचक, कीर्त्तनिये आदि भी आ बसे। तीर्थस्थानों में देवालय घाट, कुण्ड आदि बनाये गये, धर्मशालाएँ एवं अन्नक्षेत्र खोले गये। जिससे तत्प्रान्तीय एवं महाराष्ट्री ब्राह्मणों को आश्रय मिला और पण्डितों की परम्परा स्थित हुई। अनेक विद्यापीठ भी स्थापित हुए। काशी जैसे सुदूर नगर में महाराष्ट्रिकों की घनी बस्ती का होना तथा संस्कृत पाण्डित्य का अधिकारी कहलाना इसी बात का परिचायक है। राजपूताने के राजपूत राज्यों में मराठे वकील रहा करते थे। उनके कारण भी बहुत से ब्राह्मण कुटुम्ब उन स्थानों पर पहुँचे जिससे महाराष्ट्र की सभ्यता का यथेष्ट प्रचार हुआ। बुन्देलखण्ड के झाँसी जालौन, सागर, गुलसराय बाँदा आदि स्थानों पर मराठों के शासक होने के कारण ही वहाँ प्रत्येक महाराष्ट्रीय रीति रस्म का यथेष्ट प्रचार हुआ। बिठूर में बाजीराव पेशवा तथा चित्रकूट में अमृतराव पेशवा के निवास के कारण बहुत से सद्गुणसम्पन्न व्यक्तियों को उनका आश्रय मिला। बद्रीनारायण से लगाकर उज्जैन तक के देवस्थानों की पूजा आदि के लिए कर्नाटक [illegible], तथा

द्रविड़ देशों से विद्वान ब्राह्मण बुला कर मराठों ने ही उन्हें बसाया। काश्मीर और नैपाल तक महाराष्ट्र का प्रवेश था।

उत्तरी भारत पर मुसलमानों का अधिक समय तक आधिपत्य रहने के कारण वैदिक आचार व्यवहार लुप्त हो चुके थे। वास्तव में चार्वाक बौद्ध के अनन्तर हिन्दू सभ्यता की सम्बर्धना के लिए दक्षिण ही एकान्त प्रदेश था। श्रीशङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य आदि धर्माचार्यों ने अपने मठ दक्षिण में ही स्थापित किये थे और वास्तव में अब भी वैदिक सभ्यता का यथार्थ स्वरूप जितना महाराष्ट्रियों में दिखाई देता है, उतना उत्तरी भारत के ब्राह्मणों में शायद ही मिले।

मराठा शासकों ने शिक्षा-प्रचार का बड़ा कार्य किया। आगरा में संस्कृत पाठशाला स्थापित करने के लिए उन्होंने तीन ग्राम अग्रहार में दिये थे। अब भी आगरा कालेज का व्यय उन्ही ग्रामों से चलता है। मराठी-राज्य-शासन-प्रणाली आदि का उत्तर भारतीयों ने भी अवलम्बन किया था। वैदिक पाण्डित्य, याज्ञिक तथा पौराणिक पद्धति, ज्योतिष, वैद्यक, गायन व्याकरण साहित्य आदि भारतीय-सभ्यता के अङ्गोपाङ्ग में उत्तर भारत के महाराष्ट्रियों में स्थायी कार्य कर के अपनी परम्परा स्थिर करने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। खण्डवा के पाण्डेय वेणीराम जी ने मराठी का अध्ययन करके उस भाषा में रचना की तथा अनेक हिन्दी कवियों ने भी मराठी के गुण गान किये हैं।

मराठों के इतिहास का रहस्य है सङ्गठन। मराठा राज्य को अंग्रेज़ी में मराठा Confideracy और मराठी में 'मराठा मण्डल' कहा जाता था। जिस प्रकार पञ्च निर्णय करते हैं, उसी प्रकार मराठा राज्य का सूत्र दस-पाँच प्रमुख मराठा सरदारों के हाथ में रहा करता था, तथा राज्य-विस्तार का कार्य उन्हीं के हाथ में दे दिया जाता था। किसी एक कार्य को सिद्ध करने के लिए सभी मराठे एकत्रित हो जाया करते थे। अन्त में राजपूतों ने भी मराठों से यह पाठ पढ़ा था। यद्यपि उसका उन्होंने दुरुपयोग ही किया, तो भी मेवाड़ की राजकन्या कृष्णाकुमारी का पाणिग्रहण जोधपुर के राजा विजयसिंह की उठाई, धराई, तथा सन् १७० का राजपूत राजाओं का मराठों के विरुद्ध पाटन का सङ्गठित युद्ध मराठों की उसी नीति का परिचायक था। अस्तु—

एक और महत्व की बात है। विद्वद्वर लेलेजी महोदय के संग्रह में हमें एक पत्र देखने को मिला, जिसमें जोधपुर महाराज ने श्रीदौलतराव सिन्धिया से अपने दरबार के लिए कुछ महाराष्ट्रीय पण्डित और संस्कृत के ग्रन्थों की जिज्ञासा की है। एक उससे भी अधिक महत्व-पूर्ण पत्र की प्रतिलिपि हिन्दी अनुवाद करके यहाँ पर छापा जाता है। बारहवीं शताब्दि से लेकर उन्नीसवीं शताब्दि अर्थात् सात सौ वर्ष तक यवनों का आधिपत्य रहने के कारण उत्तरी भारत के ब्राह्मण आचार-भ्रष्ट हो गये थे। अतएव वैदिक धर्म की परम्परा स्थापित करने के उद्देश से मराठा साम्राज्य के

प्रकार पेशवा ने अपने सरदार सिन्धिया, होल्कर, पवार (धार, देवास) आदि को आज्ञा-पत्र भेजे थे। वह निम्न हैं।

१. धर्म स्थापना, शास्त्र-प्रमाण, वेद-पुरुष आज्ञा-प्रमाण नाना धर्म में प्रवृत है। नाना स्थलों पर एक गोत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र, वेद-मन्त्र पूर्वक स्नान सन्ध्यादिक आन्हिक कर्म प्रत्येक ब्राह्मण को करना चाहिये। वे पूर्व परिपाटी छोड़ दें।

२. ब्राह्मण को अपने घर में चरखा न रखना चाहिये। स्त्रियों को सूत न निकालना चाहिये। वे पूर्व परिपाटी छोड़ दें।

३. वधू के गले में मोची की बनाई हुई छुहारे, बादाम आदि की माला न पहिनानी चाहिये। उसे घर पर ही बनाना चाहिये।

४. ब्राह्मण जाति को ग्यारहवें बारहवें आदि को भोजन न करना चाहिये। तेरहवें दिन ब्राह्मण को भोजन कर आना चाहिये।

५. सौभाग्यवती स्त्रियों को काँचली (अंगिया), लाख अथवा नरेटी की चूड़ियाँ न पहिनना चाहिये।

६. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों की पङ्गत में, विधवा स्त्रियों को बैठाल कर भोजन न कराना चाहिये।

७. सौभाग्यवती (सुहागिन) स्त्री को विधवा स्त्रियों की पङ्गत में भोजन न कराया जाय।

८. विधवा स्त्रियों को सिर पर बाल रखा कर शिव पूजा न करना चाहिये। उन्हें मुण्डन कराना चाहिये।

९. ब्राह्मणों को विवाह में वर-वधू को सौंधे (कन्होरे) पहिना कर वैदिक कर्म न कराना चाहिये।

१०. विवाह तथा षोड़श संस्कारों में भाँडों के अपशब्दों का उच्चार न होना चाहिये। वेद-मन्त्रोपचार पूर्वक सभी काम होने चाहियें।

११. समस्त ब्राह्मणों को षोड़श कर्म समाप्ति के प्रीत्यर्थ यथासामर्थ्य ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये।

१२. ब्राह्मणों को भोजन कर्म के समय पवित्रता से स्वयं ही भोजन तैयार करना चाहिये। पकवान, पापड़, अचार आदि भी अछूते रखने चाहियें।

१३. समस्त ब्राह्मणों को विवाह में वर वधू के मस्तकों पर पुष्प माला बाँधना चाहिये। मोचियों के घर का मोड़ (मौर) बाँधना उचित नहीं है।

१४. गोत्र, प्रवर सपिण्ड निर्णय पूर्वक स्वसूत्रोक्त वेद मन्त्रों द्वारा विवाहादिक षोड़श संस्कार कराने चाहियें। पूर्व सम्प्रदाय का त्याग उचित है।

१५. ब्राह्मण जाति की समस्त विधवा स्त्रियों को प्रथम रजोदर्शन होते ही मुण्डन करा लेना चाहिये। आभूषण, चोली, काँचोली लहँगा आदि का प्रयोग उचित नहीं है। उन्हें एक वस्त्र सफेद पहिनना चाहिये।

१६. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों को सिर पर तोड़ (सिर पर बाँधने का डोरा) नहीं बाँधना चाहिये।

१७. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों को गले से सिर तक यथा सामर्थ्य स्वर्णाभूषण पहिनना

द्रविड़ देशों से विद्वान ब्राह्मण बुला कर मराठों ने ही उन्हें बसाया। काश्मीर और नैपाल तक महाराष्ट्र का प्रवेश था।

उत्तरी भारत पर मुसलमानों का अधिक समय तक आधिपत्य रहने के कारण वैदिक आचार व्यवहार लुप्त हो चुके थे। वास्तव में चार्वाक बौद्ध के अनन्तर हिन्दू सभ्यता की सम्वर्धना के लिए दक्षिण ही एकान्त प्रदेश था। श्रीशङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचर्य आदि धर्माचार्यों ने अपने मठ दक्षिण में ही स्थापित किये थे और वास्तव में अब भी वैदिक सभ्यता का यथार्थ स्वरूप जितना महाराष्ट्रियों में दिखाई देता है, उतना उत्तरी भारत के ब्राह्मणों में शायद ही मिले।

मराठा शासकों ने शिक्षा-प्रचार का बड़ा कार्य किया। आगरा में संस्कृत पाठशाला स्थापित करने के लिए उन्होंने तीन ग्राम अग्रहार में दिये थे। अब भी आगरा कालेज का व्यय उन्ही ग्रामों से चलता है। मराठी-राज्य-शासन-प्रणाली आदि का उत्तर भारतीयों ने भी अवलम्बन किया था। वैदिक पाण्डित्य, याज्ञिक तथा पौराणिक पद्धति, ज्योतिष, वैद्यक, गायन व्याकरण साहित्य आदि भारतीय-सभ्यता के अङ्गोपाङ्ग में उत्तर भारत के महाराष्ट्रियों में स्थायी कार्य कर के अपनी परम्परा स्थिर करने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। खण्डवा के पाण्डेय वेणीराम जी ने मराठी का अध्ययन करके उस भाषा में रचना की तथा अनेक हिन्दी कवियों ने भी मराठी के गुण गान किये हैं।

मराठों के इतिहास का रहस्य है सङ्गठन। मराठा राज्य को अंग्रेज़ी में मराठा Confideracy और मराठी में 'मराठा मण्डल' कहा जाता था। जिस प्रकार पञ्च निर्णय करते हैं, उसी प्रकार मराठा राज्य का सूत्र दस-पाँच प्रमुख मराठा सरदारों के हाथ में रहा करता था, तथा राज्य-विस्तार का कार्य उन्हीं के हाथ में दे दिया जाता था। किसी एक कार्य को सिद्ध करने के लिए सभी मराठे एकत्रित हो जाया करते थे। अन्त में राजपूतों ने भी मराठों से यह पाठ पढ़ा था। यद्यपि उसका उन्होंने दुरुपयोग ही किया, तो भी मेवाड़ की राजकन्या कृष्णाकुमारी का पाणिग्रहण जोधपुर के राजा विजयसिंह की उठाई, धराई, तथा सन् १७० का राजपूत राजाओं का मराठों के विरुद्ध पाटन का सङ्गठित युद्ध मराठों की उसी नीति का परिचायक था। अस्तु—

एक और महत्व की बात है। विद्वद्वर लेलेजी महोदय के संग्रह में हमें एक पत्र देखने को मिला, जिसमें जोधपुर महाराज ने श्रीदौलतराव सिन्धिया से अपने दरबार के लिए कुछ महाराष्ट्रीय पण्डित और संस्कृत के ग्रन्थों की जिज्ञासा की है। एक उससे भी अधिक महत्व-पूर्ण पत्र की प्रतिलिपि हिन्दी अनुवाद करके यहाँ पर छापा जाता है। बारहवीं शताब्दि से लेकर उन्नीसवीं शताब्दि अर्थात् सात सौ वर्ष तक यवनों का आधिपत्य रहने के कारण उत्तरी भारत के ब्राह्मण आचार-भ्रष्ट हो गये थे। अतएव वैदिक धर्म की परम्परा स्थापित करने के उद्देश से मराठा साम्राज्य के

सूत्रधार पेशवा ने अपने सरदार सिन्धिया, होल्कर, पवार (धार, देवास) आदि को आज्ञा-पत्र भेजे थे। वह निम्न हैं।

१. धर्म स्थापना, शास्त्र-प्रमाण, वेद-पुरुष आज्ञा-प्रमाण नाना धर्म में प्रवृत है। नाना स्थलों पर एक गोत्र, प्रवर, शाखा, सूत्र, वेद-मन्त्र पूर्वक स्नान सन्ध्यादिक आह्निक कर्म प्रत्येक ब्राह्मण को करना चाहिये। वे पूर्व परिपाटी छोड़ दें।

२. ब्राह्मण को अपने घर में चरखा न रखना चाहिये। स्त्रियों को सूत न निकालना चाहिये। वे पूर्व परिपाटी छोड़ दें।

३. वधू के गले में मोची को बनाई हुई छुहारे, बादाम आदि की माला न पहिनानी चाहिये। उसे घर पर ही बनाना चाहिये।

४. ब्राह्मण जाति को ग्यारहवें बारहवें आदि को भोजन न करना चाहिये। तेरहवें दिन ब्राह्मण को भोजन कर आना चाहिये।

५. सौभाग्यवती स्त्रियों को काँचली (अङ्गिया), लाख अथवा नरेटी की चूड़ियाँ न पहिनना चाहिये।

६. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों की पङ्गत में, विधवा स्त्रियों को बैठाल कर भोजन न कराना चाहिये।

७. सौभाग्यवती (सुहागिन) स्त्री को विधवा स्त्रियों की पङ्गत में भोजन न कराया जाय।

८. विधवा स्त्रियों को सिर पर बाल रखा कर विष्णु पूजा न करना चाहिये। उन्हें मुण्डन कराना चाहिये।

९. ब्राह्मणों को विवाह में वर-वधू को मोचे (कन्होरे) पहिना कर वैदिक कर्म न कराना चाहिये।

१०. विवाह तथा षोड़श संस्कारों में भाँडों के अपशब्दों का उच्चार न होना चाहिये। वेद-मन्त्रोपचार पूर्वक सभी काम होने चाहियें।

११. समस्त ब्राह्मणों को षोड़श कर्म समाप्ति के प्रीत्यर्थ यथासामर्थ्य ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये।

१२. ब्राह्मणों को भोजन कर्म के समय पवित्रता से स्वयं ही भोजन तैयार करना चाहिये। पकवान, पापड़, अचार आदि भी अछूते रखने चाहियें।

१३. समस्त ब्राह्मणों को विवाह में वर वधू के मस्तकों पर पुष्प माला बाँधना चाहिये। मोचियों के घर का मोड़ (मौर) बाँधना उचित नहीं है।

१४. गोत्र, प्रवर सपिण्ड निर्णय पूर्वक स्वसूत्रोक्त वेद मन्त्रों द्वारा विवाहादिक षोड़श संस्कार कराने चाहियें। पूर्व सम्प्रदाय का त्याग उचित है।

१५. ब्राह्मण जाति की समस्त विधवा स्त्रियों को प्रथम रजोदर्शन होते ही मुण्डन करा लेना चाहिये। आभूषण, चोली, काँचोली लहँगा आदि का प्रयोग उचित नहीं है। उन्हें एक वस्त्र सकच्छ पहिनना चाहिये।

१६. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों को सिर पर तोड़ (सिर पर बाँधने का डोरा) नहीं बाँधना चाहिये।

१७. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों को गले से सिर तक यथा सामर्थ्य स्वर्णाभूषण पहिनना

चाहिये। चाँदी के आभूषण न पहिनने चाहियें।

१८. सभी ब्राह्मणों को ब्राह्मणों से ही वेद-मन्त्रों का उपदेश लेना चाहिये। संन्यासी, वैरागी, गुसाईं आदि पाखण्डी होते हैं। उनसे मन्त्र ग्रहण न करना चाहिये और न उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।

१९. ब्राह्मणों को अपनी जाति से ही उपदेश लेना चाहिये।

२०. ब्राह्मण जाति को विक्रय के रूप में कन्या का विवाह न करना चाहिये।

२१. सकल ब्राह्मण जाति में विवाह के समय खोइया न करना चाहिये।

२२. वर-वधू को पर घर में भोजन नहीं करना चाहिये। और ब्राह्मणों को निमन्त्रण आने पर अपने परिवार को साथ न ले जाना चाहिये।

२३. ब्राह्मण-स्त्रियों को भोजन बनाते समय रेशमी चोली पहिननी चाहिये। अथवा धोये वस्त्र पहिनने चाहियें। तथा चोली समेत वस्त्र पहिनना चाहिये।

२४. ब्राह्मणों की समाराधना पितृ कार्य तथा विवाह कार्य में भोजन तैयार करते समय रसोइया को निराहार रहना चाहिये अथवा फलाहार करना चाहिये।

२५. ब्राह्मणों को स्नान करके अस्पर्श वस्त्र-परिधान कर के सन्ध्या, व्रत, यज्ञ, तर्पण, नैवेद्य, वैश्वदेव तथा भोजन करना चाहिये। पूर्व प्रथा का त्याग उनके लिए उचित है।

२६. ब्राह्मण जाति में मँगनी या सगाई की प्रथा अनुचित है। तत्काल विवाह होना चाहिये।

२७. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों को चोली पहिनना चाहिये। काचोली (अँगिया) का त्याग करना चाहिये।

२८. सौभाग्यवती ब्राह्मण स्त्रियों को काँसे पीतल के बिछुवे न पहिनने चाहियें। चाँदी के पहिनने चाहियें।

२९. ब्राह्मण स्त्रियों को कमर या कन्धे पर पानी लाना चाहिये। सिर पर न लाना चाहिये।

३०. ब्राह्मण जाति में आटा साटा (अदला बदला) न होना चाहिये।

३१. ब्राह्मण जाति में पेड़ा देड़ा (!) दान नहीं करना चाहिये।

३२. ब्राह्मणों में जिन लोगों को निमन्त्रण दिया जाय उन्हीं को भोजनार्थ जाना चाहिये। साथ में बच्चों को न ले जाना चाहिये।

३३. ब्राह्मण भोजन तथा सुहागिन स्त्रियों की पङ्गत में विधवा को न बैठालना चाहिये।

३४. ब्राह्मण जाति को निहाऊ (निहारी-कलेवा) न करना चाहिये।

३५. ब्राह्मण जाति में मृत-प्राणियों के अन्तिम संस्कार तथा उत्तर क्रिया शास्त्रानुसार करने चाहिये।

३६. ब्राह्मण स्त्रियों के परिधान वस्त्रों का रङ्ग कच्चा न होना चाहिये।

३७. ब्राह्मण स्त्री को पति के मरने पर पहिले अथवा दसवें दिन सिर का मुण्डन कराना चाहिये। तभी वह शुद्ध कहलायेगी।

३८. समस्त ब्राह्मण स्त्रियों को प्रति दिन वस्त्र सहित नहाना चाहिये। अपने सभी वस्त्र धोकर नित्य पहिनना चाहिये।

३९. चर्खे के सूत के यज्ञोपवीत न बनाना चाहिये। अपने हाथ से सूत निकाल कर यज्ञोपवीत बनाना और समन्त्र धारण करना चाहिये।

४०. ब्राह्मणों को ब्राह्मणोदक से ही सदा स्नान तथा समाराधनादिक कृत्य करना चाहिये। शूद्रोदक का त्याग करना चाहिये।

४१. ब्राह्मण स्त्रियों को सभ्य लुगड़ा धारण करके लँहगों का त्याग करना चाहिये।

४२. ब्राह्मणों को भोजन करते समय परस्पर स्पर्श न करना चाहिये।

४३. सौभाग्यवती स्त्रियों को भी स्पर्श न करना चाहिये।

४४. ब्राह्मण जातियों में कन्या का विवाह सात वर्ष से १० वर्ष की आयु तक, तत्काल विवाह की प्रथा से, करना चाहिये।

४५. ब्राह्मणों को, जिस गाँव में वधू रहती हो, वहाँ सकुटुम्ब जाकर मण्डप देवप्रतिष्ठा आदि करके विवाह करना चाहिये।

४६. ब्राह्मणों को ब्राह्म विधि से विवाह करना चाहिये।

४७. समस्त ब्राह्मण बालकों के लिए वेदाध्ययन अनिवार्य है।

४८. जो ब्राह्मण उक्त अनाचारों का त्याग न करेगा उन्हें जातिच्युत कर देना चाहिये अथवा उपयुक्त प्रायश्चित लेकर उन्हें शुद्ध करना चाहिये।

४९. समस्त ब्राह्मणों को पितृ-कार्य के प्रीत्यर्थ वेदपाठी ब्राह्मणों को भोजन के निमित्त निमन्त्रण करना चाहिये।

५०. पितृ-कार्य के लिए जितने ब्राह्मणों को बुलाया जाय, उनको भोजन कराना चाहिये।

५१. ब्राह्मणों को शूद्रों के घर विवाहादिक कर्म करने के लिए शूद्र कमलाकर ग्रन्थ का प्रमाण मानना चाहिये। वैदिक कृत्य न करना चाहिये।

उक्त आज्ञा के अनुसार धर्माचरण की परिपाटी को निभाने का प्रबन्ध किया जाय।

—(मोर्तब) सुद।

जिन प्रान्तों में पहले यवनों का आधिपत्य था, वहाँ के ब्राह्मणों के अनेक आचारों के लोप हो जाने से उन्हें पुनः यथाशास्त्र अपना आचरण रखने के प्रीत्यर्थ उक्त आज्ञा-पत्र ब्रह्मण्य-रक्षक पेशवा की ओर से मालवा,गुजरात आदि प्रान्तों के शासकों के पास भेजे गये थे और वास्तव में स्वराज्य में स्वधर्म तथा अपने समाज की उन्नति के प्रयत्न होने ही चाहियें। शिवाजी ने वही कार्य किया और उन्हीं के उत्तराधिकारी पेशवा तथा अन्य मराठा राजाओं ने भी उसी परम्परा को निभाया, इस आज्ञा का यथार्थ परिपालन मालवा तथा गुजरात प्रान्त में विशेषरूपेण किया गया। इसीसे तत्प्रान्तीय औदीच्य, नागर, औदुम्बर वाइसा, गुर्जर गौड़, श्रीगौड़ आदि जातियों में महाराष्ट्रीय पद्धति के अनुसार वैदिक आचार विशेष-रूपसे पाये जाते हैं।

गत वर्ष हमें उज्जैन के धर्माधिकारीजी के यहाँ एक प्राचीन-पत्र उपलब्ध हुआ। जिसकी प्रतिलिपि यहाँ पर दी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि मराठा राज्य में कन्या विक्रय के लिए निषेधात्मक आज्ञा किस प्रकार प्रचलित हुई थी और आज्ञा भङ्ग करने के उपलक्ष में

उन पर कैसे कठोर जुर्माने होते थे। वह जुर्माना राज्यकोष में जमा नहीं होता था। वरन् अलग रक्खा जाता था और श्रावण मास में काशी से लगा कर रामेश्वर तक के विद्वानों को निमन्त्रित करके उनकी योग्यता के अनुसार पारितोषिक के रूप में वितरण किया जाता था। उक्त आज्ञा-पत्र की प्रतिलिपि निम्न है।

अखण्डित लक्ष्मी अलंकृत राजमान राजेश्री बाबूराव गणेश गोस्वामी यंसि—

सेवक बाजीराव रघुनाथ प्रधान सुमा इसन्ने अशर मयातेन अलफ़। ब्राह्मण जाति में किसी को कन्या से नक़द रकम अथवा उधार लिए बिना वर-पक्ष को कन्या देकर विवाह करना चाहिये। इस आज्ञा की चेतना तुम को धर्माधिकारी, ज्योतिषी, उपाध्याय, समस्त ब्राह्मण, देशमुख, देशपाण्डे, पटेल, कुलकर्णी तथा महाजन आदि को करनी चाहिये। सचेत किये जाने पर भी कन्या से नक़द कर्जा लेकर विवाह करने की स्थिति में विवाह होते ही वर-पक्ष अथवा मध्यस्थ को सरकार को सूचना देनी चाहिये। तदनन्तर पता लगा कर कन्या पक्ष ने जो कुछ लिया हो वह वर पक्ष को दिला कर कन्या पक्ष से उतना ही जुर्माना वसूल करना चाहिये और मध्यस्थ की वसूल की हुई रकम जमा करनी चाहिये। यदि वर-पक्ष तथा मध्यस्थ सरकार में सूचना न दे और सरकार को इसका पता लग जाय तो कन्या-पक्ष की वर पक्ष से ली हुई रक़म, उतना ही जुर्माना तथा वर-पक्ष से दुगुनी गुनहगारी और मध्यस्थ से बदले में ली हुई रकम और उतनी ही गुनहगारी सरकार में जमा होनी चाहिये। अतएव आज्ञा दी जाती है कि उक्त नियमानुसार प्रबन्ध करके जो रकम वसूल हो, उसमें से एक पाई भी व्यय किये बिना अमानत करके रक्खी जाय और सरकार को सूचना दी जाया करे। चन्द्र बाइस जमा दिलावल आज्ञा प्रमाण मोर्त्तवशुद।

इसी से स्वराज्य का सामाजिक सुधार करने की लगन का पता लग सकता है। मराठों के स्वराज्य के नष्ट हो जाने के कारण अंग्रेज़ी राज्य की यत्किञ्चित् सुविधाओं के अतिरिक्त प्रत्येक बात में हमारा पतन हुआ है उस बात की साक्षी में महामति रानाड़े, जस्टिस तैलङ्ग आदि के लेख मौजूद हैं। श्री तैलङ्ग Glimpses of the Maratha Chronicle में स्पष्ट रूपेण लिखा है कि वृटिश अदालत के स्थिर हो जाने से हमारे हिन्दू धर्म-शास्त्र की प्रगति रुक गयी और वृटिश राज-सत्ता के कारण हमारी सामाजिक उत्क्रान्ति नष्ट हो गयी और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का भूत सवार हो गया। महामति रानाड़े जी ने भी Introduction to the diaries of Peshwas में पेशवा राज्य काल के सामाजिक विषयों का प्रामाणिक विवेचन किया है। उससे पतित परावर्तन, शुद्धि कार्य में सरकार की सहायता, शराब बन्दी, शराब पीने वालों को सरकारी माफ़ी ज़ब्त करने का दण्ड, जातियों के झगड़ों का निर्णय आदि बातों का अच्छा पता चलता है। उत्तरी भारत पर राजनैतिक अधिकार प्रस्थापित होते ही यहाँ भी मराठों

स्वधर्म-रक्षा का कार्य बड़ी लगन के साथ किया। मराठा शाही में सदाचार-वृद्धि की छोटी-छोटी बातों के लिए भी बड़ा ध्यान दिया जाता था। स्वधर्म-रक्षा अथवा उसकी सम्वर्धना विदेशी धर्म अथवा विदेशियों के द्वेष में प्रविष्ट नहीं हो सकती। परन्तु वर्तमान काल में जहाँ हमारे स्वधर्मी राजा ही धार्मिक विषयों में तटस्थ बन बैठते हैं, वहाँ विदेशी सत्ताधारी अंग्रेज़ सरकार के विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है।

छत्रपति के गुरु श्री समर्थ रामदास जी ने कहा था—'मराठा तितका मिलवावा महाराष्ट्र धर्म वाढ़वावा, या साठीं करिता तकचा पूर्वज हंसति' अर्थात् मराठों का सङ्गठन करो, महाराष्ट्र-धर्म की अभिवृद्धि करो। यदि इस कर्तव्य को पूरा न करोगे तो तुम्हारे पूर्वज स्वर्ग से हँसेंगे। तदनुसार मराठों ने अपने महाराष्ट्र धर्म का उत्तरी भारत में बहुत प्रचार किया। मराठों के इतिहास के वास्तविक स्वरूप की खोज करने वाले अब भी उत्तरी भारत पर उनकी सभ्यता के परिणाम-चिह्नों की ओर दृष्टि-निक्षेप कर सकते हैं।*

—जागेश्वर अग्निहोत्री

❀ ❀ ❀

आत्म-प्रवञ्चना

शान्त, शान्त, हाँ, शान्त, राष्ट्र की तू प्रलयंकर रानी !
नाच रही है अपनेपन का ले प्याला दीवानी !
कालकूट बेखबर पिया—छलना की चादर तानी।
यह विनाश का हास, क्रूर हँसता तेरी "मनमानी।"

× × × ×

"बढ़ने दे मेरा स्वराज्य—शिव के कैलाश भुवन तक—
चढ़ने दे मेरा स्वराज्य—रावण की स्वर्ण मही तक।"
माँ की इन हुंकारों से पूना की सेना चौंक उठी।
'हर हर' की ध्वनियों में आश्वासन की घड़ियाँ जाग उठीं॥

× × × ×

किन्तु हाय, जब छलक पड़ी री मादक मदिरा तेरी।
ललच पड़ी मेरी जवान औ' हार हुई तब मेरी॥

—"वीरात्मा"

---

* सन्दर्भ ग्रन्थ—(१) महाराष्ट्रधर्म—भट (२) मल्लारिमार्तण्ड विजय (साप्ताहिक) (३) सद्विचार—बड़ौदा (मासिक) (३) मराठा मण्डल—ग्वालियर (त्रैमासिक)

मराठे और राजपूत
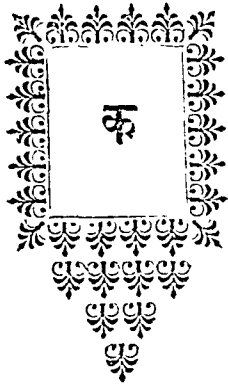
कविवर रवीन्द्र ने भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कभी लिखा था—"आजकल स्कूलों में हमारा जो इतिहास पढ़ाया जाता है,वह भारत को आधी रात के समय दिखाई दिये हुए बुरे स्वप्न की कहानी मात्र है। न जाने कहाँ से कौन आये, लड़ाई-भिड़ाई का, मार-काट का शोर मच गया; बाप बेटे और भाई-भाई में राजगद्दी के लिए चोटें चलने लगीं। एक दल जाता है, तो दूसरा दल आता है, वह सिधारता है तो तीसरा पधारता है। पठान, मुग़ल, पोर्चुगीज़ फ़रासीसी और अंग्रेज़ आदि सब ने मिल कर इस दुःस्वप्न को उत्तरोत्तर जटिल बना दिया है। इस इतिहास के देखने से तो यही प्रतीत होता है कि भारतवासी कहीं हैं ही नहीं, भारत में जो लोग खूनखराबी, मार-काट, लूट मार कर गये हैं, वे ही जो कुछ हैं, सो हैं। उस समय भारतवर्ष था ही नहीं, केवल मुग़ल पठानों के गर्जना-पूर्ण बवण्डर सूखे पत्तों के सदृश उत्तर से दक्षिण और पश्चिम से पूर्व तक घूम रहे थे।"

परन्तु क्या वस्तुतः मुसलमानों के समय भारत का अपना इतिहास नहीं था? यह तो नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि उस समय के राजनैतिक इतिहास में दिल्ली और आगरे का मुख्य स्थान था। परन्तु राजपूताना और महाराष्ट्र भी विशेष महत्व रखते थे। केवल खिलजी, बाबर अकबर और औरङ्गज़ेब के कारनामे ही भारत के इतिहास में पाठ्य नहीं हैं। परन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण महाराणा साँगा, महाराणा प्रताप, दुर्गादास, छत्रपति शिवाजी और अनेक पेशवाओं के चरित्र हैं, जो वास्तविक भारत के इतिहास की अपनी वस्तुएँ हैं। वस्तुतः मुसलमानकालीन भारतीय इतिहास का महत्त्वपूर्ण भाग राजपूत और मराठे, इन दो जातियों का इतिहास ही है। इन दोनों जातियों ने क्या-क्या किया, यह विस्तार से बताने का न तो यहाँ स्थान है और न हम इस लेख में यह दिखाना ही चाहते हैं। इन दोनों जातियों ने मुसलमान राजाओं के साथ चिरकाल तक युद्ध किये और अपनी स्वातन्त्र्य-भावना को यथाशक्ति विलुप्त न होने दिया। दोनों जातियों की वीरता और स्वातन्त्र्य-प्रेम भिन्न-भिन्न रूपों के होते हुए भी आदर्श थे। इस लेख में संक्षेप से हम दोनों की तुलनात्मक आलोचना करना चाहते हैं।

इतिहास का विद्यार्थी जब राजपूत और महाराष्ट्र के इतिहासों का अध्ययन करता है, तब उसके सम्मुख एक गम्भीर और जटिल प्रश्न उपस्थित होता है कि राजपूत राज्य, जो

चिरकाल से उन्नत, सङ्गठित एवं व्यवस्थित राज्य थे, जिनके पास लड़ने वाले वीर सैनिकों, शस्त्रास्त्रों आदि की कोई कमी न थी, जो दो शताब्दि तक प्रबल मुस्लिम शक्ति के साथ सङ्घर्ष करते रहे, मुग़ल राज्य के पतन के समय भी क्यों एक विशाल राज्य की स्थापना न कर सके और स्वयं भी अवनत होते गये। और दूसरी ओर औरङ्गज़ेब के समय शिवाजी तैयार हुए और मराठों को सङ्गठित किया तथा कुछ ही वर्षों में उनका मुग़ल-साम्राज्य पर आतङ्क छा गया। तथा दूसरी पीढ़ी बीतने तक महाराष्ट्र साम्राज्य एक प्रबलशाली राष्ट्र हो गया। इस पहेली पर विविध ऐतिहासिकों ने भिन्न-भिन्न पहलुओं से विचार किया है। वस्तुतः इस प्रश्न के उत्तर में ही प्रथम प्रश्न का उत्तर अन्तर्निहित है। अनेक राजनैतिक, सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों के अतिरिक्त इन दोनों जातियों के भिन्न-भिन्न चरित्र इस पहेली को सुलझाने में सहायक होंगे। इन दोनो जातियों की पारस्परिक तुलना से कुछ न कुछ कारण स्पष्ट हो जायँगे।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण अन्तर है दोनों जातियों के उत्थान के उद्देशों में। दोनों जातियों में अद्भुत और अनुपम स्वातन्त्र्य-भावना थी। दोनों ही जातियाँ मुस्लिम राज्य के जुए को असह्य समझती थीं। दोनों ही स्वातन्त्र्य-लाभ और उसकी रक्षा के लिए प्राणपण से लड़ने और आदर्श आत्म-बलिदान के लिए उद्यत थीं। परन्तु दोनों के उद्देश्यों में अन्तर था। महाराष्ट्र की राजनैतिक प्रगति में वहाँ के सन्तों का बड़ा हाथ है। यह लाभ राजपूतों को प्राप्त नहीं हुआ। सन्तों ने मराठों में नवीन उदार शिक्षा भर कर उन्हें जागृत कर दिया था, इसलिए मराठों में हम राष्ट्र की एक उच्च भावना पाते हैं। मराठे और राजपूत दोनों स्वतन्त्रता के भूखे थे। परन्तु दोनों के उद्देश्य में यह अन्तर था कि मराठे तो एक राष्ट्र बनाने और मुग़ल साम्राज्य को नष्ट करने की महत्वाकांक्षा रखते थे। वे चाहते थे कि सम्पूर्ण भारत मुसलमानों के पञ्जों से छूट जाय। परन्तु राजपूतों में यह भावना न थी। तभी हम भारतीय इतिहास में एक लज्जा-जनक दृश्य देखते हैं कि शिवाजी की स्वराज्य-स्थापना के पवित्र प्रयत्न को कुचलने का क्रमशः जसवन्तसिंह और जयसिंह ने प्रयत्न किया। राजपूत मुसलमानों का आधिपत्य इसलिए स्वीकार न करते थे कि इससे उनका व्यक्तिगत अपमान होगा। उनको दूसरे के दरबार में खड़े होकर बादशाह की आज्ञा सुननी होगी। केवल यही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का भाव उन्हें मुग़ल बादशाहों से लड़ने को प्रेरित करता था। इसी व्यक्तिगत मान-अपमान का विचार वे केवल शत्रुओं से नहीं, अपने आदमियों से भी रखते थे। इसका उन्हें इतना ध्यान था कि देश के सङ्कट के समय भी आपस में लड़ने से नहीं चूकते थे। इसका एक उदाहरण महाराणा-अमरसिंह के समय जब बादशाह जहाँगीर ने अपना अधिकतर साम्राज्य-बल मेवाड़ पर लगा दिया था, हरवल के लिए चूड़ावतों और शक्तावतों का झगड़ा था। यह ठीक है कि

अनुपम स्वार्थत्याग और वीरता की दृष्टि से एक राजपूत मराठों से कहीं अधिक उन्नत है, परन्तु यह राजपूत का व्यष्टि धर्म है। इस विचार को इन दो शब्दों द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकते हैं। मराठे सामाजिक धर्म (Social Virtue) में अधिक उन्नत थे और राजपूत व्यक्तिगत धर्म (Private Virtue) में।

महाराणा साँगा के समय सब राजपूत राजाओं ने एकत्र होकर केवल एक बार विदेशी शक्ति से युद्ध किया, जिसमें दुर्भाग्यवश वे सफल न हो सके। फिर ऐसा कोई प्रयत्न भी नहीं किया गया। मराठों के आक्रमण से बचने के लिए सवाई राजा जयसिंह ने राजपूत राजाओं को एक करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमें सफलता नहीं हुई।

राष्ट्रीय भावना न होने के कारण ही उस समय के अपने साधारण शत्रु मराठों को सन्-१७६१ ई० के पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में राजपूतों ने कोई सहायता न दी, जिससे मराठों का हिन्दू राज्य का स्वप्न पूर्ण न हो सका। एक और आश्चर्य की बात है कि मुग़ल-साम्राज्य क्षीण हो चुका था, यदि राजपूत चाहते तो बहुत शीघ्र ही उस अवसर से लाभ उठा कर पूर्ण स्वतन्त्र हो जाते। परन्तु उनमें वह राष्ट्रीय भावना नहीं थी और उनका व्यक्तिगत मान एक बार नष्ट हो चुका था। नहीं तो क्या कारण था कि राजा मानसिंह, जसवन्तसिंह और जयसिंह केवल मुग़लराज्य के सिपाही बन कर उनके साम्राज्य का विस्तार किया करते।

मराठों के शीघ्र सफल होने का एक प्रधान कारण उनकी नीतिमत्ता—राजनीतिज्ञता है। इस बात में वे राजपूतों से बहुत आगे बढ़े हुए थे। सम्पूर्ण राजपूताने के इतिहास में हमें तो राजनीति का केवल एक प्रकाण्ड पण्डित दीखता है और वह है वीरवर देशभक्त दुर्गादास जिसने बड़े विकट समय में औरङ्गज़ेब को दक्षिण भेज कर मेवाड़ और मारवाड़ दोनों को नष्ट होने से बचा लिया। महाराणा कुम्भा और महाराणा साँगा आदि ने शत्रु को अपने हाथ में करके भी राजनीति-शून्य उदारता के वश छोड़ दिया। साँगा ने निर्बल लोदी को नष्ट करने के लिए उससे प्रबल शत्रु बाबर को स्वयं निमन्त्रित किया। महाराणा प्रताप ने भी मुग़ल सम्राट् से लड़ने के लिए सब राजपूत राजाओं को एक करने का प्रयत्न किया हो, ऐसा पाया नहीं जाता। ऐसे और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। राजपूत वीरता और युद्ध कुशलता में निःसन्देह मरहठों से बढ़े चढ़े थे और यदि उनमें मराठों जितनी राजनीतिज्ञता होती, तो राजपूत राज्यों की शक्ति को कौन नष्ट कर सकता था। राजपूत राजा मुग़ल दरबार में रहते हुए वहाँ की पूर्ण स्थितियों से परिचित थे, परन्तु उन्होंने इस अवसर से लाभ नहीं उठाया। दूसरी ओर मराठे मुग़ल साम्राज्य से दूर रहने पर भी वहाँ की प्रत्येक आन्तरिक बात से अपने को परिचित रखते थे। शिवाजी, उसके बाद के अनेक पेशवा, महादजी सिन्धिया और नाना फड़नवीस प्रकाण्ड राजनीति विशारद थे

औरङ्गज़ेब ने जब शाहूजी को वन्दी कर लिया, तब मराठों ने किसी दूसरे को राजा न चुन कर बड़ी बुद्धिमता की। जब भोंसले राजवंश और पेशवाओं में विरोध बढ़ने का अवसर आने लगा तो बालाजी विश्वनाथ के लड़के बाजीराव ने दिल्ली की ओर मुँह कर इस कलहाग्नि को प्रज्वलित न होने दिया। इसके बाद से पेशवाओं और मराठा सरदारों की राजनीतिज्ञता ने उन्हें मुग़ल बादशाह का संरक्षक बना दिया। यदि राजपूत चाहते तो बड़ी सुगमता से यह पद प्राप्त कर लेते। फिर तो उत्तरी भारत, बङ्गाल और संयुक्तप्रान्त तक मराठों की सेनाएँ जाने लगीं। मराठों की उच्च महत्वाकांक्षा, युद्ध-कुशलता और नीतिमत्ता को देखते हुए किसी [ऐ]तिहासिक का यह लिखना बिलकुल ठीक [प्र]तीत होता है कि यदि अंग्रेज़ बङ्गाल की ओर [से] विजय प्रारम्भ न कर दक्षिण-पश्चिम की ओर [से] करते तो भारतवर्ष का इतिहास दूसरी तरह लिखा जाता।

ये दो मुख्य भेद थे, जिनके कारण राजपूत असफल हुए और मराठों ने अधिक सफलता प्राप्त की। स्त्रियों का मान दोनों जातियाँ करती थीं। इस बात में राजपूतों का स्थान अधिक ऊँचा माना जा सकता है। राजपूत रमणियों ने राजपूत जाति का नाम अत्यन्त उज्ज्वल कर दिया है। यह ठीक है कि जीजीबाई, येसूबाई और अहल्याबाई आदि स्त्रियों ने मराठों की कीर्ति बढ़ाई है, परन्तु पद्मिनी, ताराबाई, कर्मवती, महामाया आदि रण में सैन्य सञ्चालन करने वाली शत्रुदल-संहारिणी राजपूत रमणियों का मुकाबला संसार की कौन जाति कर सकती है।

बकले प्रभृति ऐतिहासिक विद्वानों का मत है कि इतिहास के निर्माण में मनुष्य की अपेक्षा प्रकृति का बहुत अधिक स्थान है। भिन्न-भिन्न जातियों के चरित्र पर भी प्रकृति अपना प्रभाव डालती है। बकले का यह सिद्धान्त पूर्णतः नहीं तो अंशतः तो अवश्य ठीक है। जाति के चरित्र पर केवल प्रकृति ही नहीं, वरन् भिन्न-भिन्न सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी गहरा असर डालती हैं। मराठों और राजपूतों के चरित्र पर भी विविध परिस्थितियों ने अवश्य असर डाला है, जिनमें से हम एक-दो का निर्देश कर अपने लेख को समाप्त करेंगे।

राजपूताने में अनेक बड़े-बड़े वंश हैं। सीसोदिया, राठौड़, चौहान और कछवाहे सभी अपने अपने वंश की प्रतिष्ठा और अभिमान में डूबे हुए थे। उनके इस व्यर्थ अभिमान और अहंभावना से देश को बड़ी हानि पहुँची। अपने उस उन्माद में उन्होंने तुच्छ अहंभाव को प्राधान्य दे कर नगण्य बातों पर भी विवाद उपस्थित किया, परस्पर लड़े, विपरीत शक्तियों को अपने विपुल बल का साहाय्य दिया और देश का विनाश किया। उनकी विवेकशून्यता की इयत्ता नहीं थी। वे किसी दूसरे वंश की प्रशंसा भी सहन न कर सकते थे। इसी सर्वनाशिनी भावना के वशीभूत हो कर उन्होंने सहोदर बन्धु तक का साहाय्य त्याग कर यवनों का आश्रय ग्रहण किया और उन्हें अपनी बेटियाँ तक ब्याह दीं। उन्होंने अपना

राज्य, धर्म तथा सर्वस्व नष्ट किया। अन्यथा उनके अनुपम बल का, उन्मत्त शोणित का, संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति लोहा मानती थी। एक यवन क्या ऐसे ऐसे अनेक साम्राज्य उनकी वङ्किम भृकुटि के सम्मुख दृष्टि-निक्षेप तक न कर सकते थे। महाराष्ट्र में इस प्रकार के अनेक वंश विद्यमान न थे, जिनमें प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो। पीछे से सिन्धिया, होल्कर आदि प्रतिस्पर्धी सरदारों के होने पर महाराष्ट्र में भी फूट देवता का राज्य प्रारम्भ हो गया।

महाराष्ट्र में साधु-सन्तों के कारण मराठों को जो लाभ हुआ, वह राजपूतों को नहीं पहुँचा। राजपूतों का धार्मिक, सामाजिक सङ्गठन भी दूसरी भाँति का था।

किसी भी देश, जाति अथवा समाज पर समय और परिस्थिति का भी विशेष प्रभाव पड़ता है। राजपूतों का जन्म अपने ऐसे प्रबल विपक्षी को लेकर हुआ था, जिनमें उनका-सा-ही उन्माद था, उनकी अपेक्षा कहीं शतगुनी अधिक कूटनीतिज्ञता और अधर्म था, उनका-सा-ही शक्ति-बल था। राजपूतों के साथ यवनों का सङ्घर्ष कितना भयानक था, किन्तु मरहठों के साथ ऐसी परिस्थिति न थी। यह एक महत्व-पूर्ण कारण था कि मराठों का प्रादुर्भाव ऐसे समय हुआ, जब मुग़ल-साम्राज्य क्षीण होने को था। इसलिए वे अपने को समय और परिस्थिति के अनुकूल शीघ्र ढाल सके। उस समय मराठा जाति का भी निर्माण हो रहा था, इसलिए वे जैसा चाहते बन सकते थे। परन्तु राजपूतों के निर्माण का समय कई सदियों पहले बीत चुका था। उनकी उन्नति का सूर्य मध्याह्न से नीचे उतर रहा था। वह समय राजपूतों के चरित्र-निर्माण का समय न था। उनके अधः-पात का यह बड़ा भारी कारण है।

अन्त में एक बात की ओर ऐतिहासिकों का ध्यान और आकर्षित करना है।

राजपूताने में अंग्रेज़ों के चरण-प्रवेश के कुछ पूर्व से मराठों और राजपूतों में परस्पर द्वेष उत्पन्न हो चुका था। मराठों ने राजपूताने पर कुछ अत्याचार भी किये थे। कर्नल टॉड ने मराठों के अत्याचारों का भयङ्कर वर्णन किया है। जिससे आज भी राजपूतों में मराठों के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं। परन्तु यह आज अभीष्ट नहीं है और बहुत सम्भव है, जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान मेजर बी. डी. बसु का अनुमान है, कि कर्नल टॉड ने किसी कूट राज-नैतिक अभिप्राय से मराठों और राजपूतों को पृथक्-पृथक् रखने के लिए मराठों के अत्याचार-वर्णन में अत्युक्ति की हो। आज के ऐतिहासिकों का, जिन्हें थोड़ा भी देश से प्रेम है, कर्तव्य है कि वे इन दोनों प्रसिद्ध जातियों में परस्पर प्रेम और सहानुभूति का वातावरण उत्पन्न करें, जिससे ये दोनों वीर जातियाँ मिल कर भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम में सहायक हों।

—कृष्णचन्द्र

❀ ❀ ❀

आधुनिक महाराष्ट्र

अर्थात्

महाराष्ट्र के विगत १०० वर्षों के प्रतिभाशाली व्यक्ति

रतीय सभ्यता का सिर ऊँचा उठाने में विगत २००० वर्षों में महाराष्ट्र ने जो कुछ प्रयत्न किये, वे सभ्य संसार को पूर्णतया विदित हैं। वास्तव में जिस प्रकार मनुष्य का महत्व उसके ऊँचे मस्तिष्क से ज्ञात हो सकता है, उसी प्रकार किसी राष्ट्र अथवा देश विशेष का महत्व वहाँ के प्रतिभा-शाली व्यक्तियों पर ही अवलम्बित होता है। यों तो सर्वसाधारण बुद्धि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में होती है, किन्तु प्रतिभाशाली वही मनुष्य कहला सकता है, जो अपने विशेष कार्यों से समाज या देश पर अपना प्रभाव स्थापित कर सके, या अन्य बहुसंख्यक जनता को अपना अनुयायी बना सके। ऐसे साधु महात्मा जो संसार का त्याग कर बीहड़-जङ्गलों में मोक्ष-प्राप्ति के लिए चले जायें और जीवितावस्था में, अथवा मृत्यु पर अनेक अनुयायियों को एकत्र कर सकें, कदापि प्रतिभाशाली नहीं कहे जा सकते; क्योंकि अखिल संसार को उनसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं पहुँचता; पर भगवान् बुद्ध, आद्य श्रीशङ्कराचार्य, समर्थ रामदास स्वामी, साधुवर विद्यारण्य जैसे महापुरुष तो अवश्य ही परम वन्दनीय हैं। क्योंकि उन्होंने जो कुछ किया, वह केवल देशोपकार के ही लिए था। अतः यदि हम विगत २००० वर्षों के महाराष्ट्र के असामान्य व्यक्तियों को चुनेंगे तो लेख बहुत बढ़ जायगा। इसीसे विगत १०० वर्षों में महाराष्ट्र में जो अद्वितीय व्यक्ति हो गये और जिन्होंने अमिट कार्य किये, उन्हीं का संक्षेप में यहाँ पर परिचय दिया जाता है। महाराष्ट्र में अंग्रेज़ी राज्य की जड़ पेशवा राज्य के, सन् १८१७ में, नष्ट हो जाने पर जमी। अंग्रेज़ी राज्य के उदय होने के अनन्तर ही अनेक आधिभौतिक अवलम्बनों द्वारा भारतीय सभ्यता की उन्नति के उपाय सोचे जाने लगे। अतः हमें देखना यह है कि विगत १०० वर्षों में कितने महाराष्ट्रीय प्रतिभाशाली पुरुष इस दिशा में कृतविद्य हुए।

रौलेट रिपोर्ट ने महाराष्ट्र को आधुनिक राजनैतिक हलचलों का केन्द्र कहा, अथवा मेरठ के क्रान्तिकारी कहे जाने वालों में बहुसंख्यक महाराष्ट्रीय ही हैं, इसका अर्थ यह नहीं कहा जा सकता कि राजनीति या देशभक्ति का ठेका अकेले मराठों ने ही ले लिया है। राजनैतिक चहल-पहल के महाराष्ट्र में ही विशेषरूपेण होने के कई कारण हैं। यह बात तो सभी एकस्वर

से स्वीकार करते हैं कि अंग्रेज़ों ने भारत के राजनैतिक सूत्र मराठों से ही लिये हैं। १०० वर्ष पूर्व तक मराठे ही भारत-सत्ता-धारी थे, उनका वह कल का आँखों की ओझल हुआ राज्य नष्ट हो गया, यह बात प्रत्येक मराठा हृदय को खटकनी स्वाभाविक ही है। इसीसे यदि राजनीति या क्रान्ति महाराष्ट्र में अपनी जड़ जमा दे और सुदूर संयुक्तप्रदेश की कांग्रेस-कमेटी का सूत्र भी श्री० दाँडेकर जी जैसा एक कर्मण्य महाराष्ट्रीय ही अपने हाथों ले तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। राजनीतिज्ञता की बात छोड़ दी जाय तो अन्य देशोपकारी कार्यों में भी महाराष्ट्रियों ने अपना व्यक्तित्व प्रस्थापित करने में कोई बात उठा रक्खी हो सो बात नहीं है। अतएव हमें अब तत्सम्बन्धी विचार करना है।

इतिहासाचार्य राजवाड़े जी ने भी महाराष्ट्र के विगत १०० वर्षों के कर्मण्य पुरुषों की चर्चा की थी तथा भगवानदास रिसर्च स्कॉलर श्रीयुत टिल्लू महाशय ने तो अंग्रेज़ी 'History of our own times' ग्रन्थ की नाईं अर्वाचीन महाराष्ट्र नामक ग्रन्थ की रचना भी की है। पर राजवाड़े जी का विवेचन बहुत कुछ प्रामाणिक एवं मननीय है। टिल्लू महाशय ने तो कुछ व्यक्तिगत अएट सएट बातें लिख कर निरे छिछोरेपन का प्रदर्शन किया है। अतएव वह ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। सर फ्रान्सिस गेल्टन (Sir Francis Galton) ने अपने ग्रन्थ 'Natural inheritance' तथा 'Hereditary Genisis' में लिखा है कि सन् १८६८ ई० में ग्रेटब्रिटेन की लगभग चार करोड़ मनुष्य संख्या में १२५० प्रसिद्ध पुरुष थे, पर प्रतिभाशाली एवं कर्मण्य व्यक्तियों की संख्या केवल ५०० थी। इस हिसाब से एक लाख जनता में सवा मनुष्य के प्रतिभाशाली होने का औसत आता है। पर, ब्रिटेन की तुलना में महाराष्ट्र की दशा कुछ नहीं के बराबर है। ब्रिटेन साधनसम्पन्न और स्वराज्योपभोगी राष्ट्र है, महाराष्ट्र दरिद्री और स्वराज्य विहीन है। तो भी राजवाड़े जी की गणना के अनुसार अन्य भारतीय प्रान्तों की तुलना में महाराष्ट्र की दशा निराशाजनक नहीं कही जा सकती। विगत १०० वर्षों में महाराष्ट्र में लगभग १५० प्रतिभाशाली व्यक्ति हो गये हैं, पर राजवाड़े जी ने अपनी दृष्टि से उनकी संख्या ४३ निश्चित की है। किन्तु, १०० नम्बरी सोने की कसौटी पर तो वे केवल सात ही पुरुषों को कस पाये हैं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि १५० व्यक्तियों में, विचारभिन्नता की दृष्टि से, कुछ तो अवश्य ही स्थायी कार्य के अभाव में कम किये जा सकते हैं। तो भी गुण क्रम के अनुसार इतनी संख्या का होना भी कुशल है। संख्या के अनुसार प्रतिभाशाली राजा, १ स्वभीमानी २ राजा, व्यायामनिपुण, १ शिल्पकलाज्ञ, २ युद्धकलानिपुण १ अश्वारोही, २ ज्ञातात्रिय, २ शिकारी, १ दानशूर १, राजनीतिनिपुणमुत्सद्दी, ७ व्यौपारी, ५ इतिहासनिपुण १६ व्याकरण ज्ञाता, ३ ग्रन्थ लेखक, ६ निबन्ध लेखक ३

महाराष्ट्र वीर शिरोमणि

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक

गणितज्ञ, समाज शास्त्री, विद्वान्, पत्रसम्पादक,
२ ११ ८ ५
देशभक्त, संस्थास्थापक, नाटककार, अनुवादक,
१ ६ ४ ३
आधुनिक संस्कृत कवि, ज्योतिषी, समदर्शी,
१ २ ११
वक्ता, शिक्षक, वैद्य, अर्थशास्त्री, नटनाट्यकला-
१ ३ ४ १ ६
निपुण, गायक, स्थपति, कोषलेखक, समालोचक
२ १ ३ २
चित्रकार आदि हैं—यह संख्या १५३ है, पर
१

राजवाड़ेजी ने इनमें से ४३ मनुष्य चुने हैं, फिर इनमें से भी छाँट कर २३ और अन्त में ७ पुरुषों को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। उनके मतानुसार वे सात व्यक्ति निम्न हैं:—

१ सयाजीराव गायकवाड़—प्रतिभाशाली और कर्तव्यशील राजा।

२ विष्णु शास्त्री चिपलूनकर—प्रतिभासम्पन्न और कर्तव्यशील निबन्धलेखक तथा संस्थास्थापक।

३ महादेव गोविन्द —बुद्धिमान और कर्मवीर संस्थास्थापक, इतिहासकार, अर्थशास्त्रज्ञ, समाजशास्त्रज्ञ तथा विचारक।

४ बालगङ्गाधर तिलक—प्रतिभाशाली पुराणेतिहास संशोधक, संस्थास्थापक, श्रेष्ठ सम्पादक और उत्तम समाजव्यवहारज्ञ।

५ शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित—ज्योतिष इतिहास लेखक।

६ अण्णा किर्लोस्कर—प्रतिभाशाली सङ्गीत नाटककार।

७ गोपालराव गोखले—संस्थास्थापक, शिक्षक, मुत्सद्दी—राजनीति-निपुण

इतिहासाचार्य राजवाड़े जी ने गुण क्रमानुसार २३ व्यक्तियों की जो सूची बनाई है, वह निम्न है—

१ मुत्सद्दी तथा समाज कारण कुशल—
१ श्री. महाराजा सयाजीराव गायकवाड़। २ गोपालकृष्ण गोखले। ३ बाल-गङ्गाधर तिलक।

२ गणितज्ञ—रैंगलर रघुनाथ पुरुषोत्तम पराञ्जपे

३ उपन्यास लेखक—१ हरिनारायण आपटे।

४ काव्येतिहास संशोधक—१ डा० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर। २ रा० ब० काशीनाथ नारायण साने। ३ वासुदेव शास्त्री-खरे। ४ दत्तात्रय बलवन्त पारसनीस। ५ शङ्कर तुकाराम शालिग्राम। ६ शङ्कर श्री कृष्ण देव।

५ समाज-सेवक—१ प्रो० धोंडो केशव कर्वे। २ रमाबाई रानाडे। ३ गोपालराव देवधर। ४ अन्ताजी दामोदर काले—पैसा फण्ड-प्रवर्तक। ५ नटेश अप्पाजी द्रविड़। ६ विट्ठल रामजी शिन्दे-अन्त्यजोद्धारक।

६ ग्रन्थकार—१ विनायक कोंडदेव ओक। २ विष्णु गोविन्द विजापूरकर। ३ शिवराम-महादेव पराञ्जपे—वक्रोक्तिकुशल वक्ता।

७ वेदान्त शास्त्रज्ञ—१ शान्ताराम अनन्त देसाई।

८ समाचारपत्र सम्पादक—१ नरसिंह चिन्तामणि केलकर।

९ नाटककार—१ कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर

यह निचोड़ तो अवश्य ही अनूठा है, पर राजवाड़ेजी ने इसमें कञ्जूसी भी खूब की है। हाँ, उनके चुनाव के विषय में तो किसी का भी मतभेद नहीं हो सकता, स्वयं राजवाड़ेजी भी अत्यन्त बुद्धिमान, भाषाशास्त्रज्ञ, इतिहासज्ञ, संशोधक, मेधावी एवं कर्मवीर पुरुष थे। हम स्वयं तो चिपलूनकर, तिलक तथा गोखले के अनन्तर राजवाड़ेजी को ही चौथा मेधावी पुरुष मानते हैं, जिसने गत १०० वर्ष के महाराष्ट्र के इतिहास को अलंकृत किया है। प्रसिद्ध सर्वमान्य ग्रन्थ महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष के रचयिता विद्वान् डाक्टर केलकर जी ने तो आधुनिक जगत के प्रमुख शास्त्रज्ञों में राजवाड़ेजी का भी नाम रक्खा है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

इस प्रकार आरम्भिक ७ तथा अनन्तर के २३ व्यक्तियों का विवेचन हुआ। एक और तीसरी सूची ४३ व्यक्तियों की है, जिसमें उपरिकथित सभी व्यक्तियों का समावेश हो चुका है, अतः उन्हें छोड़कर शेष १६ का परिचय निम्न है:—

(१) शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित—विद्वान्, वेदग्रन्थ प्रकाशक।

(२) काशीनाथ त्रिम्बक तैलङ्ग—पुराणेतिहास संशोधक।

(३) भाऊ दाजी लाड़—आद्य पुराणेतिहास संशोधक।

(४) सार्वजनिक काकाजोशी—आद्य स्वदेशीवाला तथा कट्टर देशभक्त।

(५) गोपाल गणेश आगरकर—सुधारक, सम्पादक।

(६) विठोबा अण्णा दफ्तरदार—अर्वाचीन संस्कृत कवि।

(७) विष्णु बाबा ब्रह्मचारी—समदर्शी ग्रन्थकर्त्ता तथा वादि मत खण्डन कर्त्ता।

(८) सर टी. माधवराव—प्रख्यात मुत्सद्दी।

(९) गावजी दादाजी—पुरुषार्थी, प्रसिद्ध टाइपफाउण्डर।

(१०) महादेव मोरेश्वर कुण्टे—षड्दर्शनज्ञ, इतिहासकार तथा वक्ता।

(११) गणपतराव गोशी—प्रसिद्ध अभिनेता।

(१२) रघुनाथ शास्त्री गोडबोल—विद्वान चरितकोष लेखक।

(१३) भीकाजीपन्त हर्डीकर—कर्मण्य समाजसेवक।

(१४) शिवरामहरी साठे—चतुर समाज सेवक।

(१५) महादेव चिमणजी आपटे—आनन्दाश्रम संस्थापक, ग्रन्थ संग्रहकर्ता।

(१६) कृष्णशास्त्री चिपलूनकर—ग्रन्थकर्त्ता।

अब हम उन १५० व्यक्तियों में से प्रमुख व्यक्तियों के नाम यहाँ पर उधृत करते हैं जिनका आधुनिक महाराष्ट्र के इतिहास से निकट सम्बन्ध है। पुनरुक्ति से मुक्त रहने के उद्देश से पिछली सूचियों के व्यक्तियों का उल्लेख नहीं किया गया है—

(१) जयाजीराव सेंधिया—स्वाभिमानी राजा।

(२) तुकोजीराव होलकर— ,,

(३) खण्डेराव गायकवाड़ — स्वाभिमानी, व्यायामनिपुण राजा।

(४) माधवराव शिंदे—युद्धकलाजिज्ञासु राजा।

(५) राजा लक्ष्मणराव भोंसले नागपुरकर—ज्ञाता मराठाक्षत्रिय।
(६) वायजा बाई सेंधिया—दानवीर एवं स्वाभिमानी रानी।
(७) जमना बाई गायकवाड़—मुत्सद्दी।
(८) किवे साहूकार—व्योपारी।
(९) दादोवा पाण्डुरङ्ग—व्याकरणकर्ता।
(१०) देशमुख लोकहितवादी—निबन्ध लेखक।
(११) केरोलक्ष्मण छत्र—गणितज्ञ तथा ज्योतिषी।
(१२) वालाजीमोडक—भौतिकशास्त्र अनुवादक।
(१३) वालशास्त्री रानाडे—विद्वान पण्डित्।
(१४) वापूदेव शास्त्री—ज्योतिषी।
(१५) देवमामलदार यशवंत महाराज—समदर्शिन्
(१६) केडगांवकर नारायण महाराज—सिद्ध।
(१७) अक्कलकोटकर महाराज—जीवन्मुक्त।
(१८) अण्णा साहब पटवर्धन—समदर्शी, वकील, डाक्टर, वैद्य।
(१९) त्रिम्बक वावा नाशिककर—वक्ता, हरिदास
(२०) वामन शिवराम आपटे—शिक्षक, पाठशालोपयोगी पुस्तककर्ता।
(२१) विष्णुशास्त्री पण्डित-पुनर्विवाहक, सम्पादक
(२२) वापूमेहेंदल—वैद्य।
(२३) विश्वनाथ नारायण मण्डलीक—धर्मेतिहास-संशोधक।
(२४) प्रो० विष्णुगोविन्द विजापुरकर—शिक्षक, संस्थास्थापक एवं मासिक-पत्र-सम्पादक
(२५) आनन्दीवाई जोशी—वैद्य।
(२६) गणेश वेङ्कटेश जोशी—अर्थशास्त्री।
(२७) चिन्तामणिराव वैद्य-पुराणेतिहास संशोधक
(२८) प्रो० दामल—वैय्याकरण।
(२९) वालगन्धर्व—नाट्यकलानिपुण।
(३०) कर्नल कीर्तिकर—वनस्पतिशोधक।
(३१) रघुनाथ पाण्डुरङ्ग करन्दीकर—चतुर-वकील ज़िरह निपुण।
(३२) मोरशास्त्री साठे—शास्त्री पण्डित।
(३३) विष्णु दिगम्बर—सङ्गीत प्रचारक।
(३४) नाना शङ्कर सेठ—करोड़पति, दानवीर।
(३५) रं० न० मुधोलकर—औद्योगिक मुत्सद्दी।
(३६) दादा साहब खापर्डे—मार्मिक वक्ता।
(३७) राजाराम रामकृष्ण भागवत—वेदविद्या संशोधक।
(३८) नीलकण्ठ रानाडे—कोषकार
(३९) हरि महादेव पण्डित—समालोचक।
(४०) श्रीधर गणेश प्रिन्सिपल—वक्ता।
(४१) गोविन्द सखाराम सर देसाई—इतिहास-लेखक।
(४२) वावा साहब आपटे—अश्वारोही।
(४३) विष्णु मोरेश्वर छत्री—गानज्ञ, अश्वारोही।
(४४) म्हात्रे—मूर्तिकार।
(४५) वाला साहब पन्त प्रतिनिधि—रसिक राजा,
(४६) कृष्णाजी पन्त देवल—प्राचीन गान शास्त्र-शोधक, चित्रकार।

एक ही विषय के कई ज्ञाता तथा केवल स्थानिक या प्रान्तिक महत्व वाले व्यक्तियों के नाम हमने राजवाड़े जी की सूची में से निकाल दिये हैं। राजवाड़े जी की सूची १५ वर्ष पहले की है, उसमें हम अपने मतानुसार निम्न व्यक्तियों को सम्मिलित कर सकते हैं:—

(१) डॉ० मुंजे—समाज सेवक।
(२) जयकर—देशभक्त।

(३) बै० सावरकर—अपूर्व मेधावी।
(४) वासुदेव गोविन्द आपटे—ग्रन्थकार।
(५) काका कालेलकर—ध्येयनिष्ठ।
(६) वामन मल्हार जोशी—उपन्यास लेखक, तत्वज्ञान जिज्ञासु।
(७) गोविन्दाग्रज गडकरी—कवि, नाटककार।
(८) वासुदेवराव जोशी—छापखाने वाला।
(९) लौंडे महाराज—गौरक्षक।
(१०) शङ्करदाजी शास्त्री पदे—वैद्य।
(११) तुकाराम जावजी—रसिकधनी।
(१२) विनायकराय भावे—रसिक, साहित्यसेवी।
(१३) भारतखण्डे—गानविद्या प्रचारक।
(१४) बालकवि ठोमरे—प्राकृतिक कवि।
(१५) नाना पावजी—संग्राहक बुद्धिसम्पन्न।
(१६) डॉक्टर श्रीधर केलकर—समाज शास्त्री, कोषकार तथा अठपैलू।
(१७) बालकृष्ण नारायणदेव—समालोचक।
(१८) करमरकर—शिल्पज्ञ आदि।
(१९) ना० सु० हर्डीकर—समाज सेवक स्वयं-सेवक-दल संस्थापक।

हमने अपने अल्पमतानुसार ही उच्च नाम लिखे हैं। जिनका परिचय वर्तमान विद्वज्जनों को करा देना आवश्यक है। महाराष्ट्र में एक ही विषय के अनेक विद्वान् तथा एक ही व्यक्ति अनेक विषयों में पारङ्गत पाये जाते हैं। विषयों की दृष्टि से क्रमानुसार—इतिहास निपुण, वक्ता, समाज-
                    १६   १२
सेवक, समदर्शी, ग्रन्थकार, विद्वान्, राजनीति
 ११   ११   ९   ८   ७
निपुण तथा संस्था स्थापक हैं।

६

महाराष्ट्र का अपना स्वतन्त्र इतिहास है, अतएव अपने पुराने स्फूर्तिदायक आदर्शों का अध्ययन करके उसे वक्ता, समाज-सेवक तथा समदर्शियों द्वारा समाज के सम्मुख रखना, विद्वानों तथा ग्रन्थकारों द्वारा उनको नवीन रूप में प्रकट करना और राजनीतिज्ञों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा अपने देश को जागृत करना सर्वथा सराहनीय है। इस श्रेणी के अनन्तर कलाविदों की बारी आती है। महाराष्ट्र आदर्शवादी है, परदरिद्री है; अतः वह भौतिक-शास्त्रों से उदासीन रहे तो आश्चर्य की बात नहीं है। तो भी ज्ञानोपार्जन की प्रायः प्रत्येक प्रमुख शाखा में महाराष्ट्रियों का हस्तक्षेप है। यह कम सौभाग्य की बात नहीं है।

Giddings नामक एक अमेरिकन समाज-शास्त्र के ज्ञाता ने अपने ग्रन्थ Elements of Sociology में लिखा है कि विगत २२०० वर्षों में समग्र संसार में ४५०० करोड़ मनुष्यों की संख्या थी। उनमें केवल एक लाख प्रतिभाशाली पुरुष हुए, अर्थात् प्रति पाँच लाख जन संख्या में एक प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है। सन् १८६८ में ब्रिटेन में प्रति-लाख सवा मनुष्य का औसत था। सन् १९१५ में महाराष्ट्र में लगभग दो करोड़ जन संख्या थी। उनमें पच्चीस व्यक्ति ही प्रतिभाशाली थे, जिसका औसत आठ लाख में एक आता है, और जो तुलनात्मक दृष्टि से कदापि सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। अनेक विषय तो बिलकुल अछूते हैं, जिनके अध्ययन की ओर अभी तक महाराष्ट्र में ध्यान ही नहीं दिया गया। तो भी पराधीनता की दशा में अन्यान्य भारतीय प्रान्तों की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली कर्मवीर पुरुष उत्पन्न करने का गौरव महाराष्ट्र को प्राप्त है।

—भा० रा० भा०

*सन्दर्भ ग्रन्थ—(१) आर्वाचीन महाराष्ट्र—टिलक (२) लोकशिक्षण मासिक शाके १८२५ भा० रा० भा०।

वर्तमान मराठा राजवंश
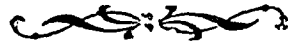
छत्रपति शिवाजी यद्यपि यवन-सत्ता के कठिन विरोधी थे और उन्होंने उसको घटाने का भी यथेष्ट प्रयत्न किया, तथापि उनकी दृष्टि समग्र भारतवर्ष में मराठी सत्ता स्थापित करने की नहीं पायी जाती। उनका ध्यान विशेषतया महाराष्ट्र में ही स्वराज्य स्थापित करने का था। किन्तु ज्योंही उनके शुभ कार्य में स्वार्थ वश मुग़ल बादशाहों ने रोड़े अटकाना प्रारम्भ किया और उनके सुपुत्र धर्मवीर सम्भाजी का औरङ्गजेब ने बड़ी क्रूरता से वध किया, त्योंही अखिल महाराष्ट्र उस नृशंसता के प्रतिकार के लिए उत्तप्त हो उठा। यहाँ तक कि औरङ्गज़ेब की फ़ौज दक्षिण में पड़ी थी और उधर मराठी सेना नर्मदा को पार करके धार मांडु पर भी आक्रमण करने लग गयी थी। वास्तव में मराठी राजनीति को बादशाहत का ध्येय तभी से प्राप्त हुआ था। औरङ्गज़ेब की मृत्यु के अनन्तर सम्भाजी के पुत्र साहु के राज्यकाल में उनके मन्त्री पेशवाओं ने तो मराठों की बादशाहत का उद्देश खुल्लम-खुल्ला प्रकट कर दिया और सैयद बन्धुओं के समय ठेठ दिल्ली तक धावा मार कर भविष्य में समग्र भारत पर अधिकार कर लेने की नींव डाल दी। गुजरात तथा मालवा के चौथ तथा सरदेशमुखी के अधिकार मराठों को शीघ्र ही मिल गये। बाजीराव पेशवा ने पहिले मालवा में मुलक भी जीता। उनके पुत्र बालाजी बाजीराव ने राजपूताना, बुन्देलखण्ड और पानीपत तक मराठों का प्रभाव स्थापित किया। सवाई-माधवराव पेशवा के समय में तो सारे भारतवर्ष के राजनैतिक सूत्र केवल मराठों के ही हाथ में थे। उस समय की विदेशी सत्ताएँ—अंग्रेज़, फ्रेंच आदि—मराठों के कृपापात्र बनने में अपना अहोभाग्य मानती थीं। लाहौर से मैसूर तथा कलकत्ता से द्वारका तक मराठों का ही बोल-बाला था। किन्तु मध्याह्न का प्रखरताप सायङ्काल में विचूर्ण होता ही है। मराठों की केन्द्रीय शक्तियाँ—भोंसले का सितारा तथा पेशवाओं का पूना—केवल इतिहास में ही लिखी जाने की बातें रह गयीं। मराठा साम्राज्य के अवशिष्ट स्मारक—बड़ौदा, ग्वालियर, इन्दौर, धार आदि सौभाग्य से अभी तक स्थिर हैं। यहाँ पर उन्हीं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

सम्भाजी के वध के कारण महाराष्ट्र में क्रान्ति मच गयी। उनके पुत्र को औरङ्गज़ेब ने बन्दी कर लिया था। अतएव महाराष्ट्र की लज्जा बचाने के लिए छत्रपति के द्वितीय पुत्र राजाराम ने देश-त्याग किया और मैसूर के निकटस्थ जिंजी के क़िले का आश्रय लिया। अनेक कर्मवीर नवयुवक उनकी पताका के तल भाग में एकत्रित हुए और छत्रपति के सहकारियों ने भी उनका यथेष्ट साथ दिया। समग्र महाराष्ट्र मुग़लों-द्वारा पद दलित हो चुका था। अतएव उसको फिर से जीतने के उपलक्ष में उत्साहवर्धनार्थ जागीर की प्रथा प्रचलित करना आवश्यक था। बस, तभी से छत्रपति राजाराम महाराज द्वारा प्रचलित सरंजाम-जागीर प्रथा प्रचलित हुई। उनके जिन प्रतिनिधि सचिव आदि कर्मवीरों ने छत्रपति राजाराम को मुग़लों से लड़ कर महाराष्ट्र में अधिकार स्थापित करने में अपूर्व सहायता की, उन्हीं के वर्तमान वंशज औंध, भोर आदि स्थानों पर राज्य करते हैं।

सम्भा जी के पुत्र साहु सितारा के स्वामी थे, तो राजाराम की पत्नी ताराबाई ने कोल्हापुर में अलग गद्दी स्थापित की। ताराबाई के राज्य-कार्य में जिन लोगों ने सहायता की, उन्हीं के वर्तमान वंशज विशालगढ़, बावड़ा, कागल आदि स्थानों पर राज्य करते हैं।

साहु छत्रपति तथा उनके प्रधान मन्त्री पेशवा ने महाराष्ट्र के बाहर गुजरात, उत्तरी भारत, बरार आदि प्रान्तों पर अपना अधिकार स्थापित किया। उस कार्य में जिन कर्मवीरों ने सहायता की उन्हीं के वंशज बड़ौदा, ग्वालियर, इन्दौर, धार देवास आदि स्थानों पर वर्तमान समय में राज्य करते हैं।

अब हम वर्तमान महाराष्ट्रीय राजवंशों का क्रमशः यहाँ पर परिचय लिखेंगे। सितारे में शिवाजी के वंशज विद्यमान हैं, पर वे बेमुल्क के महाराज हैं। मराठा राजाओं में उनका बड़ा सम्मान है। बम्बई प्रान्त के वे प्रथम श्रेणी के नाम धारी सरदार बनाये गये हैं। इसी प्रकार सितारे के मुख्य सरदार पूना के पेशवाओं का तो चिह्न मात्र भी न रहा। नागपुर के भोंसला के वंशज वहाँ अवश्य वर्तमान हैं। वे भी बेमुल्क के राजा कहलाते हैं। नाम मात्र

महाराजा श्री सयाजीराव गायकवाड़ बड़ौदा।

राजनैतिक पेन्शन तथा मालगुज़ारीके गाँव आदि पर वे अपना पोषण करते हैं। लार्ड डलहौजी ने सितारा, नागपुर, भाँसी, जालौन, सागर, बाँदा आदि मूल स्थानों तथा उनकी शाखाओं का लवलेश तक न रहने दिया!

बड़ौदा

वर्तमान मराठा राज्यों में बड़ौदा ही सबसे बड़ा राज्य माना जाता है। इस राज्य का क्षेत्रफल ८१३५ वर्ग मील है। मनुष्य संख्या २१२६५२२ तथा वार्षिक आय दो करोड़ सैंतीस लाख सात हज़ार है। उन्हें अंग्रेज़ सरकार की ओर से २२ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। बड़ौदा रियासत पच्चीस हज़ार पौण्ड वार्षिक खण्डनी अंग्रेज़ों को देती है। सन् १८०२ ई० में उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से माण्डलिक बनने की सन्धि की थी।

इस वंश के मूल पुरुष दामाजी गायकवाड़ मराठा सेनापति खण्डेराव दाभाड़े के मुख्य मुसाहिब थे। उनके भतीजे पिलाजी सेना खास खेल बनाये जाकर गुजरात के सूबेदार बनाये गये। उनके पुत्र दामाजी ने वर्तमान बड़ौदा तथा उसके आस-पास के प्रदेशों पर सन् १७५५ ई० में अपना अधिकार स्थापित किया था। तभी से बड़ौदा गायकवाड़ की राजधानी बनी। वर्तमान महाराजा सर सयाजी राव सा० गायकवाड़ उन्हीं दामाजी के वंशज हैं।

ग्वालियर

बड़ौदा के अनन्तर वर्तमान मराठा राज्यों में ग्वालियर की गणना है। ग्वालियर राज्य का क्षेत्रफल २६३८२ वर्ग मील, मनुष्य संख्या ३१९५४७६, तथा वार्षिक आय दो करोड़ चौदह लाख रु० है। अंग्रेज़ सरकार की ओर से उन्हें २१ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। ग्वालियर को अंग्रेज़ सरकार को कोई खण्डनी नहीं देनी पड़ती। वहाँ के मूलपुरुष महादजी सिन्धिया ने उनसे सन् १७८१ ई० में मित्रता की सन्धि की थी। सन् १८०३ ई० के सुलहनामे के अनुसार आगरा, दिल्ली तथा दुआब प्रान्त का स्वामित्व दौलतराव महाराजा ने छोड़ दिया। सन् १८१७ ई० में राजपूत राजाओं से उनका सम्बन्ध विच्छेद हुआ। सन् १८४३ ई०में लार्ड एलनबरो ने अपनी कूट नीति के द्वारा ग्वालियर से सन्धि करके उसे अपने अधीनस्थ स्थान का रूप दे दिया।

इस वंश के स्थापक राणोजी सिन्धिया की सेनाध्यक्षता पेशवा के निम्न कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक महत्व रखती थी। उनके चार वीर पुत्र जयप्पा, दत्ताजी आदि ने उत्तरी-भारत में मराठी राज्य बढ़ाया और पानीपत के युद्ध में जीवनोत्सर्ग किया। इस वंश का देश-प्रेम एवं स्वामि-भक्ति इतिहास में अमिट है। राणोजी के पाँचवें पुत्र महादजी सिन्धिया भी छत्रपति शिवाजी की नाईं प्रबल पराक्रमी हुए, जिन्होंने दिल्ली की बादशाहत को हस्तगत करके आसेतु हिमाचल मराठों का रोब जमाया। महाराजा माधवराव की कर्तव्य-शीलता एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति की नाईं थी। सौभाग्य से यदि वे मराठों के स्वराज्य में उत्पन्न होते तो उनमें उसका रूप बदल देने की शक्ति थी। वर्तमान अधीश्वर बालराजा श्री जयाजीराव सिन्धिया भी बड़े होनहार हैं।

इन्दौर

होलकर वंश की राजधानी इन्दौर है। इस राज्य का क्षेत्र-फल ९५१९ वर्ग मील, मनुष्य संख्या ११५११५९८ तथा वार्षिक आय एक करोड़ चौबीस लाख रु० है।

श्री तुकोजीराव द्वितीय होल्कर, इन्दौर ।

इन्हें अंग्रेज़ों से उन्नीस तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है।

इस वंश के मूल पुरुष मल्हारराव होलकर बड़े धीर वीर पेशवा के सेनापति थे। जाति के था। इन्हीं की पुत्र वधू प्रातः स्मरणीया देवि-अहिल्याबाई होलकर का नाम पवित्र आचरण तथा दानशीलता के कारण चिरकाल के लिए दिग्दिगन्त में परिव्याप्त है। उनके नाती बाँके-

श्री यशवन्तराव होलकर।

गड़रिया होने पर भी उन्होंने स्वयं अपना भाग्य-निर्माण किया था। उन्होंने ५२ युद्धों में विजय प्राप्त करके मराठों का भाल उन्नत किया धीर यशवन्तराव होलकर ने अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिये थे। महाराज द्वितीय तुकोजीराव भी बड़े कर्मण्य पुरुष हो गये हैं। वर्तमान महाराज

श्रीमान् यशवन्तराव होलकर इस समय तो बड़े होनहार दिखाई देते हैं। आगे हरि-इच्छा बलीयसी।

कोल्हापुर

मराठा राज्यों में वैसे तो कोल्हापुर चतुर्थ श्रेणी में है। किन्तु, सम्मान की दृष्टि से इस वंश का आदि स्थान है।

श्री राजाराम छत्रपति।

क्योंकि छत्रपति शिवाजी के विद्यमान राज्याधिकारी वंशज ये ही हैं। आज भी ये 'क्षत्रिय कुलावतंस तथा छत्रपति' विरुद धारण करते हैं। छत्रपति शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी ताराबाई ने पारस्परिक विद्वेष उत्पन्न करके सितारे से पृथक हो कर इस राज्य की प्रतिष्ठा की थी। इस वंश के प्रायः प्रत्येक पुरुष का जीवन सितारे के साहु महाराज तथा पेशवाओं से लड़ने में ही बीता। मराठों में फूट के बीज इसी वंश ने बोये। भूतपूर्व महाराज साहु छत्रपति एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वर्तमान अधीश्वर छत्रपति राजाराम महाराज भी होनहार पुरुष हैं।

कोल्हापुर राज्य का क्षेत्र-फल ३२१७ वर्ग मील, मनुष्य संख्या ७३३७२६, तथा वार्षिक आय ९०८०००० है। इसे अंग्रेज़ सरकार की ओर से उन्नीस तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। इस राज्य ने सन् १७६६ ईसवी में ईस्टइण्डिया कम्पनी से सन्धि की थी। उसके अनन्तर भी समय समय पर सन्धि हुई।

धार

वर्तमान मराठा राज्य में प्राचीनता की दृष्टि से धार के पँवारों का बड़ा महत्व है। वे मालव राज उदयादित्य एवं प्रतापी भोज नरेश के वंशज हैं। मुसलमानों के राज्य-काल में पँवारों का धार से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। किन्तु, मराठों का राज्य स्थापित होते ही पुनः पँवार ही धार के राजा बनाये गये। यह एक आश्चर्यजनक कथा है। इनके पूर्वजों ने शिवाजी की अपूर्व सेवा की थी। अतः उन्हें 'विश्वासराव' की उपाधि मिली थी। बाजीराव पेशवा ने धार वंश के स्थापक उदाजीराव और आनन्दराव पँवार को सिन्धिया और होलकर के साथ उत्तरी भारत में राज्य-स्थापना के लिए

भेजा था। उन तीनों सरदारों ने अनेक बड़े युद्ध करके देश जीते। विजित देश का एक भाग धार के पँवारों को मिला तथा वर्तमान राज्य की स्थापना हुई। यशवन्तराव पँवार सन् १७६१ ईसवी के पानीपत के युद्ध में मारे गये। उनके अनन्तर पँवार वंश में कोई पराक्रमी पुरुष नहीं हुआ। भूतपूर्व महाराजा उदाजीराव-पँवार बड़े गुणी और सज्जन राजा थे, उन्हीं के दत्तक पुत्र आनन्दराव इस समय राज्य पर आसीन हैं।

धार राज्य का क्षेत्र-फल १,७७७ वर्ग-मील, मनुष्य संख्या २,३०,३३३ तथा आय १,६५,६०००रु० है। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की ओर से पन्द्रह तोपों की सलामी का सम्मान उसे प्राप्त है। सन् १८ ६ ईसवी में 'रक्षकाधीन राज्य' के नाते से ईस्टइण्डिया कम्पनी से इसकी सन्धि हुई थी।

देवास

देवास राज्य की दो शाखाएँ हैं— एक बड़ी पाती.दूसरी छोटी पाती। दोनों राजा देवास में ही रहते हैं। किन्तु उनके भाग और रियासत के परगने अलग-अलग हैं। धार के पँवार राजाओं की भाँति ये भी मालवराज भोजदेव के वंशज हैं। देवास के पँवार भी धार के ही वंश के हैं। किन्तु धार के पूर्व स्थापकों की नाईं देवास राज्य के स्थापक तुकोजीराव और जियाजीराव बाजीराव पेशवा की सेना में सेनापति थे। जब उत्तरी भारत में मराठों का राज्य स्थापित हुआ, तब जीते हुए देश में से, अन्य मराठा सरदार सिन्धिया, होलकर की भाँति उन दोनों भाइयों को भी जागीर में राज्य मिला। इस प्रकार देवास राज्य की स्थापना हुई। इस वंश में कोई पराक्रमी पुरुष नहीं हुआ। इस समय देवास की बड़ी पाती के राजा महाराजा-तुकोजीराव साहब तथा छोटी पाती के राजा मल्हारराव बाबा साहब पँवार हैं।

देवास सीनियर राज्य का क्षेत्र-फल ४४६ वर्ग मील, मनुष्य संख्या ७७००५, और वार्षिक आय दस लाख है। उसे पन्द्रह तोपों की सलामी का सम्मान भी प्राप्त है।

जूनियर देवास का क्षेत्रफल ४१६ वर्ग मील, मनुष्य संख्या ६०६५८ और वार्षिक आय ६१६ हज़ार है। इसे पन्द्रह तोपों को सलामी का सम्मान प्राप्त है।

सावन्तवाड़ी

यह राज्य गोवा और कोकण के बीच स्थित है। इनके मूल पुरुष खेम सावन्त बीजापुर की बादशाहत में बड़े पराक्रमी सरदार थे। उन्हें सामन्तवाड़ी राज्य जागीर में मिला था। जब छत्रपति शिवाजी ने मराठी राज्य की स्थापना की, तब खेम सावन्त ने भी यवन राजा से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके शिवाजी का साथ दिया था। सावन्त और कुलाबा के जल-सेना के सेनापति आँग्रे थे। अतएव अंग्रेज़ी व्योपारी कम्पनी पर उनकी बड़ी धाक जमी थी। अंग्रेज़ों ने सावन्तवाड़ी वालों को मराठों से फोड़ कर सन् १७३० ईसवी में सन्धि की। तब से सावन्तों का अंग्रेज़ों ने

सम्बन्ध हुआ। इस सम्बन्ध के कारण कोल्हापुर तथा अन्य मराठा राजाओं से उनकी सदा अनबन रही। पुर्तगाल वालों ने अंग्रेज़ों के साथ सावन्तवाड़ी वालों को भिड़ा दिया था, जिससे सन् १७६५ ईसवी में उन दोनों में युद्ध हुआ। उसके पश्चात् भी अंग्रेज़ों से समय समय पर उनकी छेड़-छाड़ होती रही। और उनसे सन्धि करने के अनेक अवसर आये। भूतपूर्व-सावन्त महाराज को अंग्रेज़ों ने राजनैतिक कारणों से अलग कर दिया था। वर्तमान-महाराजा श्रीमान बापू साहब सरदेसाई का विवाह श्रीमान महाराजा बड़ौदा की पौत्री से हुआ है।

सावन्तवाड़ी राज्य का क्षेत्रफल ६२५ वर्ग-मील, मनुष्य संख्या २०,६,४४० तथा वार्षिक आय ७,६३,००० है। उसे ९ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है।

भोर

भोर राज्य बम्बई प्रान्त में है। इस राज्य के संस्थापक शङ्करावजी नारायण महाराज छत्रपति के सचिव थे। वे अष्टप्रधानों में से थे। छत्रपति-राजाराम के देश-त्याग के समय राज्य-क्रान्ति हुई। उस समय इनके पूर्वजों ने मुग़लों की सेना हटाने में बड़ी सहायता की थी। झाँसी-राज्य रानी लक्ष्मीबाई के पूर्वजों को जागीर में मिलने के पूर्व नारो शङ्कर सचिव को मिला था। सितारे के भोंसला राजा तथा पेशवा के घरेलू राजनैतिक मामलों में सचिवों का बड़ा सम्बन्ध रहा। पेशवाओं की भाँति सचिवों का पद भी स्वतन्त्र था और वे सितारे की गद्दी के सेवक बने रहे। ये देशस्थ ब्राह्मण हैं। वर्तमान महाराजा श्रीमान रघुनाथराव-बाबा साहब बड़े विद्वान, गुणी और प्रगतिक पुरुष हैं।

भोर राज्य का क्षेत्रफल ९२५ वर्ग मील, मनुष्य-संख्या १,३०,४२०, और वार्षिक आय ६ लाख रुपया है। अंग्रेज़ सरकार से इसे ११ तोपों की सलामी का सम्मान दिया गया है।

सांगली

पेशवाओं के सेनापति परशुराम भाऊ पटवर्धन बड़े वीर पुरुष हो गये हैं। वे नाना फड़नवीस के समकालीन थे। कर्नाटक एवं टीपू की चढ़ाइयों में उन्होंने बड़ा नाम कमाया था। कोल्हापुर के राजा सितारे की शाखा होने पर भी, उनकी सितारा और पूना के पेशवों से बड़ी शत्रुता थी। किन्तु पटवर्धन सदा कोल्हापुर वालों को दबाते रहे। इनके भाई और पुत्र भी पेशवाओं के सरदार थे, जो अनन्तर सांगली, मिरज, जमखण्डी, कुरुंदवाड़ आदि राज्यों के स्थापक हुए। सांगली के राजा चिन्तामणि राव साहब बाजीराव पेशवा से विभिन्न होकर अंग्रेज़ों से मिल गये थे। वर्तमान महाराज चिन्तामणि राव अप्पासाहब-पटवर्धन बड़े विद्वान और प्रागतिक हैं। नरेन्द्र-मण्डल (Chamber of Princes) के सदस्य के नाते इनका नाम अख़बारों में चमकता रहता है। अंग्रेज़ सरकार के ये कट्टर भक्त हैं। इसी से इनकी आवभगत भी खूब है।

इनके राज्य का क्षेत्रफल ११३६ वर्ग मील, मनुष्य संख्या २,२१,२२१ तथा वार्षिक आय १२,४०,००० है। इनको १७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। ये कोकणस्थ ब्राह्मण हैं।

मुधोल

मुधोल के राजा के पूर्वज बीजापुर की बादशाहत में बड़े सरदार थे। मुधोल के समीप का देश उन्हें राज्य में मिला था। शिवाजी की राज्य-स्थापना के अनन्तर अन्य मराठा सरदारों की भाँति मुधोल के घोरपड़ों ने भी उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। इस वंश में ऐसा कोई विशेष प्रसिद्ध पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ, जिसने इतिहास में कोई महत्त्व का कार्य किया हो। वर्तमान महाराजा नाना सा० घोरपड़े हैं। इस राज्य का क्षेत्रफल ३६८ वर्गमील, मनुष्य संख्या ६०,१४०, और वार्षिक आय ४७,२००० है। इन्हें ९ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है।

जन्हार

इस वंश के पूर्वज डकैती का कार्य करते थे। सन १७६० ई० में इन्होंने मराठों की अधीनता स्वीकार की। यह निम्न श्रेणी के हैं। इनकी मातृ भाषा अपभ्रष्ट मराठी है। इस राज्य का क्षेत्रफल ३१० वर्गमील तथा मनुष्य संख्या ६०,६००० है। इन्हें ७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। वर्तमान महाराज विक्रमशाह पतंगशाह बड़े सज्जन पुरुष हैं।

अक्कलकोट

अक्कलकोट के महाराज भौंसले हैं। इनके पूर्वज फ़तहसिंह भौंसला सितारा के महाराज के सरदार थे। वर्तमान महाराजा नाबालिग़ हैं। इस राज्य का क्षेत्रफल ४९८ वर्गमील, मनुष्य संख्या ८१,२५० तथा वार्षिक आय ८,७१००० है। ये बम्बई प्रदेश के प्रथम श्रेणी के सरदार हैं।

औंध

औंध के पंत-प्रतिनिधि के पूर्वज परशुराम-श्रीनिवासजी ने छत्रपति राजाराम की बड़ी सहायता की थी। मराठा प्रधान मण्डल में प्रतिनिधि का बड़ा सम्मान था। सितारा और पूना के राजनैतिक मामलों में उनका बड़ा हाथ रहता था। इस वंश के प्रायः सभी पुरुष बड़े राजनीतिज्ञ हो गये हैं। पेशवाओं की इनसे सदा अनबन रहती थी। वर्तमान महाराज बालासाहब पंत-प्रतिनिधि जैसा योग्य राजा इस समय समग्र भारतवर्ष में नहीं है। ऐसे राजा के लिए सङ्कीर्ण कार्यक्षेत्र का होना दुर्भाग्य की बात है। ये बड़े विद्वान, चित्रकार, दानी, व्यायाम-निपुण और औद्योगिक संस्थाओं के सहायक हैं। इनकी देशभक्ति सराहनीय है। इसीसे इनका नाम प्रत्येक सुशिक्षित महाराष्ट्र के जिह्वाग्र पर रहता है। किर्लोस्कर का लोहे का कारखाना, ओगलेजी का काँच का कारखाना, सातवलेकरजी का स्वाध्याय-मण्डल आदि अनेक संस्थाओं के ये जनक और आश्रयदाता हैं। राजा रविवर्मा के अनन्तर विख्यात चित्रकारों में इन्हीं का नाम लिया जा सकता है। महाभारत के सचित्र संस्करण के लिए आपने एक लाख रुपया प्रदान

किया है। हिन्दी भाषा-भाषी सज्जन आपकी 'सूर्य व्यायाम' नामक पुस्तक से परिचित होंगे।

औंध राज्य का क्षेत्रफल ५०१ वर्गमील, मनुष्य-संख्या ६४,५६० तथा वार्षिक आय ३६६ हजार है। यहाँ के राजा इतने प्राग्तिक हैं कि अपना दैनिक व्यय भी आपने अपनी धारा-सभा के सम्मति-क्रम पर रख छोड़ा है।

फलटन

फलटन राज्य की मनुष्य-संख्या ४३२८६, क्षेत्रफल ३६० वर्गमील, तथा वार्षिक आय ३,७४,००० है। फलटन के राजा निम्बालकर कहलाते हैं। इनके पूर्वज बीजापुर राज्य के ख्यातनाम सरदार थे। 'राव वणंगपाल बारह बजीरों का काल'—यह कहावत उन्हीं के लिए थी। इस वंश ने शिवाजी के कार्य में आरम्भ में बहुत कुछ रोड़े अटकाये। किन्तु फिर निम्बालकरों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। बजाजी निम्बालकर ने यवन मत स्वीकार कर लिया था। इस राज्य का क्षेत्रफल ३६७ वर्गमील, मनुष्य-संख्या ४३,२७६ तथा वार्षिक आय ३,७४००० है। वर्तमान राजा मालोजी राव सा० निम्बालकर बड़े प्राग्तिक पुरुष हैं।

जत

जत के राजा डफले कहलाते हैं। छत्रपति राजाराम के समय डफले चौहानों के पूर्वजों ने बड़ी स्वामि-सेवा की। अतएव उन्हें सरदारी और जागीर मिली थी। जत राज्य का क्षेत्रफल ६८१ वर्गमील, मनुष्य-संख्या ७२,६५४ एवं वार्षिक आय ३,२६००० है।

रामदुर्ग

जब सितारे से कोल्हापुर की अलग राज्य-शाखा स्थिर हुई, तब इनके पूर्वज कुछ दिवस तक कोल्हापुर के सचिव थे। तदनन्तर पेशवाओं से इनका सम्बन्ध हुआ। वर्तमान रामदुर्ग राज्य का क्षेत्रफल १६६ वर्गमील, मनुष्य-संख्या ३३,६६७ तथा वार्षिक आय ३,८५००० है। यह जाति के कोकणस्थ हैं। उनका आड़ नाम भावे है।

सोंडूर

यह राज्य मद्रास प्रान्त में है। जब पेशवा ने टीपू पर चढ़ाई की थी, उस समय मुरारराव घोरपड़े ने गुत्ती का क़िला बड़े साहस के साथ लड़ कर जीता। तभी से सोंडूर राज्य की स्थापना हुई है। इस राज्य क्षेत्रफल १६७ वर्गमील, मनुष्य संख्या ११,६८४ तथा वार्षिक आय १,४७००० है। यहाँ के महाराज का हाल ही में देहान्त हुआ है। अतएव उनकी कन्या राज्य की उत्तराधिकारिणी बनाई गयी है।

पटवर्धन वंश की रियासतें

सांगली राज वंश के वर्णन में हम पटवर्धनों का उल्लेख कर आये हैं। पेशवा के सेनापति परशुराम भाऊ पटवर्धन के भाई, भतीजे और पुत्रों को जो जागीरें मिलीं, उनकी दशा इस समय किफालतदार रियासतों जैसी है। वे निम्न हैं—

क्षेत्रफल	वर्ग मील	मनुष्य सं०	वार्षिक आय
१ जमखण्डी	५२५	१०११६५	६८४०००
२ कुरुन्दवाड़ सीनियर	१८२	३७७६०	६८६०००
३ कुरुन्दवाड़ जूनियर	११४	३४२८८	२८६०००
४ मिरज सीनियर	४२	८२५८०	३६१०००
५ मिरज जूनियर	१६६॥	३४६६५	३५४०००

पटवर्धन राजाओं में से जमखण्डी के श्रीमान् अप्पा साहब तथा मिरज के बाला-साहब दक्षिण के प्रसिद्ध राजाओं में गिने जाते हैं।

कोल्हापुर के किफालतदार राजा

कोल्हापुर राज्य के अधीनस्थ इचलकरञ्जी, बावड़ा, विशालगढ़ और कागल मुख्य रियासतें हैं। बाह्य रूप से उनका कोल्हापुर से सम्बन्ध है, किन्तु बृटिश गवर्नमेण्ट की उन्हें गारण्टी है। इचलकरञ्जी सबसे बड़ी रियासत है। और यहाँ के राजा नारायणराव बाबा साहेब कोंकणस्थ ब्राह्मण हैं। इनकी आय १५ लाख वार्षिक के लगभग है। विशालगढ़ के पन्त प्रतिनिधि भी ब्राह्मण हैं। जिनकी वार्षिक आय ३ लाख के लगभग है। आवाजी राव साहब प्रतिनिधि प्रागतिक पुरुष हैं। बावड़ा के पन्त अमात्य रामचन्द्र राव बाबा साहब की वार्षिक आय ३ लाख के लगभग है। कागल के घाड़गे कोल्हापुर के निकट सम्बन्धी हैं। भूतपूर्व-महाराजा उसी वंश से दत्तक आये थे।

करवीर के श्री शङ्कराचार्य, धापडशी के ब्रह्मेन्द्र स्वामी, चिञ्चवड के मोरया देव, चाफल के रामदास सन्यासी और कोल्हापुर के सिद्धेश्वर बाबा को भी बड़ी बड़ी जागीरें मिलीं। जो अभी तक स्थिर हैं।

इनके अतिरिक्त हैदराबाद स्टेट में रायराया और राजा गणेश २० लाख और ५ लाख के जागीरदार हैं। ग्वालियर के शीतोले, आंग्रे, जाधव के अतिरिक्त इन्दौर, बड़ौदा आदि राज्यों में बड़े-बड़े ब्राह्मण तथा मराठे सरदार उपस्थित हैं। राजपूत राज्यों और सरदारों की अपेक्षा मराठा राज्यों और सरदारों की स्थिति अधिक अच्छी है।

—भास्कर रामचन्द्र भालेराव

साम्राज्य का सर्व श्रेष्ठ सम्मान माही मरातिब

दिल्ली के बादशाहों की ओर से प्रथम श्रेणी के सरदारों को जो पारितोषिक दिया जाता था, उनमें माही मरातिब का सम्मान सर्व श्रेष्ठ माना जाता था। उक्त सम्मान का उपयोग राज्यासन प्राप्त वंशज ही कर सकते थे। माही मरातिब की वस्तुओं में एक स्वर्णमय मत्स्य का राज-चिह्न होता है। उसको धारण करने से राज्य-वैभव और प्रतिष्ठा बढ़ने का शकुन समझा जाता है। इसी से जिन लोगों को उक्त प्रकार के सम्मान मिलते थे वे अपने को बड़ा भाग्यशाली मानते थे। दिल्ली के मुग़ल बादशाह शाहआलम ने श्रीमान् सवाई माधोराव पेशवा तथा प्रसिद्ध मराठा वीर आलीशाह बहादुर महादजी सिन्धिया को भी माही मरातिब का सम्मान प्राप्त हुआ था। माही मरातिब का इतिहास भी बड़ा मनोरञ्जक है। कहा जाता है कि इस पद का अन्वेषण ईरान के बादशाह खुशरो परवीज ने किया था। खुशरो ईरान के प्रसिद्ध और न्यायी बादशाह नौशेरवाँ का पोता था। उसका राज्य-काल सन् ५९१-६२७ ई० निश्चित है। सन् ५९१-ई० में ग्रीस देश के बादशाह मारीस की सहायता से खुशरो ने ईरान पर चढ़ाई की और वहाँ के प्रबल सेनापति बहराम का पराभव करके ईरान का राज्य जीत लिया था। उस समय उसने राज्याभिषेक के लिए अपने एक ज्योतिषी से पूँछ कर मीन राशि के चन्द्र का मुहूर्त स्थिर किया। इसी से उसने उस शुभ राशि का अभिनन्दन करने के लिए एक मत्स्याकृति स्वर्ण-चिह्न तैयार किया तथा दो फौलाद के कलाईदार कोकुवे (ग्रहों के दर्शक गोले) तैयार करके दो लकड़ी के सिरों पर उन्हें रख कर उन तीनों चिह्नों को बादशाह की सवारी के आगे आगे रखने का प्रबन्ध किया। तभी से उन चिह्नों को माही मरातिब नाम प्राप्त हुआ। तदनन्तर फौलाद के स्थान पर दो गोले ताँबे और पीतल के बनाये जाकर उन पर सोने की कलई करने की प्रथा चल पड़ी। पर मत्स्य चिह्न तो सोने का ही बनाया जाता था। एक मत्स्य चिह्न के साथ दो अण्डे के रूप के लम्बे गोले रखने की प्रथा प्रचलित है। परशिया में अब भी बादशाह की सवारी के साथ माही मरातिब रखने की प्रथा प्रचलित है।

बादशाह खुशरो परवरीज़ का दरबार बड़ा भव्य और वैभव-सम्पन्न था। बादशाह तथा उसकी महारानी शीरीं का यश कई फ़ारसी शायरों ने अपनी कविता में अङ्कित किया है। खुशरो के अनेक वर्ष पश्चात् नूहेस्मानी नामक एक प्रसिद्ध बादशाह ईरान में हो गया है। उसके राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर चन्द्र

जहाज़ फ़र्श।

पालकी।

नालकी नम्बर १

नालकी नम्बर २

पञ्जा ।

अलम ।

पीतल के झण्डे ।

मगर ।

4
5
3
2
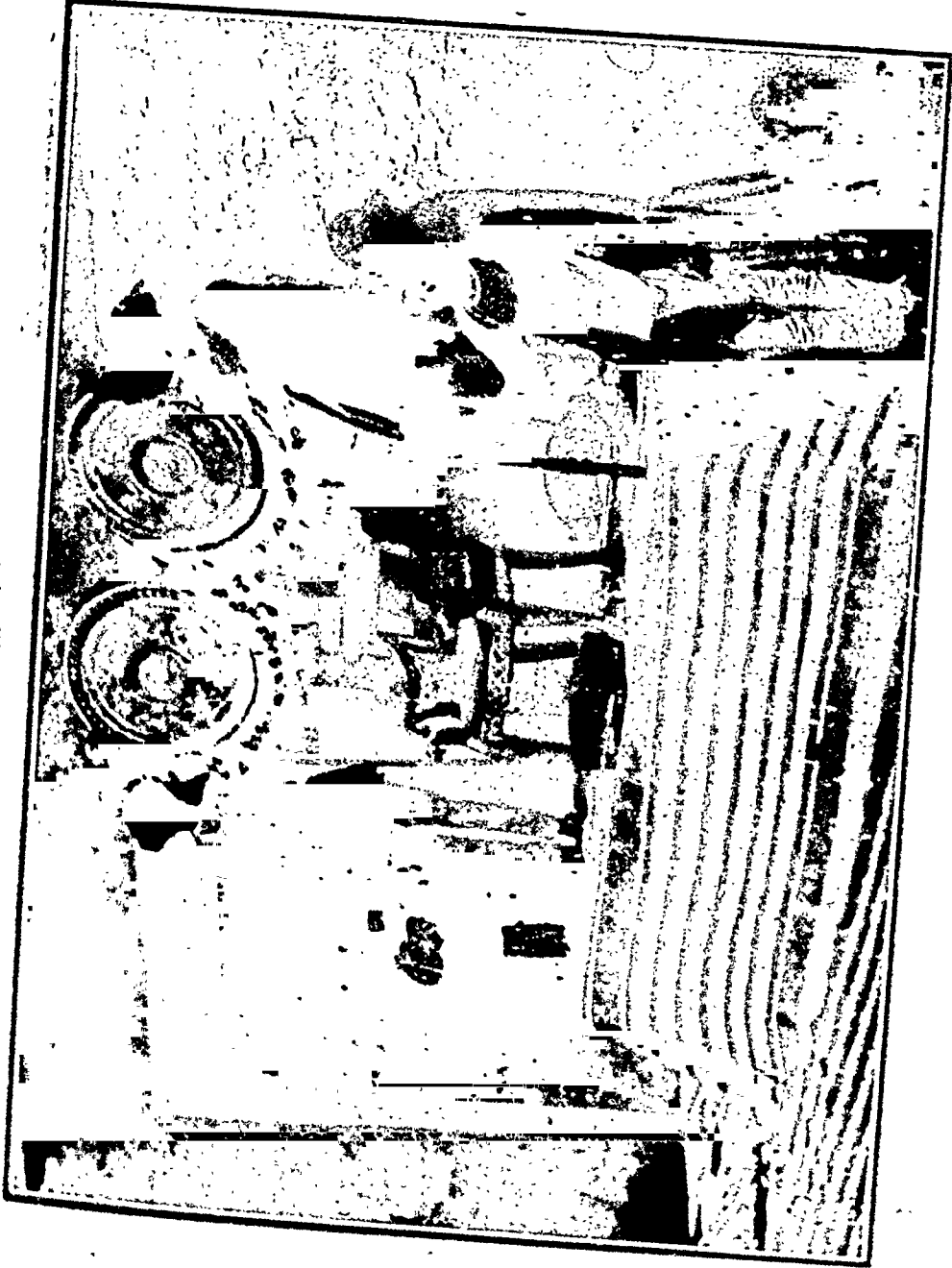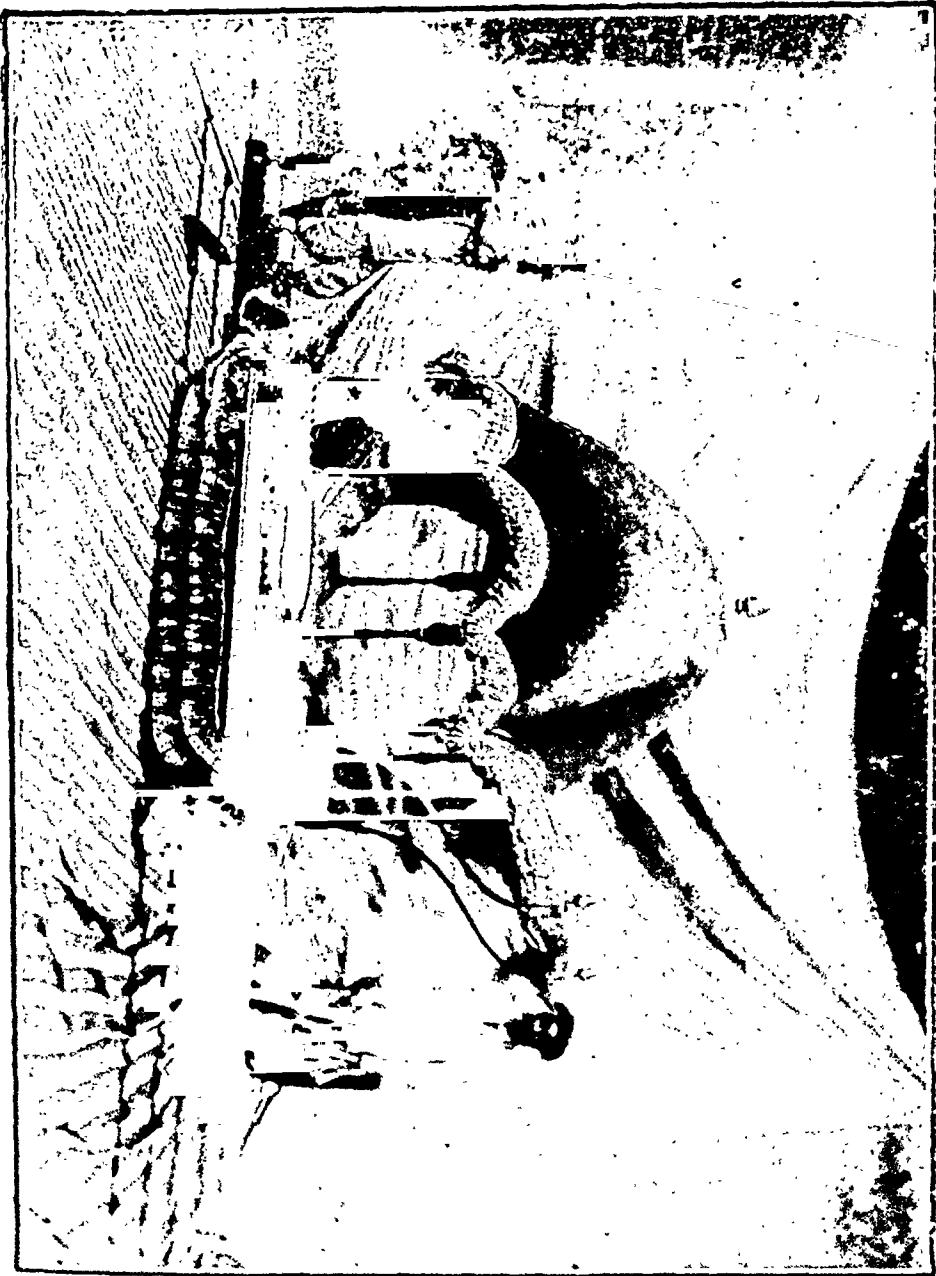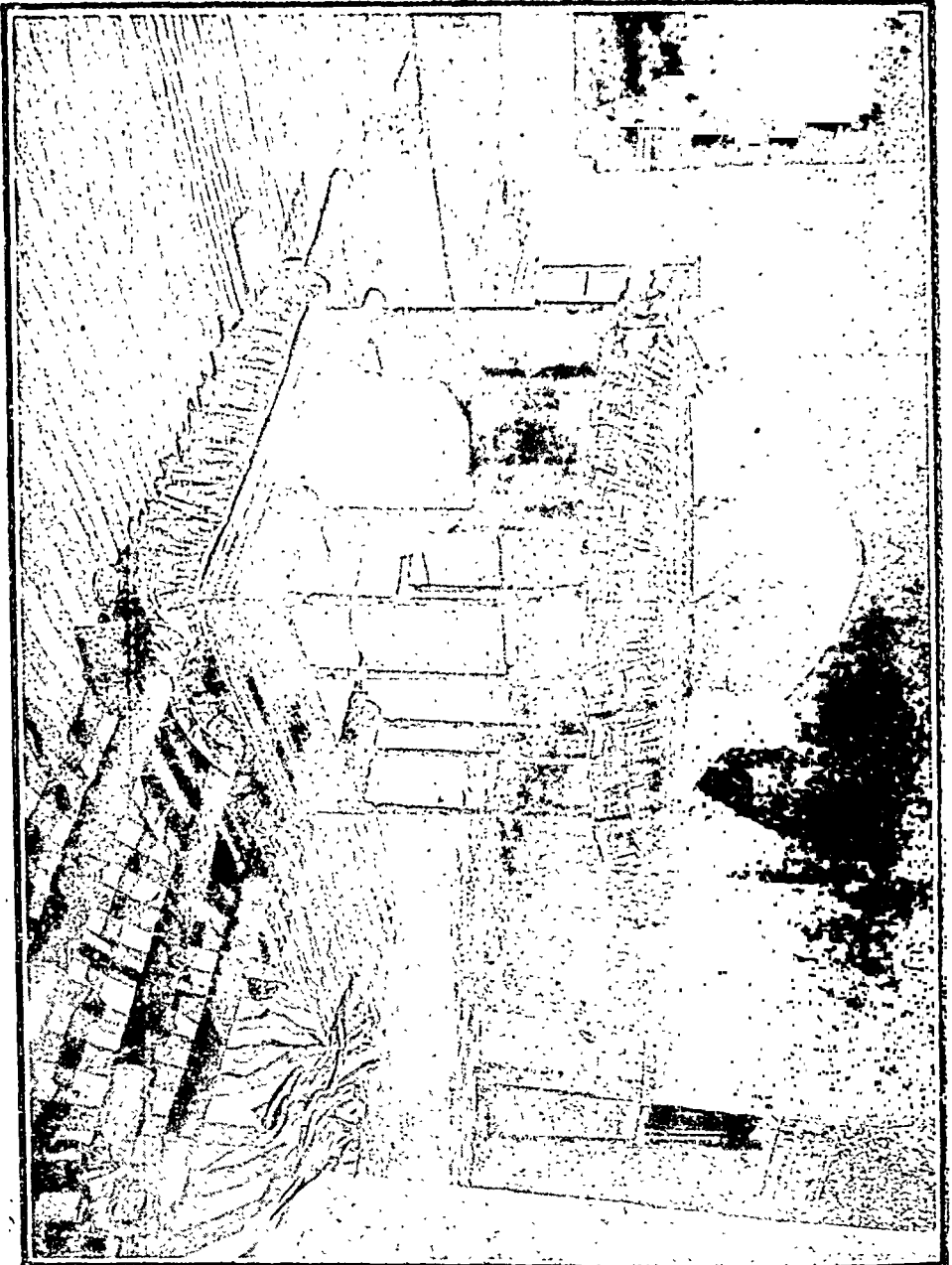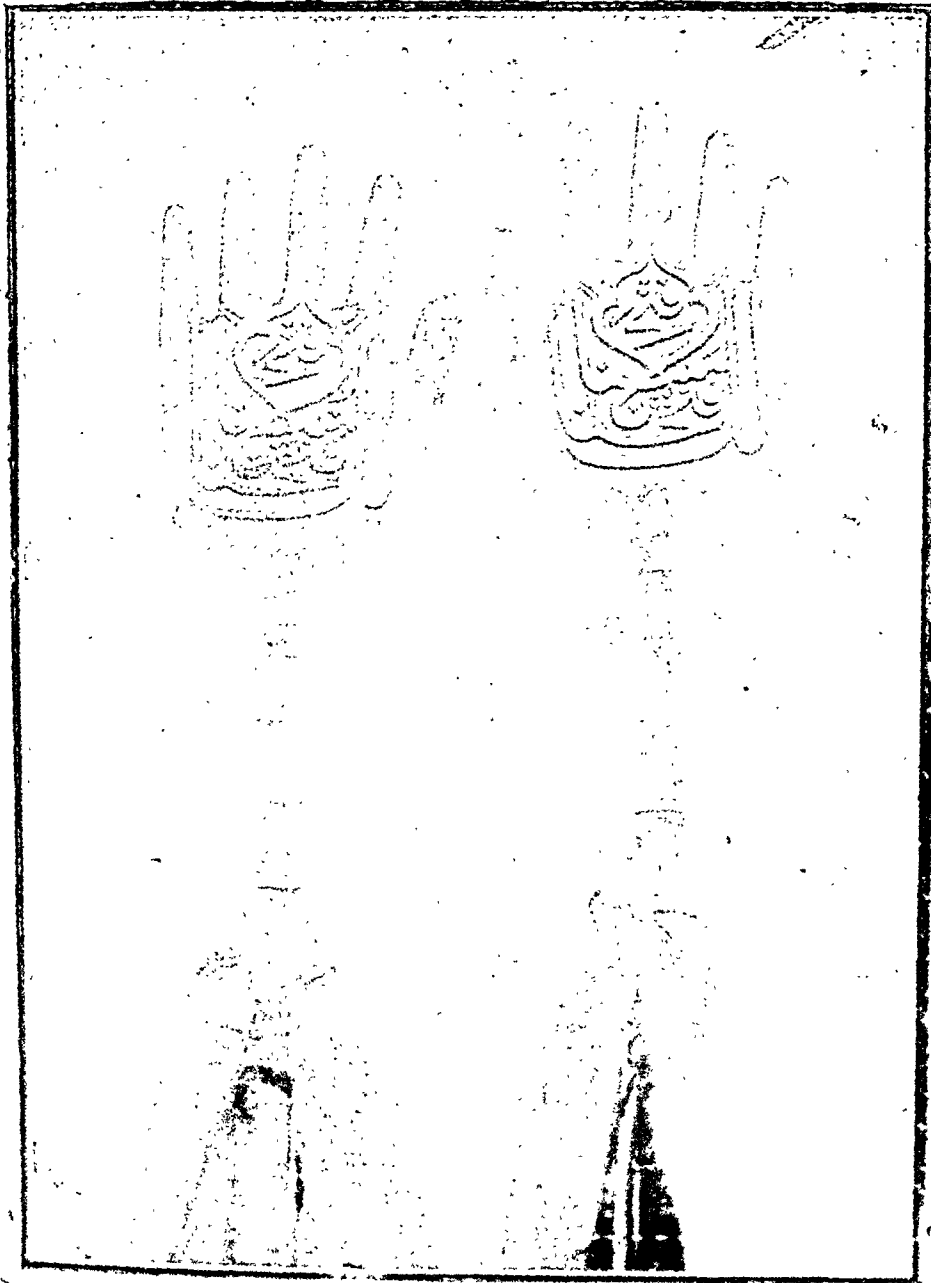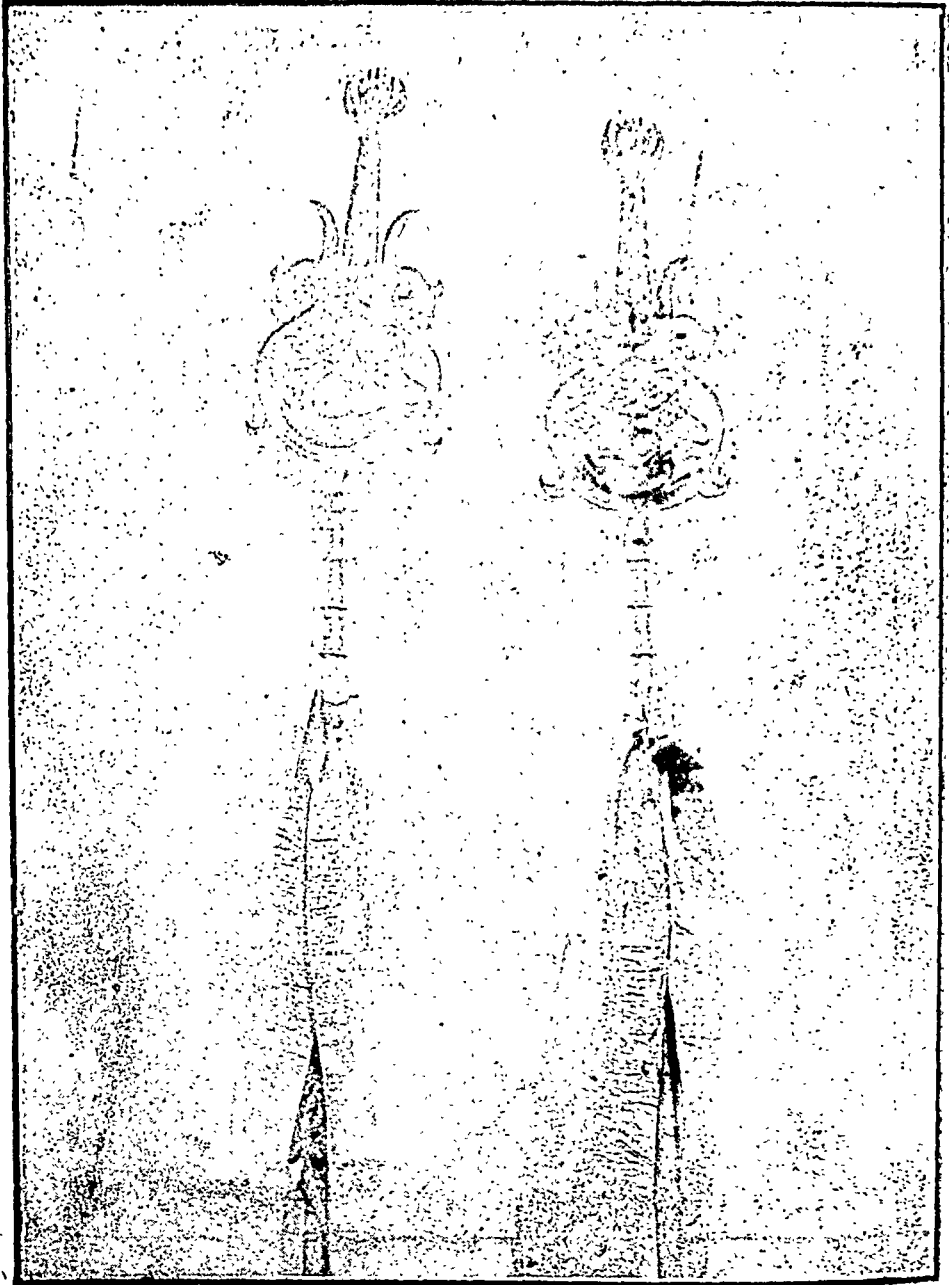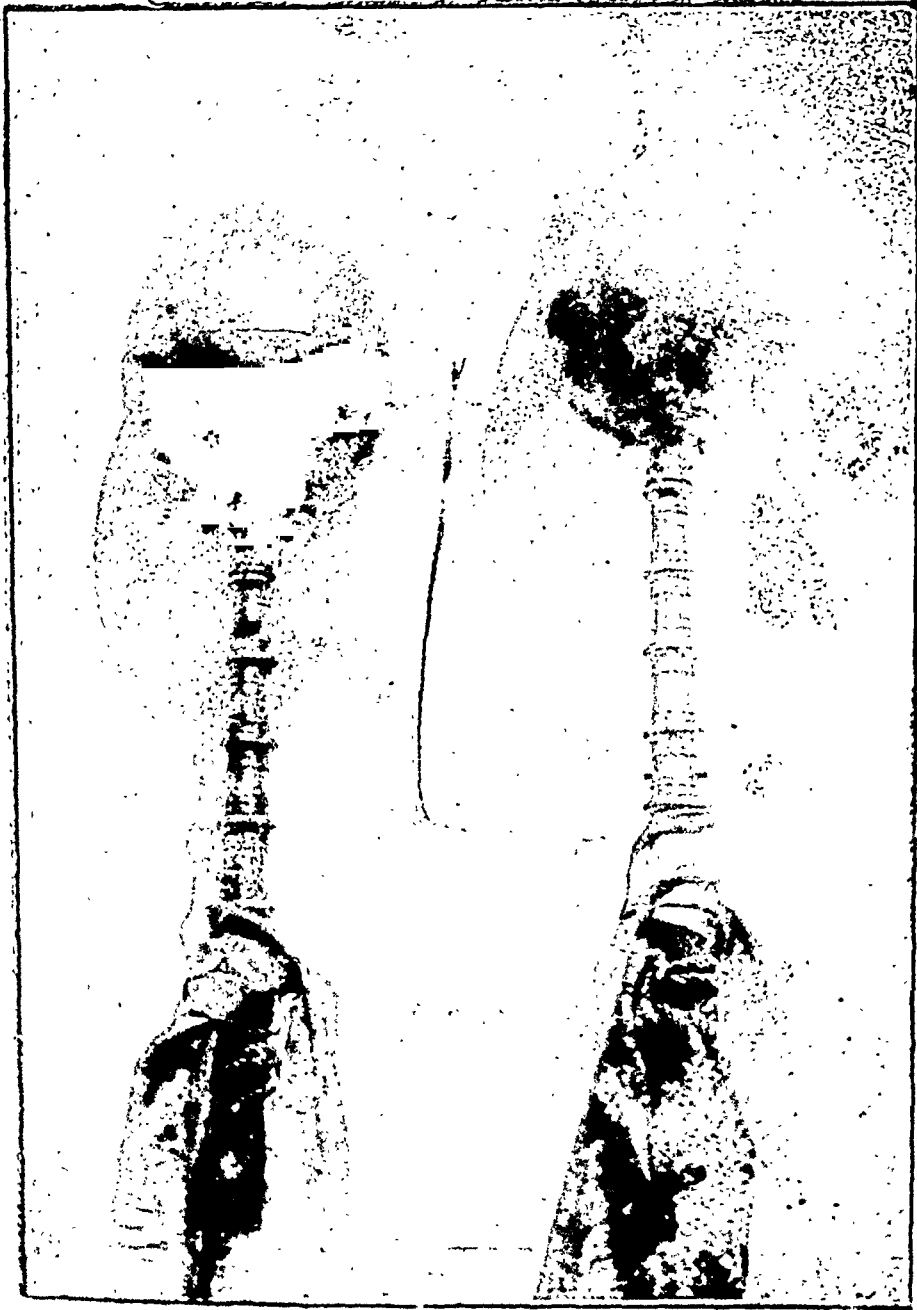
सिंह राशि पर था और वह बहुत शुभदायक माना गया। अतएव बादशाह ने एक स्वर्णाङ्कित सिंह तैयार कराया और उसे भी मत्स्य-चिन्हों के साथ बादशाह की सवारी के आगे चलाने की प्रथा प्रचलित की। तभी से ईरान

सूरज।

देश में मत्स्य-चन्द्र-सिंह इन तीन स्वर्ण की वस्तुओं का राजचिन्ह माना जाने लगा और ये राजवैभव के मुख्य द्योतक माने गये। तदुपरान्त हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाहों ने भी ईरान के इन राजचिन्हों को अपने दरबार में प्रचलित किया, और ईरानी बादशाहों की कीर्ति की अपेक्षा अपनी कीर्ति बढ़ाने की इच्छा से उन्होंने हिन्दुस्तान के अनेक राजा महाराजाओं को बड़ी उदारता से उक्त सम्मानों को समर्पित कर अपना चक्रवर्त्तित्व स्थापित किया। शाहआलम (अन्धे) बादशाह ने दुष्ट वज़ीर गुलाम क़ादिर के पञ्जे से छुटकारा पाने तथा गद्दी पर बैठने के उपलक्ष में सन् १७८९ ई० में महादजी सिन्धिया को भी माही मरातिब सम्मान प्रदान किया। जो अद्यावधि ग्वालियर में मौजूद हैं। महाराज के दशहरे की सवारी के शुभ अवसर पर माही मरातिब को

साथ रखना बड़ा गौरव माना जाता है। कहा जाता है कि जब सन् १८०३ ई० में लार्ड लेक ने मराठों से दिल्ली जीती, तब भी शाहआलम ने माही मरातिब सम्मान उसे दिया था। वे चिन्ह अब भी इंगलैण्ड में सुरक्षित रक्खे हैं, पाठकों की जानकारी के लिए उन चिन्हों के चित्र भी दिये गये हैं।

मछली और बाघ का सिर।

—कृष्ण विनायक

महाराष्ट्र का प्राचीन साहित्य ।

यों तो भारतवर्ष की प्रायः प्रत्येक प्रान्तीय भाषा में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य पायी जाती है; परन्तु स्थायी साहित्य, प्रौढ़ एवं गम्भीर रचना, उद्बोधक, भाव-व्यञ्जक तथा वास्तविक लगन को सम्मुख रखते हुए अनेक बातों में मराठी साहित्य की बराबरी भारतवर्ष के किसी भी प्रान्त की भाषा नहीं कर सकती। प्रायः सभी भाषाओं की जननी, कोमल-कान्त रचना-युक्त संस्कृत की बात छोड़ दी जाय, तो वर्तमान समय में बँगला, हिन्दी, गुजराती, कनाडी, उर्दू की बड़ी तूती कर्ण-गोचर होती है। पञ्जाबी, सिन्धी, उत्कल आदि प्रान्तीय भाषाओं का भी अच्छा साहित्य है। बँगला अवश्य ही सर्वापेक्षा अधिक प्रतिष्ठा-सम्पन्न है। बङ्गाल साधन-सम्पन्न प्रान्त है। अतः उस भाषा में पुष्कल-रूपेण विविध विषयक पुस्तक तथा सामयिक साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। तो भी बङ्गालियों की विशेष अभिरुचि उपन्यास तथा काव्य की ही ओर है। विदेशी भाषाओं से अनुवादित या प्रकाशित उपन्यास सहस्रों मिलेंगे। कवि रवीन्द्र, नाटककार द्विजेन्द्र आदि एवं प्रकाण्ड साहित्यिकों के काव्यों पर विदेशी भाव भावनाओं आदि का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। दर्शन, इतिहास आदि प्रौढ़ साहित्य बँगला में बहुत थोड़ा है। प्राचीन बँगला साहित्य में वैष्णव तथा नाथ-पन्थी कवियों ने शान्ति-रस की अच्छी रचना की है, जो ब्रज-भाषा से बहुत कुछ प्रभावित है। गुजराती भाषा का पुराना साहित्य, हिन्दी साहित्य की प्रति-ध्वनि मात्र है। वाणिज्य व्यवसाय के द्वारा अधिक द्रव्य अर्जित करने के कारण गुजराती में प्रकाशन कार्य यथेष्ट होता है। ऐसी स्थिति अन्य भाषाओं की नहीं है। पर हिन्दी, मराठी, बँगला, अंग्रेज़ी, उर्दू आदि पुस्तकों के अनुवाद ही गुजराती में अधिक पाये जाते हैं। हाँ, इधर उपन्यास तथा काव्य-साहित्य कुछ चेत पड़ा है। कनाडी का पुराना साहित्य कर्ण कठोर है। वह शान्ति-रस पूर्ण है और इधर कुछ नई भाव-भङ्गी की बू उस साहित्य को लग गयी है। उर्दू अपने उसी पुराने नाज़ो-नख़रे तथा बाँकी-तिरछी अदाओं में व्यस्त है। चकबस्त जैसे कवि उसे नयी दुनियाँ के रङ्ग भी दिखा देते हैं। पर ज़ुल्फ़ों और मिसरों की कवड्डी का मैदान ही उर्दू में चहुँ-ओर दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी का शान्ति, वीर, एवं शृङ्गार साहित्य अन्य भाषाओं की अपेक्षा उन्नत और सुन्दर है। पर उसकी दशा दिन-भर घूम-फिर कर शाम को किसी सराय में पड़े रहने वाले पथिक की नाईं है। न उसमें सामयिकता है, न दूरदर्शिता। देश गुलामी की ज़ञ्जीरों में जकड़ रहा था और हिन्दी कवि भाँग-उन्माद में आकर नखशिख तथा

नायिकाओं के कच, कुच कटाक्षों आदि पर ही मरते थे। आत्मघात की इतिश्री हो गयी। ऐसा भौंडापन अन्य किसी भाषा में न मिलेगा। शान्ति रस की विपुल रचना के कारण विदेशी चमत्कार के असर न होने देने में हिन्दी ने अच्छा काम किया। वीररस में उर्दू कवियों की अतिशयोक्ति का पाला हिन्दी को भी मार गया है। यह तो हुई विविध प्रान्तीय भाषाओं की बात। मराठी की शान्ति रस की रचना ने हिन्दी की भाँति विदेशियों का प्राबल्य हटाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया। पर उसके पुट में उद्बोधन-रूप वीर रस का जो आह्वान किया गया है, वह अवश्य ही वर्णनातीत तथा अनुकरणीय है। कौन कह सकता है कि समर्थ रामदासजी की शान्त रस की रचना में वीर रस का आह्वान तथा विविध सन्त कवि रचित सन्त नामावलियों में प्राचीन आदर्शों के अनुकरण करने का उद्बोधन नहीं है। सामयिकता ही मराठी की विशेषता है। अन्तिम बाजीराव पेशवा विलास-प्रिय थे, तो मराठी शायरों ने भी लावनियाँ और छकड़ों के समा बाँधे और मुसलमानों के प्राबल्य के समय स्वधर्म प्रीति के प्रवचन तथा राष्ट्रोद्धारक शिवाजी के समय कर्मण्यता की पुकार का होहल्ला मच गया।

आर्य्यों के दण्डकारण्य में उपनिवेशित होने पर तद्देशीय भाषा, द्रविड़, का आर्य भाषा पर संस्कार हुआ, जिस से उस प्रान्त में एक निराली ही भाषा प्रचलित हो गयी। प्रत्युत मराठों के प्रदेश महाराष्ट्र की भाषा भी महाराष्ट्रीय कहलाने लगी। तथा संस्कृत के बिगड़े हुए रूप सौरसेनी, मागधी की भाँति महाराष्ट्री भाषा भी प्रकृत भाषा में गिनी जाने लगी। सौरसेनी से हिन्दी गुजराती, मागधी से मैथिली बँगला तथा प्राचीन महाराष्ट्री से ही आधुनिक मराठी की उत्पत्ति का पता चलता है। महाराष्ट्री का अखिल भारतवर्ष में बड़ा प्रचार तथा महत्व था। प्राचिन संस्कृत नाटककारों ने अपनी कृतियों में गद्य संवाद के स्थान पर महाराष्ट्री का ही उपयोग किया है। महाराष्ट्री पर पाली भाषा का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। इसी से वर्तमान मराठी भाषा में उन दोनों भाषाओं के शब्द ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। यथा—

मराठी	पाली	हिन्दी अर्थ
आणी	आणा	लाओ
उन	उण्ह	धूप
ओलकतो	ओलोकेति	पहिचानता है
तहान	तण्हा	प्यास
दिसतो	दिस्सति	दिखता है
नात्	नत्ता	नाती
माजघर	मज्झघर	बीच का कमरा
वाढ़तो	वड्ढति	परोसता है
शिम्पी	खिप्पी	दर्जी

आदि आदि

इसी प्रकार व्याकरण के बहुत से रूप भी पाली से मिलते जुलते हैं, तो भी कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका किसी भाषा से सम्बध नहीं जान पड़ता। वर्तमान मराठी भाषा का उद्गम किस शताब्दि में हुआ, इस बात का निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जा सकता। किन्तु,

इसकी नींव अनुमानतः तीसरी या चौथी शताब्दि में पड़ी। मराठी का एक सब से प्राचीन शिलालेख नवीं सताब्दि का पाया गया है। मैसूर राज्य में चन्द्रगिरि पर्वत पर श्रवणबेलो चोला नामक दिगम्बर जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। वहाँ राय चलन गङ्ग नामक राजा के चामुण्ड राय नामक मंत्री ने शाके ९०५ में वाहूवलि गौतमेश्वर नामक प्रचण्ड जैन मूर्ति स्थापित की। उसके पृष्ठ भाग पर निम्न पंक्तिया अङ्कित हैं—

श्री चामुण्ड राये कर वियले
श्री गङ्ग राज सुत्ताले करवियले

इससे यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि शाके ९०० के समय मराठी का खासा प्रचार था।

शाके १०५१ में चालुक्य वंशीय सोमेश्वर तृतीय भूप ने 'मानसोल्लास' अर्थात् 'अभलिपितार्थ चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें प्राचीन मराठी पद्य के कुछ नमूने पाये जाते हैं। शाके १०७५ का एक शिलालेख डोंडके बेलटगाव पलसदेव ग्राम के एक मन्दिर पर विद्यमान है। शाके ११०९ का परल (बम्बई) तथा शाके ११२० का खानदेश के पाटन ग्राम का शिलालेख भी उपलब्ध हुआ है। इनकी सहायता से मराठी का पूर्व स्वरूप जानने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। आज तक मुकुन्द राज तथा ज्ञानेश्वर ही मराठी के आद्य लेखक माने जाते थे। किन्तु महाराष्ट्र के संशोधकों के प्रयत्न से अब ज्ञानेश्वर के पूर्व का बहुत साहित्य उपलब्ध हो चुका है। महाराष्ट्र में महानुभाव नामक एक धर्म पन्थ प्रचलित है। उसके सिद्धान्त बौद्ध मत से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उस पन्थ का प्रचार सुदूर प्रदेश काबुल तक हो गया और अब भी सीमा-प्रान्त तथा पञ्जाब में महानुभाव पन्थ के मठ पाये जाते हैं। महानुभाव पन्थ के धर्म ग्रन्थ वारि माण्डल्य कवि अङ्क आदि साङ्केतिक लिपियों में लिखे जाते थे। चक्रधर स्वामी उर्फ़ हरपाल देव इस पन्थ के प्रवर्तक थे। शाके ११८६ में उनकी लिखी हुई चौपदी उपलब्ध हुई है। उन्हीं के अनुयायी शिष्य नागदेवाचार्य उनकी भगिनी उमाम्बा, रूपाई उर्फ महादम्बा, महेन्द्र व्यास आदि महानुभाव कवियों की स्फुट कविताएँ तथा ग्रन्थ पाये जाते हैं। उमाम्बा ने तो हिन्दी में भी रचना की थी। महेन्द्र व्यास ने 'लीला चरित्र' नामक श्रीचक्रधर का चरित्र लिखा है। श्रीभास्कर कवीश्वर व्यास नागदेव के शिष्य थे। उन्होंने शाके ११९५ में 'शिशुपाल वध' नामक ग्रन्थ की रचना की। 'श्रीमद्भागवत एकादश ग्रन्थ' नामक उनका एक और ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। 'शिशुपाल वध' उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है और भी कुछ छोटे बड़े महानुभाव पन्थ के कवि मुकुन्दराज तथा ज्ञानेश्वर के पूर्व हो गये हैं। किन्तु आज तक मुकुन्दराज ही आद्य मराठी कवि माने गये हैं। मुकुन्दराज के ग्रन्थों में 'विवेक सिन्धु' तथा 'परमामृत' मुख्य हैं। 'विवेक सिन्धु' में लिखा है—

'नृसिंहाच्या पसाय। त्याचा कुमार जैत्रपाल नवे करविला हा गद्यारोल : वेदान्ता च्या'।

पर इतिहास की सहायता से इन राजाओं का ठीक पता नहीं चलता। एक प्राचीन प्रति में शाके ११९० रचनाकाल का उल्लेख है। मुकुन्द-राज के अनन्तर प्रसिद्ध कवि ज्ञानेश्वर हुए। निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव तथा मुक्ताबाई, इन चारों बन्धु भगिनियों ने मराठी की चिर-स्मरणीय सेवा की है। गोरखनाथ के शिष्य गेनीनाथ ही निवृतिनाथ के गुरु थे। कहा जाता है कि इनके पिता विट्ठल पन्थ जी ने काशी जाकर स्वामी रामानन्द से संन्यास दीक्षा ली थी। जब स्वामी जी को ज्ञात हुआ कि विट्ठल-पन्थ ने स्त्री की अनुमति लिए बिना संन्यास लिया है तो उन्होंने उनसे पुनः गृहस्था-श्रम स्वीकार करने का अनुरोध किया। तदनन्तर ही उनके इन चारों पुत्रों का जन्म हुआ था। संन्यासी की सन्तान होने के कारण लोगों ने उनका बहिष्कार भी किया। तब ज्ञानेश्वर आदि ने यौगिक चमत्कार बता कर जनता पर अपना प्रभाव स्थापित किया। श्री ज्ञानेश्वर ने भागवत् गीता पर ज्ञानेश्वरी अर्थात् भावार्थ दीपिका टीका ओवी छन्द में लिखी है। टीका में १७ अध्याय और नौ हजार ओवियां हैं। उसकी भाषा अत्यन्त लोकोत्तर और रस भरी है। ज्ञानेश्वर जी की विद्वत्ता तथा प्रसाद-गुण देखने योग्य है। ग्रन्थ के दृष्टान्त एवं उपमाएँ इतनी सरस और उत्कृष्ट हैं कि उनके पाठकों के मन पर कवि-कल्पना का पूर्ण प्रभाव पड़ जाता है। अत्यन्त मधुर शब्दों का प्रयोग करके ज्ञानेश्वर जी ने मराठी भाषा को अधिक अलंकृत किया है। शाके १२१२ में उक्त ग्रन्थ की रचना की गयी थी। उस समय ज्ञानेश्वर जी की आयु केवल पन्द्रह वर्ष की थी। इसीसे उनकी जन्मजात प्रतिभा का पता चल सकता है। ज्ञानेश्वरी के नवें अध्याय में लिखा है।

आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें।
तोषोनि मज द्यावें। पसाय दान हें।
जें, खलांची व्यंकटी सांडो। तयां सत्कर्मी रति वाढो।
भूतां परस्परें पडो मैत्र जीवा चें।
दुरिताचें तिमिर जाओ। विश्व स्वधर्म सूर्ये पाहो।
वांछिल तें तें लाहो। प्राणि जात ॥७४॥
वर्षत सकळ मंगळी। ईश्वरनिष्ठां ची मांदियाळी।
अनवरत भूतळी। भेटोतु भूतां ॥७५॥

इस ग्रन्थ की भाषा प्राचीन मराठी होने के कारण यत्किञ्चित् दुर्बोध है। तो भी महाराष्ट्र में इसका बड़ा प्रचार है और यह मराठी के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में गिना जाता है। सौभाग्य से इसका हिन्दी में भी अनुवाद हो गया है। ज्ञानेश्वर जी के भाई निवृत्ति और सोपान की भी रचनाएँ पाई जाती हैं। उनकी भगिनी मुक्ताबाई के केवल १४ वर्ष की आयु में लिखे हुए पद्य भी मिल सके हैं, जो भक्तिरस से ओतप्रोत और सुमधुर हैं।

ज्ञानेश्वर के समकालीन चांगदेव और नामदेव नामक कवि हो गये हैं। चांगदेव योगी रूप थे और नामदेव वही प्रसिद्ध हरि-भक्त थे जिनकी रचना सिक्खों के प्रसिद्ध ग्रन्थ साहब में तथा हिन्दी संसार में प्रचलित है। नामदेव जी ने ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा की थी। उनके गुरु का नाम विसोबा खेचर था। नामदेव के पिता

नाम दामा और माता का गुणाई था। उनकी पत्नी का नाम राजाई था। उनके नारा, महादा- गोंदा और विठा नामक चार पुत्र थे और क्रमशः लाडाई, गोडाई, यैसा तथा साखराई नाम्नी उनकी पत्नियाँ थीं। नामदेव जी की जनी नामक एक अनुयायिनी भी थी। जिसकी कविता अत्यन्त ललित तथा भक्तिरस-पूर्ण है। कहा जाता है कि नामदेव जी ने भगवान विष्णु के सम्मुख सौ करोड़ पद्य लिखने की प्रतिज्ञा की थी। तदनुसार उनके माता-पिता, पुत्र-कलत्र आदि सभी ने काव्य-रचना की थी। इस कुटुम्ब के काव्यानुराग का सा उदाहरण भारतवर्ष के किसी इतिहास में न दिखाई देगा। उनमें से प्रायः प्रत्येक की रचना उपलब्ध है। नामदेव की कविता अत्यन्त सरल और प्रेम रस से सनी हुई है। उनकी बानी भक्ति रस से सराबोर है। यह अत्यधिक मृदुल और बोधगम्य है। उनकी कविता का बड़ा प्रचार हुआ। इसी से प्रवर नाभा जी ने भी अपने भक्तमाल में उनका गुणगान किया है।

नामदेव ने जिस भागवत धर्म प्रचारक वारकरी पन्थ का प्रचार किया. उसमें ब्राह्मण, वैश्य आदि वर्णों का भेद-भाव नहीं माना जाता था। इसीसे उनके समकालीन सन्तों में सावता माली, नरहरी सुनार, श्यामा कसेरा, गोरा कुम्हार, बङ्गा तथा चोखा महार (भङ्गी) और भावरथ आदि कवियों ने जनपद भाषा में रचना करके भक्ति-मार्ग का यथेष्ट प्रचार किया। जिससे स्वधर्म-प्रेम जागरित हो उठा और तत्कालीन मुसलमान अपना रञ्चक-मात्र भी प्रभाव न प्रस्थापित कर सके।

तेरहवीं शताब्दि में महाराष्ट्र में राज्य-क्रान्ति हो गयी और स्वदेशी-शासन के बदले मुसलमानी शासन स्थापित हुआ। मराठी पर तत्कालीन भाषा फारसी का प्रभाव पड़ा। उस समय के भी बहिराम, भट्ट, नाभा, पाठक, महालिंग, दास चौंधा आदि छोटे-छोटे कवि पाये जाते हैं, पर मुसलमानों के आतङ्क के कारण लोगों को मातृ-भाषा में ग्रन्थ-रचना करने का अधिक अवसर नहीं मिला। यावनी अत्याचारों से भारतीय सभ्यता के नष्ट हो जाने के चिह्न दिखाई देने लगे। किन्तु पानी की गति को मर्यादित कर देने से वह जिस प्रकार फव्वारे के द्वारा वेग से ऊँचा उठता है, उसी तरह श्री नरसिंह सरस्वती, जनार्दन स्वामी तथा एकनाथ जी के द्वारा महाराष्ट्रियों का धर्मानुराग प्रगट हो गया। नरसिंह सरस्वती साधु पुरुष थे। वे महाराष्ट्र में स्वामी दत्तात्रय के अवतार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने बीजापुर के बादशाहों पर अपने योग-बल से प्रभाव स्थापित कर दिया था। जनार्दन स्वामी दौलताबाद के क़िलेदार थे। पर अपने साधुत्व के कारण वे बड़े प्रसिद्ध हैं। उनकी समाधि दौलताबाद के किले पर अब भी विद्यमान है। उनके शिष्यों में एकनाथ नामक एक महाकवि हो गये हैं। वे गृहस्थ थे; किन्तु महान् विद्वान तथा साधु थे। ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी' प्राचीन भाषा के कारण दुर्बोध हो गयी थी। उसका संशोधित संस्करण प्रचलित करने का श्रेय एकनाथ जी को है। एकनाथ जी का आदर्श आचरण सर्वत्र

प्रसारित हो गया था। समतो भाव, कवित्व तथा राष्ट्रोपकार की कसौटी पर कसने से ज्ञानेश्वर तथा समर्थ रामदास के अनन्तर उन्हीं का नाम आता है। उनके बहुत से ग्रन्थ, तथा स्फुट रचनाएँ पाई जाती हैं। उनमें से एकनाथीय-भागवत' का बड़ा महत्व है। गोस्वामी जी के लिए चित्रकूट के घाट पर—"तुलसीदास चन्दन घिसत तिलक करत रघुबीर" की उक्ति की नाईं एकनाथ जी के लिए भगवान कृष्ण के अपने हाथों चन्दन घिसने और कामरि से पानी भरने की दन्त-कथा प्रचलित है, उनके 'रामायण', 'रुक्मिणी स्वयम्वर', 'स्वात्म-सुख', 'आनन्द लहरी' 'अनुभवानन्द' आदि छोटे बड़े अनेक ग्रन्थ हैं। एकनाथ जी ने लिखा है—

'ज्ञानेश्वरी पाठीं जो वोवी करी ल मराठी
तेणे रत्न खचिता चिया तारीम्
जाण नरोटी ठेविली ॥

एकनाथ जी की रचना में अद्भुत चमत्कार है। उनका बहुजन मान्य तथा सर्वाङ्ग सुन्दर ग्रन्थ भागवत एकादश स्कन्ध की टीका ही है।

एकनाथ जी की मृत्यु शाके १५२१ फाल्गुण, कृष्णा षष्ठीको हुई थी। इनका समाधि-मन्दिर पठन में मौजूद है। जिसके व्यय के लिए निज़ाम की ओर से एक बड़ी जागीर लगी है।

एकनाथ के समकालीन जनी जनार्दन तथा दासो पन्थ नामक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। दासो पन्थ की असंख्य रचनाएँ पाई जाती हैं। उनके अकेले 'गीतार्ण' नामक ग्रन्थ में सवा-लाख पद हैं और अठारहवें अध्याय में १६००० ओवी छन्द हैं। प्रचण्ड रचना के देखते दासो-पन्थ की रचना गङ्गा नदी के प्रचण्ड जल प्रवाह का द्योतक है। बीस वर्ष तक केवल नीम के पत्ते और फल खाकर एक पहाड़ की गुफ़ा में बैठ कर दासो पन्थ ने अपनी रचना को जन्म दिया। उनके वाक्य-प्रवाह के उत्प्रेक्षादि अलङ्कार कल्लोल अत्यन्त मुग्धकारी हैं। उपनिषदों पर भी उनकी टीकाएँ उपलब्ध हैं।

एकनाथ के समकालीन विष्णुदास नामा ने मराठी में महाभारत का अनुवाद किया। भोज लिङ्ग मृत्युञ्जय स्वामी विट्ठल नन्दन कृष्णदास मुद्गल तथा विट्ठल नामक मराठी कवि भी हो गये हैं। पर एकनाथ के नाती (नवासा) मुक्तेश्वर महाकवि थे। उन्होंने अपने नाना के साहचर्य में भगवती वीणापाणि की आराधना की थी। मुक्तेश्वर की रचना अत्यन्त प्रौढ़ अलङ्कारमय तथा आह्लादकारक है। सृष्टि सौन्दर्य का वर्णन तथा मनोविकारों के चित्र अङ्कित करने में उन्होंने चमत्कार-पूर्ण सफलता प्राप्त की है। उनके जैसे महाकवि यत्र-तत्र ही दृष्टि-गोचर होते हैं। दुर्योधन ने जब द्रौपदी की विडम्बना करके उसे अङ्क पर बैठने का अनुरोध किया, उस समय का द्रौपदी का उत्तर मुक्तेश्वर जी के शब्दों में सुनिये। रौद्र तथा शृङ्गार रस का कैसा अनोखा युग्म चित्र है—

जे भीमा करी केलरली। गदा नोवरी सगुणाथिली।
वाग्निश्चयें तुज नेमिली। गोत्र घटित निर्धारें।
बोहलें योजिलें रण तलवट। आयुष्या वधीचा अन्तपाट।
हाते सारुनि बल वरिष्ट। लग्न लावील खड्ग-हस्तें।
रक्त हरिद्रा तनु लेपनी। माथा अक्षता पाय फिरणी।
स्त्रिया प्रलाप वाद्य ध्वनी। सुख सोहला भोगिसी

ने गद्य घेऊनि मांडियेवरी । रण मंचकीं निद्रा करी ।
प्राण पाखिले दवडूनि दुरी । मरा एकांती पहुडिजे ।

इन के लिखे हुए महाभारत के आरम्भिक पाँच पर्व तथा 'रामायण' 'रम्भा शुक संवाद' आदि छोटे छोटे अन्य ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। परन्तु महाराष्ट्र भाषा सुन्दरी का जो विलास मुक्तेश्वर के महाभारत में दिखाई देता है, वह न तो उनकी अन्य रचना में मिला और न मराठी के ही किसी अन्य कवि की रचना में दृष्टिगोचर हुआ। नवो रसों पर उनकी सकल रचना पढ़ कर पाठक तल्लीन हो जाते हैं। उन्होंने शकुन्तला के सौन्दर्य का क्या ही अनूठा वर्णन किया है।

कनक लतिका सौदामिनी । कीं चन्द्रकला तनु धारिणी ।
सुगन्ध केतकी पत्र वर्णी । सुगन्ध स्त्राणी हरिणाक्षी ॥

मुक्तेश्वर जी का समय शिवाजी के उदय काल का समय था। महाराष्ट्र के वीर रस का वह उषाकाल था। अतएव उन्होंने समयानुकूल उद्बोधन रूप में युद्ध, सैनिक, तय्यारी, दाँव-पेच, कुश्तियाँ आदि का भी अपनी रचनाओं में अनूठा वर्णन किया है। सोलहवीं शताब्दि में रमावल्लभ दास, शिव कल्याण, तथा वैद्यवर कोलिम्बराज,के अतिरिक्त तुकाराम सब से बड़े सन्त कवि हो गये हैं। वे जाति के शूद्र थे। किन्तु व्यापार वाणिज्य ही उनका मुख्य व्यवसाय था। उन्होंने सुलभ भाषा में 'अभङ्ग' नामक छन्द रचना की है। उनके अनुयायियों में सारे वर्णों के लोग, यहाँ तक कि यवन भी, थे। उनके श्रीमुख से धारा प्रवाह रूप से मराठी के अभङ्ग उद्भूत होते थे। धर्म का सत्य सुन्दर रूप सरल भाषा में प्रतिपादित करना ही उनका एक मात्र उद्देश था। उनकी रचना में विद्वत्ता पाण्डित्य आदि नहीं पाया जाता। उससे ज्ञात होती है केवल अन्तःकरण की लगन। उस समय चारों ओर मुसलमानों का प्रभाव था। लोग विदेशी आतङ्क से भय-कम्पित होकर स्वधर्म चर्चा से उदासीन होगये थे। अतएव भक्त प्रवर तुकारामजी का स्पष्ट रूप से स्वधर्म पर उपदेश देना ऐसे समय कम महत्व की बात नहीं थी। धर्म-प्रचारकों में तुकाराम जी का शीर्ष स्थान है। उनके अनुयायियों ने भी स्फुट रचना के द्वारा बहुत कुछ धर्म-जागृति उत्पन्न की। तुकाराम जी की शिष्या बहिना बाई की रचना भी अनूठी है। सेना बाई, शेख मुहम्मद, शेख सुलतान, शेख फरीद, रेणुका तेलिन आदि के मन पर तुकाराम आदि सन्तों के उपदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने भी मराठी में रचनाएँ की हैं।

राष्ट्र के शुभ दिनों के साथ-साथ कर्मवीर पुरुषों का भी प्राबल्य हो जाता है। मुक्तेश्वर जैसे कविकुल-गुरु तथा तुकाराम जैसे अलौकिक साधु के अनन्तर श्री समर्थ रामदास जी का अवतार इसी बात का परिचायक है। पतित एवं अकर्मण्य राष्ट्र को कर्मण्यता की पुकार सुनाने वाले रामदास जी जैसे सन्त विरले ही होते हैं। समर्थ ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर के स्वदेश, स्वभाषा तथा स्वधर्म की अभिवृद्धि के निमित्त अनवरत प्रयत्न किये। अब तक महाराष्ट्रीय सन्तों ने केवल निवृत्ति मार्ग का उपदेश दिया था। किन्तु रामदास निवृत्ति-

प्रसारित हो गया था। समता भाव, कवित्व तथा राष्ट्रोपकार की कसौटी पर कसने से ज्ञानेश्वर तथा समर्थ रामदास के अनन्तर उन्हीं का नाम आता है। उनके बहुत से ग्रन्थ, तथा स्फुट रचनाएँ पाई जाती हैं। उनमें से एकनाथीय-भागवत' का बड़ा महत्व है। गोस्वामी जी के लिए चित्रकूट के घाट पर—"तुलसीदास चन्दन घिसत तिलक करत रघुवीर" की उक्ति की नाईं एकनाथ जी के लिए भगवान कृष्ण के अपने हाथों चन्दन घिसने और कामरि से पानी भरने की दन्त-कथा प्रचलित है, उनके 'रामायण', 'रुक्मिणी स्वयम्वर', 'स्वात्म-सुख', 'आनन्द लहरी' 'अनुभवानन्द' आदि छोटे बड़े अनेक ग्रन्थ हैं। एकनाथ जी ने लिखा है—

'ज्ञानेश्वरी पाठीं जो वोवी करी ल मराठी
तेणे रत्न खचिता चिया तारीम्
जाण नरोटी ठेविली ॥

एकनाथ जी की रचना में अद्भुत चमत्कार है। उनका बहुजन मान्य तथा सर्वाङ्ग सुन्दर ग्रन्थ भागवत एकादश स्कन्ध की टीका ही है।

एकनाथ जी की मृत्यु शाके १५२१ फाल्गुण, कृष्णा षष्ठीको हुई थी। इनका समाधि-मन्दिर पठन में मौजूद है। जिसके व्यय के लिए निज़ाम की ओर से एक बड़ी जागीर लगी है।

एकनाथ के समकालीन जनी जनार्दन तथा दासो पन्थ नामक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। दासो पन्थ की असंख्य रचनाएँ पाई जाती हैं। उनके अकेले 'गीतार्ण' नामक ग्रन्थ में सवा-लाख पद हैं और अठारहवें अध्याय में १६००० ओवी छन्द हैं। प्रचण्ड रचना के देखते दासो-पन्थ की रचना गङ्गा नदी के प्रचण्ड जल प्रवाह का द्योतक है। बीस वर्ष तक केवल नीम के पत्ते और फल खाकर एक पहाड़ की गुफ़ा में बैठ कर दासो पन्थ ने अपनी रचना को जन्म दिया। उनके वाक्य-प्रवाह के उत्प्रेक्षादि अलङ्कार कल्लोल अत्यन्त मुग्धकारी है। उपनिषदों पर भी उनकी टीकाएँ उपलब्ध हैं।

एकनाथ के समकालीन विष्णुदास नामा ने मराठी में महाभारत का अनुवाद किया। भोज लिङ्ग मृत्युञ्जय स्वामी विट्ठल नन्दन कृष्णदास मुद्गल तथा विट्ठल नामक मराठी कवि भी हो गये हैं। पर एकनाथ के नाती (नवासा) मुक्तेश्वर महाकवि थे। उन्होंने अपने नाना के साहचर्य में भगवती वीणापाणि की आराधना की थी। मुक्तेश्वर की रचना अत्यन्त प्रौढ़, अलङ्कारमय तथा आह्लादकारक है। सृष्टि सौन्दर्य का वर्णन तथा मनोविकारों के चित्र अङ्कित करने में उन्होंने चमत्कार-पूर्ण सफलता प्राप्त की है। उनके जैसे महाकवि यत्र-तत्र ही दृष्टि-गोचर होते हैं। दुर्योधन ने जब द्रौपदी की विडम्बना करके उसे अङ्क पर बैठने का अनुरोध किया, उस समय का द्रौपदी का उत्तर मुक्तेश्वर जी के शब्दों में सुनिये। रौद्र तथा श्रृङ्गार रस का कैसा अनोखा युग्म चित्र है—

जे भीमा करी केलद्वली। गदा नोवरी सगुणाथिली।
वाग्निश्चयें तुज नेमिली। गोत्र घटित निर्धारें।
वोहलें योजिलें रण तलवट। आयुष्या वधीचा अन्तपाट।
हाते सारुनि वल वरिष्ट। लग्न लावील खड्ग-हस्तें।
रक्त हरिद्रा तनु लेपनी। माथा अक्षता पाय फिरी।
स्त्रिया प्रलाप वाद्य ध्वनी। सुख सोहला भोगिजे।

ते गदा घेवोनि मांडियेवरी। रण मंचकीं निद्रा करी।
प्राण पारिखे दवडूनि दुरी। मरा एकांती पहुडिजे।

इन के लिखे हुए महाभारत के आरम्भिक पाँच पर्व तथा 'रामायण' 'रम्भा शुक संवाद' आदि छोटे छोटे अन्य ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। परन्तु महाराष्ट्र भाषा सुन्दरी का जो विलास मुक्तेश्वर के महाभारत में दिखाई देता है, वह न तो उनकी अन्य रचना में मिला और न मराठी के ही किसी अन्य कवि की रचना में दृष्टि-गोचर हुआ। नवो रसों पर उनकी सकल रचना पढ़ कर पाठक तल्लीन हो जाते हैं। उन्होंने शकुन्तला के सौन्दर्य का क्या ही अनूठा वर्णन किया है।

कनक लतिका सौदामिनी। कीं चन्द्रकला तनु धारिणी।
सुगन्ध केतकी पत्र वर्णी। सुगन्ध खाणी हरिणाक्षी॥

मुक्तेश्वर जी का समय शिवाजी के उदय काल का समय था। महाराष्ट्र के वीर रस का वह उषाकाल था। अतएव उन्होंने समयानुकूल उद्बोधन रूप में युद्ध, सैनिक, तय्यारी, दाँव-पेच, कुश्तियाँ आदि का भी अपनी रचनाओं में अनूठा वर्णन किया है। सोलहवीं शताब्दि में रमावल्लभ दास, शिव कल्याण, तथा वैद्यवर लोलिम्बराज,के अतिरिक्त तुकाराम सब से बड़े सन्त कवि हो गये हैं। वे जाति के शूद्र थे। किन्तु व्यापार वाणिज्य ही उनका मुख्य व्यवसाय था। उन्होंने सुलभ भाषा में 'अभङ्ग' नामक छन्द रचना की है। उनके अनुयायियों में चारों वर्णों के लोग, यहाँ तक कि यवन भी, थे। उनके श्रीमुख से धारा प्रवाह रूप से मराठी के अभङ्ग उद्भूत होते थे। धर्म का सत्य सुन्दर रूप सरल भाषा में प्रतिपादित करना ही उनका एक मात्र उद्देश था। उनकी रचना में विद्वत्ता पाण्डित्य आदि नहीं पाया जाता। उससे ज्ञात होती है केवल अन्तः करण की लगन। उस समय चारों ओर मुसलमानों का प्रभाव था। लोग विदेशी आतङ्क से भय-कम्पित होकर स्वधर्म चर्चा से उदासीन होगये थे। अतएव भक्त प्रवर तुकारामजी का स्पष्ट रूप से स्वधर्म पर उपदेश देना ऐसे समय कम महत्व की बात नहीं थी। धर्म-प्रचारकों में तुकाराम जी का शीर्ष स्थान है। उनके अनुयायियों ने भी स्फुट रचना के द्वारा बहुत कुछ धर्म-जागृति उत्पन्न की। तुकाराम जी की शिष्या बहिना बाई की रचना भी अनूठी है। सेना बाई, शेख मुहम्मद, शेख सुलतान, शेख फरीद, रेणुका तेलिन आदि के मन पर तुकाराम आदि सन्तों के उपदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने भी मराठी में रचनाएँ की हैं।

राष्ट्र के शुभ दिनों के साथ-साथ कर्मवीर पुरुषों का भी प्राबल्य हो जाता है। मुक्तेश्वर जैसे कविकुल-गुरु तथा तुकाराम जैसे अलौकिक साधु के अनन्तर श्री समर्थ रामदास जी का अवतार इसी बात का परिचायक है। पतित एवं अकर्मण्य राष्ट्र को कर्मण्यता की पुकार सुनाने वाले रामदास जी जैसे सन्त बिरले ही होते हैं। समर्थ ने आजन्म ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन कर के स्वदेश, स्वभाषा तथा स्वधर्म की अभिवृद्धि के निमित्त अनवरत प्रयत्न किये। अब तक महाराष्ट्रीय सन्तों ने केवल निवृत्ति मार्ग का उपदेश दिया था। किन्तु छत्रपति शिवाजी-

कालीन महाराष्ट्र को उन्होंने प्रवृत्ति के पाठ पढ़ाये। उन्होंने लगभग ११०० मठ स्थापित किये। ज्ञाताओं, महन्तों तथा शिष्यों के द्वारा राष्ट्र-धर्म का प्रचार कराया। व्यायामशालाएँ स्थापित कीं और देश में कर्मवीरता का रव मचाया। छत्रपति शिवाजी की विजय-कामना के लिए वे भगवती की सेवा में प्रार्थना-निरत रहते थे। उनके उपदेशों में राजनैतिक सिद्धान्त कूट कूट कर भरा है। यथा—

इंशारती चे बोलतां नये। बोला याचे लिहूं नये।
लिहा वया चे सांगू नये। जवावी ने।
जो इस स्या वरी विश्वास ला। त्याचा कार्य भाग बुडाला
जो अपण ची कष्टत गेला तो ची भला
जो आपुले हित न करी तो आपुला आपण वैरी
येथें काही कोणा वरी दोष नाहीं
धर्मा साठी मरावे मरोनी ओध्यास मारावे
मारता मारता ध्यावे राज्य आपुले
मराठा ते तुका मिलवावा अवधा कल्लोल करावा
या साठीं करिता तकवा पूर्वज हाँसति

उन्होंने अपने इन उपदेशों के द्वारा जनता में जागृति प्रसारित करके अपने शिष्य प्रवर छत्रपति शिवाजी को स्वराज्य-स्थापना में बड़ी सहायता दी। महाराष्ट्र से यवनों का आधिपत्य नष्ट हो जाने पर उनके मुख से बरबस ये उद्गार निकल पड़े थे—

बुड़ाला ओर गया पापी म्लेच्छ संहार जाहला
कईं पक्ष घेतला देवे। आनन्द वन भूवनी।

श्री समर्थ के 'दासबोध' 'रामायण' आदि ग्रन्थ तथा स्फुट रचनाएँ बहुप्रचलित हैं। उनके सैकड़ों शिष्यों ने भी काव्य रचना की थी। समर्थ के बड़े भ्राता श्रेष्ठ अर्थात् गङ्गाधर-जी 'रामीरामदास' उपनाम से कविता करते थे। 'जयराम स्वामी' रङ्गनाथ स्वामी, आनन्द-मूर्ति केशव स्वामी तथा समर्थ रामदास ये पाँचों साधु मिलकर पञ्चायत कहलाते थे। उन सब की काव्य रचनाएँ भी पाई जाती हैं। समर्थ शिष्या वेणाबाई का 'सीता स्वयम्बर' ग्रन्थ अपूर्व है। तथा बयाबाई, अम्बाबाई आदि की ललित रचनाएँ भी मनः मुग्धकर हैं।

१६वीं शताब्दि के अन्त में वामन पण्डित नामक एक महाकवि हो गये हैं। वे अत्यन्त प्रतिभाशाली, बुद्धिमान, तथा संस्कृत और मराठी के उद्भट विद्वान थे। वेद विद्या तथा शास्त्र विद्या में उनका बड़ा अधिकार था। शाके १५६५ में उन्होंने 'निगमसार' नामक ग्रन्थ (मराठी) की रचना की। ज्ञानेश्वर जी की 'भावार्थ दीपिका' के अनन्तर वामन जी ने 'यथार्थ दीपिका' लिखी। वह रचना अनुष्टुप-छन्दों में है। उसका भाषा-नैपुण्य देखने योग्य है। शब्द-रचना की भाँति वर्णन-शैली भी अनूठी है। उनकी कविता-धेनु के मीठे गोरस में कभी भक्तिरस कभी वात्सल्य रस कभी करुण, शृङ्गार का तो कभी अद्भुत रस का अपूर्व संयोग दिखाई देता है। उसी में वेदान्त का मसाला डाल कर इस वृजवासी गोपाल के हलवाई ने बड़ी स्वादिष्ठ मिठाई बनाई है। गण-वृत्तात्मक रचना में वामन जैसी सफलता शायद ही अन्य किसी भाषा के कवि को प्राप्त हुई हो। वामन जी कृत राधाविलास-बालक्रीड़ा आदि स्फुट रचनाएँ भी पाई जाती हैं। इनकी मृत्यु शाके १६२७ में हुई। इन्हीं के समकालीन नागेश और विट्ठल नामक कवि हो गये हैं।

विट्ठल के कूट श्लोक प्रसिद्ध हैं। देवदास समर्थ रामदास जी के शिष्य थे। उन्होंने प्रचारक के नाते हिन्दू धर्म की बड़ी सेवा की। यावनी धर्म के दोष बतलाने और उन पर हिन्दू-धर्म का प्रभाव डालने में भी उन्होंने कमाल किया है। शिवराम, निरञ्जन, राघव आदि छोटे-छोटे कवि भी इसी समय हो गये हैं। इन्हीं के समकालीन मुकुन्द कवि ने समग्र भारतवर्ष में यात्रा की थी। उन्होंने उसका वर्णन तत्प्रान्तीय भाषा में ही किया है। जिससे वृज, निमाड़ी, अभीर, वाघलानी, खानदेशी, गुर्जरी, मारवाड़ी आदि भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार जान पड़ता है।

मराठों के राज-विस्तार के साथ उनकी भाषा का भी सुदूर दक्षिण तथा उत्तरी भारत में प्रचार हुआ। तञ्जौर में रामदासी मठ स्थापित हुआ। उस मठ के अनुयायियों ने भी मराठी में रचनाएँ कीं। उस प्रान्त में भीम-स्वामी, महाभारत के रचयिता, माधव रङ्गनाथ, अनन्त आनन्द तनय तथा रघुनाथ पण्डित नामक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। प्रौढ़ कवियों में रघुनाथ पण्डित शीर्षस्थानीय हैं। इनका 'नल दमयन्ती स्वयम्बर' प्राचीन मराठी काव्यों में उत्कृष्ट गिना जाता है। उसमें वर्णित मुग्ध शृङ्गार देखने ही योग्य है।

साहु छत्रपति के समकालीन कचेश्वर तथा निरञ्जन माधव प्रसिद्ध होगये हैं। निरञ्जन बाजीराव पेशवा के यहाँ नौकर थे। वे मराठी के अच्छे पण्डित थे। चरित्र, वेदान्त, ईश-भक्ति, छन्द शास्त्र, प्रवास-वर्णन आदि विविध विषयों पर इनकी विपुल रचनाएँ पाई जाती हैं।

कृष्ण दयार्णव तथा श्रीधर, इन दो कवियों ने मराठी में बड़ी ललित रचना की है। रुचिर और मधुर रचना में इनकी समता में हिन्दी कवियों में मतिराम ही हैं। कृष्ण-दयार्णवजी का 'हरिवद्री' तथा श्रीधरजी के 'हरिविजय', 'रामविजय', 'पाण्डव-प्रताप' तथा 'शिवलीलामृत' ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। श्रीधरजी ने महाराष्ट्र-समाज में मराठी भाषा का माधुर्य स्थिर रखने में अभिनन्दनीय कार्य किया है। इनकी मृत्यु शाके १६१५ में हुई।

महाराष्ट्र में नाथ पन्थ का भी बहुत दौड़-दौड़ा रहा है। ज्ञानेश्वर तुकाराम आदि प्रायः बड़े बड़े साधु नाथ-पन्थीय थे। उस पन्थ में उद्-बोधन नाथ, केसरीनाथ, शिवदिननाथ, नरहरि-नाथ आदि प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। शिवदिनजी का मठ पैठन में विद्यमान है। इस पन्थ के कवियों की रचनाएँ कबीर के निर्वाणी लटकों की भाँति होती थीं। ग्वालियर के महिपतिनाथ, ढोलीबुआ साधु नाथपन्थ के अन्तिम प्रतिभा-शाली कवि थे।

मध्व-मुनि, अमृतराय, जगन्नाथ आदि कवियों ने अपनी रचना से मराठी भाषा को समलंकृत किया है। विशेषतः अमृतरायजी की रचना बड़ी ललित है। उनकी मृत्यु शाके १६७५ में हुई।

तुम चिरञ्जीव कल्याण रहो।
हरि-कथा सुरस रस पियो।

हरि कीर्तन के साथी सज्जन।
बहुत बरस जियो।

इस रचना से प्रतीत होता है कि वे हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता थे। इन्हीं के सम-कालीन महिपति नामक एक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। जिन्होंने, हिन्दी कवि नाभाजी की भक्तमाल के आधार पर महाराष्ट्रीय सन्तों के विशेष विवेचन के साथ 'सन्त-लीलामृत' तथा 'भक्त-लीलामृत' 'भक्ति-विजय' नामक ग्रन्थों की रचना की। इनके लिखे हुए 'पाण्डुरङ्ग माहात्म्य' 'गणेशपुराण' आदि छोटे छोटे ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। इनकी मृत्यु शाके १७१२ में हुई। इन्हीं के सम-कालीन मोरोपंत उपनाम मयूर पण्डित नामक एक महा-पण्डित हो गये हैं। उनकी रचना भी पाण्डित्य-पूर्ण हैं। मराठी में वामन पण्डित तथा मयूर-पण्डित दोनों महान भाषाशास्त्री कहलाते हैं। प्रौढ़ तथा संस्कृत, प्रचुर भाषा, यमक अनु-प्रासालंकृत रचना में मयूर पण्डित ही श्रेष्ठ हैं। इन्होंने 'रामायण' 'महाभारत' 'केकावली' नामक मुख्य तथा 'कृष्ण-विजय' 'हरिश्चन्द्र-आख्यान' आदि छोटे छोटे ग्रन्थों की भी रचना की। आर्यावृत इनका मुख्य छन्द था। इनकी भी विपुल रचना उपलब्ध है। इन्होंने अनेक प्रकार से रामायण की रचना की है। दासोपंथ के अनन्तर मोरोपंतजी की ही विपुल रचना पाई जाती है। मोरोपंत की प्रौढ़ रचना के कारण मराठी का बहुत कुछ महत्व बढ़ा। शाके १७१६ में इनकी मृत्यु हुई। इनके समकालीन कवियों में अनन्त-तनय, ज्योतिपंत, महा-भागवत, हरि तथा काशी आदि ख्यातनाम कवि हो गये हैं। ज्योतिपंत कृत भागवत तथा काशी कवि की ललित रचना देखने योग्य है।

देश की सुजला-सुफला स्थिति तथा स्वराज्योपभोग के समय ही वीर तथा शृङ्गार की रचना शोभा देती है। छत्रपति शिवाजी के स्वराज्य स्थापित करते ही महाराष्ट्र में वीर रस उमड़ पड़ा। जिससे शिवाजी के समय से लेकर महाराष्ट्र राज्य के अन्त समय तक की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं तथा वीर पुरुषों के चरित्र पर फुटकर कवियों ने रचनाएँ कीं। उत्तर भारतीय भाट, चारणों की भाँति महाराष्ट्र की गोधली नामक जाति वीर गुण-गान करती है। वह शाहीर कहलाती है। वीर रस के साथ ही स्वराज्योपभोगी जनता का शृङ्गारिक रचनाओं द्वारा मन बहलाने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त था। शिवाजी कालीन अज्ञानदास तथा तुलसीदास शाहीर के सिंहगढ़ विजय तथा अफजल खाँ के पँवाड़े प्रख्यात हैं। यमाजी, कादर, शिवराम, रामा, रङ्गराय आदि पंवाड़ा रचयिताओं ने पानीपत का युद्ध, माधोराव पेशवा, नारायणराव पेशवा का वध, खरेड का युद्ध आदि विषयों पर पँवाड़े लिखे हैं। सुख और सम्पत्ति की उस समय महाराष्ट्र में कमी नहीं थी। एतदर्थ रङ्गरेलियों का उमड़ पड़ना सर्वथा स्वाभाविक ही था। वे शृङ्गार की रचनाएँ भी देखने ही योग्य हैं।

हिन्दी भाषा की भाँति मराठी के प्राचीन साहित्य में भी गद्य ग्रन्थों की बहुलता नहीं पाई जाती। सब से प्राचीन मराठी गद्य ग्रन्थ शाके ११६४ में लिखित महिधर व्यास, श्रीचक्र-

धर चरित्र तथा रुक्मिणी हरण के अन्तर्गत धवले नामक भाग है। केशवराव व्यास का सूत्र पाठ तथा भावे देवव्यास का उद्धरणपट भी तत्कालीन ही है। ज्योतिष, वैद्यक, जारण-मारण, आदि विषयों पर ज्ञानेश्वर के समय की भी रचनाएँ पाई जाती है। पर वैताल-पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, पञ्च तन्त्र आदि गद्य कथानक छोटे-छोटे बच्चों के पढ़ाने के लिए लिखे जाने की प्रथा महाराष्ट्र में बहुत दिनों से प्रचलित है। सन् १५६५ में तालकोट के युद्ध में विजयनगर का नाश हुआ। तत्सम्बन्धी एक वर्णनात्मक गद्य-ग्रन्थ मिला है। सन् १६१४ में (Father Stephen) फादर-स्टीफन नामक क्रिस्तान सज्जन ने खीष्ट-पुराण नामक पद्य-ग्रन्थ की रचना की। उसका आरम्भिक भाग भी गद्य में है। उसके अनन्तर 'छत्रपति शिवाजी', 'पानीपत का युद्ध' 'मराठी-साम्राज्य' आदि विषयों पर बहुत से गद्य-ग्रन्थ लिखे गये, जिन्हें मराठी में बखर कहते हैं। 'कृष्णाजी' 'अनन्त सभासद' 'शिवाजी की बखर' 'पानीपत की बखर' 'भाऊ साहब की बखर' तथा 'कृष्णाजी सोहिनी की पेशवाई की बखर' प्रसिद्ध है। मराठी स्वराज्य में प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषों के लिखे पत्रों की भाषा बड़ी प्रौढ़ एवं मराठी भाषा के गद्य का महत्व बतलाने वाली है।

पेशवाओं के राज्य के अन्तिम समय के कवियों में देवनाथ, उनके शिष्य दयालनाथ, गोपालनाथ, बहिरू,शाहमुनि नामक मुसलमान, भक्त कृष्णदास जयराम गोविन्द तथा रामचन्द्र ज्योतिषी आदि कवि हो गये हैं। उनमें देवनाथ-दयालनाथ तथ रामचन्द्र गणक की रचनाएँ प्रौढ़ एवं स्थाई महत्व की हैं।

—एक महाराष्ट्र

⊛ सन्दर्भ ग्रन्थ—

(१) महाराष्ट्र सारस्वत—भावे।
(२) मराठी भाषेची घटना—जोशी।
(३) मराठी भाषेचा अभ्यास—ह० ना० आपटे।
(४) मराठी वाङ्मय—ओक।
(५) मराठी गद्याचा इंग्रजी अवतार—पोतदार।
(६) अर्वाचीन मराठी वाङ्मय—दण्डवते।
(७) मराठी भाषेचा इतिहास—पावगी।
(८) महानुभाव वाङ्मय—देशपांडे।
(९) सन्तकवि काव्य सूची—चांदोरकर।

हरि कीर्तन के साथी सज्जन।
बहुत बरस जियो।

इस रचना से प्रतीत होता है कि वे हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता थे। इन्हीं के सम-कालीन महिपति नामक एक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। जिन्होंने, हिन्दी कवि नाभाजी की भक्तमाल के आधार पर महाराष्ट्रीय सन्तों के विशेष विवेचन के साथ 'सन्त-लीलामृत' तथा 'भक्त-लीलामृत' 'भक्ति-विजय' नामक ग्रन्थों की रचना की। इनके लिखे हुए 'पाण्डुरङ्ग माहात्म्य' 'गणेशपुराण' आदि छोटे छोटे ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। इनकी मृत्यु शाके १७१२ में हुई। इन्हीं के सम-कालीन मोरोपंत उपनाम मयूर पण्डित नामक एक महा-पण्डित हो गये हैं। उनकी रचना भी पाण्डित्य-पूर्ण है। मराठी में वामन पण्डित तथा मयूर-पण्डित दोनों महान भाषाशास्त्री कहलाते हैं। प्रौढ़ तथा संस्कृत, प्रचुर भाषा, यमक अनु-प्रासालंकृत रचना में मयूर पण्डित ही श्रेष्ठ हैं। इन्होंने 'रामायण' 'महाभारत' 'केकावली' नामक मुख्य तथा 'कृष्ण-विजय' 'हरिश्चन्द्र-आख्यान' आदि छोटे छोटे ग्रन्थों की भी रचना की। आर्यावृत इनका मुख्य छन्द था। इनकी भी विपुल रचना उपलब्ध है। इन्होंने अनेक प्रकार से रामायण की रचना की है। दासोपंथ के अनन्तर मोरोपंतजी की ही विपुल रचना पाई जाती है। मोरोपंत की प्रौढ़ रचना के कारण मराठी का बहुत कुछ महत्व बढ़ा। शाके १७१६ में इनकी मृत्यु हुई। इनके समकालीन कवियों में अनन्त-तनय, ज्योतिपंत, महा-भागवत, हरि तथा काशी आदि ख्यातनाम कवि हो गये हैं। ज्योतिपंत कृत भागवत तथा काशी कवि की ललित रचना देखने योग्य है।

देश की सुजला-सुफला स्थिति तथा स्वराज्योपभोग के समय ही वीर तथा शृङ्गार की रचना शोभा देती है। छत्रपति शिवाजी के स्वराज्य स्थापित करते ही महाराष्ट्र में वीर रस उमड़ पड़ा। जिससे शिवाजी के समय से लेकर महाराष्ट्र राज्य के अन्त समय तक की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं तथा वीर पुरुषों के चरित्र पर फुटकर कवियों ने रचनाएँ कीं। उत्तर भारतीय भाट, चारणों की भाँति महाराष्ट्र की गोधली नामक जाति वीर गुण-गान करती है। वह शाहीर कहलाती है। वीर रस के साथ ही स्वराज्योपभोगी जनता का शृङ्गारिक रचनाओं द्वारा मन बहलाने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त था। शिवाजी कालीन अज्ञानदास तथा तुलसीदास शाहीर के सिंहगढ़ विजय तथा अफजल खाँ के पँवाड़े प्रख्यात हैं। यमाजी, कादर, शिवराम, रामा, रङ्गराय आदि पंवाड़ा रचयिताओं ने पानीपत का युद्ध, माधोराव पेशवा, नारायणराव पेशवा का वध, खरेंड का युद्ध आदि विषयों पर पँवाड़े लिखे हैं। सुख और सम्पत्ति की उस समय महाराष्ट्र में कमी नहीं थी। एतदर्थ रङ्गरेलियों का उमड़ पड़ना सर्वथा स्वाभाविक ही था। वे शृङ्गार की रचनाएँ भी देखने ही योग्य हैं।

हिन्दी भाषा की भाँति मराठी के प्राचीन साहित्य में भी गद्य ग्रन्थों की बहुलता नहीं पाई जाती। सब से प्राचीन मराठी गद्य ग्रन्थ शाके ११६४ में लिखित महिधर व्यास, श्रीचक्र

धर चरित्र तथा रुक्मिणी हरण के अन्तर्गत धवले नामक भाग है। केशवराव व्यास का सूत्र पाठ तथा भावे देवव्यास का उद्धरणपट भी तत्कालीन ही है। ज्योतिष, वैद्यक, जारण-मारण, आदि विषयों पर ज्ञानेश्वर के समय की भी रचनाएँ पाई जाती है। पर वैताल-पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, पञ्च तन्त्र आदि गद्य कथानक छोटे-छोटे बच्चों के पढ़ाने के लिए लिखे जाने की प्रथा महाराष्ट्र में बहुत दिनों से प्रचलित है। सन् १५६५ में तालकोट युद्ध में विजयनगर का नाश हुआ। तत्स-म्बन्धी एक वर्णनात्मक गद्य-ग्रन्थ मिला है। सन् १६१४ में (Father Stephen) फादर-स्टीफन नामक क्रिस्तान सज्जन ने खीष्ट-पुराण नामक पद्य-ग्रन्थ की रचना की। उसका आर-म्भिक भाग भी गद्य में है। उसके अनन्तर छत्रपति शिवाजी', 'पानीपत का युद्ध' 'मराठी-साम्राज्य' आदि विषयों पर बहुत से गद्य-ग्रन्थ लिखे गये, जिन्हें मराठी में बखर कहते हैं। 'कृष्णाजी' 'अनन्त सभासद' 'शिवाजी की बखर' 'पानीपत की बखर' 'भाऊ साहब की बखर' तथा 'कृष्णाजी सोहिनी की पेशवाई की बखर' प्रसिद्ध है। मराठी स्वराज्य में प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषों के लिखे पत्रों की भाषा बड़ी प्रौढ़ एवं मराठी भाषा के गद्य का महत्व बतलाने वाली है।

पेशवाओं के राज्य के अन्तिम समय के कवियों में देवनाथ, उनके शिष्य दयालनाथ, गोपालनाथ, वहिरू,शाहमुनि नामक मुसलमान, भक्त कृष्णदास जयराम गोविन्द तथा रामचन्द्र ज्योतिषी आदि कवि हो गये हैं। उनमें देवनाथ-दयालनाथ तथ रामचन्द्र गणक की रचनाएँ प्रौढ़ एवं स्थाई महत्व की हैं।

—एक महाराष्ट्र

* सन्दर्भ ग्रन्थ—

(१) महाराष्ट्र सारस्वत—भावे।
(२) मराठी भाषेची घटना—जोशी।
(३) मराठी भाषेचा अभ्यास—ह० ना० आपटे।
(४) मराठी वाङ्मय—ओक।
(५) मराठी गद्याचा इंग्रजी अवतार—पोतदार।
(६) अर्वाचीन मराठी वाङ्मय—दण्डवते।
(७) मराठी भाषेचा इतिहास—पावगी।
(८) महानुभाव वाङ्मय—देशपांडे।
(९) सन्तकवि काव्य सूची—चांदोरकर।

महाराष्ट्रीय कवियों की शृंगारिक रचना
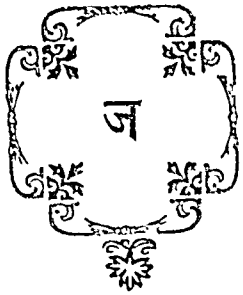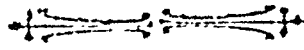
जब देश में किसी प्रकार की कोई चिन्ता न हो, सुख-समृद्धि छाई हो, अपना ही शासन हो और जनता ऐश्वर्यमय हो गयी हो, तभी वहाँ भोग-विलास, रागसाज, शृङ्गार, प्रसन्नता आदि की आवश्यकता होती है। तब वहाँ सरलता से उस स्थिति में ऐसे साधन जुट जाते हैं। और फिर उनकी आव-भगत भी खूब होती है। देश की इसके विपरीत स्थिति होने पर उसके पाशविकता एवं बर्बरता के पङ्क में फँसे रहने पर स्वभावतः उनमें शृङ्गार आदि सुखोपभोग की अभिरुचि नहीं होती। और वास्तव में सुखी एवं निश्चिन्त मनुष्य यदि शृङ्गारादि बातों में अपना समय न बितावे तो फिर और क्या करे? इस दृष्टि से यदि हम देव–मतिराम काल से लगा कर पद्माकर के समय तक के हिन्दी साहित्य संसार की ओर दृष्टि-निक्षेप करें तो विचित्र खिलवाड़ दिखाई देता है! देश में विदेशीय बर्बरता का आतङ्क छाया हुआ था और स्वदेशी राज्य आत्माभिमान को तिलाञ्जलि देकर सर्वस्व खो बैठे थे। पर उधर हमारे हिन्दी कवि पुङ्गव तथा उन्हींके आश्रयदाता प्रौढ़ा-नवोढ़ा, प्रोषित-पतिका और वासक सज्जा आदि के हाव-भाव और नेत्र-कटाक्षों पर ही 'आह! वाह!!' करने में मस्त थे। किन्तु वास्तव में वह 'वाह' स्वराज्य के ऐश्वर्य की दर्शक नहीं थी। वरन् देश काल परिस्थिति को न सोच कर अकर्मण्य बना देने की थी। देश दुखी है, लोगों को अपने भाग्य चमकाने का अवसर नहीं मिलता; रूखी रोटियाँ, फटे कपड़े और टूटी झोंपड़ियों से पाला पड़ा है। ऐसी स्थिति में यदि देश के कवि और उनके प्रशंसक नायका का भेद जानने में मस्त हैं तो फिर पूछना ही क्या है? कैसी अच्छी भाव-विडम्बना है!! किन्तु सच्चा शृङ्गार वही है कि अपने प्रेमीजन देश का मान बढ़ाने के लिए युद्ध-भूमि पर जा रहे हों, प्रेयसी विरह-वेदना से आकुल हो कर अपनी सहेलियों से उन्हें रुकवाने की याचना करे। सहेलियों का प्रयत्न व्यर्थ जाय और वह वीर अपनी प्रेयसी को समझाता हुआ भावी-ऐश्वर्य-विलास के चित्रपट के दर्शन करावे और उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए युद्ध-भूमि पर जाना ही परमावश्यक समझे! हिन्दी-कविता में ऐसे नायक और नायिकाएँ मिलने कठिन हैं। महाराष्ट्र स्वराज्योपभोगी था, उसकी भुजा में शत्रुओं को धर दबाने की शक्ति थी, अपने शत्रुओं पर आतङ्क जमाने में वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते था। युद्ध-भूमि पर प्रयाण करते समय एक प्रेमाकुल नायिका अपनी सखी से कहती है—

गाँवा जातो प्राण विसावा,

राहवा दोन गोष्टी सांगून ।
पसरा पदर मज साठीं गड्यांनो,
ध्या येवढें त्याला मागून ॥
हातिच्या हत्यारा शिवाया साठीं,
घेतुन आकारल्या ।
तङ्ग तोबरे रजामे जीन घर शृङ्गारल्या ॥

× × ×

पहिल्यानेंच कूच करुन साजणी
मुकामास जाती दुरल्या ।

अर्थात् अरी सखी, प्राणप्यारे परदेश जा रहे हैं इसलिए उन्हें समझा-बुझा कर रह जाने के लिए कह तो सही। हथियारों के कपड़े सिये जा रहे हैं, तंग, तोबरे, जीन आदि युद्धोय सामग्री की तैयारियाँ हो रही हैं। प्रियतम शीघ्र ही प्रयाण करके सुदूर देश में अवस्थान करेंगे इसीलिए तुम मेरी ओर से उन्हें समझाओ।

सखियों ने वकालत की, पर वह कर्मवीर कर्तव्यपथ से नहीं डिगा। उल्टे उसने अपनी प्रेयसी से कहा—

आस्त्री प्रलयंगता तुझीज बुध नाहीं कामाची।
आली धन्याची पत्रें आम्हाँला जलदी।
या लश्करची सुख साजणी नयेज सांगाया।
आहे धन्याची दया आहांपर कृपेची छाया॥
उठून ताजीम देती ठाव पंगतिचा जेवाया।
पोन्या खिजमतगार कोतवाल घोड़ा बसाया॥

× × ×

कर्नाकटच्या स्वारिस हो तो श्रीमन्ता बरोबर।
ढिगांतुन फटके अम्हीं सिपाई रणशूर॥
झाड़ी मध्यें पिटुन घातला हैदर।
पाहुन मनीं चटका। म्हणतित्याला हटका।
शिरपावद्या, द्याजरी पटका।
चवरी आवदागिरि बक्षिस कंठी मोत्याची।
आवदांची बोल एक पालखीची ॥आस्त्री०॥
पूर्णी पासुन चालत आला नदा वडिलांचा।
आणी वाणीच्या वेलीं विडा उचलिला पैजेचा॥
कटुन मरावे हा असा धर्म क्षत्रियांचा।
कसें 'रहा' म्हणतेस घरीं डाग लागेल जन्माचा॥

अर्थात् स्त्री की बुद्धि प्रलयकारिणी होती है। तेरी भी वैसी है। हमें तो स्वामी का पत्र आया है कि शीघ्र चले आओ। हमारी सेना का सुख तुझ से क्या कहा जाय? स्वामी की हम पर पूर्ण कृपा है। वे हमें ताजीम देते हैं और अपने साथ ही भोजन कराते हैं। सेवा के लिए नौकर और बैठने के लिए कोतल घोड़ा भी मिलता है।

कर्नाटक के युद्ध में मैं श्रीमान् के साथ था। युद्ध में खूब तलवार चलाई। बादल की बिजली की तरह हम रणवीर बांकुरों ने कड़क कर हैदरअली को भगा दिया था। हमारे पराक्रम को देख कर स्वामी दङ्ग रह गये और सिरोपाव, जरी पटका (झंडा), चौरी, छत्री तथा मोतियों की कण्ठी उपहार में दी। इस वर्ष तो पालकी देने का वचन दिया है।

हमारे पितृ पितामह पहले से ही अपनी बात रखते आये हैं। और उन्होंने कठिन अवसरों पर 'पान' ले कर प्रतिज्ञाएँ पूर्ण की थीं। कट कर मरना ही क्षत्रियों का परम धर्म है; अतएव घर पर रहने के लिए क्यों आग्रह करती हो और क्यों मेरे जीवन पर धब्बा लगाती हो?

वास्तव में मराठाशाही में शत, सहस्र वीरों ने उक्त प्रकार के उत्तर अपनी प्रेयसियों को दिये होंगे। उक्त रचना होनाजी नामक अहीर की है, जो नाना फड़नवीस तथा महादजी-सिन्धिया का समकालीन था। उस समय मराठों का स्वराज्य उन्नति की चरमसीमा तक पहुँच चुका था। बाला बहिरू नामक एक और कवि हो गया है। उसकी लावनी की नायिका अपने प्रेमी से कहती है—

पति नका जाऊं लश्करांत कीं झुरझुर मरेन।
कर जोडून विनयिते तुम्हांला शरण॥
ही शर नौतीची ज्वानी जाईल झुरून।
श्रीमन्ताची चाकरी हुजूरची धरून।
तुम्हि कां हो जाता मज परदेशी करून॥

अर्थात् हे पति, तुम फौज में क्यों कर जाते हो? मैं तो तुम्हारे विरह में तड़पती हुई मर जाऊँगी। हाथ जोड़ कर तुम्हारी शरण आयी हूँ। मेरा यौवन तो ऐसे ही चला जायेगा। मैं तो यौवन में मदमाती हो रही हूँ और तुमने सरकार की नौकरी करके मुझे परदेशी बनाना क्यों ठाना है?

मराठा राज्य में आठ मास तक लड़ाइयों और चढ़ाइयों में समय बिताना पड़ता था और वर्षा को ही अपने प्रेमीजनों के सुखद सहवास में बिताना पड़ता था। उन सुख के अल्प दिनों के निकल जाने पर फिर से फ़ौज के प्रयाण करने की बेला आती थी। उस समय विरहाकुला नवयौवनाओं का अपने प्रेमियों के प्रति उक्त प्रकार की समझाने-बुझाने की बातें कहना सर्वथा स्वाभाविक ही था। लावनी बाजों में "अनन्त-फंदी" नामक एक ब्राह्मण कवि भी प्रसिद्ध हो गये हैं। उन्होंने एक प्रेमदग्ध नायिका का बड़ा ही अच्छा चित्र खींचा है:—

म्यां म्हटलें हा चक रुपया दिसतो
माल खरा।
वाजून जों पाहा तों तों
यांत तांब्या चा भुरभुरा॥
म्यां म्हटलें हा ज़ुरा शिपाई
फाकड़ा खूब तन्हा।
झुंजाचें जेव्हां तोंड लागलें
पलतसें माघारा॥

अर्थात् प्रेयसी कहती है कि "मैं तो अपने प्रेमी को सच्चा रुपया जानती थी, किन्तु वह तो भीतर से ताँबे का ही निकला। वैसे तो वह मर्द—डटकर सामना करने वाला सिपाही दिखाई दिया, किन्तु लड़ाई छिड़ते ही भागकर खड़ा हो गया!" उस समय स्वराज्य, सेना, युद्ध, वैभव आदि बातों की ही चर्चा महाराष्ट्र में सुन पड़ती थी; अतएव मराठी लावनियों में वर्णित नायिका भी पूर्णतया राजसी ठाठ से युक्त होती थीं और उनके यौवन, अलङ्कार आदि के लिए स्वराज्य-वैभव दर्शक उपमाओं का ही उपयोग किया जाता था। एक अलबेला सिपाही किसी तरुणी पर मुग्ध हो गया और उसने उसके नखशिख की अधिक प्रशंसा कर डाली, यथा—

पायीं जोडवी खणाणी।
जसे घोडयाचे नाल वाजती
आवाज कानी दणाणी॥

महाराष्ट्रीय स्त्रियाँ पैरों की अँगुलियों—मध्यम और अनामिका में—चाँदी के वजनदार

छल्ले पहनती हैं। उनको 'जोड़दे' कहते हैं। भारी होने के कारण उनमें बिछुवों की सी कर्ण-मधुर ध्वनि नहीं होती। इससे उक्त पद्यांश में वह अलबेला प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहने लगा कि तेरे पैरों के छल्लों की ध्वनि मस्त घोड़े के नाल की तरह सुन पड़ती है। धन्य है स्वराज्य में रहने वाले कवि को! इसीसे उसे वैभव और स्वाभिमान-दर्शक उपमा ही सूझी। हाँ, बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दि के कवि तो अपनी प्रेयसी को पेरिस पोमेडम, इंग्लिश पाउडर तथा अमेरिकन एँड़ीदार जूते और ओछे लहँगों से मण्डितकर 'फोर्ड-कार' या एरोप्लेन में हनीभूत की ट्रिप कराये विना नहीं रहेंगे। बस, स्वराज्य और परराज्य के रहने-वालों में यही अन्तर होता है।

महाराष्ट्र के लावनीबाज़ों में राम जोशी अपने को 'कविराज' कहते थे और वास्तव में उनकी रचना उत्तान शृङ्गार पर होने पर भी बड़ी प्रौढ़ भाषा में लिखी गयी है। किन्तु, उनमें भी वही अनूठी स्वराज्यकी छटा दिखलाई देती है। एक विरहाकुल नायिका कर्तव्य-च्युत होने को तैयार थी कि इतने में उसकी सखी ने उसका हाथ पकड़ कर उसे रोक लिया और आशीर्वाद दिया कि आज तेरी रात्रि सुख से कटेगी।

उघडिलें नेत्र तों जासुद उथा द्वारांत।
धावरली पुसे हुजरांत।
कुणी कून आली हो काय सुखाचीमात,
स्वारी आली बयाजी कड़क।
बागांत उतरले भड़क।
हैं ऐकुनि झाली रंग सड़क।
हर्षानें भेटली सजणाला॥
झाली तरुण पणाजी धूल॥ टेक॥

सखी के आशीर्वाद से उसकी आँखें खुलीं। देखा तो एकाएक जासूस को द्वार पर खड़ा पाया। आतुर हो कर दौड़ पड़ी। पूँछा कि प्रभु की सेना (जिस में उसका प्रेमी था) कहाँ है? मेरा प्रेमी कहाँ से आया है? प्रसन्नता का संवाद शीघ्र सुनाओ। जासूस बोला,—'सवारी आ पहुँची है। गाँव के बाहर बाग़ में ठहरी है। वह सुन कर गर्व से उछल पड़ी और हर्ष-परिपूरित हो कर अपने सजन से मिली!

धन्य है, स्वराज्य के उन कवियों को, जिन्होंने शृङ्गार जैसे विषय में भी स्वदेशाभिमान की मात्रा को कूट-कूट कर भर दिया है। प्रायः प्रत्येक लावनीबाज़ों की रचना में स्वदेश-प्रेम, स्वदेशी हाव भाव तथा तत्कालीन स्वराज्य का ही यथार्थ चित्र अङ्कित किया हुआ पाया जाता है। विस्तार-भ्रम से हम तत्सम्बन्धी अधिक उदाहरण नहीं दे सकते। अस्तु—

अब हम शृङ्गार रस की एक प्रौढ़ रचना उधृत करते हैं। यह रामजोशी की है। राधाजी अपनी सखी से कहती हैं —

अंबर गत परि पयो धरातें,
रगडुनि पलतो दुरी।
काय हा धीट म्हणावा तरी॥१॥

सासु सासरा पतिया देखत,
अधरामृत माधुरी।
घेतसे काम वदावे तरी ॥२॥
पट विघटित कुचतटि ही वसन्ती,
हलुच मेड़नी उरीं।
शीतल-स्पर्श सुगन्धित करी ॥३॥
सुवर्ण पाहुनि तनुवरि वंचक,
रात्रीं शिरतो धरी।
हात टाकित से अंगावरी ॥४॥
सुन्दर रति जोगता मिलाला,
पति ही सुभगा खरी।
हुजीला असा मिलेल कायतरी ॥५॥
गुणवन्त कुचावर लोके अति शोभला।
तो कृष्ण काम ? नव्हें फलेना तुला ॥६॥
बाई अंग मर्दनी अति सुखकर वाटला।
तो कृष्ण काम ? नव्हे, कर दूतीचा भला ॥७॥
मज शीतल करितो श्रमी होउनी भला।
तो कृष्ण काम ? नव्हे, व्यजन सुवंशातला ॥८॥

यह तो हुई राधाजी की कथा। अब कृष्ण जी की विनय सुनिये—

कंठी लपटुनि सदा असाली सुभगा गुणशालिनी
वाटते पुष्पवती शोभिनी ॥१॥
अधर चुम्बुनी वंश संभवा लालस-मधुर ध्वनी।
असावी—मुखासि मुख लावुनी ॥२॥
सरलाती सद्वंशा गौरा अतिशय संभोगिनी।
येत से करी धरुनि जीवनी ॥३॥
नवखतानें मृदु करानें ती नव नव गुण रागिणी,
धराली हृदयीं कवटालुनी ॥४॥
विपरित आहे तनुपरि घेतां सुदशा सुख दायिनी।
लहानथी शामतनु हारिणी ॥५॥
वांकड़ी दिसो परि बहिरंतरि निर्मला ॥६॥
किति मंजुल वदती रसाल जीचा गला ॥७॥
जी चांगट वसती भरुन रसाचा तला ॥८॥
या परी हरी राधेला वर्णुनि पुसतां त्तण लोपवी।
चतुर हा यदुकुल पंकज रवी ॥
राधा सखि संवादे छेकापन्हुति आयका।
रसिक हो किती चतुर वायका ॥

कविता बहुत लम्बी है; अतएव हमने मुख्य मुख्य शिकायतों को ही यहाँ पर उद्धृत किया है। कविता के प्रत्येक चरण के पश्चात् सखी राधा से पूँछती है—'क्या नन्दकुमार कन्हैया ने तुम से छेड़छाड़ की है?' तो राधा वास्तविकता छिपा कर टेढ़े सीधे उत्तर देती है कि—"नहीं री वह अमुक वस्तु है।" यही स्थिति कृष्ण जी की भी हुई। कृष्ण जी की शिकायतें सुन कर उनके सखा पूछते हैं कि 'क्या वृषभानु सुता राधाजी को चाहते हो?' तो यही अन्ट-सन्ट उत्तर मिलता है कि,—'नहीं तो, मेरा काम अमुक वस्तु से है! भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुवादित कविकर विशाखदत्त कृत मुद्रा राक्षस के मङ्गलाचरण की नाईं—

कौन है शीश पै ? ....
यों गिरिजा छलि गङ्गछिपावत।
ईश हरो सब पीर तुम्हारी ॥

आदि रचना में कविवर रामजोशी ने कमाल कर दी। अस्तु, उक्त कविता का भावार्थ यह है—

आकाश से एकाएक प्रकट होकर (अकस्मात्) मेरे पयोधरों को छूकर भाग जाता है, वह तो बड़ा ढीठ है, (कृष्ण को छिपाने के लिए वह समीर (हवा) का सङ्केत करती है) ॥१॥

सास, ससुर और पति की उपस्थिति में मेरा अधरामृत पान करता है ? उसे क्या कहा जाय ? (राधा जी मधुकर को बतलाती हैं) २॥

अञ्चल हटा कर हृदय और कुचों को, धीरे से आकर वसन्त ऋतु की वायु की तरह, शीतल और सुगन्धित स्पर्श करता है (वह मलयागर को बतलाती है) ॥ ३ ॥

सुवर्ण (गोरेपन) को देख कर वह रात में घर में घुस कर मेरे शरीर पर हाथ मलता है। (वह दस्यु की ओर इङ्गित करती है) ॥ ४ ॥

वह सुन्दर रति सुख के योग्य पति सौभाग्यशालियों को ही मिलता है, औरों के भाग्य में वह कहाँ है (वह रति और कामदेव का निर्देश करती है) ॥ ५ ॥

वह गुणी कुच पर लेटता है, तब बड़ा शोभित होता है। क्या कृष्णजी ?—नहीं, मेरा तात्पर्य गले के हार से है ॥ ६ ॥

अङ्ग-मर्दन में वह अत्यन्त सुखदायक प्रतीत होता है। क्या कृष्णजी ?—नहीं री, दूती का कर ॥ ७ ॥

वह परिश्रम उठा कर मुझे शीतल करता है। क्या कृष्णजी ?–नहीं, बाँसुरी का सुर ॥८॥

अब कृष्ण जी की चालें देखिये—

इच्छा तो यह है कि उस गुणशालिनी को सदा गले से लिपटा रक्खें। क्या राधा को—नहीं, माला को ॥ १ ॥

अधर चूम कर मुख से मुख लगा कर बैठे रहने की इच्छा होती है। क्या राधा को—नहीं मुरली को ॥ २ ॥

वह सीधी, अच्छी और संयोग के योग्य है। क्या राधा—नहीं, लकड़ी ॥ ३ ॥

मृदु हाथों से हृदय को विलगा कर रक्खूँ ? क्या राधा को—नहीं, वीणा को ॥ ४ ॥

विपरीत होने पर भी वह छोटी सी श्यामतनु सुखदायक मालूम देती है ? क्या राधा जी—नहीं, कम्बली (कम्बल) ॥ ५ ॥

स्पष्ट रूप से टेढ़ी होने पर भी वह भीतर-बाहर निर्मल है। क्या राधाजी ?—नहीं, द्वितीया का चन्द्र ॥ ६ ॥

उसकी ध्वनि मधुर और मञ्जुल है। क्या राधाकी ?— नहीं, कोयल की ॥ ७ ॥

जो रस-सुगन्ध में लिपट कर बैठता है, क्या राधाजी ?—नहीं तो, मेरा उद्देश नाग से है ॥८॥

इस प्रकार वह चतुर कृष्ण राधा का वर्णन करके उसका पता नहीं देता। राधा जी भी अपनी सखी से छेकापन्हुति में बातचीत करके रसिकता और चतुरता का परिचय कराती हैं।

वास्तव में लावनीबाज़ जोशी जी की उक्त रचना अमर है। अस्तु।

मराठी कवियों के लावनियों के नायक भी ठेठ देशी हैं। वे तत्कालीन मराठों का सच्चा

चित्र खींचते हैं। मराठी अँगरखा पहिने, बाँकी तिरछी पगड़ी लगाये, काठियावाड़ी घोड़े पर चढ़े हुए, विजयोन्माद और स्वराज्य-वैभव में मस्त, केशर की गन्ध लगाये हुए वीर किसी भी रमणी को पुलकित और आनन्दित किये बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार अपने प्रेमियों के वीरता में मिले उपहारों से आनन्दित होकर, सजधज कर, ठेठ मराठी लिबास पहिने, वस्त्रालङ्कार से युक्त, कुलीनता और सौन्दर्य-शालिनी, यौवन-मद-मत्ता नायिका किसी भी रसिक का अन्तःकरण अपनी ओर खींचे बिना नहीं रहेगी। उन लावनीबाज़ों ने स्वराज्य का वैभव अपनी आँखों से देखा था। अतएव उनके विचार भी उसी ऐश्वर्य के प्रदर्शक हों तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

लावनीबाजों ने शिष्ट शृङ्गार के साथ ही उपदेशों पर रचनाएँ भी लिखी हैं। मराठी में अभद्र, अशिष्ट और अश्लील रचना भी विद्यमान है। महाराष्ट्र के अन्तिम सूत्रधार मूर्ख बाजीराव ने सर जान मालकम को अपने राज्य का सङ्कल्प करके—गङ्गाजी के किनारे—बिठूर में निवास किया। उसके १०—२० वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में शृङ्गार की खूब आव-भगत हुई। मराठे अपने बाप दादाओं के व्यवसाय मुल्कखोरी से हाथ धो बैठे थे। निठल्लेपन में लोग ऐहिक सुख को ही सर्वस्व समझने लगे थे। उस समय तुर्रा, कलगी के अखाड़ों की नाईं लावनीबाजों के अड्डे स्थान स्थान पर क़ायम होगये थे, तोता मैना के पींजरे लिये हुए, दो-चार रखेलियाँ, कुछ वेश्यायें आदि साज बाज लि[ये] लावनीबाज़ देश में चारों ओर चक्कर लगाते थे। बाजीराव उनका यथेष्ट सम्मान करता था औ[र] 'यथा राजा तथा प्रजा की नाईं' मराठा सरदा[र] धनीमानी और सर्व साधारण प्रजा भी उ[न] लावनीबाज़ों को पोशाक, पुरस्कार आदि देक[र] उन पर बलि जाती थी। उस 'घासलेटप[न]' का जो कुछ परिणाम हुआ, उसका पता अ[ब] भी प्रत्येक सहृदय महाराष्ट्रीय के अन्तःकरण [को] टटोलने से भली भाँति चल सकेगा।

—शङ्करराव
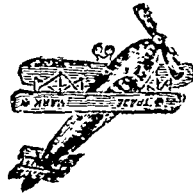
महाराष्ट्रीय पोवाड़े

अर्थात्

ऐतिहासिक गीत

किसी भाषा का साहित्य उस समाज तथा उसके रचनाकाल की दशा का दर्शक होता है। कौन कह सकता है कि नामदेव, तुकाराम, रामदास, सूर, तुलसी, चैतन्य, जयदेव, जगन्नाथ पण्डित आदि की रचनाएँ तत्कालीन परिस्थिति की परिचायक नहीं हैं? हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी भाट-चारण-काल, तथा शान्त-रस और श्रृङ्गार आदि की रचना के समय अलग-अलग विभाजित हैं। बात है भी ठीक, समाज को जैसी आवश्यकता होती है, अथवा यह कहिये कि जैसा समाज होता है, उसकी भाषा में स्वभावतः तदनुकूल ही रचना होती है। महाराष्ट्र में १२ वीं शताब्दि तक यादवकुल का वैभव-शाली राज्य था, अतएव उस समय भारतीय सभ्यता की तत्प्रदर्शक श्रेष्ठ रचनाओं का निर्माण हुआ। हेमाद्रिने 'चतुर्वर्ग' चिन्तामणि-वोमदेव ने 'श्रीमद्भागवत', भास्कराचार्य ने 'लीलावती', 'बीजगणित' आदि ग्रन्थ लिख कर अपने समय की बात रक्खी। यादवों का नाश होने पर मुसलमानों ने महाराष्ट्र में अपना अड्डा जमाया, तो नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, जनार्दन आदि सन्त कवियों ने विदेशी सत्ता के मुक़ाबिले में समाज को स्वधर्म पर आरूढ़ रखने के प्रत्यिर्थ शान्ति-रस की रचनाएँ कीं। देश की नाक रखने के लिए शिवाजी छत्रपति का अवतार हुआ, तो नवजीवन का सञ्चार करने के लिए कवि और साधु भी उद्बोधक वीर-रचना की ओर मुड़ पड़े। शिवाजी का स्वराज्य अंग्रेज़ों के अड्डा जमने तक—पूरे ढाई सौ वर्षों तक—क़ायम रहा। अतएव उस काल में महाराष्ट्र में देशवैभव-दर्शक रचनाएँ भी यथेष्ट हुईं, धार्माचार्यों ने धर्माचरण के लिए जनता को शान्ति-रस में गोते लगाने को तैयार किया तो अन्य कवियों ने देश की महान् विभूतियों के गुण गा गा कर उन्हें वीर-पूजा और गुणग्राहकता के पाठ पढ़ाये। और वास्तव में शान्ति-रस की भाँति मराठी का वीर-साहित्य भी अनूठा, अद्वितीय और अनुकरणीय है। भारत की कोई भी देश-भाषा उसका मुक़ाबला नहीं कर सकती। हिन्दी के १०-५ कवियों ने तो केवल अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज, राणाप्रताप, वीरवर छत्रसाल और छत्रपति शिवाजी की यथार्थ प्रशंसा की है, पर मराठी कवियों ने छोटे से छोटे वीर का भी गुणगान करके उसे अछूता नहीं छोड़ा। हाँ, हिन्दी कवियों की आत्म-विडम्बना का सा दृश्य अवश्य अन्य किसी

भाषा में नहीं दिखाई देता। कविवर सुन्दर जी तो—

साहि जहाँ बहु गुनिन को,
दीन्हे अगनित दान।
तिनमें सुन्दर सुकवि को,
कियो बहुत सनमान ॥
नग भूषन मनि सब दिये,
हय हाथी सिर पाइ।
प्रथम दियो कविराज पद,
बहुरि महाकवि राय ॥

इसी बात पर इतराकर कहने लगे कि—

साह बड़ो कवि सुख तनिक,
क्यों करि बरन्यो जाहि।
जिमि तारे सब गगन के,
मूठी में न समाहिं ॥

आत्म-वञ्चना का कैसा बीभत्स चित्र है! गूँगी गुणज्ञता की इयत्ता नहीं रही!! बेचारा क्या करे? रोटियाँ खिलाने वाले की डुग्गी बजानी ही चाहिये। उसे देश में कोई गुणी दिखाई ही नहीं दिया, और न उसमें किसी को गुणी बनाने या कल्पित वर-चित्र खींच कर औरों को स्फूर्ति दिलाने की ही प्रतिभा पाई गयी! दूसरा दृश्य और भी अद्भुत है। गुलामी के कीड़े जयसिंह और यशवन्तसिंह के शिवाजी को धर-दबाने के कार्य को भी चाटुकार हिन्दी कवियों ने खूब सराहा।

गुलामी में बुरी बातें भी अच्छी जँचती हैं। इसीसे हमारे साहित्यिक कवियोंने मुग़लों के स्थान पर राजपूतों को मराठों का शत्रु बतलाकर और मराठों की हार सुनाकर अपने पि पितामहों को सीधे स्वर्ग भेजने का मार्ग बतला दिया। अब स्वदेशाभिमानी वीर कवियों को देखिये। महाराष्ट्र में भी गुलामी के कीड़े—बड़े बड़े दिग्गज सरदार—विद्यमान थे। पर, उनके मुक़ाबले में सहृदय और भावुक मराठा कवियों ने एक नीच जाति के मावले स्वदेशाभिमानी वीर तानाजी का ही गुणगान करना योग्य समझा। उदयभानु मुग़लों की सेना के साथ सिंहगढ़ पर चढ़ आया। तानाजी अपने इकलौते पुत्र रायबा के विवाह की तैयारी में लगे हुए थे।

स्वयंवर झालाचें मांडिलें। काढल्या पंचमीच्या हळदी॥
काढलें षष्ठीचें लगिन। लगीन झालाचें मांडिलें॥
आली सिंहगडची कामगिरी। लगीन रायबाचें राहिलें॥
त्यानें उमराव बोलाविलें॥

अर्थात् प्रिय पुत्र का विवाह स्थिर हुआ। पञ्चमी को हल्दी लगाने और छठ को विवाह की तिथि निश्चित हुई। इतने में सिंहगढ़ का संवाद आया। शीघ्र ही विवाह स्थगित कर दिया गया और अपने साथियों को बुलौवा भेजा गया। अस्सी वर्ष का बुड्ढा शेलार मामा बोला—'तानाजी, जो लोग सिंहगढ़ को गये हैं, उनकी केवल पीठ ही दिखाई दी। फिर से उनके मुख नहीं देख पड़े। पर, तानाजी कर्मवीर था। उसका पुत्र रायबा भी आ पहुँचा। तानाजी ने उसे समझाया कि—

भिऊं नको माझे बेटा। तुझे येतो मी लग्नाला!
आधी लगिन सिंहगड़चे। मग करनी रायबाचें!

अर्थात् बेटा! डरो मत अभी तेरे विवाह के लिए आता हूँ, पहले सिंहगढ़ का विवाह कर लेने दे, फिर तेरा विवाह करूँगा। फिर तानाजी माता जीजाबाई के दर्शन को गये।

माताजी ने उसकी बलैयाँ लीं और आशीर्वाद दिया कि—

तानाजी सुभेदार। चढ़ता दौलतीचे राज्य येऊं दे तुला॥

अर्थात् तानाजी! तुम्हें बढ़ती हुई दौलत का राज्य मिले! तदनन्तर तानाजी छत्रपति के दर्शन के लिए गये और उनके चरणों पर मस्तक रख कर उन्होंने कहा—

आम्हीं जातो सिंह गडाला।
आमचा रायबा सांभाला॥
जर गेलो तिगडे मेलो।
लगीन करा रायबाचें॥
मजबापाजी सरदारी। धाली रायबा बेटयाला॥
दिवटी बुधली ची जाहागीर।
डोणज गांव धावा पान सुपारी ला॥
मालसु‍ऱ्याचा दराड धावा इनाम खायाला॥

अर्थात् मैं सिंहगढ़ को जा रहा हूँ। रायबा को आप सँभालिये। यदि मैं वहीं मर गया तो आप ही उसका विवाह करना, मेरी सरदारी रायबा बेटा को देना, उसे मशाल का सम्मान, पानखाने वो डोणजगांव और मालसुरा का हार खेती-बाड़ी के लिए दीजियेगा। यह कहकर सिंहगड़ पहुँचे और चट्टानों की दीवार पर चढ़ने के लिए गोह की कमर में लोहे की जञ्जीर बाँधी तथा गोह को चट्टान से चिपट कर बैठने के लिए भेजा। गोह आधे रास्ते पर चढ़ कर वापस आ गयी, तब तनक कर तानाजी बोले—

सत्तावीस किल्ले मी घेतले,
घोरपड कधी नाहीं मागें फिरली॥
मी आहे मराठ्याचा पोर,
नाहीं भिणार मरणाला॥
एक हात टाकीन, अठरा खांडोली पाडीन॥
शिलया भाकरी संगें खाईन॥

अर्थात् मैंने सत्ताईस क़िले जीते हैं, पर कभी गोह वापस नहीं लौटी। मैं मराठा बच्चा हूँ। मौत से कभी नहीं डरूँगा। एक झटके में गोह के अठारह टुकड़े करके बासी रोटी के साथ खा लूँगा। फिर तानाजी सिंहगढ़ पर चढ़ गये। घमासान युद्ध हुआ। मुग़ल-क़िलेदार उदयभान पठान मारा गया और क़िला जीता गया। किन्तु तानाजी भी मारे गये। उनकी मृत्यु से माता जीजाबाई और शिवाजी को बड़ा दुःख हुआ। शिवाजी स्वयं तानाजी के शव को पालकी में रख कर उनके गाँव ले गये। रायबा रोने लगा, तब—

शिवाजी राजानें। मुलगा पोटा संगें धरिला॥
भिऊं नको माझे बेटा।
शिवाजी महाराज तो मेला।
तानाजी सुभेदार आहे तुला॥

शिवाजी ने बालक को छाती से लगा कर कहा—बेटा! डरो मत, ऐसा समझो कि शिवाजी मर गया और तानाजी जीवित हैं! शिवाजी महाराज ने भी तानाजी का बारह दिवस तक सूतक माना और फिर रायबा का विवाह करके तानाजी की इच्छा के अनुसार रायबा पुत्र को सरदारी, जागीर आदि प्रदान किया। इस वीर गीत का रचयिता तुलसीदास था। उसने अन्त में कहा है कि शूर मनुष्यों की गाथा शूर मनुष्यों को ही सुननी चाहिये जिससे गाने वालों को पुण्य प्राप्ति होगी! अपूर्व स्वर्गीय भावनाओं का कैसा अच्छा सम्मिलन है? धन्य है शिवाजी

तानाजी को और धन्य है, उस वीर गाथा के रचयिता को। उस मराठी भाषा को भी धन्य है, जिसमें ऐसे अनूठे काव्य की रचना हुई। नामक एक और कवि हो गया है। जिसने 'अफ़ज़ल ख़ाँ के वध का पोवाड़ा' नामक एक अमर रचना लिखी है। यह रचना माता जीजाबाई और स्वयं शिवाजी महाराज ने भी सुनी थी और उस गायक को एक घोड़ा और सेर भर सोने का तोड़ा इनाम में दिया था। इस वीर-गीत में भी उदात्त भावनाओं का चित्र बड़ी सुन्दरता के साथ खींचा गया है। अफ़ज़ल खाँ का सन्देश सुन कर शिवाजी भी अपने मन्त्रियों की सलाह से उससे मिलने के लिए तैयार हो गये। उन्हें धोखे की आशङ्का थी; अतएव भविष्य के लिए योग्य प्रबन्ध करके ब्राह्मणों को दान दिया और काशी, गया आदि जाकर उत्तर क्रिया करने को कहा। माता जीजा- बाई विलाप करने लगीं तो मोह उत्पन्न हो जाने के

महाराजा यशवन्तराव होल्कर।

कहा जाता है कि तानाजी का पोवाड़ा उसी समय रचा गया था। तत्कालीन अज्ञानदास- भय से उन्हें पास न आने दिया। बख्तर और बघनखा पहना और कहा—

माझा राम राम दादानु। गुडया गुडकऱ्या बोलिला ॥
जतन भाईनु करा। राज्य होईल तुम्हांला ॥

अर्थात् 'भाई सिपाहियो! मेरा राम राम वीकार करो। भाइयो, राज्य की खूब रक्षा करो।'

माता जीजीबाई से न रहा गया, वह पालकी में बैठ कर दौड़ आयीं। उन्हें देख कर—

शिवबा बोले जिजाऊ सवें। वये वचन माझें ऐकावे ॥
माझी असोशी खानाला। वये जातो भेटायाला ॥
जिजाऊ बोले महाराजाला। शिवबा न जावे भेटायाला ॥
मुसलमान् बेइमान। खान राखिना तुम्हांला ॥
राजा बोले जिजाऊला। येवढी गोष्ट याते।
आज घावी भला। आई! अबदुलखान आला।
याने धाक लविला देवाला ॥

और फिर—

जिजाऊ बोले महाराजाला। शिवबा बुद्धीनें काम करावे।
जिजाऊ घेती अलाबला। शिवबा! चढती दौलत तुला ॥
घे यशाचा विडा। गळा घातली मिठी।
मातेच्या चरणासी लागला ॥

अर्थात् "शिवाजी ने माता से कहा, माता! मैं खाँ से मिलने जाता हूँ। माता ने कहा, बेटा, उससे मत मिलो। मुसलमान बड़े बेईमान होते हैं। वह तुम्हें मार डालेगा। शिवाजी ने कहा, इतनी बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी। अबदुलखाँ ने देवताओं पर भी आतङ्क जमा दिया है। तब माता ने आज्ञा दी और बुद्धिमत्ता से काम करने को कहा। बलैयाँ लीं और आशीर्वाद दिया कि तुझे बढ़ती हुई दौलत मिले। यश का बीड़ा लो। तब शिवाजी माता के गले लगे और चरणों पर प्रणाम करके विदा हुए।"

तदनन्तर उन्होंने बाघनख से, उसकी ओर से आक्रमण होते ही, उसका काम तमाम किया। इस वीर काव्य के रचयिता अज्ञानदास को भी शिवाजी ने घोड़ा और सेर भर सोने का तोड़ा इनाम दिया था।

छत्रपति शिवाजी के वीर सेनापति बाजी-पासलकर के लिए भी एक वीर गीत पाया जाता है। जो तत्कालीन रचना ही कही जाती है। महाराष्ट्र के इतिहास में धर्मवीर सम्भाजी का अमानुषिक वध, छत्रपति राजाराम का देश और अपूर्व स्वार्थत्याग, शाहूमहाराज का दिल्ली से छुटकारा, वीरवर बाजीराव-पेशवा के अनुपम कार्य आदि अनेक मङ्गल एवं स्फूर्तिदायक अवसर विद्यमान हैं। किन्तु दुर्भाग्य से तत्सम्बन्धी कोई पँवाड़े आज तक उपलब्ध नहीं हुए। एक बात और है। मराठी कवियों ने ऐतिहासिक वीर घटनाओं के अतिरिक्त युद्ध में पराजय आदि करुणाजनक विषयों पर भी पँवाड़े रचे हैं। पानीपत का युद्ध भी वैसा ही एक उद्वेगजनक प्रसङ्ग था। पानीपत के युद्ध सम्बन्धी तीन चार गीत पाये जाते हैं। उनमें वीर रस के अतिरिक्त करुणरस का भी बड़ा दुखित चित्र खींचा गया है।

भाऊ नाना तलवार धरून
गेले गिलचा वर चढ़ाई करून
शाण्णव कुली चे भूपाल सोर मान करी बरोबर
गिलचाची फौज आली चालून भाऊ वर
भाऊ हटेना लढ़णार तोही रणशूर
गगनी झांकले सूर्य चन्द मग पडला अन्धकार
नौ लाख बांगडी फुटली असा हाहाकार
दक्षिण बुडाली सती पड़ल्या महा शूर

अर्थात् सदाशिवराव भाऊ और विश्वास-राव नाना गिलची अफ़ग़ानों पर तलवार लेकर चढ़ धाये। छत्रो कुल के सरदार भी साथ थे। अफ़ग़ानों की सेना चढ़ कर आई। भाऊ रणशूर थे, अतएव वे पीछे न हटे। घोर युद्ध के कारण सूर्य-चन्द्र का लोप हो गया। चहुँ ओर अन्धकार छा गया। अन्त में नौ लाख चूड़ियाँ टूटीं। सर्वत्र हाहाकार छा गया। दक्षिण को बड़ा अपयश मिला और कई वीर रमणियाँ सती हुईं।

इस वीर गीत में सेना का कूच, घमासान युद्ध और छोटे छोटे सरदारों के वीर कार्यों का अनूठा वर्णन किया गया है। तीनों पोवाड़े अनूठे हैं। उस समय मराठा राज्य के सूत्र-धार बालाजी बाजीराव उपनाम नाना साहेब थे। उनकी मृत्यु का भी एक पोवाड़ा उपलब्ध है।

धन्य भगवाना नेलास मोती दाणा
दक्खन चा बादशाह साहेब नाना

पेशवाओं में माधवराव पेशवा बड़े प्रतापी हुए। अल्पावस्था में ही उनकी मृत्यु हो गयी थी। उनकी पत्नी माबाई सती हुई थीं। उनका तथा नारायणराव पेशवा के वध का भी पोवाड़ा उपलब्ध है।

महादजी सिन्धिया दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित करके बादशाह शाह आलम को अपने अधीन कर दलबल सहित पूना पहुँचे। होली का शुभ अवसर था। रङ्ग पञ्चमी को रङ्ग खेलने का उत्सव मनाया गया। उस समय की उपमा कवि ने द्वापर के श्रीकृष्णजी की होली से दी है।

मराठा साम्राज्य का वैभवसूर्य सन् १७९५ में मध्याह्न तक पहुँच चुका था। उस समय लाहौर से मैसूर और द्वारका से कलकत्ता तक एक मात्र मराठों की ही तूती बजती थी। मराठों के वैभव श्री का वही समय सर्वोच्च माना जाता है। उस समय के प्रबल मुसलमान शासक निजाम को मराठा कलङ्कित कर चुके थे। सात वर्ष तक निजाम ने वार्षिक कर देने में टालमटोल की और अन्त में अपने थोथे अभिमान से इतरा कर दरबार से मराठा वकील को निकाल बाहर किया।

बस युद्ध छिड़ने में क्या देर थी। दोनों दल खरडा नामक स्थान पर भिड़ पड़े। मराठों का वही अन्तिम विजय-श्री-पूर्ण युद्ध था। उसके अनन्तर उनको वैसे दिन दृष्टि-गोचर नहीं हुए। वह मराठों की उन्नति की चरम सीमा का समय था। अतएव मराठा कवियों ने खरडा के युद्ध पर अनेक रचनाएँ की। निजाम का सेनापति मशीरुल मुल्क हाथी से नीचे गिर पड़ा और जीवित बाँध कर पूना लाया गया। उस समय मराठों के आनन्द का ठिकाना न था। इसीसे इस विषय पर सबसे अधिक वीर काव्यों की रचना की गयी है। अन्तिम बाजीराव पेशवा को अंग्रेज़ों से हार मान कर राज-त्याग करना पड़ा था। तत्सम्बन्धी एक दो पोवाड़े पाये जाते हैं, कई मराठा सरदारों के वीरों का भी खासा गुणगान किया गया है। प्रसिद्ध राजनीति-

नेपुण नाना फड़नवीस विषयक पोवाड़े भी कवियों ने लिखे हैं।

खूब युक्ति ने राज्य राखले यशवन्त फड़नवीस नाना।

अर्थात् सदा विजयशाली नाना फड़नवीस ने बड़ी युक्ति से रक्षा की। यह विशेषण उनके लिए सर्वथा उपयुक्त है। अनन्त फुन्दी नामक एक कवि का नाना फड़नवीस विषयक हिन्दी पोवाड़ा भी उपलब्ध है।

महादजी सिन्धिया, अहिल्याबाई, मल्हारराव-होलकर आदि कई कर्मवीर मराठों के पोवाड़े भी तत्कालीन कवियों ने लिखे। मराठों के अन्तिम बांके वीर यशवन्तराव होलकर हुए जो प्रबल शत्रु से दब छिप कर युद्ध करने में अद्वितीय थे। उन्होंने लार्ड लेक जैसे व्यक्ति के छक्के छुटाये। उसका वर्णन इतिहासों में बहुत ही कम पाया जाता है। किन्तु मराठी कवियों ने अनेक रचनाएँ लिखकर उस प्रसङ्ग को अमर कर दिया। सौभाग्य की बात है कि कि तत्सम्बन्धी कुछ हिन्दी गति भी उपलब्ध है। यथा—

वाहवा जी यशवन्तराव बहादुर सवाई डङ्का बजा दिया।
मंदसौर से मारा फिरङ्गी जा जमना के पार किया॥

❀ ❀ ❀

महाराज को खबरा पहुंची जा बकरी में नाहर पड़ा।
गपागप जब भाले मारे फिरङ्गी का सिर फोड़ा॥

आया मीर ख़ाँ नवाब बहादुर सभी विडारा साथ किया।
लिख साहब ने छाती कूटी कलकत्ता लम्बा रहा॥

तथा—

जा जा कह दो अरे फिरङ्गी क्यों तेरी शामत आयी।
यशवन्तराव होलकर के मरते अङ्गरेजों की बन आयी॥

तथा—

होलकर मर्दाना उसे कौन कहे काना

मराठों के स्वराज्य में वीर रस का ख़ासा प्रचार था। क्योंकि जिन युद्धों के गीत गाये जाते थे उनमें वीरता के फलस्वरूप अपने पति को पुरस्कार मिलने के कारण उनकी स्त्रियाँ, पिता को प्राप्त हुई तलवार लटकाने वाला पुत्र, वीर पुत्र की वीर गाथा को सुन कर माता-पिता, तथा अपने पड़ोसी, सगे सम्बन्धी, भाई, मित्र आदि की गाथा सुन कर स्फूर्ति सम्वरण करने वाले मनुष्य गायकों पर इनाम पोशाक ज़ेवर आदि वस्तुएँ स्वयं न्यौछावर करने लग जाते थे और वास्तव में वे प्रसङ्ग भी वैसे ही उद्बोधक थे। इसी से महाराष्ट्र में वीर-गाथा गाने वाले व्यक्तियों को एक निराली जाति ही थी। जिनके वंशज अब भी यदा कदा महाराष्ट्र तथा उत्तरी भारत के मराठी राज्यों में वीर गीत गाकर अपनी गुजर बसर करते पाये जाते हैं। किन्तु 'अब तो न रहा बाँस न बजी बाँसुरी' की सी दशा है।

—मोरा जी देवा जी

मराठा-राज्य-संस्थापन में स्त्रियों का स्थान
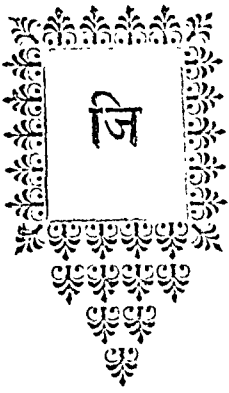
जिस घर में माता बुद्धिमती होती है, वह घर मनुष्यत्व और सभ्यता का महाविद्यालय है। घर में ही महत्वपूर्ण और अत्यन्त आवश्यक शिक्षाएँ मिलती हैं। अतः महान् पुरुषों को उत्पन्न करने के लिए हमें ऐसी माताओं की आवश्यकता है जो अपना पूरा समय कठिन कार्यों के सम्पादन में लगा सकें और जिनका दिल और दिमाग़ अच्छा और सुथरा हो।

—फेडरिक हेस्टन

मुग़ल-सम्राट् औरङ्गज़ेब का मान-मर्दन करने में, हिन्दुओं की मान-मर्यादा पुनः मण्डित करने में, महाराष्ट्र-देश में मराठा-राज्य संस्थापित करने में, वीरता-विस्मृत भारतीय वीरों में वीर-रस का पुनः प्रवाह बहाने में, दिल्लीश्वर की आन्तरिक इच्छा अधिक काल तक उनके मन ही में दबी रहने देने में, स्वनामधन्य, सुनीतिज्ञ, सुविज्ञ, स्वधर्म-परायण, स्वराज्य-संस्थापक, बहादुर-शिरोमणि, शिवाजी में सतत शक्ति-सञ्चार करने में किस शक्ति की सहायता थी? यह कोई आसुरी या मन्त्र-शक्ति न थी। यह तो साक्षात् शक्ति-स्वरूपिणी राज माता जीजाबाई थीं। जिनकी नीति-निपुणता ने, आदर्श आत्म-त्याग ने, अद्भुत आत्म-शक्ति ने, पुनीत पुत्र-प्रेम ने, सच्ची स्वातन्त्र्य-प्रियता ने स्वावलम्बी स्वभाव ने, प्रचुर परिश्रम ने, स्वराज्य-संस्थापन के सद्विचार ने, मराठा-राज्य के संस्थापन में छत्रपति शिवाजी महाराज की एक सच्चे सामन्त की तरह, आदर्श-आत्मीय की तरह, सफल शिक्षक की तरह, सुविज्ञ सद्गुरु की तरह, युयुत्सु योद्धा की तरह सदा सहायता की। शिवाजी की वह यावज्जीवन पथ-प्रदर्शक रहीं। शिवाजी कोई भी काम चाहे बुरा हो या भला, उनकी आज्ञा और अनुमति के बिना न करते थे।

राजमाता जीजाबाई इन दैवी गुणों से यदि सम्पन्न न होतीं तो कौन कह सकता है कि भारत में मराठा-राज्य की स्थापना हुई ही होती। मराठा-राज्य संस्थापन में मुख्य शक्ति तो जीजाबाई ही हैं। शिवाजी तो उनके साधन-मात्र थे। यह जीजाबाई का सत्परामर्श और उनकी प्रेरक-शक्ति की प्रबलता ही थी, जिसने मराठा-राज्य के स्थापित करने का सेहरा शिवाजी के सिर पर बँधवाया। कई बार ऐसे अवसर आये थे, जब शिवाजी महाराज अपने धार्मिक भाव की भावुकता में राज-पाट सब छोड़ जङ्गल में जा बैठे थे। संसार को असार और निस्सार कहने पर यह जीजाबाई ही थीं जो उनके बहके हुए विचारों को फिर सत्पथ पर लातीं और उन्हें अपने उद्देश-पूर्ति में पुनः प्रवृत्त करतीं।

मराठा-राज्य की स्थापना का मूल उद्देश्य और मुख्य हेतु हिन्दुओं की मुसलमानों के अत्याचार से रक्षा करना था, हिन्दुओं के वैभव और धन को उन्नत करना था, मुसलमानों को उनके अत्याचारों के लिए समुचित शिक्षा देनी थी, हिन्दुओं के अस्तित्व को मिटने से बचाना था। यही जीजाबाई के जीवन का उद्देश्य था। इसी के लिए मुसलमानों के प्रति इनकी द्वेषाग्नि सदा दहका करती थी; कारण इन्हीं मुसलमानों के कारण उन्हें अपने विगत जीवन में बहुत कष्ट उठाने पड़े थे, अनेक यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। पति-वियोग सहना पड़ा। पिता के प्रेम को तिरस्कृत करना पड़ा। यह सब सहने की सामर्थ्य उनमें थी। वे धीर-गम्भीर थी। यह उनकी नैतिक-शिक्षा और सच्चरित्रता का प्रभाव था।

जीजाबाई सिंदावड़े के देशमुख लुकजी यादवराव नाम के एक मराठा जागीरदार की कन्या और शाहजी की धर्म-पत्नी थीं। अहमदनगर के राजा बहादुरशाह की मृत्यु के बाद राज्य में बड़ी गड़बड़ी मची। शाहजी इसी राज्य में पहले नौकरी करते थे। इस समय यह मुग़ल-सम्राट् की नौकरी में थे; पर अहमदनगर के हाल सुन कर यह वहाँ चले आये। बहादुरशाह की बेगम ने राज्य का भार और बालक पुत्र का संरक्षण इन्हीं पर छोड़ा।

शाहजी के ससुर लुकजी भी अहमदनगर-राज्य में ही नौकर थे। वह अपने दामाद शाहजी के वैभव को सहन न कर सके। कारण, एक समय वह था, जब शाहजी उनके हाथ के नीचे काम करते थे और आज वह उसी राज्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान को सुशोभित करें। लुकजी ने दिल्लीश्वर से मिलकर अहमदनगर पर चढ़ाई करा दी। शाहजी को राज्य छोड़कर भागना पड़ा; क्योंकि शाहजी ने विचार किया कि सब झगड़ा उन्हीं के कारण हुआ है और यदि वही राज्य छोड़ देंगे, तो राज्य की अधिक हानि न होगी। बस उन्होंने बीजापुर की नौकरी स्वीकृत कर ली और सपरिवार अहमदनगर से चल दिये। उनके साथ उनकी स्त्री जीजाबाई भी थीं। आफ़त की मार कि वह उस समय गर्भवती थीं। उनको भी सबके साथ घोड़े पर दौड़ना पड़ा। शत्रु भी पीछा किये हुए थे। घोड़े तेज दौड़ाने पड़े। कई कोस निकल जाने के पश्चात् जीजाबाई के पेट में दर्द उठा। अब तो एक पग चलना भी असह्य हो उठा। ऐसी अवस्था में शाहजी उसे अपने मित्र जुन्नर के थानेदार श्रीनिवास राव की संरक्षता में शिवनेरी के क़िले में छोड़ आगे बढ़े। इन्होंने सोचा कि जीजाबाई के पिता लुकजी यादवराव पीछे आते हैं। लाख वह मेरे शत्रु हैं; पर वह अपनी पुत्री के साथ अवश्य अच्छा बर्ताव करेंगे। इससे भी उन्हें कुछ शान्ति थी। थोड़ी देर में लुकजी आ पहुँचे। उन्होंने जीजाबाई से भेंट की और चाहा कि उन्हें सिंहखेड़े या और कहीं जहाँ वह जाना चाहें, पहुँचा दें; पर पिता का सामना होते ही जीजाबाई ने व्यंग्य-पूर्ण शब्दों में कहा, 'अपने पति के बदले मैं आपके हाथ आयी हूँ। आपको जो दण्ड देना हो, दे दें।' लुकजी यादवराव ने स्नेह-पूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरा और

कहा कि जो होना था सो हो गया। तुम्हें जहाँ जाना हो, बताओ। वहीं तुम्हें पहुँचवा दें। इस पर स्वाभिमानिनी, पतिव्रता जीजाबाई ने कहा कि मेरे स्वामी मुझे जहाँ छोड़ गये हैं, वहीं मैं रहना चाहती हूँ। मुझे मैके नहीं जाना है। जीजा का यह निश्चय देख कर यादवराव उनकी रक्षा के लिए वहाँ थोड़े से आदमी छोड़ आगे बढ़ा। उन्होंने पति का अपमान करने वाले अपने पिता की छाया में रहना अपमान समझा। अतः अनेक कष्टों को झेल कर स्वाभिमान और अपने पति की सान की रक्षा ही उनके लिए जीवन-दान था। कहते हैं कि इसके पश्चात् वह कभी पिता के घर नहीं गयीं थीं।

देश-सेवा और धर्म में जीजाबाई की बड़ी भक्ति थी। पति ने अकेली छोड़ दिया था; पिता ने नज़र-क़ैद कर लिया था, अब उसके लिए कोई काम न था। उसने क़िले की अधिष्ठात्री देवी शिवाई माता की तन, मन और धन से आराधना करनी आरम्भ की।

सब कुछ चले जाने पर भी स्त्री का सन्तान-प्रेम कदापि कम नहीं होता। अब उसका ध्यान सदा गर्भस्थ बालक की ओर जाता। जीजा को सांसारिक सुख की रञ्चमात्र भी लालसा न थी। यदि इसके मनमें कोई लालसा थी, तो केवल एक। वह यह कि वह एक ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न करना चाहती थी, जो विलीनप्राय हिन्दू-धर्म और हिन्दू जाति की रक्षा करे और भारत की प्रतिष्ठा और गौरव को पुनः स्थापित और उन्नत करे। सदा यही इच्छा उसके मनमें बनी रहती। इसी कामना से वह सदा शिवाई देवी की अर्चना-वन्दना करती। शिवाई देवी की पूजा करके वह उनसे यही वर माँगती—

"माँ, मुझे किसी भी सांसारिक सुख की अभिलाषा नहीं है। मेरी यही प्रार्थना है कि यह गर्भस्थ बालक आपका हो। आपकी दया और प्रताप से यह बालक आपकी शक्ति लेकर संसार में आवे। इस पुत्र से मैं अपने लाभ की कोई आशा नहीं रखती। मेरी यही इच्छा है कि यह पुत्र आपका दास होकर रहे और आपकी सेवा करके मानव-जीवन को सार्थक करे। मैं नित्य जिस भक्ति से आपकी पूजा करती हूँ, वह भक्ति गर्भस्थ बालक के हृदय में सञ्चित हो, जिसके प्रभाव से भारत में धर्म-राज्य की स्थापना हो। मेरी और कोई कामना नहीं है न और कोई प्रार्थना ही। इसी एक लालसा से आपकी दासी नित्य आपके दरबार में पुकार करती है कि मेरी प्रार्थना सुनी जाय और दासी की इच्छा पूर्ण हो।"

"माँ, नारी-जीवन की सार्थकता इसीमें है कि वह ऐसा पुत्र उत्पन्न करे, जो देव तथा धर्म के गौरव की रक्षा करे। मैंने अनेक कठिनाइयाँ झेलीं, पर उनके लिए मैंने कभी आपसे प्रार्थना नहीं की। हे माँ, मुझे एक ऐसा पुत्र देकर मेरा नारी-जीवन सफल कर, जो आपकी शक्ति, आपकी महिमा जगत् में स्थापित कर सके।"

भारतवर्ष तथा पाश्चात्य देशों के सभी विद्वानों का यह मत है कि गर्भावस्था में माता की जैसी भावना, जैसे विचार और जैसी इच्छा

होती है, वैसे ही संस्कार पुत्र पर पड़ते हैं। जीजा को गर्भाधान हुआ, तभीसे युद्ध का कोलाहल मच रहा था, पर वीर-रमणी जीजा के मन में कभी किसी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं हुआ। उसके मन में उत्साह के अतिरिक्त और कोई भाव ही उत्पन्न नहीं होता था। युद्ध के पश्चात् उसने एकाग्र-चित्त से देव की अर्चना-वन्दना आरम्भ की। ऐसी अवस्था में पुत्र के मन में स्वाभाविक-रीति से वीरता और धार्मिक भाव प्रवल हों, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

ऐसी पुण्यमयी भावना और साधना के फल-स्वरूप जीजाबाई को १० एप्रिल, १६२७ ई० को शिवनेरी क़िले में दुर्लभ पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। शिवाई देवी की आराधना से पुत्र की उत्पत्ति होने से इसका नाम भी 'शिवाजी' पड़ा।

शिवाजी को देवी और देश तथा धर्म का पक्का और सच्चा सेवक तथा भक्त बनाने के लिए जीजाबाई ने कुछ भी न उठा रक्खा। अनेक आफ़त और सहस्रों कठिनाइयों के उपस्थित होने पर भी शिवाजी को महान् गुणों से विभूषित करने की और उसे योग्य शिक्षा देने की बात कभी न भूलती। शिवाजी में ज्ञानोदय होते ही उसने उनसे कहा—

"शिवा, शिवा भवानी की आराधना और उनके आशीर्वाद से तेरा जन्म हुआ है। मेरे सुख के लिए तेरा जन्म नहीं हुआ। न तेरे पिता के अथवा और किसी के सुख के लिए ही तेरा जन्म हुआ है। भवानी ने अपने कार्य के ही लिए तुझे उत्पन्न किया है। तू मेरा नहीं भवानी का पुत्र है, उन्हीं का धन है। उन्हीं का कार्य तेरे सिपुर्द करने के लिए उन्होंने तुझे मेरे यहाँ भेजा है। वही तेरी माँ हैं। वही तेरी इष्ट देवी हैं। उन्हीं के चरण-कमल में अपने प्राण और मन अर्पित करके, जिस मार्ग पर वह चलायें, निर्भय होकर उस पर चले जाना। वह तुझे शक्ति देंगी, तेरा भय दूर करेंगी, और विपत्तियों में तेरी रक्षा करेंगी। निर्द्वन्द्व होकर सब प्रकार से पुनः भारतवर्ष में नष्टप्राय देवी का धर्म-राज्य स्थापित कर। भारत के महावीरों और महापुरुषों के गुण, कीर्ति और महत्व को सदा याद रखना। उन्हीं की तरह फिर इस हतभाग्य भारत को गौरवान्वित करना। लक्ष्मण और अर्जुन की तरह वीरता, धर्म और प्रतिज्ञा में अटल रहना; राम और युधिष्ठिर की तरह धर्म-राज्य चलाना और प्रजा के कल्याण के लिए राज-धर्म का पालन करना। यही मेरी इच्छा है, यही मेरा आशीर्वाद है। मेरा यह उपदेश सदा याद रखना। इस धर्म और इस व्रत से अपना जीवन धन्य करना और मेरा 'माँ' नाम सार्थक करना।"

शिवाजी जब गर्भ में थे, तभी से जीजाबाई को यवनों द्वारा कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ीं और उनके कारण कितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं, ऐसी अवस्था में उनकी मनोवृत्ति कैसी होगी, उसका गर्भस्थ बालक पर कैसे संस्कार पड़ा होगा, इसकी विवेचना करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। इतना ही कहना बाकी है कि जीजाबाई का यवन-द्वेष दिनों-दिन बढ़ता जाता था और शिवाजी के हृदय में भी यवनों के प्रति घृणा

और तिरस्कार उत्तरोत्तर बढ़ता और विकसित होता जाता था। ऐसा होने में कोई आश्चर्य नहीं है। उस पर स्वाभिमानिनी, महत्वाकांक्षिणी, बुद्धिमती और निरन्तर पुत्र को इस सम्बन्ध की शिक्षा देने वाली माता का साथ। ऐसी अवस्था में शिवाजी का यवन-द्वेषी होना आवश्यक ही नहीं, वरन अनिवार्य था।

जीजाबाई का पितृ-वंश तथा ससुर-वंश दोनों एक समय राज-वैभव भोगता था। यवनों के विश्वासघात और नीचता से दोनों वंशों को अपने वैभव से हाथ धोना पड़ा था। फिर जीजाबाई कब शान्त रह सकती थीं। वह सदा शिवाजी को पूर्व वैभव और पूर्वजों के पराक्रम की बातें सुना-सुना कर वैसा ही पराक्रम करने और उससे कहीं बढ़ कर वैभवशाली होने की शिक्षा देती थीं। जीजाबाई की धार्मिक भावना बड़ी प्रबल थी। वह सदा धार्मिक ग्रन्थों को पढ़तीं। शिवाजी को बाल्यावस्था से ही कथा सुनने का चाव लगा था। राम-रावण, कौरव-पाण्डवों के युद्ध-प्रसङ्ग सुनते ही उनके शरीर में खून दौड़ जाता। अपने पूर्वजों के पराक्रम सुनते-सुनते उनके मन में भी वैसा ही होने की महेच्छा उत्पन्न, विकसित और दृढ़ होती गयी।

जीजाबाई का स्वभाव बड़ा धीर, गम्भीर और स्वाभिमानी था। शिवाजी में भी ये गुण पूर्णतः अवतरित हुए थे। कुसङ्गति, ऐश और आराम से बचाकर शिवाजी को उत्तम आचरण वाला बनाने के लिए जीजाबाई बराबर यत्न करती थीं। जीजाबाई की सुशिक्षा से ही शिवाजी में साहस, वीरता, धीरता, सदाचार, प्रीति, स्वधर्म-निष्ठा आदि सद्गुणों का यथेष्ट विकास हुआ था। इन सब गुणों के कारण शिवाजी में एक नया गुण उत्पन्न हुआ और उसी ने शिवाजी को संसार के इतिहास में अमर बना दिया। यह गुण और कोई नहीं, उनका 'स्वातन्त्र्य-प्रेम' था।

आगे चलकर शिवाजी की शिक्षा का भार शाहजी के विश्वस्त नौकर दादा जी कोंडदेव पर पड़ा। उन्हों ने भी जीजाबाई की शैली पर ही शिक्षा देना आरम्भ किया। अब शिवाजी में धर्म की श्रद्धा बढ़ी। धर्म की रक्षा के लिए वीरता और दृढ़ता की भी मात्रा बढ़ने लगी। जीजाबाई की अभिलाषा पूर्ण होने के चिन्ह भी दृग्गोचर होने लगे।

सांसारिक सुख-भोग में जीजाबाई की आसक्ति न थी। जिस महान व्रत के लिए उन्होंने पुत्र को दीक्षित किया था, उसी के पालन में पुत्र की सहायता करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। पति-सेवा यद्यपि संसार में स्त्रियों के लिए सर्व श्रेष्ठ धर्म है, पर जीजाबाई ने मातृ-धर्म अधिक आवश्यक समझा। वह यह जानती थीं कि शाहजी के साथ उनकी सुपुत्री तुकाबाई थीं और इस कारण वह उधर से निश्चिन्त थीं।

शिवाजी की बीस वर्ष की अवस्था में दादाजी कोंडदेव की मृत्यु हो गयी। मरते समय वह शिवाजी से कह गये थे कि शिवाजी, किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। तुम्हारी मातुश्री जीती हैं। इनको घर के काम में, धर्म के काम में और राज काज में ईश्वर की तरह मानना। इनके आशीर्वाद से और देवी भवानी की कृपा

से तुम्हारा कभी अशुभ नहीं होगा।

दादा जी की मृत्यु के पश्चात् शिवाजी को कर्त्तव्य-ज्ञान कराने का भार फिर जीजाबाई पर पड़ा। शिवाजी अपनी माँ पर इतनी श्रद्धा रखते थे और उनकी इतनी भक्ति करते थे कि राज्य स्थापित करने की तैयारी के दिन से लेकर राज्य-संस्थापित हो जाने तक, जितने दिन जीजाबाई जीवित रहीं, शिवाजी प्रत्येक काम में उनकी सलाह लेते और उनकी अनुमति से काम करते थे।

शिवाजी की अनुपस्थिति में, जब वह चढ़ाई पर जाते अथवा और किसी काम से जाते तो जीजाबाई ही राज्य का सब काम देखतीं और उसका प्रबन्ध करतीं थीं।

शिवाजी ने शक्ति का सञ्चय कर लिया। बीजापुर के राज्य के कल्याण और कोकण प्रान्त अपने कब्जे में कर लिये। सुलतान यह देखकर घबड़ाया और शाहजी को, जो उसके यहाँ नौकर थे, बुला कर कहा कि शिवाजी की बाढ़ को रोको। शाहजी ने कहा कि शिवाजी स्वतन्त्र है। मेरी भी सब जायदाद इसी के हाथ में है। अब वह मेरे कहने में नहीं है। ठीक भी था, पर सुलतान को इस पर विश्वास नहीं हुआ। उसने शाहजी को क़ैद किया और ढिंढोरा पिटवाया कि यदि शिवाजी जीती हुई जागीर शीघ्र नहीं लौटायेगा, तो शाहजी अन्न-जल विना क़ैद में ही सड़ा-सड़ा कर मार डाले जायेंगे। यह समाचार सुनकर शिवाजी बड़े धर्म-सङ्कट में पड़े। एक ओर पिता की दुर्दशा और दूसरी ओर हिन्दू-राज्य संस्थापन को जीवनोद्देश्य का त्याग। कोई उपाय न सूझा। जीजाबाई यह समाचार सुन कर घबड़ा जायेंगी, इससे इस सम्बन्ध में माता की सम्मति न लेकर शिवाजी ने अपनी स्त्री की सलाह ली।

शिवाजी की स्त्री भी कोई साधारण स्त्री न थीं। वह भी सब प्रकार से इस महापुरुष की धर्मपत्नी होने के योग्य थीं। उन्होंने कहा—

"किसी न किसी तरह आपको पिताजी की रक्षा अवश्य करनी चाहिये, पर साथ ही यह भी ध्यान रहे कि हिन्दू-धर्म और हिन्दू-राज्य की पुनः स्थापना पर, आपके जीवन-व्रत पर किसी प्रकार की आँच न आने पावे। यदि विषय-भोग के लिए आपने राज्य जीता होता, तो मैं यही कहती कि तुरन्त राज्य लौटाकर ससुरजी को छुड़ा लीजिये, पर बात तो यह नहीं है। यह राज्य अपने लिए तो जीता नहीं है। यह तो देवता, गौ, ब्राह्मण और धर्म की रक्षा के लिए जीता गया है। सगे सम्बन्धी की रक्षा करना भी एक मुख्य कर्त्तव्य है, पर धर्म के पीछे उसकी कोई हस्ती नहीं। बड़े और पूज्यों के लिए राज्य-त्याग करने का आपको कोई अधिकार नहीं है। अधिक क्या कहूँ। साम, दाम, दण्ड, भेद किसी न किसी तरह छल-कपट से पिता जी का उद्धार कीजिये। भय की कोई आवश्यकता नहीं है। माता भवानी आपकी सहायता करेंगी। आपके हाथ में इन्होंने अपना धर्म राज्य सौंपा है। इस विपत्ति के समय भी यही आपकी रक्षा करेंगी।"

यह है एक वीराङ्गना और धर्म-परायणा धर्म-पत्नी की सच्ची सम्मति। जीजाबाई

को भी यह समाचार मिला और उसने भी इसी सम्मति का अनुमोदन किया। शिवाजी भी कूटनीति से पिता का उद्धार करने में सफल हुए। उन्होंने पिता का उद्धार कैसे किया, यह इतिहास-प्रेमियों से छिपा नहीं है।

जब अफ़ज़ल ख़ाँ ने शिवाजी के राज्य पर चढ़ाई की थी और मार्ग में अनेक देव-मन्दिर धराशायी किये थे, उस समय शिवाजी उसका मुक़ाबला करने चले। प्रस्थान के पूर्व वह जीजाबाई से आशीर्वाद लेने आये थे। जीजाबाई उनको किन शब्दों में आशीर्वाद देती हैं और किस प्रकार उत्साहित करती हैं—

"जा बेटा, तू भवानी का पुत्र है। भवानी की चरण-सेवा की मैंने दीक्षा ली है। भवानी की इच्छा और आशीर्वाद से हिन्दू-देवता और हिन्दू-धर्म की रक्षा करने की तूने प्रतिज्ञा की है। तेरे सामने तेरे शत्रुओं ने भवानी देवी और हिन्दू-धर्म का इतना अपमान किया है। यदि तू बदला न ले सकेगा और देवता तथा धर्म की पुनः स्थापना और प्रतिष्ठा नहीं कर सकेगा, तो धिक्कार है मेरी साधना और तेरी प्रतिज्ञा को। तेरी शिक्षा-दीक्षा सब वृथा है। और तेरा राजधर्म भी वृथा है। जा, शिवा, भवानी का सेवक है, तो जा, और जी खोल कर लड़! अपना रक्त देकर, सर्वस्व त्याग कर भवानी की मान-मर्यादा रखने के लिए तैयार होगा, तो भवानी के आशीर्वाद से इस धर्म-युद्ध में अवश्य तेरी विजय होगी। जा वीर, रक्त में रँग कर नाचता-नाचता जा। दानवों का दमन करने वाली और त्रैलोक्य को त्रास देने वाली भवानी की शक्ति तेरे और तेरे साथियों के शस्त्रों में सञ्चारित होगी।"

इस विदाई का एक-एक शब्द कायर को भी दुर्द्धर्ष योद्धा बनाने वाला है। फिर वीर-शिरोमणि शिवाजी की तो बात ही क्या!

शाहजी की मृत्यु के पश्चात् जीजा बाई सती होने चलीं। जिस शक्ति के प्रभाव से शिवाजी ने इतना महत्व प्राप्त किया था, इतनी लड़ाइयाँ लड़ी थीं, इतनी सफलता प्राप्त की थी, यदि वही शक्ति उन्हें मझधार में छोड़ कर चली जाय, तो मुग़लों के प्रबल आक्रमणों के सामने किसके आधार पर शिवाजी टिक सकते? यदि वह सती हो जायेंगी, तो इतने दिनों की कठिन तपश्चर्या, जब पूरी होने आई, उसका फल कौन देखेगा? अपने व्रत को पूर्णाहुति किये बिना सती हो जाना कहाँ तक उचित है? आदि बातें जब जीजा बाई को शिवाजी ने और अन्य लोगों ने समझाई, तो उन्होंने सती होने का विचार छोड़ दिया और जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी विधवा की भाँति रह कर पुत्र के वीर-धर्म और राज-धर्म में सहायता देना निश्चित किया।

शिवाजी जब औरङ्गज़ेब से मिलने दिल्ली गये थे, उस समय उनकी अनुपस्थिति में राज्य का सब काम राजमाता जीजा बाई के सिपुर्द हुआ था। कितने विशाल और प्रवीण कर्मचारी उनके हाथ के नीचे काम करते थे।

दिल्ली में शिवाजी के क़ैद होने का समाचार सुन कर मराठा स्तम्भित हो गये। जीजा-बाई ने भी भवानी की आराधना की।—"माँ, शिवाजी अपने धर्म-राज्य का प्रबन्ध मेरे हाथ

में छोड़ गया है। मुझे शक्ति दो कि मैं इनकी राज्य-शक्ति सुरक्षित रख सकूँ, आपकी कृपा से जब शिवाजी लौटे, तो यह देख सके कि उसके ऊपर आफ़त आ पड़ने से उसके राज्य को कोई आँच नहीं लगने पाई।"

इस आराधना से जीजा बाई के हृदय में एक दैवी-शक्ति का सञ्चार हुआ। धैर्य और शान्ति मिली। उसने राज्य के सब अमलदारों को बुला कर उन्हें उत्साहित किया। उनका भय दूर किया। शिवाजी की अनुपस्थिति के कारण राज्य का कुछ भी अनिष्ट न हो, इसका पूरा प्रबन्ध किया।

दिल्ली से छूट आने पर शिवाजी बड़ी तेजी से नये-नये किले जीत कर अपना राज्य बढ़ाने लगे। अब तक इनका राज्याभिषेक नहीं हुआ था। अब इनका विधि के अनुसार राज्याभिषेक हुआ। जीजा बाई के जीवन की लालसा पूरी हुई।

एक बार तुकाराम के भजन-कीर्तन और धर्मोपदेश से शिवाजी को संन्यास से ऐसा वैराग्य उत्पन्न हो गया कि वहाँ से वह घर न लौट कर वन में जा कर धर्म-चिन्तन करने लगे। जीजाबाई ने जब यह सुना तो वह तुकाराम की कुटीर में जाकर बोलीं—"महाराज, आपने यह क्या किया? केवल संन्यास ही मनुष्य-जीवन का एक मात्र व्रत नहीं है। भगवान् भी यह नहीं चाहते। संसार की रक्षा के लिए राज्य-धर्म का विधान भी परमेश्वर ने किया है। उसी परमेश्वर की आज्ञा से हिन्दू-देवताओं और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए शिवाजी ने राज-धर्म स्वीकार किया है। राज्य-सञ्चालन के लिए ही भगवान् ने इन्हें शक्ति, प्रवृत्ति और दीक्षा दी है। आज इन्हें राज-धर्म से भ्रष्ट करके, संन्यास में प्रवृत्त करके क्या आप भगवान् की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं कर रहे हैं? आपके इस कृत्य से यदि हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म का कुछ भी अनिष्ट होगा, तो क्या आप ईश्वर के सामने इसके लिए जिम्मेदार नहीं होंगे? अतः आप से करबद्ध निवेदन है कि आप शिवाजी को संन्यासी होने से रोकें। कर्मयोगी शिवाजी को अपने कर्म में प्रवृत्त करें। जिस ईश्वर की भक्ति आप साधते हैं, उसी ईश्वर की आज्ञा वह भी पाल रहे हैं। आप भक्त हो कर उनके काम में अड़चन न उपस्थित करें। साधु हो कर पाप के भागी न हों!—कैसी कड़ी फटकार और ज्ञान का कैसा सच्चा मार्ग है।

तुकाराम को जीजाबाई की बात जँच गयी। उन्होंने शिवाजी को बुला कर संन्यास का त्याग और राज-धर्म में प्रवृत्त होने की आज्ञा दी।

मराठा-राज्य के प्रवर्तक शिवाजी के जीवन, निवास, कार्य-निष्ठता और सफलता में राजमाता जीजाबाई का कहाँ और कितना हाथ था, इसका यहाँ सिंहावलोकन कराया गया है। अब पाठक भली भाँति निर्धारित कर सकते हैं कि मराठा-राज्य के स्थापन में स्त्री—राजमाता जीजाबाई का हाथ कम न था। यह नहीं कहा जा सकता कि यदि जीजाबाई-सी माता शिवाजी को न मिलीं होतीं, तो शिवाजी इतनी सफलता प्राप्त कर सकते, या मराठा-राज्य का इस प्रकार प्रसार और प्रतिष्ठा होती कि नहीं। आदि बातों का निश्चय तो इतिहास-वेत्ता करेंगेही।

राजमाता जीजाबाई के अतिरिक्त वीराङ्गना ताराबाई और बल्लारीदुर्ग के क़िलेदार की विधवा स्त्री मलबाई देसाए आदि और भी अनेक देवियाँ हो गयीं हैं, जिनका नाम मराठा-इतिहास में सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

—छन्नूलाल द्विवेदी

निर्भय

(१)

अभी सिंहगढ़ ४ कोस है। दस कभी के बज चुके। ठीक दस बजे तीनों घुड़सवारों को शिवाजी की हाज़िरी में सिंहगढ़ पहुँच जाना चाहिये था।

शिवा की बात टलती नहीं, टलती है तो अनर्थ हो जाता है। समय और कार्य का विभाग ही उसका ऐसा नपा-तुला होता है कि ज़रा से काम की ज़रा ढील और ज़रा देर सारी स्कीम को ढा देती है, कार्य-सिद्धि (Achievements) की शृङ्खला को ही विशृङ्खल कर देती है। और शिवा वह व्यक्ति है जो सब कुछ सह सकता है, असफलता नहीं सह सकता। जिसने फ़ेल होना जाना ही नहीं। जिसके जीवन की डोर विजय-विजय-विजय के मनके पहन कर वह माला बनकर ही दम लेगी, जिसे इतिहास के अनुशीलन करने वाले साहस-प्रार्थी व्यक्ति फेर-फेर कर धन्य होंगे। जो चाहता है, जिसमें हाथ लगाया है, वही यदि पूरा होने से रह जाय तो शिवा शिवा नहीं। कौन है जो उसे पूरा होने से रोक ले। कहीं भी यदि उसे असिद्धि मिले, तो मानों वहीं उसकी मौत होगी। वह उस धातु का बना है जिसके अलौकिक वीर बने होते हैं। जिसका अलक्षेन्द्र बना था, जिसके अशोक, सीज़र, शार्लमान बने थे, और जिसका नैपालियन बना था। जो धातु मुड़ना नहीं जानती, टूट भले ही जाय।

तीनों घुड़सवार जो घने जङ्गल, घने अँधेरे और घने कुहरे को, जमी हुई सन्नाहट और वैसी ही जमी हुई शान्ति को चीरते हुए, तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं, शिवाजी के इस अकम्प शिवा-पन को मन-ही-मन, अनुभव-द्वारा, खूब जानते हैं। थक रहे हैं, हाँफ रहे हैं, बढ़े चले जा रहे हैं, आपस में बोलने का भी अवकाश नहीं ले रहे हैं,—यह देखने कि 'अब क्या बीतती है।' वह, और हम भी, आत्मा की शपथ खाकर कह सकते हैं कि उन्होंने पूर्ण तत्परता, चुस्ती और मुस्तैदी से अपना कर्तव्य निवाहा है। —किन्तु १० तो बज चुके हैं।

बीजापुर की ख़बर लाने के लिये उन्हें भेजा गया था। त्र्यम्बक उनका नेता है, घोरपड़े और शिवराव उसके सहायक। त्र्यम्बक शिवा का बहुत ही अपना आदमी है, जोखम और विश्वास की जगह उसे ही भेजा जाता है। उसे भेजकर शिवा मानों उस सम्बन्ध में बिलकुल निश्चिन्तता प्राप्त कर लेता है।

त्र्यम्बक बोला—'महाराज यदि न मिलें—?' यह सम्भावना तीनों ही के मनों में थी, किन्तु इतनी अनिष्टकर थी कि जैसे वह उसे स्वीकार करने से डरते थे। शिवराव ने कहा— 'ऐसा नहीं होगा।'

घोरपड़े ने भी कहा—महाराज हमारे संवाद के लिए अवश्य प्रतीक्षा करेंगे।

किन्तु त्र्यम्बक को सन्तोष नहीं मिलता। इन मुसीबत के दिनों में जब चारों ओर फैले प्रत्येक ... और प्रत्येक पग में विपत्ति और विजय ... जब समय का ठिकाना नहीं है और ठिकाने ... भी ठिकाना नहीं है, तब नियत दस बजे के ... रह वज जाना कोई छोटी बात नहीं। वह ... ी भारी भूल के बोझ और मनस्ताप के ... चे मानों पिसा जा रहा है। उसने कहा—

'घोरपड़े, मालूम नहीं क्या हो गया हो। ...न्देह नहीं, दस बजे महाराज वहाँ अवश्य ...ंगे, पर अब—?......बीजापुर में ही हमको ...माचार मिला था कि सिंहगढ़ आशङ्का से ...ाली नहीं। न जाने किस पल धावा हो जाये?'

घोरपड़े ने उत्तर में केवल घोड़े की चाल ...ौर तेज़ कर दी।

तीनों बढ़े चले। चुप—चारों ओर सन्नाटा ...री चुपचुपाहट थी। मानों नीरव प्रकृति, इन ...ीनों के भीतर उबलती हुई आशङ्का को अपने ...यङ्ग-मौन से और भी तीखी बना देना चाहती हो।

सिंहगढ़ पास आगया। अन्धेरे में से उसके बुर्ज के कङ्गारों का आकार धीमा-धीमा दीख पड़ता था। तभी कोई उनकी राह में आया, जिसने पूँछा—कौन?

इस 'कौन' का स्वर और लहजा एक दम सशङ्क कर देने वाला था। फिर भी त्र्यम्बक ने दहाड़ा—

"ॐ, हर हर!"

उस व्यक्ति ने झट से चिल्ला दिया—'मारो काफ़िरों को', और दल-के-दल दुश्मन उस अँधेरे में से फट पड़े।

युद्ध छिड़ा। मराठे मराठे थे, शिवाजी के साथी थे,—यानी वीर थे, और साथ ही होशियार भी थे। फिर अँधेरे का संयोग मानों भाग्य ने ही सामने ला धरा था। तीखी मार भी वे देते रहे, और पीछे अपना रास्ता भी बनाते रहे।

अपनी हानि और मराठों के पीछे हटने को देख दुश्मनों ने सन्तोष ही मान रखना ठीक समझा।

वे तीनों निरापद तो हुए, किन्तु सिंहगढ़ तक पहुँचने का इरादा अब भी उनका पक्का ही रहा। सन्देह नहीं, उन्हें जगह-जगह ऐसी ऐसी ही मुठभेड़ करनी होगी,—किन्तु क्या इससे वह शिवा की आज्ञा से मुड़ें?

मतलब कि कभी इधर और कभी उधर, इस तरह चारों ओर से, सिंहगढ़ पहुँचने का वह यत्न करते रहे। बीसियों हमले उन्हें सहने पड़े, और बहुत आहत हो गये। इधर रात भी बीत चली। किन्तु यत्न छोड़ें तो मराठे कैसे?

अन्त में थकान से चूर हो गये थे, लोहू से लुहान हो गये थे, फिर भी सिंहगढ़ पहुँचने की तदबीर में लगे थे। यद्यपि बड़ी हताशा के साथ और जीवन विसर्जन के पूर्ण विश्वास के साथ। तभी एक खेतिहर से पता मिला, शिवाजी सिंहगढ़ में नहीं हैं।

रात होते ही गढ़ पर अचानक धावा हुआ था। दस, साढ़े-दस, ग्यारह बजे तक, कई ...

शत्रु शक्ति के सामने शिवा गढ़ को सम्भाले रहे और ठहरे रहे थे। बहुतेरा कहा गया कि वह यहाँ से चलें। किन्तु ग्यारह बजे से पहिले उन्होंने वहाँ से टलना कभी स्वीकार न किया। भेदिये चारों ओर तैनात रहते थे। जब ग्यारह बजे का यह समाचार लाकर उन्होंने शिवा को दे दिया कि एक मील तक त्र्यम्बक नहीं है, तब उन्होंने गढ़ छोड़ने में फिर क्षण-भर देर न की।

त्र्यम्बक और उसके साथी इस सूचना पर, अपने को प्रत्येक अनिष्ट और हर तरह के दण्ड के लिए तैयार करके, लौट चले।

(२)

जङ्गल में एक ऊँची सी टेकड़ी पर शिविर पड़ा है। किन्तु शिवा उससे अलग, बहुत दूर, आत्म-त्रस्त, आत्म-ग्रस्त और आत्म-व्यस्त भाव से कुछ सोचता हुआ टहल-सा रहा है। शिविर के काम से निबट चुका है, सब ताक़ीदें दे चुका है,—इस तरह अवकाश निकाल कर अब अपने से निबटने का काम वह, यहाँ सिर झुका कर टहलता-टहलता, कर रहा है। सिद्धियों, सफलताओं और विजयों से ठसाठस भरे हुए अपने व्यस्त जीवन में से, वह इसी तरह कभी-कभी कुछ घड़ियाँ चुराकर आत्म-निमग्नता पाया करता है। इन बहुमूल्य निठल्ली घड़ियों में, जो बड़ी कठिनाई से मिल पाती हैं और बहुत-थोड़ी देर ठहर पाती हैं, मानों उसके जीवन की सच्ची अनुभूतियाँ, कसक उठने वाली स्मृतियाँ और गला और सुखा देने वाली चिन्ताएँ,—मानो जीवन की समग्र चेतनता,—अपने डोरे समेट कर आ इकट्ठी होती हैं। तब वह डोरे फैलते हैं, उलझते हैं और सुलझते हैं, किन्तु उतने सुलझते नहीं जितने उलझ जाते हैं। इन उलझनों में फँस कर शिवा बड़ी व्यथा पाता है। सुलझा नहीं सकता नहीं, क्योंकि सुलझाने का अवकाश उसके पास बहुत थोड़ा है, इसलिए उलझे रहने में ही वह थोड़ा आनन्द ले लेता है। यह व्यथा जो मज़े से भरी है, और यह मज़ा जो टीस-सा चुभता है, यहीं, इसी में पड़ कर शिवा को ज्ञात होता है जैसे जीवन के रस का थोड़ा स्वाद मिल रहा हो। नहीं तो उन खोखले, कृत्रिम, कर्तव्य-बद्ध. राजापन-प्रसिद्धि और प्रभुत्व के जगमगे ज़र्क-बर्क़ आवरण पहने, रूखे जीवन से उसे रह-रह कर उकताहट छूटती है।

उसे बहुत कुछ स्मरण हो आती है, वह माँ की गोद, जो अब नहीं रह गयी है। उसके स्थान पर सिंहासन आ गया है। निर्जीव पत्थर का यह सिंहासन सजीव प्यार के माँ के घोंसले की, मानों अपने मद में खिल्ली उड़ाता है। कम्बख़्त! सिंहासन से शिवा के प्राण मानों एकबारगी ही चिढ़ उठते हैं। यह सारी प्रसिद्धि, वैभव और प्रभुत्व मानों उसे अपनी साधारणता और मनुष्यता का व्यङ्ग करते दीखते हैं।

उसे स्मरण हो आता है वह रक्त जो उसने बहाया है। वे जानें, जो उसने ली हैं। उससे भी अधिक वे जानें, जो उसके लिए गयीं हैं। जिन्हें उसने मारा है, और जो उसके लिए मरे

ाये हैं, वे सब; उनके बिलखते हुए कुटुम्बी उन कुटुम्बियों के अविरल ढुरकते हुए ,—इन सब की कल्पना, स्मृति और चित्र : से उमड़ते हुए और उसके जी को ाते हुए उठते हैं। उसे ज्ञात होता है उन सब की हत्याओं और उन दुखियों ःखों को कुचले हुए खड़ा है उसका ्पन!

और स्मरण हो आता है वह हृदय का वेग च्चों को देख कर उमड़ा पड़ता है। वह , जो उसे बचाते-बचाते मर गयी, इसलिए ह उसे अपना हृदय और अपना सर्वस्व चाहती थी, और उसने उसे कुचल दिया और वह, जब औरङ्गज़ेब के यहाँ गया हाँ, वही, जो अचानक दीख गयी थी और गयी थी,—जिसका प्रणय, वंश और धर्म, ाता और समाज के सब बन्धनों को कर उस तक पहुँचता है और इतना कि के रस में वह डूब जाय! वह निसर्ग-शुद्ध ा-रस की धारा उसे याद आती है, जिसे छू नहीं सकता!

और सामने दीखते हैं पेड़, जो लताओं को ाटाये झूम रहे हैं, हँस रहे हैं, मानों कह रहे 'तुम बड़प्पन की भूख में रहो, इधर हम पर हँसते हैं।' और फिर मानों अपना ट झुका कर, फुसला कर, चुपके से आवा- दे जाते हैं—'व्यर्थता में न पड़ो, आओ ारे साथ जीवन में निर्द्वन्द्व खेलो।' हरी- त, छोटे पौधे, उभरा हुआ पहाड़, भागते- ाते बादल, और उनके पीछे धूप की मुस- कान से मुसकाता नीलाकाश, फुदकती चिड़ियाँ और चहकते पक्षी—सब, मानों अपने जीवन की चुहल दिखाते हुए व्यङ्ग कर रहे हैं—'यह है जीवन!'

शिवा इस रस को देख रहा है। देख-देख कर, क्योंकि इसे वह चख नहीं सकता, बड़ा झुँझला और कुढ़ रहा है। कैसा बेलाग बेदाम बिखरा पड़ा है यह रस!

उसकी फ़तहों की सूची उसे निकम्मी जान पड़ती है। सफलताओं की लम्बी तालिका उसके मन को बोध नहीं दे पाती।

जब उसका मन हार जाता है, स्मृतियाँ दबा लेती हैं, और ऐसी चिन्ताएँ अभिभूत कर लेती हैं, तब उसके एक-मात्र त्राण समर्थ गुरु रामदास याद पड़ते हैं। वह उनकी शरण गहेगा। अबके इस यश, वैभव, राजत्व, लड़ाई और हिंसा के मार्ग से मुक्ति पाने की प्रार्थना करेगा। साधारण बन जाने और प्रेम करने की छुट्टी अब के वह भी गुरु से माँग लेगा। व्यस्तता से वह तङ्ग आ गया है, कहेगा— "गुरु, बहुत हो गया, अब मुझे छुट्टी दो। अब मैं स्नेह में नहाऊँगा और जीवन में खेलूँगा।'

मन के इसी ज्वार को ज़रा शान्त करने के लिए वह टहलता-टहलता एक शिला पर बैठ गया। सन्ध्या चुपचाप सरकी आ रही थी। मानों अपनी अँधियारी साड़ीमें से थोड़ी स्निग्धता और शान्ति भी बिखराती आ रही हो।

शिवा की गोद में एक टीड़ी आ पड़ी। शिवा उसे देखता रह गया। मानों वह अपने धुन में है, शिवा की उसे ख़ाक पर्वाह नहीं।

मानों किसी नये खेल की टोह में जारही है।

शिवा ने पकड़ने को हाथ बढ़ाया कि वह फुदक कर भाग गयी।

सामने से एक चिड़िया उड़ी,—टि टी टु ई टी। और आकर बैठ गयी दूसरी चिड़िया के पास। और वे दोनों चोंचें मिलाकर अति प्रेम सम्भाषण करने लगीं।

ऊपर का बादल का टुकड़ा भागा जा रहा था—एक और को पकड़ने। देखते-देखते वे दोनों मिले और आपस में गुँथ गये।

शिवा ने कहा—'अच्छा भाई, मिलो, मिलो। मैं भी अब तुम्हारी समाज में आता हूँ।

उस समाज में उसकी प्रवेश-प्रार्थना पर कैसा स्वागत मिल रहा है, यह वह समझ पाये ही कि उसने सुना—'महाराज'

मुड़कर देखा—एक युवक है। वह युवक उसके चरणों पर आ पड़ा।

वह युवक है, नया है, फिर भी नया नहीं है। कुछ है उसमें, जो जाना-सा मालूम पड़ता है।

फिर सुन पड़ा—'महाराज'

इस वातावरण में और इस नये प्रकार के उठे-हुए विचार-क्षेत्र में शिवा अपना सर्दार-पन भूल बैठा था। अभी उसे अपने में उस 'बू' को लाने की जल्दी भी न थी। कहा—

'कहो भाई।'

युवक ने कहा। क्या कहा सो शिवा न समझ सका। जो कहा गया था उसका आशय नहीं, उसका स्वर उसने सुना—वही उसने समझा और तब उसने गौर से युवक को देखा।

युवक के सारे गात में एक सिहरन लहराई, आँखें झपीं-सीं, और मामूली-सा सिंदूरियापन दौड़ गया। शिवा से यह छिपा न रहा, और उसके भीतर एक गुदगुदी सी मच उटी।

'तुम्हें भाई नहीं कहना चाहता। बहन भी नहीं कहना चाहता। क्या कहूँ?'—शिवा ने हँस कर, झेंप कर पूँछा।

युवक, जो युवती थी, शर्मा गयी।

जङ्गल सूना था, पर शिवा मज़बूत था। फिर भी उसकी मज़बूती, पिछले विचार-प्रवाह से, मानों पिघल उठी थी। यह हो नहीं सकता था कि वह मज़बूती रिस कर बह जाती, फिर भी शिवा ने उस पर विश्वास रखना उचित न समझा।' पूँछा—

—'हाँ, क्या चाहती थीं?'

—'नौकरी।'

'छिः। नौकरी किया करते हैं कहीं?'

'सेना में नौकरी चाहती हूँ।"

'मारने का काम करोगी? वह काम क्या तुम्हारे वस का है? तुम्हें तो जीने और जिलाने का काम करना चाहिये। क्यों!'

'हाँ।'

'सेना में क्यों जाना चाहती हो।'

'मारने नहीं।'

'फिर?'

'बचाते-बचाते मरना चाहती हूँ। आपके मारने वाले बहुत हैं।'

इतने साहस की बात कहने के पश्चात् मानों युवती का साहस चुक गया। शिवा का ...

पसीज गया। इस उत्कण्ठित उत्सर्ग की आकांक्षा को देख वह धन्य हुआ। किन्तु वह क्या इसके तनिक भी योग्य है। उसे बस यही अधिकार है कि वह इस उत्सर्ग को ले, और इसी पर अपने शरीर की रक्षा प्राप्त करे। उसे अपनी स्थिति पर आन्तरिक खेद हुआ।

उसने कहा—'बाई, यह क्या कहती हो?—क्या जाने यह नौकरी ही न रहे, सेना ही न रहे। और फिर मेरा शत्रु बनने की भी किसी को आवश्यकता न रहे। जाओ बाई, ऐसा ध्यान न करो। मेरी शपथ जो ऐसी बात तुमने मन में रक्खी। शिवा का जीना अभी बहुत भारी है। फिर तो उसे उठाना हो कठिन हो जायगा।

युवती शिवा के पैरों में पड़ गयी। शिवा ने उसे उठाया, कुछ क़दम उसके हाथ पकड़े, उसके साथ गया, और विदा किया, कहा—मेरा मार्ग न बाँध दिया गया होता तो क्या मैं जान-बूझ कर धन्य होने से बचता। बाई, जाओ, शिवा बड़ा अपात्र व्यक्ति है।

× × ×

वहीं, उसी शिलाखण्ड पर बैठा था कि त्र्यम्बक अपने साथियों सहित उपस्थित हुआ।

'महाराज!'

'अरे, त्र्यम्बक!'

'क्षमा करें, महाराज!'

त्र्यम्बक ने अपनी पूरी कहानी कही। शत्रुओं के साथ मुठभेड़ की और अपने घावों की बात बहुत संक्षेप में कही। फिर कहा—

'क्षमा करें, महाराज।'

शिवा ने कहा—"त्र्यम्बक, मैं वही मार्ग पकड़ना चाहता हूँ, जहाँ क्षमा ही क्षमा है। जहाँ क्षमा देने और क्षमा माँगने की आवश्यकता ही मिट जाती है। वह छोड़ना चाहता हूँ जहाँ दण्ड ही दण्ड है। मैं थक गया हूँ। यह नित्य की नयी लड़ाई, खोने को रोज़ नयी जानें, और लड़ने को नयी जानें, नये अपराध और नये दण्ड,—मैं इन सबसे घबड़ा गया हूँ। मैं चाहता हूँ, ये कुछ भी न रहें। हम-तुम भाई बन कर रहें, जैसे कि हम भाई-भाई हैं।—"

त्र्यम्बक घबड़ाया—'महाराज!'

शिवा ने कहा—"त्र्यम्बक, शिविर में जाओ। बहुत कुछ करना है। पर अच्छा है, यह सब करना-कराना शेष हो जाय। औरङ्गज़ेब की सेना इधर बढ़ी आ रही है। उधर कुछ अपने लोग भी चारों-ओर से हमें घेरने के प्रयत्न में हैं। इन सबको झिकाने और इनसे बचने को क्या करना होगा, सो सब मैं कर आया हूँ। दक्षिण की ओर एक टुकड़ी भी जायगी। बीजापुर की स्थिति सुनकर कुछ करने की ज़रूरत होगी। वैसे भी, अपनी हालत और वहाँ की हालत को देखते हुए, तुरन्त कुछ कर बैठना ठीक नहीं। जहाँ से सहायता का वचन है, उसकी भी उचित प्रतीक्षा करनी ही चाहिये। इस तरह परसों तक हम यहीं हैं। तब तक कुछ भी आँच यहाँ तक पहुँच सकेगी—यह असम्भव है। इसलिए मैं आज श्री समर्थ-गुरु के पास जाता हूँ। परसों प्रातः ही यहाँ पहुँच जाऊँगा। कोई मेरे साथ नहीं जायगा। तुम लोगों को तैयार रहना चाहिये। यदि

श्री गुरु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार न की, तो परसों १० बजते-बजते सबको पाँच टुकड़ियों में बँट कर यहाँ से कूच कर देना होगा।"

फिर हृदयाकांक्षा से भीने स्वर में कहा—"त्र्यम्बक, मैं गुरु के पास छुट्टी माँगने जा रहा हूँ। जिससे इस झञ्झट से हम सब मुक्त हों। और प्रकृति के सच्चे प्राणी होकर रहें। यदि इच्छा स्वीकृत हुई, तो तुम्हें सूचना दूंगा,—कोष में जो कुछ है, वह सब लोगों में बाँट देना और उन्हें विदा दे देना। मैं कुछ दिन गुरु के पास ही, और फिर किसी खेड़े में रहूँगा।..."

त्र्यम्बक ने कहा—"महाराज।"

शिवा ने कहा—'जाओ, जैसा कहा वैसा करो।'

त्र्यम्बक चला गया।

(३)

श्री समर्थ-गुरु के चरणों में।

"क्यों, शिवबा, क्या है?"

"गुरुवर, बड़े क्लेश में हूँ।"

"क्लेश? कैसा क्लेश?—क्या फिर उकताहट उठती है? मैंने तुम्हें बताया, उकताहट का यह स्थान नहीं। कर्म अनिवार्य है, और मनुष्य नितान्त स्वतन्त्र नहीं है। कर्म को परिधि में घिरा है, बस परिधि के भीतर स्वतन्त्र है। परिधि से बाहर भाग कर वह नहीं जा सकेगा। इसे वह अपना दुर्भाग्य समझे या सौभाग्य,—जगत् का तन्त्र ही ऐसा है।"

"भगवन्, कर्म की अनिवार्यता तो मैं स्वीकार करता हूँ। किन्तु हँसना-खेलना भी तो कर्म है। प्यार करना भी तो कर्म है। जीवन के विनोद में बह चलना भी तो कर्म ही है। पानी बहता है और खेलता है, चिड़ियाँ उड़ती हैं और चहकती हैं, पेड़ फलते हैं फूलते हैं और झूमते हैं, सम्पूर्ण जगत् ही मानों आनन्द के सक्रिय समारोह में तन्मय योग देता रहता है। फिर मेरे ही ज़िम्मे यह लड़ना-मारना क्यों है? बहुत-सी जीवन की लहरों को बलात् रोक कर और अस्वीकार करके एक बनावटी कर्तव्य-शासन में बँधे रहना, जगत् के और प्राणियों को छोड़ कर, मेरे ही लिए क्यों आवश्यक है? गुरुवर, मुझे इस निश्चल प्रकृति को देख कर ईर्ष्या होती है, और अपने बन्धनों पर बड़ी खीझ होती है।"

स्वामी रामदास ने स्पष्ट देखा शिवबा की वितृष्णा सच्ची है फिर भी मोह-जन्य है। जो सामने सरस दीख पड़ता है, उसीसे ललचाकर, अपने में यह विरागाभास उसने उत्पन्न किया है। वे बोले—"शिवबा, भूलते हो। जिसको जिस तरह देखते हो, वह वैसा ही नहीं है। जो हँसता दीखता है, क्या मालूम वह उसका रोना हो। इसलिए दूसरों की हँसी पर मत लुभाओ खुद हँसना सीखो, और वह तभी सीख पाओगे जब, जो कुछ होगा उसी पर हँसोगे। दुख प[र] वैसे ही हँस दोगे, जैसे सुख पर। यह उकत[ाहट] उठना छोड़ दोगे। तुम, सम्भव है, मुझे मु[क्त] समझो। हाँ, मैं अपने को मुक्त समझता हूँ पर तुम भी यदि मेरी ही तरह हो जाओ कोपीन धार लो और संन्यासी बन जाओ, आत्मा का असन्तोष ही पाओगे। सब के म

भिन्न हैं, यद्यपि सब का अन्त एक है। वह मार्ग किसी के लिए भी मख़मल-बिछा नहीं है, वह तो दुर्द्धर्ष ही है। जो उस मार्ग पर चलना ही नहीं आरम्भ करते, उनकी बात छोड़ दो,—वे तो सचमुच उच्छृङ्खल रह कर जो-जी-चाहा उसमें भूले रह सकते हैं। पर जो मार्ग पर चलने के अधिकारी हो गये, फिर उन्हें जी-चाहे-जो करने का अधिकार नहीं रहता है। उनका तो मार्ग खड्ग की धार की तरह एक-रेखा-रूप, निश्चित और सकरा बन जाता है। तुम्हारा मार्ग राजा का है, मेरा मार्ग साधु का है। हम दोनों की पूर्णता और आत्मोपलब्धि अपने-अपने मार्गों में है। राजा संसार का साधारण गृहस्थी नहीं है, वह बड़े दायित्वों से बँधा है। इसलिए उसके कर्तव्य-अकर्तव्य की परिभाषा गृहस्थ के पैमाने से नापकर नहीं बनेगी। उसे अधिकार नहीं, कि वह सहज-प्राप्य अपनी आत्म-तुष्टि ढूँढे, अपने विलास का आयोजन करे। क्योंकि उसे बहुतों के सुखों और जीवनों की रक्षा का भार सौंपा जा चुका है। क्या अपने सुखों को दूसरों की सुविधा के लिए उत्सर्ग कर देने का यह अधिकार प्रत्येक को मिलता है? इसके अधिकारी विरले होते हैं। तो क्या तुम इस अधिकार से विमुख होगे? तुम्हें कितना बड़ा उत्सर्ग करना पड़ रहा है, मैं जानता हूँ। जो चीज़ तुम्हें दुख पहुँचाती है, हिंसा, वही करने पर तुम बाध्य हो। यश, प्रतिष्ठा, जिससे तुम भागना चाहते हो, वे ही तुम्हें चिपटानी पड़ती हैं। यह महान् उत्सर्ग है, मैं मानता हूँ। किन्तु, मैं समझता हूँ, शिवबा, यह विराट् उत्सर्ग का अवसर—जो तुम जैसे विरलों को ही मिलता है,—तुम खोओगे नहीं।"

शिवा की आत्मा को इन शब्दों से बोध तो हुआ, पर हृदय की व्यथा पूरी न मिट पाई। इससे बोला—

—"महाराज, मैं नहीं जानता, पर जी बेचैन रहता है। करता हूँ, पर अकुलाये मन से······।"

"ठहरो" गुरु ने कहा—"समझने में तुम्हें आयास और समय की आवश्यकता होगी। इस बीच मेरा आदेश समझ कर ही मानो। आदेश में शङ्का न करो—पाप लगता है। जाओ—औरङ्ग-ज़ेब की सेना बढ़ रही है। ब्राह्मणों का अपमान, धर्म पर अत्याचार और गौओं की हत्या हो रही है। भारत की भारतीयता खोई जा रही है। इसकी रक्षा करो।"

शिवा चरणों में पड़ा।—"भगवन्"

—"जाओ, शिवबा, कर्म करो। शङ्का न करो, आकांक्षा न करो। निःशङ्कित आस्था रक्खो, निःकांक्षित कर्म करो।"

शिवा पद-धूलि लेकर चला गया।

(४)

टुकड़ियाँ बँट गयी हैं। शिविर उखड़ने को है। सब अपने-अपने काम पर कूच करने की तैयारी कर रहे हैं। वही 'परसों' आगया है और वही शिवाजी—लड़ाई का उत्कट, उद्भट, चपला की तरह चपल शिवाजी,—आगया है।

तभी त्र्यम्बक का मुक़दमा हाथ में लिया। त्र्यम्बक पेश हुआ।

शिवा अब मानो कर्तव्य-ही-कर्तव्य है।

हृदय, जो भावना का स्थान है, मानों शिवा ने बिल्कुल धुला डाला है। हाँ मस्तिष्क, जो विचार और विवेचना का स्थान है, पूर्ण सजग है। बोला—

"त्र्यम्बक, तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। मेरे निकट क्षमा वैसे भी अक्षम्य है। तुम्हें सब से बड़ा दण्ड जो मैं दे सकता हूँ, देता हूँ। तुम घर जाओ, रहो, तुम से और सेवा मैं नहीं ले सकूँगा।"

सचमुच दण्ड त्र्यम्बक के लिए इस से बड़ा न हो सकता था। वह सब कुछ कर सकेगा, पर शिवा को छोड़ना!—यह कैसे होगा? मौत मञ्जूर होती, पर यह तो उस स्वामिभक्त के लिए बिलकुल असह्य ही है।

उसने बहुत विनती की। पर शिवा की बात शिवा की बात है, झुकेगी नहीं।

× × ×

वह,—वही युवक भी हाज़िर हुआ। शिवा की आँखों में सरसता की झाईं भी नहीं है। केवल एक वस्तु है,—प्रभुत्व।

"नौकरी चाहते हो?"

"जी"

"अच्छा"

फ़ौजदार को इस नये सिपाही को बाक़ायदा शपथ-पूर्वक भर्ती कर लेने का हुक्म हुआ।

× × ×

लड़ाई हुई। धावा अचानक का था। शिवा का बचना असम्भव था,—पर भाग्य कहिये, बच गया। भाग्य को श्रेय देते हुए शर्म आती है। किन्तु एक छोटे से अनजाने सिपाही को श्रेय देने का क़ायदा इतिहास का नहीं है। कोई उत्सुक पूछे ही तो इतना बता सकते हैं कि एक तलवार का भरपूर हाथ जो ठीक शिवाजी की गर्दन पर पड़ता, और पड़ता तो कभी अकारथ न जाता, एक नये युवक सिपाही की पीठ पर पड़ा! वह सिपाही फिर ज़्यादे देर तक जीता न रहा। और उसके साथी भी भली प्रकार उसके गाँव-पते का पूरा पता न चला सके। क्यों कि शिवा ने तुरन्त लाश अपने ख़ास शिविर में मँगाली थी, और फिर कोई बाहरी आँख उस पर न पड़ सकी थी।

शिवा ने उस लाश का क्या किया? उसे आँसुओं से तो भिगोया ही,—फिर क्या किया, नहीं कहा जा सकता।

—जैनेन्द्र कुमार
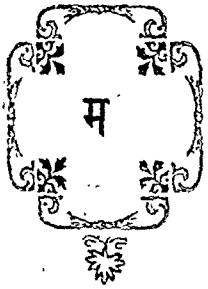
मराठा आदर्श स्त्रियाँ

महाराष्ट्र के इतिहास में पुरुषों की भाँति स्त्रियों का भी महत्व है। सहस्रों स्त्रियों ने अनुपम आदर्श स्थापित करके अपने नाम इतिहास में अमर कर दिये हैं। वास्तव में मराठा आदर्श स्त्रियों की जीवनी के सम्बन्ध में एक लम्बी लेखमाला लिखी जानी चाहिये। जिससे उनकी सम्पूर्ण अभिज्ञता हो सके। पर समय तथा स्थानाभाव से हम संक्षेप में कुछ चुनी हुई मराठा आदर्श स्त्रियों का ही परिचय कराते हैं।

(१) लीलावती—बारहवीं शताब्दि में यादव राजाओं के आश्रित पण्डित प्रवर-भास्कराचार्य जी गणित, ज्योतिष और संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। लीलावती उन्हीं की कन्या थीं। कहा जाता है कि अल्पायु में विधवा हो जाने के कारण, उन्होंने अपना समग्र जीवन पिता के सुख सहवास में ही बिताया था। पिता की सुशिक्षा के कारण लीलावती का भी गणित एवं ज्योतिष में अच्छा अधिकार था। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीलावती' उन्हीं की रचना कही जाती है। ग्रन्थ प्रश्नोत्तर के रूप में है। उसमें अङ्ककरण की प्रणाली बड़े सुन्दर रूप से अङ्कित की गयी है। परिभाष सङ्कलन, व्यवकलन, हरण, वर्ग, वर्गमूल, धन, धनमूल प्रवृत्ति, तथा अङ्ककरण के उदाहरण-सहित अति सुगम और उत्तम सूत्र लिखे गये हैं। उस शैली का ग्रन्थ अन्य किसी भाषा में उपलब्ध नहीं है। आचार्य और लीलावती के प्रश्नोत्तर के रूप में ग्रन्थ लिखा गया है। वृक्ष की एक शाखा के पत्ते गिन कर समग्र वृक्ष के पत्ते बतलाना लीलावती का ही काम है। लीलावती की रचना के विषय में विद्वन्मण्डल में मत-भेद भी पाया जाता है। कोई कहते हैं लीलावती का नाम अमर करने के हेतु भास्कराचार्य जी ने ही, उसे निर्माण किया, कोई उसे लीलावती की ही रचना बताते हैं; पर इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थ की रचना को देखते वह उन्हीं की जान पड़ती है। उनकी समग्र आयु विद्वान् पिता के सहवास में ही बीती थी।

२ मुक्ताबाई—यों तो महानुभाव पन्थ के आचार्य चक्रधर के शिष्य नागदेवाचार्य जी की विदुषी भगिनी उमाम्बा और उनकी चचेरी भगिनी रुपाई उर्फ़ महादम्बा की उत्तम काव्य-रचनाएँ उपलब्ध हैं; किन्तु सन्त-कवि ज्ञानेश्वरी जी की भगिनी मुक्ताबाई महाराष्ट्र में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। उनकी कविताएँ भक्तजन बड़े प्रेम से गाते हैं। अपने भ्राताओं की भाँति वे भी बुद्धिमती थीं। मराठों की वे आदि कवियित्री कहलाती हैं। वे आजन्म कुमारी ही रहीं। मृत्यु के समय

उनकी आयु केवल सोलह वर्ष की थी। उनकी रचना बड़ी मधुर है और उस पर स्त्रियों के कोमल स्वभाव का पूरा प्रभाव पड़ा है। भगवान भास्कर के उदय के पूर्व पक्षीगण की चुलबुलाहट से जो आनन्द होता है, वही मुक्ताबाई की रचना को पढ़ कर होता है। चौदह पन्द्रह वर्ष की अल्हड़ आयु में वे ऐसी सुललित रचना कैसे रच सकीं, यह घटना बड़ी ही आश्चर्योत्पादक है। विशेषतया उनकी भक्ति और विरक्ति को देख कर बड़ा कौतूहल उत्पन्न होता है। कहा जाता है कि आकाश में बिजली की प्रचण्ड गड़गड़ाहट हुई और मुक्ताबाई ने वैशाख सुदी द्वादशी शाके १२१८ को शरीर छोड़ा। आनन्द का विषय है कि मुक्ताबाई की हिन्दी ललित रचना भी उपलब्ध है।

(३) **वहिणा बाई**—उक्त कथित मुक्ताबाई के अनन्तर प्रसिद्ध कवि नामदेव की माता गोणाई, उनकी पत्नी राजाई, तथा पुत्रवधुएँ लाडाई, गोडाई, ईसूबाई, साखराई तथा उनकी शिष्या जनाबाई की भी बहुत सी मराठी ललित रचना उपलब्ध है। किन्तु कवयित्री के नाते वहिणा बाई का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वहिणा बाई तुकाराम जी की शिष्या थीं, जो कथा-कीर्त्तन करती थीं। इनकी रचना का एक खण्ड प्रकाशित हो चुका है। इनकी कविता सीधी सादी भक्ति-रस-पूरित और अत्यन्त मधुर है। इन्होंने अपनी रचना में पूर्व के पाँच और अनन्तर के पाँच जन्मों का भी वर्णन लिखा है। हिन्दी कवि सहजोबाई की बानी की भाँति वहिणा बाई की रचना अत्यन्त उपदेशप्रद है। शाके १६२२ में इनकी मृत्यु हुई।

(४) **वेणुबाई**—समर्थ रामदास जी के शिष्यों में प्रमुख शिष्य कल्याण की भाँति वेणुबाई का नाम भी प्रसिद्ध है। वे अल्पायु में ही विधवा हो गयीं थीं। समर्थ रामदास जी की भी उन पर बड़ी कृपा थी। वे उन्हें अपनी कन्या कहा करते थे। समर्थ ने उनके लिए एक मठ मिरज ग्राम में बना कर उन्हें मठपति बनाया था। समर्थ रामदासजी के सम्प्रदाय में स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा था। उनकी शिष्य परम्परा और मठ अद्यावधि विद्यमान हैं। वेणुबाई की स्फुट रचना के अतिरिक्त 'सीता स्वयम्वर' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ भी उपलब्ध है। अर्थात् मराठी गद्य साहित्य में वे ही आद्यग्रन्थ लेखिका है। सीता स्वयम्वर की कथा वैसे ही बड़ी मनोरञ्जक है, फिर वह एक स्त्री की लेखनी से लिखी गयी है। अतः उसमें सोने और सुगन्ध का अपूर्व संयोग होगया है। वास्तव में स्त्रियों के मनोविकारों का जैसा उत्कृष्ट वर्णन उनकी लेखनी से अङ्कित किया गया है, वैसी सफलता अन्य को नहीं मिल सकती। सीता-स्वयम्वर के पढ़ने से हमारे कथन की सत्यता साबित हो सकती है। ग्रन्थ ओवी छन्द में है और उसके १४ परिच्छेद हैं। उसमें विवाह की छोटी छोटी बातों का भी बड़ा सरस वर्णन किया गया है। सीताजी का ससुराल जाने का वर्णन पढ़कर सहृदय पुरुष के अ टपके बिना न रहेंगे। बारात

वर्णन भी बड़ा ही सुन्दर है। श्रीरामचन्द्र-के सिंहासनारूढ़ होने पर प्रजा की माँग : उनकी पूर्ति का चित्र, रामराज्य का ास कराता है।

वेणुबाई की वयाबाई नामक एक शिष्या । जिनकी स्फुट रचनाएँ पायी जाती हैं। की हिन्दी रचना भी पायी जाती है। समर्थ मविकाओं में अम्बाबाई की रचना भी उप-ब्ध है। प्रेमाबाई नामक एक कृष्ण भक्ता कवि-ी हो गयी हैं। जिनकी 'कृष्ण गढ़ी अपुला ा मथुरे चा झाला' जैसी पद्य-रचना महा-् के प्रत्येक साक्षर कुटुम्ब में बड़े प्रेम से ई जाती है।

स्त्रियों की उक्त साहित्यिक परम्परा महा-ष्ट्र में आज दिन तक अबाधित रुपेण स्थित वर्तमान स्त्री-समाज में श्रीमती काशीबाई नरेकर, श्रीमती सौ० काशीबाई हेरलेकर, -गिरिजाबाई केलकर, श्री गोपिकातनया, फूल मालिन, श्रीसौ० शान्ताबाई भिडे आदि क प्रतिभाशालिनी लेखिकाएँ एवं कवि-त्रियाँ विद्यमान हैं। राजनैतिक कार्यों में ुख रूप से भाग लेने वाली सौ० अवन्तिका-ई गोखले जैसी स्त्रियों की कमी नहीं है। ला कार्य में सौ० नाइक, श्रीमती आठवले, ।मती तापीकर आदि अनेक गण्यमान्य हिलाएँ उपस्थित हैं।

अब हम महाराष्ट्र साम्राज्य की राजनीति प्रमुख भाग लेने वाली वीर एवं राजनीति-शल स्त्रियों का उल्लेख करेंगे, जिनके अनूठे ार्यों के कारण मराठा राजनीति पर विशेष प्रभाव पड़ा, अथवा यों कहिये कि जिनके अनुपमेय कार्यों के कारण मराठों के इतिहास का स्वरूप ही पलट गया। उनमें से विशेष वन्दनीय महिलाएँ निम्न हैं।

१. राजमाता जीजाबाई,—छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे पुरुष को अपनी कोख से जन्म देने वाली राजमाता जीजाबाई की चतुरता, दूरदर्शिता और आत्मिक बल की जितनी भी प्रशंसा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। उनके पिता लुखजी जाधव की विश्वासघातक नीति के कारण उनमें तथा जामात्र शाहजी में बड़ी शत्रुता हो गयी थी। किन्तु माता जीजाबाई ने अपने पिता का निषेध करके पति की रुष्टता सहन करके भी उनका ही साथ दिया। शाहजी निजामशाही के सरदार थे और लुखजी जाधव उन से विरुद्ध होकर मुग़लों से जा मिले थे। मुग़ल बादशाह दक्षिण की मुसलमानी बादशाहत को हड़पना चाहते थे अतएव जाधवराव बहुत सी मुग़ल सेना अपने साथ लेकर शाहजी का पीछा करने लगे। इसमें जीजाबाई भी अपने पति के साथ थीं। सैनिक-हलचलों के कारण गर्भवती जीजाबाई आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकती थीं। अतएव शाहजी ने उन्हें शिवनेरी-गढ़ की ओर विदा किया। उस समय तथा उसके अनन्तर शाहजी ने छत्रपति शिवाजी के शिक्षा आदि का समग्र भार जीजाबाई पर ही छोड़ा था। जीजाबाई आदर्श वीर पत्नी और वीर माता थीं। अतएव अपने पुत्र के चरित्र-गठन के उन्होंने जो उपाय ढूँढ़ निकाले वे

अपूर्व थे। शिवाजी भी आदर्श मातृ-भक्त थे। उन्होंने स्वधर्म-रक्षा तथा स्वराज्य-स्थापना की सारी स्फूर्ति अपनी माता से ही पायी थी। बीजापुर दरबार के नमकख्वार होते हुए भी उसके विरुद्ध स्वाभिमान की रक्षा के लिए क्रान्ति का झण्डा फहराने का सारा श्रेय जीजाबाई को ही है। मनोरञ्जन के लिए माँ बेटे चौसर और शतरञ्ज खेला करते थे। माँ बाजी जीतने पर पूना के आसपास के क़िलों में से कोई क़िला पुरस्कार में माँगतीं, तब शिवाजी को यवनों से लड़कर वह क़िला जीतने को बाध्य होना पड़ता था। अफ़ज़लख़ाँ से मिलने के समय बख़्तर पहनने तथा शस्त्रों से सुसज्जित होने का आदेश जीजाबाई का ही थी। शिवाजी के सारे चरित्र-गठन का श्रेय माता जीजाबाई को ही है, बजाजी निम्बालकर के यवन हो जाने पर उसे शुद्ध करके अपना समधी बनाने में उनका विशेष हाथ था। राज्य की प्रत्येक महत्व की बात में वे परामर्श दिया करतीं थीं। यहाँ तक कि अनेक अभियोगों के उनके किये हुए निर्णय भी प्रकाशित हो चुके हैं। सङ्कट के समय जीजाबाई ही शिवाजी की मार्ग-दर्शिका और संरक्षिका थीं। विजय के अवसर पर उन्हें प्रसन्न वर देने वाली देवी स्वरूपा थीं।

२. सावित्री बाई ठाणेदारीण :—जब शिवाजी ने कर्नाटक पर चढ़ाई की तब दादाजी-प्रभु नामक वीर ने बेलवाड़ी अर्थात् बल्लारी नामक क़िले में घेरा डाला। वह क़िला एसाजी प्रभु नामक थानेदार के अधिकार में था। उभय-पक्ष में घनघोर युद्ध हुआ। दादाजी ने शत्रु पक्ष के लोगों को अपनी ओर मिला कर दुर्ग के घेरों में आग लगवा दी और ज्यों ही लोग उसे बुझाने में लगे त्योंही अकस्मात क़िले पर चढ़ाई कर दी। एसाजी प्रभु मारे गये और क़िला शिवाजी के हस्तगत होने ही को था कि इतने में एसाजी की पत्नी सावित्री बाई ने पति की मृत्यु का सोच न करके अपने लोगों को सामना करने के लिए उत्साहित किया। और घोड़े पर चढ़ कर पति की तलवार से कुछ घण्टे तक लड़कर दादा जी को वापस भिजवा दिया। किन्तु दूसरी चढ़ाई में दादाजी ने सावित्री बाई के घोड़े के पैर काट दिये। जिससे वे नीचे गिर पड़ीं और उनका एक हाथ टूट गया। दादाजी ने क़िला हस्तगत करके वहाँ की सम्पत्ति तथा सावित्रीबाई को शिवाजी की भेंट भेज दिया। शिवाजी ने उसका बड़ा सम्मान किया और उन्हें मराठी स्वराज्य के भला चाहने का उपदेश करके वार्षिक वेतन भी स्थिर कर दिया तथा उन्हें ससम्मान बेलवाड़ी गाँव पहुँचा दिया। सन् १६७७ ई० में यह घटना हुई थी। शिवाजी के साथ लड़ने में इस स्त्री ने जो वीरता दिखाई उसे आज भी महाराष्ट्र का बच्चा बच्चा बड़े अभिमान के साथ कहता है।

३. उमाबाई दाभाड़े :—मेवाड़ के इतिहास में पन्नादाई की स्वामि-सेवा का जितना गौरव है, महाराष्ट्र के इतिहास में दाभाडे सेनापति की प्रभु-सेवा उससे कम महत्व नहीं रखती। औरङ्गज़ेब के सम्भाजी के अमानुषिक बध करने पर एसवा दाभाड़े ने ही उनके छोटे भाई

राजाराम तथा उनके कुटुम्बियों की रक्षा के लिए स्वयं अपने हाथों से, अपनी स्त्री, लड़की और पुत्रवधू का वध किया था। तदनन्तर दाभाडे को सेनापति का पद दिया गया। गुजरात में मराठी-सत्ता दाभाडे ने ही स्थापित की और उनकी चाकरी के नाते ही गायकवाड़ का राज्य वहाँ स्थिर हुआ। जोरावर खाँ बावी नामक एक मुगल सूबेदार अहमदाबाद में रहता था, जो मराठों की बढ़ती हुई सत्ता में बड़ा बाधक था। अतएव साहु छत्रपति ने सेनापति दाभाडे को अहमदाबाद जीतने को भेजा। खण्डेराव दाभाडे के बालक बाबूराम और यशवन्तराव अनजान थे। अतएव उनकी माता उमाबाई दाभाडे सूबेदारी का प्रबन्ध करती थीं। इसीलिए दाभाडे बन्धुओं को सामना करने के लिए न भेज कर जोरावर खाँ का पराजय करके अहमदाबाद जीतने की उन्हें आज्ञा दी गयी थी। उमाबाई शीघ्र ही अपनी सेना को साथ लेकर अहमदाबाद की ओर चढ़ धाई और स्वयं [illegible]स्तौल पेशकब्ज और तलवार लेकर अपनी [illegible]ना से बोलीं—'मर कर भी शत्रुओं को मारने [illegible] जिस में शक्ति हो वही मेरे साथ आवे। [illegible]न्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अहमदाबाद [illegible]ा क़िला न जीतूँगी, अन्न न ग्रहण करूँगी। [illegible]मासान युद्ध के पश्चात् मराठों को सफलता [illegible]मिली और जोरावर खाँ समर-भूमि से भाग [illegible]या। उमाबाई ने अपनी स्वामि-भक्ति और [illegible]ीरता से मराठों के इतिहास में अपना नाम [illegible]मर कर दिया है। वे धन्य हैं।

४. ताराबाई:—छत्रपति के द्वितीय पुत्र राजाराम की पत्नी का नाम ताराबाई था। सम्भाजी की मृत्यु के अनन्तर उनके छोटे भाई राजाराम ने भरत की नाईं, निस्वार्थ भाव से सम्भाजी के पुत्र शाहु के प्रीत्यर्थ मराठा राज्य की रक्षा और सेवा की थी। शाहुजी—सम्भाजी के पुत्र—मुग़लों के बन्दी थे। अतएव उनकी अनुपस्थिति में ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को गद्दी पर बिठालने का षड़यन्त्र रचा। वास्तव में शिवाजी के प्रपौत्र शाहुजी का ही सितारे की गद्दी पर अधिकार था। अतएव ताराबाई की महत्वाकांक्षा से मन्त्रियों ने सहानुभूति नहीं दिखलाई। पर ताराबाई ने पारस्परिक झगड़े उठाये और अपने अनुयायियों का अलग दल बनाया। जब शाहुजी मुग़लों की क़ैद से मुक्ति पाकर वापस आये, तब पुराने मन्त्रियों ने उन्हीं को राजा बनाया, परन्तु ताराबाई ने उनका यथेष्ट विरोध किया। ताराबाई की महत्वाकांक्षा के ही कारण महाराष्ट्र में फूट के बीज जमे। अन्त में पारस्परिक द्वेष मिटाने के उद्देश से शाहु छत्रपति तथा उनके मन्त्रियों ने ताराबाई के व्यय के लिए वर्तमान कोल्हापुर राज्य का हिस्सा जागीर में दे दिया। इसीसे वे उस राज्य की प्रतिष्ठात्री कहलाती हैं। ताराबाई अत्यन्त चतुरा और राजनीति कुशला स्त्री थीं, शाहु की भाँति उन्होंने भी अपना मन्त्रि-मण्डल बनाया था। उन्होंने अपना राज-कार्य भी भलीभाँति चलाया।

(५) आनन्दी बाई—भीम कर्मा अटक तक मराठों का झण्डा फैलाने वाले वीरवर राघोबा-पेशवा की पत्नी का नाम आनन्दी बाई

था । रामायण में जैसे कैकेयी प्रसिद्ध हैं, महाराष्ट्र के इतिहास में उसी प्रकार आनन्दी-बाई । वीरवर राघोबा को उन्होंने अपनी मुट्ठी में कर रक्खा था, और बड़े भाई के पुत्र को राज्याधिकारी बनाने के बदले पेशवा पद प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा की चाट भी उन्हींने लगायी थी । महाराष्ट्र के इतिहास में यह प्रवाद प्रचलित है कि आनन्दी बाई ने ही राघोबा से अपने भतीजे नारायणराव पेशवा को बन्दी करने की आज्ञा लिखा कर मार डालने का जाल रचा था। इस प्रकार वे नारायणराव पेशवा की हत्या का कारण हुईं । आनन्दी बाई बड़ी महत्वाकांक्षिणी थीं, साथ ही वे अत्यन्त चतुरा, बुद्धिमती तथा राजनीति-निपुणा भी थीं । महाराष्ट्रीय-इतिहास-संशोधकों के प्रयास से गहरी छानबीन के पश्चात् अब कहीं आनन्दी-बाई का यथार्थ स्वरूप प्रकट होने लगा है। इसमें सन्देह नहीं कि वे एक योग्या स्त्री थीं, पर यह निर्विवाद सत्य है कि उन्हीं के षड्यन्त्र के कारण राघोबा अंग्रेज़ों का हस्तक बन गया था । जिससे अंग्रेज़ों के भारत में पैर जमे और मराठाशाही नष्ट-भ्रष्ट हो गयी ।

(६) गोपिका बाई तथा रामा बाई—गोपिका बाई बालाजी बाजीराव पेशवा की स्त्री तथा पहले नारायणराव माधोराव पेशवा की माता थीं, वे भी बड़ी चतुरा तथा बुद्धिमती स्त्री थीं । नारायणराव के पुत्र सवाई माधोराव पेशवा के नाम के गोपिकाबाई द्वारा लिखित पत्र उपलब्ध हैं । सती साध्वी रमाबाई गोपिकाबाई की पुत्रवधू अर्थात् पहिले माधवराव पेशवा की पत्नी थीं । उनकी पतिपरायणता, स्वाभिमान, चतुरता आदि बातें अनूठी हैं । अल्पावस्था में ही वे अपने पति के साथ सती हुई थीं । पेशवाओं में पहिले माधवराव बड़े प्रतापशाली हुए। इन उभय पति पत्नी के बल पर ही अन्त में मराठे समग्र भारत के सत्ताधारी हुए थे ।

ताई तेलिन—इस निम्न जाति के स्त्री का नाम महाराष्ट्र के इतिहास में आया है । छत्रपति शाहू के मन्त्री, प्रतिनिधि और पेशवाओं में सदा अनबन रहा करती थी । परशुराम त्र्यम्बक प्रतिनिधि की ताई तेलिन रखेली थी। जो प्रतिनिधि के साथ वासोटा क़िले पर रहा करती थी । एक समय पेशवा ने अपने सेनापति बापू गोखले को दलबल सहित वासोटा क़िला जीत कर प्रतिनिधि को क़ैद कर लाने के लिए आज्ञा दी थी, किन्तु ताई तेलिन ने बड़ी वीरता से बापू गोखले का सामना कर उन्हें परास्त किया । उस घटना के स्मारक में तत्कालीन कवि का लिखा हुआ एक छन्द महाराष्ट्र के बच्चे बच्चे को कण्ठ है। यथा—

श्रीमत पन्त प्रतिनिधि, ज्याचा किल्ला अजिंक वासोटा।
तेलिण मारी सोटा बापु गोखल्या सम्भाल का सोटा॥

अर्थात् श्रीमान् पन्त प्रतिनिधि का वासोटा क़िला अजेय है । तेलिन ने वीरता से ऐसे सोंटे जमाये जिससे बापू गोखले को अपनी काँछ सँभालते-सँभालते नाकों दम आ गया । स्वराज्य के तेली तमोली और रखेलियाँ भी अपने देश की नाक न रखते तो आज हमें उनकी गुण, गरिमा

गाने का अवसर ही कैसे मिलता।

श्री अहिल्याबाई—भारतवर्ष में ऐसा कौन अभागा पुरुष होगा जिसने इन्दौर राज्य की स्वामिनी वीरवर मल्हारराव होलकर की पुत्र-वधू और खण्डेराव की पत्नी अहिल्याबाई का नाम न सुना हो। मल्हारराव होलकर राजकाज में उन्हीं से सम्मति लिया करते थे। वरन् राज्य का सारा कार्य-भार उन्हीं पर छोड़ रक्खा था। अहिल्याबाई का राज्यकाल अत्यन्त सुख-प्रद और लोकप्रिय था। इंग्लैण्ड की राज-निपुण रानी एलिज़िबेथ की अपेक्षा तो उनके शील, औदार्य आदि गुण कई गुना अधिक थे। पुत्र-विरह के उद्वेगजनक अवसर पर राघोबा की स्वार्थपरता से प्रेरित हो कर अहिल्याबाई जैसी स्वाभिमानिनी रमणी ने उन्हें जो पत्र लिखा वह अत्यन्त उत्तेजक था। वह सूबेदार-मल्हारराव होलकर जैसे वीर की पुत्र-वधू को ही शोभनीय और कायरों के मन में भी वीरता उत्पादक है। भारतवर्ष में ऐसा कोई प्रसिद्ध और पवित्र स्थान नहीं है जहाँ अहिल्याबाई का स्मारक न हो। अहिल्याबाई प्रातःस्मरणीया हैं। और "यावच्चन्द्र दिवाकरौ" उनका नाम अमर बना रहेगा।

भीमाबाई बुले—यह वीरवर यशवन्तराव की कन्या थीं। वे कर्मवीर थीं। "हम जैसी निपुत्रिक विधवाओं को अपने वंश की कीर्ति तथा राज्य रक्षा के प्रीत्यर्थ रणक्षेत्र में भी जाना चाहिये"—उनके ये उद्गार मननीय हैं। वे अश्वारोहण में बड़ी कुशला थीं और भाला तथा तलवार चलाने में तो उनका सामना विरला ही कर सकता था। जब सन् १८१७ ई० में महीदपुर के युद्ध में होलकर की सेना का पराजय हुआ तब भीमाबाई अपमान से विक्षिप्त होकर अपनी थोड़ी सी सेना सहित अंग्रेज़ी सेना पर टूट पड़ीं। एक दिन मार्ग में सरजान मालकम की उनकी मुठभेड़ होगयी, मालकम ने उन्हें घेरना भी चाहा, पर भीमाबाई उनको चकमा देकर वहाँ से चल दीं।

लक्ष्मी बाई आंग्रे—भारत के पश्चिमी किनारे का अपनी जल-सेना के द्वारा रक्षा करने का कार्य कानोजी आंग्रे किया करते थे। उनके पुत्र सेखोजी आंग्रे अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो गये। अतएव उनकी माता लक्ष्मी बाई जल-सेना का प्रबन्ध किया करती थीं, जिससे पेशवा के दरबार में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। जब पुत्र-शोक की समवेदना का पेशवा ने उन्हें पत्र भेजा तब उस धैर्यशालिनी स्त्री ने उत्तर दिया कि "ईश्वर की इच्छा के अनकूल ही सब कुछ होता है। होनहार की भाँति दुर्वार कोई वस्तु नहीं है। अतएव बीती हुई बात पर शोक करना निरर्थक है। दुख को भूल कर हमारे घराने ने पहिले से जो नाम कमाया है उसी की रक्षा करना ही हमारा भी कर्तव्य है, तथा स्वामि-कार्य को सम्मुख रख कर उसका पालन करना ही हमारे जीवन की सार्थकता है। मुझे तो पुत्र की अपेक्षा स्वामि-कार्य का अधिक महत्व प्रतीत होना है। पुत्र शोक के कारण मैं कभी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकती। उनका आत्म-बल सराहनीय है।

था । रामायण में जैसे कैकेयी प्रसिद्ध हैं, महाराष्ट्र के इतिहास में उसी प्रकार आनन्दी-बाई । वीरवर राघोबा को उन्होंने अपनी मुट्ठी में कर रक्खा था, और बड़े भाई के पुत्र को राज्याधिकारी बनाने के बदले पेशवा पद प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा की चाट भी उन्हींने लगायी थी । महाराष्ट्र के इतिहास में यह प्रवाद प्रचलित है कि आनन्दी बाई ने ही राघोबा से अपने भतीजे नारायणराव पेशवा को बन्दी करने की आज्ञा लिखा कर मार डालने का जाल रचा था। इस प्रकार वे नारायणराव पेशवा की हत्या का कारण हुई । आनन्दी बाई बड़ी महत्वा-कांक्षिणी थीं, साथ ही वे अत्यन्त चतुरा, बुद्धिमती तथा राजनीति-निपुणा भी थीं । महाराष्ट्रीय-इतिहास-संशोधकों के प्रयास से गहरी छानबीन के पश्चात् अब कहीं आनन्दी-बाई का यथार्थ स्वरूप प्रकट होने लगा है। इसमें सन्देह नहीं कि वे एक योग्या स्त्री थीं, पर यह निर्विवाद सत्य है कि उन्हीं के षड्यन्त्र के कारण राघोबा अंग्रेज़ों का हस्तक बन गया था । जिससे अंग्रेज़ों के भारत में पैर जमे और मराठाशाही नष्ट-भ्रष्ट हो गयी ।

(६) गोपिका बाई तथा रामा बाई—गोपिका बाई बालाजी बाजीराव पेशवा की स्त्री तथा पहले नारायणराव माधोराव पेशवा की माता थीं, वे भी बड़ी चतुरा तथा बुद्धिमती स्त्री थीं । नारायणराव के पुत्र सवाई माधोराव पेशवा के नाम के गोपिकाबाई द्वारा लिखित पत्र उपलब्ध हैं । सती साध्वी रमाबाई गोपिकाबाई की पुत्रवधू अर्थात् पहिले माधवराव पेशवा की पत्नी थीं । उनकी पतिपरायणता, स्वाभिमान, चतुरता आदि अनूठी हैं । अल्पावस्था में ही वे अपने के साथ सती हुई थीं । पेशवाओं में माधवराव बड़े प्रतापशाली हुए। इन पति पत्नी के बल पर ही अन्त में मराठे भारत के सत्ताधारी हुए थे ।

ताई तेलिन—इस निम्न जाति के नाम महाराष्ट्र के इतिहास में आया है। शाहू के मन्त्री. प्रतिनिधि और पेशवाओं में अनबन रहा करती थी। परशुराम प्रतिनिधि को ताई तेलिन रखेली थी। प्रतिनिधि के साथ वासोटा क़िले पर करती थी । एक समय पेशवा ने अपने पति बापू गोखले को दलबल सहित क़िला जीत कर प्रतिनिधि को क़ैद कर लिए आज्ञा दी थी, किन्तु ताई तेलिन ने वीरता से बापू गोखले का सामना कर परास्त किया। उस घटना के स्मारक में लीन कवि का लिखा हुआ एक महाराष्ट्र के बच्चे बच्चे को कण्ठ है। यथा

श्रीमत पन्त प्रतिनिधि, जाच्छा किल्ला अजिंक बा
तेलिण सारी लोटा बापु गोखल्या सम्भाल का

अर्थात् श्रीमान् पन्त प्रतिनिधि का क़िला अजेय है । तेलिन ने वीरता से ऐसे जमाये जिससे बापू गोखले को अपनी सँभालते-सँभालते नाकों दम आ गया । के तेली तमोली और रखेलियाँ भी अपने नाक न रखते तो आज हमें उनकी गुण,

गाने का अवसर ही कैसे मिलता।

श्री अहिल्याबाई—भारतवर्ष में ऐसा कौन अभागा पुरुष होगा जिसने इन्दौर राज्य की स्वामिनी वीरवर मल्हारराव होलकर की पुत्र-बधू और खण्डेराव की पत्नी अहिल्याबाई का नाम न सुना हो। मल्हारराव होलकर राजकाज में उन्हीं से सम्मति लिया करते थे। वरन् राज्य का सारा कार्य-भार उन्हीं पर छोड़ रक्खा था। अहिल्याबाई का राज्यकाल अत्यन्त सुख-प्रद और लोकप्रिय था। इंग्लैण्ड की राज-निपुण रानी एलिजिवेथ की अपेक्षा तो उनके शील, औदार्य आदि गुण कई गुना अधिक थे। पुत्र-विरह के उद्वेगजनक अवसर पर राघोवा की स्वार्थपरता से प्रेरित हो कर अहिल्याबाई जैसी स्वाभिमानिनी रमणी ने उन्हें जो पत्र लिखा वह अत्यन्त उत्तेजक था। वह सूबेदार-मल्हारराव होलकर जैसे वीर की पुत्र-बधू को ही शोभनीय और कायरों के मन में भी वीरता उत्पादक है। भारतवर्ष में ऐसा कोई प्रसिद्ध और पवित्र स्थान नहीं है जहाँ अहिल्याबाई का स्मारक न हो। अहिल्याबाई प्रातःस्मरणीया हैं। और "यावच्चन्द्र दिवाकरौ" उनका नाम अमर बना रहेगा।

भीमाबाई बुले—यह वीरवर यशवन्तराव की कन्या थीं। वे कर्मवीर थीं। "हम जैसी निपुत्रिक विधवाओं को अपने वंश की कीर्ति तथा राज्य रक्षा के प्रीत्यर्थ रणक्षेत्र में भी जाना चाहिये"—उनके ये उद्गार मननीय हैं। वे अश्वारोहण में बड़ी कुशला थीं और भाला तथा तलवार चलाने में तो उनका सामना विरला ही कर सकता था। जब सन् १८१७ ई० में महीदपुर के युद्ध में होलकर की सेना का पराजय हुआ तब भीमाबाई अपमान से विक्षिप्त होकर अपनी थोड़ी सी सेना सहित अंग्रेज़ी सेना पर टूट पड़ीं। एक दिन मार्ग में सरजान मालकम की उनकी मुठभेड़ होगयी, मालकम ने उन्हें घेरना भी चाहा, पर भीमाबाई उनको चकमा देकर वहाँ से चल दीं।

लक्ष्मी बाई आंग्रे—भारत के पश्चिमी किनारे का अपनी जल-सेना के द्वारा रक्षा करने का कार्य कानोजी आंग्रे किया करते थे। उनके पुत्र सेखोजी आंग्रे अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो गये। अतएव उनकी माता लक्ष्मी बाई जल-सेना का प्रबन्ध किया करती थीं, जिससे पेशवा के दरबार में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। जब पुत्र-शोक की समवेदना का पेशवा ने उन्हें पत्र भेजा तब उस धैर्यशालिनी स्त्री ने उत्तर दिया कि "ईश्वर की इच्छा के अनकूल ही सब कुछ होता है। होनहार की भाँति दुर्वार कोई वस्तु नहीं है। अतएव बीती हुई बात पर शोक करना निरर्थक है। दुख को भूल कर हमारे घराने ने पहिले से जो नाम कमाया है उसी की रक्षा करना ही हमारा भी कर्तव्य है, तथा स्वामि-कार्य को सम्मुख रख कर उसका पालन करना ही हमारे जीवन की सार्थकता है। मुझे तो पुत्र की अपेक्षा स्वामि-कार्य का अधिक महत्व प्रतीत होता है। पुत्र शोक के कारण मैं कभी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकती। उनका आत्म-बल सराहनीय है।

जीवाऊ शिन्दे—सम्भाजी और राजाराम महाराज को अपूर्व सहायता करने वाले रविराव शिन्दे कुल में नेमाजी शिन्दे बड़े प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं। नेमाजी की पत्नी जीवाऊ शिन्दे बड़ी चतुरा स्त्री थीं। बाजीराव पेशवा पर भी उनकी बड़ी धाक जम गयी थी। बाजीराव पेशवा का उनके नाम का भेजा हुआ एक पत्र उपलब्ध है। उनका जीवन बड़े महत्व का था।

भागीरथी बाई शिन्दे—ये वीरवर महादजी सिन्धिया की भावज थीं। इनके पति दत्ताजी शिन्दे पानीपत के युद्ध में मारे गये, तो इनके भतीजे जयप्पा सिन्धिया के पुत्र जनकोजी रोने लगे। उस समय भागीरथी बाई ने कहा,—तुम रोते क्यों हो। इससे तो तुम लड़की होते तो बड़ा अच्छा होता। अपने चचा का बदला लोगे तभी मैं तुम्हें सच्चा सपूत मानूँगी। अन्त में वीरवर जनको जी ने अभिमन्यु सरीखे पराक्रम करके शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये। इस सीख का सारा श्रेय भागीरथी बाई को ही है।
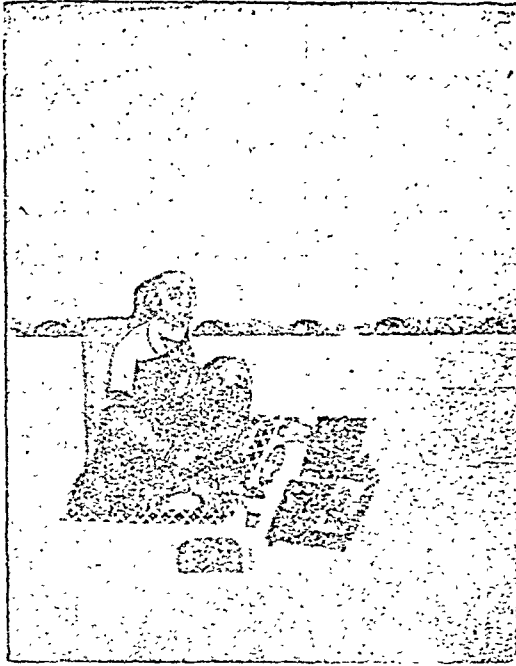
अन्त में वीरवर जनको जी ने अभिमन्यु सरीखे पराक्रम करके शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये। इस सीख का सारा श्रेय भागीरथीबाई को ही है।

वायजा बाई सिन्धिया

वायजावाई सिन्धिया—मराठों की उज्ज्वल स्त्री-परम्परा की अन्तिम प्रतिनिधि महाराजा दौलतराव की पत्नी वायजावाई सिन्धिया थीं। उनका अपने पति पर बड़ा प्रभाव था और महाराजा दौलतराव सिन्धिया भी विना उनकी सम्मति के कोई कार्य नहीं करते थे। राज्य के लिए अधिकारी बनाते अथवा स्वयं ही राज-कार्य के देखने का भार महाराज ने उन्हीं पर सौंप रक्खा था। कूट-नीतिज्ञ लार्ड विलियम वेन्टिंग को वायजाबाई ने दूरदर्शिता से जो बहकावे दिये वे इतिहास में बड़े गौरव की बातें हैं। पर अन्त में गुण्डेपन ने उन पर विजय प्राप्त कर ली और महान मुत्सद्दी वायजावाई को अपना राज्य छोड़ कर दर-दर घूमना पड़ा था। वे कार्य-दक्षा तथा राजनीति-निपुणा थीं, उनकी धर्म परायणता के गीत देवी अहिल्यावाई की भाँति स्थान-स्थान पर गाये जाते हैं। उनका विस्तृत चरित्र हम प्रकाशित कर चुके हैं। यशवन्तसिंह राठौड़ की वीर पत्नी की तरह अपने पति को रण-क्षेत्र से विमुख देख कर

श्री अहिल्याबाई की छत्री ।
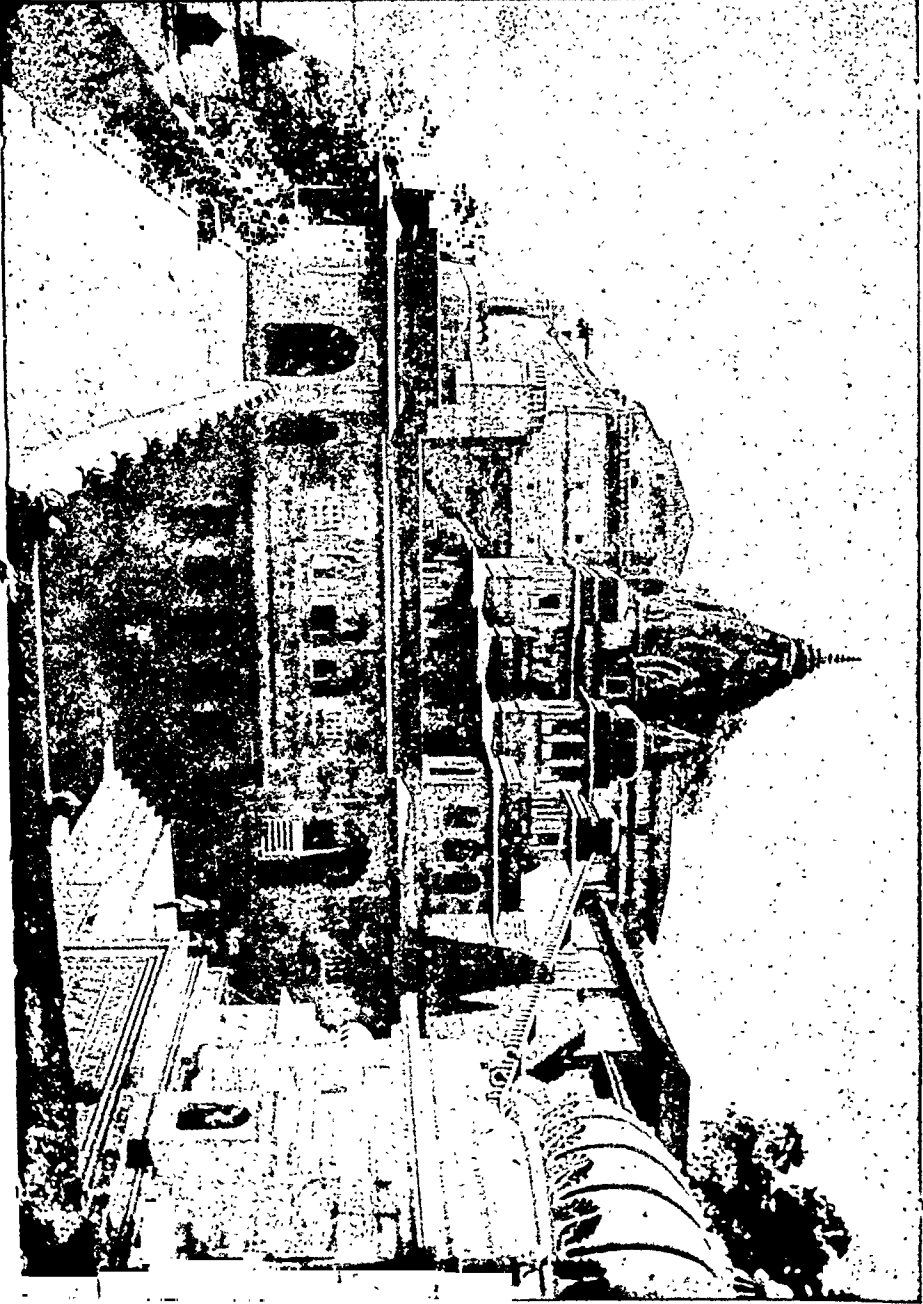
उनका निषेध करने वाली वीरस्नुषा गधाबाई, चतुर मैनाबाई पवार, बुद्धिमती जमनाबाई गायकवार, दूरदर्शी सुगुणयबाई निम्बालकर, झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई, महाराज माधवराव सिन्धिया की माता सख्याराजा साहब सिन्धिया आदि सहस्रों आदर्श स्त्रियों के चरित्र महाराष्ट्र के इतिहास में भरे पड़े हैं। वास्तव में मराठों के इतिहास का वह भाग बड़ा उज्ज्वल है, उसे देखते हुए यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि मराठा स्त्रियाँ केवल पर्दे के बन्दीगृह में कभी नहीं रहीं।

सख्या राजा सिन्धिया

वरन स्त्री-स्वतन्त्रता, स्त्रियों के महत्व और उनकी पूज्यता के विषय में महाराष्ट्र को ही शीर्ष-स्थान प्राप्त है। जिस भाँति रणबाँकुरे स्वामि-भक्त मराठों ने अद्वितीय गुणों का प्रदर्शन किया, उसी प्रकार मराठा स्त्रियाँ भी बड़ी कर्तव्य-दक्ष हो गयी हैं। उनके धैर्य, सङ्कटों से बराबरी करना, स्वामि-भक्ति स्वार्थत्यागादि गुणों के कारण उनकी प्रतिष्ठा, प्रभाव और सम्मान था। और मराठी-साम्राज्य के अभ्युदय में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने बड़ी सहायता की थी।

—पन्नालाल त्रिपाठी

उत्सर्ग

"कल ही तो उसकी हलदी चढ़ने को है और षष्ठी को विवाह । उन्मत्त उन्मादी शोणित के सञ्चार में लड़के का अमङ्गल न चेतो । सिंहगढ़ की ओर बहुतेरों को जाते देखा है, उनका केवल पृष्ठभाग ही देखने को मिला, पुनर्वार मुख देखने का अवसर नहीं आया ।"

"बुढ़ापे का सम्मान रक्खो,—तुम्हें यह शोभा नहीं देता ।"

"तुम जो चाहो । मेरी बातें अस्सी वर्ष के वय का अनुभव रखती हैं ।"

"अब तो सिंहगढ़ का विवाह हो ले । तब तक रायबा का विवाह स्थगित रहेगा ।"—तानाजी ने बूढ़े शेलार की ओर अभिमुख होकर उत्तर दिया ।

"ऐसे-ऐसे सत्ताइस क़िले जीते हैं । सिंहगढ़ की हार हुई तो मेरी विशेषता ही क्या रही, मेरे मानव-जीवन की सफलता ही क्या रही, पितृ-पितामह के क्रमागत रक्त की सार्थकता ही क्या रही । ये तुच्छ यवन..............." उस वीर मराठा के नेत्रों से स्फुलिङ्गों की वर्षा होने लगी ।

विवाह का मङ्गल-गान सहसा रुक गया । कुल-वधुएँ अपने-अपने घर लौटीं । उनके स्थान पर ठिंगने, विकराल, हड्डीले, कट्टर मराठों की गोष्ठी एकत्र हुई । तानाजी ने प्रत्येक मराठा की ओर दृष्टि-निक्षेप किया, प्रत्येक के मूक हृदय की प्रलयङ्करी भावनाएँ उनके नेत्रों में प्रतिबिम्बित हो उठीं । ताना जी ने पुनः एक बार उनकी ओर देखा,—वे उन्मादी थे, जीवन में ऐसे अवसरों को देखने का उनका यह नया अभ्यास न था । उनके शरीर का शोणित उत्तप्त हो कर नृत्य कर रहा था । सिंहगढ़ के युद्ध की आकुलता से वे विक्षिप्त हो उठे थे। सब के सब अत्याचारियों के रक्त-पिपासु थे। उन्हें सब को परीक्षोत्तीर्ण देख कर आत्म-गौरव से तानाजी की चेष्टा में एक विचित्र आभा विराज गयी ।

युद्धक्षेत्र में जाने की तैयारी हुई । सब ने अपनी तलवारें बाँधीं, पहाड़ी चट्टानों पर चढ़ने के लिए गोहें और जञ्जीरें साथ लीं। चहुँ ओर कोलाहल मच गया । जीजीबाई ने वात्सल्य-अनुराग से पुलकित हो कर निम्न-श्रेणी के तानाजी को अपने हृदय से लगाया, स्नेह-विह्वलता में ही उन्हें मङ्गल आशीर्वाद दिया, उनकी विजय-कामना की ।

विदा के समय ताना जी ने प्रभु छत्रपति के श्री-चरणों में अभिवादन किया । उन्होंने कहा—

"मैं तो सिंहगढ़ की ओर चला । युद्ध से लौट कर आऊँ अथवा नहीं, इसका कुछ निश्चय नहीं । लौटने की कामना भी नहीं है । श्री-चरणों की कृपा से सभी सुख देखे । अतुल सम्पत्ति, इच्छानुरूप पत्नी, दास, दासी किसी बात की कमी

न रही। प्रभु की सेवा के लिए भगवान ने अपना वरदान सा रायवा भी देकर इतना बड़ा कर दिया है। सिंहगढ़ की तो बात ही क्या, यदि अवसर पड़े तो दिखाता, मेरे सम्मुख कुरुक्षेत्र का युद्ध, राम-रावण का सङ्घर्ष कितना तुच्छ, कितना सामान्य, कितना नगण्य है। ये तुच्छ यवन······ ·········सिंहगढ़, उसकी वे गिरि-शृङ्खलाएँ, पार्वतीय-स्थल, वन्य-सौन्दर्य, ······ उस तक पहुँचने का फल उन्हें चखाऊँगा। विश्व की कोई भी शक्ति सिंहगढ़ पर आधिपत्य स्थापित करने का दुस्साहस न करे। इस रक्त-पिपासु असि ने जीवन के इतने दिनों तक, यवनों के रक्त का पान ही किया है। अब भी, न जाने क्यों, इसकी धार को देख कर, भाले की नोंक पर दृष्टि लगा कर, एक उन्माद छा जाता है, नसों में विचित्र शक्तिमय विद्युल्लहरी प्रवाहित होने लगती है। प्राणों की ममता से आतुर, भीरु और दुर्बल यवनों को देख कर करुणा उत्पन्न हो उठती है, त्रास लगता है; किन्तु,·········सिंहगढ़ के दुर्ग पर शिववा की विजय-वैजयन्ती फहराऊँगा। अब तक सत्ताइस दुर्गों पर आधिपत्य स्थापित कर चुका हूँ। इस तलवार की धार और भाले की नोक ने मन-माना रक्त-पान किया है। इस बार भी इनकी तृप्ति हो ले। पर, ऐसी कुछ प्रेरणा होती है कि इस बार वहीं मैं अन्तिम गति लाभ करूँगा। अपने ऐकान्तिक पुत्र रायवा को बड़े लाड़-चाव से पाला-पोषा है। वह मेरा रक्त सफल कर सके, यही एक अन्तिम लालसा है। मेरे पश्चात् उसे अपनी पुण्यमयी शरण में आश्रय दीजियेगा। चरण-रज दीजिये। बस, और कोई कामना नहीं है।"

सिंहगढ़ की सुन्दर गिरि-गुहाओं, शिलाओं और चट्टानों तथा ऊँची पहाड़ी के छोटे-छोटे टीलों पर सर्वत्र वे लघुकाय, दीर्घ-केशदाम एवं दिव्य-ललाट-युक्त, भव्य-विराट-विकराल मराठा दृष्टिगोचर होने लगे। प्रकृति सिहर उठी। युद्ध का भैरव नाद प्रारम्भ हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों ये क्षुद्र गणना के मराठा मुग़लों की अपार सेना को अभी-अभी प्रलय में निलय किये देते हैं। हुआ भी ऐसा ही। मराठों का वह जोश, वह उन्माद, उनके वीरोचित शोणित का वह नृत्य,—उसके सम्मुख मुसलमान सेना भय-त्रस्त हो उठी। सृष्टि अपनी रचना का ऐसा निर्मम, ऐसा निर्दय, संहार देख कर सिसकने लगी। एक-एक मराठा शत-शत यवन सैनिकों के लिए यथेष्ट था। विकराल दृश्य उपस्थित हुआ। मुग़ल मराठों का सामना न कर सके। ताना जी ने अपने प्रबल-पराक्रम-प्रदर्शन के सम्मुख संसार का अस्तित्व विसार दिया था। जो उनके सम्मुख आता, वह पर-पार के घाट उतरता। बस, ताना जी की सारी शक्तियाँ इसी एक उन्माद में केन्द्रीभूत हो गयीं थीं। बात की बात में वे दुर्ग के समीप थे। यवनों की सेना इस त्रास को सहन न कर सकी। मुग़ल क़िलेदार उदयभान पठान का वध कर डाला गया। इसी बीच वीर तानाजी के ऐसा तीक्ष्ण आघात पहुँचा, जिसने तत्क्षण उनके इहजीवन की लीला-समाप्त कर दी। उन्हें वीर-गति लाभ करते देख कर मराठे और भी

अधिक उत्तप्त हो उठे। सुचारु नियन्त्रण के अभाव से मुग़लों में भगदड़ मच गयी। ताना-जी मारे गये। किन्तु सिंहगढ़ के दुर्ग पर उनके विजय की काषाय वैजयन्ती फहराई गयी। उत्सर्ग का यही प्रतिदान उन्हें अभीष्ट भी था।

श्मशान के चहुँ ओर युद्ध में काम आये व्यक्तियों की चिताएँ धू-धू करके जल रही थीं। ताना जी की चिता में भी शिवबा रायबा तथा उनके अन्य आत्मोय-सुहृदों ने मिल कर अग्नि-स्पर्श कराया।

शिवबा को ताना जी की अन्तिम बातें स्मरण हो उठीं। एक भूमि-प्रान्त पर विषन्न मन से रायबा को बैठे देख कर उन्होंने डबडबाई आँखों और भर्राई आवाज़ से कहा—

"बेटा, आज यह ताना जी के मृत शरीर का दाह नहीं हो रहा, यह शिवाजी के शव का संस्कार है। आज से तुम राज-पुत्र की भाँति मान्य हो। तानाजी तुम्हारे लिए सदा जीवित हैं।"

बूढ़े शेलार ने भी यह सब देखा। वह आत्म-ग्लानि से लज्जित और क्षुभित हो रहा था। कुछ क्षणों के लिए ताना जी की भाँति प्राण देने के लिए उसका मन भी अकुला उठा। और उस वञ्चना में ईर्षा से उसका मन विदग्ध हो उठा।

दूसरी ओर नवयुवकों की एक गोष्ठी किसी गरिमा-पूर्ण विषय पर गभीर संलाप कर रही थी। बीच-बीच में ताना जी की चिता की ओर नवयुवक एक-मन-प्राण से अवलोकने लगते थे और उससे निःसृत स्फुलिङ्गों के मानसिक आकर्षण के द्वारा अपने कोमल हृदय में निलय कर देते थे। चिता धूमिल हो गयी। गोष्ठी के प्रत्येक युवक ने शव से छीने हुए पुष्पों को परस्पर वितरित किया, भक्ति भरे प्राणों से माथे लगाया, सब ने कुछ सङ्कल्प किया और शिवबा के चरणों में मूक प्रणाम करके द्रुत वेग से एक ओर चल दिये। उनके मुख से गगन-भेदी नाद हुआ—ताना जी की जय! प्रतिध्वनि हुई। ताना जी की जय!!

शिवबा आश्चर्य-चकित भाव से उनकी ओर ताक कर रह गये। सुनते हैं—शिवबा के प्रत्येक सङ्कटमय युद्ध के समय वे दृग्गोचर होते थे।

—सुन्दरलाल त्रिपाठी

❀ ❀ ❀

विदा

आँखों में आँसू भरते हैं।
बारंबार रोम-कूपों में निर्झर से झरते हैं।
भावी की आशाएँ करके सब धीरज धरते हैं।
फिर मिलने के लिए बन्धु, हम तुम्हें विदा करते हैं।

—मैथिलीशरण गुप्त

मराठा आदर्श बालक

एक आधुनिक राष्ट्रीय कवि के कथनानुसार--

> भावी भारत गौरव गढ़ की
> सुदृढ़ नींव के ये पत्थर।
> आर्यदेश की अटल इमारत
> का बनना इन पर निर्भर ॥

वास्तव में बालक ही देश की भावी उज्वल आशा के एक मात्र आधार होते हैं। 'The Child is the Father of the man', होनहार बिरवान के होत चीकने पात' और पूत के लक्षण पालने में दिखाई देते हैं' आदि उक्तियाँ होनहार बालकों के लिए प्रचलित हैं। उनका गर्भितार्थ भी बड़ा गूढ़ और आशामय है। बालकों की परिस्थिति सुन्दर और उनके चरित्रों को योग्य साँचे में ढालने वाली हो, इसी उद्देश से उनके लिए नाना प्रकार के अनुकूल साधन जुटाये जाते हैं, और उनका जो कुछ असर होता है, उसी से बालकों के भावी-जीवन का अन्दाजा लगाया जाता है। जार्ज-वाशिङ्गटन की कुल्हाड़ी और उसके पिता का लाड़ला वृक्ष, एक दीन किसान के लड़के जेम्स-गारफील्ड की अपनी माता से राष्ट्रपति (प्रेसीडेण्ट) विषयक जिज्ञासा आदि बातें उनके भविष्य जीवन के उच्च होने की ही परिचायिका थीं। महाराष्ट्र के इतिहास में भी एक से एक बढ़ कर पुरुषार्थी व्यक्ति हो गये हैं। अतएव हमें देखना यह है कि उनके बाल्य-जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ भी उनके चरित्र को बनाने में कहाँ तक सफलीभूत हुईं।

छत्रपति शिवाजी के दादा मालोजी भोंसला भाईबन्दी के झगड़ों के कारण थोड़ी सी ज़मींन्दारी में पोषण न होते देख कर लुखजी जाधवराव देशमुख सरकार दौलताबाद मनसबदार निजामशाही से, जो १२ सहस्र सवारों के सरदार थे, मिले। जाधवराव ने उन्हें अपने पास नौकर रख लिया। वहीं पर उनके शाहाजी और शरीफजी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। शाहाजी बड़े सुन्दर और सुगठित शरीर के थे। जाधवराव की एक कन्या थी; अतएव उसके साथ खेलने के लिए वे शाहाजी को बुलाया करते थे। शाहाजी की आयु पाँच वर्ष की और जाधवराव की कन्या तीन वर्ष की थी। होली का त्यौहार था। सभी मराठा सिपाही जलसे के लिए बुलाये गये। रङ्ग-गुलाल और वेश्या का नृत्य हुआ। दोनों बालक भी वहीं पर थे। स्नेहवश जाधवराव ने दोनों को गोद में उठा लिया और उनके सामने गुलाल रख दिया तो बाल स्वभाव के अनुसार' वे दोनों परस्पर अबीर से खेलने लगे। एकाएक जाधवराव कह उठे,—'यह जोड़ा कैसा सुन्दर प्रतीत होता है। मालोजी और विठोजी दोनों भाई वहीं पर बैठे थे। मालोजी ने यह सुनते ही उठ कर कहा—"भाइयो, सुनिये, सरदार साहब ने अभी जो कुछ कहा है तदनुसार वे आज से हमारे

समधी बन गये हैं, आप लोग इस बात के साक्षी हैं।" जाधवराव ने उस ओर ध्यान न दिया। दरबार विसर्जित होते ही जाधवराव कन्या को साथ लेकर रनिवास में गये। शाहाजी को साथ नहीं लिया। जब स्त्रियों को उक्त समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने ताना देकर कहा कि एक सरदार कन्या का एक दीन और मातहत सिपाही के लड़के के साथ क्यों कर सम्बन्ध हो सकेगा? जाधवराव ने उत्तर दिया कि मैंने तो केवल विनोद में यह बात कही थी। दूसरे दिन जाधवराव ने भालोजी को समझाने के लिए उन्हें बुलौवा भेजा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि अब समधी के यहाँ विवाह में भोजन के लिए आऊँगा तभी मिलूँगा। उनका उक्त उत्तर सुन कर जाधवराव ने उन्हें नौकरी से निकाल बाहर किया। तदनन्तर मालोजी ने निज़ामशाही के विरुद्ध आदिलशाही दर्बार में नौकरी कर ली। और अन्त में पुरुषार्थ के बल पर निज़ाम के साथ जो सन्धि कराई उसमें यह भी शर्त करा ली कि उनके जाधवराव सरदार को अपनी लड़की जीजीबाई का शाहाजी के साथ विवाह करना पड़ेगा। परिणामस्वरूप शाहाजी जीजीबाई का विवाह हुआ और जीजीबाई की कोख से छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ। मालोजी की बाल्यावस्था की घटना के कारण ही उनका भाग्य चमका और अन्त में उनकी कोख से उत्पन्न होकर शिवाजी ने मराठों के स्वराज्य की स्थापना की।

अब छत्रपति शिवाजी की बाल्यावस्था का हाल सुनिये। जाधवराव को जीजीबाई के विवाह के लिए मज़बूर किये जाने के कारण शाहाजी से, दामाद होने पर भी, जाधवराव की सदा शत्रुता रही। शाहाजी ने भी दूसरा विवाह कर लिया था और दूसरी पत्नी के साथ ही वे तञ्जौर में रहा करते थे। पिता के पुरुषार्थ के कारण जीजीबाई से विवाह होने के कारण उन्हें पूना, सुपा, चामन मुहालों की देखरेख सौंप दी थी, अतएव जीजीबाई अपने विश्वासपात्र कामदार दादोजी कोंडदेव और छोटे पुत्र शिवाजी को लेकर पूना में ही रहने लगी थीं। शिवाजी के जन्म के समय ससुर दामाद में शत्रुता के कारण युद्ध छिड़ रहा था। जीजीबाई गर्भवती होने के कारण पति की सेना के साथ आसानी से घूम फिर नहीं सकती थीं। जाधवराव अपनी कन्या जीजीबाई को क़ैद करके दामाद का अपमान करना चाहते थे। पर कन्या-दामाद की चतुरता के कारण ससुर की दाल न गली। शाहाजी दक्षिण चले गये और जीजीबाई को शिवनेरी क़िले पर छोड़ गये, उसी समय शिवाजी का जन्म हुआ था। कौन कह सकता है कि शिवाजी के जन्म की परिस्थिति का उनके चरित्र पर असर नहीं हुआ था? फिर तो शाहाजी ने केवल व्यय के लिए प्रबन्ध करके जीजीबाई और शिवाजी का नाम तक छोड़ दिया था। तब जीजीबाई ने एक मात्र आशा के आधार पर शिवाजी का चरित्र-निर्माण करने में ही अपनी शक्ति का व्यय किया। दादोजी उन्हें रामायण, महाभारत की कथा सुनाते और जीजीबाई

साधु सन्तों के कथाकीर्त्तन तथा धर्माचरण का उपदेश देती थीं। शिवाजी की आठ वर्ष की अवस्था में दादोजी ने उनका एक सिक्का बनाया था। उसका तात्पर्य यह है:—

'शिवाजी की मुद्रा शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा के वृद्धि होने वाले चन्द्रमा की तरह वर्धिष्णु और विश्वमान्य होवे।' कैसा उच्च आदर्श रक्खा गया है। शाहाजी अपने पुत्र शिवाजी को ६ वर्ष की आयु में दरबार ले गये तो उन्होंने आदिलशाह को सलाम नहीं किया। उन्होंने बीजापुर के मार्ग में एक कसाई को गाय का वध करते देखा तो कसाई का सिर काट लिया। शिवाजी ने १३ वें वर्ष में तोरणा क़िला जीत लिया और उखाड़-पछाड़ प्रारम्भ की तो बादशाह ने शाहजी को क़ैद कर लिया। तब शाहजहाँ की ओर एक बनावटी खरीता भेजने का षड्यन्त्र रच कर शाह को शह देने की युक्ति ढूँढ निकाली और शाहजी को उन्मुक्त करके अपने कन्धे पर उनकी पालकी रख कर लिवा लाये। शिवाजी के बाल्यकाल की ऐसी अनेक बातें प्रसिद्ध हैं। माता जीजीबाई के साथ चौसर-शतरञ्ज खेलते समय माता के जीतने पर वह पुरस्कार में एकाध क़िला जीतने का आदेश करतीं और शिवाजी उन्हें पूरा करते। धन्य है, जीजीबाई जैसी माता को, जो इस प्रकार शिवाजी को उत्साह देकर उनका चरित्र-निर्माण कराती थीं।

बाजीराव पेशवा—शिवाजी के अनन्तर महाराष्ट्र के इतिहास में वीरता और साहस में बाजीराव पेशवा शीर्ष स्थानीय है। उनकी बाल्यावस्था की अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं। उनके पिता प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने साहु छत्रपति की आज्ञा से दिल्ली तक पहुँच कर सैयद बन्धुओं से मराठों के जन्म सिद्ध अधिकार चौथ और सरदेशमुखी गुजरात तथा मालवा प्रान्त से प्राप्त किये थे। बाजीराव बाल्यावस्था में ही अपने पिता के साथ सितारा दरबार में थे। वे लड़ाइयों में जाया करते थे, जिससे गहरा अनुभव होने के कारण उनकी दृष्टि बड़ी व्यापक हो चुकी थी। केवल २०-२१ वर्ष की आयु में वे अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए थे, जब शाहू छत्रपति ने पिता की परम्परा निभाने का उपदेश किया तब उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि वृक्ष की जड़ को काटने से उसकी टहनियाँ भी अपने आप हस्तगत हो जायेंगी। अर्थात् दिल्ली के बादशाह को जीतने पर ही निजाम आदि शत्रुओं का प्रबन्ध हो जायगा। किसी कवि ने भी कहा है—

जग में उपजे ब्राह्मना भृगु अरु बाजीराव।
उन मेटी रजपूतियाँ इन मेटो तुरकाव॥

बाजीराव ने ही पृथ्वीराज चौहान के अनन्तर हिन्दुओं का राजत्व स्थापित करने का उच्च ध्येय रक्खा था। बाल्यावस्था में ही उन्हें घोड़े पर चढ़ना, लक्ष्यवेध, कसरत आदि की शिक्षा दी गयी थी। घोड़े का उन्हें बड़ा शौक था और भूख-प्यास की परवाह न कर अकेले ही लम्बी उड़ान मारना उनका बायें हाथ का खेल था। लिखने-पढ़ने तथा गणित की भी उन्हें शिक्षा दी गयी थी। सैनिक शिक्षा में भी वे निपुण थे। संसार के प्रपञ्च और क्रान्ति के व्यवहार

उनका बाल्यपन बीता था। उन्होंने अपने जीवन-काल में कभी विश्राम नहीं किया। बाल्यावस्था में वे अपने पिता के साथ दो-बार बन्दी किये गये थे, बाल्यावस्था के पराक्रम से प्रतिभान्वित होकर ही शाहुजी ने उन्हें पेशवा का महत्व-पूर्ण पद प्रदान किया था। मराठों के इतिहास में गजेन्द्र-मोक्ष की ऐतिहासिक घटना का श्रेय बाजीराव को ही है, छत्रसाल के—"जो गत ग्राह गजेन्द्र की सो गति भई है आज। बाजी जात बुँदेल की राखी बाजी लाज॥" इस सन्देश को पाकर बाजीराव ने दलबल-सहित बुन्देलखण्ड पहुँच कर यवनों को हटाया था। उन्हें उपहार-स्वरूप झाँसी, जालौन, सागर आदि जिले तथा मस्तानी नामक यवन रमणी छत्रसाल ने भेंट की थी, उनके पुत्र ही बाँदा के नवाब कहलाये, जिन्हें शुद्ध करने का बाजीराव ने प्रयत्न किया था।

जनकोजी सैंधिया—मराठों के इतिहास में १५ वर्ष की छोटी आयु में अपूर्व वीरता प्रदर्शित करने के कारण जनकोजी अभिमन्यु कहलाते हैं। मराठों का उत्तरी भारत पर प्रभाव स्थापित होते ही बादशाह के पेट में चूहे कूदने लगे और उसने अहमदशाह अबदाली को बुलाया, जिससे पानीपत का घनघोर युद्ध हुआ। पेशवा ने जनकोजी को लिख भेजा था कि हमें तुम्हारे भरोसे कुछ भी चिन्ता नहीं है। उधर निजाम ने भी मराठों को आकर दबाया था। वेङ्कटराव-निम्बालकर जनकोजी के साले निजाम के बड़े सरदार थे। अतएव उन्होंने उनके द्वारा जनकोजी को फोड़ना चाहा पर जनकोजी ने कहला भेजा कि रण-क्षेत्र पर हम समधी का नाता नहीं पालते। उसी युद्ध में जनकोजी के साढू मारे गये। चचेरे भाई केदारजी का विवाह निश्चित हुआ था, किन्तु उसकी परवाह न करके ४० हज़ार सैनिक लेकर वे पानीपत की ओर चल दिये। तत्कालीन पत्रों में लिखा है कि जनकोजी शिन्दे का अल्प वय होने पर भी वृद्धों की तरह दूरदर्शिता और वीरता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। वे स्वधर्म-शील और भक्ति-परायण थे। उनके पिता जयप्पा सिन्धिया को होलकर ने—"हमारा अर्जुन" सम्बोधित किया था। उन महाराष्ट्रीय अर्जुन के पुत्र जनकोजी भी अभिमन्यु की भाँति अमर हो गये। अवध के नजीबुद्दौला को जनकोजी ने ही मजबूर करके मराठों से सन्धि करने के लिए बाध्य किया था। पानीपत के रण-मैदान में उन्होंने जो वीरता के काम किये, वे अद्वितीय थे। कुञ्जपुरा के समीप का खन्दक जनकोजी ने डाट रक्खा था। उनका घोड़ा मारा गया। तो भी वे डटकर हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं से जूझने लगे। उस दिन ७०० आदमी और १२०० घोड़े मारे गये और २५०० सैनिक घायल हुए। जनकोजी की कलाई पर तलवार का वार हुआ और कनपटी पर भाला लगा। तो भी उस वीर का धैर्य कम नहीं हुआ। चाचा दत्ताजी दूसरी प्रबल यवन सेना से घिर गये। तब जनकोजी उस ओर मुड़े। दत्ताजी ने उन्हें मना भी किया पर जनकोजी ने शीघ्र ही झण्डे को अपने कब्जे में कर लिया। इतने में दाहिनी भुजा पर गोली लग जाने के कारण वे घोड़े से नीचे गिर पड़े। तदनन्तर वीर अभिमन्यु के चक्रव्यूह की भाँति मुसलमानों ने उन्हें घेर लिया। तब उनके सेवकों ने उन्हें वहाँ से हटाया। पर जनकोजी घायल स्थिति में वहाँ से जाने को तैयार न थे। शीघ्र ही उनकी चाची भागीरथी बाई और स्त्री काशीबाई उन्हें देखने के लिए दौड़ पड़ीं। उन्हें देख कर दत्ताजी की मृत्यु के कारण जनकोजी शोक करने लगे पर भागीरथी बाई बोलीं—राँड की तरह रोते क्यों हो। चाचा का बदला लो। जनकोजी की हिम्मत बढ़ी। इतने में नई मराठा फ़ौज आ पहुँची और उन

घायल स्थिति में भी जनकोजी पागल भेड़िये की नाईं यवन सेना में घुस पड़े। दुर्रानी मियाँ उनके पराक्रम के सम्मुख अल्लाह करके भाग खड़े हुए। सामने जनकोजी गोलियों से घायल हो गये, तो भी उन्होंने तलवार चलाना बन्द नहीं किया। केवल ५० वीरों को साथ लेकर जरी-पटका और भगवे झण्डे की रक्षा करते रहे। पर देश के दुर्भाग्य से जनकोजी को शत्रुओं ने पकड़ लिया। शुजाउद्दौला के वकील काशीराज ने लिखा है कि जनकोजी ने उसे देखतेही नीची गर्दन कर ली, पर जब काशीराज ने उन्हें सराहा तब जनकोजी ने उत्तर दिया कि इससे तो मैं लड़ाई में ही मारा जाता तो बड़ा अच्छा होता। अन्त में बरजोर खाँ नामक अफ़ग़ान ने जनकोजी का सिर काट कर उन्हें ज़मीन में गाड़ दिया। केवल १७-१८ वर्ष की आयु में ऐसा पराक्रम करने वाला अन्य कोई वीर नहीं हुआ। जनकोजी सिन्धे की मृत्यु से मराठों को बहुत दुख हुआ और अन्त में उनके आत्मार्पण करने के पुण्य-बल पर कुछ वर्षों के पश्चात् उनके वधिक अफ़ग़ान मराठों की शरण आये और दिल्ली पर भी मराठों का आधिपत्य हो गया।

नारायणराव पेशवा—नारायणराव पेशवा के बाल्यकाल की बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं। उन्हें अपने भ्राता प्रतिभाशाली माधवराव पेशवा के सहवास में जो शिक्षा मिली थी वह अपूर्व थी। सन् १७६४ ई० में राक्षस गाँव के समीप मराठे और निजाम में युद्ध छिड़ रहा था। पेशवा तम्बू में बैठे राजनैतिक चर्चा कर रहे थे। इतने में एक तोप का गोला तम्बू के निकट आ गिरा। उसे देख कर नारायणराव भयभीत हो गये। तत्क्षण माधवराव ने उनके अँगरखे का छोर पकड़ कर कहा—"डरता क्यों है? कहाँ भागा जाता है? संवाद-पत्र क्या लिखेंगे?" अर्थात् युद्ध के समाचारों में यदि तुम्हारे भागे जाने की बात लिखी जाय तो बड़ी बुरी बात होगी। अतः रणक्षेत्र में मरना ही वीरों का काम है। धन्य है, स्वराज्य की सूझ को। अब तो बिना लैसेन्स के घर के पागल कुत्ते से भी अपनी रक्षा नहीं की जा सकती। "नारायणी व्यवहार शिक्षा" नामका एक ग्रन्थ भी उनकी शिक्षा दीक्षा के उपलक्ष में लिखा गया था। जिसमें स्वराज्योपभोगी राजपुत्रों को किस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी इसका बड़ा स्फूर्तिदायक चित्र खींचा गया है। दुर्भाग्य से अल्पायु में बध हो जाने के कारण नारायणराव पेशवाको अपना शौर्य दिखाने का अवसर नहीं आया।

सवाई माधवराव—नारायणराव की मृत्यु के अनन्तर इनका जन्म हुआ था। अतः इनकी शिक्षा दीक्षा का भार नाना फड़नवीस आदि चतुर व्यक्तियों पर सौंपा गया था। सवाई-माधवराव बड़े भाग्यवान पेशवा थे। क्योंकि उन्हीं के जीवनकाल में मराठों का वैभव चरम-सीमा तक पहुँच चुका था। उनके बाल्या-काल में राज्य-व्यवहार सेना आदि सभी प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। माधवराव-वेदान्ती नामक एक विद्वान शिक्षक की भी उनकी शिक्षा दीक्षा के लिए आयोजना की गयी थी। उन्होंने माधवराव को जो उपदेश-पूर्ण पत्र लिखे हैं, वे प्रत्येक भारतीय बालक के मनन करने योग्य हैं। उनकी दादी गोपिकाबाई ने उन्हें एक पत्र द्वारा उपदेश किया था कि—"प्रातः उठ कर मुँह हाथ धो कर कुल-देवता गणेश जी के दर्शन किया करो। कुछ स्तोत्र-पाठ के अनन्तर वैद्यों से नाड़ी-परीक्षा करवाया करो। फिर व्यायाम के अनन्तर स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त हो कर दरबार किया करो। दरबारियों से योग्यतानुरूप वार्तालाप करो। ओछे शब्दों का

व्यवहार मत करो। मनुष्यों की परख सीखो। सोच-विचार कर काम करना सीखो। जी-हुजूरों को मुँह मत लगाओ। भोजन के पूर्व देव-दर्शन किया करो। तदनन्तर विराटपर्व से महाभारत की कथा सुनो। पुराने लोगों की बातों का मनन करो। तसवीरें और नक़शे देखा करो। चौथे दिन घोड़ा घुमाने जाया करो। राजनैतिक बातें एकान्त में किया करो। तीरन्दाजी का भी अभ्यास रक्खो। रात को भोजन के अनन्तर गुप्तचरों से संवाद सुना करो। पत्रों के उत्तर स्वयं ही लिखा करो।" आदि।

छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी ने अपने भतीजों को एक उपदेश-पूर्ण कविता-बद्ध पत्र भेजा था, उसका संक्षेप में उल्लेख करके इस विषय को अब हम समाप्त करेंगे। मराठा आदर्श बालकों के विषय में विस्तार-पूर्वक बहुत कुछ लिखा जा सकता है और वास्तव में मराठा वीर पुरुषों का बाल्यकाल उज्ज्वल न होता तो उनके द्वारा ऐसे अलौकिक कार्य कदापि न हुए होते। मराठा बालकों की स्फूर्ति-दायक कथाएँ मराठों के इतिहास में भरी पड़ी है। अब समर्थ का बालकों को उपदेश सुनिये।—"सर्वदा प्रिय सत्य बोलो और वचन के अनुसार अपना बर्ताव रक्खो। तभी लोक-प्रिय बनोगे। विवेकी बालकों को बुद्धि से काम लेना चाहिये। और सद्गुणों को स्वीकार करना चाहिये। सर्वदा दाँत मुँह साफ रखना चाहिये। शूद्रों की नाई कला-हीन होना उचित नहीं। प्रयत्न करते रहना चाहिये। अधिक खेल का त्याग करना चाहिये। दिन में कुछ न कुछ लिखते और पढ़ते रहो। बड़ों की सेवा करो और मधुर वचन कहो। अधिक खेल या आलस्य अच्छा नहीं होता। झगड़े टएटे भी उचित नहीं। लोकोपकार के लिए जीवन बिताओ और भलों के सहवास में रहो। हिसाब किताब में साफ़ रहो। अन्याय को मत अपनाओ, न्याय का त्याग करने से दुःखों का सामना करना पड़ता है। अनुभव-शून्य अवस्था में कोई बात मत कहो। विवेक-रहित मनुष्य दम्भी कहलाता है। चिकने चुपड़े-पन में कोई लाभ नहीं है। बाह्य रूप से मधुर भाषण करना और मन में द्वेष रखना बुरा होता है। एक सा बर्ताव करने वाले की क़द्र की जाती है। भले गुणों का आदर करो। और भले व्यक्तियों के सहवास में ही रहो। इसी से इस संसार में तुम्हारा भला होगा।" अन्त में उन्होंने कहा है—

> भला रे भला बोलती ते करावे।
> बहुताजनांचे मुखे येश ध्यावे॥
> पुढे शेवटी सर्व सांडोनि द्यावे।
> मरावे परी कीर्ति रूपे उरावें॥

अर्थात्, ऐसे कार्य करो जिससे लोग भला भला कहें, जिससे सभी लोग तुम्हारा यश गावें, सभी छल-छिद्र त्याग दो। जिससे मर जाने पर भी तुम्हारी कीर्ति अटल अमर रहे। कौन कह सकता है कि प्रत्येक भारतीय बालक के अन्तःकरण में उक्त उपदेश अङ्कित करने योग्य नहीं है।

—चन्द्रदेवी

वीर शिवराज

१

गूँज उठता था एक शोर नभ मण्डल में,
घोर वैरियों के वनिताओं के विलाप का ।
दीन जनता का नष्ट होता था समस्त कष्ट,
दुष्टता के दुःख के दवानल के दाप का ।
जाता था धसक एकबारगी धरातल में,
प्रबल पहाड़ पापियों के महा पाप का ।
सुन पड़ता था जब विन्ध्य में अचानक ही,
शब्द तेरे तरल तुरंगमों की टाप का ।

२

शेख सैयदों की उमरावों की अमन्द आँधी,
लीलता था शेष सा तू एक ही सुरक्के में ।
मीरों के पठानों के प्रचण्ड मुगलों के झुण्ड,
काटता था क्षण में कृपाण के झटक्के में ।
बीजापूर गोलकुण्डा दिल्ली के दलों में महा,
हाहाकार होता था तुरन्त तेरे धक्के में ।
छूटते थे छक्के यहाँ औरँग के और वहाँ,
टूटते थे तीव्र तुरकों के मुण्ड मक्के में ।

३

तेरे ही प्रताप के अनल की धँसी जो धूम,
काली पड़ी चन्द्रमा के अंक की चमक भी ।
उदित विलोक के सितारे में सितारा तेरा,
जाती रही नभ के सितारों की भड़क भी ।
तेरे तेज से हो त्रस्त मेघ सिन्धु पर्वतों में,
ज्वाला रूप हो के छिपी अग्नि की धधक भी ।
मेरे जान में तो तेरी कीर्त्ति ही की श्वेतता में,
दीखते हैं श्वेत पश्चिमीय आज तक भी ।

४

मातु रणचण्डी को पिन्हाता मुण्ड-माल कौन,
म्लेच्छों को सँघार काल का भी कुण्ड भरता ।
धर्म धेनु, देव विप्रवंश के बताओ कौन,
त्राण करने को कर में कृपाण धरता ।
हिन्द हिन्दी हिन्द के लिए ही नित्य आतुर हो,
दीन दुखियों का कहो कौन कष्ट हरता ।
होता जो न तेरा शिवराज धरती में जन्म,
शत्रुओं की सेना का चबेना कौन करता ।

५

कुंजर सा फेंकता उखाड़ दासता का वृक्ष,
राष्ट्र का अभूत एक मात्र होता नेता तू ।
पाप के पयोनिधि की बाढ़ को विलोक आज,
धर्म का जहाज कभी डूबने न देता तू ।
करता नृशंसता का नाश धरती से और,
सारे महि मण्डल का बनता विजेता तू ।
होता शिवराज जो तू जीवित धरा में आज,
एक क्षण में ही तो स्वराज छीन लेता तू ।

—उमाशङ्कर वाजपेयी 'उमेश'

महाराष्ट्र बनाम राजपूत
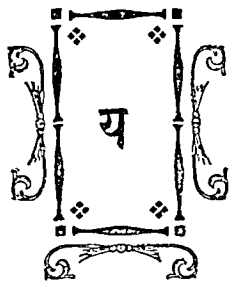
यह एक गम्भीर ऐतिहासिक सत्य है कि महाराष्ट्र जीवन का उदय और राजपूत जीवन का अस्त ये दोनों असाधारण घटनाएँ भारतवर्ष में एक ही काल में सङ्घटित हुई हैं। इन घटनाओं का होना आकस्मिक नहीं है, प्रत्युत एक घटना दूसरी पर निर्भर है। यदि यह कहा जाय—पतनोन्मुख राजपूत शक्ति के सिर पर पैर रखती हुई महाराष्ट्र उदीयमान शक्ति मुग़ल साम्राज्य के प्राङ्गण में इठलाती फिरती रही तो अत्युक्ति न होगी। इस घटना का मूल्य इसलिए और भी बढ़ा जाता है जब हम यह देखते हैं कि दोनों ही शक्तियाँ मुग़ल-साम्राज्य की प्रबल विरोधिनी शक्तियाँ थीं—एवं दोनों का उद्देश्य हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की रक्षा करना था।

सूरत महाराष्ट्र के उदय का द्वार और पानीपत उनके खेदजनक अस्त का क्षेत्र है। उस काल में दक्षिण में सूरत की मुग़ल-साम्राज्य में वही परिस्थिति थी जो कि आज ब्रिटिश साम्राज्य में बम्बई की है। वीरवर-शिवाजी ने निरन्तर ठोकरें मार मार कर सूरत को छिन्न-भिन्न कर दिया। उस समय सूरत यूरोप और ईरान का स्वर्णद्वार था, स्वभावतः मुग़ल सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित हुआ, और उसने उड़ती हुई महाराष्ट्र शक्ति को कुचलने की चेष्टा में अपना जीवन दिया। बुढ़ापे के कष्टों का व्यौरा अलग।

परन्तु, शिवाजी के व्यक्तित्व और उनके प्रभाव को एक ओर रख कर हम निष्पक्ष रीति से इस बात पर विचार करें कि महाराष्ट्र की वास्तविक स्थिति क्या थी? तो हमें दुःख से कहना पड़ेगा कि राष्ट्रीयता के भाव अन्त तक महाराष्ट्र में न थे। यदि हम यह प्रश्न करें कि जब पठानों और रुहेलों के अत्याचार से समस्त उत्तर भारत दोलायमान होरहा था तब महाराष्ट्र किस नींद में सो रहा था? जब ग़ज़नवी ने गुजरात तक धावा मारा था तब महाराष्ट्र क्या कर रहा था? तो हमें इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता—शहाजी तक के जीवन काल में महाराष्ट्र शक्ति का प्रभाव हम नहीं देखते। महाराष्ट्र शक्ति का उदय दक्षिण में मुसलमानी सत्ता के अत्याचार का फल था।

दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हमारे सामने जो हमें एक नवीन मार्ग दिखाती हैं। पहिली चम्पतराय बुन्देले का राजनैतिक प्रश्नों के लिए शिवाजी के पास जाना। दूसरी वीरवर दुर्गादास का शिवाजी के पुत्र शम्भाजी के पास जाना। चम्पतराय की अपेक्षा दुर्गादास कितने अधिक सशक्त थे, इस पर विचार करके जब हम यह देखते हैं कि वीर शिवा युवक चम्पतराय से मार्ग ही में छद्म-वेश

मिले, उनकी गतिविधि को ठीक ठीक समझा और ऐसे ढङ्ग से ठीक परामर्श और सहायता उन्हें दी कि शत्रु के शैतान जासूसों को ज़रा भी अवसर उसमें भेद डालने का न मिला। परन्तु उनके एक पीढ़ी बाद ख़ास उनके पुत्र ने वृद्ध दुर्गादास राठौर का घोर तिरस्कार किया। यह तिरस्कार यदि दुर्गादास के व्यक्तित्व का होता तो साधारण बात थी, पर यह तिरस्कार राजपूत जाति मात्र का था और उसकी जड़ में महाराष्ट्रों का अनुचित झूँठा गर्व था। कुछ अंश तक शम्भाजी का लम्पट स्वभाव भी कहा जा सकता है।

तब, क्या राजपूत इस तिरस्कार के योग्य थे? यह तो सत्य है कि राजपूतों ने चाहे जैसे भी मुग़लों से पूरा सहयोग किया था। मुग़लों को कन्याएँ तक दी थीं। युग धर्म ने उनकी इसके लिए निन्दा की है और तिरस्कार किया है, पर युग धर्म कभी उनकी इस नीति को सराहेगा नहीं यह बात अभी कही नहीं जा सकती। परन्तु महाराष्ट्रों में क्या इतना हिन्दुत्व का अभिमान था कि वे राजपूतों के इस दोष के लिए उनसे घृणा करते? तब उदयपुर का महाराणा वंश तो इस दोष से मुक्त था। उसने महान् साहस और वीरता से अपनी अल्प शक्ति से प्रबल मुग़ल साम्राज्य की बराबरी की। उनके इस स्वच्छन्दता, प्रेम और सत्साहस की कौन प्रशंसा नहीं करता? फिर, उस दीर्घकाल के मुग़लों के आक्रमण से जर्जरित महाराणा वंश पर, जो समस्त उत्तर भारत के हिन्दू कुल सूर्य माने जाते थे—महाराष्ट्रों ने प्रबल आक्रमण किये। उसे छिन्न-भिन्न कर दिया यह कौन सी गम्भीर राष्ट्रीयता थी? कौन सा महत्व-पूर्ण हिन्दू धर्म रक्त का सवाल था। यहाँ तो इस प्रश्न का नङ्गा उत्तर हमें मिल जाता है कि महाराष्ट्रों के हृदय में वह वासना न थी जिसे महान् कहना चाहिये। और जिसे राष्ट्रीयता की जान कहा जा सकता है। यही नहीं। महाराष्ट्रों ने मुग़ल-गद्दी को अपने प्रबल प्रताप से दीर्घ काल तक अधिकृत किया और नाम मात्र के बादशाह के नाम से वे राजपूत शक्तियों को अच्छी तरह पीड़ित करते रहे। उनका एक ही लक्ष्य था—धन-धन-धन-धन। वह धन जहाँ भी जैसे मिला—असंयत महाराष्ट्रों ने उसे अनुचित हो कर लिया।

पानीपत के मैदान में जो कुछ हुआ वह जगत-विख्यात है। जाट और राजपूतों के सहयोग साधारण न थे। पर महाराष्ट्र सेनापतियों के अनुचित गर्व ने उन्हें उदासीन बना दिया। उदासीन हो कर भी वे शत्रु न बने। यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है। परन्तु उदासीन होने का फल यह हुआ कि दो लाख महाराष्ट्र वीर पानीपत के मैदान में अनन्त की नींद सोते हैं और आज उनके जगाने का कोई उपाय नहीं है।

यदि राजपूत और महाराष्ट्र शक्तियाँ मिल जातीं? यह भूल कर कि हम महाराष्ट्र हैं या कि राजपूत हैं। वे यह सोचतीं कि हम हिन्दू हैं। हम भारत की असली स्वामी जाति के प्रतिनिधि हैं—तो उस समय जर्जर और

पतनोन्मुख मुग़ल तख़्त पर बृटेन सिंह के स्थान पर हिन्दू साम्राज्य का झण्डा लहराता होता—नहीं कह सकते कि यह भारत के लिए श्रेयस्कर होता या नहीं, पर उस दृष्टि को देखने की अभिलाषा मन में उदय होते ही एक अनिर्वचनीय आनन्द हमारे शरीर में उदय होता है और अवश्य ही यह लाखों करोड़ों भारतीयों की भावना है कि वह दृश्य कैसा प्रिय होता।

पर वह स्वर्ण सुयोग तो गया। मुग़ल तख़्त चूर-चूर हो गया। और उसके स्थान पर दुर्धर्ष यूनियन जैक लहरा रहा है। तब की अपेक्षा अब हम और अधिक मर गये हैं। महाराष्ट्र और राजपूत दोनों ही आज बेकार हो गये हैं। दोनों तलवार के धनी योद्धा थे। तलवार की अब—जब तक बृटेन की छत्र-छाया है—आवश्यकता नहीं। महाराष्ट्रों के राज्य प्रायः विध्वंस हो गये। राजपूत भी सिसक रहे हैं। अब न तलवार का युग है, न उसकी आवश्यकता। परन्तु इस युग-परिवर्तन ने राज्य-शक्तियों को छिन्न-भिन्न किया है महाजातियों को नहीं। काल या कोई भी शक्ति उसे छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती।

अकेले शिवाजी के शरीर में जो महाराष्ट्र तेज था—वह अब समस्त महाराष्ट्र के आबाल वृद्ध में आ गया है। ठीक उसी तरह जैसे फूल की गन्ध हवा में भर कर वातावरण को सुरभित कर देती है। ग़रीब, अमीर, किसान और शिक्षित महाराष्ट्र के स्त्री-पुरुष एक जाग्रत और जीवित जाति की तरह अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन पर विचार कर रहे हैं और उन्होंने महान् तिलक के रूप में प्रतिज्ञा की है कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" और यह आवाज़ आज भारत के घर-घर में गूँज रही है।

राजपूत अलबत्ता सो रहे हैं, वे उस थकान को उतार रहे हैं जो उन्हें सात सौ वर्षों तक मुग़लों से टक्कर लेते उत्पन्न हुई है। परन्तु अब तो देश में महाराष्ट्र और राजपूत का अन्तर ही नहीं रह गया। अब एक ही प्रश्न है, एक ही ध्यान-ध्येय और विवेचनीय विषय है कि हम भारतीय हैं, हिन्दू हैं और जीवित रहने के अभिलाषी हैं। हमारा एक स्वार्थ हो, एक आकांक्षा हो, एक जीवन हो, एक ध्येय हो, हमारा एकत्र मरना और जीना हो।

महा-जातियों के जाग्रत होने का यह सुलक्षण है।

उत्तर-भारत का एक हिन्दी पत्र एक किश्त में राजपूत अङ्क निकालता है, दूसरे में महाराष्ट्र अङ्क? उसके इस प्रयत्न का सच्चा अर्थ क्या राजपूत और महाराष्ट्र समझेंगे?

—श्री चतुरसेन वैद्य।

❀ ❀ ❀

सेवक धर्म
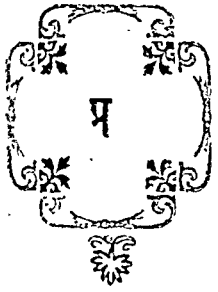
प्रभु ईसा मसीह के चर्खे का १७८८ वाँ तागा बुना जा रहा था। भगवान भुवन भास्कर को मुग़ल पदाक्रान्त भारत के सुरम्य स्थानों में से उस समय भी निकलना पड़ता था। स्वच्छन्द प्रवाहित होने वाली उन्मुक्त वायु, मन्थर गति से, शाहंशाह शाहआलम के शत-शत वलिष्ठ तातारी स्त्रियों से रक्षित राज-प्रसाद को, अपना पथ बनाने को वाध्य थी। प्रातःकालीन चहकने वाले पक्षीगणों का कलरव, उस समय तक, हिन्दू-साम्राज्य के सुखोपभोग का संसर्ग नहीं कर पाया था। हाँ, तैमूर वंशीय मुग़ल साम्राज्य के आसेतु-हिमालय विहार करने वाली राजसत्ता के अस्तित्व का संक्षिप्त संस्करण रह गया था। वह परिचय मात्र था।

दुश्मनों का दिल दहला देने वाली दिल्ली का दिगन्त-व्यापी ऐश्वर्य ह्रास की ओर अग्रसर हो रहा था। वही मुग़ल-साम्राज्य, वे भयङ्कर पठान सैनिक, वही क्रोधाग्नि से लोहित वर्ण भासमान दिल्ली का दुर्ग,—पर उसी को गुलाम कादिर ने अपने प्रबल भाग्य की प्रेरणा से अपने अधीन कर लिया था। बादशाह सलामत से भेंट करने का परवाना मंसूरअली द्वारा प्राप्त हो चुका था। और शाहंशाह की सेवा करने का उसने अपना विचार प्रकट कर दिया था। तत्प्रीत्यर्थ दूसरे दिवस बादशाह सलामत ने दरबार किया। शाही विधि के अनुसार गुलाम कादिर को ख़िलअत अता की गयी। उसे वज़ीर के सम्माननीय पद पर आसीन किया गया। गुलाम कादिर ने शाहंशाह की कोर्निश की, कुराने-मजीद हाथ में लेकर स्वामि-भक्त रहने, बादशाह का संरक्षण करने की शपथ ली, दरबार विसर्जित हुआ।

वह दिन कुछ मनहूस सा था। गगन मेघाच्छन्न था, सौभाग्यवती दिल्ली के भाग्य-सिन्दूर पर आपदा आने वाली थी। २९ जुलाई के प्रातःकाल का समय था। शायद गुलाम कादिर ने शाहंशाह के पास संवाद भेजा कि अनुचर सम्राट के समक्ष उपस्थित हो कर कुछ निवेदन करना चाहता है। आज्ञा प्राप्त होने पर उसने शाही कक्ष में प्रवेश किया। शाहंशाह बैठे थे। प्रातःकाल का समय तो था ही। नमाज से निबट कर उन्होंने हाथ में एक चित्र ले लिया था। मुखमण्डल प्रशान्त था। ऐसा प्रतीत होता था मानों कुछ मेघ आकर टल गये हैं, पर अपना क्षीण अस्तित्व छोड़ गये हैं, और मानो एक दिशा से कुछ कृष्ण घनों के उमड़ने का अन्देशा हो। प्रधान मन्त्री ने सम्मान प्रदर्शित करके निवेदन किया कि मराठों की चढ़ाई होने ही को है। साम्राज्य की स्थिति डाँवाडोल हो रही है। कुछ अर्थ-प्राप्ति की आज्ञा हो जाय तो उचित हो।

शाहंशाह ने उत्तर दिया—

"भाई, कोष में अर्थ कहाँ है। सिन्धिया से युद्ध करने की आवश्यकता नहीं।

गुलाम कादिर के कानों में यह शब्द पड़ते ही उसकी मानवता अपभ्रष्ट हो गयी। क्रोध के आवेश में वह भूखे कुत्ते की नाईं बादशाह की ओर झपटा, अपनी जेब से उसने एक जाली खरीता निकाला, उसमें महादजी सिन्धिया को अपनी सहायता को बुलाने का आदेश था। खरीता पढ़ते-पढ़ते गुलाम कादिर की आकृति पर पैशाचिक भाव नाचने लगे। दाँत पीस ने लगा।

"उसी क्रोध के आवेश में उसने सम्राट को प्राचीन और पूज्य राज्यासन से नीचे खींच लिया। उनके वृद्ध शरीर पर पाद-प्रहार किया; अन्तःपुर से बेदरबख्श को बुलवाया और गद्दी पर बिठा दिया। उसके सिर पर खून तो सवार ही था। बादशाह और राजकुमार को निःशस्त्र करके बन्दीगृह में डाल दिया और भोजन जल न देने की चेतावनी करके अन्तःपुर और राजकुमारों के महल में जाकर वहाँ जो कुछ मिला लूट लाया। मोती महल में बादशाह के सम्मुख शाहजादा अकबर और शेख को मारते-मारते बेदम कर दिया। दास-दासी आदि सभी को अपने प्रपीड़न से मृत्यु के मुख तक जाने का आधा स्वाद चखा दिया। इतने पर भी उसके हाथ कुछ अर्थ न लगा। उसने विचारा कि अर्थ कहाँ है, इसका पता बादशाह को ही होगा। उन्हें न्यायालय में पकड़ लाया, वहाँ उसकी चाबुकों से खाल उधेड़ दी। शाहंशाह वेदना से कातर हो उठे। वे हाथ जोड़ कर बोले—कसम खुदा पाक की, मेरे पास कुछ नहीं है। मुझे मत सता। प्राण ले ले, पर इतनी यातना न दे। उनका शरीर थरथर काँप रहा था। वे उस पीड़ा को न सह सके। मूर्छित हो गये। गुलाम-कादिर उन्हें वहीं मूर्छित छोड़ कर अन्तःपुर पहुँचा। वहाँ उसने बेगमों को नाना मर्मान्तक यातनाएँ दीं, छोटे-छोटे बच्चे प्यासे छटपटा रहे थे। परन्तु उस दुष्ट ने जल न लाने का आदेश दे दिया था। जिनके भ्रूक्षेप से सैकड़ों सिर शरीर से जुदा हो सकते थे—पानी की कुछ बूँदों के लिए वे ही तड़प-तड़प कर मर गये। बड़ा वीभत्स दृश्य था।

गुलाम कादिर के हाथ अब भी कुछ रकम न लगी थी। वह मलिका के महल में पहुँचा। उनसे कोष का पता पूछा, उनके पास जो कुछ था वह लेकर उसे सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें महल से बाहर खींच लाया। उनका और बेदरबख्श का बड़ा अपमान किया। उन असूर्यंपश्या ललनाओं की यह दुर्दशा असह्य थी।

यह भयङ्कर दिवस सबको मिटा कर भी मिट गया। किन्तु, आपदा जब आती तब उसका क्रमिक विकास ही होता है, नहीं। यह दिन पहिले दिन से भी अ भयानक था। गुलाम कादिर की पाश वृत्तियों का नग्न-नर्तन हो रहा था। उ सब राजपुत्रों को नर्तन वादन के लिए ए किया। तब स्वयं थक जाने का मिस क शाहज़ादा अकबर के पदतल पर लेट ग

महाराष्ट्र वीर

श्री गोपाल कृष्ण गोखले

समीप ही तलवार और सुरा पात्र रख ली। कुछ समय पश्चात् उठ बैठा और राजपुत्र से भर्त्सना के शब्दों में कह उठा—

"जब मैं तुम्हारे पदतल पर आँख मूँद कर लेटा था, तब तुमने मेरा वध क्यों न कर डाला। तुम जब इतने भीरु हो तो राज्य-सूत्र कैसे सञ्चालित कर सकोगे।"

उसकी वृत्ति और भी अधिक भयानक हो गयी। कुछ सोच कर वह सिहर उठा और शाहंशाह को अपने समक्ष लाने का आदेश दिया। उनके उपस्थित होने पर उसने फिर प्रश्न किया—अर्थ कहाँ है? बादशाह का एक ही उत्तर था। संसार को कुछ और देखना था। इतिहास के कुछ और पृष्ठ काले होने को थे। गुलाम कादिर की नृशंसता पराकाष्ठा को नहीं पहुँच पाई थी। उसने बादशाह को नीचे पटक दिया और छाती पर सवार होकर दाँत किटकिटा कर कह उठा—

"रुपए देता है कि आँखें निकाल लूँ?" बादशाह अपने जीवन से निराश हो चुके थे। उन्हें गुलाम क़ादिर की नृशंसता का पता था। यह नया आयोजन सुनते ही उनका शरीर काँप गया। मर्मान्तक पीड़ा अनुभव करके उसने करुणोत्पादक स्वर में कहा—"मुझे आँखों से कोई सुख नहीं है, परन्तु इन्हें अल्ला ताला के नाम पर कुरान मज़ीद पढ़ने को रहने दे।" करुणा की इतनी सजीव मूर्ति किसी ने नहीं देखी थी। सब की आँखों से आँसू निकल आये। पर गुलाम क़ादिर पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उसने पेशकब्ज निकाल कर बादशाह की दोनों आँखें निकाल लीं। यह घोर कुकृत्य देख कर बेगमें और शाहजादे हाहाकार कर उठे और मुगलों के गत वैभव का द्रष्टा अन्तःपुर अबलाओं के करुण-क्रन्दन से परिव्याप्त हो उठा।

× × ×

"येसवा।"—स्तब्धता भङ्ग करते हुए महाराज ने कहा—

"क्या मराठा हो कर, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी को नराधम, मदोन्मत्त, लम्पट, विधर्मी यवनों से पददलित होने दें। अपने तुच्छ शरीर-सुख के हेतु, समरभूमि त्याग कर प्रयाण करें। छत्रपति शिवाजी के अनन्य सेवक की क्या अब भी यही सम्मति है? महाराज के नेत्रों में आर्द्रता, हृदय में गाम्भीर्य, और वाणी में कम्पन था। समीर नीरव हो गयी। प्रकृति स्तब्ध हो उठी। मानो एकाग्र हो कर, वह येसवा का उत्तर सुनने को लालायित हो। येसवा ने सिर ऊँचा करते हुए कहा—

"इस तुच्छ सेवक की सम्मति क्यों पूछते हो, महाराज? मेरी सम्मति, इच्छा, सुख, धर्म आदि सभी कुछ आपके निर्देश के अनुगमन मात्र है। मुझे उसी में सुख है। छत्रपति का वैभव इन आँखों से देखा है। बड़े-बड़े शाहंशाह उनके नाम से काँप उठते थे। दुर्गम वन प्रान्त, अजेय दुर्ग उनका पथ रोकते न थे। उनकी गति अबाधित थी। उनके पुत्र को इस दशा में से प्रयाण करना पड़ता है। यह दशा देख कर यह पाषाण हृदय फट नहीं पड़ता, ये

समीप ही तलवार और सुरा पात्र रख ली। कुछ समय पश्चात् उठ बैठा और राजपुत्र से भर्त्सना के शब्दों में कह उठा—

"जब मैं तुम्हारे पदतल पर आँख मूँद कर लेटा था, तब तुमने मेरा वध क्यों न कर डाला। तुम जब इतने भीरु हो तो राज्य-सूत्र कैसे सञ्चालित कर सकोगे।"

उसकी वृत्ति और भी अधिक भयानक हो गयी। कुछ सोच कर वह सिहर उठा और शाहंशाह को अपने समक्ष लाने का आदेश दिया। उनके उपस्थित होने पर उसने फिर प्रश्न किया—अर्थ कहाँ है? बादशाह का एक ही उत्तर था। संसार को कुछ और देखना था। इतिहास के कुछ और पृष्ठ काले होने को थे। गुलाम क़ादिर की नृशंसता पराकाष्ठा को नहीं पहुँच पाई थी। उसने बादशाह को नीचे पटक दिया और छाती पर सवार होकर दाँत किटकिटा कर कह उठा—

"रुपए देता है कि आँखें निकाल लूँ?" बादशाह अपने जीवन से निराश हो चुके थे। उन्हें गुलाम क़ादिर की नृशंसता का पता था। यह नया आयोजन सुनते ही उनका शरीर काँप गया। मर्मान्तक पीड़ा अनुभव करके उसने करुणोत्पादक स्वर में कहा—"मुझे आँखों से कोई सुख नहीं है, परन्तु इन्हें अल्ला ताला के नाम पर कुरान मजीद पढ़ने को रहने दे।" करुणा की इतनी सजीव मूर्ति किसी ने नहीं देखी थी। सब की आँखों से आँसू निकल आये। पर गुलाम क़ादिर पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उसने पेशकब्ज निकाल कर बादशाह की दोनों आँखें निकाल लीं। यह घोर कुकृत्य देख कर बेगमें और शाहजादे हाहाकार कर उठे और मुगलों के गत वैभव का द्रष्टा अन्तःपुर अबलाओं के करुण-क्रन्दन से परिव्याप्त हो उठा।

× × ×

"येसवा।"—स्तब्धस्ता भङ्ग करते हुए महाराज ने कहा—

"क्या मराठा हो कर, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी को नराधम, मदोन्मत्त, लम्पट, विधर्मी यवनों से पददलित होने दें। अपने तुच्छ शरीर-सुख के हेतु, समरभूमि त्याग कर प्रयाण करें। छत्रपति शिवाजी के अनन्य सेवक की क्या अब भी यही सम्मति है? महाराज के नेत्रों में आर्द्रता, हृदय में गाम्भीर्य, और वाणी में कम्पन था। समीर नीरव हो गयी। प्रकृति स्तब्ध हो उठी। मानो-एकाग्र हो कर, वह येसवा का उत्तर सुनने को लालायित हो। येसवा ने सिर ऊँचा करते हुए कहा—

"इस तुच्छ सेवक की सम्मति क्यों पूँछते हो, महाराज? मेरी सम्मति, इच्छा, सुख, धर्म आदि सभी कुछ आपके निर्देश के अनुगमन मात्र है। मुझे उसी में सुख है। छत्रपति का वैभव इन आँखों से देखा है। बड़े-बड़े शाहंशाह उनके नाम से काँप उठते थे। दुर्गम वन प्रान्त, अजेय दुर्ग उनका पथ रोकते न थे। उनकी गति अबाधित थी। उनके पुत्र को इस दशा में से प्रयाण करना पड़ता है। यह दशा देख कर यह पाषाण हृदय फट नहीं पड़ता, ये

आँखें अभी तक अपना कार्य सम्पादन कर रहीं हैं, यही बहुत है। छत्रपति सम्भाजी का क्रूरता से वध, दल-बल सहित औरङ्गज़ेब का दक्षिण-आगमन, यह भञ्भा महाराष्ट्र की स्वराज्य-नौका को डुबाने को प्रस्तुत है। चतुर कर्णधार की नाईं नौका-सञ्चालन से विपत्ति से उद्धार हो सकता है। जैसा निश्चय हो चुका है तदनुसार कुछ दिनों तक पाण्डवों की भाँति गुप्तवास करने से पुनः हम अपना राज्य लेने में समर्थ हो सकेंगे।

वह बड़ा ही करुणा-पूर्ण दृश्य था। महाराजा शिवाजी के पुत्र छत्रपति राजाराम महाराज को देश परित्याग कर गुप्त वास करने का कुअवसर आ गया था। मुग़ल सेना सिर पर थी। यदि वहीं युद्ध करते हैं, तो चार लाख दुर्दान्त मुग़ल सैन्य के सम्मुख अति क्षुद्र मराठा अनी न डट सकेगी! भविष्य घनीभूत अन्धकार के क्रोड़ में है। वीरों की तरह प्राण दे देना वीरता है; जननी जन्म-भूमि को मुसलमानों से पददलित करवाना बुद्धिमानी का काम नहीं। अन्त में वह समय भी आ पहुँचा जब पति पत्नी से, स्वामी सेवक से पिता पुत्र से, कुछ समय के लिए विदा ले रहे थे। दोनों ओर से नेत्र अश्रु-पूर्ण थे। हृदय भरा हुआ था। केवल-मात्र ईश्वर पर पूर्ण भरोसा था।

"येसवा, प्रभु करुणा वरुणालय की अनुकम्पा फिर हमें मिलायेगी। अब विदा।"—छत्रपति महाराज ने कह कर प्रस्थान किया।

आँसुओं की झड़ी लग गयी। जब तक एक दूसरे को देख सके, तब तक देखते गये। येसवा के साथ दोनों राज महिषी तथा उनका परिवार था। उधर छत्रपति शिवाजी के साथ येसवा के दो पुत्र और कुछ सरदार थे। येसवा के सिर पर महान उत्तरदायित्व था। कामिनी-काञ्चन का साथ, स्त्री कन्या की लज्जा का विचार, साथ ही राजमहिषी की विशेष चिन्ता। विपत्ति के बादल सिर पर मँडरा रहे थे। मुसलमान, स्त्रियों को देखते ही झपट पड़ते थे। तिस पर सौन्दर्यमयी कुल ललनाओं की सब भाँति मरन थी।

"श्रीमती जी आप थक गयी होंगी"—

येसवा ने राजमहिषी से पूछा।

घना जङ्गल था। दूर तक कोई दिखाई न देता था। भगवान भास्कर अपने पूर्ण वैभव के साथ नभ-मण्डल में विराजमान थे। समीप की झाड़ी के खरगोश, मृगों के झुण्ड ही उस वन की शून्यता को यत्किञ्चित नष्ट करने में उद्योगशील थे। सर्वत्र शान्ति का अनुपम साम्राज्य था। महारानियों को पैदल चलने से कष्ट अधिक होता होगा। उन्हें ऐसे कष्ट कभी नहीं सहने पड़े हैं। ललनाएँ सुलभ स्वभाव से ही कोमलाङ्गी होती हैं। उनमें भी राजमहिषी!"

येसवा इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में चले आ रहे थे। पर जब इन भावनाओं ने उन के मस्तिष्क को अधिक अधिकृत कर लिया तो राजमहिषी की आँखें अश्रु परिपूरित हो उठीं।

हूँने संयत होकर आत्म-बोध के लिए कहा—
हीं, कुछ थकावट नहीं प्रतीत होती। चलो,
लो। महारानी का उत्तर-आदेश सुन कर
पने विचारों में मग्न येसवा फिर चलने
ते।"

"आप लेट रहिये, मैं जाग कर पहरा
ी।"—येसवा की पत्नी ने कहा।

वड़ी महारानी ने उसे मना करते हुए उत्तर
ा—"आज तीन दिन हो गये। तुम येसवा
र लड़की एक भी नहीं सोने पाये हो। आज
सरा पड़ाव है इस भाँति पथ कैसे पूर्ण कर
कोगी।"

भोजन समाप्त होने के उपरान्त सोने
समय यह झमेला पड़ा। महारानियों का
ाग्रह बहुत अंशों में ठीक था। पर प्रभुभक्त
सवा यह कैसे सहन कर सकता था।

"श्रीमती"—येसवा ने कहना प्रारम्भ किया।
ब तक मैं अथवा मेरा परिवार जीवित है तब
क आप को कोई कष्ट न होगा। यदि आप
ागती रहेंगी, तो भी हम तीनों को जागना
ड़ेगा ही।

येसवा का दृढ़ता-पूर्ण उत्तर सुन कर
हारानी को सोना पड़ा। किन्तु येसवा की
ाँखों में नींद कहाँ थी, उसके सामने भविष्य
े विभीषिका सिनेमा की फ़िल्मों की भाँति
ा रही थीं। कुचतुर औरङ्गज़ेब को छत्रपति
िवाजी महाराज के प्रयाण का संवाद मिल
ुका था। उसने अपने चर चहुँ ओर लगा दिये
थे। प्रत्येक आने जाने वाले की सूक्ष्म छान बीन
की जाती थी। केवल शङ्का हो जाने में भी बड़े सङ्कट
का सामना करना पड़ता था। जहाँ वे ठहरे
थे, वह मुसलमान सैनिकों का पड़ाव था।
इन सबों को अब यहाँ से निकालने में कितनी
विपत्ति होगी इस का भी आभास उसको
था। उसने मन ही मन कहा "दोनों महारानियाँ
मेरी स्त्री-पुत्री के साथ दिखेंगी तो स्पष्ट रूप
से स्वामिनी और सेविका ज्ञात होंगी। यदि
इन दोनों को यहाँ छोड़े जाता हूँ तो इनकी
यहाँ कौन रक्षा करेगा!"

इन्हीं विचारों में वह लीन था। रात्रि
शनैः शनैः व्यतीत होने लगी। येसवा चिन्ता-
ग्रस्त हो उठे?—स्त्री कन्या की लज्जा का अपहरण
क्या कोई मानव शरीर धारण कर सहन कर
सकता है? तो फिर क्या करूँ! महारानियों
की रक्षा तो प्राणोत्सर्ग करके करनी ही पड़ेगी।
उसके लिए सब प्रकार का मूल्य चुकाना ही
होगा।" आदि बातें सोचते सोचते कभी उसका
चित्त प्रफुल्लित हो जाता, कभी विषाद की
गहरी कालिमा उस पर आच्छन्न होती। धीरे-
धीरे विहान हो गया। भगवान भास्कर की
लालिमा प्रसारित हो उठी। तब तक महारानी
तथा येसवा की स्त्री पुत्री नित्य कर्म से निवृत्त
हो चुकी थीं।

"जगन्नियन्ता! मेरा विचार शुद्ध है। इस
निर्बल हृदय में बल दे। मोह के प्रचण्ड तूफ़ान
में मेरी नाव डगमगा न जाय।"

सन्ध्या से निवृत्त हो कर येसवा ने तन्मय
हो कर उस अखिलेश प्रभु की प्रार्थना की।

महारानी का वेश बदलवाया। पुत्री की ओर विशेष स्नेहाकुल दृष्टि से एक बार निहारा तब पत्नी को पास बुला कर मन्त्रणा की। येसवा की आँखें सजल थीं; किन्तु, मुख प्रफुल्लित था। जिस विचार के कारण उसने समर्मान्तक पीड़ा का अनुभव किया था, उसे ही पतिप्राणा स्त्री ने सहज ही में सुलझा दिया।

महारानी वेश-परिवर्तनार्थ गयीं। उन्होंने येसवा की पत्नी और कन्या को भी बुलाया; किन्तु, उन्हें कुछ उत्तर न मिला। उन्होंने देखा, येसवा की पत्नी के मुख पर विशेष आभा झलक रही है। वह एकाग्रता से हाथ जोड़े पति के चरणों में ध्यानाविष्ट है। येसवा की गौ, ब्राह्मण एवं स्त्री प्रतिपालक तलवार आकाश में चमकी और तत्क्षण उसकी पत्नी के सिर पर गिरी।

—"हैं! हैं!! यह क्या!!! येसवा"

महारानी चीत्कार करके दौड़ीं। तब तक प्रलयंकरी काल सहेली फिर एक बार चमकी। येसवा की पुत्री का सिर धड़ से अलग था।

येसवा के मुख पर दृढ़ता के भाव झलक रहे थे। महारानियों को समीप आते देख वह कह उठा—'श्रीमती जी', सन्ध्या काल जब मैं जल लेने गया तब मुझे यह ज्ञात हुआ कि औरङ्गज़ेब के गुप्तचर हमारा पता लगाने यहाँ भी आये हैं। अब हम सुविधापूर्वक निकल सकेंगे। इन दोनों के होने से विपत्ति में पड़ने की आशङ्का थी। मुसलमानों के हाथ पड़ने से हमारी लज्जा और प्राण की खैर न थी। मैंने अपना विचार दोनों पर प्रकाशित कर दिया था। उन्होंने यह निर्णय सहर्ष स्वीकार कर लिया था। तभी मैंने उनका वध किया है।

सन् १६७९ ई० की यह घटना इतिहास के अक्षरों में अमिट है।

—वंशीधर श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

समरोत्साहन

गरजि गरजि उठो सिंह से सपूत वीरो,
घुमड़ि घुमड़ि रणभूमि में बिखरि जाउ।
तड़पि तड़पि तरवार के प्रहार करो,
कड़कि कड़कि आज गाज बनि गिरि जाउ॥
काटि काटि कट्ट कट्ट कटक कुहाल करो,
पटकि पटकि रिपु पाटि पाटि परि जाउ।
तरि जाउ देश की त्रिवेनी की प्रचंड धार,
करि जाउ देश को स्वतन्त्र परि करि जाउ॥

—'आनन्द'

दर्शनीय इन्दौर
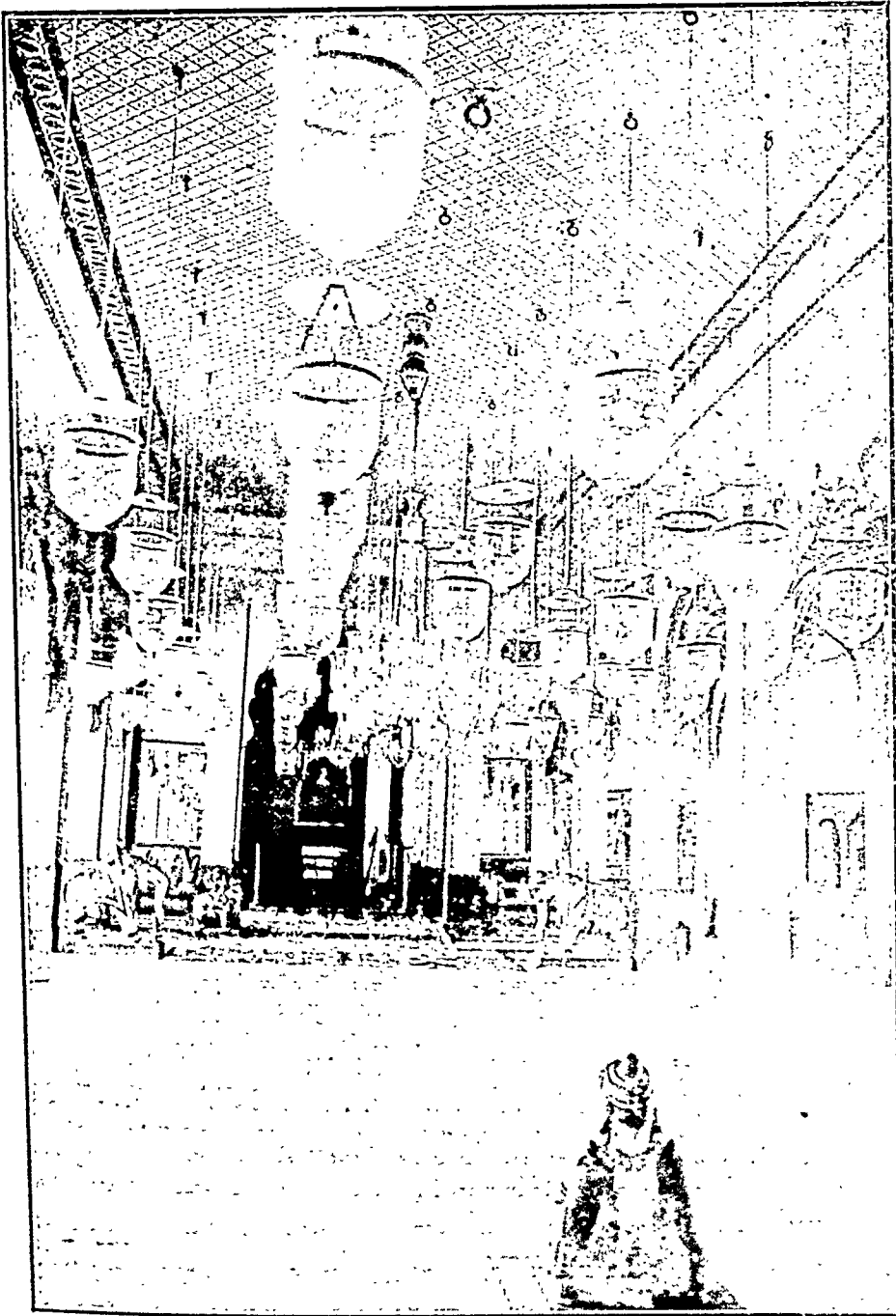
गोपाल मन्दिर, इन्दौर
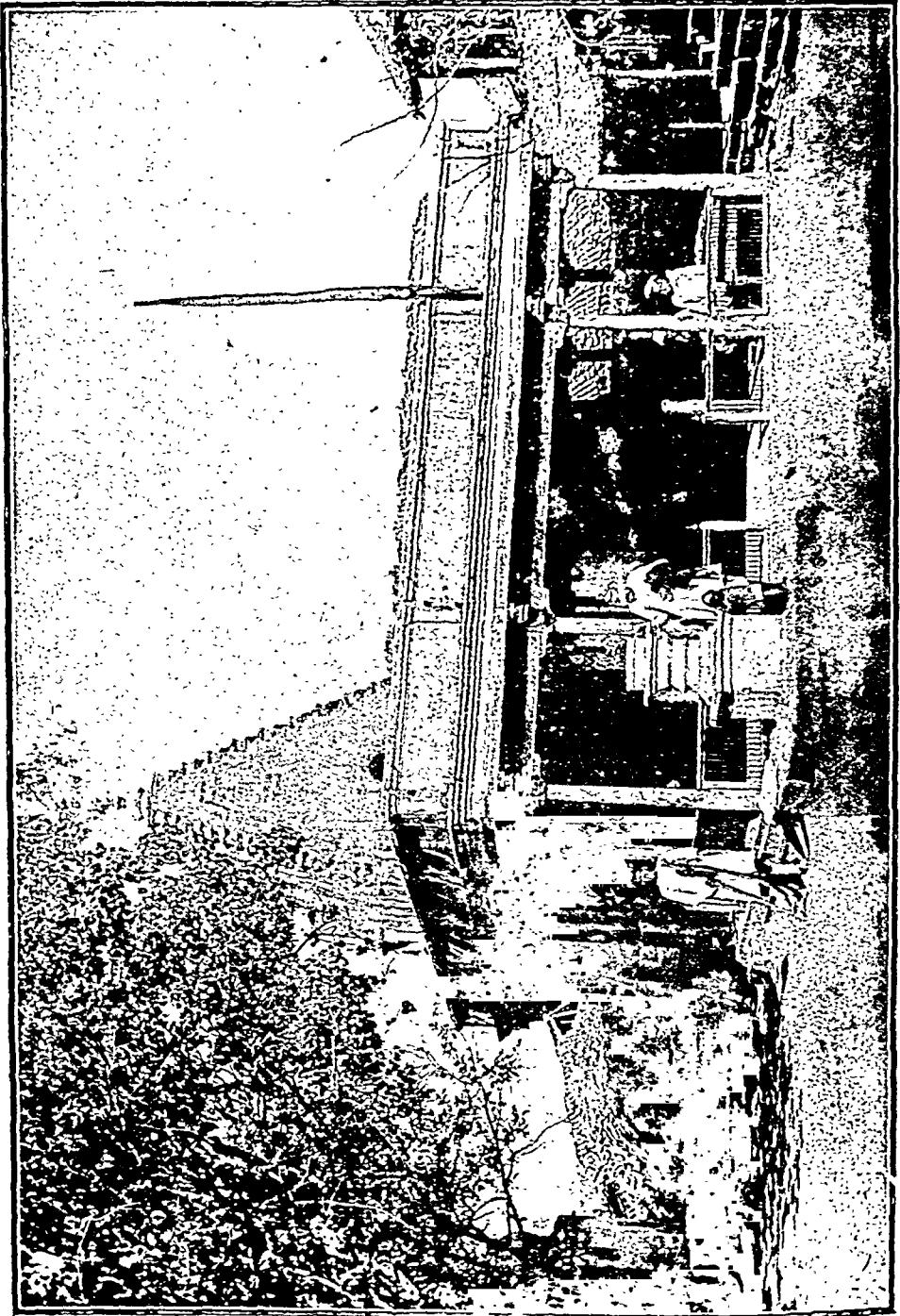
इन्द्रेश्वर मन्दिर, इन्दौर

लाल बाग महल, इन्दौर

किला, इन्दौर

पुराना महल, इन्दौर।
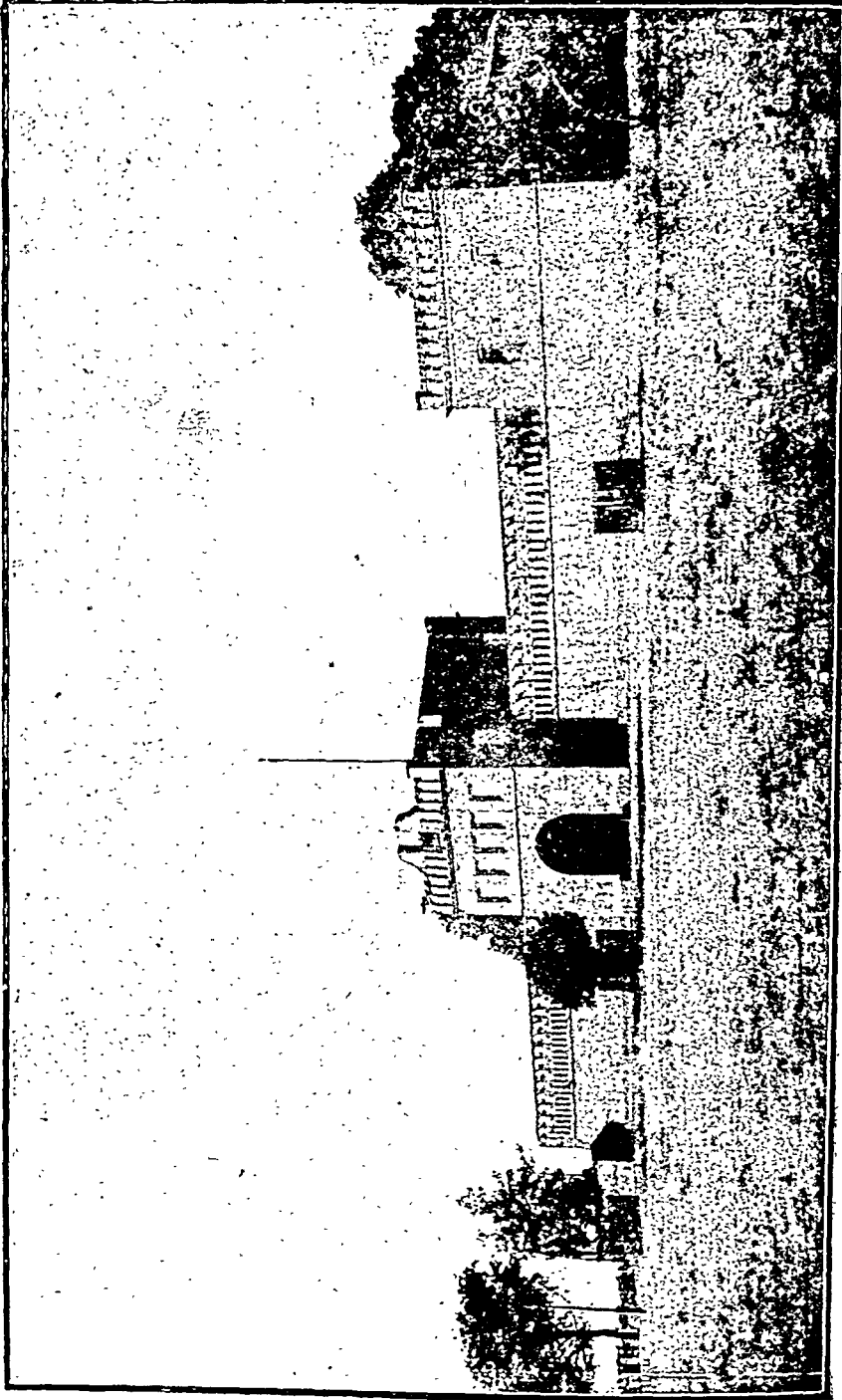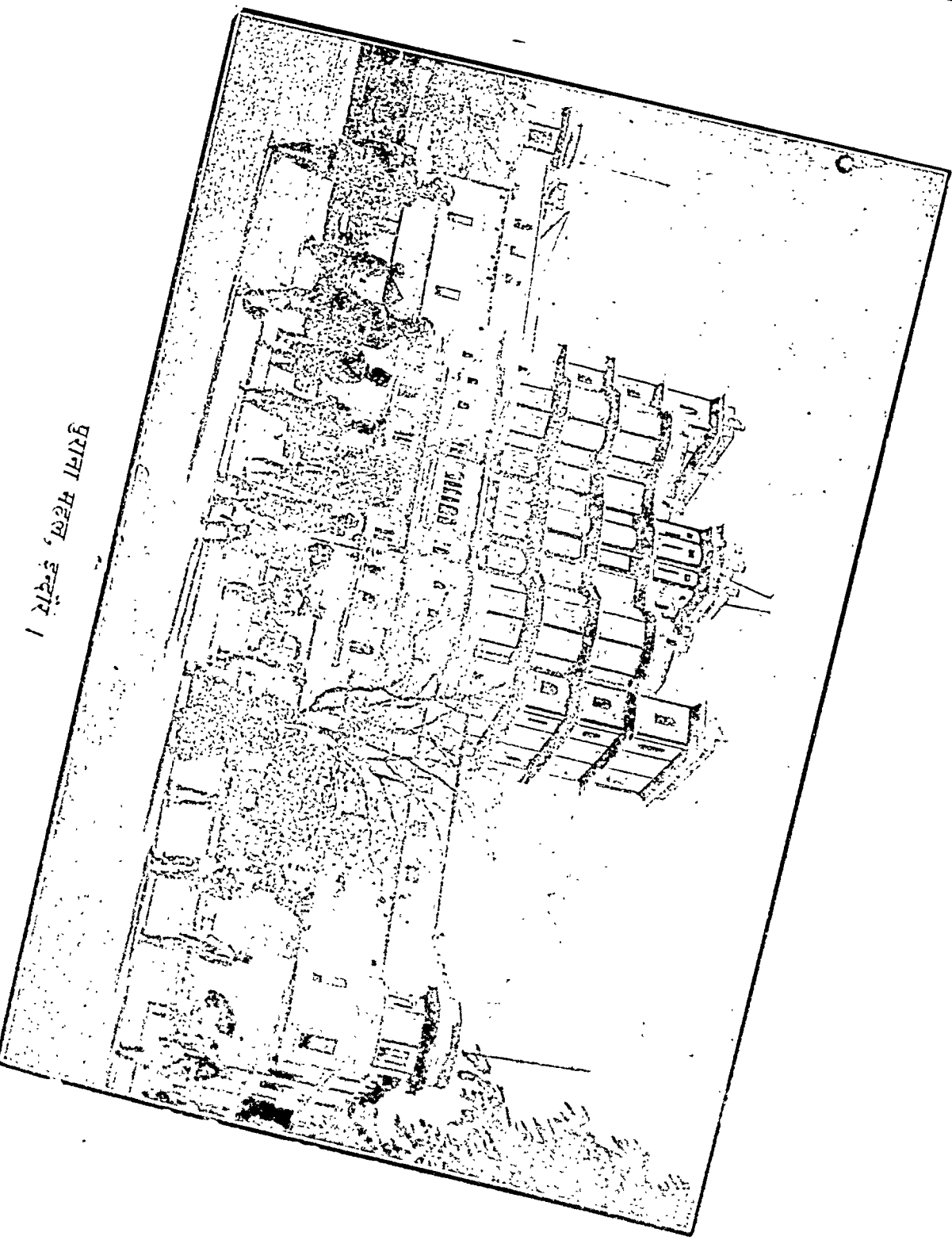
महाराष्ट्र में जैन-धर्म ।

महाराष्ट्र प्रदेश में जैन-धर्म का परिचय वहाँ के इतिहास की एक झलक ही समझिये। किन्तु इस परिचय को उपस्थित करने के पहले यह देख लेना उचित है कि 'महाराष्ट्र' नाम की उत्पत्ति कैसे और क्यों हुई ? इतिहास से यह ज्ञात होता है कि मध्यप्रान्त के लटलूर नामक ग्राम में एक राजा राज्य करता था। उसका एक पुत्र हुआ जिसने अपने पिता के राष्ट्र और कुल का भार अपने ऊपर उठा लिया। वह 'राष्ट्रोढ़' कहलाया और उसके वंशज 'राष्ट्रिक' अथवा 'राष्ट्रकूट' कहलाये। ये लोग लटलूर से चल कर दक्षिण भारत की ओर जा बसे और वहाँ पर शासन करने लगे। इन्होंने अपनी ख़ानदानी उपाधि 'लटलूराधीश्वर' रक्खी ! बस इस वंश के राजाओं द्वारा शासित प्रदेश—'राष्ट्र' शब्दमें 'महा' उपपद लगाकर 'महाराष्ट्र' नाम से परिचित हुआ।※

जैनियों का कहना है कि इस युग के प्रारम्भ में जब सभ्यता का अरुणोदय हुआ था, तब इस देश में अनेक जनपद-नगर-ग्राम आदिकी सृष्टि हो गयी थी। ऋषभदेव इस देश के पहले राजा थे और उनके पुत्र महाराज भरत प्रथम सार्वभौम सम्राट् अथवा चक्रवर्ती हुये थे ! किन्तु उस समय कोई महाराष्ट्र नामका देश था, यह मालूम नहीं होता। आजकल के महाराष्ट्र प्रान्त का अधिकांश भाग तब 'सुरम्यदेश' के नाम से विख्यात् था और उसकी राजधानी पोदनपुर थी। भरत महाराज के कनिष्ठ भ्राता बाहुबलिजी उस पर राज्य करते थे।

जैन साहित्य में महाराष्ट्र देश का उल्लेख बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के समय में हुआ मिला है। नेमिनाथजी कृष्णजी के कनिष्ठ भ्राता थे ! तब एक 'राष्ट्रवर्द्धन' नामक देश था और अजाखुरी नाम की उसकी राजधानी थी। सुराष्ट्र नाम का राजा वहाँ राज्य करता था और विनया उसकी पटरानी थी। इनके पराक्रमी नमुचिनाम का पुत्र और परमसुन्दरी सुसीमा पुत्री थी। कृष्ण ने राष्ट्रवर्द्धन देश पर आक्रमण किया और प्रभास पर्वत के निकट संग्राममूमि रच कर ठहर गये। घोर युद्ध हुआ—नमुचि हार गाया। सुसीमा कृष्ण की प्रियतमा बन गयी। यादवों और राष्ट्रिकों में प्रेम सम्बन्ध स्थापित होगया। जब जरासिन्धु कृष्ण पर चढ़ आया तो राष्ट्रवर्द्धन के राजा आधी अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्णजी की सहायता आये थे।† यह राष्ट्रवर्द्धन देश महाराष्ट्र का द्योतक है, क्योंकि "वर्द्धन" प्रत्यय पूर्वकाल 'महा' शब्द का परिचायक था; जैसे अशोक तथा हर्ष के नामों के साथ इसका व्यवहार उन

※ भारत के प्राचीन राजवंश भा२ पृ० ४ † हरिवंश पुराण (कलकत्ता पृ० ४२७ व ४६८

महानता को प्रगट करने लिए होता है। तिस पर ग्रामासपर्वत (गिरिनार) के पास से इस देशका आरम्भ होना आज कल के सौराष्ट्र को भी महाराष्ट्र गर्भित बतलाने को पर्याप्त है। मालूम होता है कृष्णजी के समय में महाराष्ट्राधिप एक ...न् राजा थे।

इसके बाद भगवान पार्श्वनाथ जी के समय दूसरा उल्लेख मिलता है। भगवान पार्श्व-थ जी सर्वज्ञ होकर देश-विदेशों में विहार ...ने लगे। इस विहार में वे महाराष्ट्र देश में पहुँचे और उनके धर्मोपदेश को वहाँ के लोगों बड़े चाव से सुना तथा ग्रहण किया। ...चार्य महाराज यही कहते हैं—

महाव्रतधरान् काश्चिन्महाराष्ट्र जनान् व्यधान्।
...दीक्षोपदेशदानेन पार्श्वकल्पद्रुमस्तहा ॥८१॥१५॥'

किन्तु इस उल्लेख के आधार पर हम यह ...हीं कह सकते कि पार्श्वनाथ जी के पहले ...राष्ट्र में जैन-धर्म पहुँचा ही नहीं था— ...लिक माना तो यह जाता है कि समग्र भारत ...वं भारतेतर देशों में प्रथम तीर्थङ्कर श्रीऋषभ-...व जी द्वारा जैन-धर्म का प्रचार हो गया था। ...तः महाराष्ट्र में जैन-धर्म की गति का प्राचीन-...म पता लगा लेना सुगम है; क्योंकि ऋषभ-...व जी हिन्दू अवतारों में आठवें माने गये हैं ...ौर १४ वें वामन अवतार का उल्लेख वेदों में —अतः उनका समय वेदों से भी प्राचीन ...ठहरता है।* बस महाराष्ट्र में जैन-धर्म की प्राचीनता भी इतनी ही समझिये।

पार्श्वनाथ जी के समय के लगभग विदेश से विद्याधर वंश के नील और महानील नामक राजाओं ने दक्षिण महाराष्ट्रवर्ती तेरपुर में आकर अपना अधिकार जमा लिया था और वे आसपास के देश पर राज्य करने लगे थे। वे जैनधर्म के परम उपासक थे और उसकी प्रभावना के लिए उन्होंने कई मन्दिर तथा गुफायें बनवाये थे, जो आज भी मौजूद हैं।† इस तरह महाराष्ट्र में जैन-धर्म बहु प्राचीन काल से राज-धर्म बन गया था।

किन्तु, यह तो हुई इतिहासातीत काल की वार्ता—अब ऐतिहासिक काल की कथा सुनिये। यह तो मानी हुई बात है कि भारत का इति-हास सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार से प्रारम्भ होता है। यह राजा भगवान महावीर का बड़ा भक्त था।‡ तब यह तो पता चलता नहीं कि महाराष्ट्र में कौन राजा था; किन्तु इसके थोड़े समय ही बाद 'राष्ट्रक' लोगों का उल्लेख अशोक के जूनागढ़, मानसेरा आदि स्थानों के लेखों में हुआ मिलता है।§ इससे अनुमान होता है कि महाराष्ट्र में तब इन्हीं लोगों का अधिकार था, परन्तु यह बहुत करके उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योतन के आधीन थे, क्योंकि तब इनका स्वाधीन उल्लेख नहीं मिलता। उज्जयिनी साम्राज्य के नष्ट होने पर यह स्वाधीन और बलवान हो गये होंगे, यही कारण है कि

*हमारा 'भगवान महावीर' पृ० २८   †"भगवान पार्श्वनाथ" पृ० २५४
‡अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३२   §भारत के प्राचीन राजवंश, भा० ३ पृ० १

इनका उल्लेख अशोक के लेखों में मिलता है। जो हो, यह स्पष्ट है कि तब भगवान महावीर के धर्म प्रचार से महाराष्ट्र में जैनधर्म की उन्नति अधिक हुई थी !

तदुपरान्त यह देश जैनसम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य के आधीन रहा और उन्होंने स्वयं जैन-मुनि होकर महाराष्ट्र एवं अन्य देशों में विहार किया।* उनके पौत्र अशोक भी धर्मप्रचार में पीछे नहीं रहे थे† सम्प्रति प्रपौत्र ने तो खूब जोशो-खरोश के साथ इन देशों में जैन मत का प्रचार किया—यही कारण है कि महाराष्ट्र में एक प्राचीन काल से लेकर आज तक जैनधर्म विशेष उन्नत रहा है।

मौर्य्यों के पश्चात् जैन इतिहास में कलिङ्ग के सम्राट् महामेघवाहन ऐल खार वेल का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने सारे भारत की दिग्विजय की थी और मगध के सम्राट् पुष्पमित्र को परास्त किया था। तब महाराष्ट्र के शासक राष्ट्रिक लोग प्रतिष्ठान के सतवाहन (आन्ध्र) वंशी शातकर्णी प्रथम के अधीन थे। खार वेल का युद्ध शातकर्णी और राष्ट्रिकों से हुआ। दोनों परास्त हुए। राष्ट्रिकों ने खारवेल के पादमूल में अपना शीश झुका दिया‡—यही बात खारवेल के ६० वर्ष पूर्व के दूसरी शताब्दि के शिलालेख में है—

'भिङ्गारे हित रतनसा पतेये साव
राठीक भोजके पादे वन्दयति।'

जैसे सम्राट् खारवेल के अधिकार में आकर जैन धर्म की उन्नति महाराष्ट्र में न हो, यह कुछ जी को नहीं लगता ! और है भी ठीक बात, क्यों कि उनके लेख के अध्ययन से विद्वान तब जैन-धर्म के तीन केन्द्र (१) ओड़ीसा, (२) मथुरा और (३) उज्जैनीगिरिनगर बताते हैं।§ राष्ट्रिकों का अधिकार तब उज्जैनी-गिरिनगर के मध्यवर्ती स्थल पर ही हुआ था। वहाँपर जैन-धर्म की प्रधानता का ही यह कारण है कि उपरान्त प्रतिष्ठान के आन्ध्र राजाओं में कितने ही इस धर्म में भुक्त थे। प्रसिद्ध सम्राट् विक्रमादित्य जैन थे, यह जैनों की मान्यता है। तदुपरांत, क्षत्रिय राजाओं ने, जिन्होंने मालवा और उत्तरीय महाराष्ट्र व सौराष्ट्र पर अधिकार जमा लिया था, जैन-धर्म को अपनाया था। इसमें नहपान और रुद्रसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।||

गुप्त साम्राज्य में आकर महाराष्ट्र में जैन-धर्म की क्या दशा रही, यह हम कह नहीं सकते। किन्तु सातवीं सताब्दि में जब चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग यहाँ आया तो उसने महाराष्ट्र की राजधानी (सम्भवतः प्रतिष्ठान) को पाँच मील की परिधि में बसा हुआ पाया और जैन-धर्म भी यहाँ अच्छी हालत में था।¶

*जैन शिला लेखसंग्रह-भूमिका,
†'महारथी' के जुलाई-अगस्त २९ के अङ्क देखिये
‡जरनल ऑफ दी विहार एण्ड ओड़ीसा रि० सो०, भा० ३ पृ० ४४१
§इण्डियन हिस्टॉरीकल क्वार्टर्ली, भा० ४ पृ०५२९
||'सरस्वती'; भा० २९ पृ० ७४८,
¶कनिंघम, ऐन० जागरफी ऑफ इण्डिया, पृ०६३४,

चालुक्यों के अधिकार में जब महाराष्ट्र आया तब शायद जैन-धर्म की वह प्रतिष्ठा नहीं रही थी; यद्यपि इनमें भी जैन-धर्म की गति रही थी। ऐहोले (बीजापुर) के मेघुति के जैन-मन्दिर वाले शिलालेख से स्पष्ट है कि इस समय भी जैन-धर्म की गति जन-साधारण मे अच्छी थी। और फिर जब राष्ट्रकूटों का आधिपत्य महाराष्ट्र में हुआ, तब फिर जैन-धर्म एक बार खूब चमका था। इस समय जैनों में बड़े-बड़े आचार्य, महान योद्धा, प्रसिद्ध राज-मन्त्री और धनी-दानी व्यापारी हुए थे। राष्ट्रकूटवंशी राजाओं में जैन-धर्म की मान्यता खूब रही थी। सम्राट् अमोघवर्ष और इन्द्रराज ने तो जैनमुनि हो कर समाधिमरण किया था। सम्राट् अमोघवर्ष एक प्रसिद्ध राजा और धर्मात्मा नर-रत्न थे। इनकी रची हुई 'रत्नमाला' नामक एक सुन्दर पुस्तक मिलती है। और इनके विषय में अरब के व्यापारी सुलेमान ने लिखा था कि "हिन्दुस्तान और चीन के लोगों का अनुमान है कि संसार में चार बड़े बड़े बादशाह हैं। पहला अरबदेश (बग़दाद) का खलीफा, दूसरा चीन का, तीसरा यूनान का और चौथा बल्लहरा (वल्लभराज–राष्ट्रकूट अमोघवर्ष)। यह बल्लहरा भारत के दूसरे तमाम राजाओं से अधिक प्रसिद्ध है। अन्य राजा इसके राजदूतों का बड़ा आदर करते हैं। इसके पास बहुत से हाथी, घोड़े हैं; और धन की भी इसे कुछ कमी नहीं है। इसका राज्य कोंकण से चीन की सीमा तक फैला हुआ है, इत्यादि।" राष्ट्रकूट राजाओं द्वारा जैन-धर्म का उत्कर्ष महाराष्ट्र में खूब हुआ था।*

राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय सन् ८७५-९११, के सम्बन्धी बेलगाम ज़िले के रट्ट राजा थे, और यह जैन-धर्म के दृढ़ श्रद्धानी थे। इनके द्वारा जैन-धर्म की विशेष उन्नति हुई थी। इन्होंने सन् ८५० से १२५० तक राज्य किया था। इनके बनवाये हुए जैन-मन्दिर और बेलगाँव का क़िला दर्शनीय है।†

उधर कोल्हापुर के सिल्हार वंशी राजाओं द्वारा जैन-धर्म का महान् उद्योत हुआ था। इनमें महामण्डलेश्वर विजयादित्यदेव प्रसिद्ध थे। इस राजा ने कई जैन-मन्दिर बनवाये और दान दिया था। बहमनी के राजाओं के आने तक इन्होंने राज्य किया था।‡ इनकी एक दूसरी शाखा दक्षिण महाराष्ट्र में राज्य करती थी। इनमें परम-भट्टारक महाराजाधिराज श्री सत्याश्रय देवानुध्यातमण्डलीक श्री रट्टराज विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इन्होंने जैन-धर्म में दीक्षित हो कर उसकी श्रीवृद्धि की थी।§ सारांश यह कि इस समय तक जैन-धर्म का उत्कर्ष महाराष्ट्र देश में अच्छा था; परन्तु बारहवीं शताब्दि के उपरान्त यह क्रम हो

---

* भारत के प्राचीन राजवंश, भा० ३,

† बम्बई प्राचीन जैन स्मारक, पृ० ७१-७५,

‡ बम्बई प्रान्त प्रा० जैन स्मारक, पृष्ठ १५४–१५५

§ इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली, भा० ४ पृ० २०६–२१०

फला और विजयनगर साम्राज्य के समय यद्यपि वह राज-धर्म नहीं रहा था; तो भी वह इतना प्रभावशाली था कि राज्य में उसका आदर था! विजयनगर के एक-दो राजाओं ने उसे अपनाया भी था! राजा हरिहर-द्वितीय ने कोकण के मुसलमान शासक के विरुद्ध अपनी सेना भेजी थी। इसका सेनापति बैचप्पा नामक एक जैन योद्धा ही था, जिसने युद्ध में वीर गति पाई थी!* विजयनगर का साम्राज्य हिन्दू-सङ्गठन का जीता-जागता रूप था और उसमें प्रत्येक हिन्दू सम्प्रदाय को समान अधिकार तथा आदर प्राप्त था। उस समय हिन्दुओं के हृदय में राष्ट्रीय भावना की जागृति हुई थी। विजयनगर साम्राज्य का महत्व इसी बात में था!

इस प्रकार संक्षेप में हमने महाराष्ट्र में जैन-धर्म के इतिहास की सामान्य रूप रेखा का दिग्दर्शन कराया है और यह केवल राजकीय दृष्टि से! महाराष्ट्र में आकर जैन-धर्म का क्या रूप रहा—उसका प्रभाव सर्व साधारण पर क्या पड़ा—इत्यादि बातो पर यदि प्रकाश डाला जाय तो यह लेख एक लम्बा-चौड़ा पोथा बन जाय! इसलिए हम आशा करते हैं कि पाठकगण इस संक्षिप्त रूप-रेखा से ही शेष बातों की जाँच कर लेंगे। एक बात और है, ऊपर जो रूप-रेखा खींची गयी है, वह भी सर्वथा-पूर्ण नहीं कही जा सकी। इतने पर भी उससे महाराष्ट्र में जैन-धर्म का महत्व स्पष्ट है। एक विद्वान् के शब्दों में कहें तो—"इस काल में जैन-प्रचारकों ने बड़े जोशोख़रोश के साथ अपने धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में किया था। यह स्पष्ट है कि राष्ट्रकूटों के राज्यकाल में, जिनके आधीन सिलार वंशी राजा थे, जैनों ने दक्षिण भारत में अच्छी उन्नति कर ली थी और समन्तभद्र आदि वहाँ पर अनेक बड़े बड़े आचार्य हुए थे।" जिनसेन, गुणभद्र, महावीराचार्य इत्यादि बड़े बड़े आचार्य महाराष्ट्र देश के ही रत्न हैं। सच पूछिये तो दिगम्बर जैन-धर्म महाराष्ट्र में ही फला फूला था और उसकी कीर्त्ति आज भी दक्षिण के सहारे ही टिक रही है। अतः महाराष्ट्र से दिगम्बर जैन-धर्म का कितना महत्वशाली घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, यह स्पष्ट है।

—कामता प्रसाद जैन

* क्वार्टर्ली जरनल ऑफ दी मीथिक सोसाइटी, भा० १९ पृ० २५
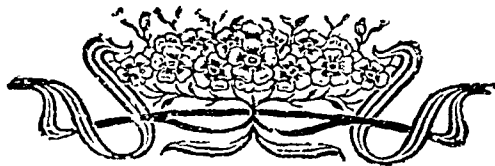
तप्त शोणित—

यों तो भारतवर्ष ने बहुत कुछ किया, उसके इतिहास के पन्नों की रँगी ललाई की छींटों का स्पर्श पाकर ही तो जहाँ-तहाँ अब वर्तमान समाज के रक्त की विचित्र थिरकन और उन्माद का ताण्डव दृश्य इन पथराई आँखों को चमत्कृत कर जाता है; नहीं तो अब यहाँ रक्खा क्या है।—किन्तु, उसके इतिहास में जितना उज्ज्वल, जितना विराट, जितना प्रलयङ्कर दर्श हमें मराठों का दृष्टिगोचर होता है,—यदि स्वतन्त्र मनोभावों के व्यक्त करने में हमारे भाव-पुन, विवेकशून्य, अन्धी आँखों के गुन यह बात अति की इयत्ता का रूप न धारण करें तो—जो देश, जाति और संस्कृति पर मिटने की बात मराठों में हम पाते हैं, विश्व की किसी सत्ता, किसी देश में हमें दिखाई नहीं देती। मराठे सौभाग्यशाली थे, उनका जन्म ऐसे सुन्दर समय में हुआ, जब हमारे धर्मों की शक्ति निस्तेज हो रही थी, ऐसी शस्य, श्यामल, सुजल, सफल भूमि में हुआ, जिसने उनके क्षेत्र को ही उर्वर, प्राण-दायक, क्रान्तिकारी और अकाट्य बना दिया। वे जन्मे, अपनी नसों में एक विद्युल्लहरी लेकर, अपने रोमकूपों में अग्निस्फुलिङ्ग लेकर, अपने मानस में एक आदर्श लेकर और अपने जीवन में एक प्रतिभा लेकर। राजपूतों ने अपने राज्य और धर्म के यज्ञ में कम आहुति नहीं डाली है, उनका क्षत्रियत्व, उनका बल-वीर्य और तेज कम महत्व नहीं रखता, मेवाड़ की रत्ती-रत्ती भूमि का रक्तपात, महाराणा प्रताप का अनुपम शौर्य, राजपूत महिलाओं की आत्म-बलि—ये सब भुला देने की बातें नहीं हैं,—भारतीय उन्हें चाहें तो भुला भी दें,किन्तु संसार के सम्मुख,ये अपनी एक गरिमा रखती हैं, अपना एक अस्तित्व रखती हैं; ऐसा अस्तित्व रखती हैं, जो अजर है, अमर है;—किन्तु, मराठों के दृष्टिकोण में आकर, हमारा दृष्टिकोण कहीं अधिक विस्तृत और उदार होजाता है. उनके साम्राज्य में

आकर हम एक ऐसे दिव्य लोक में पहुँच जाते हैं, जहाँ से राजपूतों का आदर्श, उनका जीवन, उनका राज्य हमें सङ्कुचित और परिधि-युक्त प्रतीत होने लगता है। राजपूतों ने उत्सर्ग किये अपने प्राण, अपने राज्य के लिए,—भूमि-प्रान्त के लिए—अपनी बहू बेटियों के लिए, अपनी आन के लिए। बस, इससे अधिक उदार मनोवृत्ति उनकी न थी, इससे अधिक भावुकता को उनके मानस में स्थान न मिला था; राजपूतों में जहाँ यह सब दिखाई देता है, जहाँ उनका इतना आदर्श है, वहाँ उतना ही पतन भी है। राजपूतों ने ही अपने धर्म को तिलाञ्जलि भी दी है, उन्होंने ही अपनी बहू और बेटियों के डोले, यवनों के चरणों में अर्पण किये हैं, उनके जूठे टुकड़े खाये हैं, एक दो की संख्या में नहीं, सहस्र-सहस्र संख्या में; और ऐसी स्थिति में भी, जब वे सबल थे, जब वे अपनी बङ्क-भृकुटि के सम्मुख एक बवण्डर मचा दे सकते थे, संसार को क्षार कर दे सकते थे। यह सब क्यों, उनमें विडम्बना थी, विवेक न था; उनमें बल था, ऐक्य न था, नीति न थी, कौशल न था; यद्यपि यह राग सामने रख कर, हम उनकी उज्ज्वलता को धूमिल नहीं दिखाना चाहते। इसके विपरीत हम देखते हैं, मराठों में यह बात न थी उन्होंने अपने प्राण दिये हैं, एक भूमि-खण्ड के लिए नहीं, स्वराष्ट्र, स्वराज्य-स्थापन के लिए; बहू बेटियों के लिए नहीं, प्राचीन हिन्दू संस्कृति के लिए, प्राचीन हिन्दू सभ्यता के लिए। मराठे म्लेच्छ नहीं बने, उन्होंने अपनी बहू और बेटियों के डोले नहीं उठाये, ऐसा स्वप्न भी देखने को उनके काल में न मिला। राजपूत मरते थे अपनी आन में, वे नीतिज्ञ न थे, अन्धे थे। किन्तु, मराठों के साथ यह बात न थी। राजपूतों ने विद्रोहियों के लिए अभय-अभय-अभय का उच्चारण करके अपना विनाश किया; मराठों के साथ जहाँ यह बात आयी है, उन्होंने, उन्हें कच्चा भून खाया। राजपूतों के प्रताप में क्या नहीं था, ओह! वह धधकती आग का शोला था, वह मूर्तिमान प्रलय था; किन्तु, उसमें विडम्बना थी, नीतिज्ञता न थी; उसका हृदय भव्य था, किन्तु उस में केवल दया थी, क्षमा थी। इसी शून्यता में वह केवल मेवाड़ को लेकर,—विशाल भारत के सम्मुख एक भूमिखण्ड को लेकर—दर-दर भटका, स्त्री और बच्चों को भूखों तड़पा कर मार डाला। यह सब कुछ उसने सहन किया, उससे अपने लोगों को मिलाया न गया; वे उसकी छाती में कङ्कड़ दल गये, उसके वश में आकर, उसके हाथ में आकर; किन्तु, वह उनका वध न कर सका। धर्म का सङ्कोच जो था, दया की विडम्बना जो थी। मानसिंह उसका प्रतिपक्षी न बन सका, वह उनके द्वार पर आया; प्रताप ने उसे जाने दिया। मानसिंह ने प्रताप को त्रस्त करने के लिए क्या नहीं किया? प्रताप यदि चाहते, तो घड़ी भर में उसे पर-पार के घाट उतारते; किन्तु, यह उन्हें भाया नहीं। इसी भावुकता में प्रताप जीवन भर असमर्थ रहे, वे सफल होकर भी अपना असफल जीवन लेकर मर गये। मराठों के शिवाजी का आदर्श इससे लाख गुना अधिक विशद था। उसे जीवन

फलता—केवल सफलता ही दृष्टिगोचर
समें भी दया थी, औदार्य था, संन्यास
न्तु, उसमें आग थी, उसमें नीतिज्ञता
चित्र शक्ति थी। मक्कार अफ़ज़ल उससे
आये ही कि उसने अपने बघनखे से उसे
घर पहुँचा दिया,—घर बैठे विषाक्त साँप
पिलाना उसे अभीष्ट न था। उसका
र्म यहीं तक सीमित न था। इसीलिए
परिधानों का अधिकारी होते हुए भी
वस्त्रों पर रीझने वाले लँगोटिये शिवाजी
पनी एक हस्ती के बल पर स्वराज्य की
ना कर डाली। जीवन भर उसने गौ,
और स्त्रियों की सेवा की।

शिवा वह व्यक्ति था, जिसकी इच्छा, जिस-
ज्ञा टल नहीं सकती थी, असफलता कैसी
है, वह जानता न था। वह तो बस, अपनी
का पक्का, अपने राग का अलबेला, एक
म मतवाला था। हिन्दू-राज्य, हिन्दू-धर्म
गडोर यदि उस समय उसने अपने हाथों
भाली होती, तो आज, इन भारतीय नामर्द
ओं की क्या दशा हुई होती, भगवान ही
। उसकी भावना करते भी हमें लज्जा आती
उसे अङ्कित करते लेखनी में सङ्कोच उत्पन्न
ा है।

मराठों में जातीय भाव-भेद न था। उनका
ा एक धर्म था, एक आदर्श था, एक लक्ष्य
। ये सब के सब—दासता के पङ्क में आबद्ध,
धर्मी शासकों के कठपुतले, जीहुजूरों की
तों के सराहने वाले—भारतीय—हमें
आते हैं, हाँ, भारतीय इतिहासकारों के
शब्दों में चोर, बदमाश और डकैत—शिवाजी
के कारण, जिसने आजकल-की-सी ऊँची शिक्षा
न पाई थी, जो आजकल-की-सी ऊँची सभ्यता
में न पला था, छत्रपति होते हुए भी, जिसे
आजकल के लक्ष्मी के वर-पुत्रों का-सा सुख-
सौभाग्य उपलब्ध न था, आजकल के राजाओं
की भाँति जो राजनीति-तत्व-विशारद न था,
स्वराज्य के लिए, गौ के लिए, ब्राह्मण के लिए
और अबलाओं के लिए अपने प्राण देते थे।
उनका सब से बड़ा धर्म, स्वराज्य की रक्षा, सब
से बड़ा दैवत ब्राह्मण, सब से अधिक पूजनीया
और मातृतुल्या गौ और अबला थी। चौंकिये
नहीं, भारत के इतिहास में कम-से-कम अब तक
के लिए—यह एक अटल और अप्रिय सत्य है
कि वे माताएँ, वे अबलाएँ,—शिवाजी के से ही
उत्तरदायित्व-पूर्ण आसन पर बैठे हुए राजा-
महाराजाओं, उसी अन्न-जल और वायु से
पालित पोषित धनी-मानी और त्यागी व्यक्तियों
के सम्मुख, लिप्सा-पूर्ति के लिए, उनकी बाजारू
प्रेयसियों (वेश्याओं) के रूप में दृग्गोचर
होती हैं।

ये सब बातें अपना एक तथ्य रखती हैं।
मानव-प्रकृति महत्वाकांक्षा की भूखी है। राजपूतों
के समय में राजपूत, जिस एक-मात्र आन-बान
के सफल स्वरूप थे, क्रमागत उन्नति के अनुसार
कालान्तर से मराठों का रूप धारण कर उन्हीं
राजपूतों ने (वास्तव में मराठे राजपूत ही
हैं। महाराष्ट्र देश में निवास करने के कारण
वे मराठे कहलाये।) अपने विकास का एक
विशद और प्रोज्ज्वल रूप धारण किया।

एक समय था, जब स्वराज्योपासक प्रलयङ्कर शक्तिशाली महाराष्ट्र अगुआओं के आङ्गुल्य-निर्देश पर अपने जीवन की आहुति देने के लिए प्रत्येक व्यक्ति आकुल हो उठता था।

हमारा मन क्षुब्ध हो उठता है यह स्मरण करके कि आज वही वीर्य, वही बल, धमनियों का वही उत्तप्त रक्त प्रसुप्त, निस्तेज और निष्प्राण है।

मातृ-शक्ति—

भारत की माताएँ वीर प्रसविनी हैं। इतिहास के पन्ने-पन्ने पलट जाइये। उसकी प्रत्येक पंक्ति में, प्रत्येक शब्द में, प्रत्येक अक्षर में अन्तर्निहित मिलेगी आपको मातृ-शक्ति। वीर-चरित्र के स्वर्णाक्षरों में जो आभा, गुरुता और गरिमा है, उसमें विजड़ित है, गभीर रूप से केवल मात्र मातृ-शक्ति।

सब की भाँति साधारण से हाड़, चाम और रक्त की विडम्बना—शिवाजी—ने एक ऐसे दुर्वार होनहार का अवतार कैसे ग्रहण किया, उसमें इतनी शक्ति, इतना बल, इतना तेज कहाँ से आया, वह राष्ट्र का उद्धारक, गौ-ब्राह्मण और स्त्री का आराधक कैसे बना? शिवाजी की माँ जीजीबाई असहाया थी, अबला थी, बन्दिनी थी। उसके पास वैभव-सम्पत्ति आदि कुछ न था; किन्तु, उसमें थे, एक योग्या माता के लक्षण, जो दरिद्रावस्था और बन्दी-जीवन की सानुकूलता पाकर विचित्र, अनुपम, मातृ-शक्ति के रूपमें परिस्फुटित हो उठे। उसने अपने तुच्छ, आडम्बर-युक्त बाहरी बन्धन में स्वतन्त्र-जीवन के सत्य का मर्म टटोला, नारी-जीवन के साफल्य का अनुसन्धान किया, प्रसुप्त मातृ-शक्ति को कुरेदा और एक वीर बाँकुरे को जन्म दिया। पिता के पितृत्व से उसने अपना नेह त्याग दिया, पति से अपने ऐहिक सुख-सम्बन्ध का विच्छेद किया, जीवन के वास्तविक तथ्य—मातृ-शक्ति के अन्तरतम पट तक उसका प्रवेश था, वह सत्य, सुन्दर, सचेष्ट और अधिकार-गम्य प्रयास था, जिसमें उसे इच्छानुरूप सफलता मिली। उसने विरागी शिवाजी को जिस उँगली से चाहा, नाच नचाया। उसके उस शौर्य से बड़े बड़ों की रूह काँपती थी। शिवाजी का शौर्य, वीर्य और पराक्रम जीजीबाई की प्रतिच्छवि था। शिवाजी को इतना महिमान्वित और गरिमान्वित बनाने में जीजीबाई को कितनी साधना, कितनी ऐकान्तिक पूजा, कितनी तपश्चर्या का आश्रय ग्रहण करना पड़ा था, यह इतिहास में अटल, अविचल और प्रोज्ज्वल अक्षरों में अङ्कित है। शिवाजी विरागी मनसा का व्यक्ति था, उसे यह मार-काट, छीन-झपट, जीवन की यह अशान्ति पसन्द न थी; किन्तु, जीजीबाई ने उसे राष्ट्र-स्थापना के लिए जन्म दिया था, और उसके मानस में शक्ति के रूप में अन्तर्निहित हो कर, यह सब कराके छोड़ा।

शिवाजी को अपनी संन्यास प्रवृत्ति बरबस स्मरण हो उठती थी। एक बार वे तुकाराम की विराग-विडम्बना में पड़ कर कौशेय परिधान के स्थान पर काषाय वस्त्र ग्रहण करके धर्म-चिन्तन में लग गये, तब जीजीबाई की ही

क्ति थी, जिसने साधु तुकाराम को एक बड़ी टकार बतायी और शिवाजी को पुनः राज-धर्म में प्रवृत्त कराया।

भागीरथीबाई शिन्दे के पति की मृत्यु पर, बालक जनोजी (अपने भतीजे) को रोते देख, उन्हें लज्जा आयी, सङ्कोच उत्पन्न हुआ। वीर-गति-प्राप्त पति की स्मृति में उन्हें हर्ष था, उन्माद था। वे भगवती माँ चण्डी के रूप में कह उठीं—रोते क्या हो, स्वराज्य की शान्ति में बाधक और घातक यवनों का बदला लो। उनकी अलौकिक मातृ-शक्ति का यह एक दिव्य आभास था।

वे माताएँ जो बालकों को वीर वेश से सजा कर, उनके हाथों में तलवारें देकर गर्वोल्लास से अठखेला किया करती थीं, जिनके हृदय में गुदगुदी मच उठती थी, यह जान कर कि उनका बालक, उनके हृदय का हृदय, उनका प्राण, स्वधर्म के लिए, स्वराज्य के लिए वीरोचित उन्माद से लड़ते-लड़ते अन्तिम गति को प्राप्त हुआ, जो जानती न थीं, ऐहिक सुख क्या है, एक कर्तव्य-ज्ञान, केवल कर्तव्य-प्रेरणा के लिए जिनके प्राण न्यौछावर थे, पुत्रोत्पत्ति से जिनका एक मात्र तात्पर्य था राष्ट्रोद्धार, जीवनोत्सर्ग; जो प्रसव करती थीं, केवल एक मेधावी, प्रलयङ्कर, अपूर्व बलशाली बालक को, वे ही अपनी पुण्यमयी कोख से ऐसे रत्नों को जन्म देकर धन्य मानती हैं, जो पराधीनता में विदेशी जञ्जीरों से जकड़ कर तुच्छ कीड़े-मकोड़ों की भाँति अपने प्राण दे देते हैं।

ऐसे गये गुज़रे समय में मातृ-शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है। मनोभावों के तदनुकूल बना लेने से आज ही वे अपने में उस शक्ति का सञ्चार कर सकती हैं। भगवान् उन्हें सद्बुद्धि दे और उनकी मूलोच्छेदक प्रथाओं का विनाश करे तभी देश त्राण पा सकेगा।

हमारी शोड़ष वर्षीया, घूँघट से आच्छादिता माताओं के द्वारा यह कल्याण कदापि सम्भव पर नहीं है।

समर्थ-सामर्थ्य—

हमारा देश धर्म-प्राण है। जब कभी यहाँ विपत्ति आयी, रोग-दोष, अकाल, पर-राज्य-पीड़न आदि ने त्रसित किया, तभी समर्थ साधुओं ने देश की बागडोर अपने हाथ में ली और उन्होंने सर्वत्र शान्ति और साम्राज्य प्रस्थापित करने में अपना हाथ बँटाया। वे केवल वन-बीहड़ों में विहार न करते थे, आजकल की भाँति दैवत कृष्ण आदि का साक्षात् रूप धारण न करते थे, वरन् हमारी भाँति ही, अपनी एक अति सामान्य श्रेणी मानते थे। वे आजकल की भाँति छिछोरे, टुकड़खोर, भगवे कपड़े में छिपे बहुरुपिए न थे, वरन् राग-द्वेष-शून्य, मानापमान-बोध-रहित, इन्द्रिय-कर्मजित दिव्य पुण्यात्मा होते थे। उनके एक फूत्कार से हाहाकार मच सकता था, उनकी अनुकम्पा की एक कोर से सर्वत्र अटल सुख विराज सकता था, उनके निमेष मात्र की वक्र-भृकुटि से अखिल ब्रह्माण्ड में

त्राहि त्राहि मच सकती थी। संसार का समस्त राज्य उनके पद-तल पर रहता था; किन्तु, उसकी ओर भ्रूक्षेप करना भी उनके लिए नारकीय गढ़े में गिरना था।

वे केवल साधु ही न थे। देश के भाग्य-निर्माताओं के पथ-प्रदर्शक भी थे। महाराष्ट्र-निर्माण के विधाता समर्थ गुरु रामदास, संन्यासी तुकाराम आदि महाशय कितने माननीय, श्लाघनीय और पूजनीय हैं, यह इतिहास के पृष्ठों में चिरकाल के लिए स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। इन महापुरुषों में लोलुपता न थी, लिप्सा न थी, कामना न थी; विश्व के साम्राज्य की अपेक्षा भी अपने निष्काम, त्याग-पूर्ण प्रवृत्ति का इन्होंने अधिक मान किया, चरणों पर आये हुए जीवन के समस्त सुखों को जीवन भर ठुकराया,—इसीलिए आज वे हमारे लिए इतने वन्दनीय हैं। वे संन्यासी थे; किन्तु दूसरों को विरागी बनाना न जानते थे। उन्हें इसका ज्ञान था कि किसका क्या कर्तव्य है, राष्ट्र-धर्म क्या है। वे उन्हें कर्मयोग का पाठ पढ़ाते थे। कितनी बार शिवाजी की प्रवृत्ति उदासीन बनी, कितनी बार वह उकता उठा अपने उत्तरदायित्व-पूर्ण पद से, जहाँ राज्याधिपति के आसन पर बैठ कर, अपने को सब की अपेक्षा बड़ा, निर्मम और न जाने क्या-क्या बनना पड़ता है, जिस आसन पर बैठ कर उसे अपने एकाधिपत्य के अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व के हृदय का विनाश करना पड़ता है, जहाँ न दया है, न क्षमा है, न उदारता है, न अपना कोमल, मधुर आत्म-प्रकाश है, जहाँ केवल कर्तव्य, निर्मम कर्तव्य पर दृढ़ावस्था है। कितनी बार वह यन्त्रणाओं से छटपटा उठा और एक निरीह, सामान्य, अनजान व्यक्ति की तरह जीवन-यापन करने के लिए आकुल हो उठा; किन्तु समर्थ गुरु ने उन्हें पुनः कर्तव्य-प्रभुत्व का मार्गावलम्बन करने ही के लिए बाध्य किया,—केवल इसीलिए उनकी इतनी पूजा थी, ऐसी प्रतिष्ठा थी।

किन्तु, आज हम उन्हें भूल गये हों, उनकी अवमानना करने की शक्ति रक्खें, सो बात नहीं है। 'साधु' ऐसे पुण्य उच्चारण की अवहेला करने की क्षमता अब तक हममें नहीं उत्पन्न हुई। इसीलिए तो उनके छद्म परिधान में आये नीच, लफङ्गे, ऐयाश, मद्यपी, तेली, तम्बोली और मोचियों के सम्मुख भी बरबस हमारा मस्तक नीचा हो जाता है। उन पर विश्वास करके हम अपनी बहू और बेटियों से—अनजाने में—उनकी पूजा करवाते और उनकी लिप्सापूर्ण करते हैं। हमारा कितना नारकीय पतन है यह! मठों के पुजारी और तीर्थस्थानों के पण्डे, हमारी उन्हीं पुण्यमयी अखिल-विश्व की वन्दनीया, पूजनीया माताओं और भगिनियों के साथ कौनसा पाप वे नहीं करते। ओह! कैसा बीभत्स, कुत्सित अधःपात है यह!—क्या इसका दायित्व, इसका कलङ्क, उन आराध्य-चरण साधु-सन्तों पर नहीं आ पड़ा है, जो विरागी हैं, जिन्हें अपनी ऐकान्तिक साधना से ही तात्पर्य है।

उनमें आज भी बल है। आज भी वे संसार की प्रबल-से-प्रबल सत्ता की नींव को कम्पाय-

[क]र दे सकते हैं। हमारा अभिमान, इतने पर [भ]ी व्यर्थ नहीं है। देश को आवश्यकता [है] आज इस बात की कि वे सब साधु [ज]लाञ्जलि दे दें अपनी उस तपश्चर्या और [आ]ध्यात्मिक साधना को। वे अपना एक सङ्गठन [क]रके—प्रलय के रूप में आकर—हमारी इस [प]ाप-पङ्क में आबद्ध नौका की पतवार सँभालें। [फ]िर देखो वे समर्थ मराठों के समर्थ की [अ]पेक्षा आज ही शतगुना अधिक सामर्थ्य [प्र]दर्शित कर देते हैं कि नहीं, आज ही पराधीनता [औ]र परतन्त्रता की बेड़ियाँ अपने आप टूट [प]ड़ती हैं कि नहीं। उनके विनाश के [ल]िए वास्तविक साधुओं के एक दिन का भी [स]म्मिलन यथेष्ट है।

[वे] पूर्वज—

जिनकी ज़िन्दादिली की स्मृति को आज के [अ]पने इस हेय और घृणित ज़माने के जीवन में [भ]ी हम अपने अश्रु-विमोचन का कारण बनाते [हैं], हमें वे पूर्वज बार-बार स्मरण हो आते हैं।

कितनी थिरकन थी उन वीरों के रक्त में, कितना उन्माद था उनकी नसों में, कितनी स्वतन्त्रता थी उनके मस्तिष्क में—जो बीसवीं शताब्दी के सभ्यों के विचार से—असभ्यता के काल में जन्मे, जिनमें आज कल की सी सभ्यता और सलीका न था, जिन्हें बोलना नहीं आता था, जीना नहीं आता था।

ऐसा होते हुए भी उन्हें क्षण-भर के लिए भी अपने उन्माद-राग के विपरीत विचारने का अवसर नहीं आया। उनके पास—विदेशी शासकों की बपौती के—वायुयान न थे, रेलगाड़ी न थी, तारघर न थे, उनके संवाद डाकघर के द्वारा दो पैसे के क्षुद्र मूल्य की परिधि में न लाये जा सके थे; उनके शरीर-तत्व के मिश्रण में विचित्र वैज्ञानिक-तत्व भी मिश्रित था। इसीलिए इन क्षुद्र उपादानों की रत्ती भर भी चिन्ता, रिक्तता कभी उन्हें नहीं सता सकी। उनके संवाद पलकों के सहारे जाते थे, उनका सङ्गठन उँगलियों के इशारे होता था। विपत्ति के समय भी वे स्वतन्त्रता की भूमि में जन्मे थे, स्वतन्त्र वायु में उन्होंने विचरण किया था, इसीलिए रत्ती-भर परतन्त्रता की गन्ध का आभास पाकर, वे विक्षिप्त हो उठते थे, अपना एक प्रलय मचा कर मर जाते थे अथवा मार डालते थे। उनका जीवन जीवन तो था ही, मरण भी जीवन था।

विदेशी सत्ता उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी, उनकी ओर भ्रू-क्षेप करने का भी साहस वह नहीं करती थी।

किन्तु,—

किन्तु, समय की गति-विधि ने पलटा खाया। द्वेष के बीज बोये गये और उनका यथातथ्य फल हुआ। पारस्परिक दम्भ आडम्बर तथा ऐश्वर्य के मद में सब कुछ खो गया। वे वीर मराठे हृदय की आग हृदय में ही भर लेने की चेष्टा करने लगे। इसी प्रकार अनेक समय अतिवाहित हो गया। ग्लानि, असन्तोष और क्षोभ में मर-मिटने की भी इयत्ता होती है। वे संवरण न कर सके। उनकी क्रोधाग्नि भभक उठी।

उनकी सन्तान—

...जाग्रत हो उठी। आँधी आयी। प्रलय मचा। उन्हें अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा से सन् ५७ में राष्ट्रीय-क्रान्ति का जन्म देना पड़ा। तब परतन्त्रता की बेड़ियों में वह बुरी तरह जकड़े हुए थे; किन्तु, मतवालों ने अपने केवल एक झटके से अपने शरीर को उस बन्धन से जुदा किया और न्याय के लिए, धर्म के लिए, स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अपनी एक पुकार लगायी। उस आह्वान में पूजा की भावना थी, बलि जाने की मदोन्मत्तता थी। सब ने उसे समस्वर से सुना, एक मन-प्राण से उसका आलिङ्गन किया। भृकुटि-विक्षेप के इतने समय में विचित्र सङ्गठन हुआ—अभी उस दिन की सी बात है यह—स्वातन्त्र्य-युद्ध का भैरव-रव दिग्दिगन्त में व्याप्त हो उठा। मराठे वीर उसके अगुआ बने। देश की लाज उन्हीं के हाथों चली आयी थी। कोलाहल मचा, भैरवी रणचण्डी ने अपना उग्र-रूप धारण किया, सर्वत्र मार-काट मच गयी। लक्षण अच्छे न होने के कारण, पतवार के साधक विदेशी सत्ता के हाथ आये, उन्हें आजन्म कारावास दिया गया, उनकी निरीह स्त्रियों और बच्चों को जीवित जलवाया गया, अथवा चुनवाया गया, न जाने क्या किया गया। ऐसे नृशंस अत्याचार को सहन करके बुरी तरह पराजित और पददलित होकर, कठोर भर्त्सना सहन करके भी वे बाबलिये कहलाये, यही उनका श्रेय था।

हमारी आशा—

तीक्ष्ण अङ्कुश भरी वेदना को वेदना कह में हमें लज्जा नहीं है, सङ्कोच नहीं है। अ कांशतः सृष्टि का यह एक अटल स्वभाव बनता चला जा रहा है कि त्रास में, पतन मनुष्य अपना दीन तक खो बैठता है। श वही हुआ भी। हमारी ऐकान्तिक लालसा हमारी सत्य किन्तु निर्बल आशाएँ विनष्ट गयीं। हम स्वयं पथ-भ्रष्ट हो गये। इस प धीनता से देश का कुछ कम विनाश नहीं हु है। फिर भी गद्गद् हो उठता है मन, उठती है हमारी छाती जब हम देखते हैं हमारे महाराष्ट्र के देशी राज्य पतन गढ़े में जाकर भी अपना कुछ आत्म-गौ रखते हैं, अपने किसी आत्म-सम्मान के भ हैं।

हमारा भाल उन्नत हो उठता है यह भाव करके कि उस जाति में जोश है, जीवन है, उम है। उस जाति के गोखले, हमारे लिए दे की भाँति उपास्य हैं, तिलक भगवान की भाँ पूज्य और मान्य हैं।

वर्तमान मराठा राजवंश भी अपना प महत्व रखते हैं। श्रीमान् बड़ौदा नरेश आत्म-गौरव भुलायी जाने योग्य नहीं है इन्दौर, कोल्हापुर तथा ग्वालियर आदि महाराजाओं, महारानियों तथा राजकुमारों आत्म-गरिमा, उनकी होनहारिता से हम पुन आशाएँ रखते हैं।

[आ]त्म-निवेदन—

[इ]सके पाठकों के सम्मुख महारथी की [सा]धना के रूप में हम 'शक्ति अङ्क' 'वीराङ्क' [औ]र 'राजपूत अङ्क' रख चुके हैं। राष्ट्र के [उत्]थान में उसका ऐतिहासिक तत्व यथेष्ट [स्था]न रखता है, इसी एक तथ्य को लेकर [उप]र्युक्त अङ्कों के प्रकाशित करने की आवश्यकता [को] हमने अनुभव किया था। महारथी के [अ]भिभावकों, अनुग्राहक-ग्राहकों तथा साहित्यिक [ब]न्धुओं ने उनको अपनाया, उनका यथेष्ट मान [कि]या। तदर्थ हम अपने को धन्य मानते हैं। [आ]ज, चौथे वर्ष की शुभ समाप्ति के उपलक्ष [में] पत्र पुष्प के रूप में 'मराठा अङ्क' सादर [अर्प]ण भेंट है।

महारथी श्रमजीवी पत्र है। उसकी एक-[ए]क पंक्ति में हमें अपना मन-प्राण विजड़ित [क]र देना पड़ता है। इसीलिए बाहरी सज-धज [के] रूप को न हम उसमें प्रश्रय दे सकते हैं [औ]र न हमें यह शोभा ही देता है। हम चाहते [हैं] केवल 'जीवन और जागृति,'—सो हम [स]मझते हैं, इन दो शब्दों का मन्त्र महारथी के प्रत्येक अङ्क के द्वारा पाठकों के अर्पण किया जाता है। विलम्ब से मिलने तथा स्थानाभाव आदि के कारण अनेक महत्वपूर्ण लेख, सुललित रचनाएँ तथा ज्ञातव्य विषय इस अङ्क में नहीं दिये जा सके। अतः अग्रिम अङ्क में हम उसकी पूर्ति कर देंगे।

इस अङ्क के सम्पादन में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने जिस तत्परता से साथ दिया है, उस पर हमें हर्ष और गौरव है।

इसके अतिरिक्त ग्वालियर एवं इन्दौर राज्य तथा श्री रामसेवक त्रिपाठी प्रबन्ध-सम्पादक माधुरी ने इस अङ्क के लिए ब्लाक जुटाने में जो अमूल्य सहायता प्रदान की है, उसके लिए महारथी आभारी है।

हमें विश्वास है, कि महारथी के प्रेमी पाठक जिस प्रकार अब तक महारथी-मण्डल की वृद्धि करते रहे हैं, उसी प्रकार अब भी उसके इस प्रयास को सहर्ष स्वीकार करके, इसका प्रचार बढ़ाएँगे।

करुणा वरुणालय के आशीर्वाद से नव वर्ष हमारे लिए मङ्गलप्रद हो। शुभमस्तु।

—सम्पादक

चित्राङ्गदा—मूल लेखक, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक, श्री मुंशी अजमेरी; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी); पृष्ठ-संख्या ६४, छपाई-सफ़ाई सुन्दर, मूल्य ।=) मात्र। प्रकाशक से प्राप्य।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लेखनी से अङ्कित होकर श्री मुंशी अजमेरी द्वारा पद्यानूदित प्रस्तुत पुस्तक में एक विचित्र सौन्दर्य आ गया है। कथानक बहुत सामान्य है, किन्तु कवि की भावुकता ने उसका ऐसा विशद निरूपण कर दिया है, उसमें ऐसी मादकता भर दी है, कि उसका स्वाद चखते ही बनता है। दोनों कवियों की लेखनी इतनी नपी-तुली है, उनका ऐसा मिलान हुआ है कि पुस्तक अनूदित होने पर भी मौलिक प्रतीत होती है।

परिचय—(काव्य-पुस्तक)—सङ्कलयिता, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी); पृष्ठ संख्या १८२; छपाई-सफ़ाई, मनोरम, प्रोज्ज्वल; मूल्य १) मात्र। प्रकाशक से प्राप्य।

परिचय की रचनाएँ वास्तव में उनके रचयिताओं के कवित्व की उज्ज्वलता की परिचायिका है। सङ्कलयिता स्वयं एक कवि है। उसने अपने विषय को प्रतिपादित करने में खासे कवित्व का परिचय दिया है। हमें प्रत्येक रचनाकार की वस्तु के प्रथम, उसके लिए रचित परिचय में, एक बड़ी सु... स्वर्गिक मादकता मिली। पुस्तक प्रत्येक... से पठनीय और संग्रहणीय है।

रूपक रत्नावली—(पहला भाग), ... श्री रामचन्द्र वर्मा; प्रकाशक, रामचन्द्र ... साहित्य-रत्नमाला कार्यालय, काशी; पृष्ठ सं... १६४; छपाई-सफ़ाई मन-व्यामोहक; मूल्य ... जिल्ददार १।) मात्र; प्रकाशक से प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तक में 'मुद्रा-राक्षस', 'रत्नाव... 'मालती-माधव', 'उत्तर-रामचरित' तथा ... न्तला नाटक का कथाभाग लिखा गया... लेखक की इस सद्प्रवृत्ति से हिन्दी साहि... भाण्डार की उचित पूर्ति को सहायता मिले...

मूल पुस्तक की जो विशेषता है, जो स... है, उसे रक्षित रखने में लेखक ने उचित, ... पूर्ण सफलता पाई है। दूसरे संस्करण... नाटकों का क्रम लगा दिया जाय तो बा... बड़ा सुन्दर हो। पुस्तक उपादेय है।

सनातन-धर्म प्रदीप (मन्त्र-महिमा)—लेखक, श्रीमदनमोहन मालवीय; प्रकाशक, ज्योतिषाचार्य श्री रामव्यास पाण्डेय, हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी; पृष्ठ-संख्या ११२; छपाई सादी, सुन्दर; मूल्य १) मात्र; प्रकाशक से प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री मालवीयजी ने यह प्रमाणित किया है कि 'नमोनारायण' और 'नमःशिवाय' इन दो मन्त्रों को ॐकार सहित पूर्ण करके ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज-पर्यन्त समस्त हिन्दुओं को ग्रहण करना चाहिये। उनको यह अधिकार शास्त्र-सम्मत है।

श्री मालवीयजी जैसे सनातन-धर्मी महाशय की लिखित इस पुस्तक से हमारा विश्वास है, देश को बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा, उससे समाज में जागृति उत्पन्न होगी। अतः पुस्तक प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलम्बी के मनन करने योग्य है।

वीर राजपूत—मूल लेखक, श्रीयुक्त "नाथमाधव"; अनुवादक, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी; प्रकाशक, श्री केदारनाथ गुप्त; छात्र-हितकारी कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २३४; छपाई-सफ़ाई सुन्दर; मूल्य १) मात्र।

यह मराठी से अनूदित ऐतिहासिक तत्व पर लिखा हुआ उपन्यास है। पुस्तक पढ़ कर वीरोचित भावों का मन में स्फुरण हो उठता है। बड़ी सुन्दर वस्तु है। उपन्यास-प्रेमी पुरुषों को ऐसी ही पुस्तकें पढ़नी चाहियें।

भ्रमित-पथिक—लेखक श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, बी.ए., (प्रोफ़ेसर विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज, कानपुर); प्रस्तावना-लेखक श्री पण्डित हरिदत्त शर्मा, एम.ए., (प्रोफ़ेसर सनातन धर्म कालेज, कानपुर); प्रकाशक अभ्युदय प्रेस, प्रयाग; पृष्ठ संख्या २७६; छपाई सफ़ाई आडम्बर-शून्य सुन्दर; मूल्य सादी १॥), सजिल्द १॥।) मात्र।

'भ्रमित पथिक' ऐसे बड़े ग्रन्थ को श्री-अवस्थी जी ने (Plot) वस्तु-विन्यास के लिए अटके बिना—उसे सोचे बिना—अपने राग में तन्मय होकर लिख डाला है। वह तन्मयता इतनी शृङ्खलित, इतनी सुचारु हुई है कि वस्तु-विन्यास, अपने आप चमत्कार रूप से सफलतापूर्ण बन गया है और उसने ग्रन्थ को अधिकाधिक गरिमा-युक्त बना दिया है। पुस्तक पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

आदर्श मित्र (उपन्यास)—लेखक, श्रीआत्माराम देवकर; प्रकाशक, नर्मदा लहरी ग्रन्थमाला कार्यालय, जबलपुर; पृष्ठ संख्या १५५; छपाई कागज़ आदि अति सामान्य; मूल्य १॥) मात्र; प्रकाशक से प्राप्य।

प्रस्तुत उपन्यास पञ्जाब की टेक्स्ट बुक कमिटी द्वारा स्वीकृत है। श्रीदेवकर जी ने यथाशक्ति इसे सुन्दर और शिक्षाप्रद बनाने में बहुत कुछ प्रयत्न किया है। पुस्तक अच्छी प्रतीत होती है।

अनोखा बलिदान (नाटक)—लेखक स्व० पण्डित् उमाशङ्कर सरमण्डल; प्रकाशक, श्री हरिशङ्कर सरमण्डल, व्यवस्थापक, उमेश-पुस्तक भण्डार, कैसरगञ्ज, अजमेर; पृष्ठ संख्या ११२; छपाई सफ़ाई साधारण; मूल्य ॥) मात्र; प्रकाशक से प्राप्य।

नाटक का प्रतिपाद्य विषय, त्याग का आदर्श और स्त्री-शिक्षा का प्रोज्ज्वल सप्राण रूप सामने रखना है और उसमें लेखक ने अवश्य सफलता पाई है। खेद है, लेखक इसे अपनी जीवितावस्था में मुद्रित रूप में न देख सका। प्रकाशक ने उसकी कृति को अपना कर लेखक की प्रतिभा अक्षुण्ण रखने की चेष्टा की है और अपनी महनीयता का परिचय दिया है। नारी-शिक्षा के प्रतिपक्षी प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज को नाटक अभिनीत करना चाहिये तथा उसे भगिनियों के सम्मुख मनोविनोद के मिस रखना चाहिये। नाटक वास्तव में शिक्षाप्रद है।

घर की बात—लेखक तथा प्रकाशक; श्री पण्डित ज्योतिःशरण रतूड़ी, रचयिता 'जीवनादर्श' तथा 'किसान', टिहरी गढ़वाल राज्य; पृष्ठ संख्या ११७; छपाई आदि साधारण; मू० प्रति पुस्तक ॥=); विद्यार्थियों से ॥) मात्र।

प्रस्तुत उपन्यास नवयुवकों के चरित्र-निर्माण में सहायक तथ्य का प्रदर्शक है। उपन्यास की भाषा और शैली पुराने लेखकों की भाँति है। अत: पहिले-पहिल उसे मनोनिवेश-पूर्वक पढ़ने के लिए अधिक चेष्टा व्यय करनी पड़ती है।

लेखन का आदर्श अत्युच्च और सराहनीय है। लेखक को सफलता भी मिली है। पुस्तक, विशेष कर नवयुवकों के लिए, पठनीय है।

खद्दर ही क्यों—(खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र के आधार पर)—लेखक, श्री रामदास गौड़; प्रकाशक, महावीर प्रसाद पोद्दार; शुद्ध खादी भण्डार; १३२/१, हरिसन रोड, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १४०; छपाई-सफ़ाई यथेष्ट सुन्दर; मूल्य =) मात्र; प्रकाशक से प्राप्य।

खद्दर पहिनने की क्यों आवश्यकता है, इस बात को, प्रस्तुत पुस्तक में 'व्यवसायिक दृष्टि से', 'हमारी नष्ट होने वाली' 'शक्ति,' 'मिल से मिलान', 'खरीदने की शक्ति', 'देश का टोटा', तथा 'लोगों के लगाये दोष' आदि विषय का दिग्दर्शन कराते हुए ऐसे ढङ्ग से लेखक ने साबित किया है कि उसे मान्य कहना ही पड़ता है। खद्दर की व्यवसाय-वृद्धि के लिए उपर्युक्त शुद्ध खादी भण्डार का यह प्रकाशन-कार्य और इतने सस्ते मूल्य में पुस्तकों के बेचने का यह ढङ्ग वास्तव में सराहनीय है। पुस्तक मनन एवं संग्रह करने योग्य है।

हिन्दी ग्रामोफोन रेकर्ड सङ्गीत (चतुर्थ भाग)—संग्रहकर्ता, मि० एस. पी. जैन; विक्रेता, श्री एम. एल. साहा, ५।१ धर्मतल्ला स्ट्रीट ७सी लिण्डसे स्ट्रीट, कलकत्ता; छपाई सुन्दर; पृष्ठ संख्या २६३; मूल्य १), सजिल्द १॥।) मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक ग्रामोफोन के रेकर्ड के सङ्गीत जानने के लिए उपयोगी है। पुस्तक में मारवाड़ी, मराठी, सिन्धी, नैपाली, गुजराती और बङ्गला सभी भाषाओं के गाने हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

छत्रपति शिवाजी (नाट्य-पुस्तक)—लेखक कविवर डाक्टर सुवर्णसिंह वर्मा 'आनन्द' एच. एल. एम. पी.; प्रकाशक, श्री शिवरामदास गुप्त अध्यक्ष, उपन्यास-बहार आफ़िस, बनारस; पृष्ठ-संख्या १७६; छपाई-सफ़ाई, सुन्दर; मूल्य ॥।) मात्र।

श्री वर्माजी का प्रस्तुत नाटक सुन्दर है। वे कवि भी हैं, अतः गद्य और पद्य के प्रवाह का सुन्दर मेल मिला है। उन्होंने नाटक में हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक प्रेम भी प्रदर्शित किया है, जिससे उनकी औदार-वृत्ति का पता चलता है। नाटक अभिनय करने योग्य है।

रतिरानी—लेखक, श्री 'रसिकत्रय'; प्रकाशक, गङ्गा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या २५१; छपाई-सफ़ाई, सुन्दर; मूल्य सादी १॥); सजिल्द २) मात्र। प्रकाशक से प्राप्य।

श्री 'रसिकत्रय' ने रतिरानी के लिखने में चमत्कार-पूर्ण सफलता पाई है। उनकी रचनाएँ पढ़ कर हृदय स्नेह-विमुग्ध हो उठता है। रसिकत्रय की सभी सूझें अनुपम हैं। पुस्तक का नामकरण तथा कविवर बिहारीलाल को उसका समर्पण हमें खूब भाया। प्रत्येक भावुक और प्रेमी हृदय के देखने योग्य वस्तु है।

आरोग्य और आनन्दमय जीवन बनाने के उपाय—लेखक, तथा प्रकाशक मुक्ता-रामात्मज श्री शिवदत्त शर्मा; उपयोगी ग्रन्थ-भण्डार, उज्जैन; छपाई-सफ़ाई साधारण; पृष्ठ संख्या ६०; मूल्य ।=) आने मात्र; प्रकाशक से प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने मानसिक वृत्ति, व्यायाम, स्नान, भोजन, पूजन तथा रोग की निवृत्ति के उपाय आदि शास्त्रोक्त विधि-पूर्वक लिख कर उसे यथानाम तथा गुणाःबना दिया है। पुस्तक उपादेय है।

—रानदनी देवी दीक्षित

चित्र-परिचय—

मराठा आतङ्क की छाप—प्रस्तुत चित्र का भाव-चित्रण महाकवि भूषण ने बड़ी ही खूबी से किया है। उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि
बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहिनै।
'भूषण' भनत बूझे आये दरबार ते कम्पत
बार-बार क्यों सम्भारत हौ नाहिनै?
सीनो धकधकत पसीनो आयो अङ्ग सब
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजू की सङ्क मानि गयो है सुखाय तुम्हैं
जानियतु दच्छिन को सूबा कर्‌यो साहिनै।

चित्रकार का कौशल भी विशेष रूप से सराह-नीय है।

छत्रपति शिवाजी—छत्रपति शिवाजी हमें जीवन में सफलता की याद दिलाते हैं। उनकी स्मृति से भीरु का हृदय भी उतावला हो उठता है। प्रस्तुत चित्र में उनका भव्य रूप दिखाने में चित्रकार ने तूलिका में चमत्कार ला दिया है।

श्री बालगङ्गाधर तिलक—यह लोकमान्य हैं। स्वराज्य-भावना के उपासक वही वीर तो हैं। उनमें परमेश्वर के से गुण थे, हम भाग्य के हेठे होकर भी उन्हें भुला नहीं सकते। उनका गीता-रहस्य, भगवान कृष्ण के गीत की भाँति क्या एक मौलिक रचना नहीं है? हम उन्हें भगवान के रूप में स्मरण करते हैं। उसी रूप में उनका परिचय पाते हैं। इससे अधिक हम न उन्हें जानते हैं और न अधिक

जानने की हमें गुञ्जाइश अथवा आवश्यकता ही है। उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम।

महारानी श्री अहिल्याबाई—महारानी श्री अहिल्याबाई का अलौकिक गुण-गान सर्वत्र परिव्याप्त हैं। वे हमारी माँ हैं, हमारे लिए प्रातःस्मरणीया हैं। कैसा दिव्य जीवन था उनका, कितनी चतुरा थीं वे राज्य-सञ्चालन में ! उनके राज्य में सर्वत्र शान्ति विराजती थी ! कितनी उदार थीं वे ! उनका हृदय विशाल था। सुनते हैं, उन्हें पशु-पक्षियों तक का ध्यान रहता था, उनकी भी वे चिन्ता रखती थीं। उनके लिए उन्होंने अनाज के कच्चे खेत मोल ले कर छोड़ दिये,—शायद स्वतन्त्र वायु में विचरण करने वाली पक्षियाँ भूखी न रह जायें ! उनके मातृत्व पर अभिमान करती थी प्रजा। जहाँ समस्त राज्य के पक्षियों तक के अन्न-जल का प्रबन्ध किया जाय वहाँ की प्रजा को उदर-पोषण की क्या चिन्ता, काहे का भय। उनके लिए सर्वत्र सुकाल था। वे अपने राज्य के एक व्यक्ति को भी भूखा देख कर विचलित हो उठती थीं, तब क्यों न उनके मातृत्व की वन्दना की जाय। आज हमने अपना वह मातृत्व खो दिया है, उसे भुला दिया है, तभी हमारा कोई देखने वाला नहीं है, हमें पूछने वाला नहीं है। उस जमाने के पशुओं का सा भोजन भी हमें नहीं जुटता। आज उसी माँ के लाल रात में अधपेट सो जाते हैं। अपने इस दुःख में आज हमें स्मरण आगयी हैं, वे माँ। उनके श्री चरणों में, आओ, वन्दना कर लें। माँ अहिल्याबाई का यही रूप, यही परिचय और उनकी यही पूजा, हमारा त्राण करेगी। किन्तु, जब आजकल की राजमाताएँ अपना वैसा ही आदर्श रख सकें तब हम अहिल्याबाई के प्रति अपनी इस पूजा को सार्थक समझेंगे।

श्री गोपाल कृष्ण गोखले—तिलक के पहिले, वही तो था, हमारे हितों की रक्षा करने वाला ! हमारे लिए वह जीवन भर अड़ता रहा, जीवन भर लड़ा। उसके पहिले राष्ट्रीय मनोभावों का स्वप्न भी हम न देख सकते थे। आजकल की राजनैतिक लहर का वही तो एक जन्मदाता था। उस लाड़ले को प्रसव करने का सौभाग्य मराठा जाति की माता को ही तो प्राप्त हुआ था। उसके ग्रह-लक्षण चक्रवर्तियों से भी कहीं अधिक उज्ज्वल थे। कितना निर्भय और निर्द्वन्द्व था वह ! उसके नेतृत्व का अनुकरण करके ही तो देश यह समझने लगा है, कि वह परतन्त्र है और उस परतन्त्रता की यन्त्रणा से उन्मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है। अपने पूर्वजों की लाज उसने गही थी। विपक्षी भी उसकी प्रशंसा करते थे, उसके गुण गाते थे। वह हमारे लिए चिर-परिचित है। उसका वह स्थान रिक्त है। देखें कौन उसकी पूर्ति करता है।

—देवीप्रसाद शर्मा

विषय–सूची

चित्र-सूची

कृतज्ञता-ज्ञापन

उपर्युक्त चित्रों में से नं० ७, ८, ९, १० के ब्लाक हमें रियासत ।(दिल्ली), ११, १२, १ सैनिक' (आगरा), नं० १७ का 'देश' (पटना), नं० ६ का 'राजस्थान-संदेश' और नं० १९ का सौजन्य से मिला है, अतः 'त्यागभूमि' इनकी सहायता एवं सहानुभूति के लिए कृतज्ञ है।

प्रकाशक—सम्पादक
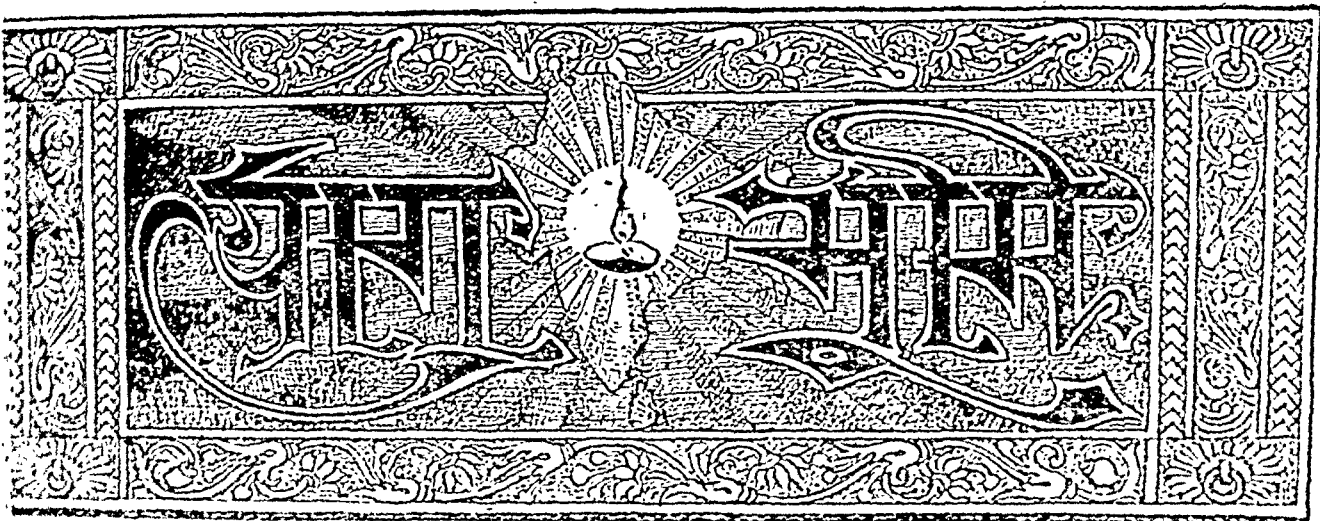
(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष १ खण्ड १ — सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर — अंश ४
पौष संवत् १९८६ — पूर्ण अंश २८

हे नूतन वर्ष-विहान जाग !

(श्री 'निर्गुण')

हे यौवन के अभिमान, जाग !
हे मर मिटने की शान, जाग !
हे साहस के अभिधान जाग !
हे बल-पौरुष-विज्ञान, जाग !

भारत-माता के नौनिहाल !
आशामय प्राणद उषःकाल
है काट रहा तममय विशाल—
अँगड़ाई का आलस्य-जाल ।

हे जीवन के अपमान, जाग !
अपमानित के अरमान, जाग !
हे भारत के अभिमान, जाग !
हे युवक देश की शान, जाग !

हे [illegible] के शान, जाग !
हे क्षत्रिय के बलिदान, जाग !
हे [illegible]-विज्ञान जाग !
हे [illegible] के ध्यान जाग !

जीवन की यह ममता निकाल,
आँखें होने दो लाल-लाल ।
[illegible] है देखो शंखनाद,
रँगने दो अब तो [illegible] भाल ।

वेदी जलती जिह्वा निकाल,
नभ में ये अक्षर लाल-लाल—
'लिखती है आओ इन्हें पढ़ें,
'बलि का भूखा है अरे! काल।"

हे विश्व-वंद्य पंचाल जाग!
हे स्वर्ण-भूमि बंगाल जाग!
हे युक्तप्रान्त सुविशाल जाग!
हे हिम-नग भारत-ढाल जाग!

गुजरात, लाज अपनी सँभाल,
हे गौरव-भूमि बिहार जाग!
महराष्ट्र जाग, मद्रास जाग!
हे जीवन के उल्लास जाग!

ये बालू के कण आज जलें,
रजपूती राजस्थान जाग!
स्वागत हैं करते हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

हिन्दू! तू तप की विमल वास,
ईसाई ईसा का प्रकास,
पैग़म्बर के भ्रातृत्व-बीज—
का मुस्लिम में जो है विकास,

सिक्खो! उन त्यागभरी स्मृतियों—
का तुम में जो है अट्टहास
आओ सब लेकर चलें, करें
उस राष्ट्र-यज्ञ का सुप्रकाश,

जिसमें जीवन का अन्धकार,
मिट जावे यह दासत्व-भार।
स्वागत करते हैं हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

❀ ❀ ❀

हे युवक! यही तो है निदान,
जगने दो अब ज्वाला महान!
जलने दो ये जर्जर कड़ियाँ,
होने दो अब तो शंखनाद।

मुर्दों को जीने दो, भागे—
पापी प्राणों का स्वार्थवाद!
हे ब्रह्मचर्य की, आँख जाग!
सच्चे गृहस्थ की राख, जाग!

हे वानप्रस्थ ममता
हे संन्यासी की साख
स्वागत करते हैं हे आग
तू नूतन वर्ष-विहान जा

जौहर की ज्योति भरी माँओ!
कंगाल राष्ट्र को आज भीख—
दो अपने बच्चों की; तुमको
देना है कुछ भी व्यर्थ सीख।

बहनो! राखी के धागे
बाँधो टूटे मन का
शृंगारमयी स्मृतियाँ
दो जीवन का सच्चा

पत्नियाँ आज पति को भूलें,
वह ज्योति जगा दें एक आज।
जिसमें विलास का अन्धकार,
जल जावे लेकर सूद-व्याज।

यह जीने-मरने का
बलि का भूखा है आज
हम अमरात्मा के अमर
रख दें अपना सब कुछ

ओ माता के बच्चो! जागो!
हे प्राणों के अभिमान, जाग!
स्वागत करते हैं हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

भाइयो और बहनो
छिड़ने दो अब तो एक
स्वागत करते हैं हे
तू नूतन वर्ष-विहान ज

नोट—यह कविता पहली जनवरी के स्वागत में लिखी

दरिद्रों की सेवा

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

('त्यागभूमि' के लिए)

गरीबों की सेवा के बारे में हिन्दुस्थान में बातें बहुत की जाती हैं। हमारे धर्म हमें दानी बनने का आदेश करते हैं और यह आज्ञा देते हैं कि हम लोग अपनी प्रचुर सामग्री का कुछ भाग उन लोगों को भी दें जिनके पास जीवन-निर्वाह के लिए अनिवार्य साधारण सामग्री का भी अभाव है। गर्वित धनी-समुदाय कभी-कभी अपने हृदय-की दया अनुभव करके अपने चांदी और तांबे के सिक्कों को गरीबों और दुखियों की ओर फेंक देता है और एक प्रकार के धार्मिक संतोष के साथ अपने कर्तव्य की समाप्ति समझ लेता है। बहुत से तो पर-लोक में पहले से ही सुविधा और सम्मानपूर्ण स्थानों को अपने लिए सुरक्षित कर लेने की दृष्टि से धर्म-शालाओं और मन्दिरों के रूप में नियमित रूप से कुछ देते रहते हैं या हमारे तीर्थों को सुशो-भित करने वाले मुस्टंडे पंडों का पेट भरते रहते हैं। यह स्पष्ट है कि केवल दान-पुण्य से दरिद्रता की समस्या हल नहीं हो सकती। यह भी सत्य है कि जो लोग दान-पुण्य करते हैं उनमें इस समस्या को हल करने की उत्कण्ठा भी नहीं है। उनके विचार से गरीबों का होना स्वाभाविक और अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है। यदि गरीब ही नहीं रहेंगे तो धनवानों की क्या गति होगी? और यदि दान का ग्रहण करने वाला ही न रहेगा तो ईश्वर और मनुष्य की दृष्टि में हम पुण्यात्मा कैसे बनेंगे?

यह संतोष की बात है कि समाज में आज ऐसे लोग भी हैं जिनका दृष्टिकोण दूसरा ही है और जो दरिद्रता को न तो अनिवार्य मानते हैं और न आव-श्यक ही। वर्तमान समाज-व्यवस्था के अन्दर लोगों को गरीबी अनिवार्य और आवश्यक रूप में दिखाई पड़ सकती है किन्तु अन्य कारणों को छोड़ भी दें तो केवल इसी दोष के कारण वर्तमान समाज-व्यवस्था स्वतः निन्दनीय सिद्ध होती है। वर्तमान व्यवस्था ने थोड़े से श्रीमानों को दरिद्रों और दुखियों का मालिक बना दिया है और जबतक यह व्यवस्था बनी रहेगी तबतक दरिद्रता अपनी सन्तति—पाप और रोग—सहित फूलती-फलती रहेगी। इन श्रीमानों को इन अभागों की पीठ से अपना बोझ हटा लेना चाहिए, किन्तु जैसा कि टाल्सटाय ने कहा है—ये लोग और सब कुछ कर सकते हैं परन्तु इनसे यह आशा नहीं की जा सकती।

समाज की व्यवस्था में समष्टिगत परिवर्तन तो शासन-सत्ता के द्वारा ही किया जा सकता है, व्यक्ति इस दिशा में बहुत-थोड़ी सफलता प्राप्त कर सकता है, उसके प्रयत्न विधवा-आश्रम और अनाथालय का रूप ले सकते हैं, जो वैसे तो अच्छे हैं परन्तु मूल समस्या पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। शासन-सत्ता और व्यक्ति इन दोनों के मध्य का स्थान किसी नगर की म्युनिसिपलिटी को है जो, सरसरी तौर पर देखा जाय तो, शासन-व्यवस्था का ही छोटा रूप है। इस प्रकार की म्युनिसिपलिटी निश्चय ही इस समस्या को हाथ में ले सकती है और इस दिशा में बहुत-कुछ कर सकती है।

यह बात तो अब सर्वमान्य ही है कि म्युनिसि-पलिटी को बिना किसी आर्थिक लाभ की आशा

स्कूलों, अस्पतालों, अच्छी सड़कों और पानी का प्रबन्ध करना चाहिए। सरकार अपने महकमों, न्यायालयों और कौन्सिलों के लिए सुन्दर भवनों, और अपने उच्च पदाधिकारियों के लिए भव्य प्रासादों का निर्माण कर देती है। इन सबसे कोई आमदनी नहीं होती। तो फिर सरकार या म्युनिसिपेलिटी गरीबों के लिए स्वच्छ मकानों, भोजन और दूध के लिए भी अपनी ज़िम्मेदारी क्यों नहीं अनुभव करती? यह पूछा जायगा कि इन कामों के लिए रुपया कहाँ से आवे? इसका उत्तर यह है कि वर्तमान आय-व्यय के अच्छे प्रबन्ध से इन योजनाओं के लिए भी बहुत-कुछ बच सकता है। थोड़े से व्यक्तियों को विलासमय जीवन व्यतीत करने दिया जाय, इससे यह कहीं अच्छा है कि समाज के साधारण आदमियों को जीवन की आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो। बड़े-बड़े अफ़सर भव्य प्रासादों में रहें और सरकारी अट्टालिकायें अपनी चमक-दमक से गरीबों और श्रमिकों के मिट्टी के झोंपड़ों की हँसी उड़ावें इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि सर्वसाधारण साफ़-सुथरे मकानों में रहें।

वियना * नगर ने यह बतला दिया है कि ऐसे कामों के लिए रुपया कहाँ से आ सकता है। नागरिकों की आर्थिक मर्यादा के अनुसार टैक्स लगाने की उचित प्रणाली द्वारा वहाँ काफी रुपया एकत्र कर लिया जाता है और इस द्रव्य का उपयोग साधारण श्रमिकों के लिए स्वच्छ और सुन्दर मकानों का प्रबन्ध करने तथा अन्य अनेक प्रकार से जीवन-मर्यादा को उत्कृष्ट बनाने के रूप में किया जाता है। इस प्रकार रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाने से मज़दूरों की कार्य करने की शक्ति में वृद्धि हो गई है और वे पहले से अच्छे नागरिक बन गये हैं। अब उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छी तरह हो सकती है; व्यापार उन्नत हो रहा है और वियना का युद्ध के भीषण विनाश के पश्चात् सुन्दर और ... हो गया है।

म्युनिसिपलिटी का उद्देश्य क्या हो सकता है? भव्य भवनों का निर्माण नहीं, बल्कि अच्छे पुरुषों और स्त्रियों का निर्माण। ऐसे स्वस्थ और प्रगतिशील ... का निर्माण करना ही उसका उद्देश्य है जिसका ... सहयोग और समाज सेवा हो। जबतक दरिद्रता का वास है तबतक समाज स्वस्थ नहीं हो सकता। ... दशा में महामारी, पाप और सामाजिक उथल-पुथल का अधिकार बना रहेगा। इसलिए म्युनिसि‍पलिटी का सर्व-प्रथम कर्तव्य दरिद्रता को दूर करना है। उसे इसके दोषों में कमी करने का प्रयत्न करके ही सन्तोष न मान लेना चाहिए बल्कि उसे ही उखाड़ फेंकना चाहिए। दरिद्रों को नष्ट कर ... ही उनकी सर्वश्रेष्ठ सेवा है।

* आस्ट्रिया का एक प्रधान नगर।
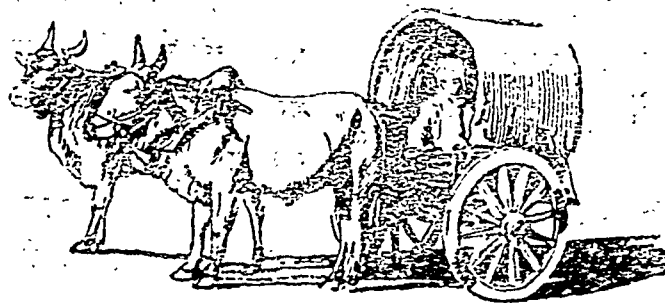
फ़ारस का अभ्युत्थान

[श्री जयमंगलसिंह]

शेषांश

रिज़ाखां का अभ्युदय

रिज़ाखां तथा उनके सहकारी कर्मचारियों ने, जो कज़ाक सेना में सुधार कर रहे थे, देश की सरकार को कमजोर एवं अप्रयत्नशील देखकर 'राद' (Raad) पत्र के संपादक सय्यद ज़ियाउद्दीन की अध्यक्षता में राष्ट्रवादियों का एक दल तैयार किया। १९२१ की २१ फ़रवरी को रिज़ाखां ने अपनी कज़ाक सेना के बल पर अविरोध राजधानी तेहरान पर अधिकार कर लिया और उस समय जो सरकार कायम थी उसे हटाकर नये मंत्रि-मण्डल का निर्माण किया। इस मंत्रि-मण्डल के प्रधान ज़ियाउद्दीन बनाये गये और स्वयं रिज़ाखां प्रधान सेनानायक के पद पर आसीन हुए।

रिज़ाखाँ के इस कार्य से सारे फारस पर उनका प्रभाव जम गया और वही वहाँ के असली शासक समझे जाने लगे। प्रायः दो वर्ष तक तो ऐसा रहा कि वह जिसको चाहते प्रधान मंत्री बनाते तथा जिसको चाहते उस पद से हटा देते थे। उनके हाथ में देश की सारी शक्ति, सेना के बल पर, आ गई थी। अतः उनके लिए ऐसा करना कोई कठिन काम नहीं था। रिज़ाखां ने १९२३ तक तो स्वयं प्रधान सेनानायक तथा युद्ध-सचिव के पद पर रहकर अपनी सारी शक्ति, सेना को सुसंगठित तथा सुदृढ़ करने में लगाई। इसके साथ ही उन्होंने उन शक्तिशाली सरदारों को भी दबाया जो राज्य-प्रबंध की गड़बड़ी से लाभ उठाकर केन्द्रीय शक्ति के विरुद्ध बगावत का झण्डा ऊँचा किया करते थे। इस तरह सबसे प्रथम उन्होंने केन्द्रीय सत्ता को देश में स्थापित किया और देश की स्थिति को ठीक करने में उन्होंने लगभग दो वर्ष का समय लगाया। इसके साथ ही वह स्वयं प्रधान मंत्री होने के लिए अपनी शक्ति भी बढ़ाते रहे। रिज़ाखाँ की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर अपना प्राण बचाने के लिए अहमदशाह १९२३ के अंत में यूरोप जाने के बहाने फारस से भाग खड़े हुए।

शाह के फारस छोड़ने तथा रिज़ाखां के प्रधान मंत्री होने तक देश में अगणित घटनायें घटीं। ज़ियाउद्दीन की सरकार अधिक दिन तक नहीं टिक सकी। उसने अमीर-उमरावों पर नया कर लगाया जिससे वे उसके विरुद्ध हो गये। राजकीय मामलों में सेना की आवाज़ के अधिक प्रभावशाली होने के कारण उसका सैनिक दल से झगड़ा हो गया, इसलिए रिज़ाखां की सहायता उसे नहीं प्राप्त हो सकी।

इस मंत्रि-मण्डल के पतन के बाद, १९२३ तक फारस में गड़बड़ी रही। रिज़ाखाँ के अनवरत परिश्रम से इस बीच कई मंत्रि-मण्डलों का निर्माण हुआ, पर कोई अधिक दिनों तक नहीं ठहर सका। इस समय फारस में एक ऐसे वीर तथा प्रभावशाली आदमी की ज़रूरत थी जो स्वयं राज्य-भार अपने हाथ में लेकर राष्ट्र-निर्माण के कार्य को सफल कर सके। रिज़ाखां को छोड़ कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति नहीं था। बस, उपयुक्त मौका देखकर वह स्वयं प्रधान मंत्री बन गये और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

आर्थिक सुधार

पर रिज़ाखां का पथ भी कण्टकाकीर्ण था। उन्हें विद्रोही जातियों को दबाने के अतिरिक्त बहुत से जटिल अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को हल करना था। उस समय फारस को सबसे अधिक आवश्यकता अर्थ-सम्बन्धी सुधार की थी। वहाँ का ख़ज़ाना खाली था तथा कर-प्रणाली भी अच्छी नहीं थी। राज्य के आय-व्यय का अच्छा प्रबन्ध नहीं था, इस कारण देश की आर्थिक अवस्था दिन-दिन खराब होती जा रही थी।

इस समय एक ओर देश की ऐसी अवस्था थी और दूसरी ओर रिज़ाखां को अपनी सेना तथा पुलिस के संघटन के लिए धन की बड़ी आवश्यकता थी; क्योंकि इसी के द्वारा देश में शान्ति कायम की जा सकती थी। उस समय फ़ारस के हित के लिए देश में आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था की जरूरत थी। इस कारण उन्होंने नया कानून बनाकर लोगों से कर वसूल किया और उसे अपने आवश्यक कार्यों में खर्च किया। इसके बाद उन्होंने अपने देश के अर्थ-सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान दिया और इसके लिए विदेश से अर्थ-विशेषज्ञ बुलाने का निश्चय किया। वह किसी तटस्थ राष्ट्र से अपने देश का आर्थिक सुधार करने में सहायता लेना चाहते थे, क्योंकि वह समझते थे कि जिन राष्ट्रों का हित फ़ारस में सम्बद्ध है वे अपने लिए सहूलियतें मांगेंगे। अतः १९११ में फारस के आर्थिक प्रबन्ध के लिए जिस तरह अमेरिका से श्री शुस्टर की अधीनता में कुछ व्यक्ति आये थे, उसी तरह वहाँ से इस बार भी अर्थ-विशेषज्ञ डा० ए० सी० मिल्स पौ (Dr. A. C. Mills Paugh) अपने सहकारियों के साथ फ़ारस आये। फारस की भयंकर आर्थिक अवस्था सुधारने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, पर उन्हें अपने प्रयत्न में काफी सफलता मिली। १९२३ में जो बजट बना उसमें ५ प्रतिशत का टोटा था, पर १९२५-२६ के बजट में बचत हुई। वास्तव में देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए डा० मिल्स पौ का प्रयत्न प्रशंसनीय है जिन्होंने आय-व्यय पर नियंत्रण करके तथा अर्थ सम्बन्धी सुधार करके देश की एक दम काया पलट दी है।

केन्द्रीय सरकार का संगठन

इसके बाद रिज़ाखां ने उन अमीर-उमरावों तथा सरदारों को कर देने के लिए मजबूर किया जो केन्द्रीय सरकार को कर देना अस्वीकार कर चुके थे तथा जो अपने राज्य में सरकार को कर वसूल नहीं करने देते थे। ऐसा करने में उन्हें उनकी सुसंघटित सेना ने बड़ी सहायता की। फारस का सबसे शक्तिशाली सरदार महम्मरा का शेख था जो अंग्रेजों के हाथ का खिलौना था। ऐंग्लो पर्शियन आयल कम्पनी का प्रधान कार्यालय उसी के राज में था। उसने अंग्रेजों से आर्थिक सहायता लेकर बहुत-सा धन इकट्ठा कर लिया था। अंग्रेज बराबर उसे सरकार के खिलाफ़ काम करने में मदद करते थे। इस तरह वह बड़ा शक्तिशाली तथा उद्दण्ड हो गया था।

१९२४ के प्रारम्भ में शेख तथा केन्द्रीय सरकार में बेतरह नोक-झोंक हो रही थी, क्योंकि वह कर का वसूला तथा कर देना अस्वीकार कर रहा था। उसने अपने पड़ोसी बख्तियारी तथा काशगाई जातियों को भी अपनी ओर मिलाकर केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध बग़ावत करने के लिए तैयार कर लिया था।

रिज़ाखाँ से शेख की यह उद्दंडता नहीं देखी गई और उन्होंने इसके प्रतीकार का निश्चय कर लिया। बस, फिर क्या था, उन्होंने अपनी सुशिक्षित ४०,००० सेना में से २०,००० सिपाहियों को लेकर बख़्तियारी राज्य पर धावा बोल दिया। इनकी सेना के सामने विरोधी नहीं अड़ सके और अपना हथियार रख दिया। इसे देखकर शेख महम्मरा बहुत घबराया और उसने रिज़ाखाँ को शीराज़ में आत्म-समर्पण करने की सूचना दी, पर उनके लिए इस प्रकार की सूचना काफी नहीं थी। वह एक शस्त्र-सज्जित जहाज़ पर सवार होकर फ़ारस की खाड़ी के रास्ते शेख की राजधानी में पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचते ही शेख ने आत्म-समर्पण कर दिया। और केन्द्रीय सरकार की सत्ता को मानने तथा कर देने की प्रतिज्ञा की। जमानत के रूप में उन्होंने शेख के एक लड़के को तेहरान भेज दिया। इस तरह केन्द्रीय सरकार की सत्ता कायम करने के लिए उन्होंने ऐसे अनेक प्रयत्न किये जिसमें उन्हें बहुत-कुछ सफलता हुई।

१९२४ तथा १९२५ में रिज़ाखाँ ने अपनी सारी शक्ति देश की अवस्था सुधारने तथा देश में शान्ति स्थापित करने में लगाई। विद्रोहियों को दबाने के साथ साथ सड़कों पर पहरे बैठा दिये। जिससे चोर-डाकू का भय जाता रहा और देश में बहुत-कुछ शान्ति स्थापित हो गई। इन सफलताओं के कारण रिज़ाखाँ की सत्ता देश में जम गई और वह बहुत लोक-प्रिय हो गये। अबतक उन्होंने अर्थ-सम्बन्धी सुधार स्थायी कर लिया था तथा एक सुसंघटित सेना तैयार कर

थी जिससे राजकीय तथा आर्थिक अवस्था बहुत-कुछ र गई थी। अतः अब उन्होंने अपनी शक्ति वैध आधारों स्थापित करने की चेष्टा की। इसके लिए १९२३ तथा २४ में राष्ट्रीय-शासन-सभा ('मजलिस') में वह अपने थियों द्वारा राजतन्त्र-प्रणाली को नष्ट कर देश में तन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए आन्दोलन कराते रहे, इसमें उन्हें काफ़ी सफलता नहीं मिली।

इसी समय रिज़ाख़ाँ ने सारे देश में दौरा किया। सब उनका शानदार स्वागत हुआ। जहाँ जाते वहाँ धूम जाती। इससे उन्हें विश्वास हो गया कि हमारी सत्ता में है तथा अब हम मजे में बादशाह बन सकते हैं; पर होंने अपना यह विचार गुप्त रक्खा। इसका कारण यह कि फ़ारस में लोग राजा को ईश्वर का अंश समझते हैं। के साथ ही वे राजतन्त्र को अपने देश से नष्ट करना चाहते थे। मुल्लों तथा सरदारों का वहाँ प्राबल्य था वे लोग शाही खान्दान के ही किसी व्यक्ति को राजा पद पर आसीन देखना चाहते थे। इससे रिज़ाख़ाँ की ठिनाई और भी बढ़ गई थी। पर वह साहसी और धीर , अतः बादशाह बनकर देश की बागडोर हाथ में ने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे।

जब यह देखा गया कि एकाएक शाह को गद्दी से उतार राजा बनना जरा टेढ़ी खीर है, तब रिज़ाख़ाँ ने देश में जातन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ या। क्योंकि प्रजातन्त्र राज्य स्थापित होने पर ही वे सभा राष्ट्रपति होकर देश का शासन-सूत्र अपने हाथ में सकते थे। शाही खान्दान का ही कोई व्यक्ति बादशाह न सकता था, अतः रिज़ाख़ाँ के लिए बादशाह बनना सरल ही था। अहमदशाह अपनी प्राण-रक्षा के लिए १९२३ में फ्रान्स चले गये थे और उनके आने की कोई आशा ही थी। इस कारण उन्होंने सर्वप्रथम * अहमदशाह को गद्दी से उतारने का निश्चय किया। इस समय रिज़ाख़ाँ की धाक देश में काफ़ी जम चुकी थी और वह जो-कुछ करते थे उसका विरोध करनेवाला कोई नहीं था। फिर क्या था? रिज़ाख़ाँ का सहारा पाकर सैनिकदल मजलिस द्वारा अहमदशाह को पदच्युत करने में समर्थ हुआ। अस्थायी सरकार की स्थापना हुई और रिज़ाख़ाँ उसके अस्थायी शासक नियुक्त हुए। इस तरह वह फ़ारस के सर्वेसर्वा हो गये।

* आजकल अहमदशाह फ्रान्स में हैं। और किसी के बल काम करके पेट पालते हैं। —संपा०।

रिज़ाख़ाँ से रिज़ाशाह

इसके बाद मजलिस के द्वारा वे फारस के शाह बनाये गये और पुराने शाह तथा उसके खानदान को अब से गद्दी के अधिकारी न समझे जाने का निश्चय हुआ। इस तरह उनकी चिर-संचित इच्छा पूर्ण हुई और १९२६ की २५ अप्रैल को वे रिज़ाख़ाँ की जगह रिज़ाशाह हो गये। उनका राज्याभिषेक खूब धूमधाम से हुआ और उनके उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये। उन्होंने शाही खान्दान का ताज नहीं पहना, वरन् पहलवी वंश का नया ताज बनाया गया और इस तरह वह इस नये पहलवी वंश के संस्थापक हुए।

आज फ़ारस के शाह रिज़ाख़ाँ पहलवी हैं। इनका जन्म मज़नदरान नामक प्रान्त में एक किसान के घर हुआ था, पर अपनी वीरता, रणचातुरी, नीति-निपुणता तथा अपनी कार्यदक्षता के कारण आजकल फारस के सर्वेसर्वा बने हुए हैं। ये प्रारम्भ में फारस की शाही सेना में घुड़सवार सैनिक के रूप में सम्मिलित हुए थे, पर अपनी बहादुरी के कारण सैनिक अफसर बन गये। इसी पद पर रहकर अपनी योग्यता के सहारे शाही सेना में इतने लोक-प्रिय हो गये कि सब सैनिक इनके इशारे पर चलने लगे। महायुद्ध के समय ये सेनानायक बना दिये गये। १९२०–२१ में रूस के विरुद्ध जो लड़ाई हुई थी उसमें इन्होंने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया था। इस तरह इन्होंने अपनी वीरता प्रदर्शित कर फारस के बादशाह का स्थान प्राप्त कर लिया है।

रिज़ाख़ाँ महत्वाकांक्षी तथा दृढ़निश्चयी पुरुष हैं। ये समय की गति देखकर ही किसी काम में हाथ लगाते हैं और यही इनके कार्य में सफलता प्राप्त करने का कारण कहा जा सकता है। ये व्यवहार-कुशल तथा दूरदर्शी हैं। इनमें देश भक्ति कूट-कूटकर भरी है। इन्हीं के प्रशंसनीय प्रयत्न से आज फारस में विदेशियों का प्रभाव बहुत कम हो गया है तथा इन्हीं ने देश को पाश्चात्य साम्राज्यवादी राष्ट्रों के

फौलादी पंजों से मुक्त किया है। यही कारण है कि सारे फ़ारस में रिज़ाखां की तूती बोलती है।

देश के सम्बन्ध में

फ़ारस की आबादी लगभग डेढ़ करोड़ है। अधिकांश निवासी अशिक्षित हैं। यहाँ के दो तिहाई लोग सरदारों (Feudal chiefs) के अधीन हैं। प्रायः सभी नगर देश के मध्य भाग में बसे हुए हैं। बड़े-बड़े शहरों का इस देश में अभाव-सा है। बहुत से शहरों में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है, पर तेहरान को छोड़कर कहीं ट्राम नहीं चलती। रेलों की भी कमी है पर अब इसके लिए प्रयत्न हो रहा है। यहाँ लोग घोड़ागाड़ी तथा घोड़े पर सवारी करते हैं।

फ़ारस की प्रकृति—प्रदत्त वस्तुओं (Natural resources) का अभी तक पूरा उपयोग नहीं हुआ है। मिट्टी के तेल को छोड़कर वहाँ के खनिज पदार्थों की अभी खुदाई नहीं हुई है। तांबा, लोहा, शीशा, मैगनीशिया तथा निकेल की खानें इस देश में बहुत हैं। पर जबतक वहाँ रेल का प्रबन्ध नहीं होता, तबतक उन्हें अधिक परिमाण में ये वस्तुयें निकालने में सहूलियत नहीं हो सकती। पुराने तरीकों से निकालने में बड़ी कठिनाई होगी, अतः उनको निकालने में नये वैज्ञानिक उपायों का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर होगा।

मशीन की चीज़ों का प्रचार होने के पहले फारस के हस्त-कौशल की बड़ी ख्याति थी। लेकिन इधर दस-बीस वर्षों में यूरोप की बनी चीजों के प्रचार से वहाँ के कला-कौशल को बड़ा धक्का पहुँचा और महायुद्ध ने तो वहाँ के रेशमी कपड़े के व्यवसाय को एकदम नष्ट कर दिया। यहाँ आबपाशी के प्रबन्ध की कमी के कारण कम खेती होती है, पर यदि इसका प्रबन्ध किया जाय तो बहुत-सी परती ज़मीन उपजाऊ बनाई जा सकती है। अब जमीन्दारों ने आधुनिक मशीनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है। पर अधिकांश खेती पुराने तरीकों पर ही की जा रही है। यहाँ भेड़ की ऊन तथा दरी के व्यवसाय में उन्नति करने से सरकार को काफी आमदनी हो सकती है। भूमिज तथा खनिज दोनों प्रकार के पदार्थों की कमी नहीं है। यह देश स्वावलम्बी है और अगर आमदरफ्त के साधन बढ़ जायँ तो इस देश की सम्पत्ति बढ़ सकती है और जो निर्यात इस होता है उससे कहीं अधिक बढ़ाया जा सकता है।

फारस शस्य-श्यामल देश है। यहाँ धन की कमी नहीं है, किन्तु उसका उपयोग करने में काफ़ी सुधा[र] करने की आवश्यकता है। सभ्यता तथा संस्कृति पुरा[नी] यहाँ के लोगों में विचार-स्वातंत्र्य का भाव सदा से आया है और आज भी सूफ़ियों में यह गुण पाया जाता [है।]

फारस का साहित्य अरब तथा तुर्की के [लिए] आदर्श एवं पथ-प्रदर्शक रहा है। ईरानी कला की ख्याति थी। इतना ही नहीं यह मध्य-पूर्व में सर्व[श्रेष्ठ] समझी जाती थी। फारस की संस्कृति में इतनी शक्ति थी कि ज़ो इसके संसर्ग में आता था वह इससे प्रभावित होता था। फारस वाले सदा से बुद्धि तथा [विचार] में स्वतंत्र रहे हैं।

यहाँ के लोगों की कुछ ऐसी मनोवृत्ति रही है कि विदेशियों के नियंत्रण तथा उनके प्रभाव को अपने देश [में] बढ़ने देने को महत्व नहीं देते थे। उनकी बुद्धि का [इतना] विकास हुआ था कि वे सांसारिक महत्ता को अपने ह[दय] में स्थान ही नहीं देते थे। वे दूसरों के द्वारा विजित हो[ते] थे, पर विजेताओं को अपने में मिला लेते थे। जैसा कि भारत सदैव से ही करता रहा है।

फारसवालों की मनोवृत्ति में भी अब प्रबल परिव[र्]तन हो गये हैं तथा हो रहे हैं। वे भी अब पाश्[चात्] यता के रंग में खूब रँग गये हैं। वहाँ भी तुर्की की तरह कट्टरता एवं धर्मान्धता का जोर कम होता जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण महायुद्ध के बाद से फारस में राजनैतिक तथा सामाजिक जागृति का होना है। वहाँ भी तुर्की की तरह हैट-कोट तथा पतलून पहनने की अ[नि]वार्य कारी आज्ञा हो गई है तथा लोग अब इन्हें पहनने भी लगे हैं। यहाँ भी स्त्रियों के बुर्का (परदा) न पहनने पर जोर दिया जा रहा है। इस आशय का कानून बनाने का भी उद्योग हो रहा है कि जो पुरुष अपनी स्त्री को बुर्का पहनने के लिए मजबूर करेगा उसे सज़ा दी जायगी। स्त्रियों में जागृति प्रारम्भ हो गई है। स्त्रियों के सुधार के लिए वहाँ की शिक्षित स्त्रियाँ उनकी ओर से वर्षोंसे लगातार कोशिश

रही हैं। इस सम्बन्ध में बहुत-सी पत्रिकायें भी
शित होती हैं।

शिक्षा-प्रसार

महासमर के बाद से फारस में शिक्षा-प्रसार पर
ज़ोर दिया जा रहा है। फारस में शिक्षा-प्रसार का
लोगों में राष्ट्रीयता का भाव भरना है। शिक्षा का
प्रधानतः सरकार के हाथ में है। ईरानी ढंग पर
दी जाती है। ग़ैरसरकारी स्कूलों को प्रोत्साहन दिया
है और उन्हें आर्थिक सहायता भी दी जाती है।
फारस की प्रारम्भिक शिक्षा का ढंग जर्मनी के ढंग से
मिलता-जुलता है। प्रारम्भिक स्कूलों में ईरान का
स, भूगोल, गणित, साधारण इतिहास, विज्ञान आदि
जाते हैं। उच्च शिक्षा में दो विदेशी भाषायें भी पढ़ाई
हैं जो साधारणतः फरासीसी और अंग्रेज़ी होती हैं।
शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद विद्यार्थियों को कला-
तथा कृषि-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने का मौका
ता है।

शिक्षा-प्रसार के लिए काफी उद्योग हो रहा है। इसमें
बड़ी दिलचस्पी से भाग ले रहे हैं। यहाँतक कि जंगली
यों ने भी लिखना-पढ़ना प्रारंभ कर दिया है। रिज़ाखां
-प्रसार के बहुत पक्षपाती हैं और यही कारण है कि
से स्कूल भी खोले जा रहे हैं। यहाँ विदेशियों के ८०
हैं। इनमें १० अमेरिकन पादरियों द्वारा संचालित
हैं और शेष अंग्रेज़ तथा फरासीसी एवं अन्यान्य देशों
दरियों द्वारा। पहले इन स्कूलों का निरीक्षण फारस की
र की ओर से नहीं होता था, पर अब होने लगा है।
स के शिक्षा-विभाग ने अब यह नियम जारी कर दिया
इन स्कूलों में फारसी भाषा की भी शिक्षा दी जाय
साम्प्रदायिकता का प्रचार इनमें न किया जाय। इन
में प्रारम्भ के ६ वर्षों में सभी विषयों की शिक्षा फारसी
देने की व्यवस्था कर दी गई है। फारसी भाषा में
देने वाले शिक्षकों का वेतन सरकार देती है।

यहाँ औरतों को भी शिक्षित बनाने का काफी उद्योग
रहा है। लड़कियों के लिए विद्यालय तो बहुत हैं, पर
केवल १० प्रतिशत इन विद्यालयों में जाती हैं। हर
साल कम से कम ५० लड़कियों को विज्ञान की शिक्षा प्राप्त
करने के लिए यूरोप भेजने के सम्बन्ध में विचार हो रहा है।
सरकार की ओर से सैकड़ों योग्य विद्यार्थी प्रतिवर्ष यूरोपीय
देशों में विज्ञान, व्यवसाय, नौ-सेना तथा युद्ध-सम्बन्धी
शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे जाते हैं। तेहरान में एक विश्व-
विद्यालय है जिसमें विद्यार्थियों की काफी संख्या है।

फारस में शिक्षा-प्रसार में दो बहुत बड़ी बाधायें हैं।
एक रुपये की कमी; दूसरी योग्य शिक्षकों का अभाव।
शिक्षकों के अभाव की पूर्ति करने के लिए सरकार ने अध्या-
पन कला की शिक्षा का प्रबन्ध किया है। तेहरान तथा
अन्य बड़े नगरों में अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की शिक्षा
के लिए बहुतेरे नार्मल ट्रेनिंग स्कूल खोले गये हैं। इन स्कूलों
में तथा कला-विद्यालयों में फ्रान्स तथा जर्मनी से बुलाकर
बहुतेरे शिक्षा-विशेषज्ञ नियुक्त किये गये हैं। इसके साथ ही
जो लोग विदेशों से प्रति वर्ष शिक्षित होकर आया करेंगे वे
अध्यापक का काम कर सकेंगे।

अभी फारस में राष्ट्रीय आय का केवल एक प्रतिशत
अंश शिक्षा पर खर्च होता है। दस वर्ष पूर्व शिक्षा पर
जितनी रकम खर्च की जाती थी उससे यह रकम ७० प्रति-
शत अधि है। धर्मोत्तर सम्पत्ति की आय का कुछ भाग
शिक्षा में लगाने पर विचार हो रहा है। अगर मजलिस में
इसके सम्बन्ध में कानून पास हुआ तो शिक्षा-सम्बन्धी
समस्या हल होने में बड़ी सहायता मिलेगी। फारस की
सरकार का शिक्षा-सम्बन्धी प्रयत्न वास्तव में प्रशंसनीय है।
यही कारण है कि फारस में शिक्षा के सम्बन्ध में बड़ी
शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे हैं।

टर्की के उदाहरण ने फारस में एक नई जान फूँक दी
है। उसीका अनुकरण कर रिज़ाखाँ भी अपने देश का पश्चिमी
ढंग पर निर्माण कर रहे हैं। पर ईरान ने सुधार की जिस
नीति का अवलम्बन किया है वह टर्की, अफ़गानिस्तान
और यूरोपीय देशों की नीति से भिन्न है। फारस भी
पाश्चात्य देशों की नकल करता है, पर अपने ढंग पर।
लोगों पर सुधार का बोझ नहीं लादा जाता। लोगों में
सुधार का भाव जाग्रत करने का प्रयत्न किया जाता है पर
सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जाती।

इस समय रिज़ाखां फारस में स्थायी आन्तरिक शान्ति स्थापन करने की चेष्टा कर रहे है। अब भी कभी-कभी विद्रोह हो जाता है पर वह उसे दबा देते हैं। अतः देश की उन्नति के लिए आन्तरिक शान्ति की बड़ी आवश्यकता है। विदेशी राष्ट्रों से भी फारस का अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। १९२१ में सोवियट रूस के साथ जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार फ़ारस को यह वचन दिया गया था कि साम्राज्य-विस्तार की इच्छा से भविष्य में रूस एक इंच भी उत्तरी फारस की ओर नहीं बढ़ेगा और यदि कोई राष्ट्र फारस पर आक्रमण करेगा तो रूस उस (फारस) का साथ देगा। इसके साथ ही रूस ने उत्तरी फारस में अपनी पुरानी रियायत का दावा छोड़ दिया और उल्टे फारस पर चढ़ाई करने से फारस की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति कर दी। इस के बाद भी रूस के साथ एक व्यापारिक सन्धि हुई है। इस तरह फ़ारस का रूस, तुर्की, अफगानिस्तान तथा ग्रेट-ब्रिटेन से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इधर इटली से भी मित्रता की सन्धि हो गई है तथा बेलजियम से भी इसके लिए बातचीत चल रही है।

इस तरह फारस में नई जागृति होने तथा रिज़ाखां के सर्वेसर्वा हो जाने से अंग्रेजों के हित को बड़ा धक्का पहुँचा। इसके साथ ही इस बात की आशंका होने लगी थी कि वे फ़ारस के तैल-कूपों को छोड़ देंगे। पर अंग्रेज़ों की कूटनीति तो सदा शतरंज की चाल की तरह बदलती रहती है। अंग्रेजों ने अपनी नीति में परिवर्तन करके तथा वहाँ की वर्तमान सरकार के अनुकूल बनकर अपने घटते हुए प्रभाव को बहुत दूर तक बचा लिया।

जब 'अंग्रेजी-फारसी समझौता' के लिए राष्ट्रवादियों के विरोध करने पर मजलिस ने स्वीकृति नहीं दी तो इंग्लैंड के तात्कालिक वैदेशिक सचिव लायड जार्ज को बड़ी निराशा हुई और उन्हें फ़ारस के आन्तरिक मामलों से अपना बहुत-कुछ नियंत्रण हटा लेना पड़ा। इस तरह फारस में अंग्रेजों की नीति रूस की 'नवीन एशियाई नीति' के कारण सफल नहीं हो सकी।

अंग्रेजों की सदा से एशिया में यह नीति रही है कि पहले तो किसी राष्ट्र के शासक के विरुद्ध उसके सरदारों को भड़काकर तथा उनको सहायता देकर उनसे फायदा उठाना तथा अपना प्रभाव उस देश में करना, पर किसी शासक की सत्ता देश में काफी मज़बूत हो जाने पर उसे अपनी ओर मिला लेना जिससे उनके शत्रुओं के साथ न मिल जाय। रूस से अंग्रेज़ बराबर डरते आये हैं। जब रूस साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था तब भी अंग्रेज उससे डरते थे और आज वह साम्यवादी नीति का समर्थक है तब भी वे उससे डरते हैं। आज साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद में ज़ोरों का संघर्ष हो रहा है। सोवियट रूस अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का आज कट्टर शत्रु है। पहले जो अंग्रेज शेख़ महम्मरा को फ़ारस की केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध बग़ावत करने में सहायता देते थे वही आज वहाँ की सरकार के अनुकूल हो गये हैं। इसका कारण यह है कि जब अंग्रेजों ने देखा कि फ़ारस में रिज़ाखां की शक्ति काफी मजबूत हो गई है तब वे अपनी पुरानी नीति के अनुसार उनकी ओर झुके और उनके मुआफ़िक़ बन गये। अंग्रेज़ों को डर था और है कि कहीं फारस की सरकार एकदम उनके शत्रु रूस के बोलशेविकों की ओर न मिल जाय, अतः वे वहाँ की सरकार पर प्रभाव ... बोलशेविकों के ख़तरे के बचना चाहते हैं।

इंग्लैण्ड तथा रूस में पारस्परिक शत्रुता बढ़ने के कारण दोनों देशों की नज़र फारस पर रहती है कि कहीं वह दूसरे की ओर न मिल जाय। जिस दिन यहाँ दोनों राष्ट्रों—इंग्लैण्ड तथा रूस में से किसी एक का प्रभुत्व अधिक होगा उस दिन दोनों में संघर्ष हुए बिना न रहेगा।

फ़ारस के लोगों पर साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद के सिद्धान्तों का बहुत कम असर पड़ा है। निकट भविष्य में इस बात की संभावना भी नहीं है कि वहाँ इन सिद्धान्तों का दौरदौरा हो।

संसार में कभी-कभी ऐसी घटनायें घट जाती हैं जो जन-साधारण की मनोवृत्ति का एकदम बदल देती हैं। एशिया में रूस-जापान युद्ध (१९०५) इसी तरह की एक महत्वपूर्ण घटना है जिसने एशिया की मनोवृत्ति को एकदम बदल दिया था। एशिया वालों के हृदय में उस समय जो इस प्रकार का अन्ध-विश्वास

[...]जाति के लोग रंगीन जातियों से विद्या, बुद्धि तथा बल [...]ह हैं तथा सफेद लोगों का संसार में रंगीन जातियों [...]धिकार होना स्वाभाविक है—दूर हो गया। उसके [...]थः एशिया के सभी राष्ट्र यूरोपीय देशों से दबे जा [...]। एशिया के लोगों का यह ख्याल था कि हम लोग [...]के मुकाबले में नहीं ठहर सकते। किन्तु १९०५ में [...]ा के एक छोटे से देश जापान ने यूरोप के एक विशाल [...]स पर विजय प्राप्त की। इससे लोगों का पहले का [...]म जाता रहा तथा उनमें यह भाव आया कि प्रयत्न [...]से हम यूरोप की अधीनता से मुक्त हो सकते हैं, और [...]फल-स्वरूप एक राष्ट्रीय आन्दोलन समूचे महा-देश [...]ह गया। इसी के फल-स्वरूप तुर्की में तरुण तुर्क, [...]में तरुण चीन तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का [...]म विदेशी सत्ता को नष्ट करने के लिए हुआ। फारस में [...]रुण-फारस-दल का इसी समय जन्म हुआ था। एशिया [...]ागृति के इतिहास में १९०६ का समय बहुत महत्व-[...]। इसी समय फारस में भी राष्ट्रीयता की लहर फैली [...]। प्रभावित होकर उस समय के शाह ने एक शासन-[...] द्वारा कुछ शासनाधिकार यहाँ के लोगों को दिये थे। [...]समय से यहाँ राजनैतिक दल का भी श्रीगणेश हुआ। [...]यहाँ प्रधानतः तीन राजनैतिक दल 'अनुदार', 'उदार' [...]प्रजातंत्रवादी हैं। समाजवादी दल भी है जिसमें [...]मजदूरों की प्रधानता है। ये सब दल भी अन्य देशों के [...]निक दलों की नाईं काम करते हैं तथा इनमें भी वही [...]ति तथा विचार-धारा काम कर रही है जो अन्य देशों [...]के दलों में काम करती है। इसके साथ यहाँ बहुत से [...]प्रकार के लोग भी हैं जो गुप्त-समितियों द्वारा काम [...]हैं।

[...]व्यवस्थापक सभा (मजलिस) में दो प्रकार के लोग हैं। [...]सरकार के पक्ष में हैं तथा दूसरे जो उनका विरोध करते हैं। जब कोई मंत्रि-मण्डल टूट जाता है तो उसकी जगह संयुक्त मंत्रि-मण्डल की सृष्टि होती है। कोई भी मंत्री, जिसे पदत्याग करने के लिए मजबूर किया जाता है, पद से अलग होने के साथ ही मजलिस की सदस्यता से भी अलग समझ लिया जाता है।

फ़ारस में अभी राजनैतिक शिक्षा की बड़ी जरूरत है। आज फारस, तुर्की तथा अफ़ग़ानिस्तान एक संधि-सूत्र में बँधे हुए हैं; इस कारण इन तीनों राष्ट्रों का महत्व एशिया में बढ़ गया है। इन मुसलमान राष्ट्रों में, अफगानिस्तान को छोड़कर, अन्ध-विश्वास, धर्मान्धता तथा मुल्लापन का जोर कम हो गया है और नवीनता का प्रचार ज़ोरों से हो रहा है।

फ़ारस के रिज़ाशाह, अफगानिस्तान के भूतपूर्व अमीर अमानुल्लाखां की तरह 'एशियाई संघ' के प्रबल समर्थक नहीं हैं। वह चाहते हैं कि हमारा देश स्वतंत्र रहे और इसके लिए अंग्रेज़ों से व्यर्थ का वैर मोल लेना नहीं चाहते, पर फारस में अंग्रेज़ों की कार्रवाई पर खूब ध्यान रखते हैं। फारस के अन्दर जागृति हो गई है और अब इस बात की आवश्यकता है कि वह इतना बलशाली होजाय कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों से अपने अधिकारों के लिए सिर ऊँचा करके लड़ सके और संसार के राष्ट्रों में वही स्थान प्राप्त कर ले जो दूसरों को प्राप्त है।

एशिया के कई मुसलमान राष्ट्र—तुर्की, फ़ारस आदि-स्वतंत्र हैं। क्या हम आशा करें कि ये राष्ट्र जापान की नाईं अपनी शक्ति का दुरुपयोग एशिया के राष्ट्रों को दबाये रखने में न कर उनके अधिकारों की रक्षा में करेंगे? पूर्वीय देश आज उत्सुक दृष्टि से इन स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्रों की ओर देख रहे हैं। देखें एशिया से साम्राज्यवादी राष्ट्रों का प्रभाव कब नष्ट होता है।

इस समय रिज़ाखां फारस में स्थायी आन्तरिक शान्ति स्थापन करने की चेष्टा कर रहे हैं। अब भी कभी-कभी विद्रोह हो जाता है पर वह उसे दबा देते हैं। अतः देश की उन्नति के लिए आन्तरिक शान्ति की बड़ी आवश्यकता है। विदेशी राष्ट्रों से भी फारस का अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। १९२१ में सोवियट रूस के साथ जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार फारस को यह वचन दिया गया था कि साम्राज्य-विस्तार की इच्छा से भविष्य में रूस एक इंच भी उत्तरी फारस की ओर नहीं बढ़ेगा और यदि कोई राष्ट्र फारस पर आक्रमण करेगा तो रूस उस (फारस) का साथ देगा। इसके साथ ही रूस ने उत्तरी फारस में अपनी पुरानी रियायत का दावा छोड़ दिया और उल्टे फारस पर चढ़ाई करने से फारस की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति कर दी। इस के बाद भी रूस के साथ एक व्यापारिक सन्धि हुई है। इस तरह फ़ारस का रूस, तुर्की, अफगानिस्तान तथा ग्रेट-ब्रिटेन से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इधर इटली से भी मित्रता की सन्धि हो गई है तथा बेलजियम से भी इसके लिए बातचीत चल रही है।

इस तरह फारस में नई जागृति होने तथा रिज़ाखां के सर्वेसर्वा हो जाने से अंग्रेजों के हित को बड़ा धक्का पहुँचा। इसके साथ ही इस बात की आशंका होने लगी थी कि वे फ़ारस के तैल-कूपों को छोड़ देंगे। पर अंग्रेज़ों की कूटनीति तो सदा शतरंज की चाल की तरह बदलती रहती है। अंग्रेजों ने अपनी नीति में परिवर्तन करके तथा वहाँ की वर्तमान सरकार के अनुकूल बनकर अपने घटते हुए प्रभाव को बहुत दूर तक बचा लिया।

जब 'अंग्रेजी-फारसी समझौता' के लिए राष्ट्रवादियों के विरोध करने पर मजलिस ने स्वीकृति नहीं दी तो इंग्लैंड के तात्कालिक वैदेशिक सचिव लायड जार्ज को बड़ी निराशा हुई और उन्हें फ़ारस के आन्तरिक मामलों से अपना बहुत-कुछ नियंत्रण हटा लेना पड़ा। इस तरह फारस में अंग्रेजों की नीति रूस की 'नवीन एशियाई नीति' के कारण सफल नहीं हो सकी।

अंग्रेजों की सदा से एशिया में यह नीति रही है कि पहले तो किसी राष्ट्र के शासक के विरुद्ध उसके सरदारों को भड़काकर तथा उनको सहायता देकर उनसे फायदा उठाना तथा अपना प्रभाव उस देश में करना, पर किसी शासक की सत्ता देश में काफ़ी मज़बूत हो जाने पर उसे अपनी ओर मिला लेना जिससे उनके शत्रुओं के साथ न मिल जाय। रूस से अंग्रेज सदा से डरते आये हैं। जब रूस साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था तब भी अंग्रेज उससे डरते थे और आज वह साम्यवादी नीति का समर्थक है तब भी वे उससे डरते हैं। आज साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद में ज़ोरों का संघर्ष हो रहा है। सोवियट रूस अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का आज कट्टर शत्रु है। पहले जो अंग्रेज शेख़ महम्मरा को फ़ारस की केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध बग़ावत करने में सहायता देते थे वही आज वहाँ की सरकार के अनुकूल हो गये हैं। इसका कारण यह है कि जब अंग्रेजों ने देखा कि फ़ारस में रिज़ाखां की शक्ति काफी मजबूत हो गई है तब अपनी पुरानी नीति के अनुसार उनकी ओर झुके और मुआफ़िक बन गये। अंग्रेजों को डर था और है कि कहीं सरकार एकदम उनके शत्रु रूस के बोलशेविकों की ओर मिल जाय, अतः वे वहाँ की सरकार पर प्रभाव डालकर बोलशेविकों के ख़तरे से बचना चाहते हैं।

इंग्लैण्ड तथा रूस में पारस्परिक शत्रुता बढ़ने के कारण दोनों देशों की नज़र फारस पर रहती है कि कहीं वह शत्रु की ओर न मिल जाय। जिस दिन यहाँ दोनों राष्ट्रों—इंग्लैण्ड तथा रूस में से किसी एक का प्रभुत्व अधिक होगा उस दिन दोनों में संघर्ष हुए बिना न रहेगा।

फ़ारस के लोगों पर साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद के सिद्धान्तों का बहुत कम असर पड़ा है। निकट भविष्य में इस बात की संभावना भी नहीं है कि वहाँ इन का दौरदौरा हो।

संसार में कभी-कभी ऐसी घटनायें घट जाती हैं जो जन-साधारण की मनोवृत्ति का एकदम बदल देती हैं। एशिया में रूस-जापान युद्ध (१९०५) इसी तरह की एक महत्वपूर्ण घटना है जिसने एशिया की मनोवृत्ति को एकदम बदल दिया था। एशिया वालों के मन में उस समय जो इस प्रकार का अन्ध-विश्वास था

जाति के लोग रंगीन जातियों से विद्या, बुद्धि तथा बल ष्ठ हैं तथा सफेद लोगों का संसार में रंगीन जातियों अधिकार होना स्वाभाविक है—दूर हो गया। उसके प्राय: एशिया के सभी राष्ट्र यूरोपीय देशों से दबे जा थे। एशिया के लोगों का यह ख्याल था कि हम लोग र के मुकाबले में नहीं ठहर सकते। किन्तु १९०५ में या के एक छोटे से देश जापान ने यूरोप के एक विशाल रूस पर विजय प्राप्त की। इससे लोगों का पहले का ास जाता रहा तथा उनमें यह भाव आया कि प्रयत्न से हम यूरोप की अधीनता से मुक्त हो सकते हैं, और फल-स्वरूप एक राष्ट्रीय आन्दोलन समूचे महा-देश ल गया। इसी के फल-स्वरूप तुर्की में तरुण तुर्क, में तरुण चीन तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का ाव विदेशी सत्ता को नष्ट करने के लिए हुआ। फारस में रुण-फारस-दल का इसी समय जन्म हुआ था। एशिया ागृति के इतिहास में १९०६ का समय बहुत महत्व- है। इसी समय फारस में भी राष्ट्रीयता की लहर फैली से प्रभावित होकर उस समय के शाह ने एक शासन- न द्वारा कुछ शासनाधिकार वहाँ के लोगों को दिये थे। समय से यहाँ राजनैतिक दल का भी श्रीगणेश हुआ। यहाँ प्रधानतः तीन राजनैतिक दल 'अनुदार', 'उदार' प्रजातंत्रवादी हैं। समाजवादी दल भी है जिसमें र्थियों की प्रधानता है। ये सब दल भी अन्य देशों के ैतिक दलों की नाईं काम करते हैं तथा इनमें भी वही त्ति तथा विचार-धारा काम कर रही है जो अन्य देशों लबन्दियों में काम करती है। इसके साथ यहाँ बहुत से विचार के लोग भी हैं जो गुप्त-समितियों द्वारा काम हैं।

शासन सभा (मजलिस) में दो प्रकार के लोग हैं। जिनका बहुमत है तथा दूसरे जो उनका विरोध करते हैं। जब कोई मंत्रि-मण्डल टूट जाता है तो उसकी जगह संयुक्त मंत्रि-मण्डल की सृष्टि होती है। कोई भी मंत्री, जिसे पदत्याग करने के लिए मजबूर किया जाता है, पद से अलग होने के साथ ही मजलिस की सदस्यता से भी अलग समझ लिया जाता है।

फ़ारस में अभी राजनैतिक शिक्षा की बड़ी जरूरत है। आज फ़ारस, तुर्की तथा अफ़ग़ानिस्तान एक संधि-सूत्र में बँधे हुए हैं; इस कारण इन तीनों राष्ट्रों का महत्व एशिया में बढ़ गया है। इन मुसलमान राष्ट्रों में, अफगानिस्तान को छोड़कर, अन्ध-विश्वास, धर्मान्धता तथा मुल्लापन का जोर कम हो गया है और नवीनता का प्रचार ज़ोरों से हो रहा है।

फ़ारस के रिज़ाख़ां, अफगानिस्तान के भूतपूर्व अमीर अमानुल्लाखां की तरह 'एशियाई संघ' के प्रबल समर्थक नहीं हैं। वह चाहते हैं कि हमारा देश स्वतंत्र रहे और इसके लिए अंग्रेजों से व्यर्थ का वैर मोल लेना नहीं चाहते, पर फारस में अंग्रेजों की कार्रवाई पर ख़ूब ध्यान रखते हैं। फारस के अन्दर जागृति हो गई है और अब इस बात की आवश्यकता है कि वह इतना बलशाली होजाय कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों से अपने अधिकारों के लिए सिर ऊँचा करके लड़ सके और संसार के राष्ट्रों में वही स्थान प्राप्त कर ले जो दूसरों को प्राप्त है।

एशिया के कई मुसलमान राष्ट्र—तुर्की, फ़ारस आदि-स्वतंत्र हैं। क्या हम आशा करें कि ये राष्ट्र जापान की नाईं अपनी शक्ति का दुरुपयोग एशिया के राष्ट्रों को दबाये रखने में न कर उनके अधिकारों की रक्षा में करेंगे? पूर्वीय देश आज उत्सुक दृष्टि से इन स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्रों की ओर देख रहे हैं। देखें एशिया से साम्राज्यवादी राष्ट्रों का प्रभाव कब नष्ट होता है।

भारतीय ग्राम-संगठन

(२)

ग्राम्य पद्धति का ह्रास

[श्री रत्नेश्वरप्रसाद सिंह बी० ए०, बी० एल०]

अब यह सभी को प्रत्यक्ष देख पड़ता है कि आजकल हमारे ग्रामों से लोग हटते जा रहे हैं; अपने ग्रामीण घरों को छोड़-छोड़कर शहरों में बसते जा जा रहे हैं। जो अपने ग्रामों को छोड़ने में असमर्थ हैं उनका जीवन ग्रामों में पहले की तरह सुखमय नहीं है। अवस्था दिन-दिन बिगड़ती जा रही है, और यहां तक बिगड़ गई है कि अब देहात के रहनेवाले भी विदेशी बनी हुई चीज़ें ही नहीं बल्कि तेल-आटा-तरकारी शहरों से ले जाकर देहातों में खाते हैं। किसी नगर की समीपवर्त्ती सारी देहाती जनता प्रायः सभी बातों के लिए शहर पर ही निर्भर करती है। ग्राम का सारा उद्यम, व्यवसाय और कारीगरी लुप्त-सी हो गई है और दिनों-दिन बड़े वेग से होती जा रही है। गृहस्थ अब गेहूँ अपने घरों में न पीसकर शहरों की कल की चक्कियों में पीसने के लिए भेजते हैं। कड़ाही, कुदाल अब हमारे गांव के लोहार नहीं बनाते, और अब वे भी बाहर से ही आते हैं। प्रत्येक ग्रामीण शिल्पी की कारीगरी जाती रही। जो पहले सभी वस्तुओं का स्वयं निर्माण करते थे, यदि वे अब ज़्यादा से ज़्यादा मरम्मत भी कर लें तो पर्याप्त समझा जाता है, और शायद इतनी ही योग्यता इनमें अब बच गई है। इससे दोहरा नुक़सान होता है—एक कला का ह्रास और दूसरे, आर्थिक क्षति। विदेश से जो ये सामान्य आवश्यकता की चीज़ें तैयार होकर आती हैं वे इसी नीति के अनुसार तैयार होती हैं कि तुरत ख़राब हो जायँ और स्वदेशी प्रस्तुत माल से कुछ सस्ती बिकें। कुछ सस्ती होने के कारण ये स्वदेशी व्यवसाय को उखाड़कर अपनी जगह बना लेती हैं। इसी ग़रज़ से देखने में थोड़ा दर्शनीय एवं लुभानेवाली भी बनाई जाती हैं। फिर क्या है—भारतीय जनता, जो पशुवत् विमूढ़ है, आगा-पीछा छोड़कर आँख मूँद सीधे रसातल की राह पकड़ती है। इस विदेशी चढ़ा-ऊपरी के पीछे हमारे विरुद्ध कितना बड़ा बल स्थिर किया हुआ है हमारे बेचारे अबोध देशवासियों को क्या मालूम! बड़ी आर्थिक तथा राजनैतिक समस्या इस सीधे-सादे धंधे के भीतर उत्पन्न हो गई है, यह गंभीर जांच से मालूम होती है।

भारतवर्ष का सारा बल, व्यवसाय और सुख ग्राम-जीवन तथा ग्राम-पद्धति पर ही अवलम्बित था। नष्ट होते ही देश का सत्यानाश हो गया, यह किसी विचार-शील भारतवासी से छिपा नहीं है। इस समय ग्रामवासी किसी ग्रामीण संस्था को अपने मध्य और जीवित नहीं पाते। अधिकांश नवयुवकों को तो भी नहीं मालूम है कि हमारी ग्राम पद्धति क्या थी, ग्राम-जीवन कैसा था, और हमारे पूर्वज कैसे अपने और जीवन बिताते थे? वह सुखमय स्वास्थ्य और आवश्यक वस्तुओं की रेल-ठेल, वह आपस का सहानुभूति तथा सहृदयता, वह आनन्द और जीवन, जो कुछ ही काल पहले हमारे ग्रामीण जीवन साधारण बात थी, आज सपना हो गई है। अब ग्राम-जीवन रोगग्रस्त, दुःखप्रद, निस्सहाय, अरक्षित कंटकाकीर्ण हो गया है। पारस्परिक वैमनस्य, चोरी बाज़ी के रोग हमारे ग्राम-जीवन को नष्ट कर रहे हैं। और मुक़दमेबाज़ी घर बनाकर हमारे ग्रामों में जा बैठी पसीने की कमाई के रुपये आँख-मूँदकर फूँके जा रहे और लोग दाने-दाने के मुँहताज हो रहे हैं। नौबत यहां आगई है कि ग्रामवासी अपने घरों को छोड़कर केवल पालने के लिए ही देश-विदेश मारे-मारे फिरते हैं। कितने अपनी स्थिति बनाने के सुख-स्वप्न देखते, धन वृद्धि के मन्सूबे से, घर-द्वार त्यागकर, परदेश में जा टिकते किन्तु, इस ग्राम-परित्याग से बहुत ही कम व्यक्तियों

कोई लाभ होता है। अधिकांश मनुष्यों का जीवन उनके गाँव के जीवन से भी अधिकतर गर्हित हो जाता है, और इससे ग्राम-पद्धति में परिवर्तन होने के सिवा अन्य कोई फल नहीं होता। अब हमारे गाँवों में कोई ऐसा अधिकारी नहीं है जो यह समझे कि गाँव की रक्षा या मर्यादा या पवित्रता का पालन करना हमारा धर्म है। गाँव के ज़मींदार के पहले स्थान-विशेष के थानेदार मालिक बन गये हैं। इन दारों में अधिकांश का पहला उद्देश्य अधिक से अधिक कमाना है, न कि लोक-रक्षा करना, दुष्टों का निवारण ना, अथवा समाज में शान्ति बनाये रखना। गांव का ींदार या मालिक, जो पहले इन कर्त्तव्यों का सम्पादन ते थे, अब अधिकार-रहित हो गये हैं। अब 'सब बराबर यह बात फैलती जाती है, यद्यपि इस कथन का अर्थ ठीक बिरले ही समझते हैं। पहले जहां पञ्चायत न्याय-गय की संस्था थी वहां अब कुछ भी नहीं है। किसी सर-विशेष पर कौन मुखिया बनेगा, कौन सारे गाँव की ता की ओर से प्रतिनिधि बनेगा इसमें झगड़ा होने लगता क्योंकि अब वह युग इस देश में उपस्थित हो गया है, समें मौज मारना सभी चाहते हैं लेकिन कष्ट झेलना या तरदायित्व का बोझ उठाना कोई पसन्द नहीं करता। ीजा यह हुआ है कि ग्राम-जीवन के समस्त नियम और धन ढीले पड़ गये हैं; पारस्परिक सौहार्द्र और सहानुभूति जाती रही है। सबकी मनमानी चाल हो गई है; मारे सारे आदर्श भ्रष्ट ही नहीं बल्कि लुप्त हो गये हैं। एक सरे की बात नहीं सुनता। एक ही घर में कई तरह के त फैले हुए हैं। एक ही परिवार में कोई किसी की बात ीं सुनता। इसको नई रोशनी वाले व्यक्तित्व या व्यक्तिगत तन्त्रता कहेंगे, और इसे सभ्यता तथा स्वाधीनता का शिखर बतायेंगे, परन्तु जहाँ विचारों का ही अभाव हो हाँ विचार-स्वातन्त्र्य की बात चलाना व्यर्थ है। इसीसे मारी सभ्यता और विदेशी आधुनिक सभ्यता के बीच घर्ष हो रहा है। हमारे पूर्वजों ने इस व्यक्तित्व की धारणा ो सारे समाज के कल्याण के ख़याल से समुचित तथा ाम्दनीय नहीं समझा था। हमारे यहां का आदर्श सदा हा है, व्यक्तित्व को सबके लिए विसार देना—अपने को दूसरे के लिए समर्पण करना—दूसरे की भलाई के लिए अपनी थोड़ी-सी हानि सह लेना। यह हमारे समाज का वह मसाला था जिसने हमारी ग्राम-संस्था को, हमारे संगठन को, हमारी सभ्यता को प्राचीन काल से पिछले काल तक स्वस्थ, सुखी और शान्तिमय बना रक्खा था। विदेशी सभ्यता स्वार्थ-परता को व्यक्तित्व बतलाकर स्वार्थ-साधन सिखलाती है। चूंकि इस समय पश्चिमी संसार उन्नत अवस्था में है; वहाँ के निवासियों का स्वदेश-प्रेम और स्वदेशाभिमान विलक्षण है, और उनका चरित्र-गठन स्तुत्य है, इसलिए हमारे यहां के अनुकरण-प्रिय लोग व्यक्तित्व को भी स्वतंत्रता की अवस्था या साधन समझते हैं। किन्तु हमें यथोचित विचार-विश्लेषण करना चाहिए और देखना चाहिए कि किस चीज़ में क्या दोष-गुण है? यही व्यक्तित्व का आदर्श बिगड़कर विचार-मूढ़ ग्रामीणों में घुस गया है और इनकी मूर्खता और आर्थिक दुर्दशा के कारण इनकी अवस्था सर्वथा शोचनीय हो रही है। इसी तरह एक प्रकार के अस्पष्ट धुँधले विचार ने हमारी अपढ़ ग्रामीण जनता के मस्तिष्क को हिला दिया है, जिसकी बदौलत सबकी क्रिया-विधि मनमानी और पृथक्-पृथक् हो गई है, और जीवन-साधन की संयत मर्यादा नष्ट हो गई है।

दूसरी बात है धन-लिप्सा। बहुत-से लोग इसे आर्थिक उन्नति कहकर इसका समर्थन करते हैं, किन्तु असली बात यह नहीं है। यह विचारने की बात है कि इस हद तक यह आकांक्षा किसी को किसी प्रकार की हानि पहुँचाती है या नहीं। विचार करने पर मालूम होगा कि इसने अब एक ऐसे दुर्व्यसन का रूप धारण कर लिया है जिसमें मनुष्य सिवाय पैसे के और कुछ नहीं पहचानता। अवस्था भली या उन्नत बनाना दूसरी बात है और सब-कुछ त्यागकर एक मात्र धन के लिए मरते रहना दूसरी बात है। कर्त्तव्य, मान-मर्यादा, धर्म, लोकमत, शील और शिष्टता की परवा न करके केवल धन को ही सब-कुछ मान लेना निश्चय ही एक आधुनिक और बिलकुल नया आदर्श है जो हमारे देश के अन्दर प्रवेश कर रहा है। अब हम जब किसी काम को करते हैं तब सबसे पहले यही सोचते हैं कि इससे मेरा क्या लाभ होगा और लाभ से मतलब है आर्थिक लाभ!

जब हम दूसरे का कोई काम करते हैं तब भी यही सोचते हैं कि उस मनुष्य से हमारा क्या लाभ होगा या हो सकता है ? अर्थात् कोई भी काम हो, बिना उसमें कोई लाभ की मात्रा रहे हम उसकी तरफ झुकते ही नहीं !

तीसरी बात है सभी विषयों में हमारी बढ़ती हुई स्वार्थपरता । कुछ ही समय पहले यदि कोई मनुष्य या पशु तक कुएँ में गिर पड़ता था तो उसे बचाने के लिए मनुष्य अपनी जान दे देना कोई बड़ी बात नहीं समझते थे, बल्कि अपना धर्म समझते थे । किन्तु, अब हालत यहाँ तक गिर गई है कि जल्दी कोई कुएँ में उतरने को तैयार नहीं होता और आधुनिक विचारों और सभ्यता का साम्राज्य बढ़ता गया तो कुछ ही दिनों में शायद ऐसी घटनाओं की तरफ, कोई नज़र तक नहीं उठायेगा । इस प्रकार की घोर स्वार्थान्धता हमारे जीवन का खास अंग बन गई है; परन्तु सच पूछिए तो वास्तव में ये ऊपर कहे हुए तीनों विषय एक ही अन्तःस्थित भाव के रूपान्तर मात्र हैं । इसका सुदृढ़ आन्तरिक प्रभाव हमारे समस्त देश पर पड़ा है और इसने हमारे ग्रामवासियों को घर की ममता तथा स्वग्राम के प्रेम से उदासीन कर दिया है और धीरे-धीरे 'जहाँ रहे वहीं घर है,' वाला विधान चरितार्थ हो रहा है । अतएव, क्रमशः लोगों की लगन अपने ग्रामों से हटती जाती है और ग्रामों में रहने का स्वाद फीका पड़ता जा रहा है ।

इसके अतिरिक्त सबसे कठिन समस्या हमारे ग्राम्य जीवन की वर्त्तमान आर्थिक दुर्दशा के विषय में उपस्थित हो रही है । ग्राम्य पद्धति के ह्रास के साथ ही साथ, जीवन-निर्वाह का जो आर्थिक सिलसिला पहले से चला आता था छिन्न-भिन्न हो गया । अपना-अपना नियमित कार्य करने की विधि जाती रही, अतएव सारे गांव की जनता के जीवन-निर्वाह का जो सुप्रबन्ध था वह लुप्तप्राय हो गया । स्वार्थ, आवश्यकता या लोलुपता के कारण, गांव की शासन पद्धति के टूट जाने से ग्राम के कारीगर, बढ़ई, लोहार तथा अन्य काम करने वाले श्रमजीवी, हज्जाम, धोबी परम्परा की नियमित मज़दूरी से ज़्यादा वसूल करने का यत्न करने लगे । इसकी प्रतिक्रिया काम कराने वाले ग्रामवासियों पर हुई । उन्होंने इनके नियमित सामयिक अन्न-वस्त्र या पैसे, जो निश्चित रूप से दिये जाते थे, कम कर दिये या एकदम बन्द कर दिये । जिससे उनकी आमदनी घट गई । अतएव, फिर इन्हें अपनी मज़दूरी और अधिक बढ़ानी पड़ी । तब लोग उनको छोड़कर सस्ते कारीगरों को ढूँढ़ने लगे और जहाँ दो पैसे बचे वहीं काम कराने लगे । जब देहात के शिल्पियों का पेट घर बैठे काम करने से नहीं चला, तब अधिक पैसा कमाने के लिए वे शहरों में आ गये, या अपना व्यवसाय छोड़कर दूसरा काम करने लगे । इस चढ़ा-ऊपरी के झगड़े में यदि कोई अधिक धनवान हो गया तो उसी की देखा-देखी और लोग उसके कार्यक्रम का अनुसरण करने लगे । कितने बने, कितने बिगड़े और इसी गोरखधन्धे के फेर में देश भर में गड़बड़ी फैल गई । ग्राम्य पद्धति की इसी दुरावस्था में विदेशी चढ़ा-ऊपरी ने देहातियों का गला धर दबाया । अब नौबत आ आई कि तेली घर में तेल न पेलकर तेल के कारख़ाने में नौकरी करने लगा; जूता बनानेवाला जूते की कम्पनियों में चला गया और भेड़-बकरी पोसने वाला देहातों से भेड़-बकरे इकट्ठे करके पल्टन की छावनियों में भेजने लगा । यह स्वाभाविक है कि विदेशी सरकार, जिसका एक मात्र अवलम्ब उसकी पल्टन ही है, अपने ठेकेदारों और सहायकों की हर तरह मदद करे और उन्हें अपने काम-धाम में उत्तेजित करे । हमारे देहातों में अब वह सुख-चैन नहीं है जो पहले था । यद्यपि खेती के लिए बगीचे काट लिये जाते हैं, जंगल साफ़ किये जाते हैं, ज़रा-ज़रा परतियां जोत ली जाती हैं, तरह-तरह के देशी-विदेशी खाद दिये जाते हैं, तब भी न वैसी पैदावार होती है, न पहले-सी सस्ती । ग्रामीण न पहले की तरह सबल हैं, न स्वस्थ । गृहस्थ प्रजा और रैयत के लिए कितने कानून बनाये गये, लेकिन इनके चलते की शक्ति सदा के लिए उठ गई । बिना अपनी रेहन रक्खे अब उन्हें पांच रुपये भी कर्ज़ नहीं मिलते । यद्यपि दस-बीस गृहस्थ अवश्य अब हज़ारों मन अन्न पैदा करके विदेशी व्यवसायियों के एजण्टों के बेचते हैं, या कलकत्ता, बम्बई, कानपुर इत्यादि बड़े-बड़े व्यापारी शहरों में चालान करते हैं तथा जैसे-तैसे कमाकर धनी बन जाते हैं, फिर भी

का दुरुपयोग दूसरों को सताने में या स्वाभिमान ार्थ के कारण मुक़द्दमेबाजी में ख़र्च करते हैं, तथा के पीछे स्वयं उजड़ जाते हैं। यही हमारे ग्रामों का क्रियाचक्र या कार्यक्रम हो रहा है। फिर इन थोड़े-से मनुष्यों को छोड़कर हमारे ग्रामों की सारी जन-ता दुःखों में पड़ी रहती है; नाना प्रकार के कष्ट सहती पुलिस, टैक्स वसूल करने वाले, या महर के कर्मचा-ी के कारण परेशान रहती है, या इनसे मिलकर दूसरे ोणों को दुःख देने में सहायता करती है। कुछ धन ही आजकल के ग्रामीण दूसरों को परवा नहीं करते, ाँव के ज़मींदार की, न गांव के बड़े-बूढ़ों की। ये कम-ियाँ गांवों में अब मामूली चीज़ हो गई हैं। किन्तु, न्न किसान भी मुक़द्दमे के कारण या फसल बिगड़ने के निर्धन हो जाते हैं। तब सब के समतल में चले आते और सार्वजनिक दीनता को पहुँच जाते हैं। गांवों में त चाहे जिस हैसियत के मनुष्य हों, उन्हें कुछ दिन तक े संभालने की सामर्थ्य नहीं है। राजनैतिक या र्थिक विधानों के कारण समस्त देश इतना दरिद्र हो ा है कि प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य को एक प्रकार का र्थिक कष्ट उठाना पड़ता है। लोगों का दृष्टिकोण, बुद्धि र साहस इतना गिर गया है कि किसी व्यवसाय में बार असफल हो जाने पर कोई दूसरा उपाय ही नहीं पड़ता।

जीविका का प्रश्न दिन-दिन हमारे ग्रामों में महा कठिन र कष्ट-साध्य होता जा रहा है। पुराने व्यवसाय सब गये, या उनके व्यवहार के लिए अब कहीं जगह न । विचार-मूढ़ता हमारी परवशता में बड़े वेग से बढ़ती रही है। विदेशी वस्तुओं से क्या नुक़सान है और शी से लाभ, यह प्रायः साधारण ग्रामवासी की समझ नहीं आता। इन्हें अब सब कष्टों का एक ही निवारण रह ा है, और वह है गाँव छोड़कर बाहर किसी बड़े शहर विदेश में चला जाना। किन्तु इससे भी ग्रामीणों की धिक समस्या हल नहीं होती। क्षण-भर के लिए लाभ आशा मृग-तृष्णा की भाँति दृष्टिगोचर होती है; फिर न्त नैराश्य की मरुभूमि में विलीन हो जाती है। बाहर जाने पर अवस्था ही बदल जाती है; परदेश में यदि रोगी हो गये तो न घर के रहे न बाहर के। बड़े-बड़े शहरों में एकाएक जाने वाले ग्रामीणों को जो कष्ट होता है और रोगग्रस्त या निरुद्यम हो जाने पर इनकी जो दुर्दशा होती है वह अकथनीय है। हमारे ग्रामों के कितने बसे-बसाये घर इसी भांति उजड़ गये। ग्रामों में इस ग्राम-परित्याग ने श्रम का प्रश्न कठिन और कष्टप्रद कर दिया है। कितने घर खंडहर हो गये और कितने खेत कुछ काल तक परती रह जाते हैं। ग्रामों का संगठन और रमणीयता इन्हीं बाहर जाने वालों की मिट्टी में मिलती जाती है। इनके आवागमन से गावों के अन्दर नये नये बुरे भाव उत्पन्न होते जाते हैं क्योंकि परदेश में इन्हें कुछ भली बात सीखने का अवसर तो कम ही मिलता है। ग्रामवासियों को अब साधारण श्रम के प्राप्त करने में भी अनेक कठिनाइयां होती हैं। पैसे देने पर भी यथेष्ट काम नहीं चलता।

लोगों का ख़याल है कि सरकारी प्रबन्ध के अन्दर शिक्षा की वृद्धि हो रही है; पर यह बात ग्रामों के सम्बन्ध में कदापि ठीक नहीं। आज कल की शिक्षा-प्रणाली में केवल ढकोसला भरा हुआ है। व्यय और वितण्डा अत्यधिक हैं। आज के अधिकांश शिक्षक ऐसे होते हैं जो बच्चों को शिक्षा देने के कार्य में सर्वथा अयोग्य रहते हैं। दूसरों की बतलाई हुई इनकी शिक्षा-विधि दुर्बल और बनावटी होती है। बहुत-से नियम-बन्धन शिक्षा-विभाग द्वारा इनके माथे मढ़े रहते हैं। इनकी भी चिन्ता अधिकतर केवल पैसे कमाने और देह चुराने की ओर रहती है, जैसा कि इस देश में आज कल सभी के साथ स्वाभाविक-सा होता जा रहा है। अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान बहुत कम का है। नीची से नीची कक्षाओं में कुछ न कुछ फ़ीस अवश्य देनी पड़ती है; इसके अतिरिक्त बहुत ही सामान्य प्रकार की शिक्षा गांवों में मिलती है। साधारण ग्रामीणों को इस विषय में कुछ भी खर्च करना बोझ-सा जान पड़ता है। शिक्षा देने के बदले वे अपने बालकों से घर पर कुछ काम लेना ही अच्छा समझते हैं। जिन्हें अपने बालकों को कुछ भी ऊँची शिक्षा देने की इच्छा होती है उन्हें लाचार होकर अपने बालकों को अन्यत्र किसी शहर में भेजना पड़ता है, जिससे

उन्हें पारिवारिक जीवन तथा ग्राम्य जीवन दोनों ही से एक साथ वञ्चित हो जाना पड़ता है।

ग्रामों के अन्दर ग्रामवासियों के मध्य होने वाला व्यापार बहुत घट गया है। अब व्यापार का सिलसिला एकदम एकतरफ़ा हो गया है, याने ग्रामवासी केवल खरीदते हैं। बेचने के लिए उनके पास है केवल अपना खाद्य-द्रव्य जिसे वे कर्ज़ अदा करने या कपड़े या अपने अन्य अत्यावश्यक कार्यों के लिए लाचार होकर बेचते हैं। अब अन्तर्ग्रामीण लेन-देन के रुक जाने से ग्रामों का धन आपस ही में न रहकर सीधे विदेश चला जाता है और सो भी निकम्मी विदेशी हानिकारक वस्तुओं के दाम चुकाने के लिए। बाहर से आती है लुभानेवाली और सस्ते या तुच्छ मसाले की बनी हुई चीजें और उनके बदले हमारे ग्रामों को दे देना पड़ता है अपना एकमात्र धन, अपनी रोटी का सामान, अपने खाने का अन्न। सबसे बड़ी रक़म है कपड़े की और यह अधिकांश विदेश से आता है। विदेशी वस्त्र हमारे घर के बुने कपड़ों से कम टिकाऊ होते है। और सिर्फ़ बनाने की मेहनत में ही विदेशी व्यवसायी चौगुना नफा इनसे करते हैं। नहीं तो कपास, ऊन, रेशम अपने ही यहाँ से जाते है और इनसे तैयार की गई पक्की माल की खपत फिर हमारे यहाँ ही अधिकतर होती है, किन्तु आने जाने और तैयारी के ख़र्च देने में ही हमारा सारा धन चला जाता है, अतएव हम देनदार ही बने रहते हैं। देहातों की कारीगरी इस क़दर लुप्त हो गई कि गृहस्थी के साधारण से साधारण औजार और बरतन अब गांव के अन्दर तैयार नहीं होते, और अब ये भी बाहर से ही बनकर आते हैं। ग्रामीणों को इन्हें भी पैसे देकर खरीदना पड़ता है, जिससे गावों में पैसे की मांग बढ़ती जा रही है और हाथ में पैसा नहीं रहने पर कर्ज़ लेना पड़ता है।

आर्थिक जीवन में हमारे ग्रामीण इतने पिछड़ गये हैं कि भविष्य में होनेवाली फसल की आशा पर ये आज अपने पेट भरते हैं। इस निमित्त इन्हें सूद भी चुकाना पड़ता है। सरकारी कर अथवा जमीन का लगान तथा अन्य प्रकार की चौकीदारी इत्यादि का टैक्स भी देना पड़ता है। घटे-बढ़े अपनी मर्यादा रखने, शादी-ब्याह, जीने-मरने का खर्च लगा ही रहता है। किसी कारण हो, देहाती व्यवसाय की आमदनी घट गई है। कुछ ग्रामीण तो सीधे नक़द [illegible] काढ़ते हैं, कितने सवाई-डेढ़े पर अन्न उधार लेते हैं। कितने अग्रिम रुपये लेकर विशेष भाव से अपने अन्न, घी-गुड़ बेचते हैं। किसी रूप में हो, ये सब ग्रामीणों के ऋण हैं जिनके दबाव से पिसते-पिसते ग्रामवासी निरावलम्ब हो [illegible] हैं। कहा जाता है कि देहातियों को ऋण से मुक्त करने के लिए कोआपरेटिव विभाग सरकार ने खोला है और ग्रामों में इनके द्वारा छोटी-छोटी कर्ज़ देने वाली संस्थायें इसी अभिप्राय से स्थापित की जाती हैं कि ग्रामीणों को सस्ते [illegible] पर ऋण मिले। किन्तु इन सहकारी समितियों की [illegible]रिक कार्रवाई से ज्ञात होता है कि इनसे ग्रामीणों को [illegible] क्षति के कोई लाभ नहीं। एक तो यह सहयोग के नाम केवल कर्ज़ देता है और कर्ज़ वसूल करने में देहाती जनों की कड़ाई की अपेक्षा इनकी कड़ाई कहीं भयंकर है। भोले-भाले ग्रामीण इनके द्वारा चालाक [illegible] शिकार बन जाते हैं, और सहयोग-विभाग पहले से ही घर के कौड़ी-कौड़ी का हिसाब अपने पास रख लेता; किसी का भी देना हुआ, जबर्दस्ती वसूल कर लिया है। चोरी की किसी ने और पिटा कोई दूसरा। अनपढ़ और निस्सहाय ग्रामीणों के मध्य ये सहयोग-समि[illegible] दुखदाई हो रही हैं। ग्राम के बनियों या महाजनों में, परम्परा से ग्रामीणों की सहायता करते आते हैं, [illegible] अच्छे हैं और कभी-कभी अपने ऋणियों के [illegible] कथा भी सुन लेते हैं और कुछ काल के लिए मान जाते क्योंकि वे दोनों ही ग्रामीण हैं और उनके बीच वंश-परम्परा के सम्बन्ध हैं। ऋणियों से भी महाजनों के बहुत से [illegible] चलते हैं। वह नाता ग्रामीणों और सहयोग-समितियों [illegible] बीच नहीं है। एक ओर असहाय ग्रामीण है और दूसरी [illegible] अपने हाथों में कानूनी हथकण्डे लिये हुए हृदयहीन सरकारी शासन-विभाग हैं। ऐसी अवस्था में ग्रामीणों को लाभ [illegible] हो सकता है? सच्चा सहयोग का मार्ग वह है जिसमें [illegible] हुए को उठाकर कलेजे से लगावे, और अड़े हुए [illegible] झुकाकर समतल में ले आवे। इन्द्रजाल फैलाना [illegible] नहीं है। बहेलिए की तरह जाल फैलाकर पक्षियों [illegible]

लेना और कमजोर बनाकर इच्छानुकूल पिंजड़े में । कोई सहायता या लाभ नहीं है ।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजकल ारे गाँव दोषों के भाण्डार हो रहे हैं । ऊपर बताई हुई स्थाओं के कारण गांवों की जीवन-चर्या कष्टसाध्य, भ्रष्ट चलित हो गई है । ग्रामीण सामाजिक परिपाटी में र-फेर हो गया है । आपस के भाईचारा में अन्तर गया है । असह्य दरिद्रता, पारस्परिक वैमनस्य, द्वेष, गड़े के कारण ग्राम्य जीवन नीरस और अन्धकारमय हो । जब सुख-चैन था तब आपस में खूब मेल-जोल था। जाना, खाना-पिलाना अब एकदम घट गया है । ऐसे चिन्ताग्रस्त बने रहते हैं कि उनकी मूर्ति प्रतिभा- देखाई पड़ती है । बच्चे तथा नवयुवक सभी पेट पालने न में लगे रहते हैं फिर भी भली-भाँति पेट नहीं । पर्व-त्योहार नाम मात्र के मनाये जाते हैं । इनके न के लिए न धन है, न उत्साह । खेल-कूद, कुश्ती- म नितान्त घट गये । इनमें लगे रहना समय नष्ट करने के बराबर हो गया है । जब खाने को भरपेट अन्न नहीं मिलता तब भला इनमें किसका मन लगेगा ? साधारण आमोद-प्रमोद, सामयिक गान-वाद्य तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोरंजन सब के सब पेट की फिक्र में लुप्त हो गये । सारी प्रजा आर्थिक बोझ से दबी जाती है, और आह भरने को भी छुट्टी नहीं है ! कठिन आर्थिक कष्ट ने सब मन्सूबे हिला दिये हैं । ग्रामीणों में न अब कोई सामर्थ्य है, न अभि- लाषा । ये यहाँ तक गिर गये हैं कि अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध तक नहीं कर सकते । साथ-साथ पतितों का सबसे प्रधान जो लक्षण है सो इनमें आ गया है अर्थात् अपने से दुर्बलों को सताना, अथवा उनसे अनुचित व्यवहार करके, अन्याय करके लाभ उठाना । दूसरों को बताने; सिखलाने या उनकी आलोचना करने में सभी तेज हो गये हैं, किन्तु अपने उपदेश के अनुकूल स्वयं एक पग भी नहीं चलते । इस प्रकार के जीवन में परवशता, परतन्त्रता और पाप यदि हमारे घरों को घेरे बैठे हैं तो आश्चर्य ही क्या है ?

प्रभात-कुसुम से—

[कुमारी लीलावती 'सत्य' बी० ए०]

रे अन्तस्तल में तात !
छिपा है किसका विषम वियोग ?
हो आँसू चुप-चाप,
अरे, यह कैसा भीषण रोग ॥
मल उर के बन्धन तोड़,
चीरकर वक्षस्थल को आज ।
इस वेला में सुकुमार !
किया है धारण कैसा साज ॥

न कर इस जग में सुख की आश,
बड़ा मायावी है संसार ।
यहाँ अभिलाषाओं का स्वप्न—
बुलाता है नैराश्य अपार ॥
सरलता से कर केवल प्यार—
भुलाकर अपना सब चातुर्य—
'निछावर कर दो उन पर प्राण'
यही है जीवन का माधुर्य ॥

(१)

वेंज़िलो के जी में एक बात उठी है। शायद बहुत दिनों से वह उठ रही है। इस वक्त मित्र से वह बात कहे बग़ैर उससे रहा नहीं जा रहा है। इसीसे उसने पूछा—

'तुम क्या बनना चाहते हो, गिडिटो ?'

'और तुम ?' प्रत्युत्तर में गिडिटो ने पूछा।

'मैं ?—मैं नेपोलियन बनना चाहता हूँ।' उसने अपने मन की संचित चाह कह डाली।

"नेपोलियन ! एकदम ?"

"हां"

"क्यों ?"

"नेपोलियन का जीवन मुझे प्यारा लगता है। कहां वह ख़ाक में से उठा, कहां आसमान के सिर पर चढ़ गया और कैसी सेण्ट हेलेना की सूनी-सी जगह मर गया ! वह एक शख़्स था जो अरमान लेकर नहीं मरा। जी की सारी हसद उसने निकाल ली। राजमुकुटों को लात से उछालने के बाद, चौथाई सदी तक दुनिया को थर्रा रखने के बाद, क्या चिन्ता थी, वह कहां मरता है ?—जेल में मरता है या अकेला मरता है। मनुष्यों में वह सम्राट् था। छोटा-सा आदमी था, पर कितना विराट् था !"

"ठीक ! तो तुम नेपोलियन बनोगे ? क्या और कोई नहीं है, जो बिना अरमान के मरा हो ?"

"क्या तुम्हारा मतलब बुद्ध और ईसा से है ? मैं मानता हूँ, वे अरमानों को साथ लेकर नहीं मरे। पर वे अरमान लेकर पैदा भी कहां हुए थे ?"

"तो क्या यह कुछ श्रेय की बात नहीं है ? आरंभ से ही अपनी हविस को नष्ट कर रखना क्या हर-एक का [illegible] है ?"

"मुझे तो इसमें कुछ भी बहादुरी नहीं दीखती। थोड़ी-बहुत हम सबको ही अपनी आकांक्षाओं पर [illegible] नहीं डालनी पड़ती ?"

"तो तुम्हें निश्चय है, इसमें तारीफ़ की बात नहीं है ?"

"तारीफ़ की बात क्या है,—मुझे तो नहीं [illegible] तारीफ़ की बात तो इसमें है कि अपनी [illegible] उन्मुक्त कर दिया जाय। उन्हें असंभव तक पहुँचने दि[illegible] जाय। और फिर उसी असंभव को संभव कर दि[illegible] जाय। अपने सब अरमानों को भाग्य के मुँह पर पू[illegible] दिखाकर, एक विराट् शक्ति के रूप को दुनिया की [illegible] चौंध के सामने स्तूपाकार—पर्वताकार—खड़ा करके, उसे ठोकर मारकर, व्यक्ति एक विजन कोठरी में [illegible] शेष घड़ियां निरपेक्ष, निःकांक्षी, कृतकृत्य होकर [illegible] बिता दे और फिर मिट जाय,—मेरे निकट यह तारी[illegible] और यह आदर्श की बात है।"

"लेकिन फिर भी दुनिया बुद्ध की और ईसा की ऋणी है। नेपोलियन तो बीती वस्तु बन गया। [illegible] हमारे लिए पढ़-पढ़कर स्तंभित होने भर के लिए है। इन महापुरुषों के नाम तो दुनिया में जीवित और [illegible] शक्तियाँ हैं......।"

"जीवित और अमर शक्तियाँ नहीं हैं,—[illegible] और अमर अशक्तियां हैं। व्यक्ति के जीवन में [illegible] रोज़ नहीं देखते कि ये नाम उसे सशक्त तो क्या उल्टे अशक्त कर देते हैं। जब ये नाम शक्ति बनते [illegible] इतिहास इस बात का साक्षी है, इससे घातक, [illegible] और आत्म-संहारक शक्ति कोई नहीं होती।...लेकि[illegible]

ते क्या हो ? नेपोलियन पर जितना साहित्य निकला है, उतना और किसी एक व्यक्ति पर न निकला है,—न निकला। न तुम्हारे बुद्ध पर, न ईसा पर।"

"मानता हूँ। और शायद तुम्हें मना नहीं सकता। तो तुम नेपोलियन बनोगे ?'

"जी में तो है। प्रार्थना भी है। लेकिन बनने का मार्ग भी नहीं दीखता। फ्रांस में जैसी क्रांति मची, वैसी जब यहाँ भी मचे; वैसी ही परिस्थितियां उत्पन्न हों; मुझे भी वैसे ही पक्के और साहसी आदमी मिलें;—तब तो ? क्या यह सब कुछ मिलेगा ? मिले तो मैं दिखा दूँ, कैसे नेपोलियन बना जाता है ?"

"मुझे इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा। पर यार एक-दिन सम्राट बन गये तो, देखो, हमारी भी याद रखना। मुझे भी कुछ बना-वना लेना।"—हँसकर गिडिटो ने कहा।

हँसकर ही बेंज़िलो ने जवाब दिया—"हाँ-हाँ, ज़रूर।"

गिडिटो ने फिर जैसे पक्का वादा लेकर ही छोड़ा। कल ही उसे नेपोलियन के बेंज़िलो-एडीशन से अपना [illegible]-पत्र स्वीकार कराना होगा।

इसपर बेंज़िलो ने सोचा—"कैसा बेचारा, गौ आदमी सदा चुप-चुप अच्छा-अच्छा रहता है। और चाहता है चुप्पी और इस छोटी गठरी-सी भलमनसाहत के ही [बल] में जब सम्राट बनूँ तो इसे भी कुछ बना लूँ। बेचारा जानता है, भलाई भी कुछ चीज़ है; जब कि यह जानता नहीं कि शक्ति ही सब कुछ है।"

इधर गिडिटो ने सोचा—"दुर्भाग्य है कि परिस्थि-[ति], आदमी, क्रांति, मार्ग, अवसर और कुछ भी इस [दुनिय]ा में बना-बनाया नहीं मिलता। सभी-कुछ बनाना है। कैसा दुर्भाग्य है जगत् का कि केवल प्रकृति-नियम [ज]रा-सी भूल के कारण दुनिया को बेंज़ी नेपोलियन बन-[क]र दिखा सकेगा ! मैं सचमुच विश्वास करता हूँ—अगर कुछ तैयार करा-कराया मिलता तो बेंज़ी अवश्य सम्राट [बन] सकता था। इतनी क्षमता उसमें है,—पर अब...?"

(२)

गिडिटो और बेंज़िलो दोनों कालेज में पढ़ते हैं। दोनों *कार्बोनारी के सदस्य हैं। समिति में दोनों का क्या-क्या स्थान है,—एक-दूसरा इसे नहीं जानता। गिडिटो समिति की सबसे ऊँची तीन आदमियों की नायक-गोष्ठी का भी सदस्य है। समिति के और सदस्य इस गोष्ठी को नहीं जानते। उसके बस हुक्मनामों से उन्हें काम पड़ता है, व्यक्तियों से नहीं। इधर बेंज़िलो समिति के भीतर ही अपने लोगों का गुपचुप एक अलग गुट्ट बना बैठा है। अधिकारियों को,—नायक-गोष्ठी को—उसका पता नहीं है, पर यह गुट्ट भीतर ही भीतर प्रबल होता जा रहा है।

दोनों गहरे मित्र हैं। पर गहराई में बहुत नीचे उतर-कर जैसे उन दोनों में विच्छेद हो गया है। वे अपने को एक-दूसरे में खो नहीं सके हैं,—और दोनों यह बात जानते हैं। दोनों ही के व्यक्तित्व में, हृदय में, और मस्तिष्क में एक-एक कोना है जो दूसरे के लिए अगम्य है। दोनों ही उस कोने के द्वार पर टक्करें मारते हैं, पर जैसे प्रवेश नहीं कर पाते।

इन दोनों मित्रों में एक और सम्बन्ध है। उम्र में दोनों लगभग बराबर हैं, पर गिडिटो जैसे बेंज़िलो के लिए अपने को ज़िम्मेदार समझता है। बेंज़िलो समिति का आगभरा सदस्य है। गिडिटो, जिसमें आग-वाग कुछ नहीं दीखती, इसका ध्यान रखता है कि कहीं उसका मित्र ख़ुद ही अपनी आग में न पड़ जाय ! वह मानों मित्र का अभिभावक बन गया है। उसके खाने-पीने, पहिरने-ओढ़ने की आवश्यक-ताओं को देखते और पूरी करते रहना उसने अपना दायित्व बना लिया है। बेंज़िलो को ख़ुद जैसे अपनी ख़बर रखनी ही नहीं चाहिए। बेंज़िलो मित्र की इन सेवाओं को सहज स्वीकार कर लेता है। उसे मानो अपने मित्र के अहसानों का पता भी नहीं लगने पाता। पर मित्र के भोलेपन पर थोड़ी दया करता है। इधर गिडिटो अपने वयस्क मित्र की लापरवाहियों को देखकर ख़ुश होता और थोड़ा चिंतित भी होता है।

---

* 'कार्बोनारी' इटैलियन शब्द है जिसका अर्थ 'पत्थर का कोयला जलाने वाला' होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में इस नाम से इटली और फ्रांस में अनेक राजनैतिक गुप्त समितियाँ बनी थीं, जिनका प्रभाव उस समय बहुत बढ़ गया था। —सम्पादक।

दोनों क्रांतिवादी हैं, पर बेंज़िलो जैसे क्रांति का तर्क है। तर्क की ही तरह वह सीधा जाता है, और तर्क के समान टक्कर लेना और तोड़-फोड़ करना ही उसका काम है। और जैसे तर्क परिणाम के भले-बुरे की चिंता नहीं करता, जैसे तर्क केवल अपनी गति और दिशा से ताल्लुक़ रखता है, वैसे ही बेंज़िलो है।

लेकिन जैसे गिडिटो क्रांति की फ़िलासफ़ी है। फ़िलासफ़ी की तरह वह सोच-विचारकर चारों तरफ़ देख-देखकर चलता है। फ़िलासफ़ी की तरह वह पूर्ण है, उसी की तरह गंभीर है। क्रांति में अशांति रह सकती है, उसके परिणाम में भी हिंसा रह सकती है,—पर उसकी फ़िलासफ़ी में शांति ही शांति है। हिंसा से फ़िलासफ़ी डरती नहीं है, उसके नज़दीक वह ख़ुद शांति का साधन बन जाती है। वैसे ही गिडिटो ख़ून से भय नहीं खाता, पर लहू की नदियाँ देखकर भी उसकी शांति के स्वप्न भंग नहीं होते।

लेकिन फ़िलासफ़ी तर्क का पोषण करती है। तर्क जैसे उसका उच्छृंखल हठी बालक है।

बेंज़िलो नेपोलियन बनना चाहता है। गिडिटो, गिडिटो ही बना रहना चाहता है। उसने अपना आदर्श किसी ऐतिहासिक पुरुष में बंद नहीं किया। वह अपना आदर्श अपने ही भीतर गढ़ता रहता है, और अपने को उसके अनुरूप गढ़ता रहता है। वह गिडिटो ही बन दिखाकर अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ेगा। नेपोलियन के नाम की प्रभा उधार लेकर वह अपने व्यक्तित्व को सबल, सार्थक और सम्पूर्ण बना सकेगा, ऐसा उसका विश्वास नहीं है।

(२)

नायक-गोष्ठी की बैठक।

छोटा सा कमरा है। बीचों-बीच गोल मेज़ है। दर्वाज़े की ओर मुंह किये हुए मेज़ के किनारे एक ऊँची कुर्सी है। तीन तरफ़ तीन और साधारण कुर्सियाँ हैं।

एक तरफ़ इटली का बड़ा नक़शा टँगा है। आले में कुछ बोतलें और गिलास रक्खे हैं। एक कोने में एक ख़ाली स्टूल है। और कुछ नहीं है। कमरा तीसरी मंज़िल पर है।

केवल तीन व्यक्ति बैठे हैं।—गिडिटो, एंटिनो, कारेंज़ो।

ला०—गिडिटो अपना आसन स्वीकार करें।

एंटिनो चुप रहा। गिडिटो चुपचाप उस ऊँची
पर आ बैठा।

सब ने जेबों से अपनी-अपनी नोटबुकें निकालीं।

गि०—एलबर्ट ५ दिन पहले हममें था, आज व
मोंट की गद्दी पर है। उसके सिर पर ताज रखते ह
दो खास आदमी गिरफ्तार किये गये हैं। सोचना
कि हमें अब अपनी प्रगति क्या रखनी है।

एं०—वह भगोड़ा (Deserter) है। उस
सज़ा होनी चाहिए।

ला०—सज़ा बोलने से कुछ नहीं होता। स
नहीं की जा सकती।

एं०— क्यों?

ला०—वह उससे आगाह है। फिर सारी फ़ौ
पुलिस उसकी पुश्त पर है।

एं०—फ़ौज़ और पुलिस हमारे मार्ग से ह
सकती है तो हमें मर जाना चाहिए।

ला०—मस्लहत एक चीज़ होती है।

एं०—कमज़ोरी होती है।

गिडिटो ने तब कहा—संभव है किसी की समझ में
इटैलियन भाई को मारना ठीक हो पर इस बा
जल्दी नहीं करनी होगी। हम पीडमोंट के संरक्षण में इटली
ऐक्य सम्पन्न करना चाहते थे। आज हम टुकड़ों-टुकड़ों में
हुए हैं। उन टुकड़ों की शक्ति आपस में ही क्षीण हो
इसीलिए आस्ट्रियन के लिए हमारी देशभूमि रौंदना
है। हमारी लड़ाई आस्ट्रियन के ख़िलाफ़ है। और
पहला काम हमारा इटली को एक राष्ट्र, एक आवाज़
एक शक्ति बना देना है। यह काम पीडमोंट की ग
तहस-नहस कर डालने से नहीं होगा। उसको
ज़्यादा मज़बूत,—हां, उदार,—बनाने से होगा।
हो सकता है, हमारा शत्रु हो, पर उस जितना भी
राजा मिलना असंभव है। हम उसे मार नहीं सक
उसकी सहायता हमें करनी होगी,—और अपने लि
प्राप्त करनी होगी। क्योंकि हमें अपनी शत्रुता-मित्रता
देखनी,—देशका हित देखना है।

एं०—किसी राजा के नीचे इटली का ऐक्य

रने की इच्छा दुःस्वप्न-मात्र है। हम राज-सत्ता नहीं हते। हम उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते। हम प्रजा-त्ता चाहते हैं। राजाओं के इतने कडुवे अनुभवों के बाद म कभी यह संभव नहीं समझ सकते कि उनसे प्रजा-त्ता कायम करने में मदद मिलेगी,—वैसे ही जैसे आग से र्दी पाने की उम्मीद नहीं कर सकते। हमारा कोड हमें एक र स्पष्ट आज्ञा देता है, वही आज्ञा पुरुषत्व की, और मैं मझता हूँ—बुद्धिमत्ता की भी है।

गि०—मैं बहस नहीं करता। लारेंज़ो भाई की राय मैं नना चाहता हूँ।

ला०—मुझे डर है कि हत्या हितकारी नहीं होगी। इसे मेरी राय नहीं है।

गि०—भाई एंटिनो, अब मैं यह स्पष्ट कर देना हता हूँ कि समिति हत्या के पक्ष में नहीं रहेगी। बहु-त यही है।

एं०—बहुमत को सर झुकाता हूँ। पर एक सूचना ध्यक्ष को देना चाहता हूँ।

एक पन्ना उलटकर एंटिनो पढ़ना शुरू करता है।

"सोमवार ता० १९ मार्च को सभा हुई। उपस्थिति बेंजिलो सभापति।

"भाषणों के बाद, सर्वसम्मति से, तै पाया कि अलबर्ट अपना सदस्य स्वीकार करना घोर अपराध था। अब वह मोंट का राजा बन गया है। राजा ख़ासकर वह जो दूयन की अधीनता स्वीकार करता है, प्रजासत्ता का न है। इसलिए वह हमारा भी दुश्मन है। हमारी स्य ग़लती के प्रतिशोध और प्रजासत्ता एवं क्रांति की रक्षा का एक उपाय है। वह है अलबर्ट को नष्ट करना।

"सम्मति जब ली गई तो बस से०—विरोध में था।

"उसके लिए कई कोनों से दवी हुई 'ट्रेटर' (विश्वास-घातक) आवाज़ आई।

"सब को शांत करके बेंजिलो ने घोषणा की कि एल-की हत्या सभा द्वारा निर्णीत और उचित ठहराई है।"

एं०—इस सूचना के साथ मैं अध्यक्ष को अपने निर्णय फिर से सोचने का निवेदन करता हूँ।

गि०—मेरा वही मत है जो मैं दे चुका। और समिति का भी वही मत है। बेंजिलो ने अधिकार से बाहर की बात की है। किसी के दुराग्रह को बढ़ने देना ठीक नहीं है। एंटिनो भाई से मैं यह आशा करता हूँ कि वह बेंजिलो को नायक का मत,—और निर्णय,—स्पष्ट शब्दों में सुना देंगे।

× × ×

एंटिनो और लारेंज़ो शराब पीते हैं। गिडिटो नक़्शे के सामने खड़ा होकर आखें गाड़कर उसमें देखने लगता है। जैसे बेंज़िलो के भाग्य को उस नक़्शे में से पढ़ लेना चाहता है।

(४)

शाम हो गई है। कमरे में गिडिटो अकेला है। वह प्रतीक्षा में है। कालेज ४ घंटों का खत्म हो चुका; बेंजिलो अब तक कहाँ रहा? लौटा नहीं! खाना ठंडा हो रहा है। कमरे के छज्जे पर आकर उसने सड़क के दोनों तरफ़ आँखें फैलाकर देखा। बेंज़िलो का कहीं पता नहीं!

वह आकर पलंग पर बैठ गया। किताब खोल ली। लेकिन ५ ही मिनिट में किताब बन्द कर देनी पड़ी। किताब के अक्षर जैसे तैरने लगते थे, और उसका मन जैसे भागा-भागा फिरता था।

लैण्डलेडी को बुलाया; कहा—खाना परोसने की अभी जरूरत नहीं, लेकिन तैयार रहना चाहिए। इतना कहकर जो हाथ पड़ा—वही, हैट लेकर, पिस्तौल जेब में डालकर बाहर आ गया।

गि०—मैरिथ, बेंजी अभी घर नहीं पहुँचा! क्या यहाँ भी नहीं आया?

मैरिथ वह लड़की है जो, यदि गिडिटो न होता तो, बेंजिलो की विवाहिता होती। बेंजिलो रोज़ इसके पास आता है और चला जाता है। मैरिथ अपने धनी मां-बापों को छोड़कर यहां अपने बल और अपने काम पर अकेली रहती है.—और अपने दिन की राह देखती रहती है।

मैरिथ—नहीं, यहाँ तो बेंजिलो नहीं आया। पर तुम आओ, बैठो। शायद आता हो।

"बैठने की फ़ुर्सत तो मुझे नहीं है।"

"क्यों जी, बेंजिलो को अपने हाथ में रखने से क्या

तुम्हारी मुट्ठी पूरी भर जाती है ? क्या उसमें और किसी के लिए समाई नहीं है ?"

"मैरिथ, बेंजी ने अपना सारा प्यार तुम पर वार दिया है। इटली को स्वतंत्र होने दो; देखो मैं खुद अपने हाथों से तुम्हारा व्याह करूँगा। उससे पहिले व्याह करके बेंजी अपना नाश कर लेगा। मैरिथ, वह नेपोलियन बनना चाहता है—नेपोलियन !"

"और, क्यों जी, तुम क्या बनोगे ? तुमने अपना प्यार किस पर वार रक्खा है ?"

"सो तुम नहीं जानतीं ?—नेपोलियन पर !"

"तुम भी आदमी हो !"

"कौन कहता है ? मैं स्त्री होता तो ज़्यादा ठीक रहता। ...अच्छा अब मैं चला।"

"ज़रा ठहरो तो। बेंजी आना ही चाहता होगा। इतने, मैं थोड़ा आतिथ्य ही स्वीकार कर लो।"

"अच्छा लाओ, ५ मिनट बैठता हूँ। लाओ क्या देती हो ?"

"उतावले मत बनो। लेकिन हाँ, तुम शराब तो पीते ही नहीं।"

मैरिथ ने कुछ रूखे बिस्कुट ला रक्खे। बिस्कुटों की जल्दी-जल्दी में नक़ाशदार चीनी की एक बढ़िया तश्तरी गिर-कर फूट गई। दो-तीन बिस्कुट भी गिरकर चूर हो गये। बिस्कुट रखकर मिनट भर में पड़ोसी से टोस्ट और चाय ले आई।

सब कुछ चखकर गिडिटो ने घड़ी की तरफ देखकर कहा—"वक्त हो गया, जाता हूँ।" कहकर प्रतीक्षा नहीं की ;उठकर सीधा चल दिया।

"ठहरो तो,...अरे, ठहरो,......अच्छा बस, ५ मिनट!"

"अब नहीं मैरिथ, देखो बना तो फिर आऊँगा।"

गिडिटो नहीं ठहरा। ज़ीने पर उतरते-उतरते उसने मन में कहा—"मुग्धा मैरिथ !"

× × ×

गिडिटो फिर सड़क और गली, गली और सड़क लांघता हुआ एक अँधेरी गली में जा पहुँचा। और वहां से फिर उस कमरे में जहां सभा जुड़ी हुई थी। बेंजिलो अध्यक्षा-सन पर तमतमा रहा था।

गिडिटो जब वहाँ दाखिल हुआ तो सभा एक दम ... गई। अयाचित उसका पहुँचना शायद वांछनीय न ...

अध्यक्षासन पर से बेंज़िलो ने कहा—"गिडिटो, ... की इजाज़त से तुम अन्दर आये ?"

"बेंजी, चलो खाना ठंडा हो रहा है। पहले ... तब और कुछ करना।"

"गिडिटो, बेवकूफ मत बनो। कैसे तुम यहाँ आये ?"

"इन्तजार करते-करते नहीं तो रात-भर बैठा रहता। भूख लगी, तुम्हें ढूंढता-ढूंढता चला आया।"

"तुम्हारी भूख जाय भाड़ में। मैं ज़रूरी काम ... रहा हूँ।"

"कोई जरूरी काम नहीं है। अभी तो तुम्हारा ... सबसे जरूरी है।"

"गिडिटो, मैं प्रेसीडेण्ट हूँ। कहता हूँ तुम चले जाओ।"

"तुम्हें कुछ ख़याल भी है ? कालेज खत्म हुए ... हो गये ! तबसे भूखे हो, कुछ नहीं खाया। तुम्हें भूखे ... कर मैं कैसे चला जाऊँ ?"

"गिडिटो, बेवकूफी करोगे तो मुझे सख़्ती ... पड़ेगी।"

"करो सख्ती, कौन मना करता है। पर पर... लिए भूखे मत रहो।"

बेंजिलो ने झल्लाकर कहा—"बेंजमिन, गिडि... हम यहाँ नहीं चाहते। तुम उसे बाहर निकाल सकते ..."

बेंजमिन नाम का व्यक्ति उठा। उठकर देखा ... फिर बैठ गया—"जी नहीं।"

—"नहीं !" अध्यक्ष ने कहा, "कोई है जो इसे ... कर दे ?"

दो व्यक्ति आगे बढ़े। वह काफ़ी पास आ... गिडिटो ने रिवाल्वर उनकी तरफ तानकर कहा—... लौट जाओ अपनी जगह पर ! खबरदार, जो एक ... आगे रक्खा।"

फिर बेंजिलो के पास पहुँचकर और उसकी बाँ... कर कहा—'चलो बेंजी तमाशा न करो। घर चलो ...

बेंज़िलो ने उसे ज़ोर से धक्का दे दिया। गिडिटो गिरते-गिरते बचा। इतने में ही सभा के दो-तीन सदस्य उसकी तरफ लपके। उसने भीतर की जेब से तिरंगा कपड़े का टुकड़ा निकाला और दोनों हाथों से ऊपर उठाकर चिल्लाया—"आओ, यह देखो। देखकर चाहो तो गोली मार दो,—मेरे दोनों हाथ ऊपर हैं। नहीं तो उसका सम्मान रक्खो और इस सभा को बरखास्त कर दो।"

सभ्य, जो बड़े असभ्य हो रहे थे, अब सबके सब सुन्न हो गये।

"सुनो! नायक की आज्ञा है, यह सभा यहीं बर्खास्त होती है। मेरे तीन कहने-कहने तक सब यहाँ से चले जायँ। ए......क। दो......।......"

कमरा बिलकुल ख़ाली था।

गिडिटो ने अब बेंज़िलो से कहा—"चलो बेंजी, खाना खाने चलें।"

बेंज़िलो भौचक था। पूछा—"तो नायक तुम हो?"

"हूं, तो हूं,—पर चलो, भूख लग रही है।"

"कहाँ चलूँ?"

"घर।"

"मैरिथ के यहां नहीं?"

"क्यों ? वहां चाहो, वहां जाओ।"

"तुम नहीं चलोगे?"

"मैं अभी वहीं से आया था।"

"मैरिथ के यहां से आये थे?"

"हां।"

"अब नहीं जाओगे?"

"नहीं।"

"घर पर मिलोगे?"

"ज़रूर।"

"मैं घर पर न आया तो?"

"तो बुरा होगा।"

"क्या होगा?"

"बहुत बुरा होगा।"

"तो मैं घर पर न आ सकूँगा।"

"न आ सकोगे?—कहां रहोगे "

"सो बतलाने की ज़रूरत नहीं।"

"तो मैं भी साथ चलता हूँ।"

दोनों, साथ, मैरिथ के स्थान की ओर चले।

मैरिथ के घर पर—

बें०—मैरिथ, तुम्हें पता है हमारे नायक गिडिटो महाशय हैं?

मैरिथ को यह पता नहीं था। पर यह पता था कि बेंज़िलो नायक के ति बहुत सद्भावना नहीं रखता। नायक के नरमपन, ढीलेपन और सुस्ती पर बेंज़ी अपने तीक्ष्ण-कटु विचार मैरिथ के सामने कई बार उत्तेजना के साथ ज़ाहिर कर चुका था। इसलिए जब गिडिटो के नायक होने की सूचना उसे मिली तो वह प्रसन्न न हो सकी। न जाने क्यों, उल्टी पीली पड़ गई। उसने आतंक से गिडिटो की ओर देखा। इस दृष्टि में भरे प्रश्न को अच्छी तरह न समझकर उसने कहा—"नायक कितना भोला भलामानस है, यह तुम शायद जानती ही नहीं?"

बेंज़िलो ने कहा—"मैं खूब जानता हूँ। उसके भोलेपन पर मैरिथ के सामने कई बार तरस खा चुका हूँ।"

इस पर मैरिथ फिर दहल-सी उठी। कुछ लेने गई तो गिडिटो के कान में कह गई—"ख़बरदार रहना।" लौटकर आई तो गिडिटो ने कहा—"बेंज़ी, क्या नेपोलियन से ख़बरदार रहना होगा?"

बेंज़िलो ने उत्तर दिया—"नेपोलियन खुद अपने को नहीं जानता। लेकिन ख़बरदार रहना अच्छा ही है।"

काफ़ी रात बीते वे अपने डेरे को चले। पर रास्ते में ही न जाने कब, बेंज़िलो बे-पता हो गया।

(५)

रात अंधेरी है, सुनसान है। पतलून की दोनों जेबों में पिस्तौल है। बेंज़िलो महल के दरवाज़े तक आ गया है। दरवाज़े पर संतरी टहल-टहलकर पहरा दे रहा है।

बेंज़िलो के आने पर संतरी ने सलाम किया।

"सब ठीक है?"

"बिलकुल।"

"उसी कमरे में?"

"हां।"

रास्ते में जितने मिले उनमें से किसी का अभिवादन लेकर, किसी को फुसलाकर, कुछ को डरा-धमकाकर और बाक़ी बचे २-१ को ठंडा करके वेंज़िलो,उस कमरे के दरवाज़े पर आ गया। कमरा रोशन था। एलवर्ट अकेला रहता था, अभी तक उसने ब्याह नहीं किया था।

वेंज़िलो ने केवल झँपे हुए दर्वाज़े को खोलकर कहा—"आ सकता हूँ ?"

उत्तर मिला—"आइए।"

उत्तर सुनने-न-सुनने की पर्वाह किये विना वह अंदर दाख़िल हो गया।

एलवर्ट इतनी रात गये भी एक कुर्सी पर वैठा था। सामने छोटी-सी मेज़ थी। उसपर कुछ काग़ज एक रंग-विरंगे बहुत बड़े शंख से दबे हुए थे। पास ही एक ऊँचे स्टूल पर शेडदार लैम्प था, जो अच्छा खुशनुमा था, पर राजाओं के लायक़ बिल्कुल न था। एलवर्ट का सिर अपने दोनों हाथों में थमा हुआ था। एक कोहनी मेज़ पर रक्खी थी, दूसरी कुर्सी की बाँह पर। उसके माथे पर वल थे। ऐसे बैठे-ही-बैठे अनायास ही उसने 'आइए' कहा था।

आगत व्यक्ति को जब उसने देखा तो वह बिलकुल बदल गया। हाथ दोनों कुर्सी की बाहों पर आराम करने लगे। सिर सीधा हो गया, और वह थोड़ा हँसा।

—"ओहो, वेंज़िलो हैं!—मैं तो तुम्हें भूला जा रहा था।"

"मैं भूलने दूं, तब न!"

"यह भी ठीक है। आज शाम को मुझे ख़बर मिली थी कि आप रात को दर्शन देंगे। पर अभी-अभी तो मुझे इसका ध्यान उतर ही गया था।"

"आपकी ख़बर ठीक थी। क्या इसके आगे और कुछ ख़बर भी थी?"

"उसे मैं आप से जानने की आशा रखता हूँ।"

"आशा तो आप ग़लत नहीं रखते।"

"तो आज्ञा हो मेरे लिए—"

"एलवर्ट, अभी जल्दी काहे की है? तुम्हें जल्दी हो. तो बात दूसरी।"

"बड़ा सन्तोष है कि आपको जल्दी नहीं। नहीं तो जल्दी आपके मिज़ाज में एक ख़ास चीज़ है। फिर निश्चय के बाद देरी का कारण भी क्या?"

"एलवर्ट, मालूम होता है, तुम अपने भाग्य से परिचित हो। शायद समझते हो, प्रयत्न करने से भाग्य टलेगा नहीं, इसीलिए इस तरह यहां निश्चिन्त बैठे हो। पर भाग्य को तुम्हारे प्रयत्नों की या निश्चिन्तता की ज़रा भी पर्वाह नहीं।"

"वेंज़िलो, तुम जानते हो, मैं भाग्य में यक़ीन करता नहीं। पर अब मालूम होता है, जैसे यक़ीन करना अच्छा है! मुझे भी विश्वास होता जा रहा है,—होनहार टलती नहीं।"

"जाने दो, इन बातों को। तुम राजा हो, कल इन्हीं के साथ मिलकर राजा की दुश्मनी का दम भरते थे! यह क्या धोका नहीं है,—और तुम इस पर अफ़सोस नहीं करते!"

"यही तो मुश्किल है कि अफ़सोस मैं नहीं कर पाता। धोखा-वोखा मैं जानता नहीं। लेकिन मालूम होता है, इस तरह इटली के लिए मैं शायद कुछ कर सकूँ।"

"एलवर्ट तुम्हें शरम नहीं आती? राजा बने बैठे, जब कि सैकड़ों-हज़ारों तुम्हारे साथी तुम्हारी ही जेलों में सड़ गल रहे हैं। तुम्हारे देशवासी गुलामी और दरिद्रता के कुचले जा रहे हैं तब तुम ऐशो-इशरत में पड़े हो, और आस्ट्रिया के जूते के नीचे अपने उन भाइयों पर हुकूमत चलाते हो!"

"भाई, शर्म आती ही नहीं तो क्या करूँ? मैं उसे ज़बर्दस्ती बुलाने की आवश्यकता नहीं समझता। आज कुर्सी पर से सब देशसेवकों को नहीं तो कुछ को तो मैं जेल से छुड़ा ही सकता हूँ। पर तुम क्या कर सके हो, क्या कर सकते हो?...और यह कुर्सी महल में तो रक्खी है, पर तुम देख लो, बिलकुल मामूली है। क्या आधी रात तक ऐसी कुर्सी पर जागते बैठना तुम्हारी निगाह में पाप है! तुम यह नहीं जानते कि हुकूमत करनेवालों को अपने सिर पर का जूता ज़्यादा खलता है। क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि आस्ट्रियन मुझसे जितना डरते हैं,—तुम से उतना नहीं।"

"तुम आज गद्दी के मोह में पड़कर इटली को ... रहे हो।"

"शायद।"

"तुम यह नहीं समझते ?"

"अभी तक नहीं।"

"लेकिन तुमको समझने के लिए ज़्यादा वक्त नहीं ा जा सकता।"

"ठीक है, मैं पहले ही काफ़ी ले चुका हूँ।"

"लेकिन तुम्हें अपना अधिकार है, राष्ट्र को खो देने नहीं।"

"राष्ट्र को न समझने का जैसा तुम्हें अधिकार है, वैसा भी तो उसे समझने का अधिकार है।"

"हम इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

"बर्दाश्त की आदत पैदा करनी चाहिए।"

"वह आदत अभी पैदा करने का वक्त नहीं है। अभी है कि अपने रवैये पर पछताओ, शर्म खाओ, और पेस मुड़ो।"

"नहीं तो ?"

"...नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। हम अपने देश नाश नहीं देख सकते।"

"बेशक, तुम अपने देश का नाश या लाभ नहीं देख ते।"

"जो हो, अब वक्त कम है। बोलो क्षमा,—या दंड।"

"तुम्हें ऐसा अधिकार किसने दिया ?"

"समझो कि पहली घड़ी से जीवन की अंतिम घड़ी तक —बस एक—राष्ट्र की चिंता रखने वाले तरुणों ने।"

"तो उनसे कहो, उन्होंने भूल की। ऐसा अधिकार मात्मा के हाथ से छीनने की आवश्यकता नहीं।"

"बोलो,—क्षमा या दंड ?"

"दंड या पुरस्कार, जो भी होगा ज़रूर मिलेगा। पर मा!...क्षमा नहीं।"

"क्षमा नहीं ?......"

यह कहकर उसने जेब में हाथ डाल दिया। एलबर्ट सब कुछ देखा। वह भी देखा, जो बेंज़िलो नहीं देख पा ा था। बोला—"बेंज़िलो, एल्बर्ट में सीज़र का खून है, र इटली का देश-प्रेम है। क्षमा नहीं।"

"नहीं !—तो लो।"

यह कहा और पिस्तौल खींच ली। इतने में ही किसी ने कसकर बांह को पकड़ लिया। घोड़ा दबा। गोली शेड और लैम्प को चूर-चूर करती हुई निकल गई। रोशनी बुझ गई। गुप्प-अंधेरा हो गया।

गिडिटो ने पिस्तौल बेंज़िलो के हाथ से छीनकर फेंक-दी वह झनझनाकर फ़र्श पर पड़ी।

कुछ भी न दीख पड़ रहा था। बेंजिलो ने कहा—"कौन है ? अलग हट जाओ, नहीं तो सिर फोड़ दूँगा।" इतना कहकर दूसरी जेब में उसने हाथ डाल लिया।

गिडिटो ने एक ज़ोर की चपत उसकी कनपटी पर जड़ दी।

"कम्बख़्त।—यहाँ आया है मरने। चल घर, चल। चल भाग।"

जब चलने और भागने में देर लगी तो कान पकड़कर उसे धकेलते हुए कहा—

"अरे, भागता है कि नहीं ? भाग जा, झटपट। नहीं तो मर जायगा।"

इतने में ही एक गोली सनसनाती हुई गिडिटो की बाँह को आर-पार कर गई और बेंज़िलो भाग गया।

× × ×

शोर मचाकर जब नौकर-चाकर सिपाही-प्यादे इकट्ठे के-इकट्ठे वहाँ हाज़िर हुए और रोशनी की तो गिडिटो बाँह पकड़े जहाँ का तहाँ खड़ा था, और एल्बर्ट कुरसी पर वहीं का वहीं पिस्तौल ताने बैठा था।

गिडिटो पकड़ लिया गया।

बेंजिलो बेतहाशा घबराया-सा दौड़कर जब सदर दर्वाजे के बाहर आया तो किसी ने पुकारा—

"बेंज़ी !"

देखा कि सामने मैरिथ चिन्ता-व्यग्र खड़ी है। मैरिथ ने पूछा—"बेंज़ी, गिडिटो कहाँ है ?"

"गिडिटो ?"

बेंज़िलो की घबराहट मैरिथ से छिपी न रह सकी। उसने जोर देकर कहा—"हाँ, गिडिटो।"

"वह तो मुझे अन्दर नहीं मिला।"

"अन्दर नहीं मिला !—मेरे देखते-देखते वह अंदर गया है; मैं नहीं जा सकी।"

"गया होगा, पर मुझे नहीं मालूम।"

उसने चिल्लाकर पूछा—'नहीं मालूम ?"

"नहीं !......लेकिन तुम इस वक्त यहाँ कहाँ घूम रही हो। चलो घर चलें।"

"गिडिटो रात-रात भर तुम्हारी तलाश में घूमे,—और तुम्हें अब चैन की सूझे। ऐसे ही हो तुम ?...सच बताओ गिडिटो कहाँ है ?

'यहीं ख़त्म हो जाओगे।—बोलो, नहीं मालूम ?'

बेंज़िलो ने देखा, पिस्तौल सीधी उसके मुँह की तरफ़ तनी है, मैरिथ की आँखों में जैसे वज्र-काठिन्य जल रहा है। वह ख़ुद निहत्था था, दूसरा पिस्तौल भी वहीं छूट गया था। उसने कहा—"मालूम होता है, मैंने उसे गोली मार दी है।"

मैरिथ इसपर एक चीख़ छोड़कर और रिवाल्वर बेञ्जिलो के ऊपर फेंककर अन्दर भाग गई। वह भरी पिस्तौल छूटी नहीं, उसके बदन से लगकर धरती पर गिर पड़ी।

बेंज़िलो ने उसे उठा लिया।

× × ×

अन्दर जाकर मैरिथ ने देखा, गिडिटो को कई रक्षक हथकड़ी डाले लिये जा रहे हैं। वह बाँह को कसकर पकड़े है। उसने जब मैरिथ को देखा तो कहा—

"मैरिथ ! तुम यहाँ कहाँ ? बेञ्जी तो तुम्हें याद कर रहा था। जाओ, उसकी देख-भाल करना। कहीं वह रो-रोकर मर न जाय।"

मैरिथ गई नहीं,—वह वहीं खड़ी देखती रही।

"धित्, यह क्या आँखें फाड़ रही हो !...जैसे बेञ्जी मैं ही हूँ। चलो, जाओ, बेञ्जी को ढूँढकर उसे सांत्वना दो।"

वह फिर भी नहीं गई।

"मैरिथ, देखो नहीं जाओगी तुम ?"

मैरिथ चुपचाप चली गई।

(६)

गिडिटो के ख़िलाफ़ प्रमाण संगीन थे। वह रात को महाराज के कमरे में पाया गया है। बाँह में गोली का घाव है। जेब में एक पिस्तौल मिली है। इतना होने पर भी वह छूट गया। एल्यर्ट का इस सम्बन्ध में खास आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ था।

घर पर आकर उसने देखा, बेञ्जिलो का सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। उसके दिल में एक अज्ञात आशंका घर कर बैठी। वह मैरिथ के पास गया। बेञ्जी वहाँ न था। गिडिटो ने डाटा; मैरिथ ने अपनी कर्तव्यपूर्णता जतलाते हुए क्षमा माँगकर कह दिया—"मैंने बहुतेरा ढूँढा, मुझे वह नहीं मिला।"

गिडिटो ने कहा—"और ढूँढो, मैरिथ ! जबतक मिले, तबतक ढूँढो।"

"ढूँढूंगी तो, पर तुम भी कहीं खो न जाना।"

'मैं नहीं खोऊँगा,—पर उसे तो पाना ही होगा।

"जो कहोगे, सो करूँगी। लेकिन कहे देती हूँ, बहुत जीता न रहेगा।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ। लेकिन ऐसे रूठकर वह न जाने पायगा।"

"गिडिटो, तुम ऐसे-ऐसे क्यों हो रहे हो ?"

"मैं कुछ भी नहीं हो रहा। मैं यह सोच रहा हूँ बेञ्जी के अब नेपोलियन बनने का अन्त आ गया है। पास बहुत सुख था; अब मेरा सुख का आधार जायगा। और, मैरिथ, तुम्हारा सोहाग......"

"ठहरो गिडिटो। मेरे सुहाग की तुम चिन्ता करते तो क्या बात थी ? मैं जानती हूँ, मुझे अपने सोहाग अर्घ्य किसकी वेदी पर चढ़ाना होगा। वह देवता स्वीकार करें या तिरस्कार कर दे, अर्घ्य तो समर्पण के ही होता है।"

"तो मैं तुम्हारे बेञ्जी को ढूँढने जाता हूँ।"

कहकर वह चल दिया। मैरिथ ने सुना-सुनाकर कहा "जाओगे तो हो ही। मेरे कहने से रुकनेवाले तुम थे हो।"

× × ×

गिडिटो के कमरे में—

गि०—छिः, बेञ्जी, इस तरह भागा करते हैं ?

बे०—तुम बार-बार इतने बड़े क्यों बनते हो ! इसपर बहुत खीझ उठती है।

गि०—मैं बड़ा बनता हूँ ! बोलो, कहो तो जूते साफ़ कर दूँ।

बे०—तुमने मुझे थप्पड़ क्यों मारा था ?
गिडिटो ने यह नहीं कहा कि थप्पड़ गोली से बहुत है। उसने कहा—"बस यही बात है? तो यह लो, ने चाहो मेरी पीठ पर जमाओ। यह कहकर बेंजी के एक बेंत रख दी।"

"गिडिटो तुम बड़े होशियार हो। लेकिन मैं तुम्हें बड़ा ता ही नहीं।"

"तुम तो हो पागल। मुझे बड़ा मानो या छोटा मानो। से, कुछ भी मानो। पर अपना मानो।"

"जितनी ऐसी बात कहोगे, उतना ही मैं तुम्हें दुश्मन हूँगा।"

"अच्छा, दुश्मन ही समझो। लेकिन अब मैरिथ के जाओ। वह याद कर रही थी। नहा-धो लो और कपड़े ल लो। कैसे मैले हो रहे हो!"

बेंज़िलो मन से चाहे कुछ भी कहे, पर ऐसी बातों में का गुज़ारा होता है गिडिटो की आज्ञाओं पर ही। वह त के लिए चला गया।

गिडिटो ने इतने में एक नया-साफ़ सूट निकाल रक्खा। ने पर ठीक-ठीक करके उसे मैरिथ के पास रवाना कर ा।

मैरिथ के घर का दर्वाजा बंद था। उसने नौकरनी को हा दी थी कि जो आये, पहले उसे सूचना दी जाय। ज़िलो ने दर्वाज़ा खटखटाया, नौकरनी मैरिथ के पास ची। पूछा गया—"कौन है?"

"बेंज़िलो।"

"उनसे क्षमा माँगकर कहना, मेरे मस्तक में बड़ी पीड़ा अभी न मिल सकूँगी। फिर पधारें।"

नौकरनी के मुँह से जब उसने यह सुना, घड़ों पानी उपर गिर गया। उसने सोचा—'गिडिटो ने मुझे यहां तक क़ूफ़ बनाया! उसकी यह हिम्मत!' घर जाकर सीधा ंग पर पड़ गया। गिडिटो अनुपस्थित था।

(७)

इधर गिडिटो नायक-गोष्ठी में आया है। वही कमरा, ही लोग।

लारेंज़ो—बेंज़िलो का अपराध अक्षम्य है।

एंटिनो—मैं मानता हूँ, समिति के नियमों के अनुसार उसने बहुत बड़ा अपराध किया है। किन्तु नियमों में संशोधन की बहुत आवश्यकता है, उनमें जकड़े रहने की इतनी आवश्यकता नहीं है।

ला०—नियम नियम हैं। और जबतक वे बदल नहीं जाते तबतक उनका उल्लंघन सर्वथा दण्डनीय है।

गिडिटो—अपराध गुरुतम हो, वह हमेशा विचारणीय है। इसके विचार और फैसले के लिए एक की बुद्धि पर निर्भर रहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। मैं तीन आदमियों की दण्ड-समिति को इसका भार सौंप देना चाहता हूँ।... भाई एंटिनो की क्या राय है?

ए०—अपराधी के हित की रक्षा में यह सबसे उत्तम उपाय है।

गि०—भाई लारेंज़ो?

ला०—न्याय-सद्धि को इसमें पूर्ण आशा है।

गि०—मैरिथ, सिपियो, गैरिबाल्डी,—इन तीनों की दंड-समिति होगी। भाई एंटिनो अभियुक्त के पक्ष की ओर से वकील होंगे; भाई लारेंज़ो अभियोग की ओर से। मैं इससे संबन्ध नहीं रखना चाहता।

एं०—नायक को अपनी ज़िम्मेदारी से बचने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

ला०—दण्ड-समिति का फ़ैसला नायक के हस्ताक्षर के बाद प्रामाणिक होगा।

गि०—आप लोग छोड़ेंगे नहीं। बड़ी अनिच्छा से यह भार भी मुझे अपने सिर लेना होता है। भाई एंटिनो इसका ध्यान रक्खें कि अभियुक्त को सूचना न हो। सबसे इस संबन्ध में समानता, बन्धुता और प्रजातंत्र के नाम पर, इटली के मान-चित्र की छत्र-छाया में शपथ ले ली जाय।......सबको ध्यान रहे, परमात्मा की एक विभूति को, एक परमात्म-खंड को, मारने या जीवित रहने देने का भार उनपर है।

× × ×

घर पर गिडिटो आया तो बेंज़िलो आंखें मूंदे सो रहा था। इस समय इस चेहरे में, जिसके झरोखे झंप रहे थे, कैसा मनोमुग्धकारी भाव था! न गुस्सा था, न स्नेह था, न

हास्य था, न कुछ था। बस, एक अमूल्य बालपन था, एक भोली स्वाभाविकता थी। उसे मालूम पड़ा, जैसे इस सौन्दर्य का यह अंतिम क्षण है।

वह सामने कुर्सी लाकर बैठ गया। बेंज़िलो के बाल उसके माथे पर आ रहे थे। उसने उन्हें पीछे को सरका दिया। वह फिर वहीं आ गिरे। उसने फिर सरका दिया। अबकी तीसरी बार उसने नहीं सरकाये। तीन-चार हिले-मिले बालों की इस उद्दण्ड लट को वह देखता रह गया। कैसे सुनहरे-सुनहरे बाल थे। और सबके सब तो सिर पर अच्छी तरह लेटे थे; यही लट कैसी हठ करके उसके माथे के आगे आ-आ पड़ती थी।

गिडिटो ने उस लट के अगले सिरे को कैंची से काट लिया। फिर बाल के वे नन्हें-से टुकड़े उसने दराज़ से एक लाकेट निकालकर उसमें बन्द कर दिये।

फिर अलग जाकर वह अपनी किताब पढ़ने लगा। लेकिन कौन जानता है; वह बेचारी किताब कैसी क्या पढ़ी गई!

(८)

गिडिटो और बेंज़िलो शतरंज खेल रहे हैं। गिडिटो हार पर हार रहा है। फिर भी जैसे हारना चाहता है। आज वह जैसे दिन भर हरएक से हारता रहना चाहता है।

बेंज़िलो, बेचारा बालक, झल्ला रहा है। इस शतरंज के वक्त वह सब कुछ भूल जाता है। मात ज़रा-ज़रासी देर में हो रही है—इसपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है।

"गिडिटो, क्या हो रहा है? यहाँ चलोगे तो बड़ी शह लगेगी।"

"अरे, हाँ!"

....

"अच्छा, यह लो, मात हो गई!"

"अच्छा, बेंज़ी, अबके लो, मिनटों में मैं तुम्हें मात कर देता हूँ।"

"मात क्या ख़ाक दोगे?"

"ख़ाक-वाक मत चाहो जी, मात दूँगा—मात! चारों खाने मात!"

"अच्छा।"

खेलना शुरू हुआ ही था कि सिपियो कमरे में दाख़िल हुआ। गिडिटो पीला पड़ गया। बेंज़ी आगे की चाल सोच रहा था। गिडिटो ने कहा—

"बेंज़ी तुम नहाये नहीं! घंटों से शतरंज हो रही। इसे यों ही बिछी रहने दो। जाओ नहा आओ।"

"मैं कहता हूँ, तुमसे क़यामत तक मात न हो।" बेंज़ी ने कहा।

"अच्छा नहा के आओ, फिर देखना।"

उसके चले जाने पर सिपियो ने फ़ौजी सलाम करके एक लिफ़ाफ़ा निकालकर पेश किया। गिडिटो ने फ़ौरन उसे खोल लिया। लिखा था—

बेंज़िलो ने—

अ. नियम-विरुद्ध, नायक-गोष्ठी की बिना सूचना और आज्ञा के, अलग दल बनाना प्रारम्भ किया।

आ. समिति की नीति के ख़िलाफ़, नायक की स्पष्ट आज्ञा को तोड़कर, एल्बर्ट की हत्या का प्रयत्न किया।

इ. इस प्रकार निरंकुशता और आज्ञोल्लंघन की प्रवृत्ति बढ़ाई।

ई. नायक को ख़तरे में डाला।

इसलिए—

प्राणदण्ड।

इसके नीचे तीनों जजों के हस्ताक्षर थे। नीचे एक नोट था—

"मैरिथ दण्ड की पूर्ति का भार ख़ुद उठाना चाहती है। इसके स्वीकार करने में हम कोई आपत्ति नहीं देखते।"

इसके नीचे सिपियो और गैरीबाल्डी के हस्ताक्षर थे।

गिडिटो ने अभियोगों में (ई) का वाक्य काट दिया और अपने हस्ताक्षर कर दिये। सिपियो चला गया।

... ...

बेंज़िलो लौटा तो गिडिटो ने कहा—"शतरंज बंद करो। आओ कुछ खायें-पियें।"

'लैण्डलेडी' को बहुत ज़बर्दस्त आर्डर दे दिया गया। कई तरह की शराबें और सब-कुछ प्रस्तुत हो गया।

"गिडिटो, तुम शराब पीओगे?" बेंज़िलो ने पूछा।

"हाँ-हाँ, सुनते हैं, इसमें बड़े गुण हैं।" गिडिटो ने
ाब दिया।

दोनों ने जितना हो सका खाया और जितनी समा
ी शराब पी। फिर दोनों बदहोश सो गये।

(९)

मैरिथ की आयोजना से इस शनिवार के रोज़ झील
सैर के लिए जाने का निश्चय हुआ है।

खाने का सब सामान साथ है। आज गिडिटो बिलकुल
ला पड़ा हुआ है, लेकिन हद से ज्यादा प्रसन्न मालूम
ता है। दो-तीन घण्टे झील में किश्तियों से सैर हुई।
सारे काल में एक मिनट भी तो वह शायद ही चुप
ा है। दुनिया-भर के क़िस्से-कहानियाँ, चुहलबाज़ियाँ उसे
रही हैं। घड़ी-घड़ी पर उसे शराब की आवश्यकता
ती है।

बेंज़िलो इन बातों से झल्ला रहा है। बड़ी पैनी दृष्टि से
इन सब बातों को देख रहा है, और फिर-फिर कर
रिथ की ओर देख लेता है।

मैरिथ चित्र-सरीखा अपना एक जैसा चेहरा लेकर सब
सी खुशी में भाग ले रही है। क्या प्रलय उसके भीतर
रही है,—कौन है, जो उसे जान सकता है? न मालूम
आज अपनी क़ब्र खोदने जा रही है या मुक्ति पाने जा
ी है!

झील के उस पार जंगल में अब आ गये हैं। गिडिटो
कहा—"बेंज़ी, देखो, हँसोगे नहीं तो मैं गुदगुदी मचा
गा।"

"क्या आज ही हँस लोगे?"

"और नहीं तो क्या रोज़-रोज़ हँसना मिलेगा?"

"ठीक है, शायद रोज़-रोज़ नहीं मिलेगा।"

"बेंज़ी, इस जंगल में कोई हमारी आवाज़ नहीं सुनेगा।
ाओ, खूब हँस लें, फिर इकट्ठे रो लेंगे।"

"गिडिटो, तुम आज बिलकुल जानवर जान पड़ते हो।"

"जान पड़ता हूँ। बस! अरे, तुम्हें मालूम नहीं, मैं
ही जानवर! लेकिन, कहता हूँ, रोज़-रोज़ नहीं रहूँगा।"

गिडिटो ने बहुत शराब पी ली थी। वह अब ऊटपटाँग
क रहा था। मैरिथ ने कहा—"बेंज़ी इधर आओ। उन्हें
अब आराम करने दो।"

बेंज़िलो ने यह सुना, गिडिटो के आराम के प्रति मैरिथ
की व्यग्र चिन्ता और उत्कण्ठा देखी, गिडिटो को देखा और
फिरकर अपनी ओर देखती हुई मैरिथ को देखा, और 'आता
हूँ' कहकर गिडिटो पर पिस्तौल तान दी। पर छोड़े ही
छोड़े कि एक गोली उसकी छाती में लगी। वह ढह पड़ा।
उसकी गोली हवा में सन्-सन् करती हुई निकल गई।

बेंज़िलो कुछ भी बोल न सका। बात की बात में
निष्प्राण हो गया। गिडिटो ने आगे बढ़कर, उसी ज़िद्दी बालों
की लट को हटाकर, बेंज़ी के माथे पर एक चुम्बन ले लिया।
कहा—"मैरिथ, अब उसे उठाओगी नहीं?"

मैरिथ डर रही थी, गिडिटो न जाने क्या हो रहा था!

(१०)

चर्च के घेरे की ज़मीन में एक बहुत गहरा गड्ढा खोद-
कर बेंज़ी की लाश उसमें रक्खी गई। फावड़े से गीली-गीली
मिट्टी उसपर डाली गई। ८ फीट ऊँची, ४ फीट चौड़ी
और ८ फीट लम्बी वह जगह मिट्टी से ऊपर तक भर दी
गई।

समिति के सब सदस्य आये थे, और अब चले गये।
किसीने उसपर एक आँसू नहीं बहाया।

गिडिटो मुंह लटकाये खड़ा था—जैसे उसकी आँखों में
का पानी और बदन में का खून सब सूख गया है।

बस, मैरिथ रो रही थी। बेचारे मृत बेंज़ी के लिए
नहीं किन्तु बेचारे जीवित गिडिटो के लिए।

सबके चले जाने पर गिडिटो ने आगे बढ़कर उस क़ब्र
पर ताज़ी-ताज़ी पड़ी हुई मिट्टी का एक चुंबन ले लिया।
पास से एक फूल को तोड़कर उसके सिरहाने रख दिया।
और गर्दन लटकाये हुए एक तरफ़ को बढ़ चला।

मैरिथ पीछे लपकी—चिल्लाई—

'गिडिटो!'

'हाँ'—यह हाँ जैसे उसी क़ब्र में से निकल रही थी।

'कहाँ जाते हो?'

'घर'

'मेरे यहाँ नहीं?'

'नहीं।'

मैरिथ भी इसपर वैसा ही मुँह लटकाये दूसरी तरफ़
चल दी।

'क्लाइव का गधा' और उसके बाद—*

[श्री रामनाथलाल 'सुमन']

भारत में अंग्रेजी राज्य के आरम्भ का इतिहास ऐसी धोकेबाज़ियों, षड़यंत्रों, ज़ुल्मों और चरित्रहीनताओं से भरा हुआ है कि अन्य देशों के इतिहासों के पन्नों में उनकी मिसाल नहीं मिल सकती। आज शक्ति हाथ में आ जाने के कारण जो अंग्रेज़ अधिकारी और भारतीय सभ्यता की हँसी उड़ाने वाले विदेशी प्रचारक गण, भारतीयों की चारित्रिक दुर्बलता के सच्चे-झूठे क़िस्से गढ़कर और बड़े गर्व से कहने का अधिकार लेकर दुनिया के सामने रखने को उत्सुक हैं; जो न केवल शारीरिक वरन् चारित्रिक दृष्टि से भी भारतीयों को अपने से अधम समझते हैं, मुझे विश्वास नहीं है कि वे भारतीय साम्राज्य के आरम्भ की कहानी पढ़कर देर तक सर ऊँचा किये रह सकते हैं। अंग्रेज़ों के विश्वासघात और जालसाज़ी के नमूनों से विगत तीन सौ वर्षों और विशेषतः ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के शासन-काल का इतिहास भरा पड़ा है।

हम आज ग़ुलाम हैं; हमसे कहा जाता है कि यदि तुम्हारा चरित्र दुर्बल न होता और हम तुमसे श्रेष्ठ न होते तो तुम पराजित और पराधीन ही क्यों होते? बात चुभनेवाली है और सत्य से खाली भी नहीं। हम मानते हैं कि हमारे यहाँ अमीचन्द जैसे भी कितने ही थे पर हम ज़ोर देकर कहना चाहते हैं कि अमीचन्द के विश्वासघात की तुलना क्लाइव के विश्वासघात से नहीं की जा सकती। अमीचन्द ने जब अपने भारतीय शासक के प्रति विश्वा... करके अंग्रेजों की सहायता की तब इन्हें ... चरित्र में विश्वास था; तब वह समझते थे कि अंग्रेज़ ... बात के सच्चे निकलेंगे। वह क्या जानते थे ... अंग्रेज़ी साम्राज्य-विस्तार के इतिहास के पन्ने ... बाज़ी की स्याही से ही काले किये जाने वाले हैं ... चोरों और डाकुओं में भी ज़बान एक चीज़ ... जाती है पर चाहे मीरजाफर के साथ हो या ... कासिम के, हैदरअली के साथ हो या मराठों ... अंग्रेज़ अपनी बात के पक्के कभी साबित न हुए ... इसीलिए भारत में अंग्रेज़ी शासन का इ... जिन्होंने अच्छी तरह पढ़ा और समझा है, वे ... हो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारा राज्य चले ... का एक बहुत बड़ा कारण हमारा भोलापन ... सादगी थी जो बहुत जल्द दूसरों की बात पर ... कर लेती थी। पर जहाँ धोका देकर काम बना... राजनीति का चरम विकास समझा जाता हो, ... के अधिवासियों से चारित्रिक आदर्श के सम्बन्ध ... बहस करना महज़ फ़िज़ूल है।

इंग्लैण्ड के इतिहास में क्लाइव का नाम आदर के साथ आता है। वह ब्रिटिश साम्राज्य ... जन्मदाता और राष्ट्र का आदर्श वीर कहा जाता है ... हम मानते हैं कि क्लाइव अंग्रेज़ी राष्ट्र का वह ... (Symbol) था जिसके रूप में पहली बार ... इंग्लिस्तान को देखा। यह क्लाइव वही था ... सम्बन्ध में अंग्रेज़ इतिहासलेखकों तक को लिखना ... पड़ा है कि धोकेबाज़ी उसकी आदत में दाख़िल ...

* शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली हमारी नई पुस्तक 'जब अंग्रेज़ आये—' की भूमिका।

ोखा देने में उसे कभी पश्चात्ताप या दुःख न
ा। यह वह क्लाइव था जिसने यह जानते हुए
इंग्लैण्ड में जालसाज़ी की सज़ा प्राणदण्ड है,
ट की जाँच-समिति के सामने बड़े अभिमान
ा अपनी धोकेबाजियों और षड़यन्त्रों का ज़िक्र
था और यह इंग्लैण्ड का ही चारित्रिक आदर्श
दण्ड देने के बजाय, एक-दूसरे देश में, एक
राजा के राज्य में (जिसने अंग्रेज़ों को अतिथि
य आदर के साथ शरण दी) जालसाज़ी करने
स्कार-स्वरूप उसे 'लार्ड' की उपाधि दी गई,
मूर्ति खड़ी की गई और उसके सम्मान में
ढाले गये।

❀ ❀ ❀

अंग्रेज भारत में या तो बाइबिल लेकर आये या
र की गठरी लादे हुए। पहले वर्ग ने महात्मा ईसा
वेत्र नाम पर और दूसरे ने व्यापार-विस्तार के
पर भारतीय जनता के साथ क्या क्या नहीं
? पादरियों के लम्बे चोगों के भीतर भी वही
था जिसे व्यापार की आड़ में व्यापारी अंग्रेज़ों
ा समय तक छिपा रक्खा था जबतक उनके
में उसे प्रकट करने की ताक़त नहीं आगई। इति-
के साधारण विद्यार्थी धर्म-प्रचारकों और व्यापा-
के इस गूढ़ सम्बन्ध को शायद न समझें पर
ज भारतीय साम्राज्य का उद्भव इन दोनों को ही
र हुआ है। पहले वर्ग का रूप धार्मिक एवं
तिक आवरणों से ढका था इसलिए उसे पह-
ता सरल काम न था और दूसरे वर्ग का सम्बन्ध
देश के राजा या शासक से होने के कारण वह
ज ही आँखों में चढ़ गया।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि भारत में
ज़ों का प्रवेश सबसे पहले हुआ तो भारत के
चमी तट पर किन्तु उनके साम्राज्य की नींव बंगाल
में पड़ी। इसका कारण यह है कि एक तो बंगाल,
विद्रोह की अवस्था में और बहुत अरक्षित-सा था और
दूसरे उसमें उपज की बहुत अधिकता होने के कारण
व्यापार के लिए अधिक सुविधायें थीं; धनका अधिक
आकर्षण था। इसके अतिरिक्त एक बड़ा कारण यह
भी है कि मुग़ल-साम्राज्य के ह्रास के साथ-साथ पश्चिमी
तट पर मराठों की शक्ति बढ़ती गई; उनकी जल-सेना
से मुठभेड़ करना अंग्रेज़ों के लिए उतना आसान
नहीं था जितना दुर्बलकाय बंगालियों को धोखा देकर
या उनमें फूट डालकर उन्हें पराजित कर लेना।
इसलिए अंग्रेज़ों की दृष्टि बंगाल की ओर शुरू से
ही लग गई।

❀ ❀ ❀

बंगाल में अंग्रेज़ों के श्रीचरण औरंगजेब के
काल में पड़ने शुरू हुए। इसके पहले बम्बई में भी
वहां की प्रजा पर इनके अत्याचार इतने बढ़ गये थे
कि औरंगज़ेब ने इनकी कोठियां जब्त कर लेने और
इन्हें इस देश से मारकर निकाल बाहर करने की
आज्ञा दे दी थी। सूरत इत्यादि की कोठियाँ जब्त
करके इन्हें निकाल बाहर भी किया गया पर ये इतने
चण्ट थे, कि बम्बई की कोठियों के घिरने पर झट
औरंगजेब के चरणों पर गिर पड़े; माफ़ी माँगी और
नेकचलनी का वादा किया। औरंगजेब बेचारा, जो
एक ज़बर्दस्त और कठोर शासक होने पर भी, आखिर
हिन्दुस्तानी ही था, इनके चकमे में आ गया और
उसने न केवल इनकी कोठियों वापिस कर दीं
वरन् १६९९ में अपनी कोठियों की रक्षा के लिए
साधारण क़िलेबंदी करने की भी आज्ञा दे दी। पीछे
उसके पौत्र आजमशाह ने (जो बंगाल का सूबेदार
था) हुगली नदी के तट के तीन गाँवों (कलकत्ता,
गोविन्दपुर और छूतानटी) को जागीर कम्पनी
को दे दी।

यह जागीर ही हमारे लिए काल बन गई। यहीं से अंग्रेजी राज्य की नींव का पड़ना आरम्भ होता है। पीछे कलकत्ता में, इसी जागीर के अन्दर, क़िला (फ़ोर्ट विलियम) बन गया।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-साम्राज्य अपने आन्तरिक विद्रोह के कारण छिन्न-भिन्न होने लगा और १७६१ की पानीपत की लड़ाई में भारतीय शासन का साफ़-साफ़ अन्त हो गया। इस अशान्त अवस्था के अन्दर अंग्रेजों की महत्वाकांक्षा बराबर बढ़ती ही गई। क़िलेबंदियाँ हुईं; फिर सेना रक्खी जाने लगी; धीरे-धीरे उस सेना के द्वारा देशी कारीगरों और किसानों को अपने स्वार्थ के लिए तंग किया जाने लगा। किसी को पकड़वाकर पिटवा देना एक मामूली बात हो गई! किसान अत्याचारों से त्राहि-त्राहि करने लगे; देशी कारीगर इनके जुल्मों से ऊबकर भाग खड़े हुए। देश का उद्योग-व्यापार नष्ट हो चला। यह इन विदेशी बनियों को शरण और सहायता देने का पुरस्कार था!

बातें बढ़ती गईं, फल-स्वरूप १७५७ में पलासी का वह विख्यात युद्ध बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेज़ों के बीच हुआ जिससे अंग्रेज़ी सल्तनत का पाया इस देश में पहली बार मज़बूती के साथ बैठ गया। कुछ देशद्रोही भारतीयों के विश्वासघात ❀ और अपनी चालबाजी के कारण इस युद्ध में अंग्रेज़ विजयी हुए; सिराजुद्दौला की जगह मीरजाफ़र गद्दी पर बिठाया गया।

मीरजाफ़र एक स्वार्थी और बुद्धू आदमी था, जैसा कि विश्वासघाती और देशद्रोही प्रायः हुआ करते हैं। उसमें वह नैतिक साहस कहाँ से [illegible] सकता था जो सिद्धान्तों के ऊपर मर मिटने वालों में हुआ करता है। एक बूढ़ा, आरामतलब, स्वार्थी आदमी था, जो स्वतंत्र राजा होने की [illegible] रखते हुए भी, खतरों से दूर रहकर ऐशो-इशरत की ज़िन्दगी बिताना चाहता था। इसलिए गद्दी पर बैठने के बाद भी वह आजकल की उन मूर्तियों के समान हो गया जिन्हें पुजारी तथा पंडे टके [illegible] करने के लिए अपनी इच्छानुकूल स्थापित करते [illegible] बदलते रहते हैं। बङ्गालरूपी मन्दिर के [illegible] वत् अधिपति मीरजाफ़र का क्लाइव प्रधान पंडा [illegible] मीरजाफ़र का काम इतना ही रह गया कि चुपचाप महल में पड़ा रहे और अपने पण्डे [illegible] अधिकारियों की जेबें भरता रहे। उसके गद्दी [illegible] बैठते ही, लगभग ७३ लाख रुपये तो कलकत्ता [illegible] अंग्रेज़ कमेटी के पास पहुँच गये। यह धन सन्दूकों में भरकर १०० नावों के सहारे [illegible] पहुँचा। मतलब यह कि मुर्शिदाबाद का [illegible] कलकत्ता की अँग्रेज कोठी में, बिना किसी झंझट के पहुँच गया। क्लाइव के मित्र [illegible] ओर्मी ने ठीक ही लिखा है कि 'पहले कभी [illegible] जाति को एक साथ इतना अधिक नक़द धन [illegible] मिला था।' ❀ सचमुच अँग्रेजों की चाँदी [illegible] मीरजाफ़र-जैसे निकम्मे और दुर्बल शासक [illegible] के इतिहास में बहुत थोड़े हुए होंगे। न तो [illegible] दबंगपन था, न राजकीय तेजस्विता थी और न [illegible] दर्शिता। इसी से चिढ़कर एक दिन व्यंग में परिहास-प्रिय मुसाहब मिर्ज़ा शमशेरउद्दीन ने

❀ इस युद्ध में सिराजुद्दौला की विजय निश्चित-सी थी पर उसके प्रधान सेनापति मीरजाफ़र तथा सहायक सेनापति दुर्लभराम तथा यारलुत्फ़खां ४५००० सेना लेकर युद्ध के बीच, ऐन वक्त पर, अंग्रेज़ों की ओर मिल गये। इनमें पहले ही समझौता हो चुका था।

* Orme's History of Indostan, Vol. [illegible] pp. 187—88.

इव का गधा' की उपाधि दी थी। इसमें सन्देह ं कि मीरजाफ़र की सम्पूर्ण जीवन-विधि इस धि के सर्वथा योग्य थी। इन दो शब्दों में उसके वन का जो विश्लेषण हुआ है; उसका प्रायः सभी ल इतिहास-लेखकों ने समर्थन किया है। धोबियों गधे जिस प्रकार सुबह से शाम तक बोझ ढोकर या समय रूखी-सूखी घास छोड़ और कुछ खाने नहीं पाते, अंग्रेजों का बोझा ढोने जाकर, बंगाल हार-उड़ीसा के सिंहासन पर पदार्पण करके भी, रजाफ़र को वही विडम्बना भोगनी पड़ी। गद्दी बैठने के पूर्व जिस सुख की कल्पना उसने की वह भी पूरी न हुई। राज्याधिकारी तक उसकी र न देखकर क्लाइव और अंग्रेज अफसरों के रों पर नाचने लगे। मानो सब कुछ होकर भी का कुछ नहीं था। जो अंग्रेज अभी चन्द साल ले मुर्शिदाबाद की सड़कों पर चलते समय डर से पते रहते थे, वे आज दुर्बल 'क्लाइव का गधा' को पर बिठाकर उसकी आड़ में उच्छृङ्खलता का डव-नृत्य करने लगे। व्यापार का नाश होने लगा; ाने में रुपया नहीं रह गया। उधर अंग्रेजों की की प्यास दिन-दिन बढ़ती गई; 'लाओ, लाओ' स्वर तीव्रतर हो गया। मीरजाफ़र घबड़ा गया। ाने में रुपया नहीं; देश का व्यापार नष्ट हो जाने राज्य की आय का स्रोत भी बन्द हो चला। लिए शासन-कार्य चलाना ही असंभव होने लगा। मीरजाफ़र अपने पापों का स्मरण करके कांप ा। उसे भी समझते देर न लगी कि इतनी कठि-इयों के बाद जो राज-सिंहासन मिला; जिसके लिए ा-धर्म, कर्त्तव्य-बुद्धि, स्नेह-ममता सबको पैरों तले चलकर, क़ुरान को स्पर्श करके झूठी क़सम खाने भी लज्जा न की वही पैरों के नीचे है किन्तु कोई तंत्र अस्तित्व रखने वाला शासक उसका स्वामी नहीं वरन् क्लाइव ही उसका वास्तविक मालिक है और मैं उसका बोझ ढोकर पाप की कमाई करनेवाला गुलाम-मात्र हूँ।

ऐसा जान पड़ता है कि नशा उतर जाने पर मीरजाफ़र को अपने इन कृत्यों पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ था और उसके मन में एक बार अपनी स्थिति मजबूत करने की भावना भी उठी थी पर अनुसन्धान से यह जानने में उसे देर न लगी कि मेरी मूर्खता से यह रास्ता पहले ही बन्द हो गया है।

बात यह थी कि अलीवर्दीखाँ और सिराजुद्दौला दोनों ने राज्य-कार्य में हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को कभी स्थान नहीं दिया था। वे राजा का कर्त्तव्य समझकर धार्मिक झगड़ों को कभी इन दोनों जातियों के बीच खड़ा न होने देते थे। यह आश्चर्य की बात है कि कर्नल क्लाइव के संरक्षण में मीरजाफ़र के गद्दी पर बैठते ही इस धार्मिक भेद-नीति ने शासन पर जोरों से हमला शुरू किया। अभी कुछ दिन पहले तक, जब मीरजाफ़र सिराज का प्रधान सेनाध्यक्ष था, उसमें ये भेद-भाव के दृष्टान्त नहीं पाये जाते थे पर गद्दी पर बैठते ही न जाने किसने उसपर ऐसी जादू की लकड़ी फेर दी कि उसने चुन-चुनकर हिन्दुओं को तमाम ऊँचे पदों से हटाना और उनपर मुसलमानों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। इसका फल यह हुआ कि सम्पूर्ण शक्तिमान हिन्दू सरदार उसके विरोधी हो गये। इस प्रकार अंग्रेजों से मित्रता करने जाकर जहाँ उसने अपनी राजशक्ति को खेलवाड़-सा कर दिया वहाँ उनके कुचक्र में पड़कर उसने अपने को सरदारों और हितैषियों के सहयोग से वंचित करके अपने पुनरुत्थान का मार्ग भी सदा के लिए बन्द कर दिया।

इस प्रकार बंगाल-बिहार और उड़ीसा में

रिक कलह को जगाकर और धोका-धड़ी तथा मुठमर्दी से देशी व्यापार का सत्यानाश करके क्लाइव भारत से विदा हुआ। यही नहीं उसने अपनी जेब भी खूब भर ली। जो क्लाइव कुछ ही दिनों पहले एक दीन-हीन क्लर्क बनकर भारत आया था, अपने विश्वासघात-कला के पाण्डित्य तथा कतिपय भारतीय देशद्रोहियों की अदूरदर्शितापूर्ण स्वार्थपरता के कारण संसार का एक बड़ा धनिक बनकर तथा इतिहास को अपनी करतूतों से कलंकित कर समकालिक अंग्रेजों के बच्चों के लिए एक बहुत बड़ी जायदाद पुश्त-दर-पुश्त भोगने का इन्तज़ाम करके स्वदेश लौटा। उसके बाद 'काल कोठरी' के कल्पित हत्याकांड का गप्पी रचयिता हालवेल गवर्नर बनाया गया। पर वह अधिक दिन तक इस देश में टिक न सका। और उसके बाद वांसिटर्ट नामक एक बुद्धू और कमजोर स्वभाव का आदमी इस पद पर नियुक्त हुआ।

पर क्लाइव हो या हालवेल, वांसिटर्ट हो या हेस्टिंग्स, आदम हो या कैलो सब एक ही जाति या देश के आदमी थे, एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे। स्वार्थपरता इनमें भरी थी और नैतिक आदर्शों को ये दिल्लगी की चीज़ समझते थे। हालवेल ने आते ही मीरजाफ़र में झूठे-सच्चे दोषों का आविष्कार आरंभ किया। जो मीरजाफ़र कल तक अच्छा था; जिसके समर्थन में बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी उठ खड़े हुए थे, आज 'दुष्ट, नालायक़ और फाँसी पाने के योग्य' क़रार दिया जाने लगा। पीछे, काम निकल जाने पर सभी ने स्वीकार किया कि मीरजाफ़र ने सन्धि के नियमों और शर्तों का पालन करने का सदैव प्रयत्न किया पर मतलब के समय, उसे गद्दी से उतारने के लिए, सभी उसके विरुद्ध हो गये। बात असल यह थी कि गाय का सारा दूध दुह लिया गया था और अब, जब उससे आगे दूध निकलने की कोई आशा न थी, उसे घर से निकाल बाहर करना स्वार्थ की गोद में पले हुए लोगों के लिए बिलकुल [illegible]विक था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुछ रह गया था; अब मीरजाफ़र से कुछ आमदनी की नहीं की जा सकती थी। इसलिए उसके विरुद्ध [illegible] प्रकार की बातें उड़ाई जाने लगीं। और [illegible] की अंग्रेज-कमेटी में बहुत जल्द उसके विरोधियों [illegible] प्राधान्य हो गया। गप्पी और मक्कार हालवेल [illegible] पर तरह-तरह के इल्ज़ाम लगाने शुरू कर दिये। [illegible] ज़ालिम, लालची और सुस्त बनाता गया।* [illegible] निर्दोष आदमियों की हत्या करने का इल्ज़ाम [illegible] गया और षड्यन्त्र करके उसके पुत्र मीरन को [illegible] अंग्रेजों की चालबाज़ियों को खूब समझता [illegible] दुनिया से सदा के लिए उठा दिया गया।†

* "The Nawab Jaffir Ali Khan, [illegible] a temper extremely tyrannical and [illegible]cious, at the same time very indolent, [illegible] people about him being either abject sl[illegible] and flatterers or else the base i[illegible] of his vices; ....numberless are [illegible] instances of men, of all degrees, [illegible] blood he has spilt without the least [illegible] reason."—Holwells' Address to the pro[illegible] tors of the East India Stock, p. 46.

† एक दिन आधी रात को खीमे के अन्दर [illegible] पर मीरन मरा हुआ पाया गया। मशहूर यह किया [illegible] कि बिजली गिरने से उसकी मौत हुई, पर जैसा कि [illegible] व्यंगपूर्ण भाषा में पार्लमेंट के सामने कहा था—"वह [illegible] विचित्र बिजली रही होगी कि ऊपर का खीमा ज्यों-का-त्यों रहा; बिजली के गिरने की आवाज, पास सोये हज़ारों [illegible] में से किसी को सुनाई न पड़ी और मीरन उसके [illegible] मर गया!"

धीरे-धीरे अंग्रेज़ों ने प्रान्त के कई शक्तिमान [जमींदा]रों एवं नवाब-सरकार के अधिकारियों को [अपन]ी ओर मिला लिया। अंग्रेज़ों का मतलब तो [रुपय]ा चूसना और अपनी ज़मींदारी या राज्य बढ़ाना [था।] उन्हें न्याय-अन्याय नहीं देखना था; न उन्हें [मीरज]ाफ़र या मीरकासिम में से किसी के प्रति [सहान]ुभूति थी। जब मीरज़ाफ़र से रुपया मिलने की [उम्म]ीद न रही तो उसके दामाद मीरक़ासिम के साथ [पराम]र्श करके उसे गद्दी से उतारने का षड्यन्त्र किया [गया] और षड्यन्त्र सफल होने पर अनेक व्यापारिक [एवं] व्यावहारिक सुविधाओं के साथ पच्चीस लाख [रुपये] पाने की शर्त भी अंग्रेज़ अधिकारियों ने मीर-[क़ासि]म से करा ली।

सभी इतिहासकारों ने मीरक़ासिम की दृढ़ता, [देश]-प्रेम, साहस और लगन की प्रशंसा दिल खोल-[कर] की है। ऐसा आदमी इस नीच षड्यन्त्र में क्यों [शामि]ल हुआ? क्या स्वार्थ-सिद्धि के लिए? नहीं; [क्यों]कि उसका सारा जीवन-क्रम हमारे मन में ऐसा [कोई] भाव ठहरने नहीं देता। असल में तो मीर-[क़ासि]म का दिल, मीरजाफ़र की कायरता और दब्बूपन [से ज]ल रहा था। थोड़े-से विदेशी बनियों के हाथ [बंगा]ल की ऐसी दुर्दशा देखकर वह अपने को शान्त [नहीं र]ख सकता था। धीरे-धीरे उसके मन में यह [धार]णा बढ़ती गई कि मीरजाफ़र जैसे निकम्मे और [बे]हिम्मत आदमी के गद्दी पर होते हुए कुछ नहीं [हो स]कता। इसलिए उसने सबसे पहले, जिस प्रकार [हो, उ]से गद्दी से हटाने का निश्चय किया। सब बात-[चीत] पक्की हो जाने पर अंग्रेज़ों ने मीरजाफ़र के [साम]ने असम्भव शर्तें पेश करनी शुरू कीं। [ये] बातें इतनी खुली-खुली हो रही थीं कि मीर [जाफ़]र-जैसे कमअक्ल आदमी को भी अपनी परिस्थिति [सम]झने और अपने भविष्य का अनुमान करने में देर न लगी। पर अब क्या हो सकता था? जो मूर्खता की जा चुकी थी, उसके प्रतीकार का कोई उपाय न था। हालवेल ने अपनी कल्पना के बल पर 'ढाका की हत्या-कहानी' की सृष्टि कर और उसका प्रचार करके तथा, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मीरजाफ़र के ऊपर अनेक झूठे ❀ दोष लगाकर उसे सर्वत्र बदनाम कर दिया था। मीरजाफ़र की अदूरदर्शिता ने परिस्थिति और भी खराब कर दी थी, इसलिए जब सेनापति कैलो ने उसके सम्मुख मीरक़ासिम को शासन-भार सौंप देने का प्रस्ताव उपस्थित किया तो वह दुःखी और निराश होकर, निरुपाय व्यक्ति की नाईं, सिर्फ़ इतना ही कह सका "× × × आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा। मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में इस तरह की कपटपूर्ण चाल चलने की होती तो मैं चाहते ही बीस हज़ार फ़ौज जमा करके आप लोगों से लड़ सकता था। मेरे पुत्र मीरन ने मुझे इन बातों के सम्बन्ध में पहले ही आगाह किया था!"†

❀ क्लाइव ने स्वयं ही इंग्लैण्ड के संचालक-मण्डल को पत्र लिखकर इस कल्पित कहानी का खण्डन किया है। वह लिखता है—" × × × In justice to the memory of the late Nabab Meer Jaffier, we think it incumbent on us to acquaint you, that the horrible massacres with which he is charged by M. Holwell..........are cruel aspersions on the character of that *Prince, which have not the least foundation in truth.* —Letter addressed to the *Hon'ble Court of* Directors by Clive and others, 30th September 1766 Supplement.

† Malcolm's *Life of Clive,* Vol II, p. 268.

२० अक्तूबर १७६० का दिन था। अन्धकार दूर हो चला था पर सूर्य उगने में अभी दो-एक घण्टे की देर थी। अफ़ीमची और बूढ़ा मीरजाफ़र महल में आराम से सोया हुआ था। और लोग भी मीठी नींद ले रहे थे कि कम्पनी की सेना ने महल घेर लिया। शोर-गुल से जागकर जब मीरजाफ़र ने खिड़की से देखा तो चारों ओर सेना ही सेना! सिंह-द्वार पर गवर्नर का पत्र हाथ में लिये हुए स्वयं सेनापति कैलो सशस्त्र उपस्थित हैं। मीरजाफ़र को समझते देर न लगी कि अब समय पूरा हो गया है। वही अंग्रेज़! वही कुटिल कौशल! वही राजप्रासाद! मीरजाफ़र सोचकर कांप उठा; जीवन की ममता जग गई। सिराजुद्दौला की दुर्दशा और उसके साथ किये हुए विश्वासघात का स्मरण हो आया। तीन वर्ष पूर्व पलासी-समराभिनय के आरंभ में अपने जीवन के पहले अंक में नवयुवक सिराज के सिंहासन की रक्षा के लिए मीरजाफ़र को हम कुरान हाथ में लिये देखते हैं किन्तु पीछे दूसरे अंक में वही मीरजाफ़र अंग्रेज़ों की सहायता से सिराज का नाश करने का षड्यन्त्र रचता दिखाई देता है। आज ठीक उसी प्रकार, उससे भी अधिक लाचारी की अवस्था में अपने को बिकते देखकर मीरजाफ़र की मानसिक अवस्था क्या हुई होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है पर उस समय भाग्य के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर मीरजाफ़र के मुँह से कोई बात न निकल सकी। वह मुकुट उतारकर धीरे-धीरे सिंह-द्वार पर विनीत भाव से आ खड़ा हुआ। इतिहासकार मैलीसन उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए बहुत ठीक लिखता है—

"निस्सन्देह उस महत्वपूर्ण प्रभात में बूढ़े मीरजाफ़र को तीन वर्ष से कुछ अधिक पहले के उस दिन की याद आई होगी, जब कि पलासी के रणक्षेत्र इन्हीं अंग्रेज़ों से गुप्त समझौता करके, उस म[illegible] के लिए, जिसे अब उसका एक सम्बन्धी उसी प्र[कार] के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, [उसने] अपने स्वामी और आत्मीय सिराजुद्दौला के [साथ] विश्वासघात किया था। उसके मन में अवश्य [यह] बात आई होगी कि इतने नीच और कलङ्कपूर्ण [उपायों] से प्राप्त किया हुआ सिंहासन मेरे किस काम आ[या?] सिराजुद्दौला से छीने हुए महल में बीतने वाले [इन] वर्ष के समय में जो कष्ट और अपमान भोगने [पड़े] उसके सामने हमारे पिछले ५८ वर्षों के समस्त [कष्ट] नगण्य हैं। यदि मैंने अपने बालक सम्बन्धी [और] मालिक सिराज की प्रार्थना मानकर उसकी [इज़्ज़त] की लाज बचाने के लिए प्रयत्न किया होता तो मेरी कितनी इज़्ज़त होती? आज जो विदेशी हुकूमत चला रहे हैं, उनके हाथ में यदि मैंने देश को बेच न दिया होता और उनके विनाश [में] अपनी शक्ति लगाता तो मेरा देश बच गया होता, [मेरे] हाथ में असली ताक़त होती और मेरा नाम [आदर के] साथ लिया जाता। किन्तु मेरी भूल के कारण लाल वर्दी वाले अंग्रेज़ सिपाही मेरे ही एक [अपने] के झण्डे के नीचे, मुझे गद्दी से उतारने के लिए महल घेरे खड़े हैं! मैंने सिराज के साथ जो किया था उसे देखते हुए क्या मीरक़ासिम मेरे [साथ] अधिक दयापूर्ण व्यवहार करेगा? × × ×"*

इस प्रकार छल-कपट और विश्वासघात की [मूर्ति] मीरजाफ़र का अन्त उसी के दिखलाये हुए उ[पाय] से हुआ।

यह मानना पड़ेगा कि मीरजाफ़र ने अंग्रेज़ों को धोखा नहीं दिया। उसने स्वयं कष्ट

---

* Malleson's Decisive Battles of I[ndia] pp. 131—32.

मान सहकर भी सन्धि की सब शर्तें पालन कीं। र भी मित्रता और हितैषिता की बातें करनेवाले जों ने उसे विना किसी अपराध के, बिना सफाई मौका दिये धोखा दिया और उसके साथ अत्यन्त वतापूर्ण व्यवहार किया। ऐसी आचार-हीनता र जुल्म की मिसाल इतिहास में मिलना कठिन । * स्वयं अंग्रेज़ इतिहासकारों ने इसकी निन्दा ते हुए लिखा है—"अंग्रेज लोग बाइबिल चूमकर र और ईसामसीह के पवित्र नाम पर मीरजाफ़र साथ जिस धर्म-प्रतिज्ञा में आबद्ध हुए थे उसकी के लिए मीरजाफर के सिंहासन की रक्षा करने बाध्य होते हुए भी अर्थ-लोभ से दूसरे के हाथ कर गवर्नर एवं कौंसिल ने अंग्रेज-जाति को कलं- त किया।" † खुद कौंसिल के चन्द सदस्यों ने लायत लिख भेजा था—"अंग्रेजों की धर्म-प्रतिज्ञा र उनका जातीय सम्मान चूर्ण कर मीरजाफ़र को हासनच्युत किया गया है।" ‡ पर जो कुछ किया

* Surely, Cortez and Pizarro were not ilty of so base a treachery when they rested Montezuma and the Inca Athahu- pa, for they offered the Inca an opportu- ty of answering the charges preffered ainst him before a tribunal.

—*The rise of Christian Power in India y B. Basu.*

† "Thus was Jaffier Ally Khan deposed breach of treaty founded on the most olemn oaths and in violation of the natio- al faith."

—*Letter from some gentlemen of he Calcutta Council.*

‡ Terren's Empire in Asia.

गया और जो कुछ आगे होने वाला था वह तो होकर ही रहा। अंग्रेज़ अधिकारियों की धोखा-धड़ी और चालबाज़ियों के कारण बंगाल से भारतीय राज्य उठ-सा गया। लार्ड क्लाइव ने पार्लमेंट के सामने बड़े गर्व से कहा था कि "मैं ऐसी स्थिति में जालसाज़ी करना आवश्यक समझता हूँ और काम पड़ने पर सौ बार इसे फिर करूँगा।"

× × ×

'क्लाइव का गधा' दब्बू मीरजाफर के बाद साहसी दृढ़निश्चयी, देशभक्त एवं गम्भीर मीरक़ासिम का बंगाल के रंगमंच पर प्रवेश हुआ। गद्दी पर बैठते ही मीरक़ासिम ने जहाँ एक ओर सन्धि के नियमों का पालन करना शुरू किया, वहीं चुपके-चुपके वह अपनी स्थिति सुधारने और शक्ति बढ़ाने के काम में भी लगा। महलों में राग-रंग एकदम बन्द हो गया। मानों किसी ने एकाएक सजीव विलास का गला घोंट दिया हो। शान-शौकत को फाँसी दे दी गई; हास्य-कौतुक निकाल बाहर किया गया। सादा जीवन बिताने के लिए जो जरूरी चीजें थीं, वही रक्खी गईं; राज्य के सब विभागों में भी खर्च घटा दिया गया।

अपने उद्देश्य की सफलता के लिए अंग्रेजों के महत्व को शासन से निकाल बाहर करना मीरक़ासिम को पहला कर्तव्य समझ पड़ा। उसने सोचा कि पहले ये बनिये मुगल-सिंहासन के आश्रय में पेट भरने की कोशिश करते थे। देश के शासन या देश-वासियों के सुख-दुःख से इन्हें कोई मतलब न था। यह बात बहुत दिनों की नहीं केवल ३—४ वर्ष पूर्व की है जब सिराजुद्दौला के अमलों तक के राजपथ पर जलते समय अंग्रेजों की अन्तरात्मा कांप उठती थी; बात-बात में अंग्रेज़ गुमाश्तों को हाथ जोड़े राजमहल तथा दरबार में खड़ा रहकर दीनता

दिखानी और क्षमा माँगनी पड़ती थी। ज़रा भी असभ्य और उच्छृंखल व्यवहार करते ही हथकड़ी-बेड़ी से बँधकर नवाब की घुड़साल के अन्दर कारागृह का कष्ट भोगना पड़ता था। पर तीन ही वर्षों में क्या से क्या हो गया? मीरकासिम ने विचारकर देखा—, केवल दो ग़लतियों के सहारे अंग्रेज़ हमारे कन्धों को दबाये हुए हैं। एक तो मीरजाफ़र ने अंग्रेजी सेना की सहायता लेने तथा उसके लिए मासिक वेतन देने का वादा किया था और दूसरे राज-कोष की शक्ति से बहुत अधिक मूल्य देकर सिंहासन खरीदने को तैयार हो गया था। इसके परिणाम-स्वरूप अंग्रेज कम्पनी का ऋण नवाब पर बढ़ता ही जा रहा था। इसलिए ऋण के बदले मीरक़ासिम ने बंगाल के तीन ज़िले अंग्रेज़ों को सौंप दिये और दूसरी ओर अपनी देशी सेना को सुसंघटित करना आरंभ किया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने यूरोपीय समर-प्रणाली से सेना को शिक्षित करने का प्रबन्ध कर लिया। साथ ही शासन की सुव्यवस्था करके आमदनी बढ़ा ली।

किन्तु अंग्रेज़ कर्मचारियों की उच्छृंखलता बराबर जारी थी। सम्राट् ने कम्पनी को आयात-निर्यात सम्बन्धी महसूल की माफी कर दी थी किन्तु धीरे-धीरे सभी अंग्रेज व्यापारी इस माफी के नाम पर कम्पनी के 'दस्तकों' (छूट-सम्बन्धी आज्ञापत्रों) का उपयोग करने लगे और इस प्रकार देशी व्यापारियों की अपेक्षा सस्ती चीज़ें बेचने में सफल हुए। भारतीय व्यापार का नाश होने लगा। बहुत जगह लोगों को अपनी चीज़ें बेचने के लिए मजबूर किया जाता और इन्कार करने पर कोड़े लगाये जाते। दुनिया का क़ायदा है कि वह फायदे के लोभ से सहज ही अन्धी हो जाती है। उस समय के अंग्रेज़ सौदागर भी अपने स्वार्थ के लिए अन्धे हो गये थे। यह देश उनका नहीं है, अथवा इसपर उनका अधिकार नहीं है, इसे शक्ति और स्वार्थ के नशे में वे जान-बूझ भूल गये थे। वे इस देश में असहाय विदेशी व्यापारियों की तरह आये थे पर इस देश की असीम धन-राशि देखकर उनकी तृष्णा बढ़ती जाती थी और वे ... वाले हो उठे थे। उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित होकर त्राहि-त्राहि कर रही थी।

मीरक़ासिम का जीवन स्वराज्य की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील एक भारतीय शासक का जीवन था। प्रजा के दुःख उससे देखे न गये। उसने अंग्रेज़ों से बार-बार शिकायतें कीं पर कौन सुनता था? अन्त में निरुपाय होकर उसे अंग्रेजों को दबाने का उपाय करना पड़ा। अंग्रेज़ों को भी इन बातों का पता चल गया अतः वे भी मीरक़ासिम से सजग हो गये।

इस संघर्ष का इतिहास बड़ा लम्बा-चौड़ा है और उसे यहाँ दोहराने से किसी विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती। मीरकासिम ने अन्त में तंग आकर सारे व्यापार को कर-मुक्त कर दिया। इसके सिवा उसके पास दूसरा उपाय न था, पर इसे भी अंग्रेज़ न सहन न कर सके। वे चाहते थे कि हम तो महसूल न दें पर दूसरों से जरूर लिया जाय। प्रजाहितैषी मीरकासिम इसके लिए तैयार न हो सका। तब अंग्रेज़ों ने अपने पुराने अस्त्र का प्रयोग फिर शुरू किया। दरबारियों को फोड़ने और सरदारों को मिलाने लगे और अन्त में आन्तरिक कलह का आश्रय ले अपनी धोखेबाज़ी-कला के पारिश्रम के बल पर उन्होंने विद्रोह की तैयारी कर ली। देश की बदकिस्मती और अंग्रेज़ों के सौभाग्य से 'क्लाइव का गधा' अभागा मीरजाफ़र अभी तक जीवित था। उसे ही पण्डों ने खड़ा किया और जिसे वे एक बार ज़ालिम नालायक और काहिल कह चुके थे, उसे ही स्वार्थ-साधन के लिए फिर खड़ा किया गया।

अंग्रेजों की इस धोखेबाजी से क्षुब्ध होकर मीर
सिम ने जो व्यंगपूर्ण पत्र उन्हें लिखा था उसमें
के चरित्र का बड़ा अच्छा खाका है। उन्होंने
त्रा था—"आप सज्जन-गण अजीब मित्र निकले।
त्मा ईसा की शपथ लेकर आप लोगोंने हमसे सन्धि
और हमसे इसलिए एक प्रदेश लिया कि उससे
री मदद के लिए सदैव प्रस्तुत रहने वाली सेना
खी जायगी पर वस्तुतः आप लोगोंने हमारे विनाश-
न के लिए ही सेना रक्खी थी।"

इसके बाद का इतिहास मीर कासिम की दृढ़ता,
न, वीरता एवं देश-हितैषिता का इतिहास है।
अंग्रेजों का इतिहास छलप्रपंच, कूटनीति, जाल-
ती और शर्मनाक करतूतों का एक जखीरा है।
लड़ाइयाँ दोनों पक्षों में हुईं उनमें, कतिपय देश-
ी भारतीयों के विश्वासघात के कारण मीर कासिम
सफल हुआ और बार-बार के तूफानी संघर्षों के बाद,
त में फ़क़ीर हो गया। अंग्रेजी शासन की नीति और
रिट' जानने-समझने के लिए इस समयका इति-
त हमारे लिए बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि 'क्लाइव का
ा' के गद्दीसे उतारकर कलकत्ता पहुँचने के बादके
न-वर्षों का इतिहास अंग्रेजों की जैसी काली कर-
ों से भरा है उसकी तुलना नहीं की जा सकती।
नेया की किसी क़ौम का इतिहास इससे अधिक
च, कलुषित और शर्मनाक कार्रवाइयों से भरा
ा नहीं है। *

"१७७७ ई० को छठी जून को दिल्ली की सीमा
पर एक टूटी कुटी के आँगन में एक अज्ञात पुरुष
की मृत देह धूल में लोट रही थी। उसे दफनाने की
भी सामग्री न थी। कुटीमें एक जीर्णशाल पाकर
नागरिकों ने उसे ही बेच दफनाने की व्यवस्था की।
जिस समय वह मृत शरीर क़ब्र में रक्खा जाने लगा,
उसी समय न जाने किसने अकस्मात् चीखकर बता-
दिया कि यही बंगाल के अन्तिम स्वाधीन नरपति
मीरकासिम हैं। वह आर्तनाद भी तुरन्त आकाश में
विलीन हो गया।" ※

'क्लाइव के गधा' दुर्बल और अफीमची मीर-
जाफ़र ने विश्वासघात की जो नीति इख्तियार की थी
वह बराबर फूलती-फलती गई या यों कहिए कि
विदेशियों द्वारा बराबर सींची जाती रही। मीरजाफ़र
उसी नीति से पराजित हुआ और आगे चलकर डल-
हौजी ने भारतीय राजाओं की कमर इसी नीति की
सहायता से तोड़ दी। आश्चर्य और दुःख इतना ही
है कि सिराज का, अपना, तथा मीरकासिम का इसी
नीति से नाश होता हुआ देखकर भी वुद्ध मीरजाफ़र
उर्फ 'क्लाइव का गधा' मीरक़ासिम के बाद फिर
'अंग्रेजों का गधा' बनने के लिए तैयार हो गया!

---

* "× × The annals of no nation records conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful than that which characterised the English Government of Calcutta, during the three years which followed the removal of Mir Jafar."

—Col. Malleson.

※ श्री अक्षयकुमार मैत्रेय।

हमारी कैलास-यात्रा

[श्री दीनदयालु शास्त्री]

(१)

यात्रा की तैयारी

हिन्दू ईश्वर के तीन रूप मानते हैं। वह सृष्टि का कर्ता होने से ब्रह्मा, पालक होने से विष्णु और संहर्त्ता होने से रुद्र कहलाता है। ब्रह्मा की पूजा पुष्कर में होती है, विष्णु और शिव की पूजा के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में सैकड़ों मन्दिर हैं। तीनों देवों में शिव तपस्या की प्रतिमूर्ति है। शिव का वास पहाड़ों, जंगलों और दुर्गम स्थानों में समझा जाता है। ये स्थान ही तो तप के लिए उपयुक्त हैं। हिमालय के कठिन शिखर महादेव की तपस्या के लिए प्रसिद्ध हैं। काश्मीर में अमरनाथ, गढ़वाल में बदरी-केदार, नेपाल में पशुपति और सूदूर तिब्बत में कैलास आदि स्थान शिव के भक्तों के लिए तीर्थ-स्थान हैं। इन स्थानों में जाने से प्रकृति के सौन्दर्य और उसके कर्ता की विचित्र कृति का साक्षात् होता है।

मुझे पहाड़ों की यात्रा में बड़ा आनन्द मिलता है। प्रतिवर्ष जेठ लगते ही पहाड़ों की सैर की मुझे सूझने लगती है। इस सैर में जो आनन्द पैदल चलने में है वह दूसरी तरह नहीं मिलता। फिर पैदल सैर के लिए दो-एक साथी भी तो चाहिए। जंगल में, तलहटी में, सुरम्य नदी-तट पर अकेला आदमी कब तक दिल बहला सकता है? संयोग से मुझे एक मित्र भी ऐसे ही मिले हैं। आपका नाम है श्री यज्ञदत्त विद्यालंकार। यज्ञदत्तजी मुलतान में अध्यापक हैं। आपको पैदल घूमने का खूब शौक है। हम दोनों ने मिलकर पिछले कई वर्षों में काश्मीर से लेकर नैनीताल तक सभी पहाड़ देख डाले हैं।

इस बार मेरा विचार किसी पहाड़ पर जाने का न था पर इधर जेठ शुरू हुआ नहीं कि यज्ञदत्तजी का पत्र यात्रा के लिए मिला। गत वर्ष हम दोनों अमरनाथ गये थे, इस [illegible] कैलास जाने की ठानी। कैलास हिमालय के उस पार तिब्बत में है। मार्ग भयानक है तो क्या? शिव के दर्शन [illegible] मानसरोवर में स्नान कर पुण्य लाभ होगा, हंस मिलेंगे, तिब्बत जैसा देश देखने का न जाने फिर कब अवसर [illegible] होगा? इन विचारों ने थोड़ी-बहुत जो घबराहट [illegible] दूर कर दी। कैलास की भयंकर यात्रा के लिए हम [illegible] ने लाहौर से २३ जून को प्रस्थान कर दिया। साथ [illegible] यात्रा के लिए गरम कपड़े, दो-दो लोइयाँ, कुछ बरतन और एक तम्बू रख लिया। तिब्बत में मकान नहीं होते, न [illegible] आबादी ही है। लोग तम्बुओं में ही रहते हैं। इस यात्रा [illegible] हमें तम्बू ने बड़ा काम दिया।

मार्ग

कैलास का मुख्य मार्ग अलमोड़ा से है। बरेली से [illegible] गोदाम तक रेल जाती है। काठगोदाम से अलमोड़ा [illegible] मोटर का रास्ता है। रास्ते में नैनीताल और रामगढ़ [illegible] ३० जून को हम अलमोड़ा पहुँचे। हिमालय के इस [illegible] को कूर्माञ्चल कहते हैं। दो नदियों के बीच की एक [illegible] टेकरी पर देवदारु और चीड़ के पेड़ों के मध्य [illegible] बसा हुआ है। समुद्र तल से यह स्थान ५४५० फुट ऊँचा है। जलवायु अच्छा है। आसपास चीड़ की प्रधानता है। पहाड़ की चोटी पर होने से वर्षा का पानी झट बह [illegible] है। क्षय के रोगी वायु-परिवर्तन के लिए यहाँ बहुधा [illegible] करते हैं। हम लोग अलमोड़ा में श्री डाक्टर केदारनाथ [illegible] के यहाँ तीन दिन अतिथि रहे। डाक्टर साहब शान्त और मिलनसार हैं। यहाँ के सार्वजनिक जीवन में [illegible] भाग लेते रहते हैं। आप स्थानीय आर्यसमाज के प्राण और कुमाऊं अनाथालय के सर्वस्व हैं।

अलमोड़ा से कैलास को दो मार्ग जाते हैं। एक बागे-[illegible]र के रास्ते जोहार होकर तिब्बत में ग्यानिमा मण्डी पहुं-[illegible]ता है। यह रास्ता बड़ा विकट है। हिमालय के तीन [illegible]तुंग शिखरों को लाँघकर जाना होता है। तीर्थ की दृष्टि [illegible] यात्रा इसी मार्ग से करनी होती है। स्वामी सत्यदेव [illegible]सी राह कैलास गये थे। दूसरा मार्ग असकोट के रास्ते [illegible]ल्यांग होकर तकलाकोट को जाता है। यह रास्ता पहले [illegible]स्ते की अपेक्षा सुगम है। कैलास की परिक्रमा करने के [illegible]ाद यात्री प्रायः इसी मार्ग से लौटते हैं। अलमोड़ा के [illegible]ोगों ने हमें पहले मार्ग से जाने के लिए कहा था। किन्तु [illegible]मलोग तो केवल यात्रा के उद्देश्य से ही चले थे। तीर्थ-[illegible]ाली मनोभावना हममें न थी। अतः सुविधा के ख्याल [illegible] हमलोगों ने असकोट होकर ही कैलास जाने का निश्चय [illegible]केया। आगे जाकर हमें इसका बड़ा लाभ मिला।

यात्रा का प्रारम्भ

अलमोड़ा से तीन जुलाई बुधवार के दिन हम दोनों ने [illegible]आवश्यक सामान लेकर [illegible]लास के लिए प्रस्थान [illegible]र दिया। कुमाऊँ के [illegible]ली २० सेर बोझ [illegible]ुश्किल से उठा पाते [illegible] और दाम भी अधिक [illegible]ांगते हैं। अलमोड़ा [illegible]और नेपाल के बीच [illegible]काली नदी बहती है। [illegible]काली पार डोटी और [illegible]बजंग के लोग एक मन [illegible]से अधिक सामान भी [illegible]सुभीते से उठा लेते हैं। [illegible]हमने एक बजंगी को [illegible]सवा रुपये रोज़ पर ले लिया। यह आदमी बड़ा ईमानदार [illegible]था। सवा मन बोझ उठाकर चलना और फिर पड़ाव पर पहुँचकर हमारे भोजन का प्रबन्ध कर सकना इसी का साहस था। हम तो मंजिल पर थके-मांदे पहुँचा करते थे। [illegible]सिंह को हम तिब्बत तक साथ ले गये थे। जितने दिन वह हमारे साथ रहा, हमें बड़ा सुख मिला।

सरयू नदी का पुल

भारत की सीमा तक यत्र-तत्र पड़ाव बने हैं। दूकानों पर या ज़मीन्दारों के यहां आवश्यक सामग्री मिल जाती है। इसलिए मामूली रसद साथ ले जाने की ज़रूरत नहीं रहती। तिब्बत में भारत का सिक्का तो चलता है लेकिन नोट नहीं। अलमोड़ा से नोटों का भुगतान करके काफ़ी नक़दी साथ ले लेनी चाहिए। तिब्बती लोग अपने टंके की अपेक्षा भारतीय सिक्का लेना अधिक पसन्द करते हैं।

प्रातः उठते ही हम अलमोड़ा से चल दिये। रास्ता पूर्व की ओर जाता है। अलमोड़ा से कुछ दूर तक चीड़ के कुंज में से जाना होता है। यहां सैनिटोरियम बना है जहां तपेदिक के मरीज़ रहते हैं। आगे बाड़ेछिना तक न उतार न चढ़ाई, रास्ता सम है। बाड़ेछिना से धौलेछिना तक चढ़ाई है। मार्ग खूब हरा-भरा है। कहीं-कहीं तो देवदार, बांझ और बांस के पेड़ इतने घने हैं कि बिना बादलों के भी सूर्य देवता के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। इनकी शीतल सुरभित समीर का आनन्द अद्भुत ही होता है। अलमोड़ा से धौलेछिना १२ मील है। यह स्थान पहाड़ की चोटी पर है। अल-मोड़ा से अधिक ऊँचा है अतः ठण्डक भी काफ़ी पड़ती है। हम तीन तारीख़ को वहाँ ही रहे।
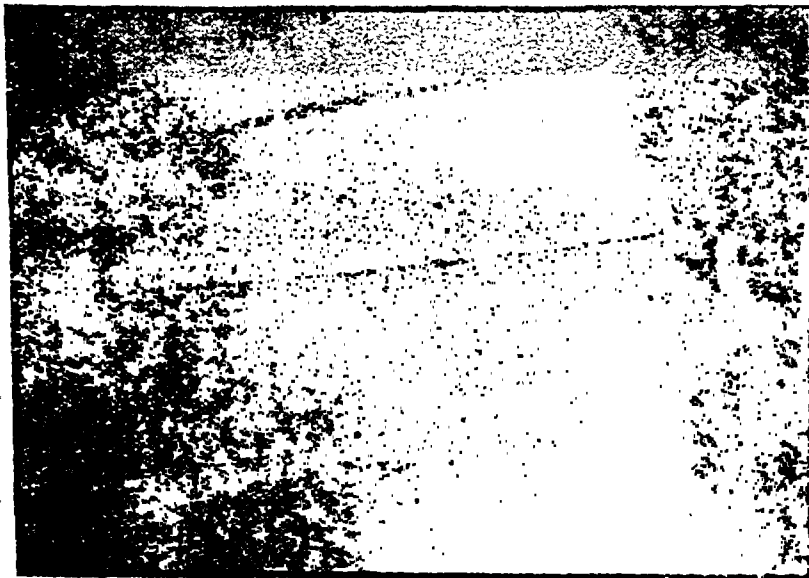
४ जुलाई के दिन हमने गणाई पहुँचने का निश्चय किया। यह स्थान धौलेछिना से १७ मील है। कनारेछिना से शेराघाट तक सरयू की सहायक धारा के साथ जाना होता है। शेराघाट में सरयू नदी पर झूले का पुल है। अयोध्या की विशाल सरयू यहाँ छोटे से पाट में बह रही है। पानी गरम और गदला है। शेराघाट तक उतार ही उतार है। शेराघाट बड़ा गरम स्थान है। आस-पास आम के पेड़ बहुतायत से लगे हैं। शेराघाट में दो पहर आराम किया। लोग हमारे पास आते और यह जानकर कि हम कैलास जा रहे हैं आश्चर्य प्रकट करते।

जून के अन्तिम सप्ताह में महात्मा गाँधी अलमोड़ा में थे। वह बागेश्वर भी गये थे। शेराघाट से बागेश्वर १३ ही मील है। इधर के सब लोग महात्माजी के दर्शनों को गये थे। पहाड़ के लोग स्वभावतः भक्त होते हैं। एक आदमी हमारे पास आया। हमें खादी पहने देखकर पूछने लगा—'क्यों जी! क्या आप बता सकते हैं, गान्धीजी इतना पैसा किसलिए जमा करते हैं?' मैंने कहा—"दरिद्रनारायण के लिए। सब रुपया खादी के प्रचार में खर्च होता है। चरखे गाँवों में बाँटे जाते हैं। सूत कातने के लिए रुई या ऊन दिया जाता है। सूत से कपड़ा बनता है। इस प्रकार वह रुपया जो विलायत चला जाता है, चरखे के होने से देश में ही रह जाता है।" उस ग्रामीण के मुख पर हर्ष की झलक दिखाई दी। वह ग़रीब था, किन्तु उसने भी महात्माजी की झोली में दो आने डाले थे। आज उस दान के महत्व को जानकर गद्गद् हो गया। बोला—"हमारा जिला-बोर्ड भी ऊन कातने के लिए चरखे व तकली बाँटता है। जिला-बोर्ड के स्कूलों में तकली चलाना सिखाया जाता है। अब हम ऊन स्वयं कातते हैं। तकली का अलमोड़ा में अच्छा प्रचार है।" यह सब बोर्ड के प्रधान श्री हरगोविन्द पन्त के श्रम का फल है।

शेराघाट से गणाई ६ मील है। कुछ दूर रास्ता सरयू के किनारे-किनारे जाता है। थोड़ा चढ़कर उतार है, फिर मैदान है। इधर जहाँ चढ़ाई न हो उसे मैदान कह देते हैं। हम देशवालों के लिए यह मैदान भी पहाड़ ही है। कई दफ़ा हमें खासी चढ़ाई पर चढ़ना पड़ता था और हम पसीने से भीग जाते थे, किन्तु वहाँ वालों के लिए वह मैदान की तरह आनन्द का स्थान होता था। सारा इलाक़ा गरम है। केला बहुत होता है। अंधेरा होते-होते गणाई पहुँच सके। आज की मंजिल अधिक लम्बी रही।

बेनीनाग का बाजार

बेनीनाग

हम ५ जुलाई को बेनीनाग पहुँचे। गणाई से

बेनीनाग के निकट चीड़ का जंगल

नाग १० मील है। रा... छोटी-छोटी पहाड़ियों ... बहती हुई जल धारा ... साथ-साथ जाता है। ... मील इधर से कठिन च... आ जाती है। पसीने ... सराबोर हो गये। ... पहुँचे। चीड़ का ... जंगल मिला। चीड़ के ... सचमुच निराली छटा ... हैं। छितरी पत्तियों से ... के समान मालूम पड़ते ... पवन ऐसा शीतल ... सुन्दर होता है कि बटोही श्रम को एकदम भूल जाता

ाय से यदि वहाँ कोई निर्झर हुआ तो फिर क्या कहना शैल का सब सौन्दर्य एकत्र हो जाता है। हिमालय के थान बड़े मनोहारी होते हैं। यहाँ प्रकृति के पर्य- का अवसर प्राप्त होता है। स्वास्थ्य-लाभ होता है। दृष्टि से मनुष्य को अधिक क्या चाहिए? भगवद्- के लिए भी इससे बढ़िया और स्थान कहाँ मिल है? पर्वत की उस चोटी पर बेनीनाग सचमुच ही स्थान था। चारों ओर जंगल है। बीच में बस्ती तीन दूकानें हैं, इलाके का मिडल स्कूल है, डाक- नी है, आसपास के वन को साफ करके चाय के लगाये गये हैं। यहाँ की चाय बहुत अच्छी समझी । हम सवेरे नौ बजे ही बेनीनाग पहुँच गये थे। ब दिल लगा। सब ओर आनन्द बरस रहा था। ा के बाद यहाँ आकर ही कूर्माञ्चल की शोभा का आ।

थल

नीनाग से थल तक रास्ता इसी तरह हराभरा चला । जगह-जगह मक्का के खेत हैं। बेनीनाग ऊँचे पर गढ़े में है। पानी कम होने से मक्का ही बोई जाती मगंगा नदी के किनारे थल छोटा-सा गाँव है। यह बेनीनाग से १० मील है। रामगंगा बड़ी नदी है सरयू की सहायकों में से है। यहाँ इसपर झूले का । सरदी के दिनों में भोटिये लोग यहाँ बहुत रहते हैं। ा जिले का उत्तरी भाग भोट कहलाता है। भोट के हनती होते हैं। तिब्बत के साथ भारत का जो व्या- ार है वह सब भोटियों द्वारा ही होता है। थल में ों की दो-तीन दूकानें हैं। हमने श्री हरिमल भोटिया ा आश्रय लिया। हरिमल बड़े सज्जन हैं। कई बार हो आये हैं। प्रति वर्ष व्यापार के लिए तिब्बत जाते स बार भाई के मर जाने से न जा सके। तिब्बत में ा मशहूर मंडी है। वहाँ आपके भाई रहते हैं। जी ने हमें एक चिट्ठी लिख दी थी। इस चिट्ठी से ा सुभीता रहा।

थल से अल्मोड़ा, जोहार, सौर और नेपाल चारों ओर मार्ग जाता है। रामगंगा नदी के किनारे वैशाख मास में बड़ा भारी मेला लगता है। दूर-दूर से व्यापारी अपना माल यहाँ लाते हैं। बड़ी चहल-पहल रहती है, हजारों का माल बिकता है। रामगंगा के शीतल जल में स्नान कर आनन्द-लाभ किया। एक ब्राह्मण देवता से भेंट हुई। वे यहाँ के शिवमन्दिर के पुजारी थे। बोले—"दान-दक्षिणा दीजिए। आप कैलास जाते हैं; पहले मार्ग में पुण्य-लाभ कर लीजिए। कैलास के पंडे हम ही हैं।" मैंने कहा—"यदि ऐसा है तो जान जोखिम में डालकर मेरे साथ कैलास चलिए; फिर दान-दक्षिणा के आप अधिकारी होंगे।" ब्राह्मण देवता तो चले गये परन्तु एक सोनार से बुरा पाला पड़ा। "इस छोटी उम्र में आप कैलास जाते हैं, इससे क्या लाभ है? जब आप अधिक पाप कर लें, बुढ़ापे में तीर्थ चले जाना, सब पापों से छुटकारा हो जायगा।" मैंने कहा—"सो कैसे?" बोले—"मैंने ऐसा ही किया था। अब मैं बड़ी शान्ति से अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ।" थोड़ी देर बाद इन सुवर्णकार ने एक ज़मींदार को जिस ढंग से अपने चंगुल में फँसाया उससे आपकी सब क़लई खुल गई।

असकोट की ओर

थल से असकोट १७ मील है। पहले दो मील कठिन चढ़ाई है। रास्ता खूब घूमकर ऊपर जाता है। थोड़ी दूर तक खेत हैं फिर जंगल आ जाता है। जंगल में देवदार या चीड़ नहीं है, बाँस की अधिकता है। पाँच मील चलने के बाद गिरिशिखर पर पहुँचे। यहाँ पहाड़ झुककर एक प्याला-सा बन गया है। चारों ओर कानन है; बीच में साता नाम का गाँव है। साता से डिण्डीहाट पाँच मील है। यह मार्ग अनुपम है। हरियाली से पहाड़ घिरा है। थोड़े-थोड़े अन्तर पर शीतल सुमधुर जल की धारायें बह रही हैं। आज चलने में आनन्द आया। प्रकृति में मस्त, मैं अकेला आगे बढ़ गया। जिधर देखता उधर कलकल करती नदियों और झूमते वृक्षों के दर्शन करता। शोभा इतनी आकर्षक कि हर समय देखने को जी बना रहता है; कभी तृप्ति नहीं होती। बीच बीच में निर्झरों से झरता हुआ जल हृदय को दिव्य बना देता था। एक जगह पहाड़ी में मोड़ था। मोड़ पार करते

ही जो देखा वह आज भी हृत्पट पर वैसा ही बना है। शिखर से कई सौ गज की ऊँचाई से सफेद मोतियों की लड़ी-सी गिर रही है। वह तरल मणिमाला अक्षुण्ण है, उस पर पड़ती हुई नव-सूर्य की किरणें उसके सौंदर्य को द्विगुण-कर देती है। कुछ देर पहले वह शुभ्रवर्ण थीं। अब उसमें मरीचिमाली प्रतिम्बित होकर उसे नाना वर्ण करने लगा। लोग आईने में अपनी प्रतिमूर्ति देखते हैं। वह दर्पण अद्वितीय था, जिसमें सूर्य भगवान दर्शन देने आये थे। मैं इस दृश्य को टकटकी लगाये बड़ी देर तक देखता रहा। १० बजे चलकर डिण्डिहाट पहुँचे।

डिण्डिहाट छोटा-सा गांव है। पास ही घास का मैदान है। हम यहाँ थोड़ा ही ठहरे। हिन्दू समाज अन्दर ही अन्दर कितना जर्जर हो गया है, इसका यहाँ अनुभव हुआ। एक मुसलमान ठठेरे की यहाँ दुकान है। दो वर्ष पूर्व वह अकेला यहाँ आया था। जब उसे रहते दो बरस बीत गये तो एक विधवा ब्राह्मणी उसके यहाँ आकर रहने लगी। ठठेरे ने उसे आराम से रक्खा। यह देखकर उसकी दूसरी बहन भी वहाँ चली आई। दोनों बहनें आज भी ठठेरे के यहाँ बड़े आनन्द से रहती हैं और अपने घर-वालों या हिन्दूधर्म को भरसक बुरे शब्दों से स्मरण करती हैं। पहाड़ में ऐसे किस्से कई जगह सुने गये। धीरे-धीरे मुसलमान बढ़ रहे हैं। रोज़गार की तलाश में वे देश से अकेले ही इधर चले आते हैं। और दो-एक वर्ष में घर बसा लेते हैं। इस्लाम में जीवन है; हिन्दूधर्म सिसक-सिसककर-

असकोट का बाजार

जी रहा है। इसके लिए इतना ही उदाहरण पर्याप्त है। समाज-सुधारकों के लिए कार्य करने का यहाँ अच्छा क्षेत्र है।

डिण्डिहाट से असकोट सात मील है। सारे रास्ते उतार है। आज दोपहर की धूप में चलकर बड़े परेशान हुए। तिसपर जल के अभाव ने हैरान कर दिया। दूर से पहले से एक ऊँची टेकड़ी पर बसा हुआ असकोट ब सुन्दर मालूम देता है। ७ जुलाई की संध्या को हम असकोट पहुँचे। अलमोड़े से असकोट ६९ मील है। असकोट के राजा का महल अच्छा बना हुआ है। किसी समय इनके पुरखा सारे कुमाऊँ में राज करते थे, अब तो केवल ज़मींदारी ही रह गई है। असकोट में ही कुँवर खड़गसिंह रहते हैं। भारत सरकार के राजनैतिक विभाग में आप डिप्टी ... रह चुके हैं। ... मिशनों में कई बार ... तोक (पश्चिमी ... की राजधानी) ... हैं। आजकल आप ... कार से पेन्सन पा ... कैलास या उस ... विषय में हर ... ज्ञातव्य बातों का ... पता लग सकता ... यात्रा के विषय में आपने कई निर्देश किये जिनसे हमें आगे जाकर बड़ा लाभ हुआ।

इस ओर असकोट बड़ी जगह है। यहाँ बड़ा ... है, छोटा-सा बाज़ार भी है। नीचा होने से गरमी ... है। हम यहाँ एक धर्मशाला में ठहरे। असकोट में ... यात्रा की पहली मंज़िल पूरी हुई। यहाँतक हम कुमाऊँ में थे। आगे भोट का इलाक़ा शुरू हो जाता है, जहाँ के ... सहन में यहाँ से बड़ी भिन्नता है।

मेवाड़ के उद्योग-धन्धे

[अध्यापक श्री शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम, 'विशारद']

मेवाड़, राजपूताना के दक्षिण-पश्चिम में गुजरात तथा मध्यभारत से मिला हुआ एक बड़ा राज्य है। जनसंख्या लगभग १४ लाख तथा क्षेत्रफल लगभग १३ सहस्र वर्गमील है किन्तु उत्तरीय भाग को छोड़कर समस्त दक्षिणी प्रान्त पर्वत-मालाओं से घिरा होने के कारण न तो घना बसा हुआ है और न इतना अधिक उपजाऊ ही है। भूमि यहाँ की उर्वरा है; वर्षा साधारणतया अच्छी हो जाती है। यहाँ के महाराणाओं ने सिंचाई के लिए बड़े-बड़े तालाब तथा झीलें बनवा दी हैं, जिनसे मेवाड़ में जल की कमी नहीं है।

मेवाड़ राज्य मुग़ल-सम्राटों के समय में लगातार अपनी स्वतंत्रता के लिए युद्ध करता रहा है। शताब्दियों तक जिस राज्य को युद्ध करने से ही अवकाश न मिला हो, वहाँ की कारीगरी तथा उद्योग-धन्धे यदि बहुत उन्नति न कर सके हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। औद्योगिक उन्नति तो उसी समय हो सकती है जब राज्य में शान्ति हो, प्रजा समृद्धिशाली तथा धनवान हो, राज्य कारीगरों को सहायता देकर उत्साहित करता रहे तथा व्यापार की उन्नति करने के साधन उपस्थित हों; परन्तु मेवाड़ के राणाओं को कभी इस ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला। स्वदेशाभिमान के भावों को पोषित करने वाला यह राज्य मुग़ल-साम्राज्य के विरुद्ध रण-भूमि में अटल रहकर अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रहा। फल-स्वरूप मेवाड़ विशेष औद्योगिक उन्नति न कर सका, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि न समझना चाहिए कि इस देश में उद्योग-धन्धों का सर्वथा अभाव रहा। यदि हम राजनैतिक परिस्थिति को ध्यान में रक्खें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि जो कुछ भी उद्योग-धन्धे मेवाड़ में चलते रहे उनमें संतोष-जनक उन्नति हुई थी और राज्य ने भी इधर यथा-शक्ति ध्यान दिया था। किन्तु आधुनिक काल में, जब कि मेवाड़ को अपनी शक्तियाँ रणभूमि में व्यय करने का अवसर ही नहीं मिलता और जब कि राज्य में व्यापारिक उन्नति तथा उसके साधन उपलब्ध हो सकते हैं, मेवाड़ की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। आर्थिक दीनता का समाज पर कितना भयंकर प्रभाव पड़ता है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। आज राजपूताना के अन्दर जो बहुत-सी बुराइयाँ हमें दिखाई पड़ती हैं उनके मूल में दरिद्रता का मुख्य स्थान है। मेवाड़ भी उन सब बुराइयों का घर बन रहा है। राज्य आर्थिक उन्नति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं समझता। वह तो मदिरा पिला-पिलाकर दरिद्र जनता को और भी अकर्मण्य बनाने में व्यस्त है। यह कहा जा सकता है कि यदि राज्य शराब का व्यापार बन्द कर दे तो आय भी तो कम हो जायगी। प्रथम तो यह प्रश्न ही बहुत महत्व नहीं रखता क्योंकि राज्य का कल्याण प्रजा को निकम्मा बनाने में नहीं है फिर वैसा करने से चाहे कितनी ही आय क्यों न होती हो। यदि राज्य में उद्योग-धन्धों की उन्नति होगी तो आय की भी वृद्धि ही होगी। मैंने तो मेवाड़ में रहकर अनुभव किया है कि यह प्रांत प्राकृतिक वैभव से पूर्ण है, परन्तु अभी उस देन का

उपयोग मेवाड़ की प्रजा ने नहीं किया। भूगर्भ तत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि मेवाड़ में खनिज पदार्थ बहुतायत से हैं। अभ्रक, खड़िया, सीमेण्ट की खानें तो हैं ही, चांदी, लोहा और तांबे का भी पता लगता है। क्या ही अच्छा हो कि मेवाड़ राज्य इस ओर ध्यान दे। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि जब तक स्वयं राज्य अथवा मेवाड़ी पूंजीपति ही यह कार्य हाथ में लेने को तत्पर न हों तब तक खानों को यों ही पड़ा रहने देना ही अच्छा है। खानों के अतिरिक्त कच्चे माल की उपज भी काफ़ी होती है। अनाज को यदि छोड़ भी दें (क्योंकि अनाज अधिकतर राज्य बाहर नहीं जाने देता ❀) तो कपास को मेवाड़ का मुख्य कच्चा माल कहा जा सकता है। मेवाड़ तो कपास का घर है। यहाँ की पृथ्वी और जलवायु अनुकूल होने से कपास यहाँ खूब उत्पन्न होती है परन्तु यह बहुत मामूली दर्जे की होती है। श्री ट्रेंच ने अमरीकन कपास तथा कम्बोडिया की कपास को उदयपुर के समीप ही बुवाया था और फसल उत्तम हुई थी। यदि कम्बोडिया की कपास अथवा और किसी जाति की कपास के बीज का प्रयोग किया जाय तो उत्तम कपास भी उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु मेवाड़ के अन्दर कपड़ा बुनने का धन्धा लगभग नष्ट हो चुका है; मिलों की प्रतिद्वन्द्विता तथा विदेशी माल की खपत के कारण अब यहाँ विदेशी वस्त्र का साम्राज्य है। मेवाड़ में कपड़ा बनाने की कला विद्यमान थी इसके तो चिन्ह बहुत मिलते हैं। ग्रामीण जनता के शरीर पर अब भी मेवाड़ का बना हुआ रेजा दिखाई देता है, परन्तु अब लोग मिलों के कपड़ों का उपयोग करने लग गये हैं। राजनगर, भीलवाड़ा इत्यादि जिलों में अब भी कपड़ा बुनने का काम होता है परन्तु सूत मिलों का ही लगाया जाता है। हाँ, बिजोलिया के अन्दर भाई जेठालालजी ने निर्धन किसानों को कातना और बुनना सिखाकर उनको एक उत्तम धन्धा दिया है और आर्थिक मुक्ति प्रदान कर दी है। ७६०० कृषक अपने वर्ष भर के लिए कपड़ा स्वयं बना लेते हैं। जिससे लगभग एक लाख रुपये का वार्षिक कपड़ा, जो बाहर से आता था, अब वहीं बनने लगा है। क्या राज्य इस ओर ध्यान देगा? मेवाड़ में यदि सूती कपड़ा बनाने का प्रयत्न किया जाय तो यह प्रान्त अन्य प्रान्तों को कपड़ा भेज सकता है। राज्य की ओर से कुछ जिनिंग फैक्टरियाँ खुली हुई हैं और १० इस वर्ष खोली जायँगी। अधिकतर लोढ़ी हुई रुई ब्यावर तथा बम्बई भेजी जाती है। यदि राज्य कच्ची रुई को पक्के माल में परिणत करने का प्रयत्न करे तो अवश्य ही सफलता प्राप्त हो सकती है।

यहाँ का दूसरा धन्धा रंगसाजी है। चित्तौ[ड़] और उदयपुर इसके केन्द्र हैं। जब कि विदेशी रं[गों] ने भारत में अपना अधिकार नहीं जमाया था, उ[स] समय मेवाड़ में नील तथा कुसुम्बी की पैदावार हो[ती] थी और उसका उपयोग रँगाई के कामों में हो[ता] था। किन्तु अब तो विदेशी रंगों के बिना काम नहीं चलता। यहाँ रँगाई का काम प्रसिद्ध है। पग[ड़ियाँ,] साफे, साड़ियाँ बड़ी सुन्दर बनती हैं। यहाँ [के] कपड़े की सुनहली-रुपहली छपाई का धन्धा तो [अब] भी अच्छी दशा में चल रहा है। जिन्होंने मेवा[ड़] की साड़ियाँ तथा स्त्रियों के अन्य वस्त्रों पर यह का[म] देखा है वे उसकी सुन्दरता समझते हैं। भारतवर्ष [के] अन्य प्रान्तों में भी इसकी खपत है।

❀मेवाड़ जैसे कृषक तथा निर्धन देश के लिए यह आवश्यक है कि अनाज बाहर न जाने दिया जाय। यदि किसी वर्ष पैदावार बहुत अच्छी हो और भाव बहुत सस्ता हो गया हो तो राज्य स्वयं निश्चित राशि में बाहर भेजे किन्तु राज्य की आवश्यकताओं का ध्यान रक्खा जाय।

लकड़ी के खिलौने

उदयपुर में लकड़ी के खिलौने बहुत अच्छे और
बनते हैं किन्तु खरादी लोग स्वतन्त्र कारीगर
हैं। बोहरों के चंगुल में वे बहुत दिनों से फँसे
हैं। सौदागर उनको पेशगी रुपया देकर अपने
माल बनवाते हैं और कारीगरों को थोड़ा मूल्य
र स्वयं लाभ उठाते हैं। इस धन्धे के मन्द होने
दूसरा कारण है विदेशी खिलौनों की प्रतिद्वन्द्विता।
राज्य यहाँ के खिलौनों को बाहरी प्रदर्शनियों
भेजता रहे तथा मेवाड़ में प्रदर्शनी का आयोजन
जाय तो लाखों रुपयों का व्यापार हो सकता
लकड़ी की लौंग, इलायची, बादाम, दाख तो
सुन्दर बनते हैं कि मनुष्य को धोका हो सकता
परन्तु उदयपुर के बाहर इस कारीगरी को कोई
जानता।

चित्रकला तथा मीनाकारी के बटन

मेवाड़ में नाथद्वारा, चित्रकला तथा मीनाकारी
र प्रसिद्ध है। यहाँ के चित्र अत्यन्त सुन्दर होते
परन्तु यदि प्रयत्न किया जाय तो मीनाकारी के
का धन्धा तो समस्त भारतवर्ष में फैल सकता
इतने सुन्दर बटन बाजारों में दिखाई ही नहीं
परन्तु न तो इनके विषय में कोई जानता है और
अधिक यह बनते ही हैं। केवल तीर्थ-यात्रियों की
इस धन्धे को जीवित रक्खे हुए है।

कुछ और बातें

मेवाड़ के अन्तर्गत भीलवाड़ा में क़लई के बर्तनों
काम, चित्तौड़ और घोसुंडा में कागज़ तथा समस्त
प्रान्त में कपड़ा धोने का साबुन बनाया जाता
इनमें यदि प्रयत्न किया जाय तो क़लई के बर्तनों
साबुन की खपत बाहर भी हो सकती है।

मेवाड़ में गन्ना बहुत अच्छा पैदा होता है और
४० वर्ष पूर्व तो यहाँ गन्ना बहुतायत से पैदा किया
जाता था, किन्तु एक प्रकार का घुन लग जाने से
गन्ने की पैदावार कम हो गई और अब मेवाड़ गुड़
तथा शक्कर बाहर से मंगाता है। राज्य थोड़ा ध्यान
दे तो मेवाड़ में गन्ने की पैदावार फिर से बढ़ाई जा
सकती है।

मेवाड़ का जलवायु तथा प्रदेश भेड़ों के लिए
स्वास्थ्यकर है और यहाँ भेड़ें पाई भी जाती हैं परन्तु
अच्छी जाति की भेड़ें बहुत-कम हैं। यदि मैरिनो
अथवा और किसी उत्तम देशी जाति के संसर्ग से
अच्छी भेड़ें पैदा की जायँ तो ऊन बहुतायत से पैदा
किया जा सकता है। वर्तमान स्थिति में भी मेवाड़
कुछ-न-कुछ ऊन बाहर भेजता है।

इस संक्षिप्त विवरण से यह तो ज्ञात हो गया होगा
कि यह देश प्राकृतिक देन से परिपूर्ण है परन्तु अकर्म-
ण्यता ने इन सारी सुविधाओं को व्यर्थ बना दिया है।
यदि राज्य इस प्रान्त की औद्योगिक उन्नति
करने का प्रयत्न करे तो २५ वर्ष के अन्दर यह देश भारत
का एक मुख्य औद्योगिक प्रदेश हो सकता है। सब से बड़ी
आवश्यकता तो मेवाड़ में एक औद्योगिक स्कूल की
है। परन्तु ध्यान रहे कि स्कूल में वही उद्योग-धन्धे
सिखाये जाने चाहिएँ जो देश में प्रचलित हैं अथवा
जिनके लिए राज्य में पर्याप्त सामग्री सुलभ है।
अधिकतर उन्हीं जाति के बालकों को ये धन्धे सिखाये
जायँ जिनमें उनका परम्परागत प्रचार है। इसकी
जरूरत नहीं है कि उस धन्धे के विषय में उन्हें बहुत
अधिक अध्ययन कराया जाय; आवश्यकता तो इस
बात की है कि उनको हाथ से काम करना सिखाया
जाय। उनसे ऐसे यन्त्रों का उपयोग भी न कराया
जाय जिनका उपयोग करना स्वतन्त्र कारीगर के लिए
असम्भव हो। इस बात का ध्यान न रखने से
अनेक औद्योगिक संस्थायें अनुपयोगी सिद्ध हुई हैं।

मेवाड़ राज्य में अभी तक कोई औद्योगिक विभाग भी नहीं है जो प्रत्येक प्रगतिशील राज्य का एक आवश्यक अंग होता है। इस विभाग का कर्तव्य होना चाहिए कि वह देशी घरेलू उद्योग-धन्धों को उन्नत करने का प्रयत्न करे तथा विदेशों और भारत के अन्य प्रान्तों में मेवाड़ के माल की माँग बढ़ावे। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए औद्योगिक विभाग को यहाँ के बने हुए माल को भारतीय तथा विदेशों की प्रदर्शनियों में भिजवाने का प्रबन्ध भी करना होगा तथा मेवाड़ में औद्योगिक प्रदर्शनियों का आयोजन करना होगा जिससे यहाँ के कारीगर लाभ उठा सकें तथा मेवाड़ की जनता अपने राज्य के उद्योग-धन्धों की जानकारी प्राप्त करे। मेवाड़ के अन्तर्गत चित्तौड़ नाथद्वारा, ऋषभदेव, उदयपुर में राज्य की ओर से भाण्डार खोले जायँ, जहाँ मेवाड़ की बनी वस्तुयें रक्खी जायँ। जब मेवाड़ में उद्योग-धन्धों की उन्नति होने लगे और बाहर भी यहाँ के बने हुए माल की खपत हो तो राज्य भारतीय व्यापारिक केन्द्रों में भी ऐसे ही भाण्डार खोल सकता है।

अन्त में मैं मेवाड़ राज्य के अधिकारियों का ध्यान दो बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। एक तो यह कि व्यापार के लिए मार्गों की सुविधा बढ़ाने की अत्यन्त आवश्यकता है। दूसरे यहाँ की झीलों तथा नदियों के जल का उपयोग होना चाहिए। यह तो सर्वमान्य बात है कि जबतक देश में यातायात की सुविधा न होगी तबतक व्यापार की वृद्धि नहीं हो सकती। अभीतक मेवाड़ राज्य ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। हर्ष का विषय है कि वर्तमान महाराणा साहब ने रेलवे-लाईन का राज्य में विस्तार करना आरम्भ किया है। नाथद्वारा-रोड से काकरौली तक, जो नई रेलवे-लाइन बन रही उससे काकरौली के व्यापार की उन्नति होगी। पर केवल रेलों से काम नहीं चल सकता। मेवाड़ में सड़ का विस्तार करना आवश्यक है। जो स्थान रेल-पथ नहीं हैं उनको रेलों के केन्द्रों से मिलाना होगा। दू बात की ओर भी, जो मेवाड़ के लिए अत्यन्त म त्व-पूर्ण हो सकती है, अभी तक राज्य का ध्या नहीं गया है। मेवाड़ में भैंसरोड़गढ़ के समीप का बड़ा जल-प्रपात है। यदि उसके द्वारा तथा समुद्र और राजसमुद्र के जल को प्रपात रूप में कर विजली उत्पन्न की जा सके तो कपड़े के घर मेवाड़ में सरलता से चलाये जा सकते हैं अन्य उपयोगी कार्य भी हो सकते हैं। इस विष किसी कुशल इंजीनियर को बुलाकर राज्य को विषय की जाँच करानी चाहिए। यदि राज शक्तियाँ इस ओर लगाई जायँ तो आश्चर्य नहीं यह प्रदेश, जो इस समय निर्धनता के जाल में हुआ है, बहुत शीघ्र समृद्धिशाली तथा उन्नत गोचर होने लगे। प्रकृति ने आवश्यक वस्तुयें दी हैं। मेवाड़ की जनता स्वस्थ, परिश्रमी तथा है। फिर क्यों न देश औद्योगिक उन्नति करे? तक हम लोग उदासीन रहे हैं। यही कारण है मेवाड़ की आर्थिक दशा इतनी अच्छी नहीं परन्तु अब भी यदि प्रयत्न किया जाय तो देश वान हो सकता है। राज्य को पहले कुछ व्यय पड़ेगा। परन्तु भविष्य में, जब जनता समृद्धिशा होगी, तो राज्य की आय भी अनायास ही जायगी। क्या राज्य के कर्मचारीगण तथा जनिक कार्यकर्ता इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर करने का कष्ट उठावेंगे?

इंग्लैण्ड का मज़दूर-दल

[श्री दुर्गादत्तराय बी० ए०]

किसी भी देश के राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में, किसी एक समय, केवल [illegible]ी विचार का प्राधान्य नहीं होता। यह सही है कि [illegible]क विचार-धारा औरों की अपेक्षा अधिक प्रभावशा-[illegible]ो ी है। अनेक धारायें दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु ऐसा [illegible]ता है कि बहुत-सी और विचार-धारायें भीतर ही [illegible]गुप्त चश्मे की तरह, छिपी हों। समय पाकर वे बाहर फूट [illegible]। गंगा-यमुना हमारी दृष्टि के सम्मुख बहती हैं तो [illegible]ी भी अदृष्ट रूप से उन्हीं की संगिनी है। इसीलिए [illegible]क नहीं कहा जा सकता कि किसी संस्था का जन्म [illegible]आ। विचार परिपक्व होकर—ज़ोर पकड़ने पर—वह [illegible]का रूप धारण करता है।

[illegible]ों तो इंग्लैंड के मज़दूर-दल का जन्म-काल सन् [illegible] ई० कहा जाता है, तथापि इसका अर्थ यह नहीं है [illegible]के पहले पार्लमेंट में मज़दूर सदस्य थे ही नहीं। [illegible] मे इस दल का जन्म १८८४ ई० में ही हुआ सम-[illegible]झिए जब पार्लमेंट के तीसरे सुधार के समय मज़दूरों [illegible]धिकार प्राप्त हुआ था। किन्तु १९०० ई० के पूर्व मज़-[illegible]दस्य असंगठित तथा संख्या में नगण्य थे। इंग्लैंड के [illegible] स्थानीय मज़दूरों वा मज़दूर-संघों में, इस विषय [illegible]क्य न था। सन् १८६८ से जब कि मज़दूर-संघों [illegible]de-Unions) का जन्म हुआ था सन् १९०० ई० [illegible] अपनी-अपनी डफली अलग बजाते रहे। कालान्तर [illegible] जाग्रति हुई और उसके फल-स्वरूप सन् १९०० में [illegible]दूर-संघों का 'फेडरेशन' क़ायम हुआ जिसको आज [illegible]ज़दूर-दल के रूप में देखते हैं। इसका नाम पहले [illegible]प्रतिनिधि-सभा' रक्खा गया था, किन्तु बाद में [illegible]र मज़दूर-दल कर दिया गया।

[illegible]सन् १९०० से १९१८ तक इस दल ने विशेष उन्नति [illegible]की। उस समय पार्लमेण्ट में इसका सुसंगठित रूप नहीं था। इसके सदस्यों में न पटने के कारण तो इसका आन्तरिक संगठन दुर्बल था और स्थानीय मज़दूर-संघ केन्द्रीय सभा के सम्बन्ध में अधिक स्वतंत्रता दिखलाते थे इसलिए जनता में भी इसका प्रभाव नहीं था। किन्तु फिर भी वे नगण्य नहीं कहे जा सकते थे। उस समय की राज-नीति पर मज़दूर सदस्यों का प्रभाव उनकी संख्या के अनु-पात में बहुत अधिक पड़ा था। सन् १९१० ई० के पश्चात् उदारदल (Liberal Party) को मज़दूर सदस्यों तथा नेशनलिस्टों की सहायता की आवश्यकता बनी रही। इस कारण उदारदल तथा मज़दूर-दल का सम्बन्ध बढ़ता गया। मज़दूर सदस्यों ने उदार-दल की नीति पर पर्याप्त प्रभाव डाला। मज़दूर-दल का प्रभाव 'वृद्धावस्था की पेन्शन-योजना' (१९११) तथा 'न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून' (१९१२) में, जो उदार दल के शासन-काल में पास हुए, स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। उस समय उदारचित्त उदार-दल के सदस्यों तथा मज़दूर सदस्यों में मतैक्य-सा स्थापित हो गया था।

गत योरोपीय युद्ध के प्रारम्भ के साथ ही इंग्लैंड के राजनैतिक दलों के भाग्य में परिवर्तन हुआ। दलबन्दी का भाव बन्द कर दिया गया। सर्वदल-मंत्रिमण्डल शासन-पोत का मांझी बना। उसमें एक कर्णधार मज़दूर-दल को भी मिला। किन्तु युद्ध-सागर के किनारे आते-आते महामंत्री लायड जार्ज ने अन्य दल के मंत्रियों को बदलकर अपने आदमियों को भर्ती कर लिया। युद्धकाल में इंग्लैंड में कोई चुनाव नहीं हुआ। मज़दूर-दल तथा उदार-दल में संतोष का अभाव था। अनुदार-दल ने बड़ा परिश्रम किया किन्तु फिर भी १९१८ के चुनाव में लायड जार्ज की ही विजय रही।

१९१८ में मज़दूर-दल में एक बात उल्लेखनीय हुई। इसका विधान विस्तृत किया गया ताकि इसमें वे व्यक्ति

भी सम्मिलित हो सकें जो किसी मजदूर-संघ या समाजवादी संस्था के सदस्य नहीं हैं। इसका फल बहुत अच्छा हुआ। इस दल के सदस्यों की वृद्धि के साथ-साथ इसके प्रति लोगों में सहानुभूति बढ़ी तथा इसके सिद्धान्त और तरीक़े अधिक उदार हो सके। यह व्यवसायियों, शिक्षकों और यहाँ तक कि लार्डों तक का स्वागत कर सका। आज इसके सिद्धान्तों को मानने वाले कितने ही व्यक्ति 'सर' तथा 'लार्ड' हैं।

युद्ध के पश्चात् मजदूर-दल ने चुनाव में विशेष तत्परता दिखलाई, अपने संगठन को सुदृढ़ किया, तथापि इसको पार्लमेंट के सदस्यों की संख्या बढ़ाने में विशेष सफलता नहीं मिली। १९२२ ई० में जब अनुदारदल बोनरला की अधीनता में शासन कर रहा था तब मजदूर-दल ही उसका विरोध ज़ोर-शोर से कर रहा था। उस समय उदार-दल बहुत पीछे पड़ गया था।

सन १९२३ में बाल्डविन के मंत्रि मण्डल को 'स्वतंत्र-व्यापार' की नीति का विरोध करने पर पद-त्याग करना पड़ा था, यद्यपि उस समय भी बहुमत अनुदार-दल का ही था। इनके पद-त्याग में रैम्सेमैकडानल्ड का विशेष हाथ था। उनके दल के ही विरोध का यह फल था इसलिए उन्हें ही मंत्रिमण्डल कायम करना पड़ा। शासन की बाग-डोर उन्हें संभालनी पड़ी और उन्होंने उदारदल के सहयोग से मंत्रि-मण्डल कायम किया।

उस समय मजदूर-सरकार कठिनाइयों से घिरी थी। उस समय इसके अपने सदस्य अनुदार दल से बहुत कम थे। इसके अतिरिक्त इसके सदस्यों में मनमुटाव का अभाव न था। पद तो मजदूर-दल को मिल गया किन्तु उसके अधिकार न मिले। शासनसूत्र का संचालन अभी उदार-दल के ही हाथ में था। अनुदार दल ने मजदूरदल के प्रति अपनी असहानुभूति तथा प्रतिस्पर्धा को प्रकट करने में तनिक भी संकोच न किया। मजदूर दल के प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध अनुदारदल के द्वारा ज़ोरों से होता रहा। मज़दूर-दल, अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करना तो दूर, अपनी प्रतिज्ञाओं को भी पूर्ण न कर सका। मंत्रियों के निर्वाचन में भी मैकडानल्ड ने साहस की अपेक्षा राजनैतिक चालों को ही उच्च स्थान देना उचित समझा। इस लिए उनके मन्त्रि-मण्डल में भी किसी प्रकार का सा[illegible] न था। इसी समय मज़दूर-सरकार ने रूस के [illegible] व्यापारिक संधि करने की ठानी। मजदूर-दल इंग्लैंड के [illegible] बाज़ार को फिर से प्राप्त करना चाहता था। उस संधि [illegible] अनुसार रूस इंग्लैंड के बाजार में क़र्ज़ ले सकता था। इंग्लैंड के पूँजीपति ज़ार के समय के कर्जे के धक्के को भूल [illegible] सके थे, क्योंकि उसको अभी बहुत समय नहीं बीता [illegible] मजदूरदल सफल नहीं हो सका और उसे शासन से [illegible] होना पड़ा। १९२४ के चुनाव में इसके सदस्यों की [illegible] १५१ रह गई जो १९२३ में १९१ थी। यहाँ पर [illegible] लिख देना उचित जान पड़ता है कि इंग्लैंड के शास[illegible] पर समाजवादियों का अधिकार होने पर भी इसकी [illegible] में कुछ हेर-फेर न हो सका।

इस हार के बाद मजदूर दल के सदस्यों में एकता [illegible] से अधिक हो गई। इस बार १९२९ के चुनाव में [illegible] दल पार्लमेण्ट का सर्व-प्रथम दल है। आज मज़[illegible] के सदस्य २८९, अनुदार दल के २६० तथा उदार[illegible] ५९ हैं। आजकल मजदूर दल का ही मंत्रि-मण्डल [illegible] तथापि उपर्युक्त संख्यायें बतलाती हैं कि कोई एक [illegible] स्पष्टतया बहुमत का अधिकारी नहीं है। आज भी [illegible] दल को उदारदल की सहायता की आवश्यकता है। [illegible] दल के नेता लायडजार्ज ने कहा था कि चुनाव में [illegible] कोई दल हो, शासन-पोत का पतवार हमारे ही [illegible] अधिकार में होगा।

मज़दूर-दल के इस संक्षिप्त इतिहास में उसके [illegible] के चरित्र को स्थान नहीं मिल सकता, तथापि एक [illegible] नाम लेना आवश्यक जान पड़ता है। इस समय रैम्से [illegible] डानल्ड का नाम संसार के समाचार-पत्रों पर मोटे-मोटे [illegible] में अंकित रहता है। मैकडानल्ड का जन्म एक [illegible] स्काच-कुल में हुआ था। अपने परिश्रम से वह [illegible] कार के दो बार प्रधान मंत्री बने। वह १९२२ में [illegible] सदस्य चुने गये थे और १९२४ के चुनाव में [illegible] रहे। मैकडानल्ड बड़े उदारहृदय व्यक्ति हैं। इस [illegible] लेखक सिडनी वेब तथा उनकी पत्नी बीट्रिस वेब [illegible]

सिद्ध हैं। इस दल में बहुत-से भारत के शुभचिन्तक हैं जैसे कर्नल वेजउड, वेलाक आदि।

भारत में बहुत-से लोग यह कहते सुने जाते हैं कि 'मजदूर दल और दलों से भिन्न नहीं है'। परन्तु इस कथन में विशेष तथ्य नहीं है। पदारूढ़ होकर दूसरे दलों की अपेक्षा भारत के लिए यह अधिक कार्य करने में समर्थ न हो सके तो इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि दूसरे दलों से इसमें कोई विशेषता नहीं है। अपनी मनोवृत्ति, कार्य-प्रणाली तथा अपने आधार-भूत सिद्धान्तों में भी यह और दलों से बहुत भिन्न है। मजदूरदल समाजवादी है। इसकी नीति यह है कि उद्योग-धन्धों में परिवर्तन किया जाय। यह समाजवाद के अन्तर्गत समष्टिवाद स्कूल का अनुयायी है। इसका लक्ष्य है पैदावार के ज़रिये बढ़ाना तथा उद्योग-धन्धों पर समाज का नियंत्रण स्थापित करना। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर यह और दलों से आगे है। इंग्लैंड द्वारा शासित जातियों को स्वशासन देने का यह पक्षपाती है। मजदूरों की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाने का समर्थक है।

यहां पर इन उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार किया जायगा। यह दल और दलों की तरह पूंजीवाद में केवल सुधार ही नहीं चाहता बल्कि उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है। राष्ट्रीय सम्पत्ति के उचित वितरण के विषय में इसका विचार ही नहीं बल्कि प्रयत्न भी है कि भूमि, रेलवे, खानों तथा कल-कारखानों पर राष्ट्र का अधिकार हो। नगरों में सार्वजनिक लाभ की चीजें, जैसे बिजली, ट्रामगाड़ी आदि पर स्थानीय म्युनिसिपैलिटी का अधिकार हो। हां, समय के विषय में यह शीघ्रता नहीं करना चाहता। इस दल का कथन है कि ये सब काम एक दम नहीं हो सकते, धीरे-धीरे होंगे। इसके लिए क्रान्ति की आवश्यकता नहीं है। जिन पूंजीपतियों से उनके कल-कारखाने ले लिये जायँगे, उन्हें सरकार उचित दाम देगी।

सार्वजनिक आर्थिक नीति में भी मजदूर दल और दलों से विभिन्नता रखता है। इसकी नीति है 'पूंजी-कर' लगाने की, अर्थात् व्यक्तियों की आय पर न लगा-कर उनके संचित धन पर भी कर लगाया जाना चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति की मर्यादा और शक्ति के अनुसार हो। इस उपाय से इंग्लैंड अपने युद्ध-ऋण से शीघ्र ही मुक्त हो जायगा और उसकी उत्पादन-शक्ति भी बढ़ जायगी। इस विचार का प्रभाव फ्रांस पर पहले ही पड़ चुका है। किन्तु मजदूर दल, विरोधों की गुरुता के कारण, निर्वाचन के अवसर पर इस विचार को स्पष्ट न कर सका था।

विदेशी नीति में मज़दूर दल रूस के साथ व्यापारिक संधि कर चुका है, यद्यपि इसी प्रश्न पर १९२४ में इसकी हार हुई थी। मजदूर सरकार ने मिश्र और ईराक के साथ सद्व्यवहारपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके जो बुद्धिमानी दिखलाई है उसके लिए वह बधाई का पात्र है। इंग्लैंड और अमेरिका के पारस्परिक विरोध का प्रवाह भी इसकी बुद्धिमतापूर्ण नीति के कारण कुछ समय के लिए रुक गया है। मजदूर दल बनिस्बत और दलों के राष्ट्र-संघ का अधिक समर्थक है।

इस दल का राजनैतिक कार्य-क्रम, युद्ध के पूर्व प्रकाशित श्री रैम्से मैकडानल्ड की 'समाजवाद और सरकार' नामक पुस्तक द्वारा जाना जा सकता है। इसमें उन्होंने इंग्लैंड के शासन-क्रम में सुधार लाने के प्रश्न पर विचार किया है। सरदार-सभा का अन्त तथा साधारण-सभा की वर्तमान संख्या को आधा करने का प्रस्ताव भी उसमें था। मगर पीछे श्री मैकडानल्ड ने इन विचारों को बदल दिया, जैसा कि उनकी 'मंजूर दल के लिए नीति', (१९२०) (A policy for the Labour Party) नामक पुस्तिका से पता चलता है। थोड़े दिन पहले पार्लमेण्ट की साधारण सभा में मंत्रि-मण्डल के सुधार के विषय में उन्होंने कहा था कि यह प्रश्न बड़ा ही नाज़ुक है और इस समय इस पर विचार नहीं किया जा सकता।

युद्ध के बाद सिडनी तथा बीट्रिस वेब की पुस्तक 'इंग्लैंड की सामाजिक सरकार का विधान' प्रकाशित हुई। इसके प्रस्ताव अत्यन्त परिवर्तनवादी हैं। ये बादशाही संस्था को रखना, लार्डसभा का अन्त तथा एक सामाजिक पार्लमेंट का प्रादुर्भाव चाहते हैं। मंत्रि-मण्डल के सदस्यों की संख्या इसमें ५, ६ बताई गई है। मजदूर-दल ने वेब के प्रस्तावों

पर ध्यान नहीं दिया है न उनके स्वीकृत होने की आशा है।

उपर्युक्त बातों से यह नहीं समझना चाहिए कि मजदूर दल में सर्वथा मतैक्य है। इसमें विभिन्न मतों के सदस्य हैं। इसमें एक 'स्वतंत्र मजदूर दल' भी है जिसे मजदूर दल का उग्र भाग कह सकते हैं और जो अपने आदर्शों में अधिक सच्चा है और भारतवर्ष आदि गुलाम देशों के साथ अधिक सहानुभूति रखता है।

थोड़े ही समय में मज़दूरदल ने इंग्लैंड की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। यह उन्नति अवश्य ही आश्चर्यजनक है। यहाँ पर इस उन्नति के कारणों पर विचार करना अनुचित न होगा।

पहली बात तो यह है कि बीसवीं शताब्दी समाजवाद की सदी है जब कि अठारहवीं शताब्दी उदार बादशाहों की थी तथा उन्नीसवीं सदी सार्वतांत्रिक शासन की। समय ही समाजवाद का सहायक हो रहा है।

दूसरी बात है मजदूर दल की लोकप्रियता। यह समाज के सभी अंगों का प्रिय पात्र बनने का प्रयत्न करता है। इसने श्वेतांग जातियों के महत्व को कम करने का प्रयत्न नहीं किया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इसने मस्तिष्क से काम लेने वालों को अलग नहीं किया है और न करना चाहता है। इसके रजिस्टरों पर बड़े-बड़े लेखकों, कवियों तथा विद्यावारिधियों का नाम है और उन्हें नेतृत्व भी प्रदान किया जाता है। जब पहली बार मजदूर-सरकार [illegible] हुई थी तब इसने कितने ही सदस्यों को लार्ड बना[illegible] इस विषय में मजदूर-दल बहुत ही व्यावहारिक रहा है।

तीसरी बात है भविष्य में परिवर्तन और इसका कार्य-क्रम। इसने पूँजीवाद को कोसने में ही शक्ति को नष्ट नहीं किया, न व्यापारियों को व्यर्थ गाली [illegible] में ही समय नष्ट किया। इसका कार्य-क्रम है भी [illegible] रिक, जिसका उद्देश्य न केवल श्रमजीवियों का हि[illegible] साधन है बल्कि सारे समाज का भी। इसका विश्वास कि मजदूरी तथा अन्य प्रकार से रोटी कमाने वालों के [illegible] में विरोध नहीं है। यदि विचार किया जाय तो सामञ्जस्य दीख पड़ेगा। इस विवरण से भारत के [illegible] संघ लाभ उठा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त इंग्लैंड के मजदूर नेताओं ने छोटे [illegible] बातों पर न झगड़कर जनता के सम्मुख एक [illegible] रक्खा है। उनका आदर्श समाज के प्रत्येक अंग को [illegible] विशेषतः उस अंग को पुष्ट बनाना है जिसके साथ [illegible] तक लापरवाही का व्यवहार होता आया है। इसका [illegible] अच्छे कारीगर पैदा करना है। ऐसी अवस्था में [illegible] दल के साथ सब की सहानुभूति हुए बिना नहीं र[illegible] और उसकी उन्नति पर आश्चर्य करने का कोई कारण [illegible] रह जाता।

फांसी

लेखक—विक्तर यूगो, अनु०—श्री कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

[गतांक से आगे]

(१२)

मैं काँसियारी-जेल में आ गया ! अपनी इच्छा से नहीं, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की ड़ी निगरानी में ! पथ की बात भी सुन लो !

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन रते हुए कहा—"मेरे साथ आइए महाशय !"

अदब और कायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी ! मैं उठ-र उसके पीछे हो लिया ! सिर भारी हो रहा था—पैर से दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था, फिर भी ला ! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर खा ! इतने दिनों का आश्रय ! कुछ ममता हो रही थी ! आज इस कमरे को मैं सूना कर चला ! परंतु अधिक देर लिए नहीं—संध्या तक जरूर कोई नया मेहमान इस मरे में आ जायगा ! वाहरे विधाता का विधान !

आंगन के सामने आचार्य बैठे थे। वह अपना भोजन ष करने की फिक्र में थे। जेल के अध्यक्ष ने आकर मेरे ाथ हाथ मिलाया। चार पहरेदारों की देख-भाल में मैं चला।

अस्पताल में एक आदमी ने सलाम किया। उस समय मैं खुले हुए आंगन के बीचोंबीच खड़ा था। साँस लेने में कुछ आराम मिल रहा था। परंतु कबतक ?

बाहर गाड़ी खड़ी थी—वही गाड़ी जिसमें बैठकर मैं यहाँ आया था। लम्बी गाड़ी—भीतर लोहे की रेलिंग से उसके दो हिस्से बना दिये गये थे, मालूम हो रहा था कि किसीने लोहे से मकड़ी का जाला बुना हो ! दो अलग-अलग दरवाज़े भी थे—एक पीछे की ओर दूसरा सामने की ओर गाड़ी के भीतर अंधेरा तो था ही, साथ ही धूल और कूड़ा भी भरा हुआ था। इससे तो मेरा वह जेलखाने का कमरा लाख दर्जे अच्छा था ! इस कब्र में जीते-जी घुसने के पहले एक बार अच्छी तरह चारों ओर देख लिया। इस मुक्त आकाश की स्मृति को लेकर अंधेरे सागर में कूद पड़ूँगा ! दरवाजे के सामने क़तार बाँधकर दर्शक लोग खड़े थे। टपाटप पानी पड़ रहा था। मालूम हो रहा था कि यह पानी दिनभर बन्द न होगा। रास्ता और आंगन कीचड़ से लथपथ हो रहा था !—चारों ओर कुछ उदासीनता नज़र आती थी।

गाड़ी पर चढ़ा। सामने के कमरे में हथियारबन्द पहरेवालों का दल और आचार्य—पीछे के कमरे में अकेला मैं।

गाड़ी के साथ ही चार हथियारबन्द घुड़सवार ! चारों ओर इस प्रकार हथियारबन्द सिपाही—मानों मैं कोई बादशाह था !

गाड़ी चली। पानी से सड़क के पत्थर निकल आये थे। घोड़े की नाल से खटाखट शब्द हो रहा था।

पीछे एक आवाज़ के साथ जेल का फ़ाटक बन्द हो गया—वह शब्द भी मैंने सुना। मैं मानो कुछ तन्द्रा से आच्छन्न था। कोई डर अथवा चिंता मुझे स्पर्श न करती थी। मानों मुझे जीतेजी कब्र में गाड़ दिया हो—कुछ ऐसा ही भाव था। घोड़े के गले में घण्टा बँधा हुआ था—पहिये और घोड़े की नाल से मिलकर गाड़ी का एक विचित्र ही शब्द कान में आ रहा था। मानों आँधी की पीठ पर सवार होकर मैं कहीं जा रहा होऊँ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्नलोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में !

गाड़ी के भीतर दरवाजे में जो छेद था, उसीमें से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढ़े आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था, ख़ैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुंबज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा,—"वाह ऊपर से चारों ओर एक बार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते जा रहे थे। रोकने वाला तो कोई था ही नहीं। आचार्य की आवाज़ से घोड़ों की नालों की आवाज में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतंत्र भाव से नहीं—एक अजीब मिश्र रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो!

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती।"

उनका कहना सच था—बिलकुल ठीक था।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी।—हाँ, क्या कह रहा था? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया संवाद भी है? शायद मेरी फाँसी का हुक्म सुनकर ही यहाँ हल्ला मचा होगा।

आचार्य कहने लगे—"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फुर्सत भी नहीं मिलेगी। संध्या के समय मैं रोज़ अखबार पढ़ा करता हूँ, उससे दिन के ढलने तक का सब समाचार मिल जाता है, एक भी बाकी नहीं छूटता।"

अब तक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मजेदार ख़बर, और आपको अभी तक मालूम ही नहीं है?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है।"

उसने कहा—"आपको मालूम है? ताज्जुब की बात है। कहिए तो सही?"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो?"

उसने कहा—"हाँ अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो; आप कैदी हैं तो क्या हुआ? मैं राष्ट्रीय सेना में था; [illegible] में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोककर कहा,—"नहीं महाशय, मैंने कोई और बात सोची थी।"

उसने कहा—"और ही बात? क्या कहते हैं आपको कैसे मालूम हुआ? किसने कहा आपको? कहिए सही क्या खबर है, सुनूँ ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए [illegible] मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच् चच्! बड़े दुःख की बात है अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परंतु जी को ढाढ़स दो [illegible] को मज़बूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रंजीदा होते हैं? कास्तेगाँ को जब हम यहाँ लाये थे तो वह रास्ते हँसाता-हँसाता आया था।"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, [illegible] को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता था और रुवले के वे विद्रोही लड़के ऐसे चिल्लाते-हँसते थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख पाना तो [illegible] है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही [illegible] मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र!"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम क्या कहते हैं आप? आपसे मेरी उम्र अधिक है। [illegible] प्रति घण्टा १० वर्ष बढ़ रही है।"

आचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों मज़ाक करते [illegible] उम्र तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गंभीर भाव से कहा—"नहीं मजाक [illegible] होंगे, मैं ठीक कह रहा हूँ।"

आचार्य ने हुलास की डिबिया निकाली। खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"[illegible] होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज होने की कौन सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी हुलास की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सब हुलास गिर गया। घबड़ा-कर खाली डिबिया को उठाते हुए आचार्यजी बोले—"राम राम! सब हुलास गिर, गया अब क्या करूँ?"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दुःख भी क्या है? आराम-आराम सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने में आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मजाक को, तुच्छ करने वाले आये!—तुम्हें दुःख भी क्या है? मैं इतना बूढ़ा एक आदमी—बिना हुलास के इतना रस्ता जाना—हाय हाय!"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनका हुलास गिर पड़ा है। कैसे अन्ध हैं ये पुरोहितगण।

हुलास के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम हो-कर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी गति से चलती रही।

आख़िर गाड़ी शहर के भीतर, चुंगीघर के सामने, जाकर ठहर गई। वहाँ से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम भेड़ या बकरे होते तो कुछ दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु अफ़सोस कि हम मनुष्य थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुँची, जो सीधी सियारजारी को ले जाती थी। सड़कों पर लोग अवाक् होकर गाड़ी की ओर देख रहे थे। अख़बार बेचनेवाले इधर उधर दौड़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम कोंसियारजारी आ पहुँचे। सामने वही जेलख़ाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक। देखकर मेरा ख़ून ठंडा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी रुक गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठा कर मैं उतरने को तैयार हुआ। दरवाज़ा भी उसी समय खुल गया। गाड़ी के अंधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरे-दारों ने आकर दोनों तरफ़ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनों ओर क़तार बाँधकर सेना खड़ी थी। बीच में मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक ख़ासी भीड़ जमा थी।

(१५)

उसी सेना की श्रेणी के बीच चलते हुए मुझे कुछ आराम का अनुभव होने लगा मानों मैं स्वाधीन हूँ, क़ैदी नहीं हूँ। परन्तु जब सीढ़ियों को पार करता हुआ उन अँधेरे कमरों की ओर जा पहुँचा, उस समय फिर विरक्ति और अवसाद ने आकर मुझे आच्छन्न कर लिया।

पहरेदार बराबर साथ आ रहे थे। आचार्य दो घण्टे बाद फिर मिलने की प्रतिज्ञा कर कहीं चले गये। उनको और भी न जाने क्या-क्या काम था।

हम अध्यक्ष के कमरे में आये। उनके हाथ में पहरेदार ने मुझे सौंप दिया। मुझे कुछ हँसी आई—मेरे कैसे प्रिय-जन को इसने मुझे सौंप दिया है।

अध्यक्ष महाशय उस समय कुछ व्यस्त थे। पहरेदार से उन्होंने कहा—"ज़रा सब्र करो, मैं अभी समझ लेता हूँ।"

ठीक ही तो है,—जमा-ख़र्च के खाते का हिसाब न मिलाकर वह एक मनुष्य को खाते में कैसे जमा कर सकते हैं? उस समय वह किसी और अभागे क़ैदी की भाग्य-लिपि की ओर झुके हुए थे। पहरेदार ने कहा—"अच्छा तब तक मैं भी अपने काग़ज़ों को सम्हाल लूँ।"

काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकालकर पहरेदार उसी में तन्मय हो गया। मैं एक कोने में खड़ा रहा। लोहे की मोटी छड़ों के भीतर से आसमान नज़र आ रहा था—धूप देखकर मालूम हो रहा था मानों आकाश के शरीर को किसी ने रंग दिया हो! उज्ज्वल नीला आकाश—अहा!

ऊपर की ओर मैं एक दृष्टि से देख रहा था। मैं सोच रहा था, यहाँ मैं खड़ा हूँ, और मेरी स्त्री-कन्या! वे भी इसी आकाश के नीचे हैं। न मालूम इस जीवन में उनके साथ कभी साक्षात् होगा या नहीं।

पहरेदार मुझे पास की एक छोटी-सी कोठरी में ले

आया—उसमें बिलकुल अन्धकार छा रहा था। उसमें दो खिड़कियाँ थीं, जो लोहे की जाली से घिरी हुई थीं। खिड़की के पास आकर मैं बैठ गया।

कब तक बैठ रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात् अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या एक और आदमी! उम्र उसकी कोई पचास से ज्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मज़बूत मालूम हो रहा था; आँख और मुख पर एक विकट भाव था; उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था, परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है?

उसने कहा, "अजी किस चिंता में निमग्न हो? मैं कब से बैठा हूँ और मेरी ओर देखा तक नहीं! क्या नाम है तुम्हारा?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगा।

उसने कहा—"मेरी ओर क्या देख रहे हो? मैं एक लगेज हूँ—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने तक की देर है।"

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ?"

बड़ी ज़ोर से कहकहा मारकर वह हँस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे? मामूली बात है! छः हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर चालान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छः घंटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छः हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैं तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हूँ।"

मेरी नसें सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा मित्र! इससे सुनो, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँ! वक्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मज़ेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दरपीढ़ी से पेशा हो रहा है। परन्तु फाँसी केवल मैं ही चढ़ाया जा रहा हूँ, तकदीर की बात है!"

"छः वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब माँ-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी तक किसी को नहीं मालूम। जेब काटकर और बेवकूफों को और भी बेवकूफ बनाकर मैं मजे से अपना पेट भरने लगा। आख़िर मेरा पुश्तैनी पेशा जो ठहरा।

"जाड़े के मौसिम में जब चारों ओर बरफ़ से रास्ते और गलियाँ भर जाती हैं, उस बरफ़ पर से भी मैं नंगे पैर चला करता था। स्टेशन, होटल, ट्रेन हर जगह मैं जेब काटता फिरता था।

"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मैं पहले-पहल पकड़ा गया। पीठ पर कई कोड़े पड़े और दो-चार दिन की सज़ा हो गई। जब मैं जेल से लौटा तो मेरी क़द्र बढ़ गई और मैं दल का मुखिया बन गया।

"उसके बाद बड़े-बड़े कामों में हाथ डालने लगा। शहर के मशहूर जौहरी की दूकान पर मय अपने दल के उपस्थित हुआ। सारी दूकान लूट ली. दो दरबानों को जान से मार डाला। हिम्मत भी बढ़ने लगी। लेकिन, विश्वासघातियों का अभाव कहीं नहीं है। दल के एक विश्वासघाती ने हम लोगों को पकड़वा दिया। सात वर्ष तक जेलखाने की हवा खानी पड़ी। फिर बाहर निकला। कुछ विशेष प्रमाण नहीं था, नहीं तो कभी जेल के बाहर पैर रखने की नौबत ही नहीं आती। उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुक़दमा ख़त्म हुआ उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुँह सूख गया। हाँ, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल में घुसा। और खूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसी को कुछ मालूम तक न हुआ!

"सात-आठ दिन बाद दल के दो-चार लोगों से मुला- हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने था, और कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और हठीले मी भर्ती किये।

"इसके बाद खूब समारोह से काम चलने लगा। रोज़ रोज़ जीत, रोज़ नये-नये मज़े। आनन्द का फव्वारा लगा!—किंतु, फिर भाग्य पलटा। दल के लोग आने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क मिल गया। मुझे देखकर वह काँपने लगा। मैंने उसके को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। कहा—'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ़ करो सरदार।'

"मैंने कहा, 'विश्वासघाती को मैं माफ़ नहीं कर ता।'

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ।'

'विश्वासघाती गुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हूँ।' र मैंने उसकी पीठ पर एक ज़ोर की लात मारी। वह हाथ दूर जा गिरा। मुँह से खून उगलने लगा। मैंने —'उठ चल।'

उसे मैं ले चला। मैं तब—ओह, एक राक्षस की तरह गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गिरोह, पुराने साथियों दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! न!

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट । वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर में आग-सी रही थी। मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"उसके बाद पुलिस में जाकर उसने इज़हार दिया। दिन अस्पताल में वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। फाँसी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। ख़ैर, के लिए मुझे चिन्ता नहीं है। चोरी करते-करते जी ऊब गया था। मामूली चोरी में मुझे कभी आनन्द मिलता। काफ़ी अक्ल ख़र्च करता था। वैसे अक्लमंद और हिम्मतवाले साथी भी अब कहाँ मिलते हैं? इसीलिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। और भी दो-एक चोरी के क़िस्से सुनाता हूँ। समझ जाओगे कि मैं कितना अक्लमंद था। मेरी ऐसी अक्ल को फाँसी की रस्सी में झूलना पड़ेगा, यह एक अफ़सोस की बात ज़रूर है। पर ख़ैर, देश का दुर्भाग्य।"

उसकी बातें सुनकर मुझे रोमांच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बड़े सीधे आदमी मालूम होते हो। राम-राम, फाँसी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हें अफ़सोस हो रहा है। इसी में तो मज़ा है, यह नहीं मालूम। मौज करो, आनंद करो, लोग जानेंगे कि हाँ, फाँसी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देखकर सब अवाक् और स्तंभित हो जायँगे। बहादुर कहेंगे। मुझे देखो न? कैसे मज़े में हूँ! आख़िर अफ़सोस करने से कुछ नतीजा तो हासिल होगा ही नहीं!"

मैंने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं!"

क़हक़हा मारकर वह फिर हँस उठा। उस हँसी के विकट शब्द से सारा कमरा गूँज उठा। उसने कहा—'ओहो 'महाशय'—आप लोग सफ़ेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद ही नहीं था! लेकिन महाशयों को फाँसी दी जाती है—यह बड़े अचम्भे की बात है!"

उसकी बातों में काफ़ी व्यंग था। मैं चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक का विलम्ब है! अच्छा, आप तो ज़मींदार हैं। फाँसी पर चढ़ने जा रहे हैं। अपना यह सुंदर कोट क्यों व्यर्थ ही ख़राब करेंगे? मुझे दे दीजिए! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच-बाचकर चुरुट मँगाने की तदबीर करूँगा।

मैंने कोट खोल दिया! ठंड से शरीर काँपने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा आप बर-दाश्त नहीं कर सकेंगे। रहने दीजिए, आप पहन लीजिए अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कहा—"नहीं मैं बरदाश्त कर लूँगा, कोट आप ले लीजिए।"

खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलटकर उसे देखता रहा, फिर बोला, "यह तो बिलकुल नया मालूम होता है। ख़ैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय! कुछ बुरा न मानना, हम ग़रीब ठहरे। बातें करना तो आता ही नहीं।"

इसी समय अध्यक्ष भीतर आये! मुझको एक पहरेदार के ज़िम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—"भूलना नहीं महाशय, यहाँ यही आख़री मुलाक़ात है। फिर छः हफ्ते बाद मिलेंगे! वहाँ आप मेरा इंतज़ार करना।"

उसकी बातों को सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। क्या कहता है यह? पागल है या बेवकूफ़? कौन है यह?

(१४)

वह था बड़ा मज़े का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ़ चलता बना।

क्या मैंने दान कर दिया?—नहीं, ठीक दान तो नं किया। मैंने सोचा, वह मज़ाक़ कर रहा होगा, फिर मुरव के ख़याल से वापस न ले सका।

पक्का और पुराना चोर है! पैरों से जिसको दल सक हूँ, वह मुझे मित्र के नाम से संबोधन कर गया।

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया। मृत्यु मेरे सिरहा खड़ी है। अभी निर्दयी की भाँति वह मुझे पीस डाले। अभी तक धनी सम्प्रदाय का अहंकार मेरी हड्डियों में ल है! मूर्ख हूँ मैं! बेवकूफ़ हूँ!

फाँसी की डोर धनी और निर्धन का विचार न करे। जिस राज्य में जा रहा हूँ, वहाँ धनी और निर्धन का वि न होगा।

जो डोर उसके गले में पड़ेगी, वही डोर मुझे भी पहुँचायगी! मुक्ति देगी! हाँ, वह मेरा मित्र ही तो परम मित्र है!
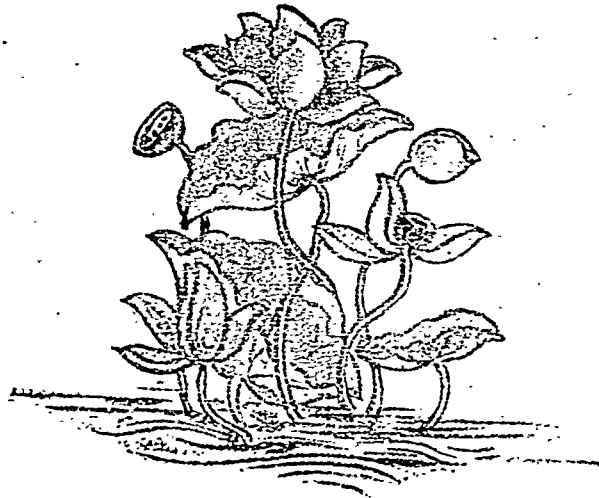
भारत और द्वैध शासन

[श्री प्रकाशचन्द्र]

इसे भारत का अभाग्य ही कहना चाहिए कि इस सदी में इसे न केवल विदेशी रकार का ही सामना करना पड़ रहा है ल्कि द्वैध शासन-प्रणाली का भी। एक तो गिलोय यं ही कड़वी होती है तिस पर नीम का सहयोग गल जाने पर तो उसे और भी अधिक विकास रने का अवसर मिल जाता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी नुष्य किसी दूसरे मनुष्य को परतंत्र रखने का धिकारी नहीं है और न किसी राष्ट्र को ही यह धिकार है कि किसी देश को उसकी दुर्बलता से भ उठाकर गुलाम बनाये रक्खे। संसार में आत्म-म्मान खोकर दासता स्वीकार करने से बड़ा कोई प नहीं है। क्योंकि इससे व्यक्ति न केवल अपनी मनु-ता खो देता है वल्कि विजेता के भी मानसिक कास में बाधा पहुँचाता है। गुलाम देश अपनी ला, सभ्यता, विकास और उन्नति सब को नष्ट कर ता है, उसके जीवन में न तो कोई आदर्श रह ता है और न उत्साह; उसकी शक्तियों का जो आत्म-कास में लगतीं, व्यर्थ अपव्यय होता है और रे-धीरे बल और पौरुष विलीन हो जाते हैं, दरिद्रता ।। घेरती है, यहांतक कि जीवन भी दूभर । जाता है।

परन्तु किसी भी देश को अधीन करने के पश्चात् हाँ की जनता के विरोध को कुचलने के लिए शायद य शासन-प्रणाली को सर्वोत्तम उपाय माना जा सकता है। निरंकुश शासन में जनता की स्वतंत्रता की आकांक्षा शान्त नहीं हो सकती; बढ़ती जाती है। परन्तु द्वैध शासन से धीरे-धीरे लोगों का विद्रोह करने का सारा उत्साह नष्ट हो जाता है और वे विषहीन सर्प की तरह हो जाते हैं। जनता इसकी आदी होने लगती है और परिणाम यह होता है कि फिर उसे सिर उठाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

शासन की वह प्रणाली, जिसमें सारी व्यवस्था के संविभाग कर लिये जाते हैं और प्रत्येक एक-एक पदाधिकारी के अधीन कर दिया जाता है और पदा-धिकारी जनता के चुनाव पर निर्भर नहीं करते—द्वैध शासन कहलाता है। सारे देश में कारिंदों और अफ़सरों का ऐसा जाल फैला दिया जाता है कि एक के अधीन दूसरा रहे और सारी शक्ति प्रान्तीय संविभागों में केन्द्रित रहे और प्रान्तीय संविभागों की नीति केन्द्रीय (Central) सरकार के हाथ में रहे। निरंकुश शासन-प्रणाली में सारी शक्ति एक आदमी के हाथ में रहती है और इसमें कई के हाथ में। दोनों में जनता के चुनाव पर निर्भर न होने से बहुत कुछ समानता है और एक प्रकार से दोनों अनि-यंत्रित हैं।

मुगल-सम्राटों की शासन-प्रणाली निरंकुश थी। अंग्रेजों ने भी प्रारम्भ में उन्हीं का अनुकरण किया था। आमदरफ्त की सहूलियत में कमी होने से और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में सड़कों और

सवारी की कठिनाई के कारण स्वभावतः निरंकुश शासन सुविधाजनक था । परन्तु जैसे-जैसे रेल, तार, सड़कों आदि की वृद्धि हुई जनता को पदाधिकारियों से शिकायत करने तथा प्रान्तीय सरकारों के नजदीक आने का मौका मिलता गया । प्रान्तीय सरकारों को भी अपने पदाधिकारियों के निरीक्षण में सुविधा हो गई । नित्य नई कठिनाइयों के सामने आने से नियमों और कायदा-कानूनों का भी कलेवर बढ़ने लगा । इसका परिणाम यह हुआ कि सारी शक्ति प्रान्तीय सरकारों में केन्द्रित होने लगी और शासन-कार्य में सादृश्य आने लगा । शासन के व्यवस्था-विभाग का कलेवर भी बढ़ने लगा । धीरे-धीरे जो शासन-प्रणाली पहले निरंकुश थी वही अब द्वैध हो गई ।

इसमें संदेह नहीं कि शासन-कार्य में पहले की अपेक्षा अधिक नियमितता, व्यवस्था और फुरती आ गई, जनता को अपनी रक्षा करने का अधिक अवसर मिलने लगा; सरकार की सहायता प्राप्त करना, यों देखने में, पहले से सरल हो गया और जिसे हम बोलचाल की भाषा में शान्ति और सुख कहते हैं वह भी किसी अंश तक उपलब्ध हो गया— परन्तु शासकों में जनता के लाभ की जो सतत सदिच्छा की आवश्यकता अनिवार्य हुआ करती है वह नष्ट हो गई ।

जनता के जीवन का दुःख-सुख क़ायदों और कानूनों में बंध गया । सरकार ऐसे व्यक्तियों का समूह रह गई जो उन बने हुए नियमों और कानूनों का पालन करने के लिए बाध्य हैं, न पीछे हट सकते हैं और न आगे बढ़ना चाहते हैं । जिनका कर्तव्य उन कायदों के अक्षरशः पालन करने के पश्चात् समाप्त हो जाता है, चाहे उसका परिणाम हानिकारक हो या लाभदायक ; जो सोचने का कष्ट उठाना न तो स्वयं आवश्यक समझते हैं और न सरकार ही उनको इस विषय में प्रोत्साहन देने को तैयार है। परिणाम यह होता है कि जनता और शास[illegible] में प्रेम और सद्भावना की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। शासनकर्ता यंत्र और मशीन मात्र रह जाते हैं जिनका कार्य शासन करना है और जनता उनके हाथ[illegible] खिलौना रह जाती है जिसका कार्य आज्ञा मान[illegible] है । शासन-विभाग के पदाधिकारी धीरे-धीरे अपने [illegible] उच्च कोटि के व्यक्ति मानने लगते हैं, जो जनता [illegible] आदर और श्रद्धा की आशा करते हैं और [illegible] उनका उत्तरदायित्व जनता के प्रति कुछ भी [illegible] है, यद्यपि उनका कार्य जनता पर शासन करना [illegible] वे जनता को तुच्छ दृष्टि से देखने लगते हैं और [illegible] जाते हैं कि इनके कार्य की सफलता सुव्यवस्था [illegible] में है । इस प्रकार एक ओर जहां ये जनता के [illegible] निरंकुश बनते जाते हैं, अपने ऊपर के पदाधिका[illegible] की आज्ञायें उन्हें अक्षरशः पालन करनी पड़ती हैं, वे इसके लिये बाध्य हैं । जनता उनसे प्रसन्न [illegible] कर उनका कोई लाभ नहीं कर सकती और न [illegible] होकर कुछ बिगाड़ ही कर सकती है जब कि [illegible] के पदाधिकारियों की कृपा-अकृपा पर न केवल [illegible] भविष्य ही निर्भर है बल्कि उनके अप्रसन्न होने [illegible] दशा में चाहे उनका जीवन संकट में न पड़े कम से कम उनकी उन्नति तो बहुत-कुछ [illegible] सकती है । इसलिए उनके कर्तव्य की समाप्ति नि[illegible] और नियत नियमों के अनुसार कार्य करने [illegible] अफसरों को प्रसन्न रखने में ही हो जाती है। निश्चित विचारों के व्यक्ति हुए और निश्चित [illegible] कानूनों में से किसी से उनका मतभेद भी हुआ [illegible] वे उनको प्रकट करने का न तो साहस ही कर[illegible] और न आवश्यकता ही समझते हैं क्योंकि वे ज[illegible] हैं कि ऊपर के पदाधिकारी उनकी गवेषणाओं [illegible] पसन्द नहीं करेंगे ।

जनता से उनका स्वामी-सेवक का संवन्ध होने रकार को यह भी वांछनीय नहीं कि जनता तलाये हुए सुधारों से सहानुभूति प्रकट की । उनका मत है कि सरकारी कायदे-कानून त अनुभव के बाद बने हैं और जब वे जनता हित के लिए बने हैं और वे लोग भी उसी ए कष्ट उठाते हैं तो जनता की यह मूर्खता है नके उच्च कार्यों में दस्तन्दाजी करे । द्वैध सर- जनता को गुलामों के रूप में नहीं तो आज्ञा- सेवकों के रूप अवश्य देखना चाहती है । ी अपनी शान (Prestige) का खयाल के हित से अधिक रहना स्वाभाविक जनता का विरोध उसको अपनी सत्ता के विरुद्ध ाघात मालूम होता है इसलिए वह इसे अपना य समझती है कि जनता के उत्साह को उसकी के नाम पर दमन द्वारा उखाड़ फेंका जाय । कार के अवसरों पर निरंकुश शासन और द्वैध न दोनों की नीति एक हो जाती है और वह है करना'। इसलिए सरकार जनता को उसी तक शिक्षा, सदाचार और अधिकार से लाभ देती है जहां तक जनता सरकार के किसी कानून के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाती । उन्हीं ओं को सरकार सहानुभूति-पूर्वक देखती है जो ी आज्ञाओं को नतमस्तक होकर शिरोधार्य हैं । सारांश यह कि द्वैध सरकार के अधीन र जनता के लिए स्वच्छन्दतापूर्वक न सही ता-पूर्वक भी विकास करना कठिन है ।

यह तो हुए मामूली द्वैध-शासन प्रणाली के । हमारी सरकार यदि हमारी निज की होती द्वैध होती तो भी उपर्युक्त दोष न्यूनाधिक में दृष्टिगोचर होते । फिर यह तो ी है । अंग्रेज-सरकार के अपने ही स्वार्थ इतने अधिक हैं और अपने ही देश और साम्राज्य की रक्षा की उसे इतनी अधिक चिन्ता है कि हमारे लाभों के दृष्टिकोण से यदि वह अपनी नीति निर्धारित करे तो यह बहुत विस्मय जनक घटना होगी । हमारे व्यापार को नष्ट करने के लिए, हमारी वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक बहुत-सी परिस्थितियों और समस्याओं के लिए, और हमारे आत्मिक विकास को रोकने के लिए वर्तमान सरकार का कहां तक उत्तरदायित्व है यह इतिहास और राजनीति के विद्यार्थियों को भली-भांति ज्ञात है । हम अपनी अकथनीय हानि तो इसीसे देख सकते हैं कि भारत-जैसा देश जो धन और समृद्धि के लिए २०० वर्ष पहले प्रसिद्ध था आज संसार में सबसे अधिक अवनत है । देश का आर्थिक ह्रास हो गया है और भारतीय जीवन की सुख और शान्ति नष्ट हो गई है । यह कहा जा सकता है कि मुगलों का शासन वर्तमान समय से अधिक निरंकुश था, फिर उस समय असन्तोष क्यों न फैला । वैसे देखा जाय तो प्रत्येक मुसलमान बादशाह का जीवन बलवों को दमन करते बीता है पर मुसलमानों के अत्याचार का भारत के ग्रामीण जीवन पर कोई असर नहीं पड़ा था केवल कुछ शहरों तक ही वह सीमित था । महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समय 'रोटी" की समस्या सरल थी और जनता को क्रोध तभी आता है जब इस प्रश्न पर आघात पहुँचता है । यह कहना बहुत अधिक नहीं होगा कि आर्थिक परिस्थिति पहले की अपेक्षा अधिक विकट और उलझी हुई है ।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे शास्त्रों ने, शासक की, * फिर वह अत्याचारी ही क्यों न हो, आज्ञा

* यह लेखक की भूल है । अत्याचारी राजा को, सपरिवार तक, नष्ट कर डालने का स्पष्ट आदेश मनुस्मृति आदि में है ।—संपा० ।

का पालन नागरिक का कर्तव्य बतलाया है; हमारी स्त्रियों को पराधीन और दासता में रखने की प्रवृत्ति ने, जिसने भावी सन्तान के मस्तिष्क पर भी दासता का ही प्रभाव डाला है; हमारे वर्णाभिमान ने, जिसके कारण हम मनुष्यता के एक भाग को अस्पृश्य मान रहे हैं और हमारे कौटुम्बिक वातावरण ने, जहां वृद्धजनों की अंध-भक्ति पर ही अधिक जोर दिया जाता है—हमको गुलामी के बंधन में बहुत दिन तक पड़े रहने पर भी बाहर निकलने भरसक रोका है, परन्तु अब जनता में पर्याप्त जा फैल चुकी है और कल के निद्रालु और अशक्त आज स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बांसों उछ रहे हैं। द्वैध और विदेशी शासन के दोषों की च चरम सीमा समझनी चाहिए जिनके फल आज हम नये युग का स्वप्न देख रहे हैं।

उल्लास

(श्री सच्चिदानन्द बी० एस-सी०)

हृदय, कैसा है यह उल्लास ?

तेरी वीणा-ध्वनि का करता सारा जग है हास,
तार सभी ये टूट गये हैं रहा न कुछ भी पास।

हृदय कैसा है यह उल्लास ?

तेरी सारी महिमा का हो गया निमिष में नास—
राजा होकर फिर अब तू है दासों का भी दास।

हृदय कैसा है यह उल्लास ?

तिमिराछन्न गगन है तेरा बीहड़ तेरा वास—
सारी संपति खोकर भी हा ! गई न तेरी आस !

हृदय कैसा है यह उल्लास ?

किस ओर ?

[श्री रणधीरलाल बी० ए०]

यह सम्यता हमें किस ओर ले जा रही है ? हमें उन्नति तथा शान्ति के उच्च शिखर पर ले र इस युग को और युगों में सर्वोच्च बनाने जा रही थवा अवनति एवं अविरल अशान्ति के गह्वर में ढकेल- इस जड़वाद अथवा भौतिक सभ्यता के युग को मनुष्य त पर अमिट कलङ्क का टीका बनायेगी ? इसे लोग कई यों से देखते हैं इसीलिए एक पंथवालों के लिए यह मनुष्य की उन्नति तथा उसकी शक्ति-वृद्धि के इति- की चरम सीमा है। यह जड़वादियों का दृष्टि-कोण है। के लेखे यह युग और युगों से सर्वथा भिन्न है। यह वह है जिसमें मनुष्य ने प्रकृति पर पूर्णतः अधिकार कर ा है; मनुष्यजाति अपने इस विशाल एवं दीर्घ जीवन ो कार्य सम्पन्न न कर सकी थी, जो शक्ति सर्वदा इसके से बाहर रही वह शक्ति इस युग में मनुष्य के अधीन गई; वह कार्य सम्पन्न करने में मनुष्य-जाति समर्थ हुई। यांत्रिक युग के गर्व करने के योग्य आविष्कार रेल, तार ुयान, रेडियो आदि हैं।

ाँ, इन आविष्कारों पर यह युग गर्व कर सकता है। ये े सभ्य संसार को एक सूत्र में बाँध लेने में समर्थ हो ते हैं। अगर इनका सदुपयोग किया जाय तो इनसे े संसार की सम्पत्ति तथा सभ्यता की एक सीमा तक ति भी हो सकती है। रेल और जहाज़ों द्वारा उद्योग- ों के दैशिक विभाग (Territorial Division of abour) का विस्तार हो सकता है। जब वे स्थान, जो सी वस्तु-विशेष की उत्पत्ति में साधारण स्थानों की अपेक्षा िक सुविधाजनक हैं, केवल उन विशिष्ट वस्तुओं की त्ति में अपनी सारी शक्ति व्यय करते हैं तो संसार की उत्पा- क शक्ति बहुत बढ़ जाती है, यह तभी सम्भव है जब रेल- ाज़ तार-डाक आदि का पूर्ण विकास हुआ हो। पर क्या रेल जहाज़-तार आदि के विकास से संसार के धन-समृद्धि की वृद्धि, परस्पर सम्बन्ध की घनिष्टता, तथा सभ्यता की उन्नति हुई है ? कोई भी विचारशील मनुष्य, जो इस भौतिक सभ्यता अथवा जड़वाद का अन्धभक्त नहीं है, यह नहीं कह सकता कि इन साधनों के आविष्कार इन उच्च आदर्शों के प्रतिपादन में समर्थ हुए हैं।

इसके विपरीत संसार के विचारशील मनुष्य टालस्टाय, रस्किन, कार्पेण्टर, गांधी आदि ने स्पष्ट शब्दों में इस सभ्यता की घोर निन्दा की है। वही पश्चिम, जो इस यान्त्रिक युग का फल चख चुका है; वही पश्चिम जो कल तक यन्त्रों अथवा जड़ पदार्थों में अपनी मुक्ति देखता था, अब दूसरी ओर मुड़ रहा है। एक अलस चेतना जाग रही है, नव-प्रभात होने वाला है। जिस तरह प्रभात के आगमन का अनुभव पक्षी करने लगते हैं उसी तरह पश्चिम के गंभीर विचारक रस्किन और टालस्टाय को इस प्रभात का पूर्वाभास मिला और इसका पूर्वानुभव हुआ। उन्होंने स्पष्ट तथा कठोर शब्दों में कहा कि यह सभ्यता राक्षसी सभ्यता है; ये काली मशीनें काली का रूप ग्रहण कर मनुष्य जाति का संहार करेंगी। इन महज्जनों की आँखों की प्रकाश-रेखा दूर तक पहुँचती थी। उन्होंने देखा कि इस सभ्यता का अन्तिम चरण तथा अन्तिम परिणाम क्या होगा ? इन प्रज्ञा-चक्षुओं की दृष्टि इन भौतिक आविष्कारों और आधुनिक सभ्यता की चटकीली वस्तुओं से चकित नहीं हुई। ये दृढ़-प्रतिज्ञ तथा मनस्वी थे। टालस्टाय अच्छे-बड़े ज़मीन्दार होते हुए भी अतीव कोमलहृदय थे। उन्होंने मज़दूरों और किसानों की उन्नति में अपना सर्वस्व स्वाहा किया; अपनी लेखनी की सारी शक्ति इस सभ्यता की दोषपूर्णता तथा इसके परिणाम-स्वरूप फैलनेवाले सामाजिक विभेद (एक ओर लक्षाधिपति विलासिता में लिप्त रहनेवाले धनियों

और दूसरी ओर काली कोठरियों में रहने वाले, अपनी स्वल्प कमाई से अपने परिवार का पोषण करने में असमर्थ, दिन-दिन दरिद्रता के पंजे में और बुरी तरह जकड़े जानेवाले मज़दूरों तथा सरकार एवं जमीन्दारों के अन्याय के कारण दरिद्र तथा भिखमंगे बनाये जाने वाले किसानों के पारस्परिक द्वेष) के चित्रण में लगाया। रेलों को मनुष्य के उच्च भावों का नाश करने वाली समझकर रस्किन ने १९ वीं शताब्दी में विलायत में रहकर भी अपने को उनसे अछूता रक्खा। सारे यूरोप का भ्रमण उसने पैदल तथा घोड़ा-गाड़ियों पर किया।

रेल, जहाज, तार आदि से संसार को क्या लाभ हुए और क्या हानियां हुईं इसका विचार करना आवश्यक है। लाभ तो थोड़े ही हुए जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर इससे हानियाँ बहुत अधिक हुईं। इन्हीं के कारण साम्राज्यवाद का प्रसार हुआ। इन साधनों के विकास के साथ ही साम्राज्यवाद अथवा सारी पृथ्वी को कुछ विजयी देशों में विभाजित करने की नीति का उद्‌भव तथा प्रचार हुआ। साम्राज्यवाद के प्रसार के परिणाम-स्वरूप मनुष्य-जाति को न जाने कितनी और कैसी-कैसी लड़ाइयों में प्रवृत्त होकर धन-जन का नाश देखना पड़ा है! इस युग के सभी युद्ध इस भौतिक उन्नति और साम्राज्यवाद के परिणाम हैं। इस भौतिक उन्नति के पूर्व के युगों में प्रत्येक देश आर्थिक दृष्टि से, बहुत-कुछ, स्वाधीन था। पर ये यन्त्र तथा बाष्प के आविष्कार, जिनका प्रयोग उद्योग-धन्धों तथा माल और सवारी ले जाने के साधनों में किया गया, संसार के देशों को आर्थिक परतन्त्रता में जकड़ने वाले सिद्ध हुए। अब एक देश दूसरे देश को कच्चे माल के लिए गिद्ध या बगुले की भाँति देख रहा है तो दूसरा पक्के माल के लिए पहले का मुहताज है। ऐसी दशा में अधिक परिमाण में वस्तुओं का निर्माण करना (Large-scale Production) आवश्यक है और उद्योग-धन्धों की यह सीमा संसार की शान्ति में बाधक है। रूसी तथा जर्मन समष्टिवादियों का कहना है कि जब किसी चीज़ की उत्पत्ति समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के विचार से नहीं वरन् पूँजीपति के वैयक्तिक लाभ के विचार से की जाती है तब संसार के देशों में पारस्परिक कलह एवं युद्ध की सामग्री अपने आप ही जुट जाती है। यह आर्थिक परतन्त्रता (ज़रूरी वस्तुओं के लिए दूसरे देशों का मोहताज रहना) देश के अस्तित्व के लिए भयानक है। युद्ध के समय जब विभिन्न देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध कुछ काल के लिए एकदम बन्द हो जाता है (जैसा विगत जर्मन महायुद्ध के समय हुआ था) तब इस भयानकता का पता चलता है। इसी लिए इंग्लैण्ड-जैसे औद्योगिक देश को कृषि की उन्नति करने के लिए आर्थिक पर्याप्तता (Economic Sufficie[illegible] प्राप्त करने को प्रयत्नशील होना पड़ा है, जि[illegible] अवसरों पर सुवर्ण-राशि के होते हुए भी रोटियों के लिए तरसना न पड़े।

इस भौतिक उन्नति के दो अनायास परिणाम हैं। पहला साम्राज्यवाद; दूसरा पूँजीवाद। साम्राज्यवादी समृद्धिशाली देश अशक्त तथा अशिक्षित देशों में व्यापार के बहाने घुसते हैं और धीरे-धीरे आर्थिक सत्ता के साथ साथ राजनैतिक सत्ता भी स्थापित कर लेते हैं। व्यापार का ही आश्रय लेकर अंग्रेज़-फरासीसी आदि भारत, मिश्र, [illegible] तथा ऐसे अन्य देशों में घुसे और इन देशों के स्वामी बन गये। साम्राज्यवाद तभी सम्भव है जब एक देश वस्तुओं का निर्माण बहुत बड़े परिमाण में कर सके। और माल पहुँचाने के साधनों (रेल, जहाज़ आदि) की इतनी उन्नति हो गई हो कि उत्पादक देश नई मंडी में भाड़ा दे चुकने पर भी रियायती दर में बेच सके। यह दशा इस भौतिक उन्नति तथा सभ्यता का परिणाम है। इसी भौतिक उन्नति के फल-स्वरूप संसार के शक्तिशाली देश, यथा इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि, संसार को अपने में बाँटकर अशक्त राष्ट्रों की हस्ती मिटा देना चाहते हैं। ऐसी स्थिति [illegible] डारविन तथा उसके विचार के अनुयायियों के लिए, जो 'शक्तिशालियों के जीवन और अशक्तों के नाश' (Survival of the fittest) के सिद्धान्त के समर्थक हैं, स्वाभाविक तथा लाभदायक हो पर हम लोगों के लिए, जो अधिक से अधिक आदमियों (Welfare of the greatest number) की समृद्धि चाहते हैं, यह दशा अत्यन्त भयावह तथा दोषपूर्ण है। यह आधुनिक सभ्यता हमारे नं[illegible]

ये सब उच्च गुण निकाल फेंकती है एवं बाह्य तथा प्रलोभनकारी वस्तुओं के आकर्षण में फँसाती है। निर्बल राष्ट्रों की रक्षा करना नहीं सिखाती, वरन् इसके विपरीत उनको हड़पने के उद्योग और यत्न में अग्रसर करती है।

अब पूँजीवाद पर विचार करना चाहिए। पूँजी है क्या चीज़? समष्टिवादियों—जिनके गुरु कार्ल मार्क्स (Karl Mark) हैं—की दृष्टि में यह पूँजी डाकेज़नी का परिणाम है। मालिक (Industrialist) मज़दूरों को मज़दूरी में उसकी उत्पादक शक्ति का पूरा मूल्य नहीं देता। इसी प्रकार पूँजी का उद्भव होता है। इस प्रकार मज़दूरों की मज़दूरी का जबरन छीना हुआ अंश मिलकर पूँजी बन जाता है।

जब इस पूँजी का उद्भव ही इस प्रकार अन्याय द्वारा हुआ है तो पूँजीवादी-समाज में तो इस अन्याय और पाशविकता का बोलबाला होना स्वाभाविक है। इस भौतिक उन्नति तथा यान्त्रिक विकास के कारण अब उद्योग-धन्धों में बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है। पिछले समय का कारीगर पूँजी के अभाव से यह काम अपने हाथों में नहीं ले सकता। छोटी पूँजी रखने वाला या स्वतंत्र काम करने की इच्छा रखने वाला कारीगर विवश हो गया है; उसकी स्थिति गुलाम से भी गिरी हो गई है। वह फैक्टरी में जाने-न जाने में नाम-मात्र के लिए स्वाधीन है। परिस्थिति ने उसकी स्वाधीनता छीन ली है। वह बेचारा उस गुलामी में जकड़ लिया गया है जिसका बन्धन उसकी सन्तान को भी नहीं छोड़ेगा। कारखानों का अधिक परिश्रम इसके शरीर को शक्तिहीन, कारखानों की गन्दी परिस्थिति उसके शरीर के रस का नाश कर देती है। तिसपर मज़दूरों के भाग्य में लिखी हुई काली कोठरियाँ अथवा शहर की वे गन्दी गुफायें, जिनमें सूर्य भगवान् की संजीवनी रश्मियों का कभी प्रवेश नहीं होता, उसके इस सांसारिक जीवन को नारकीय जीवन के रूप में बदल देती हैं। मज़दूर खुशी के साथ नरक में रहने को प्रस्तुत हो जायगा, यदि उसके गले से यह दशा उससे छुड़ाई जा सके।

यह सभ्यता जहाँ एक ओर देश की अधिकांश जनसंख्या को नारकीय जीवन व्यतीत करने को बाध्य करती है वहाँ दूसरी ओर अशान्ति के बीज बोती है। अन्याय के प्रतीकार में अशान्ति को प्रश्रय मिलता है। इसीलिए मज़दूरों का असन्तोष जगह-जगह हड़ताल और पारस्परिक कलह पैदा कर देश की उत्पादक शक्ति तथा शान्ति और समृद्धि का नाश करता है। इस सभ्यता ने नौकरों में से स्वामिभक्ति का वह उच्च भाव निकाल दिया जो पूर्वकाल में भारत तथा अन्य देशों के लिए गर्व की बात थी। इस युग में क्या हम चामुण्डराय-जैसे स्वामिभक्त सेवक पाने की आशा करें जो रणस्थल में मूर्च्छित स्वामी पृथ्वीराज चौहान को गिद्धों का शिकार होने से बचाने के लिए अपने अंगों को काटकर गिद्धों को तृप्त करने में अपने जीवन की सार्थकता समझता था। ऐसे सेवक इस सभ्यता में, ऐसी स्थिति में स्वप्न हैं। हाँ, इस स्वार्थी युग की शिक्षा पाये हुए सेवक गण और मजदूर मालिकों और मिल-मालिकों के अन्याय से इतने विक्षिप्त रहते हैं कि वे अन्यायी पूँजीपति तथा मिल-मैनेजर का सिर तोड़ देने तक को उद्यत हो जाते हैं। क्या ऐसी सभ्यता हमें उन्नति की ओर ले जायगी? विश्वास नहीं होता।

यन्त्रों की उन्नति ने कृषकों का गृह-उद्योग छीनकर उनकी दशा दयनीय बना दी है। भारतीय कृषकों की स्थिति बहुत ख़राब है। कारीगरों की दशा तो और भी बिगड़ गई है। वे कारीगर न रहकर हमारे जमाने के गुलाम बन गये।

इन सब से मोक्ष का उपाय है बस उसी पुरानी राह पर चलना। ये मशीनें पश्चिम वालों के लिए तो विनाश का साधन हो रही हैं; वे उसे छोड़ना चाहते हैं पर ये मशीनें उन्हें नहीं छोड़तीं। पूर्व वाले इन्हें अपनाने चले हैं। पूर्व की भिन्न सामाजिक अवस्था में ये अवश्य हमें ले डूबेंगी।

इसलिए यदि इन कुपरिणामों से बचना है तो जीवन को सरल बनाना ज़रूरी है। आध्यात्मिक उन्नति पर भौतिक उन्नति से अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है। मशीन-पुर्ज़ों को छोड़ स्वदेशी और चर्खे के अमोघ अस्त्रों से स्वराज्य और इसके बाद के लिए अनन्त शान्ति के युग की प्राप्ति करें, तो अच्छा होगा। यह सभ्यता बन्धन की ओर ले जाती है। और मुक्ति इसके विपरीत दूसरी ओर है। हमारा कर्तव्य है कि हम संसार को समझा दें कि बन्धन किस ओर है और मुक्ति किस ओर। सब में हमारा यही प्रश्न हो—'किस ओर ?'

राष्ट्रपति जवाहर

श्री सोहनलाल द्विवेदी

ऐ वैभव की मृदुल-गोद में पाले हुए भिखारी!
बलिहारी! चरणों में सौ-सौ राजमुकुट बलिहारी!!
शहंशाह के शहजादों में गिनती रही तुम्हारी,
राजकुँवर के साथ-साथ बढ़ती थी सुभग सवारी।
पेरिस से पोशाक धुलाई जाती थी मतवाले!
तुम दुनिया के लाल-लाड़िलों में थे एक निराले।
त्रिंश कोटि रणवीरों के हुलसित-हिय का वरदान!
आज तुम्हारे 'स्वर्ण-ताज' की किरणों में द्युतिमान!!

× × ×

मधुर लवेण्डर चन्दन छोड़ा, सुरपुर लन्दन छोड़ा।
शहंशाह की भेंट राजद्वारों के अभिनन्दन छोड़ा।
लगी धधकने मातृभूमि के दुख की उर में आगी।
सिंहासन पर लात मार बन गये वीर वैरागी!

× × ×

कभी न मृदु-पग चले कठिन-मग, तुम मेरे सुकुमार!
वही नग्न-पद कँकरीले-पथ में कर रहे विहार।
मुरछल डुलती थीं न बैठ सकती थीं मुख पर मखियाँ!
सही, वही तुमने उर में कर में लोहे की लठियाँ!!

× × ×

विश्व जानता पिता पुत्र में होती कितनी ममता?
पर, ममता से कहीं मधुर तुम में थी अपनी क्षमता!
मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता पर, चढ़ा पिता का 'प्यार'!
बोल उठा—'विद्रोह' तुम्हारा, 'लो पूरे अधिकार'!

× × ×

देश कह रहा—उड़े 'तिरंगा', बाजें समर-नगारे।
तुम सेनापति बनो और हम सैनिक बनें तुम्हारे!
आग लगे 'नौकरशाही' में, भस्मसात् हों कड़ियाँ!
अरे वीर! अपनी छाया में, ला दो ऐसी घड़ियाँ!!

द्रष्टा ('विज़नरी')

जवाहरलाल

जवाहरलाल

(व्यक्तिगत अध्ययन और निवेदन)

[श्री 'निर्गुण']

(१)

वह ज़माना

कितनी जल्द दिन आते और चले जाते हैं ! दस वर्ष बीत गये ! असहयोग के तूफानी दिन थे; राष्ट्र के हृदय ने पहली बार व्यापक उद्वेलन का अनुभव किया था। गाँव और शहर एक हो रहे थे। बूढ़े और जवान, पिता और पुत्र, मायें और बेटियाँ, बहनें और पत्नियाँ एक साथ उठ खड़ी हुई थीं। प्राणों में पीड़ा, जीवन में उन्माद, हृदय में विश्वास, आँखों में आत्मोत्सर्ग का तेज तथा गालों पर आशा-निराशा की धूप-छाँह लिये राष्ट्र का शरीर आनन्द से काँप रहा था। बच्चे, जिनके दूध के दाँत भी न टूटे थे, भरी हुई 'प्रिज़न-वानों' (जेल की मोटरों) को देखकर उछलते और जय के नारे लगाते थे। भीतर बैठे हुए कैदियों के दिल बाँसों उछलते थे। स्नेह और कर्तव्य के सतत-संघर्ष से आकुल बहनें रोती आँखों, और उससे भी बढ़कर रुँधे हृदय, पर गर्व से फूलती हुई छाती से, बिना एक शब्द बोले उस त्याग को नीरव अर्घ्य देती थीं। मित्र जेल को रवाना होते समय ऐसे चिपट जाते थे मानो शरीर की भिन्नता स्नेह की धारा में विलीन करके छोड़ेंगे। गँवार, गांधी टोपी पहनकर किसी को आते हुए देखते तो समझते कि हमारा भाई आ गया। चोर और गिरहकट, गुण्डे और बदमाश भी, जेल में या जेल के बाहर,

स्वाभाविक है, दिन के जागरण की किरणें फैल गई हैं [illegible] वह बात कुछ और थी ! स्वप्न सदा जागरण से [illegible] गतिमान और अधिक आकर्षणशील होता है ! वह स्वप्न चला गया; यह जागरण है, आया है।

× × ×

उन्हीं आशाओं और निराशाओं, उछलते हृदयों [illegible] उछालनेवाली कल्पनाओं के स्वप्न-युग में, राष्ट्र की [illegible] पर, मैं अपने, आज जेलों में सड़ने अथवा घर-[illegible] फँसकर गहरे जल में डूबते जरा तैरना जाननेवालों [illegible] समान उभ-चुभ करते हुए साथियों के साथ, [illegible] किसानों की झोंपड़ियों के बीच घूमता-फिरता था। [illegible] पुनर्जीवित की जा रही थीं; ग़रीबी से झुलसी हुई [illegible] को, जिनका रक्त विदेशी शासन की व्यापारी जिह्वा ने [illegible] लिया था, मिला-मिलाकर खड़ा किया जा रहा था। [illegible] वाले यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ भागते फिरते थे। [illegible] पर, स्टेशनों पर, गाड़ियों में, 'अन्दारकिस्टों' के ये [illegible] रक्षक सर्वव्यापक-से हो रहे थे। रात को डेरे के चारों [illegible] चारपाइयाँ डालकर ये पहरा देते। तब भी कुछ न [illegible] काम चलता रहा। अवध के दुर्बल किसान एक शक्ति [illegible] कर उठ खड़े हुए। सरकार घबरा गई; १४४ दफ़ा [illegible] ५ आदमियों [illegible] का एकत्र होना जुर्म करार दे [illegible]

मुझे मालूम हुआ कि अवध का यह सारा किसान-
इसी अमल-धवल एवं कोमल पर कर्तव्य-कठोर
। संचालित हो रहा है!

(२)

ट चित्र

लम्बा, छरहरे बदन का गोरा नौजवान; ऊपर से निर्मल स्वच्छ स्वेत खादी से लिपटा हुआ। चौड़ा मता उत्पन्न करने वाली सतेज आँखें; पतले और शील (expressive) ओठ एवं मुँह—यह जवा-! यह प्रौढ़ युवक, जिसका सौन्दर्य और जिसकी । एक राजकुमार की थी, आज स्वाधीनता का गाता हुआ, काँटों का ताज पहनकर कुछ अजीब । के साथ देश में घूमता फिरता है!

हरलाल का भाषण पढ़ने और फिर उनसे मिलने कितना अन्तर नज़र आता है! कहाँ एक आमूल री और कहाँ एक मिलनसार, हँसमुख, बेतकल्लुफ़ दय युवक! छात्रों में, युवकों में, सिपाहियों में, नों में, वह जहाँ रहते हैं वहीं लोगों को अपनी र्पित करते हैं। इसका कारण यह है कि उनका उनके ग़रीब से ग़रीब के साथ मिलने में भी बाधक ना। अभी चन्द महीनों की बात है; उनकी प्यारी रतीय स्त्रीत्व की परछाईं, बहन कमला बीमार थी। । तबीयत एकाएक बड़ी ख़राब हो गई। दूसरे दिन टे-से दुर्बल अस्तित्व को संकोच से और भी संकु-ाता, तर्क-वितर्क में डूबा हुआ मैं उनसे कुछ ज़रूरी ने उनके 'आनन्द-भवन' गया। दरवाजे पर ही नौकर मालूम हुआ कि इस समय अपनी पत्नी की बीमारी और सेवा-शुश्रूषा में लगे हुए हैं। पं० मोतीलालजी िये हुए महत्वपूर्ण पत्रों को पढ़कर एक तरफ़ रखते थे। मैं लौट चला। नौकर ने न जाने क्या सोचकर नकर जवाहरलालजी से कहा। वह दवा-दारू का ि कर नीचे दौड़ आये और बड़े प्रेम से मिले। बरदस्ती अपनी कोच पर बिठाया और देर तक । एवं समाज की बातें करते रहे। मैंने फिर देखा, ताज़गी है इस आदमी में! जवाहरलाल इस बात को कभी नहीं भूलते कि पहले वह मनुष्य हैं, फिर देश के एक सेवक हैं। और किसी नेता से, दिल खोलकर, इस तरह बैठकर बातें करना कभी संभव नहीं। मैंने उन्हें कालेज के लड़कों में मिलकर, उन्हींका अंग बनकर, घुल-घुलकर बातें करते देखा है। यह हृदय के यौवन का लचीलापन है जो प्रेम के आगे, भाव के सम्मुख अपनी मर्यादा और अपने महत्व को भूल जाता है। जवाहरलाल को इस रूप में देख-कर अंग्रेजी कवि की ये लाइनें बार-बार याद आती हैं—

> Glorious it was to have been alive
> But to be young was very Heaven.

× × ×

जवाहरलाल का गार्हस्थ्य जीवन भी बहुत मधुर है। मैंने छोटे-बड़े अनेक नेताओं को देखा है जो अपने सामा-जिक या सार्वजनिक जीवन से घरेलू जीवन का सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाते। उनके घर में वह प्रेम की धारा दिखाई नहीं देती जिसे दूसरों में भी बहाने के लिए उनके सारे उपदेश और सारी क्रियात्मक शक्तियाँ लग रही हैं; पति-पत्नी का, भाई-बहन का, पिता-पुत्र का सम्बन्ध निरा-नन्द हो रहा है पर जवाहरलाल के यहाँ यह बात नहीं। साध्वी कमला का समय जवाहरलाल की चिन्ता में जाता है और जवाहरलाल, ख़तरों के बीच निर्द्वन्द्व प्रवेश करते हुए भी, अपनी जीवन-संगिनी को नहीं भूलते। एक बार बहन कमला को, जब मैं जेल में था, वहीं देखा। हम लोगों से मिलने आई थीं। मैं देखकर चौंक पड़ा। नेहरू-परिवार की यह देवी कैसी सूनी, कैसी गंभीर और भोलेपन की दुनिया में विचरती मालूम पड़ती थी! कठोर कर्तव्य से उत्पन्न वेदना एक ओर, और पति की शुभाकांक्षा से उत्पन्न प्रेम की गरिमा दूसरी ओर। वह जवाहरलाल पर गर्व करती हैं पर सदैव उसे उनकी चिन्ता लगी रहती है। अच्छी तरह जानती हैं कि जिस रास्ते में पैर डाला है उसमें कठिना-इयाँ पग-पग पर हैं, गिरफ्तारी और जेल की कठोरता की पूरी संभावना है पर दिल नहीं मानता, ममता मानने नहीं देती तो उस गौरव की ऊँचाई पर उन्हें देखकर हृदय फूला भी नहीं समाता। यह प्रेम का तक़ाज़ा है, जिस पर कर्तव्य ने सारी ठेस लगा दिया है। उस ठेस

रिपुदमनसिंह को गद्दी से उतारकर राज्य का शासन एक कमेटी के हाथ में दिया। इससे असन्तुष्ट हो अकालियों ने सत्याग्रह आरम्भ किया और उनपर भयंकर अत्याचार होने लगे।

दिल्ली-कांग्रेस के समाप्त होने पर पण्डित जवाहरलाल नाभा के प्रश्न को समझने के विचार से उस राज्य में गये और कुछ अकाली जत्थों से भेंट की। इसी समय १४४ धारा के अनुसार आज्ञापत्र निकालकर उन्हें राज्य में घूमने की मनाही की गई और इसकी अवहेलना करने पर वह गिरफ्तार कर लिये गये तथा १४३ और १८८ के अनुसार मुकदमा चलाया गया।

मुकदमे में पण्डित जवाहरलाल अपराधी ठहराये गये और एक अभियोग में दो वर्ष तथा दूसरे में ६ मास कैद की सज़ा दी गई। पीछे दोनों सज़ायें मुलतवी की गईं और अब तक मुलतवी ही पड़ी हैं।

१९२२ में पण्डित जवाहरलाल नेहरू सर्वसम्मति से प्रयाग म्युनिसिपलिटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९२५ तक बड़ी योग्यता और निर्भीकता से यह काम किया। इनके प्रबन्धकाल में प्रयाग म्युनिसिपलिटी ने बड़ी उन्नति की। इस बात को तात्कालिक कमिश्नरों ने भी, वार्षिक रिपोर्टों की आलोचना करते हुए, स्वीकार किया है।

१९२६ के आरम्भ में, पत्नी कमला के बीमार पड़ने और क्षय रोग के चिन्ह प्रकट होने पर जवाहरलाल उसे लेकर स्वीज़रलैंड गये और वहाँ सैनटोरियम में रहने के बाद पत्नी के कुछ स्वस्थ होने पर, फरवरी १९२७ में भारतीय राष्ट्र-सभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य-विरोधी संघ के जेनेवा अधिवेशन में सम्मिलित हुए और अभी तक संघ की कार्यसमिति के सदस्य हैं। सोवियट सरकार के निमन्त्रण पर नवम्बर १९२७ में रूस गये और वहाँ रूसी प्रजातन्त्र के दशम वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँ उन्होंने साम्यवाद का व्यावहारिक रूप देखा तथा यूरोपीय साम्राज्यवादी राष्ट्रों की कुटिल नीति का अध्ययन करके स्वदेश लौटे।

स्वदेश लौटने पर झाँसी के युक्तप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन, पंजाबप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन तथा अन्य सभा-सम्मेलनों के सभापति की हैसियत से जो भाषण किये हैं, उनमें उनकी यूरोप-यात्रा के अनुभवों एवं विचारों का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। जवाहरलाल जब यूरोप से लौटे, एक बिलकुल नई ... लेकर भारतीय राजनीति में प्रविष्ट हुए। अभी तक ... नेता ने समाज-व्यवस्था के नूतन-निर्माण की उपयोगिता लोगों के सामने न रक्खी थी। इस बार वह न केवल एक सिपाही और नेता वरन् समाज-विधायक के रूप में भी हमारे सामने आये। आगमन से देश के युवक-आन्दोलन को बड़ी स्फूर्ति ... और बंगाल-प्रान्तीय छात्र-सम्मेलन एवं बम्बई ... सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से जो भाषण इन्होंने दिये ... इनके क्रान्तिकारी विचार बड़े व्यापक रूप में प्रकट ... १९२७ में हिन्दुस्तानी सेवा-दल तथा मद्रास के ... प्रजातन्त्र परिषद् के सभापति हुए। इसके साथ ही ... समस्या का अध्ययन करके इन्होंने मजूर-आन्दोलन ... विशेष भाग लेना शुरू किया और १९२९ में ... मजूर-कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के सभापति की ... से इन्होंने वर्तमान समाज-गठन की मूलभूत ... का खाका बड़ी कुशलता के साथ खींचा। १९२... कांग्रेस में इन्होंने स्वतन्त्रता का प्रस्ताव उपस्थित ... और पुराने विचार के नेताओं के आनाकानी ... कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य घोषित करा लिया। १९२८ में इन्होंने 'भारतीय स्वाधीनता-संघ' का ...

इस प्रकार १९२३ से १९२९ तक (बीच के प्रवास-काल को छोड़कर) ये बराबर कांग्रेस के ... रहे हैं और इस समय, भारत के राष्ट्रपति होने के ... मजूर-आन्दोलन, युवक-आन्दोलन तथा स्वाधी... के खास नेताओं में हैं।

(५)

विश्लेषण

जवाहरलाल का सबसे बड़ा गुण यह है ... (Adventure) के लिए उनके अन्दर बड़ा गहरा ... है। यह उनका यौवन-धर्म है। जिधर कठिनाइयाँ होंगी, रास्ता कँटीला होगा, बलिदान और उत्सर्ग ...

ा, इधर खिंचने के लिए वह अपनी प्रकृति से दूर हैं। उनकी गिनती उन 'स्थितप्रज्ञों' में नहीं की जा [सक]ती जो भूख से व्याकुल जनता को, देखकर उनके बीच कूद [प]ने के लिए केवल इसलिए तैयार नहीं होते कि परिस्थिति [कठि]नाइयों से पूर्ण है और 'लाभ' कुछ न होगा। [उनक]ा जीवन बलिदान के लिए है।

किन्तु इस मूल्यवान भावमयता को उन्होंने आंच में तपाकर बहुत ऊँचा उठा दिया है। यह उनमें ही जल-समाप्त होने की चीज़ नहीं, दूसरों में भी छूत से ही, [उन्हें] जला देने वाली चीज़ बन गई है। जो समझते हैं कि [जवा]हरलाल एक भावुक युवक मात्र हैं, वे भूलते हैं—यद्यपि [अप]ने लिए तो मैं यह कह सकता हूँ कि यदि वह इतना [ही होते] तो भी बहुत क़ीमती चीज़ होते। पर जवाहरलाल का [संय]म, उनकी गंभीरता अपूर्व है। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति [ने ठी]क ही लिखा था कि 'जवान कन्धों पर बूढ़ा सिर' [कहा]वत जवाहरलाल के सम्बन्ध में पूर्णतः चरितार्थ होती [है।] उनमें ब्राह्मणत्व का त्याग है और यह स्वाभाविक त्याग [ही उ]नका ओज है। पिता, मोतीलालजी में, त्याग के साथ [क्ष]त्रियत्व का अभिमान और क्रोध भी है। जवाहरलाल के [लिए] त्याग करना उनके स्वभाव में दाख़िल हो गया है। [जिन] लोगों ने इन पिता-पुत्र को नज़दीक से देखा है, वे उन [लोगों] पर ज़रूर झुंझलाये होंगे जो जवाहरलाल के राष्ट्रपति-[पद] पर चुने जाने पर यह कहकर नाक-भौं सिकोड़ते थे कि [व]ह भावुक और युवक हैं। यद्यपि भावुक और युवक [होना] कोई पाप नहीं, गुण ही है पर जो ऐसा कहते और सम-[झते] हैं वे जवाहरलाल को जानने का दावा नहीं कर सकते [वे] अपनी बुद्धि का छिछलापन ही प्रकट करते हैं। "बड़े [नेहरू] (मोतीलालजी) की बूढ़ी छाती में आज भी जवान [दिल] खेल रहा है। बोलते हैं तो बच्चों की तरह हँसते हैं। हँसते हैं तो हँसी को दबाते नहीं, खुलकर हँसते हैं—[हँसी] को हँसी समझकर हँसते हैं परन्तु छोटे नेहरू (श्री [जवा]हरलालजी) बोलते हैं तो हँसने का नाम नहीं। [उन्हें] देखकर प्रतीत होता है मानो सारे संसार की ज़िम्मे-[दारी] के बोझ से दब गया है; अगर मुस्कराये भी तो मानो [उपकार] कर दिया। हँसी आ गई तो उसे पाप समझकर दबा दिया। यह बात सर्वसाधारण के सामने की है। × × × सभा में गंभीर से गंभीरतम बन जाते हैं। छोटे नेहरूजी की चंचल सुकुमार पुत्री कांग्रेस के पण्डाल में अपने दादा की टोपी को ही उतारने का साहस करती है, अपने पिता की टोपी को नहीं। मानो छोटे नेहरूजी हिंसा, हास्य और हुल्लड़ को महापाप समझते हैं। × × × इन विशेषताओं के कारण ही मौलाना मुहम्मदअली ने बड़े नेहरू को 'जवान बूढ़ा' और छोटे नेहरू को 'बूढ़ा जवान' कहा था।"*

जवाहरलाल की दूसरी विशेषता उनकी *निर्भीक* सिद्धान्तप्रियता है। १९२० से आज तक उन्होंने जो समझा उसी पर चलते रहे। कभी उन्होंने कौंसिलों का समर्थन नहीं किया; कभी विधायक कार्यक्रम के महत्व को कम नहीं होने दिया। जब बड़े-बड़े नेता प्रवाह में बह गये, वह अपने सिद्धान्त पर अटल रहे। भारतीय राजनीति के उतार-चढ़ाव में एक शिला की भांति वह अटल रहे हैं। उनके इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में न झुकने वाले स्वभाव ने, साधारण प्रेक्षकों में, ग़लतफ़हमी भी पैदा की है। मेरे एक आदरणीय मित्र ने, २-३ महीने पहले, बातचीत के सिल-सिले में मुझसे कहा कि जवाहरलाल का कोई ख़ास सिद्धांत नहीं मालूम पड़ता। मुझे हँसी आ गई। यही मित्र जब लाहौर-कांग्रेस से लौटे तो उनके मुँह से प्रशंसा के फूल ही झड़ते थे। पारसाल कलकत्ता-कांग्रेस में महात्माजी के दबाने पर भी, वह समझौता के लिए राज़ी न हो सके। दिल की वेदना के कारण पण्डाल तक में न गये। यह सब बातें उनकी सिद्धान्तप्रियता की द्योतक हैं।

जवाहरलाल का अनुशासन (Desciplinc) बड़ा ज़बर्दस्त है। इस मामले में वह बड़ा-छोटा, अपना-पराया किसी का विचार नहीं करते और उसे बड़ी बेरहमी से इस्ते-माल करते हैं। इस विषय में उनके सामने और कोई नेता खड़ा नहीं किया जा सकता। नियम-पालन करने और कराने में कभी मैंने उन्हें झुकते नहीं देखा। जेल में और बाहर दोनों जगह जिन्होंने उन्हें देखा है, वही उनके नियम-

* 'अर्जुन' (श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति), २९ दिसम्बर १९२९ ई०

पालन की कठोरता का ठीक-ठीक अन्दाज़ लगा सकते हैं। स्नान, भोजन, चर्खा कातना,खेलना, पढ़ना सब नियमित! जेल में वह अपने हाथ से स्थान की सफ़ाई करते, साबुन से कपड़े साफ़ करते, पुस्तकें संभालकर रखते, वर्तन मलते तथा विस्तर धूप में डालते थे और इन कामों में अपने प्रिय से प्रिय साथी की सहायता अस्वीकार कर देते थे। अब भी वह बड़े सवेरे उठकर पहले अपना कार्यक्रम बनाते हैं और फिर साधारण दैनिक आवश्यकताओं से निबटकर काम में लग जाते हैं। आज का काम कल पर नहीं छोड़ते और इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी के कार्यालय में या अन्यत्र उनके साथ या उनके नीचे काम करनेवाले कार्यकर्ता या कर्मचारी उनसे परीशान रहते हैं। वह एक कठोर काम लेने वाले साथी (Hard Task-Master) हैं। भारतीय कांग्रेस-कमेटी के कार्यालय को अपनी सुव्यवस्था से उन्होंने सरकारी शासन-विभाग के दफ्तर से भी अधिक सुव्यवस्थित कर दिया है। असहयोग के ज़माने में जब गिरफ्तारी का वारण्ट लेकर पुलिस-अफ़सर उनके पास पहुँचा और उसने १०-१५ मिनट का समय घरवालों से मिलने और तैयार होने के लिए दिया तो जवाहरलाल ने तुरन्त सहायक से कहा—"लाओ; जरूरी पत्रों के उत्तर लिखा दूं।" जब लोग ऐसे समय स्नेह-विभोर होकर स्वभावतः घर वालों से मिलना चाहेंगे, जवाहरलाल ने वह थोड़ा समय कार्यालय की व्यवस्था करने और पत्रों का उत्तर लिखने में व्यय किया। यह उनकी कड़ाई है; यह उनकी लगन है!

निर्दय नियम-पालन, तपस्या और गंभीर मुद्रा के कारण इन ५-७ वर्षों के अन्दर ही जवाहरलाल शरीर की दृष्टि से बहुत दुर्बल हो गये हैं। उन्होंने अपनी देह की कभी परवा न की और इसीलिए उनका सौन्दर्य एक सुन्दर विधवा के करुण एवं गंभीर मुख की याद दिलाता है। उन्होंने अपनी सारी कामनाओं को संयम की आग में एक सच्चे साधक की भांति तिल-तिल करके जलाया है। यद्यपि वह दूसरों की भांति ऊंचे नैतिक उपदेश नहीं देते, और दूसरों को इस सम्बन्ध में छूट भी बहुत देते हैं, अपने लिए उनकी कसौटी बड़ी कठोर रही है। विगत ६-७ वर्षों से वह नियमपूर्वक इन्द्रिय-संयम कर रहे हैं; यद्यपि उनके इस मूक व्रत का विज्ञापन नहीं हुआ और न होना चाहिए था।

यद्यपि उनका दिल अमीर है, गरीबी को उन्होंने [illegible] की भांति अपना लिया है। मैंने उन्हें बिना बिस्तर के [illegible] सब के साथ सोते देखा है; मैंने उनके शरीर पर [illegible] (पर साफ़) कपड़े देखे हैं; मैंने उन्हें सब के साथ [illegible] पूर्वक चने चबाते देखा है। अभी लाहौर-कांग्रेस के [illegible] जब काम में व्यस्त होने के कारण उन्होंने जलपान, [illegible] होने पर भी, लौटा दिया स्वयं-सेवकों द्वारा दिये गये [illegible] वह अस्वीकार न कर सके। उनकी तपस्या और उनका [illegible] विज्ञापन का भूखा नहीं। गाँवों में पैदल २०-२० [illegible] उन्हें चलना पड़ा है और मैं दूसरे किसी ऐसे नेता को [illegible] जानता जिसने इस प्रकार २०-२० मील भूखा-प्यासा [illegible] चलकर किसानों के बीच साधारण सिपाही की [illegible] उन्हींका बनकर काम किया हो। इसी निर्भीक और त्याग के कारण वह डंडों की मार में भी शांति के मुसकराते हुए देखे गये हैं; मानो शुद्ध अहिंसा, [illegible] चैलेञ्ज करके हंस रही हो। कष्ट, दुःख और ख़तरे के उनमें बड़ा झुकाव है। अपने मुकदमे में, कचहरी में उन्होंने कहा था—"*यहाँ बाहर! यहाँ तो सुनसान है। सब साथी जेल में हैं, मैं भी जाना चाहता हूँ।*"

शीघ्र निर्णय की शक्ति जवाहरलाल में अद्भुत है। वह दीर्घसूत्री नहीं। बहुत जल्द निर्णय करते और तदनुसार काम में लग जाते हैं। ज्यादा तर्क-वितर्क और विवाद [illegible] उन्हें अच्छा नहीं लगता। लम्बी-चौड़ी बहसें उनके [illegible] हेच हैं। स्वराज्यदल के जन्म के समय एक बार बूढ़े नेताओं के सैद्धान्तिक विवादों से ऊबकर वह दूर बैठ गये और उनकी आँखें भर-सी आईं, मानों वे यह कह रही थीं कि '[illegible] माँ गुलामी की पीड़ा से चीख रही है, तुम लोग व्यक्ति[illegible] महत्ता एवं सिद्धान्तों के विवाद में पड़े हो!'

× × ×

शैली, कीट्स और बायरन के वह बड़े प्रेमी हैं। [illegible] कवि उमर ख़ैयाम की रुबाइयों के अंग्रेज़ी अनुवाद [illegible]

रश्य हैं। गेते के 'फाउस्ट' के बड़े प्रशंसक हैं। सटाय की अपेक्षा ※ तुर्गनीव की वह अधिक प्रशंसा ते हैं। वह एक अच्छे पाठक हैं और उनका अध्ययन न परिस्थितियों में भी जारी रहता है। हिन्दी साहित्य भी अध्ययन चलता रहता है। समाज-शास्त्र की गम्भीर स्याओं पर आजकल वह एक दार्शनिक की भांति विचार ते रहते हैं और अंग्रेजी लेखकों में बर्ट्रेण्ड रसेल का अध्य- करने के लिए लोगों को आम तौर पर कहा करते हैं। त्मा गांधी ने एक बार उनके लिए 'व्यावहारिक आदर्श- ी' शब्द का प्रयोग किया था। यदि इस शब्द को टकर हम इसे 'आदर्शवादी व्यावहारिक' कर दें तो जवाहर- ल की भावमयता, आदर्श-प्रेम और कर्तव्य-बुद्धि का तुलन अधिक अच्छी तरह हो सकता है।

इसमें कोई शक नहीं कि 'प्रताप' के लेखक के शब्दों में सका व्यक्तित्व उत्साह, कर्मण्यता और अनुशासन का रूप है। × × उसकी दृष्टि में निर्मल आदर्श की ज्योति उसके चरण-निक्षेप में सुसंस्कृति और आत्म-गौरव की व है। उसके हृदय में घोर असन्तोष है हमारी वर्तमान माजिक विशृंखलता के प्रति; उसके दिल में दर्द है, नंगों भूखों के लिए; उसके मन-मन्दिर में एक देवता आसीन समानता और लोक-कल्याण का। *सात्विक क्रोध, निष्ठुर कार्यशीलता, शुद्ध आदर्शवाद, शीघ्र निर्णय-शक्ति और बड़ी प्यारी झुंझलाहट × × जवाहरलाल की विशेषतायें हैं।"*

※ प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जवाहरलाल, यदि ऐसे ही रहे तो, निकट भविष्य में अधिकाधिक आदृत और अनुकरणीय समझे जायँगे। इसका कारण यह है कि एक तो उनमें गांधीवाद और लेनिनवाद का समन्वय है और दूसरे वह पारस्परिक दुर्बलताओं, परिपाटियों, रूढ़ियों एवं अन्ध-विश्वासपूर्ण असमानता की भावनाओं के सर्वथा परे हैं। उनमें धार्मिक पक्षपात नहीं; उनमें जातिगत भेदभाव नहीं, उनमें प्राचीन बातों के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति नहीं। यह ठीक है कि ये विशेषण कुछ और नेताओं के नामों के साथ भी लगाये जा सकते हैं पर उन नेताओं को इन बुराइयों से दूर होने के लिए संयम और संघर्ष करना पड़ता है पर जवाहरलाल स्वभावतः उनसे निर्लिप्त हैं। उनकी रूढ़िहीनता समझदार और उपयोगितावाद के अनुसार सोच-विचार कर निष्कर्ष पर पहुँचे हुए सुधारकों का रूढ़ियों का विरोध नहीं है; उच्चकुल के बच्चे जैसे अपने माता-पिता के जात-पाँत, छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदकारी विचारों से स्वभावतः रहित होते हैं, वैसे ही यह भी रूढ़ियों से रहित हैं। इसलिए भविष्य में, आज़ादी की लड़ाई में भी और उसके बाद भी, ज्यों-ज्यों युवकों और विश्ववादियों का ज़ोर बढ़ता जायगा, वह दिन-दिन क़ीमती साबित होते जायँगे।
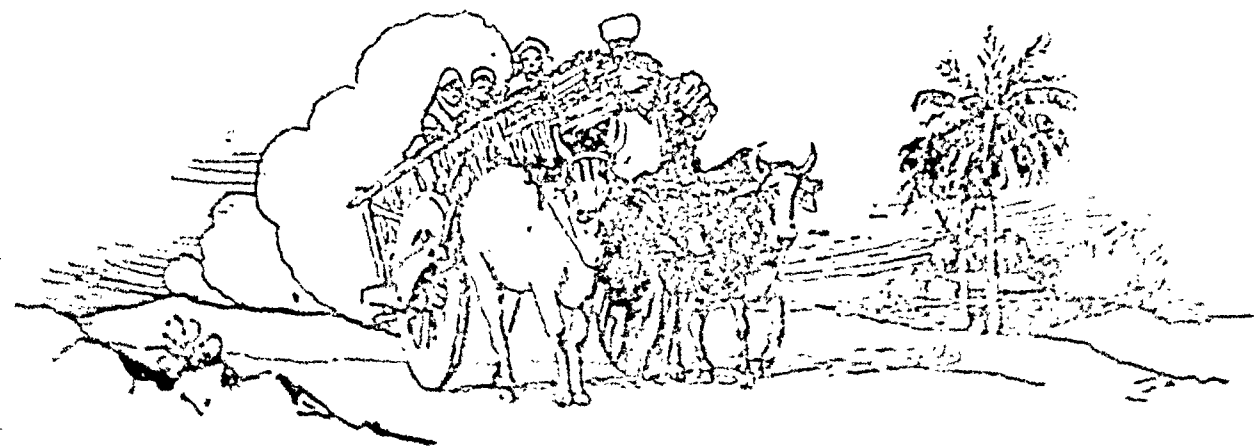
विविध

राजपूताना का इतिहास तृतीय खंड*

(समालोचना)

[श्री 'हंस']

भारतवर्ष के ऐतिहासिकों में ओझाजी एक सम्माननीय स्थान रखते हैं। भारत के प्राचीन इतिहास और राजपूत-इतिहास के तो आप विशेषज्ञ हैं। 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' आदि अनेक अमूल्य ग्रंथ लिखने के कारण आपकी ख्याति केवल भारतवर्ष ही तक नहीं, इंग्लैण्ड, जर्मनी, आस्ट्रिया और हालैण्ड आदि देशों में भी है। भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी के सौभाग्य से आप-जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और मौलिक लेखक हिन्दी के परम भक्त हैं। आपका एक-एक ग्रन्थ तथा एक-एक लेख हिन्दी में उत्कृष्ट और आदरणीय साहित्य उत्पन्न करता है। कुछ वर्षों से आप 'राजपूताना का इतिहास' लिख रहे हैं। राजपूत इतिहास के सम्बन्ध में आप संसार भर में अद्वितीय और प्रामाणिक विद्वान् हैं। क़रीब ४० वर्ष तक राजपूताना में रहकर उसके इतिहास के अध्ययन में निरन्तर अध्यवसाय और लगन के बाद आपने यह अमूल्य वृहद् ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया है। इस ग्रन्थ के अभी तक तीन खण्ड निकल चुके हैं और सम्भवतः ५–६ और निकलेंगे। प्रत्येक खण्ड में ४०० पृष्ठ रहते हैं। प्रथम खण्ड में राजपूत, राजपूताना का बहुत प्राचीन समय का संक्षिप्त इतिहास, भूगोल तथा अन्य आवश्यक बातों के बाद उदयपुर का प्राचीन इतिहास प्रारम्भ किया गया है। दूसरे खण्ड में महाराणा उदयसिंह तक उदयपुर का इतिहास समाप्त हुआ है।

* लेखक—रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर।

तीसरे खंड में महाराणा प्रताप से महाराणा स[illegible] तक का इतिहास लिखा गया है। यही तीसरा खं[illegible] समय हमारे सामने है।

उदयपुर के इतिहास को क्रमबद्ध तथा वैज्ञानि[illegible] से लिखने का प्रथम प्रयत्न कर्नल टाड ने किया था। बहुत वर्षों बाद महाराणा सज्जनसिंह ने अपने यहाँ इ[illegible] कार्यालय की स्थापना कर 'वीर-विनोद' नाम से उ[illegible] का वृहद् इतिहास लिखाया। यह ग्रन्थ ७–८ [illegible] समाप्त हुआ है। इसमें सैकड़ों शिलालेखों आदि [illegible] सहायता ली गई है। वस्तुतः यह दूसरा प्रयत्न था तीसरा प्रयत्न श्री ओझाजी कर रहे हैं। जो ओझाजी की लेखन-शैली से परिचित हैं, उन्हें यह ब[illegible] आवश्यकता नहीं कि इस खंड में भी आपकी गवेष[illegible] तर्क-शक्ति का प्रमाण हमें स्थल-स्थल पर मिलता है। प्राचीन लेखकों की बातों को 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' न [illegible] प्रत्येक बात को युक्ति, प्राचीन शिलालेख और ग्रन्थ के आधार की कसौटी पर परखा है और जहाँ को[illegible] आपको अयुक्ति-संगत, दृढ़ाधार-रहित मालूम हुई, वहाँ अकाट्य युक्तियों से उसका तीव्र खंडन किया है। इस उदयपुर के प्राचीन इतिहास के तो अनेक भारी भ्र[illegible] निराकरण किया ही है, मुगलकालिक इतिहास की [illegible] को भी दूर करने की चेष्टा इस ग्रन्थ में की है। इस खंड में भी हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। य[illegible] प्रसिद्ध-सी बात है कि हल्दीघाटी की लड़ाई में अक[illegible] सेना की विजय हुई थी; परन्तु आपने मुसलमान [illegible]हासिकों (मुख्यतः अलबदायूनी) के आधार पर भलीभांति सिद्ध कर दिया है कि इस युद्ध में मह[illegible] प्रताप की पराजय नहीं हुई प्रत्युत अकबर की ही [illegible] हानि हुई (पृष्ठ ७४५–५५)। हल्दीघाटी के युद्ध के

आपने प्रताप का पीछा करते हुए दो मुसलमानों ारकर शक्तसिंह के अपने भाई की सहायता करने की । को भी निर्मूल बताया है (पृष्ठ ७५२)। आपका । है कि उस समय शक्तसिंह मुसलमानों के पक्ष में ो नहीं, इसलिए उक्त घटना कपोल-कल्पित है। परन्तु ो नम्र सम्मति में 'राजप्रशस्ति' का वर्णन इस घटना को सिद्ध करता है। यह हो सकता है कि शक्ता (शक्तसिंह) समय प्रताप की ही सेना में हो न कि टाड के लिखने नुसार बादशाह की सेना में, और किन्हीं दो मुगल सवारों ीछा करते देख वह अपने सेनापति तथा भाई प्रताप क्षा के लिए गया हो। 'राजप्रशस्ति' और टाड को । एक नहीं है। यह ठीक है कि अलबदायूनी के कथना- र उस समय शाही सेना थकी-माँदी और डरी हुई थी; । ऐसी अवस्था में भी कोई दो भी साहसी सवार न यह हमारी समझ में नहीं आता। इसके बाद ही ने 'महाराणा की पहाड़ों में स्थिति' शीर्षक देते हुए टाड के इस लेख का अकाट्य युक्तियों द्वारा खंडन । है कि प्रताप पहाड़ों में भटकता रहा, उसे भोजन भी मिलता था तथा एक दफा बिल्ली उसकी लड़की के रक्खी रोटी उठा ले गई, जिससे विचलित होकर प ने सन्धि के लिए अकबर को पत्र लिखा आदि ष्ठ ७६८-६९)। वस्तुतः यह नई गवेषणा करके ओझाजी महाराणा प्रताप के चरित्र को और भी उज्वल रूप में ा है।*

परन्तु इसके कुछ पृष्ठों के बाद 'महाराणा प्रताप की ्ति' शीर्षक से आपने महाराणा के निराश होकर मेवाड़ ने और भामाशाह के रुपये दे देने पर फिर लड़ाई के तैयारी करने की प्रसिद्ध घटना का भी खण्डन किया पृ० ७७५-७८)। आपकी मुख्य दलील यह है कि राणा कुम्भा और सांगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल त्ति अभी तक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभी न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहांगीर सन्धि होने के बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता, आगे आने वाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह अनेक महादान किस तरह देते और राजसमुद्रादि अनेक बृहत् व्यय-साध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते? इसलिए उस समय भामाशाह ने अपनी तरफ़ से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राजकोषों से रुपया लाकर दिया। ओझाजी की युक्ति का सार यही है। निस्सन्देह इस युक्ति का उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़ के राजा महाराणा प्रताप को भी अपने ख़ज़ानों का ज्ञान न हो, यह मानने को स्वभावतः किसी का दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रताप की शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्ता से इन्कार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाह ने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषों की ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंश का इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझाजी ने पृष्ठ ७८८ पर किया है, हमें बहुत संभव नहीं दीखता। एक ख़ज़ाञ्ची का यह तो साधारण-सा कर्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़ने पर कोष से रुपया लाकर दे। केवल इतने मात्र से उसके वंशधरों को यह प्रतिष्ठा (महाजनों के जाति-भोज के अवसर पर पहले उसको तिलक किया जाय) प्रारंभ हो जाय, यह कुछ बहुत अधिक युक्ति-संगत मालूम नहीं होता।

पृष्ठ ७६९ में ओझाजी ने कर्नल टॉड के इस कथन का बड़ी योग्यतापूर्वक खण्डन किया है कि प्रताप ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड़ हस्तगत न होगा, तब तक मैं और मेरे वंशज पत्तलों पर भोजन करेंगे, दाढ़ी रखायेंगे, घास पर सोयेंगे आदि। इसी प्रसंग में लेखक ने टिप्पणी में भिन्न-भिन्न राजवंशों की दाढ़ी के विविध रूपों का मनोरंजक विवेचन किया है, जो पढ़ने योग्य है। महाराणा प्रताप के जीवन की अनेक निराधार कल्पनाओं का निराकरण हो जाने से यह और भी अधिक उज्वल रूप में उपस्थित हो गया है। अस्तु।

प्रत्येक महाराणा की चरित्र के संबंधमें जो कुछ उपलब्ध हो सका, सब को पूरी छानबीन कर पण्डितजी ने इतिहास लिखा है। प्रत्येक घटना की पुष्टि के लिए उचित प्रमाण स्थल-स्थल पर देते गये हैं। जहाँ कहीं किसी बात के स्पष्टा-

* इसी सम्बन्ध में ओझाजी 'त्यागभूमि' के प्रतापांक में लेख भी लिख चुके हैं।—संपादक।

करण की कुछ भी आवश्यकता जान पड़ी, उन्होंने दे दिया है। भिन्न-भिन्न सरदारों के नाम आने पर टिप्पणी में उसका पर्याप्त परिचय दे देने से पाठकों को बहुत लाभ होगा। ओझाजी के लेखों या ग्रंथों में दी गई टिप्पणियाँ मूल पुस्तक से कम महत्वपूर्ण नहीं होतीं। उपर्युक्त क्रम इतिहास के प्रथम पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक रहा है। इसके कारण पाठकों को स्वतन्त्र स्वाध्याय का भी बहुत अवकाश मिल जाता है। कर्नल टॉड के 'राजस्थान' और 'वीरविनोद' की अपेक्षा बहुत अधिक घटनाओं का ठीक ज्ञान इस ग्रन्थ से होता है। ओझाजी की लेखन-शैली की यह एक मुख्य विशेषता है कि वह अन्य अनेक ऐतिहासिकों की भाँति कल्पनाशक्ति से काम नहीं लेते, परन्तु प्रत्येक घटना का जितना वर्णन प्राचीन आधारों से उपलब्ध होता है, नपा-तुला वही देने का प्रयत्न करते हैं। इससे हम सम्पूर्ण पुस्तक में घटनाओं का जैसा-का-तैसा और प्रामाणिक वर्णन पाते हैं। तारीखों और स्थानों के बिलकुल ठीक लिखने की तरफ़ विशेष ध्यान दिया गया है। औरंगजेब के जज़िया-कर लगाने के विरोध में जो प्रसिद्ध ऐतिहासिक पत्र मिलता है, उसके सम्बन्ध में विभिन्न ऐतिहासिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। ओर्मी (Orme) उसे महाराजा जसवन्तसिंह का और यदुनाथ सरकार उसे शिवाजी का लिखा मानते हैं, परन्तु ओझाजी ने अनेक युक्तियों द्वारा यह भलीभांति सिद्ध कर दिया है कि यह पत्र महाराणा राजसिंह का ही लिखा हुआ है (पृ० ८६१–६४)।

महाराणा अमरसिंह द्वितीय का वृत्तान्त लिखते हुए एक मनोरंजक कथा लिखी गई है कि महाराणा ने ब्राह्मणों, चारणों और भाटों से रुपये माँगे। ब्राह्मणों और चारणों ने तो किसी तरह दे दिये, पर भाटों ने देने से इन्कार किया और हज़ारों भाटों ने आकर राजमहल के आगे धरना दे दिया। अमरसिंह ने इसकी कुछ भी परवाह न कर उनपर हाथी छुड़वा दिया; वे सब भाग गये और उनके बिस्तरों में रोटियाँ तथा मिठाइयाँ मिलीं। महाराणा ने उन्हें शहर से निकाल दिया। उदयपुर से ५ मील दूर जाकर २००० भाटों ने आत्म-हत्या कर ली। इस कथा में हमारी नम्र-सम्मति में २००० की संख्या बिलकुल मान्य नहीं हो सकती। न जाने, ओझाजी इसे बिना टीका-टिप्पणी किये कैसे [छो]ड़ गये। २००० भाटों का आत्मघात कोई ऐसी साधारण घटना नहीं है, जिस पर कोई उपद्रव न हो जाय।

इन पंक्तियों के लिखने से कुछ समय पूर्व ही मेजर बी० डी० बसु की प्रसिद्ध पुस्तक 'राइज़ आफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया' हमारी आँखों से गुज़री। उस पुस्तक पढ़ते-पढ़ते हमारा यह विश्वास हो जाना स्वाभाविक था कि अंग्रेज़ इतिहासकार भी कूटनीतिज्ञ तथा [असत्य] लिखने में संकोच न करने वाले होते हैं। राजपूताने के इतिहास के द्वितीय खण्ड तथा तृतीय खण्ड के पूर्वार्द्ध में मुसलमान ऐतिहासिकों के वर्णनों का जिस अकाट्य युक्ति-क्रम द्वारा श्री ओझाजी ने खण्डन किया है, उसे देख हमारी यह उत्सुकता बहुत बढ़ गई कि देखें अंग्रेज़कालीन इतिहास के सम्बन्ध में लिखे गये अंग्रेज़ विद्वानों के [अति]रंजित अथवा असत्य इतिहास का ओझा जी ने [कितनी] उत्तम रीति से खण्डन किया है। परन्तु महाराणा भीमसिंह से अन्त तक (९८१-११३६) केवल एक स्थान (१०९२-९४ टिप्पण) सिवा, जो बहुत ही साधारण बात है, कहीं भी किसी भी अंग्रेज़ ऐतिहासिक के [किसी] कथन का निराकरण नहीं किया। अपितु, इसके विपरीत उन्हीं लेखकों के आधार पर ही मुख्यतः यह इतिहास लिखा गया है। केवल यही नहीं, वरन् अंग्रेज़कालीन इतिहास के पढ़ते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है [कि] लेखक ने राजपूतों और मुसलमानों के वृत्तान्त [लिखते] समय जिस तरह राजपूतों का पक्ष रक्खा है, उस [तरह] अंग्रेज-राजपूत संघर्ष में राजपूतों का विशेष पक्ष [ग्रहण] नहीं किया। वह इस समय के हालात को ऐसे लिख[ते] हैं जैसे अंग्रेज भी भारतवर्ष के अथवा उदयपुर के [ही] लोग हों, ठीक उसी तरह जैसे चूंडावत और [शक्तावत] आदि राज्य के भिन्न-भिन्न विरोधी पक्ष थे। ऐसा मा[लूम] पड़ता है कि लेखक के विचार में अंग्रेजों का आना [भी] उसी तरह साधारण घटना थी, जिस तरह राजपूताने में मराठों का आना। विदेशी-प्रवेश अथवा उदयपुर राज्य की पराधीनता का वृत्तान्त लिखते समय लेखक के हृदय [को] शायद कोई चोट ही नहीं पहुँची। इस काल के इति[हास]

र्णन-शैली की ध्वनि स्पष्ट वर्तमान अंग्रेज शासकों के में निकलती दिखाई देती है।

मराठों और राजपूतों के संघर्ष का वृत्तान्त लिखते य यदि वह मराठे इतिहासज्ञों के विचारों का संक्षिप्त यहाँ देने की कृपा करते तो शायद मराठों के प्रति कुछ क न्याय होता। कर्नल टॉड महाराणा भीमसिंह के य विद्यमान था, इसलिए उसके कथन अधिक प्रामा- क होंगे, यदि यह युक्ति ठीक मानी जाय, तो फ़रिश्ता अब्बुलफ़ज़ल के इतिहास भी सत्य मानने होंगे, मानने के लिए ओझाजी बहुत कम तैयार हैं। कर्नल कूटनीतिज्ञ अंग्रेजी सरकार का एजेंट था। जहाँ उसे राज- से प्रेम था, वहाँ वह अंग्रेजी सरकार के दुश्मन मराठों त्रुता भी बहुत था। मराठों और राजपूतों को अलग- ग रखना उस समय कम्पनी की नीति थी। इसलिए संभवतः कर्नल टॉड ने इसी कूट उद्देश्य की पूर्ति के मराठों के अत्याचारों को अतिरंजित कर दिखाया हो। मविलास' से, जो उसी समय का बना काव्य है, जी ने मराठों के अत्याचारों के सम्बन्ध में कोई उद्धरण दिये। इस सम्बन्ध में ओझा जी जहाँ महाराष्ट्र के कुशल राजनीतिज्ञ महादाजी सिंधिया को स्वार्थी, गये हैं, (पृ० ९७९), वहाँ अंग्रेजों के ज़बरदस्ती वाड़ा-प्रदेश पर अधिकार करने पर स्वयं कोई आलोचना करते। उदयपुर के साथ जो अंग्रेजों की संधि हुई अथवा उसके बाद समय-समय पर जो क़ौलनामे तैयार या स्वीकृत हुए, उनके सम्बन्ध में भी ओझाजी विल- चुप हैं। उनका उद्देश्य क्या था, उदयपुर को उससे नी हानि हुई, उनकी स्वाधीनता में कितनी कमी हुई, आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर कुछ भी न लिखा देखकर आश्चर्य होता है। जब मेरवाड़ा लेने के लिए महा- इतना प्रयत्न कर रहे थे, तो १८२३ में मीयादख़तम पर भी फिर आठ सालों के लिए पट्टा कैसे लिखा (पृ० १०२२-२३) और अन्त में अब तक क्यों नहीं महाराणा भीमसिंह को अयोग्य कहकर टॉड अपने हाथों में शासन-प्रबन्ध लेना कहाँ तक उचित अधिकारपूर्ण था, महाराणा जवानसिंह के अजमेर जाने में क्या अंग्रेजी सरकार का अनुचित दबाव प्रधान कारण नहीं था? १८५७ के विप्लव में महाराणा ने नीमच की रक्षा करना क्या बिना किसी दबाव के वस्तुतः अपना कर्तव्य समझा था (पृ० १०७८) और सहूलियत (?) के साथ अमल में लाये जाने की संभावना न देखकर ही (पृ० ११३६) अथवा किसी अन्य कारण से सरकार ने मेरवाड़ा का प्रदेश मेवाड़ को वापस नहीं दिया? आदि अनेक बातों पर ओझाजी चुप ही रहे हैं। यदि श्री ओझाजी बी० डी० बसु की उक्त पुस्तक पढ़ते, तो शायद उन्हें मालूम हो जाता कि जो अंग्रेजी सरकार अफ़गानि- स्तान के शान्त राज्य को नष्ट करने के लिए ईरान में उसके ख़िलाफ़ षड्यन्त्र द्वारा उसे कमजोर कर तथा दूसरी तरफ से अफ़गानिस्तान में ही गृहयुद्ध कराकर ऊपर से अफ़गान सरकार को सहायता का आश्वासन देकर अपने कब्जे में कर सकती थी, बहुत संभवतः उसी का उद- यपुर के भिन्न-दलों में परस्पर झगड़ा कराने में भी हाथ हो। इसी तरह जो सरकार महाराष्ट्र की शक्तियों को कमजोर करने के लिए शान्त और वीर पिण्डारियों को प्रलोभन दे- देकर शहरों में लूट-मार करने के लिए उकसा सकती थी, क्या मालूम कि अमीरख़ाँ के उदयपुर को लूटने में भी उसी का हाथ हो? इन सब बातों की गंभीर विवेचना तथा गवेषणा आज करने की आवश्यकता है।

आज ऐसे ऐतिहासिकों का भी एक दल होगया है, जो १८५७ के विप्लव को बग़ावत या विद्रोह न कहकर स्वातंत्र्य- संग्राम कहते हैं। परन्तु ओझाजी उसे विद्रोह ही कहते हैं। वीरवर तांतिया टोपी के सम्बन्ध में आपने जो संक्षिप्त परि- चय दिया है, उसकी ध्वनि भी उसकी वीरता, धीरता, रण- कुशलता और देश-प्रेम को देखते हुए कुछ ठीक नहीं जँचती। १८५७ के इस विप्लव में 'महाराणा ने अंग्रेज़ी सरकार की बहुत अच्छी सेवा बजाई' या देश के प्रति विद्रोह किया, यह अभी विवादास्पद प्रश्न ही है।

आज भारतवर्ष स्वराज्य की लड़ाई लड़ रहा है। राज- नैतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से वह स्वतंत्र विचार करने लगा है। इसलिए आवश्यक है कि हमारा प्रत्येक विषय और कार्य राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हो,

हमारा साहित्य भी राष्ट्रीयता का पूर्ण लक्ष्य रखते हुए हमें उत्साहित करे। श्री ओझाजी के उपर्युक्त इतिहास में यह बड़ी भारी कमी है, इसलिए हम कुछ विस्तार से लिख भी गये हैं।

इसके अतिरिक्त हम दो-एक नम्र-निवेदन श्री ओझाजी से और भी कर देना चाहते हैं। आपने इस इतिहास में उदयपुर की सामाजिक और धार्मिक प्रगतियों का वर्णन नहीं किया। हिन्दी में अब तक बहुत कम इतिहास ऐसे लिखे गये हैं—एक तो गुरुकुल के आचार्य रामदेवजी का लिखा 'भारतवर्ष का इतिहास' सभ्यता का इतिहास है, दूसरे ज्ञानमण्डल से प्रकाशित 'भारतवर्ष के इतिहास' में भाई परमानन्दजी ने स्थल-स्थल पर राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं पर संक्षेप से विचार किया है। हमारी दूसरी प्रार्थना यह है कि ऐतिहासिक जगत् आपकी नवीन युक्तिपूर्ण प्राचीन इतिहास-सम्बन्धी गवेषणाओं को जानने को अत्यन्त उत्सुक है, इसलिए यदि आप प्राचीन इतिहास पर अधिक प्रकाश डालते हुए वर्तमान-कालिक इतिहास को संक्षेप से लिख दें तो लोग थोड़े समय में ही आपकी महत्वपूर्ण गवेषणाओं से अधिक लाभ उठा सकेंगे।

राजपूताना का इतिहास उपर्युक्त एक-दो कमियों को छोड़कर सर्वांश में पूर्ण है। ओझाजी शोध के बड़े भारी विद्वान् हैं। उन्हें सोलंकियों के प्राचीन इतिहास लिखने पर ग्रियर्सन ने लिखा था—"भारत का प्राचीन इतिहास कैसे लिखा जाना चाहिए... इसका रास्ता बताने के लिए और मेरा विश्वास है, सफल मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।"* इन शब्दों में बिलकुल अत्युक्ति नहीं है। राजपूताना का इतिहास में भी ठीक वही शैली है। इतिहास के लेखकों को उनकी शैली का अनुकरण करना चाहिए।

उक्त तृतीय खंड में १० चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। अन्त में प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी और इतिहास से रुचि रखने वाले से अनुरोध करते हैं कि वह 'राजपूताना का' अवश्य पढ़े।

* May I congratulate you on being, I believe a pioneer, and a most suceessful pioneer, in showing how early Indian history should be written.

विश्व-भारती में ग्राम-सुधार के कार्य

(श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह)

कवि रवीन्द्रकी विश्व-भारती संस्था की ख्याति ही नहीं है, वरन् वह कार्य कर रही है। उनके ग्राम-सुधार-विभाग के कार्य का यहाँ दिया जाता है, जिससे इसका कुछ अन्दाज को होगा। सन् १९२२ में ग्रामवासियों की सहायता के लिए यह स्थापित हुआ था। ऐसे निःस्वार्थ और कार्यकर्ता इसमें हैं, जिन्हें ग्राम-निवासियों से सच्चा है और सेवा करना ही जिनका धर्म है। इन्हीं लोगों निःस्वार्थ सेवा से आज यह विभाग सफलता पा रहा है। श्री कालीमोहन घोष इस विभाग के संरक्षक हैं। पास के गाँवों से मलेरिया दूर करने के लिए इस ने जो प्रयत्न किये वे प्रशंसनीय हैं। इस विभाग की से कलकत्ता से अच्छे-अच्छे अनुभवी डाक्टर और बुलाये गये और उसके कारणों की जाँच करवाई ग्राम-सेवक (स्काउट) दल ग्राम-सेवा का प्रधान रहा। ग्रामों में रात्रिशालायें खोली गईं। आग के लिए फ़ायर ब्रिगेड बनाया गया। आपस के निबटाने के लिए पंचायतें बनाई गईं। ग्रामीणों अपने-अपने घरों में तरकारियाँ लगाना उनकी आमदनी बढ़ा दी गई तथा बीमारी के समय दवा करके उन्हें जीवन-दान दिया गया। इन सब कार्यों ग्रामीणों की सहानुभूति प्राप्त हुई तथा वे स्वावलंबी

यहाँ जो स्काउट दल है, वह 'ग्राम-सहायक-दल' नाम से पुकारा जाता है। वह अन्य स्काउटों की केवल ऊपरी टीमटाम या नियम-क़ायदों में अटका न ग्रामों की सच्ची सहायता और सेवा करता है। इन्हीं त्यागी नवयुवकों की सहायता से दो गाँव जलने से लिये गये। अगर इनकी सामायिक सहायता न मिलती

[illegible] ही वे जलकर खाक हो गये होते। मेलों के समय सहायक-दल के सदस्यों ने जनता की जो सेवा की [illegible]भी प्रशंसनीय है। श्री धीरेन्द्रनाथराय सरीखे नेता पाकर यह विभाग उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है।

आस-पास के गाँवों को मलेरिया से बचाने के लिए [illegible]ेत उद्योग शुरू कर दिया गया है, जिसका नाम [illegible]रिया-विरोधी आंदोलन (Anti-malaria campaign) [illegible]सने गाँवों के तालाबों की सफाई कर पीड़ितों की सेवा और दवा बाँटना आरम्भ किया। उस समय १० फ़ी [illegible] लोग फ़सली बुखार से पीड़ित थे, किन्तु इस उद्योग [illegible] से उनकी संख्या में ७० फ़ी सदी की कमी हो गई। इस भयंकर रोग के निवारणार्थ कलकत्ता से कुछ [illegible] डाक्टर बुलाये गये, जिन्होंने गाँव-गाँव घूमकर [illegible] को सहायता देना और मैजिक लालटेन के द्वारा [illegible] वगैरह की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया।

ग्राम-सहायक-दल ने कुछ ग्रामों में जो काम किया [illegible] सारांश नीचे दिया जाता है—

[illegible]भुवनगा—यहाँ पर यहीं के स्काउटों ने शांति-निकेतन [illegible] सहायकों की सहायता से १४ गड्ढे पूरे तथा मच्छरों [illegible] की सब जगहों को नष्ट किया। गाँववालों के पास [illegible] हुए कूड़ा-करकट साफ किया, जिससे मच्छरों [illegible] होती थी। बरसात के आरम्भ में गाँव-भर की [illegible] सफ़ाई की, तथा मिट्टी का तेल छिड़का। इसका फल [illegible]हुआ कि इस साल यह गाँव मलेरिया से बिलकुल [illegible] रहा।

[illegible]मोदपुर—यहाँ श्री-निकेतन के शिक्षकों और विद्या-[illegible] ने मिलकर गाँव के स्काउटों की सहायता से एक [illegible] गज़ लम्बी नाली काटकर गंदा पानी निकाला तथा [illegible] पर तीन पुल बनाये। इस गाँव के ८०० निवा-[illegible] में से ११० को मलेरिया था, उनकी चिकित्सा की [illegible] जिनमें से १०० बिलकुल चंगे हो गये।

[illegible] बिनोरी—यहाँ ४० फ़ी सदी आदमी पीड़ित थे। [illegible] बराबर कुनैन दी गई और उनकी संख्या केवल १५ [illegible] गई।

[illegible]—यहाँ का काम कुछ असफल रहा, क्योंकि [illegible]

यहाँ जिस नाली से बरसाती पानी निकलता है उसी को वे सिंचाई के काम में भी लाते हैं। वही यहाँ की गन्दगी का कारण है। सिंचाई करने तथा बरसाती पानी निकालने के लिए अलग-अलग नालियों का प्रबन्ध किया गया।

अस्पताल—गोलपारा और काशीपूर में भी मले-रिया की जड़ हिलाई गई। गुरुल में एक अस्पताल है जहाँ आस-पास के गाँवों से लोग दवा लेने आते हैं। यहीं उनकी चिकित्सा की जाती है। गत वर्ष यहाँ से दस हज़ार से अधिक लोगों को दवा बाँटी गई। यहाँ कुछ दाइयाँ भी रक्खी जाती हैं, जो कि गांवों में जा-जाकर स्त्रियों की चिकित्सा और दवा करती हैं।

इसी अस्पताल से लगा हुआ एक छोटा-सा लड़कियों का स्कूल भी है, जहां उन्हें सीना-पिरोना तथा गृह-कार्यों की शिक्षा दी जाती है।

शिशुओं के लालन-पालन की क्रियात्मक रूप में शिक्षा देने के लिए शिशु-प्रदर्शिनी की जाती है, जिससे करीब दस हजार ग्रामवासियों ने लाभ उठाया।

ग्राम-कार्य—आस-पास के कुछ गाँवों के नकशे बनाये गये हैं। जिनमें गाँवों की सफ़ाई वगैरः की स्थिति, तालावों आदि सबके स्थान निर्दिष्ट हैं। इन नक़शों से ग्राम-कार्य में बहुत सहायता मिलती है।

सहायक दल या स्काउट—सात गाँवों में स्काउट दल आरम्भ किये गये हैं। स्काउटों को बगीचे लगाने की शिक्षा भी दी जाती है तथा हर एक के लिए छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े देकर उसमें साग-भाजी उत्पन्न करना सिखाया जाता है।

शिक्षा-प्रचारिणी रात्रि-पाठशालायें—तीन गाँवों में रात्रिशालायें भी खोली गई हैं। इसके अतिरिक्त कृषि-शिक्षा पाने के लिए गाँवों के लड़के कुछ सप्ताहों के लिए श्री निकेतन में आकर रहते हैं और कृषि की शिक्षा पाकर चले जाते हैं। इस अल्पकाल की शिक्षा से उन्हें बहुत लाभ होता है। प्रति वर्ष एक मेला होता है जिसमें ग्राम-वासी बुलाये जाते हैं। उसमें उनसे खेल-मेल तथा उनका मनोरंजन किया जाता है। इन मेलों से ग्राम और नगर में मधुर-संबन्ध स्थापित होता तथा एक-दूसरे को लाभ पह-

चानते हैं। इनमें भी स्काउटों ने लोगों की बहुत सेवा की।

एक और मेला इस जिले में भरता है जिसे लोग 'मल्लिक' मेला कहते हैं। इसमें भी सहायक दल ने स्त्रियों की बहुत सेवा और सहायता की तथा उन्हें गुण्डों से बचाया।

मैजिक लालटेन—कुछ गाँवों में मैजिक लालटेन के द्वारा तस्वीरें दिखलाकर लोगों को मनोरंजन के साथ-साथ अमूल्य शिक्षा भी दी गई।

चमड़े का कारखाना—सूरत के आस-पास चमड़े का काम करने वाले मोचियों की संख्या अधिक है अतः उनकी उन्नति के उपाय खोजना इस विभाग ने निश्चय किया। एक क्रोम-लेदर फैक्ट्री शुरू की गई, किन्तु सफल नहीं हुई अतः कुछ विद्यार्थी इस काम को सीखने के लिए कलकत्ता भेजे गये।

गोशाला—आश्रम-निवासिय को शुद्ध दूध देने के विचार से गोशाला आरंभ की गई। खेती के लिए अच्छे साँड़ों का तैयार करना तथा गौओं का दूध बढ़ाना भी इसका उद्देश्य है। इनके लिए चरोखर तथा अच्छा भोजन तैयार करने का प्रश्न भी यहाँ हल किया जा रहा है। ऐसी-ऐसी फसलें खोजी जा रही हैं, जिन्हें उपजाकर गाय-बैल पुष्ट बनाये जा सकें तथा चरोखर की ज़रूरत न रह जाय।

अच्छी नस्ल उत्पन्न करने लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से अच्छा साँड उधार लिया गया था। जिससे गोशाला तथा ग्रामवासियों की गायें अच्छो नस्ल की बनाई जाने लगीं।

अभी इस जगह चारा, दाना, उत्तम पानी या शिक्षित ग्वालों का अभाव है। इसी कारण जितनी चाहिए उतनी उन्नति नहीं हो सकी है। थोड़े जानवर रखने के कारण अभी खर्चा भी अधिक पड़ रहा है। ज्यों-ज्यों ये कठिनाइयाँ दूर होंगी गोशाला उन्नति करती जायगी। चरोखर की यहाँ भी कमी है अतः पशुओं के भोजन के लिए चारा उत्पन्न करनेकी ज़रूरत पड़ रही है। इसके लिए अलग ज़मीन की ज़रूरत है। किन्तु इतनी फालतू ज़मीन नहीं है जिसमें मनुष्य अपने भोजन का अन्न छोड़कर पशुओं के लिए भोजन उत्पन्न करें अतः इस कार्य के लिये पड़ती पड़ी हुई ज़मीनों का उपयोग किया जा रहा है। अभी तक जो ज़मीन बेकाम पड़ी थी, वह फिर से उपजाऊ बनाकर उसमें चारा तथा अन्न भोजन उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है।

चारे का प्रश्न हल करने के लिए कुछ नये की घास बोकर उनकी परीक्षा की जा रही है। अमेरिका से एक प्रकार की बिना काँटे की नागफनी मँगाई गई है जिसे ढोर बड़े आनन्द से खाते हैं। इसे विस्तार से उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है। यह प्रयत्न सफल हो गया तो पशुओं के भोजन का सहज ही हल हो जायगा।

अभी सूखी ऋतुओं के लिए पक्के गड्ढों में हरा काट-काटकर जमा करके रक्खा जाता है। यह साइलेज के काम आता है।

यहाँ गो-मूत्र और गोबर को व्यर्थ नष्ट नहीं होने जाता बल्कि उसे छायादार गड्ढों में जमाकर उसकी बनाई जाती है और तैयार हो जाने पर खेतों में जाती है।

मुर्गीखाना—श्री-निकेतन के आस-पास ऐसे रहते हैं, जो मुर्गियाँ वग़ैरः पर अपनी गुज़र करते वे इतने गरीब हैं कि इस कार्य को कदापि नहीं छोड़ अतः अंडों की संख्या में वृद्धि करना ही अपनी दशा का एक मात्र उपाय सोचा गया। विलायती लेगहार्न देशी मुर्गी के संयोग से अंडों की संख्या बढ़ाई गई। की परीक्षा के लिए एक मुर्गीखाना स्थापित है। यहाँ भिन्न प्रकार की मुर्गियाँ रखकर उनसे नई और उत्तम उत्पन्न करने का प्रयत्न हो रहा है, जिसमें अंडों की बढ़े। अंडों से बच्चे निकालने के लिए मुर्गियों की की ज़रूरत पड़ती है; उनको इस अड़चन से बचाने के एक मशीन है, जिसमें एक साथ ही सैकड़ों अंडे रख जाते हैं। इससे गर्मी पहुँचाई जाती है, जिससे २१ दि अंडे छोड़कर बच्चे निकल पड़ते हैं। इस मशीन से वाले भी लाभ उठाते हैं। अपने अंडे सेने के लिए वे ले आते हैं।

बुनाई का काम—गाँव के लड़कों को वग़ैरः बुनने का काम सिखाने के लिए एक बुनाई विभाग भी खुला हुआ है जिसमें पुराने और नये

[ग]ाँ पर बुनना सिखाया जाता है। सूत-रेशम सभी के [...]ड़े बुने जाते हैं। पक्के रंग तैयार कर उनसे छपाई का [...] भी सिखाया जाता है।

पाठकों को उक्त वर्णन से ज्ञात हो गया होगा कि यह [...]ंग कितना उपयोगी कार्य कर रहा है। भारतवर्ष में अपने ढंग की एक ही संस्था है। हम आशा करते हैं कि [...]के धनी और ग्राम-हितैषी लोग इसी प्रकार की सैकड़ों [...]ायें खोलकर देश की सच्ची आवश्यकता की पूर्ति [...]।

फ्रान्स का वृद्ध सिंह: क्लेमेंशो

(श्री शंकरदेव विद्यालंकार)

गत यूरोपीय महासंग्राम के विजेता मोशिये [...]न्शो ने ८८ वर्ष के सतत परिश्रममय जीवन के [...]न चिर-निद्रा का पंथ स्वीकार किया है। इस [...]-सिंह के जीवन में अन्त तक इतनी कार्य-दक्षता, [...] तेजस्विता विद्यमान थी कि बहुधा लोग इसे [...]र' कहा करते थे। अपने जीवन के वाञ्छनीय स्वप्न सिद्ध हुआ देखकर यह नर-शार्दूल आज संसार से [...]ित, सन्तोष और कृतकृत्यता के आनन्द के साथ [...]ोक सिधारा है।

अपने जीवन में मो० क्लेमन्शो ने तीन युग [...]। सन् १८४८ का यूरोपीय विप्लव इसने सबसे [...] देखा। लोकतंत्रवाद की दिग्विजयिनी गाथा [...] यूरोप में फैलते हुए इसने निहारी। अपने [...]न में एक और महत्त्वपूर्ण घटना इसने देखी, वह [१]८७० का फ्रान्स-प्रशा युद्ध। फ्रान्स पर बिस्मार्क [...] का दिग्विजय इसने देखा। इस युद्ध [...]परिणाम-स्वरूप फ्रांस की दीन-हीन दशा को [...] अपनी मृत्यु से बढ़कर दुखदायी समझा। [...] और लोरेन के प्रदेश को जर्मनी के कब्ज़े [...] देखकर इसका हृदय जलने लगा। १८७० के इस कलंक को धो डालने का मो० क्लेमेन्शो ने दृढ़ संकल्प किया। इसका मन सदैव ही जर्मनी के विरुद्ध क्रोध से जलता रहता था।

❀ ❀ ❀ ❀

मोशिये क्लेमेन्शो ने डाक्टर बनने की शिक्षा प्राप्त की थी और एम० डी० की उच्च पदवी भी प्राप्त की थी, लेकिन जीवन-कार्य के रूप में इसने राजनीति को ही स्वीकार किया। अपने रोगियों के जख्मों पर जिस कुशलता से इसकी छुरी फिरा करती थी, ठीक वैसे ही अपने विरोधियों के लिए इसकी कलम फिरने लगी। इसका उत्साह अदम्य था। इसका वाक्प्रहार असह्य और संकल्प पर्वत जैसा निश्चल था।

अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारंभ क्लेमेन्शो ने मोमार्त नामक परगने के मेयर के रूप में किया। यह परगना बहुत भयंकर और विप्लवकारी था। परन्तु यहाँ १८७० के विप्लव के समय मो० क्लेमेन्शो ने असाधारण शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। इस व्यवस्था-शक्ति से प्रसन्न होकर मेयर बनने के छः महीने बाद ही ९६००० मतदाताओं ने क्लेमेन्शो को अपना प्रतिनिधि बनाकर फ्रान्स की नेशनल एसेम्बली (पार्लमेण्ट) में भेजा। वहाँ जाकर यह रेडिकल पार्टी में शामिल हुआ, यह पार्टी छोटी-सी ही थी। थोड़े ही समय के अन्दर अपनी योग्यता के द्वारा क्लेमेन्शो चमक उठा। यह अपनी शक्ति का उपयोग प्रधान-मण्डल के च्युत करने में ही करता था। अतः बहुत से लोग इसके विरुद्ध हो गये और इसपर आरोप करने लगे। एक आक्षेप यह भी लगाया गया कि यह इंग्लैण्ड से घूस लेता है। इसके हस्ताक्षर वाले कागज इसके विरुद्ध प्रकट किये गये। अपना विरोध करने वाली इस हलचल के समय इसने असामान्य आत्मसंयम, नैतिक साहस और

समय-सूचकता दिखलाई। किये गये आक्षेपों का उत्तर देने के लिए फ्रान्स के बड़े-बड़े न्यायाधीशों के सामने इसको खड़ा किया गया। न्यायालय फ्रांस के बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं तथा साधारण जनता से पूर्णतया भर गया था। इसके विरोधियों के मुख पर विजय का घमण्ड विद्यमान था। सब लोग बहुत शांतिपूर्वक बैठे हुए थे—न्यायालय सुनसान-सा प्रतीत होता था। क्लेमेन्शो ने धीर और गंभीर वाणी में अपना वक्तव्य प्रारंभ किया, दुश्मनों के हृदयों को वेध डालनेवाले विद्युत के समान कटाक्ष इसके मुख से निकलने लगे। विरोधियों के आक्षेपों का इसने सफलतापूर्वक प्रतीकार कर दिया, अपने हस्ताक्षर वाले पत्रों को इसने बनावटी सिद्ध कर दिखाया और इसीकी विजय रही।

इस बार के नेशनल एसेम्बली के लिए यह निर्वाचित न हो सका, अतः इसने अखबारनवीसी का काम हाथ में लिया। एक के बाद एक इस प्रकार कई पत्रों का इसने सम्पादन किया। इसकी लिखी हुई टीकायें और आलोचनायें मन्त्रि-मण्डल को हैरान करने लगीं। इसके लेख फ्रान्स की जनता को नचाने लगे।

❀ ❀ ❀

'डेयफस् खटला' नाम की एक विख्यात घटना मो० क्लेमेन्शो को पुनः राजनीति के मैदान में ले आई। थोड़े ही समय के पश्चात् यह फ्रान्स का प्रधान-मन्त्री बन गया। जर्मन क़ैसर को भी एक अवसर पर इसने अपने तेज और अभिमान का परिचय दिया। सन् १९०९ में इसके मंत्रि-मंडल का पतन हुआ और पुनः इसने पत्र-संपादन का काम हाथ में लिया। इस समय पुनः इसकी कलम से निकलते हुए लेखों ने फ्रान्स की राजनीति को कम्पित कर दिया। इस समय इसकी उमर ७०वर्ष की थी तथापि इसकी कार्यक्षमता कमाल की थी। रात्रि के एक बजे बाद ही यह जागकर खड़ा हो जाता था और पिछली रात के प्रशान्त एवं नीरव समय में अखबार के लिए अग्रलेख लिखा करता था। लेख लिखने में ३–४ घण्टे समाप्त होते थे। इसके बाद यह व्यायाम करता, फिर कुछ जलपान करता और मुलाकात के लिए आये हुए पुरुषों से वार्तालाप करता था। इसके बाद अपनी डाक देखता था। डाक में २००-३०० चिट्ठी-पत्रियाँ आया करती थीं। ये पत्र समस्त फ्रान्स से आते थे और इनमें राजनीति-विषयक अनेक प्रकार की समस्याओं का उल्लेख होता था। इसी समय पत्रों का जवाब लिख देता और फिर भोजन करके सीनेट में था। वहाँ से अपने अखबार के कार्यालय में अन्य विभाग के सम्पादकों से आवश्यक करता था। साँझ को ही अखबार पढ़ने का रक्खा था। रात्रि को आठ बजे घर और भोजन करके शयन करता था। क्लेमेन्शो दिनचर्या इस प्रकार की थी। ७० वर्ष की अवस्था भी यह वृद्ध सिंह युवकों को भी लज्जित करते कार्य असाधारण उत्साह से किया करता था।

❀ ❀ ❀

महायुद्ध के समय इसकी यह कार्यशक्ति भी अधिक तीव्र हो गई। एक ओर तो फ्रान्स सरकार ने लड़ाई के समाचारों पर सेन्सर का लगाकर सच्ची खबरों का मार्ग रोक दिया दूसरी ओर एक पक्ष ऐसा था जो जिस किसी से भी सुलह करके युद्ध को बन्द करना चाहता था परन्तु क्लेमेन्शो तो सन् १८७० के कलंक धोने के स्वप्न देखा करता था। इसने युद्ध की खबरें प्राप्त करने का प्रबन्ध किया और समस्त में सच्ची खबरें फैलाने का काम प्रारंभ किया।

त करनेवाले दल के विरुद्ध प्रचण्ड लेख-
ारंभ करके उनका प्रभाव कम कर दिया और
के वैर का बदला लेकर विजय प्राप्त करने की
कर दी। सन् १९१७ के नवम्बर महीने में
के इस पुरुष-सिंह को पुनः प्रधान मंत्री के
बैठाया गया। युद्ध-विभाग के प्रधान कार्य-
। कार्य क्लेमेन्शो ने स्वयं अपने ऊपर लिया।
९१७ के नवम्बर मास में यह प्रधान मंत्री
। और सन् १९१८ के नवम्बर महीने में इसने
का गर्व खण्डित कर दिया और सन् १८७०
स का कलङ्क धो डाला। वार्साई की जग-
सुलह के अन्दर प्रेसिडेण्ट विलसन और
ॉयड जार्ज के साथ मिलकर फ्रान्स का हित-
करने के लिए इसने भगीरथ-प्रयत्न किया।
की प्रजा इस भयंकर पुरुष का भार सहन
ायक न थी अतः पुनः इसने राजनीति से
ले ली। राजनैतिक झगड़ों से निवृत्त होकर
एकान्त में पुस्तकें लिखने का कार्य प्रारंभ
इसने भारतवर्ष की एक यात्रा की।
इसके संस्मरण भी अपूर्व हैं। काशी नगरी
रों की कारीगरी पर यह मुग्ध हो गया था।
अपनी आत्म-कहानी भी लिखी है और उसको
मृत्यु के ५० वर्ष पश्चात् प्रकाशित करने का
दे गया है। सोचिये क्लेमेन्शो समता की
। फ्रान्स की प्रजा अपने इस पुरुष-सिंह के
सदा गर्वित रहेगी।*

---

* मूल गुजराती के लेख का रूपान्तर।

अंक दो

[श्री रामचन्द्र गौड़]

सच देखा जाय तो दो से ही संसार है। हमारी पृथ्वी के दो ही ध्रुव हैं, उत्तरी और दक्षिणी। यह भी हमें ज्ञात है कि दो के मिलने से ही सारी सृष्टि की वृद्धि होती है और सांसारिक कर्तव्य-रूपी गाड़ी में स्त्री और पुरुष रूपी दो पहिये हैं। यदि एक भी पहिया खराब हो जाय तो गाड़ी नहीं चल सकती। इसलिए पुरुष और स्त्री में इस प्रकार का सम्बन्ध आवश्यक है जिससे दोनों का जीवन आनन्द-पूर्वक बीत सके।

सृष्टि भी दो प्रकार की है,—एक जड़ और दूसरी चेतन। जड़ उस सृष्टि का नाम है कि जो सदैव स्थावर रहे अर्थात् एक ही जगह रहे। दूसरी चेतन जिसमें ईश्वर ने चेतना प्रदान की है। यह चलती-फिरती है और इसमें अनुभव करने की शक्ति भी होती है।

संसार के मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं—एक सज्जन, दूसरे दुर्जन। सज्जन सदैव आत्म-विकास और परमार्थ में लगे रहते हैं। इसके विपरीत दुर्जन सदैव अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि में रत रहते हैं। संसार मिट्टी में ही क्यों न मिल जाय पर उनका मतलब तो सिद्ध होना ही चाहिए। इसलिए हमें अपने साथी चुनते समय सज्जन और दुर्जन की परख कर लेनी चाहिए।

आप लोगों के मन में यह प्रश्न अवश्य ही उठ रहा होगा कि आजकल तो सज्जन और दुर्जन दोनों एक ही भेष में रहते हैं फिर उनकी परख किस प्रकार की जाय। इसकी भी दो मुख्य रीतियाँ हैं। अंग्रेजी भाषा के किसी कवि ने कहा है—

"A man is known by his photographs and the company he comes."

अर्थात् साधारण मनुष्यों को परखने की दो रीतियाँ हैं। वह किस प्रकार के चित्र पसंद किया करता है अथवा उसकी बैठक में किस प्रकार के चित्र लगे हैं और दूसरे उसकी संगत कैसी है अर्थात् उसके मित्रों के आचरण किस प्रकार के हैं। अब हमें यह देखना चाहिए कि उपर्युक्त बातें किस प्रकार ठीक हैं। यदि किसी मनुष्य के यहाँ चित्र बेडौल और विलासितापूर्ण हों तो उस मनुष्य का विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसे आदमी के विचार होंगे वैसे ही उसके चित्र होंगे। जिसका झुकाव देशभक्ति की ओर होगा उसके यहाँ देशभक्तों के ही चित्र होंगे। जो शृंगारिक मनोवृत्ति के हैं उनको स्त्री-सौन्दर्य के चित्र ही रुचिकर होंगे। साथ-संगत के बारे में तो सब लोग जानते हैं कि जैसे मित्र होते हैं वैसा ही आदमी स्वयं भी बन जाता है अर्थात् चोरों के साथी चोर ही होंगे।

संसार में दो वस्तुयें बड़ी विलक्षण हैं। उनके कारण सारी सृष्टि चल रही है। वे हैं ब्रह्म और माया। बहुतेरे मनुष्य तो इस माया-जाल में पड़कर दुःख भोग रहे हैं, बहुत-से भोग चुके हैं और बहुतों को भोगना बाकी है। इसी माया के कारण निस्सार संसार में उन्हें सार दिखता है; इसी माया के फेर में पड़कर अविकारी, अविनाशी आत्मा भी इस शरीररूपी पिंजड़े में बन्द होकर नाना प्रकार के कष्ट भोगता है। योग के द्वारा ही मुनियों ने इस माया-जाल को हटाकर उस परम ब्रह्म को पहिचाना है और मुक्ति प्राप्त की है।

ऐसे ही महत्व का सम्बन्ध गुरु और शिष्य का है। जिसके द्वारा संसार में ज्ञान के संग्रह की शिक्षा दी जाती है। इसीलिए गुरु को बालक का दूसरा पिता ही माना गया है।

यदि देखा जाय तो हमारे जीवन को आनन्द-मय बनाने वाले तथा संसार के अन्य उत्पातों से बचाने वाले दो ही नियम हैं। वे हैं उच्च विचार और सादी रहन-सहन। जिसके उच्च विचार हैं उसका आचरण भी अवश्य उच्च कोटि का होगा। क्योंकि आचरण ही शरीर की प्रथमावस्था है। सादी और संयमपूर्ण जीवनचर्या से बहुत-सी अना-वश्यक इच्छायें दूर हो जाती हैं और उसी के कारण हमारे बहुत-से कष्ट मिट जाते हैं क्योंकि इच्छा ही दुःख का कारण है और आवश्यकताओं को कम करने में ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।

प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य ही रहता है। कार्य के कारण और उसके फल में घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि कारण या उत्पत्ति ही बुरी भावनाओं से है तो उसका फल भी अवश्य बुरा होगा। और कारण ठीक है तो फल भी ठीक होगा अर्थात् जैसा कारण वैसा फल। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—

Take care of the cause and effect will take care of itself.

अर्थात् कारण पर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए फल स्वयं ही ठीक हो जायगा। 'जैसे विचार वैसे आचार—' कहा भी है।

'दो' का अर्थ है देना। इसलिए दो का अंक मानो संसार को पुकार-पुकारकर कह रहा है कि दो, दो अर्थात् लोगों को सहायता देकर उन्हें उनकी दीन-हीन दशा तथा विपत्ति से मुक्त करो। हमारे जीवन का ध्येय ही परोपकार या दूसरों की सहायता करना है। और यह अंक हमारा ध्यान इसी की ओर आकर्षित कर रहा है।

हमारे प्राचीन समाज-व्यवस्थापक बड़े ही विचार-वान थे। उन्होंने प्रत्येक त्योहार के साथ कुछ-न-कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्त अवश्य रक्खे हैं। भादों में 'शांक

र्मी' नामक एक त्योहार जन्माष्टमी के एक दिन त मनाया जाता है। इस रोज बासी भोजन करने प्रथा है। फाल्गुन में फिर यही त्योहार आता है। र उस रोज भी बासी भोजन की ही प्रथा है। त-से विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि इन दोनों हारों की बीच की अवधि में हम बासी भोजन सकते हैं; उससे हमें विशेष हानि नहीं होगी।

किसी प्राचीन वैद्य का कथन है कि यदि हमें ने स्वास्थ्य को ठीक रखना है, यदि हम चाहते हैं हमारे घर पर वैद्य अथवा डाक्टरों का आवागमन हो, तो हमें दो बातें अवश्य ही पालन करनी पड़ेंगी। भोजन के पश्चात् लघुशंका (पेशाब) करना र दूसरी बांई करवट सोना। ये दोनों बातें स्वास्थ्य लिए अत्यन्त लाभदायक हैं।

यह भी एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'लड़ाई का हँसी और रोग का घर खाँसी।' अर्थात् हँसी ते-करते लड़ाई हो जाती है। यदि किसी मनुष्य को खाँसी हो जाय तो उसे अनेक रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। इससे हँसी और खाँसी से सदैव बचे रहना चाहिए।

ताली दो ही हाथों से बजती है, एक से नहीं। यदि कोई लड़ाई-झगड़ा हो गया तो समझना चाहिए कि दोनों ओर के व्यक्ति ऐसा करने पर तुले हुए थे। यदि उनमें से एक भी शान्ति का आधार लेता तो ऐसा होता ही नहीं। जब कभी सड़कों पर गाड़ियाँ लड़ जाती हैं तो उस समय भी भूल दोनों ओर की होती है; यदि एक की भूल दूसरा सम्हाल ले तो कभी ऐसा न हो।

जब कभी मन में दो नियम एक साथ ही लागू हों, और उस समय हमारे हृदय की दो शक्तियाँ—मन और बुद्धि—विभिन्न नियमों का समर्थन करें तो उस समय हमें अपने अन्तःकरण की बात माननी चाहिए। यह अंक दो की विशेषता है। आशा है कि इसकी शिक्षाओं से लोग अवश्य लाभ उठायेंगे।
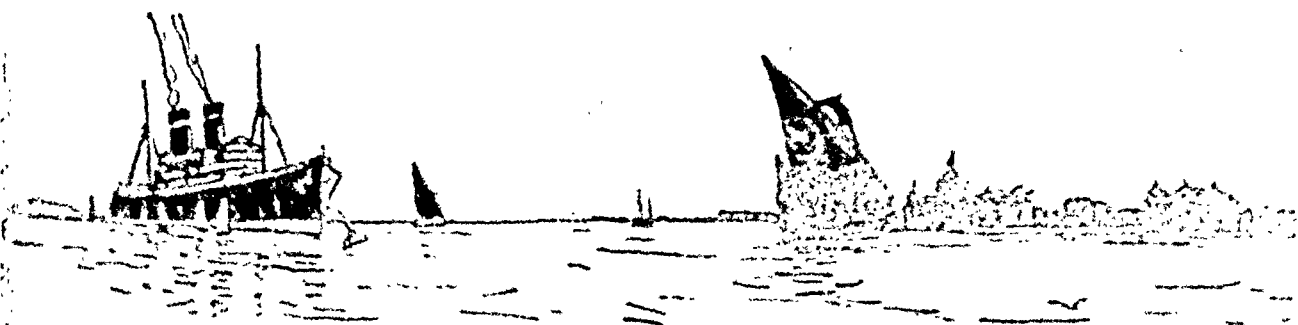
पाँच जीवन-सूत्र

बम्बई के हे युवक बन्धुओ, मुझे जो संदेश देना है वह पाँच छोटे-छोटे सूत्रों में समाया हुआ है—

(१)

अजेय निश्चय-बल प्राप्त करो। इस जगतीतल पर ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे तुम अपनी संपूर्ण शक्तियों द्वारा न प्राप्त कर सको ? दृढ़ निश्चय करो जिससे अशक्य शक्य में परिवर्तित हो जाय !

(२)

जीवन की पवित्रता को न भूलो। सत्य और ईमानदारी की राह पसन्द करो और विघ्नों के सामने लड़ते हुए आगे बढ़ते जाओ !

(३)

मातृ-प्रेम का धर्म स्वीकार करो। "हम सब भारतवासी हैं और भारतवर्ष हमारा है" इस मंत्र को अपने जीवन में मिला दो ! प्रान्तीय भेद भूलकर मातृभूमि की सेवा करो !

(४)

सहिष्णुता को अपने जीवन की संगिनी बनाओ ! सहिष्णुता सब धर्मों का, भारतीय संस्कृति का प्राण है।

(५)

शौर्य के पुजारी बनो, दीन जनों के कष्टों का बोझ अपने ऊपर लेकर उनके कष्टों को कम करो। श्रेष्ठ मानवता से अपने-अपने जीवन को अलंकृत करने की प्रतिज्ञा करो। भावी के भारत को भव्य के लिए शौर्य, युद्ध और मर्दानगी का मार्ग पसंद करो।❀

जगदीशचन्द्र

❀ बम्बई के युवक-संघ में युवकों के प्रति।

प्रेमी की घोषणा

मेरी आत्मा के सुन्दर प्रतिबिम्ब ! तेरे निस्तब्ध अन्तःकरण में व्याकुलता की यह आग ! अधीरता की ज्वाला कैसी, विरह की यह पीड़ा कैसी ?

मैंने अपने सारे बल को, सारे जोश को और सारे पौरुष को तेरे सुकुमार स्वरूप की रक्षा के केन्द्रीभूत कर दिया है। तब तेरा यह मनोविलाप क्यों ?

मैंने अपनी सारी शुभ कामना, सारी प्रार्थना और सारी मनोभावना तेरे प्रस्फुटन और सुविक लिए अज्ञात देवता के चरणों पर निछावर कर दी है। तब तेरी यह निराशा क्यों ?

मैं—ईश्वर का अमृत पुत्र, संसार में संगीत, सौरभ और आनन्द का प्रसार करने के लिए हुआ हूँ। तब तेरी यह विरसता क्यों ?

हे मेरी कल्पना के केन्द्रविन्दु ! मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक तरंग और प्रत्येक शक्ति तेरे मुस्कान के लिए है, तेरे आनन्द के लिए है।

हे मेरे हृदय की प्रतिध्वनि ! तू मुझसे अभिन्न है, तू मेरे प्राणों का प्राण है, आत्मा की आत्म

देवदत्त विद्यार्थी "शिशु"

नीर-क्षीर-विवेक

हिन्दी में विशेषांक

१. हिन्दूपंच (बलिदान- अंक), पृष्ट २६४। मूल्य २॥) दक और प्रकाशक—श्री कमलादत्त पाण्डेय, ८४ अपर र रोड, कलकत्ता।

२. सरस्वती (स्वराज्य-अंक) पृष्ट २०६। सम्पा० श्री-देवी-शुक्ल। प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

३. 'राजस्थान–संदेश' (युवकाङ्क)-सम्पादक—श्री विजय-पथिक। प्रकाशक-राजस्थान संदेश कार्यालय अजमेर। मूल्य १) [illegible]

यदि मैं भूलता नहीं तो हिन्दी में विशेषांक निकालने था सबसे पहले 'प्रताप' या 'स्वदेश' में से किसी एक ली थी। उन दिनों इन दोनों पत्रों के क्रमशः ांक (विजयादशमी के अवसर पर) और कृष्णांक ष्टमी के समय) निकला करते थे और इनमें सुन्दर ओं का अच्छा संकलन रहता था। अब तो कई साल ताप' ने यह परिपाटी तोड़ दी है। 'स्वदेश' कभी-कभी ांक निकाल देता है पर वह बात अब नहीं रही।

इन दोनों पत्रों के बाद पीछे चलकर वर्तमान, मतवाला, ंच, चाँद, सुधा, माधुरी सभी ने विशेषांक निकालने कर दिये। मासिक-पत्रों में 'चांद' ने तथा साप्ताहिक 'हिन्दू-पंच' ने तो विशेषांकों का ताँता बाँध दिया। इन विशेषांकों से, सम्भव है, पाठकों को साधारण अंकों पेक्षा अधिक सामग्री और चित्र मिल जाते हों पर प्रकाशन के पीछे जो मनोवृत्ति काम कर रही है, वह की अपेक्षा लाभ, सेवा की अपेक्षा विज्ञापन की ही झुकी है। साधारण पाठक, जो भाव और सामग्री की [illegible] की अपेक्षा रूप और रंग के आकर्षण को स्वभावतः पसन्द करते हैं, निस्सार और तड़क-भड़क की चीजों के लोभी हो रहे हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है। हिन्दी के लेखकों और कवियों की संख्या परिमित है और उसकी प्रगति प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की वृद्धि से अनुपात में बहुत हलकी है। इस अभाव-दोष से प्रत्येक पत्रिका के सम्पादक प्रसिद्ध लेखकों के लेख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और अपने नये लेखक नहीं तैयार करते। फल यह होता है कि प्रसिद्ध कवियों और लेखकों को एक ही साथ कई पत्रिकाओं में लिखना पड़ता है और अधिक लिखने का बोझ आ जाने के कारण उन्हें संसार के सामने उच्च कोटि की रचनायें रखने की अपेक्षा माँग की पूर्ति का ध्यान ही अधिक रह जाता है। इसका फल यह होता है कि ३००–४०० पेज के पोथों के भीतर वही साधारण बातें और साधारण चीजें रह जाती हैं; हाँ दो-एक अच्छी रचनायें जरूर आ जाती हैं। इससे सामग्री की दृष्टि से पाठक का लाभ तो क्या होता है, हाँ प्रकाशक का विज्ञापन अच्छा हो जाता है और लोगों में ठोस सामग्री के प्रति प्रेम उत्पन्न होने के बदले चाव और साधारण के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है। इसलिए साहित्य के विकास की दृष्टि से तो इस प्रथा की कोई बहुत बड़ी उपयोगिता नहीं है; हाँ प्रचार और विज्ञापन की दृष्टि से इसका थोड़ा-बहुत महत्व हो सकता है।

किन्तु गुण-दोष सर्वत्र सभी चीजों में होते हैं और इन विशेषांकों के रेल-पेल में कभी-कभी कुछ अच्छी और काम की चीजें भी निकल आती हैं। 'चाँद' के 'फाँसी अंक' और 'सुधा' के 'साहित्य-अंक' की गणना ऐसे विशेषांकों में की जा सकती है। हर्ष की बात है कि 'हिन्दू-पंच' ने, जो सामग्री की श्रेष्ठता की अपेक्षा अपनी [illegible]-वृद्धि पर ही सर्वदा विशेष ध्यान देता रहा है, भी 'चाँद' के 'फाँसी-अंक' का अनुकरण कर 'बलिदान-अंक' प्रकाशित किया है। यह अंक 'त्यागभूमि' साइज के ३०२ पृष्ठों का निकला है। इसके

* सम्पादक के आग्रह से यह [illegible] लिख [illegible] —सम्पादक।

पाँच जीवन-सूत्र

बम्बई के हे युवक बन्धुओ, मुझे जो संदेश देना है वह पाँच छोटे-छोटे सूत्रों में समाया हुआ है-

(१)

अजेय निश्चय-बल प्राप्त करो। इस जगतीतल पर ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे तुम अपनी सं शक्तियों द्वारा न प्राप्त कर सको ? दृढ़ निश्चय करो जिससे अशक्य शक्य में परिवर्तित हो जाय!

(२)

जीवन की पवित्रता को न भूलो। सत्य और ईमानदारी की राह पसन्द करो और विघ्नों के सा लड़ते हुए आगे बढ़ते जाओ!

(३)

मातृ-प्रेम का धर्म स्वीकार करो। "हम सब भारतवासी हैं और भारतवर्ष हमारा है" इस मंत्र अपने जीवन में मिला दो! प्रान्तीय भेद भूलकर मातृभूमि की सेवा करो!

(४)

सहिष्णुता को अपने जीवन की संगिनी बनाओ! सहिष्णुता सब धर्मों का, भारतीय संस्कृति का प्राण

(५)

शौर्य के पुजारी बनो, दीन जनों के कष्टों का बोझ अपने ऊपर लेकर उनके कष्टों को कम करो श्रेष्ठ मानवता से अपने-अपने जीवन को अलंकृत करने की प्रतिज्ञा करो। भावी के भारत को भव्य के लिए शौर्य, युद्ध और मर्दानगी का मार्ग पसंद करो।*

जगदीशचन्

* बम्बई के युवक-संघ में युवकों के प्रति।

प्रेमी की घोषणा

मेरी आत्मा के सुन्दर प्रतिबिम्ब! तेरे निस्तब्ध अन्तःकरण में व्याकुलता की यह आग कैसी अधीरता की ज्वाला कैसी, विरह की यह पीड़ा कैसी?

मैंने अपने सारे बल को, सारे जोश को और सारे पौरुष को तेरे सुकुमार स्वरूप की रक्षा के केन्द्रीभूत कर दिया है। तब तेरा यह मनोविलाप क्यों?

मैंने अपनी सारी शुभ कामना, सारी प्रार्थना और सारी मनोभावना तेरे प्रस्फुटन और सुविकास लिए अज्ञात देवता के चरणों पर निछावर कर दी है। तब तेरी यह निराशा क्यों?

मैं—ईश्वर का अमृत पुत्र, संसार में संगीत, सौरभ और आनन्द का प्रसार करने के लिए उ हुआ हूँ। तब तेरी यह विरसता क्यों?

हे मेरी कल्पना के केन्द्रविन्दु! मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक तरंग और प्रत्येक शक्ति तेरे मुस्कान के लिए है, तेरे आनन्द के लिए है।

हे मेरे हृदय की प्रतिध्वनि! तू मुझसे अभिन्न है, तू मेरे प्राणों का प्राण है, आत्मा की आत्मा!

देवदत्त विद्यार्थी "शिशु"

नीर-क्षीर-विवेक

हिन्दी में विशेषांक

न्दूपंच (बलिदान- अंक), पृष्ट ३६४। मूल्य २॥)
र प्रकाशक—श्री कमलादत्त पाण्डेय, ८४ अपर
, कलकत्ता।
रस्वती (स्वराज्य-अंक) पृष्ट २०६। सम्पा० श्री-देवी-
। प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
ाजस्थान-संदेश' (युवकाङ्क)-सम्पादक—श्री विजय-
। प्रकाशक-राजस्थान सदेश कार्यालय अजमेर
मूल्य १) *

मैं भूलता नहीं तो हिन्दी में विशेषांक निकालने सबसे पहले 'प्रताप' या 'स्वदेश' में से किसी एक थी। उन दिनों इन दोनों पत्रों के क्रमशः विजयादशमी के अवसर पर) और कृष्णांक ी के समय) निकला करते थे और इनमें सुन्दर ा अच्छा संकलन रहता था। अब तो कई साल ने यह परिपाटी तोड़ दी है। 'स्वदेश' कभी-कभी निकाल देता है पर वह बात अब नहीं रही। ोनों पत्रों के बाद पीछे चलकर वर्तमान, मतवाला, चाँद, सुधा, माधुरी सभी ने विशेषांक निकालने दिये। मासिक-पत्रों में 'चांद' ने तथा साप्ताहिक हिन्दू-पंच' ने तो विशेषांकों का ताँता बाँध दिया। विशेषांकों से, सम्भव है, ग्राहकों को साधारण अंकों । अधिक सामग्री और चित्र मिल जाते हों पर ान के पीछे जो मनोवृत्ति काम कर रही है, वह अपेक्षा नाम, सेवा की अपेक्षा विज्ञापन की ही की है। साधारण पाठक, जो भाव और सामग्री की ो अपेक्षा रूप और ढंग के आकर्षण को स्वभावतः पसन्द करते हैं, निस्सार और तड़क-भड़क की चीजों के लोभी हो रहे हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है। हिन्दी के लेखकों और कवियों की संख्या परिमित है और उसकी प्रगति प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की वृद्धि से अनुपात में बहुत हलकी है। इस अभाव-दोष से प्रत्येक पत्रिका के सम्पादक प्रसिद्ध लेखकों के लेख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और अपने नये लेखक नहीं तैयार करते। फल यह होता है कि प्रसिद्ध कवियों और लेखकों को एक ही साथ कई पत्रिकाओं में लिखना पड़ता है और अधिक लिखने का बोझ आ जाने के कारण उन्हें संसार के सामने उच्च कोटि की रचनायें रखने की अपेक्षा माँग की पूर्ति का ध्यान ही अधिक रह जाता है। इसका फल यह होता है कि २००-४०० पेज के पोथों के भीतर वही साधारण बातें और साधारण चीजें रह जाती हैं; हाँ दो-एक अच्छी रचनायें जरूर आ जाती हैं। इससे सामग्री की दृष्टि से पाठक का लाभ तो क्या होता है, हाँ प्रकाशक का विज्ञापन अच्छा हो जाता है और लोगों में ठोस सामग्री के प्रति प्रेम उत्पन्न होने के बदले बाह्य और साधारण के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है। इसलिए साहित्य के विकास की दृष्टि से तो इस प्रथा की कोई बहुत बड़ी उपयोगिता नहीं है; हाँ प्रचार और विज्ञापन की दृष्टि से इसका थोड़ा-बहुत महत्व हो सकता है।

किन्तु गुण-दोष सर्वत्र सभी चीजों में होते हैं और इन विशेषांकों के रेल-पेल में कभी-कभी एकाध अच्छी और काम की चीजें भी निकल जाती हैं। 'चाँद' के 'फाँसी अंक' और 'सुधा' के 'साहित्य-अंक' की गणना अच्छे विशेषांकों में की जा सकती है। हर्ष की बात है कि 'हिन्दू-पंच' ने, जो सामग्री की श्रेष्ठता की अपेक्षा अपनी कलेवर-वृद्धि पर ही सदैव विशेष ध्यान देता रहा है, भी 'चाँद' के 'फाँसी-अंक' का अनुकरण कर 'बलिदान-अंक' प्रकाशित किया है। यह अंक 'त्यागभूमि' साइज़ के ३६४ पृष्ठों का निकला है। इसके

---

* यागभूमि के ग्राहकों को यह विशेषाङ्क तीन चौथाई दिया जायगा—संपादक।

पाँच खण्ड हैं। पहले में प्राचीन भारत के बलिदानों की गाथा है। दूसरे में मध्यकाल के भारतीय बलिदानों का विवरण है। तीसरे में वर्तमान भारत के बलिदानों का ज़िक्र है। चौथे में कवितायें हैं और पाँचवे में विदेशी बलिदानों के विवरण संग्रह किये गये हैं। इसके साथ ही कल्पित और असली १३० चित्र भी इसमें स्थान-स्थान पर दिये गये हैं। इसमें शक नहीं कि इस समय, जब राष्ट्र में एक भयंकर पर परिणाम-मधुर बलिदान-यज्ञ की तैयारी हो रही है, इस विशेषांक से युवकों को देश की वेदी पर अपना क्षुद्र अस्तित्व समर्पित करने के निश्चय को उत्साह प्राप्त होगा। कविताओं का चुनाव बहुत अच्छा नहीं है और प्रथम दो खण्डों की भाषा शिथिल है।

इसमें सन्देह नहीं कि बलिदान की भावना पर शहीद हुए स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में इस अंक से अच्छी जानकारी हो सकती है और इससे 'चाँद' के फाँसी-अंक के अभाव की अच्छी तरह पूर्ति हुई है। पर कामोद्दीपक दवाइयों के विज्ञापन इसमें कलंक मालूम पड़ते हैं।

जनवरी १९३० का 'सरस्वती' का अंक स्वराज्यांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इसमें भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का इतिहास, असहयोग-आन्दोलन, दो-एक राष्ट्रीय संस्थाओं तथा स्वराज्य-आन्दोलन-सम्बन्धी विभिन्न विचार-प्रणालियों पर छोटे-छोटे लेखों का चयन किया गया है। कांग्रेस के अवसर पर यह अंक निकालकर इसके सम्पादक और संचालक ने सुरुचि और अपने देश-प्रेम का परिचय दिया है। इस अङ्क में चित्र भी काफ़ी दिये गये हैं। 'प्राचीन भारत में स्वराज्य', स्वराज्य-संग्राम में असहयोग-आन्दोलन का स्थान, 'सर्वेण्ट ऑव इण्डिया सोसाइटी', लिबरल पार्टी तथा लोक-सेवक-मण्डल लेख ज्ञातव्य सूचनाओं से परिपूर्ण हैं। कुछ कार्टून भी हैं।

साप्ताहिक 'राजस्थान-सन्देश' (अजमेर) का युवकांक सामयिक उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। आज का युवक वर्तमान परिस्थिति से असन्तुष्ट है; उसका झगड़ा केवल देश या जाति की बातों को लेकर ही नहीं है। युवक-आन्दोलन समाज-व्यवस्था के मूल दोषों के कारण उत्पन्न हुआ है। भारत में भी उसकी गति दिन-दिन तेज़ होती जा रही है। ऐसे अवसर पर राजपूताना के पुराने ... उत्साही कार्यकर्ता श्री विजयसिंहजी 'पथिक' ने ... दक व में प्रकाशित होनेवाले इस साधन-हीन पर ... उत्साहपूर्ण पत्र का युवकाङ्क प्रकाशित कर ... पढ़ने की 'चीज़' दी है। इसमें देश-विदेश के अनेक लेखों का अच्छा संग्रह है और सब लेख प्रवाहपूर्ण और ... हृजनक शैली के नमूने हैं। यदि इस विशेषांक में ... युवक-आन्दोलनों का इतिहास भी दिया गया होता उन कारणों एवं सामाजिक अपूर्णताओं का गंभीर मार्मिक विवेचन भी होता जिनके कारण धीरे-धीरे में एक बिलकुल ही नये आधार को लेकर खड़े होने लोग उत्पन्न हो गये हैं, तो यह अंक सर्वांग-सुन्दर ... जाता। 'हमारी अर्थ-व्यवस्था के दोष' तथा 'नई ... व्यवस्था का पथ' लेख इस दिशा की ओर पाठक को ... तक ले जाते हैं और इस दृष्टि से अच्छे हैं। पं० ... लाल की जीवनी में लिखी यह बात ग़लत है कि ... जन्म इंग्लैण्ड में हुआ था। 'धार्मिक क्रान्ति की ... कता', 'युवकों का कर्तव्य', 'क़ानून और सत्ता' ... बहुत अच्छे हैं। विशेषांक संग्रहणीय है।

बाल-साहित्य

अंग्रेज़ी

Letters from a Father to his Daugh...

(एक पिता के पत्र अपनी पुत्री को)

वे बालक ही हैं, जो आगे चलकर राष्ट्र के ... स्वरूप ग्रहण करते हैं। और, यह एक खुला रहस्य है, कि बाल-पन में उनकी तैयारी होती है, उसीके ... समाज में वे अपना स्थान ग्रहण करते और ... कामों में योग-दान करते हैं। जड़ के अच्छी तरह ... पर ही तो वृक्ष का सुविकास होता है? अतएव बाल-साहित्य की अभिवृद्धि की ओर जो ध्यान दिया ... वह सुन्दर भविष्य का सूचक और हर्ष का कारण है। ... पुस्तक भी इसी दिशा का एक प्रयत्न है—और, ... कि कइयों को यह जानकर कुछ विस्मय भी हो कि, ... हैं हमारे इस वर्ष के राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू!

पं० जवाहरलाल न केवल नौजवानों के बेताज के बाद-
हैं, बल्कि भारत के वर्तमान अग्रणी राजनैतिक नेताओं
पका प्रमुख स्थान है। राजनैतिक व्यक्तियों के बारे में
तौर पर यह कहा जाता है, और यह एक परम्परा ही
ई है, कि वे सिवा राजनीति के उथले-अस्थायी वाता-
के और किसी दिशा में न कुछ करते हैं, न करने की
मनःस्थिति ही रहती है। पं० जवाहरलाल ने प्रस्तुत
लिखकर इस परम्परा को तोड़ दिया है, अथवा
कि इसे मिथ्या सिद्ध कर दिया है, क्योंकि आपकी
स्तक बाल-साहित्य की एक सुन्दर और स्थायी चीज़ है।
पुस्तक उन पत्रों का संकलन है, जो पण्डितजी ने
१०वर्षीय पुत्री कुमारी इन्दिरा को उस समय लिखे
वह मसूरी थी और पण्डितजी प्रयाग थे। कुल ३१
प्रकृति-पुस्तक से लेकर ज़मीन की कहानी—आरम्भ
था, उसपर पहले शंखोत्पादक, फिर सरीसृप और
स्तन प्राणियों का कैसे विकास हुआ, मनुष्य का
कैसे होता गया, वनस्पतियों का क्रम-विकास कैसे
ाचीन चट्टानों और अवशेषों (ठठरियों) से उस-
मय की स्थिति का कैसे पता चलता है, लेखन-कला
म्भ और विकास सभ्यता व शहरों की वृद्धि आदि
कैसे हुआ, ईश्वर और देवताओं की कल्पनायें कैसे
हुईं, इत्यादि सृष्टि-विकास-विषयक बातों का बड़ी
स्पष्टता और सुलझेपन के साथ ही रोचकता के
न है। मिश्र के 'स्फिंक्स' और 'ममी' रंगीन तथा
नस्पति और मछलियों के अवशेषों, सरीसृप जाति
जन्तुओं, हाथी इत्यादि के सादे चित्र भी हैं,
र्णित विषय को समझने में मदद मिलती है।
में सन्देह नहीं कि यह विषय बड़ा पेचीदा है,
तजी ने संक्षेप में इसे बड़ा ही रोचक और सरल
जो उनके इस विषयक ज्ञान-गाम्भीर्य और लेखन-
द्योतक है। यह हो सकता है कि उनके कुछ तथ्य
है लोगों की दृष्टि में मिथ्या भी जँचें—मसलन,
देवताओं की कल्पना के मूल का उन्होंने कई बार
किया है, कि उस समय के लोगों के अज्ञान और
भय से इनकी कल्पना और पूजा का उद्भव हुआ
है, उससे धर्मभीरु लोगों का मतभेद हो सकता है; पर
वर्णन तो उनका स्वाभाविक ही जँचता है। एक बात और।
अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे की भावना विशेष रूप से यत्र-तत्र
मिलती है, राष्ट्र वा देश या जाति के पृथकत्व के विरुद्ध विचार
उत्पन्न किये गये हैं, और आपस की मारकाट, लड़ाई-झगड़े,
जय-विजय को भ्रमात्मक और अज्ञानपूर्ण दरसाया गया है।
निस्सन्देह ये भाव सुन्दर, वास्तविक और उत्कर्षकारक हैं
—यदि बालकों में इनका बीज वपन हो जाय।

अंग्रेज़ी के साहित्यिकपन की तो हम कह नहीं सकते,
पर सरल वह काफ़ी है। पत्र छोटे-छोटे और विषया-
नुकूल होने के सबब अरोचक बिलकुल नहीं। अंग्रेज़ी
जानने वाले बालक निस्सन्देह इससे बड़ा लाभ उठायेंगे।
सुना है, इसका हिन्दी-अनुवाद भी हो रहा है। हमें आशा
है, हिन्दी-संसार उत्सुकता से उसकी बाट जोहेगा।

कागज़, छपाई बढ़िया और आकर्षक है। जिल्द भी
पक्की, मज़बूत और सुन्दर है। साइज़ क्वार्टर फुल्सकैप,
पृष्ठ-संख्या १२१। प्रकाशक—लाजर्नल प्रेस, इलाहाबाद।

हिन्दी

१ हीरामन तोता—सम्पादक—श्री रामवृक्ष शर्मा बेनी-
पुरी; मू० ॥)
२ बिलाई मौसी—लेखक—वही; मू० ॥)
३ आविष्कार और आविष्कारक—लेखक—वही;
मू० ॥)
४ बाल-कथा कहानी (४ भाग)—लेखक—पं० रामनरेश
त्रिपाठी; मू० प्रत्येक भाग का ।=)
५ बाल-कविता-माला—लेखक—पं० देवीदत्त शुक्ल;
मू० =)
६ घरौंदा—लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद सिंह; मू० ।-)
७ पत्र—(१) बालक—हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहेरिया-
सराय; (२) खिलौना—हिन्दी-प्रेस, प्रयाग;
(३) विद्यार्थी—हिन्दी-प्रेस, प्रयाग; (४)
बाल-सखा—इण्डियन-प्रेस, प्रयाग; (५)
शिशु, सुदर्शन-प्रेस, प्रयाग; (६) कन्या-सर्वस्व,
नं० ४ कर्नलगंज, प्रयाग।

हिन्दी में भी इन दिनों बाल-साहित्य की ओर विशेष

ध्यान दिया जा रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। इण्डियन-प्रेस (प्रयाग) से तो इस विषयक कुछ साहित्य पहले भी निकला था, पर इधर कुछ विशेष प्रगति हुई है। लहेरिया-सराय (बिहार) के हिन्दी-पुस्तक-भण्डार की प्रथम तीन पुस्तकें बालकों के लिए उपयोगी ही नहीं, रोचक भी हैं। उपयोग की दृष्टि से इनमें 'आविष्कार और आविष्कारक' का सबसे अधिक महत्व है, क्योंकि इसमें रेल, जहाज़, तार, बेतार का तार, टेलीफ़ोन, प्रेस, ग्रामोफोन आदि आधुनिक १० अजीबात का सरल-सुबोध वर्णन है। 'हीरामन तोता' में विविध लेखकों की नव मनोरंजक कहानियों का संग्रह है। पर रोचकता में 'बिलाई-मौसी' कमाल करती है। शायद ही कोई बालक ऐसा हो, जो एक बार इन 'मौसीजी' की कहानी को पढ़ना शुरू करके ख़त्म किये बग़ैर चैन ले सके। 'मौसीजी' की कहानी के अलावा इसमें तीन अन्य कहानियाँ भी हैं, वे भी सब रोचक हैं, पर 'चोर राजकुमार' की कहानी उनमें विशेष दिलचस्प है। तीनों पुस्तकों में, कहानियों के साथ, चित्रों का सम्मिश्रण होने से बालकों के लिए वे और भी मनोरंजक हो गई हैं। निस्सन्देह ऐसी पुस्तकें उनके लिए उपयोगी भी बहुत हैं। परन्तु बालकों की पुस्तकों का मूल्य ॥) ज़रा ठीक नहीं जँचता, कुछ कम होता तो अच्छा था। आशा है, प्रकाशक महाशय भविष्य में इसपर विचार करेंगे। बालकों, उनके अभिभावकों को भी इन पुस्तकों का स्वागत कर उनका उत्साह बढ़ाना चाहिए।

× × ×

'बाल-कथा-कहानी' हिन्दी-मन्दिर (प्रयाग) की सौग़ात है। अभी तक इसके चार भाग निकल चुके हैं—और, वे चारों ही बढ़िया हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने शुद्ध-सरल मुहा-वरेदार भाषा में बड़े अच्छे ढंग से इन्हें लिखा है। चित्रों-द्वारा कहानियों को सजाया गया है। पुस्तक का टाइप-काग़ज़ मोटा और छपाई रंग-बिरंगी व साफ़-सुन्दर कराकर उसे आकर्षक भी खूब बनाया गया है। और तारीफ़ यह कि इतने पर भी मूल्य प्रत्येक भाग का ।=) ही रक्खा है। इस सफलता के लिए त्रिपाठीजी को बधाई! बालक-बन्धु इस कथा-माला को देख-पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे।

× × ×

'बाल-कविता-माला' इण्डियन—प्रेस (प्रयाग) ने प्रकाशित की है। 'बाल-सखा' में निकली बालोपयोगी कुछ कविताओं का चयन है। पुस्तक छोटी पर आकर्षक और रोचक है। मूल्य भी कम ही है।

× × ×

'घरौंदा' बिहार के शीतलपुर (पो० एक्मा, ज़ि० सारन) के हिन्दी-मन्दिर से निकली है। सचमुच घरौंदा है। बाह्य रूप इतना दरिद्र और आकर्षणहीन है कि अन्दर से पढ़ने को शायद ही किसी बालक का जी चाहे, यद्यपि चीज़ बुरी नहीं है। ऐसे प्रकाशकों से हमारा निवेदन है कि बालकों के लिए पुस्तकें निकालने से पहले उनकी रुचि को समझने की कोशिश करें तो अच्छा है। पहले बाह्य रूप जब उन्हें आकर्षित करेगा तभी तो वे उसे पढ़ने को लालायित होंगे?

❀ ❀ ❀

बालोपयोगी पत्रों में लहेरियासराय का 'बालक' अपना विशेष स्थान रखता है। श्री रामवृक्ष शर्मा अब 'बालक' से 'युवक' बन गये हैं ('बालक' उन्होंने पटना से 'युवक' निकाला है), पर नये श्री रामलोचनशरण भी कुशल मालूम पड़ते हैं और बदस्तूर चल रहा है। वार्षिक मूल्य ३) रु० है।

'खिलौना' छोटे बच्चों के लिए प्रयाग के हिन्दी[...] से निकला है। इसने बहुत थोड़े समय में बालकों में बड़ी पैठ कर ली है। निकलता भी उनके उपयुक्त है। वार्षिक मूल्य भी २) ठीक ही है। इसके लिए सम्पादक और स्वामी पं० रामजीलाल शर्मा को बधाई।

'विद्यार्थी' १५ साल पहले जैसा था, वैसा अब रहा। मगर पिछले कुछ महीनों से श्री सुरेन्द्र शर्मा [...] सम्मिश्रण से इसका स्टैण्डर्ड फिर ऊँचा उठने लगा है, ही कुछ ज़िन्दा-दिली की झलक भी आई है। यह तरक्की करे और विद्यार्थी-भाइयों को जीवन-संग्राम में [...] प्राप्ति के उपयुक्त बनावे, यही कामना है। इसके सम्पादक पं० रामजीलाल शर्मा और ३॥) वार्षिक मूल्य है।

इण्डियन-प्रेस (प्रयाग) का 'बालसखा' श्रीनाथसिंह के सम्पादकत्व में और सुदर्शन प्रेस (प्र[...]

शिशु' पं० सुदर्शनाचार्य के सम्पादकत्व में बदस्तूर रहे हैं। प्रयाग के 'कन्या-सर्वस्व' का विशेषांक भी हाल निकला है और अच्छा है। पर बीच-बीच में दवाओं विज्ञापन कुछ खटकते हैं। सम्पादिका और सञ्चालिका ती यशोदादेवी इस तरफ़ ध्यान दें तो अच्छा होगा।

❀ ❀ ❀

संक्षेप में कहें तो, हिन्दी में बाल साहित्य का प्रकाशन समय तेज़ी पर है—और, हर्ष की बात है, वह निकल बुरा नहीं रहा है। आशा है, हिन्दी-भाषी बालक उसका चित उपयोग करेंगे और उसके प्रकाशकों को और भी र-सस्ता ऐसा साहित्य निकालने के लिए प्रोत्साहन देंगे।

मुकुट

साहित्य-सत्कार

(१) स्वदेशी धर्म—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल (मूल लेखक—श्रीयुत कालेलकर महाशय)। प्रकाशक—र, ग्रन्थ—भंडार, लेडी हार्डिंज रोड, बम्बई। पृष्ठ-ा ३२, मू० ।)

(२) पंचरत्न—लेखक—महात्मा गाँधी; प्रकाशक, पृष्ठ सं० १९९, मू० १)

(३) सर्वोदय—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; लेखक वही; प्रकाशक वही; पृ० सं० ३०, मू० ।)

(४) गांधीजी का बयान—अनुवादक और शक वही। पृ० सं० ८०, मू० ॥)

(५) दरिद्रता से बचने के उपाय—अनुवादक (श्रीयुत ओरिसन स्वेट मार्डन साहब की Peace, wer and Plenty नामक पुस्तक के एक निबन्ध अनुवाद)। प्रकाशक वही। पृ० सं० १७, मू० =)

(६) स्त्री-रत्न—लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; शक वही; पृ० सं० ५६, मू० ।-)

(७) अनन्तवती—लेखक—और प्रकाशक वही; सं० ९६, मू० ॥=)

(८) संवाद-संग्रह—लेखक—वही; प्रकाशक—वही, सं० १६०, मू० १)

(९) गृहिणी-गौरव—अनुवादक वही; प्रकाशक वही; पृ० सं० २०८, मू० सादा १॥) और सजिल्द २)

(१०) पुनरुत्थान—लेखक—वही; प्रकाशक—वही; पृ० सं० १०४, मू० ॥।=)

(११) विश्वधर्म-शास्त्र—लेखक—श्रीयुत आनन्द स्वामी भारतीय; प्रकाशक—श्री यशपाल बी० ए० राष्ट्रीय विशारद, लायलपुर; पृ० सं० १७०; मिलने का पता—सस्ता-साहित्य-मंडल अजमेर; मू० १=)

(१२) ज्ञानसूर्योदय—लेखक—श्रीयुत सूरजभान वकील, प्रकाशक—श्री सन्मति-पुस्तकालय, जयपुर; पृ० सं० ८०, मू० ।)

(१३) विधवा-कर्तव्य—लेखक—वही; प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग बम्बई; पृ० सं० १३७, मू० ॥) मिलने का पता-साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

(१४) वरदान—लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्द, प्रकाशक मैनेजर ग्रन्थ भंडार, लेडी हार्डिंज रोड, माटूंगा, बम्बई पृ० सं० २३९, मू० १)

(१५) अरुणोदय—लेखक—श्रीयुत गिरीश; सम्पादक—जगद्गुरु श्रीमान सच्चिदानन्द शर्मा; पृष्ठ-संख्या २८२; मूल्य २)

(१६) अमर शहीद यतीन्द्रनाथदास—लेखक—श्रीयुत रमेश वर्मा; प्रकाशक—साहित्य रत्न भण्डार, कसेरट बाजार आगरा; पृष्ठ-संख्या ४८; मूल्य ।)

(१७) प्राच्य और पाश्चात्य—अनुवादक—श्रीयुत नरोत्तम व्यास; (मूल लेखक—स्वामी विवेकानन्द); प्रकाशक—साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा; पृष्ठ-संख्या ९०; मूल्य ।=)

(१८) विधवा-प्रार्थना (कविता) लेखक-जनाब अल्ताफ़हुसैन साहब 'हॉली'; प्रकाशक-कृष्णलाल वर्मा, ग्रंथ भण्डार, लेडी हार्डिंज रोड, माटूंगा, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ५४; मू० ।-)

(१९) आज़ादी के दीवाने—लेखक—श्रीयुत विद्याभास्कर शुक्ल, 'साहित्यालंकार'। प्रकाशक—युगान्तर पुस्तक-भण्डार, दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २२७; मूल्य १)

(२०) साहित्य-मीमांसा—लेखक—श्रीयुत किशोरीदास वाजपेयी; प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा; पृष्ठ-संख्या ५०; मूल्य ।)

(२१) एक घूंट—लेखक—श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'; प्रकाशक—पुस्तक मन्दिर, काशी; पृष्ठ-संख्या ५९, मूल्य ॥)

(२२) यौवन, सौंदर्य और प्रेम—लेखक—ठाकुर श्रीनाथसिंह; प्रकाशक—साहित्य मंदिर, दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २४८, मूल्य १॥)

(२३) राष्ट्रीय शिक्षा का इतिहास और उसकी वर्तमान अवस्था—लेखक—श्रीयुत कन्हैयालाल; प्रकाशक—श्रीयुत बीरबलसिंह पीठस्थविर, काशी—विद्यापीठ, काशी; पृष्ठ संख्या २९१; मूल्य २)

(२४) खेलो भैया (कविता)—लेखक—श्रीयुत विद्याभूषण 'विभु'; प्रकाशक—रायसाहब रामदयाल अगरवाला, इलाहाबाद; पृष्ठ-संख्या ५८; मूल्य ॥)

(२५) पद्य-प्रवेशिका—लेखक—श्रीयुत सुवर्णसिंह वर्मा 'आनन्द'; प्रकाशक—मुकुन्द-मन्दिर, बेलनगञ्ज, आगरा; पृष्ठ-संख्या ११७; मूल्य ॥)

(२६) आनन्द-सरोज (कविता)—रचयिता—वही; प्रकाशक—वही; पृष्ठ-संख्या १६; मूल्य ।)

(२७) अपूर्व आत्म-त्याग—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; मूल लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य; प्रकाशक—ग्रन्थ भण्डार, लेडी हार्डिंज रोड, माटूंगा, बम्बई; पृष्ठ संख्या २७१; मूल्य १)

(२८) सुर-सुन्दरी—लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; प्रकाशक—वही; पृष्ठ-संख्या ४८; मूल्य ।-)

(२९) राजपथ का पथिक—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा (राल्फवाल्डो ट्राइन की 'Way fairer on the Open Road' नामक पुस्तक का भावानुवाद); पृष्ठ-संख्या ५६; मूल्य ।-)

(३०) तीन रत्न—महात्मा गांधी की तीन कथाओं का अनुवाद; प्रकाशक—मैनेजर, ग्रन्थ भण्डार, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ८७; मूल्य ॥=)

(३१) स्वास्थ्य विज्ञान—लेखक—श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर; प्रकाशक—वही, हिंदू युनिवर्सिटी, बनारस; पृष्ठ-संख्या २३२, मूल्य २॥)

गुजराती

(३२) बुद्ध अने महावीर—लेखक—श्रीयुत किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला; प्रकाशक—प्रस्थान कार्यालय, अहमदाबाद; पृष्ठ-संख्या ११०; मूल्य ॥)

(३३) राम अने कृष्ण—लेखक—वही; प्रकाशक—वही; पृष्ठ-संख्या १४८; मूल्य ॥=)

(३४) इटाली नो मुक्तियज्ञ—लेखक—श्रीयुत नरसिंह भाई ईश्वरलाल पटेल; प्रकाशक—वही; पृष्ठसंख्या ११६; मूल्य ।=)

मराठी

(३५) मिरज संस्थान सारावाढ आणि रचतांचा सत्याग्रह—लेखक—श्रीयुत 'स्वराज्य'; प्रकाशक—अनंत विनायक पटवर्धन, आर्य भूषण प्रेस, बुधवार पेठ, पुणें; पृष्ठ-संख्या २२८; मूल्य १)

पत्र-पत्रिकायें

१. वैनगार्ड (अंग्रेज़ी साप्ताहिक)—सम्पादक—श्री यूसुफ़ मेहरअली और उपेन्द्र देसाई। प्रकाशक—वैनगार्ड पब्लिशिंग कम्पनी, २२ अपोलो स्ट्रीट, फ़ोर्ट, बम्बई। डिमाई चार पेजी के १६ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ४)

२. मनसुखा (सचित्र हिन्दी साप्ताहिक)—सम्पादक—पं० रमाशंकर अवस्थी, प्रकाशक—वर्तमान प्रेस कानपुर। रायल चार पेजी साइज़ के आर्ट पेपर सहित २४ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ६॥) रु०

३. चाँद (उर्दू-संस्करण)—सम्पादक—मुंशी कन्हैयालाल एडवोकेट। प्रकाशक—चन्द्रलोक, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या १२३ कई रंगीन व सादे चित्र। 'त्यागभूमि'-साइज़ वार्षिक मूल्य ८) रु०

४. माया (कहानियों की हिन्दी मासिक पत्रिका)—सम्पादक—श्री क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफ़ी और विजम वर्मा। प्रकाशन-स्थान—२४ जार्ज टाउन, प्रयाग। रायल अठपेजी साइज के ८९ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ५) रु०

लाहौर-कांग्रेस

कुछ दृश्य
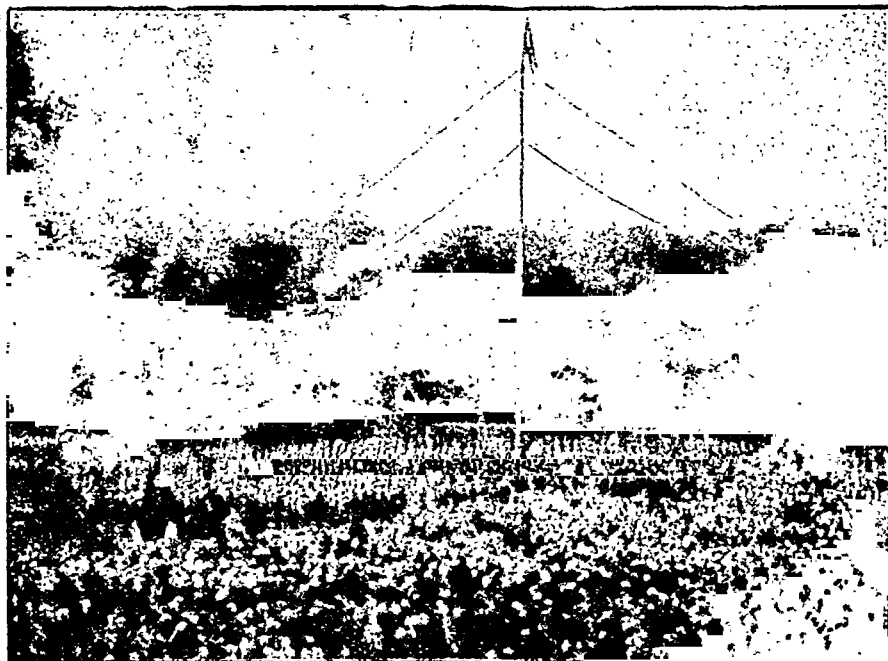
राष्ट्रीय ध्वजारोपण
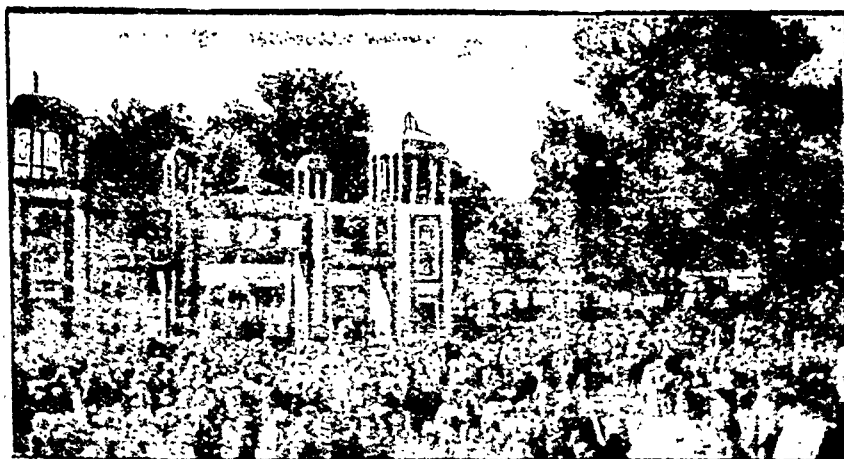
राष्ट्रपति का जुलूस
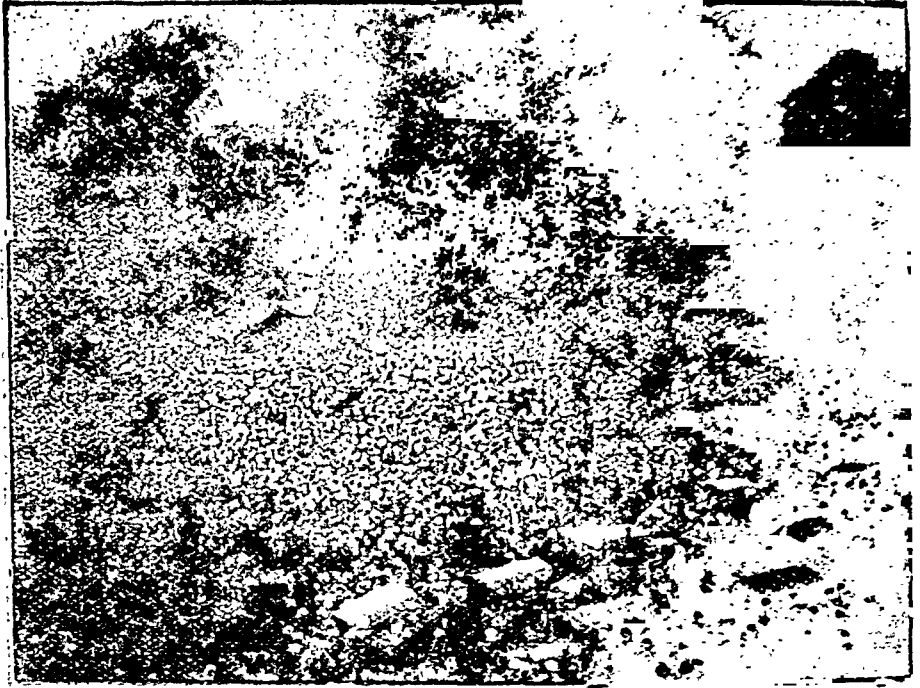
प्रेसीडेण्ट पटेल—स्व० लालाजी की मूर्ति का उद्घाटन कर रहे हैं

कांग्रेस—प्रतिनिधि—कैम्प

पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता

स्वागत-समिति के प्रधान मंत्री

डा० गोपीचन्द

स्वास्थ्य-विभाग के अध्यक्ष
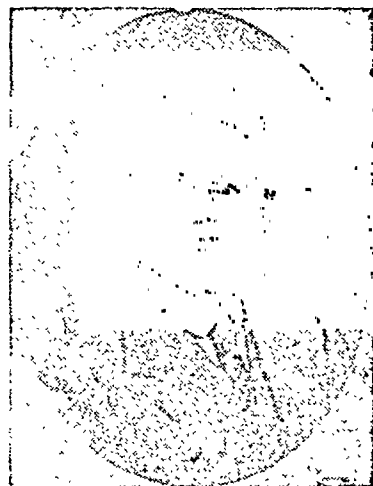
डा० धर्मवीर

स्वागताध्यक्ष
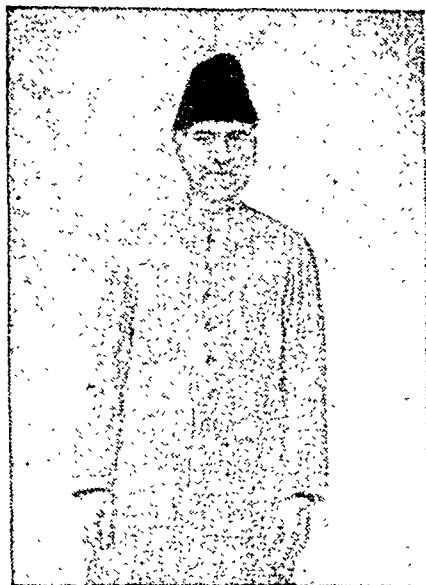
डा० किचलू

अर्थ-मन्त्री

श्री सन्तानम्

स्वयंसेविका-दल की प्रधान

कुमारी लज्जावती

पिछले वर्ष के राष्ट्रपति
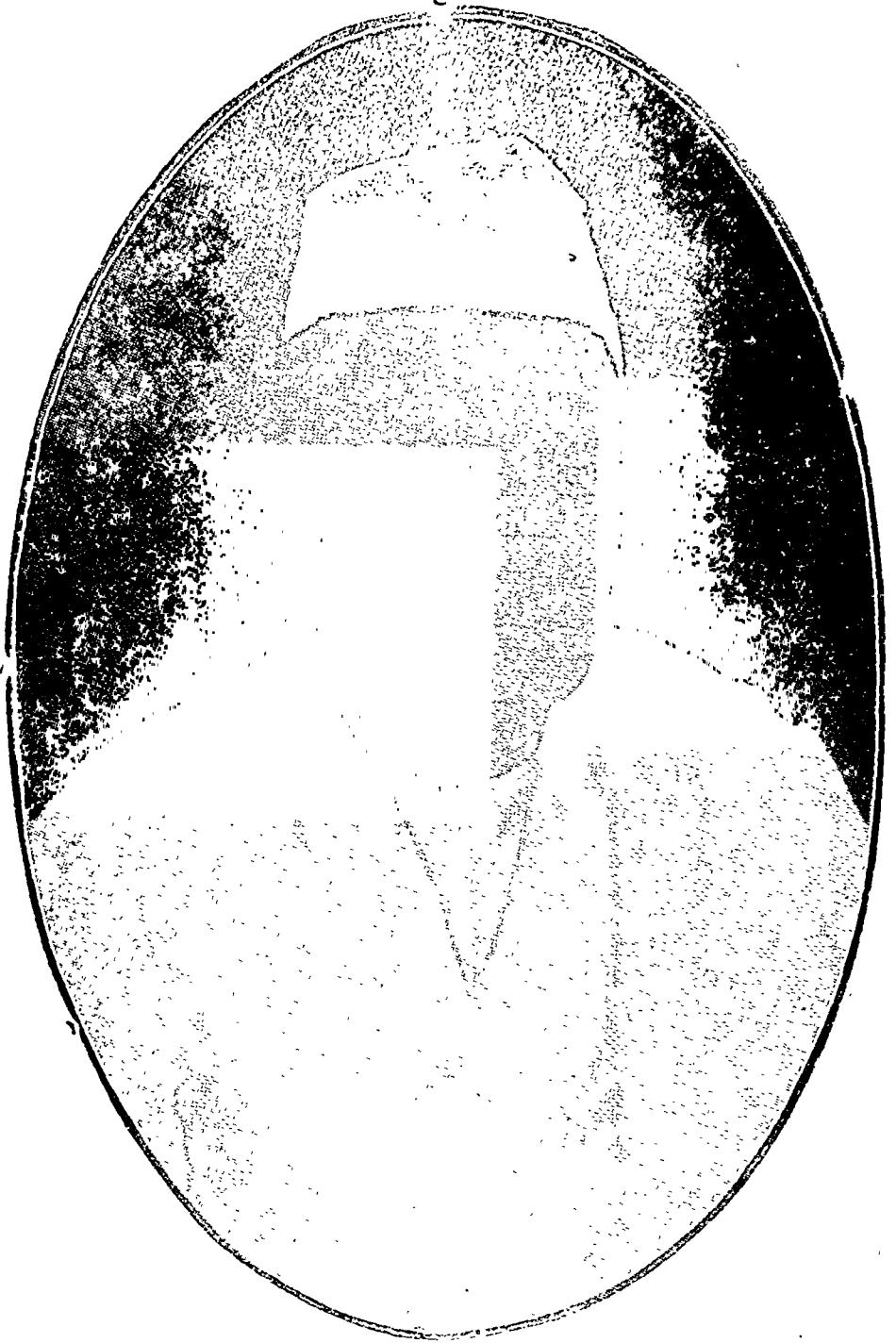
पं० मोतीलाल नेहरू

बिहार के प्रसिद्ध नेता
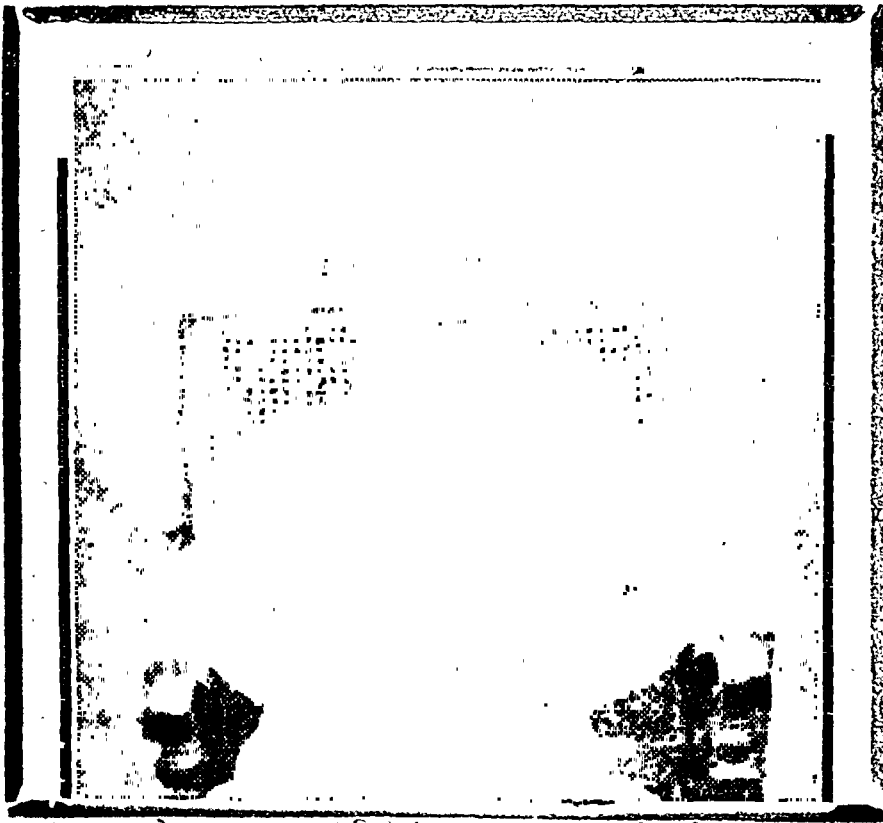
मौ० मज़हरुलहक़, जिनकी मृत्यु अभी हाल में हुई है।

स्वतन्त्रता-यज्ञ की प्रथम आहुति
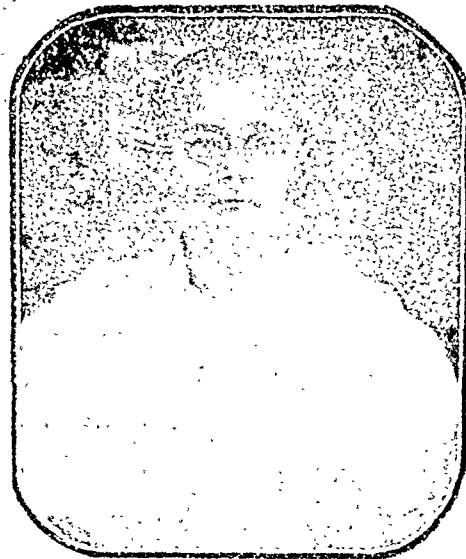
श्री सुभाषचन्द्र वसु जिन्हें राजद्रोह के अपराध में
एक वर्ष सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला है।

चंक्रम

वातावरण

लाहौर में महासभा के वातावरण में जहाँ जोश और बलिदान के ऊँचे भाव थे तहाँ उच्छृंखलता भी अपना असर बता रही थी। यह स्वाभाविक था। एक तो सदियों की गुलामी के बन्धन, फिर युवकों की मस्ती—इससे स्वतत्रता के मस्त भाव उच्छृंखलता का रूप सहज ही धारण कर लेते थे। स्वयंसेवकों का प्रबंध बहुत अच्छा था और स्वयं-सेविकाओं की सेना कुमारी लज्जावती जी के नेतृत्व में अपनी प्रबंध-पटुता का परिचय दे रही थीं। राष्ट्रपति का जलूस घोड़े पर निकाला गया था, जो उनकी और देश की सैनिक मनोवस्था का परिचायक था। विषय-समिति में यद्यपि 'स्वतंत्रता-प्रस्ताव' पर हुई बहस में तथा दूसरी बातों से यह ज़ाहिर होता था कि देश के सब भाग अभी इसके लिए तैयार नहीं हैं; किन्तु महासभा के प्रतिनिधि किसी तरह स्वतंत्रता के ध्येय की घोषणा को आगे पर टालने के लिए तैयार न थे। पंजाब में, ऐसा प्रतीत हुआ कि, विद्यार्थियों और युवकों में साम्यवाद के भाव खूब फैल रहे हैं और वाइसराय पर बम फेंके जाने वाले प्रस्ताव के उपस्थित होते समय उन्होंने लाल झण्डियाँ दिखलाकर अपने अस्तित्व का परिचय भी महासभा में दिया था। 'नौजवान भारत सभा' के अधिवेशन से अ-संयम और मर्यादा-हीनता का अधिक परिचय मिलता था। लाहौर में एक बढ़ती और उमड़ती हुई नदी का प्रवाह था—अब यह देश के एंजिनियरों का काम है कि उस शक्ति-प्रवाह से उपयोगी और वाञ्छनीय काम ले लें।

सर्दी खूब थी और इसलिए बीमारों की संख्या भी काफी हो गई थी। यदि अंगीठियों का प्रबंध न हुआ होता तो कितने ही लोगों का सदा के लिए वहीं बसेरा हो जाता। यह अच्छा ही हुआ कि आगे से महासभा का अधिवेशन फरवरी-मार्च में होने लगेगा। इससे स्वागत-संबंधी बहुतेरा धन-जन अधिक उपयोगी और जरूरी राष्ट्रीय कामों के [illegible] बच रहेगा और महासभा 'बड़े दिन की छुट्टियाँ मनाने [illegible] शौकीनों की' न रहकर स्वतंत्रता की सिद्धि में तल्लीन [illegible]हियों की हो जायगी।

प्रजातंत्र-दल

किन्तु एक बात देख कर मेरे दिल को बड़ा [illegible] पहुँची। विषय-समिति में मुझे ऐसा भास हुआ कि [illegible] लोग सैनिकता के, और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आव[illegible] गंभीरता के भावों से काम नहीं कर रहे थे; बल्कि [illegible] बाज़ी, टालमटोल और वक्त खराब करने की ओर [illegible] प्रवृत्ति थी। छोटी-छोटी बातों पर एतराज करना, [illegible] और शाब्दिक बाल की खाल खींचना, नगण्य बातों के [illegible] पोल माँगने की ज़िद करना—इस दृश्य ने मेरे दि[illegible] अच्छा असर नहीं डाला। कुछ प्रस्तावों का विरो[illegible] विषय-समिति में उनके महत्व को बिना समझे ही इ[illegible] किया गया कि कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं से [illegible] नाराज़ थे। अन्त को यह दूषित मनोवृत्ति अन्तिम [illegible] 'वाक आउट' के दृश्य और प्रजातंत्र-दल की स्थापना [illegible] में प्रकट हुई। प्रजातंत्र-दल किसी सैद्धान्तिक मत[illegible] कारण नहीं उत्पन्न हुआ है। उसमें श्री सुभाष बाबू [illegible] से हर बात में आगे जाना चाहते हैं, अभी नई [illegible] बनाना और प्रायः सब सरकारी संस्थाओं का [illegible] चाहते हैं। तो श्री सत्यमूर्ति धारासभाओं के [illegible] को नापसंद करते हैं और महासभा की बहिष्कार-[illegible] ख़िलाफ़ आवाज़ उठा रहे हैं। इससे सिद्ध है कि इस ग[illegible] दल की नींव सिद्धान्तों पर नहीं है और हमें आ[illegible] चाहिए कि ज्यों-ज्यों स्वतंत्रता का आन्दोलन ज़ोर [illegible] त्यों-त्यों यह अलग खिचड़ी पकाने का भाव दबता जा[illegible] सम्मिलित रूप से सामना करने का भाव प्र[illegible] जायगा। यदि प्रजातन्त्र के मानी यही हैं कि [illegible] छोटी सी बातों से बिगड़कर राष्ट्रीय कामों में वि[illegible] उत्पन्न करें या होने दें तो यह प्रजातंत्र संस[illegible] दिन रह सकेगा, और कितनों को लाभ पहु[illegible] पण्डित मोतीलालजी ने ठीक ही कहा है कि [illegible]

ाद, टीका-टिप्पणी और हुज्जत का समय नहीं है—कंधे
ंधा भिड़ाकर, एक सेनापति के हुक्म के अनुसार, जूझ
ने का समय है। क्या हमारे स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के
री वे भाई, जो अपनी स्वच्छंद प्रकृति के कारण स्वतंत्रता
प्रजातंत्र के पवित्र और उच्च भावों को आघात पहुँ-
ते हैं, पण्डितजी की इस हार्दिक और गंभीर अपील पर
करेंगे ?

क ज़बरदस्त क़दम

लाहौर महा-सभा ने देश में युगान्तर कर दिया है।
दियों से जकड़ी भारत-माता की गुलामी की जंजीरों को
डाला है। अवतक भारत दुविधा में था। वह कहता
—अंग्रेजी साम्राज्य के अंदर रहें तो अच्छा; बदर्जे मजबूरी
ही उसके बाहर जाना पड़े। पर अब उसने लाहौर में
की चोट से एलान कर दिया है कि अब मैं एक क्षण
भी बड़े से बड़े और बलाढ्य से बलाढ्य साम्राज्य की भी
लामी में नहीं रह सकता। मैं जानता हूँ कि ब्रिटिश
म्राज्य के पास विध्वंसक शक्तियाँ और शस्त्रास्त्रों की
मी नहीं है—पर इनका डर भी अब मुझे पूरी आज़ादी के
य की घोषणा करने से नहीं रोक सकता।

किन्तु स्वतंत्रता का यह प्रस्ताव महासभा ने, उसके
नेताओं और युवक सैनिकों ने, जल्दी में, जोश में, नादानी
और गैरजिम्मेदारी से नहीं किया है। जब वाइसराय कोई
बात अभिवचन इस बात का नहीं दे सके कि सर्वपक्षीय
मेलन में औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना तय की जायगी
कलकत्ता-महासभा के निर्णय को दृष्टि में रखकर
और महासभा दूसरा प्रस्ताव कर ही नहीं सकती थी।
मालवीय जी का दो-तीन महीने इस निर्णय को और
बढ़ा देने का प्रस्ताव लुभावना तो था, उसमें समझ-
भी ज्यादह मालूम होती थी, किन्तु इन इन्तजारियों
की तो कोई हद होनी चाहिए न? और बाद को अर्ल
के भाषण ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया
महासभा ने पूरी आज़ादी के ध्येय की घोषणा करके बड़ी
मानी, दूरंदेशी, ईमानदारी और समुचित साहस का काम
है। मेरा यह निश्चित मत है कि यह निर्णय आज
चाहे कितने ही धीमे लोगों को चौंकानेवाला हो; किन्तु
समय दिखा देगा कि इससे औपनिवेशिक स्वराज्य के
समर्थकों के हाथ मज़बूत ही हुए हैं, मजूर-सरकार की
स्थिति को बल ही मिला है और वाइसराय का भी पथ
सुगम ही हुआ है।

इस प्रस्ताव के अनुसार अब महासभा का औपनिवेशिक
स्वराज्य की योजना के लिए सर्वपक्षीय परिषद् से कोई
वास्ता नहीं रहा। पर इसका यह मतलब नहीं कि परिषद्
से उसने अपना नाता तोड़ लिया है। लड़ाई के अन्त में
परिषदों ही के द्वारा तो सुलह होती है। पर अब महासभा
के प्रतिनिधि केवल पूर्ण स्वराज्य के विधान पर बहस करने
के लिए ही परिषद में जा सकते हैं। दूसरे लोग औपनिवे-
शिक स्वराज्य की योजना के लिए भी परिषद् में योग
देने के लिए स्वतंत्र हैं और देश का नरम दल इस विचार से
अपनी ओर से भरसक उद्योग भी कर रहा है।

पूर्ण स्वतन्त्रता-प्रस्ताव के मुख्य दो भाग हैं—एक
ध्येय-परिवर्तन सम्बन्धी और दूसरा कार्यक्रम-सम्बन्धी।
कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि फिलहाल रचना-
त्मक और संगठनात्मक काम जैसे महासभा के सदस्य बढ़ाना,
स्वयंसेवक-दल बनाना, खादी-प्रचार करना, शराबखोरी
मिटाना, अछूतपन दूर करना, आदि में ही अपनी सारी
शक्ति हमें लगा देना चाहिए। इनसे देश को स्वतन्त्रता-
संग्राम की तालीम मिलेगी, सैनिकता और संगठन के गुण
बढ़ेंगे और हम विजय के अधिक योग्य बनेंगे। पर हमारा
आखिरी निर्णायक और अमोघ अस्त्र है सत्याग्रह, सविनय
कानून-भंग या कर न देने का आन्दोलन। इसके एकमात्र आचार्य
देश में महात्मा गाँधी हैं। अतएव इस आख़िरी और
महत्वपूर्ण मोर्चेबन्दी का काम महासभा ने महात्माजी के
जिम्मे किया है और उनकी सलाह से महा-समिति इसका
कार्यक्रम, समय देखकर, देश के सामने रक्खेगी। लाहौर
से लौटते ही महात्माजी अपना सारा बुद्धि-बल इसी व्यूह
की रचना में लगा रहे हैं। वे इस पर बड़ी चिन्ता के साथ
विचार कर रहे हैं कि किस तरह अब की चौरी-चौरा काण्ड
न होने पावे और यदि दुर्भाग्य से हो भी जाय तो आख़िरी
लड़ाई के लिए आगे बढ़ाया कदम अब फिर न रोक रखना

पड़े। इसके लिए सबसे बड़ी शर्त और आवश्यकता है वायुमण्डल को शान्तिमय बनाने की। हमें याद रखना चाहिए कि मारना नहीं पर मरना ऐसे सामूहिक और निःशस्त्र प्रजा के उठाये युद्ध का प्रथम सूत्र है। सरकार के एजेण्टों के द्वारा अथवा हमारे ही भूले भाइयों द्वारा उत्पन्न किये गहरी उत्तेजना, जोश, रोष और अपमान के अवसरों पर भी हम ज़ब्त करके यदि अपनी सच्ची सैनिकता का आश्वासन महात्माजी को दिलायेंगे और सच्चाई और मज़बूती के साथ उसपर कायम रहेंगे तो महात्माजी की शक्ति अनन्त हो जायगी और बरसों का काम दिनों में हो जायगा।

फिर भी स्वतन्त्रता-संग्राम की शुरुआत के रूप में महासभा ने धारासभाओं के बहिष्कार की घोषणा कर दी है। और धारासभाओं के सदस्य धड़ाधड़ इस्तीफे दे रहे हैं। स्वतन्त्रता के भावों के सम्बन्ध में लोकमत जानने और शिक्षित करने के लिए कार्य-समिति ने यह भी आदेश किया था कि २६ जनवरी रविवार को स्वतन्त्रता दिन देश भर में मनाया जाय। जिससे हमारी भावी सरकार और वर्तमान सरकार दोनों अपने-अपने भविष्य का और भावी कार्यक्रम का अन्दाज़ा लगा सकें।

भारत की इस स्वतन्त्रता के निश्चय से ब्रिटिश साम्राज्यवादी बिलबिला उठे हैं। महात्माजी तथा दूसरे महासभा के नेताओं को गिरफ्तार करने, महासभा को गैरक़ानूनी क़रार देने, फौज़ी क़ानून ज़ारी करने, आदि की धमकियाँ दी जाने लगीं हैं; पर यदि देश ने एक ओर साहस,उत्साह, निडरता और जोश का तथा दूसरी ओर पूर्ण शान्ति-पालन का परिचय दिया तो ये तमाम धमकियाँ और उनके पीछे रहने वाला संहारक अस्त्र-बल, एक चमत्कार की तरह, भोंटा साबित होगा, इसमें मुझे तिल-मात्र सन्देह नहीं है।

अन्य प्रस्ताव

स्वतंत्रता-प्रस्ताव के अलावा तीन और महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। १९२२ में गया में इस आशय का प्रस्ताव महासभा ने स्वीकार किया था कि आगे से सरकार जो रुपया बिना राष्ट्र की सम्मति के कर्ज लेगी उसकी जिम्मेदारी राष्ट्र पर नहीं है। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए लाहौर में यह प्रस्ताव हुआ कि विदेशी सरकार ने [illegible] पर जो कुछ भी आर्थिक बोझ बढ़ा रक्खा है, आज़ाद हि[न्दु]स्तान उसकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता। वह एक [illegible] कमिटी बैठा देगा और वह जिन-जिन खर्चों या कर्ज़ों को वाज़िब क़रार देगी वह मंज़ूर नहीं किया जायगा। [illegible] प्रस्ताव बहुत ही आवश्यक था। मौजूदा सरकार ने दे[श की] आवश्यकताओं और सुविधाओं का ख़याल न करके देशवासियों को करोड़ों रुपयों का फ़ायदा जुदे-जुदे [illegible] पहुँचाया है और भारत को कंगाल कर दिया है। [illegible] दशा में समय पर ही यह प्रस्ताव कर देना सर्वथा [illegible] था। यदि महासभा की वाणी में बल है तो सरकार [को] अब इसमें सावधान हो जाना पड़ेगा।

एक प्रस्ताव में देशी राज्यों के नरेशों से कहा गया [कि] वे अपने यहाँ उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली जारी [करें] और प्रजा को लिखने, बोलने और आन्दोलन करने [की] आज़ादी दें। देशी-राज्यों की अंधा-धुंधी किसी से [छिपी] नहीं है। संसार में बड़े-बड़े जन-तंत्र और प्रजातंत्र बन [गये] हैं, बन रहे हैं और भारत में भी पूर्ण स्वतंत्रता की हवा [चल] पड़ी है; परन्तु हमारे देशी-नरेश अभी न जाने किस दुनिया में चक्कर लगा रहे हैं। उन्हें अपनी प्रजा के दुःख से अधिक चिन्ता है अपने मान-गौरव की और महाराजापन को सुरक्षित रखने की। ऐसी दशा में कम से कम इस बात की याद दिलाते रहना ज़रूरी [है कि] महासभा उनसे क्या चाहती है। आज महासभा सीधी लड़ाई नहीं लड़ना चाहती—पर वह ख़ामोश नहीं बैठ जाना चाहती। यदि देशी-नरेश यह देख[ें] कि महासभा की आवाज़ दिन-दिन बलवती होती जा[ती] है, उसका संगठन और बल दिन-दिन बढ़ता जा [रहा है] तो उन्हें उचित है, उनकी बुद्धिमानी की इसमें [है] कि वे चुनौती देने के पहले ही महासभा की माँग को [पूरा] करने की चेष्टा करें।

अब चूँकि महासभा ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव कर दिया है इसलिए नेहरू-रिपोर्ट अपने आप गिर [गई] और उसके गिरते ही, उसकी बुनियाद पर पैदा हु[ए मुस]लमानों और सिक्खों के ऐतराज खुद-ब-खुद मिट जा[ते हैं]

...ए महासभा ने कह दिया कि आज़ाद भारत को जात-के लिहाज से कोई मतलब नहीं, उसमें हर काम ... दृष्टि से होगा। वह हिन्दुस्तानी मात्र को सम-दृष्टि ...खेगी। यह बहुत ठीक हुआ, इससे सिक्ख सन्तुष्ट हो ...और मुसलमानों के उजरात कमज़ोर पड़ गये। इधर ...सभा का बहिष्कार करके महासभा ने अपने को हिन्दू-...मान प्रश्न से साफ़ बचा लिया। अब जिनको धारा-...ओं में जगहों के लिए लड़ना हो वे सरकार से लड़ें, ...भा से कोई वास्ता नहीं। इसी तरह आज़ादी का ...व पास कर देने से देशी-राज्यों का भी मसला, जहाँ महासभा से ताल्लुक़ है, हल हो जाता है। देशी-नरेशों ...पनी मानप्रतिष्ठा के लिए लड़ना झगड़ना हो तो ...दा सरकार से लड़ें—महासभा तो स्वतंत्र हो गई है स्वतंत्र भारत में सब स्वतंत्र और बराबर हैं। राजा-रंक ...गरीब, मालिक-नौकर सब के जीवन का मूल्य स्वतंत्र ... की दृष्टि में समान होगा।

इस प्रकार अन्य प्रस्तावों के द्वारा भी महासभा ने ...बदले हुए दृष्टि-कोण का परिचय दिया है और अपने ...ुगान्तरकारी सिद्ध किया है।

...ारे युवक राष्ट्रपति

पं० जवाहरलालजी नेहरू अपनी अन्तिम यूरोप-यात्रा एक चमत्कार की तरह, देश में आये और आते ही युवकों ...देलों पर कब्जा कर लिया। उनकी तेज़ी, खरेपन, जोश ... उछाल ने वूढ़ों के, आराम से नेतागिरी करनेवालों के, ... हड़ा दिये। उनका आसन डिगने लगा। वे कहने लगे ...तो अविचारी है, तेजमिज़ाज है, देश को न जाने ... गड्ढे में गिरा देगा। पर लाहौर-कांग्रेस में पढ़े गये ...के भाषण ने और राष्ट्रपति के रूप में उनके व्यवहार ने, ... सब विचारों को बदल दिया और कम-से-कम मेरे दिल ... यह छाप पड़ी कि जवाहरलालजी कोरे सैनिक नहीं। ...में जहाँ सैनिक का जोश, फुरती, दिलेरी और दिल है ...में सेनानायक की नियंत्रण-क्षमता, साबितक़दमी और ...कालियों की समझ और सूझ भी है। एक क्षण में ...मी और दूसरे ही क्षण में नरमी और हँस पड़ना—यह अद्भुत गुण किसको मुग्ध न कर लेगा? जवाहरलालजी दिल के आदमी मालूम पड़ते हैं; पर उनके भाषण में दिमाग का पूरा-पूरा दर्शन होता है। एक शब्द ऐसा नहीं है जिसे फ़जूल कह सकें। एक बात ऐसी नहीं है जो महत्व न रखती हो। फिर अपने साम्यवादी विचार किस खूबी से हिलके-हिलके उसमें डाल दिये हैं। भावुकता और जोश का यों उभाड़ कहीं देख नहीं पड़ता; पर सारा भाषण सुनने के बाद दिल में एक हलचल मच जाती है—दिल ताज्जुब करने लगता है, अरे इसने कहाँ लाकर छोड़ दिया है। उसमें महासभा का संक्षिप्त इतिहास है, स्वतन्त्रता के भावों और कार्यों का विकास है, उसके लिए बलिवेदी पर आहुति देने वाले भारत के वीर-पुत्रों का पुण्य स्मरण है, ब्रिटिश-सरकार और उसके अधिकारियों से सीधी बातें हैं, संग्राम के बाजे और कार्यक्रम की सूचनायें तथा तैयारी की ललकार है। गागर में सागर है। युवक का दिल और बूढ़े का दिमाग़ है; युवक की छटपटाहट और बूढ़े का संयम है। जवाहर और गाँधी का संगम है। गाँधी के बूढ़े शरीर को जवाहर ने जवान बना दिया है। यह सब देखकर अन्दर से कोई धीमे-धीमे पर सुरीले स्वर में कह रहा है—जवाहर आने वाला पुरुष है—इतिहास पर अपनी छाप छोड़ जाने वाला पुरुष है। उनकी अंग्रेज़ी पुस्तक Letters From a Father to His Daughter को पढ़कर तो मेरे दिल ने यह भी कहा कि 'ब्रिटिश सरकार चाहे आज़ादी के प्यासे जवाहर को फाँसी पर लटका दे; पर अंग्रेज़-जाति तो जवाहर को प्रेम की निगाह से देखे बिना न रहेगी। वह कहेगी—जवाहर एक मनुष्य है—सीधा, साफ और ऊँचा मनुष्य।

हमारी कमियाँ

मगर महज़ स्वतंत्रता के लिए हाथ ऊँचा उठा देने से, या उसकी घोषणा कर देने से हम स्वतंत्र नहीं हो जाते, न होगये हैं। अभी तो हमने अपने ध्येय को स्पष्ट कर दिया है और उसे अपना निकट प्राप्य लक्ष्य बनाया है। अभी तो स्वतंत्रता का अनुभव करने के लिए मौजूदा सरकार से गहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी; जेलों की यन्त्रणायें और दूसरे अत्याचार सहने होंगे; गोलियों के सामने खुशी-खुशी से छाती

तान देना होगी; अपने सेनापति के हुक्म के साथ ही आगे बढ़ना, पीछे हटना, बैठ जाना या दौड़ पड़ना होगा। आपस के झगड़ों से अपने को बचाना होगा; दलील और हुज्जत की जगह आज्ञा-पालन और नियम-बद्धता को देनी होगी। ज़रा मतभेद होते ही रूठ जाने की, या अपनी खिचड़ी अलहदा पकाने की प्रवृत्ति छोड़नी होगी, कोई आकर खुशामद करे, नाक रगड़े तभी हम काम करेंगे, यह आदत भुलानी होगी। भूख, प्यास, बीमारी, बच्चों की दुर्गत,कुटुम्बियों की मुसीबत, सबको प्रसन्न मुख होकर सहना होगा और फिर भी नियमित और निश्चित राष्ट्रकार्य से विमुख न होगा—पीछे न हटना होगा। गहरी से गहरी उत्तेजना के अवसर पर अपने हाथ रोक रखना होंगे; कहीं दंगा-फसाद, मार काट होते ही उसे शान्त करने के लिए नंगे पैर दौड़ पड़ना होगा। इतनी तैयारी के बाद ही हम आजादी का मीठा फल चख सकते हैं—आज केवल प्रस्ताव पास करके मियां-मिट्ठू बनने से सिवा हँसी होने के और मुसीबतों का पहाड़ अपने सिर पर उठा लेने के कुछ न होगा। संक्षेप में जबतक महासभा का संगठन मजबूत न होगा, हम रचनात्मक कामों को पूरा करने की तालीम न लेंगे, सच्ची सैनिकता का व्रत न लेंगे और पूर्ण शान्ति का पालन न करेंगे तबतक स्वतंत्रता के दर्शन दुर्लभ हैं। इसलिए, आओ, स्वतन्त्रता के मतवाले युवक वीरो आज से, अपनी और अपने राष्ट्र की इन कमियों को दूर करने में जुट पड़ो और अपने युवक सरदार और बूढ़े सेनापति की आज्ञाओं की राह देखो।

मेवाड़ में गांधी-कन्या

पिछले दिनों सत्याग्रहाश्रम (साबरमती) में महात्माजी के भतीजे श्री जयसुखलाल गाँधी की कन्या श्रीमती उमिया बहन का विवाह उदयपुर के स्काउट-मास्टर श्री शंकरलाल अग्रवाल के साथ देखने का सुअवसर मिला। जिन्हें यह पता है कि महात्माजी का जन्म मोढ नामक वैश्य-जाति में हुआ है, वे तुरन्त जान लेंगे कि यह विवाह केवल अन्तः प्रान्तीय ही नहीं बल्कि उपजातीय भी है। अग्रवालों और मोढों में विवाह-सम्बन्ध नहीं होता है। किन्तु यही दो-विशेषतायें इस विवाह में नहीं थीं। श्री शंकरलाल की अवस्था २५ के आस-पास और उमिया बहन की [illegible] ऊपर है। दोनों की परस्पर सम्मति से विवा[illegible] हुआ है। सिर्फ ४५ मिनट में सारी विवाह-विधि [illegible] हुई। वर-वधू तो खादी पहने थे ही; उदयपुर मेवाड़[illegible] बराती भी खादी पहनकर आये थे। बरातियों को [illegible] वही खिलाया गया जो आश्रम में नित्य आश्रमवासी [illegible] हैं। विवाह-विधि के समय के अलावा कहीं किसी [illegible] यह नहीं मालूम होता था कि कोई उत्सव हो रहा [illegible] महात्माजी चाहते हैं कि आश्रमवासी ऐसे आदर्श [illegible] जायँ कि एक ओर विवाह हो रहा हो और दूसरी [illegible] की शव-यात्रा होती हो; तो दोनों हम शान्ति और [illegible] के साथ, अपने मन को डाँवा-डोल न होने देते हुए, [illegible] सकें। जनन, मरण और परण (विवाह) ये तीनों [illegible] जीवन में ऐसा स्वाभाविक स्थान ले लें कि हमें इनमें अ-साधारणता न मालूम हो। इसलिए तमाम [illegible] व्यवस्था में कहीं भी असाधारणता या दैनिक जीवन [illegible] भिन्नता न दिखाई देती थी। विवाह के दिन वर-कन्या[illegible] उपवास किया और गो-पूजा, सामाजिक सफाई जैसे [illegible] के आसपास और गोशाला में सफाई करना, [illegible] कताई-यज्ञ और गीताध्ययन इतने सामाजिक और [illegible] काम किये। फिर शाम को मधुपर्क, कन्यादान और [illegible] की विधियों के बाद विवाह-कार्य समाप्त हुआ। उस [illegible] सुबह-शाम को प्रार्थना में महात्माजी ने वर-वधू को [illegible] वाद करते हुए जो पवित्र शब्द सुनाये उनका सारांश दिया जाता है—

"किसी के मन में यह प्रश्न उठेगा कि आश्रम [illegible] विवाह इन दो बातों का मेल कैसे बैठ सकता है? [illegible] उत्तर यह है कि इसमें परस्पर कुछ भी विरोध नहीं [illegible] ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें वे ब्रह्मचारी रहें और जो [illegible] सकें वे विवाह कर लें, यह उचित है। कोई यह न [illegible] कि ब्रह्मचारी सभी अच्छे होते हैं और विवाहित [illegible] घटिया होते हैं। हो सकता है कि गृहस्थ गुणवान हो [illegible] ब्रह्मचारी दम्भी। यही कारण है जो विवाह को [illegible] समझते हुए भी हम इष्ट मानते हैं।

इस विवाह में हम एक क़दम और आगे [illegible]

ाल (महात्माजी के द्वितीय पुत्र) के विवाह में हमने की वाड़ को तोड़ा, इस विवाह में प्रान्त की सीमा ाया। गुजरात से मेवाड़ में गये। यह शुभ चिन्ह है। इससे हमारी जिम्मेदारी भी बढ़ गई है। हम जो यहाँ करते हैं वे धार्मिक विधि और धार्मिक दृष्टि से हैं। उनमें मर्यादा-पालन की चेष्टा रहती है। आज के ापत्काल में, देश की स्थिति को देखकर, यदि इन्द्रिय- कर सकें तो बहुत अच्छी बात है; किन्तु यह बात ाब से नहीं हो सकती। इसलिए यदि लड़का-लड़की तो उनका विवाह कर देना चाहिए और उनके लिए ढूँढकर अपने आशीर्वाद के साथ उनका विवाह कर देना ा का कर्तव्य है। अब तक इसीके अनुसार यहाँ व्यवहार रहा है और उसका फल बुरा नहीं हुआ। हम बिना आडम्बर के, थोड़े समय में, पवित्र हृदय के द्वारा ह-विधि सम्पन्न करते हैं, यह हर्ष की बात है।

इस विवाह के आरम्भ में क्षोभ और व्यग्रता उत्पन्न ी; पर धीरे-धीरे वह शान्त हो गई। इस सम्बन्ध में ी सावधानी रक्खी जा सकती थी उतनी रक्खी गई वर-वधू की सम्मति लेकर ही यह विवाह किया गया इसमें मैंने व्यक्तिगत सुख का विचार नहीं किया है। बात को अपनी दृष्टि के सामने रक्खा है कि देश का किस बात में है। इस विवाह के द्वारा एक प्रान्त प्रान्त के निकट आता है। यह पहला प्रयोग है।"

श्री शंकरलाल को सम्बोधन करके कहा—"इसमें नी जिम्मेदारी उमिया पर है उससे सौगुनी ज़्यादा पर है। उमिया की हिम्मत को देखकर मुझे खुशी हुई उसकी इच्छाओं को जानते रहिएगा। हिन्दू-समाज में का स्त्रीत्व कम हो गया है। वह अबला हो गई है। लिए आप उसे स्वतन्त्रता दीजिएगा। आप तो स्काउट स्काउट का धर्म है सबकी रक्षा करना। उमिया यह न भव करे कि मुझे दुःख है। वह यही समझती रहे कि तो सब मुझपर प्रेमामृत बरसाते हैं। मैं उसे हिन्दी ा न पढ़ा सका—सो उसे सिखा लीजिएगा। यदि अपनी-अपनी जिम्मेदारी को समझकर काम करें तो ाड़ी और गुजराती में भेद नहीं रह सकता। धर्म और मर्यादा को कभी न भूलिएगा। दोनों से कहता हूँ कि मर्यादित रहकर भोगों को भोगना और अपने देश को कभी न भूलना।"

"उमिया तुम्हें क्या कहूँ? इतना समय नहीं कि तुमसे अकेले में बातचीत करूँ। तुमने बहादुरी दिखाई है। तुम अपने कुल, प्रान्त और आश्रम की कीर्ति बढ़ाना। तुम्हारे हाथ से कोई बुरा काम न हो। मैंने तुम दोनों को छोटा-सा हार पहनाया है। पर मेरी दृष्टि में यह बड़ा है। गीताजी का रोज़ पाठ करना। जब-जब मन में निराशा आने लगे तब-तब भजनावली में से भजन गाना। फुरसत के समय तकली कातना और आनन्द से रहना। ईश्वर तुम लोगों को सच्चे सेवक-सेविका बनावें, दीर्घायु करें। तुम दोनों इस तरह जीवन बिताना कि मुझे पश्चात्ताप न हो।"

इस विवाह-सम्बन्ध में वर की बूढ़ी माता ने जिस साहस और निश्चय का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। बिरादरीवालों ने उन्हें जाति-बहिष्कार की धमकियाँ दीं और जाति से अलग भी कर दिया, फिर भी वह अडग रहीं। उदयपुर के वे समाज-संशोधक भी धन्यवाद के पात्र हैं जो इस समय शंकरलालजी का साथ दे रहे हैं। इस तरह वे उदयपुर के जीवन को ऊँचा उठा देंगे। इस ज़ालिम सरकार के राज्य में भी अपराध करने के पहले किसी को सज़ा नहीं सुनाई जाती; पर उदयपुर के अग्रवालों की पंचायत की न्याय-प्रियता और धार्मिकता इतनी बढ़ गई कि उसने विवाह होने के पहले ही शंकरलालजी को बिरादरी से ख़ारिज कर दिया !! सारा उदयपुर इस बात पर खुशी मना सकता था कि उसमें गाँधी-कुटुम्ब की एक कन्या महात्माजी-जैसों का आशीष लेकर आई है और उसके एक युवक ने ऐसा साहस दिखाया है; पर इस अभागे हिन्दू-समाज में अभी तो सच्चे और साहसी लोगों के नसीब में अच्छे काम के लिए समाज का दण्ड ही बदा हुआ है! परमात्मा इस की आँखें कब खोलेगा?

श्री शंकरलाल के लिए यह दूनी कसौटी का अवसर है। एक ओर उन्हें अपने को सब तरह गाँधी-कन्या के योग्य साबित करना है और दूसरी ओर समाज के सारे रोष और दण्ड का मुकाबला करना है। परमात्मा उन्हें आवश्यक धैर्य, बल और योग्यता दें।

मृत्यु—अवभृथ-स्नान !

सत्याग्रहाश्रम के काका साहब कालेलकर का नाम त्या०भू० के पाठकों के लिए नया नहीं है। अपने जीवन में मैंने पहली बार आश्रम में यह अलौकिक दृश्य देखा कि काका अपनी धर्मपत्नी को 'काकी' कहते हैं और काकी उन्हें 'काका'। तभी से दोनों के पवित्र और उज्ज्वल जीवन की छाप मेरे दिल पर पड़ी है। कुछ समय पहले तेजस्विनी काकी के स्वर्गवास पर मैंने काका साहब को लिखा कि देश के राष्ट्रीय जीवन के ऐसे समय में जब कि आप विद्यापीठ में छात्रों को मृत्यु का पाठ पढ़ा रहे होंगे, मैं काकी की मृत्यु पर किस तरह आपके सामने समवेदना प्रकाशित करूँ? इस पर काका साहब ने जो सुन्दर उत्तर मुझे भेजा है उसमें उन्होंने अपने हृदय के बल और मस्तिष्क के ज्ञान का नवनीत भर दिया है। पाठकों को उसकी जीवित प्रेरणा से लाभ पहुँचाने के लोभ को रोकना मेरे लिए कठिन हो रहा है—

"प्रिय हरिभाऊ जी,

काकी के स्वधाम-गमन के निमित्त बहुत से खत आये। लेकिन उनमें से आज के राष्ट्रीय वातावरण का उल्लेख तो आपके ही खत में पाया। आश्रमवासियों को मृत्यु की ओर मित्र की दृष्टि से ही देखना चाहिए। हिन्दी में 'मीच' और 'मीत' कितने नज़दीक हैं? मृत्यु तो जीवन-यज्ञ का अवभृथ-स्नान है। काकी की स्वतंत्र वृत्ति मेरे जीवन की असाधारण समृद्धि थी।

काका का सप्रेम वन्देमातरम्।"

मृत्यु से न डरना मनुष्यता का पहला लक्षण है; पर मृत्यु को मित्र समझना सचमुच मनुष्यता की सार्थकता है

प्रान्तीय राजनैतिक संगठन

अजमेर-प्रान्त की नई प्रान्तिक कांग्रेस कमिटी बनते ही उसने ज़ोरशोर के साथ अपना काम शुरू कर दिया है। ज़िलों के संगठन, रचनात्मक कार्य-क्रम की पूर्ति, आगामी मई मास में प्रान्तिक राजनैतिक परिषद् का आयोजन तथा महासमिति की आज्ञा होते ही सविनय-भंग या सत्याग्रह की तैयारी के लिए संगठन के काम में वह जुट पड़ी है। २६ जनवरी को अजमेर में पूर्ण स्वराज्य दिन बड़ी धू[म] उत्साह, नियम-बद्धता और शान्ति के साथ मनाया [गया।] अजमेर निवासियों का कहना है कि अजमेर में ऐसा [...] नैतिक जुलूस १९२०–२१ के असहयोग के दिनों के [बाद] नहीं निकला। अजमेर के दाणी राष्ट्रीय विद्यालय, खादी चरखासंघ, सस्ता-साहित्य-मण्डल, राजस्थान संदेश, गाँधी-आश्रम इन संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं ने इसमें सहयोग दिया। इससे अजमेर में जो राजनैतिक [...] पिछले साल से आरंभ हुआ है उसको ख़ासा वेग [...] और आशा होती है कि यह स्थिर होकर बल [...] परन्तु राजस्थानी भाइयों से यह बात छिपी नहीं है कि विषमय और विपरीत परिस्थिति में यहाँ नई कांग्रेस बनी है और उसके बनते ही इस वर्ष कितना भारी पूर्ण, आवश्यक और ज़िम्मेदारी का काम उसपर आ [पड़ा] है। कार्यकर्त्ता थोड़े हैं और उनपर पहले से काफ़ी काम [का] बोझ लदा हुआ है। अपने-अपने कामों का आर्थिक भा[र] पहले ही से उनपर है। ऐसी दशा में उनकी काफ़ी [सहा]यता और सहयोग के बिना प्रान्त के संगठन और सेवा में इस कमिटी को काफ़ी सफलता नहीं मिल सक[ती।] आशा है, वे अपने कर्त्तव्य पर विचार कर ही रहे हों[गे।]

जोधपुर में दमन

जोधपुर-राज्य की अदालत से 'तरुण राजस्थान' [के] सम्पादक श्री जयनारायणजी व्यास, तथा उनके [साथी] श्री आनंदराजजी सुराणा और भँवरलालजी सरा[फ़ को] क्रमशः पाँच और चार-चार वर्ष कैद की और एक-एक [...] रुपया जुरमाने की सजा राज-द्रोह के अपराध में दी [गई] है। इन दिनों देशी राज्यों में होनेवाले राजनैतिक [...] को दबाने की काफ़ी चेष्टा राज्यों की ओर से हो रही है [और] उसमें भारत-सरकार उनकी सहायक नज़र आती है। [...] तो देशी-राज्यों की प्रजा यों ही निर्बल और [...] फिर उसकी सुनवाई न तो भारत-सरकार करती है [और न] राष्ट्रीय महासभा के नेता ही उसका पक्ष लेकर देशी [राज्यों] से लड़ने को तैयार हैं। ऐसी दशा में यदि छोटे-बड़े [कार्य]कर्ताओं को देशीराज्य कुचल दें तो इसमें आश्चर्य क्या [है?]

? पर इसमें देशी-राज्यों के अधिकारियों या नरेशों ई बहादुरी नहीं है। एक ओर से ब्रिटिश सरकार द्वारा त और दूसरी ओर से महासभा द्वारा आश्वासित रहने इतनी किलाबंदी के बाद, यदि वह अपनी प्रजा के त्र सेवकों को इतनी कड़ी सजायें ठोंक दें तो यह कोई र्य की बात नहीं है। पर प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में राज्यों के राजनैतिक कार्यकर्ता करें क्या ? इसका सरल यही है कि यदि हम सुसंगठित नहीं हैं और राष्ट्रीय भा हमारे साथ अपनी पूरी शक्ति लगाना अभी पसंद रती है तो बुद्धिमत्ता का तक़ाज़ा है कि हम रचनात्मक में अपनी शक्तिय लगाकर लोगों में जीवन और संगठन रें, उनकी सेवा करके अपने प्रति प्रेम और विश्वास उत्पन्न और उनका सामूहिक बल बढ़ावें। क्षेत्र से भाग जाना, ल हो बैठ जाना कायरता है; अपनी शक्तियों को उचित ओं और संभवनीय कार्यों में लगा देना बुद्धिमत्ता और गिता है।

परन्तु इस मौके पर मैं देशी राज्यों के नरेशों और कारियों से एक बात पूछूँ ?—

एक प्रजा-सेवक यदि कर्तव्य की प्रेरणा से, भूल से, अज्ञान मोह से या यहाँ तक कह दीजिए कि लोभ से कोई काम अधिकारियों के हित के खिलाफ कर डालता है तो कारी लोग उसे दबाने के लिए किसी साधन को नहीं । अदालतें उनकी, हुकूमत उनकी और पैसे की भी कमी ? पर क्या कोई अधिकारी छाती पर हाथ रखकर सकता है कि अधिकारी लोग प्रजा के ही हित में दिन-रात रहते हैं ? उनका मान और ज्ञान बढ़ाने में ही, उन्नति में ही, अपनी सारी शक्ति लगाते हैं ? क्या वे जन को रिश्वत लेकर नहीं चूसते ? क्या वे उन्हें ज़लील करते ? क्या वे अपने सत्ताधीशों के भयंकर और बुरे में साथी नहीं होते ? किसी देश-सेवक की छोटी भी का मैं समर्थन नहीं करना चाहता—अपने साथियों के का पात्र होकर भी मैं उनकी बुराई पर टीका करने हिचकता; पर इसके यह मानी नहीं है कि अधिकारी देवदूत हैं, या उनकी बुराइयों को देखने की आँखें और देने की बुद्धि किसी को नहीं है। उनकी मनमानी बुराइयों के खिलाफ बग़ावत करने पर यदि महासभा के नेता लोग तुल नहीं पड़े हैं तो इसका कारण उनका अज्ञान या नरमी नहीं, बल्कि दूरदर्शिता, और व्यवहार-कुशलता है। अधिकारी या हमारे कुछ मित्र चाहें तो इसे उनकी कमज़ोरी, नरमी, जो जी चाहें कह लें; पर मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि यदि अधिकारी और सत्ताधारी अपने मद में प्रजा-हित को कुछ न समझेंगे, प्रजा-सेवकों का तिरस्कार और उपहास करते रहेंगे, उन्हें दबाने की नीयत रक्खेंगे तो निकट भविष्य में उनकी सत्ता के बड़े-बड़े क़िले और महल ढहते हुए नजर आवेंगे।

इस सजा पर इन तीनों मारवाड़-सेवकों को बधाई। उनके कुटुम्बियों को बधाई। जेल देश-सेवक का महल है। देश-सेवक जितना ही अधिक निर्दोष और निर्मल होता है उतना ही अधिक भव्य यह महल उसके लिए हो जाता है। जयनारायणजी के एकाध व्याख्यान से, प्रजा-परिषद् के एकाध अधिवेशन से मारवाड़-राज्य की जड़ नहीं हिल जाती; परन्तु इन तीनों को जेल भेजकर मारवाड़ के उस न्यायाधीश ने उस राज्य की नींव के पत्थर हिलाने का काम किया है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है।

'घासलेटी साहित्य'

पौष के 'विशाल-भारत' में 'घासलेट विरोधी-आन्दोलन का उपसंहार' नामक संपादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि भाई बनारसीदासजी अब इस आन्दोलन को अपनी तरफ से बंद कर रहे हैं। यद्यपि घासलेटी साहित्य के विषय में पिछले दिनों पत्रों में दोनों पक्षों की ओर से जो-कुछ लिखा गया उस सब को मैं नहीं पढ़ सका हूँ तथापि मैं इतना अवश्य मानता हूँ कि इस आन्दोलन को उठाकर भाई बनारसीदासजी ने हिन्दी-साहित्य और समाज पर उपकार ही किया है, और उन्हें उन तमाम सज्जनों की ओर से धन्यवाद मिलना चाहिए जिन्हें साहित्य में सुरुचि से कुछ रुचि है, और जिन्हें समाज में फैलाई जाने वाली इस गन्दगी से घृणा है, फिर चाहे वह कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न फैलाई जाती हो। एक तरह से तो भाई चतुर्वेदीजी ने इस आन्दो-

लन के द्वारा 'त्यागभूमि' के एक उद्देश्य की पूर्ति की है और उसका बोझ हलका किया है। मुझे यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि त्या० भू० ने इस आन्दोलन को अनुराग की दृष्टि से देखा है, और यदि मैं अपने अन्य कामों से त्या० भू० के लिए अधिक समय निकाल सकता तो इस विषय में लिखता भी जरूर रहता। इस ख़याल से कि जब एक भाई एक काम कर ही रहे हैं, और त्या० भू० का मत इस सम्बन्ध में छिपा नहीं हैं, त्या० भू० इस तरफ अधिक ध्यान न दे सकी।

जब 'घासलेटी' शब्द मैंने पहली बार पढ़ा तभी मेरे मन में यह ख़याल पैदा हुआ था कि यह शब्द उस साहित्य के साथ पूरा न्याय नहीं करता। उसमें केवल बदबू ही नहीं है और भक से जल उठने और फैल जाने का सामर्थ्य ही नहीं है बल्कि इससे भी बढ़कर और हानिकर दोष हैं। इसलिए मैं इसे ज़हरीला साहित्य कहता। मैं जानता हूँ कि ये शब्द बहुत कठोर हैं, परन्तु इनका प्रयोग उस साहित्य के लिए किया गया है, न कि उसके प्रचारकों के लिए। प्रचारकों में से कइयों की लेखनी में ग़ज़ब की ताक़त है, प्रतिभा का चमत्कार है, काव्य के गुण हैं, और कुछ तो सचमुच साहित्य और समाज की सेवा के सद्भाव से ही इस साहित्य का सृजन कर रहे हैं। परन्तु मैं अपने और अपने मित्रों के और दूसरे युवकों के अनुभव से आँखें नहीं मूँदना चाहता। हो सकता है कि जिनको ऐसे साहित्य के बुरे अनुभव हुए हैं उनका मन उन भाइयों से ज्यादा कमज़ोर हो, जो ऐसे साहित्य को आवश्यक और शायद स्वास्थ्यप्रद भी समझते हों और जो कहते हों कि हमारे मन पर तो इसका कुछ असर नहीं होता। जब महात्मा गाँधी-जैसे जितेन्द्रिय को भी हम ऐसे साहित्य की निन्दा करते हुए देखते हैं, सूर और तुलसी-जैसे उच्च और बलिष्ठ आत्माओं को अपनी कमज़ोरियों से भयभीत देखते हैं तब मेरी दृष्टि में इस साहित्य की और ऐसी प्रवृत्तियों की भीषणता और बढ़ जाती है। सयाने तो वही समझे जाते हैं जो 'काजल की कोठरी' में पैर ही नहीं रखते हैं। बुराइयों के मध्य में रहते हुए अथवा निमन्त्रण देकर उनको अपने आस-पास जुटाकर, उनसे मुक्त रहने, उनका असर अपने पर न होने देने का प्रयत्न साहस कहा जा सकता है, समझदारी नहीं। जब कि हमारा समाज यों ही कमजोरियों का घर बना हुआ है, पुरुषार्थ के बजाय ...सिता, इन्द्रिय-लोलुपता और उससे उत्पन्न कायरता ... कीटाणुओं से व्याप्त हो रहा है तब तो उसके सामने इ... मधुमुख विकारमय साहित्य को रखना मेरी समझ ... उसकी सेवा नहीं असेवा करना है। वैज्ञानिक ढंग ... शरीरशास्त्र या मानसशास्त्र या कामशास्त्र के विद्या... के सम्मुख इन विषयों की चर्चा करना एक बात है, ... लुभावने, मोहक और फुसलाने वाले ढंग से उन विकारों ... रमणीय चित्र खींचना दूसरी बात है। उनकी ओर से पाठ... के मन में ग्लानि उत्पन्न करने वाला साहित्य एक प्रकार ... होता है, और उसका चस्का लगाने वाला दूसरी प्रकार ... मैंने स्वयं इस प्रकार की कुछ पुस्तकें पढ़ी हैं। मैंने देखा है कि ग्लानि उत्पन्न करने के बजाय ऐसा साहित्य मन ... विकारों की तरफ ले जाता है। सम्भव है जो भाई अज्ञ... से, भ्रम से, सेवा या स्वार्थ भाव से इस साहित्य को ... पसन्द करते हैं उनको उनकी बुराइयों का यथेष्ट अनुभव न हो। इसलिए मेरी प्रार्थना उनसे है कि वे मनुष्यों ... अब तक के अनुभवों को अपने जोश से ठुकरावें नहीं ... अपनी कलम की करामात, अपनी कल्पना का कौशल, ... प्रतिभा का प्रकाश वे ऐसे साहित्य की सृष्टि में ... जिससे समाज की कमज़ोरियाँ हटें, और जीवन, बल ... पुरुषार्थ के भाव जागृत हों। वे उन्नत और पुष्ट, परि... और उद्योगी, तेजस्वी और उत्साही समाज के रचयिता ... न कि आरामतलब एवं आमाद-प्रमोद प्रिय, तेल-फुले... घुँघराले बाल, चिपके गाल, और पतली कमर के जीवों ... निर्माण करें। वे कृपाकर स्मरण रखें कि भारत का ... पुरुष, नगर-निवासी, इन्द्रिय-लोलुप, परोपजीवी ऐश्वर्यभोगी नहीं; बल्कि ग्रामवासी, परिश्रम और पुरु... का पालक, स्वावलम्बी और सदाचारी होगा। उसके ... में वीणा नहीं, हँसुवा होगा। सिर पर कोमल कुंतल ... बल्कि बोझ का गट्ठा होगा। मुख में चाय, पान और सि... नहीं, मोटे आटे का मोटा रोट और साग-पात होगा। प्रकृति का पुजारी होगा; सभ्यता के नाम से पुकारी ...

विकृति का शिकार नहीं। क्या अच्छा हो, यदि ये प्रतिभा-सम्पन्न लेखक रमणीयता के अलंकार छोड़-सैनिकता का वाना पहनें। कवि और कलाकार बनने ताय सैनिक और साधु बनने की महत्त्वाकांक्षा रक्खें। आन्दोलन, संक्षोभ और प्रचार ये विचार-प्रवाह को ने के जवरदस्त साधन हैं। इनसे जो शक्ति निर्माण है और वातावरण बनता है उसका सु-व्यवस्थित ोग यदि ठोस और स्थायी कामों में न कर लिया जाय ह परिश्रम सार्थक नहीं माना जा सकता। मेरी राय में भाई बनारसीदासजी का कार्य अब ऐसी अवस्था में पहुँच गया है कि जब उसका रचनात्मक रूप लोगों के सामने आवे अर्थात् हम अब केवल अच्छे और उपयोगी साहित्य का ही नमूना लोगों के सामने पेश करें। आशा है, हिन्दी के लेखक और प्रकाशक-बन्धु ऐसे ही साहित्य के निर्माण और प्रचार में अपना बल लगायँगे जो समाज को दीन और क्षीण नहीं बल्कि पराक्रमी और दुर्दमनीय बनावे।

ह० उ०

आधी दुनिया

ियों का प्रश्न

"× × सबसे ज़रूरी प्रश्न स्त्रियों की अवस्था अधिकार का है, जिससे देश के प्रत्येक स्त्री-पुरुष का न्ध है और जिसका समाज पर गहरा असर पड़ता है।" कहते हुए भारतीय समाज-सुधार-सम्मेलन (लाहौर) भापति पद से रायसाहब हरविलास सारडा ने भार-स्त्रियों के प्रश्न पर काफ़ी प्रकाश डाला है। उनका ा है—

"स्त्री-सम्बन्धी प्रश्न किसी-न-किसी रूप में संसार-भर ान्न है। हिन्दुस्तान में इस समय यह तो ख़ास तौर ज़रूरी है, क्योंकि इसके उचित रूप से और शीघ्र हल पर देश की भावी भलाई निर्भर है। जीवन की जड़ है और घर स्त्री का क़िला है। घर-गृहस्थी की असली ाकिन स्त्री है। लोग किसी राष्ट्र की सभ्यता की परीक्षा ी स्त्रियों की अवस्था देखकर करते हैं। इसलाम में ान्न के रूप में स्त्री का दर्जा ऊँचा है और उसके अधि-रसके क़ानून से बहुत हद तक सुरक्षित हैं। पुराने ले के हिन्दुओं में स्त्री का दर्जा बड़े सम्मान और लिहाज़ का था; उसके बड़े अधिकार थे और परिवार में उसी की प्रधानता थी।"

इसके बाद प्राचीन कालकी स्त्रियों के उत्थान के प्रमाण देते हुए उन्होंने कहा—

"हिन्दुओं के राजनैतिक पतन के साथ उनकी सामाजिक अवनति हुई और स्त्रियों के वैध अधिकार रौंदे गये। व्याह के विषय में, उत्तराधिकार के विषय में, परिवार के दर्जे के विषय में स्त्रियों के बहुत से अधिकार उनसे छीन लिये गये हैं और उनकी स्वतंत्रता में रुकावट डाल दी गई है। परन्तु यद्यपि स्त्री की स्वतंत्रता में रुकावट डाल दी गई है और संयुक्त परिवार-प्रथा को क़ायम रखने की इच्छा से स्त्री के बहुत से कानूनी अधिकार उससे ले लिये गये हैं, फिर भी यह बात आम तौर पर सच है कि परिवार में स्त्री बड़ा अधिकार रखती है और घर गृहस्थी के कामों में उसी का प्रभाव सबसे अधिक है। हिंदुस्तानियों का छिद्रान्वेषण करने वाले, दुर्बल राष्ट्रों को बदनाम करने की रोटी खाने-वाले—जिन्होंने मिस कैथरिन मेयो की तरह पराधीन लोगों को बदनाम करने का रोजगार उठा रक्खा है—कल्पित चित्रों के सहारे परिवार में हिन्दुस्तानी स्त्रियों की दशा

शोचनीय बता सकते हैं परन्तु जो लोग असली अवस्था से परिचित हैं और जिनको इस देश के पारिवारिक जीवन की जानकारी है वे अच्छी तरह जानते हैं कि स्त्रियां आज दिन भी हिन्दुस्तानी घरों में बहुत ही सम्मानित दर्जा रखती हैं और उनका प्रभाव अखंड बना हुआ है। इंग्लैण्ड के वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री रैमसे मेकडानल्ड की स्वर्गीय पत्नी जब अपने पति के साथ हिन्दुस्तान की यात्रा करके स्वदेश लौटीं, तब उन्होंने कहा था कि घरेलू और सामाजिक विषयों में हिन्दू स्त्रियों का प्रभाव सबसे ऊपर है और उनमें पुरुषों से सम्मान का ज्ञान अधिक है।"

इसके बाद उन्होंने निम्न सुधार सुझाये—

(१) एक ही विवाह करने का कड़ा नियम बना देना चाहिए। (२) विवाह-विच्छेद का दावा पुरुष कर सकता है तो स्त्री को वैसा करने का उतना ही हक़ है। (३) विधवा-विवाह उसी प्रकार मामूली हो जाना चाहिए, जिस प्रकार विधुर दूसरा विवाह कर लेता है। (४) लड़कों के समान लड़कियों को भी विरासत का अधिकार दिया जाय।

वर्तमान न्याय-प्रणाली की टीका करने के बाद स्त्रियों से उन्होंने अपील की कि "वे अपने को भारत की उन वीर स्त्रियों की बेटी साबित करें, जिन्होंने पुराने ज़माने में इस देश के इतिहास में गौरवजनक स्थान पाया है।" और यह कहते हुए कि "हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ ही थीं, जिन्होंने पुरुषों को बहादुर बनाया और उनको ऐसे-ऐसे वीरता के काम करने को उत्साहित किया, जिनकी कथा आज तक इस देश में गाई जाती, हर जगह याद की जाती और बखानी जाती है," राजपूत वीरांगनाओं की वीरता का उत्साहपूर्ण वर्णन किया। अन्त में कहा—आपकी मातायें वीरता की जो महान् परम्परा बाँध गई हैं उनको आप लोग मलिन न होने दें। आप लोग उनके पुत्र-पुत्रियाँ ऐसा करें कि जिससे स्वदेश का सम्मान बढ़े और हमारी मातृभूमि अपने पुराने यश और गौरव को फिर प्राप्त हो। एक समय ऐसा था जब हमारे देश में माता का आदर्श यह माना जाता था—

जननी जने तो ऐसो जन कै दाता कै सूर।"

आशा है; स्त्रियाँ आपकी अपील पर ध्यान देंगी।

गहने की वेदी पर—

घटना युक्तप्रान्त के ललितपुर स्थान की है, और हाल ही की है। एक पाँच बरस की बालिका थी। उसके कानों में सोने के ईयररिंग थे, उन्होंने उस बेचारी के प्राण ले लिये। १९ वर्षीय एक पठान की नज़र उस पर पड़ी। बस, वह उसे बहका ले गया और गला दबाकर मार डाला। ईयररिंग की तो उसी समय गलवाकर अंगूठी बनवा ली और लड़की को मारकर एक नाली में डाल दिया गया। निस्सन्देह पठान को फाँसी की सज़ा हुई है, पर वह लड़की तो बेचारी गई ही न? ओह, गहनों का मोह हमारे देश में ऐसी न जाने कितनी बेचारियों के प्राणों का ग्राहक हो रहा है—मगर, फिर भी, हमारा यह मोह जाता नहीं!

गहनों का मूल

यह सोचने की बात है कि 'यह शौक कहाँ से और क्यों पैदा हुआ?' 'संयुक्तप्रान्त के सफ़र में ग़रीब और अमीर बहनों के गहने देख-देखकर मैं घबरा उठता था'—यह लिखते हुए 'नवजीवन' में इसके मूल पर गाँधीजी इस प्रकार विचार करते हैं—

"यह शौक कहाँ से और कैसे पैदा हुआ होगा? मैं इतिहास को नहीं जानता। इस कारण मैंने थोड़ी अटकल से कुछ अनुमान से काम लिया है। स्त्रियाँ हाथों और पैरों में जो गहने पहनती हैं, वे उनके क़ैदीपन की निशानी हैं। पैरों के गहने तो इतने वज़नदार होते हैं कि स्त्री उन्हें पहनकर दौड़ना तो दूर, तेज़ी से चल भी नहीं सकती। कई स्त्रियाँ हाथ में इतने सारे गहने पहनती हैं कि उन्हें पहनने पर हाथ से ठीक तरह काम भी नहीं लिया जा सकता। इसलिए ऐसे गहनों को मैं हाथ-पैर की बेड़ी ही समझता हूँ। कान-नाक विंधाकर जो गहने पहने जाते हैं, मेरी नज़र में तो, उनकी उपयोगिता यही साबित हुई है कि उनके द्वारा आदमी औरतों को जैसा नाच नचावे उसे वैसा नाचना पड़ता है। एक छोटा-सा बच्चा भी अगर किसी स्त्री की नाक या कान का गहना पकड़ ले तो उसे वश हो जाना पड़ता है। इसलिए मेरी राय में तो ख़ास-ख़ास गहने सिर्फ़ गुलामी की ही निशानी है।"

यह कल्पना सत्य हो तो,विचार उठता है, फिर और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी गहनों का शौक़ क्यों ? गाँधीजी के विचारानुसार "और-और बातों की बारे में भी रूढ़ि बलीयसी है।" हम अपने हरएक लिए कारण की तलाश नहीं करते। एक बार रूढ़ि की कि बाद में वही बात हमें स्वतंत्र रूपसे रुचने । और यही विचार-शून्य जीवन है।

करें ?

गाँधीजी लिखते हैं—"गहनों की उत्पत्ति की जो कल्पना है, अगर वह ठीक हो तो चाहे जैसे हलके और खूब- ों न हों, हर हालत में गहने त्याज्य हैं।" उनके र स्त्री की शोभा उसके गहनों में, हाव-भाव में, या पोशाक में नहीं बल्कि उसके हृदय में और उसके विचारमें है। वह तो बड़े ज़ोरों के साथ लिखते हैं— × × यह व्यक्ति-स्वतंत्र्य नहीं है, व्यक्तिगत अधिकार भी इसमें नहीं है; यह तो निरी स्वच्छन्दता है ाज्य है। क्योंकि इसमें निर्दयता और बेरहमी है। न्त में मैं यह पूछूँगा कि इस कंगाल देश में; जहाँ प्रति की औसत प्रायः सात या बहुत तो आठ पैसे से ज़्यादा किसे अधिकार है कि वह एक रत्ती वज़न की भी पहने ? विचारवती स्त्री, जो देश की सेवा करना है, गहनों को कभी छू भी नहीं सकती।"

र्थशास्त्र की दृष्टि से भी वह गहनों का बनाया जाना र बताते हैं। उनकी राय में गहनों के बजाय बचत के ो बैंकों में जमा करना चाहिए।

म नहीं कह सकते, हम लोग गाँधी जी के इन विचारों ँ तक पालन कर सकते हैं; लेकिन यह तो सभी हैं कि आज यह बात हमारे यहाँ अति की सीमा पर गई है, साथही हमारी कंगाली ने इसे हास्यास्पद भी ना दिया है, और यह खतरनाक तो है ही। यदि हम दूर न कर सकें तो भी इसे किसी हद तक तुरन्त कर देना चाहिए और अपनी बहन-बच्चियों की ो इसके कारण खोने से बचानी ही चाहिएँ।

ति की दिशा में

यह प्रगति का समय है। स्त्रियाँ भी इस समय प्रगति के पथ पर हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से उनके स्थानीय, ज़िला या प्रान्तीय सम्मेलनों अथवा संगठनों के समाचार आने लगे हैं। यह भी बात नहीं कि यह सब वाह्याडम्बर ही हों, दिन-पर-दिन वे अपने को अधिकाधिक कर्मशील बनाने का प्रयत्न कर रही हैं। अ० भा० स्त्री-शिक्षा-सम्मेलन की संगठन-मंत्रिणी श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय हाल ही में अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-सम्मेलन से लौटी हैं। वह बड़े उत्साह से हिन्दुस्तानी सेवा-दल में संयोग दे रही हैं। कुछ दिनों पहले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में उनका एक लेख निकला था, उसमें स्त्रियों के भी पुरुषों के साथ-साथ स्वयं-सेवक बनने और काम अंजाम देने का ज़ोरों से प्रतिपादन किया गया था। पिछले दिनों अहमदाबाद के युवक-सम्मेलन की अध्यक्षा भी आप ही थीं। लाहौर-कांग्रेस के समय कुमारी लज्जावती जी के नेतृत्व में संगठित स्वयंसेविकाओं ने सच-मुच अपने को इस काम के पूर्ण उपयुक्त साबित भी कर दिया है। प्रायः सभी ने उनके कार्य की प्रशंसा की है और उन्हें सराहा है। लाहौर-कांग्रेस की तैयारियों में भी कुमारी लज्जावती तथा तपस्विनी पार्वतीदेवी का काफ़ी हाथ रहा है। इधर गुजरात में श्रीमती इन्दुमतीबाई दीवान के सभापतित्व में प्रान्तिक महिला-परिषद् बड़ी सफलता के साथ हुई है। विश्व-विद्यालयों की पढ़ाई में कई बहनों ने जो नामवरी हासिल की है, वह तो प्रशंसनीय है ही।

परदे के विरुद्ध

नवजीवन-मण्डल का जब से संगठन हुआ है, वह ज़ोरों के साथ कार्य-क्षेत्र में कूद पड़ा है। पिछले दिनों परदे के विरुद्ध इसने अपना आन्दोलन उठाया। उसका प्रतिनिधि-मण्डल स्थान-स्थान पर गया और परदे के विरुद्ध अच्छा प्रचार-कार्य किया। उधर कम्मलपुर (पंजाब) की स्त्रियों ने स्वयं ही अपनी सभा करके परदा परित्याग करने का निश्चय किया है।

भारतीय महिला-परिषद्

सर्वभारतीय-महिला-परिषद् का अधिवेशन इस बार बम्बई में श्रीमती सरोजिनी नायडू के सभापतित्व में हुआ। लेडी साइक्स (गवर्नर-पत्नी) ने उसका उद्घाटन किया; स्वागताध्यक्षा लेडी ताता ने स्त्रियों की आवश्यकताओं का

अपने स्वागत-भाषण में अच्छा सिंहावलोकन किया, और श्रीमती नायडू ने कहा —मैं 'फ़ेमिनिस्ट' नहीं हूँ, स्त्रियों के लिए विशेष रिआयतें मैं नहीं चाहती, क्योंकि इसका मतलब तो यह हुआ कि हम अपने को पुरुषों से तुच्छ समझती हैं। सभा में सब कारवाई अंग्रेज़ी में हुई, जिसकी 'लीडर' के संवाददाता तक ने टीका की है। बाल-विवाह-निषेधक-बिल की खूब तारीफ़ हुई और अन्य कई सुधार भी क़ानूनों द्वारा ही करने पर ज़ोर दिया गया। परिषद सफल हुई, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु हमें मजबूरन यही निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि वह आम स्त्रियों के बजाय उच्च वर्ग की स्त्रियों तक अपनी सीमा निर्धारित कर रही है और वातावरण में अंग्रेज़ीपन तथा सरकारी अफ़सरों के प्रभाव का बढ़ता जाना तो हमारी दृष्टि में बहुत अवाञ्छनीय है। परिषद की संचालिकायें इस ओर ध्यान दें तो अच्छा होगा।

श्रीमती इन्दुमती बाई [गुजराती 'गुण-सुन्दरी' के सौजन्य से]

गुलाबदेवी कन्या-पाठशाला अजमेर

राजपूताना स्त्री-शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है। ऐसी दशा में जब कोई व्यक्तिगत प्रयत्न इस दिशा में नज़र आया, स्वभावतः हर्ष होता है। फिर यदि वह प्रय[त्न] सुचारु-रूपेण हो, तब तो और भी खुशी होती है। हमें ह[र्ष] है कि अजमेर की उक्त पाठशाला ऐसा ही एक प्रयत्न है।

३१ वर्ष पहले, सम्वत् १९५५ में, यह क़ायम हुई थी। श्री मथुराप्रसादजी माहेश्वरी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गुलाबदेवीजी [इसके] संस्थापक हैं, जि[न] में से मथु[राप्रसादजी] तो ११ वर्ष [हुए] स्वर्गवासी हो [चुके हैं] और गुलाबदेवीजी 'चाचीजी' के [नाम] से प्रसिद्ध होकर [अब] भी इसकी सम्हाल और [देखरेख] कर रही हैं। १९०९ में [मथुरा]प्रसादजी का [स्वर्ग]वास हुआ था। [तब] से सन् '११ [तक] चाचीजी ने [इसे] पूरी तरह सं[भाला]। इसके बाद [इसे] चिरस्थायी [और] समुन्नत बना[ने के] उद्देश से [राजपूताना] व मालवा की प्रतिनिधि-सभा के अधीन कर दि[या]। १९२१ तक [सभा ने] इसका [संचालन] किया; फिर सुविधा की दृष्टि से अजमेर आर्य-समाज के [अधीन] कर दिया। तब से वह उसीके अन्तर्गत, एक [उप]सभा के द्वारा लगातार उन्नति करती आ रही है। चाचीजी की तो पूरी देखरेख और सार-सम्हाल है ही।

कई बातों में यह पाठशाला अपनी विशेषता रखती है। सबसे बड़ी विशेषता स्वावलम्बन है। यह पाठशाला गवर्नमेंट या म्युनिसिपैलिटी किसी से कुछ सहायता नहीं लेती। प्रारम्भ से अब तक श्रीमती गुलाबदेवीजी का ही लगन के साथ मुख्याचार्या के रूप में इसकी सेवा और सम्हाल करते रहना भी इसका सौभाग्य है। फिर शिक्षा निःशुल्क दी जाती है और साथ ही साधनहीन कन्याओं को पुस्तक आदि आवश्यक वस्तुओं की सहायता भी दी जाती है। और सबसे बढ़कर यह कि 'पाठशाला का केवल पुस्तक-पाठ व परीक्षा पास कराना ही ध्येय नहीं रहा है वरन् इस पाठशाला में......कन्याओं का जीवन आर्य-जीवन बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाता है।'

शिक्षा में स्कूली तथा घर-गृहस्थी के लिए आवश्यक शिक्षा का मिश्रण है और सादगी आदि गुणों पर ज़ोर दिया जाता है। चाचीजी का चरित्र और स्वभाव इतना शुद्ध, सरल और मिलनसार है कि सब भले आदमियों का प्रेम वह सम्पादन कर लेती हैं। इसीलिए कई स्थानीय महिलाओं से भी समय-समय उन्हें अपनी पाठशाला के कामकाज में मदद मिल जाती है। और यही कारण है कि छात्राओं की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। मई १९२६ से मई १९२९ तक के वर्षों का विवरण हमारे सामने है। १९२६ में छात्राओं का योग १ ३ व हाज़िरी का औसत ९५ था, १९२७ में वह १२९ व १०० रहा, १९२८ में १४२ व ११४ और १९२९ में वह १६८ व १२५ हो गया। परीक्षा-फल भी प्रगति का सूचक है। १९२७—२८ में इस पाठशाला की एक छात्रा लोअर मिडिल की परीक्षा में राजपूताना भर में सर्वप्रथम रही थी।

अध्यापिकायें पाँच हैं। परीक्षायें साल में दो बार होती हैं। प्रतिवर्ष छात्राओं के उत्साह-वर्धन के लिए पुरस्कारों की भी व्यवस्था की जाती है। आगे से प्रतिवर्ष एक पदक उस छात्रा को देने का निश्चय हुआ है, जिसका स्वास्थ्य सर्वोत्तम रहा करेगा।

पर इसकी आर्थिक स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। इस पाठशाला की आय 'इस समय ४२॥) मासिक मकान-किराये से, लगभग १४) मासिक ब्याज से और १६॥) मासिक सहायकों से है। शेष व्यय दान से चलता है। व्यय लगभग १००) मासिक है, जबकि बहुत ही किफ़ायत से काम किया जाता है।'

श्रीमती गुलाबदेवी

कोई चार वर्ष पूर्व मुझे भी इस पाठशाला को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। श्रीमती चाची जी ने बड़े प्रेम और सद्भाव से इमारत तथा क्लासें दिखाई थीं। स्थिति का भी बहुत-कुछ वर्णन किया था। उस समय छात्राओं के प्रति चाचीजी का जो मातृ-सम स्नेह-भाव मैंने देखा, मैं उससे बड़ा प्रभावित हुआ था। एक छात्रा बहन, मुझे याद पड़ता है, ऐसी थीं, जो इस पाठशाला की पढ़ाई समाप्त कर चुकी थीं। वह आगे नार्मल करना चाहती थीं, पर ग़रीब और शायद मुझे ठीक याद नहीं—असहाय थीं। चाचीजी ने उन्हें अपने ही पास रख रक्खा था और कहीं न-कहीं से थोड़ी-बहुत

सहायता प्राप्त करवाकर उसे नार्मल पढ़ाने के लिए वह कितनी उद्विग्न थीं, यह मुझे याद आ रहा है। शिक्षा-सम्बन्धी बहुत ऊँचे दर्जे की योग्यता चाहे चाचीजी में न हो पर उनका ऐसा स्नेह और ऐसी लगन प्रशंसनीय है। यही उनकी पाठशाला की प्रगति का मुख्य कारण है। अपने उदार पतिदेव के स्वर्गवास से वह यद्यपि अकेली पड़ गई हैं, पर मुझे विश्वास है उनकी यह लगन और सरलता-शुद्धता व्यर्थ न जायगी। पाठशाला बढ़ रही है, और आगे और भी बढ़ेगी—ऐसा हमारा विश्वास है। विवरण में कहा गया है कि 'यदि यथेष्ट रूप से कार्य चलाया जाय तो २००) मासिक से कम व्यय नहीं हो सकता।' १००) मासिक तो किसी तरह आज भी हो ही रहा है, सवाल १००) मासिक का ही तो रहा—और उस राजस्थान के केन्द्र अजमेर में, जिसके अनेक सुपुत्र धन-धान्य से परिपूर्ण दूर-दूर तक अपनी गुण-शीलता की यश-सुरभि फैला रहे हैं! हमारी आग्रहपूर्ण आशा है कि राजस्थानी भाई-बहन इस सुन्दर पाठशाला की उन्नति में भाग लें—न केवल भावना में वरन् धन की क्रियात्मक सहानुभूति के द्वारा भी। विवाह, औसर-मौसर आदि में जहाँ हज़ारों तक पर पानी फेरा जाता है, तहाँ यदि कुछ रक़म इसे भी दी जाय तो यह सहज ही हो सकता है।

मुकुट

आधुनिक रूप

राष्ट्रीय शिक्षा, कम या अधिक परिमाण में और भिन्न-भिन्न स्वरूपों में, पिछले अनेक वर्षों से हमारे देश में प्रचलित थी। गुरुकुलों की स्थापना और कलकत्ता, काशी, पूना, आदि के कालेज इस बात के प्रमाण हैं। परन्तु असहयोग-आन्दोलन में राष्ट्रीय शिक्षा का नवीन संस्करण हुआ और उसे नवीन रूप प्राप्त हुआ। असहयोग-आन्दोलन में कहा गया था कि सरकारी शिक्षा-संस्थायें हानिकारक हैं और गुलामी के अड्डे हैं। अतः हम लोगों को उनका वहिष्कार करना चाहिए। फल यह हुआ कि हज़ारों की संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों और कालेजों का त्याग करना प्रारम्भ कर दिया। अब देश-हितैषियों को उनकी शिक्षा-दीक्षा के प्रबन्ध की चिन्ता हुई। इसके अलावा असहयोग आन्दोलन ने इस बात को भी स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य स्वराज्य-संग्राम के लिए सैनिक तैयार करना है। परिणाम यह हुआ कि देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई। जिन विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षा-संस्थाओं का वहिष्कार किया था उन्होंने इन विद्यापीठों में आश्रय प्राप्त किया। हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी इनमें भर्ती हो गये। ज्यों-ज्यों असहयोग आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया त्यों-त्यों हमारे विद्यापीठों की नींव मज़बूत होती गई और विद्यार्थियों की संख्या अधिकाधिक बढ़ती गई।

संगठन

परन्तु ज्योंही असहयोग-आन्दोलन का प्रवाह मन्द पड़ा और देश में प्रतिक्रिया की लहर बहने लगी त्योंही राष्ट्रीय विद्यापीठों के कार्य में भी शिथिलता आने लगी। असहयोग-आन्दोलन एक प्रकार का तूफ़ान था उसके कारण जो विद्यार्थी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में आये वे केवल उस ववण्डर के परिणाम थे। ज्योंही वह आँधी मन्द पड़ी, उनका उत्साह भी ठण्डा पड़ने लगा। वह तो एक भीड़ थी, जो असहयोग-आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् तुरन्त तितर-बितर हो गई, फल यह हुआ कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थायें विद्यार्थियों के अभाव में भूखों मरने

लगीं। पिछले ४-५ वर्षों में बार-बार इनके संचालकों और प्रेमियों को यह भी अनुभव हुआ कि सम्भव है इन्हें शीघ्र ही काल-कवलित हो जाना पड़े। इसके अतिरिक्त असहयोग-आन्दोलन में समयाभाव के कारण राष्ट्रीय शिक्षा का कोई ध्येय स्पष्ट रूप से निश्चित भी नहीं हो पाया था। एक ओर विद्यार्थियों की कमी और दूसरी ओर निश्चित ध्येय के अभाव ने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रेमियों को इस बात के लिए विवश किया कि वे किसी एक स्थान पर एकत्र होकर राष्ट्रीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति समझ लें और उसके ध्येय का निश्चय कर लें। इन्हीं सब बातों का परिणाम गत १४, १५, १६ जनवरी को गुजरात-विद्यापीठ में होने वाली राष्ट्रीय भारतीय शिक्षा-परिषद् है।

इस परिषद् का आयोजन गुजरात विद्यापीठ के आचार्य काका कालेलकर ने किया था। पिछले कुछ अर्से से काशी विद्यापीठ की ओर से ऐसी एक परिषद् बुलाने की तैयारी की जा रही थी। परन्तु काशी में परिषद् होने से पूर्व यह उचित समझा गया कि इस सम्बन्ध में एक प्रारम्भिक सम्मेलन कर लिया जाय ताकि उसमें विचार-विनिमय होकर राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों पर वाद-विवाद हो जाय। काशी विद्यापीठ की ओर से काशी में राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के जिस वृहत् सम्मेलन का आयोजन हो रहा है, उसका अधिवेशन लगभग आगामी सितम्बर मास में होगा। अहमदाबाद की इस परिषद् ने काशी के सम्मेलन का मार्ग बहुत कुछ साफ़ कर दिया है।

अ० भा० राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद का अधिवेशन गुजरात-विद्यापीठ (अहमदाबाद) में तीन दिन तक होता रहा। पहले दिन परिषद का सभापति-पद काशी विद्यापीठ के आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने सुशोभित किया; दूसरे दिन के सभापति प्रेम-महाविद्यालय के आचार्य जुगलकिशोर जी थे और तीसरे दिन गुरुकुल कांगड़ी के श्री० देवशर्माजी। महात्मा गांधी ने भी दो दिन तक परिषद में उपस्थित होकर अपनी बहुमूल्य सम्मतियों से परिषद को सहायता दी और राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य और कार्यक्रम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। चर्चा के मुख्य विषय थे—राष्ट्रीय शिक्षा का ध्येय निश्चित करना, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान प्रदान करना, विद्यार्थियों के शारीरिक विकास और शिक्षा की व्यवस्था करना और गाँवों के उत्थान-कार्य में हमारे स्नातक किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, इसकी योजना बनाना।

पहले दिन आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने सभापति के पद से अपना प्रारम्भिक भाषण किया। उन्होंने हमारे देश की राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास का अवलोकन करते हुए उसकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा में जो खामियाँ हैं, उनकी ओर प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित किया और साथ ही इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस बात की भी आवश्यकता बतलाई कि हमारे यहाँ एक ऐसे विभाग की स्थापना भी होनी चाहिए जो अनुसंधान का कार्य करे। इस विभाग का उद्देश्य होगा भारत की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में खोज करना। यह विभाग किसानों की वर्तमान स्थिति की जाँच करे, उनके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण और अंक प्राप्त करे और मजदूरों की सच्ची स्थिति की सामग्री एकत्र करे। यह सब करने के पश्चात् यह विभाग अपनी खोजों के परिणामों को समय-समय पर प्रकाशित किया करे, ताकि भारतीय नेताओं, पत्रकारों और इस विषय के जिज्ञासुओं को भारत की सच्ची स्थिति का पता लगता रहे।

यह परिषद इस सम्बन्ध में अंतिम परिषद नहीं थी अतः इस परिषद् में जो विषय विवाद-ग्रस्त थे अथवा जिनपर एक से अधिक मत थे, उन विषयों पर कोई प्रस्ताव पास नहीं किया गया। ऐसे विषयों पर भिन्न भिन्न प्रतिनिधियों के जो जो मत थे, जान लिये गये और तत्सम्बन्धी उनकी मनोवृत्ति से परिचय प्राप्त कर लिया गया। जिन बातों के सम्बन्ध में सभी प्रतिनिधि एक मत थे उन्हीं पर परिषद् में प्रस्ताव पेश और पास हुए। फिर, ये प्रस्ताव किसी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था पर बन्धनस्वरूप भी नहीं थे; ये केवल सिफारिश के रूप में थे। इस सम्बन्ध में समस्त बातों का अन्तिम निर्णय काशी में होने वाले आगामी सम्मेलन में होगा। अनेक प्रस्ताव पास हुए, जिनमें से

मुख्य-मुख्य निम्न प्रकार हैं। पहला प्रस्ताव राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य के बारे में था। इसके अनुसार निश्चय हुआ कि राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य स्वराज्य-परायण सैनिक तैयार करना है। एक प्रस्ताव में राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान देने की सिफारिश की गई थी। एक प्रस्ताव प्रत्येक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने के सम्बन्ध में था। एक अन्य प्रस्ताव में स्त्रियों की शिक्षा पर जोर दिया गया और उसके प्रचार के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया।

महात्मा गांधी मुख्यतः तीन विषयों पर बोले—(१) राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य, (२) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान देना और (३) परिषद् के राष्ट्रीय झण्डा फहराने-सम्बन्ध प्रस्ताव। राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य एक ही हो सकता है और वह है स्वराज्य की शिक्षा। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने भाषण में विद्यार्थियों और अध्यापकों को सच्चरित्र, सत्यनिष्ठ, और अहिंसक रहने का भी उपदेश किया। औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में वर्तमान समय में एक ही औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए और वह है चर्खा। चर्खे की तुलना उन्होंने सूर्य-मण्डल से करते हुए कहा कि इसके द्वारा हम अन्य दूसरे कार्यों को अपने आप पूर्ण कर लेंगे। चर्खा सूर्य है और दूसरे समस्त कार्य नक्षत्र हैं! यदि हम सूर्य को पकड़े रहेंगे तो अन्य नक्षत्र यथा-नियम अपना कार्य करते रहेंगे। परन्तु यदि हम सूर्य को ही खो देंगे तो फिर सभी वस्तुयें हमारे हाथ से निकल जायँगी। महात्माजी ने कहा कि कोई भी उद्योग हम मुख्यतः निम्नलिखित तीन बातों को लक्ष्य रखकर सीखते हैं—(१) उसे सीखकर हम या तो स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बनें, (२) या दूसरों के सामने दृष्टांत पैदा करें अथवा (३) दूसरों को उस उद्योग की शिक्षा दें लेकिन चर्खा एक ऐसी वस्तु है जिससे हमारे तीनों उद्देश्यों की पूर्ति होती है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के लिए चर्खे [illegible] औद्योगिक शिक्षा देने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता [illegible] नहीं है। राष्ट्रीय झण्डा-सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हु[ए] महात्माजी ने कहा कि राष्ट्रीय झण्डा फहराना अच्छा है। मैंने भी लखनऊ, प्रयाग आदि में झण्डा फहराया है। झण्डा फहराने से हृदय में एक जोश और स्फूर्ति पैदा होती है। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं को इस सम्बन्ध में सावधा[नी] और विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए। हम लोगों की [illegible] कमी है कि हम अनेक बातों को उनके बाह्य आवरण [से] आकर्षित होकर तुरन्त करने लग जाते हैं; परन्तु उन[के] भीतरी रहस्य और मर्म का उतना विचार नहीं कर[ते]। आप लोगों को भी राष्ट्रीय झण्डे के भीतरी मर्म को सम[झ] लेना चाहिए। इस झण्डे के भीतर गूढ़ अर्थ छिपा हु[आ] है कि चाहे प्राण चले जायं, परन्तु झण्डा नीचे न झु[कने] पाये—उसका अपमान न हो सके। यदि आप और आप[के] विद्यापीठों के विद्यार्थियों ने झण्डा फहराने के इस रहस्य [को] समझ लिया है, तो आप अवश्य झण्डा फहरावें। ऐ[सी] हालत में जहाँ-जहाँ झण्डा फहराया जाय वहां-वहां प्र[त्ये]क व्यक्ति के शरीर में प्राण रहते झण्डे का अपमान होना [हमारे] लिए कलंक की बात होगी। वास्तव में हम कोई भी प्रस्ताव पास क्यों न करें, उस प्रस्ताव के पीछे हमारे दृढ़ नि[श्चय] का संकल्प होना चाहिए।"

इस प्रकार इस परिषद् ने राष्ट्रीय शिक्षा के सम[्बन्ध] में हमारे लिए सीधे और सच्चे मार्ग का निर्देश कर [दिया] है। इस परिषद् में भिन्न-भिन्न प्रान्तों के राष्ट्रीय शि[क्षा] प्रेमियों के विचारों और मनोवृत्तियों का भी परिचय [प्राप्त] हो गया है। इस परिषद् ने काशी में होने वाली [अखिल]... परिषद् की नींव को भी काफ़ी मजबूत कर दिया [है]। परिणाम स्वरूप काशी वाली परिषद् में हमको इस परि[षद्] के निश्चयों और मन्तव्यों से अमूल्य सहायता मिल[ने की] आशा है।

—[illegible]

गत मास भारतीय इतिहास में सदा महत्वपूर्ण समझा जायगा। इसमें हमें सरकार की नीति समझने का अच्छा अवसर मिला है। एक ओर जहाँ श्री फ़ेनर ब्राकवे के प्रस्ताव पार्लमेंट में सर्वसम्मति से स्वीकार किये जाते हैं और अच्छी आशा दिलाते हैं तहाँ भारत में सरकार की नीति इसके बिलकुल विपरीत ही प्रतीत होती है। पंजाब-केसरी के स्वर्गीय श्री लालाजी-जैसे नेता की पुण्यस्मृति के लिए उपयुक्त स्थान देने में आनाकानी करने से, लाहौर-कांग्रेस के लिए विशेष रूप से १ लाख रुपयों की पुलिस की व्यवस्था के लिए स्वीकृति देने से और इस आशय का सरक्युलर प्रान्तीय सरकारों के पास भेजने से कि प्रदर्शनी के विषय में कांग्रेस की सहायता न की जानी चाहिए—सरकार की नीति की दिशा स्पष्ट मालूम हो जाती है। यद्यपि श्री० बेन बड़े माधुर्य से कहते हैं कि भारत तो गत १० वर्षों से औपनिवेशिक स्वराज्य का उपभोग कर रहा है परन्तु जनता तो सरकार की नीति को उसके सामने रक्खे गये रूप में ही देख सकती है। भारत तो स्वराज्य के लिए व्याकुल हो रहा है,परन्तु उसके नेताओं ने सदा सरकार का सहयोग प्राप्त करने का ही प्रयत्न किया है। और गत मास लार्ड इरविन के साथ इस सम्बन्ध में पाँच बड़े नेताओं का जो परामर्श हुआ था वह एक प्रकार से अन्तिम ही समझना चाहिए। पदाधिकारी की हैसियत से वाइसराय महोदय इससे अधिक कुछ भी आश्वासन न दे सके कि सर्वदल-सम्मेलन में उस समय जो निश्चय होगा उसके अनुसार पार्लमेंट में बिल पेश कर दिया जायगा। इसलिए भारतीय नेताओं का निराश होना स्वाभाविक ही था। इसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम यही हुआ कि कांग्रेस की नीति में परिवर्तन हो गया। और गत कांग्रेस का महत्व है भी इसी में कि अब स्वराज्य सरकार के साथ सहयोग द्वारा न लिया जायगा। इतना होने पर भी कांग्रेस के लिए यह बड़प्पन का सूचक है कि वाइसराय की ट्रेन पर बम चलाने वालों की निन्दा का प्रस्ताव पास किया गया है। यह भी शुभ लक्षण है कि युवक-दल कांग्रेस की नीति को नरम मानते हुए भी उसके कार्यक्रम से पूर्णतया सहमत है। कौंसिलों के बहिष्कार के सम्बन्ध में जोरशोर से कार्य हो रहा है। वाइसराय महोदय ने २५ जनवरी की स्पीच में सरकार की स्थिति स्पष्ट कर दी है कि औपनिवेशिक स्वराज्य लक्ष्य है और उसका यह मतलब नहीं कि अभी मिल जाय। एक ओर इस पर और दूसरी ओर २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस को भारतीय जनता के सरकार के साथ सहयोग करना पाप है और हमारा लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता है, इस घोषणा पर विचार करने से घटनाओं के रुख का पता चल सकता है। यह देखते हुए कि स्वतन्त्रता-दिवस भारत के सब बड़े-बड़े नगरों में और भारत के बाहर भी उत्साह से मनाया गया जनता की जागृति का अच्छा परिचय मिलता है।

जनता ने अपने कर्त्तव्य को कहाँ तक समझा है यह तो स्थान-स्थान पर होने वाले

सत्याग्रह और आन्दोलन

की संख्या से जाना जा सकता है। स्किनर्स स्टेट के अधिकारियों ने कृषकों की कर न बढ़ाने की शर्तें मान ली हैं। मुल्तान में म्युनिसिपलिटी के वाटर-टैक्स बढ़ा देने पर जनता ने सत्याग्रह की तैयारियाँ की ही थीं कि उसकी विजय मान

ली गई। बंगाल में यूनियन बोर्ड के टैक्स के विरोध में बन्दाविला का सत्याग्रह जैसोर जिले में जारी है। सरकार उसे दबाने की जी-जान से कोशिश कर रही है। गिरफ्तारियां भी हुई हैं। परन्तु कैदियों ने अच्छा भोजन न मिलने के कारण खाना-पीना छोड़ दिया है। इधर काठियावाड़ की वलिया रियासत ('खाखरेचा') में भी किसानों का सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ था। श्री मणिलालजी कोठारी के प्रयत्न से वह भी सफल होगया। संयुक्तप्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने सत्याग्रह-संग्राम के लिए स्थानों के चुनाव के संबंध में एक कमेटी नियुक्त की है। अमृतसर में भी जनता सरकार के नये बन्दोबस्त के विरोध में सत्याग्रह करने की तैयारी में है। देश में सर्वत्र एक नई लहर व्याप्त हो रही है।

देशी रियासतें

भी इससे नहीं बच सकी हैं। वाइसराय की इस घोषणा ने कि सर्वदल-सम्मेलन में शासकगण ही देशी प्रजा के प्रतिनिधि रहेंगे उनको, इसमें संदेह नहीं, निश्चिन्त हो जाने का बहुत अधिक अधिकार दे दिया है। हैदराबाद के निज़ाम ने तो अपने राज्य में सभायें—और विशेषतः राजनैतिक सभायें—करने के लिए अनुमति लेने की आज्ञा जारी कर दी है। सुना है कि पटियाला में स्वतंत्रता-दिवस के संबंध में कई गिरफ्तारियां भी हुई हैं।

मजूरों के संबंध में कानपुर और पटना की मजूर कमीशन के सामने दी हुई गवाहियों से उनके भोजन आदि के बारे में गिरी हुई दशा का अनुमान हो सकता है। आसाम के चाय बागान की हीन अवस्था की भी बहुत-सी बातों का पता चला है। जी. आई. पी. रेलवे के मजदूर-संघ के निश्चय से मजूरों ने ४फरवरी को शिकायतों की सुनवाई न होने से हड़ताल कर दी। जो सफल हुई है।

शारदा-बिल

का विरोध इस मास मुसलमानों की तरफ से अधिक रहा। परन्तु कई मुसलमानी महिलाओं ने इसका समर्थन भी किया है। स्त्रियों का आन्दोलन दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

राजनैतिक संघर्ष जोर पकड़ता जा रहा है और उसकी भूमिका सुभाष बाबू की सजा से प्रारम्भ है। स्वाधीनता दिवस की आज्ञायें तोड़कर [illegible] कारण अनेक स्थानों पर गिरफ्तारियां भी हुई हैं। में दमन की संभावना बढ़ती जा रही है।

देश की बात

लाहौर-कांग्रेस

राष्ट्रीय महासभा का लाहौर-अधिवेशन समाप्त हो गया। ३१ दिसम्बर की रात को १२बजे और हर्ष के उमड़ते हुए भावों के साथ 'पूर्ण [illegible] भारत का ध्येय है', इसका निश्चय हुआ। उस [illegible] दृश्यों का वर्णन करना बड़ा कठिन है। युवक प्रसन्नता से पागल हो रहे थे; उन्होंने राष्ट्रपति [illegible] कन्धों पर उठा लिया और सुबह चार बजे तक [illegible] नचाते रहे। स्वयंसेविका बहनें यहाँ-वहाँ, प्रत्येक [illegible] स्वाधीनता के गाने गाती फिरती थीं। ऐसा मालूम था मानो माँ की इतने दिनों की सुप्त वाणी [illegible] सैकड़ों जिह्वाओं द्वारा आज उल्लासपूर्वक बलिदान [illegible] बच्चों का आह्वान कर रही है। यह हर्ष स्वाभाविक [illegible] क्योंकि भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में वृद्ध [illegible] पर युवक-मनोवृत्ति की यह एक भारी विजय है।

अब उन सब विवादों, संशोधनों और समर्थन [illegible] भाषणों का ज़िक्र करना फिजूल-सा है, जो [illegible] अधिवेशन के समय श्रोताओं को सुनने पड़े। प्रत्येक क्रान्तिकारी निश्चय या व्यवस्था के समय [illegible] पूर्ण स्वतंत्रता के इस गम्भीर और कठोर निश्चय [illegible] भी हुआ। एक ओर मालवीयजी तथा [illegible] नरम नेता कांग्रेस को पीछे खींच रहे थे [illegible] ओर श्री सुभाषबोस, श्री ऐयंगर इत्यादि स्वतंत्रता

को बहुत कड़ा बनाना चाहते थे और कौंसिलों के के साथ नगर और ज़िला-बोर्डों, अदालतों तथा बहिष्कार पर भी ज़ोर दे रहे थे। इन दोनों दलों वही थे जो नरम और उग्र दल के हुआ करते दल का सदा की ही भांति कहना था 'भई, ज़रा ो। वाइसराय बेचारा बड़ा अच्छा है और भारत- वेन तथा मजूर-सरकार भारत की समस्या को के लिए बहुत उत्सुक हैं। हम यह नहीं कहते कि त्रता का ध्येय न घोषित करो पर सत्याग्रह की व तक के लिए स्थगित कर दो, जब तक भारतीय ज़ प्रतिनिधियों का गोल मेज-सम्मेलन इंग्लैण्ड जाय! यदि वहां भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य तो फिर मज़े में स्वतंत्रता की घोषणा करना और एवं बहिष्कार से भी काम लेना; हमसे बनेगा तो तुम्हारा साथ देंगे। अभी तो सहानुभूति और के वातावरण को न बिगाड़ो; मजूर-सरकार को र देने से हमारे हाथ से बड़ा मौक़ा चला जायगा।' क-दल कहता था,—"भाई! तुम्हारी बातें तो नहीं हैं। बीसों वर्ष से प्लेटफार्मों से उन्हें हम हे हैं। बार-बार विनती, प्रार्थना, अनुरोध और करके देख लिया है। इनसे कुछ नहीं हुआ। हने से सरकार के साथ सहयोग किया; कौंसिलों प्रस्ताव पास किये पर किसी ने न सुना। खून दिन पर दिन चूसा जा रहा है; ग़रीबी है। करोड़ों पेटों में चारा नहीं पड़ता और राम और आसाइश की ज़िन्दगी में पड़े हुए, और सहिष्णुता का उपदेश करते हो। देश के र्द का फोड़ा पक गया है; अब आघात नहीं सह। दवा की आशा पर इतने दिनों तक तुम इसकी करते रहे पर 'दर्द बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' ानी जमाख़र्च का दबाव हम पर नहीं पड़ सकता। में स्वाधीनता कभी भीख मांगने से न मिली है; न । ताक़त पैदा करो; बलिदान करो, तैयार हो जाओ; मिलेगा। मजूर-सरकार की भौंहों के बल देखकर ो न कर सकोगे। बिना मरे स्वर्ग न दीखेगा। इस लिए अब इसे कल पर छोड़ा नहीं जा सकता। हम तो आज ही इन परावलम्बी भावों और विधियों को छोड़कर अपने पैरों खड़ा होना चाहते हैं। तुम लोगों को इतने दिन देखा; अब अपनी भी कर देखें।"

लाहौर की रंग-स्थली में इन दोनों मनोवृत्तियों का संघर्ष हुआ और पिछली—युवक-मनोवृत्ति—की विजय हुई। यह युवक भारत की विजय है; यह देश की बढ़ती हुई पीड़ा की उपेक्षा के सन्तोष पर विजय है; यह समय की विजय है।

× × ×

गहरी ज़िम्मेदारी

खैर—जो होना था हो गया। अच्छा हुआ या बुरा इस बहस से फायदा क्या है? हम तो जो हुआ उसे अच्छा समझते हैं, क्योंकि हमें भगवान् में और अपने भविष्य में विश्वास है। दमन की अंधाधुन्धी मचेगी, इसे लाहौर-कांग्रेस के पण्डाल में बैठा हुआ कौन प्रतिनिधि नहीं जानता था? पर तिल-तिल करके गलाये जाने से गौरव-पूर्ण, शान्ति के साथ, अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए मर मिटना अच्छा है। युवक-दल के लिए आज बलिदान और त्याग का बहुत अच्छा अवसर उपस्थित हुआ है। निर्णयों और प्रस्तावों तक ही उनकी विजय हो गई तो क्या हुआ? पूर्ण स्वतंत्रता का निश्चय कर लेना तो कठिन नहीं है पर निरन्तर त्याग, लगन और संगठन से पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना या उसके प्राप्त करने के लिए देश का पूर्णतः तैयार हो जाना बड़ा कठिन काम है पर इससे उनकी ज़िम्मेदारी भी बहुत ज़्यादा बढ़ गई है। इस विजय की बहुत ज़्यादा क़ीमत उन्हें चुकानी पड़ेगी और इसके लिए हम जितनी जल्दी तैयार हो जाँय, देश का भला होगा।

पूर्णस्वतंत्रता-दिवस

लाहौर-कांग्रेस के बाद, कार्य-समिति के आदेश से पूर्ण-स्वतंत्रता के निश्चय के सम्बन्ध में देश की तैयारी का पता लगाने के लिए, विगत २६ जनवरी का दिन इस बात के लिए नियत किया था कि उस दिन प्रत्येक नगर और

गाँव में राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय; जुलूस निकाले जायँ और शाम को ५ बजे सभा करके उसमें राष्ट्रपति द्वारा प्रकाशित घोषणा पढ़ सुनाई जाय और लोगों से हाथ उठाकर उसे स्वीकार करने के लिए कहा जाय। इस घोषणा में कहा गया था कि 'स्वाधीन होना और अपने परिश्रम एवं कमाई का फल भोगना, प्रत्येक राष्ट्र की भांति, भारत का भी जन्मजात अधिकार है। हमारा विश्वास है कि जो सरकार इस अधिकार से वंचित करके जनता का विकास रोक देती है, उसे बदलने या नष्ट कर देने का भी जनता को अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को न केवल उनकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया है वरन् अपने अस्तित्व की नींव सर्व-साधारण की विनाश-नीति पर उठा रक्खी है और उसने भारत को आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सब दृष्टियों से जर्जर और निस्सार कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि भारत को ब्रिटेन से अपना सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए और 'पूर्ण स्वराज्य' प्राप्त करना चाहिए।'

भारत के हज़ारों नगरों और गाँवों में हज़ारों प्लेटफार्मों से कांग्रेस-कार्य-समिति की ओर से राष्ट्रपति द्वारा निकाली गई यह घोषणा पढ़ी गई और लोगों ने उसे स्वीकार किया। देश के कोने-कोने से जो रिपोर्टें आई हैं उनसे मालूम होता है कि राष्ट्र का अन्तःकरण उल्लसित हो रहा है। १९२२-२३ के असहयोग-आन्दोलन के बाद ऐसी भीड़, ऐसा उत्साह कभी दिखाई नहीं पड़ा था। पाँच-सात जगहों में लोगों ने पुलिस की आज्ञाओं और सरकारी क़ानूनों को तोड़कर भी कांग्रेस के आदेश का पालन किया। बम्बई के जुलूस में एक लाख से ऊपर भीड़ थी और लाहौर में एक ही सभा में, पाँच-पाँच मंचों से घोषणा सुनानी पड़ी। सरकारी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों पर झण्डे उड़ाये गये। अनेक म्युनिसिपलिटियों ने इस कार्य में योग दिया। कलकत्ता-कार्पोरेशन के विशाल भवन पर तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा गौरव-पूर्वक सर ऊँचा किये वातावरण में कम्पन उत्पन्न कर रहा था। सबसे मज़ेदार बात तो यह हुई कि किसी ने इलाहाबाद के सरकारी क़िले पर ही राष्ट्रीय झण्डा गाड़ दिया। श्री सुभाष बोस इत्यादि ने जेल में ही झण्डे फहराये।

इन बातों से स्पष्ट यह प्रकट होता है कि देश ... साथ है और उसकी आवाज़ देश की आवाज़ है।

मीठा ज़हर

विगत २६ जनवरी को बड़ी ... वाइसराय ने जो भाषण किया उसमे भारतीय ... प्रश्न पर सरकार की नीति स्पष्ट हो गई है। वाइ... भाषण शाब्दिक मधुरता से भरा हुआ है। जैसा ... अपने एक निकट के सम्बन्धी को लिखा था— ... चालाक वाइसराय का चालाकी से भरा हुआ भाष... लम्बा भाषण है; बड़ी-बड़ी बातें हैं; झुकने पर ... व्यवहार करने का आश्वासन है और दमन की ... है। मिठास है और उस मिठास के पीछे एक ... व्यापारी जाति का षड्यंत्र भी है। एक शब्द में ... तो वायसराय के भाषण को 'मीठा ज़हर' कह ... लार्ड रीडिंग ने ऐसे समय साफ़-साफ़ बातें कर... समझा था; लार्ड इरविन मीठी बातों और ... शब्दों से करोड़ों गरीबों के पेट की भूख मिटाना चा... उनके भाषण से स्पष्ट है कि प्रस्तावित गोल मे... का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य-विधान की रच... नहीं है। वाइसराय ने अपने भाषण में, ... भूल से या जान बूझकर, एक बात बड़े मार्के की ... और वह यह कि 'भारत के भाग्य का निबटारा ... ब्रिटेन-सरकार पर उतना निर्भर नहीं करता जित... उस पर करता है।' यह एक मार्के की बात है और ... हमारे आरामकुर्सी पर पड़े हुए देश की सम... हल करने के लिए उत्सुक लिबरल भाई ... दुराग्रह छोड़कर न ग्रहण करें तो उन्हें हम क्या ... तो, महात्माजी की सलाह मानकर, वाइसराय ... लिए धन्यवाद ही देंगे कि उन्होंने पर्दा फाश ... और अपनी सरकार की स्थिति को बहुत साफ़ ... है। अब हमें विदेशी शासन का चैलेञ्ज स्वीकार ... चाहिए और ध्येय की पूर्ति में मर मिटना चाहिए ...

* × × a speech cleverly word... more cleverly executed by a clever V...

रंभा और विश्वामित्र

[चित्रकार—पं० मोहनलाल शुक्ल]

N. K. Press.

संस्थापक—स्व० श्रीविष्णुनारायण भार्गव

अध्यक्ष—श्रीरामकुमार भार्गव, श्रीतेजकुमार भार्गव
संपादक—मातादीन शुक्ल

वर्ष १२, खंड १

पौष, ३१० तुलसी-संवत् [१९९० वि०]

संख्या ६, पूर्ण संख्या १३८

लहरी

सरिता की चंचल लहरी !
क्यों वृथा चाहती जल पर अंकित करना अपनापन ?
छोटी-सी आकांक्षा में
क्यों सीमित करती जीवन ?
जिसकी शाश्वत आभा से उल्लसित रजत रज के कण,
जिसके अनन्त वैभव से आलोकित रवि-शशि-उडुगन ;
उस ज्योतिर्मय जीवन से—
सरिता की चंचल लहरी !
कर ले ज्योतिर्मय जीवन ।
जिसके निस्सीम सदन में मिलते असीम जीवन-कण
जिसमें अपनापन खोकर मिलता अनन्त अपनापन
उसके प्रशान्त चरणों पर—
सरिता की चंचल लहरी !
तू एक बूँद आँसू बन ।

नरेंद्र शर्मा बी० ए०

रंभा और विश्वामित्र

[चित्रकार—पं० मोहनलाल शुक्ल]

N. K. Press.

…पक—स्व० श्रीविष्णुनारायण भार्गव

अध्यक्ष—श्रीरामकुमार भार्गव, श्रीतेजकुमार भार्गव

संपादक—मातादीन शुक्ल

वर्ष १२, खंड १ } पौष, ३१० तुलसी-संवत् [१९९० वि०] { संख्या ६, पूर्ण संख्या १३८

लहरी

सरिता की चंचल लहरी !
क्यों वृथा चाहती जल पर अंकित करना अपनापन ?
छोटी-सी आकांक्षा में
क्यों सीमित करती जीवन ?
जिसकी शाश्वत आभा से उल्लसित रजत रज के कण,
जिसके अनन्त वैभव से आलोकित रवि-शशि-उडुगन,
उस ज्योतिर्मय जीवन से—
सरिता की चंचल लहरी !
कर ले ज्योतिर्मय जीवन।
जिसके निस्सीम सदन में मिलते असीम जीवन-क्षण
जिसमें अपनापन खोकर मिलता अनन्त अपनापन
उसके प्रशान्त चरणों पर—
सरिता की चंचल लहरी !
तू एक बूँद आँसू बन।

…शर्मा बी० ए०]

रंभा और विश्वामित्र

[चित्रकार—पं० मोहनलाल शुक्ल]

N. K. Press.

पृथिवीर चंद्रमार ग्रहणपनेर
कोटि कोटि तारार संगीत
... ...
शुनिबे रे आँखि मुदि विश्वेर संगीत
तोर मुखे केमन शुनाय ॥
(प्रभात-संगीत)

और, यह सारा संगीत उसी एक विश्वव्यापिनी सत्ता अभिव्यंजक है—उसी की तान का प्रतिरूप है—

"काछे हते एके बारे शुनिबारे चाइ
तोर गीतोच्छ्वास ।"

ली और कीट्स दोनों ने 'चरम सौंदर्य'† को ही माथिक तत्त्व माना है, यद्यपि जहाँ शेली की भावना त्मिक सौंदर्य की उपासिका है, वहाँ कीट्स की वासना-सौंदर्य (Sensuous Beauty) की।

मैथिल-कोकिल विद्यापति ने भी वासना-जन्य र्य और प्रेम को पारमार्थिक सौंदर्य एवं प्रेम का भिक रूपांतर माना है, और इसी विश्वव्यापी आवेग र-अचर, स्थावर-जंगम सारी सृष्टि को सहानुभूति ंखला में उद्वेजित देखा है । निम्नलिखित वर्णन :—

सखि हे कि कहब किछु नहिं फूर ।
सपन कि परतेख कहए न पारिए
किए नियरे किए दूर ॥ *
त-लता तल जलद समारल
आँतर सुरसरि धारा ।
तिमिर ससि सूर गरासल
चौदिसि खसि पड़ु तारा ॥
खसल धराधर उलटल
धरनी डगमग डोले ।
समीरन संचरु
चंचरिगन करु रोले ॥
ले तन झाँपल
नहि जुग अवसान ।
पति आगत
विद्यापति भान ॥

इस पद का व्यंग्यार्थ यह है कि मानव-सृष्टि और मानवेतर सृष्टि—जो संपूर्णतः उस अव्यक्त सत्ता के व्यक्त रूप हैं—सब एक ही सूत्र से बँधे हुए हैं और सभी एक ही 'प्रणयपयोधि' में ग़ोते लगा रहे हैं। फलतः परमात्मा और आत्मा में केवल सान्निध्य ही नहीं, सायुज्य ही नहीं—वरन् तादात्म्य संबंध की अनुभुक्ति हो सकती है, जिस समय कवि टेनिसन के शब्दों में 'ब्राह्म मानव मानवीय ब्रह्म के साथ एक हो जाय'*। वह अवस्था तो वर्णनातीत है और कुछ इसी प्रकार की है—

सखि हे कि कहब किछु नहिं फूर। (विद्यापति)

अविगत गति कछु कहति न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै॥
(सूरदास)

अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही ना जाइ।
गूँगे केरी सरकरा, खाय बैठ मुसकाइ॥
(कबीर)

केसव! कहि न जाइ का कहिए।
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय इहि तन हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माँहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करत जे ताहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि मानै।
'तुलसिदास' परिहरै तीन भ्रम सो आपुन पहिचानै॥

उपर्युक्त 'अविगत गति' अथवा 'अकथ कहानी' के रहस्य को भिन्न-भिन्न कवियों ने भिन्न-भिन्न रूप दिये हैं। दृष्टांतस्वरूप कबीर ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में और जीवात्मा को प्रेयसी एवं नवोढ़ा वधू के रूप में देखा है—

"कहै कबीरा ब्याहि चले हैं
पुरिष एक अविनासी"

अथवा—

'मसी सुहाग राम मोहि दीन्हा'

अथवा—

'बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम'

---

† ...Beauty' or 'Ideal Beauty'.

...से इसकी तुलना कीजिए—
... रहते उदासिके', इत्यादि ।

* Where God-in-man is one with man-in-God.

विद्यापति के प्रेमतत्त्व में रहस्यवाद

[प्रोफ़े० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम्० ए० 'मनीषी']

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥

ऋग्वेद के इस मंत्र में सृष्टि के रहस्यमय आरंभ को—न तो सत् था, न असत्—आदि-आदि रहस्यमय विरोधाभासों द्वारा वर्णित करने की चेष्टा की गयी है। इसी प्रकार यजुर्वेद के ३०वें अध्याय का निम्न-लिखित मंत्र 'पुरुष' का रहस्यमय स्वरूप अभिव्यक्त कर रहा है—

सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृष्ट्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

उपनिषदों में भी ऐसी उक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जो आध्यात्मिक तत्वों को परस्पर व्याघातात्मक शब्दों का रहस्यपूर्ण आवरण दे देती हैं। ईशोपनिषद् का एक मंत्र है—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

अर्थात्—आत्मा चल भी है, अचल भी है; दूर भी है, अदूर भी है; इत्यादि-इत्यादि।

इसी प्रकार 'सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्' अथवा 'तत्त्वमसि' के सिद्धांत की तार्किक विश्लेषण न करके यदि कवि मानव-हृदय की ही वासनाओं और भावनाओं को पशु, पक्षी, कीट और वनस्पति के जीवन में व्यक्त करे और इसी संबंध के द्वारा परमात्मसत्ता के साथ तादात्म्य की सिद्धि करे, तो उसकी कविता विश्वकवि शेली (Shelly) के शब्दों में "प्रिय—नहीं नहीं, अपनी रहस्यमयता के कारण प्रियतर"* होगी। शकुंतला काश्यप-तपोवन के पत्ते-पत्ते में प्राण का अनुभव करती है, प्रत्येक पौदे में हृदय की सत्ता देखती है। तभी तो 'वन-ज्योत्स्ना' उसकी 'भगिनी' है, और मृगशावक उसकी संतान!

"ताद लदावदिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सम्"

अथवा—

ताद, एसा उडअपज्जन्तचारिणी गब्भमंथरा मिअवहू जदा अणुवण्ण सवा होइ तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह"। इत्यादि

कवि शेली की भावना निर्झरों और सरिताओं में—सरिताओं और समुद्र में दांपत्य-प्रेम देखती है। उसका कथन है कि यदि संसार में सभी युगल हैं, तो वह और उसकी नायिका ही इसका अपवाद क्यों? वह कहता है—

"स्रोत सरिताओं से मिलते हैं, सरिताएँ सागर से मिलती हैं; निसर्ग-वायु सदैव के लिए मृदुल भावना से मिल जाता है। विश्व में अकेलापन है ही नहीं। समस्त वस्तुएँ एक दैवी विधान से परस्पर एकात्म होकर मिलती हैं। तब मैं ही तुम्हारे साथ तादात्म्य क्यों न करूँ" *।

कवींद्र रवींद्र के मानस-सितार के तार इतने मार्मिक (Sensitive) हैं कि चर-अचर सजीव-निर्जीव सभी उसमें झंकार पैदा कर सकते हैं—

अरण्येर पर्वतेर समुद्रेर गान,
झटिकार वज्रगीतस्वर,
दिवसेर प्रदोषेर रजनीर गीत
चेतनार निद्रार मर्मर,
वसन्तेर वरषार शरतेर गान
जीवनेर मरणेर स्वर,
आलोकेर पदध्वनि महा अंधकारे
व्याप्त करि विश्व चराचर,

---

* Dear, and yet dearer for its mystery.

* The Fountains mingle with the River
And the Rivers with the Ocean,
The winds of Heaven mix for ever
With a sweet emotion;
Nothing in the world is single;
All things by a law divine
In one spirit meet and mingle·
Why not I, with thine?

पृथिवीर चंद्रमार ग्रहगणपनेर
कोटि कोटि तारार संगीत
... ...
शुनिवे रे आँखि मुदि विश्वेर संगीत
तोर मुखे केमन शुनाय ॥
(प्रभात-संगीत)

ा, यह सारा संगीत उसी एक विश्वव्यापिनी सत्ता
भिव्यंजक है—उसी की तान का प्रतिरूप है—

"काछे हते एके बारे शुनिवरि चाइ
तोर गीतोच्छ्वास ।"

ी और कीट्स दोनों ने 'चरम सौंदर्य'† को ही
थिक तत्त्व माना है, यद्यपि जहाँ शेली की भावना
क सौंदर्य की उपासिका है, वहाँ कीट्स की वासना-
ौंदर्य (Sensuous Beauty) की।
थेल-कोकिल विद्यापति ने भी वासना-जन्य
और प्रेम को पारमार्थिक सौंदर्य एवं प्रेम का
क रूपांतर माना है, और इसी विश्वव्यापी आवेग
-अचर, स्थावर-जंगम सारी सृष्टि को सहानुभूति
खला में उद्वेजित देखा है। निम्नलिखित वर्णन
:—

सखि हे कि कहब किछु नहिं फूर ।
सपन कि परतेख कहए न पारिए
किए नियरे किए दूर ॥ ‡
तड़ित-लता तल जलद समारल
आँतर सुरसरि धारा ।
तरल तिमिर ससि सूर गरासल
चौदिसि खसि पड़ु तारा ॥
अंबर खसल धराधर उलटल
धरनी डगमग डोले ।
खरतर बेग समीरन संचरु
चंचरिगन करु रोले ॥
प्रलय-पयोधि-जले तन झाँपल
ई नहि जुग अवसान ।
के विपरीत कथा पतिआयत
कवि विद्यापति भान ॥

इस पद का व्यंग्यार्थ यह है कि मानव-सृष्टि और मानवेतर सृष्टि—जो संपूर्णतः उस अव्यक्त सत्ता के व्यक्त रूप हैं—सब एक ही सूत्र से बँधे हुए हैं और सभी एक ही 'प्रणयपयोधि' में ग़ोते लगा रहे हैं। फलतः परमात्मा और आत्मा में केवल सान्निध्य ही नहीं, सायुज्य ही नहीं—वरन् तादात्म्य संबंध की अनुभुक्ति हो सकती है, जिस समय कवि टेनिसन के शब्दों में 'ब्राह्म मानव मानवीय ब्रह्म के साथ एक हो जाय'*। वह अवस्था तो वर्णनातीत है और कुछ इसी प्रकार की है—

सखि हे कि कहब किछु नहिं फूर। (विद्यापति)
अविगत गति कछु कहति न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै॥
(सूरदास)

अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही ना जाइ।
गूँगे केरी सरकरा, खाय बैठ मुसकाइ॥
(कबीर)

केसव! कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय इहि तन हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माँहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करत जे ताहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि मानै।
'तुलसिदास' परिहरै तीन भ्रम सो आपुन पहिचानै॥

उपर्युक्त 'अविगत गति' अथवा 'अकथ कहानी' के रहस्य को भिन्न-भिन्न कवियों ने भिन्न-भिन्न रूप दिये हैं। दृष्टांतस्वरूप कबीर ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में और जीवात्मा को प्रेयसी एवं नवोढ़ा वधू के रूप में देखा है—

"कहैं कबीरा ब्याहि चले हैं
पुरिष एक अविनासी"

अथवा—

'सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा'

अथवा—

'बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम'

---

† 'Spirit of Beauty' or 'Ideal Beauty'.

‡ रवीन्द्रनाथ के ... से इसकी तुलना कीजिए—
'... ' इत्यादि।

* When God-in-man is one with man-in-God.

उस 'हरि की दुलहिन' को यह आशंका है कि प्रथम समागम के अवसर पर—

'क्या जाणौं उस पीव सूँ, कैसी रहसी संग'।

विद्यापति ने भी ऐसा ही रूप देखा है—

सुंदरि चललिहु पहु-घर ना।
चहुँ दिसि सखि सब कर धरना॥
जाइतहु लागि परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु-डर ना॥

तथा—

कौतुक चललि भवन कए सजनि गे
सँग दस चौदिस नारी।
बिच बिच सोभित सुंदरि सजनि गे
जेहि घर मिलत मुरारी॥

इन पदों में 'पहु', 'मुरारी' आदि शब्दों के द्वारा कोरी श्रृंगारिकता को रूपांतरित करके रहस्यमय श्रृंगारिकता बना डाला है। विद्यापति के लिए सारा संसार नर-नारीमय हो रहा था सही; किंतु इस संबंध को ऐसी चमत्कारिणी भाषा में उन्होंने व्यक्त किया है, जैसे आकाश में विलीन किसी पक्षी के कलरव की मधुर धारा प्रवाहित होने से उसका अर्थ न जानने पर भी चित्त विमोहित हो जाता है।

यथा—

नीरद बिजुरि बिजुरि सयँ नीरद
किंकिनि गरजन जान।
हरखए बरखए फुल सब साखी
सिखिकुल दुहु गुन गान॥

राधा और कृष्ण के वक्षःस्थल जिस आवेग-तरंग से उद्वेलित हो रहे हैं—'बिजुरि' और 'नीरद' भी उसी से क्षुब्ध हैं!

शेली या कीट्स, अथवा कबीर या विद्यापति द्वारा स्त्रीत्व के आध्यात्मिक आदर्श प्रतिपादित किये जाने के कुछ सूक्ष्म कारण हैं—ठीक उसी तरह जैसे न्यूमैन (Newman) ने लिखा है कि यदि जीवात्मा को परमानंद की इच्छा है, तो उसे अपने अंदर स्त्रीत्व लाना होगा।*

कबीर केवल—

खालिक खलक, खलक में खालिक,
सब घट रह्यो समाइ।

कहकर ही तृप्त नहीं हुए, जब तक उन्होंने इसी को यों नहीं प्रकाशित कर लिया—

"सब घट मेरा साँईयाँ, सूनी सेज न कोइ।"

विद्यापति ने भी जीवात्मा को अभिसारिका बना दिया है—

"आजु मोयँ जाएब हरि समागम,
कत मनोरथ भेल"

यहाँ 'हरि' शब्द की स्थिति ही, तत्क्षण निरे व्यात्मक संसार से हटाकर मानस-मराल को ज्ञान-मोक्ष-मानस की ओर अग्रसर कर देती है। चमत्कार-पूर्ण शब्द-विन्यास कवि का है!

इहलौकिक से पारलौकिक की अभिव्यक्ति और साधन कवियों को प्रिय रहा है—वह है आत्म-सिद्धांतों का सरस प्रतिपादन। उदाहरण लीजिए, कबीर कहते हैं—

"माली आवति देखि कै,
कलियाँ उठीं पुकार।
फूली फूली चुनि लई,
कालिह हमारी बार॥"

सांसारिक क्षणभंगुरता की ही प्रतिपादिका साखी लीजिए—

बाढ़ी आवत देखि कै,
तरिवर डोलन लाग।
हम काटे की कुछ नहीं,
पंखेरू घर भाग॥

विद्यापति ने इस कला का प्रचुरता से प्रयोग [illegible] जिसमें उन्होंने वनस्पतियों और पशु-पक्षियों [illegible] जीव हृदय दे दिया है। यथा—

कंटक माँझ कुसुम परगास।
भमर बिकल नहिं पावए पास॥

द्वंद्व-संसार में जीव की ईश्वरोन्मुख चेष्टा सजीव चित्रण है—

भमरा भेल घुरए सब ठाम।
तोहे बिनु मालति नहिं बिसराम।
रसमति मालति पुनु पुनु देखि।
पिबए चाह मधु जीव उपेखि।
ऊ मधुजीवी तोजे मधुरासि।
साँचि धरसि मधु मने न लजासि।
इत्यादि

*If this soul is to go on into higher spiritual blessedness, it must become a woman, [illegible], however manly you may be among men.

ाथवा—

लखि तरुअर कोटिहि लता
जुवति कत न लेख।
सब फूलमधु मधुर नहीं
फूलहु फूल बिसेख॥
ऊ फूल भमर निन्दहु सुमर
बासि न बिसरए पार॥
जाहि मधुकर उड़ि उड़ि पड़
सेहे संसार क सार॥
सुन्दरि, अवहु बचन सुन
सबे परिहरि तोहि इछ हरि
आपु सराहहि पुन॥

परिहरि तोहि इछ हरि'—इस पद में 'हरि' ाध्यात्मिकता का अभिव्यंजक है।

वा—

मालति! सफल जीवन तोर।
तोर विरहे भुअन भम्मए
भेल मधुकर भोर॥
जातकि केतकि कत न अछए
सबहि हंस समान।
सपनहू नहिं ताहि निहारिए
मधू कि करत पान॥
वन उपवन कुंज कुटीरहि
सबहि तोहि निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरुछए
अइसन प्रेम सरूप॥
इत्यादि।

थवा—

रयनि समापलि फुलल सरोज
भमि भमि भमरी भमरा खोज॥
इत्यादि।

न पदों में यह विशेषता है कि ये मानव-हृदय के भाव को उनकी परिस्थिति में—नहीं-नहीं, ार ब्रह्मांड में प्रतिबिंबित दिखलाते हैं। यदि कृष्ण के लिए व्याकुल हैं, तो उनका सहचर मधुप ों के लिए कुछ कम बेचैन नहीं है। यदि निशा- के समय विरहोन्मुख युगल के कुमुद म्लान ि भवन का चाँद भी सहानुभूति-सूचक 'हाह' भरता है और पीला पड़ जाता है। उनकी विलास-वेला के साथ-ही-साथ नक्षत्रों की विकास-वेला का भी अंत हो जाता है—

हे हरि! हे हरि! सुनिए स्रवन भरि
अब न विलास क बेरा।
गगन नखत छल से अवेकत भेल,
कोकिल करइछ फेरा॥
इत्यादि।

यह है कवि का रहस्यमय विश्व-व्यापक प्रभाव! देखिए, निम्नोद्धत पंक्तियों में मानव-जीवन और वन-स्पति-जीवन का किस प्रकार समानांतर रूप से अन्योन्याश्रय प्रेम चित्रित किया गया है—

सरसिज बिनु सर,
सर बिनु सरसिज,
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन,
तन बिनु जौवन,
की जौवन पिय दूरे॥

भाव और भाषा का एक साथ इतना चमत्कार अन्यत्र दुर्लभ है।

कालिदास की भावना के वशीभूत होकर वसंत-कालीन वृक्षों ने भी परित्यक्ता शकुंतला की स्मृति में उन्मत्त राजा दुष्यंत की आज्ञा मानी। फलतः आम्र की मंजरियाँ और कुरवक की कलियाँ, कोकिल का कलरव और कामदेव का विलास-विप्लव—सभी जहाँ के तहाँ ठिठक गये।*

निष्कर्ष यह कि यदि आप केवल शांतरस के पिपासु हैं और शास्त्रीय आध्यात्मिक तत्त्वों की खोज में निकले हैं, तो शंकराचार्य अथवा कैंट अथवा हीगल

---

* चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका
बध्नाति न स्वं रजः
सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरबकं
तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे
पुंस्कोकिलानां रुतम्
शंके संहरति स्मरोऽपि चकित-
स्तूणार्धकृष्टं शरम्॥
(अभिज्ञान[illegible]

(Kant or Hegal) की शरण लें; और यदि केवल श्रृंगाररस के उपासक हैं तो 'मेघदूत' के यक्ष बन जाइए, अथवा उस कवि के पास जाइए जिसकी नायिका की सूक्ष्म कटि उसके अपने ही श्वास-प्रश्वास के धक्के से पेंडुलम के समान डोलती है।

इत आवत चलि जाति उत,
चली छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे से रही,
लगी उसासनि साथ॥
(बिहारी-सतसई)

विद्यापति की विशेषता यह है कि उन्होंने परस्पर-विरोधी रसों का—'श्रृंगार' और 'शांत' का—प्रणय और भक्ति का सुंदर समन्वय कर दिखलाया है। सर जार्ज ग्रियर्सन के शब्दों में "उनकी मुख्य प्रभा के सूचक मैथिली के वे पद हैं जो राधा और कृष्ण के पारस्परिक प्रेम के रूप में जीव तथा परमात्मा के संबंध को अभिव्यक्त करते हैं।"*

"उक्त रूपक को समझने के लिए यह एक साधारण नियम-सा समझा जा सकता है कि राधा जीव का प्रतीक हैं, दूती प्रचारिका या मध्यस्थ का, तथा कृष्ण आराध्य देव के स्थानीय हैं।"

अब प्रश्न यह है कि क्या उपर्युक्त समन्वय विद्यापति की ही विशेषता है अथवा भक्त कवियों में भी यह दृष्टिगोचर होता है? उस सूर को ही लीजिए जो 'जनमहिं ते भए नैन विहीना'। उनका सुप्रसिद्ध 'नख-शिख' सुनिए—

अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गज वर क्रीडत,
तापर सिंह करत अनुराग।
इत्यादि।

पर जहाँ उपर्युक्त पद्य में श्रृंगार और अनुरक्ति की चरम सीमा है, वहाँ दूसरी साँस में निम्नलिखित पद्यों में शांत और विरक्ति की पराकाष्ठा है—

यह संसार सुवा सेमर ज्यौं, सुन्दरि देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई उड़ि गयी, हाथ कछू नहिं आयौ॥

अथवा—

प्रीति करि काहू सुख ना लह्यौ।
प्रीति पतंग करी दीपक सौं, आपै प्रान दह्यौ।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सौं, सम्पुट हाथ गह्यौ।
सारँग प्रीति करी जो नाद सौं, सनमुख बान सह्यौ।
हम जो प्रीति करी माधव सौं, चलत न कछू कह्यौ।
'सूरदास' प्रभु बिन देखे, दुख नैननि नीर बह्यौ।

कबीर कहते हैं—

"सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेंढ़ी की आस।
ढेंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास॥"

विद्यापति भी जहाँ यह कहते हैं कि—

"माधव की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे॥
पल्लव-राज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने।
कनक-कदलि पर सिंह समारल,
तापर मेरु समाने॥"

वहाँ उसी सुर में यह तान भी छेड़ते हैं—

तातल सैकत बारि बूँद सम,
सुत मिति रमनि समाज।
तोहिं बिसार मन ताहि समर्पिनु,
अब मझु हब कौन काज॥

पुनश्च—

माधव, हम परिनाम निरासा।
तुहु जगतारन दीन दयामय,
अतए तोहर बिसवासा।
आध जनम हम नींद गमायनु,
जरा सिसुकत दिन गेला।
निधुबन रमनि रभस रँग मातनु,
तोहे भजब कओ न बेला॥

अथवा—

वयस, कतह चल गेला।
तोहें सेवइत जनम बहल, तइओ न अपन भेला॥

इसमें संदेह नहीं कि विद्यापति ने स्थूल-रूप वासनात्मक प्रेम और चर्म-सौंदर्य का नग्न

* "His chief glory consists in his matchless sonnets in the Maithili diabect dealing allegorically with the relation of soul to God under the form of love which Radha bore to Krishna."

है। परंतु साथ-ही-साथ हमें यह भी ध्यान में चाहिए कि प्रतिभाशील कवि अपने हृदय के ों से ही मुख्यतः शासित तथा संचालित होता है, मस्तिष्क के शुष्क तर्क से। अरस्तू ने होमर के में लिखा है कि यदि होमर मिथ्यावादी है, तो मिथ्या भी समर्थनीय है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि वासना-प्रधान ौर त्यागप्रधान प्रेम दोनों वास्तव में एक ही सत्ता व्यक्त रूप हैं। यदि ऐसा न हो और ये दोनों परस्पर-व्यवच्छेदक (Mutually exclusive) ो यह भी मानना पड़ेगा कि मानव-सत्ता और -सत्ता—दोनों ही परस्पर संबंधहीन हैं और तथा ब्रह्म में सायुज्य, सान्निध्य या तादात्म्य कोई बंध प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। सारांश के ऐसा विचार न तो द्वैतवाद ही होगा और न वाद ही। इसी पारस्परिक संबंध की ओर दृष्टि र एक शायर ने कहा है—

'ख़ुदा का घर बनाना हो
तो नक़शा ले किसी दिल का।'

तएव जो समालोचक विद्यापति की पदावली को शृंगारमयी चाटूक्ति के रूप में देखते हैं, उन्हें दिमाग़ का ही इलाज कराना पड़ेगा।

रस्य—"मानवीय मानस स्वयं निज के लिए स्वर्ग नरक और नरक में भी स्वर्ग की रचना कर ा है।"

िम्नलिखित पद पर पाठक विचार करें जिसमें कवि का शृंगारिक वर्णन करते हुए भी अंत में अपने की भक्ति का उत्कर्ष प्रकट करता है—

देख-देख राधा रूप अपार
अपुरुब के बिहि आनि मिलाओल
खिति-तल लावनि-सार।
× × ×
कत-कत लखिमी चरन-तल नेओछए
रंगिनि हेरि बिभोरि।
कर अभिलाख मनहि पद-पंकज
अहो निसि कोर अगोरि।

राधा के 'रूप अपार' और 'लावनि-सार' को हृदयंगम करते हुए भी उसकी चरम अभिलाषा यही है कि उनके 'पदपंकज' को गोद में रात-दिन 'अगोरि' रक्खे।

धन्य हैं वे मस्तिष्क, जो ऐसे पद्यों में कोरी वासना का उत्कट स्वरूप देखते हैं!

उसी प्रकार—

"सुन्दरि, चलिलहु पहु-घर ना"

अथवा—

धरब जोगिनियाँ के भेस रे
करब मैं पहुँक उदेस रे।
भनइ विद्यापति मान रे
सुपुरुष न कर निदान रे।

अथवा—

कर धरु करु मोहें पारे,
देव मैं अपरुब हारे, कन्हैया।
सखि सब तेजि चल गेली,
न जानू कोन पथ भेली, कन्हैया।
हम न जाएब तुअ पासे,
जाएब औघट घाटे, कन्हैया।
विद्यापति एहो भनि,
गूर्जरि भजु भगवाने, कन्हैया।

विद्यापति के ऐसे अनेक पद हैं जो ध्वनिकाव्य की उच्चकोटि में रक्खे जायँगे और जिनमें भक्ति और शृंगार की मनोहारिणी एवं कलाधारिणी वेणी-रचना है—'अध्यात्मवाद' और 'कविता' का सुचारु सम्मिश्रण है। विद्यापति ने अपनी कविता में इस उद्देश्य की पूर्ति कर दिखलायी है। और, इसमें संदेह नहीं कि यह देवी भारती के मस्तक का उज्ज्वल तिलक है। "यदि कोई ऐसा समय भी आवे जब हिंदूधर्म का सूर्य अस्त हो जाय और कृष्ण की भक्ति तथा कृष्ण के प्रेम के पद, जो जन्ममरणरूपी व्याधि की औषधि हैं, लुप्त हो जायँ—तो भी विद्यापति के ये पद, जो कृष्ण और राधा के गीत गाते हैं, समानरूप से उज्ज्वल बने रहेंगे।"

और, समय ने सिद्ध कर दिखलाया है कि 'अभिनव-जयदेव' 'कवि-कंठहार' विद्यापति के संबंध में यह चाटूक्ति नहीं रही।

नारी

[श्री० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल']

मेरे एक प्रिय मित्र ने मुझे एक दिन अपने जीवन की निम्नलिखित घटना सुनायी—

उन दिनों मैं कलकत्ते में था। वहाँ युनिवर्सिटी से बी० ए० पास करने के बाद ही मैं आगे न पढ़ सका। घर में एकाएक पिता की मृत्यु हो जाने से मेरे ही ऊपर सारा भार आ गया। मेरे चारों ओर विश्व की प्रचंड भीम तरंगें मुँह बाये घूम रही थीं और उनके बीच में मैं एक नैराश्य-जनित, अन्धकारप्रसूत, छलनामय भयचिंतना में बहा जा रहा था। कहीं कोई सहारा नहीं दिखायी देता था। कुछ समझ में ही न आता था कि क्या करूँ। उन दिनों मैं न जाने किन मायावी छलनाओं से पराभूत होकर अपने संतप्त अभिभूत हृदय को आश्वासित किया करता था। अपने चारों ओर छाये हुए इस अन्धकार में एक दिन मैंने आशा की एक धुँधली अस्पष्ट लघुज्योति-किरण देखी, जब मेरे एक मित्र ने कहा—"भाई केदार! यों तो तुम्हें नौकरी मिलने से रही। जानते हो, आजकल अच्छे-अच्छे मारे-मारे फिरते हैं—नौकरी आकाशकुसुम हो रही है। फिर तुम ठहरे थर्ड डिवीज़नर।"

मैंने कुछ उदास होकर कहा—तो भई, कौन मैं प्रोफ़ेसरी चाहता हूँ। कहीं मामूली तीस-चालीस रुपये की क्लर्की मिल जाय, उसे ही मैं बहुत समझूँगा। डूबते हुए को तिनके ही का सहारा बहुत है।

मेरे मित्र ने कहा—यह भी असंभव है। सालों बेकार बैठोगे। फिर मिले मिले, न मिले न मिले। इसलिए मेरी तो राय है कि तुम मोटर-ड्राइवरी का इम्तिहान पास कर डालो। कुछ ही महीनों में तुम इस योग्य हो जाओगे कि पचास-साठ रुपये कमा सको। यहाँ कलकत्ते में उस हालत में तुम्हें सर्विस मिलने में कोई कठिनाई न होगी।

मोटर चलाने का मैं पहले से शौक़ीन था। कलकत्ते आने के पहले मैं भागलपुर में था। वहाँ मेरे एक मित्र के पास छोटी-सी 'बेबी-आस्टिन' कार थी। उसे वह स्वयं चलाया करते थे। ड्राइवर पीछे बैठा रहता था। मुझे भी उन्होंने सिखा दिया था। मैं बखूबी चलाना जानता था, परन्तु इम्तिहान पास न हो[ने से] कोई नौकरी नहीं मिल सकती थी।

कई दिन तक मैं यही सोचता रहा कि य[ह] करूँ या न करूँ। बी० ए० पास करने के (भले ही थर्ड डिवीज़न में क्यों न हो) मुझे ड्राइवरी करते हुए बड़ी झिझक मालूम होती [थी।] कहाँ तो मैं भावी जीवन के इतने सुनहले स्वप्न [देखा] करता था— मेरा लघु-भार चित्त सदा इन्द्रधनु[ष की] रंगीन लहरों पर उतराता हुआ सुख के ज्योतिर्मा[न...] आबद्ध आसक्त रहता था, और कहाँ यह निगूढ़ परि[स्थिति...] रह-रहकर एक प्रकार की प्रकंपनशील अनुभूति [से] सिहर उठता था, और नियति का यह अद्भुत [...] मुझे एक अलस दिवास्वप्न-सा प्रतीत होता था। [...] मजबूरी थी।

दूसरे ही दिन मैंने मित्र से अपना विचा[र] सुनाया और उन्हीं की सहायता से ट्रेनिंग के[...] चला गया। छः महीने का कोर्स था।

जब मैं पास करके आया, तो देखा कि मित्र [...] ही से नौकरी ठीक कर रक्खी है; मेरे लाइसें[स] भर की देर है। एक मारवाड़ी सेठ के यहाँ मुझे [...] करना था। वेतन साठ रुपये तय हो चुक[ा था।] कलकत्ते आने के एक ही सप्ताह बाद मैं वहीं से [...] के यहाँ चला गया।

सेठ साहब कलकत्ते के इने-गिने करोड़पति[यों में] एक थे। उनकी अवस्था लगभग ४५ वर्ष की [...] मोटे, ठिंगने और गोरे—शौक़ीन आदमी थे [...] विलासिता की श्याम रेखाओं से उनकी मुखश्री [...] रूप से दर्शनीय हो गयी थी। उनकी एक-एक [...] एक-एक भंगिमा से और एक-एक मुद्रा से अप[ने] धन का अटूट गर्व टपकता था। मैंने यहाँ आ[कर देखा] कि यह सेठजी की स्वयं उपार्जित संपत्ति है [...] प्रकार एक महाकवि कोई महाकाव्य लिखकर [...] उसको देखता है, उसी प्रकार सेठ साहब भी [...]

कभी-कभी उद्दीप्त हो उठते हैं। उनकी यह मुद्रा
करों से छिपी न रहती थी। सेठ साहब के पास
ठ मोटरें थीं। शहर के बाहर उनके चार विलास-
ग्रान थे, जहाँ कभी-कभी सेठ साहब जाया करते थे
ौर रात-भर वहीं रहते थे।

मुझे बाद में यह मालूम हुआ कि उन चार उद्यान-गृहों
सेठजी की चार चहेतियाँ हैं। वहाँ उनमें से प्रत्येक
पास भी एक-एक मोटर थी और एक बार जब मैं
ठजी को एक विलास-गृह—जिसका नाम 'प्रेमभवन'
—पहुँचाने गया तो मुझे यह सब हाल वहाँ के
टर-ड्राइवर से मालूम हुआ था। सेठजी तो मुझे
ने के लिए कहकर ऊपर चले गये, परन्तु मैं थोड़ी
तक मुग्ध, चकित और कुछ-कुछ अतृप्त आँखों से उस
ास-उपवन की सुन्दरता देखता रहा। मैंने कलकत्ते
एक-से-एक सुन्दर भवन और आनन्द-उद्यान देखे थे,
न्तु प्रेमभवन को देखकर मैं सचमुच विस्मित हो गया।
पवन की रंगीन सौंदर्य सुषमा से—भाँति-भाँति के
ीन देसी और विलायती पुष्पों तथा लताओं से घिरा
ग्रा वह संगमरमर का विशाल प्रासाद मानों कलकत्ते
हाहाकार और चीत्कार से सर्वथा अपरिचित-सा था।
भा की सचल सजग सजीव किरणें मानों उस
पवन पर इन्द्रजाल—मोहकता का एक अदृश्य परन्तु
नुभूति-गम्य झीना आवरण बुन रही थीं और वहाँ
मौन निस्तब्ध देश को सुदूर के राज्यों की कलालाप-
नि आकर आन्दोलित कर देती थी। मैं मन ही मन
क भय-मिश्रित कुतूहल का—एक प्रकार की आश्चर्य-
पूर्ण अस्पष्टता का अनुभव करते हुए लौट आया।

मुझे नौकरों से यह भी मालूम हुआ कि प्रेमभवन
रहनेवाली, सेठजी की प्रेमिका का नाम मोहिनी है।
सी सुन्दरी वेश्या यहाँ कलकत्ते में दूसरी नहीं है। न
ने कितने रईस उसके लिए लालायित हैं, परन्तु सेठ ने
र हजार रुपये महीने देकर सबका मुँह मार
दिया है। सेठजी के अद्वितीय प्रेमभवन में वह रंभा
ौर उर्वशी की भाँति विलासशिथिल, अलस, मंथर
ीवन व्यतीत करती है। न-जाने कितनी दास-दासियाँ
सकी सेवा के लिए आतुर रहती हैं, और एक बढ़िया
'लिमोज़ीन' कार उसके लिए अलग है जिस पर वह
ेवबालाओं की भाँति कभी-कभी अपने हीरक-आभरणों

में दामिनी-सी दमकती हुई अधरों की इन्द्रधनुषीय
मदिरा में राशि-राशि उन्माद लिये हुए कलकत्ते की
सड़कों पर ऐश्वर्य-कला-सी घूमती है। उसके सौन्दर्य
को देखकर किसकी आँखें नहीं झप जातीं। इस नव-
यौवना के आकर्षण में कलकत्ते का एक-एक कण उलझ
जाता है; इसको देखकर बड़ी-बड़ी सुन्दरियाँ भी
आश्चर्य-स्तंभित हो जाती हैं। रति-फेनिल शरीर की
एक-एक मांस-पेशी से उमड़ती हुई, एक-एक नस से
लहराती हुई जो मद की धारा फूटती है, उसमें उसके
आसपास का संसार उद्दीपन की भाँति डूबने-उतराने
लगता है। उसकी नस-नस में बहते हुए—हिलोरें
भरते हुए उच्छल यौवन में उद्दाम तरंगालोड़ित ज्वार
को रोक सके—ऐसी विश्व में किसकी सामर्थ्य है।
ऐसी है वह मोहिनी—अनंग की सखी, रति की सहोदरा
और अर्धनग्न अवयवों से, अधढके, अधखुले लावण्य
के कुसुमयूथों में परी की भाँति इठलाती हुई मोहिनी!

मुझे यह भी मालूम हुआ कि मोहिनी एक प्रकार से
सेठ साहब का सर्वस्व है। मजाल नहीं कि वह बुला
भेजे और सेठ साहब न आवें, या वह मना कर दे और
सेठ साहब आ जायँ। सेठ साहब इतना कदाचित्
अपनी भाग्य-लक्ष्मी से भी न डरते होंगे। एक बार किसी
प्रसंग पर उसने सेठ साहब को बुरी तरह डाँट बतलायी थी
और आठ दिन तक अपने यहाँ आने नहीं दिया था।
उसके बाद जब सेठ साहब ने न-जाने कितनी अनुनय-
विनय की, तब जाकर कहीं मोहिनी ने उन्हें माफ़
किया था। वह मानिनी, दर्पपूर्ण स्वभाववाली मोहिनी
जिस समय चलती है मानों उस समय धरती काँपती
है, आकाश डोलता है—सौंदर्य-सागर में भयंकर
तूफ़ान चलने लगता है जो मानों संसार के हृदय को
मथ कर फेंक देगा।

मोहिनी की प्रशंसा सुन-सुनकर मैं विस्मित हो
सोचता—क्या वास्तव में वह ऐसी होगी? कलकत्ते में
तो मैंने एक से एक अपूर्व सुन्दरियाँ देखी हैं।

............अकस्मात् एक दिन सेठ साहब ने मुझे
बुलाकर कहा—देवीजी, तुमको अब जाकर प्रेमभवन
में रहना होगा। वहाँ तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। वहाँ
रानी साहब की कार के लिए ड्राइवर की ज़रूरत है।

मैंने कुछ चौंककर कहा—वहाँ साहब!

ने साधारण भाव से कहा—प्रेमभवन में। तुम तो प्रेम-भवन जानते हो ; दो महीने तुम्हें आये हो गये। मुझे भी वहाँ कई दफ़ा ले गये हो।

मैंने कहा—हाँ, जानता क्यों नहीं हूँ। तो मुझे कब जाना होगा ?

सेठ साहब ने उसी भाव से कहा—दोपहर तक चले जाना। अपना सब सामान लेते जाना। वहाँ तुम्हारे लिए कोठरी है। किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है ?

मैंने कृतार्थ-सा होकर कहा—नहीं।

उसी दिन दोपहर को एक दूसरी कार पर अपना सामान लेकर प्रेमभवन की ओर चल दिया।

× × ×

उसी दिन शाम को एक नौकर ने आकर कहा—रानी साहब सैर को जायँगी ; कार ठीक करो।

यहाँ आकर मुझे मालूम हुआ कि मोहिनी को सब लोग रानी साहब ही कहते हैं। स्वयं सेठजी भी उसे रानी साहब कहकर पुकारते हैं। अभी तक रानी साहब की मोहिनी मूर्ति का दर्शन मैंने नहीं किया था ; कुछ ही मिनटों के बाद मैं उस सुन्दरी स्त्री को देखूँगा जो कलकत्ते की सबसे रूपवती वेश्या है—जिसके एक-एक कटाक्ष पर न-जाने कितने चलचित्र इस विराट् शून्य में घूमने लगते हैं, जिसकी एक मन्द मधुर दृष्टि से न-जाने कितने श्रीमानों का हृदय पुलक-विह्वल होकर उच्छल उमंगों में तरंगित होने लगता है। सोचने लगा कि मैं भी उसके साथ कार पर बैठने का सौभाग्यशाली बनूँगा जिसके एक-एक भृकुटि-विलास में न जाने किस रहस्यमय उद्दीपन का गोपन रहता है। मैं उस नवेली अलबेली को देखूँगा—भरनेत्र देखूँगा—जो अपनी मोहिनी माया और जादू की ऐन्द्रजालिक मुग्धता में विश्व को फेनों की भाँति ऊपर-नीचे झुला देती है।

मैं गैरिज से कार निकालकर महल के पास ले आया। कुछ ही क्षणों के बाद एक अप्सरोपम, लवंग-लता-सी लचकदार सुंदरी बलखाती हुई, संगमरमर की गौरता को मर्दित करती हुई, आकर कार के समीप खड़ी हो गयी। यौवन और रूप की उमंग उसके उभरे हुए गुलाबी अंगों से, बरसाती नदी की भाँति, अपनी गुलाकार तरंगों में कल्लोलित हो रही थी।

मैंने अपने विभ्रम के साथ मचलते हुए अदा से सलाम किया और झुककर दरवाज़ा खोल दिया। वह धीरे-धीरे मदभरी चाल से जाकर भीतर बैठ गयीं।

मैंने यथासाध्य विनम्र होकर पूछा—कहाँ चलूँ साहब ?

उसने अपने कलकंठ की कलित झंकार में कहा—समुद्र की तरफ़ चलो।

मैं आकर अपनी सीट पर बैठ गया और मोटर स्टार्ट कर दी।

कोई ढाई घंटे घुमाकर मैं आठ बजे के क़रीब लौटा। सारा महल रंगबिरंगी बिजलियों के प्रकाश में किसी अज्ञात मायापुरी की भाँति आलोड़ित हो रहा था। स्थान-स्थान पर बने हौज़ों और फुहारों पर जब इन रंग-बिरंगी बत्तियों का प्रखर प्रकाश पड़ता था, तो एक अपूर्व रंग-बिरंगे, कल्पना के समान, सजीले, इन्द्र-जाल का सृजन हो जाता था। चारों ओर एक प्रकार की सिहरन से भरी हुई कोमलता छायी हुई थी। मैंने उतर कर कार का दरवाज़ा खोल दिया। रानी साहब तेज़ निगाह से मेरी ओर देखती हुई उतर पड़ीं। उस निगाह में एक विचित्र प्रकार का सूक्ष्मतम व्यंग्य-सा भरा था।

इसके बाद मैंने देखा कि रानी साहब मेरे प्रति विशेषरूप से आकर्षित हो रही हैं। नित्य जब वह मेरे साथ घूमने जातीं तब मुझसे दो-एक बार इधर-उधर की बातें करके मुझे एक प्रकार के उद्दाम उल्लास से भर देतीं। मैं अपने को बड़ा भाग्यवान्, बड़ा सौभाग्यशाली और क्रांतिपूर्ण समझने लगता। कभी-कभी मेरा हृदय कल्पना-पथ पर बहुत आगे बढ़ जाता और मायामरीचिका के क्षितिज के उस पार नक्षत्रलोक में नवोदित तारिका-सी लालसा मेरे मन को तीव्रतम आघातों से कुछ-कुछ अपरिचित मनोवेग से भर देती थी। मेरा अंतर्वासना की पिपासा से व्याकुल हो उठी थी, और मैं एक प्रकार के भ्रमजाल में पागल-सा भटकने लगा।

धीरे-धीरे रानी साहब मुझसे सभी तरह की बातें करने लगीं। मेरा घर कहाँ है, घर में कौन-कौन है, कितने भाई हैं, कितनी बहनें हैं, कितने दिन से कलकत्ते में हूँ, कहाँ पढ़ता था—आदि बातें वे मुझसे बड़े ही नवनीतोपम अनुराग से पूछतीं
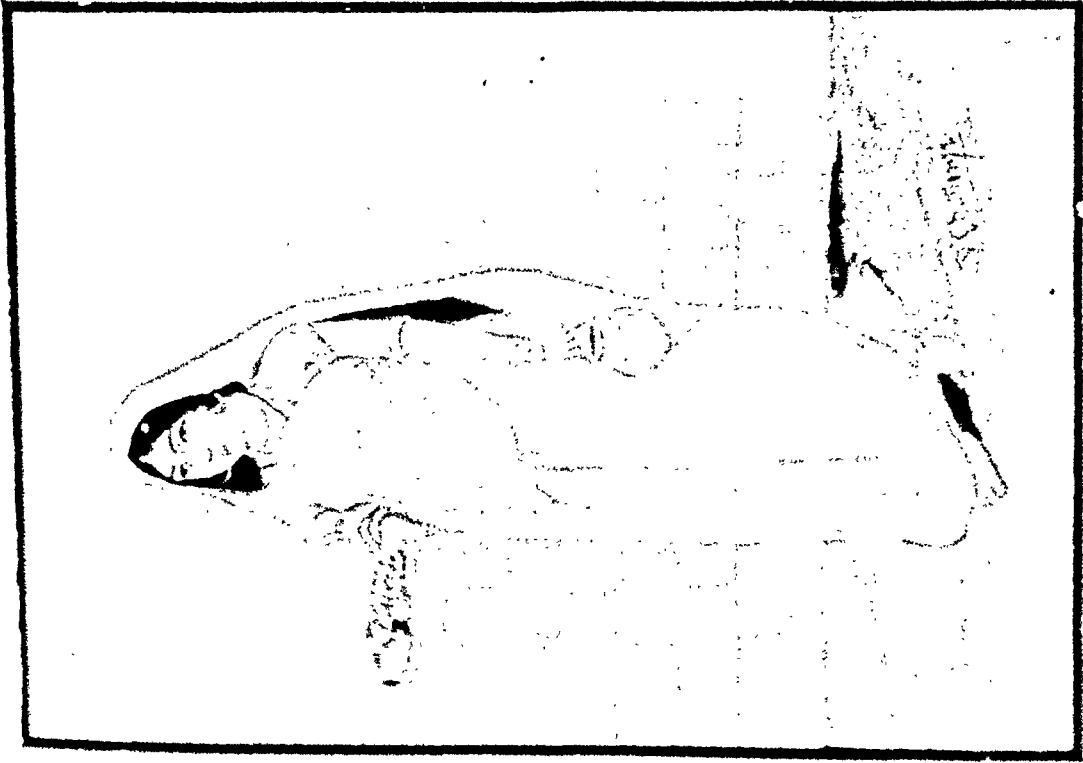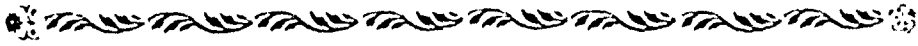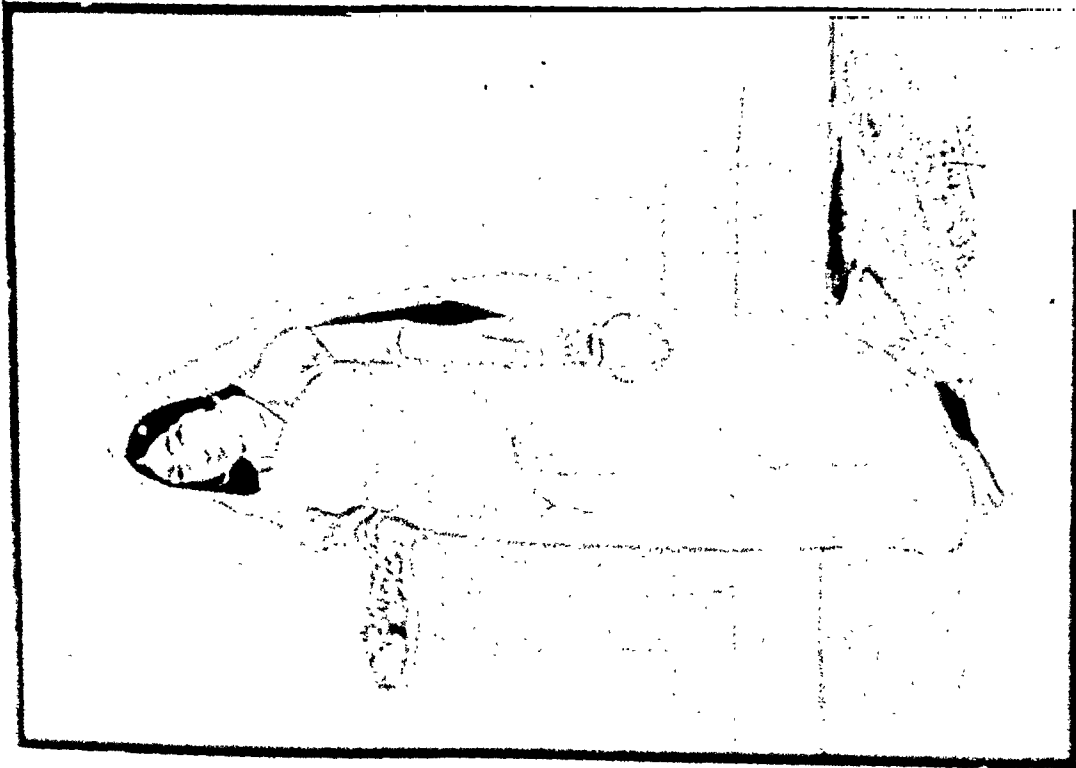
मंदिर-गामिनी
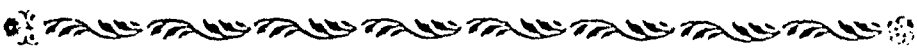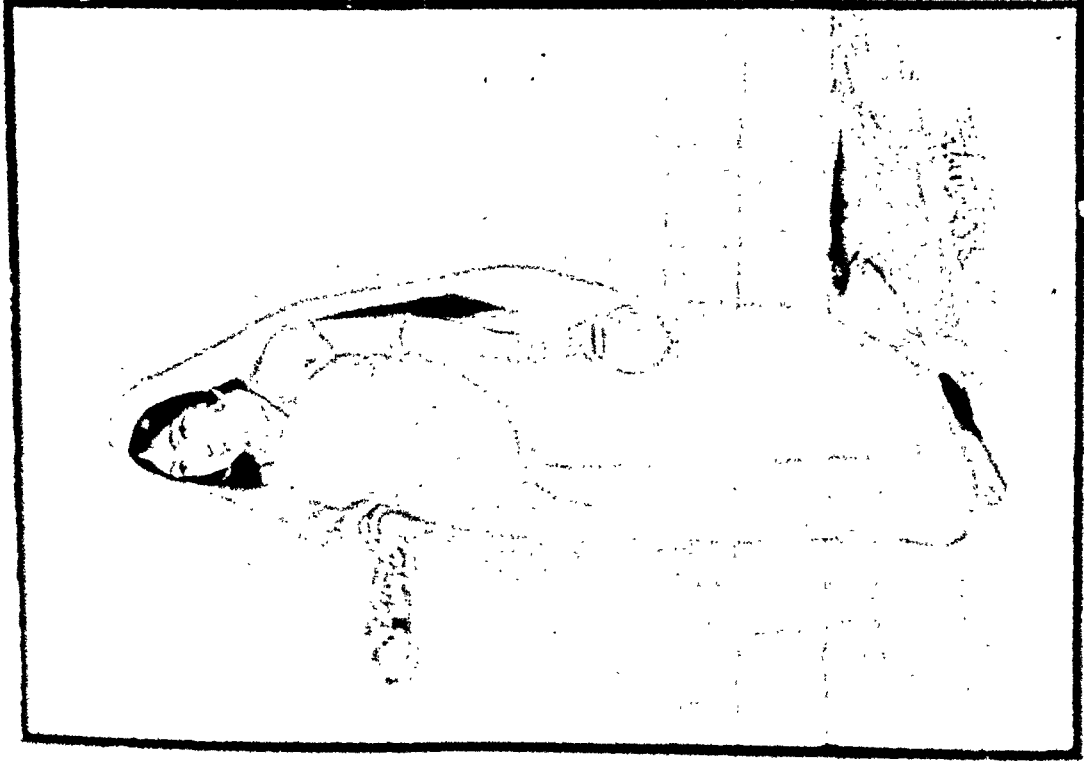
मेरे लाल !

मंदिर-गामिनी
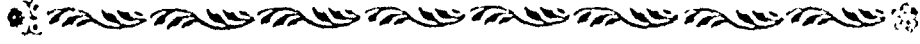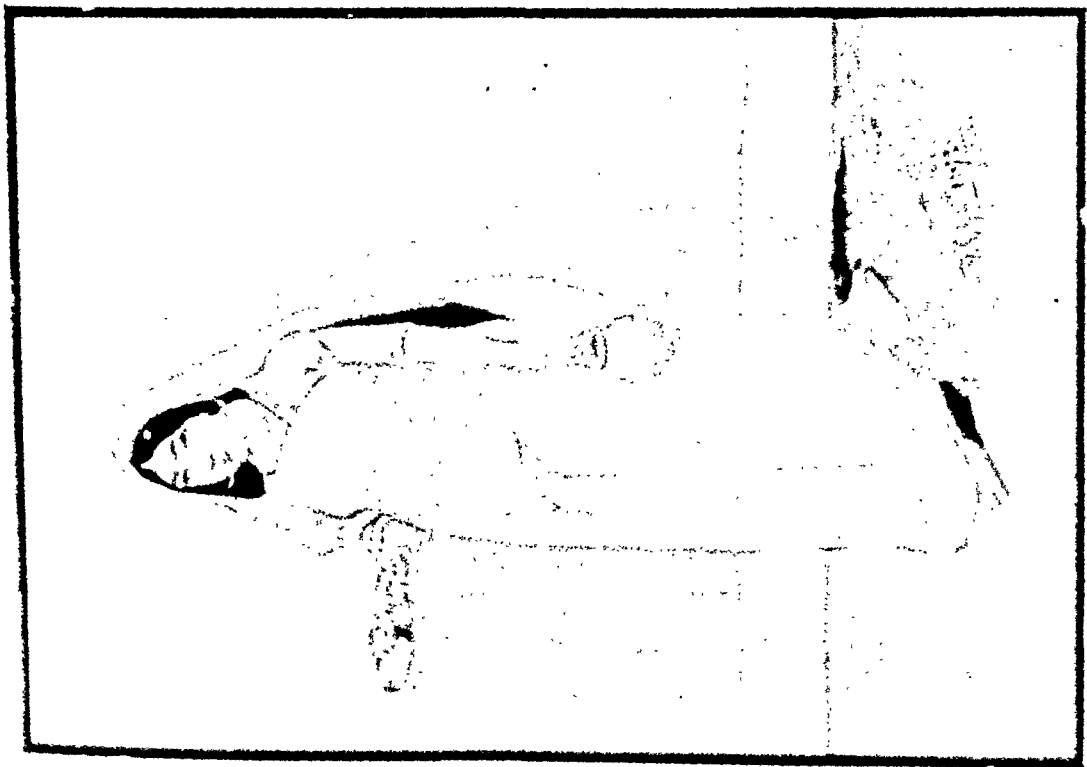
मेरे लाल !

मंदिर-गामिनी

मेरे लाल !

मंदिर-गामिनी
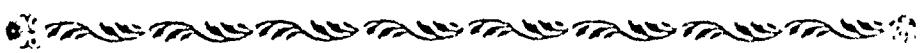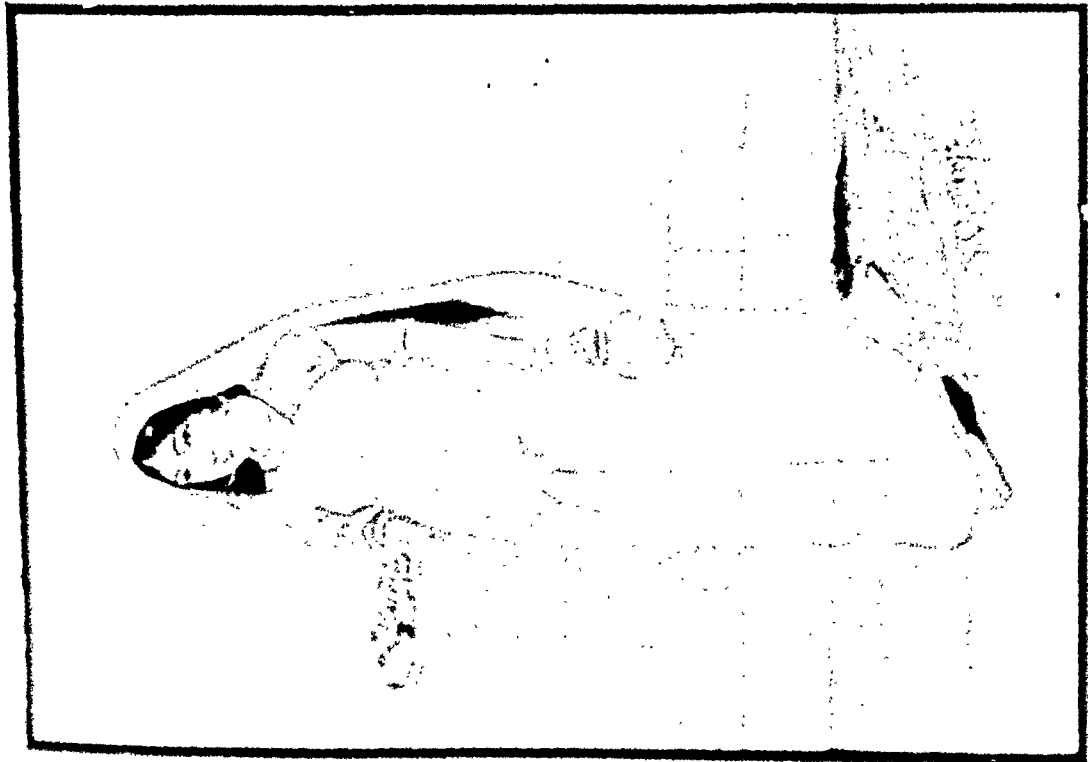
मेरे लाल !

मंदिर-गामिनी

मेरे लाल !

ले आया और उधर से एक गुस्ताख़ी और करता आया, यानी रानी साहब के बिना माँगे ही आइसक्रीम सोडा की बोतल, बरफ़, पान आदि भी लेता आया। पहले तो कुछ संकोच हुआ कि शायद रानी साहब नाराज़ हों। परंतु फिर एक अदृश्य प्रेरणा ने आकर हृदय में बहुत-सा साहस भर दिया। रानी साहब ने कहा—तुम भी पिओ। मैंने नम्रतापूर्वक मगर कुछ धृष्टता से मुस्कराते हुए कहा—"मैं पी आया हूँ, आप पीजिए।" उन्होंने कुछ न कहकर नज़ाकत के साथ गला सहलाते हुए पी लिया। फिर मुझे गिलास देकर पान खा लिये। इसके बाद हम लोग ऊपर आरचेष्ट्रा में गये। खेल शुरू होने में अभी दस-बारह मिनट की देर थी। मैं कुछ हटकर दूसरे बाक्स पर बैठा था। सोचता था कि वह स्वयं या तो मेरे पास चली आयेंगी या मुझे अपने पास आने के लिए कहेंगी। परंतु उन्होंने ऐसा न किया। मैं वहीं बैठा रहा।

एक सामाजिक फ़िल्म था। कथानक दुःखान्त था। हमारे यहाँ फ़िल्मों में दुःखान्त कथानक कम देखने में आते हैं। परंतु यह दुःखान्त ही कथानक था। पारिवारिक जीवन के सुंदर अलौकिक ज्योतिर्मय प्रेम के दृश्य दिखाये गये थे। भाई-बहन का सुंदर प्रेम दिखाया गया था, परंतु दुःखान्त होने के कारण बहुत ही कारुणिक दृश्य हो गया था। लोग करुणा में विगलित-से हो गये। मैंने देखा, मोहिनी भी बड़े मनोयोग के साथ फ़िल्म देख रही है। क्षण-क्षण में उसके चेहरे पर एक नया भाव आता था और चला जाता था। मैंने स्पष्ट देखा कि वह कुछ उदास हो गयी है और उसके मतवाले गुलाबी नेत्र भर आये हैं। सहसा मैंने देखा, उसके नेत्रों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं..................

जब खेल ख़तम हुआ तो हम लोग चले आये। मैं जान गया कि यह बड़ी भावुक है और इसका हृदय संवेदनशील है। उस दिन मैं फ़िल्म की बातों पर और उसके उस विचित्र भंगिमा पर ही विचार करता रहा। किंतु वह गुलाबी कल्पनाएँ एक बार झलक दिखाकर फिर दिमाग़ में न आयीं।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कोई ख़ास बात नहीं हुई। उसका व्यवहार वैसा ही बना रहा और वह उसी प्रकार मायामरीचिका से विलसित अपने ज्योतिर्द्वार पर मुझे ठहराये रही। मैं भी लालसाजनित आकांक्षा-प्रसूत आघातों को सहता हुआ वहीं खड़ा रहा। मैं इस स्वयंदूतिका के आमंत्रण की प्रतीक्षा कर रहा था। सहसा उन्हीं दिनों मुझे अपनी छोटी बहन के पति का तार मिला। वह मृत्युशय्या पर था और अन्तिम दर्शन के लिए मुझे बुलाया गया था। मैं अपनी इस बहन को बहुत प्यार करता था। हम दो-तीन भाइयों के बीच में यही बहन थी और मुझसे दो ही तीन साल छोटी थी। उसकी रुग्णता का तार पाकर मैं अत्यंत व्याकुल, चिन्तित और क्षुब्ध हो उठा। मैंने सोच लिया कि हर हालत में अभी इसी क्षण पटने के लिए रवाना हो जाऊँगा। तुरंत ही अपना सामान ठीक करके ऊपर रानी साहब के पास आज्ञा लेने चला गया। मुझे देखते ही उन्होंने अपने कलकंठ की मधुर झंकार में कहा—कहो, क्या काम है ?

रानी साहब इस समय कुछ उदास-सी थीं। उनके प्यारे-प्यारे लावण्यपूर्ण मुख पर करुणा की एक प्रियतम धारा उमड़ रही थी। मैंने कहा—"सरकार, मैं इसी क्षण जा रहा हूँ। पटने से मेरी बहन की बीमारी का तार आया है। आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। इसके बाद यहाँ से सीधे सेठ साहब से मिलता हुआ स्टेशन निकल जाऊँगा। यह देखिए तार।"

रानी साहब ने उत्सुक और कुछ उत्कंठित-सी होकर तार मेरे हाथ से ले लिया। मैंने देखा, तार पढ़कर वह और उदास हो गयीं। बोलीं—इससे तो मालूम होता है कि ज़्यादा बीमार है !

मैंने उद्विग्न और व्याकुल होकर कहा—'हाँ सरकार, तार से तो यही जान पड़ता है। देखिए, ईश्वर मालिक है। मेरे भाग्य में अन्तिम दर्शन बदा है या नहीं, कौन जाने।' यह कहते-कहते कब मेरे नेत्रों की कोरें भर आयीं, यह मैं न जान पाया। परंतु मैंने कुछ आश्चर्य से देखा कि उनकी आँखें भी डबडबा आयी हैं।

मैंने कहा—अच्छा सरकार, मुझे हुक्म दीजिए। मैं जाऊँगा।

उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे ठहरने के लिए कहा और भीतर से सौ-सौ रुपये के दो नोट लाकर मेरे हाथ में रख दिये। मैंने कुछ विस्मित-सा होकर कहा—'सरकार, मैं अपनी तनख़्वाह सेठ साहब से जाकर ले लूँगा। यहाँ लेने का मुझे हुक्म नहीं है।'
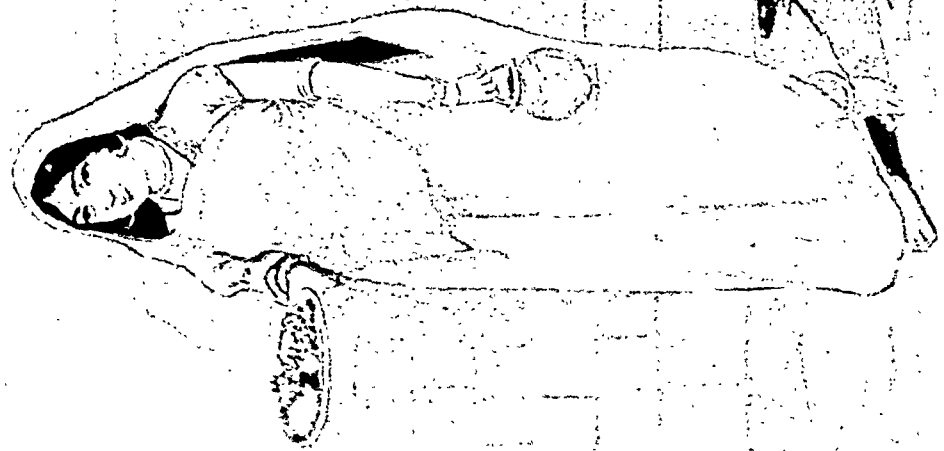
मंदिर-गामिनी

मेरे लाल !

श्री० नलिनीमोहन सान्याल एम्० ए०, भाषातत्त्वरत्न
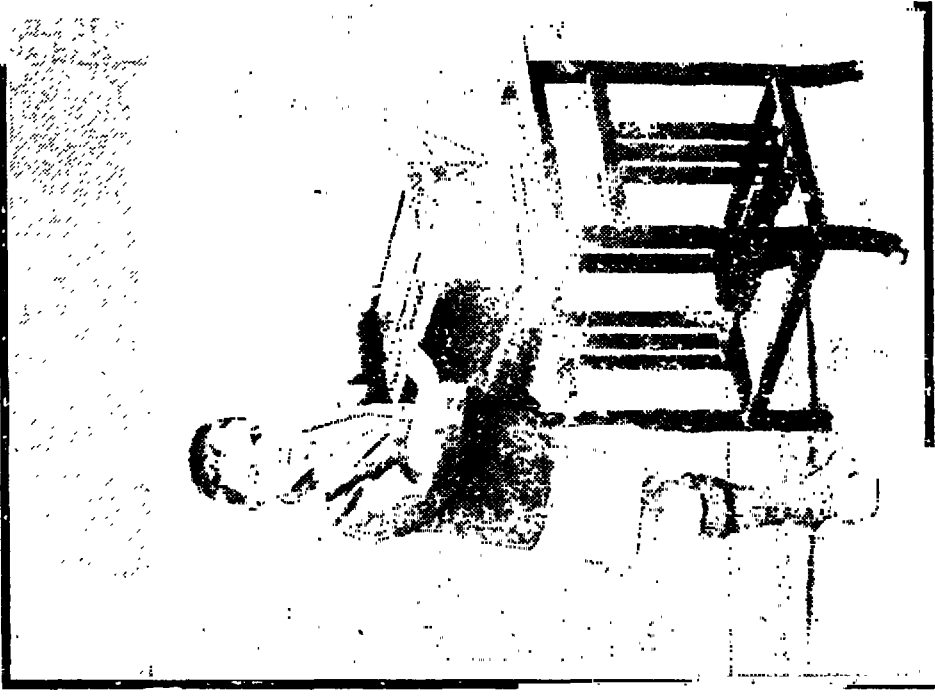
श्री० हेमचंद्र जोशी (अवस्था ८ वर्ष)

पिछले नवंबर में प्रयाग-विश्वविद्यालय में संगीत-स्पर्द्धा हुई थी। उसमें तबला और हारमोनियम बजाने में प्रथम पुरस्कार आपको मिला है। आप रायसाहब श्रीमान् सत्यानंदजी जोशी बी० ए०, एम्० बी० ई० के सुपुत्र हैं। ईश्वर आपको दीर्घायु करे।
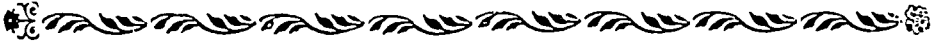
मोहिनी की आँखों में सचमुच पानी भरा हुआ था और वह पानी भी कितना आकर्षक, मोहक और सुंदर था। उसने भरे हुए कंठ से कहा—केदार, (उसने शायद आज ही पहलेपहल मेरा नाम लिया था, अन्यथा वह ड्राइवर कहकर ही बुलाती थीं) तुम लोग समझते हो कि मैं वेश्या हूँ ; वेश्याओं के हृदय नहीं होता। परंतु तुम्हें मालूम होगा कि अधिकांश वेश्याएँ जन्म से ही वेश्या नहीं होतीं। उनमें से अधिकांश इस जीवन के पहले एक दूसरा ही जीवन बिताकर आती हैं। उनका भी एक इतिहास होता है—उनके साथ भी कुछ अतीत की मधुरतम, स्नेहस्निग्ध और प्रेमोज्ज्वल स्मृतियाँ होती हैं। उस संसार को, जिसमें होकर वे इस मायाजगत् में आती हैं, वे एकदम भूल नहीं जातीं। उनके हृदय में भी मधुर विशुद्धतम जीवन की कोमल स्निग्ध भावनाओं का स्वाद लेने की अभिलाषा उत्तेजित होती है। तुम्हें सुनकर शायद विश्वास न हो ....मेरे भी एक भाई था। बिलकुल तुम्हारे ही समान उसका मुँह था—ऐसा ही डीलडौल और चेहरा—ऐसी ही गढ़न—ऐसी ही बोली, ओह, वह मुझे कितना चाहता था, और मैं उसे कितना प्यार करती थी...कहते-कहते मोहिनी की आँखों से दो बूँद आँसू टप-टप कर वहीं ज़मीन पर गिर पड़े।

मैं मुग्ध भाव से उसकी ओर देख रहा था, परंतु मेरा सारा हृदय टीसों से छिद-छिदकर ऐसा प्रतीत होता, मानो लहूलुहान हो गया था।

उसने उसी भाव से कहा—मैं दुष्टों के प्रलोभनों से उत्तेजित और अपने मद में चूर होकर, उस संसार को छोड़ कलकत्ते की ऐश्वर्यपूर्ण सड़कों पर रहकर यह चकाचौंध करनेवाला भोग-विलास का अलस जीवन बिताने लगी; परंतु क्या मैं अपने उस स्नेह-प्रमुदित अप्रास और माधुर्य स्निग्ध जीवन को भूल सकी ? जब कभी भाई-बहनों की याद आ जाती है, कलेजे में एक अजीब कसक—एक तीव्रतम आघात होता है। तुमको देखकर मैं वास्तव में बहुत चंचल हो उठी थी। बिलकुल मेरे भाई की प्रतिमूर्ति-सी दिखाई देते हो। तुमको देखकर ज्ञात होता है जैसे ... है। तुम्हारे साथ, मेरी किशोरावस्था की वे चंचल लीलाएँ एक बार फिर सजीव और साकार हो उठती हैं। इसीलिए कभी-कभी इच्छा होती है कि लगातार तुम्हें देखती ही रहूँ। न-जाने क्यों इससे हृदय को एक प्रकार की शीतलता का बोध होता है।......जिस दिन से मैंने तुम्हें देखा है, उसी दिन से मैं तुम्हारे प्रति जिस प्रेम और मधुर भावना-जनित आकर्षण का अनुभव कर रही हूँ, मेरा हृदय ही जानता है।

मैं अवाक् खड़ा था। निष्कंप दीपशिखा की भाँति मेरा हृदय जल रहा था। मेरे हृदय पर जैसा भयानक और घातक आघात लगा, उसकी ज़रा तुम कल्पना तो करो। मेरा हृदय उसी आवेग की तीव्रता से, उसी आघात की प्रचंडता से अभिभूत होकर क्षत-विक्षत-सा हो गया था, और मैं वहीं खड़ा रहा। मेरे हृदय का पाप, मेरी आत्मा का अभिशाप मुझे खाये डालता था। मैंने एक बार उसे देखा—मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे वह देवज्योति की भाँति आकाश में ऊपर उठी जा रही है, और मैं—मैं तो.........................

सहसा उसने फिर कहा—तुम जाओ। तुम्हें देर हो रही है। अभी सेठ साहब के यहाँ भी जाना होगा। ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। ये रुपये तुम्हारे ख़र्च के लिए हैं। परमात्मा चाहेगा तो तुम्हें तुम्हारी बहन अच्छी हालत में मिलेगी।

मैंने दोनों नोट जेब में रख लिये और न-जाने किन अज्ञात, अलौकिक भीम भावनाओं से प्रसूत प्रेरणा से प्रेरित होकर उसके दोनों पैर पकड़ लिये। मैंने देखा, इसमें एक प्राणसंचारी आलोक है जो मेरी आत्मग्लानि को—तिमिराच्छन्न मानस-पटल को उज्ज्वल कर रहा है। उसने हड़बड़ाकर मुझे उठाकर खड़ा कर दिया......

इसके बाद ही मैं वहाँ से चला आया और फिर आज तक लौटकर वहाँ नहीं गया। न-जाने दिल में कैसी कचट उठती है—कैसी मसोस पैदा होती है, जब इन बातों की याद आ जाती है। फिर बहन के अच्छे हो जाने के बाद भी लौटकर वहाँ जाने की हिम्मत न पड़ी। न-जाने क्यों अंतर्दाह की उग्र ज्वाला उधर जाने ही नहीं देता। अपने पाप की—अपने मलिन विचारों की भीम भावना—अपने कलुष की स्मृति, हृदय के एक-एक कंपन को आत्मदाह के आवेग-प्रवेगों से भर देती है।

कहानी समाप्त करते-करते उसने कहा—बात यह है

कि हम इतने पतित और नीच हो गये हैं कि हमारी आँखें वासना और कलुष की ही खोज में चारों ओर घूमती हैं। किसी बालिका को अपनी ओर कुछ आकर्षित होते देखकर हम यही समझते हैं कि यह हमारे ऊपर मोहित होकर हमसे प्रेम की भिक्षा माँग रही है। हम अपने ही विचारों की मलिनता और पाशविकता का प्रतिबिम्ब चारों ओर देखते हैं। और, ये वेश्या-बालिकाएँ, जो पतन और व्यभिचार के भयंकर पतन में फेनों की भाँति डूबती-उतराती हैं, इतनी हेय और भावशून्य नहीं होतीं जितनी हम समझते हैं। वे अपने रमणीत्व को नहीं विसर्जित कर सकतीं। वे भी कभी-कभी एक सहोदर भाई, एक स्नेहशील माता-पिता और एक प्राणपुत्र के लिए व्याकुल हो उठती हैं। वे भी कभी-कभी एक सती के समान किसी पुरुष के चरणों पर अपनी एकमुखी भावनाएँ बिखेर देना चाहती हैं। पर हमारा सदाचार, हमारा पुरुषत्व, हमारा विवेक इतना मुर्दा और प्राणहीन हो गया है कि हम अपनी अंतर्वासना की पिपासा में ही उद्भ्रान्त रहते हैं। संसार में हमसे कोई इसके अतिरिक्त और भी किसी प्रकार की आशा कर सकता है, यह हम सोच ही नहीं सकते। हमारी यही दुर्बलता हमें जिस नारकीय खड्ड में तोपे दे रही है, उसमें हम न-जाने कब तक पड़े सड़ते रहेंगे।

मैंने देखा—कहते-कहते जैसे वह कुछ उत्तेजित हो उठा।

धूल के हीरे

(१)

देख न पाया प्रथम चित्र त्यों अन्तिम दृश्य न पहचाना ;
आदि-अन्त के बीच सुना मैंने जीवन का अफ़साना।
मंज़िल था मालूम न मुझको और पन्थ का ज्ञान नहीं ;
जाना था निश्चय इससे चुपचाप पड़ा मुझको जाना।

(२)

कितनों की लोलुप आँखों ने बार-बार प्याली हेरी ;
पर साक़ी अल्हड़ अपनी ही इच्छा पर देता फेरी।
हो अधीर मैंने प्याली को थाम मधुर रस पान किया ;
फिर देखा, साक़ी मेरा था, प्याली औ' दुनिया मेरी।

(३)

मैं रोता था, हाय विश्व हिमकण की करुण कहानी है ;
सुन्दरता जलती मरघट में, मिटती यहाँ जवानी है।
पर बोला कोई कि ज़रा मोती की ओर निहारो तो ;
दो दिन ही हो सही, किन्तु देखो कैसा यह पानी है।

(४)

इस उर की यह कसक आह ! तेरे उर का आनन्द हुई ;
इन आँखों की अश्रुधार ही तेरे हित मकरन्द हुई।
तुम कहते कवि मुझे, किन्तु रे, मैं अबोध यह क्या जानूँ !
इतना ही है ज्ञात कि मेरी व्यथा उमड़कर छन्द हुई।

[श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर' बी० ए० (आनर्स)]

पाश्चात्य चित्रकला में हास्य

[पं० सुधाकर दीक्षित 'सुधा' एम्० ए०]

'प्रेम क्या है ?'—इस जटिल प्रश्न का उत्तर इङ्गलैंड के लब्धप्रतिष्ठ कवि शेली ने इस प्रकार दिया था—"प्रेम क्या है ? जो जीवित है, उससे पूछो कि जीवन क्या है ? उपासक से पूछो कि उपास्य देव कौन है......" आज ललित-कला-सम्बन्धी एक विषय पर विचार प्रकट करने के पूर्व वैसा ही प्रश्न मेरे सम्मुख है। कला क्या है—इसके उत्तर में शेली के शब्दों की पुनरुक्ति करना धृष्टता तो होगी, किन्तु मैं विवश हूँ। बात यह है कि मानव-हृदय का ललित कला से वही सम्बन्ध है जो जीवन का जीव से, उपासक का उपास्य से। यह कहना कि कला हमारे हृदय का जीवन और हमारे जीवन का हृदय है, अत्युक्ति नहीं—सत्य है। कला नाना आवेगमय मानव-प्रकृति का सजीव चित्रण है—मानव-जीवन-व्यापी सुख-दुःख आशा-आशङ्का, हास्य-करुणा आदि का भावपूर्ण अभिव्यञ्जन है। जीवन के पल-पल-परिवर्तित प्रदेश में, क्षण में आविर्भूत और क्षण में तिरोहित होनेवाले अगणित दृश्य अत्यन्त रहस्यपूर्ण होते हैं। उनके रहस्य को समुचित शब्द और ताल-स्वर आदि में अथवा प्रकाश और छाया के यथार्थ अनुपात में चित्रित करना कलाविद् ही का काम है। धन्य है वह प्राणी, जो कला-संयुत है, क्योंकि वही सभ्य नाम का अधिकारी है। कलाविहीन मनुष्य और पशु में 'पुच्छ-विषाण' के अतिरिक्त और भेद ही क्या ?

धर्मोपदेश के पश्चात्
(चित्रकार—हरमैन)

यह सर्वमान्य सत्य है कि ललित-कलाओं में चित्रकला का स्थान बड़े महत्त्व का है। यदि कवि मनुष्य के जीवनव्यापी पाप-पुण्य और उत्थान-पतन को प्रकृतिमय रूप देकर अङ्कित कर सकता है, यदि वह हृदय के रोमाञ्चकारी वासनाओं और प्रलयंकर लालसाओं को हृदय ही की वाणी में व्यक्त कर सकता है—तो चित्रकार भी अपनी जादूभरी तूलिका से उन उन्मत्त आवेगों को उत्तप्त रंगों में रँगने की क्षमता रखता है। किन्तु यह काम कुशल कलाविद् का है, किसी नौसिखिये अथवा अधकचरे का नहीं। जिस प्रकार भावहीन रसहीन तुकबन्दी का रचयिता कवि कहलाने का अधिकारी नहीं, उसी प्रकार भावव्यञ्जनाविहीन स्थूल शरीर का चित्रकार सच्चा कलाकार नहीं कहा जा सकता। अन्य-

...ना के वास्तविक रूप को मूर्त शरीर से उद्दीप्त कर ...ने की शक्ति ही कलाकार की सफलता की एकमात्र ...ौटी है । उदाहरणार्थ, यदि नूरजहाँ के किसी चित्र ...े उसके विकट वासनामय घात-प्रतिघातपूर्ण जीवन ...झलक नहीं मिलती, यदि उसके चित्रलिखित कपोलों ...गुलाबीपन में उसके हृदय की उद्दाम लालसा— ...-प्रवृत्ति की लेलिहान ज्वाला नहीं जलती, तो ...नूरजहाँ—प्रणय-मरीचिका और विलास-विभीषिका ...की शिकार—मानिनी उन्मादिनी साम्राज्ञी नूरजहाँ ...चित्र नहीं, अपितु उसके शरीर-मात्र का चित्र है । ...चित्र का कर्ता चित्रकार तो है, किन्तु सत्य पूछो तो ...कार नहीं—स्रष्टा नहीं । वह उन श्रेष्ठ शिल्पियों की ...में नहीं आ सकता जिनकी तुलना सर फ़िलिप ...र्नी ने ईश्वर से की है ।

लाफ़िंग ब्वाय
(हँसता हुआ लड़का)
(चित्रकार—विलासक्वीज़)

चित्रकला मनोभावों का प्रकटीकरण है । सच्चा चित्रकार वही है जो मानवात्मा के मार्मिक रहस्यों का यथातथ्य चित्रण कर सके । सौभाग्य से भारतवर्ष में ऐसे कुशल कलाविदों की कभी कमी नहीं रही । यहाँ तो चिरकाल से कला के उच्चतम आदर्श—भाव-व्यञ्जना और आत्मिक तत्त्वों के उद्घाटन—की प्रतिष्ठा होती आयी है । किन्तु भारतीय चित्रकला की एक विशेषता सदा रही और बंगाल के शिल्पियों की शैली में अब भी विद्यमान है । यह विशेषता है उसका आदर्शवाद । हमारी पुरातन सभ्यता अध्यात्म-प्रधान तथा त्याग और शांति के भावों से परिपूर्ण रही है । इसी कारण हमारी कला में वासना के उद्दाम वेग के स्थान पर शांत और स्निग्ध जीवन का चित्राङ्कण बन पड़ा है । वस्तुतः आदर्शवादी भारतीय चित्रकार अपने विषय की वास्तविकता की ओर ध्यान नहीं देता, वह किसी वस्तु को उसके वास्तविक रूप में अङ्कित न करके एक कल्पित आदर्श की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है । उसकी सात्विक रचनाएँ भौतिक शरीर की अवज्ञा करके दैवी संज्ञा के विकास का साधन बनती हैं । स्थानाभाव के कारण यहाँ भारतीय चित्रकला के सम्बन्ध में विशेष न लिखना ही उचित है । यह स्वतंत्र लेख का विषय है ।

उपर्युक्त प्राचीन पद्धति का अनुकरण करनेवाले इने-गिने वर्तमान भारतीय चित्रकारों की कृतियाँ तो अध्यात्मपूर्ण होती हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त भारत में कितने ही ऐसे चित्रकार हैं जो न तो आदर्शवादी हैं और न वस्तुवादी; न प्राच्य, न पाश्चात्य । उनके चित्रों में साधारण वैयक्तिक चरित्र-चित्रण तक नहीं बन पाता, भावुक रूप-रेखाओं अथवा रहस्यपूर्ण रंगों द्वारा असीम स्पर्श की झलक दिखाना तो दूर की बात है । इन चित्रकारों के 'कारनामों' की विस्तृत आलोचना तो फिर कभी की जायगी, परन्तु यह कहे बिना हृदय नहीं मानता कि ये सज्जन भारतीय चित्रकला के रूप में व्यापार करते हैं; कला के कोमल गले पर छुरी फेर कर पैसा और ख्याति बटोरते हैं । अफ़सोस! 'यहाँ शिकवा भी करें हैं वहाँ से स्वाद उलटा ।'

कला को उसके महत् आदर्श से गिराकर अधोगति के गहन गर्त में घसीटनेवाले इन चित्रकारों की कृतियाँ विकृत तथा भावभंग होती हैं। उनमें न तो किसी उच्च आदर्श का चित्रण होता है, और न वास्तविकता का स्वाभाविक प्रस्फुटन। अतीन्द्रिय-जगत् से सम्बद्ध आदर्शवाद को छोड़िए, इन चित्रों में तो वस्तुवाद और इन्द्रियवाद की भी समुचित व्यञ्जना नहीं मिलती। उधर वास्तविकता के भावात्मक चित्रण में पाश्चात्य शिल्पी हमसे कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं। पाश्चात्य चित्रों को देखकर हमें वहाँ के चित्रकारों की कल्पनाशक्ति, प्रदर्शनशक्ति, भावुकता और विचारशीलता का क़ायल होना पड़ता है। लियोनार्डो, वाट्स, टर्नर, रेनाल्ड्स आदि के चित्र विश्वविख्यात हैं। उन्हें देखकर कौन मन्त्रमुग्ध-सा नहीं रह जाता। इन चित्रों की लोकप्रियता का कारण जातीय भावों का प्रकटीकरण नहीं, मानवीय हृदय की व्यञ्जना है। अतएव जब तक मनुष्य मनुष्य है, जब तक उसके हृदय में शृंगार-हास्य-करुणा आदि रसों का सञ्चार है, तब तक ये चित्र अवश्य सर्वप्रिय रहेंगे। मनुष्य को अध्यात्म-जगत् के लोकोत्तर-भाव आकर्षित करें या न करें, किन्तु मनुष्यता के नाते मानवीय हृदय की भावनाएँ उसे आकर्षित किये बिना न रहेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मानव-हृदय के स्वर्ण-रश्मि-रञ्जित प्रदेश से उद्गीरित होकर जीवन को सरस बनानेवाले विभिन्न रसों में हास्यरस का स्थान उपेक्षणीय नहीं है। यदि शृंगार से सिंचित होकर जीवनलता हरित-पल्लवित होती है तो हास्य उसे कुसुमित कर देता है, हँसते हुए सुमनों से सजा देता है। यदि शृंगार हिमांशु-चुम्बित सुहागरात है, तो हास्य प्रफुल्ल प्रभात! अबोध शिशु की न जाने कैसी मुस्कान से लेकर प्रमदा की चञ्चल चुटीली चुहल तक—हास्य के कितने ही प्रकार हैं। उन सब क्षणिक विभूतियों में एक ऐसा सुन्दर सम्मोहन विद्यमान है कि कुतूहलपूर्ण कविहृदय उन्हें सार्थक और विशिष्ट रूप देने को लालायित हो उठता है। किन्तु और रसों के प्रदर्शन की अपेक्षा हास्य का चित्रण कहीं अधिक कठिन है; क्योंकि कला के क्षेत्र में विशुद्ध हास्य और आक्रोशपूर्ण व्यंग्य के बीच की विभाजक रेखा अत्यंत सूक्ष्म है। जहाँ बाल-भर का अन्तर हुआ कि आकृति विकृत हुई। विशेषतः स्त्री के चित्र को हास्य की सुंदरता से चित्रित करना तो बहुत ही कठिन है। केवल लियोनार्डो
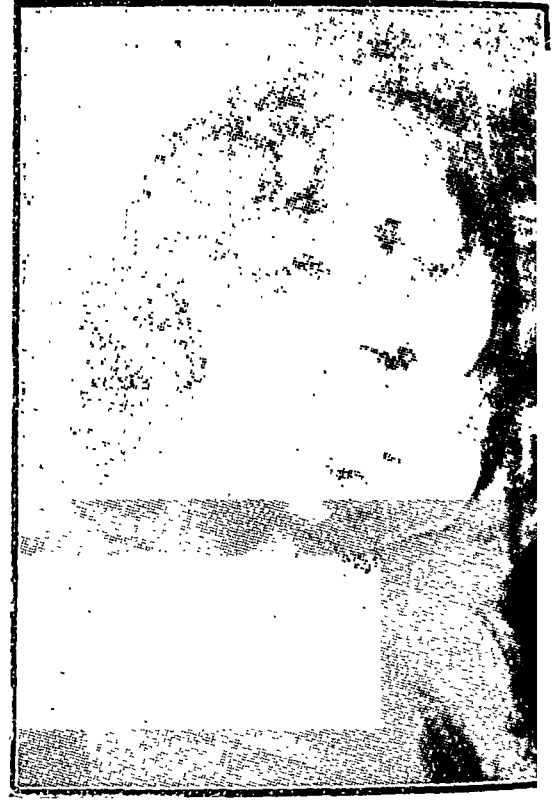
मुस्कान

(चित्रकार—कोरीगियो)

डा विंसी-जैसे प्रतिभाशाली चित्रकार ही इस का[...] पर विजयी हो सकते हैं। उक्त चित्रकार का अमर 'ला गियोकोंडा' इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। [...] परम-रूप-सी, लावण्य-मण्डिता गियोकोंडा [...] अपनी कुन्द-दन्तावली नहीं दिखाती; वह [...] मुस्काने ही को है। गगन में स्वर्णरञ्जित अरु[...] छायी हुई है, सुदूर वन में पक्षी कलरव कर र[...] अभी प्रभात तो नहीं हुआ, किन्तु पौ फटने ही [...] ऐसी मुस्कान—उज्ज्वल, चञ्चल, उमंगपूर्ण—ला [...] कोंडा के अधर पर खेल रही है, आँखों में नृत्य कर [...] है। लियोनार्डो ने जिस असीम भावना को मुस्कान में भर दिया है, उसे शब्दों की सीमा में [...] प्रकट कर सकता है।

पाश्चात्य चित्रकारों में हास्य-रस का सबसे [...] शिल्पी हालैण्ड-निवासी फ़्रांज़हाल्स था। मून[...] हाल्स ने अपने व्यक्तिगत जीवन को हँसकर [...]

उसका जीवन ही हास्यमय था, फिर क्यों न वह हास्य का रहस्य समझ उसे चित्रित करता। उसके हास्य-सम्बन्धी चित्रों में से 'लाफ़िंग कैवेलियर'-नामक चित्र की बड़ी प्रशंसा है। इस चित्र में चित्रित हास्य खिलखिलाहट नहीं, खीझ नहीं—एक ऐसा

लाफ़िंग कैवेलियर
(चित्रकार—फ़्रांज़हाल्स)

है जो देखते ही क्षण हँसी में परिणत होने-वाला है। चित्र को ध्यान से देखने पर कैवेलियर की पहले और क्षण-भर बाद की मुखाकृतियाँ दर्शक के दृष्टि-पथ के ऊपर से निकल जाती हैं। वास्तविकता का भ्रम होने लगता है।

रेम्ब्रैंट भी हास्य का सफल चित्रकार था। उसके द्वारा हास्य में आत्मसन्तुष्टि का पावन प्रकाश पाया जाता है। रेम्ब्रैंट ने एक प्रख्यात चित्र में अपने-आपको नवविवाहिता पत्नी के साथ अङ्कित किया है। यह चित्र आज तक ड्रेस्डन की रायल गैलेरी में सुरक्षित है। सुना जाता है कि इस चित्र में प्रणय के उल्लास और प्रणयी हृदय के हास्य का अनुपम प्रदर्शन हुआ है। एक कलाप्रेमी अमेरिकन टूरिस्ट ने एक बार कुतूहलवश इस चित्र में

विदूषक
(चित्रकार—मीसोनियर)
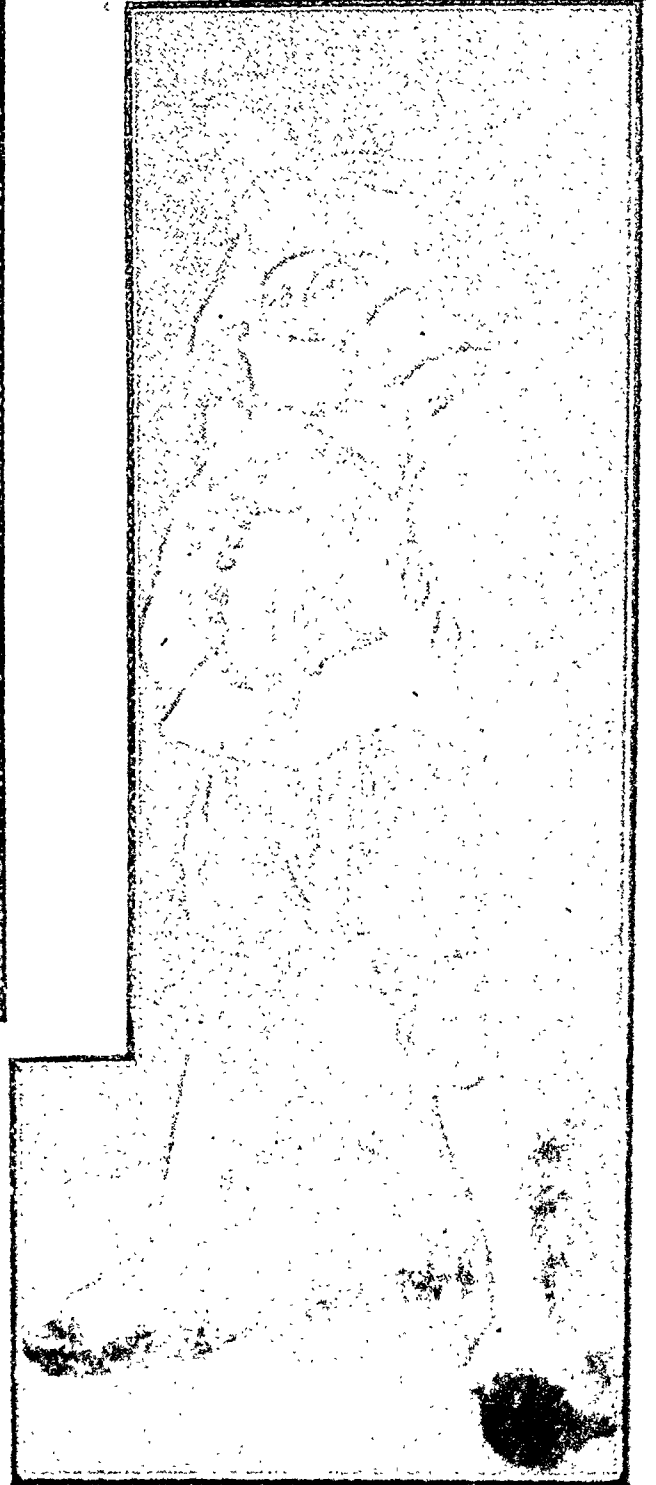
खिखित रेम्ब्रेंट के मुख का निचला भाग रूमाल से छिपा दिया, तो उस चित्र के नेत्र हँसते हुए से जान पड़े; नेत्र छिपा देने पर कपोल और ओठ प्रसन्नता से स्फुरित होते दिखे; पुनः जब उसने सारा मुखमण्डल छिपा दिया तो अधखुली चिबुक पर ही मुस्कान खेलती दिखायी दी। भावात्मक चित्रण की पराकाष्ठा हो गयी! दुर्भाग्य से रेम्ब्रेंट के जो चित्र जन-साधारण को प्राप्त हैं, उनमें से कोई इस कोटि का नहीं है।

अच्छी कहानी—में पादरी साहब को हँसते देखकर हँसी रोकना कठिन हो जाता है। न जाने उस कहानी में ऐसी कौन-सी बात है, जिसे सुनकर चर्च का धर्मनिष्ठ पादरी हँसते-हँसते पागल हुआ जा रहा है।

पाश्चात्य चित्रकारों के हास्य-सम्बन्धी चित्रों का विशेष वर्णन करने से लेख का कलेवर बढ़ जाने का भय है, इसलिए इसे समाप्त करता हूँ। अन्त में देशी चित्रकारों से केवल यह प्रार्थना है कि वे अपनी कृतियों

'एक अच्छी कहानी'
(चित्रकार—हर्मैन)

हास्य के अन्य सफल चित्रकारों में मीसोनीर, मुरिल्लो, विलासक्वीज़, हर्मैन, कोरीगियो आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मीसोनीर द्वारा चित्रित हास्य में उल्लास अथवा हर्ष की अपेक्षा मक्कारी की मात्रा अधिक पायी जाती है। मुरिल्लो और विलासक्वीज़ ने बालप्रकृति का विशेष अध्ययन करके हँसते हुए बालकों के चित्रण में आशातीत सफलता प्राप्त की है। हर्मैन खिलखिलाती हुई हँसी का चित्रकार है। उसके विख्यात चित्र "Une Bonne Historie"—एक

में भावव्यञ्जना और रस-परिपाक का ध्यान रक्खें। चित्रों में चाहे भारतीय पद्धति के अनुसार आदर्श की सृष्टि की जाय चाहे पाश्चात्य शैली के अनुकूल वास्तविकता की, परन्तु उनमें मनोरञ्जकता और प्रभावोत्पादकता के साथ भावव्यञ्जना का होना अनिवार्य है। भावविहीन चित्र प्राणविहीन कङ्काल है, और कङ्काल रचकर कब कौन अमर हुआ है! जिसे भगवती का प्रसाद-निर्माल्य मिला हो, उसकी तो बात और है।

योरपीय अर्थ-संकट का अश्व

दूरवीक्षण-यंत्र और नक्षत्र-मंडल

[पं० अंबिकादत्त उपाध्याय एम्० ए०, शास्त्री]

पाश्चात्य देशों ने विज्ञान में विलक्षण उन्नति की है ; ऐसे-ऐसे अपूर्व एवं आश्चर्यजनक यंत्रों का आविष्कार हुआ है कि कठिन-से-कठिन कार्य निमेषमात्र में अनायास सिद्ध हो जाते हैं । वहाँ के वैज्ञानिकों ने आकाश-पाताल एक कर दिया है । विशेषता यह है कि सहस्रों प्रतिभाशाली विचक्षण वैज्ञानिक निरंतर इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं—इसलिए कि इन यंत्रों में अधिकाधिक उन्नति हो । वे न तो कभी हताश होते हैं, और न कभी कृतकृत्य ही होकर बैठ जाते हैं ।

भारतवर्ष के प्राचीन महर्षियों ने सूर्यमंडल और नक्षत्र-मंडल का पूर्ण अध्ययन किया था ; वे ऐसे उत्तम ग्रंथ लिख गये हैं, जिनके सिद्धांतों के द्वारा आज भी मुख्य-मुख्य ग्रहों और नक्षत्रों की चाल एवं रूपरेखा का पूरा पता लग जाता है । हमारे ज्योतिर्विदों के द्वारा बताये हुए समय पर सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण का होना इसका ज्वलंत और स्थूल प्रमाण है । इनके समय में एक मिनट का भी अंतर नहीं पड़ता ।

किंतु संतोषी भारत कृतकृत्य होकर बैठ गया ; उसने आगे बढ़ने की चेष्टा न की । इसका परिणाम यह हुआ कि चंद्रमा के मध्य में दृष्टिगोचर होनेवाले चिह्न को कुछ लोग कलंक मानने लगे और कुछ लोग समुद्र का कीचड़ ; कुछ लोग हरिण समझने लगे तो कुछ लोग पृथ्वी की छाया । और कहाँ तक कहें, कुछ महापुरुषों का तो यह विश्वास है कि [illegible] तरुणियों के कटाक्षपात का घाव है । [illegible] अब हमें इन कपोलकल्पित कल्पनाओं की [illegible] की आवश्यकता नहीं रह गयी है । हम अपने [illegible] से देख सकते हैं कि सूर्य-चंद्र आदि ग्रह [illegible] हैं, कितनी दूर हैं और इनकी क्या-क्या [illegible] हैं । दूरवीक्षण-यंत्र के द्वारा करोड़ों मील [illegible] हस्तामलक के समान प्रतीत होते हैं । [illegible] बिना प्रयास के जाना जा सकता है । [illegible] अन्वेषण करने के अनंतर भी अब तक निश्चित रूप से यह पता नहीं लग सका है कि इस परमोपकारी दूरवीक्षण-यंत्र का जन्मदाता कौन है । तेरहवीं शताब्दी में बेकन (Roger Bacon)-नामक वैज्ञानिक ने इसके कुछ मूल सिद्धांत संसार के सामने रक्खे । इसके सिद्धांतों के आधार पर अनेक वैज्ञानिकों ने तन-मन-धन से यंत्र के आविष्कार का प्रयत्न किया और वे क्रमशः अग्रसर होते गये । सन् १५५८ ई० में डेला पोर्टा (Della Porta) ने एक साधारण यंत्र बनाया, और उसी यंत्र का नक़ल दूसरे वैज्ञानिक करने लगे ।

आज से सवा तीन सौ वर्ष पूर्व, सन् १६०८ ई० में, लिपरशे (Lippershay)-नामक वैज्ञानिक ने एक छोटी-सी दूरबीन का आविष्कार किया । इस यंत्र के द्वारा दूर की चीज़ें साफ़ और बड़ी दिखायी देने लगीं । बस, मार्गप्रदर्शन की आवश्यकता थी, मार्ग पाते ही वैज्ञानिक लोग उस ओर झुक पड़े और नयी-नयी बातें निकालने लगे । दूसरे ही साल गैलीलिओ ने (Galileo) ने ढाई इंच व्यास का यंत्र तैयार किया । इस यंत्र के द्वारा बहुत दूर की वस्तुएँ साफ़-साफ़ दिखायी पड़ती थीं ।

सन् १६६६ ई० में योरप के परम प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन (Newton) ने परावर्तक यंत्र (Refracting telescope) का आविष्कार किया और इसकी सहायता से 'गुरु' नामक ग्रह के आसपास भ्रमण करनेवाले तारों का और शुक्र के शृंगों का साक्षात्कार कर लिया । इससे वैज्ञानिकों का बहुत उत्साह बढ़ा और वे तन्मनस्क हो इस यंत्र को सर्वांगपरिपूर्ण एवं निर्दोष बनाने में प्रवृत्त हो गये ।

इस अविचल प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि सन् १७८९ ई० में विलियम् हर्शेल (William Harschel) ने एक विशाल यंत्र तैयार कर डाला । इसका व्यास ४८ इंच का था । इसकी शक्ति से वैज्ञानिक जगत् चमत्कृत हो गया । साधारण मनुष्य के नेत्र में प्रकाश के ग्रहण करने की जितनी शक्ति होती है,

उसके ४०,००० गुना प्रकाश के आदान की शक्ति इस यंत्र में थी। उस समय के बड़े-बड़े काँच के व्यापारियों ने निर्दोष काँच बनाने का बड़ा प्रयत्न किया, पर सफल न हो सके। इतने बड़े काँच को उपयुक्त और दोषरहित बनाना उनकी शक्ति के बाहर था। इस कारण इस परमोपयोगी कार्य में बड़ी बाधा पड़ी।

आधी शताब्दी के पश्चात्, सन् १८४५ ई० में, लार्ड रोसे (Lord Rosse) ने ७२ इंच व्यास का दूरवीक्षण-यंत्र बनाया। इसमें बड़ी शक्ति थी। इसी प्रकार का एक दूसरा यंत्र ब्रिटिश-कोलंबिया की वेध-शाला (Observatory) में स्थापित किया गया। इसका संचालन विद्युत्-शक्ति से होता था; इससे बड़ी सुविधा हो गयी।

सन् १९२० ई० में कैलिफ़ोर्निया की विलसन-वेध-शाला (Wilson Observatory) में एक विशाल यंत्र की स्थापना हुई। यह यंत्र आश्चर्य-जनक है। इसका व्यास १०० इंच का है। तौल में यह यंत्र २७,००० मन का है। इसके द्वारा २०,००,००० नक्षत्रों का यथावत् रूप दिखायी देता है; उनकी चालढाल का पूरा पता लगता है। अमेरिका के ओहिओ (Ohio) प्रांत में एक बड़े सुंदर यंत्र की स्थापना सन् १९२९ में की गयी। यद्यपि इसका व्यास केवल ६९ इंच का है, तथापि इसका काँच इतना निर्दोष है कि यह १०० इंच व्यासवाले परावर्तक यंत्र (Reflector) का काम देता है।

अब तक संसार में सबसे बड़ा १०० इंच व्यासवाला यंत्र है, परंतु थोड़े ही दिनों में एक ऐसा यंत्र तैयार हो जायगा जो इससे चौगुने प्रकाश को ग्रहण कर सकेगा। और, जितनी दूर के तारागण इस यंत्र के द्वारा देखे जाते हैं, उससे दुगनी दूरी के तारे इस नवीन यंत्र से देखे जायँगे। इसका व्यास २०० इंच का होगा। काँच के स्थान में 'Quartz' (क्वार्ट्ज़) नामक धातु का प्रयोग इस यंत्र में किया जायगा, इसलिए ताप की अधिकता और अल्पता का प्रभाव नहीं पड़ेगा और दूर-दूर की वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान हो सकेगा। इसके द्वारा ज्योतिर्विद् लोग सूर्य का प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन कर सकेंगे। परावर्तक यंत्र के द्वारा इस प्रकार का अध्ययन असंभव था। इस यंत्र से १७६२२,००,००,००,००,००,००,००,००० मील दूर की वस्तुएँ दिखायी देंगी और १,६०,००,०० स्थूल नक्षत्रों का अध्ययन किया जा सकेगा। परंतु वैज्ञानिक लोग यह अनुमान करते हैं कि इतना होने भी लगभग ४०,००,००,००,००० सूक्ष्म नक्षत्रों का कुछ भी ज्ञान न हो सकेगा।

इस दूरवीक्षण-यंत्र के संबंध में पाश्चात्य वैज्ञानिक जगत् आश्चर्यजनक उन्नति कर रहा है; यदि इस प्रकार उन्नति के पथ पर चलता रहा, तो अतुलित शक्ति के यंत्र तैयार हो जायँगे एवं कदाचित् इस अनंत विश्व का कोना-कोना ढूँढ़ा जा सकेगा। अमेरिका के प्रसिद्ध परिकल्पक (Designer) डॉक्टर जी० डब्ल्यू० रेचे (Dr. G. W. Retchey) का कथन है कि यदि इसी प्रकार विज्ञान और यंत्रकला (Engineering) में उन्नति होती रही, तो थोड़े ही दिनों में ३० इंच व्यास का यंत्र तैयार हो जायगा और २५ वर्षों के पश्चात् १,००० इंच व्यास का यंत्र बनाया जा सकेगा ८०००००,००,००,००,००,००,००,००,००० मील दूर के तारे इस महायंत्र के द्वारा स्पष्ट रूप से दिखायी देंगे।

अब तक जितनी दूरबीनें तैयार हुई हैं उनसे इस अनंत विश्व की आश्चर्यजनक विभूतियों का बहुत कुछ पता लगाया जा चुका है; परंतु उनका यथार्थ ज्ञान तो उस विश्वस्रष्टा विश्वेश्वर को छोड़ और किसी को हो नहीं सकता। विज्ञान अधिकाधिक अनुसंधान करता जायगा और विराट् भगवान् अपने अंग-प्रत्यंग बढ़ाते जायँगे। इस विश्व का पूर्ण स्वरूप विज्ञान से नहीं जाना जा सकता; हाँ, परम ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) से अवगत हो सकता है। योगिजन भी योगबल से बहुत कुछ जान सकते हैं। परंतु वैज्ञानिकों ने इन महायंत्रों का आविष्कार कर संसार का अंधकार नष्ट कर दिया है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने ग्रहों और नक्षत्रों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। दूरवीक्षण-यंत्र के द्वारा किस प्रकार के अन्वेषण किये गये हैं, इनका संक्षेप में दिग्दर्शन करा देना यहाँ आवश्यक एवं प्रासंगिक प्रतीत होता है।

सूर्य

सूर्यलोक भूलोक से ९,३०,००,००० मील की दूरी पर है। इसका व्यास लगभग ८६,००० मील है। इस

...ी का व्यास केवल ७,९१८ मील है, अतः सूर्य ...ी से १३,००,००० गुना बड़ा है। सूर्य में पृथ्वी से ...गुना अधिक आकर्षण-शक्ति है। इसके ऊपर का ताप- ...६,००० डिग्री सेंटिग्रेड है।

...भौतिक विज्ञानवालों ने बताया है कि इस विश्व में ... प्रकार के भौतिक तत्त्व हैं। इनमें से ६१ तत्त्व सूर्य ...ैस अथवा वाष्प के रूप में विद्यमान हैं। जिस ...ार के धब्बे चंद्रमा पर दिखायी देते हैं, उसी ...ार के धब्बे सूर्य में भी हैं। सूर्यास्त होने के समय ...मात्र दिखायी देते हैं। इनमें से कोई-कोई तो ...,०००० मील तक लंबे और ७५,००० मील तक ...े हैं।

सूर्य के ताप और प्रकाश की मात्रा आश्चर्यजनक है। ...१०००००००००,००,००,००,००,००,००,००,००० ...बत्तियाँ एक साथ जलाने पर जितना प्रकाश ...ता है, उतना प्रकाश सूर्य में है। यह प्रकाश सूर्य के ...रों ओर फैलता है। २०,००,००,००,००,००,००० ...ों की शक्ति के बराबर ताप सूर्य से एक-एक मिनिट ...े निकलता है। इस लोक में दूरी के कारण सूर्य ...थोड़ा ही ताप और प्रकाश पहुँच पाता है, परंतु ...सी से यहाँ की ऋतुओं में कितना अधिक परिवर्तन ...ता है। इसी ताप से यहाँ का जल वाष्प बनकर ..., कुहरा और वर्षा के रूप में दृष्टिगोचर होता ...। इसी के ताप से यहाँ के वातावरण में उष्णता ...ती है और बड़े-बड़े अंधड़ आते हैं। कोयला, ..., चाँदी, सोना आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के खनिज- ...र्थ सूर्य के ही ताप से बनते हैं। सूर्य की किरणों ...ी के द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों को ग्रहण कर चित्र- ...िचित्र पुष्प एवं फल के रूप में अपनी अनुपम ...शोभा प्रकट करते हैं। यही किरणें विषमयी कार- ...बोनिक एसिड गैस को कारबन और आक्सिजन-नामक ... तत्त्वों में विभक्त कर देती हैं। कारबन ... द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, और ...जन से जीवधारी जीवित रहते हैं।

...स प्रकार से ताप और प्रकाश देने के कारण सूर्य का ...ार प्रत्येक सेकेंड में ११,२८,००,००० मन कम हो जाना ...। इस हिसाब से ३५,६३,००,००,००,००,००,००० ...वर्ष में कम होता है। इस बड़ी संख्या को देखकर कुछ लोगों ने सिद्ध किया है कि सूर्य धीरे-धीरे ठंडा होता जाता है। इस कथन को सुनकर कुछ लोग इस चिंता में पड़ गये हैं कि यदि यही क्रम रहा, तो समय पाकर सूर्य ठंडा हो जायगा और तब ताप और प्रकाश के न मिलने पर जड़ और चेतन सभी नष्ट हो जायँगे। परंतु उन दूरदर्शियों को विशेष चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सूर्यदेव ७,५०,००,००,००,००० वर्षों से इसी प्रकार उदारता प्रकट करते आ रहे हैं, और इतनी क्षीणता पर भी उनकी जो शक्ति और प्रताप है, उसे उनकी ओर एक बार ताक-कर अथवा जेठ की दोपहरी में कमरे से बाहर पैर निकालकर समझ सकते हैं। इस क्षीणावस्था में भी ५४००००००००००,००,००,००,००,००,००,००,००० मन के लगभग सूर्य होंगे। और, इसी क्रम से यदि ह्रास होता रहा तो आज से कहीं १६,००,००,००,००,००,००० वर्ष में सूर्य का अभाव हो सकेगा।

चंद्र

चंद्र हम लोगों से २,३७,५०० मील की दूरी पर है। यह हमें चमकता हुआ दिखायी देता है, पर यह स्वयं-प्रकाश नहीं है। यह सूर्य से प्रकाश लेकर हमें प्रकाश दिया करता है। दूरवीक्षण-यंत्र के द्वारा चंद्रलोक का पूर्ण अध्ययन किया गया है।

इसका व्यास लगभग २,१६० मील का है। यह लगभग २१६००,००,००,००,००,००,००,००,००० मन तौल में है। यह अपने धुरे पर इस प्रकार घूमता है कि इसका एक ही भाग हमें सदा दिखायी देता है; दूसरे भाग का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। जो भाग हमें दृष्टिगोचर होता है, उसका तल बहुत ही ऊँचा-नीचा है। उस पर असंख्य पर्वतश्रेणियाँ हैं, जिनमें से कुछ तो ५०० मील तक लंबी हैं। ज्वालामुखी पहाड़ों की संख्या भी कम नहीं है, और ये बहुत ऊँचे-ऊँचे भी हैं। इनमें से कुछ की ऊँचाई तो २५,००० फ़ुट तक है। इनमें जो काले-काले धब्बे दिखायी देते हैं, वे मैदान हैं; परंतु वे मैदान इस भूलोक के हरे-भरे मैदानों के समान नहीं हैं। वहाँ तो हरियाली का नाम भी नहीं है। सबसे बड़ा मैदान ७०० मील लंबा है।

इस लोक में समुद्र नदी और झील का होना तो दूर रहा, एक बिंदु जल मिलना भी कठिन है। मेघों के दर्शन ही नहीं होते; जल आवे तो कहाँ से! इस सबका परिणाम यह है कि वहाँ न तो कोई मनुष्य है, और न पशु-पक्षी—कीट-पतंग। एकदम सन्नाटा छाया रहता है।

यहाँ ३४४½ घंटों की एक रात और इतने ही घंटों का एक दिन होता है। रात से दिन होने में और दिन से रात होने में भूलोक के समान यहाँ घंटों की सन्ध्या नहीं होती। जिस प्रकार बिजली का बटन दबाते ही झट से प्रकाश हो जाता और अंधकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार इस लोक में निमेष-मात्र में रात्रि और दिवस का परिवर्तन हो जाता है। सर्दी और गर्मी का भी यही क्रम है।

मंगल

यह ग्रह भी अन्य ग्रहों के समान भ्रमण करता रहता है। कभी तो यह पृथ्वी के बहुत समीप आ जाता है, और कभी दूर चला जाता है। कभी तो यह पृथ्वी से ३४,६०,००,००० मील पर रहता है, और कभी २,४६,००,००,००० मील दूर चला जाता है। इसका व्यास ४,२१५ मील का है और तौल में यह लगभग १६५७५०,००,००,००,००,००,००,००,००० मन का है। यह ६८७ दिन में एक बार सूर्य की प्रदक्षिणा कर डालता है।

इस लोक में वायु का संचरण होता है, परंतु यह बहुत ही सूक्ष्म है। यहाँ भूलोक के समान ही ऋतु-परिवर्तन होता है, परंतु प्रत्येक ऋतु दुगने समय तक अपना अस्तित्व रखती है। प्राणियों के निर्वाह के लिए परमावश्यक निखिल पदार्थों के रहते हुए भी यहाँ जीवों के अस्तित्व का अभाव है। विचक्षण वैज्ञानिकों का कथन है कि इस लोक में एक भी जीवधारी नहीं है।

बुध

बुध-ग्रह भ्रमण करते-करते कभी तो पृथ्वी से ५,००,००,००० मील पर आ जाता है, और कभी १३,६०,००,००० मील दूर हो जाता है। इसका व्यास केवल ३,१०० मील का है और तौल में यह लगभग ७१०८०,००,००,००,००,००,००,००,००,०००मन का ठहरेगा।

यह सूर्य के चारों ओर इस ढंग से घूमता है इसका एक भाग तो सदा सूर्य के सम्मुख रहता है दूसरा भाग अंधकारमय रहता है। अन्य ग्रहों अपेक्षा यह सूर्य के बहुत निकट है। सूर्य से यह के ३६,००,००,००० मील पर है। पृथ्वी सूर्य ९३,००,००,००० मील पर है। पृथ्वी से सात अधिक ताप एवं प्रकाश इसे प्राप्त होता है, अतः भाग में लगभग ३४० डिग्री सेंटिग्रेड की गर्मी रहती है।

इस लोक में वायु का संचार नहीं होता। कारण न तो जल ही हो सकता है, और न कोई प्र ही रह सकता है। यहाँ कोरे पत्थर-ही-पत्थर दृष्टिगो होते हैं; पत्र एवं पुष्प के दर्शन असंभव हैं। इ दूसरे भाग में सूर्यातप के अभाव से अतिशीत अतः उस अंश में भी किसी जीवधारी का अस्ति असंभव है।

गुरु

गुरु-नामक ग्रह चक्कर लगाते-लगाते जब पृथ्वी के स आ जाता है तब ३,६७,००,००,००० मील पर रहता और जब दूर चला जाता है तो ६,००,००,००,० मील का अंतर हो जाता है। ग्रहों में यह सबसे ग्रह है। इसी से भारत के ज्योतिर्विदों ने इसका 'गुरु' रक्खा है और पौराणिकों ने इसे सब देवत का गुरु बताया है। इसका व्यास ८८,६४० मील है। यह पृथ्वी से १,४०० गुना अधिक विशाल और सूर्य से भी बहुत अधिक बड़ा है। बहुत दूर के कारण ही यह छोटा-सा दिखायी पड़ता है। तौल ५४०००००००,००,००,००,००,००,००,००,००० का यह होगा। प्रायः बारह वर्ष में यह एक सूर्य की प्रदक्षिणा कर पाता है।

इस लोक में अति सूक्ष्म वायु का संचार होता और कभी-कभी मेघों के भी दर्शन हो जाते हैं। प तो वैज्ञानिक लोग समझते थे कि यह गैस के रूप है और इसकी उष्णता अपनी है, परंतु आधुनिक वै निकों का अनुमान है कि यह उष्णता सूर्यदेव की देन है और इस लोक में केवल गैस ही नहीं है।

शुक्र

शुक्र भी अन्य ग्रहों के समान कभी तो पृथ्वी के सम

... जाता है, और कभी दूर चला जाता है। समीप ... पर पृथ्वी और शुक्र में केवल २६,००,००,००० ... का अंतर रह जाता है और दूर जाने पर यह ... बढ़कर १,६०,००,००,००० मील हो जाता है। ... और चंद्र को छोड़कर यदि कोई सबसे अधिक ... प्रकाशमान ग्रह है, तो शुक्र है। जब यह अत्यंत ... प्रकाशमान होता है, तो ख़ाली आँखों से दिन के ... में दिखायी दे सकता है।

... शुक्रलोक का व्यास ७,७०० मील है। विस्तार में ... भूलोक के समान ही है। तौल में यह लगभग ...०००००,००,००,००,००,००,००,००,००० मन ... २२५ दिन में यह सूर्यदेव की परिक्रमा कर लेता है। ... यहाँ वायु का पूर्ण संचार होता है, और मेघ भी ... विद्यमान रहते हैं। जल भी यहाँ प्रचुर परिमाण ... में प्राप्त होता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह ... अंश में पृथ्वी के समान ही है, और यहाँ पर ... जीवों और वनस्पतियों की आवश्यकता के बहुत-से ... पदार्थ विद्यमान हैं। अतः यहाँ जीवों और ... वनस्पतियों का होना असंभव नहीं।

शनि

... पृथ्वी के निकट रहने पर इन दोनों लोकों में ...,००,००,००० मील का अंतर रहता है, और दूर ... पर १,०२,००,००,००० मील का अंतर हो जाता ... विस्तार में यह ग्रह गुरु से थोड़ा ही कम है। ... व्यास ७२,१०० मील है। आकार में यह ... से ७२० गुना अधिक है। यह तौल में लगभग ...००००,००,००,००,००,००,००,००,००० मन ... है।

... सूर्य की एक बार परिक्रमा करने में इसे २६ वर्ष लगते ... इसी से भारतीय ज्योतिर्विदों ने इसका नाम ... शनैश्चर रख दिया है। इसकी आकर्षण-शक्ति भी ... कम है कि यदि यह किसी विशाल महासागर ... में रख दिया जाय, तो गेंद की तरह जल के ऊपर ही ... तैरता रहे।

... आकार में यह 'गुरु'-नामक ग्रह से मिलता ... चारों ओर बादल छाये रहते हैं। यह गैस ... है। कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि इसे ... ताप देने की आवश्यकता नहीं पड़ती; इसमें ताप स्वयं विद्यमान है। परंतु इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

इन ग्रहों का स्वरूप जानकर पाठकों को दूरवीक्षण-यंत्र का महत्त्व विदित हो गया होगा। परंतु इसकी शक्ति यहीं तक नहीं समाप्त होती। इसके द्वारा तो इन ग्रहों से करोड़ों मील की दूरी के नक्षत्रों का स्वरूप मालूम कर लिया गया है।

हम लोग प्रतिदिन अश्विनी-भरणी किया करते हैं और कभी-कभी हमारे ज्योतिषाचार्य लोग उँगली उठाकर उन्हें दिखला भी देते हैं, पर उनका स्वरूप-ज्ञान इन अतुलित शक्तिसंपन्न यंत्रों के बिना नहीं हो सकता। ये छोटे-छोटे तारे विश्व के न-जाने किस कोने में चमक रहे हैं। जो नक्षत्र पृथ्वी के बहुत निकट है, वह २४,००,००,००,००,००,००० मील की दूरी पर है—अर्थात् सूर्य हमसे जितनी दूरी पर है, उससे २,६०,००० गुना अधिक दूरी पर है। प्रकाश जिस द्रुत वेग से (एक सेकंड में १,२६,२८५ मील) दौड़ता है, उसी वेग से यदि कोई मनुष्य दौड़ सके तो तीन हज़ार वर्ष में इस नक्षत्र तक पहुँच सकता है।

आर्द्रा

इस नक्षत्र का रंग लाल है। यह सूर्य से १,२००गुना अधिक प्रकाशमान है, और इसका व्यास २६,००,००,००० मील का है। आकार में यह सूर्य से २७,००,००,००० गुना और भूलोक से ३,५४,००,००,००,००,००,०००गुना बड़ा है। परंतु पृथ्वी से १,२८,००,००,००,००,००,००० मील दूर होने के कारण इतना छोटा दिखायी देता है। तौल में यह ११५८३०००००००००००००००००००,००,००,००० मन है।

त्रिशंकु

त्रिशंकु इंद्रलोक से ढकेल दिये गये थे, विश्वामित्र ने उन्हें बीच ही में रोक दिया था। वह बेचारे आज तक ११,६८,००,००,००,००,००,००० मील ऊपर आकाश में लटके हुए हैं।

ज्येष्ठा

आज तक जितने नक्षत्रों का पता लगाया जा सका है, ज्येष्ठा-नक्षत्र उन सबमें बड़ा है। इसका व्यास लगभग ३१,५६,८०,००० मील का है। इसका वर्ण रक्त है और सूर्य से यह ४००० गुना अधिक प्रकाशमान है।

आकार में यह सूर्य से १,१०,५६,००,००,००० गुना और पृथ्वी से १,४२,६८,००,००,००,००,००,००० गुना बड़ा है। तौल में यह नक्षत्र १११५१००००००,००,००,०००००००००००००००००० मन है।

इन नक्षत्रों के भी ऊपर आकाशगंगा है। इसमें असंख्य तारे हैं। आज तक ८,००० ऐसे तारों का पता लगाया जा सका है जिनमें से प्रत्येक नक्षत्र एक-एक विश्व के इतना विस्तृत और विशाल है। इनमें से किसी एक साधारण तारे को तौला जाय तो ११८१८१५३८०००००००००००००००००००,००,००,००,००,००,००० मन वह होगा। दूरवीक्षणयंत्र के द्वारा पता लगाया गया है कि यह आकाशगंगा पृथ्वी से २,४००००००००००००,००,००० मील की दूरी पर है।

अब तक सबसे अधिक दूरी पर जो तारे पाये गये हैं वे ८२२५०,००,००,००,००,००,००,००,००० मील की दूरी पर हैं। इनमें से कुछ तारे तो इतने देदीप्यमान हैं कि सूर्य से ६,००,००,००,००० गुना अधिक प्रकाश देते हैं।

विश्व का यह विचित्रता देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो विश्वस्रष्टा ईश्वर की सत्ता पर संदेह करे। उसकी शक्ति का मान नहीं हो सकता, अतएव विद्वान् लोग उसे सर्वशक्तिमान् कहते हैं। उस परमेश्वर की महिमा मन और वाणी से अगोचर है, इसीलिए किसी विद्वान् ने कहा है—

> अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
> रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।

वारिद की चादर में नैनी !!

सन्ध्या से अपना सिंगार कर उर में धर तारों के हार ,
तारों के मंजुल प्रसार में नैनी उमड़ाता उद्गार ;
बीच-बीच में तड़ित तमककर बरसाती सुखदुख की धार । १ ।

ऊपर जैसे घन अनन्त तक नीचे है अगाध सागर ,
इधर-उधर फैला है मधुवन—मधुवन में बिखरे घर-घर ;
घर-घर में नरनारी कलरव करते, जैसे हों किन्नर । २ ।

× × ×

अरे, आज मधु की प्याली-सा भरा हुआ यह नैनीताल—
अपने ही उफान से उठ-उठ गिरने को तत्पर तत्काल ।
नैनी मन में सतत छिपाये मेरी मृगनयनी मधुबाल । ३ ।

नहीं दबाये दब सकती है भावी जो होनेवाली ;
क्या यौवन से भी छिप सकती गोरे गालों की लाली ?
बिखर पड़ी तरु तले आज तरु-नैनी की डाली-डाली । ४ ।

× × ×

इधर खेलती जल में मछली उधर खेलती थल में बाल ;
देख-देख यह मतवालापन छल-छल नाच रहा है ताल ।
सुस्थिर गिरिवर भी अस्थिर हो भूल रहे हैं अपना हाल । ५ ।

सन-सन करती चलती है जो ताल ओर से तीव्र बयार ,
लायी अपने साथ एक वह मानवसरिता की भी धार ।
वह तो गया हमारा जिसमें तन मन धन सर्वस्व अपार । ६ ।

× × ×

बिना बताये नाम-धाम ज्यों चल चपला चलती है चाल ;
बिना बताये ग्राम पवन ज्यों नित झकोरता बन की डाल ।
वैसे ही हाँ वदन छिपाये मन को छला गयी वह बाल । ७ ।

नैनी ! वारिद की चादर में मूँदे तारों के दृगजाल ;
उत्सुक शतसहस्र नयनों से देखूँ कब तक उसका भाल !
एक बार तो मन उदार कर खोलो, नैनी, नयन विशाल ;
देखूँ मृगनयनी मधुबाल ! ८ ।

[श्री हरिश्चन्द्र जोशी बी० ए०, एल्-एल्० बी० 'हरीश']

स्नेहोत्सर्ग

(एकांक नाटक)

[श्री० 'कुमार हृदय']

[सन् १५६४में आसफ़ख़ाँ ने अकबर की आज्ञानुसार गोंडवाने पर आक्रमण किया । एक बार पराजित हो जाने पर उसमें दृढ़ निश्चय, क्रूरता और प्रतिशोध की मात्रा अधिक आ चुकी थी । रानी दुर्गावती ने गढ़ा-मंडले का प्रबंध कर उसकी रक्षा का भार वीरनारायण को सौंप दिया था और वह स्वयं नियंत्रण करने के लिए चौरागढ़ प्रस्थान कर चुकी थी। आसफ़ख़ाँ ने पूर्व-प्रथानुसार मोर्चेबंदी करना और उपयुक्त अवसर से लाभ उठाना ही उचित समझा ।

सत्रह वर्ष का गौर-वर्ण, वलिष्ठ तथा शिला-खंडों से परिपूर्ण गोंडवाने में प्राप्त की हुई तेजस्विता से मंडित युवक वीरनारायण, तीन चट्टानों पर बने हुए सुदृढ़ मदनमहल के दक्षिण-कक्ष में बैठा हुआ निर्निमेष सम्मुख देख रहा है । उसके ठीक सामने एक षोडशी, सुंदर, आकर्षक एवं सारल्यमूर्ति वाला पर्णासन पर विराजमान है । गोंड पथिक उसे 'कोमा' कहकर पुकारते हैं । वह बार-बार पश्चिम में बने हुए वातायन से निर्झर की ओर देख लेत । है । उसके चेहरे पर व्यग्रता प्रतिबिंबित हो जाती है]

[लेखक]

वीरनारायण—कोमा ! तुम वातायन से झाँककर कौन-सी वस्तु देखने की चेष्टा कर रही हो

कोमा—कुमार ! अब मैं जाना चाहती हूँ ।

वीरनारायण (उत्सुकतापूर्वक)—क्यों कोम यहाँ तुम्हें किस बात का कष्ट है ?

कोमा (व्यग्रता की एक स्पष्ट रेखा मस्तक पर जाती है)—कुमा में किसी अभाव अनुभव कर रही हू

वीरनारायण- तो क्या उस अभ की पूर्ति यहाँ न हो सकती, कोमा

कोमा—नहीं कुमा (वातायन की अ उँगली से संकेत क वह आम्रकुंज में छि हुई मेरी पर्ण दिखायी पड़ती है मेरी आत्मा व जाकर प्रसन्न होने मुझे प्रेरित रही है ।

वीरनारायण (तृषार्त नेत्रों अल्पभाव लाकर) तो कोमा, क्या मुझे उपेक्षा की से देखती हो ?

कोमा (शिशु-सारल्यवत्)—नहीं तो कुमार ! तुम लिए मेरे हृदय में वही श्रद्धा के भाव हैं जो युव के लिए प्रजा के मन में होने चाहिए । किंतु मैं "चौने" (हरिण का नाम) और "रानू" (

[illegible]) को दो दिन से नहीं देख सकी हूँ ; मेरे प्राण उन्हें देखने को छटपटा रहे हैं ।

वीरनारायण—पर तुम्हें यहाँ आये दो दिन हो गये, न तुमने उनका परसों ही स्मरण किया और न कल ही। फिर आज इस प्रकार इतनी व्यग्रता प्रकट करने का क्या प्रयोजन है, कोमा ?

कोमा—कुमार ! मैं अपने "छौने" और "रानू" से केवल दो दिन की अनुमति लेकर आयी थी। छौने ने मेरी गोदी में सिर रखकर मानों डबडबायी आँखों से मेरी ओर देखकर मेरा आशय पूछा ; मैंने दो उँगली बतलाकर बाहर की ओर संकेत किया। वे [illegible] नीचा किये गोद से उतर गये । आज यह तीसरा दिन है। मेरे उन "छौने" और "रानू" के प्राण [illegible] रहे होंगे । मैं जाऊँगी, कुमार !

वीरनारायण—कोमा ! भला पशु दो और तीन का [illegible] क्या जानें ?

कोमा—नहीं कुमार ! वे मेरे इस संकेत को समझते हैं। मुझे कई बार दो-दो तीन-तीन दिन के लिए [illegible] का अवसर आया है ।

वीरनारायण—किंतु ऐसे युद्ध के समय तुम निर्भय [illegible] तक न जा सकोगी, कोमा !

कोमा (सरलता से)—मुझको किस बात का भय कुमार ?

वीरनारायण—तुम्हारे बाघ से "छौना" नहीं डरता [illegible] ?

कोमा (सारल्य और आश्चर्य-सम्मिश्रित भाव से)—क्यों—क्यों डरेगा, कुमार ? वह तो "रानू" [illegible] के बीच में निर्भय होकर सोता है ।

वीरनारायण—और, तुम भी नहीं डरतीं !

कोमा—मैं तो उसे प्रतिदिन चूमती-चाटती हूँ । [illegible] की बात तुमने क्यों पूछी, कुमार ?

वीरनारायण—यह तो स्वाभा.........

(सहसा वीरनारायण का ध्यान प्रधान मंत्री अधारसिंह की ओर आकर्षित हो जाता है जो अकस्मात् [illegible] के सम्मुख आ खड़े होते हैं। अधारसिंह साँवला [illegible] है। मुखाकृति से निर्भीकता, वीरता [illegible] स्पष्ट झलकती है।)

वीरनारायण (अधारसिंह की उपस्थिति से अप्रसन्न होने का आन्तरिक भाव दबाकर उत्सुकता से)—क्यों अधारसिंह, क्या समाचार है ?

अधारसिंह—युवराज ! शत्रुसेना पूर्व की ओर बढ़ती आ रही है। मैंने सेना का पूर्ण नियंत्रण कर दिया है। आपको अवसर के लिए सज्जित रहना है......

कोमा (अधारसिंह कुछ आगे और कहना चाहता था, किंतु कोमा अपने "छौना" और "रानू" का समाचार जानने के लिए बहुत उत्सुक होने के कारण अधिक न रुक सकी)—सेनानी ! आप किस ओर से आ रहे हैं ?

अधारसिंह—मैं बाजना-मठ गया था, और वहाँ से अभी आ रहा हूँ ।

कोमा (किसी अभाव-पूर्ति की आशा में)—आपने मेरी झोपड़ी के सामने मेरे "रानू" और "छौना" को बँधे देखा है ?

अधारसिंह (उपेक्षा की दृष्टि से)—कौन "रानू" और कौन "छौना" ?

वीरनारायण—बाघ और हरिण।

अधारसिंह—एक बाघ तो मैंने अभी गढ़ के दरवाज़े पर मारा है।

[कोमा सिहर उठती है और भर्रायी हुई आवाज़ में सेनानी से प्रश्न पूछने का प्रयत्न करती है, किंतु गला रुँध जाता है]

कोमा—(किसी आशंका से कातर ध्वनि में पुनः प्रयत्न करके) कि...स...र...ग...का...

अधारसिंह (पूर्ववत् मनोभाव से)—काले और भूरे चिट्टे थे। उसके पास ही तो एक हरिण भी चर रहा था। हम लोगों के पीछा करने पर वह भाग तो गया, पर गढ़ का द्वार खुलते ही वह भीतर आ गया है। इन्हीं शिलाखंडों में घूमता होगा।

कोमा—हा ! रानू ! मेरा छौना...मैं आ......

(इसी क्षण [illegible] के सम्मुख स्थित [illegible] के ऊँचे प्राचीर से "छौना" नीचे विशाल गर्त में कूदता है जहाँ रानू का निश्चल शरीर पड़ा है। कूदते ही वियोग की कातर ध्वनि में "कोमा"..."रानू" निकलता है। ये ही दो शब्द हैं जिन्हें कोमा ने प्यारे छौना को सिखाये थे। अस्पष्ट स्वर में कोमा को ये शब्द सुनाई पड़ जाते हैं—"मेरे छौना"..."रानू"...वह विक्षिप्त होकर अट्टालिका पर रक्खी हुई विशाल शिला पर गिर पड़ती है। [illegible] है। वीरनारायण और अधारसिंह किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति देखते रह जाते हैं।)

उमर ख़य्याम की रुबाइयाँ

(आलोचना)

['समर्थ समालोचक' पं० रामदयाल तिवारी बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(२)

मृत्यु-भय से अपनी कमज़ोरियों का अनुभव करता हुआ उमर ख़य्याम इस बात को कभी-कभी मानता था कि इस समूचे सृष्टि-प्रपंच पर शासन करने वाला महान् सत्ताधारी कोई-न-कोई ज़रूर है। इस सृष्टि-संचालन-कर्त्ता की उपमा उसने कुम्हार से दी है। परंतु इस सर्वशक्तिमान् ईश्वर के प्रति उसके सच्चे भाव क्या थे—यह उमर ख़य्याम ही जाने। उसकी रचना के पढ़नेवालों को उसकी आंतरिक भावना का कोई परिचय निश्चित रूप से नहीं मिल सकता। कभी वह विद्रोही के समान बातें करता है, तो कभी भक्ति-भावना से नत-मस्तक होकर ईश्वर की प्रार्थना करता हुआ भी दिखायी देता है। सारांश यह कि उसके आंतरिक विश्वास और हृदय की गति-विधि

ईश्वरीय सत्ता

का कोई ठीक-ठिकाना नहीं है। पाठक देखें, नीचे दी हुई रुबाई में वह ईश्वर की शिकायत दबी ज़बान में किस तरह करता है—

> हुक्मे के अज़ो महाल बाशद परहेज़
>
> फ़रमूदा वो अम्र करदो कज़्वै बगुरेज़
>
> आंगाह मियाने अम्रो नहीयश आजिज़
>
> दरमांदह जहानियां के कज दारो मरेज़

भावार्थ—तेरी आज्ञा का उल्लंघन करना असंभव है। फिर तू यह भी कहता है कि तुम इससे दूर रहो तेरे आदेश और निषेध के बीच में पड़कर हम संसारी जीव बड़े लाचार हैं; समझ में नहीं आता कि क्या करें और क्या न करें—गोया तू कहता है कि प्याला उलट

[illegible] लेकिन मेरा [illegible] द भी न गिरे । भला [illegible] संभव हो सकता है !

[illegible] देखें, ईश्वरीय सत्ता के संबंध में उमर ख़य्याम [illegible] विचित्र धारणा है । शुरू से आख़िर तक कैसी [illegible] की बात कही गयी है ।

[illegible] ईश्वर, तेरी इच्छा के विरुद्ध तो कोई बात ही [illegible] होती । जो कुछ मैं करता हूँ—चाहे वह बुरा भी [illegible] हो—सब तेरी मरज़ी से होता है । फिर भी तू [illegible] कहता है कि बुराइयों से बचो । भला तू ही बता कि [illegible] कैसे हो सकता है । भरा हुआ प्याला उलटा रख [illegible] और शराब की एक बूँद भी ज़मीन पर न [illegible] तेरे 'हाँ' और 'नहीं' के बीच में हमारी बड़ी बुरी [illegible] हो रही है । पाठक देखें, ईश्वरीय सत्ता के [illegible] में कैसी असंगत बातें इस 'महाकवि' ने कह [illegible] हैं ।

[illegible] ईश्वर मनुष्य को बुरी प्रवृत्तियों की ओर भी [illegible] जाता है ? क्या मानव-हृदय में इच्छा-स्वातंत्र्य [illegible] कोई गुंजाइश नहीं ? यदि ऐसा है, तो मनुष्य [illegible] उसकी सामर्थ्य के बाहर की बात है । यह [illegible] है, पौरुष की समाधि है ।

> [illegible] रहगुज़रम हज़ार जा दाम नेही
> [illegible] के बगीरिमत अगर गाम नेही
> [illegible] ज़े हुकमे तो जहां ख़ाली नेस्त
> [illegible] तो कुनी वो आसियम नाम नेही

[illegible]—तूने हज़ारों जगह मेरे लिए जाल बिछाये [illegible] फिर भी तू कहता है कि देख, अगर कहीं उन [illegible] कि फँसा । एक ज़र्रा भी तो तेरी हुकूमत के [illegible] है, और फिर भी तू मुझे विद्रोही ठहराता है ! [illegible] ख़य्याम का ईश्वर क्या है, एक बहेलिया है [illegible] जगह जाल बिछाकर जीवों का आखेट किया [illegible] है । यदि उमर ख़य्याम के अनुसार ईश्वर का [illegible] है, तो संसार का प्रत्येक प्राणी उसका [illegible] पसंद करेगा !

[illegible] उमर ख़य्याम अपनी विद्रोही मनोवृत्ति का [illegible] शब्दों में दे रहा है । "कैसा अन्यायी है [illegible] जीवन-पथ पर तू सैकड़ों विघ्न उपस्थित [illegible] कहता है—अरे मनुष्य ! मैं तेरे पैरों को अचानक [illegible] तू आख़िर जाएगा कहाँ ! इस तरह इस दुनिया में तेरी हुकूमत के सभी क़ायल हैं । ऐसी हालत में तेरे विरुद्ध जा ही कौन सकता है । फिर भी तू ही मुझे विद्रोही ठहराता है ! क्या यही तेरी मुंसिफ़ी है ।"

ख़य्याम का यह ख़ुदा अवश्य ही करुणामय परमपिता परमेश्वर नहीं है; वह एक तमाशबीन और सनकी प्राणी है, जो अपनी अप्रतिम सत्ता का दुरुपयोग करता हुआ दुर्बल मनुष्य को संकटों में डालकर प्रसन्न हुआ करता है ।

अब कुछ ऐसे उदाहरण लीजिए, जिनमें उमर ख़य्याम सच्ची भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ईश्वर से प्रार्थना भी करता है ।

> बा तो ब ख़राबात अगर गोयम राज़
> बेह ज़ांके बेमेहराब कुनम बे तो नमाज़
> ऐ अव्वल वो ऐ आख़िरे ख़ल्क़ां हमह तो
> ख्वाही तो मरा बसोज़ वो ख्वाही ब-नवाज़

भावार्थ—अगर किसी मयख़ाने में (जहाँ लोग ख़राब हो जाते हैं) मैं अपना दिली दर्द तुझे सुनाऊँ, तो तेरी मौजूदगी के बिना मेहराब की तरफ़ मुँह करके मसजिद में नमाज़ पढ़ने से कहीं अच्छा है । ऐ संसार के आदि और अंत ! तू चाहे मुझे जला दे, चाहे मुझ पर दया कर ।

इस रुबाई में ख़य्याम ने दिल खोलकर प्रार्थना की है । संभव है, यह उसकी जरावस्था की प्रेरणा का परिणाम हो । पर यह रुबाई अपने ढंग की एक ही है ।

इस रुबाई से उमर की मज़हबी अनास्था भी स्पष्ट प्रकट होती है । वह ख़ुदा को मयख़ाने में ही बुलाना चाहता है, और समझता है कि मसजिद में उसका आना संभव नहीं । परंतु वर्तमान की परिष्कृत आस्तिकता तो कहती है कि क्या मस्जिद क्या मयख़ाना, वह हर जगह मौजूद है; केवल हृदय की पवित्रता चाहिए ।

> चूँ इश्क़ अज़ल बूद मरा [illegible] करद
> दरमन ज़े नमूना दर्स इश्क़ इमला करद
> वाँगाह कुशादे दरे [illegible] मरा
> मिफ़ताह ख़ज़ानये दरे मानी करद

भावार्थ—सृष्टि-रचना के समय जब उसने मुझे मनुष्य-जन्म दिया तो उसी समय उसने मुझे अपने प्रेम की दीक्षा दे दी और मेरे हृदय को उसमें सत्य के ख़ज़ाने की कुंजी बना दिया ।

फिर सुरा और सुंदरी का चस्का किसने लगाया—ख़य्याम के शैतान ने या ख़ुदा ने ?

उमर ख़य्याम की रुबाइयों में शायद यह लासानी है। इन पंक्तियों के विचार और भाव दोनों में ही काव्योचित प्रतिभा विलस रही है। मालूम नहीं, उमर की जड़वादी लेखनी से भक्ति-भावना से ओतप्रोत यह रुबाई कैसे फिसल पड़ी। मौक़े की बात तो है।

गह गश्ता निहाँ रूये वकस ननुमाई
गह दर सुवरे कौनो मकाँ पैदाई
ऐ जल्वगरी बख़ेश्तन बनुमाई
ख़ुद ऐन अयानी व ख़ुदी बीनाई

भावार्थ—कभी-कभी तू ऐसा छिप जाता है कि किसी को नज़र नहीं आता, और कभी-कभी तू संसार के भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है। हे ईश्वर, अपनी महिमा तू आप ही देख। तू स्वयं द्रष्टा है, और दृष्टि-गत भी तू ही है।

इन पंक्तियों की शीशी में उमर ख़य्याम ने सूफ़ीमत का अर्क़ निचोड़कर रख दिया है। मालूम नहीं, उसने स्वयं इसका पान किया अथवा नहीं; पर उसकी अधिकांश रुबाइयाँ इस बात की साक्षी हैं कि वह उसके प्रमोद-भवन के आले में धरी ही रह गयीं।

साज़िंदये कारे मुरद वो ज़िन्दह तुई
दारिंदये ईं चर्ख़े परागंदह तुई
मन गरचे वदम साहबे ईं वंदह तुई
कसरा चे गुनह के आफ़रीनिंदह तुई

भावार्थ—तू जीवित तथा मृत संसार का शासन करता है। इस आकाशचक्र को तूने ही सम्हाल रक्खा है। मैं कितना ही बुरा क्यों न हो जाऊँ, आख़िर तेरा ही दास हूँ। जब तू भला-बुरा सभी का सिरजनहार है, तो पाप किसके मत्थे मढ़ा जाय ?

क़ुरान द्वारा प्रतिपादित मत के अनुसार ख़ुदा गुनहगारों को दंड देता है। ईश्वर के प्रति जो इस्लाम-धर्म की यह धारणा है, इसका इस रुबाई में प्रतिवाद है। उमर के मज़हबी विचार-स्वातंत्र्य का एक यह भी नमूना है। रुबाई में ईश्वरवाद की परिष्कृत भावना अंकित है।

जो मनुष्य ईश्वर की सत्ता को मानता है और जिसे उसकी निस्सीम दया पर विश्वास है, व

उमर की निराशा

अपने जीवन से निराश कभी न होता। भौतिक तापों से जब इसक हृदय त्रस्त हो जाता है और उ संसार में आशा के लिए कोई अवलंब नहीं दृष्टिगोच होता, ठीक उसी समय वह अनन्य-मनसा परमात्म का स्मरण करता है। उस करुणामयी सत्ता की स्मृ उसके हृदय में नयी स्फूर्ति उत्पन्न कर देती है। वह आश वान् होकर नये उत्साह के साथ अपने संतप्त जीवन मरुभूमि में फिर हरियाली देखने लगता है। कहने क सारांश यह कि जिसके हृदय में सच्ची आस्तिकता उसे आशावादी होना ही चाहिए; निराशा औ निरुत्साह के लिए उसके जीवन के कार्य-क्रम में को गुंजाइश नहीं रहती। परंतु हम देखते हैं, उमर ख़य्या की अधिकांश रचना में निराशा का आतंक छाया हुआ उसकी रुबाइयों को संसार का संतप्त प्राणी पढ़े, तो उस हृदय की रहीसही सांत्वना और भी नष्ट हो जायगी पाठक उमर ख़य्याम की निम्न-लिखित रुबाइयों को दे इनमें निराशावाद की कैसी घोर तमिस्रा छायी हुई

अब्र आमद वो बाज़ बरसरे सब्ज़ह गिरीस्त
बे बादये अरग़वां नमीबायद ज़ीस्त
ईं सब्ज़ह के इमरोज़ तमाशागहे मास्त
ता सब्ज़ये ख़ाके मा तमाशागहे कीस्त

भावार्थ—बादल आये और हरियाली पर वर्षा ऐसी हालत में शराब के बिना जीवित रहना व्यर्थ यह हरियाली—जिसे हम देखकर आज प्रसन्न होते है कल हमारी समाधि पर उगेगी और मालूम नहीं, देखकर कौन प्रसन्न होगा ?

आप ही का कोई विलासवादी बिरादर !

हंगामे सुबूह ऐ सनम फ़र्रुख़ पै
पुरसाज़ तरानवो बपेश आवर मै
कफ़गंद बख़ाक सदहज़ाराँ जम व कै
ईं आमदने तीर महो रफ़्तने दै

भावार्थ—ऐ सनम ! प्रातःकाल का समय है, और संगीत के साथ मेरे सामने शराब लाओ; वसंत और शीतकाल के आगमन और गमन जाने कितने जम वो कै धूल में मिट गये। आज उ कोई पता नहीं है।

ऐ दोस्त बेआ ता ग़मे फ़रदा न ख़ुरेम
ईं यकदमे उम्ररा ग़नीमत शमुरेम
फ़रदा के अज़ीं देरे कुहन दरगुज़रेम
ता हफ़्त हज़ार साल काँ सरबसरेम

भावार्थ—ऐ दोस्त, आओ। कल की चिंता मत करो। इस क्षणभंगुर वर्तमान जीवन को ही अपना [illegible] समझो; क्योंकि कल जब हम इस पुराने घर से गुज़र जायँगे, तो पिछले सात हज़ार वर्षों में घुल-मिल जायँगे।

मै ख़ुर के बज़ेरे गिल बसे ख़्वाही ख़ुफ़्त
बे मूनसो बे हरीफ़ो बे हमदमो जुफ़्त
ज़िनहार बकसे मगो तो ईं राज़ नहुफ़्त
हरलालये पज़मुरदह न ख़्वाहद बशगुफ़्त

[illegible]ार्थ—अरे भाई, शराब पी ले; क्योंकि आख़िर [illegible] के अंदर बहुत दिनों तक सोना पड़ेगा। वहाँ [illegible] कोई साथी होगा, न दोस्त होगा, न तेरी [illegible] रहेगी। देख, मैं तुझे एक छिपा हुआ रहस्य [illegible] हूँ, किसी से कहना नहीं। जो फूल एक बार [illegible] गया, वह फिर खिलने का नहीं; वह हमेशा के [illegible]ष्ट हो चुका।

चूँ आक़िबत नमी शवद कस्बे फ़रदा रा
[illegible]ल ख़ुशकुन तो ईं दिलसौदा रा
[illegible] नोश बनूर माह ऐ माह के माह
[illegible] बेताबदो नयाबद मारा

भावार्थ—कल का कोई भरोसा नहीं। इसलिए [illegible], मेरे संतप्त हृदय को कुछ संतोष दे। ऐ चंद्र-[illegible] इस चंद्रज्योत्स्ना में कुछ शराब तो पी ले; [illegible] यह चंद्रमा तो न जाने कब तक यों ही प्रकाशमान [illegible] पर अफ़सोस इसका लुत्फ़ उठानेवाले हम न होंगे।

[illegible] चो बइत्तिफ़ाक़ मीआद कुनेद
[illegible] बजमाले यकदिगर शाद कुनेद
[illegible] चो मैय मुग़ाना बरकफ़ गीरद
[illegible] फ़ुलाँ रा बदुआ याद कुनेद

[illegible]—ऐ दोस्तो, मेरे बाद जब कभी तुम लोग [illegible] मिलकर एक दूसरे की सोहबत में ख़ुशी [illegible] और जब साक़ी मग़िया शराब तुम लोगों में [illegible], तो मुझ बेचारे को भी दुआ के साथ [illegible]ना।

[illegible] इसमें निराशा है!

यारां चो बइत्तिफ़ाक़ दीदार कुनेद
बायद के ज़दोस्त याद बिसियार कुनेद
चूँ बादये ख़ुशगवार नोशेद बहम
नौबत चो बमा रसद निगूँसार कुनेद

भावार्थ—ऐ दोस्तो, मेरी मृत्यु के बाद जब कभी तुम लोग आपस में मिलो, तो तुम अपने पुराने मित्र (ख़य्याम) को कभी न भूलना। जब-जब तुम लोगों को मिलकर शराब पीने का मौक़ा मिले, तो मेरी बारी आने पर एक प्याला ज़रूर उलटा देना।

पाठक देखें, उमर की इन रुबाइयों के आईने में रोती हुई सूरत की कैसी स्पष्ट झलक दिखायी दे रही है; मृत्युभय से घबरायी हुई उसकी आँखों में कैसी मुर्दनी छायी हुई है। अपने विलासी और मदिरोन्मत्त जीवन के भावी अवसान की संतप्तकारी संभावना से वह कैसा सिहर रहा है। "ऐ भाई, जिस समय तुम लोग शराब के मज़े लूटोगे, तो ठीक इसी जगह जहाँ कि मैं बैठा करता हूँ, एकआध भरा प्याला उलटा देना और इस तरह मेरे मरने के बाद मुझ बेचारे का शराब से श्राद्ध कर देना।" वाह, ख़ूब कही उमर ख़य्याम! धन्य है तेरी मदिरा-लिप्सा को! शायद तू नहीं जानता था कि मरने के पहले ही तू अपनी मृत्यु-भय-जनित भयंकर निराशा से कई बार मर चुका है।

आशा की झलक

ईरान के इस उद्भ्रांत कवि की रचना में विलास-वाद, अज्ञान, मृत्युभय और निराशा का सर्वत्र साम्राज्य दिखायी देता है। फिर भी आख़िर वह चेतन-तत्त्व-समन्वित मनुष्य था। अतएव उसके तमिस्रामय हृदय में कभी-कभी आशा का संचार भी हो जाता था। ऐसी मानसिक अवस्था में कभी-कभी वह एक आशा-वादी के समान भी बातें किया करता था। मालूम नहीं, ऐसी रचनाएँ यथार्थ में उसकी हैं या नहीं; क्योंकि विद्वानों की राय है कि उसके मरने के बाद उसकी रचना में कई लोगों ने अपनी बनायी हुई रुबाइयाँ भी जोड़ दी हैं। जो हो, उसके नाम से जो संग्रह प्रका-शित है, उसमें निम्नलिखित पद्य भी पाये जाते हैं—

[illegible]
[illegible]

अज़ ख़ैरे महज़ जुज़ निकोई नायद हरगिज़
ख़ुश बाश के आक़बत निको ख़्वाहद बूद

भावार्थ—लोग कहते हैं कि क़यामत के दिन जाँच-पड़ताल होगी और वह ईश्वर, जो हमारा परम स्नेही है, हमसे (गुनाहों के लिए) सख़्ती से पेश आवेगा। लेकिन उस मंगलमय ईश्वर से अमंगल की संभावना क्योंकर हो सकती है ! इसलिए ऐ दोस्त, प्रसन्न रहो; अंत अच्छा ही रहेगा।

यदि यही विश्वास है, तो फिर निराशा के लिए कारण ही क्या ?

फ़रदा के नसीब नेकबख़्ताँ बख़शन्द
क़िस्मे बमने रिंद परेशाँ बख़शन्द
गर नेक आयम मरा अज़ईशाँ शमरंद
वर बद बाशम मरा बदेशाँ बख़शंद

भावार्थ—कल जब सत्कर्म करनेवालों को उनका पुरस्कार मिलेगा, तो मुझ पापी को भी कुछ न कुछ हिस्सा उसमें से ज़रूर मिलेगा। अगर मैं अच्छा निकला तो मेरी गिनती अच्छों में होगी ; अगर बुरा निकला, तो बुरों के साथ मुझे भी क्षमा दी जायगी।

इन रुबाइयों को देखने से पाठकों को प्रतीत होगा कि कभी-कभी उमर ख़य्याम के निराशामय मनोदेश में आशा की विद्युत्प्रभा चमककर विलीन हो जाती थी। परंतु उसकी यह मानसिक अवस्था अत्यंत क्षणभंगुर थी, उसके स्थायी स्वभाव तथा जीवन-सिद्धांत के अनुरूप नहीं थी। आशावाद के इस क्षणिक प्रकाश से प्रभावान्वित होकर वह सूफ़ियों के समान भी कभी-कभी लिख जाता है। परंतु ऐसी रचनाएँ बनावटी हैं, उसकी वास्तविक और स्थायी मनोवृत्ति को प्रकट करनेवाली नहीं ; क्योंकि जो मनुष्य भयंकर जड़वाद से ग्रस्त है, जिसके लिए जीवन सौख्य की सीमा, अंगूरी शराब और प्रेयसी के प्रेमालिंगन में है, जो पद-पद पर मृत्यु-भय तथा सृष्टि-रहस्य-संबंधी अज्ञान प्रकट करता है, उसे वेदांत की उदार अंतर्दृष्टि क्योंकर प्राप्त हो सकती है ? बहुत संभव है, सूफ़ी-भावनासूचक निम्न-लिखित पद्य उसके परवर्ती सूफ़ी-संप्रदाय के शायरों ने जोड़ दिये हों—

(सूफ़ी-मत)

गहगश्ता निहाँ रूये बकस ननुमाई,
गह दर सुवरे कौनो मकाँ पैदाई।
ऐ जल्वगरी बख़ेश्तन बनुमाई,
ख़ुद ऐन अयानी व ख़ुदी बीनाई।

भावार्थ—कभी-कभी तू ऐसा छिप जाता है किसी को नज़र नहीं आता, और कभी-कभी तू संसार भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है। हे परमेश्व अपनी महिमा तू आप ही देख; क्योंकि तू ह द्रष्टा है और स्वयं दृष्टिगत है।

असरारे अज़ल रा न तो दानी व न मन,
वीं हर्फ़ मुअम्मा न तो ख़्वानी व न मन।
हस्त अज़ पसे परदा गुफ़्तगूए मन व तो,
चूँ परदा बरउफ़्तद न तो मानी व न मन।

भावार्थ—भविष्य के रहस्य को न तो तू समझ है, न मैं; और इस सृष्टि-समस्या को न तो तू हल क सकता है, न मैं। 'तू' और 'मैं' की चर्चा इस (माय रूपी) पर्दे के पीछे है। ज्यों ही यह परदा हटा फिर न 'तू' रहेगा, न 'मैं' ही।

पाठक देखेंगे कि उपर्युक्त रुबाई के अंतिम दो चरण में सूफ़ी-मत का प्रकाश दृष्टिगत होता है और प्रथम द में उमर ख़य्याम की यथार्थ अज्ञानी मनोवृत्ति की छाय भी पड़ी हुई है। आश्चर्य है कि ऐसी ही रचनाओं आधार पर कुछ लोग उसे सूफ़ी-मतावलम्बी मानते हैं

(सारांश)

जिन रुबाइयों के प्रमाण हमने यहाँ पर दिये हैं, उन एक बार पढ़ जाने के बाद पाठकों को अनायास प्रतीत हो जायगा कि उमर ख़य्याम के संबं में इतना मतभेद क्यों है। यथार्थ बात तो यह है कि जब किसी कवि अथवा ग्रंथकार को एक बार किसी तरह सच्ची या झूठी प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है, तो भिन्न-भिन्न संप्रदायों के लोग उसकी रचना से अपने-अपने सिद्धांतों के अनुरूप अर्थ निकालने का प्रयत्न किया करते हैं। ठीक यही बात उमर के संबंध में भी कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी सच है कि उसकी रचना में अनेक तरह के परस्पर-विरोधी विचारों का समावेश भी है। एक ही मनुष्य की कृति में ऐसे चित्तविक्षेपकारी विचार-वैमनस्य का होना लेखक की असंयत तथा अस्थिर मानसिक अवस्था का परिचायक है। ऐसे संशयात्मा मनुष्य की उद्भ्रांत लेखनी भूले-भटके संसार के लिए पथ-प्रदर्शक का काम तो करती ही नहीं, बल्कि और भी भ्रम फैलाकर उसे मार्ग

[illegible] देती है। ऐसे मनुष्य को विश्वकवि कहना [illegible] का सरासर दुरुपयोग है।

[illegible], ईरान के इस 'विश्वकवि' के संबंध में चाहे [illegible] मतभेद हो, परंतु हमारी यह निश्चित धारणा [illegible] एक सूक्ष्मदर्शी समालोचक की दृष्टि में उमर [illegible] का एक ही अंतःस्वरूप है। न तो वह मुहम्मदी [illegible] का माननेवाला है, न वह सूफ़ी-मत का ही क़ायल [illegible] तो वह अध्यात्मवादी है, न वह ईश्वर-भक्त ही है। [illegible] एक अंतर्दृष्टिहीन जड़वादी एवं निराशावादी है। [illegible] और ऐहिक भोगविलास ही उसके लिए सब [illegible] है। वज़ीर निज़ामुलमुल्क की बदौलत उसे जीवन-[illegible] की चिंता बिलकुल नहीं थी। खाने-पीने के लिए [illegible] पास यथेष्ट साधन प्रस्तुत थे। यही कारण है कि [illegible] और दुःखी मनुष्यों के प्रति करुणा के भाव [illegible] में जागृत ही नहीं हुए। वह केवल अपने [illegible] प्रमोद में—सुरा-सेवन और सुंदरी के प्रेमा-[illegible] में मस्त था। उसकी रचना में हमें एक भी ऐसी नहीं मिली, जिसमें उसने संतप्त संसार के [illegible] बहाये हों।

वह रोता ज़रूर है, परंतु दूसरों के लिए नहीं—[illegible]-समाज के लिए नहीं—केवल अपने लिए, [illegible] विलासी जीवन के निश्चित अवसान की चिंता [illegible] विलासी मनुष्य का यही स्वाभाविक मनो-[illegible] है। उमर ख़य्याम के मस्तिष्क से जब [illegible] मदिरा का नशा उतर जाता है, प्रणयालिंगन [illegible] ढीला पड़ जाता है, तो उसे जीवन की [illegible] कुछ-कुछ प्रतीत होने लगती है, मृत्यु की [illegible] उसकी आँखों के सामने अट्टहास [illegible] दिखायी देती है। उससे बचने का उसे [illegible] नहीं सूझता। सृष्टि-रहस्य का उसे [illegible] नहीं। मृत्यु के उस पार उसकी [illegible] कुछ देख ही नहीं सकतीं। जीवन-[illegible] को सुलझाने में वह अपने को [illegible] पाता है। ऐसी बेचैनी की हालत में [illegible] कोई युक्ति ही नहीं रह जाती। अपने भया-[illegible] भविष्य की कष्टदायक कल्पना वह [illegible] बरदाश्त नहीं कर सकता; इसी [illegible] से और निराशा से त्रस्त होकर वह अपनी प्रणयिनी को पुकारकर कहता है—"प्रिये, लाओ शीराज़ी मदिरा; देखो यह क्षण-भंगुर जीवन बीत रहा है। मृत्यु—महाशून्य मुँह बाये दौड़ा आ रहा है। जल्दी करो, फिर यह समय आने का नहीं।" यही मानसिक प्रवृत्ति उसकी अधिकांश रचना का मूलाधार है।

विलासी मनुष्य हृदय से कमज़ोर होता है। जड़-वाद में मानसिक बल की कोई गुंजाइश नहीं। जो मनुष्य मृत्यु से घबराता है—जिसे जीवन के अंतःस्वरूप का कुछ भी ज्ञान नहीं, उसके लिए अनंत शक्ति का अक्षय भांडार नहीं खुल सकता। अतएव उमर ख़य्याम की रचना में आध्यात्मिकता और आशावाद की जो यत्किंचित् झलक दिखायी देती है, वह उसके विलासी जीवन की मानसिक दुर्बलता की क्षणिक प्रेरणा से ही अंकित हुई है, कुछ श्रद्धा और विश्वास के आधार पर नहीं। अथवा, यह भी बहुत संभव है कि परवर्ती कवियों ने आस्तिकता की पुट उसकी रचना में दे दी हो। जो हो, उमर ख़य्याम के यथार्थ आशय के संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता। आगे चलकर हम इस बात पर विचार करेंगे कि किस परिस्थिति में किन मानसिक प्रेरणा के वशवर्ती होकर उसने अपनी रुबाइयों की रचना की। साथ-साथ हम इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे कि उसकी नास्तिकता-मूलक विलासवादी रचना में आस्तिकता तथा अध्यात्म-वाद की जो यत्किंचित् झलक दिखायी देती है, इसकी आंतरिक प्रेरणा यदि स्वयं उमर ख़य्याम को हुई तो क्यों हुई; यदि नहीं तो ऐसी रुबाइयों का सम्मिश्रण उसकी रचना में संभवतः किस प्रकार हुआ।

रुबाइयों का रहस्य

अब तक उमर ख़य्याम की मानसिक प्रवृत्ति पर विचार करते हुए हमने उसकी भिन्न-भिन्न भावनाओं का वर्गीकरण करके पाठकों को यह बताने का प्रयत्न किया है कि रुबाइयों के लेखक की विचारधारा किसी भी निर्दिष्ट दिशा की ओर नहीं प्रवाहित होती। जिस संग्रह के आधार पर हम यह आलोचना लिख रहे हैं, उसे पढ़कर कोई भी विचारशील मनुष्य संदेह-रहित होकर कह सकता है कि उमर ख़य्याम एक संशयात्मा था। प्रतीत ऐसा होता है कि न तो वह पूरा नास्तिक ही था, और न ईश्वर

आत्मा के संबंध में उसकी आस्था ही ऐसी निश्चल थी कि हम उसे आस्तिक कह सकें। कभी निराशापूर्वक, कभी आशावादी के समान, कभी अनन्य भक्ति-भावना से प्रेरित होकर, कभी सूफ़ियों की पारदर्शी दृष्टि से, कभी निरंकुश विलासवादी की उद्भ्रांत भावना से उन्मत्त होकर, कभी हँसता हुआ, कभी रोता हुआ और कभी गंभीर मुद्रा धारण करके वह बहक-बहककर बातें किया करता है। ऐसी हालत में उमर ख़य्याम की स्थायी और वास्तविक मनोवृत्ति क्या थी, यह समझना बहुत कठिन काम है; परंतु फिर भी हम इसका प्रयत्न करेंगे।

इस लेख के प्रथम भाग में डॉक्टर रोज़न का मत उद्धृत करते हुए हमने पाठकों से यह आग्रह किया था कि उमर के नाम पर रुबाइयों के जितने संग्रह आज तक प्रकाशित हुए हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक है और जो संग्रह जितना अर्वाचीन है, उतनी ही उसमें रुबाइयों की संख्या बढ़ गयी है, यहाँ तक कि तेहरान में जो लिथोग्राफ की प्रतियाँ इस समय उपलब्ध हैं, उनमें रुबाइयों की संख्या एक हज़ार हो गयी है। रोज़न साहब का कहना है कि उमर के नाम पर जितनी रुबाइयाँ आज तक प्रकाशित हो चुकी हैं, उनकी संख्या प्रायः पाँच हज़ार है : लेकिन फिर भी उनकी यह निश्चित राय है कि स्वयं उमर ख़य्याम की लिखी हुई रुबाइयों की संख्या दो सौ से कम और तीन सौ से अधिक हरगिज़ नहीं हो सकती। पाठक देखें, कहाँ तीन सौ और कहाँ पाँच हज़ार। पाँच सहस्र के इस नक़ली प्रपंच में उमर की असली तीन सौ रुबाइयाँ कहाँ और किस तरह घुल-मिल गयी होंगी, यह कौन कह सकता है। अतएव किसी भी संग्रह के आधार पर उमर ख़य्याम की आलोचना करना एक ऐसा काम है, जो भ्रांति और भूलों की संभावना से भरा हुआ है। इस ईरानी कवि के संबंध में कई तरह के परस्पर-विरोधी मत जो प्रकट किये जाते हैं, उसका कारण भी यही है कि कई लोगों की कई प्रकार की रचनाएँ उसकी रुबाइयों के नाम से प्रकाशित हो गयी हैं। अन्यान्य लोगों के विचारों का ऐसा मिश्रण और भ्रमात्मक प्रक्षेप शायद ही किसी कवि की रचना में हुआ हो।

परंतु फिर भी हम ऐसा समझते हैं और यह समझ कर हमने संतोष भी मान लिया है कि नक़ली रचनाओं के सम्मिश्रण में से उमर की असली रुबाइयों को पहचानकर निकाल लेने का एक ऐसा साधन भी उपलब्ध हो सकता है, जिसे हम युक्तियुक्त कह सकते हैं। इसी कसौटी के द्वारा हमने उमर-कृत रुबाइयों की परख की है।

प्रत्येक विकासशील मनुष्य को पूर्ण ज्ञानी होने के पहले तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से होकर गुज़रना पड़ता है। प्रारंभिक दशा में उसकी बुद्धि प्रसुप्त रहती है और जीवन की सैद्धांतिक बातों को वह केवल श्रद्धा एवं अंधविश्वास के आधार पर स्वीकार कर लेता है। आगे चलकर जब मनुष्य की प्रज्ञा तथा तर्कशीलता कुछ जागृत हो जाती है, तब वह अपनी बुद्धि के प्रकाश में पूर्व-संचित श्रद्धामूलक धारणाओं की परीक्षा करने में स्वतंत्रतापूर्वक प्रवृत्त होता है। इस आत्मपरीक्षा में उसके पूर्वार्जित विश्वास यदि ठीक उतरे, तब तो उसकी श्रद्धा विचार-मूलक होकर और भी दृढ़ हो जाती है; यदि इस जिज्ञासा का परिणाम संतोष-जनक न हुआ तो वह संशयग्रस्त होकर अपनी पूर्वसंचित विश्वास-मूलक धारणाओं से पराङ्मुख हो जाता है। विकास-मार्ग की तीसरी मंज़िल वह है, जिसमें जिज्ञासु की बुद्धि गत-संदेह होकर शांत हो जाती है। इस अवस्था में तर्क और श्रद्धा के बीच पूर्ण समन्वय स्थापित हो जाता है; विश्वास विचार-मूलक और आचार विवेक-सिद्ध हो जाते हैं। हृदय और बुद्धि का यह सामंजस्य मनोगत क्षोभ और अशांति को बिलकुल मिटा देता है। पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हो जानेवाला ऐसा सौभाग्यशाली मनुष्य सब प्रकार के संशयों से मुक्त होकर जगज्जीवन और मरण के रहस्य को प्रत्यक्ष देख सकता है।

उमर ख़य्याम एक विद्वान् मनुष्य था, स्वतंत्र रूप से विचार करने की प्रवृत्ति उसके मन में जागृत हो चुकी थी और इसी कारण क़ुरान में प्रतिपादित जीवन-मरण-संबंधी धारणाओं से उसकी बुद्धि विरक्त हो गयी थी। इस्लाम एक श्रद्धा-मूलक धर्म है। इस धर्म के माननेवाले के लिए इस बात की अनिवार्य आवश्यकता है कि वह हज़रत मुहम्मद तथा 'इलहाम' के द्वारा प्राप्त हुए वचनों पर पूर्ण और अटल आस्था बना रखे, अन्यथा वह सच्चा मुहम्मदी नहीं हो सकता। परंतु

[illegible] इस बात की है कि क़ुरान द्वारा प्रतिपादित मत [illegible] और विज्ञान के आधार पर समझाने का बुद्धि-[illegible] और प्रामाणिक प्रयत्न आज तक किसी ने नहीं [illegible]। इस तर्कशील बीसवीं शताब्दी में भी छानबीन, [illegible] तथा वैज्ञानिक आलोचना की कुछ भी [illegible] इस मज़हब में नहीं है। यही बात ईसाई-मत [illegible] में भी कही जा सकती है। आगे चलकर हम [illegible] दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि इन दोनों सेमिटिक [illegible] की तर्क-संबंधी अक्षमता ही वर्तमान योरपीय जन-[illegible] में उमर ख़य्याम की लोक-प्रियता का कारण [illegible] है।

[illegible] जनसमाज में कई श्रेणी के लोग रहा करते [illegible] अधिकांश अशिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित लोगों की [illegible] प्रज्ञा प्रसुप्त रहती है, अतएव ऐसे जन-[illegible] के लिए धर्म का श्रद्धा-मूलक स्वरूप ही [illegible] हो सकता है। परंतु स्वयं धर्म को तर्क और [illegible] के आधार पर आरूढ़ रहना चाहिए; क्योंकि [illegible] के अंध-विश्वासी जब कालांतर में तर्कशील [illegible] होकर आलोचनात्मक दृष्टि से अपनी पूर्व-परिचित [illegible] धारणाओं की जाँच करेंगे, तो या तो विज्ञान [illegible] विवेक के द्वारा उनका समाधान करना होगा या [illegible] धर्म से उदासीन ही नहीं, प्रत्युत उसके घोर [illegible] होकर जन-समाज में विचारविप्लव के लिए [illegible] हो जायँगे। तीसरी कोई गति नहीं रह जाती। [illegible] का सारांश यह है कि इस प्रगतिशील संसार में [illegible] धर्म भविष्य में जीवित रह सकेगा, जो तत्त्वज्ञान [illegible] वैज्ञानिक विचार-सरणी के आधार पर स्थापित [illegible]; शेष सब काल-कवलित होकर अतीत के गर्भ में [illegible] हो जावेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं। जिस प्रकार [illegible] हड्डियों के ढाँचे के बिना शरीर तनकर खड़ा नहीं [illegible], ठीक उसी प्रकार तत्त्वज्ञान के आधार के [illegible] धर्म भी स्थिर और स्थायी नहीं हो सकता।

[illegible] ख़य्याम की आस्था इस्लाम के प्रति नष्ट हो [illegible]; क्योंकि उसकी तर्कशील बुद्धि अंधश्रद्धा से [illegible] हो चुकी थी। इसी कारण उसकी रचना में [illegible] के विरुद्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूप से प्रकाशित [illegible] के प्रमाण मिलते हैं। इस मज़हब के [illegible] ईमानदार आदमी के लिए रोज़ा और नमाज़ जीवनचर्या के आवश्यक अंग हैं। परन्तु उमर ख़य्याम इनकी खिल्ली उड़ाने के अभिप्राय से कहता है—

> चे जाये सलाहस्त ख़मोश ऐ साक़ी
> बगुज़र जे हदीसे ज़ुहदो नोश ऐ साक़ी

प्रत्येक मुहम्मद-मतावलंबी के लिए क़ुरान द्वारा प्रतिपादित स्वर्ग की कल्पना श्रद्धा और गौरव की चीज़ है। उसे प्राप्त करने के लिए ही वह समस्त धार्मिक अनुशासनों को स्वीकार करता है। परन्तु उमर ख़य्याम को बहिश्त की यह मुहम्मदी धारणा पसंद नहीं है। इसीलिए वह खुले शब्दों में कहता है—

> गोयंद बहिश्ते अदन बाहूर ख़ुश अस्त
> मन मे गोयम के आबे अंगूर ख़ुश अस्त
> ईं नक़्द बिगीर व दस्त अज़ आं निसिय बेदार
> का वाज़े दोहल बिरादर अज़ दूर ख़ुश अस्त।

पाठक देखें, रोज़ा के संबंध में वह कैसी परिहास-पूर्ण रुबाई लिखता है—

> तवअम वनमाज़े रोज़ा चूँ मायल शुद
> गुफ़्तम के नजाते कुल्लियम हासिल शुद
> अफ़सोस के आं वज़ू व बादे बशिकस्त
> वाँ रोज़ा बनीम जुरअये मय बातिल शुद

क़ुरान प्रत्येक दीनदार मनुष्य को इस बात का आदेश देती है कि वह शराब से सख़्त परहेज़ रक्खे; परन्तु उमर ख़य्याम के लिए शराब ही सब कुछ है। उसकी रचना में शराब की इतनी अधिक प्रशंसा है कि रुबाइयों के पढ़नेवालों को पढ़ते-पढ़ते शराब की गंध भी आने लगती है। मदिरा इस ईरानी कवि के लिए जीवन-सर्वस्व है, यहाँ तक कि वह अपनी अंत्येष्टि-क्रिया भी उसी से कराना चाहता है!

उमर ख़य्याम के कुछ ऐसे प्रेमी भी हैं, जो उसकी 'अंगूरी शराब' का खींच-तानकर आध्यात्मिक आशय निकालते हैं। इस विषय की चर्चा हम आगे [illegible] करेंगे। इस प्रसंग में हम इसी एक बात का [illegible] करना चाहते हैं कि उमर ख़य्याम की रुबाइयों का रहस्य उसके इस्लाम के प्रति विद्रोह में ही [illegible] है। जितनी बातों की क़ुरान में निंदा की है वे सब इस [illegible] को सुहाती हैं, और जितनी बातों की मुहम्मदी मत के अनुसार आवश्यकता मानी गई है वे सब

उसकी दृष्टि में त्याज्य, उपहासास्पद तथा निंदनीय हैं। उमर की रुबाइयों की यही एक मुख्य विशेषता है।

कहने का सारांश यह है कि उमर ख़य्याम इस्लाम का विद्रोही था। क़ुरान द्वारा प्रतिपादित ईश्वर, जीव, जीवन, मरण तथा स्वर्ग और नरक-संबंधी विचारों के लिए जिस तर्कशून्य अंधविश्वास की आवश्यकता थी, उससे ऊबकर उसकी बुद्धि प्रतिक्रियात्मक (Reactionary) हो गयी थी। अतएव ईश्वर से वह उदासीन था। अपनी मानवीय विवशता और किसी अदृश्य दैवी सत्ता का अनुभव उसे अवश्य होता था, परन्तु उस अगोचर और निरंकुश शासक के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा और प्रेम की भावना जागृत नहीं थी। वह ईश्वर की तरफ़ बग़ावत की भावना से देखा करता था। इस लाचारी पर उसे आत्मग्लानि होती थी। ऐसी हालत में वह शिकायत करता है और ईश्वर से कहता है—

वर रह गुज़रम हज़ार जा दाम नेही
गोई बेगीरमत अगर गाम नेहीं
यक ज़र्रा ज़ुहुक्मे तो जहाँ खाली नेस्त
हुक्मे तो कुनी व आसियम नाम नेही

आत्मा का आभास उसे कभी-कभी हो जाता था; परन्तु उसका हृद्गत विश्वास यही था कि शरीर के साथ ही जीवन का अंत है, अतएव वर्तमान जीवन ही सब कुछ है। फिर उसे निश्चित नाश की चिन्ता से उद्विग्न क्यों बनाना चाहिए, उसका पूरा-पूरा आधि-भौतिक मज़ा ले लेना चाहिए—यही उमर ख़य्याम के नीतिशास्त्र का निचोड़ है। परन्तु जिस मनुष्य को जीवन के व्यापक और यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं है और जो मृत्यु को जीवन का अंत मानता है, उसके हृदय से मरण का भय तिरोहित नहीं हो सकता। वह सांसारिक आमोद-प्रमोद में अपना जी चाहे जितना बहलावे—शराब के नशे में दिन-रात मस्त रहे, प्रण-यिनी के प्रेम-संभाषण में आत्म-विस्मरण कर डाले; परन्तु फिर भी बार-बार मृत्युरूपी सर्वनाश की चिंता उसके हृदय-गगन में घबराहट और निराशा की काली-काली घटाएँ उड़ाकर लाती ही है। इस दारुण वेदना से वह सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। मरण-चिंता पर अधिकार और विजय तो वही प्राप्त कर सकता है, जो जीवन के अनंत स्वरूप को देख सकता है और मृत्यु को जीवन का पूर्ण विराम नहीं समझता। जिस लिए मृत्यु अनंत जीवन का सिंहद्वार है, वही मनु मृत्युंजय है। उसके लिए चिंता, भय तथा निरा परिहास-सूचक शब्द हैं।

कहने का अभिप्राय यह कि उमर ख़य्याम की कवि जड़वाद-मूलक, निराशाप्रधान विलासवाद है। आशय को प्रकट करनेवाली जितनी रुबाइयाँ हैं, वे प्रा सब उसी की हैं। इससे भिन्न एवं विपरीत भावना से गर्भित जितनी रचनाएँ पायी जाती हैं, वे संभव दूसरों की हैं और कालांतर में उमर के नाम से प्रका कर दी गयी हैं। तीन सौ की संख्या में यदि एक ह रुबाइयाँ और जोड़ दी जायँ, तो मूलरचना का प लगाना कितना कठिन काम है—इसका अनुमान क भी कर सकता है। परन्तु फिर भी इस मिश्रित प समुच्चय में उमर ख़य्याम की असली रुबाइयों की प चान करने का यदि कोई माननीय और तर्क-सि मानदंड हो सकता है तो वही है जिसकी चर्चा अभी कर चुके हैं। उमर की रुबाइयों का रह भौतिकता-मूलक निराशा-प्रधान विलासवाद में प्रत्य अंकित है।

उमर की मदिरा

उमर ख़य्याम के अनन्य प्रेमियों में कई लोग भी हैं जो उसकी 'मय' से आध्यात्मिक उन्माद अर्थ निकालते हैं। इसी धारणा प्रेरित होकर वे रुबाइयों के लेख को तत्त्वदर्शी महाकवि भी समझते हैं। जिन लोगों ऐसी भावना है, उनकी श्रद्धा पर हम आघात न करना चाहते। परन्तु एक विवेकशील समालोचक दृष्टि से यदि कोई उमर की रचना का अनुशीलन क तो उसे अनायास ही प्रतीत हो जाता है कि इस ईरा कवि ने 'मय' का उपयोग उसके भौतिक अर्थ में किया है। उसके जीवन का सिद्धांत ही है—'ईं न वगीर'—जो वस्तु प्रत्यक्ष सामने है, उसे स्वीकार कर ऐसी हालत में साक़ी के सुकुमार और सुंदर हाथों रक्खे हुए—'आबे-अंगूर' से ओतप्रोत छलकते प्याले को छोड़कर ईरान का यह मस्ताना कवि परो आत्मानंद की लगन नहीं लगा सकता। इस आध्या त्मिक भावना की उसके संशयशील हृदय में गुंजाइश

थी। जो अनात्मवादी है, उसके लिए आत्मानंद की संभावना कैसी ?

इसमें संदेह नहीं कि उर्दू और फ़ारसी के अनेक शायरों ने 'मय' का प्रयोग रूहानी अर्थ में किया है। मदिरा के उन्माद में मस्त होकर जिस प्रकार मनुष्य अपने तन-मन की सुध भूल जाता है, प्रायः उसी प्रकार आत्मानंद का अनुभव करनेवाला सिद्ध पुरुष भी विस्मरण-शीलता का परिचय दिया करता है। 'मैं' और 'तू' का द्वंद्व उसके हृदय से तिरोहित हो जाता है। परंतु दोनों की आंतरिक स्थिति भिन्न ही नहीं, बिलकुल विपरीत होती है—पहली अत्यंत जड़ताक्रांत और दूसरी महान् चैतन्यमयी। फिर भी बाहरी लक्षणों के आधार पर कवि-परंपरा ने ब्रह्मानंद की उपमा मदिरा से दे डाली है और वह आज तक चली आयी है। शायद ही फ़ारसी तथा उर्दू का कोई ऐसा शायर हो, जिसने 'मय' का प्रयोग कई प्रसंगों पर रूहानी अर्थ में न किया हो। इसी आशय को लक्ष्य में रखते हुए उर्दू का सुप्रसिद्ध कवि ग़ालिब कहता है—

मय से ग़रज़ निशात है किस रूसियाह को,
इक गूना बेख़ुदी मुझे दिनरात चाहिए।

एक दूसरा शायर कहता है—

एक क़तरये मय जब से साक़ी ने पिलाया है,
उस रोज़ से हर क़तरा दरिया नज़र आता है।

कोई फ़ारसी के शायर फ़रमाते हैं—

सूफ़ी बशोय ज़ंग दिले ख़ुद ब आबे मय,
कीं शुस्तो शोय ख़िरक़ये गुफ़रां नमी रसद।

हज़रत निज़ामी लिखते हैं—

मये को मरा रहबमंज़िल बुरद,
समा दिल बुरद ऊ ग़मे दिल बुरद।

इस तरह पाठक देखेंगे कि उर्दू और फ़ारसी की कविताओं में लिखने और पढ़नेवाले दोनों तरह के लोग आत्मानंद की तल्लीनता की कल्पना मदिरा-जनित उन्माद से कर लिया करते हैं। सूफ़ी-संप्रदाय के परवर्ती ईरानी कवि 'लुत्फ़ेमय' के प्रत्यक्ष प्रशंसक थे। परंतु जब वेदांत के प्रभाव से 'अनलहक़' वाला सिद्धांत ईरान में प्रचलित हुआ और सूफ़ियों का संप्रदाय स्थापित हुआ, तब से वहाँ की शायरी में मय की मस्ती आत्मानंद के अर्थ में भी समझी जाने लगी। बात तो यह है कि लोग जिस भौतिक पदार्थ के अधिक प्रेमी होते हैं और जिसे अच्छे से अच्छा समझते हैं, उसी की सहायता, उपयोग तथा उपमा से पारलौकिक उत्कर्ष की भी सच्ची-झूठी कल्पना कर लिया करते हैं। स्थूल सृष्टि से परे जिनकी ज्ञानेंद्रियाँ जा ही नहीं सकतीं, उनके लिए उपाय ही क्या है ? अच्छे से अच्छे बग़ीचे को देखकर 'अदने-बहिश्त' तथा 'नंदनवन' का अनुमान करना ही पड़ता है। सुंदर से सुंदर मूर्ति बनाकर ईश्वरत्व का आरोप करना ही पड़ता है। बड़ी-से-बड़ी मसजिद बनवाकर ईश्वर का सान्निध्य स्थापित करने के सिवा जड़ जगत् में जड़ताक्रांत प्राणियों के लिए अन्य कोई साधन ही नहीं।

हिंदू-संस्कृति में शराब का चलन नहीं है; वह बड़ी हेय वस्तु मानी जाती है। मंथन के द्वारा जब वह समुद्र से निकल पड़ी, तो देवताओं ने उसे सिर्फ़ सूँघकर दानवों के सिपुर्द कर दिया। तभी से वह आसुरी संपत्ति मानी जाती है; देवताओं का उस पर कोई दावा नहीं है। इसी कारण देव-भक्त हिंदू-समाज के लिए वह हमेशा से त्याज्य और वर्जित है। भारतीय आर्यों में अल्पसंख्यक पतनशील लोग ही उसके प्रेमी होते आये हैं। द्विजातियों के समाज ने उसे सदैव तिरस्कार की दृष्टि से देखा है। इस पतनशील युग में भी मदिरा का उपयोग हिंदू-समाज के अंतर्गत रहनेवाली अनार्य-जातियों में ही विशेष है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य तथा काव्य के संसार में मदिरा का उन्माद नहीं दिखायी देता, यहाँ तक कि निकृष्ट श्रेणी के श्रृंगारी कवियों में भी उसका चलन नहीं है। हाँ, कभी-कभी उसकी एकआध झलक 'अमी हलाहल मद-भरे, स्वेत स्याम रतनार' नेत्रों में दिखायी दे गयी है। इससे अधिक उसकी चाह भारतीय काव्य-साहित्य में है ही नहीं।

परंतु प्राचीन ईरानी तथा मध्यकालीन उर्दू-शायरी में शराब एक चीज़ है; फिर चाहे उसका कुछ भी अर्थ लगाइए। 'लुत्फ़ेमय' से शायरों की दोनों दुनिया सध जाती हैं। धर्मभीरु और पारलौकिक प्रवृत्ति के लोग उसका रूहानी मतलब निकालकर प्रसन्न हो जाते हैं, और संसार के सर्व-साधारण श्रृंगार-प्रिय तथा विलासी वृत्ति के लोगों को भी वही नशा आ जाता है जो उन्हें

चाहिए। इस तरह "दो जहाँ का लुत्फ़ पाया यक जहानाबाद में" वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। हमारा विश्वास है कि उर्दू और फ़ारसी के शायर जान-बूझकर अपनी 'मय' से दुभाषिये का काम लेते हैं। स्वयं उनका झुकाव रूहानी शराब की ओर रहता है या नहीं, यह परमात्मा ही जाने। मानव-समाज में उदात्त भावनाओं का प्रचार करनेवाले कवि-संप्रदाय के लिए ऐसी श्रेय-प्रेय-संबंधी संदिग्धता शोभा देनेवाली बात नहीं हो सकती, ऐसी हमारी निश्चित धारणा है।

परंतु उमर ख़य्याम को हम हृदय से धन्यवाद देते हैं, इसलिए कि उसने अपनी 'मय' को संदिग्धता की परिधि से बाहर करके ईमानदारी के साथ निर्भयता-पूर्वक 'आबे-अंगूर' अथवा 'दुख़्तरे-रज़' कहा है और उसे बहिश्त से भी बेहतर माना है। देखिए—

गोयंद बहिश्ते अद्न बाहूर ख़ुश अस्त
मन मे गोयम के आबे अंगूर ख़ुश अस्त

उमर ख़य्याम अपने जीवन-सिद्धांत को अस्पष्ट शब्द-जाल में प्रच्छन्न नहीं रखना चाहता था। उसे इस बात की अनुचित इच्छा नहीं थी कि लोग उसे कोई बड़ा अध्यात्मशास्त्री तथा अनुभवशील महापुरुष समझें। पाठक देखें, उसने अपनी मानसिक दुरवस्था का परिचय कितनी स्पष्टता से दिया है—

दुश्मन बग़लत गुफ़्त के मन फ़लसफ़ीयम
एज़द दानद के आंचह ऊ गुफ़्तनीयम
लेकिन चो दरीं ग़म आशियां आमदहअम
आख़िर कम अज़ाँ के मन न दानम के कैयम

उमर ख़य्याम का यह आत्मरहस्योद्घाटन सर्वथा प्रशंसनीय है। वह कहता है कि वे लोग मेरे दुश्मन हैं जो मुझे तत्त्वज्ञानी समझते हैं; ईश्वर जानता है कि मुझे जैसा वे समझते हैं, वैसा मैं नहीं हूँ। मेरी आंतरिक अवस्था बहुत बुरी है। मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं कौन हूँ। इसमें संदेह नहीं कि ईरान का यह विलासवादी कवि आध्यात्मिक चिंतन से बहुत दूर था। उसे तो स्थूल दृष्टि में आनेवाले ठोस पदार्थों की सत्यता ही प्रतीत होती थी। उसे चाहिए थी नक़्द चीज़। इसीलिए उसने अपनी 'मय' की परिभाषा पहले ही दे दी है। उसे इस बात की बिलकुल इच्छा नहीं थी कि लोग उसकी मदिरा का आध्यात्मिक आशय निकालें; क्योंकि अध्यात्मवाद ही का तो विरोधी था। इसीलिए उसने ऐसी कई रुबा[illegible] लिखी हैं, जिनसे उसके यथार्थ आशय का स्पष्टी[illegible] और भी अधिक हो जाता है। कुछ [illegible] लीजिए—

यारां चो ब इत्तेफ़ाक़ दीदार कुनेद
बायद के ज़े दोस्त याद तिसयार कुनेद
चूं बादह ख़ुशगवार नोशेद बहम
नौबत चो बमा रसद निगूसार कुनेद

वह साफ़ कहता है कि दोस्तो, अगर मेरे मर[illegible] बाद इत्तफ़ाक़ से कहीं आप लोग फिर मिलें [illegible] 'बादह ख़ुशगवार' के प्याले महफ़िल में ढाले जायँ, मेरे नाम से भी एकआध प्याला ढाल देना।

पाठक अनायास देख सकते हैं कि मरने के [illegible] ढाली हुई यह मदिरा रूहानी नहीं हो सकती।

यारां चो बइत्तिफ़ाक़ मीआद कुनेद
ख़ुदरा बजमाल यकदिगर शाद कुनेद
साक़ी चो मये मुग़ानह दरकफ़ गीरद
बेचारह फ़लां रा बदुआ याद कुनेद

भावार्थ—ऐ दोस्तो, मेरी मृत्यु के बाद आप [illegible] जब मिलें और 'मये मग़ानह' लेकर जब साक़ी [illegible] लोगों का स्वागत करे, तो मुझ बेचारे की भी दुआ[illegible] साथ थोड़ी-सी याद कर लेना; भूल न जाना।

बा आंके शराब परदये मा बदरीद
ता जां दारम न ख़्वाहम अज़ बादह बरीद
मन दर अजबम ज़े मै फ़रोशां केशां
बेह जीं के फ़रोशंद चेह ख़्वाहंद ख़रीद

भावार्थ—यद्यपि शराब के कारण मेरी सारी प्र[illegible] खो गयी है, तो भी मृत्युपर्यंत मैं इसे न छोड़ूँ[illegible] मुझे आश्चर्य होता है कि शराब बेचनेवाला ऐसी कौन[illegible] चीज़ के बदले उसे दे डालता है! शराब से [illegible] अच्छी चीज़ कोई हो ही नहीं सकती।

चूं फ़ौत शवम बबादह शोयेद मरा
तलक़ीं जे शराबे नाब गोयेद मरा
ख़्वाहेद बरोज़े हश्र यावेद मरा
अज़ ख़ाक दरे मैकदह जोयेद मरा

भावार्थ—भाई, मेरे मरने के बाद मेरी लाश [illegible] शराब ही से धोना और मेरी अंत्येष्टिक्रिया भी [illegible]

...ता से ही करना। क़यामत के दिन अगर तुम मुझसे मिलना चाहो, तो मैं मयख़ाने के दरवाज़े के पास ही ... के नीचे मिलूँगा; अन्यत्र नहीं।

हर रोज़ बरानम के कुनम शब तौबह
अज़ जामो प्यालये लबालब तौबह
अकनूं के रसीद वक़्ते गुल तरकमदेह
दर मौसमे गुल ज़े तौबह यारब तौबह

भावार्थ—प्रतिदिन मैं यह संकल्प करता हूँ कि ... रात से मैं शराब पीना छोड़ दूँगा। परंतु जब ...ाब के फूल खिलते हैं, तब तो मेरी तबियत बदल ...ती है। हे ईश्वर, ऐसी तौबा से तौबा करना ही ...ा है—

तौबा तो कर चुका था मगर क्या करूँ जलील
बादल का रंग देख तबीयत बदल गयी

× × ×

मन बादह बजाये यक मनी ख़्वाहम कर्द
ख़ुदरा बदू जामे मय ग़नी ख़्वाहम कर्द
अव्वल सेह तलाक़ अक़्लो दीं ख़्वाहम दाद
पस दुख़्तरे रज़ रा बज़नी ख़्वाहम कर्द

भावार्थ—एक प्याला शराब पहले पीऊँगा। बाद ...ाले और भी पीकर मस्त हो जाऊँगा। पहले ...ल व ईमान दोनों को तलाक़ दे दूँगा। इसके बाद ... की लड़की (शराब) से शादी करूँगा।

गोयंद मख़ुर मै के बलाकश बाशी
दर रोज़ मुक़ाफ़ात दर आतश बाशी
ईं हस्त वले ज़ेहरदो आलम ख़ुशतर
ईं यकदमे कज़ शराब सर ख़ुश बाशी

भावार्थ—लोग कहते हैं कि शराब मत पीओ; ...ें कष्ट भोगने पड़ेंगे और उस दिन जब कि ...र्मों का हिसाब होगा, तू नरक की आग में डाल ... जायगा। लेकिन शराब के नशे में जो मज़ा आता ...है तो दोनों दुनिया से बढ़कर होता है।

...सी रुबाइयों के उदाहरण कहाँ तक दें। हम जिस ... के आधार पर यह आलोचनात्मक निबंध लिख ...हैं, उसमें बीसों रचनाएँ ऐसी पायी जाती हैं ...में उमर ख़य्याम ने मदिरा का प्रयोग स्पष्ट रूप ...तिक अर्थ में ही किया है। अतएव हमारी यह ...ढ़ धारणा है कि जो लोग उसकी मदिरा से आध्यात्मिक आशय निकालने का प्रयत्न करते हैं, वे इस ईरानी कवि और अपनी समझ दोनों के प्रति अन्याय करते हैं। पक्षपातरहित विवेकदृष्टि से विचार करनेवाला कोई भी मनुष्य इस खींचातानी को पसंद न करेगा। क्या रूहानी मदिरा से लाश धोयी जा सकती है? क्या यारों की मजलिस में रूहानी शराब के प्याले ढलते हैं? जब रुबाइयों के लेखक ने स्पष्टतापूर्वक 'मये मुग़ानह' 'दुख़्तरे रज़' और 'आबे अंगूर' लिखा, तो उसके हृदय में किसी अंश में आध्यात्मिकता के भाव क्या विद्यमान थे? जब उसने साफ़-साफ़ यह लिख दिया कि 'गोयंद मख़ुर मय के बलाकश बाशी'—तो क्या लेखक का यह आंतरिक आशय हो सकता था कि लोग उसकी 'मय' का आध्यात्मिक अर्थ निकालें? कदापि नहीं। हम तो रुबाइयों के लेखक को इसी एक बात के लिए धन्यवाद देते हैं कि उसने अपने विचारों के संबंध में ग़लतफ़हमी की कोई भी गुंजाइश नहीं रक्खी है। उर्दू और फ़ारसी के इतर कई शायरों के समान उसने ऐसा प्रयत्न ही नहीं किया कि उसकी रचना को सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की मनोवृत्ति के लोग पसंद करें। जो लोग उमर ख़य्याम के जीवन-सिद्धांत के विरुद्ध थे, उनको प्रसन्न करना उसे अभीष्ट ही नहीं था। रोज़ा, नमाज़ और परहेज़ से वह बिलकुल विरक्त था। इधर सूफ़ी-संप्रदायवाले तत्त्वज्ञानियों के लिए भी उसके हृदय में कोई आदर-भाव नहीं था। ऐसी हालत में जो लोग इस ईरानी कवि को अध्यात्मवादी एवं तत्त्वदर्शी 'फ़िलासफ़र' समझते हैं, उनके संबंध में हम क्या कहें। स्वयं उमर ख़य्याम ही उन्हें अपना जानी दुश्मन समझता है। देखिए, ऐसे लोगों के संबंध में वह क्या कहता है—

'दुश्मन बग़लत गुफ़्त के मन फ़लसफ़ीयन'

वे मेरे शत्रु हैं जो मुझे तत्त्वज्ञानी समझते हैं।

वर्तमानकालीन विलासवादी योरपियन समाज की बदौलत उमर ख़य्याम की कीर्ति चारों ओर फैली हुई है। पश्चिमी देशों में जो उसके प्रेमी तथा भक्त हैं, उनमें से अधिकांश लोग धार्मिक-श्रद्धा-शून्य जड़वादग्रस्त हैं और अपने उसी भौतिकता-मूलक दृष्टिकोण से उमर की रुबाइयों को पढ़ते-पढ़ाते हैं। इसके सिवा जिन्होंने

अपने अनुवाद के द्वारा उसे लोकविस्मृति के तिमिराच्छन्न गर्त से बाहर निकालकर लोकप्रियता के विद्युत्प्रकाश में लाकर आदरपूर्वक रक्खा है, स्वयं उन फ़िट्ज़ेरल्ड साहब ने भी रुबाइयों को इसी आधिभौतिक दृष्टि से देखा और समझा है। उमर ख़य्याम के एक अनन्य प्रेमी फ़्रेंच विद्वान् निकोलस साहब भी हो गये हैं। उनकी राय में रुबाइयों के लेखक ने 'मय' का प्रयोग आध्यात्मिक अर्थ में ही किया है। परंतु यह सम्मति फ़िट्ज़ेरल्ड को बिलकुल मान्य नहीं है। देखिए, निकोलस के विचारों का खंडन करते हुए वह क्या कहते हैं—

M. Nicolas whose edition has reminded me of several things and instructed me in others does not consider Omar to be the material epicurean that I have literally taken him for but a mystic shadowing the Deity under the figure of wine, wine-bearer etc, as Hafiz is supposed to do; in short a Sufi poet like Hafiz and the rest.

I cannot see reason to alter my opinion formed as it was more than a dozen years' ago, when Omar was first shown to me by one to whom I am indebted for all I know of Oriental and very much of other literature. He admired Omar's genius so much that he would have gladly accepted any such interpretation of his meaning as M. Nicolas, if he could. That he could, not appears by his paper in the Calcutta Review already so largely quoted in which he argues from the poems themselves as well as from what record remains of the poet's life.

On the other hand, as there is far more historical certainty of his being a philosopher of scientific insight and ability far beyond that of the age and country he lived in, of such moderate ambition as becomes a philosopher and such moderate wants as rarely satisfy a debauchee; other readers may be content to believe with me that what Omar celebrates is simply the juice of the grape, he bragged more than he drank of it in very defiance perhap of the spiritual wine which left its votaries sunk in hypocricy and disgust."

सारांश —"मेरी राय में उमर ख़य्याम एक आधिभौतिक विलासवादी लेखक था, परंतु निकोलस साहब ऐसा नहीं समझते। उनकी धारणा है कि रुबाइयों का रचयिता एक रहस्यवादी कवि था और उसने 'शराब' और 'साक़ी' का उपयोग करके ईश्वर तथा अध्यात्मवाद की ओर संकेत किया है। इस संबंध में उसने हाफ़िज़ तथा इतर सूफ़ी कवियों का अनुकरण किया है।

"परंतु उमर ख़य्याम के संबंध में आज से बारह वर्ष पहले मैंने अपनी जो राय निश्चित की थी, उसमें किसी प्रकार परिवर्तन करने के लिए मुझे कोई कारण नहीं दिखायी देता। जिस सज्जन के द्वारा मुझे इस ईरानी कवि का पहलेपहल परिचय मिला, वह उमर के इतने प्रेमी थे कि वह निकोलस साहब की सम्मति को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लेते, लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हें कोई यथार्थ कारण ही नहीं मिला। यह बात 'कलकत्ता'-रिव्यू में प्रकाशित उनके लेख से प्रकट होती है। इस लेख में उन्होंने उमर की रचना तथा उनके जीवन-चरित्र के प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि निकोलस साहब की राय युक्तिसंगत नहीं है।"

"इस बात को सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिक प्रमाण अधिक हैं कि उमर ख़य्याम की वैज्ञानिक दृष्टि तथा योग्यता अपनी समकालीन परिस्थिति से बहुत आगे बढ़ी हुई थी। उसकी महत्त्वाकांक्षा तथा आवश्यकताएँ भी उतनी ही थीं जितनी कि एक वैज्ञानिक विद्वान् के लिए पर्याप्त हो सकती हैं। अतएव जो लोग उसे रहस्यवादी नहीं समझते, वे मेरे इस विचार से संतोष मान सकते हैं कि उमर ख़य्याम ने जिस मदिरा की प्रशंसा की है, वह अंगूरी शराब के सिवा और कुछ भी नहीं है। परंतु वह मदिरा का उपयोग उतना अधिक नहीं करता था, जितना कि उसने उसे अपनी रचना में महत्त्व दिया है। 'मय' का रूहानी अर्थ में उपयोग करनेवाले सूफ़ी-संप्रदाय के कपटी कवियों के प्रति अपनी तिरस्कार-भावना को प्रकट करने की इच्छा से ही उसने संभवतः ऐसा किया होगा।"

उपर्युक्त अवतरण से पाठकों को अनायास प्रतीत हो जायगा कि उमर ख़य्याम के काव्य-गत दृष्टिकोण के संबंध में फ़िट्ज़ेरल्ड की क्या राय थी। आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस मनुष्य ने रुबाइयों का अनुवाद करके सारे संसार में उनका प्रचार किया, स्वयं उसकी सम्मति तो यह थी कि उमर ख़य्याम की मदिरा का उपयोग भौतिक अर्थ में हुआ है, परंतु उसी अनुवाद के पढ़नेवाले मूल रचना से अपरिचित लोग खींच-तानकर उसका आध्यात्मिक आशय निकालने का निष्फल प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। ग्रंथों का पठन-पाठन करनेवाले अधिकांश लोगों की मानसिक प्रकृति अपनी हृद्गत भावना के अनुसार ही तात्पर्य निकालने की हुआ करती है। निरपेक्ष बुद्धि से ग्रंथ-परिशीलन तथा मनन करना केवल सूक्ष्मदर्शी विद्वानों का ही काम है।

निराशावादी के प्रति जीवन

एक बूँद अवसाद, सुखों के सौ बूँदों का मेला ;
कहते हो विष की प्याली में मैं ही मिला अकेला !
रोते आते जो आते हैं, जाते जो सकुचाते ;
बड़े क्रूर हो यदि तुम मुझको ऐसा कठिन बताते !
आँसू की भाषा में भर दो चाहे जितनी पीड़ा,
पीड़ा में ही तो होती है सुख की लज्जा-क्रीड़ा ।
फीकी लगती है मेरी-सी लम्बी रात अकेली ?
क्या स्वप्नों से नहीं मिले हो—जिनकी प्रेम-हवेली ?
तुम्हें देखकर कह सकता हूँ, तुम क्यों इतना रोते ;
प्रायश्चित कर कभी नहीं तुम हो अपना मुख धोते ।
'अरे ! विनय के गुलदस्ते में क्यों बस गयी उदासी ?'
कुछ कलियाँ रह गयीं भूल से जगती जगती प्यासी ।
हाथ रँगे हो उफ़ शोणित से, पर आँखें शरमाईं ;
क्या बचकर बिजली से तुमने की मेरी अगुवाई !
फूलों को चुनने आते हो, काँटों से बिंध जाते !
क्या मस्ती है—अपना-सा मुख सबका लाल बनाते !
कहते हो—'कोई रोता है अभी न कलियाँ खोलो' ;
मैं कहता हूँ, इस मुख से फिर कभी न ऐसा बोलो ।
जाग रहे हैं तारे सारे उनको पास बुला लो,
ऐसे सोने से अच्छा है अपने पास सुला लो ;
'प्रेयसि के पाने से पहले मृत्यु कौन अपनाये !'
वह भी कोई ईश्वर होगा जो मरना सिखलाये !
कुछ भी तुम्हें नहीं पूछा है, की उसने नादानी,
अच्छा हुआ सुरूप-अर्चि पर छिड़का अपने पानी ।
'आयी, ज़रा दिखायी देता नहीं दूर का कोई' ;
पलकों से छूकर अब कह दो मुझसा और न कोई ।
कोटि विनय की तब बालों पर कहीं सफ़ेदी आयी,
बहुत बड़े होने पर मैंने यह सुन्दरता पायी ।
ले चल मृत्यु ! जहाँ चलना हो कहते मुझे कहानी,
राम नाम ले चुकी, देख ले मेरी पहली बानी ।
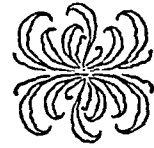
[श्री० केदारनाथ अग्रवाल 'बालेन्दु'

राष्ट्रीय प्रगति में छायावाद

[श्री० कृष्णलाल शरसोदे 'हंस' विशारद]

जब से हिंदी-साहित्य के विशाल प्राङ्गण में जीवन के प्रातःकालीन सूर्य की प्रथम किरण का ...थ प्रकाश प्रखरित हुआ, तभी से जागृति की जीवित ...ति भारत में यत्र-तत्र-सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगी ... हिंदी-साहित्य—विशेषकर काव्यजगत् में युगान्तर ...सतत स्रोतस्विनी प्रवाहित करने के लिए युवकों ...हृदय-मंच पर उषःकालीन निर्मल किंतु अमिट ...ग में अनुरंजित हो क्रांति अवतरित हुई। युग था ...ांति का, अतः युवकों ने ही उसका उत्फुल्ल हृदय से ...गत किया। इस प्रकार हिंदी-काव्य-जगत् में एक ...मान युग का श्रीगणेश हुआ, जो काव्य का वर्तमान ...ग अथवा 'छायावादी युग' के नाम से प्रसिद्ध है।

'छायावाद' की परिभाषा में बहुत मतभेद है। ...ई इसे रहस्यवाद, कोई योरप का लोकादर्शवाद (Humanitarian Idealism) तो कोई ...वाद कहता है। हम इसकी परिभाषा का निर्णय ...ने के पूर्व काव्य के प्रधान अंगों की ओर ध्यान देंगे।

यह तो कदाचित् सभी स्वीकार करेंगे कि जीवन ...वास्तविक स्वरूप और सौंदर्य को प्रत्यक्ष देखने के ...ए हमें विश्व की वस्तुओं को काव्यदृष्टि से ही ...ना पड़ेगा; क्योंकि जब तक हम अपने व्यक्तिगत ...वन को लोक-जीवन में न मिला देंगे तब तक विश्व ...साथ हृदय का पूर्ण सामंजस्य न हो सकेगा, और ...व के साथ हृदय के सामंजस्य के विना विश्व के ...दय की तह में हम अपनी विचार-धारा पहुँचाने में ...असमर्थ रहेंगे एवं विश्व की पवित्र भाव-भूमि पर ...व्य का सुरभित उपवन लगाना भी कवि के लिए ...संभव होगा।

उपर्युक्त वाक्य-समूह में "विश्व के साथ हृदय का ...सामंजस्य"—शब्दों से यह स्पष्ट ही है कि काव्य का ...बंध 'विश्व' और 'हृदय' से ही है, एवं यह संबंध 'विश्व' ...और 'हृदय' से परे पदार्थों से नहीं हो सकता; क्योंकि ...विश्व से परे कुछ है या नहीं, और यदि है तो उसका ...वास्तविक स्वरूप कैसा है—इसका ठीक पता लगाना बिलकुल असंभव है और कल्पना की उड़ान की धुन में परलोक—अनन्त की सृष्टि-रचना का कल्पित चित्र चित्रित करना जगत् को और स्वयं अपने को भी धोखा देना है। यद्यपि वर्तमानकालीन अनेक कवि अपनी कल्पना के बल पर अनंत का कल्पित चित्र चित्रित करते देखे जा रहे हैं, तथापि वे अपने 'अनंत' के चित्र-चित्रण में या तो विश्व की उन वस्तुओं का बाहुल्य दिखलाते हैं, जो अधिक सौंदर्यमयी हैं या जिन्हें वे अपनी रुचि के अनुसार अधिक आकर्षक अथवा विलास से ओतप्रोत देखते हैं। इस प्रकार सृष्टि के चुने हुए पदार्थों के बाहुल्य के स्थान को ही वे 'अनंत—परलोक' के नाम से संबोधित करते हैं अथवा उसका ऐसा चित्र खींचते हैं, जिसे समझने और जिस पर विश्वास करने में मानव-मस्तिष्क असमर्थ है। वास्तविक बात तो यह है कि काव्य केवल उन्हीं वस्तुओं के सौंदर्य को व्यक्त कर सकता है, जिसे कवि देखता है और जिनका अनुभव कवि-हृदय करता है।

कभी वह किसी वस्तु के सौंदर्य पर मुग्ध होता है, कभी किसी के प्रेम में आसक्त होता है, कभी किसी को संकट में देखकर वेदना से व्यथित होता है, कभी दूसरों पर किये जानेवाले अत्याचारों को देखकर क्रोध से विह्वल होता है, कभी दूसरों को संताप की ज्वाला में जलते देख पीड़ा का अनुभव करता है, और कभी किसी विचित्र घटना को देखकर वह आश्चर्यान्वित होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न समय और स्थितियों में कवि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का अनुभव करता है और इस अनुभव के प्रभाव से उसके हृदय में जो विचार-भाव-धारा प्रवाहित होती है, उसे ही वह 'काव्य' रूप में व्यक्त कर देता है। इस प्रकार कवि के अपने काव्य के व्यक्तीकरण में उसकी दोनों अनुभूतियाँ—बाह्यानुभूति और आन्तरिक अनुभूति—कार्य करती हैं, पर वास्तविक काव्य-रचना कवि आंतरिक अनुभूति की प्रेरणा से ही करता है। अतः आन्तरिक अनुभूति ही वास्तविक काव्यानुभूति है। बाह्यानुभूति से न काव्य-रचना की प्रेरणा ही हो सकती है और न काव्य का व्यक्तीकरण

ही किया जा सकता है। हाँ, किसी पदार्थ का सामान्य वर्णन अवश्य हो सकता है और इस अनुभूति के द्वारा काव्य-रचना तो नहीं, पर रचे हुए काव्य की नक़ल अवश्य हो सकती है। यही कारण है कि जो कविता केवल 'कविता' करने के उद्देश्य से लिखी जाती है, उसमें और आन्तरिक अनुभूति से प्रेरित कविता में बहुत अन्तर होता है; रूप में ही नहीं, प्रभाव में भी आकाश-पाताल का अन्तर होता है। एक कविता कुछ समय के लिए मनोरंजन का कार्य करती है और दूसरी मानव-हृदय को छूकर उसे कवि-हृदय के हर्ष, शोक, वेदना आदि के भाव से ओतप्रोत कर देती है।

दो कवि बग़ीचे के वृक्षों का वर्णन करते हैं। वर्णन में एक केवल बाह्यानुभूति से ही काव्य-रचना करता है। वह कहता है—

आओ चलो देखो उधर यह वाटिका कैसी बनी,
जूही चमेली मालती बेला सुगंधों से सनी।
देखो उधर हैं झूमते, फल से लदे तरुवर घने,
इन कोकिलों का कूकना, पड़ता सुनायी सामने।

दूसरा कवि इन फूल से लदे हुए वृक्षों को एक निर्झर के तट पर देखता है, उनके सौंदर्य पर मुग्ध होता है। कवि-हृदय सौंदर्य का अनुभव करता है और उसके हृदय में भाव-भूमि का निर्माण होता है। आन्तरिक अनुभूति उसे काव्य में व्यक्त करने को विवश करती है। वह कहता है—

कितने प्यारे तरु फूले कलियों का मुकुट लगाये,
पर तेरी गोदी में हैं वे अपना शीस झुकाये।
मानों वे गले लिपट के कहते—उपकार अमित है,
साँवले तुम्हारी करुणा, बस तुमको ही अर्पित है।

दोनों रचनाओं की तुलना कीजिए और उनके सौंदर्य और कल्पना पर दृष्टिपात कीजिए। एक में केवल वर्णन है, और दूसरी में भाव तथा कल्पना की व्यंजना। आन्तरिक अनुभूति से प्रेरित कवि पुष्प-भारावनत वृक्षों में रहस्य देखता है और उस रहस्य को पाठकों के समक्ष व्यक्त करता है; उधर बाह्यानुभूति के आधार पर काव्यरचना करनेवाला कवि केवल वर्णन करके चुप हो जाता है। इस प्रकार की वर्णनात्मक कविताओं का मूल्य वर्णनात्मक निबंधों से किसी भी प्रकार अधिक नहीं हो सकता।

मेरे दिये हुए उदाहरणों के रचयिताओं में दूसरी रचना के रचयिता छायावादी कवि हैं—और पहले प्रकार के कवि कौन से वादी हैं, यह उनकी जैसी रचना करनेवाले कवि और ऐसी रचनाओं को पसंद करनेवाले पाठक जानें। इससे स्पष्ट है कि 'छायावाद' कविता—काव्य के रहस्य को अपने पाठकों के सामने व्यक्त करता है और उसके स्वरूप और सौंदर्य का वास्तविक अनुभव कराता है। अतः छायावाद को रहस्यवाद (मिस्टिसिज़्म) कहा जा सकता है।

काव्य के तीन प्रधान अंग हैं—(१) भाव (२) कल्पना और (३) भाषा। इन तीनों अंगों में 'भाव' को ही कविता—काव्य का 'प्राण' कहना चाहिए। यदि काव्य में कल्पना की उड़ान ख़ूब लंबी है और भाषा, शब्दों का गठन भी बड़ा सुंदर हुआ है, तो भी वह भाव के बिना निर्जीव है। कल्पना को व्यक्त करना 'भाव' का ही कार्य है, और बिना भाव के भाषा का सुंदर गठन भी व्यर्थ है। इस प्रकार 'भाव' को प्रधान तथा अन्य दो अंगों—कल्पना और भाषा—को हम काव्य के सहायक अंग कह सकते हैं। काव्यरचना में कवि को इन्हीं तीन अंगों का आश्रय लेना पड़ता है। जब कवि का हृदय विश्व में दिखायी देनेवाली वस्तुओं से तृप्त नहीं होता तब वह गोचर विश्व के सुख-सौंदर्य से भी अधिक उत्कृष्ट सुख और सौंदर्य की कल्पना करता है; पर वह कल्पना वहीं तक उचित है, जहाँ तक वह सत्य के समीप है। यदि कल्पना केवल कल्पना ही है—उसमें सत्य का सर्वथा अभाव है, तो ऐसी कल्पना 'छद्म' के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। इसी प्रसंग में कल्पना के प्रति व्यंग्य करके पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपनी 'काव्य में रहस्यवाद'-नामक पुस्तक में लिखा है "जब किसी वाद के सहारे वेदना की तरी पर सवार होकर अंधड़ और अंधकार के बीच ससीम की यात्रा असीम की ओर होगी, सामने अलौकिक ज्योति फूटती दिखायी देगी, लोक-लोकांतर और कल्प-कल्पान्तर के समाहृत अरुणोदय में असीम-ससीम के मिलन पर विश्व-हृदय की तंत्री के सब तार झंकारोत्सव करने लगेंगे, आप-ही-आपको खोजने का स्वप्न टूटने पर अट्टहास होने लगेगा—तब सहृदयता और भावुकता तो कोई और ठिकाना ढूँढ़ेंगी।" यद्यपि हम शुक्लजी का

…लेखक के सभी विचारों से सहमत नहीं है, तथापि …इच्छा है कि आधुनिक छायावादी कवि ऐसी …कल्पना से बचकर अपने काव्य को हास्यास्पद …से बचावें। सारांश यह कि काव्य का अंग होते …कल्पना के उपयोग में कवि को सतर्कता से काम …पड़ता है।

…पना की उड़ान की सीमा को समझने के लिए …र शेली की निम्नांकित (The question) …देखिए—

…I made a nosegay..............
…these imprisoned children of the hours,
…hin my hand,—and then elate and gay,
…stened to the spot where I had come,
…I might there present it—O ! to whom ?

…विता में कितनी स्वाभाविकता है, कल्पना कितनी …और मर्यादित है। इसकी तुलना आप कल्पना …ड़ान में मनमाना उड़नेवाले किसी मतवाले कवि …ल्पना से कर लीजिए। आपको 'अनंत पथ' के कुछ …क कवियों की रचना मिल जायगी। यहाँ मैं व्यक्ति-…उदाहरण देना उचित नहीं समझता।

…दि पाठक निष्पक्ष होकर प्राचीन और अर्वाचीन …ओं का अध्ययन करें, तो वे देखेंगे कि छायावादी …नाएँ जितने अंश में काव्य के गुणों से विभूषित हैं …उनकी कल्पना जितनी 'सत्य' के समीप है, उतनी …की नहीं। मैं उन लोगों की रचना के संबंध में …कहता, जो 'छायावाद' के 'आदर्श' को 'बदनाम' …के लिए छायावादी कवि बने फिरते हैं। यह तो मैं …कवियों की रचनाओं के संबंध में कह रहा हूँ, जो …ही अपनी आन्तरिक अनुभूति—काव्यानुभूति से …होकर काव्य व्यक्त करते हैं।

…र्दू और फ़ारसी की कविताओं में भी हमें छाया-…की वास्तविक झाँकी देखने को मिलती है। उदा-…र्थ निम्नांकित रचनाएँ देखिए—

…में, आह में, फ़रयाद में, शेवन में, नालों में,
…ऊँ दर्दे-दिल ताक़त अगर हो सुननेवालों में।

× × ×

…शराबे-नाज़ से जब तक वज़ू न हो,
…नमाज़ पढ़ने के मसजिद में तू न हो।

× × ×

न पूछो कौन है, क्यों नालओ फ़रयाद करते हैं,
बुतों के हम सताये हैं, ख़ुदा को याद करते हैं।

× × ×

शमा में क्या हिम्मत जो एक परवाने में है,
जो मज़ा जलने में नहीं, वह जल के मिट जाने में है।

स्पष्ट है कि भाव, कल्पना और भाषा द्वारा इनकी पूर्ति होने पर ही वास्तविक कविता हो सकती है। वैसे तो अनूठे ढंग से किसी वस्तु का वर्णन भी काव्य समझा जाता है, पर उसमें भी भाव की प्रधानता होना अत्यावश्यक है। रस और अलंकार भी कविता के अंग हैं, पर उन्हें अंग न कहकर उपकरण कहना अधिक उपयुक्त होगा। कविता का मुख्य संबंध तो हृदय से होता है, न कि बाह्य उपकरणों से। हमें कविता के पूर्णांग जिस प्रकार छायावादी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं, उस प्रकार अन्य कविताओं में नहीं दृष्टिगोचर होते।

जैसे ही धीरे-धीरे कविता के पूर्णांग का ज्ञान होता गया, वैसे ही वैसे काव्य-रचना में भी परिवर्तन होता गया और प्राचीनता को जगह 'नवीनता' को स्थान मिला। काव्य-जगत् में एक क्रांति-सी मच गयी। मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं होता कि इस क्रांति की तरल तरंगें सबके पूर्व युवकों के हृदय में तरंगित हुईं। उसकी मीठी पीड़ा का अनुभव प्रत्येक युवक कवि-हृदय ने किया और जिसे सर्वसाधारण वेदना, ताप और दुर्भाग्य आदि दुःखद भावना-युक्त नामों से संबोधित करते हैं, उनमें भी उन्होंने जीवन का—सुख का—शांति का अनुभव किया। उन्होंने कामना की—

अमर वेदना ही हो मेरे
सकल सुखों का मीठा सार।

उनकी इस 'वेदना' की तरुणाई से—उन्माद और उसासों से दिल में दर्द पैदा हुआ और इन समस्त प्रभावों की प्रबल प्रेरणा से तूलिका ने एक काव्यमय चित्र चित्रित किया जो 'छायावाद' के नाम से प्रचलित है।

मैं पहले कह ही चुका हूँ कि 'छायावाद' की परिभाषा में बहुत मतभेद है और यह मतभेद भी उनके बीच में है, जो छायावाद के अनुयायी हैं। इसके विरोधी तो 'परिभाषा' करने में भी नाक-भौं सिकोड़ेंगे।

हिंदी-साहित्य के एक छायावादी लेखक की दृष्टि में

छायावाद का अर्थ "ससीम में असीम की अनुभूति—परिमित में अपरिमित का अनुभव करना है।" पर इसका अनुभव करना प्रत्येक हृदय के लिए संभव नहीं है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय के विकास में सादृश्य होना असंभव है। और फिर, कवि कोई प्राणिविशेष नहीं है और न कोई किसी मठ का महंत ही है, जो अपने मठ में बैठे-बैठे अपने शिष्यों को 'कवित्व' प्रदान किया करे। कवि तो वही होता है, जिसके हृदय में कवित्व का बीज रहता है। फिर इस असादृश्य की स्थिति में—'ससीम में असीम की अनुभूति' या 'परिमित में अपरिमित का अनुभव' प्रत्येक व्यक्ति को कैसे संभव हो सकता है?

श्रीनंददुलारेजी वाजपेयी ने एक बार अपने "आधुनिक हिंदी-कविता में छायावाद"-शीर्षक लेख में छायावाद की परिभाषा लिखते हुए बतलाया था कि "छायावाद की कविता कोई एक वस्तु नहीं है; उसमें थोड़ी-सी भावात्मकता, थोड़ी-सी सांकेतिकता, थोड़ी-सी दुरूहता, थोड़ी-सी कोमल कांत पदावली, थोड़ा-सा अतीतानुराग, थोड़ा-सा प्रकृति-प्रेम, थोड़ी-सी वेदना और थोड़ी-सी उच्छृंखलता—इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी अनेक वस्तुएँ सम्मिलित हैं।" इससे मालूम होता है कि वाजपेयीजी इस अनेकरूपकता के मिक्श्चर को ही छायावाद मानते हैं।

कुछ आध्यात्मिक छायावादी लेखकों का मत है कि "जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जिनमें मनुष्य की आत्मा अपने अस्तित्व का विस्मरण कर विश्वात्मा में लीन हो जाती है; उन 'कुछ क्षणों' में उसकी जैसी भावनाएँ होती हैं, उन्हीं के काव्यमय स्वरूप को 'छायावाद' कहते हैं।" यह कथन वाजपेयीजी के 'मिक्श्चर' से कहीं अधिक 'सत्य' के समीप जान पड़ता है। पर कविता की उद्गमस्थान तो आंतरिक अनुभूति ही है और इस आंतरिक अनुभूति की न्यूनाधिकता पर ही कवि के कवित्व की न्यूनाधिकता अवलंबित है। अतएव मेरी तुच्छ सम्मति में "इस आंतरिक अनुभूति की वेदना और मादकता के काव्यमय चित्रण" को ही 'छायावाद' कहना अधिक युक्तियुक्त होगा।

अब मैं इसकी अधिक विवेचना करना उचित नहीं समझता। पिछले दिनों 'छायावाद' की ख़ूब चर्चा हो चुकी है और उसके 'समर्थन' तथा 'विरोध' में अनेक बार अनेक टिप्पणियाँ लिखी जा चुकी हैं। इतना ही नहीं, हमा[रे] प्राचीनतावादी हिंदीकवि और कवीश्वर तक इस नव[प्र]सूत छायावाद से सशंकित और सचेष्ट रहे। अत[एव] उसकी 'सर्वमान्यता' पर कुछ भी कहने की आवश्[यकता] नहीं समझता और न उसकी ज़रूरत ही है; क्यों[कि] जिनके जीवन का निर्माण जिस वातावरण में हुआ, [उसके अ]नुकूल उनकी अभिरुचि और विचार-शृंखला का हो[ना] स्वाभाविक ही है। और फिर, अस्ताचल के निकट[स्थ] तेजःक्षीण सूर्य में प्रातःकालीन सौंदर्य अथवा मध्[याह्न]काल की प्रखरता देखने की इच्छा करना तो एक प्र[कार] का अविवेक ही है।

प्राचीन और अर्वाचीन छायावादी कवियों [की] रचनाओं का अंतर बतलाने के लिए मैं कुछ रचना[एँ] पाठकों के सम्मुख रखता हूँ और उनकी उत्कृष्टता-निकृष्टता का निर्णय भी सहृदय पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

(अर्वाचीन)

इस करुणा-कलित हृदय में,
क्यों विकल रागिनी बजती?
क्यों हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती?

—'प्रसाद'

तप रे मधुर-मधुर मन......
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल।

—पंत

'साक़ी-पैमाने' की दुनिया, मुझसे कितनी दूर—
दिखलाने को आओगी तुम, थी आशा भरपूर।
इसीलिए आँखों में आँसू, दिल में दर्द भरा था!
उस पथ के ये संबल लेकर कब से आह खड़ा था!

× × ×

पर न चाप सुन पड़ी—प्रतीक्षा अब खलती जाती है,
जो होती क्या दवा मर्ज़ की वही मर्ज़ बनती है!

—वीरात्मा

तुम क्या जानो इस कंपन में कितनी मादकता है;
कितना है उन्माद, अरे कितनी घातक कविता है!

—अंचल

पद-रज बनने को उत्सुक है, यह विशाल साम्राज्य!
तुम हो—मैं हूँ—रूपराशि है—यह मदिरा है पात्र!

—रामकुमार वर्मा

(प्राचीन)

तेरे ये विलास लोटि ताहि में समान्यो
कछू जान्यो न परत पहिचान्यो जब [illegible]

देखो नहीं जात तुही देखियतु जहाँ तहाँ,
दूसरो न देख्यौ अनदेख्यो 'देव' अब मैं ।
—देव

मे लाल गुलाल गुलाब सों गेरि गरे गजरा अलबेलो ;
वे बानिक सों 'पदमाकर' आये जो खेलन फाग तो खेलो ।
या छवि देखिवे के लये मो विनती कै न झोरिन झेलो ;
रंग रँगी अँखियान में हे बलवीर अबीर न मेलो ।
—पद्माकर

पगरी पिय की बसि भीतर आपने सीस सँवारी ;
आँगन में ठठिकै तहँ आइ गये 'मतिराम' बिहारी ।
उतारन लागि तिया पिय सौंहनि सों बहुरो न उतारी ।
लाय लजाय रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी ॥
—मतिराम

...ना की दृष्टि से इतने ही उदाहरण पर्याप्त होंगे। ...प्रकार के अंतर का प्रधान कारण केवल यही है ...प्राचीनतावादियों में ऐसे सुकवि अल्पसंख्यक ही ...जिनकी कविता के तार उनके अनुभूति-पूर्ण हृदय ...कर झंकृत हुए हों। अधिकांश कविताएँ जीवन ...आवश्यक अंगों की पूर्ति करने के उद्देश्य से लिखी ...थीं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में बाह्य ...वों की ही प्रबलता दिखायी देती है। यदि उन्होंने ...का उल्लेख किया है तो वे कहीं-कहीं कठोरता ...द हो गये हैं। यदि सौंदर्य पर क़लम उठायी ...सात्विकता से कोसों दूर पहुँच गये हैं। यदि ...रस में सनकर अश्रु बहाये हैं तो वे वहाँ मज़दूरी-सी ...मान पड़ते हैं और सबसे बड़ा दोष उनकी ...ओं में यह है कि उन्होंने आसक्ति और भोग-विलास- ...गंदी वस्तुओं को प्रेम-जैसी पवित्र वस्तु समझने ...भूल की है। उदाहरण के लिए सुखदेवजी की ...लिखित रचना पर दृष्टिपात कीजिए—

...की विकुरता, कठोरताई कच्छप की,
...धाव करिबे को कोल ते उदार है ;
...विदारिबे को बली नरसिंहजू सों,
...मन सों छली बलदाऊ अनुहार है।
...प्रतीत, बलबीर बलदेव ही सों,
...सों दयाल 'सुखदेव' या विचार है ;
...ने बुद्ध कान-कला में कलंकी चाल,
...के ... आज दसों अवतार है।

इसी प्रकार के नहीं, पर इससे भी अधिक बीभत्स उदाहरण दर्जनों दिये जा सकते हैं। पर मैं उनका अधिक उल्लेख न करना ही अधिक उचित समझता हूँ।

वर्तमान छायावादी कवि सौंदर्य के उपासक अवश्य हैं, पर उस सौंदर्य-प्रियता में पवित्रता है और वह सौंदर्य-उपासना घृणा के योग्य नहीं, किंतु आदर के योग्य है। अधिकांश सौंदर्य-पूर्ण कविताएँ प्रकृति-सौंदर्य और विश्वात्मा की ओर संकेत करनेवाली हैं। यदि चरित्र-हीन रसिकों को उनमें भी 'विलास की गंदगी' दिखायी दे, तो इसमें कवियों का कोई दोष नहीं है। जब वे वेदना पर क़लम उठाते हैं, तब उनका हृदय पीड़ा से विह्वल हो तड़पने लगता है और अपने पाठकों को भी पीड़ा के शूलभरे अंचल में सौ-सौ आँसू रुलाता है। उदाहरणार्थ—वियोग की ज्वाला में जलनेवाले छायावादी कवि के उद्‌गार देखिए—

प्रतिध्वनि, क्यों रोती है तू उस जले हृदय को रोने दे ;
आँसू की धारा से उसको सारा विश्व भिगोने दे।
कुहू निशा के कम्पित स्वर में नीरवता का करुण कलाप ;
उमड़ रहे हैं दबे भाव फिर रुक न सकेगा कभी प्रलाप।
ध्वनि उठती है-"विचलित मत हो!", किंतु न हूँगा मैं अब शांत;
तेरा अंक शून्य है, उसमें रोने आता हूँ एकांत।

वेदना का कैसा अपूर्व चित्रण है! कवि-हृदय की पीड़ा पर दृष्टिपात कीजिए, कितनी करुणा है।

यहाँ न तो आश्रयदाता का हृदय ही कवि का हृदय है और न आश्रयदाता की मनोभिलाषा ही कवि-हृदय का उद्‌गार है। अब तो स्वतंत्रता का युग है। सबको अपने ही पैरों खड़े रहना स्वीकार है। युवक-हृदय आगे बढ़ने और काव्य-जगत् में क्रांति का संदेश फैलाने के लिए उत्सुक हैं। बाल-हृदय भी उन्हीं के पथ पर चलना सीख रहे हैं और हम उनकी तुकबंदियों में भी कवित्व और छायावाद के कोमल नवजात अंकुर देखते हैं।

'छायावाद' पर सैकड़ों बार कुठाराघात किया गया और यदा-कदा अब भी किया जाता है, पर हुआ वही जो इस बीसवीं शताब्दी के वायुमंडल ने कराया और होगा वही जो यह क्रांति से उत्पन्न वातावरण करायेगा। आज हम गर्व के साथ 'प्रसाद', सुमित्रानन्दन पंत, भारतीय आत्मा, वीरात्मा, अंचल, नवीन, द्विज, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, सुभ...

चौहान आदि की गणना भारत के उच्च छायावादी कवियों में कर सकते हैं।

अब राष्ट्रीय प्रगति में छायावाद का क्या स्थान है, यह बतलाना बहुत ही सरल हो गया। हम वर्तमान छायावादी कविताओं को दो श्रेणियों में विभक्त करेंगे—प्रथम व्यक्तिगत अनुभूति से लिखी गयी कविताएँ और द्वितीय राष्ट्रीय अनुभूति से लिखी गयी कविताएँ। यद्यपि राष्ट्रीय अनुभूति से लिखी गयी कविताओं का उद्भव भी कवि की काव्यानुभूति—आंतरिक अनुभूति से ही होता है और राष्ट्रीय अनुभूति से उद्भूत कविताओं पर भी व्यक्तिगत अनुभूति की मुहर अवश्य रहती है, तथापि 'राष्ट्रीय प्रगति में छायावाद' विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए हम 'राष्ट्रीय अनुभूति' की श्रेणी पृथक् ही रक्खेंगे और यह विचार करेंगे कि वर्तमान राष्ट्रीय प्रगति में छायावाद की रचना कहाँ तक प्रगतिशील होने का दावा करती है।

मैं प्रथम ही बतला चुका हूँ कि कविता 'हृदय' की वस्तु है और राष्ट्रीय प्रगति का स्थायीत्व भी हृदय की प्रेरणा पर ही अवलंबित है। यदि हार्दिक प्रेरणा का अभाव है, तो राष्ट्रीय प्रगति के सभी बाह्य उपकरण व्यर्थ हैं। मैं यह भी बतला चुका हूँ कि राष्ट्रीय अनुभूति भी छायावाद का एक प्रधान अंग है; क्योंकि मैंने काव्यानुभूति—आंतरिक अनुभूति को ही दो विभागों में विभाजित कर उसकी एक श्रेणी का नामकरण 'राष्ट्रीय अनुभूति' किया है। अतः अब 'राष्ट्रीय प्रगति' और 'छायावाद' का सम्बन्ध स्पष्ट ही है। यहाँ एक-दो उदाहरण देकर और भी स्पष्ट किये देता हूँ। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—
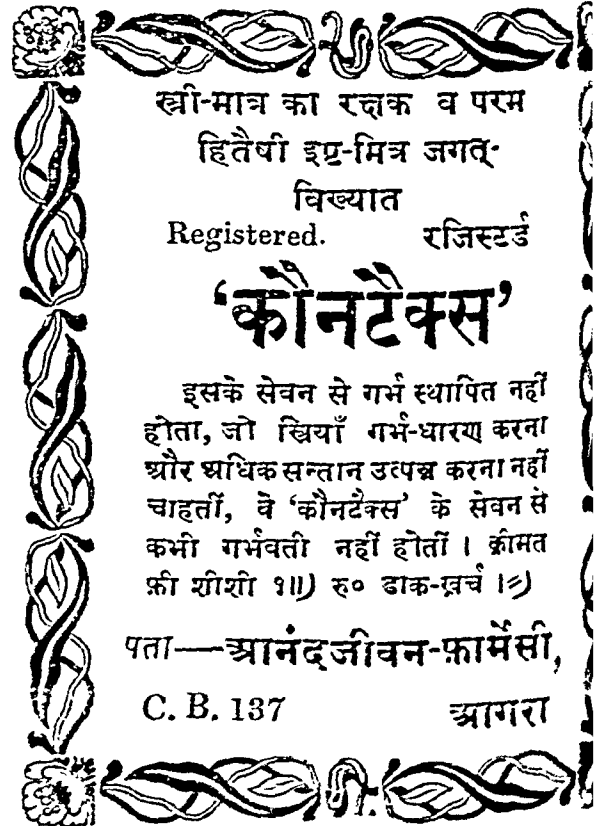
किस प्रकार मिनटें गिनता हूँ, दिन के बरस बनाता हूँ;
खान-पान की, ध्यान-ज्ञान की, धूनी यहाँ रमाता हूँ।
तुझको आया जान वायु में, बाँहों को फैलाता हूँ;
चरण समझते हुए सींकचों पर मैं शीश झुकाता हूँ।
सुध बुध खोने लगे कहो, क्या पूरी नहीं सुनोगे तान;
होता हूँ कुर्बान बताओ, किस क़ीमत में लोगे जान?

एक दूसरे छायावादी कवि की कुछ पंक्तियाँ और देखिए—

आज देख आया हूँ—जीवन के सब रोग समझ आया हूँ
भ्रू-विलास में महानाश के पोषक-सूत्र परख आया हूँ
जीवन-गीत भुला दो—कंठ मिला दो—मृत्यु-गीत के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान—निकली है मेरे अंतर-तर

कविता में कितना दर्द है, कितनी कसक है!

इसी प्रकार अन्य लब्धप्रतिष्ठ छायावादी कवि की रचनाओं से और उदाहरण दिये जा सकते हैं। मैं समझता हूँ कि छायावाद का जो विवेचन किया गया और उसका सम्बन्ध 'राष्ट्रीय प्रगति' से जिस प्रकार संकेतरूप में बतलाया गया है, उससे पाठकों को छायावाद का राष्ट्रीय प्रगति में स्थान जानने में कठिनाई न होगी।

अमेरिका के विगत गौरव का अनुसंधान

[पं० लोचनप्रसाद पांडेय काव्यविनोद]

वर्तमान युग में विज्ञान की बड़ी महिमा है। इस महिमा का एक प्रधान कारण वैज्ञानिक अनु-नकारियों का वह दल है, जो प्राणों को तृणवत् कर अपनी खोज के कार्यों में संलग्न है। अमेरिका के विगत गौरव के अनुसंधान का श्रेय वैज्ञानिकों के । निर्भीक, मनस्वी तथा मनीषि-मंडल को है। गलों का कोना-कोना छान रहे हैं, भीमकाय मकर-पूरित महानदों का संतरण कर रहे हैं, बालुकामय स्थलों की खोदाई कराने में व्यस्त हैं, पुरानी गुफाओं वेश करने को प्रयत्नशील हैं, बर्फ़ से ढके हुए वन-नों का परिष्कार करने में निरत हैं। कहीं वे प्राणों बाज़ी लगाकर भयंकर गुफाओं के भीतर घुसने की री में हैं, तो कहीं पुरातन भग्न मंदिर और प्रासादों गिरते हुए कँगूरों पर चढ़ने के लिए नसेनी लगा रहे यह सब क्यों?—इसीलिए कि एक महाद्वीप का चीन इतिहास प्रकाश में लाया जा सके।

इतिहास-साहित्य में अमेरिका नवजात बालक-सा जा सकता है। उसका प्राचीन इतिहास कुछ होगा, कल्पना भी नहीं की जाती थी। जिस महाद्वीप का कार कोलंबस अथवा किसी 'विकिंग्स' साहब अभी कल ही किया है, भला उसका इतिहास क्या?

योरप के लोगों को स्वप्न में भी इसका ज्ञान न था अमेरिका-जैसा एक महाद्वीप विद्यमान है। रानी बेला से अपने ज़ेवर देकर, अज्ञात सागर-गर्भ में ण के लिए, जहाज़ तैयार कराने के हेतु अनुनय-य किये जाने के हज़ारों वर्ष पहले अमेरिका की किसी सभ्य शिक्षित मानव-जाति से समलंकृत थी। धीरे-धीरे खोज के द्वारा वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता बात का पता लगा रहे हैं कि अमेरिका के प्राचीन-निवासी कौन थे, क्या थे और कैसे थे। पुरातत्त्व र प्राचीन इतिहास-संबंधी जो लेखबद्ध तथा अन्यान्य ण प्राप्त हुए हैं, उनसे प्राचीनतम अमेरिका के इन सियों का यथेष्ट परिचय मिलता है। वे लोग असी-रिया, इजिप्ट (मिश्र), कारथेज तथा ग्रीस (यूनान) की प्राचीनतम सभ्य जातियों से वैभव और शक्ति में किंचित् न्यून नहीं कहे जा सकते हैं। वे भव्य तथा सुंदर भवन एवं प्रासादपूर्ण मनोहर नगरों में रहा करते थे। उनकी सभ्यता और संस्कृति उच्च कोटि की थी। वे कला-कौशल में अद्वितीय थे। उन पर लक्ष्मी, सरस्वती तथा शक्ति की अटूट कृपा थी।

प्राचीन अमेरिका में—उस संपन्न और उदार भूखंड में—मानवों के साथ-साथ नाना प्रकार के विचित्र-विचित्र पशु, पक्षी एवं सर्प आदि भी स्वच्छंद निवास करते थे। वृहदाकार वृक्ष एवं नाना वनस्पतिपूर्ण वनकानन भी वहाँ पल्लवित और पुष्पित होते रहे हैं।

पुरानी दुनिया इस 'नयी दुनिया' से किसी बात में कम न थी। योरप की गोरी-जाति, एशिया के लोग तथा उत्तर-आफ़्रिका के निवासी भले ही यह सोचते रहें कि उनके सदृश 'महान् जाति' अवनी-तल में अन्य नहीं, परंतु यथार्थ में समुद्र के उस पार—प्राचीन अमेरिका में—उनसे भी बढ़कर महाशक्तिशाली सभ्य जाति का निवास था। किंतु रोम और कारथेज के लोगों की भाँति इन प्राचीन अमेरिकावासियों का भी अस्तित्व लुप्त हो गया। धन्य है काल की क्रूरता को!

अमेरिका के इन प्राचीन निवासियों का जीवन अत्यंत उत्सवमय रहा होगा। वे क्रीड़ा-कौतुक के प्रेमी रहे होंगे। उनको श्रम और संयम के दैनिक कार्य करने पड़ते रहे होंगे; उनके पारिवारिक जीवन में आनंद का अमृत बरसता रहा होगा। उनके शिशु, संतानवृंद सुख और शांति की मंदाकिनी बहाते रहे होंगे। इन बातों के जो भूरि-भूरि प्रमाण हमें मिलते जा रहे हैं, उनसे प्रकट है कि वे सब हमारी ही भाँति सुखदुःख-समन्वित दया और ममताशील मानव-रत्न थे।

एक अमेरिकन विद्वान् के शब्दों में, हमारे सुदूर दक्षिण-पश्चिम अंचल के मेस वर्दे (Mesa Verde)-नामक स्थान में एक प्राचीन जाति निवास करती थी। वह पहाड़ों की चोटियों पर अपने रहने को घर बनाता

करती थीं। ये घर छोटे-मोटे झोपड़े की भाँति न थे, बृहदाकार राजप्रासादों और भव्य भवनों के टक्कर के थे। ऐसे राजभवनोपम भग्न प्राचीन प्रासादों का पता इतिहासप्रेमी खोजी विद्वानों को लगा है। वर्तमान न्यूयार्क तथा शिकागो के जनाकीर्ण विशाल भवनों की भाँति इन गिरि-शृंग-स्थित भवनों में सैकड़ों नहीं—हज़ारों कुटुंब निवास करते रहे हैं।

इन भवनों के अस्थि-कंकाल आज भी देखे जा सकते हैं। एक स्थान पर दीवाल का कुछ अंश गिरा हुआ मिला है। उस पर गृह-स्वामिनी का 'हस्तचिह्न' बना हुआ है। वह अंश अतीव चिकना है, मानों बड़ी ख़ूबी से पलस्तर किया गया हो। क्या पलस्तर के सूखने के पूर्व गृह-स्वामिनी ने उस पर अपना हाथ धीरे से रख दिया था—या कि यह 'हस्तचिह्न' भारतवर्ष के कई प्रांतों में प्रचलित 'हाथा देने' की प्रथा का द्योतक है?

भारतवर्ष में मध्यप्रदेश के सिंघनपुर, नावागढ़ तथा उपाकोटि और विक्रमखोल की चट्टानों पर इसी प्रकार के हस्तचिह्न ४,००० वर्ष प्राचीन शिलालेखों के साथ पाये गये हैं।

तब क्या अमेरिका के उस अतीव प्राचीन काल के सुसभ्य और शिक्षित अधिवासी जगद्गुरु भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति के अनुयायी रहे हैं—यह प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है।

अमेरिका में जहाँ ये 'पहाड़ी बँगले' मिले हैं, उससे थोड़ी ही दूर पर 'होपी इंडियन' (Hopi Indians) लोगों की बस्तियाँ हैं। इन 'होपी इंडियन' लोगों के आगमन के बहुत वर्षों पूर्व गिरिशृंग-वासिनी (Cliff-dwellers) जाति नष्ट हो चुकी थी। यहाँ इतनी ज़्यादा गर्मी पड़ती है कि सूर्य के उत्ताप से यहाँ की मिट्टी तक पत्थर बन गया है। अमेरिका में न होनेवाले पशुओं—जैसे ऊँट, हरिण आदि—के खुरों के निशान भी यहाँ की चट्टानों पर मिले हैं। जल तथा स्थल के कई जंतुओं की ठठरियाँ भी प्राप्त हुई हैं। यहाँ चट्टानों के अंदर ऐसे-ऐसे वृक्षों के पत्तों और उनकी डालियों के चिह्न मिले हैं जो आश्चर्यचकित करनेवाले हैं। इन वृक्षों के चिह्नों से भारत के वृक्षों की समानता देखकर अनुमान किया जा सकता है कि उस ज़माने में भारतवर्ष और पाताल-लोक (अमेरिका) में परस्पर संबंध था। अमेरिका में गोरी-जाति के बसने के एशिया और अमेरिका के मध्य में एक स्थल-मार्ग स्थलसेतु (Land Bridge) रहा होगा जिसके द्वा एशिया के पशुपक्षी, वनस्पति तथा मनुष्य वहाँ आ जाया करते रहे होंगे। बेरिंग समुद्र (Bering Sea के सेंट लारेंस (St. Lawrence)-द्वीप को पु तत्त्वज्ञ-विद्वान् एशिया से अमेरिकापर्यंत विस्तृत स्थल का अंश-विशेष मानते हैं।

वाशिंगटन के कारनेगी इंस्टीट्यूशन के सभापति मेरियम (Dr. John C. Merriam) सा को इस 'लुप्त इतिहास' के आविष्कार का श्रेय प्राप्त आपने इस दिशा में प्रशंसनीय अनुसंधान किया है।

मन

(१)

काँटा-सा कलेजे में कसकता रहा तू कभी,
फूला जो अहा तो तू खिला भी मिला फूल-सा।
　　मूल्यवान होकर ऊँचा तू मन माणिक-सा,
　　मूल्यहीन होकर हुआ तू कभी धूल-सा।
भूल-सा रहा हूँ, मुद-मूल-सा बना तू कभी,
शूल-सा बना या अनुकूल—प्रतिकूल-सा।
　　भारी जो हुआ तो हुआ भारी तू मनों से मन!
　　हलका हुआ तो हुआ हाय कभी तूल-सा।

(२)

नाना नाच नाचा हो नचाने से न तेरे जो कि,
ऊँच-नीच राव-रंक ऐसा कौन जन है?
　　पानी सम तेरे लिए जो न हो बहाया गया,
　　पाया गया वसुधा में ऐसा कौन धन है?
तेरे परिपीड़न से त्राण चाहता है प्राण,
त्राहि-त्राहि पाहि-पाहि रट रहा तन है।
　　कैसे हो दमन तेरा गमन पवन-सा है,
　　कोमल सुमन-सा बड़ा ही कड़ा मन है।

[एक 'राष्ट्रीय आत्मा']

भारतीय संगीत

[श्री० चंद्रसिंह झाला विशारद]

संगीत क्या है ? इसके अनिर्वचनीय रस को कोई बिरला ही जानता होगा। अभी तक इसकी परिभाषा में विद्वानों ने जो-जो रायें प्रकट की हैं, वे वास्तव में अधूरी ही रहीं। 'सम्यग्गीयते इति संगीतम्'—अर्थात् संगीत वह विद्या है जिसके द्वारा अच्छी तरह गाया जा सके—केवल इतना कह देना पर्याप्त नहीं हो सकता। हाँ, साहित्य के सच्चे पुजारी इसके अनंत स्वरूप में सत्य शिव सुन्दर का प्रत्यक्ष दर्शन करके 'संगीतो वै ब्रह्म' कहकर इसकी उपासना करते हैं। तब तो यह स्पष्ट है कि सृष्टि की समस्त सौन्दर्यमयी वस्तुओं में सरस संगीत की सुमधुर सरल स्वर-ध्वनि की झंकार प्रकृति के कण-कण से आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा 'ॐ' का दिव्य संदेश सुना रही है। एक अँगरेज़ समालोचक का कथन है—

"संगीत को आत्मा के लिए भोजन नहीं, वरन् मद्य कहना चाहिए।" कारण, उसकी अनोखी मादकता के शीतल स्पर्श से क्षुब्ध हृदय की कलुषित वेदनाएँ क्षण-भर में विलीन हो जाती हैं, और उसकी मनोहर हृदय-ग्राही सुरम्य सौम्यता में प्राणी तन्मय एवं आनंदविभोर होकर मस्त हो जाता है।

अतः यह कह सकते हैं कि जब प्राणी का मन किसी आन्तरिक जिज्ञासा से परिप्लावित हो उठता है, तब उसके द्वारा अन्तस्तल में हृत्तंत्री के तारों से जिस अविगत नैसर्गिक विकार की प्रतिध्वनि मौन स्वरलहरी में स्पष्ट आलाप भरने लगती है, वही यथार्थ में संगीत है।

वस्तुतः पूर्व-मीमांसकों ने इस तत्त्व को कला का रूप देकर गान, वाद्य और नृत्य इन तीनों क्रियाओं में रक्खा है जिनका आगे अलग-अलग विवेचन किया जायगा। कला—किसी गुण-विशिष्ट क्रिया के विकास का नाम है जिससे सौन्दर्य के लालित्य की अभिव्यक्ति ठीक-ठीक अनुप्राणित हो सकती है। इसीलिए ललित-कला में संगीत प्रधान गिना जाता है। इसकी महत्ता को समझकर ही महान् विज्ञानवेत्ता पोलिबियस, लिटो, अरिस्टाटल थियोफ्रेस्टम आदि ने इसे जीवन के अलौकिक आनं[illegible] का मुख्य साधन माना है और ख़ूब प्रशंसा की है।

संगीत के शब्दप्रवाह में चुम्बक के समान तीव्र आक[illegible]र्षण है। मनुष्य की कौन कहे—अबोध बालक-बालि[illegible]काओं, पशु-पक्षियों तक पर इसका गहन प्रभाव पड़ता है। जहाँ पुंगी का नाद छिड़ा कि सर्प मानों किंकर्तव्य[illegible]विमूढ़ हो झूमने लगे। बहुधा समरांगण में रण-वा[illegible] भेरी वीर-गान सुनाने के लिए बजायी जाती है—इसीलिए कि "हृदय को हिला देनेवाला गान उ[illegible] आत्माओं को, जो अति निराश और हीन हो चुकी हैं प्रोत्साहित करने में सहायता देता है।"

निस्संदेह मृतक हृदयों में संजीवन, निराशा में आशा, दुःख तथा शोक में आनंद और चिंता की प्रज्वलित ज्वाला में शांति एकमात्र संगीत ही बरसा सकता है। इस विश्व में सैकड़ों धर्मों और सहस्रों भाषाओं का प्रचलन है, पर कोई न तो किसी की भाषा और न किसी के धर्म को समझ सकता है। ऐसा होते हुए भी संगीत में यह विशेषता है कि इसकी सुरीली तान सृष्टि के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रत्येक को मनोमुग्ध कर सकती है। यदि सत्य पूछा जाय तो मानव-जाति को एक सूत्र में रखने का साधन इससे उत्तम कोई दूसरा हो नहीं सकता। ऐसा कौन-सा कार्य है जिसमें संगीत का सहारा न लेना पड़ता हो? प्रोफ़ेसर हक्सले का कथन है कि कार्य की अपेक्षा संगीत-तत्त्व-विद्या की विशेषकर इच्छा रखना चाहिए।

स्त्रियाँ अक्सर चक्की पीसते और किसान लोग हल चलाते समय गाते रहते हैं। इससे उन्हें अपना कार्य—चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो—सुगम जान पड़ता है। कई डाक्टरों तथा वैद्य-हकीमों की राय में संगीत का आनंददायक प्रभाव जनता को घरेलू बीमारियों से सुरक्षित रख उनके मस्तिष्क की स्नायुओं में

दिव्य ज्ञान का विकास करता है। अतः जीवन के विस्तृत क्षेत्र में तत्त्व-संबंधी भावनाओं के विकास का साधन केवल संगीत ही है। दूसरे शब्दों में, जीवन का ज्ञान संगीतरूपी स्रोत से बहता है। इसके प्रबल आकर्षण, महत्त्व, प्रभाव और आवश्यकता का दिग्दर्शन कर एक अँगरेज़ कवि ने यहाँ तक कहा है—

Breathes there the man with soul so dead,
Whose heart has not throbbed at a sweet note of Music.

जिस मनुष्य का हृदय संगीत के मधुर स्वर से नहीं धड़कता, वह अपनी आत्मा के साथ मृत्यु की अंतिम साँसें भरता है।

वास्तव में संगीत का उत्कृष्ट लालित्य अवर्णनीय है। इसकी प्रशंसा में जितना कहें, थोड़ा है। बस, एकमात्र यही प्राणी का प्राण है।

भारतीय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक ग्रंथों—रामायण, महाभारत, वेद आदि—से पता चलता है कि शिव का ताण्डव-नृत्य, ऋषि नारद तथा शारदा की वीणा-झंकार श्रीकृष्ण की मधुर वंशी, गंधर्वों किन्नरों अप्सराओं का नृत्य-गान आदि किसी अर्थ एवं रहस्य के द्योतक हैं। हमारे यहाँ संगीत की उत्पत्ति अति प्राचीन कही जा सकती है, पर इस काल का निर्णय करना स्मृति के परे है। संभवतः वेद का रचना-काल ईसा से लगभग १,५०० वर्ष पूर्व माना जाता है। उस समय संगीत-संबंधी वास्तविक मौलिकता का लेशमात्र भी अभाव न था। परन्तु किसी ने भी विज्ञान के अनुसंधानों को स्थायी रखने का प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि हमें अपना प्राचीन कला का अनुभव कुछ धुँधला-सा जान पड़ता है।

बहुधा पूर्वकाल में आर्य-ऋषि प्रकृति-देवी को इष्ट शक्ति मानकर उसकी इष्ट साधना में वंदन, पूजन, आराधन, स्तोत्र-पाठ किया करते थे। वे इस भक्ति के कारण संगीत के सच्चे रसिक बनने लगे। उनकी हार्दिक भावनाएँ गायत्री के रूप में संपादित की गयीं, जिसमें सामगानों* के सिवा आत्मिक इंगितों के आधार पर स्वरकंपन, नादन, मूर्छना, आरोहण, अवरोहण, ताल, लय आदि का प्रमाण मिलता है।

इसी प्रकार उनके ब्रह्मत्व-संबंधी सिद्धान्त 'उपनिषद्' में वर्णित हैं, जैसा कि अँगरेज़ कवि मिल्टन के शब्दों से सिद्ध होता है। मिल्टन ने कहा है—

"ईश्वरीय ज्ञान कैसा मनोहर है! न कठोर है और न कटु जैसा कि मंद बुद्धि के लोग सोचते हैं, वरन् वह संगीतमय है जैसी एक पोलोट की वीणा होती है।" *

कहते हैं—सर्वप्रथम वेदोक्त यज्ञ और हवन की क्रियाएँ मंत्रगान के रूप में ऋषि-मुनियों द्वारा स्वरबद्ध ध्वनि से प्रयोग में लायी जाती थीं। यज्ञ के अवसर पर उद्गाता (आचार्य) यजमान की कामनाएँ पूर्ण होने के लिए उद्गीत † गाकर कुलदेवता से कल्याण की भिक्षा चाहता था। उद्गीत में स्वरों का वर्णन है। इन्हीं पवित्र ऋचाओं का संकलन सामवेद ‡ में किया गया है। गीता में श्रीकृष्ण भगवान्—'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कहकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा क्यों दिखलाते हैं? कारण, उसमें भक्ति की भावना संगीत का रसास्वादन करती है। ब्राह्मण-काल में पंडितप्रवर याज्ञवल्क्य ऋषि ने अनुष्टुप् लिखकर शब्द पर प्रकाश डाला और संगीत-शिक्षा में सप्त स्वरों की योजना की। गंधर्व-वेद में संगीत के संपूर्ण अंगों पर पर्याप्त विवेचन किया गया है। उधर पंडित भर्तृहरिजी ने नीति-शास्त्र में नाट्य + विषय पर भाष्य लिखकर 'साहित्य-संगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः' का उपदेश देते हुए इस ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित किया। इस प्रकार धर्म से साहित्य-संगीत-कला की सृष्टि हुई,

---

* बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।

* How charming is divine philosophy! Not harsh and crabbed as dull fools suppose, but musical as is a Pollot's lute.

† वह कौनसा साक्षात् रूप है जिसने मनुष्य को गौरव, उमंग, प्रतिमा तथा गुण प्रदान किये, और इनके साथ ही बुद्धि, संगीत और नृत्य की प्रेरणा की है?

‡ यं ब्रह्मावरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

\+ कुछ विद्वानों की राय है कि संगीत सहज ही ऊँचा नहीं बना, वरन् उसने नाटकों की आंतरिक सहायता ली।

ऐसा कई इतिहासकार स्वीकार करते हैं। यद्यपि मनु आपस्तम्ब आदि कतिपय धर्मशास्त्र-वेत्ताओं ने संगीत में नृत्य को एक असभ्यता का लक्षण बताकर उसके प्रति घृणा दिखलायी और कट्टर आलोचना की, तथापि जनता की धार्मिक प्रवृत्तियों में सर्वोपरि होने के कारण उसकी उन्नति में कुछ भी बाधा न पड़ सकी और धीरे-धीरे राजा से लेकर रंक तक इसके रसिक होने लगे।

कोई-कोई विद्वान् साहित्य से संगीत की उत्पत्ति होना मानते हैं। उनका यह भ्रम है; क्योंकि साहित्य के आदि-ग्रन्थ वेद माने जाते हैं और उन्हीं में संगीत की उत्कृष्टता झलकती है। फिर क्योंकर ऐसी कल्पना की जाय? वास्तव में दोनों के उद्गम की समस्या ज़रा रहस्यमयी है। पर हाँ, यह तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि इन दोनों का संबंध घनिष्ठ है; आत्मा एक है और अमर है। सूत्रकाल में पंडित पिंगलंग महोदय ने पिंगलसूत्र लिखकर सरस संगीत की मस्त सुगंध में कविता को जन्म दिया। कविता साहित्य का प्रधान अंग है। इससे सिद्ध होता है कि संगीत से साहित्य की उत्पत्ति हुई होगी। वस्तुतः कविता में संगीत की मधुर स्वरध्वनि से विशेष रोचकता, रसास्वादन में विचित्र अनुभव तथा मनोरंजन हो सकता है, जैसा लार्ड टेनिसन अपने 'Poet's song' (कवि का गीत) में चित्रण करते हैं।

लार्ड बायरन का कथन है—'जब मनुष्य के भाव और इच्छाएँ अंतिम सीमा पर पहुँच जाती हैं तब वे कविता का रूप धारण कर लेती हैं। वास्तव में कविता राग के सिवा और कुछ नहीं है।' इस उक्ति के अनुसार प्रथम गान की उत्पत्ति हुई; फिर कविता की। सारांश यह कि संगीत से साहित्य की उत्पत्ति मान लेना कुछ अनुचित नहीं कहा जा सकता; परन्तु अभी इस पर विद्वानों की भिन्न-भिन्न रायें हैं। कुछ हो, वेदकाल में भारत में सर्वत्र गान वाद्य और नृत्य का अच्छा प्रचार था। उस समय नारद, बृहस्पति (इन्द्र के गुरु), भारवि, माघ, मयूर, कवि शुक्राचार्य, गन्धर्व चित्ररथ, रंभा, मेनका अप्सरा आदि प्रसिद्ध गायनाचार्य विद्यमान थे। अतः कह सकते हैं कि तब संगीत-कला अपनी पूर्णता और उत्कृष्ट वैभव में सुरक्षित थी।

अब माध्यमिक काल को दो भागों में विभाजित कर[illegible] पड़ता है—प्रथम बौद्धकाल और दूसरा मुस्लिम काल[illegible] बौद्धकाल में महात्मा गौतम ने बुद्धमत का प्र[illegible] कर अपने अहिंसात्मक सिद्धान्तों की गायनरूप में रच[illegible] की, जिससे कोई भी मनुष्य चाहे जब उनका अध्य[illegible] कर सके। इस प्रकार गान, वाद्य और नृत्य जीवन[illegible] दैनिक कार्यों में हो गये थे। उसी समय तत्संबंधी [illegible] ग्रन्थों की रचना भी हुई—जैसे अमरकोष में अमरसिं[illegible] ने सप्त स्वरों का अलग-अलग विवेचन किया[illegible] महाकवि कालिदास ने 'शाकुंतल' लिखकर नाटकों[illegible] संगीत की प्रधानता दिखलायी; हर्ष ने रत्नावली-नाटि[illegible] लिखी। इसके अतिरिक्त सम्राट् अशोक, कनि[illegible] विक्रमादित्य, वीणारसिक समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त आदि [illegible] संगीत का अच्छा प्रचार किया। एक इतिहासकार [illegible] राय है कि उस समय भारत में ऐसा कोई पर्व [illegible] उत्सव नहीं था जिसमें गाना न गाया जाता हो[illegible]

तदनन्तर मुस्लिम-काल में कई मुसलमान बादश[illegible] द्वारा इसकी अच्छी उन्नति हुई। नासिरुद्दीन, अ[illegible] उद्दीन, ग़यासुद्दीन बलबन, मोहम्मद तुग़लक [illegible] संगीत के विशेष प्रेमी हो गये हैं। मुग़ल बादशाहों[illegible] जहाँगीर, शाहजहाँ, अकबर ने तो इसे राजदर[illegible] तक में उच्च स्थान दिया था। उनके इस अगाध प्रेम [illegible] सम्मानदृष्टि के कारण कई अच्छे-अच्छे गायकों [illegible] जन्म हुआ।

बाबा हरिदास के शिष्य तानसेन का नाम [illegible] की संगीत-प्रियता के कारण सर्वोत्कृष्ट गिना जा रहा [illegible] आज भी उनके प्रति पूर्ववत् ही श्रद्धा बनी है। इ[illegible] क़ब्र ग्वालियर में अब तक विद्यमान है, जहाँ इ[illegible] स्मृति में प्रतिवर्ष एक बृहद् मेला भरता है। बैजू ब[illegible] भी एक नामांकित गायक हो गये हैं। उनकी [illegible] लगन तथा साधना का यह प्रमाण है कि [illegible] कहते हैं—

> नाद-उदधि अथाह अगम अपार अति गंभीर रे।
> चढ़त पथिक अनेक गुनि जन तीन ग्राम जहाज रे।
> कहत बैजू ताल केवट सुर सुरत खिलवार रे।

इनके सिवा कबीर, जयदेव उपनाम कोकिल[illegible] राजशेखर कवि, भक्त मीरा, हितहरिवंश, रहीम, ना[illegible] रामदास, तुकाराम, गुरु नानक आदि श्रेष्ठ गायकों में [illegible]

इसी समय में राग-तरंगिणी, राग-विबोध, संगीत-पारिजात, संगीत-दर्पण, नर्तन-निर्णय, रागमंजरी, क्षुद्रक-चंद्रोदय, अनुपान-विलास, संगीत-रत्नाकर, संगीत-सार, रागमाला आदि तद्विषयक साहित्यिक ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। कहने का तात्पर्य यह कि अकबर के राजत्व-काल में संगीत अपनी सीमा पर लगभग पहुँच चुका था। परंतु औरंगज़ेब अपने धर्मप्रचार के कारण इसकी उन्नति में बाधक हो गया। अतः फिर इस कला का ह्रास होने लगा। फिर भी अजमेर के हज़रत मुईनुद्दीन और उनके अनुगामियों ने संगीत को अपनाया। आज भी इस बात की साक्षी 'सम्मा-खाना' दे रहा है जहाँ पर श्रोता लोग धार्मिक गान सुनने को एकत्र होते हैं।

औरंगज़ेब की कुप्रवृत्ति ने लगातार डेढ़ सौ वर्ष तक संगीत की उन्नति को बिलकुल स्थगित कर रक्खा। अब आधुनिक काल के होनहार प्रवर्तक प्रोफ़ेसर विष्णुदिगंबर, प्रोफ़ेसर भारतखंडे और विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने पुनः इस प्राच्य कला के उत्थान में हाथ बँटाया है, और वे अपने कार्य में सफल हुए हैं। इस त्रिमूर्ति ने अधिकतर जीवन इसी की सेवा में समर्पित किया है। इस कार्य में श्रीमती अतियाबेगम ने भी अच्छा सहयोग दिया है, जिनकी अगणित राग-रागनियाँ साहित्य के सरस रस में सनी हुई अनंत काल तक विश्व को दिव्य संदेश सुनाती रहेंगी। यथार्थ में यही महानुभाव संगीत-सौंदर्य के एकमात्र सच्चे पुजारी कहे जा सकते हैं। इनके प्रयत्न से भारतीय संगीत-परिषद् तथा संगीत-पाठशालाएँ स्थान-स्थान पर स्थापित हो चुकीं, और कई नये गायक एवं संगीत-रसिक विद्यमान हैं—जैसे संगीताचार्य नारायणराव, संगीत-विशारद प्रोफ़ेसर नारायण व्यास तथा पुरुषोत्तम व्यास, गायनाचार्य मास्टर कृष्णशास्त्री, प्रोफ़ेसर रामभाऊ सवाई गंधर्व, मास्टर मोहन, केशवलाल तपास आदि। प्रयाग में सन् १९२१ ई० में एक संगीत-पाठशाला की स्थापना भी हुई है, और समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में संगीत-संबंधी गहन विचार भी प्रकाशित होते रहते थे। प्रोफ़ेसर श्री० कृष्णनारायण स्वामी ने अपनी मधुर बाँसुरी द्वारा एक बार महात्माजी को [illegible]-आश्रम में मुग्ध कर दिया था। श्रीगणपतराव-[illegible] कभी बंबई की संगीत-विज्ञान-पाठशाला के [illegible] रह चुके हैं, और मास्टर मनहर बर्वे जो बाल्यावस्था से ही वाद्यों के बजाने और गाने में प्रवीण हैं—अपने कौशल के लिए विख्यात हैं। इधर हाल में संगीत-प्रवेशिका, संगीत-सार, संगीत-सौरभ, संगीत-कल्पद्रुम, ध्रुपद-स्वर-लिपि, संगीत-शिक्षा, संगीत-समुच्चय, संगीत-रत्नभंडार आदि कई सुंदर पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है, जिनसे तत्संबंधी शिक्षा अति सुगमता से प्राप्त की जा सकती है।

प्रसंगवश संगीत के तीनों स्वरूप—गान, वाद्य और नृत्य के विषय में कुछ बता देना आवश्यक जान पड़ता है। कहते हैं, मनुष्य ने गाना कोयल से, नर्तन मोर से और वाद्य मेघों के भयानक गर्जन से सीखा है। यथार्थ में कवियों की हृद्वीणा जिस आन्तरिक मर्मस्पर्शी विकार को अपने तारों में मिलाकर गायकों के कंठ द्वारा सरस स्वर में बजने लगती है, वहीं आहों की ध्वनि गान का स्वरूप धारण कर लेती है। एक अँगरेज़ कवि का कहना है कि हमारे मधुर से मधुर गाने वही हैं जो अतिशोकप्रद विचारों को प्रकट करें। कहीं तो हाय-हाय की आहें जल रही हैं, और कहीं प्राणों के लाले पड़ रहे हैं, ऐसे कुअवसर में गायक लगा अलापने मलारराग! भला कौन उसके प्रति उदासीन न होगा। अरे, उन पीड़ित प्राणियों के प्रति सहानुभूति के मंत्र से सान्त्वना देना तो दूर रहा, वह तो जले पर नमक छिड़कने लगा। धन्य है! विदुर-नीति के अनुसार गायक तो ऐसा होना चाहिए—

> जाने राग विभेद अरु, सुर तालादिक ज्ञान;
> सब मन मोहित विधि धरे, गायक सोई सुजान।

हाँ, अलबत्ता पंजाबी-गान ज़ख़्मेदिल तथा हिंदीगान वंदेमातरम् इस उक्ति का अनुकरण अवश्य करते हैं। बहुधा प्रत्येक राष्ट्र में ग्रामगीतों का प्रचार है। यदि सत्य पूछा जाय तो उनमें वास्तविक रहस्य का शुद्ध स्पष्टीकरण झलकता है। उन भोलेभाले ग्रामीणों के मुखारविंद से जिन पवित्र विचारों की धारा बहती है, उसके रसास्वादन का मज़ा कुछ निराला ही, त्रिपथगा के निर्मल जल के समान, प्रतीत होने लगता है। साहित्य-संसार में ऐसे गानों की चर्चा विशेष रूप से है। फ़्रांस में जुल्नेर्यसॉ ने ग्रामगीतों का एक संग्रह सर्वप्रथम प्रकाशित कराया था। इधर पं० रामनरेश त्रिपाठीजी ने भारतीय ग्रामगीतों को अपने अथक नीय

परिचय द्वारा कविता-कौमुदी के पाँचवें भाग में संगृहीत किया है, जिससे एक भारी अभाव की पूर्ति हो गयी है।

नृत्य-संगीत के कविता-नटी के साथ साहित्य-मंच पर पदार्पण करने से नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। नाटक, 'नट्' धातु से बना है और 'नट्' शब्द नृत्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्वर-शब्दों द्वारा अंग-संचालन का नाम नृत्य है। संभवतः गान और नृत्य के सम्पर्क से ही नाटकों की उत्पत्ति हुई होगी। इस नाट्यकला का सर्व-साधारण पर इतना गहन प्रभाव पड़ा कि बड़े-बड़े राजा तक अपना गौरव एवं प्रतिष्ठा को भूलकर इसके एकांत रसिक बन गये। लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह तो नृत्य के एक अवतार माने जाते हैं। इसके पूर्व वेद-काल में भी, गंधर्व-वेद से गंधर्वों और अप्सराओं के नृत्यकला में प्रवीण होने का पता चलता है। कृष्ण-गोपियों की रासलीला जगद्विख्यात है। गर्वानृत्य उसी प्राचीनता का एक चिह्न है। योरप-अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में नृत्य को व्यायाम का उत्तम साधन समझते हैं। वहाँ नृत्य की कई पाठशालाएँ हैं, जिनमें जनता अपने बच्चों को प्रविष्ट कराने के लिए बाध्य की जाती है। अब भारत में भी इसका विशेष प्रचार होने लगा है। पर दुःख है, कई भारतीय इससे घृणा करते तथा इसे असभ्यता का लक्षण मानते हैं।

भारत के प्राचीन वाद्य सितार, बाँसुरी, मृदंग, ढोल, नगाड़ा, वीणा, तंबूरा, सारंगी आदि कहे जाते हैं। इनकी आवश्यकता ताल और लय के कारण हुई होगी। पूर्वकाल में इनका प्रचार सर्वसाधारण से लेकर राज-दरबार तक था और इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। परंतु आजकल तो वैज्ञानिक अनु-संधानों के कारण बेला, दिलरुबा, वायोलिन, मंडोलिन, पियानो, ताऊस, बैंड, हारमोनियम आदि कई प्रकार के बाजों का आविष्कार हो चुका है। हारमोनियम के विषय में कुछ कहना ही नहीं, जहाँ देखो वहीं इसकी मृदुल ध्वनि सुनायी पड़ती है। सर्वसाधारण की रुचि इस ओर विशेष झुकी हुई है। संगीत के इच्छुक इसी के द्वारा संगीताचार्य बनने का दावा रखते हैं। कहीं हारमोनियम पर हरिकथा की चर्चा तो कहीं सत्यनारायण की कथा हो रही है। पर सच पूछिए तो इसके कोमल तीक्ष्ण स्वरों में गायकों की स्वरध्वनि छिप जाती है। उनको अपने स्वरसाधन का ज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार नवीन वाद्यों में भी वास्तविक मौलिकता का अभाव रहता है। कई राजा लोग विदेशी वाद्यों के प्रचार में योग देते हैं जिनके एक-एक पुर्ज़े के लिए दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है— और क़ीमत भी अधिक लगती है। प्राचीन वाद्यों में यह बात नहीं। फिर इन्हें क्यों नहीं अपनाया जाता?

कुछ समय से वैज्ञानिकों की नयी सूझ द्वारा रेडियो तथा फोनोग्राफ़ के मनोहर रिकार्ड हमारे कर्णकुहरों में निनादित होने लगे हैं। सिनेमा-फ़िल्मों में टॉकी का बाज़ार ख़ूब गर्म है, जिसको सुनकर श्रोता-जन नक़ल में असल का भ्रम समझने लगते हैं। इससे नाटकों को भी भारी क्षति उठानी पड़ी है। परंतु टाकी-फ़िल्में नाटकीय कला का प्रदर्शन किसी प्रकार नहीं कर सकतीं। प्रत्यक्ष वाद्यों की चित्ताकर्षक ध्वनि—गानों की धारावाहिक लय इनमें कहाँ? हाँ, रेडियो से अवश्य भारत के प्रसिद्ध गायकों के गानों का रसास्वादन घर बैठे सहज में किया जा सकता है। पर ध्वनि में कुछ कर्कश स्वर रहता है। कई नाटककार इसका प्रयोग किया करते हैं। इसके सिवा रेडियो तथा फोनोग्राफ़ में विशेषता यह है कि किसी भी छोटे कमरे में इनके रिकार्डों द्वारा सैकड़ों गायकों के गाने एक साथ गाये जा सकते हैं। फिर भी कहना पड़ेगा कि इन आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों तथा विद्युत् के प्रयोगों से संगीत की उन्नति होना असंभव है; क्योंकि इनमें ग़ज़ल, क़व्वाली, दादरों के केवल इने-गिने गाने ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

अंत में यह बतलाना भी आवश्यक जान पड़ता है कि भारतीय संगीत की उन्नति के लिए कौन-कौन से साधनों की ज़रूरत होती है। सर्वप्रथम इसका विकास जनता की अभिरुचि पर निर्भर है। अतः इसके लिए संगीत-शिक्षा का समुचित प्रबंध किया जाय। स्थान-स्थान पर पाठशालायें खोली जायँ। हमें यह लिखते हर्ष होता है कि अभी मैसूर और ग्वालियर के नरेशों ने इसके प्रचार में अच्छा योग देकर अपने राज्य में संगीत-पाठशालाओं की स्थापना की है। बंबई ब्रॉड-कास्टिंग कंपनी ने भी इस कार्य में हाथ बँटाया है, और

[..] की म्युनिसिपल कमेटी ने प्राइमरी पाठशालाओं में [सं]गीत-शिक्षा के लिए अलग अध्यापक नियुक्त किये हैं। [य]दि इसी प्रकार सरकारी पाठशालाओं तथा कालेजों में [सं]गीत का एक अलग विषय नियत कर दिया जाय—जैसा [बि]हार प्रांतीय संगीत-सम्मेलन के सभापति के नाते सर [सु]लतान अहमद ने अपने भाषण में कहा था—तो उससे [इ]स कला को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा।

[कि]ंतु वास्तव में प्रचार की दृष्टि से संगीत का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है; क्योंकि वे सौंदर्य की प्रतिमा, जीवन का अवलंब, सभ्यता का मूल और हार्दिक भावनाओं के विकास की प्रतिपादक है, उन पर निर्मल प्रभाव सहज में पड़ सकता है। यदि वे स्वयं शिक्षित होकर अपने बच्चों को बाल्यावस्था से ही तद्विषयक शिक्षा दिया करें, तो निस्संदेह फिर उस घर में स्वर्गसुख और अलौकिक आनंद के अनुभव में किसी प्रकार की कमी न रह जायगी।

स्वप्न के बाद

[मुंशी कन्हैयालाल एम्० ए०, एल्-एल्० बी० एडवोकेट]

(१)

बँगले के सामने एक छोटा-सा बग़ीचा था। उसमें एक किनारे पर एक बेंच पड़ी थी। उसी पर वह दोनों देर से बैठे थे। इस समय दोनों चुप थे और अपने विचार में इतने मग्न थे कि एक दूसरे की ओर देख भी नहीं रहे थे।

"क्या तुम्हारा यह अंतिम जवाब है?" ख़ामोशी को तोड़ते हुए केदार ने हेमलता से पूछा। उसके शब्दों से गांभीर्य और दुःख टपक रहा था।

हेमलता ने सिर उठाकर देखा कि केदार खड़ा है। कोई भी लड़की उस युवक अमीर से विवाह करने को राज़ी हो जाती। मगर वह इसके लिए तैयार नहीं थी। वह स्वतंत्रता की प्यासी थी।

"हाँ, केदार!"—उसने उत्तर दिया—"मैं अपने विचार में दृढ़ हूँ। कितने मुश्किल से मैंने वकालत की परीक्षा पास की है, और अगर मैं अब घर-गृहस्थी में फँस जाऊँगी तो मेरी सारी मेहनत नष्ट हो जायगी। मैं कैसे विवाह करना स्वीकार करूँ। क्या इसीलिए इतना पढ़ा-लिखा है?"

"इसका तो इन्तज़ाम हो सकता है"—केदार ने कहा—"सब कुछ ठीक हो सकता है। क्या आधुनिक स्त्री..."

"इस बहस से क्या फ़ायदा है, केदार!"—हेमलता ने बात काटकर कहा—"मैं नाम चाहती हूँ, मैं स्वतंत्रता चाहती हूँ; मैं केवल स्त्री ही नहीं रहना चाहती!"

केदार एक क्षण तक चुप रहा, फिर बोला—"अच्छी बात है, हेम! यदि तुमने यही तय किया है, तो मैं तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं होना चाहता। लो, मैं जाता हूँ। यदि कल तुम्हें आवश्यकता जान पड़े तो मुझे भूल न जाना।"

हेमलता वहीं बैठी रही। वह सोचने लगी—क्या मैंने ख़ुदग़र्ज़ी की, या बेवक़ूफ़ी की? क्या मैंने प्रेम को ठुकरा दिया—उस प्रेम को जिसे यह युवक [...] चरणों पर अर्पित कर रहा था? इन प्रश्नों के उत्तर [...] उसने अपने मन को समझाने के लिए दे दिये। उस[...] जो कुछ किया, ठीक ही किया था।

हेमलता बीस-इक्कीस साल की युवती थी। [...] ऐसी उम्र है, जब मनुष्य विचित्र-विचित्र बातें [...] डालता है। उसे क्या मालूम कि अभी संसार की ब[...] समझने के लिए बच्ची ही है!

केदार चला गया। उसे बग़ीचे से बाहर निकल[...] उसने देखा! उसके हृदय को मसल देने का उसे [...] ज़रूर हुआ था, यहाँ तक कि उसका जी चाहा था [...] वह उसे दौड़कर बुला ले और कह दे—केदार, [...] तुम्हें प्यार करती हूँ। मगर उसने अपने को सम्हा[...] लिया। उसे तो स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना था, ना[...] की फ़िक्र थी!

किसी को अपनी ओर अँधेरे में आते देखकर वह चौं[...] पड़ी। देखा, तो एक लँगड़ा आदमी बैसाखी के सह[...] उसी की ओर आ रहा है।

"तुम.........तुम कौन हो?"—डरी हुई आवा[...] में हेमलता ने पूछा।

"डरिए मत, बाईजी"—उसने फ़ौरन् उत्तर दि[...] "मैं आपकी नौकरानी का पति हूँ। गा-बजाकर पै[...] कमाता हूँ। इधर से निकला था, चला आया कि अग[...] वह चलती हो तो मेरे साथ चली चले। आप कु[...] उदास हैं, बाईजी?"

"तुम्हें कैसे मालूम"—हेमलता ने आश्चर्य से पूछा[...]

"आपके चेहरे से मालूम होता है"—उस लँगड़े [...] कहा—"और—और अभी मैंने आपकी और उस युव[...] की बातें.........।"

हेमलता कुछ झेंप-सी गयी। उसे ग़ुस्सा आया कि य[...] हमारी बातें क्यों सुन रहा था।

"मैंने"—लँगड़े ने कहा—"मैंने जान-बूझकर आप[...]

नहीं सुनीं। लीजिए, एक गाना सुनाये देता हूँ जिसे आप खुश हो जायँ।"

उसने गाना आरम्भ कर दिया। कितना अच्छा था, कैसा मधुर वह गा रहा था! हेमलता के उसके गाने ने जादू का काम किया। वह अपनी ... भूल गयी और ऐसी मग्न हो गयी कि उसे ... समाप्त होने पर कहीं यह मालूम हुआ कि उसकी नौकरानी भी वहीं खड़ी है।

हेमलता ने नौकरानी से कहा कि तुम्हारा जी चाहे अपने पति के साथ घर जा सकती हो। इस समय ... विशेष काम नहीं है।

वे दोनों खुश-खुश घर चल दिये। हेमलता ने देखा ... होने पर भी दोनों एक दूसरे से कैसा प्रेम करते ... क्या वह और...............। पर उसने इस विचार अपने मन में न आने दिया।

(२)

हेमलता ने काश्मीर जाने का विचार तय किया था। ... कानपुर से एक साथी मिल गया। उसके सेकंड ... के डिब्बे में और कोई दूसरा मुसाफ़िर नहीं था। ... नवयुवक आया, तब हेमलता का मन अपने-आप ... लगा कि इससे बातचीत करना चाहिए। थोड़ी ... के बाद वे दोनों आपस में पुराने मित्रों की तरह ... करने लगे।

दिल्ली पहुँचते-पहुँचते हेमलता पर उस नवयुवक का ... प्रभाव पड़ा। वह उसकी ओर खिंची चली जाती ...। दोनों दिल्ली में दो दिन रुके। एक ही होटल ... ठहरे, साथ ही दिल्ली देखी। रावलपिंडी में हेमलता ... मालूम हुआ कि बिशन भी काश्मीर पहलेपहल ... रहा है। उसने सोचा कि यह अच्छा साथी दिल ... बहलाने को मिला। वह किसी-किसी समय मन में ... बिशन और केदार की तुलना किया करती।

काश्मीर में दोनों साथ ही ठहरे। ख़ुशी के दिन ... जल्दी व्यतीत होने लगे।

एक दिन शाम को वे दोनों अपने हाउस-बोट में ... सामने के पहाड़ों का सुहावना दृश्य देख रहे थे।

"हेम!"—बिशन ने उसका हाथ पकड़कर कहा— "... छुट्टियाँ समाप्त हो रही हैं। हम लोग फिर ... कि नहीं ?"

हेमलता कुछ हिचकिचायी। बिशन में कुछ ऐसा आकर्षण है कि वह उसकी ओर खिंच रही है। फिर भी ऐसी कौन-सी बात है जिससे वह सशंक है। वह एक सुंदर युवक था, साथ ही ख़ुशदिल भी। मगर बिशन के सामने खड़े होने पर उसकी आँखों के सामने केदार की सूरत नाच गयी। उसने उसे भुलाने का प्रयत्न किया और फ़ौरन् ही कहा—"नहीं, क्यों नहीं मिलेंगे। मैं लौटती बार कानपुर में तुमसे मिलूँगी।"

बिशन की छुट्टी समाप्त हो गयी। वह चला गया। उसे पहुँचाकर हेमलता लौट आयी और अपने बोट के एक कमरे में पड़ रही। बिशन के चले जाने पर उसका संसार ही सूना हो गया। वह सोचने लगी कि मैं भी चलकर कानपुर में दस-पाँच दिन रहूँ। मगर फिर वह काँप-सी उठी। उसे ऐसा मालूम पड़ा जैसे वह किसी ऐसे रास्ते पर जानेवाली है जिस पर उसे न जाना चाहिए। फिर उसने सोचा, आख़िर इसमें बात ही क्या है; कौन-सा ऐसा कारण है जो मैं बिशन से मिलने कानपुर न जाऊँ? लेकिन कोई बात उसके हृदय में उठती थी, जो उसे उधर जाने से रोक रही थी। उसे अपनी ऐसी कमज़ोरी पर क्रोध आ रहा था कि क्यों मेरे विचार मुझे ज़बरदस्ती बिशन की ओर से दूर खींच रहे हैं। बिशन कितना अच्छा साथी है।

वह श्रीनगर में दो-चार दिन और ठहरी। वह विश्राम करना चाहती थी, किंतु उसे बार-बार बिशन का ख़याल आ रहा था। वह कानपुर के लिए चल पड़ी।

(३)

बिशन ने उसका बड़ी तपाक से स्वागत किया।

"मैं बुरी तरह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था"—उसने कहा।

"क्यों?"—हेमलता ने भोलेपन के साथ पूछा।

"तुम्हारे बिना मुझसे रहा न जाता था"—उसने बिना किसी झिझक के कह दिया।

हेमलता ख़ुश हो गयी। पर उसने यह नहीं कहा कि मैं भी तुम्हारे बिना नहीं रह सकी।

× × ×

कानपुर में कई दिन तक हेमलता बिशन के साथ रही। ख़ूब घूमती फिरती थी। दिन कैसे बीत जाता था, उसे पता ही न चलता। एक दिन रात को वे दोनों

खाना खाकर उठे। चाँदनी रात थी। विशन ने सोचा कि चलकर गङ्गाजी की सैर की जाय। हेमलता तैयार हो गयी।

दोनों चल दिये, घाट पर एक नाव तैयार थी, दोनों उसमें बैठ गये। मल्लाह नाव को झट खेकर एक तरफ़ ले चले। शहर से दूर ठंढी हवा में मल्लाह भी मस्त थे, दोनों एक विरहा गाने लगे। उनके डाँड मानों उनके गाने की ताल देते जाते थे।

"आज की रात, हेमू"! विशन ने कहा—"उतनी ही सुन्दर है जितनी ....।" उसने आख़िर के शब्द बहुत धीरे से कहे।

हेमलता ने मुस्करा दिया। उसने घूमकर देखा तो मल्लाह किसी दूसरी तरफ़ देख रहे थे!

विशन उसकी तरफ़ घूर रहा था। उसकी आँखों में आग की-सी चिनगारी भरी थी, मगर वही हेमलता को अपनी ओर खींच रही थी।

नाव वहीं एक किनारे रोक दी गयी। विशन ने हेमलता को उतार लिया। गङ्गा के किनारे एक छोटा-सा बाग़ था। दोनों वहीं चले गये; एक पेड़ के नीचे एक बेंच थी, उसी पर बैठ गये।

हेमलता को अब मालूम हुआ, जैसे वह अपने स्वप्न से जाग पड़ी है। उसे ज्ञात हो गया कि विशन वासना का प्यासा है। सत्य का नग्न एवं भयंकर रूप हेमलता के सामने था। वह कूदकर दूर जा खड़ी हुई। अब वह रुक नहीं सकती थी। उसकी देह पसीने-पसीने हो रही थी।

हेमलता को रास्ता नहीं मालूम था। विशन ने शरमाते हुए कहा—"मैं तुम्हें अभी शहर पहुँचा दूँगा!

उसने वहीं चलकर थोड़ी दूर पर एक सवारी की, और घर पहुँचते ही हेमलता फ़ौरन् स्टेशन जाने को तैयार हो गयी। विशन की हिम्मत न पड़ी कि वह उसे रोके।

चलते समय विशन ने कहा—"हेमलता! मैंने समझा था कि तुम आधुनिक स्वतन्त्र स्त्री हो जो अपने ही लिए जीती हैं, मगर तुम तो......।"

बात काटकर डाटते हुए हेमलता ने कहा—"हाँ, मैं आधुनिक स्वतंत्र स्त्री अवश्य हूँ और अपने ही लिए जीना चाहती हूँ, फिर—"

वह अपने मकान की तरफ़ घूम गया। हेमलता की तरफ़ फिर घूमकर भी उसने नहीं देखा। उसे अनुभव रहा था कि स्टेशन की ओर से जो वायु के झ आ रहे हैं, वे हेमलता के उच्छ्वासों से गर्म रहे हैं।

(४)

गाड़ी छूटने में देर थी। हेमलता वेटिंग-रूम में थी। वह सोच रही थी—मैं क्या इससे प्रेम करती मैं इससे क्यों प्रेम करती थी? अकेले होने के कारण मेरा एक साथी था......प्यार—प्यार तो मैं शा केदार ही को करती हूँ! ओह, केदार और विशन कितना अन्तर है। संसार में ऐसी स्त्रियाँ भी तो जो प्रेम करती हैं और अपनी पसन्द का काम भी कर हैं। क्या विवाह या बच्चे किसी को कोई काम करने रोक सकते हैं?

वह उठी और उसने केदार के नाम एक तार दिया।

× × ×

जब वह अपने शहर के स्टेशन पर उतरी तो उस आँखें प्लेटफ़ार्म पर केदार को उत्सुकता से ढूँ लगीं। गाड़ी आने पर जैसी भीड़ स्टेशनों पर हुआ कर है, वैसी ही आज भी थी। उस भीड़ में हेमलता ख़याल हुआ कि केदार भी होगा। मगर भीड़ कम हो चली गयी और केदार वहाँ पर न दिखायी दिया। कि ही मुसाफिरों को लोग स्टेशन पर लिवाने आये और वह ख़ुश-ख़ुश आपस में मिल रहे थे, मगर हेमल की तरह शायद ही कोई उदास रहा होगा। उसे संस कितना सूना दिखायी दे रहा था। केदार उसे लिवाने क्‍ नहीं आया—वह बार-बार यही प्रश्न अपने मन में रही थी और उसे कोई उत्तर उसकी मरज़ी के मुआ फ़िक नहीं मिल रहा था।

उसका जी बैठ गया। तो अब केदार को मेरी पर नहीं है! उसने सोचा—क्या सभी मर्द धोखेबा होते हैं......

मुसाफ़िर बाहर निकल रहे थे। उसने भी अप असबाब कुलियों से उठवाया और एक किराये की गा में अपने बँगले को चली। गाड़ी में बैठा तब हेमल को अपनी ज़िन्दगी सूनी जान पड़ रही थी। उसे ज़िन्द में क्या सुख है? उसका इस संसार में अपना कोई नहीं

[उ]सने आखिर प्रेम को ठुकराया ही था। "आह, केदार!"—[उ]सने मन में कहा—"तुमने तो मेरी प्रतीक्षा करने का वचन [दि]या था। अपने वचन को इतनी जल्दी भूल गये! क्या [तु]म उस शाम की बातों को भुला नहीं सकते थे? [मु]झसे भूल हुई; पर केदार, तुम जानते हो, मैं तुम्हें [प्य]ार करती हूँ।"

वह घर पहुँची। उसकी बूढ़ी नौकरानी ने उसे [स]म्हाल से गाड़ी से उतारा। मगर हेमलता को सुस्त [दे]खकर वह झिझक-सी गयी।

"दाई!"—हेमलता ने पूछा—"मैं कितने दिन बाद लौटी हूँ। ऐसा लगता है जैसे सालों बाद आयी हूँ!"

हेमलता आरामकुर्सी पर बैठी ही थी कि उसे किसी के आने की आहट मिली।

केदार मुस्कराता हुआ तेज़ी से उसकी ओर आ रहा था। "मुझे तुम्हारा तार अभी मिला......"

हेमलता को ऐसा मालूम हुआ जैसे उसकी स्वप्न-निशा का अवसान हो चुका और अब जागरण का अरुणोदय हो रहा है!

पंछी

उड़ जा रे पंछी पंख खोल।
जीवन-जलनिधि की मणियों को बेच न माटी-मोल।
जिससे निकला उसमें जुड़ जा,
अपने भार आप मत झड़ जा,
सम्हल, समझ, हिल-डुल मत, उड़ जा!
यह हीरा है, यह पत्थर है, खोटा खरा टटोल।
जा न फूल पा घास-पात को,
परख समय के चक्रवात को,
मचल न चंचल दूध-भात को,
रूखा-सूखा चुन-चुग पी ले अश्रुवारि के घोल।
कमल-पात पर जल दो पल का,
साँस-साँस में कौतुक छल का,
'उसका' बल संबल निर्बल का,
चेतन भूल नहीं मधुवन में बोल अचेतन बोल।
जीवन-काल-विजन की झाईं,
सुख-दुख काया की परछाईं,
अपना सब सपने की नाईं,
शून्य नीड़ में बस जा कल से ऊँचा-ऊँचा डोल।

[श्री० लहरी]

मनुष्य के विश्वसाम्य का कारण

[प्रोफ़े० ईश्वरचंद्र शर्मा]

संसार में मनुष्य की सबके साथ समानता पायी जाती है। ज्ञान के कारण मनुष्य प्रत्येक प्राणी [illegible] और शरीर के कारण प्राणियों के शरीर और शेष [illegible]तन वस्तुओं के समान है। जिस प्रकार का अनुभव [illegible] को होता है, उसी प्रकार का इतर प्राणियों को। [illegible] रोग मनुष्य के शरीर पर आक्रमण करते हैं, वही [illegible] जंतुओं के शरीर पर भी। प्लेग चूहों को होता [illegible] और मनुष्यों को भी। पालतू प्राणी हृदय और गल- [illegible] के रोग से आक्रांत होते हैं। चेचक गाय-बैल आदि [illegible]ओं में भी फैलती है। हैज़े से मनुष्यों के समान [illegible] और बिल्लियों की भी मृत्यु होती है। जो वायु [illegible] के कीटाणुओं से दूषित हो जाती है, उसका मनुष्य [illegible] अन्य प्राणियों पर समान प्रभाव पड़ता है। उष्ण [illegible] के मनुष्य शीतप्रधान स्थानों में जाकर कष्ट [illegible] है। यही दशा अन्य प्राणियों की है। चिकित्सा भी [illegible] और अन्य जंतुओं की एक-सी है। गाय-बैल आदि [illegible] जिस ओषधि की परीक्षा कर ली जाती है, उसका [illegible] पर प्रयोग किया जाता है। बछड़ों के फोड़े से [illegible] द्रव्य निकाला जाता है, उससे मनुष्यों को टीका [illegible] है। इस समानता का कारण ढूँढ़ना चाहिए। [illegible]नि से योन्यंतर का उद्भव माननेवाले कहते हैं कि [illegible] कारण जंतुमात्र में होनेवाला जन्य-जनकभाव [illegible]। यदि मनुष्य का मूल सर्वथा भिन्न होता तो इतर [illegible] को जो रोग और उनकी जो चिकित्सा होती [illegible] मनुष्य की न होती। मनुष्य का इतर योनियों से [illegible]त्पत्ति-साम्य जितना निकट है, उतना ही रोग और [illegible]चार समान है। मनुष्य के शरीर में कई प्रकार [illegible] रहते हैं। वे अन्य प्राणियों में भी पाये [illegible] और दाद के अणुकीट मनुष्य और [illegible] के शरीर पर आश्रित रहते हैं। वनमानुस [illegible] है, इसलिए उनके बच्चे भी दाँत निकलने [illegible] का कष्ट पाते हैं। मस्तिष्क के दुर्बल होने [illegible] भी अपस्मार से आक्रांत हो जाते हैं। प्रसव में वनमानुस की स्त्री भी वैसा ही दुःख उठाती है। मनुष्य और अन्य प्राणियों का संबंध इस बात से और भी पुष्ट होता है कि जब मनुष्य की कोई हड्डी टूट जाती है, तो डाक्टर अन्य प्राणी की हड्डी वहाँ लगा देते हैं। एक जाति न हो, तो एक के अंग दूसरे के अंग न बनें। इस समानता का उपपादन योनियों की स्वतंत्र सत्ता में मनोहर है। ज्ञान सबमें इसलिए है कि प्रत्येक प्राणी का शरीर जीवसहित है। एक जाति के प्राणियों में शरीर-धर्म नितांत सम दिखायी देते हैं, इतने से उसका कारण एक जाति में उत्पत्ति को नहीं समझना चाहिए। इसका कारण है शरीर के आरंभिक पंचभूतों का सर्वत्र एक होना। एक मनुष्य का शरीर जब प्लेग से आक्रांत होता है, तब उसके संसर्ग से दूसरे मनुष्य भी प्लेग के रोगी हो जाते हैं। प्रथम रोगी का शरीर जिन पाँच भूतों से बना है, उन्हीं से दूसरे मनुष्यों का शरीर बना है। भूतों के धर्म सब स्थानों पर एक ही रहते हैं। रोग ने जो विकार एक भौतिक पदार्थ में किया है, वही दूसरे भौतिक पदार्थों पर करता है। शरीरों के आरंभिक भूत सजातीय हैं, इसलिए शरीर समान धर्म रखते हैं। भूतों की जो सजातीयता एक जाति के शरीरों में है, वही विविध जाति के शरीरों में है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश मनुष्य-शरीर की रचना करते हैं। ये ही अन्य जंतुओं के शरीर बनाते हैं। उसी जाति के भूतों के होने से कुत्ते-बिल्ली आदि भी मनुष्य-रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। सहकारी कारणों के भेद से भूतों का संयोग सब स्थानों पर एक नहीं होता। नाना जाति के शरीरों में जो धर्म-वैषम्य उपलब्ध होता है, उसका हेतु यही है। भूतों का संयोग जितना विषम होता जाता है, उतना ही धर्म-वैषम्य बढ़ता जाता है। मनुष्य और वनमानुस की भौतिक रचना का ढंग बहुत मिलता है, इसलिए रोग और चिकित्सा में दोनों की समान अवस्था है।

शरीर की उत्पत्ति में भूतों की जाति नहीं बदलती।

सब स्थानों पर एक जाति के भूतों के होने पर भी एक जाति का शरीर अपर जाति के शरीर को नहीं उत्पन्न कर सकता। शरीर की उत्पत्ति केवल भूतों पर आश्रित नहीं है। जीव-सहित भौतिक शरीर अपर शरीर को उत्पन्न करता है। नाना योनियों के जीवों में भी जाति-भेद नहीं है। फिर भी अपने अनुरूप शरीरांतर की उत्पत्ति एक जाति का प्राणी ही कर सकता है। शरीर को उत्पन्न करने के लिए जिस जाति की आवश्यकता है, उससे भूतों का संबंध तभी होता है जब वे किसी विशिष्ट जाति के जीवित प्राणी में होते हैं। वस्तुओं की कुछ शक्तियाँ बहुत अवस्थाओं में समान रूप से रहती हैं और कुछ अवस्थाओं के बदलने पर बदल जाती हैं। बिजली पृथिवी में हो या जल में, सदा उष्ण प्रतीत होती है। चमकती तब है, जब काँच का ढक्कन हो। जीव और भूत, ज्ञान और शरीर के आरंभ में कभी शक्ति-शून्य नहीं होते। पर जीवित शरीरांतर को तब तक नहीं उत्पन्न कर सकते, जब तक किसी अवांतर जाति के संबंधी न हों।

भूतों की सम रचना के कारण नाना जंतुओं के अंग मनुष्यों के अंग हो जाते हैं। योगदर्शन के भाष्यकार व्यास नाना योनियाँ मानते हुए तिर्यक्, मनुष्य और देवों को परस्पर का आधार कहते हैं—"तैर्यग्यौनमानुषदैवतानि च परस्परार्थत्वात्"। वाचस्पति मिश्र व्याख्या करते हैं—मनुष्य का शरीर पशु पक्षी मृग सरीसृप और स्थावरों के शरीर का उपयोग करके जीवित रहता है। बाघ आदि का शरीर, मनुष्य पशु मृग आदि के शरीर का उपयोग करता है। पशु मृग आदि का शरीर स्थावरादि को उपयोग में लाता है। देवताओं का शरीर मनुष्यों द्वारा बलि में दिये हुए बकरे-हिरन-कपिंजल का मांस, घी, पुरोडाश, आम की शाखा और पत्थर आदि यज्ञ-साधनों पर आश्रित है। देवता वरदान और वर्षा आदि से मनुष्य आदि का पालन करते हैं।

इतना ही नहीं, योगदर्शन के भाष्यकार ने नाना जातियों को उच्छिन्न किये विना सजीव शरीर और अचेतन वस्तुओं तक का अभेद प्रतिपादित किया है—'अथाव्यपदेश्याः के सर्वं सर्वात्मकमिति। यत्रोक्तम्—जलभूम्योः पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थ दृष्टम्। यथा स्थावराणां जंगमेषु जंगमानां स्थावरे जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकमिति देशकालाकारनि पबन्धान्न खलु समानकालमात्मनामभिव्यक्तिः। (दर्शन, ३ पाद, १४ सूत्र) योगसिद्धांत के अनुसार स प्रकृति का परिणाम है। प्रत्येक परिणामी पदार्थ त्रि धर्मों से युक्त होता है। शांत, उदित और अव्यप नामक तीन धर्म हैं। जो धर्म अतीत हो चुके शांत, और जो वर्तमान हैं उन्हें उदित कहते हैं। अ पदेश्य वे हैं, जिनका स्वरूप इंद्रियों से या शब्द नहीं जाना जा सकता। इन्हीं अव्यपदेश्य धर्मों कारण सब वस्तुओं का सबसे अभेद है। जल और भू का स्थावरों के रस आदि रूप में परिणाम देखा जा है। जंगमों का स्थावर रूप में और स्थावरों का जं रूप में परिणाम होता है, पर अपनी-अपनी जाति त्याग नहीं होता। देश काल आकार सहकारी क हैं। ये सदा सब स्थानों में उपस्थित नहीं होते, लिए पदार्थ एक काल में प्रकट नहीं होते। वाच मिश्र इसका तर्कपूर्ण विवरण करते हैं—'जल' में रूप स्पर्श और शब्द हैं भूमि में गंध रस रूप और शब्द रहते हैं। वनस्पति लता गुल्म आदि भ से निकलते हैं और पानी से इन्हें सींचते हैं। मूल और पत्र आदि में जो रस रूप स्पर्श और गंध ना प्रकार के उपलब्ध होते हैं, वह जल और भूमि परिणाम है। जल और भूमि का यदि यह स्वभाव हो—ये विलक्षण रस-रूपादि जल और भूमि में न ह तो इस प्रकार का परिणाम न हो; क्योंकि अविद्यमा की उत्पत्ति नहीं होती, यह युक्ति-सिद्ध है। स्थाव का जंगम मनुष्य पशु मृग आदि के रसादि रूप परिणाम होता है। फल आदि खाकर जंतुओं का रं रूप बदल जाता है। स्थावरों में जंगमों का परिणा देखिए। अनार को रुधिर से सींचा जाय तो फल त के फलों से मोटे हो जाते हैं। इस प्रकार परस्पर अ होने पर भी जलत्व और भूमित्व-जाति का कहीं विना नहीं होता। हरएक वस्तु सदा हरएक पदार्थ में है, फि भी प्रत्येक पदार्थ के समग्र परिणाम एक काल में न

१. योगदर्शन, २ पाद, २८ सूत्र

१. योगदर्शन, व्यासभाष्य और वाचस्पति मिश्र की टी से युक्त, पृष्ठ १३३।

। कुंकुम काश्मीर में उत्पन्न होता है, पांचाल आदि में नहीं उगता । यद्यपि काश्मीर और पांचाल की एक जाति की है; पर काश्मीर की भूमि में जो विधान है वह अन्य भूमियों में नहीं है, इसलिए वहाँ नहीं होता । ग्रीष्म में वर्षाऋतु का आविर्भाव नहीं होता, इसलिए चावल तब नहीं होते । हिरनी मनुष्य को नहीं उत्पन्न करती; क्योंकि उसमें मनुष्य का आकार प्रकट नहीं है ।'

सब पदार्थ प्रकृति के परिणाम हैं। प्रकृति सब स्थानों है। इस शैली से मनुष्यों में पशु-पक्षियों और पक्षियों में मनुष्य के उत्पन्न करने की शक्ति है, नहीं एक दूसरे के रुधिर से परस्पर कोई विकार न होता । वह शक्ति अव्यपदेश्य रूप में ही रहती है, वर्तमान नहीं होती । जिस वस्तु में जिन परिणामों के प्रकट करने की शक्ति है, वही उससे प्रकट होते हैं। ...क विकार मनुष्य में आकर ही मनुष्य का प्रसव करते हैं।

योनियों में परिणाम माननेवाले, पशुओं के अंगों की ... के अंगीभूत होने तक ही समानता देख सके; कपिल और पातंजलों ने मनुष्य-शरीर का वन्य-... के शरीर के लिए प्रसिद्ध उपयोग दिखाकर साम्य ... ही नहीं किया, प्रत्युत जल और भूमि का ... में परिणाम प्रकट करके अचेतन पदार्थों और ... के शरीर तक का साम्य व्यक्त किया है। योनि-परिणामवादी मूल में जड़ चेतन का भेद नहीं मानते । ... जड़ का चेतन शरीर के रूप में परिणाम इष्ट ... योनियों में क्रमिक प्रकृति-विकृति-भाव मानने ... करके जड़ का स्थावर या जंगम के शरीर ... विचार से बाहर रहा । आदियोनि में ... चेतन शरीर के रूप में अभिव्यक्ति उन्होंने कही । बृहदारण्यकोपनिषद् की मधुविद्या में भी जड़-चेतन ... उपकार्योपकारक भाव कहा गया है और ... रीति से कहा है । उपनिषद् ने पहले ... को सब प्राणियों का और सब प्राणियों को ... मधु कहा; साथ ही पृथिवी में रहनेवाले ... अमृतमय पुरुष को शरीरनिवासी तेजोमय ... में अभिन्न बतलाया । इसी प्रकार जल, आग, वायु, सूर्य, दिशा, चंद्र, बिजली, बादल, आकाश, धर्म, सत्य, मनुष्य और आत्मा को सब प्राणियों का मधु तथा सब प्राणियों को इनका मधु क्रम से बतलाया है। मधु कहते हैं शहद के छत्ते को । जिस प्रकार अनेक मधुमक्षिका शहद का छत्ता बनाती हैं, इसी प्रकार ब्रह्मांड के समस्त प्राणियों ने इस पृथिवी या जल को बनाया है। इस सादृश्य से पृथिवी आदि को प्राणियों का मधु कहा है। पृथिवी आदि से प्राणियों के शरीर बनते हैं, इसलिए प्राणी पृथिवी आदि के मधु कहे गये। मनुष्य को भी उपनिषद् ने इतर प्राणियों का और इतर प्राणियों को मनुष्य का मधु कहा है। 'मनुष्य' शब्द यहाँ उपलक्षण है। अन्य जातियों में भी यही मधुभाव है। उपनिषद् इन सबको परस्पर उपकार्योपकारक समझती है, पर इसी से इनमें परस्पर प्रकृति-विकृतिभाव नहीं बतलाती। उपकार के लिए कार्य-कारणभाव की अपेक्षा नहीं है। प्राणियों को कर्म का फल देने के लिए पृथिवी आदि की रचना हुई, इसलिए ब्रह्माण्ड प्राणियों का आभारी है। प्राणी शरीर के लिए पृथिवी आदि की अपेक्षा रखते हैं, इसलिए पृथिवी आदि प्राणियों के उपकारक हैं। पृथिवी आदि और प्राणियों की जातियाँ पृथक् हैं। किसी भी प्रकार का उपकार हो, सजातीय होने की आवश्यकता नहीं है। शरीर के उपकार के लिए अनुकूल गुण रखनेवाले पदार्थों की आवश्यकता है, सो अनुकूल गुण एक जाति के शरीर में ही नहीं होते। अनुकूल होने के कारण जड़भूत शरीर के पोषक हैं। भूतों की जाति तो आपको भी किसी योनि के कारणरूप में अभिमत नहीं है।

उपकार्योपकारक भाव के कारण जन्य-जनक भाव के अनुमान में योनिपरिणामवादियों की अद्वैतवादियों से आश्चर्यजनक समानता हुई है। इसी मधुविद्या की व्याख्या में शंकराचार्यजी उपकार्योपकारक भाव से सबका एक मूल कारण सिद्ध करते हैं—"समग्र जगत् परस्पर उपकार्य और उपकारक है। और, संसार में जो परस्पर का उपकार करते हैं, वे एक कारण से उत्पन्न होते हैं: उनकी आत्मा एक होती है और एक में उनका लय होता है। यह अर्थ इस ब्राह्मण में प्रकाशित

... संस्करण २, ब्राह्मण ५

१. बृह० शांकरभाष्य सटीक, पृ० ...

हुआ है।' भाष्य पर सुरेश्वराचार्यजी ने वार्तिक लिखा है। उसका सार विद्यारण्यजी ने बनाया है। उसमें यह अर्थ दृष्टांत से कहा है—

जगदेकस्य कार्यं स्यादेकमातृजपुत्रवत्।
परस्परोपकारित्वादिति हेतुः समर्थ्यते ॥

(२ अ०, ५ ब्रा०, ६ श्लो०)

अर्थात् जिस प्रकार एक माता के पुत्र परस्पर का उपकार करते हैं, इसी प्रकार संसार एक से उत्पन्न होने के कारण परस्पर का उपकारी है। शंकराचार्यजी एक ब्रह्म को संसार का कारण मानते हैं, और कार्य को जड़जगत् में प्रकृति-विकृति की शृंखला भी बतलाते हैं; पर जिन जड़-चेतनों में या चेतनों में उपकार्योपकारक भाव है, उनमें प्रकृति-विकृतिभाव नहीं स्वीकार करते। यहाँ योनिपरिणाम से भेद है। सब योनियाँ ब्रह्म से उत्पन्न हुईं, पर प्रकृति के विकारों के समान क्रमशः नहीं। स्वतन्त्रता से उत्पन्न होने पर भी कारण—ब्रह्म एक है। उधर दूसरी ओर मूल कारण एक प्रकृति है। उसका जड़जगत् में क्रम है, इसलिए चेतनजगत् में भी कहा गया। मूल कारण की एकता और उपकार योनियों की स्वतन्त्र भिन्न सत्ता में नहीं हटता। शरीर सभी प्राकृतिक हैं, इसलिए परस्पर उपयोग में आ सकते हैं। आनन्दगिरिजी ने भाष्य की व्याख्या में इस हेतु के लिए स्वप्न का दृष्टांत रक्खा है। स्वप्न में जो कुछ दिखायी देता है, वह परस्पर का उपकारक होता है। स्वप्न में प्रतीत होनेवाले उन उपकारी पदार्थों का कारण एक आत्मा है। यह उदाहरण ब्रह्म की कारणता को स्पष्ट कर देता है। समग्र संसार में जो कुछ उपकार है, वह स्वप्न के समान है और ब्रह्म सत्य है, यह भाव है। संसार के प्राणियों में क्रमिक कारण-परम्परा से ब्रह्मवादियों का अभिप्राय नहीं है। इसीलिए दूसरे स्थान पर चार्वाकों का खंडन करते हुए शंकराचार्यजी समानजातीय पदार्थों में उपकार के नियम का निषेध करते हैं—'भौतिक शरीर का जो उपकारक है, उसका भौतिक होना आवश्यक नहीं है। भौतिक शरीर का उपकार करनेवाले सूर्य आदि भौतिक हैं सही, पर सजातीयों में उपकार कोई व्यापक नियम नहीं है।' ईंधन, घास, फूस आदि पार्थिव पदार्थ हैं। ये आग को जलाकर सहायता देते हैं। इससे इस बात का अनुमान नहीं कर बैठना चाहिए कि आग सब स्थानों पर ईंधन की जाति के पदार्थों से ही जलती है। बिजली और उदर की आग का उपकार विजातीय जल भी करता है। कभी मनुष्यों का उपकार मनुष्य करते हैं और कभी स्थावर पशु आदि, जिनकी जाति भिन्न है।

भौतिक रचना के समान होने से मादक द्रव्यों का प्रभाव मनुष्य और अन्य जंतुओं पर समान पड़ता है। वनमानुस मद्य से मनुष्य की ही तरह मस्त हो जाते हैं। गिबन और बबून मद्य पिलाकर पकड़े जाते हैं। कँगरू और ओपोसम के तंबाकू और मदिरा पीने का यही हेतु है।

रुधिर-साम्य से भी योनियों में परिणाम का अनुमान करते हैं। वस्तुतः मिलती-जुलती शरीर-रचना के कारण रुधिर समान स्वभाव का उत्पन्न होता है। रुधिर-परीक्षा की कई विधियाँ हैं। कैंब्रिज-विश्वविद्यालय के डा० जार्ज एच्० एफ्० नट्टाल की विधि सुनिए। मनुष्य के ताजे रुधिर को वह प्याली में जमने देते हैं। कुछ ही मिनटों में थक्का जम जाता है। इस ठोस थक्के से गेहुँए रंग का रस पृथक् हो जाता है, जिसे रक्तरस कहते हैं। इस रक्तरस की अल्प मात्रा खरगोश की नसों में सुई से डाल देते हैं। सुई लगाने के बाद कुछ दिन तक खरगोश को जीवित रखते हैं; एक दिन मार कर रुधिर निकाल लेते हैं। इस रुधिर को भी प्याली में जमाकर रक्तरस अलग कर लिया जाता है। खरगोश से खींचा हुआ रस मनुष्य के रक्तरस का विरोधी कहा जाता है। इससे मनुष्य के ताज़े ही नहीं, पुराने रुधिर को भी पहचान लेते हैं। रुधिर के धब्बे नमक के हलके घोल में भिगो दिये जाते हैं। फिर छानकर घोल स्वच्छ कर लिया जाता है। इस घोल में मनुष्य-विरोधी रक्तरस की बूँदें डालने पर यदि श्वेतवर्ण उठला-सा दिखायी दे, तो मनुष्य का रुधिर समझना चाहिए। भेड़, बकरी आदि पालतू पशु का रुधिर हो तो श्वेतवर्ण नहीं आता। मनुष्य-विरोधी रक्तरस के समान अन्य पशुओं के भी विरोधी रक्तरस बना लिये जाते हैं।

जिस जाति के जंतु का विरोधी रक्तरस हो—वह अपना प्रभाव अपनी जाति के प्राणी के रुधिर में देगा, अौ

१. बृह० सभाष्य सटीक, पृ० ५५५

[illegible] जाति का निकटवर्ती जातियों के प्राणियों के [illegible] में देगा। इस प्रकार जातियों के परस्पर संबंध का निर्धारण हो जाता है। अत्यंत गाढ़े घोल से दूर के संबंध का भी निश्चय हो सकता है। डॉ० नट्टाल अपनी '[illegible] इम्यूनिटी एण्ड ब्लड रिलेशनशिप' पुस्तक में लिखते हैं कि सिमिडाई-नामक प्राचीन वनमानुस के [illegible] में मनुष्य-विरोधी रक्तरस से मनुष्य के रुधिर की [illegible] ही प्रभाव होता है। इसके बाद सरकोपि थेसिडाई बन्दर का रुधिर है और उसके अनन्तर सेविडाई और [illegible]डाई-नामक बन्दर समझने चाहिए। इन अंतिम बन्दरों में बहुत ही कम प्रभाव होता है। लेमुरोइडिया बन्दर में कोई प्रभाव ही नहीं होता। इसी रीति से [illegible]हारी का विरोधी रक्तरस स्तनधारियों की अपेक्षा [illegible]पाहारियों के रुधिर में तीव्र प्रभाव उत्पन्न करता है। [illegible]णियों का दूर निकट से संबंध इस विधि से भले ही प्रकट हो जाय, पर उसे जन्यजनक भाव नहीं कह सकते। जिन-जिनकी शरीर रचना में भौतिक तत्त्व समानविधि से काम करते हैं, उन-उनके रुधिरों में समान गुण हैं। रुधिर का साम्य-वैषम्य अपने उपादान-कारणों की मात्रा के अधीन है। यही कारण है कि परीक्षा द्वारा शुतुर्मुर्ग और तोते के रुधिर में समानता दिखायी देती है, नहीं तो कहाँ तोता और कहाँ शुतुर्मुर्ग! कुछ भी तो संबंध नहीं। स्तनधारियों के रुधिर को स्तनपायी का विरोधी रक्तरस जो अत्यन्त भिन्न प्रकट करता है, उससे भी योनियों में प्रकृति-विकृति-भाव का निषेध होता है।

एक रुधिर ही क्या, शरीर के अनेक भागों की समानता परीक्षण-द्वारा प्राणियों में मिल सकती है। योनियों का स्वतन्त्र सत्ता में इसकी तर्कपूर्ण उपपत्ति है।

जाने किस भय में डूबे विस्मृत मृत-से तज मर्मर
घन-अंधकार-छाया में सविषाद खड़े हैं तरुवर
ज्योत्स्ना-विहीन अम्बर में चुपचाप सिसकते तारे
लेता लहरों के करवट जब तब सागर मन मारे
भूली प्रिय-तट के मुख पर तटिनी चुम्बन बरसाना
फैला लहरों की बाहें सुधि-संकुल कलकल गाना
मूर्च्छित-सा मौन व्यथा में चिन्ता-निमग्न-सा नभ है
दिशि और दिगन्त-मुखों की तम-संवृतश्री निष्प्रभ है
सिर रख सीने पर प्रिय के भय-मौन व्रतति-बालाएँ
केवल निर्जन में रोतीं झरझर कर गिरि-मालाएँ
संसार श्रान्त सोता है स्वप्निल प्रशान्ति-छाया में
तुम मुझे भुलाने आयीं ऋतु-भ्रान्ति-मोह-माया में?
कल्पने सुखों की, यों मत जर्जर अन्तर को छूना
हो चुका रुदन को अर्पित मेरा यह जीवन सूना
जब मृदु-अंगों के नभ में यौवन की ज्योत्स्ना जागी
'उन' ने तत्काल लगा दी ममता के वन में आगी

कोमलता के अन्तर में संकुल निष्ठुरता निकली
मेरी अनन्त आशा में हा! क्षण-भङ्गुरता निकली
सो गयी शून्य अञ्चल में उत्सुक सुख-उन्मन माया
मुस्काता अपनेपन में साम्राज्य पराया आया
अभिलाषाओं की सुषमा नैराश्य-व्यथा बन आयी
जीवन-नभ में निष्फलता नीरदमाला-सी छायी
उठने की उत्कंठा में उत्साह न आह रहा है
जीवन वियोग-बन्धन में अविराम कराह रहा है।
आओ स्मृतियो! तुम आओ, यह है अधिकार तुम्हारा
उपहार-लुटे जीवन में जीवन है प्यार तुम्हारा
निज नेह-स्मिति-अञ्चल में चिन्तित चैतन्य सुलाओ—
मेरा अतीत सुख-संकुल लाओ, स्वप्नों में लाओ
सूनेपन की माधुरिमा! देखूँ तुमको कन-कन में
तुममें जीवन मिल जाये, तुम मिल जाओ जीवन में
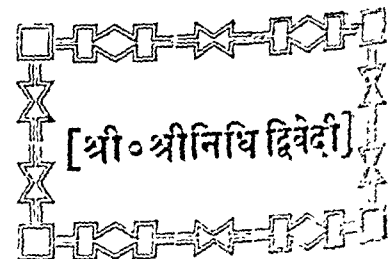
वंगीय रंगमंच का इतिहास

(शेषांश)

[श्री० शिवपूजनसहाय हिंदीभूषण]

आर्ट-थिएटर और बंगाल-थिएट्रिकल कंपनी

जब मिनर्वा-थिएटरका भवन जल गया और मनमोहन का व्यवसाय भी मन्दा पड़ गया, तब सन् १९२३ में अपरेशचन्द्र मुकर्जी ने एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी गठन की। इसी कंपनी का 'आर्ट-थिएटर लिमिटेड' नाम पड़ा और स्टार-थिएटर के रंगमंच पर इसका जन्म हुआ। इस कंपनी में निम्नलिखित प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित हुए—सर्वश्री कुमारकृष्ण मित्र, निर्मलचन्द्र चंद्र, सतीशचन्द्र सेन, भूपेन्द्रनाथ बनर्जी, हरिदास चटर्जी, प्रबोधचंद्र मल्लिक, एच्० के० राय चौधरी, निर्मलशिव बंद्योपाध्याय आदि। इस कम्पनी ने ता० ३० जून (१९२३) को पहलेपहल "कर्णार्जुन" नामक नाटक अभिनीत किया। इस नाटक के अभिनय में कम्पनी ख़ूब सफल हुई। किसी नाटक का अभिनय इसकी तरह कभी सफल* नहीं हुआ था। इसके सिवा आर्ट-थिएटर ने और भी कई नाटकों का अभिनय किया। सबमें आशातीत सफलता हुई। कई पुराने नाटक भी खेले गये, उनमें भी नवजीवन और नयी शक्ति का संचार हो गया।

सन् १९२१ के अप्रैल में मेसर्स मदन-थिएटर्स लिमिटेड ने वंगीय रंगमंच पर धावा किया। उन्होंने आक्रमण का झंडा फहराया, उसके साये में कई अच्छे वंगाली अभिनेता आ इकट्ठे हुए। उन अभिनेताओं में दो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—प्रोफ़ेसर शिशिरकुमार भादुड़ी और मिस कुसुमकुमारी। ये दोनों ही मदन-कम्पनी के प्राण थे। इन्होंने उसी साल के नवंबर में 'आलमगीर' नामक नाटक के अभिनय में ऐसा अभूतपूर्व नाट्य-कौशल प्रदर्शित किया कि क़रीब-क़रीब सारे बंगाल में धूम मच गयी। प्रोफ़ेसर भादुड़ी ने अभिनय-कला में युगांतर प्रकट कर दिखाया। उनकी नवीन क्रांति की चर्चा चारों ओर होने लगी। उन्होंने एकाएक वंगीय रंगमंच की काया पलट दी। वह बहुत लोकप्रिय हो गये। फिर भी कंपनी के मालिकों से ज़्यादा दिन उनकी पटी नहीं। सन् १९२२ के दिसंबर में उन्होंने कंपनी छोड़ दी। बस, उनके हटते ही मेसर्स मदन की बंगाल-थिएट्रिकल कम्पनी हवा हो गयी। किंतु इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मेसर्स मदन ने पैसे के प्रताप से वंगीय रंगमंच की रूपरेखा में अद्भुत परिवर्तन कर दिया। वह सजावट, वह जगमगाहट, वह लकदक, वह विलक्षण आकर्षण पहले कभी वंगीय रंगमंच पर नहीं देखा गया था। किंतु पैसे के बल से सिर्फ़ स्टेज ही चमकीला भड़कीला बनाया जा सकता है, स्टेज के प्राण-स्वरूप कुशल अभिनेता नहीं ख़रीदे जा सकते। जो सच्चा नाट्यकलाविद् है, वह केवल कला-मर्मज्ञ और गुणग्राही स्वामी की कंपनी में ही टिक सकता है। जहां सद्व्यवहार और सद्भाव का अभाव हो—कला की परख न हो, केवल पैसे के लिए हाय-हाय हो—वहां भला सच्चा स्वाभिमानी कलाविद् कैसे रह सकता है। अगर कलावंतों की क़द्र करनेवाले पूँजीपति हों, तो लक्ष्मी का नाम 'चंचला' न होकर 'अचला' हो जाय।

नाट्य-मंदिर और मित्रा-थिएटर

सन् १९२४ के मार्च-महीने में दोल-यात्रा के दिन, एलफ्रेड-थिएटर के रंगमंच पर, प्रोफ़ेसर भादुड़ी ने स्वतंत्र रूप से 'वसंतलीला' नामक नाटक का अभिनय किया। स्वतंत्र नाट्य-व्यवसायी के रूप में यहीं उनका श्रीगणेश था। उक्त रंगमंच पर भादुड़ी महाशय ने लगातार तीन महीने तक अभिनय किया। इसके बाद

---

* 'कर्णार्जुन' का अभिनय लगातार साल-भर हुआ था। [illegible] वह प्रतिदिन खेला जाता था। उस समय मैं कलकत्ते में था। उसी साल 'मतवाला' निकला था। सो [illegible] नाटक खेल चुकने पर बड़ी धूमधाम से उत्सव [illegible] था। प्रथम उत्सव संभवतः देशबंधु दास की अध्यक्षता में हुआ था। दूसरी बार और तीसरी बार भी, [illegible], कवींद्र रवींद्र और आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय [illegible] बुलाये गये थे। उस समय रंगीन [illegible] और उल्लास देखने ही योग्य था।

—लेखक

उन्होंने मनमोहन-थिएटर का ठेका ले लिया। वहाँ उन्होंने उसी साल के अगस्त-महीने में 'सीता' नामक नाटक के अभिनय से श्रीगणेश किया। 'सीता' के अभिनय से नयी क्रांति की लहर उमड़ पड़ी। भादुड़ी महाशय ने दर्शकों की रुचि ही बदल दी। इतना काम करके, सन् १९२५ के बड़े दिन (दिसंबर) में, उन्होंने अभिनय-कार्य स्थगित कर दिया। अब उन्हें एक लिमिटेड कंपनी क़ायम करने की धुन सवार हुई। जनता के हृदय पर उनके क्रांतिकारी अभिनय-कौशल की धाक जम ही चुकी थी, इसलिए कम्पनी बनाने में विशेष कठिनाई न हुई। उन्होंने कार्नवालिस-थिएटर के रंगमंच पर, 'नाट्य-मन्दिर-थिएटर' के नाम से, अपनी स्वतंत्र नयी कम्पनी को जन्म दिया। वहाँ भी 'सीता' के अभिनय से ही श्रीगणेश हुआ। फिर वहाँ से भादुड़ी महाशय मनमोहन-थिएटर के रंगमंच पर आ गये और 'सीता' के अभिनय से बहुत समय तक दर्शकों को मुग्ध करते रहे।

सन् १९२५ में, गुडफ्राइडे के अवसर पर, मित्रा-थिएटर का जन्म हुआ। उसके जनक थे श्रीज्ञानेन्द्रकुमार मित्र, और उसका जन्मस्थान था वही एलफ्रेड-थिएटर का रंगमंच। उसके जन्म-दिन की ख़ुशी में 'श्रीदुर्गा' नाटक खेला गया था। किन्तु दुर्गा भवानी को तो मारकाट और ख़ूनख़राबा ही ज़्यादा पसन्द है, इसलिए जैसा रक्तरंजित श्रीगणेश हुआ, वैसी ही इतिश्री भी हुई। उन्हीं दिनों कलकत्ते में भीषण साम्प्रदायिक दंगा शुरू हो गया। यह थिएटर अभी तीन-चार महीने का बच्चा ही था। दंगे के कारण बेचारे की जान ख़तरे में पड़ गयी; न दूध मिला न बिस्कुट, ऐंठकर रह गया। दंगा भी महीनों चला—साल-डेढ़-साल तक कलकत्ते में आतंक का राज्य रहा, सार्वजनिक शान्ति प्रतिक्षण संकटापन्न प्रतीत होती थी; इसलिए मित्रा-थिएटर श्रीदुर्गाजी के खप्पर में समा गया।

एक पुरानी कहानी

यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि बंगीय नाट्यशाला में आर्केस्ट्रा की व्यवस्था का आरम्भ किस तिथि से हुआ, तथापि यह बात सर्वविदित है कि 'मेयो-अस्पताल' की इमारत बनवाने के लिए टाउनहॉल में जो 'नीलदर्पण'-नाटक का अभिनय हुआ था, उसी अवसर पर पहलेपहल बंगीय नाट्यशाला में आर्केस्ट्रा की व्यवस्था की गयी थी। पहले 'नीलदर्पण' के अभिनय का प्रसंग आ चुका है।

गिरीश बाबू के नातेदार श्रीव्रजनाथ देव, जो नं० [illegible] शामपुकर-स्ट्रीट में रहते और जॉन एटकिंसन् कम्पनी [illegible] काम करते थे, उन दिनों कलकत्ते में क्लारनेट बजा[ने] में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। उनके पन्द्रह वर्ष बा[द] शामबाज़ार-स्ट्रीट के निवासी श्रीराजेन्द्रनाथ नियोगी [की] प्रसिद्धि हुई। यह नियोगी महाशय भी क्लारनेट बजा[ने] की कला में बड़े निपुण थे। इनके पुत्र श्रीननीलाल नियोगी तो बड़े ही सिद्धहस्त थे। सन् १८८० [की] सातवीं जनवरी को ननीलाल बाबू ने अपना [illegible] वादन-कौशल प्रदर्शित किया था। उस दिन बंगी[य] नाट्यशाला के आर्केस्ट्रा की शोभा देखने ही योग्य थी। स्वर्गीय संगीत की सरस धारा से सारी नाट्यशा[ला] परिप्लावित हो गयी। ननीलाल बाबू के क्लारनेट [ने] वायुमण्डल को नन्दन-वन-विहारिणी मंजुघोषा [के] नृत्य-संगीत से भर दिया। उस शुभ अवसर पर वर्तमा[न] सम्राट् पंचम जॉर्ज के बड़े भाई (स्वर्गीय) प्रिंस अ[ल]बर्ट विक्टर भी उपस्थित थे। उन्हीं के स्वागतार्थ उत्स[व] हो रहा था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। उस महोत्सव में 'शामबाज़ार अमेच्युर कंसर्ट पार्टी' भी उपस्थित थी। यह पार्टी ननीलाल बाबू [के] अनुरोध से ही आयी थी। ननी बाबू भी इस पार्टी [के] एक अंग थे। सन् १८८३-८४ में जो अन्तरराष्ट्री[य] प्रदर्शिनी कलकत्ते में हुई थी, उसमें इस पार्टी को [illegible] पदक मिले थे। उक्त महोत्सव में भी प्रिंस अलबर्ट विक्टर ने इस पार्टी का ख़ूब आनन्द लूटा था। पा[र्टी] की भैरवी-रागिनी सुनकर प्रिंस मुग्ध हो गये थे। स्वागत-गान उसी रागिनी में सुनाया गया था। [illegible] स्वागत-गान यद्यपि अँगरेज़ी में था, तथापि भैर[वी] रागिनी ने उस पर भारतीय रंग चढ़ा दिया था। [illegible] गीत के रचयिता श्रीयुत एन्० सी० वसु को भी [illegible] आशा न थी कि उनकी अँगरेज़ी-रचना भारतीय संगी[त] की धारा में घुलकर इतनी मधुर हो जायगी। वास्त[व] में उस गीत के अन्दर भरी हुई प्रेममयी भावुकता [और] कलावन्तों की श्रद्धापूर्ण तल्लीनता ने प्रिंस अलबर्ट के [चित्त] को चुरा ही लिया। वह इतने आकृष्ट और प्रेम-पुलकि[त] हो गये कि उस दृश्य का दर्शक ही उनकी आत्म[illegible]

…हृदयता का अनुमान कर सकता है, जड़ लेखनी उसका वर्णन नहीं कर सकती।

उस समय भारत के वायसराय थे 'मार्किस आफ़-[illegible]'। राजधानी कलकत्ते में थी। बड़े लाट वहीं रहते थे। लाट साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी ने ननी बाबू के नाम एक प्रशंसात्मक पत्र भेजा। पत्र के सिवा पुरस्कार भी दिया। धन्य है संगीत की महिमा!

ननीलाल बाबू के सुपुत्र श्रीसुरेन्द्रनाथ नियोगी आजकल कलकत्ते के सबसे अच्छे क्लारनेट-कलाविद् माने जाते हैं। अब तो वंगीय रंगशालाओं में कंसर्ट-पार्टी साधारण बात हो गयी है। जहाँ जाइए, क्लारनेट के कल गान की तरंग लहराती मिलेगी।

पुराने और नये अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ

श्रीअमरेन्द्रनाथ दत्त की असामयिक मृत्यु के बाद श्रीसुरेन्द्रनाथ घोष (दानी बाबू) ही एकमात्र प्रमुख अभिनेता रह गये। उन्होंने वंगीय रंगमंच का खूब ही गौरव बढ़ाया। सन् १९२० में वह मनमोहन-थिएटर की शोभा बढ़ा रहे थे। उस समय उनके सिवा दो और अच्छे अभिनेता थे—स्टार में श्रीतारकदास [illegible] और मिनर्वा में श्रीकुंजलाल चक्रवर्ती। उसी समय कुछ प्रसिद्ध अभिनेत्रियाँ भी वंगीय रंगमंच को आकर्षण का केन्द्र बनाये हुई थीं—स्टार का रंगमंच मिस तारा सुन्दरी की ज्योति से जगमगा रहा था, मिस कुसुमकुमारी और वसन्तकुमारी की प्रभा से मेसर्स [illegible] की बंगाल थिएट्रिकल कम्पनी आलोकित हो रही थी, मिस चारुशीला के कल कण्ठ से मिनर्वा का रंगमंच मुखरित हो रहा था और मिस शशिमुखी की मुखचन्द्रिका से मनमोहन की रंगशाला उद्भासित हो रही थी।

इस समय तक वंगीय रंगमंच के विकास का प्रथम युग समाप्त हो गया था। दूसरे नवीन युग का आरम्भ किया कुछ नवयुवक अभिनेताओं ने। इन्होंने नाट्य-[illegible] में परिवर्तन करके वंगीय रंगमंच में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इनके शुभ नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—श्रीनरेशचंद्र मित्र और श्रीराधिकानन्द [illegible] ने मिनर्वा के रंगमंच पर युगान्तर का आह्वान किया। [illegible] ऐक्टर शिशिरकुमार भादुड़ी और श्रीनिर्मलेन्दु [illegible] ने मेसर्स मदन की बंगाली थिएट्रिकल कम्पनी के कार्नवालिस स्टेज पर युगान्तर का अद्भुत दृश्य दिखाया। श्रीतीनकौड़ी चक्रवर्ती, अहीन्द्र चौधरी और दुर्गादास बनर्जी ने आर्ट-थिएटर के रंगमंच पर नये ढंग की नाट्यकला का शृंगार करके असंख्य दर्शकों को आकृष्ट किया। एक दफ़ा दो अँगरेज़ पुरुष एक अँगरेज़ महिला के साथ आर्ट-थियेटर के अभिनयों की प्रशंसा से आकृष्ट होकर नाटक देखने आये थे। वे अंत तक अपने स्थान से न हिले। यवनिका-पतन के बाद उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—"भाषा न समझ सकने पर भी हम लोग नाट्यभंगी देखकर ही सब दृश्यों के आनन्द का यथार्थ अनुभव कर सके हैं, कहीं हमें कठिनाई या अरुचि नहीं हुई।"

वंगीय रंगमंच पर नवयुग की छवि-छटा छिटकानेवाली नयी अभिनेत्रियों में मिस सुशीला सुन्दरी, मिस नीहारबाला, मिस रानी सुन्दरी, मिस कृष्णभामिनी और मिस प्रभा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जा सकता है। इन सोने की पुतलियों ने वंगीय रंगमंच को इन्द्र का अखाड़ा बना दिया। इनकी नाट्यलीला का लालित्य, इनकी भावभंगी का माधुर्य, इनकी स्वर-लहरी का लास्य-नृत्य, इनकी मंजु भाषा का सुकोमल सौरभ—सबने मिलकर एक ऐसे विलक्षण रंग-लोक की सृष्टि की जिसमें आत्मविस्मृति और तन्मयता नाम की दो देवियों के सिवा और किसी का प्रवेश होना संभव न रहा। इन रत्न-पुत्तलिकाओं को वंग-साहित्य-मन्दिर का मणि-दीप कहने में क्या कोई अयुक्ति होगी?

संभवतः यह आशा करना अभी दुराशा-मात्र है कि वह समय भी निकट भविष्य में आवेगा, जब कुलीन वंग-महिलाएँ कला की दृष्टि से सार्वजनिक रंगमंच को अपनाने के लिए अग्रसर होंगी। रूस की विश्वविख्यात नर्तकी श्रीमती पावलोवा ने इस लेख के (मूल) लेखक से अपनी यह आकांक्षा प्रकट की थी कि जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन कला धन्य एवं कृतकृत्य हो जायगी। किन्तु भारतीय सामाजिक मर्यादा के जो प्रेमी हैं, वे कला को कृतार्थ करने के लिए गृह-देवियों को गृह-प्राङ्गण की सीमा का उल्लंघन न करने देंगे। सम्भव है, उन्नत कला की दृष्टि से वंगीय रंगमंच जिस द्रुत वेग के साथ उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, उसके प्रसाद से कोई अवांछित घटना भी हो जाय।

'यहूदी की लड़की'

[श्री० वेद्व्यास]

यहूदी की लड़की का कथानक रोमन साम्राज्य के उस काल का है जब वहाँ साम्राज्यवादियों तथा पाखण्डी धर्माचार्यों की स्वेच्छाचारिता का नग्न नृत्य हुआ करता था। हिटलरशाही जर्मनी की भाँति रोमन साम्राज्य में भी उस समय यहूदियों के लिए कोई स्थान न था। कुत्ते-बिल्ली से भी अधिक बुरी हालत यहूदियों की थी। यह कथानक जिस समय का है, उस समय रोम का धर्माचार्य ब्रूटस अपनी पाशविकता को आये दिन यहूदियों पर चरितार्थ किया करता था। वह परले दरजे का नीच, स्वार्थी तथा हिंस्र भेड़िये से भी अधिक ख़ूँख़ार था। उसकी आँख राज्य के एक परम ऐश्वर्यशाली यहूदी व्यवसायी के ऊपर लगी थी। एक दिन यहूदी का सात साल का लड़का यामीन खेल रहा था। वह ढीले फेंक रहा था। दुर्भाग्य से एक ढीला उधर से गुज़रते हुए ब्रूटस के लग गया। बस, इतना ही काफ़ी था। फ़ौरन् वह लड़का अपने रोते-कलपते पिता एजरा के ममतापूर्ण हाथों से, साक्षात् क्रूरता की मूर्ति रोमन सैनिकों द्वारा, छीन लिया गया। इतना ही नहीं, वह निरीह बालक भूखे ख़ूँख़ार शेरों के सामने डाल दिया गया। वे ख़ून के प्यासे शेर देखते-देखते उस सुकुमार बच्चे की लाश को चीरफाड़कर चट कर गये! यह दृश्य देखकर वहाँ पर समवेत रोमन नारकीय उल्लास से नाच उठे। किंतु एजरा के स्वामिभक्त गुलाम एलियस का ख़ून खौल उठा। उसने उसी समय इसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की। एक दिन वह ब्रूटस की छोटी इकलौती बेटी को उठा लाया और यामीन के ख़ून का बदला चुकाने के लिए उसे अपने प्रभु के पैरों तले डाल दिया। लेकिन एजरा ने उसे उठाकर अपनी छाती से चिपका लिया और उसे अपनी लड़की की तरह पालने लगा। उसमें उसे अपने यामीन का आभास मिलने लगा।

धीरे-धीरे पंद्रह वर्ष बीत गये। यहूदी की लड़की हन्ना पूर्ण विकासप्राप्त पुष्प की भाँति अपने सौंदर्य तथा मकरन्द से महिलोद्यान की शोभा बढ़ाने लगी। घटनाक्रम से एक दिन छद्मवेशी रोमन राजकुमार मारकस तथा हन्ना की आँखें चार होती हैं। प्रथम दर्शन की प्रीति बढ़ते-बढ़ते गहरे प्रणय का रूप धारण करती है। ठीक ऐसे ही समय हन्ना को मालूम होता है कि मारकस रोमन है। किंतु मारकस अपने इस 'अपराध' की सफ़ाई में हन्ना के प्रति अपने प्रेम को पेश [illegible] है। हन्ना राज़ी हो जाती है। इसी समय एजरा आ उपस्थित होता है। वह मारकस से, हन्ना के सच्चे प्रेम के प्रमाण-स्वरूप, स्वधर्म त्याग कर [illegible] साथ विवाह करने को कहता है। मारकस इसे अस्वी[illegible] करता है। एजरा उसे घर से निकाल बाहर करता [illegible]

हन्ना की ओर से निराश होकर राजकुमार मार[illegible] पुनः आक्टेविया के प्रति आकृष्ट होता है, और अंत दोनों का विवाह हो जाता है। विवाहोत्सव के [illegible] एजरा भी हन्ना के साथ युवराज को उपहार देने [illegible] उद्देश्य से विवाह-मण्डप में जाता है। हन्ना मारकस [illegible] पहचानती है। यह जानकर कि वह और कोई नहीं रोम-साम्राज्य का भावी सम्राट् है, उसके विरुद्ध [illegible] के प्रति विश्वासघात करने का अभियोग उपस्थित [illegible] रोमन सम्राट् से न्याय और उचित विचार करने [illegible] अनुरोध करती है। ब्रूटस यह साबित करने की बे[illegible] कोशिश करता है कि क़ानून शाही परिवार के लोगों [illegible] लिए नहीं है। सम्राट् उसी समय मारकस की गिरफ़्त[illegible] और उसके अपराध के विचार करने का हुक्म देता है।

आक्टेविया विचार के एक दिन पूर्व हन्ना के पैरों [illegible] गिरकर राजकुमार की प्राण भिक्षा माँगती है। [illegible] वचन देती है। फ़ैसले के दिन वह राजकुमार के ख़िला[illegible] लगाये गये अभियोगों को वापस लेती है। ब्रूटस [illegible] प्रतिहिंसाग्नि फिर भड़क उठती है। वह हन्ना [illegible] एजरा को राजकुमार के विरुद्ध झूठा अभियोग लग[illegible] के जुर्म में ज़िंदा जला देने का हुक्म देता है। हन्ना [illegible] एजरा को जीवित जलाये जाते देखने का हर्ष ब्रूटस [illegible] कब दमन कर सकता था। वधभूमि में यह पाश[illegible] दृश्य देखने के लिए अहंकारी ब्रूटस भी सम्राट् की [illegible] में बैठा हुआ अन्तिम घड़ी की उत्सुकतापूर्वक प्रती[illegible]

करता है। ठीक इसी समय एजरा उसे उसकी इकलौती बेटी डेसिया के हरण की कथा का स्मरण कराता और कहता है कि वह लड़की अब तक जीवित है, और उसका पता जाननेवाला एजरा के सिवा संसार में दूसरा व्यक्ति नहीं है। अपनी एकमात्र प्राणाधिका कन्या के जीवित होने का समाचार सुनकर ब्रूटस का पाशविक हृदय विचलित हो उठता है। वह डेसिया का पता मालूम करने के लिए अनुनय-विनय करता है, धमकाता है, फिर पैरों पर गिरकर विनती करता है। अंत में एजरा इस शर्त पर उसका पता बताने को राज़ी होता है कि डेसिया का पता मालूम हो जाते ही तत्काल पहले हन्ना और बाद को एजरा को जीवित जला दिया जायगा। ब्रूटस इस शर्त को मंज़ूर करता है, और एजरा बतला देता है कि हन्ना ही डेसिया है!

उपसंहार का वर्णन लेखनी की शक्ति के बाहर है।

× × ×

'यहूदी की लड़की' का यही कथानक नवीन कल्पना के साथ सुंदर-से-सुंदर रूप देकर चित्रपट में उपस्थित किया गया है। कल्पना इस प्रकार की है कि हन्ना का जीवन भावों के संघर्ष का भीषण क्षेत्र बन रहा है; सतत संघर्ष मचा रहने से कभी-कभी ऐसा क्षण आता है कि वह अपना भावी पथ संघर्ष के अंधकार में पड़कर भूल जाती है और किंकर्तव्यविमूढ़ावस्था को प्राप्त होती है। ठीक उसी समय उसका हृदय कोई अंतर्ध्वनि सुनता है और क्षणभर की उसकी वह दुर्बलता दूर हो जाती है। वह पुनः अपना गन्तव्य पथ पा लेती है। इस फ़िल्म में मिस रतनबाई, मिस तारा, मि० सहगल, मि० नवाब, मि० कुमार, मि० हमीद आदि न्यूथिएटर्स के सफल अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों ने भाग लिया है। हमें यहाँ पर उनके अभिनय के संबंध में अभी कुछ नहीं कहना है। संतोष की बात इतनी है कि हमारी भारतीय फ़िल्म-कंपनियाँ भी उत्कृष्ट श्रेणी के फ़िल्म तैयार करने लगी हैं। इसका प्रमाण यह 'यहूदी की लड़की' है जिसे देखकर संदेह होने लगता है कि हम कोई विदेशी फ़िल्म तो नहीं देख रहे हैं।

इस फ़िल्म का परिचालन बँगला 'कपालकुण्डला' के सफल डाइरेक्टर श्रीप्रेमांकुर आतर्थी ने किया है। न्यूथिएटर्स-कंपनी द्वारा प्रस्तुत फ़िल्मों की सफलता में जिनका प्रमुख हाथ रहता है, उन सबका सहयोग इस फ़िल्म के निर्माण में आतर्थी महाशय को प्राप्त हुआ है। फ़िल्मी दुनिया ने श्रीयुत नीतिन बोस की फ़िल्मी चित्रकारी की श्रेष्ठता को एक स्वर से मान लिया है। वही नीतिन बोस इस फ़िल्म के चित्रकार तथा आर्ट-डाइरेक्टर हैं। और, परमप्रवीण संगीतज्ञ

श्रीप्रेमांकुर आतर्थी

श्रीयुत राईचाँद बड़ाल ने अपनी इस बेजोड़ कला का बड़ी सुंदरता के साथ परिचय दिया है। आतर्थी महाशय ने अपने इन दोनों सुयोग्य सहयोगियों का पूरा पूरा लाभ उठाने में शायद कोर कसर नहीं रक्खी। संगीत तथा चित्रकला, दोनों का आनुपातिक रूप से अपने फ़िल्म में उपयोग वही कर सकता है जो सफल डाइरेक्टर है। राजरानी मीरा भी न्यू-थिएटर्स की ही प्रयोजना है और निस्संदेह वह भी एक उत्कृष्ट श्रेणी का

स्वयंवरा स्वागत-समिति !

१—श्रीशंकराचार्य पर मिथ्या लाञ्छनारोप

दो वर्ष हुए, बौद्ध महापंडित त्रिपिटकाचार्य श्रीराहुल सांकृत्यायन की लिखी हुई "बुद्ध-चर्या" (भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेश)-नामक [illegible] श्रीशिवप्रसाद गुप्त, सेवा-उपवन, काशी द्वारा 'भार[illegible] संस्कृति-ग्रंथमाला' के प्रथम पुष्प के रूप में प्रका[illegible] हुई थी। लेखक ने रायल आठपेजी आकार के ६२० [illegible] इस पुस्तक में (जिसका मूल्य ५) है), पाली-[illegible] में बिखरी हुई बुद्ध भगवान् की जीवन-संबंधी [illegible] के संग्रह-रूप में—श्रीनरेंद्रदेवजी के सम्मता[illegible] —'बुद्ध की जीवनी, बुद्ध के उपदेश, संघ के नियम [illegible] बौद्धधर्म-संबंधी अन्य ज्ञातव्य बातों का समावेश' है, और इसे 'त्रिपिटक (सूत्रपिटक, विनय[illegible] और अभिधर्मपिटक) का सार' कहना कोई [illegible] नहीं है। हमारी दृष्टि में इससे प्राचीन इतिहास [illegible] कुछ प्रकाश पड़ता है और बौद्ध-साहित्य की [illegible] है। अतः इसकी उपयोगिता साधारण कोटि [illegible] अधिक है। परंतु खेद का विषय है कि ऐसी [illegible] पुस्तक की भूमिका ('भारत में बौद्धधर्म का [illegible] और पतन') में लेखक ने कुछ कटु तथा मिथ्या [illegible] का समावेश कर दिया है।

[illegible] बातों को न उठाकर हम मुख्य रूप से शंकर[illegible]चार्य के संबंध में लिखी हुई निम्नोद्धृत बातों [illegible] करना आवश्यक समझते हैं—

(१) बहुत दिनों से यह बात चली आती है कि—[illegible] के ही प्रताप से बौद्ध भारत से निकाले [illegible] बौद्धों को शास्त्रार्थ से ही नहीं परास्त [illegible] इनकी आज्ञा से राजा सुधन्वा आदि ने [illegible] बौद्धों को समुद्र में डुबोकर और तलवार के [illegible] उनका संहार किया। यह कथाएँ सिर्फ [illegible] ही नहीं हैं, बल्कि इसका संबंध आनंदगिरि और माधवाचार्य* की "शंकर-दिग्विजय" पुस्तकों से है, इसीलिए संस्कृत-विद्वान् तथा दूसरे शिक्षित जन भी इनका विश्वास करते हैं। वह इन्हें ऐतिहासिक तथ्य समझते हैं। कुछ लोग इससे शंकर पर धार्मिक असहिष्णुता का कलंक लगता देखकर इसे मानने से आनाकानी करते हैं; किंतु यदि यह सत्य है, तो उसका अपलाप न करना ही उचित है। (पृष्ठ ८।।।)

(२) शंकर के काल के विषय में बड़ा विवाद है। कुछ लोग उन्हें विक्रम का समकालीन मानते हैं। Age of Shankar के कर्ता तथा पुराने ढंग के पंडितों का यही मत है। (पृष्ठ ८।।।)

(३) बात असल यह है......वस्तुतः उत्तरीय भारत की पंडित-मंडली जो दरअसल उस समय की पंडित-मंडली थी—शंकर को आचार्य मानने के लिए तब तक तैयार न हुई जब तक उत्तरीय भारत में दार्शनिकों की भूमि मिथिला के, अपने समय के, अद्वितीय दार्शनिक सर्व-शास्त्रनिष्णात वाचस्पति मिश्र ने शारीरक-भाष्य की टीका 'भामती' लिखकर शंकर को भी न सूझनेवाले तत्त्व उसमें से निकाल डाले। यथार्थ में वाचस्पति के कंधे पर चढ़कर ही शंकर को वह कीर्ति और बड़प्पन मिला, जो आज देखा जाता है। यदि 'भामती' न लिखी गयी होती, तो शंकरभाष्य कभी का उपेक्षित और विलुप्त हो गया होता; और आज भारत में इतने गौरव और प्रभाव की तो बात ही क्या!

---

* [illegible]

न [illegible] ॥

[illegible]

([illegible] —"[illegible]—[illegible]

[illegible]" [illegible]

[illegible] (पृष्ठ [illegible])

वाचस्पति ने उत्तरीय भारत की पंडित-मण्डली के सामने शंकर की वकालत की। वाचस्पति मिश्र के एक शताब्दी पूर्व नालन्दा में आचार्य शान्त-[र]क्षित हुए थे। इनका महादार्शनिक ग्रन्थ "तत्त्वसंग्रह" संस्कृत में उपलब्ध होकर बड़ौदा से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थरत्न में शान्तरक्षित ने अपने से पूर्व के पचासों दार्शनिकों और दर्शनग्रन्थों के सिद्धान्त उद्धृत कर खंडित किये हैं। यदि वाचस्पति मिश्र से पूर्ण (? पूर्व) ही शंकर अपनी विद्वत्ता और दिग्विजय से प्रसिद्ध हो चुके होते तो कोई कारण नहीं कि शान्तरक्षित उनका स्मरण न करते।(पृष्ठ ≈)

(४) एक ओर कहा जाता है कि शंकर ने बौद्धों को भारत से मार भगाया। और दूसरी ओर हम उनके बाद गौड़-देश (बिहार-बंगाल) में पालवंशीय बौद्ध नरेशों का प्रचण्ड प्रताप फैला देखते हैं..................यह बतला रही हैं कि उस समय बौद्धों को किसी शंकर ने नेस्त-नाबूद न कर पाया था.................. (पृष्ठ ≈ और ≈।)

(५) कालिञ्जर के राजाओं...............क्या इससे नहीं सिद्ध होता कि शंकर द्वारा बौद्धधर्म का देश-निर्वासन कल्पनामात्र है? खुद शंकर की जन्मभूमि केरल से बौद्धों का प्रसिद्ध तंत्रग्रन्थ "मंजुश्रीमूलकल्प" संस्कृत में मिला है...... । क्या इस ग्रन्थ की प्राप्ति इस बात को नहीं बतलाती कि सारे भारत से बौद्धों का निकालना तो अलग बात है, खुद केरल से भी वह बहुत पीछे लुप्त हुए? ऐसी ही और भी बहुत-सी घटनाएँ और प्रमाण पेश किये जा सकते हैं, जिनसे इतिहास की उक्त झूठी धारणा खण्डित हो सकती है। (पृष्ठ ≈।)

इन बातों से बहुत कुछ भ्रम का फैलना सम्भव देखकर हम क्रमशः उत्तर देते हैं—

(१) श्रीशङ्कराचार्य ने 'सुधन्वा' राजा की सहायता से बौद्धों को भारत में 'नेस्त-नाबूद' कर दिया था अथवा यहाँ से उनका देशनिर्वासन कर दिया था, ऐसी कल्पना किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं देखी जाती है। अतएव इस विषय में श्रीराहुलसांकृतायन ने जो कुछ इस कल्पना के आधार पर लिखा है, उससे मिथ्या बात की आड़ में विरोध का फैलना सम्भव है।

श्रीराहुल ने आनन्दगिरि और माधवाचार्य की "शंकर-दिग्विजय" आदि पुस्तकों का नाम लेकर जो यह लिखा है कि 'शङ्कर आचार्यपाद की आज्ञा से राजा सुधन्वा आदि ने हज़ारों बौद्धों को समुद्र में डुबोकर और तलवार के घाट उतारकर उनका संहार किया'—यह बात सोलहों आने मिथ्या है। अनन्तानन्दगिरि की 'शंकरविजय' पुस्तक में ऐसा कोई प्रसङ्ग नहीं है। यदि श्रीराहुल की दृष्टि में वहाँ कोई ऐसा प्रसङ्ग था, तो उसका सङ्केत अपने लेख या पादटिप्पणी में उन्होंने क्यों नहीं किया? वास्तव में यह एक उच्छृङ्खल कल्पना है। इसी प्रकार माधव (नवकालिदास)-कृत 'संक्षेप-शङ्करजय' में भी कहीं यह बात नहीं आयी है। श्रीराहुल ने पादटिप्पण में इस ग्रन्थ के श्लोक ९।९३ को और (श्लोक ९।९५ पर) धनपतिसूरिकृत डिंडिमटीका को उद्धृत किया है। इस प्रथम सर्ग में श्लोक ४५ से अन्त (अर्थात् श्लोक ९८) तक माधव ने केवल एक ही प्रसङ्ग का वर्णन किया है कि किस प्रकार शिवजी की आज्ञा से स्कन्द (कुमार, गुह, वा ज्वलनभू अर्थात् स्वामिकार्त्तिकेय) ने कुमारिलभट्ट के रूप में अवतार लेकर वेद के कर्मकाण्ड का उद्धार किया। श्लोक ५६ में यह भी लिखा है कि उनके सहायतार्थ ब्रह्माजी 'मण्डन (मिश्र)' के रूप में और महेन्द्र 'सुधन्वा' नामक राजा के रूप में अवतरित हुए। राहुलजी ने जो श्लोक और टीकांश उद्धृत किया है, वह इसी प्रसङ्ग के अन्तर्गत है और उसमें केवल यही लिखा है कि राजा सुधन्वा ने बौद्धों और कुमारिल प्रमुख ब्राह्मणों के मध्य में—'पर्वत से गिरकर भी अक्षत बचे रह जानेवाले का मत ध्रुव माना जायगा'—इस शर्त के कुमारिल द्वारा पूरा कर दिये जाने पर भी बौद्धों के न मानने पर एक घड़े में सर्प बन्द करके दूसरी शर्त यह की थी कि 'इस घड़े में क्या है? इस बात का अनुरूप उत्तर जो न दे पावेंगे, उन सबको मरवा डालूँगा।' (९।८२) और, इसी शर्त के अनुसार बौद्धों के यह बतलाने पर कि 'इसमें साँप है', और ब्राह्मणों (कुमारिल भट्ट आदि) के यह बतलाने पर कि 'इसमें शेषनाग के फण पर सोये हुए भगवान् विष्णु हैं' (९।८७)—जब राजा सुधन्वा ने घड़े को उघारा तो उसमें विष्णु-मूर्ति को पाया। (९।९१) फलतः अपनी रक्खी हुई वस्तु से कुछ भिन्न वस्तु (ब्राह्मणों के ही कथनानुसार) पाने पर

[illegible] हो राजा (सुधन्वा) ने वेदविरोधियों के [illegible] के लिए [अपने भृत्यों को] आज्ञा दे दी (११८२) [illegible] सेतुबन्ध) से लेकर हिमालय-पर्यन्त [illegible] को जो नहीं मारेगा, उसी (भृत्य) का वध [illegible] जायगा (११८३); इस प्रकार स्कन्द [के अवतार [illegible]] के अनुयायी राजा (सुधन्वा) ने धर्म- [illegible] बौद्धों का विनाश किया। (११८४)

[illegible] इस बात से कुछ प्रयोजन नहीं है कि माधव का [illegible] इतिहास-मूलक है या अन्यथा; किन्तु इतने से [illegible] को विदित हो जायगा कि श्रीराहुल सांकृत्यायन [illegible] दिग्विजयग्रन्थों के नाम से जैसा कुछ इल्ज़ाम [illegible]पादाचार्य के ऊपर लगाया है, वह सर्वथा [illegible] गढ़ा हुआ है और आनन्दगिरि या माधव ने [illegible] कहीं नहीं लिखा है। राजा सुधन्वा का नाम [illegible] साथ भी कुछ स्थलों में आया है, परन्तु वहाँ [illegible] यह बात नहीं लिखी है। हमें आश्चर्य और [illegible] होता है कि क्या 'अभिधर्मकोश' के सम्पादक [illegible] संस्कृत-भूमिका-लेखक तथा टीकाकार श्रीराहुल [illegible] संस्कृत में इतने कच्चे हो सकते हैं कि [illegible] के सम्बन्ध की बात प्रकरण के विरुद्ध श्रीशङ्कर [illegible] हैं, अथवा जानबूझकर ही केवल द्वेष-बुद्धि [illegible] होकर उन्होंने ऐसा सफ़ेद झूठ लिखना भी [illegible] की सेवा का अङ्ग समझा है ?

(२) The Age of Shankar के रचयिता [illegible] श्री टी० एस्० नारायण शास्त्री बी० ए० [illegible] ने पण्डित एन्० भाष्याचार्य के निर्णय किये हुए [illegible] (और शङ्कर) के काल को आधार मानकर [illegible] से श्रीशङ्कर आचार्य का ५०९ वर्ष ईसा [illegible] होना स्वीकार किया है, न कि विक्रम का सम- [illegible] होना। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीराहुलजी ने [illegible] देखी भी नहीं है, अन्यथा उसके लेखक द्वारा [illegible] को उसी के बतलाये हुए समय से साढ़े [illegible] पश्चात् न रखते।

(३) [illegible]सूत्र और उपनिषदों के शंकर-भाष्य पर [illegible], सुरेश्वरकृत वार्तिक आदि कई ग्रंथों के [illegible] बहुत बाद पश्चात् वाचस्पति (भामतीकार) [illegible] जैसा उनकी शिष्यमंडली के रचे इन ग्रंथों [illegible] शङ्कर की प्रसिद्धि अपने ही रचे भाष्यों से वाचस्पति की अपेक्षा बहुत पहले ही हो चुकी थी, इसमें विवाद का अवसर ही नहीं है। वस्तुतः जैसा अन्य आचार्यों के विषय में भी सिद्ध है, शङ्कर का भी प्रस्थान-त्रय-भाष्य ही उनकी सर्वमान्य ख्याति का कारण था। यदि उनकी ऐसी ख्याति की बात किसी विरोधी को असह्य हो तो हुआ करे। केवल वाचस्पति के कन्धे पर चढ़ाने की कल्पना से ही उसका अपलाप नहीं हो सकता— अर्थात् सुरेश्वर के वार्तिकादि में बौद्धादि का खण्डन वा दार्शनिक सूक्ष्म तत्त्वों का शङ्करभाष्य के आधार पर ही प्रदर्शन वाचस्पति के लेख से किसी प्रकार न्यून नहीं है।

बौद्ध शांतरक्षित के "तत्त्वसंग्रह" (स्वतः प्रामाण्य परीक्षा, पृ० ८११—८१५) में उवेयक या उम्वेक के मत का अत्यंत स्पष्ट उल्लेख आया है और उवेयक का समय अँगरेज़ी-भूमिका (पृ० ९३) में ६५५—७२५ ई० निश्चित हुआ है। यह उवेयक वा उम्वेक-नामक मीमांसक ही विश्वरूप और भवभूति के नामों से भी प्रसिद्ध थे, जो शङ्कर के शिष्यप्रवर के रूप में सुरेश्वराचार्य के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए हैं (इण्डियन हिस्टारिकल कार्टर्ली, जून १९३१, पृ० ३०८ में श्रीदिनेशचन्द्र भट्टाचार्य का लेख देखिए)। ऐसी अवस्था में यदि शान्तरक्षित स्वयं श्रीशङ्कराचार्य का नाम न भी लें, तो भी इस प्रकार शङ्कर-शिष्य-मंडली में किसी व्यक्ति का उल्लेख, "तत्त्वसंग्रह" के श्लोक ३२८ इत्यादि और उसकी 'पञ्जिका' में शङ्कराभिमत 'विवर्तवाद' 'अद्वैतदर्शन' वा 'औपनिषदिक' सिद्धांत का उल्लेख भी शङ्कर की पूर्वसिद्ध कीर्ति का ही प्रमाण माना जायगा। शान्तरक्षित या कमलशील ने नाम तो भामह वा माठराचार्य का भी नहीं दिया है, परंतु इनके ग्रंथों से उद्धरण अवश्य दिये हैं। शङ्कर का नाम कदाचित् इस कारण भी नहीं लिया होगा कि शङ्कर बौद्धों के मत के प्रबलतम विरोधी थे, जिन्होंने उन्हें पराजित करके वेदमार्गोद्धार करते हुए उनकी बाढ़ को सफलता-पूर्वक शान्तरक्षित से पहले ही रोक दिया था।

(४) अब यह प्रश्न ही नहीं है कि शङ्कर ने बौद्धों को भारत से मार भगाया और [illegible] कर दिया, तब उस पर [illegible] करके [illegible] की [illegible] करना कृपा विशेष [illegible] होता है।

(५) बौद्धधर्म का देशनिर्वासन हम भी नहीं मानते, परन्तु 'मञ्जुश्री-मूलकल्प' नामक बौद्ध [illegible] ग्रंथ की

वाचस्पति ने उत्तरीय भारत की पंडित-मण्डली के सामने शंकर की वकालत की। वाचस्पति मिश्र के एक शताब्दी पूर्व नालन्दा में आचार्य शान्त-[र]क्षित हुए थे। इनका महादार्शनिक ग्रन्थ "तत्त्वसंग्रह" संस्कृत में उपलब्ध होकर बड़ौदा से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थरत्न में शान्तरक्षित ने अपने से पूर्व के पचासों दार्शनिकों और दर्शनग्रन्थों के सिद्धान्त उद्धृत कर खंडित किये हैं। यदि वाचस्पति मिश्र से पूर्ण (? पूर्व) ही शंकर अपनी विद्वत्ता और दिग्विजय से प्रसिद्ध हो चुके होते तो कोई कारण नहीं कि शान्तरक्षित उनका स्मरण न करते। (पृष्ठ ॐ)

(४) एक ओर कहा जाता है कि शंकर ने बौद्धों को भारत से मार भगाया। और दूसरी ओर हम उनके बाद गौड़-देश (बिहार-बंगाल) में पालवंशीय बौद्ध नरेशों का प्रचण्ड प्रताप फैला देखते हैं................ ...यह बतला रही हैं कि उस समय बौद्धों को किसी शंकर ने नेस्त-नाबूद न कर पाया था.................. (पृष्ठ ॐ और ॐ।)

(५) कालिञ्जर के राजाओं..............क्या इससे नहीं सिद्ध होता कि शंकर द्वारा बौद्धधर्म का देश-निर्वासन कल्पनामात्र है ? खुद शंकर की जन्मभूमि केरल से बौद्धों का प्रसिद्ध तंत्रग्रन्थ "मंजुश्रीमूलकल्प" संस्कृत में मिला है...... । क्या इस ग्रन्थ की प्राप्ति इस बात को नहीं बतलाती कि सारे भारत से बौद्धों का निकालना तो अलग बात है, खुद केरल से भी वह बहुत पीछे लुप्त हुए ? ऐसी ही और भी बहुत-सी घटनाएँ और प्रमाण पेश किये जा सकते हैं, जिनसे इतिहास की उक्त झूठी धारणा खण्डित हो सकती है। (पृष्ठ ॐ।)

इन बातों से बहुत कुछ भ्रम का फैलना सम्भव देखकर हम क्रमशः उत्तर देते हैं—

(१) श्रीशङ्कराचार्य ने 'सुधन्वा' राजा की सहायता से बौद्धों को भारत में 'नेस्त-नाबूद' कर दिया था अथवा यहाँ से उनका देशनिर्वासन कर दिया था, ऐसी कल्पना किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं देखी जाती है। अतएव इस विषय में श्रीराहुलसांकृत्यायन ने जो कुछ इस कल्पना के आधार पर लिखा है, उससे मिथ्या बात की आड़ में विरोध का फैलना सम्भव है।

श्रीराहुल ने आनन्दगिरि और माधवाचार्य की "शंकर-दिग्विजय" आदि पुस्तकों का नाम लेकर जो यह लिखा है कि 'शङ्कर आचार्यपाद की आज्ञा से राजा सुधन्वा आदि ने हज़ारों बौद्धों को समुद्र में डुबोकर और तलवार के घाट उतारकर उनका संहार किया'—यह बात सोलहों आने मिथ्या है। अनन्तानन्दगिरि की 'शंकरविजय' पुस्तक में ऐसा कोई प्रसङ्ग नहीं है। यदि श्रीराहुल की दृष्टि में वहाँ कोई ऐसा प्रसङ्ग था, तो उसका सङ्केत अपने लेख या पादटिप्पणी में उन्होंने क्यों नहीं किया ? वास्तव में यह एक उच्छृङ्खल कल्पना है। इसी प्रकार माधव (नवकालिदास)-कृत 'संक्षेप-शङ्करजय' में भी कहीं यह बात नहीं आयी है। श्रीराहुल ने पादटिप्पण में इस ग्रन्थ के श्लोक १।९३ को और (श्लोक १।९५ पर) धनपतिसूरिकृत डिण्डिमटी[का] को उद्धृत किया है। इस प्रथम सर्ग में श्लोक ४[५] [से] अन्त (अर्थात् श्लोक ९८) तक माधव ने केवल [इसी] ही प्रसङ्ग का वर्णन किया है कि किस प्रकार शि[व] की आज्ञा से स्कन्द (कुमार, गुह, वा ज्वलन अर्थात् स्वामिकार्त्तिकेय) ने कुमारिलभट्ट के रूप [में] अवतार लेकर वेद के कर्मकाण्ड का उद्धार किय[ा]। श्लोक ५६ में यह भी लिखा है कि उनके सहायत[ार्थ] ब्रह्माजी 'मण्डन (मिश्र)' के रूप में और मह[ेन्द्र] 'सुधन्वा' नामक राजा के रूप में अवतरित हुए। राहुलजी ने जो श्लोक और टीकांश उद्धृत किया वह इसी प्रसङ्ग के अन्तर्गत है और उसमें केवल [यह] लिखा है कि राजा सुधन्वा ने बौद्धों और कुमा[रिल] प्रमुख ब्राह्मणों के मध्य में—'पर्वत से गिरकर भी अ[क्षत] बचे रह जानेवाले का मत ध्रुव माना जायगा'—इस [शर्त] के कुमारिल द्वारा पूरा कर दिये जाने पर भी बौद्धों [के] न मानने पर एक घड़े में सर्प बन्द करके दूसरी शर्त की थी कि 'इस घड़े में क्या है ? इस बात का अनु[कूल] उत्तर जो न दे पावेंगे, उन सबको मरवा डालूँगा' (१।८२) और, इसी शर्त के अनुसार बौद्धों के यह ब[त]लाने पर कि 'इसमें साँप है', और ब्राह्मणों (कुमारि[ल]भट्ट आदि) के यह बतलाने पर कि 'इसमें शेषनाग [के] फण पर सोये हुए भगवान् विष्णु हैं' (१।८७)—[जब] राजा सुधन्वा ने घड़े को उघारा तो उसमें विष्णु-मूर्ति पाया। (१।९१) फलतः अपनी रक्खी हुई वस्तु से [भि]भिन्न वस्तु (ब्राह्मणों के ही कथनानुसार) पाने

पुरोहित हो राजा (सुधन्वा) ने वेदविरोधियों के वध के लिए [अपने भृत्यों को] आज्ञा दे दी (११९२) रामेश्वर (सेतुबन्ध) से लेकर हिमालय-पर्यन्त बौद्धों को जो नहीं मारेगा, उसी (भृत्य) का वध किया जायगा (११९३); इस प्रकार स्कन्द [के अवतार कुमारिल] के अनुयायी राजा (सुधन्वा) ने धर्म-द्वेषी बौद्धों का विनाश किया। (११९४)

हमें इस बात से कुछ प्रयोजन नहीं है कि माधव का कथन इतिहास-मूलक है या अन्यथा; किन्तु इतने से पाठकों को विदित हो जायगा कि श्रीराहुल सांकृत्यायन ने दिग्विजयग्रन्थों के नाम से जैसा कुछ इल्ज़ाम श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्य के ऊपर लगाया है, वह सर्वथा उन्हीं का गढ़ा हुआ है और आनन्दगिरि या माधव ने ऐसा लेख कहीं नहीं लिखा है। राजा सुधन्वा का नाम कुमारिल के साथ भी कुछ स्थलों में आया है, परन्तु वहाँ भी कहीं यह बात नहीं लिखी है। हमें आश्चर्य और खेद होता है कि क्या 'अभिधर्मकोश' के सम्पादक और संस्कृत-भूमिका-लेखक तथा टीकाकार श्रीराहुल सांकृत्यायन संस्कृत में इतने कच्चे हो सकते हैं कि कुमारिल के सम्बन्ध की बात प्रकरण के विरुद्ध श्रीशङ्कर पर थोपते हैं, अथवा जानबूझकर ही केवल द्वेष-बुद्धि से प्रेरित होकर उन्होंने ऐसा सफ़ेद झूठ लिखना भी अपने धर्म की सेवा का अङ्ग समझा है ?

(२) The Age of Shankar के रचयिता मद्रास-निवासी श्री टी० एस्० नारायण शास्त्री बी० ए० बी० एल्० ने पण्डित एन्० भाष्याचार्य के निर्णय किये हुए पतञ्जलि (और शङ्कर) के काल को आधार मानकर अपनी खोज से श्रीशङ्कर आचार्य का ५०९ वर्ष ईसा से पूर्व होना स्वीकार किया है, न कि विक्रम का समकालीन होना। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीराहुलजी ने वह पुस्तक देखी भी नहीं है, अन्यथा उसके लेखक द्वारा निर्णीत शङ्करकाल को उसी के बतलाये हुए समय से साढ़े चार शताब्दी पश्चात् न रखते।

(३) ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों के शंकर-भाष्य पर पञ्चपादिका, सुरेश्वरकृत वार्तिक आदि कई ग्रंथों के निर्माण के बहुत काल पश्चात् वाचस्पति (भामतीकार) हुए हैं। अतः जैसा उनकी शिष्यमंडली के रचे इन ग्रंथों से सिद्ध है, शङ्कर की प्रसिद्धि अपने ही रचे भाष्यों से वाचस्पति की अपेक्षा बहुत पहले ही हो चुकी थी, इसमें विवाद का अवसर ही नहीं है। वस्तुतः जैसा अन्य आचार्यों के विषय में भी सिद्ध है, शङ्कर का भी प्रस्थान-त्रय-भाष्य ही उनकी सर्वमान्य ख्याति का कारण था। यदि उनकी ऐसी ख्याति की बात किसी विरोधी को असह्य हो तो हुआ करे। केवल वाचस्पति के कन्धे पर चढ़ाने की कल्पना से ही उसका अपलाप नहीं हो सकता— अर्थात् सुरेश्वर के वार्तिकादि में बौद्धादि का खण्डन वा दार्शनिक सूक्ष्म तत्त्वों का शङ्करभाष्य के आधार पर ही प्रदर्शन वाचस्पति के लेख से किसी प्रकार न्यून नहीं है।

बौद्ध शांतरक्षित के "तत्त्वसंग्रह" (स्वतः प्रामाण्य परीक्षा, पृ० ८११—८१५) में उम्बेयक या उम्बेक के मत का अत्यंत स्पष्ट उल्लेख आया है और उम्बेयक का समय अँगरेज़ी-भूमिका (पृ० ९३) में ६५५—७२५ ई० निश्चित हुआ है। यह उम्बेयक वा उम्बेक-नामक मीमांसक ही विश्वरूप और भवभूति के नामों से भी प्रसिद्ध थे, जो शङ्कर के शिष्यप्रवर के रूप में सुरेश्वराचार्य के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए हैं (इण्डियन हिस्टारिकल कार्टर्ली, जून १९३१, पृ० ३०८ में श्रीदिनेशचन्द्र भट्टाचार्य का लेख देखिए)। ऐसी अवस्था में यदि शान्तरक्षित स्वयं श्रीशङ्कराचार्य का नाम न भी लें, तो भी इस प्रकार शङ्कर-शिष्य-मंडली में किसी व्यक्ति का उल्लेख, "तत्त्वसंग्रह" के श्लोक ३२८ इत्यादि और उसकी 'पञ्जिका' में शङ्कराभिमत 'विवर्तवाद' 'अद्वैतदर्शन' वा 'औपनिषदिक' सिद्धांत का उल्लेख भी शङ्कर की पूर्वसिद्ध कीर्ति का ही प्रमाण माना जायगा। शान्तरक्षित वा कमलशील ने नाम तो भामह वा माठराचार्य का भी नहीं दिया है, परंतु इनके ग्रंथों से उद्धरण अवश्य दिये हैं। शङ्कर का नाम कदाचित् इस कारण भी नहीं लिया होगा कि शङ्कर बौद्धों के मत के प्रबलतम विरोधी थे, जिन्होंने उन्हें पराजित करके वेदमार्गोद्धार करते हुए उनकी बाढ़ को सफलतापूर्वक शान्तरक्षित से पहले ही रोक दिया था।

(४) जब यह पक्ष ही नहीं है कि शङ्कर ने बौद्धों को भारत से मार भगाया और नेस्त-नाबूद कर दिया, तब उस पर कटाक्ष करके कलम को कलङ्कित करना वृथा विरोध बीज बोना है।

(५) बौद्धधर्म का देशनिर्वासन हम भी नहीं मानते, परन्तु 'मञ्जुश्री-मूलकल्प' नामक बौद्ध तान्त्रिक ग्रंथ तो

ब्राह्मणों के यहाँ ही सुरक्षित मिला है। केरल में उसकी इस प्रकार प्राप्ति-मात्र से बौद्धों के केरल से बहुत पीछे निकलने या न निकलने पर क्या प्रकाश पड़ता है? मुद्रित पुस्तक के उपोद्घात से तो इतना ही प्रतीत होता है कि मूल पोथी ३-४ सौ वर्ष की पुरानी है और मध्य देश-विनिर्गत बौद्धपण्डित रविचन्द्र ने लिखी थी, जो पद्मनाभपुर के समीप मणालिक्कर-मठ के ग्रंथसंग्रह में पायी गयी। जब काश्मीर आदि प्रान्तों के लेखकों की हस्त-लिखित पुस्तकें सुदूर दक्षिण आदि प्रांतों में उपलब्ध देखी जाती हैं और जब जैन-भंडारों में ब्राह्मणों के ग्रंथ अथवा ब्राह्मण (वैदिक)-धर्मानुयायियों के पुस्तक-संग्रहों में जैन-बौद्धादिकों के ग्रंथ मिलते आ रहे हैं, तो यही क्यों न समझा जाय कि तन्त्र का ग्रन्थ होने से "मञ्जुश्री-मूलकल्प" को किसी केरलदेशीय तान्त्रिक ब्राह्मण ने लंका आदि किसी बौद्धप्राय प्रदेश से प्राप्त कर अपने यहाँ सुरक्षित कर रक्खा होगा, जहाँ से वह उक्त मठ में पहुँचा। अतः लेखक का केरल से कुछ भी संबंध नहीं प्रमाणित होता है।

(साहित्याचार्य) रघुवर मिट्ठलाल (शास्त्री, एम्० ए०)

× × ×

२—आल्हखंड का माड़ौ

"माड़ौ—मालवा, गुजरात और माड़वार की सीमा पर है"। यहाँ और कुछ लिखने के पहले यह बतलाना आवश्यक है कि 'सीमा' शब्द का अर्थ क्या है। 'सीमा' संस्कृत-भाषा का शब्द है और उसके कई* अर्थ होते हैं, जिसके अनुसार 'सीमा' शब्द 'बाउंडरी' (Boundary) और फ्रांटियर (Frontier) का भी परिचायक है। इस अर्थ के अनुसार 'सीमा' शब्द संकुचित भाव को तो प्रकट करता ही नहीं है, अपितु उस भाव के साथ में विस्तार का भी बोधक है।

उदाहरणार्थ भारत के नार्थ वेस्ट फ्रांटियर प्रांत (वर्तमान उत्तर-पश्चिम-सीमा-प्रान्त) को लीजिए। प्रान्त है तो छोटा, किन्तु कुछ विस्तार तो उसका है ही, और वह विस्तार इतना है कि कई ज़िलों को अन्तर्गत करता है। यह प्रान्त भारत के और सब प्रांतों की अपेक्षा विस्तार में कम है, किन्तु यह विस्तार कुछ एक-दो मील का नहीं—वल्कि इसकी अपेक्षा कई गुना अधिक है। इस नामकरण में संस्कृत और अँगरेज़ी दोनों के तदर्थ-वाची शब्दों के आशय जानने का अवसर मिलता है। अन्य शब्दों में यह भी बोध होता है कि 'सीमा' शब्द संकोचसूचक न होकर 'विस्तार-सूचक' ही है।

तदतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि 'सीमा' गाँवों, नगरों और प्रान्तों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने पर भी भिन्नता का बोध करावेगी। गाँव समीप रहते हैं, अतः एव उनकी सीमा शीघ्र ही समाप्त होगी। कुछ विस्तार रहेगा अवश्य, किन्तु यह विस्तार कम रहेगा। इसके विपरीत नगरों की सीमा गाँवों की सीमा की अपेक्षा विस्तृत ही रहेगी। इन सबसे भिन्न रहेगी प्रान्तों की सीमा—एक प्रान्त जहाँ से समाप्त होता है, उसके बहुत पहले से अन्तर ज्ञात होने लगेगा। यह भाव दूर ही से मन में आने लगेगा और जहाँ से आने लगेगा, वह क्षेत्र 'सीमा' शब्द के अन्तर्गत होगा। इस विचार के अनुसार 'सीमा' शब्द १००-५० मील की परिधि को सुगमता से अन्तर्गत कर सकता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम साधारण बोलचाल में व तौल शब्दों का अर्थ नहीं लगाते हैं, न हम संख्याओं सम्बन्ध में ही ऐसा करते हैं। कुछ दूरी इधर-उधर प्रयोग में कम या अधिक हो सकती है।

मारवाड़, मालवा और गुजरात प्रान्त हैं। इ भाषा, वेष-भूषा, भूमि आदि सभी में अन्तर है, यह अन्तर कम नहीं है। इनकी 'सीमा' उस अर्थ अनुसार, जैसा हमने बतलाया है, विस्तार-सूचक रहेगी और उस 'सीमा' में सौ-सवा सौ मील विस्तार आ सकता है। फ्रांटियर या 'सीमा' एक-मील की न रहेगी। उपर्युक्त उत्तर-पश्चिम-सीमा-प्र का उदाहरण प्रत्यक्ष है। अब यदि मैं 'माड़ौ' की सी का उल्लेख करूँ, तो अवश्य वह थोड़ी ही दूरी परिचय देती, कारण, 'माड़ौ' गाँव है, और उस सीमा भी कम ही रहेगी।

यदि माड़ौ, नीमाड़ और मालवे की सीमा पर तो विचारणीय यह है कि नीमाड़-ज़िला—जिसका स

* "Boundary, Limit, Border, Margin और Frontier"—(Prof. V. S. Apte's Sanskrit-English Dictionary—P. 1125)

मुक़ाम खण्डवा है, 'माड़ौ' से १३६ मील की दूरी पर स्थित है। नीमाड़-ज़िला और 'माड़ौ' दोनों कहीं पर भी नहीं मिलते हैं। 'माड़ौ' धार-रियासत में है; धार-रियासत और नीमाड़-ज़िला, दोनों के बीच में इन्दौर-रियासत आ जाती है। अतएव 'माड़ौ' नीमाड़ और मालवे की सीमा पर नहीं आ सकता। हाँ, यदि हम 'सीमा' शब्द का अर्थ विस्तारसूचक लगावें और 'फ्रांटियर' अथवा 'बार्डर' का वाचक बनावें, तो अवश्य वह सीमा में आ सकता है। उस दशा में 'माड़ौ' को मालवा, गुजरात और मारवाड़ की सीमा पर कहने में कोई मतभेद नहीं रह जाता।

हाँ, 'सीमा' शब्द के अन्तर्गत 'सीमान्त' शब्द भी है। यह 'सीमान्त' शब्द 'सीमा' शब्द ही से उत्पन्न है। इस 'सीमान्त' शब्द का अर्थ है—बार्डर की रेखा फ्रांटियर की रेखा। 'सीमा' शब्द का अर्थ मैंने जहाँ से बतलाया है, वहीं 'सीमान्त' का भी अर्थ दिया हुआ है। अतएव 'सीमा' शब्द का अर्थ कहीं 'सीमा' अथवा कहीं 'सीमान्त' नहीं हो सकता। इसलिए कहना यही होगा कि माड़ौ, मालवा गुजरात और मारवाड़ के 'सीमान्त' पर तो नहीं, पर सीमा पर अवश्य है।

अब ऊदल आदि ने 'माड़ौ' जाने के लिए खलघाट से, उथलेपन के कारण, 'नर्मदा' पार की होगी। खलघाट एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ पर नर्मदा सुगमतापूर्वक बिना नाव आदि वाहनों की सहायता के पार की जा सकती है। नदी के ऊपर पक्के पुल की स्थिति इसी अनुमान की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। फिर भी एक सेकंड के लिए हम यह मान लेते हैं कि ऊदल आदि महोवे से सिरउँज होकर माड़ौ गये थे। अब प्रश्न यह उठता है कि वे गये तो किस रास्ते से गये? वह निर्दिष्ट मार्ग महोवे से उरई, सिरउँज आदि होकर वर्तमान बाम्बे-आगरा-रोड के कहीं बराबर अथवा कहीं उससे दूर खलघाट तक जाता है और वहाँ से नर्मदा पार कर माड़ौ पहुँचता है। उस समय के रास्तों में और आजकल के प्रचलित और उपयुक्त रास्तों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। रेल निकलने के कारण एक आवागमन का नया मार्ग—और सुविधाजनक नया मार्ग—निकल आया है सही, किन्तु सड़कों और रास्तों में अधिक अन्तर नहीं पड़ा है। सोलहवीं शताब्दी का भारत आज बीसवीं शताब्दी में उन्हीं सड़कों और पगडंडियों को प्रयोग में ला रहा है जो उस समय आवागमन का साधन बन रही थी। जो सीधासादा कम चक्कर का रास्ता उस समय उपयुक्त बन रहा था, वही आज भी भोलेभाले ग्रामीण यात्रियों का इष्ट मार्ग हो रहा है।

तदनन्तर यह प्रश्न उठता है कि जब बिना पार किये काम चल सकता था तो पार उन्होंने किया क्यों? इसके कारण कई हो सकते हैं—(१) मार्ग से अनभिज्ञ होने के कारण वह किसी ऐसे स्थान पर पहुँच सकते थे जहाँ से पार करके उन्हें माड़ौ पहुँचने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था, बाध्य होकर उन्हें वैसा करना पड़ा। (२) उन्हें यह सुविधाजनक प्रतीत हुआ होगा कि किसी निर्दिष्ट मार्ग से जायँ, किन्तु आगे बढ़ने पर आकस्मिक कठिनाइयों के कारण नदी पार करनी पड़ी। यह कौन-सी सुविधा थी, वर्णनकार ने नहीं बतलाया। उसका काम तो वर्णन करना था। परामर्श और विवाद तो उसमें कम ही हैं। यह आल्हखंड की एक विशेषता भी है। (३) और यह अधिक सम्भव है—और आश्चर्य नहीं कि यही कारण भी हो—कि युद्धकला के दाँव-पेंच के कारण उन्होंने ऐसा किया हो। इतिहास का साधारण से साधारण विद्यार्थी इस तथ्य से भली भाँति परिचित है कि युद्ध में सफलता के हेतु दाँव-पेंच कितने आवश्यक हैं। इन्हीं दाँव-पेंचों के कारण बहुधा यह देखने में आया है कि बड़ी से बड़ी सेना छोटी-सी इने-गिने सैनिकों की टुटपुँजिया सेना से अभिभूत होकर धराशायी हो गयी। लार्ड एलेनबरा के काल में काबुल भेजी हुई विशाल ब्रिटिश-सेना में से एक डॉ० ब्रायन का जीते-जागते अपने साथियों की कष्ट-कहानी के वर्णनार्थ लौटना इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसी प्रकार अनेक कठिनाइयों से एकत्रित की हुई छोटी-सी राजपूत-सेना से मुग़लों की धरातल-कम्पिनी सेना का धराशायी होना भी इसी 'दाँव-पेंच' का अन्यतम प्रमाण है। वीर मराठों में ऐसी कौन-सी गुप्त शक्ति थी जो मुग़लों को उलटे पैर दिल्ली की ओर खदेड़ती थी? यह सब उपर्युक्त उदाहरण हमारा ध्यान दाँव-पेंच की ओर परावर्तित करते हैं, जिसके कारण अनहोनी होनी-सी और अभावी भावी-सी होती दृष्टिगोचर होती है। ऐसे स्थानों में, ऐसी सकरी

घाटियों में जहाँ एक को छोड़ दूसरे का निकलना संभव नहीं है—ऐसे ऊँचे-नीचे स्थलों में जहाँ दृष्टि न नीचे तक पहुँचती है न ऊपर तक ही—वे वैरियों पर आक्रमण करते थे और उन्हें पराजित कर विजयी होते थे। कौन जानता है, इसी 'दाँव-पेंच' की सूझ ने ऊदल आदि से खलघाट न पार करवाया हो।

यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि नर्मदा का पार करना जंगल के आधिक्य के कारण क्या सचमुच सम्भव नहीं था? वस्तुतः नर्मदा ही अकेली एक ऐसी नदी है जिसके किनारे-किनारे जाना संभव है। भारत की और पवित्र मानी हुई नदियाँ एक छोर से दूसरे छोर तक—उद्गम-स्थान से उस स्थान तक जहाँ वह समुद्र के गर्भ में विलीन होती हैं—यात्री के लिए सुगम मार्ग नहीं प्रस्तुत करती हैं।

किन्तु मेकल-कन्यका नर्मदा का यह हाल नहीं है, उसकी 'परिक्रमा'—क्योंकि इस प्रकार की यात्रा के लिए व्यवहृत और प्रचलित शब्द 'परिक्रमा' ही है—आदि से अन्त तक की जाती है।

नर्मदा पार उन्होंने की और की खलघाट में अथवा उसके समीप ही। और कहीं ऐसा करना सम्भव नहीं था। इस अनुमान पर कुछ प्रकाश 'आल्हखण्ड' के निम्नलिखित अवतरण से पड़ता है—

ऊदनि बोले फिर देवा से भैया चलो हमारे साथ॥
पाँजि देखि आवैं नदी की जासे सबै काम बनि जाय॥
ऊदनि देवा दोनों चलिभे रनि देवे को सीस नवाय॥
नदी नर्मदा की घाटिन पर पहुँचे जाय उदयसिंह राय॥
ऊदनि पूँछै फिर धोबिन से भैया पाँजि देउ बतलाय॥
बोले धोबी तब ऊदनि से बाबा सुनौ हमारी बात॥
सात खेत पूरब दिसि हटि कै चुप्पै उतरि जाउ महराज॥
दोनों चलिभे तब पूरब को पहुँचे सात खेत पर जाय॥
नदी मँझाई तहँ दोउन ने सो कम्मर से परी दिखाय॥
लागी गाड़ि दई पारिन पर अपनो चीन्हा दओ बनाय॥
ध्वजा बाँधिके उन बाँसन माँ दोनों लौटि परे हरगाय॥
चारि घरी केरे अरसा माँ अपने लसकर पहुँचे जाय॥
जहाँ पै तंबू थो आल्हा को ऊदनि तहाँ पहूँचे जाय॥
हाथ जोरिकै ऊदनि बोले दादा मंडलीक अवतार॥
नदी नर्मदा जहँ धारी है तहँ पर लेहैं फौज उतारि॥
पाँजि देखिकै हम नदी की अपनो चीन्हों दओ बनाय॥

उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट प्रकट है कि नर्मदा पार की गयी थी और वहाँ पर जहाँ 'कम्मर भर' जल था। इस स्थान का पता उन्हें धोबियों से पूछने पर लगा। जहाँ ऊदल आदि थे, वहाँ से इस 'कम्मर भर जलवाले' स्थान की दूरी सात खेत थी। अब भी यह अस्पष्ट रह जाता है कि नर्मदा पार करने का स्थान खलघाट और उसका समीपवर्ती स्थल ही है जहाँ 'कम्मर से' जल सुगमता से मिलेगा?

इतना जान लेने के बाद इस प्रश्न का भी समाधान हो जाता है कि धारा और उज्जैन छोड़कर चक्कर के रास्ते से वे क्यों गये? धारा और उज्जैन, इन दोनों राज्यों की राजधानी से होकर निकलना सफलता के मार्ग में काँटे बिछाना था। धारा और उज्जैन बली राज्य थे—वहाँ से होकर निकलना माड़ौ तक डंका बजाने के समान था कि "माड़ौ पर चढ़ाई होनेवाली है और पितृकरण का प्रतिशोध लेने के लिए अमुक व्यक्ति चले आ रहे हैं।" सोचने की बात है कि जो व्यक्ति इस लालसा से सिर से पैर तक प्रेरित है कि मैं अपने "उस वैरी से बदला लूँ जिसने मेरे पिता को—दीन्हीं तुरतै मुस्क बँधाय" और "पत्थर कोल्हू दियो पिराय"—के द्वारा अति निर्दयतापूर्वक मारा था और तदनन्तर "खुपड़ी टाँगि दई बरगद में"—इस प्रकार का प्रदर्शन किया था, वह उसी वैरी के पास, बदला लेने के लिए, आने की सूचना देता हुआ जायगा? वह तो लुक-छिपकर इस प्रकार से निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचना अपना परम कर्त्तव्य मानेगा कि वैरी को स्वप्न में भी उसकी यात्रा का पता न लगे। यह भी मानी हुई बात है कि 'जंबै और करिंगा' एक राज्य के राजा ही थे। उस राजा से उसी की राजधानी में अथवा उसी के राज्य में लड़ना शेर से उसकी माँद में लड़ने के समान था। अब ऊदल आदि के लिए श्रेयस्कर और अधिक वांछित मार्ग और कौन हो सकता था—धार और उज्जैन से होकर हीरे-मोती के व्यापारियों के समान जाकर माड़ौ पहुँचना अथवा जंगल और घाटियों की निर्जनता में से निकलकर ऐसे मार्ग से जाकर माड़ौ पहुँचना और इस प्रकार माड़ौ पर धावा करना कि जंबै को स्वप्न में भी धावे का विचार न पीड़ित करे? इससे तो यही विदित होता है कि साफल्यप्रदायक और आक्रमण के लिए उत्तम स्थान निर्दिष्ट करने तथा दाँव-पेंच की माँग पूरी करनेवाला

यही नर्मदा पार करके पहुँचानेवाला मार्ग था। अब नर्मदा पार करने का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण है अथवा सत्य-समन्वित है, यह भी उपरिलिखित पंक्तियों से प्रकट हो जाता है। बिना नर्मदा पहुँचे ऊदल आदि माड़ौ पहुँच सकते थे या नहीं, और उन्हें नर्मदा तक जाने की और उसे पार करने की आवश्यकता क्यों थी, यह ऊपर की पंक्तियों से प्रकट है।

हाँ, एक बात अवश्य है। जो लोग आल्हखंड को दो-चार घटनाओं के आधार पर एक अत्युक्तिपूर्ण और कपोलकल्पित रचना मान लेते हैं, उनके लिए कुछ लिखना आवश्यक--और नितान्त आवश्यक—हो जाता है। आल्हखंड में बबुरीबन को तलवार से काटने और नर्मदा पार करने का उल्लेख है। दूसरी के विषय में इतना लिख आया हूँ। पहली के संबंध में अत्युक्ति है और अवश्य है, यह कहा जा सकता है। जहाँ "बजै कुल्हाड़ा बबुरीबन पर धरती पेड़ गिरे अरराय" है, वहाँ "कोई गड़ासा कोई तेगा कोई लीन्हें हाथ कृपान" भी है। किन्तु इतने ही से कोई रचना अविश्वसनीय, कपोलकल्पित और अत्युक्तिपूर्ण नहीं हो जाती। रचना दो प्रकार की होती है--गद्यात्मक और पद्यात्मक। दोनों में कुछ ऐसे विभागों को छोड़कर, जिनमें तत्त्वज्ञान आदि विषयों का समावेश हो, अत्युक्ति तो मिलेगी ही। पद्यात्मक रचनाएँ कवि के हृदय और मस्तिष्क की उपज रहती हैं। यहाँ कवि जब तक भूमंडल पर अपने विचारों का पाया रक्खेगा, तब तक कल्पना और अत्युक्ति का संसार पाठक को दृष्टिगोचर न होगा। किन्तु जिस समय कवि का मस्तिष्क संसार को छलाँग मारकर नभोमंडल में रहता है, उस समय कल्पना और अत्युक्ति को छोड़ कर और क्या मिलेगा? आल्हखंड पद्यात्मक रचना है और ऐसी रचना है, जो साधारण और निम्न श्रेणी के अर्द्धशिक्षितों के हेतु है। इस श्रेणी के समाज का मनोरंजन वीररस और कथात्मक पुट से युक्त रचना (Lay) किसी अंश तक कर सकती है। आल्हखंड का उद्देश्य यही है। ऐसी रचना में अत्युक्ति और मोटी अत्युक्ति मिलेगी और उसी प्रकार की अन्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक; किन्तु क्या इतने ही से पुस्तक मनगढ़न्त या अत्युक्तिपूर्ण हो जायगी? इतने ही से क्या वह अविश्वसनीय लेखी जायगी? यदि ऐसा किया जायगा तो किसी भी पद्यात्मक रचना का सत्य की कसौटी पर उतरना असम्भव नहीं, तो दुष्कर अवश्य हो जायगा। यदि हम अपने ही मन से, अपने ही विचार से—चूँकि वह हमें ठीक नहीं जँचती है—किसी रचना को अत्युक्तिपूर्ण मानकर उसका महत्त्व घटा दें, तो किसी भी पुस्तक का महत्त्व सुरक्षित रहना कठिन हो जायगा। आल्हखंड की नींव ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण उसका स्पष्ट है। पाश्चात्य विद्वान् भी उसे विश्वसनीय मानते एवं ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हैं। साथ ही भौगोलिक और स्थाननिर्देशक दृष्टि से भी वह अधूरी नहीं उतरती है। आल्हखंड की 'माड़ौगढ़ की लड़ाई' के भाग में निम्नलिखित स्थानों के नाम आये हैं--

महोबा	हरद्वार	
उरई	गोरखपूर	पैरागढ़
माड़ौ	सिरउँज	दशहरपुरवा
हिंगलाज	झारखंड	कनवज
झाँसी	सागर?	लोहागढ़

इनमें से सभी के अस्तित्व से हम परिचित हैं या होते जा रहे हैं। यदि अधिक शंका है तो पैरागढ़ और लोहागढ़ के विषय में। लोहागढ़ तो, संभव है, माड़ौ के ही किसी दुर्गद्वार का नाम हो। 'झारखंड' के विषय में यदि कोई शंका रही हो तो वह काँकेर-राज्य के सुपरिंटेंडेंट बाबू रघुवीरप्रसाद श्रीवास्तव की 'झारखंड-झनकार' से उड़ गयी। अतएव हम आल्हखंड को अत्युक्तिपूर्ण रचना का नाम देकर एकाएकी महत्त्वहीन नहीं ठहरा सकते जब उसकी ऐतिहासिक, भौगोलिक और स्थाननिर्देशक नींव है।

माड़ौ-संबंधी वार्ता में एक बरगद का भी प्रसंग आता है। ऐसा कहा जाता है कि उसमें जस्सराज की खोपड़ी टँगी थी और वह अब तक मौजूद है। हो सकता है कि माड़ौ के पुराने हाथीख़ाने में भी बरगद का बहुत पुराना पेड़ हो, बल्कि उस बरगद के विषय में यह किंवदन्ती भी प्रसिद्ध हो कि जस्सराज की खोपड़ी इसी पर टँगी थी। अस्तु, अब भेद केवल वट-विशेष का रह जाता है। घटनासादृश्य एक अथवा एक से अधिक वटवृक्ष में निहित हो गया है। इसलिए घटना की सत्यता की दृष्टि से कोई भेद नहीं पड़ता।

वासुदेवप्रसाद मिश्र (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

१—गर्भिणी

मातृहृदय रखने के कारण ही स्त्रियों का रोब पुरुषों पर भी छाया रहता है। जो माता होने की अधिकारिणी नहीं, वह स्त्री होने की भी नहीं; क्योंकि अपने प्रियतम के मर्मस्थल में शुद्ध सात्त्विक प्रेम की मुहर तब तक कोई स्त्री नहीं लगा सकती है, जब तक उसकी गोद में एक सलोना बच्चा न आ जाय। लेकिन मातृहृदय को संस्कृत करने के लिए या दाम्पत्य-प्रेम-ग्रंथि को दृढ़तम करने के लिए स्त्रियों को अनेक अनियत यातनाएँ तथा कठोर तपस्याएँ करनी पड़ती हैं; क्योंकि दीर्घ काल तक गुरु गर्भ-भार से अलसाकर भी स्त्रियाँ उस प्रसव-वेदना को सहन करने के लिए उद्यत रहती हैं, जिसकी कल्पना या जल्पना ही पुरुषों की अनुभूति के बाहर है। गर्भावस्था में स्त्रियों को फूँक-फूँककर पैर रखना पड़ता है। इस दशा में उन्हें अपनी नाज़ुक हालत के सिवा गर्भस्थ बच्चे का भी बहुत ख़याल रखना पड़ता है। ऐसे समय में यदि वे तनिक भी चूक जाती हैं—नियम या स्वास्थ्य के विरुद्ध कोई काम कर डालती हैं तो बस, जन्म-भर के लिए ज़च्चा और बच्चा दोनों का अनिष्ट ही समझिए। उस असावधानी का कड़वा प्रतिफल भी उन्हें जीवन-पर्यंत भोगना पड़ता है।

सर्वप्रथम गर्भ में युवतियों को गर्भ के लक्षण सहसा परिज्ञात नहीं होते हैं; लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं रहती है। सच पूछिए, तो गर्भ-धारण के दो ही चार दिनों बाद गर्भिणी होने के चिह्न प्रतीत होने लगते हैं और जैसे-जैसे दिन बढ़ते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे वे लक्षण भी अधिकाधिक प्रकट होते जाते हैं। सामान्यतः ठीक समय पर आर्तव के प्रकट न होने से ही स्त्रियों को गर्भ का संदेह होता है; लेकिन हर हालत में यह कारण गर्भ के अनुमान में सही-दुरुस्त नहीं उतरता है। कारण, योनिदोष से या मानस-विकार से भी बहुधा रजोदर्शन नहीं हुआ करता है अथवा पाण्डुरोग, क्षयकारक रोग या तात्कालिक राजयक्ष्मा आदि में भी मासिक स्राव बंद हो जाता है, और उन वंध्याओं का भी आर्तव कई बार नष्ट हो जाता है जिन्हें गर्भधारण की बलवती इच्छा रहती है एवं अविवाहिता युवतियों का भी भय से कभी-कभी यही हाल होता है। किसी-किसी गर्भिणी को गर्भस्थिति के तीसरे महीने तक भी पुष्पदर्शन हुआ करता है। अतः केवल इसी एक कारण से गर्भ का अनुमान नहीं कर लेना चाहिए। इन बातों के ऊपर भी विचार करना चाहिए कि गर्भिणी को निर्बलता, बहुमूत्रता, कोष्ठबद्धता, स्तनवेदना तथा मितली आदि होती है या नहीं।

साधारणतः गर्भिणी को कुछ-कुछ सुस्ती मालूम पड़ती है, मन अनमना-सा रहने लगता है, अंग-प्रत्यंग में शिथिलता का वास हो जाता है, भोजन में अरुचि जान पड़ती है, कुछ प्रकार के भोजन एकदम ख़राब तथा कुछ प्रकार के एकदम स्वादिष्ठ मालूम पड़ते हैं और किसी-किसी को थू-थू करने की भी बड़ी ख़्वाहिश होने लगती है। दूसरे मास से स्तनों की वृद्धि तथा उन पर स्पष्ट शिराएँ दिखने लगती हैं एवं उनमें कठोरता, विशदता तथा गाँठ (गुठली) भी आ जाती है; अग्रभाग काला होकर उठ आता है और दबाने पर उससे स्वच्छ तरल रस स्रवित होने लगता है। गर्भिणी के स्वभाव में भी प्रायः वैषम्य आ जाता है—अर्थात् जो स्त्री पहले मृदु स्वभाव की रहती है, वह इन दिनों चिड़चिड़े स्वभाव की हो जाती है। कांति में भी कुछ-कुछ पार्थक्य उद्भासित होने लगता है। इन सब कारणों या लक्षणों को देखकर गर्भ का निरूपण करना चाहिए। कहा है—

निष्ठीविका गौरवमङ्गसादः तन्द्रा प्रहर्षो हृदयव्यथा च ।
तृप्तिश्च बीजग्रहणं च योन्यां गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य लिङ्गम् ॥

गर्भस्थिति हो जाने के अनंतर गर्भिणी विशेष प्रकार से स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का पालन करे । आहार-विहार को संयत रक्खे । आलस्यवश शिथिलप्राय धमनियों को सतत उत्तेजित करने की चेष्टा करे । कारण, प्रसूतिकार्य मांस-पेशियों के ही द्वारा हुआ करता है। अतः गर्भ के कारण उन शिराओं के शिथिल रक्त-संचार को लघु व्यायाम द्वारा प्रभावित करे । किसी भी प्रकार से अपने स्वास्थ्य को गिरने नहीं दे । इस दशा में अधिक उत्कट आसनों के व्यायाम की आवश्यकता नहीं होती है ; क्योंकि ऐसे व्यायामों से लाभ के बदले हानि ही होती है । इसलिए इन दिनों निःश्वास-क्रिया के साथ-साथ केवल प्रातःकाल भ्रमण किया करे। कठोरगर्भा स्त्री मोटर-रेल आदि के द्वारा लंबी यात्रा या छकड़े-इक्के वग़ैरह पर चढ़कर ऊबड़-खाबड़ मार्ग द्वारा थोड़ी-सी भी यात्रा न करे । वह पैर फैला करके बैठने के बाद कड़ी से भी कड़ी मेहनत कर सकती है—जैसे चक्की चलाना ।

गर्भिणी प्रायः आरामपसंद हुआ करती है, जो उसकी वर्तमान दशा के सर्वथा उपयुक्त है । लेकिन प्रसव-वेदना के लिए आरामतलब होकर रहना भी अच्छा नहीं ; क्योंकि काहिल होकर बैठेठाले दिन काट लेने से शिथिलता शनैः-शनैः बढ़ती जाती है । सुस्ती और आलस्य को जो जितना महसूस करता है, उसके लिए वह उतना ही हानिकर है । अक्सर ऐसा देखा जाता है कि अमीरों की निकम्मी औरतें प्रसववेदना से जितना छटपटाती हैं, उतना ग़रीबों की काम-धंधा करते रहने-वाली औरतें नहीं । बात यह है कि सुस्त होकर बैठे रहने से शरीर में रक्त-संचालन नहीं होता है, जिससे अवयव ढीले पड़ जाते हैं । सुतराम् इस ढीलेपन का बुरा प्रभाव, गर्भ के समय में, प्रसव के समय में या प्रसवांत में पड़े बिना नहीं रहता है । अतएव "लघुव्यायामेनालस्यमपनोदयेत् ।"

सुश्रुत के अनुसार गर्भिणी के लिए इतने कार्य त्याज्य हैं—

"अत्यंत व्यायाम, अधिक परिश्रम, दाहकारक पदार्थों का सेवन, उपवास, दिन में सोना, रात्रि में जागरण, शोक, सवारी पर चढ़ना, भय, विषम आसन, असमय तैलमर्दन, रक्तमोक्षण तथा असमय में वेग को रोक रखना ।"

पुनः इतने कार्य ग्राह्य हैं—

"गर्भवती नित्य पवित्र रहे। शृंगार करके उज्ज्वल वस्त्र पहने । विकलांग तथा मलिन पुरुषों को न देखे, न छुए । मन पर बुरा प्रभाव डालनेवाली कथा-कहानियों से बचे । सूखा, बासी तथा सड़ा-गला पदार्थ न खाय । भयजनक सूने स्थानों में न जाय । ऊपर उछलकर न चढ़े । भारी बोझ न उठावे ।" इत्यादि ।

जिन-जिन कार्यों से गर्भ के खंडित हो जाने का डर रहता है, उन-उन कार्यों को तो गर्भिणी ज़रूर छोड़ दे । भोजन का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर सबसे अधिक पड़ता है, इसलिए ख़ूब विचारपूर्वक भोजन करे । जो जैसी चीज़ खाती हैं उनकी संतति वैसी ही होती है । "दीपो भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।"—दीपक अंधकार का भक्षण करता है, तो कज्जल (कालिख) प्रसव करता है । मधुर, रक्तवर्द्धक, लघुपाक तथा ताज़े फलों का अधिक सेवन करना चाहिए । अनेक स्त्रियों को गर्भावस्था में सोंधी (मिट्टी आदि) और कड़वी चीज़ें बहुत पसंद आती हैं ; लेकिन इनके सेवन से गर्भिणी के स्वास्थ्य के साथ-साथ बच्चे के स्वास्थ्य पर भी भयंकर प्रभाव पड़ता है । मिट्टी खानेवाली गर्भिणी की संतान सदा उदर-रोग से ही पीड़ित रहती है । इसलिए भव्य भावना रखनेवाली माता ऐसी वस्तुओं को दूर से ही प्रणाम कर ले । हाँ, सोंधी चीज़ों में वंशलोचन का उपयोग हो सकता है । इसके सेवन से गर्भ पुष्ट होता है और बच्चे नीरोग तथा गोरे होते हैं । गर्भावस्था में भूलकर भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न जी मचलाते देखकर भोजन से हाथ ही खींच लेना चाहिए। अपने लिए और अपने से भी अधिक उस गर्भस्थ जीव के लिए, जो गर्भिणी के भोजन पर ही अव-लंबित है, कुछ-न-कुछ ज़रूर खाना चाहिए । केवल प्राण-रक्षा के लिए ही खाने से भी काम नहीं चलता है ; वहाँ तो इतनी मात्रा में भोजन ज़रूर चाहिए जितने से अपना तथा गर्भस्थ शिशु का काम मज़े में चलता रहे । रसीली वस्तु का सेवन हितकर होता है ।

हमारे देश में दोहद-पूर्ति की प्रथा बहुत पुरानी है ।

दोहदाभिलाषिणी होकर ही सीता देवी अरण्य-निवास करने को गयी थीं। साधारणतः सभी स्त्रियों को दोहद (गर्भिणी-मनोरथ) होता है। लेकिन यह उन्हीं स्त्रियों में ज़्यादा देखा जाता है, जिन्हें पहले से ही अपनी इच्छा-पूर्ति की बलवती लालसा लगी रहती है। हमारे देश में सबका ऐसा विश्वास है कि गर्भिणी जिस चीज़ की इच्छा प्रकट करे, उसे ज़रूर पूर्ण कर देना चाहिए; नहीं तो लोभी बच्चे उत्पन्न होंगे। इसमें कहाँ तक तथ्य है, नहीं कहा जा सकता; लेकिन इतना तो निश्चित है कि दोहदपूर्ति के लिए अनिष्टकारक वस्तुओं के देने से फल भी बुरा ही होता है।

गर्भिणी ढीला और साफ़-सुथरा वस्त्र पहने। स्नान प्रतिदिन करे—किंतु संयत और नियमित। अभ्यास रहने पर नाभिमात्र जल में पैठकर भी स्नान कर सकती है; परंतु तुरंत ही ऊपर हो आय। पानी में चुहल करना ख़राब है।

गर्भिणी को कोष्ठबद्धता (मलावरोध) बहुधा रहती है, जिससे उसे सदा बचना चाहिए। इसके लिए तीव्र विरेचन का सेवन अहितकर होता है। हाँ, वह हलका जुलाब ले सकती है, या ताज़े फल-मूल अथवा शाक-भाजी खाकर ही कोष्ठ-शुद्धि कर सकती है; नहीं तो शीशे के ग्लास में बहुत पहले से रक्खा हुआ ठंढा जल, सोने से पहले और बाद में, पिया करे। ज़ायक़े के लिए जेठी मधु भी खा सकती है। शराब वग़ैरह नशीली चीज़ों की आदत रहने पर उसे कम करने की कोशिश करनी चाहिए।

मनुष्यता तो यही कहती है कि गर्भावस्था में पुरुष-प्रसग से उसे एकदम मुँह मोड़ लेना चाहिए। यही शास्त्रानुमोदित है और स्वास्थ्य के लिए प्रशंसित भी; तथापि कामुकता के वशीभूत होकर दंपति इस कार्य से सर्वथा विरत नहीं देखे जाते। ऋग्वेद, चतुर्थ मंडल, चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ सूक्त के १२वें मंत्र में गर्भिणी-संभोग की चर्चा है—दीर्घतमा गर्भ में थे। बृहन्निघंटु-रत्नाकर में लिखा है कि—"गर्भिणी सप्तमान्मासादुपरिष्टाद् विशेषतः निषिद्धा त्वष्टमे मासे मैथुनं न समाचरेत्।" अर्थात् गर्भस्थिति के सातवें मास तक संभोग किया जा सकता है; किंतु आठवाँ चढ़ते ही रोक देना चाहिए। रसरत्नाकर में भी इसी आशय का एक श्लोक है, और वह भी सातवें महीने तक संभोग का अधिकार देत[illegible] कोक्कोक ने लिखा है—"मासैकप्रसवा ददाति। षण्मासगर्भा सुखम्—" याने छः महीने तक का सं[illegible] आनंददायक होता है। किंतु हारीत-संहिता तथा सु[illegible] आदि के मत से तो गर्भिणी-गमन एकदम वर्जित है।

जर्नल आफ़् अमेरिकन मेडिकल एसोशिए[illegible] (भाग ७७, न० २१) १६ नवंबर १९२१, के अं[illegible] १६६२ पृष्ठ पर इस आशय का एक लेख छपा है—

"बर्लिन की 'युनिवर्सिटी आर्ट्स फ़ौन किल[illegible] नामक एक प्रसूतिशाला में एक बार ४१० गर्भिणि[illegible] की परीक्षा की गयी थी, जिन्होंने गर्भावस्था में सं[illegible] किया था। इनमें ७८.४ प्रतिशत (३२२) स्त्रियों [illegible] प्रसव के सिर्फ़ अख़ीरवाले दो महीनों में, २३.६ प्र[illegible] शत स्त्रियों ने केवल अंतिम चार सप्ताहों में, ३१ प्र[illegible] शत स्त्रियों ने अंतिम सप्ताह में तथा २० प्रतिशत [illegible] ने केवल अंतवाले तीन दिनों में ही संभोग-कार्य [illegible] छोड़ा था। इनमें इससे भी अधिक साहस करनेव[illegible] ९.४ प्रतिशत (३६) स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने प्रसव [illegible] के दिन तक संभोग-कार्य को सानंद संपन्न किया थ[illegible] इनमें से कितनों ने प्रतिदिन केवल एक-एक बार ही संभ[illegible] किया था, और कितनों ने प्रतिदिन दो-दो बार त[illegible] तीन बार तक संभोग किया था। फलस्वरूप प्र[illegible] काल में कितनों के कमल नष्ट हुए, कितनों के वा[illegible] वेग से भयंकर रक्तस्राव हुआ, कितनों के गर्भ गिरे [illegible] कितनों के बच्चे पेट चीरकर निकाले गये।" गर्भका[illegible] संभोग का दुष्परिणाम ऐसा ही होता है।

इसीलिए अनुभवी आचार्यों ने गर्भकाल में संभ[illegible] क्रिया को त्याज्य बताया है। इससे संतान का मस्ति[illegible] दुर्बल हो जाता है, और आगे चलकर उसके हृद[illegible] बहुत कामुकता आ जाती है।

बच्चे के भावी जीवन को नियंत्रित तथा सात्त्विक ब[illegible] के लिए गर्भिणी अपने आचार-विचार को शुद्ध र[illegible] गर्भ में बच्चे का हर एक अंश माता के लहू-मांस से ही [illegible] रहता है। उस समय माता अच्छे या बुरे जिस प्र[illegible] के विचारों का मनन करेगी, उसका सीधा प्रभाव [illegible] पर ही पड़ेगा। आप जिस चीज़ को जिस मसाले [illegible] बनावेंगे, उसमें उसी का गुण विद्यमान रहेगा। [illegible] की निर्मिति गर्भ में ही होती है, और वहाँ जैसा [illegible]

मिलेगा वैसी वस्तु तैयार होगी—जैसे नेपोलियन की माँ ने शूरमाओं की तस्वीरों को देख-देखकर जगद्विख्यात वीराभिमानी पुत्र उत्पन्न किया था, सुभद्रा ने कथा-वार्ता में मन लगाकर चक्रव्यूह-भेदन करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया था। इसी प्रकार सुंदर कार्य करनेवाली सन्माताओं के बहुत-से निदर्शन हैं।

अब परहेज़ की भी कुछ बातें सुनिए। रात में घूम-फिरकर खुले मैदान में सोनेवाली स्त्री पागल संतान उत्पन्न करती है। सतत संभोगाभिलाषिणी रमणी निर्लज्ज बच्चा जनती है। सदा सोनेवाली स्त्री की संतान उदररोगी, सुस्त तथा अल्पायु होती है। क्रोधी का लड़का क्रोधी और ईर्ष्यालु का पुत्र निकम्मा होता है। इसी प्रकार अंदाज़ लगाकर बुरे कार्यों या आचरणों से गर्भिणी को परहेज़ रखना चाहिए।

उन थोड़ी-सी बातों को भी गर्भिणी जान ले, जिनसे गर्भस्राव होने का खौफ़ हमेशा रहता है। अनन्नास या कच्चा पपीता खाने से गर्भपात का होना अवश्यंभावी हो जाता है। बहुत देर तक चित होकर पड़े रहने से गर्भ बहुत दिनों में पुष्ट होता या निर्बल ही रह जाता है। इससे अजीर्ण, मितली, खट्टी डकार और क़ब्ज़ियत वग़ैरह भी बढ़ती है। बहुत भीड़ में जाने से भी गर्भ के मृत होने की संभावना रहती है; क्योंकि वहाँ एक तो ताज़ी हवा नहीं मिलती है, दूसरे विषाक्त गैसों के द्वारा बहुत हानि पहुँचती है। बहुत देर तक एक आसन से कुर्सी पर या यों ही पाँव के बल या नितम्ब के बल नहीं बैठना चाहिए। इससे अधोभाग में रक्त की अधिकता हो जाती है, जिससे गर्भ अपने स्थान से चलकर बाहर आ जाता है। गर्भिणी स्त्री को—विशेषतः स्थूलकाय गर्भिणी को—सदा सतर्क रहना चाहिए, ताकि ख़ूब वेग से ख़ून गर्भाशय की ओर न दौड़े। एक बार जिस महीने में गर्भपात हो जाता है, दूसरी बार भी उसी महीने में गर्भ गिरने का ख़ौफ़ रहता है। इसलिए उस महीने में गर्भिणी ख़ूब संयम से रहे। यथाशक्ति संभोग का भी वर्जन करे। विशेषकर चौथे या पाँचवें महीने के बाद किया गया संभोग बालकों को मौत के मुँह में पहुँचानेवाला होता है।

ये सब बातें तो गर्भ-काल की हुईं। अब प्रसव-काल के ऊपर भी एक दृष्टि डालिए। प्रसव के श्रवणमात्र से ही स्त्रियाँ भीत हो जाती हैं। बात भी सही है; क्योंकि यह समय सबसे अधिक उद्वेजक, कष्टजनक तथा भयावह होता है। इस समय में तो कितनों के प्राण-पखेरू फड़फड़ाकर उड़ जाते हैं। इसमें तो किसी को संदेह ही नहीं है कि यह पीड़ा एक बड़ी मात्रा में होती है, तथापि इसे हलका बनाने के लिए एक बड़ी मात्रा में धैर्य की ही आवश्यकता होती है। पीड़ा सबको एक तरह की नहीं होती है, इसलिए पहले से ही कल्पित भय के कारण स्त्रियों को घबरा नहीं जाना चाहिए। यह देखा गया है कि धैर्यवती स्त्रियाँ आनंद से प्रसव करती हैं।

प्रसव के पहले झूठी वेदना भी हुआ करती है। यह एक प्रकार से वायुजन्य उदर-शूल है या बद्धमलोद्भव-व्यथा। यह वेदना कमर से आरंभ होने के बदले केवल सामने की तरफ़ होती है और समूचे पेट में समान रूप से रहती है। यह वेदना घट-बढ़ जाती है। इससे गर्भाशय में कुछ भी उलट-फेर नहीं होता है। सच्ची वेदना की पहचान यह है कि गर्भिणी को गर्भाशय का सिकुड़ना मालूम पड़ता है; वेदना कटिप्रदेश से उत्पन्न होती है और पेड़ू तथा जंघा की ओर बढ़ती है। यह व्यथा शनैः-शनैः बढ़ती ही जाती है। गर्भजलवाली थैली नीचे की तरफ़ सरकने लगती है। इत्यादि।

ध्यान रहे कि थोड़ी या तीव्र पीड़ा से ही घबराकर कहीं कोई प्रकृति-विरुद्ध उपचार न शुरू कर दे। इससे बहुत मौक़ों में हानि ही देखी गयी है। आसुरी (अस्त्र) चिकित्सा से यद्यपि समय-समय पर अनंत लाभ होता है सही, परंतु सब जगह शान में आकर इसी का उपयोग नहीं करना चाहिए। प्रकृति के ऊपर भरोसा रखने से अगणित लाभ होते हैं। मैंने इस तरह के बीसियों उदाहरण देखे हैं। हाँ, प्रसूता के पास सर्वदा रहने के लिए कुशल दाइयों का बंदोबस्त ज़रूर कर दे। रूढ़िवाद में एकदम क्रांति मचाने की भी ज़रूरत नहीं है। इससे संशय-दग्ध-हृदया प्रसूता के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

हाँ, सौरी-घर में सफ़ाई के ऊपर ख़ूब ध्यान रक्खे। प्रसव के समय तो सफ़ाई का रहना एकबारगी ही अनिवार्य है। दाइयों के और उपसूतिकाओं के हाथ नख एकदम शुद्ध रहें। जहाँ तक हो सके, सब साफ़ ०

पहनकर सौरीघर में जायँ। यदि इस समय कहीं से कोई भी कीटाणु गर्भिणी के अंदर प्रविष्ट हो जायगा, तो वह आगे चलकर निश्चय ही कोई संक्रामक रोग उत्पन्न कर देगा। पहले तो बुख़ार ही ख़ूब ज़ोर से चढ़ आता है। इसलिए अपनी शक्ति भर इस कीटाणु से प्रसूतिका को ख़ूब बचावे।

आसन्न-प्रसवा जब वेदना से व्यथित हो जाय, प्रसव के सारे लक्षण घटित होकर भी असफल हो जायँ, शक्ति का ह्रास हो जाय, तब उस समय यदि वह कृत्रिम उपाय से भी क़ै करने लग जायगी, तो बच्चा तुरंत पैदा हो जायगा। लेकिन ऐसी मूर्खता कभी न करना चाहिए कि पेट के ऊपरी हिस्से को कपड़े से कसकर बाँध दे। इससे लाभ तो कुछ भी नहीं होता है, बल्कि पीड़ा अवश्य बढ़ जाती है।

प्रसव के बाद जननी को शान्त निद्रा ले आने का प्रयत्न करना चाहिए। निद्रा उस समय के लिए शुभ है। जिसे निद्रा न आवे, समझ लेना चाहिए कि इसके अंदर दुष्ट कीटाणु प्रविष्ट हो गया है।

(साहित्याचार्य) मग

× × ×

२—बाल-विधवा

(१)

चूड़ियाँ सुहाग की पिन्हायीं सखियों ने कब
जाने कौन-सी बड़ी थी चौक पर आने की!
नाइन ने पैर में महावर लगाया कब,
नौबत हुई न हाय फिर जो लगाने की!
माँग में भरा था कब सेंदुर सुहागिनों ने,
भाँवरें पड़ी थीं कब एक अनजाने की!
हाय गठ-बंधन कराया पंडितों ने कब,
लौट के न आयी घड़ी दूल्हन कहाने की!

(२)

सोचती थी, मैं भी कभी सोलहों सिंगार कर,
और सखियों की भाँति ससुराल जाऊँगी।
सास की, ससुर की, ननँद की दुलारी बन,
मैं भी हृदयेश्वरी किसी की कहलाऊँगी।
मेरा भी किसी पै अधिकार कुछ होगा कभी,
विश्व में किसी को हाय मैं भी अपनाऊँगी।
मन की रही हा मन ही में छिपी हाय-हाय,
जानती न थी कि कभी ऐसा दुख पाऊँगी।

(३)

टूट गया स्नेह, सखियों का साथ छूट गया,
फूट गया भाग्य हाय! लूट गया सारा सुख।
जननी-जनक की थी आँख की जो पूतरी-सी,
हाय उनका भी अब और हो गया रुख।
कल ही बनी थी हार जिनके गले का, अरे
पीठ फेरते हैं आज वे ही देख मेरा मुख।
जाने क्यों अभागिनी बताते मुझको हैं लोग,
कोई तो बताओ किसे अपना सुनाऊँ

मास्टर उमादत्त सारस्वत

× × ×

३—मराठी-काव्योद्यान की कोकिला

हम अपनी हिंदी-सुकवयित्रियों के विषय में तो दिन पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में बहुत कुछ पढ़ा करते हैं—उनकी रचनाओं का आस्वादन करते हैं, संग्रह-ग्रंथों में उनकी कृतियों पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ पढ़ते हैं; परंतु साहित्य की सार्वजनीन प्रगति में अन्य भाषा-भाषी कवयित्रियों से बहुधा अपरिचित ही रहा करते हैं। किंतु साहित्य का आदान-प्रदान एक ऐसी वस्तु है जिसका कुछ अपना मूल्य है। और, निश्चित बात यह है कि आदान-प्रदान के द्वारा ही हम साहित्य की बहुमुखी प्रगति का अंदाज़ा लगा सकते एवं अन्य साहित्य का वैभव आँक सकते हैं। इस छोटे-से नोट में जिन सुकवयित्री का परिचय दिया जा रहा है, आप महाराष्ट्र-कुमारी हैं; अवस्था कुल सोलह वर्ष की है। आपकी लगभग चालीस स्फुट कविताओं का एक छोटा-सा संग्रह 'काव्यसंजीवनी' नाम से प्र[काशित] हो चुका है।

कुमारी संजीवनी को जिस महाराष्ट्र-देश में जन्म का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसका कुछ अपना महत्व है, अपनी जातीयता और अपनी विशेषता है। और, उन[की] इस थोड़ी-सी संचित पूँजी—काव्य-संजीवनी—[को] ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ता है कि महाराष्ट्रीय नवयु[ग] के प्रतिनिधि कवियों की छाप उनकी रचनाओं पर प[ड़ी] तो है, लेकिन वे ऐसे रूप में आयी हैं जिनमें उन[का] 'अपनापन' अंकित है। उनकी वर्णना में उनका अपना 'दर्शन' है। उनकी आडंबर-विरहित वर्णना स्वयं उन[की] 'कला' बन गयी है। कुमारी का कौमार्य—कोमलता और

...लभाव उनकी विशेषता है। वर्तमान मराठी-साहित्य ... कुछ स्वनामधन्य कवियों ने नयी पीढ़ी को एक नयी दिशा सुझायी है—वह है अपनी ही भावनाओं और महत्वाकांक्षाओं की सचाई और गंभीरता। यही उनकी मौलिकता है और जब तक ये गुण उनकी रचनाओं में विद्यमान हैं, तब तक यह गौण है कि उनके विचारों के ...करण का ढंग क्या है। कुमारी संजीवनी मराठे की रचनाओं पर ये विशेषताएँ संपूर्णतः लागू होती हैं। प्रमाण-स्वरूप यहाँ उनकी कविताओं के कुछ नमूने दिये जाते हैं। 'मुग्धा' का चित्रण वह कितना सुंदर करती हैं—

"वह एक वेलिकन्या थी, जो वनप्रांतर के एक कोने में उगी थी। प्रतिदिन वह अपने पुष्पों की पोशाक ...नकर प्रकट होती थी—अपने यौवन और वेषभूषा में ...ली। वन-प्रांतर में रहनेवाले सभी को वह प्रिय थी। ...लोकपूर्ण सूर्य ने तड़के उसके पास आकर सर्वप्रथम ...सके लिए इच्छा प्रकट की। अपनी आँखों में यौवन ...हास्य भरे हुए उसने उनका स्वागत किया। फिर ...गार-पवन मस्तानी चाल से आया और वेलिकन्या ने ... सकुचाते हुए सिर झुकाकर उसका अभिवादन ...या। गगन-राज ने उसे प्रातःकालीन ओसबिंदुओं की ...क माल दी और वेलिकन्या ने मुस्कराकर उसे ...कर उन्हें प्रसन्न किया। कभी वह पार्वतीय झरनों ... संगीत सुनती—उनके स्वर-ताल में ठेका देती। ... दिन एक भौंरा आया, प्रेम-गीत गाता हुआ। ...कन्या ने मृदु शब्दों में उसके कान में कुछ कहा और ...नी मुस्कान से उसे आच्छादित कर लिया। फिर पीली ... पत्तियों की ओट से शर्माते हुए कहा—प्यारे! मैं ...ी हूँ। लेकिन क्या तुम थोड़ा और नहीं ठहर ... जब मेरी सुगंध, मेरा सौरभ, मेरा सौंदर्य—जो ...ी मेरा है, सब सदैव के लिए तुम्हारा हो जायगा? ... यह सुनकर उड़ गया और मुग्धा वेलिकन्या ...यी।

... संसार की विचित्र गति—जिस पर प्रकाश ...ने में कवयित्री का अपना निजी दर्शन है—पर ... प्रकट करती हुई कुमारी संजीवनी कहती हैं—

"परंतु बेचारी मुग्धा वेलिकन्या को भौंरे के प्रेम ... उसके संसार के विषय में क्या ज्ञान था! वह तो वेलिकन्या का सौरभ और सुगंध ही चाहता था—उसका प्रेम नहीं। वह अपने भगवान् पर भरोसा किये प्रतीक्षा ही करती रही। परंतु भौंरा नहीं आया—नहीं आया! एक दिन वह खुद ही चल बसी—मुरझाकर भूलुंठित धूलिधूसरित हो गयी!"
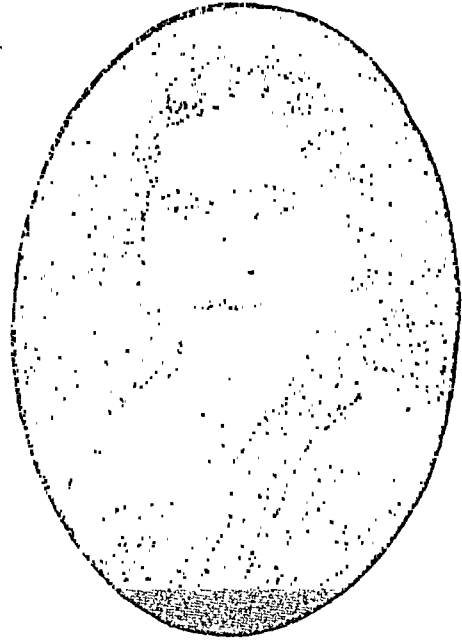
कुमारी संजीवनी मराठे

इसके बाद—इसके बाद वनप्रांतर स्वयं उसे ही भूल जाता है! कितना हृदयविदारक उपसंहार है! एक वेलिकन्या के बहाने कुमारी संजीवनी संसार की विचित्र गति का कैसा सच्चा सात्विक मर्मवेदी और हृदयहारी वर्णन कर जाती हैं। कवयित्री ने इस वर्णना के लिए मधुरतम मालिनी-छंद को चुनकर मार्दव का कैसा सुंदर निर्वाह किया है।

'प्रियकर चरणीं हीं अर्पिली दीन काया
अजुनि दिवस कांहीं वाट पाही सख्या रे,
मग मधु हृदयींचा–गंध–तू भ्रोंचि सारें!'

'मैं तुम्हारी हूँ, किंतु क्या तुम थोड़ा और नहीं ठहर सकते.........। पर हाय री संसार की विचित्रता! रूप का—प्रेम का नहीं—लोभी भौंरा उसकी ओर से सदा के लिए निठुर हो जाता है। कैसा असामंजस्य है!

संसार की विचित्र गति पर इस षोडशी कुमारी की एक और कल्पना देखिए—कितना परिपूर्ण चित्रण है। कवयित्री जो महसूस करती हैं, उसी का चित्रण करती हैं—इतना सच्चा कि पाठक उनकी शंकाओं और

प्रतिक्रियाओं में विलीन हो जाता है। एक बालिका की ओर से कुमारी संजीवनी शिकायत करती हैं कि जिस छोटे संसार में हम रहती हैं, वह कितना भयावह है—

मैं वन में घूमने जाती हूँ तो श्रीमान् अंधकारजी आ घेरते हैं (अंधकार-पूर्ण एकांत में सिहरन पैदा होती ही है) मानो वह कहते हैं—क्या ठंढ मालूम होती है ? और, वह अपने लबादे में समेट लेते हैं। फिर वायु महाराज बहकते हुए आते हैं और मेरे कपड़ों से खेलने और उन्हें उड़ाने लगते हैं। अब निर्लज्जा अस्तंगत सूर्यकिरणें आती हैं हँसती हुई, और मेरा स्पर्श करके भाग जाती हैं। मैं बढ़ती जाती हूँ, चिड़ियाँ चतुर्दिक् मुझे घेर लेती हैं। मैं भयभीत होकर सुनती हूँ—वह भी यही गाती हैं कि संसार बड़ा विचित्र है। लाचार मैं सरिता से मिलती हूँ और वह मेरा साथ देती है। यहाँ उस भयावह संसार से मैं सुरक्षित पहुँच जाती हूँ।—

सखी भेटली मजला सरिता, तिच्यासवें मी आलें आतां,
सोबत घेइन रानीं जातां, कारण बाई
ही भल्याचि दुनिया नाहीं ॥ ५ ॥

कितना विचित्र संसार है !

आगे कुमारी संजीवनी द्वारा वर्णित एक भिखारिणी का चित्रण देखिए—

ही वेल निजेची जागे कुणि कांधरीं
मज भिक्षा कोणी घालाहो मुँठभरी

भिखारिन दरवाज़े पर आती है और कहती है—

"मुझे थोड़ा भीख दो—अरे तुम लोग, जो अंदर हो, मुझे थोड़ा भीख दे जाओ। अभाग्य के लाड़ले को थोड़ी ख़ैरात दे जाओ—बचाखुचा, फटा-पुराना कुछ भी हो—ग़रीब दीन को दे जाओ। वे मुझे धूल के ढेर का फूल कहते हैं। जो वस्तु सबसे पहले मुझे मिली, वह प्रेम थी। मैं दुनिया-भर में घूमती फिरी। लोग मुझे कई नामों से पुकारते हैं। और कुछ नहीं, केवल अंधकार ही मेरा भाग्य है। वे मुझे कटु शब्दों की ख़ैरात देते हैं, गालियों की रोटियाँ देते हैं—ऐसे शब्द जिन्हें मैं आँसुओं के घूँट उतारती हूँ। फिर भी ऐ अंदरवालो ! मैं तुमसे एक चीज़ माँगती हूँ—यह कि मुझे भीतर न बुलाओ, और न फिर बुलाकर कटु शब्द की ख़ैरात दो। तुम अपने उच्च स्थान से—मुझ नीचे खड़ी हुई के पास जो भी चाहो—फेंक सकते हो !"

एक अपरिपक्व-हृदया बालिका संसार की उच्च और नीचता—मानुषता और अमानुषता का इतना सुंदर विश्लेषण कर सकती है—अवश्य ही य[illegible] प्रतिभा की देन है। वर्णन में कितनी सादगी—कितना प्रसाद—कितनी स्वाभाविकता है !

नीचे हम कुमारी संजीवनी की 'उषःकाल' की वर्णना देते हैं, जिससे विदित होगा कि क[illegible] यथार्थ में आदर्श का कितना सुंदर चित्रण करती [illegible]

मेरी प्यारी ! रोओ मत ; यह रोने का वक़्त नह[ीं] तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए। मेरी प्यारी, देखो—[एक] बार अपने चारों ओर देखो। सुनो, चिड़ियाँ गा[रही] हैं; घास की पत्तियाँ ताली बजा रही हैं। वह दे[खो] हंसयुग्म उड़ रहे हैं। तुम भी, मेरी प्यारी कली, [है]—और पुष्करिणी के कल-कल प्रवाह में नाचो। देखो, तुम्हारे द्वार पर स्वर्णाश्व पर सवार कौन प्रती[क्षा] कर रहा है !

हिंदी के बड़े-बड़े 'कवि' नामधारी विद्वानों ने उ[षः]कालीन ओसबिंदुओं पर प्रायः रोने की ही कल्पना [की] है ; किंतु कुमारी संजीवनी अपनी उदात्त कल्पना [से] उषा को भाग्य के चरम सौंदर्य पर बिठाकर अकलि[त] निसर्ग में पहुँचा देती हैं। वस्तुतत्त्व यह है कि प्रण[य] की प्रतीक्षा ही प्रणयिनी के परमसुख की सीमा है; इ[सके] बाद—इसके बाद ही आलोकमंडित संसार है।

स्थानाभाव से कुमारी संजीवनी की अन्य रचना[ओं] पर प्रकाश डालने में हम तो अवश्य ही असमर्थ हैं, कि[ंतु] उपर्युक्त उदाहरण उनके भावी 'कवि' का उज्ज्वल चि[त्र] उपस्थित करने में सर्वथा असमर्थ हैं—इसमें संदेह नहीं।

'अंचल'

साहित्य-समीर

१—हिंदी-साहित्य और मुफ़्तख़ोरा संप्रदाय

एक नयी आयोजना

हिंदी-साहित्य-जगत् का वर्तमान परिस्थिति संक्रमणात्मक होते हुए भी, हर्ष की बात है, उसका स्थायी साहित्य दिनोंदिन बढ़ रहा है। हिंदी के दैनिक तो अभी अन्यान्य प्रागतिक बंगाली, मराठी एवं गुजराती-भाषाओं के पत्रों की बराबरी नहीं कर सकते; किंतु मासिक और साप्ताहिक तो अवश्य ही किसी अंश में उनका न केवल मुक़ाबला कर सकते हैं, अपितु उनसे बाज़ी मार ले जा सकते हैं। हिंदी-संसार से गत बीस-पचीस वर्षों से मेरा संबंध रहा है और वह भी समाचारपत्र-जगत् से प्रत्यक्ष रूप में। सन् १९१४ के पूर्व तो "सरस्वती" और "मर्यादा" के सिवा कोई अच्छी पत्रिका ही नहीं थी। खंडवे के श्रीगंगराडेजी की "प्रभा" अच्छी निकली थी, किंतु वह मंदगति से चल रही थी। तत्कालीन "प्रताप" और "अभ्युदय"* में अब केवल प्रताप ही पूर्ववत् चल रहा है। पटने का "पाटलिपुत्र" बैरिस्टर काशीप्रसादजी जायसवाल के संपादकत्व में बड़ी शान से निकला था, किंतु वह भी शीघ्र ही बंद हो गया। हाँ, तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार दैनिक "भारतमित्र" श्रीवाजपेयीजी और ... बड़ी लगन से निकालते थे, और आज भी वह निकल रहा है। उसकी स्वर्णजयंती मनाये जाने का आयोजन हो रहा है। इधर सन् १९१७ के अनंतर नवयुवकों में अपूर्व जागृति होकर नित नूतन पत्र और ग्रंथ प्रकाशित होने लगे। इस नूतन जागृति का धुरीण दानवीर साहित्य-दधीचि बाबू शिवप्रसाद गुप्त का ज्ञान-मंडल बना। और, इसके बाद से हम देखते हैं, उत्तमोत्तम मासिक साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र आज विद्यमान हैं। गंभीर एवं प्रौढ़ विषयों पर सैकड़ों ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुके हैं और दिनोंदिन नये प्रकाशित होते जा रहे हैं। पर जिस भाषा के २१ करोड़ जानने-माननेवाले हों, महात्मा गांधी के पुण्य-प्रताप और कर्मबल से सुदूर प्रदेश आंध्र तथा मदरास तक जिसका प्रचार हो गया हो तथा राष्ट्रीय सभा के मंच से जिसे राष्ट्रभाषा होने का सम्मान प्राप्त हुआ हो—उस हिंदी के मासिकों, एवं समाचार-पत्रों तथा ग्रंथों के प्रचार और बिक्री को देखते हुए आश्चर्य और लज्जा उत्पन्न होती है। किसी भी समाचार-पत्र को उठाकर देखिए तो उसके द्वारा नित नूतन मासिक-साप्ताहिक तथा ग्रंथ प्रकाशित होने के समाचार तो प्राप्त होते रहते हैं, किंतु साल छः मास के अनंतर उनकी पुच्छ-प्रगति स्पष्टरूप से देख पड़ने लगती है। मासिक-साप्ताहिकों की तो किसी तरह अनियमित रूप से धुकधुकी चलती रहती है, पर ग्रंथों के ढेर बंडलों में बँधे प्रकाशकों या पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ पड़े रहते हैं या फिर उन्हें आधी-चौथाई क़ीमत में बेच डालने की आयोजना की जाती है। पर-भाषा-भाषियों की दृष्टि में तो हिंदी का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है; पर यदि हम अपने घर की ओर दृष्टि डालें तो सहसा 'ख़ुदा हाफ़िज़' होने के उद्गार निकल पड़ते हैं। वाह्यतः हिंदी के प्रचार में रुकावट होने के कोई कारण दिखायी नहीं देते; फिर क्या कारण है कि कोई हिंदी-पत्र ऐसा नहीं है, जिसका प्रचार १०,०००

* अभ्युदय इसी वसंतपंचमी से पुनः प्रकाशित होने-वाला है। —मा० सं०

से अधिक हो, या ऐसा कोई ग्रंथ नहीं जिसका साल छः मास में ३-४ हज़ार प्रतियाँ बिक गयी हों ?

हिंदी के मुक़ाबले में मराठी, बंगाली, गुजराती-भाषाओं के साहित्य की स्थिति सर्वथा संतोषजनक है। बंगाल-प्रांत श्रीसंपन्न है और गुजरात व्यवसाय-निपुण, पर महाराष्ट्र अत्यंत ग़रीब प्रांत है। अन्य भाषाओं के मुक़ाबले में मराठी-भाषा-भाषी हैं भी थोड़े—केवल २,००,००,००० के लगभग। महाराष्ट्र में ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों में इतना शिक्षा-प्रचार भी नहीं है। पर फिर भी पचीस-तीस हज़ार ग्राहकोंवाले समाचार-पत्र और दस-पंद्रह हज़ारवाले कई मासिक पत्र उस प्रांत में मौजूद हैं! "केसरी" पत्र का पचास वर्ष का स्मारक "केसरीप्रबोध" ग्रंथ, "केलकर"-स्मारक-ग्रंथ "मराठे और अँगरेज़"-नामक इतिहास तथा "गीतारहस्य" आदि ग्रंथों की साल छः मास में ही दस-दस हज़ार प्रतियाँ खप गयीं और लगे हाथ दो-तीन संस्करण भी प्रकाशित हो गये। गुजराती के बंबई-समाचार, प्रजा-मित्र, गुजराती-नवचेतन, बीसवीं सदी, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओं तथा काव्यदोहन, कलापीनो केकारव, कवि नानालाल, खबरदार, भिक्षु अखंडानंद आदि के ग्रंथों का काफ़ी प्रचार है। बंगाल के बंकिम, दत्त, गिरीश, द्विजेंद्र आदि पुराने लेखकों की बात छोड़ भी दी जाय तो भी महाकवि रवींद्र, शरत् बाबू, प्रभात बाबू आदि विद्वानों के ग्रंथ तथा प्रवासी, वसुमती, भारतवर्ष, नायक आदि पत्रों का प्रचार अवश्य ही अभिनंदनीय है। इन विभिन्न भाषाओं के उदाहरणों के आगे हिंदी का उल्लेख करना लज्जाजनक मालूम होता है। द्विवेदी-काल की सरस्वती की बात जाने दीजिए—क्योंकि उस समय हिंदी का इतना अधिक प्रचार ही नहीं था, पर पचीस-तीस वर्षों की तपस्या के बाद भी आज सरस्वती का कितना प्रचार है ? भला हो उन उदारमना चिंतामणि बाबू और उनके उत्तराधिकारियों का, जिन्होंने अपने अगाध परिश्रम का यथावत् फल न पाते हुए भी अब तक सरस्वती को जीवित तो रक्खा ! माधुरी के स्वत्वाधिकारी यदि केवल लाभ ही का विचार करते, तो अब तक कभी का उसका अस्तित्व मिट गया होता। सिवा "भारत-भारती" के "प्रियप्रवास"-जैसे अन्य सत्काव्यों के भी कितने संस्करण निकले ? अतएव अब सबसे पहले जो कारण हिंदी-प्रचार में बाधक हैं, उन्हीं पर विचार करें।

(१) हिंदी-प्रचार में सर्वप्रथम बाधा है भाषा-संबंधी। हिंदी की साहित्यिक भाषा तथा तद्भाषी समाज में बड़ा अंतर है, मासिक पत्रों में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, क्या उसे सभी हिंदी-भाषा-भाषी समझ सकते हैं ? यदि कोई कहे कि मासिक और समाचार-पत्र केवल हिंदी की उच्च परीक्षा पास करनेवालों के लिए ही होते हैं, सर्वसाधारण के लिए नहीं—तब तो तत्संबंधी हमारा कुछ भी कहना नहीं है। पर हाँ, इसके लिए एक उदाहरण यहाँ पर अवश्य ही देंगे। स्व० लोकमान्य तिलक का "केसरी" पत्र राजनीति से शराबोर रहता है, प्रत्युत उसके विषय बड़े गंभीर होते हैं। पर उसकी भाषा इतनी सरल और हृदय-ग्राहिणी होती है कि साधारण लिखे-पढ़े पुरुष, स्त्रियाँ और बालक सभी उसे अच्छी तरह समझ सकते हैं—चाहे गंभीर विषयों का आकलन वे भले ही न कर सकें। यही बात स्त्रियों और बच्चों के मासिक पत्रों के लिए भी लागू है। वास्तव में तो हिंदी-भाषी समाज की स्थिति की अपेक्षा हिंदी-भाषा एक शताब्दी आगे है, फिर भला पिछड़ा हुआ समाज सुसंस्कृत भाषा का अवगाहन कैसे कर सकता है ? निस्संदेह यह पंडिताऊ भाषा हिंदी-प्रचार में बड़ी बाधक हो रही है।

(२) हिंदी-भाषा का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है, प्रांतिक भेद-उपभेद भी उसमें है। इससे भाषा में समानता होने में बड़ी बाधा है। एक शब्द एक प्रांत में जहाँ पुल्लिंग है, वही शब्द दूसरे प्रांत में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है। इन प्रांतीय भाषा-भेदों के कारण हिंदी-लेखन कला अभी स्टैंडर्ड—विदग्ध नहीं हो पायी है।

(३) अभी हिंदी मासिक साहित्य का कोई आदर्श भी स्थिर नहीं हो पाया है। विभिन्न प्रांतों से उक्त पत्रों का प्रकाशन होने के कारण ग्राहकों का बँटवारा हो जाता है, पुराने पत्रों का अस्तित्व डगमगाने लगता है और नये पत्रों के बंद हो जाने से ग्राहकों का भी विश्वास हट जाता है। यह परम्परा अभी तक क़ायम है। यदि एक पत्र एक स्थान से निकल रहा है तो उसी स्थान से उसी टक्कर का दूसरा पत्र निकाला जाता है। परिणाम यह होता है कि एक ही साँचे में ढले होने से परिणि

महाराज माधवसिंह प्रथम (जयपुर)

पौने दो सौ वर्ष पूर्व की भारतीय चित्रकला का नमूना

[पं० हनूमान शर्मा की कृपा से प्राप्त]

N. K. P.

ग्राहक और पाठक सभी के सहायक नहीं बन सकते। बंगालियों के चटकीले चित्रों के अनुकरण ने तो साहित्य-प्रचार में और भी बाधाएँ उपस्थित कर दीं। चित्रों के साथ ख़र्चा भी बढ़ता है और लोकप्रियता के लिए कविता-कहानियाँ चाहिए ही, जिससे गंभीर प्रौढ़ विषयों की बूझ ही नहीं होती। परिणाम यह होता है कि हिंदी-पाठक "बुढ़िया के बाल की मिठाई" की नाईं उस मासिक को ही ग़नीमत समझकर संतोष मान लेते हैं। लेकिन टीनसाज़ की दूकान की नाईं उस बड़े कारख़ाने का दिवाला निकलने में भी देर नहीं लगती। यदि चटक-मटक के फन्दे में न पड़कर विभिन्न कार्य-क्षेत्रों से विशिष्ट विषयों के पत्र निकाले जायँ, तो हिंदी-साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। पर वे दिन अभी कहाँ!

(४) अभी हिन्दी के लेखक, कवि तथा ग्रंथकारों का भी स्टैंडर्ड—श्रेणी-विभाजन क़ायम नहीं हुआ है, इसी से अधिकांश अधकचरे और शौक़िया जीवों का ही साहित्य-क्षेत्र में जमघट जुटा हुआ है। लेखनी चलाने का शौक़ चर्रा उठते ही हर एक लेखक प्रसिद्ध सम्पादक और ग्रंथकार बनने, प्रत्येक तुकबंद क्रान्ति-कारी कवि कहलाने तथा प्रत्येक ग्रंथकार "सब कुछ" बनने के लिए प्रयत्नशील होता रहता है। फलतः न तो पाठकों की अभिरुचि का अन्दाज़ लगने पाता है, और न उनकी प्रवृत्ति का कोई संस्कार होने पाता है। इस मंडली में तज्ञ-अज्ञ-विज्ञ लेखकों का पता ही नहीं लगने पाता। क्लर्कों-प्रूफ़रीडरों को सहकारी मानकर सन्त कहलानेवाले अल्प-वेतनभुक्त प्रधान सम्पादक, 'मधुशाला' में 'प्यालियाँ' लुढ़काकर आह-उच्छ्वास-के आँसू बहाते हुए अन्तस्तल से अनन्त की ओर टकटकी लगानेवाले कविपुङ्गव तथा नाइयों की तरह इधर-उधर से जोड़कर विविध-पर्णयुक्त पोथे गढ़नेवाले लेखकों ने "सब धान बाईस-पंसेरी" का गड़बड़झाला फैला रक्खा है। हाँ, एक बात और है। पुस्तक-प्रकाशक स्वतंत्र ग्रंथ और अनुवाद में कोई अन्तर नहीं पाते। पुरस्कार भी अल्प देते हैं। अनुवादक और लेखक भी ऐसे मौजूद हैं कि अँगरेज़ी न जानते हुए मराठी-गुजराती से अनुवाद करके अँगरेज़ी से अनु-वाद करने की डींग मारते हैं और अध्ययन तथा स्वतंत्र रचना के विपुल साधन होते हुए भी एक-दो पुस्तकों से सामग्री-बटोरकर लंबी-चौड़ी संदर्भ-तालिका दे देते हैं, फिर चाहे अधिकांश ग्रंथों को उन्होंने देखा तक न हो। एक बात अवश्य है—नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा भी मौजूद है, पर वह कहीं तो हवा के झोंके में और कहीं जमाने की लहर में बह रही है। गत बारह वर्ष के युग में कई उच्च कोटि के लेखक सम्पादक कवि तथा ग्रंथकार भी प्रकट हुए हैं। पर अधीत, विशेषज्ञों तथा अधि-कारियों की संख्या अभी उँगलियों पर ही गिने जाने योग्य है।

यह तो हुई हिन्दीप्रचार के बाधक कारणों की मीमांसा। अब हम उस दुनिया पर दृष्टिपात करते हैं, जिसके लिए यह सारा आडम्बर रचा जा रहा है। "गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है"—यह उक्ति साहि-त्यिक जगत् के लिए तो अत्यंत आवश्यक और उपयुक्त है। किंतु हिन्दी में तो 'भैंस के आगे बीन बजानेवाली' मसल ही चरितार्थ है। यदि एकआध लेखक काफ़ी अध्ययन करके मौलिक या नयी सामग्री प्रस्तुत करने-वाला कोई लेख लिखता है, तो उसकी पूछ तक नहीं होती। मासिकपत्रों की पृष्ठों की पूर्ति के लिए वे प्रका-शित तो अवश्य कर दिये जाते हैं, पर उन्हें पढ़नेवाले एक प्रतिशत जिज्ञासु मिलना भी कठिन है। इस विषय में मेरा अनुभव बड़ा कटु है। गत बीस वर्षों से मैं साहित्य, आलोचना, प्राचीन-नवीन काव्य तथा इति-हास-संबंधी सैकड़ों स्फुट लेख हिंदी-मराठी पत्रों में लिख चुका हूँ। कुछ टिप्पणियाँ अँगरेज़ी में भी लिखी हैं। मराठी और अँगरेज़ी-पाठकों के तो तत्संबंधी जिज्ञा-सात्मक प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं, परन्तु हिन्दी में? क्या कहा जाय—"हिनोज़ देहली दूर अस्त"

जहाँ साहित्यिक जिज्ञासा नहीं, वहाँ मासिक पत्र और ग्रंथों को कौन देखे, परखे और ख़रीदे। इस विषय में बंगाली-गुजराती-महाराष्ट्रीय भाई अवश्य ही अनु-करणीय हैं; इन भाषाओं के प्रत्येक कुटुम्ब में प्राचीन-नवीन साहित्य के ग्रंथ तथा मासिक-साप्ताहिक पत्रों की चाह होती है। पर हिंदी में अड़ोस-पड़ोस से माँगकर अथवा वाचनालय आदि में जाकर पढ़नेवाले मुफ़्त-ख़ोरे ही अधिक हैं। मध्यम स्थिति से लेकर ख़ासा वेतन पानेवाले हिंदी-भाषा पुरुष भी हिन्दी-साहित्य को आश्रय देना अपव्यय मानते हैं। मुझे स्वयं इसका

बड़ा कटु अनुभव है। मेरे पास प्रमुख एवं प्रतिष्ठित लगभग ३०-४० मराठी, हिन्दी, अँगरेज़ी मासिक-साप्ताहिक आदि कुछ तो लेखों के पुरस्कार-स्वरूप और कुछ ग्राहक बनने से आते हैं। उनका उपयोग करनेवाले कोड़ियों रसिक भी जहाँ तहाँ मिल जाते हैं। उन रसिकों में ऐसे भी हैं जिनकी ५०-७५ से लगाकर २००-२५०-४०० तक मासिक आय है। यदि कभी उन्हें एकआध मासिक पत्र ख़रीदने के लिए कहा जाय तो वैसे ही भड़केंगे, जैसे भैंस छाते को देखकर। यदा कदा उन पर मेरे प्रोपेगंडा का जादू चल भी गया तो एक साल पत्र मँगाकर दूसरे साल उसकी वी० पी० वापस करना भी वे कभी न भूलेंगे! उन भलेमानसों को ताने भी दिये जायँ कि आपने छः-आठ आने का व्यर्थ का भार उस सत्कार्य करनेवाले पर क्यों डाला, तो हँसकर उत्तर देंगे—"अजी यह तो यों ही चलता है। और किसी ग्राहक को मूँड़ लेंगे।" यह है हमारे सुखी-सम्पन्न हिंदी-भाषियों का हाल। फिर साहित्य कैसे पनपे और कैसे उसका प्रचार हो? इससे तो क्लर्क ही अच्छे, जो २०-२५ रुपये माहवार कमाते हुए भी अपने तथा कुटुम्बियों के हितार्थ पत्र-पठन का लाभ सुझाने पर उन्हें ख़रीदते तो हैं।

हिन्दी-साहित्य के प्रचार में पुस्तकालय और वाचनालय भी बहुत बाधक हो रहे हैं। वाचन-अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए पुस्तकालयों की आवश्यकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यदि एकआध व्यक्ति के पास दस-पाँच पत्र आते हों और उन्हें वह अपने मित्रों-परिचितों को पढ़ने के लिए दे, तो उससे भी उन्हें लाभ ही पहुँचता है। पर वास्तव में इस प्रथा से मासिक पत्रों तथा ग्रंथों के प्रकाशकों की कितनी हानि होती है! यदि किसी वाचनालय या व्यक्ति की सहायता से मुफ़्त में अख़बार या ग्रंथ पढ़ने को मिल जाय तो वे क्योंकर उन्हें ख़रीदना सीखेंगे? अतएव साहित्य-प्रचार की दृष्टि से निम्नलिखित नियमों को अनिवार्य कर देने की अत्यंत आवश्यकता है।

(१) अपनी आय के अनुसार =) आना प्रति रुपया वार्षिक साहित्य के प्रीत्यर्थ व्यय करनेवाले ही लाइब्रेरी या वाचनालय के सभासद बनाये जायँ। पान, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, साबुन, तेल, चा आदि के वार्षिक व्यय के आगे यह रक़म कुछ नहीं के बराबर है।

(२) आरंभ में छः मास तक पुस्तकालय से मुफ़्त में लाभ उठाने पर किसी भी सदस्य के लिए उक्त नियम अनिवार्य कर दिया जाय; क्योंकि पठन भी ; वस्तु की नाईं आदत में दाख़िल हो जाता है। लाइब्रेरी में जाने की चाट पड़ जाने पर वह नि होकर उक्त नियम का अवश्य ही पालन करेगा।

(३) जो व्यक्ति औरों से मुफ़्त में माँगकर का आदी हो, वह जब तक अपनी हैसियत के अनुस मुख्यतः उक्त नियम को सम्मुख रखकर—स्वयं मासिक या ग्रंथ-साहित्य न मँगवा ले, उसे ह कोई हिन्दी-हितैषी मुफ़्त में मासिक, समाचारप ग्रंथ पढ़ने को न दे।

(४) लाइब्रेरी के नियमानुसार ख़ानगी मुफ़्त के लिए केवल तीन मास की रियायत दी जाय।

(५) प्रत्येक हिन्दी-हितैषी वर्ष में कम से पाँच मासिक-साप्ताहिक तथा पाँच प्रसिद्ध ग्रंथ मँ की प्रतिज्ञा करके उसका इष्ट-मित्रों और परिचितों के निर्वाह करावे। मैं सर्वदा इसी नीति का अवल करता हूँ, जिससे जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ पर प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाएँ आने लगती हैं।

(६) हिप्नाटिज़्म, मेस्मेरिज़्म आदि देशी-वि पत्रव्यवहार-कोर्सों की नाईं पुस्तकें मँगानेवाले प को शपथपूर्वक यह मान लेना चाहिए कि वही उस ग्रंथ से लाभ उठा सकता है। यदि कोई भाई उससे लाभ उठाना चाहे, तो उसको सामर्थ्यानुसार बदले में एकआध ग्रंथ अवश्य प्र को बाध्य किया जाय।

(७) मुफ़्तख़ोरों की एक सूची प्रत्येक सा प्रेमी अपनी बैठक में अंकित करे। अन्य भाइयं भी उनके शुभ नामों से परिचित करा दे और यथा उन मुफ़्तख़ोरों को भी समय-समय पर उस सूच दृष्टिगत करा दे।

(८) साहित्य या उसके प्रचार या संग्रह का न जाननेवाले मुफ़्तख़ोरे ही दुर-असल पुस्तकें या खोने या हड़पने के आदी होते हैं। यदि ऐसों के कोई पुस्तक उड़ा दी जाय, गुम हो जाय या हस्ता

हो जाय, तो बिना रू-रियायत उसे वह पुस्तक मँगवाने को बाध्य किया जाय। ख़ुद मँगवाकर या ख़रीदकर क़ीमत भी वसूल की जाय तो हर्ज नहीं।

(९) हाँ, ठोक-पीटकर साहित्य-प्रेमी बनाने के लिए मुफ़्तख़ोरा का व्यसन ज़रूर लगाया जाय। ऐसे ...डूल के एक मर्तबा जाल में फँस जाने पर उसके पर ...पर कट जायँगे और फिर वह दूसरों का सहारा ...ने या ख़ुद ही कुदकी-फुदकी लगाने की कोशिश ...गा, जो साहित्य के लिए अवश्य हितकारी होगा।

(१०) वाचनसङ्घ, पठनगोष्ठी आदि संस्थाएँ स्थापित कर आदान-प्रदान द्वारा साहित्य का प्रचार किया जाय।

(११) स्वयं एकआध ग्रंथ को चुनकर औरों के लिए कुछ पुस्तकें मँगवाने पर ज़ोर दे और उसी को ...कर अपनी पुस्तक मँगवाने का भी अनुरोध करे, जिससे एक के साथ कई पुस्तकें अपने-आप आ जाती हैं और प्रचार-कार्य बढ़ता है।

(१२) यदि किसी ख़सीस से पाला पड़े और उसके ... वी० पी० मँगाने से वापसी की आशंका हो तो ... एक कार्ड ख़र्च करके अपने नाम पर वी० पी० ...ा ले, उसे उसी के मार्फ़त छुड़ाने का प्रयत्न करे और ... ज़रूरत पार्सल छुड़ाने को रुपये भी उधार ... पड़ें तो भी कोई हर्ज न होगा।

(१३) साहित्य-प्रचार की सदिच्छा रखनेवाले को ... कार्ड ख़र्च करने का त्याग अवश्य बतलाना चाहिए, जिससे तीन पैसे में उसको पढ़ने का अपार लाभ होगा और प्रचार भी होगा।

(१४) पुस्तकें, समाचारपत्र आदि की ख़ूब प्रशंसा करते रहना चाहिए।

उक्त मोटे-मोटे नियमों के यदि किसी प्रकार पालन करने का प्रयत्न किया जाय, तो विश्वास है कि हिन्दी-भाषा-भाषी समाज के माथे का एक बड़ा भारी कलंक मिट जायगा, कई मासिक साप्ताहिक अकाल ही में कवलित नहीं होंगे और न ग्रंथों की पुड़िया बनाने की ही नौबत आवेगी। आशा है, हिन्दी-हितैषी इस विषय पर ख़ूब सोच-विचार कर अन्य उपाय भी बताने की कृपा करेंगे।

भास्कर-रामचन्द्र भालेराव

× × × ×

२—समीक्षा

तत्त्वचिंतामणि (भाग २)—लेखक, जयदयालजी गोयन्दका; प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर; पृ० सं० ६२५; मूल्य ।।।=), सजिल्द १=); कागज़, छपाई-सफ़ाई बढ़िया।

कहना नहीं होगा कि धार्मिक पुस्तकें सस्ती और बढ़िया प्रकाशित करने में गीता-प्रेस अद्वितीय नहीं तो स्तुत्य अवश्य है; तदनुसार 'कल्याण' पत्र के ४८ लेखों का संग्रह, कृष्णरूप भगवच्चित्र से सुसज्जित; पुस्तकाकार परमार्थ-ग्रंथमाला का यह नवम पुष्प पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। लेखक ने वेदांत की छाया में बैठकर भगवद्गीता तथा उपनिषदादिकों का आश्रयण कर आत्मा, जीव और प्रकृति-संबंधी बहुत-सी जटिल शंकाओं का दार्शनिक युक्तियों से समाधान करते हुए पारमार्थिक विविध विषयों का विशद विवेचन किया है। कुछ कौटुम्बिक आर्य-धर्मों की विमल व्याख्यापूर्वक परमात्मसंबंधी बहुत-से प्रश्नों का निराकरण तथा श्रद्धा, भक्ति, सत्य, सत्संग, प्रेम आदि मानव-जीवन की सार्थकता का रहस्योद्घाटन करते हुए भगवत्प्राप्ति का मार्ग-निरूपण ऐसे सुंदर ढंग से किया है कि विषय को पढ़ते हुए परमानंद का स्पर्श होने लगता है। भगवद्गीता के गुह्य तत्त्वों का विस्तार करते हुए पुस्तक पूर्ण की गयी है। व्यावहारिक दृष्टि से नीरस विषय को सरस बनाने का प्रयत्न श्लाघ्य है। सरस, सरल, प्रवाहपूर्ण भाषा से विभासित विषय, सुकुमार-मति जिज्ञासु तथा मुमुक्षु आबाल-वृद्ध नरनारियों के मनन करने योग्य है।

× × ×

श्रीविष्णुसहस्रनाम—अनुवादक, स्वामी श्रीभोले-बाबाजी; प्रकाशक श्रीघनश्यामदास, गीता-प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ-संख्या २७५ ; मूल्य ।।=) ; कागज़, छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम ।

प्रस्तुत पुस्तक व्यासकृत महाभारतोक्त एक स्तोत्र है, जिसे श्रीस्वामी आद्य शंकराचार्यजी ने भाष्य से विभूषित कर संसार का परम कल्याण किया है । उक्त भाष्य संस्कृत-भाषा में होने के कारण संस्कृत-विद्वानों तक ही सीमित-सा था, परन्तु हिंदी-अनुवाद ने सोने में सुगंध का गुण उत्पन्न कर दिया । विद्वत्प्रवर श्री 'भोला' जी ने संस्कृत-भाषा के भावसामंजस्य को हिंदी में ऐसा निबाहा है कि विषमता नहीं आने पायी । साथ ही भाषा ऐसी सरल और परिमार्जित है कि थोड़ी भी हिंदी जाननेवाले बड़ी आसानी से भाष्य का आशय समझ सकते हैं । दुरूह स्थलों को टिप्पणी-रत्नों से सजाकर विषय को और भी देदीप्यमान बना दिया गया है । भगवन्नामानुरागी जिज्ञासु भक्तों तथा हिंदी-प्रेमियों के लिए पुस्तक एक रत्न है ।

भगवतीप्रसाद पांडेय 'अनुज'

× × ×

कालिया-शतक—यह डिंगल-भाषा का कुल ३२ पृष्ठ का छोटा-सा काव्य है । ठाकुर खुमानसिंहजी—ठिकाना महुआ-राज्य (सीतामऊ C. I.)—इसके रचयिता हैं, पं० अनूप शर्मा, भूतपूर्व हेडमास्टर सीतामऊ, ने भूमिका-स्वरूप इसके संबंध में 'दो शब्द' लिखे हैं, और लेखक के पौत्र भँवर शिवसिंह ने इसकी प्रस्तावना लिखी है । प्रकाशक भी यही सज्जन हैं । लेखक का प्रपौत्र-सहित एक चित्र भी दिया गया है । फुटनोट में कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं, इससे पुस्तक सर्वसाधारण के समझने योग्य हो गयी है । इस पुस्तक में कुल १०१ दोहे हैं, जिनमें अधिकांश नीति-विषयक हैं । ईश्वर-भक्ति-संबंधी भी बहुत-से दोहे हैं । बल्लू सरदार की प्रशंसा में भी दो-एक दोहे कहे गये हैं, जो अमरसिंह राठौर का शव आगरे के क़िले के भीतर से बादशाही सेना से मोरचा लेकर सुरक्षित निकाल लाया था । ठाकुर साहब ने अपने नौकर कालिया को संबोधन करके कुल दोहे व सोरठे कहे हैं, इसी से इस पुस्तक का नाम कालिया-शतक रक्खा गया है । ठाकुर साहब के ये अनुभवजन्य वृद्धावस्था के उद्‌गार हैं जो सहसा कवि की वाणी में प्रकट हुए हैं । अनेक छन्द बड़े ही मार्मि एवं हृदयग्राही हैं । मूल्य भी अमूल्य प्रेम है । को लिखने से प्राप्त हो सकती है ।

भगीरथप्रसाद दीक्षित (साहि

× × ×

गुप्त-वंश का इतिहास—लेखक, श्री० रघुनंद एम्० ए०; प्रकाशक, भार्गव-आदर्श, १८, रेलवे-रोड, पृष्ठ-संख्या ४८४; मूल्य ५)

रघुनंदनजी ने गुप्त-वंश का इतिहास लिख हासिक सामग्री की एक बहुत बड़ी कमी की है । मौर्य-साम्राज्य का इतिहास लिखा जा चुका कालीन भारत का इतिहास भी प्रकाशित हो मुग़ल और ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास भी हो चुके हैं । परंतु हिंदू-काल के सुवर्णयुग प तक विशेष प्रकाश किसी अँगरेज़ी-पुस्तक द्वारा डाला गया था । इस कमी को पूरा करने प्रस्तुत पुस्तक को ही प्राप्त है । लेखक महोदय ने बहुत खोज के पश्चात् लिखी है, इसलिए णिकता में संदेह बहुत कम हो सकता है और वि बीच इसका आदर होना भी अवश्यंभावी है पुस्तक की शैली और भाषा के शुष्क एवं क्लिष्ट कारण हमें यह संदेह है कि इसे साधारण पाठ से पढ़ सकेंगे ! चित्रों की कमी खलती है, और भी साधारण ही है ।

× × ×

वहमी रोगी—लेखक, डॉ० लक्ष्मणस्वरूप ए डी० फ़िल (ऑक्सम), संस्कृत-प्रोफ़ेसर, पंजा विद्यालय; प्रकाशक, मोतीलाल-बनारसीदास, बाज़ार, लाहौर ।

मौलियर फ़्रांस का एक प्रसिद्ध नाटककार था वह प्रहसन लिखने में सिद्धहस्त था । उसके कुछ इस योग्य भी हैं कि अनूदित होकर भारतीय का भी मनोरंजन कर सकें । इसलिए समय-स इसके प्रहसनों के अनुवाद होते रहे । द्विजेंद्र 'सूम के घर धूम' लिखा और अब डॉ० लक्ष्मण 'वहमी रोगी' को हिंदी-भाषा-भाषी समा पहुँचाया ।

अनुवाद करने में यदि कुछ स्वतंत्रता से

[ज]या जाय और स्वयं अनुवादक की यदि साहित्यिक [प्रवृ]त्ति न हो, तो अनूदित ग्रंथ में अनुवाद की गंध आये [बि]ना नहीं रहती। अनुवादक महोदय ने वार्तालाप [के] अनुवाद में तो स्वतंत्रता से काम लिया है जिसके [का]रण रंगमंच पर अस्वाभाविकता नहीं मालूम हो सकती, [परं]तु पात्रों के नाम जैसे के तैसे ही रख दिये हैं। [य]दि उनके नाम के हिंदी-अनुरूप भी दे दिये जाते, तो [अ]धिक अच्छा होता। प्रहसन में गायन की मात्रा भी [बहु]त अधिक नहीं है, यह कमी भी कुछ खटकती है। [परं]तु इसके लिए तो कदाचित् अनुवादक महोदय मूल-[ना]टक के कारण विवश थे।

पंजाब उर्दू का केंद्र है, परंतु देखने में यह आता है [कि] पंजाब के हिंदी-साहित्यिक—दो-एक को छोड़कर—[संस्]कृत-गर्भित हिंदी लिखते हैं। प्रस्तुत प्रहसन भी [इ]स दोष से नहीं बचा है। यदि इसकी हिंदी कुछ और [सर]ल होती, तो यह रंगमंच के अधिक योग्य हो सकता। [पर] पठन-पाठन में इससे मनोरंजन प्राप्त होने में कोई [संदे]ह नहीं हो सकता। विद्वत्समाज में इसका अभिनय [भ]ी हो सकता है, परंतु साधारण जनता के रंगमंच [प]र यह टिकट की अधिक आमदनी नहीं ला सकता। [ले]खक महोदय संस्कृत के प्रकांड पंडित हैं। आपके [हिं]दी-सेवा का मार्ग ग्रहण करने पर हम आपका सादर [अ]भिवादन करते हैं।

× × ×

[ई]श्वर और धर्म केवल ढोंग है—लेखक और [प्र]काशक, श्री० भजामिशंकर दीक्षित, मुकाम विछलखा, [पो]स्ट रामनगर, जिला बाराबंकी।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने विभिन्न धर्म-[प्रच]ारकों के रचे हुए धार्मिक आचार-विचार पर अपने [तर्]क का प्रकाश छोड़कर उन्हें ढोंग प्रमाणित किया है। [इस]में कोई संदेह नहीं कि हम जिन विश्वासों को [अप]ना धर्म मानते हैं, वे सब तर्क की परीक्षा में नहीं [ठह]र सकते। यह भी सच है कि धर्म के नाम पर संसार [में] बहुत कुछ अत्याचार हुआ है। परंतु यदि इसकी [कल्]पना की जाय कि धार्मिक बंधन मनुष्य को न जकड़े होते तो वह कितना अमानुषिक हो जाता, कितना उसका जीवन कष्टमय रहता—तो संसार में धर्म और विश्वास की सार्थकता का अनुमान हो सकता है। यदि दीक्षितजी-जैसे सभी मनुष्य तार्किक और दार्शनिक हो जायँ, तो ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास न करके भी वे सुखी रह सकते हैं, सत्य-आचरण का पालन करते रह सकते हैं। परंतु ऐसे मनुष्य कितने हैं! सहस्रों-लाखों में आपके ऐसे एक। ऐसी दशा में समाज को नियमित रखने के लिए उसे धार्मिक बंधनों में बँधा रहने दीजिए। अभी मनुष्य कितना अत्याचारी है, फिर तो उसकी उच्छृंखलता का ठिकाना ही न रहेगा। इस लिए ईश्वर हो या न हो, परंतु मनुष्य के विश्वास की भीति को न तोड़िए।

× × ×

राजपूताने के जैनवीर—लेखक, श्री० अयोध्या-प्रसाद गोयलीय; प्रकाशक, हिंदी-विद्या-मंदिर, पहाड़ीधीरज, देहली; मूल्य २)

राजपूताना और गुजरात जैनधर्म के केंद्र रहे हैं। साधारण जनता की यह धारणा है कि जैन व्यापार करना ही जानते हैं, क्षत्रियत्व से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहा है। इस मिथ्या धारणा को खंडित करने तथा जैन-कीर्ति को प्रकाशित करने के अभिप्राय से यह पुस्तक लिखी गयी है। इस उद्देश्य में लेखक महोदय पूर्णतः सफल हुए हैं। अभी तक हम जैनवीर भामाशा से ही परिचित थे। इस ग्रंथ के अवलोकन से मालूम होता है कि राजपूताना और गुजरात में जैनियों का सेना-संचालन तथा शासन से विशेष संबंध था। उन्होंने अपने देश और जाति की रक्षा ही नहीं की, वरन् उन्होंने अपने धार्मिक साहित्य को नष्ट होने से भी बचाया है और मरुभूमि के बीच—विशेषतः आबू और जैसलमेर में—वह भव्य मंदिर स्थापित किये हैं जिनके कारण उनकी धार्मिकता की कीर्ति अक्षय रहेगी।

कालिदास कपूर (एम्० ए०, एल्० टी०)
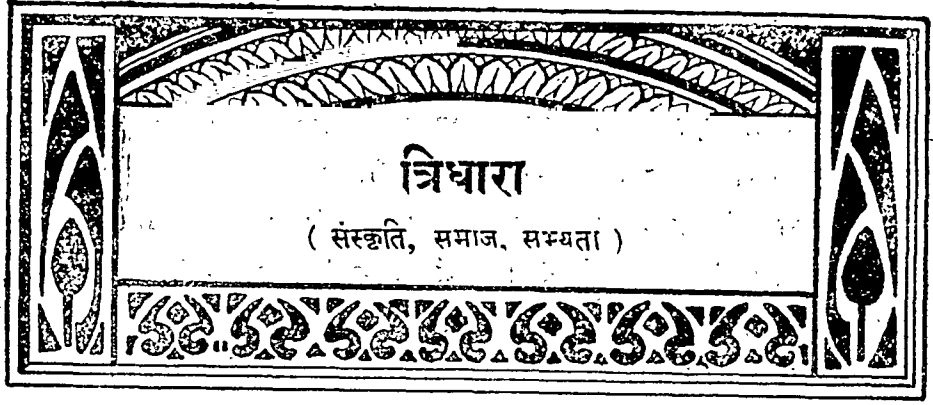
१—देव और असुर

वैदिक काल के आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत्, भृगु, साध्य एवं अंगिरा यह आठ देवगण कहे जाते हैं। इनमें आदित्य, रुद्र एवं मरुत् महर्षि कश्यप की संतान हैं। साध्य और विश्वेदेव धर्मपुत्र आत्रेयगण हैं। भृगु से भार्गव एवं अंगिरा से आंगिरस की उत्पत्ति हुई है *। देवगणों तथा ऋषिगणों का प्रादुर्भाव एक ही वंश से हुआ है और उसी समय से देवगणों को असुर कहते हैं। ऋग्वेद में वरुण, सविता, इंद्र, मरुत्गण, त्वष्टा, रुद्र, मित्र प्रभृति की असुर संज्ञा कही है। †

उस समय हिरण्यकशिपु 'सुमेरु' प्रदेश का राजा था। वह जिस दिशा में गमन करता था, उस दिशा को भी देवगण और महर्षिगण भय से नमस्कार करते थे कि ईश्वर न करे, फिर इधर वापस आ निकले। ‡ महर्षि कश्यप की संतानों में हिरण्यकशिपु सबसे ज्येष्ठ था। दक्ष के कोई संतान न थी, इस कारण उसके मातामह ने ज्येष्ठ समझकर दक्ष के सिंहासन का उत्तराधिकारी इसी को कर दिया। यह बहुत अत्याच[ार] था, इस कारण अदिति के गर्भ से समुत्पन्न वैमा[त्रेय] भ्राता इंद्रादिकों के साथ विशेष विवाद किया क[रता] था। इंद्रपक्षीय देवगणों का मंतव्य यह था कि [इंद्र] ज्येष्ठ हैं, इसलिए दक्ष का सिंहासन इनको मि[लना] चाहिए। पर अपने उद्योग में असफल होने से ऋषि[गण] विष्णु-भगवान् की शरण में पहुँचे और सारी [कथा] सुनायी। तब विष्णु ने अपने एक योद्धा-वीर को हिर[ण्य]कशिपु के मारने के लिए आज्ञा प्रदान की। योद्धा [ने] जाकर प्रह्लाद आदि उसकी संतानों को परास्त किया; [पर] हिरण्यकशिपु क़ाबू में न आ सका, बल्कि उसने यो[द्धा] को ही मैदान से खदेड़ दिया। इस संवाद को नरसिं[ह] विष्णु ने जब जाना, तब वह स्वयं युद्ध के लिए तैय[ार] होकर रण-क्षेत्र में पहुँचे। प्रह्लाद आदि पहले से [तैयार] ही थे। प्रह्लाद ने युद्ध किया, पर पार न पा सका। अंत में हिरण्यकशिपु ने सामना किया और नरसिं[ह] विष्णु द्वारा उसकी मृत्यु हुई। पिता के वध से दुःखि[त] होकर फिर प्रह्लाद घनघोर रोमांचकारी युद्ध करने लग[ा], परंतु हारकर विष्णु के शरणागत हो गया। *

इंद्र राजा तो हो गये, परंतु इससे वैमात्रेय भ्राता[ओं] के साथ राज्य-विषयक विवाद उनको सदा करना पड़[ता] था। इस समय समस्त लोक दो दलों में बँट गया था; एक दल सुर और दूसरा असुर था। जो इंद्र के प[क्ष] में थे, वे इंद्र के ऐश्वर्य से स्वयं धनी बने; दूसरा द[ल] ऐश्वर्यहीन होने से असुर नाम से विख्यात हुआ।

आपस के विवाद में कभी सुरदल और कभी असुर दल विजयी होता रहा। उसी समय से वेदों में सु[र]

---

* आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव अष्टौ देवगणाः स्मृताः ॥ २ ॥
आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः।
साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयोगणाः ॥ ३ ॥
(वायुपुराण, ५४ अध्याय)

† देखो ऋग्वेद (१।२४।१४) (१।३५।१०) (१।५४।३) (१।११०।३) (१।१२२।१) (५।४२।१)

‡ राजा हिरण्यकशिपुर्यां यमाशां निषेवते।
तस्यै तस्यै दिशे देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभिः ॥ १६५ ॥
(वायु० पु०, ६७ अध्याय)

* कूर्मपुराण, अध्याय १६

और असुर नाम विख्यात हुए थे। किंतु असुर दल-वाले अपने आराध्य देवता की 'असुर' नाम से ही उपासना करते थे। इनके देवता अग्नि थे †। महादेव असुर-दल में ही थे, इस कारण इंद्रादिकों के साथ यज्ञ-भाग नहीं पाते थे। बृहस्पति सुरगणों के पुरोहित हो गये थे। इंद्र उनका यजमान था।

देवताओं ने इंद्र का ज्येष्ठत्व स्वीकार नहीं किया। इंद्र ने बृहस्पति से कहा कि आप हमारा 'द्वादशाह' द्वारा यज्ञ कराइए। बृहस्पति ने किया, तब देवगणों ने इंद्र का ज्येष्ठत्व और श्रेष्ठत्व स्वीकार किया। इसके बाद इंद्र को दक्ष का सिंहासन मिला। ‡

गंगाधर द्विवेदी "धूर्जटि"

× × ×

२—संसार की सर्वोपरि समस्या

सांसारिक दुःखों का प्रश्न दुनिया में उतना ही पुराना है जितनी संसार की राजनीतिक संस्थाएँ। सृष्टि के आदि से लेकर आज तक जितने धर्म संसार में प्रचलित हुए हैं, जितनी सुधार-प्रगतियाँ चलीं हैं, जितने दर्शन-शास्त्र एवं नीति-ग्रंथ रचे गये हैं और जितने महापुरुष हुए हैं—सबका ध्येय इसी समस्या को सुलझाना रहा है। सबने इसी प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया है। अपने-अपने युग में इनमें से बहुतों को यत्किंचित् सफलता भी मिली, किन्तु स्थायी रूप से इस रोग को कोई भी दूर नहीं कर सका। हर बार यही हुआ कि कुछ समय के लिए स्थिति ने पलटा खाया, परंतु फिर वही स्थिति हो गयी।

उदाहरण लीजिए। प्रारम्भिक स्थिति में असंगठित सम्मिलित जीवन से घबराकर लोगों ने व्यक्तिगत अथवा गार्हस्थ्य-जीवन को जन्म दिया; फिर जब उससे बड़ी बुराइयाँ पैदा होने लगीं, तो उन्हें दबाने के लिए प्रजातंत्रीय एवं धार्मिक संस्थाओं को जन्म दिया। जब इनसे भी नये विकार उत्पन्न हुए, तब सैनिक संस्थाओं को अस्तित्व में लाया गया। परन्तु ये सबसे भयंकर सिद्ध हुईं। इन्होंने धीरे-धीरे पाशविक बल का साम्राज्य अर्थात् एकतंत्रीय सत्ता जमा ली और इस प्रकार जनसत्ता का एकदम लोप हो गया। चौबेजी चले थे छब्बे बनने, रह गये दुबे ही। सार यह कि—मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।

स्थिति यहाँ तक बिगड़ गयी कि मानव-हृदय हिम्मत हार बैठा। बीच का सारा साहित्य इसी बात का प्रमाण है कि मनुष्य इस रोग को असाध्य समझ बैठा था। उस समय के विद्वानों ने निराश होकर लोगों को यही शिक्षा देनी शुरू कर दी थी कि "यह संसार तो कुत्ते की पूँछ है; इसे लाख बार सीधा करो, परन्तु यह फिर टेढ़ी हो जाती है। अतः इससे माथा-पच्ची करना बेकार है; प्रत्येक को अपने मोक्ष की चिन्ता करनी चाहिए।" किन्तु इस शिक्षा से एक और नयी महामारी मानव-समाज में आ घुसी। वह थी आपाधापी की। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने ही सुख-दुःख और लाभ-हानि का विचार करना अपना कर्त्तव्य समझने लगा। दूसरों या समष्टि के हिताहित पर विचार करना उसके लिए बिलकुल आवश्यक न रह गया। हाँ, इससे सार्वजनिक संघर्ष कुछ समय के लिए शान्त अवश्य हो गये।

फिर वही रफ़्तार

किन्तु मनुष्य की कल्पनाशक्ति सदा के लिए जड़ नहीं बनायी जा सकती, न यही कि यह सदा सार्वजनिक प्रश्नों की उपेक्षा कर सकता है। उसकी कल्पना कुछ समय के लिए शिथिल या निष्क्रिय कर दी जा सकती है, किंतु उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। और कुछ नहीं तो समाज के साथ उसका बँधा हुआ जीवन, समाज की स्थिति के उस पर पड़नेवाले प्रभाव और जीवन की परस्पर-सापेक्षता तो उसके लिए "प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति" का पाठ पूरा करती ही है। इसीलिए कुछ समय मूर्च्छित अवस्था में रहने के बाद वह फिर चैतन्य हुई। उसने फिर इस समस्या पर विचार करना आरम्भ किया। उसने सोचा—क्या वास्तव में यह रोग असाध्य है? क्या सचमुच इसका कोई उपचार है ही नहीं? विचार करते-करते उसने इन प्रश्नों के उत्तरों को और मध्यकालीन निराश-हृदय विद्वानों के फ़ैसलों को तर्क की कसौटी पर रक्खा, और अन्त में इस निर्णय पर पहुँची कि यह रोग असाध्य नहीं है—यह दूर किया जा सकता है। फिर क्या था, इसका नुस्ख़ा

---

† त्वमग्ने रुद्रो असुरो महोदिवस्त्वं स्पर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना। ऋग्वेद २।१।६

‡ ऐतरेय ब्राह्मण, ४।१९।२ खंड।

सोचा गया। वह भी वही प्रजावाद का नये रूप में पुनरुद्धार, एकतंत्रीय सत्ताओं का अन्त। उसी समय कुछ दीर्घसूत्री विद्वानों ने एक नयी बात और सुझायी ; उन्होंने कहा कि प्रजावाद के उद्धार का प्रयत्न कई वार सफलतापूर्वक किया जा चुका है, फिर भी उसके बार-बार असफल होने से यह प्रमाणित होता है कि हमारी चिकित्सा केवल रोग के ऊपरी भाग—डाल-पत्तों पर ही असर करती है, जड़ उसकी फिर भी अक्षुण्ण रह जाती है। अतः अच्छा हो कि पहले रोग की जड़ को ढूँढ़ा जाय। किन्तु यह एक सर्वथा नयी बात थी। मानवीय मस्तिष्क ने अब से पहले कभी ठीक तौर पर इसका अनुभव नहीं किया था। इसके अतिरिक्त लोग तो वर्तमान परिस्थिति से छुटकारा पाने को उतावले हो रहे थे। अतः वे किसी ऐसे चिकित्सा-क्रम के पचड़े में फँसने को तैयार न थे, जो उन्हें तत्काल लाभ पहुँचानेवाला न हो। उन्हें तो तत्कालीन स्थिति दुःसह हो रही थी। फलतः उनकी बात अनसुनी करके उन्होंने अपना कार्य शुरू कर दिया। फ़्रांस की क्रान्ति ने इसका श्रीगणेश किया और फिर क्रमशः योरप-भर में वर्तमान प्रजातंत्र फैल गये।

क्षणिक शान्ति

प्रजाशक्ति के उद्धार के इस प्रवाह ने संसार में फिर एक बार नयी आशा और नवीन जीवन का संचार किया। जिस प्रकार नशे के चढ़ाव में मनुष्य अपनी सब निर्बलताओं को विनष्ट समझने लगता है, ठीक उसी प्रकार तत्कालीन जनसमूह भी समझने लगा कि हमारे कष्टों का अन्त हो गया। जिस स्वर्ग की बातें हम सुना करते थे, वह पृथ्वी पर आ गया और उसकी कुंजी यह प्रजातंत्रवाद ही है। साथ ही लोग यह भी समझने लगे कि अब तक एक दूसरे का राज्य हड़पने के लिए आये दिन जो नाशक यज्ञ रचे जाया करते थे, उनका भी अब अन्त हो गया। क्यों—इसलिए कि अब तो सब जगह प्रजा का राज्य है। और, एक जगह की प्रजा दूसरी जगह की प्रजा को सताने ही क्यों लगी ? यह तो राज्यवाद का ही रोग है।

किन्तु यह शान्ति और सुख की कल्पना अन्त में कल्पना ही निकली। थोड़े दिनों बाद ही लोगों को अनुभव होने लगा कि इतनी बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ उपस्थित होने पर भी तत्त्वतः उनकी स्थिति में बहुत कम अन्तर पड़ा है। वास्तव में सारी दुनिया का चक्कर लगा आने पर भी वे आज प्रायः वहीं खड़े थे, जहाँ से कभी वे चले थे। विशेषतः जब १९१४ का महासमर छिड़ा एवं प्रत्येक प्रजावादी देश की लाखों प्रजा लड़ाई के मैदान में आकर दूसरे देश की प्रजा का ख़ून पानी की तरह बहाने लगी, तब तो लोगों की निराशा का ठिकाना ही न रहा। इसका एक कारण यह भी था कि यह महायुद्ध प्रायः पिछले सब युद्धों से अधिक भयानक एवं स्वार्थपूर्ण था।

प्राचीन युगों में यदा-कदा छोटी-छोटी जातियों में लड़ाइयाँ हो जाया करती थीं। मध्ययुग में छोटे-छोटे राज्य और समूह लड़ा करते थे। महाभारत-जैसे कुछ बड़े युद्ध हुए थे, परन्तु उनमें भी शस्त्रास्त्र एवं युद्ध के नियमादि पुराने ही काम में लाये गये थे। फलतः उनसे वास्तविक हानि बहुत कम हुई और होती थी। युद्ध का प्रत्यक्ष प्रभाव भी केवल लड़नेवालों ही पर पड़ता था। लड़नेवाले भी स्फुट समूह के राजा होते थे। परन्तु इस महायुद्ध में तो राष्ट्र के राष्ट्र शामिल थे, और इसीलिए प्रत्येक देश के स्त्री-बच्चों तक को युद्ध के प्रभावक्षेत्र में आना पड़ा। उस पर नरसंहार के नये से नये और भयानक से भयानक साधन—ज़हरीले गैस, बंब के गोले, भीषण तोपें आदि—काम में लाये जा रहे थे।

अवश्य ही महायुद्ध के प्रारम्भ में युद्धज्वर से ग्रस्त होने के कारण लोग उसकी बुराई-भलाई पर अधिक गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर सके। किन्तु ज्यों ही युद्धज्वर शान्त हुआ और साथ ही उसके भीषण परिणाम दैत्य-काय बनकर उनके सम्मुख आये, त्यों ही लोगों की मूर्च्छा भंग हुई। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक युद्ध और उसके कारणों पर सोचना आरम्भ किया—विशेषतः जब उन्होंने देखा कि युद्ध का फल प्रायः सर्वथा उलटा निकला है। युद्ध के शुरू में कहा गया था। कि "यह युद्ध संसार-भर में प्रजावाद स्थापित करने और राज्यवाद को मिटाने के लिए लड़ा जा रहा है।" इसीलिए लाखों प्रजावादियों ने बड़े उत्साह से उसमें भाग लिया था। किन्तु युद्ध के बाद लोगों ने देखा कि यह प्रजावाद की दुहाई केवल दुहाई ही थी, वह उनसे काम लेने और उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए गढ़ी हुई एक बात थी।

वास्तव में युद्ध का उपयोग संसार-भर में प्रजा की रक्षा स्थापित करने के लिए नहीं, वरन् प्रजा की बेड़ियाँ अधिक मज़बूत करने के लिए किया गया है।

इसी प्रकार जब युद्ध और उसके घातक साधनों के विरुद्ध जनता ने आवाज़ उठायी, तो योरपियन राजनीतिज्ञों ने उस पर ठण्ढा पानी डालने के लिए लीग आफ़ नेशंस एवं निरस्त्रीकरण-परिषद् की रचना कर डाली। भोलीभाली दुनिया इतना ठगी जाने पर भी इन संस्थाओं की ओर फिर आशाभरी दृष्टि से देखने लगी।

इतिहास का पदार्थ-पाठ

किन्तु आज युद्ध के बाद प्रायः २० वर्ष तक इन सब बड़ी-बड़ी संस्थाओं के चलते रहने और बड़ी-बड़ी शान्तिक घोषणाएँ सुनने के बाद भी संसार की जनता क्या देख और भोग रही है? जनता की तो बात ही क्या, संसार के बड़े-बड़े नीतिज्ञ निराशा के समुद्र में गोते लगा रहे हैं।

शान्ति हो भी कहाँ से? शान्ति की बातें तो सिर्फ़ बातें ही हैं। वास्तव में सारे राष्ट्र एक ओर शान्ति एवं निरस्त्रीकरण की दुहाई देते जाते हैं, इनके लिए कानफ़रेंसें और संधियाँ करते जाते हैं; और दूसरी ओर अधिकाधिक युद्धसामग्री तैयार करते जाते हैं। एक ओर जापान चीन को हड़पता जाता है, दूसरी ओर राष्ट्रसंघ ज़बानी विरोध करके चुप बैठा देखता रहता है। एक ओर शान्ति की दुहाई दी जा रही है, दूसरी ओर अमेरिका अपने जहाज़ी बेड़े को बढ़ाने के लिए ७९ करोड़ डालर ख़र्च कर रहा है। और, इस सारे ख़र्च का बोझा भिन्न-भिन्न टैक्सों के रूप में जनता पर पड़ रहा है। यही नहीं, सभ्यता की ठेकेदार ये सरकारें ऐसे-ऐसे भीषण शस्त्रों का आविष्कार कर रही हैं, जिनकी कल्पनामात्र से रोमांच होता है। कुछ योरपीय विद्वानों के ही शब्दों से उनकी भीषणता का अन्दाज़ा लगाइए।

"हम एक प्रकार के मूर्खों के स्वर्ग में रह रहे हैं। 'तैयार रहो' की दुहाई की आड़ में सब जगह सैनिकतावादी फिर एक युद्ध की प्रलयाग्नि धधका रहे हैं।" (मि० फ्रेड वी० स्मिथ)

"वायुयान, ज़हरीले गैस और पारस्परिक घृणा मिलकर सभ्यता का अन्त निकट ला रही है। अमेरिका युद्ध के लिए इतना विशाल आयोजन कर रहा है कि उसकी तुलना संसार-भर के इतिहास में नहीं मिल सकती। यदि हमने अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिए कुछ न किया, तो हमारी सभ्यता नष्ट हो जायगी।" (मि० फ्रेडरिक जे० लिब्बी)

"अगला युद्ध केवल कुछ ही दिन चलेगा। वायुयानों और गैस के आक्रमणों द्वारा, जिनकी योजना हेडक्वार्टर के स्टाफ़ ने तैयार की है, लन्दन और पैरिस एक ही रात में धूल में मिल जायँगे।" (डब्ल्यू० एल० वार्डन)

"मुझे भय है कि यदि कोई आकस्मिक बाधा न हो, तो संसार फिर एक बार प्रलय का दृश्य देखेगा। यह पिछले महायुद्ध-जैसा होगा। यदि कोई ख़ास बात पैदा न हो या कोई विशेष कार्रवाई न की जाय, तो अगला युद्ध सभ्यता को नष्ट कर देगा।"

कहिए, निरस्त्रीकरण की भावना का कितना सच्चा प्रमाण है? (मि० लायड जार्ज)

दूसरा पहलू

पिछले महासमर के दो ध्येय बताये गये थे—"युद्धों का सदा के लिए अन्त कर देना और संसार को प्रजावाद के लिए सुरक्षित कर देना।" इनमें से एक का चित्र ऊपर की पंक्तियों में अंकित है। दूसरे का चित्र भी देख लीजिए। मि० जे० एफ़० रदरफ़ोर्ड (अमेरिका के एक भूतपूर्व जज) कहते हैं—

"युद्ध ने संसार को प्रजावाद के लिए तो सुरक्षित नहीं किया। हाँ, आज कई देशों में 'डिक्टेटरशिप' के नाम से स्वेच्छाचारी सत्ता क़ायम हो गयी है। इनमें जनता को बोलने का कुछ भी अधिकार नहीं है। इनमें कई सरकारें तो बहुत ही क्रूर और पाशविक हैं। उनका शासन दमन का प्रतिरूप है। इनमें से कुछ ने अपना राजकीय धर्म भी स्थापित किया है, जिसे सबको मानना पड़ता है। यदि कोई आदमी धर्म के मूल सिद्धान्त—विश्वबन्धुत्व का प्रचार करता है, तो वह फ़ौरन् गिरफ़्तार कर लिया जाता है एवं जेल में डाल दिया जाता है। जेल में भी वह पीटा जाता है, उसे गालियाँ दी जाती हैं और वह अपमानित किया जाता है। उसका मुक़दमा उसके स्वदेशी जूरियों द्वारा नहीं, सैनिक अदालत द्वारा निपटाया जाता है। उसे इसलिए

नहीं दी जाती कि उसने किसी मनुष्य या प्राणी को कोई हानि पहुँचायी, बल्कि इसलिए सज़ा दी जाती है कि उसने अपने पीड़ित बन्धुओं में कुछ ज्ञान का प्रकाश फैलाने की चेष्टा की जिससे उन्हें कुछ सहायता मिलती........।"

और, यह डिक्टेटरी क्या कहकर क़ायम की जाती है ? जर्मनी का उदाहरण सबसे अच्छा है। जर्मनी से फ्रांस सदा आतंकित रहता है। इसीलिए युद्ध के बाद फ्रांस आदि विजयी मित्रों ने जर्मनी को शर्तों और युद्धऋण के बोझ से इस प्रकार जकड़ दिया, जिससे वह पीढ़ियों तक न सम्हल सके। स्वभावतः इस बोझ और क़र्ज़ के कारण जर्मनों को रोटी मिलनी मुश्किल हो गयी और वे किसी भी ऐसे आदमी का साथ देने को तैयार हो गये, जो उन्हें इस आधे पेट रहने की स्थिति से मुक्त कर दे। राज्यवादी ऐसे अवसर की ताक में रहते ही हैं। अतः उन्होंने और उनके नेता हिटलर ने ऐसे ही कार्य-क्रम सामने रखकर जनता को एकदम अपने साथ कर लिया। सारांश यह कि हर जगह जनता की बुरी अवस्था और भावना का लाभ उठाकर डिक्टेटर-शिप क़ायम की गयी है। किन्तु प्रचार यह किया जाता है कि "चूँकि प्रजावाद शान्ति स्थापित करने और जनता को सुखी करने में असफल साबित हुआ है, अतः अब उसका उद्धार डिक्टेटरशिप से ही हो सकता है।"

इसमें सन्देह नहीं कि हज़ारों वर्षों से अन्धकार में रक्खी जाने के कारण आज प्रायः संसार-भर की जनता की मनोवृत्ति बच्चों की-सी बन गयी है। वह किसी बात की तह तक जाने की आदी नहीं है। जब उसके कष्ट चरम सीमा को पहुँच जाते हैं तभी वह कुछ करने को तैयार हो जाती है, और जो उसे कष्टों से छुड़ाने का विश्वास दिलाता है उसी के पीछे आँख मींचकर चल पड़ती है। किन्तु थोड़ी भी बुद्धि और विचारशक्ति रखनेवाला व्यक्ति आसानी से सोच सकता है कि यदि प्रजावाद असफल हुआ है, तो स्वेच्छाचारी तंत्र उसका इलाज नहीं हो सकता; क्योंकि स्वेच्छाचारी तंत्र कोई नयी वस्तु नहीं है। वह हज़ारों बार हर देश में आज़-माया जा चुका है, और निकृष्ट साबित हुआ है।

फिर ये डिक्टेटरशिप वाले देश क्या कर रहे हैं ? इटली का मुसोलिनी महान् साम्राज्य स्थापित करने का लालच दिखाकर इटलीवालों को युद्ध के लिए तैयार कर रहा है। इसी प्रकार हिटलर जर्मनी को और कमाल-पाशा टर्की को नये साँचे में ढाल रहे हैं। ग़रीबी का इन सब देशों में भी वैसा ही नंगा नाच होता है, जैसा अन्य देशों में हो रहा है। असन्तोष की भी वही हालत है। नित्य ही हम किसी न किसी डिक्टेटर की जान लेने की चेष्टा के समाचारपत्रों में पढ़ते हैं। मतलब यह कि ये डिक्टेटर भी शान्ति और सुख का साम्राज्य लाने की नहीं, उसी नरनाश की तैयारी कर रहे हैं जिसके कारण प्रजावाद को असफल घोषित किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में यदि वर्तमान प्रजावाद सर्प है तो डिक्टेटरशिप गोहरे से कम नहीं हो सकती।

सुसंगत प्रश्न

वास्तव में सीधा और सुसंगत प्रश्न, जो विचारणीय है, यह है कि आख़िर प्रजावाद असफल क्यों हो रहा है ? यही क्यों, इससे भी पहले जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना ज़रूरी है, वह यह है कि क्या हम वास्तव में प्रजा-वाद की स्थापना करके उसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता की परीक्षा कर चुके हैं ? क्या आजकल 'प्रजातंत्र' और 'रिपब्लिक' के नाम से प्रसिद्ध सरकारें सचमुच प्रजा-कीय सरकारें हैं ?

जनसत्ता या डेमोक्रेसी (Democracy)-शब्द की जो आजकल गोलमटोल व्याख्या की जाती है, उसके अनुसार भी उसका अर्थ है—'प्रजा का शासन प्रजा के लिए।' और, यह तो सर्वमान्य बात है कि प्रत्येक देश का बहुमत ग़रीबों का समूह है। किसान, मज़दूर, मध्यमवर्ग के लोग—इन्हीं की संख्या प्रत्येक देश में अधिक होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस शासन में यह ग़रीब वर्ग—यदि सर्वेसर्वा नहीं तो—प्रमुख हो, वही शासन प्रजातंत्रात्मक है।

अब आज के प्रजातंत्रीय कहे जानेवाले देशों को लीजिए। इनमें अमेरिका सबसे उन्नत माना जाता है, अनेक अंशों में वह है भी; अतः हम इस नमूने की कसौटी पर सबसे पहले उसी के प्रजावाद को रखते हैं। उसके सम्बन्ध में ऊपर उल्लिखित मि० रदरफ़ोर्ड अपनी 'गवर्नमेण्ट' नामक पुस्तक में कहते हैं—

"कहा जाता है कि अमेरिका की सरकार संसार की

ादर्श सरकारों के निकटतम है। किन्तु अमेरिका की स्तविक स्थिति को जाननेवाला कोई भी आदमी यह ही स्वीकार करेगा कि अमेरिकन शासन-व्यवस्था न्तोष-जनक है। यह सत्य है कि उसके जन्मदाताओं घोषणा की थी कि जीवन, स्वाधीनता और सुख-प्ति के प्रयत्नों में सबको समान अधिकार होंगे; न्तु यह आदर्श व्यवहार में कभी नहीं आया। यह ठीक है कि अमेरिकन प्रजातंत्र के जन्मदाताओं ने षणा की थी कि इस सरकार के सारे न्याय्य अधिकार नता की रज़ामन्दी से उसी से प्राप्त किये जाते हैं; न्तु आज जनता से न तो अधिकारों की स्वीकृति ली ती है, न वे उससे प्राप्त किये जाते हैं। कुछ दिनों ले इन घोषणाओं को व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा भी गयी थी, किन्तु वह सफल नहीं हुई...... अमेरिका अधिकारी यह पवित्र शपथ लेते हैं कि वे जनता के रों की रक्षा करेंगे; किन्तु यह शपथ उन्हीं के द्वारा -पद पर तोड़ी जाती है।

"अमेरिका में प्रजातंत्र की तीन मुख्य शाखाएँ हैं—वस्थापिका सभा, न्याय-विभाग और शासन-विभाग। न तीनों में खूब धाँधली और रिश्वतख़ोरी चलती है। समें सन्देह नहीं कि इनमें कुछ सच्चे और ईमानदार ादमी भी हैं। परन्तु उनकी आवाज़ का कोई मूल्य हीं होता।

"प्रेसिडेण्ट की कैबिनेट का एक उच्चाधिकारी कुछ राब लाते हुए पकड़े जानेवाले लोगों के विरुद्ध मद्य-निषेध क़ानून का बड़े ज़ोरों से प्रयोग करता है। सरी ओर यही अधिकारी ग़ैरक़ानूनी तौर पर मद्य के व्यवसाय में सहायता पहुँचाकर अनन्त धन-सञ्चय रता है.........जो ग़रीब मद्य का व्यवसाय चोरी से रते पकड़े जाते हैं उन्हें तो सज़ा दी जाती है, किन वही काम करनेवाले प्रभावशाली लोग स्वतंत्र रते हैं।" (पृ० १५)

इसी प्रेसिडेण्ट की कैबिनेट के एक सदस्य ने रिश्वत कर एक प्रसिद्ध धनवान् को बचा दिया। इस संबंध वहाँ के एक प्रसिद्ध लेखक आर्थर ब्रिसबेन ने फ़रवरी, १९२८ को समाचार-पत्रों में लिखा था—

"एक धनाढ्य आदमी को कैबिनेट के एक सदस्य को रिश्वत देने और एक जूरी को कर्तव्यच्युत करने के लिए छः महीने की सज़ा हुई है। लोग आमतौर पर इस ख़बर को पढ़कर कहते हैं कि 'यह बेहूदा ख़बर है। वे (अधिकारी) उसे कभी जेल नहीं भेजेंगे।' दूसरे दिन वास्तव में वे ही अख़बार प्रकाशित करते हैं कि उक्त धनाढ्य महाशय योरप की सैर को जाने की योजना बना रहे हैं। उनके वकीलों ने उन्हें विश्वास दिला दिया है कि उन्हें एक वर्ष तक जेल जाने की कोई चिन्ता न करनी चाहिए। (गवर्नमेंट, पृ० १९)

कारणों की सूची

और, यह सब गोलमाल होने के कारण क्या हैं? इस प्रश्न का उत्तर उपर्युक्त पुस्तक के ही नीचे लिखे उद्धरण से मिल जाता है—

"अमेरिका का पेटेण्ट आफ़िस जनता के लिए खुला है। उसके काग़ज़पत्र कोई भी नागरिक देख सकता है। उन काग़ज़ात से पता चलता है कि एक ऐसी मशीन का आविष्कार हो चुका है—और वह पेटेण्ट भी करा ली गयी है—जिसके द्वारा बहुत ही सस्ती दर पर समुद्र की लहरों से जितनी चाहें उतनी बिजली की रोशनी और गरमी पैदा की जा सकती है। यदि इस मशीन का उपयोग किया जाता, तो लोगों को बहुत सस्ती रोशनी व ईंधन मिलने की सुविधा हो जाती; जो लाखों आदमी अपने स्वास्थ्य और जीवन को जोखिम में डालकर आज कोयलों की खानों आदि में ज़मीन के नीचे काम करने को बाध्य हैं, वे उस दुःस्थिति से छुटकारा पा जाते। साथ ही किसानों को अपनी पैदावार बढ़ाने में सुविधा हो जाती और इस प्रकार लाखों बेकारों को काम मिलता। किन्तु इस आविष्कार को जहाँ का तहाँ दबा दिया गया। क्यों—इसलिए कि जिन बड़े-बड़े पूँजीपतियों की मुट्ठी में सरकार है, उन्हें हानि पहुँचती थी। उन्होंने जो बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ बनाकर तेल व कोयले की खानों आदि के ठेके ले रक्खे हैं और जो उनसे मनमाना महँगा सामान निकालकर जनता के गले मढ़ते हैं, उस सारे मुनाफ़े पर तुषार पड़ जाता।"

"इसी प्रकार एक ऐसा आविष्कार हुआ है, जिसके द्वारा इंजिन बहुत कम ख़र्च में चलाये जा सकते हैं; किन्तु इसका भी कुछ उपयोग नहीं होने दिया गया।"

"एक और आविष्कार हुआ था। इसके अनुसार एक ही तार पर, वर्तमान दर से कई गुना सस्ती दर पर,

एक ही समय में फ़ी मिनट एक हज़ार शब्द के हिसाब से उलटे और सीधे--दोनों ओर तार भेजे जा सकते हैं। इस आविष्कार की परीक्षा करने के लिए प्रायः १०० मील लम्बी तार की लाइन बनायी गयी थी, और इस परीक्षा का फल बहुत संतोषजनक निकला था। जनता को भी इससे अमित लाभ था। किन्तु, चूँकि वर्तमान तार और बिजली के कारख़ानों की मालिक कम्पनियों की लूट में उससे बाधा पड़ने की सम्भावना थी, अतः इन सब आविष्कारों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया।' (पृष्ठ १७, १८, १९)

जनता के प्रतिनिधि

अब इस प्रजातंत्र के प्रतिनिधि किस तरह चुने जाते हैं, वह भी देख लीजिए। मि० रदरफ़ोर्ड ने अमेरिका की सीनेट के ही एक ख़ास सदस्य की राय इस संबंध में उद्धृत की है। वह कहता है--

"यहाँ की सरकार ठग पूँजीपतियों, सट्टेबाज़ों और कौंसिलबाज़ों के हाथ में है। जनता के व्यक्तिगत अधिकार कुचले जाते हैं। शरारत से भरी हुई गुप्तचरों की प्रथा जारी है। ये लोग क़ानून के विरुद्ध किसी भी प्रकार प्रत्येक घर और व्यावसायिक स्थान में पहुँच जाते हैं। शासन-शक्ति थोड़े-से स्वार्थी धनपतियों के हाथ में है, और वे उसका उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। उसी का उपयोग कर ये छोटे-छोटे लोगों की रोज़ी छीन हरएक धन्धे की अपनी ठेकेबन्दी कर लेते हैं। १९२१ में अमेरिका का प्रेसिडेंट कुछ ऐसे ही लोगों द्वारा चुना गया था। इनमें से एक के साथ--जिसने जन-साधारण की संपत्ति लूटने का षड्यंत्र रचा था--गुट्ट बनाया एवं एंड्रिउ जे० मैलन को, जो अमेरिका का सबसे बड़ा धनपति है, ख़ज़ाने का अफ़सर तथा फ़ेडरल रिज़र्व बोर्ड का चेयरमैन बना दिया। दिल्लगी यह कि क़ानून के अनुसार कोई ऐसा व्यक्ति ख़ज़ाने का इञ्चार्ज नहीं हो सकता जो कोई दूसरा धन्धा करता हो और यह महाशय कम से कम ६८ बड़े-बड़े बैंकों व कारख़ानों के डाइरेक्टर थे। यही मि० मैलन थे, जिन्होंने मत-दाताओं को रिश्वत देकर अपने आदमी चुनाव में लाने के लिए दो लाख डालर इकट्ठे करने की योजना बनायी थी। इसी ज़माने में अलबर्ट बी० फ़ाल सरकार के अंतरङ्ग विभाग के प्रमुख थे। इन्होंने भी ख़ूब लाभ उठाया। अर्थात् प्रेसिडेंट ने क़ानून के विरुद्ध एक काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसके अनुसार तेल का सारा व्यवसाय जनता के हाथ से निकलकर अकेले मि० फ़ाल के हाथ में चला गया। इसी तरह फ़ाल ने रिश्वत खाकर तेल की बड़ी-बड़ी खानें बड़े व्यापारियों को दे दीं।"

पाठक अमेरिका ही के संबंध के अधिकतर उद्धरण देखकर यह न समझ लें कि हम अमेरिका की शासन-व्यवस्था के विरुद्ध हैं अथवा वैसा प्रचार करना चाहते हैं। चूँकि अमेरिका प्रजातंत्र अथवा अन्य इस श्रेणी के प्रजातंत्रों में सबसे अच्छा समझा जाता है, अतः हमने उसी की त्रुटियों को उदाहरण के लिए चुना है। अब जब सर्वश्रेष्ठ प्रजातंत्र की यह हालत है, तो अन्य देशों के प्रजातंत्र की क्या दशा होगी--इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। अब पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि वास्तव में अभी तक कहीं सच्ची "जनसत्ता" की स्थापना कर उसकी परीक्षा ही नहीं की गयी है। जिन राष्ट्रों ने स्वेच्छाचारी सत्ता का अन्त किया है, उन्होंने भी प्रजातंत्र के नाम पर केवल एक स्वेच्छाचारी व्यक्ति के स्थान पर एक स्वेच्छाचारी समूह या दल के हाथ में शासन दे दिया है। फलतः केवल शासन के बाह्य रूप और नाम में अन्तर पड़ा है, वास्तविक स्थिति तो ज्यों की त्यों है। यही कारण है कि न युद्ध रुकते हैं, न प्रजा के कष्टों में कमी हो रही है।

अतः वर्तमान समस्याओं को सुलझाने का पथ वास्तविक जनसत्ता की स्थापना है, न कि डिक्टेटरशिप। और, यह वास्तविक जनसत्ता तभी हो सकती है जब हमारा वर्तमान सामाजिक ढाँचा ही बदल जाय। कारण, रोग का मूल तो हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ही में है। यदि उसे न बदला जाय तो हमारे भावी प्रयत्नों का उसी प्रकार व्यर्थ जाना निश्चित है, जिस प्रकार अब तक हुए सुधारकों एवं महापुरुषों के प्रयत्न व्यर्थ गये हैं। रहा यह प्रश्न कि यह परिवर्तन कैसा हो और किस प्रकार किया जाय, यह इस लेख के विषय के बाहर की बात है।

विजयसिंह पथिक
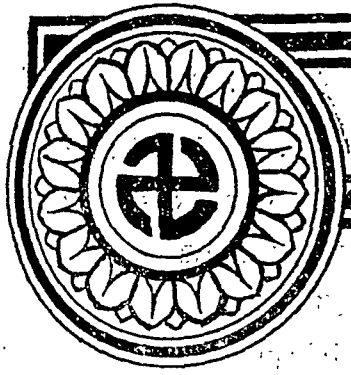
(क) 'तिल-शतक' का रचयिता कौन था ?

संवत् १९४० में पंडित नकछेदी तिवारी उपनाम 'अजान' कवि ने "अलक-शतक" और "तिल-शतक" काशी की 'कवि-वचन-सुधा' द्वारा प्रकाशित किये थे और लिखा था कि इन शतकों के रचयिता बिलग्रामी सैयद मुबारकअली उपनाम 'मुबारक' संवत् १६४० में अरबी, फारसी, संस्कृत और भाषा के बड़े पंडित हो गये हैं। कवियों के कथन से जाना जाता है कि इन्होंने दस अंगों पर दश शतक रचे थे, जिनमें से आठ शतकों का समय के हेर-फेर से पता नहीं है। "अलक-शतक" और "तिल-शतक" को सन् १८९१ ई० में भारत-जीवन-यंत्रालय से पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया था। "मिश्र-बंधु-विनोद" में भी नंबर १८९ पर ऐसा ही वर्णन किया गया है और "तिल-शतक" का कर्ता मुबारक को ही माना है। जब हिन्दी के दो विद्वानों ने "तिल-शतक" का कर्ता मुबारक को बतलाया है, फिर यह प्रश्न क्यों किया जाता है कि तिल-शतक का रचयिता कौन था ?

प्रश्न करने का कारण यह है कि हमारे देखने में एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक आयी है। उसमें तिल-शतक के कर्ता का नाम "जगतनन्द" लिखा है। चतुर्थ [illegible] पीठाधीश्वर गोस्वामी श्री १०८ वल्लभाचार्यजी महाराज के मंदिर श्रीगोकुलचंद्रमा का सरस्वतीभंडार कामा राज्य भरतपुर में है। इस भंडार में एक पुस्तक "कवैया-दोहा-कीर्तन" है। इस पुस्तक में जगतनंद-कृत "तिलसत" भी है। मिलान करने से मालूम हुआ कि यह 'तिलसत' और मुबारक का 'तिल-शतक' बिलकुल एक है। दोहों के क्रम में अंतर है, परंतु दोहे बिलकुल एक ही हैं।

विचार करने से हमारी यह धारणा हुई है कि तिल-शतक का कर्ता मुबारक नहीं, जगतनंद ही हैं। क्योंकि—

(१) अलक-शतक के ८५ दोहों में से कम से कम ३० दोहों में मुबारक का नाम आया है। परंतु तिल-शतक के १०० दोहों में से एक में भी मुबारक का नाम नहीं है। जो मुबारक एक शतक में बार-बार अपना नाम लाता है, वह दूसरे शतक में भी अपना नाम अवश्य लाता। लेकिन उसका नाम एक भी दोहे में नहीं है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि दूसरे शतक (तिल-शतक) का कर्ता मुबारक नहीं है। कम से कम अंत के दोहे में तो अपना नाम अवश्य लाता।

(२) पंडित नकछेदी तिवारी उपनाम 'अजान' कवि ने सन् १८९१ में भारत-जीवन-यंत्रालय में जो 'तिल-शतक" छपवाया था, उसमें ९८ नंबर का दोहा नीचे लिखे अनुसार है—

बाल दयाल बिसाल छवि, तिल कपोल परताप।
जगत करन मनु तिल दई, जगत विषै की छाप॥ (९८)

जो हस्तलिखित पुस्तक हमारे देखने में आयी है, उसमें यह दोहा अंतिम अर्थात् १०० वाँ है और उसका पाठ इस प्रकार है—

बाल दयाल विसाल छव, तिल कपोल परताप।
जगत कहत जनु कर दई, जगत विजय की छाप॥ (१००)

पाठक देखेंगे, मुद्रित पुस्तक में दिये पाठ से दोहे का अर्थ कुछ ठीक नहीं बैठता है। हस्तलिखित प्रति के पाठ से अर्थ भी ठीक बैठ जाता है और अंतिम दोहे में कवि का नाम भी आ गया है।

(३) हस्तलिखित प्रति के आदि में लिखा है—"अथ जगतनंदकृततिलसतलिख्यते", और अंत में भी लिखा है—"इति श्रीजगतकृत तिलसत समाप्तं"

ऊपर लिखे कारणों से हमारी यह धारणा है कि तिल-शतक मुबारक का बनाया नहीं, जगतनंद का ही बनाया हुआ है। आशा है, अन्य हिंदी-साहित्य-प्रेमी इस विषय पर विशेष रूप से प्रकाश डालेंगे।

मयाशंकर याज्ञिक (बी० ए०)

× × ×

(ख) विश्वकाव्य

अरबी

१—इमरुल-क़ैस (छठी शताब्दी)

अह रे पीड़ा क्रूरहृदया ! उसने मेरी हँसी उड़ायी—बालू के टीले पर ऊँचे बैठकर, मुझे छोड़ जाने की शपथ खाकर।

फ़ातिमा ! न, मेरी प्यारी ! यद्यपि तुम मुझे छोड़ ही दोगी, फिर भी अभी तो दया दिखाओ, एकदम ही न छोड़ दो।

तुम्हारी भूल स्पष्ट है। प्रेम ही मेरी व्याधि है। जो भी चाहो, मुझसे माँगो ; मैं तत्क्षण दूँगा।

यदि तुम्हें अपने प्रेमी में कोई भी भूल दिखे, तो ये मेरे दिये हुए वस्त्र उतार फेंकना ; मेरे बेल-बूटे मींज डालना।

अह रे पीड़ा क्रूरहृदया ! आँसुओं ने तुझे इसके अलावा और कब विचलित किया कि मेरी आत्मा और बुरी तरह घायल हो—जो आहत और मृतप्राय है।

२—ज़ुहैर (सातवीं शताब्दी)

हे कवि ! उन सब पद्यों में, जिनका तूने निर्माण किया,
सबसे उचित प्रशंसावाला वही गीत है ;
जिसके लिए कह उठें मानव—ज्यों ही उसको श्रवण किया—
"ठीक, यही तो सचाई से भरा गीत है।"

३—मुतअबी (दसवीं शताब्दी)

अह ! कवियों के काले दल ने मुझ पर अपयश का भंडार है खाली कर दिया ; सड़ गया, सुधर न सकता किसी प्रकार।
कैसे यह अभ्यस्त बनावे अपने को यश-भावों से ?
सड़न-गलन से भरे हुए जल की गंदगी जिन्होंने पी,
ऐसे अधर देखते ही, स्वाभाविक है, चिल्लाये ही—
"भरा हुआ निर्मल निर्झर का हृदय अपेय पदार्थों से॥"

× × ×

लक्ष्य ओर बरजोरी भेजे गये तीर-सा मैं केवल—
आऊँगा बस लौट तुम्हीं तक बिना विलम्ब किये क्षण-भर।
प्यारे मालिक !—जिसे छोड़ मैं रहा ! ; नहीं तो ल[illegible]
गड़ जाऊँगा—लज्जा से, सामने खुदा के जाने
जो सदैव निज हाथ तुम्हारे हाथों में लेता स्थित [illegible]

४—मुतम्मिद (ग्यारहवीं शताब्दी)

उतावले हो प्यार में न तुम फँसो विश्व के,
क्योंकि रेशमी चित्रित वस्त्र सुनहले नीचे ;
है विश्वासघात-चञ्चलता-पूर्ण वस्तु यह !
(मुझको सुनो—मुतम्मिद को, जो वृद्ध हो रहा)
यौवन असि में कभी लगेगी जंग न—देखे स्वप्न।
मरीचिका में जल, बालू में सुगंधकों की आशा।
ऐसे हम समझेंगे धारण कर भस्मों का वस्त्र—
विश्व-पहेली, और तभी संसर्ग बुद्धि से गुप्त॥

५—ख़ंसा

तेरी मृत्यु प्रथम बहुतों के लिए गिराये आँसू ;
तेरी मृत्यु बाद सब तेरे हुए किन्तु ये आँसू।
आश्वासन देने जो आते, उनकी बातें सुनती ;
पल-पल पीड़ा किन्तु हृदय के अधिक समीप पहुँचती।

६—उमर बिन अबी रबिआ

आह, अति घायल हृदय की कसक ! आह, मु[illegible] पागल करनेवाले नेत्र !

सौन्दर्य की शान्ति में वह मन्थर गति से चलती थी, [illegible] प्रभातकालीन मन्द मलयानिल द्वारा आलोड़ित शाखा[illegible] टकटकी बँधी आँखों को उसने चकाचौंध किया, यहाँ तक [illegible] मेरे सामने धुन्ध और मानवरूपों की अस्पष्टता छा गयी। न कभी मैंने ही उसे खोजा था, न कभी उसी ने मु[illegible] ढूँढ़ा था। प्रेम, यह मुहूर्त और मिलन—विधि के [illegible] विधान थे।

मैंने उसे देखा, जब वह और उसकी सखियाँ मंदिर [illegible] बाहरी परिधि के बीच जा रही थीं—सर्वाधिक सुन्दर, सुशी[illegible] सलोनी रमणियाँ गोधूलि में धीमे-धीमे जाती हुई कामधेनु [illegible] भाँति राजकीय शिष्टाचार से उसे घेरे हुए उसे, जो अनुप[illegible] नारीरत्न है जिसे वे आहत करती हैं।

तभी सर्वाधिक किशोर सुन्दरी से उसने धीरे-धीरे कहा—"उमर निकट है। आओ, उसकी भक्ति में बाधा डालें [illegible] उसके मार्ग से निकलें, जिससे वह हमें देख ही [illegible] उसे गंभीर बनकर संकेत करना।"

मैंने संकेत किया, पर उसने न देखा, न ध्यान दिया।

उस सुन्दरी ने उत्तर दिया और मुझसे मिलने के लिए
ति से चल पड़ी।

आह, टीवो की घाटी के पास की वह रात !

आह, वह प्रभात जब चुपचाप दोनों बिछुड़े !

इ—जिसे उषा उसके चुम्बनों के प्रति जागृत करती है—
र्गिक प्रफुल्लवदना के प्याले से पान करता है !

७—अबुलअल अलमा-अरी

इर गाँव में रहते-रहते मैं ऊब गया हूँ। आह !
ल में अकेले तम्बू तना हो ! क्षुधित होने पर तरुगंध
वनप्राप्ति हो, और तृषित होने पर हाथ की अँजुली
र जलपान !

मुझे ये दिन दुर्बल, थकित साँड़िनी-से दिखायी देते हैं,
गे ही आगे यात्रा करती हुई मानवता को पीठ पर लिये
हैं। वे किसी अशुभ स्वप्नविभीषिका से सहमते नहीं,
भयप्रेरित चीत्कार और पलायन में ही साहस खोते हैं,
बोझ के साथ सदैव यात्रा करते रहते हैं, जब तक कि
दे गये मकानों के पास घुटने नहीं टेकते।

कोई आवश्यकता नहीं—जब सुन्दरी मिट्टी से ढकी विश्राम
ही हो—तब कोई आवश्यकता नहीं कि उसकी केशावलि
कर गूँदी जाय। युवक-हृदय उससे बिछुड़ते हैं, और
आँसू की धार बहती है। इसी तरह घृणित सौभाग्य की
बहती है !

८—सहस्र-रजनी-चरित्र

ओ मानव-संतान ! क्षीणकाय मृत्यु-विहङ्गम तुम्हारे कंधे
आ बैठता है; तुम्हारी मदिरा-प्याली देखता है, तुम्हारी
तमा के वक्षःस्थल पर दृष्टि डालता है।

तुम विश्व-जाल में फँस गये हो। और, अनस्तित्व-रूपी
ही उसके पीछे घात लगाये बैठी है।

गगन-चुम्बी आशाओं से परिपूर्ण मनुष्य कहाँ हैं ?
उन्होंने गीधों से स्थान बदल लिया है—
गीध, जो पहले क़ब्र में रहते थे और अब महलों में।

बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०)

× × ×

(ग) नक्षत्रमाल

जिसने सारे जीवन में ठोकरें खायी हों, जिसके
रत्न जबर्दस्ती छीनकर उसकी आँखों के सामने ख़ाक में मिला दिये गये हों, जिसके कोमल-हृदय में आग के शोले बराबर बरसाये गये हों और उसका राख हो जाना पैशाचिक हँसी के साथ देखा गया हो एवं बाद में उपहास किया गया हो, जिसने अपनी जिन्दगी बिना उफ़ किये बेहयाई के साथ बिताने की चेष्टा की हो—चेष्टा ही क्यों, बेहया होकर जिन्दा रहने में जो सफल हुआ हो—क्या तुम समझते हो, अंतस्तल में छिपे उस श्मशान के मौजूद रहते वह तुम्हारी बातों को बुरा मान सकता है ? क्या अपनी सारी जिन्दगी की कमायी हुई बेहयाई को छोड़कर दुःखी हो सकता है ? पर क्या नहीं जानते कि दुःखों के सहने की भी एक सीमा होती है और उस सीमा के पार हो जाने पर वह दुःख ही जहर की वह मात्रा हो जाता है जिसके ऊपर जीवन अवलंबित रहता है। जहर क्या, वह अमृत का काम देता है। मुझे विश्वास है, तुम्हें इसका अनुभव अवश्य होगा। फिर तुम कैसे समझते हो कि कोई भी मुझे दुःखी कर सकेगा ? देखो, बेहयाई का शुद्ध स्वरूप मैं हूँ। जो कुछ कहो, निःशंक और निडर होकर कहो; और यदि कभी विश्वासघाती का भी विश्वास किया जाता हो तो विश्वास करना, मुझे दुःख न होगा और न मैं उससे डरूँगा ही। डरना तो बहुत पहले ही छोड़ चुका हूँ। छोड़ा क्या, न-जाने कैसे छूट गया वह स्वयं ही।

मैंने देखा है, समझा है और अनुभव किया है, प्रकृति के रहस्य को। उसके नियम एक ही अपरिवर्तित, अटल, निष्ठुर और अमानुषिक शक्ति के ऊपर स्थित हैं तथा उसी के द्वारा संचालित होते हैं। यद्यपि मुझे दुःखी न होना चाहिए, तथापि दुःख से बचने का कोई उपाय भी नहीं है। यह है उसके अटल नियमों की निष्ठुरता। उसका रहस्य समझना और उसके सामने प्रसन्नतापूर्वक मस्तक झुका देना मेरी साधना है।

पुष्प देखता हूँ—देखता हूँ उसकी कलियों का प्रस्फुरण, और देखता हूँ उसका मस्ती के साथ झूमना जब अपनी सुगंध के गर्व में वह सारे संसार की शक्तियों को चुनौती देता है। फिर देखता हूँ, किसी मुग्धवाला द्वारा तोड़ा जाकर प्रियतम के गले का

हार बनना, और दो जीवों की कल्पना को कोमल स्वरूप में परिवर्तित हो जाना। परन्तु उनका धराशायी होकर मिट्टी में मिलना भी इन्हीं आँखों से देखा है, और देखकर समझा है प्रकृति के नियमों के रहस्य को!

क्या कहूँ—स्पन्दहीन, शान्त, कोमल स्निग्ध किन्तु पवित्र अन्तर्हित नन्दनकानन में बिठाकर जिसकी पूजा की, उसी ने अपने हाथों से सारी वाटिका ध्वस्त करके उजाड़ दी है। यह है उसके नियमों की निष्ठरता और, यह है उसका रहस्य। मैंने क्या किया? मैंने अपनी आँखों की प्याली उँडेल दी है, और बाद में हँस दी है एक उन्मादपूर्ण हँसी। यह है मेरा जीवन। यदि ऐसा ही एक अनुभव और करता रहूँ, तो कोई हर्ज नहीं। अब तुम देखो—जिसके सामने मैंने अपने टूटे, नष्ट-भ्रष्ट, सुनसान हृदय के किसी अन्यतम कपाट में छिपे हुए रहस्य को खोलकर रख दिया हो, जिसके सामने जीवन की उलझी हुई अनेक ग्रंथियों का भण्डार रख दिया हो, जिसके सामने अपने जीवन के नग्न स्वरूप को देखने और समझने के लिए जो निकट आ गया हो और इतनी समीपता प्राप्त कर ली हो कि दूर रहने का अनुभव ही न होता हो, और जिसने शायद आँख उठाकर अन्तस्तल के तूफ़ान को भी देखा हो—वह कहे, वही जो तुमने कहा। देखा तुमने, यह है उसके नियम की निष्ठुरता की पराकाष्ठा, यह है विधि-विडंबना का ज्वलन्त उदाहरण और है मेरे अनुभव और साधना की पुष्टि का मार्ग। मुझे क्या, मैंने तो वेहयाई को अपनी चिरसंगिनी और इष्टदेवी ही बना लिया है।

मैं सफ़ाई नहीं देना चाहता। सफ़ाई देना अपना अपमान करना है। सफ़ाई तो उसे दी जाती है, जिससे कोई बात छिपी हो। तुम्हें सफ़ाई देना अपने और तुममें अविश्वास करना है। यदि यही तुमने समझा है तो तुम्हारा या हमारा इसमें कोई दोष नहीं। यह तो उसकी लीला का एक ढंग है। मैंने तो पैशाचिक हँसी हँसी है और हँसते भी देखा है। मैंने उन्मादों का उत्कट परिहास भी देखा है, और यह भी देखा है कि ज्वालामुखी के भयंकर विस्फोट की हँसी कैसी होती है!

जगदंबा के क्रूर नियमों के सामने मस्तक झुकाकर साधना करता हूँ उन्हें देखते रहने और वेहयाई के साथ उन्हें समझते रहने की। फिर शान्ति मिले या न मिले, इसकी चिंता नहीं। —"उद्भ्रान्त"

× × ×

(घ) पंचपात्र

१—मनःताप

है अद्भुत एक पहेली, जगती में मेरा जीवन;
नित रही निगोड़ी उलझी उत्थान-पतन की उलझन।
जाज्वल्यमान जलती है उर-अन्तर-निधि में पीड़ा;
जी-ज्वार तरङ्गें करतीं विध्वंसमयी भय-क्रीड़ा।
आतप, अभिनय, आक्रन्दन, आहों में ताण्डव-नर्तन;
अभिशाप, अवज्ञा, अवगति, यह असह वेदना क्षण-क्षण।
सुध आते हृदय प्रकम्पित होता है मेरा विह्वल;
सन्तापशूल विष करता इस विरह-निशा में अविकल।
सङ्केतमात्र से मेरे, सुख-शांति-सुधा की धारा—
बहती थी कभी निरन्तर, कर पावन कूल किनारा।
सम्मान सम्पदा वैभव श्री शोभा छटा निराली;
किञ्जल्क सुरभि मतवाली थी छलक रही मधु-प्याली।
जीवन की ज्योति जगी थी, वह कैसी सुखद घड़ी थी!
सब साधन सुलभ सुदिन थे, बहुमाया पास पड़ी थी।

अब धैर्य धरूँ मैं कैसे, जीवन है करुण-कहानी ;
हिय-मेघ सदा बरसाता आँसू का खारा पानी।

दयालगिरि गोस्वामी

× × ×

२—पगली का प्रलाप

क्या पूछ रहे ? वे बीत चुके दिन, अब उनमें कुछ सार नहीं ;
वसुधा में वह लावण्य नहीं, वह सार नहीं—शृङ्गार नहीं।
अब उस स्वर्गीय सुधा-सरिता की शेष एक भी धार नहीं ;
इस ओर नहीं, उस ओर नहीं, इस पार नहीं, उस पार नहीं ॥ १ ॥
उठती है भीषण व्यथा, चेतना अन्धकार में झूल रही ;
मेरी आँखें जीवन-पथ को इस महाप्रलय में भूल रहीं।
जलती हूँ करके याद आह ! स्मृति भी मेरे प्रतिकूल रही ;
मेरा सुहाग जब भस्म......शेष कुछ राख रही, कुछ धूल रही ॥ २ ॥
नीरव निशीथ, नीरव रजनी, उफ़ ! विष-सी है, अति काली है ;
तरुओं के ऊपर नाच रहीं, देखो न सहस्रों व्याली हैं।
सागर की उच्च-लहर में बहती देखो, मेरी आली, है ;
क्या करूँ, बचाये कौन, निशा में कहाँ छिपा वनमाली है ॥ ३ ॥
मुझ पर हँसती क्यों री जगती ! हँसकर, कह, क्या तू पाती है ?
दृगजल प्रतिपल हैं बरस रहे, क्यों नाहक आग लगाती है।
क्या होगा, मेरे रोने की तालों पर यदि तू गाती है ;
जो फटी न मर्माघातों से मेरी कठोर वह छाती है ॥ ४ ॥
रे, कौन मारता वज्र ! मुझे लगते जब फूल-प्रहारों से ;
सैकड़ों शत्रु हैं निकल रहे बन-बनकर मेरे प्यारों से।
आहें जो टुक हैं निकल रहीं, कुछ कम हैं क्या अङ्गारों से ?
पावक बनकर वे बरसेंगी इस शशि से या इन तारों से ॥ ५ ॥

कमलाप्रसाद 'कमल'

× × ×

३—निरुपाय

कैसे बन जाऊँ मैं अगाध,
है मार्ग नहीं मेरा अबाध !

(१)

तुम शान्त-महासागर अपार,
मैं दूर पड़ा हूँ लघु फुहार ;
मिलने की तुमसे अमिट चाह,
मुझमें न किन्तु स्पन्दन, प्रवाह ;
पूरा होवे किस तरह साध,
कैसे बन जाऊँ मैं अगाध !

(२)

रज में मिलता हूँ बीच-बाट,
ऊपर से किरणें रहीं चाट ;
उस पर उठता मारुत-झकोर,
कर विवश उड़ाता व्योम-ओर ;
अब जीवन है पल एक-आध,
कैसे बन जाऊँ मैं अगाध !

(३)

था कभी अमृत की लहर लोल,
अब मृत्यु-अंक में रहा डोल ;

निज सर्वनाश से करूँ तोल,
इस जग-जीवन का यही मोल ;
है चला धैर्य का टूट बाँध,
कैसे बन जाऊँ मैं अगाध !

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

× × ×

४—तुम्हारा चित्र

(१)

रखकर सामने तुम्हारा चित्र बार-बार,
होकर विचार-लीन मुग्ध मैं निहारती ;
उर से लगाती हूँ बिठाती पलकों में तथा
विरह-व्यथा यों किसी अंश में निवारती।
धोने के लिए 'पुनीत' वारती हूँ प्रेम-वारि,
अञ्चल से चञ्चल-सी चित्र को बुहारती ;
भाव-फूल-माला चाव-चन्दन चढ़ाती सदा,
हृदय जलाके मंजु आरती उतारती ।

(२)

ऐसा भास होता, कुछ बोला चाहता है चित्र,
किन्तु यह बस हँसके ही रह जाता है ;
मानों मेरी बेबसी विमूढ़ता विलोक कर,
मंद-मंद यह लुक-छिप मुसकाता है ।
देखो हा! तुम्हारे बिना चित्रभी तुम्हारा नाथ,
मेरा उपहास आज करता दिखाता है ;
तुम पर कितना ममत्व-सुख-प्यार मेरा,
इसको 'पुनीत' तव चित्र बतलाता है।

(३)

चित्र तो तुम्हारा एक-रस रहता है सदा,
तुम-सा न यह रंग अपना बदलता;
किंतु यह विकल मलीन बन जाता, जब
देखता है अश्रु मेरे दृग से निकलता ।
दक्ष कृतिकार की तुम्हारी इस आकृति से,
कैसी है झलकती सुचालता-सरलता ;
तुमसे तुम्हारा यह चित्र ही है नेक मुझे,
जब कि तुम्हारा दरशन भी न मिलता।

(४)

मुझको 'पुनीत' लगता है अति प्यारा कल,
क्योंकि यह चित्र महामोहन तुम्हारा है ;
स्मरण तुम्हारा है दिलाता रहता सदैव,
खोल देता स्मृतियों का सामने पिटारा है।
मेरे औ' तुम्हारे बीच चित्र यह मित्र बना,
मेरे प्रेम का तथैव पोषक सहारा है ;
कितना भरोसा-प्यार होगा भला तुम पर,
चित्र ही तुम्हारा जब ऐसा मुझे प्यारा है।

राजाराम श्रीवास्तव 'पुनीत'

× × ×

५—"क्या रहस्य है छिपा हुआ"

दन्त, बता तेरे प्रकाश में क्या रहस्य है छिपा हुआ
बतला दे तेरे धवल-धाम में कौन हास्य है छिपा हुआ
युवती जिसके किल झलकमात्र से अपनेआप भूल जाती
व्याकुल हो तृषी मृगी-सी सारी सुधबुध अपनी खो जाती
बतला दे उस विद्युत प्रकाश में कौन आश है छिपी हुई-
पाने को जिसे धीर बाला भी अति अधीर है हो जाती

* * *

नेत्र बता तेरे विचित्र नभ में रहस्य क्या छिपा हुआ
पलकें जिनको ढक रखतीं हैं उनमें रहस्य क्या छिपा हुआ
दुःख विपद् पड़ने पर जिनसे अश्रुधार यों बह जाती
मानों प्रशांत सागर का जल यों खींच उसी में मिल जाती
बतला उस अल्पव्योम की वह जलराशि कहाँ है छिपी हुई
पाने जिसको व्यथिता आत्माक्षण-क्षणअधीरहोतीजाती
अथवा बतला उस व्योमकेश में क्या रहस्य है छिपा हुआ
उस नभप्रदेश-अंतर्गत काला कौन शस्य है छिपा हुआ
अथवा वह मेरे इष्टश्रेष्ठ श्रीसूर्यदेव की थाली है
ग्रस कर जिसको अब दुष्ट राहु ने ठीक बना दी काली है
बतलाउसअद्भुत नभ का कुछ, हा, मैं अधीर होता जाता
सुरसा-वारिद लगते ही जिसमें मनमयूर अकुला जाता

कुशेश्वर राय 'कमल'

× × ×

(ङ) माधुरी के आवरणचित्र पर—

गोरी भोरी भामिनी भवन परयङ्क परी,
निपट अकेली हेली मेली कोऊ ना रही ;
ताही समय औचक दिखायो कर काहू आय,
उत रही माधुरी जयमाल इत ह्वै रही।
'चतुर्भुज' दीठि कर लागत अवाक भई,
इकटक जोहत पै सुधि-बुधि ना रही ;
सेज गयी समिट अमिट नेक आप गयी,
दीठि कर लागी पर दीठि कर ना गही।

(साहित्याचार्य) चतुर्भुजदास चतुर्वेदी
(एम्० आर० ए० एस०)

१—इटली में अक्टूबर

(१)

हलके, सर्वाच्छादित कुहरे की सुनहली चादर में ढककर पहाड़ियाँ जैसे स्वप्न देख रही हों। दिवस-भर किरण-चुम्बित ऊँचे साइप्रस अपनी छाया नीचे लटके हुए बादलों पर डालते हैं—बादलों पर जो किसी उन्नत पर्वत की विनत भ्रू से जल-भार ले प्रतीक्षा करते हैं। यहाँ कितने ही -मंत्र जपते हैं।

ऐसे ऐश्वर्यशाली देश को धन्यवाद !

खेतों के चारों ओर जौ की बालियाँ सीमा बाँधती और चिर-परिचित अंगूर की बेलें अपने उपहार से ... हैं; धुँधले आकाश की ओर चाँदी के जैतून अपनी डालियाँ उठाये हैं। किसान अपना हल चलाता और उसके परिश्रम के फल-स्वरूप उसकी खेती ... का आघात झेलती है।

(२)

झील के उस पार साँझ हो गयी। बन्दर के घाट के ... ओर प्रकाश विम्बित हो रहा है; पश्चिम आकाश ... बादलों में ऊँचे अपना निभृत दीप जलाया है—वह ...तारा। झिल्लियों का झंकार-गीत बन्द हो गया; ... गहरी साँस भरती है, पहाड़ियाँ और अंगूर-कुंज ... सो जाते हैं। केवल दूर का प्रकाश और वह ... तारा नीरव ईर्ष्या में पहरा देते हुए जागते हैं। ...—किनारे-किनारे संगीत उठता और बढ़ता है। ... पर भंगुर शान्तिकाल नृत्य करता है—उसका ... कुछ न रहा हो ! परन्तु अन्त में फिर शान्ति ... है। एक-एक करके आनन्दमयी ज्योतियाँ पलक मारती, लड़खड़ाती और मृत्यु को प्राप्त होती हैं। ख़ाली आकाश के विस्तृत गढ़ में विजयी तारा प्रतीक्षा करता है।

(३)

पर्वत-छाया चालित होती है और चलकर हम दोनों पर गिरती है। जहाँ घंटे-भर पहले सुनहली छायी थी, अब स्याही फैल रही है; झील के रजत-पथ से नावें घर लौटती हैं, तब डाँड़ के लगते ही चाँदी के बुलबुले जागकर बाहर आते हैं। आओ, अन्दर चलें। आकाश के शीश पर अन्धकार हो रहा है—प्रगाढ़ होता जाता है। दिन डूब चुका......रहो भी, हम व्यर्थ एक शब्द भी क्यों बोलें। जहाँ मौत है, वहाँ पश्चात्ताप कहाँ !

डायना डारलिंग] [लंदन मरकरी (लंदन)

× × ×

२—मा की आत्मा

मुझे अपनी मा की याद नहीं। परन्तु जब मैं खेलता हूँ, तो कभी-कभी एक मधुर गीत मेरे कानों में गूँजने लगता है—वही गीत जो मेरी मा मुझे सोते समय सुनाया करती थी। वह गान मेरे क्रीड़ा-कलरव में दब जाता है, परन्तु मुझे अनुभव होता है कि यद्यपि मेरी मा संसार से विदा हो गयी है, तो भी मेरे बहलाने के लिए एक गीत छोड़ गयी है।

मुझे अपनी मा की याद नहीं। परन्तु जब वसन्त-ऋतु आती है और चारों ओर फूल ही फूल दृष्टिगोचर होते हैं, तो मुझको ओस से भीगे हुए कुसुमों में मा की गोद की सुगन्ध आती है। मुझे मा की याद आ

जाती है। वह वाटिका से झोली-भर फूल लाती है कि मन्दिर जाकर देवी को चढ़ाए।

मुझे अपनी मा की याद नहीं। परन्तु जब रात को मैं अपनी शय्या पर लेटता हूँ और कमरे की खुली खिड़की से मेरी दृष्टि आकाश पर पड़ती है, तो मुझे ज्ञात होता है कि तारों के समूह से मेरी मा आकाश से झाँक रही है और मुझसे मुस्कराकर कहती है—मेरे लाल, मैं तेरे समीप नहीं हूँ; परन्तु मेरी आत्मा तेरे ही पास है।

डॉ० रवींद्रनाथ टैगोर] [रियासत (उर्दू)

× × ×

३—तुम्हारा सौंदर्य

अनेक देशों की विचित्रताएँ, आकाशगंगा के नीरव गीत, अर्द्धरात्रि के अर्द्धस्वप्न की नीरवता में फूटते हुए राग—निःस्वन राग—तुम्हारी अर्द्ध-स्फुट आँखों में श[...] करते हैं—परियों की गाथाओं और समीर की [...] में, आर्द्र हृदय की रंगीन कल्पनाओं के वातावरण [...] जहाँ तारे आनन्द के जादू से बेहोश हो जाते हैं—वहाँ।

तुम्हारे सौन्दर्य ने स्वर्ग की छवि पृथ्वी पर ला दी [...] मानों तुम संसार के संभव सौंदर्य की पूर्णता हो।

यह मृगतृष्णा कैसी? तुम अज्ञात हो, फिर भी [...] तड़पता हूँ कि मेरे शोक का बाहुल्य तुम्हें ज्ञात [...] जाय—कहीं संसार के कहने-सुनने की चिन्ता आ [...] रहे। तुम्हें मिलता हूँ तो चुप रहता हूँ, कुछ कहने [...] डरता हूँ। आह, प्रेम शृंखला-बद्ध है—सदैव, सदैव [...] शून्य। तभी आँखों में तुम्हारा सौन्दर्य है और ह[...] में तुम्हारी खोज।

मुहम्मदजमील वास्ती] [हुमायूँ (उर्दू)

अंतर-राष्ट्र

१—आयर्लैंएड की समस्या

आयर्लैंएड की समस्या इधर पुनः जटिल होती जा रहा है। ब्रिटिश-उपनिवेश-सचिव श्री० जे० ...० थामस के साथ डी० वेलरा का जो पत्र-व्यवहार ...रों में प्रकाशित हुआ है, उससे स्पष्ट है कि आय-...ड और ब्रिटेन में एक दूसरे के प्रति असन्तोष बढ़ने ...संभावना फिर उपस्थित हो गयी है। इधर डी० ...रा के विरोधी भी सिर उठा रहे हैं, और उन्हें कठोर ...यों का अवलम्बन लेना पड़ रहा है।

एक विचारणीय प्रश्न

आयर्लैंएड के संबंध में एक विचारणीय प्रश्न यह है ...के आन्तरिक और बाह्य नीति के संबंध में प्रायः पूर्ण ...तंत्रता प्राप्त कर चुकने पर भी वह ब्रिटेन की ...च्छा के प्रतिकूल प्रजातंत्र की घोषणा करने पर क्यों ...ला हुआ है? राष्ट्रसंघ में उसे ब्रिटेन से पृथक् स्थान ...त है और वहाँ उसके प्रतिनिधि ब्रिटिश-नीति की ...तों से कड़ी आलोचना कर सकते हैं, जैसा कि स्वयं ...० वेलरा संघ-समिति के सभापति की हैसियत से ...छ दिन पहले कर चुके हैं। इसी तरह उसे अपनी ...र्थिक नीति स्वयं निर्धारित करने और अन्य राष्ट्रों के ...थ बिना किसी दबाव या लिहाज़ के व्यापारिक ...र या अन्य बातचीत करने का अधिकार भी प्राप्त ...। ब्रिटिश-सम्राट् के प्रति राजभक्ति की शपथ ग्रहण ...रने का जो नैतिक बन्धन था, उसे भी डी० वेलरा ...सरकार दूर कर चुकी है। फिर भी हम देखते हैं कि ...यर्लैंएड इतने से संतुष्ट नहीं है, और वह "पूर्ण ...स्वतंत्रता" की घोषणा करने के लिए उत्सुक मालूम ...ता है। इसका कारण क्या है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें आयर्लैंएड के इतिहास पर दृष्टि डालनी पड़ेगी। आयर्लैंएड को इस समय जो अधिकार प्राप्त हैं, उनके लिए उसे भीषण संग्राम करना पड़ा है। आयर्लैंएडवालों के साथ सदियों तक धार्मिक अत्याचार होता रहा है और राजनीतिक तथा आर्थिक मामला में भी उनके साथ भेदभाव की नीति बरती गयी है। समय-समय पर वहाँ वालों की ज़मीन छीन-छीन कर उन ब्रिटिश-अफ़सरों तथा सैनिकों को बाँट दी गयी, जिन्होंने आयर्लैंएड के विरुद्ध लड़ाई लड़ने में ब्रिटेन की सहायता की थी। इन ब्रिटिश-ज़मींदारों ने वहाँ के ग़रीब किसानों तथा अन्य नागरिकों पर मनमाना अत्याचार किया। आयरिश जनता के प्रतिनिधियों ने बहुत कोशिश की, पर उनकी शिकायतें दूर नहीं हुईं और जब-जब लाचार होकर वहाँ वालों ने विद्रोह करने का उपक्रम किया, तब-तब निष्ठुरतापूर्वक उनका दमन किया गया।

बीसवीं शताब्दी में इँगलैएड के उदार-दलवालों ने आयर्लैंएड की अवस्था के सुधार और उसकी राजनीतिक माँगों की ओर विशेष ध्यान देने का प्रयत्न किया, किंतु अनुदार-दल के विरोध के कारण वे भी सफल न हो सके। ग्लैडस्टन का "होमरूल" बिल सात वर्ष की कोशिश के बाद भी पास न हो सका। आयर्लैंएड का शासन पहले ही की तरह सैनिक बल पर होता रहा। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन के प्रति आयर्लैंएडवालों के मन में कटुता का भाव बढ़ता ही गया। शीघ्र ही वहाँ सिनफ़ीन-दल का उदय हुआ, जो शान्त-अशान्त सभी उपायों से अपने देश को पूर्ण स्वाधीन बनाने पर आमादा हो गया। इधर भूरी काली सेनाओं के अत्याचार से सारा देश थर्रा उठा।

डी० वेलरा तथा उनके अनुयायियों को, जान पड़ता

है, वे सब बातें अभी तक भूली नहीं हैं। इसी से वे उन दो-चार बन्धनों को भी हटा देना चाहते हैं, जिनसे नाममात्र के लिए भी आयलैंण्ड पर ब्रिटेन का प्रभुत्व सूचित होता है। भले ही इस समय आयरिश फ़्री-स्टेट और किसी पूर्ण स्वाधीन देश में विशेष अन्तर न रह गया हो, पर डी० वेलरा को शायद तब तक संतोष नहीं हो सकता जब तक वह स्पष्टरूप से आयलैंण्ड की पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा नहीं कर लेते। व्यापक एवं निष्ठुर दमन के परिणाम-स्वरूप मानों उनकी रग-रग में असंतोष की भावना प्रवेश कर गयी है और उनके लिए यह बुद्धि का नहीं, हृदय का प्रश्न बन गया है।

ब्रिटिश-सरकार का रुख़

आयरिश जनता का ऐसा भाव देखकर और दो-दो बार बहुमत से डी० वेलरा के निर्वाचित होने के परिणाम का ख़याल करके भी ब्रिटिश-सरकार ने अपनी नीति नहीं बदली। भूमिकर-संबंधी प्रश्न के संबंध में बातचीत करने के लिए डी० वेलरा के प्रयत्न करने पर भी ब्रिटिश-उपनिवेश-सचिव ने व्यर्थ का अड़ंगा लगाकर उनसे परामर्श करना अस्वीकार कर दिया और बाद में आयलैंण्ड से आर्थिक युद्ध भी छेड़ दिया। ब्रिटेन और आयलैंण्ड के पारस्परिक संबंध पर इसका जो प्रभाव पड़ सकता था, वही पड़ा—मनोमालिन्य कम होने के बजाय बढ़ता ही गया।

डी० वेलरा की सरकार ब्रिटिश-सम्राट् के प्रति राजभक्ति की शपथ लेने की शर्त तो पहले ही उठा चुकी थी; अब उसने आयरिश पार्लिमेंट में तीन बिल और पेश किये, जिनके स्वीकृत हो जाने पर प्रजातंत्र की घोषणा करने में उसके लिए कोई कठिनाई न रह जाती। इनमें से एक का उद्देश्य गवर्नर-जनरल के अधिकार को संकुचित करना और दूसरे का आयरिश बिलों को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार ब्रिटिश-सम्राट् के हाथ में न रहने देना था; तीसरे बिल में कहा गया था कि आयरिश मामलों की अपील सुनने का अधिकार प्रिवी कौंसिल को न रहेगा।

इन बिलों के स्वीकृत हो जाने की संभावना देखकर ब्रिटिश-उपनिवेश-सचिव ने १४ नवंबर को पार्लिमेंट में यह घोषणा की कि उक्त बिलों से सन् १९२१ की संधि की अवहेलना होती है, अतः ब्रिटिश-सरकार उनके पास हो जाने पर चुप नहीं रह सकती। उन्होंने यह भी [illegible] दिया कि यदि फ़्री-स्टेट की सरकार उन्हें स्वीकार [illegible] लेगी, तो उसे उन सुविधाओं से वंचित होना पड़े[illegible] जो उसे ब्रिटिश-राष्ट्रमण्डल में शामिल रहने [illegible] प्राप्त हैं।

इस धमकी से ज़रा भी भयभीत न होकर डी० वेल[रा] ने साफ़-साफ़ कह दिया है कि तलवार की नोक [illegible] सच्ची मित्रता असंभव है। "आयलैंण्ड ब्रिटेन [illegible] मामलों में अपनी टाँग नहीं अड़ाता, उसी तरह [illegible] चाहता है कि उसे भी अपना प्रबन्ध अपने तरीक़े [illegible] करने का अधिकार रहे। यही सिद्धांत है, जिसके आ[धार] पर स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।"

मेल का उपाय

श्रीटामस ने कहा है कि समझौते का मार्ग अब [illegible] खुला हुआ है। अतः यदि वह वस्तुतः आयलैंण्ड [illegible] मिलाये रखना चाहते हैं तो प्रयत्न करने पर समझौ[ता] हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। किन्तु यह स्पष्ट है [illegible] परिस्थिति का ख़याल कर उन्हें थोड़ा झुकना अब [illegible] पड़ेगा।

आयरिश पार्लियामेंट में जो तीनों बिल स्वीकृत [illegible] चुके हैं, उन्हें डी० वेलरा की सरकार रद्द कर देगी—[illegible] आशा करना व्यर्थ है। अतः उनके संबंध में हठ [illegible] से काम न चलेगा। इस समय बुद्धिमानी इसी [illegible] कि ब्रिटिश-सरकार अपनी धुन का ख़याल न कर उ[illegible] मान ले। ऐसा करने से वस्तु-स्थिति में भी कोई वि[illegible] अन्तर न पड़ेगा; क्योंकि इस समय भी सामान्य[illegible] प्रिवी कौंसिल में आयरिश मामलों की अपील नहीं [illegible] जाती, गवर्नर जनरल अपने विशेषाधिकारों का प्र[illegible] नहीं करते और न सम्राट् ही फ़्री-स्टेट के मामलों [illegible] हस्तक्षेप करते हैं।

यदि ब्रिटिश-सरकार इन बिलों के संबंध में आप[illegible] करना छोड़ दे, तो डी० वेलरा को इस बात के [illegible] राज़ी करना मुश्किल न होगा कि वह एक चौथा [illegible] पेश कर बाक़ायदा प्रजातंत्र की घोषणा करने की चेष्टा [न] करें। उसे समझ लेना चाहिए कि इस प्रश्न [का] संबंध केवल आयलैंण्ड से ही नहीं है। ब्रिटिश-[illegible] मंडल में शामिल रहने के लिए आयलैंण्ड पर द[illegible] डालने का प्रभाव दक्षिण-आफ़्रिका आदि उपनिवेशों

भी पड़े बिना नहीं रह सकता। वे अभी तक स्वेच्छा से ही ब्रिटिश-साम्राज्य के भीतर बने हुए हैं। किन्तु वे जानते हैं कि १६३१ के वेस्ट-मिनिस्टर-विधान के अनुसार उन्हें अलग होने का अधिकार प्राप्त है। अतः इस मामले में ब्रिटिश-सरकार को ख़ूब सोच-समझकर अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए—धमकी देने या ज़बरदस्ती करने से समस्या हल नहीं हो सकती। आयरलैंड की भावुक जनता पर इसका उलटा ही असर पड़ेगा और वह साम्राज्य से नाता तोड़ देने के लिए और भी अधिक उत्सुक हो उठेगी।

× × ×

२—योरप में युद्ध की तैयारी

जर्मनी के निकल जाने के बाद निरस्त्रीकरण-सम्मेलन के सफल होने की कितनी कम आशा रह गयी थी, यह हम नवम्बर की माधुरी में लिख ही चुके हैं। दो-एक बार उसकी बैठक हुई अवश्य, पर समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। परिणाम यह हुआ है कि अब 'आत्मरक्षा' के बहाने चारों ओर युद्ध की तैयारी शुरू हो गयी है।

फ़्रांस ने जर्मन-सीमा पर मज़बूत क़िले बनवा लिये हैं और ज़मीन की सतह से क़रीब सौ गज़ नीचे एक युद्ध-नगर तैयार कर लिया है—जहाँ रहकर लाखों सैनिक तथा नागरिक महीनों तक अपनी रक्षा कर सकते हैं। चारों तरफ़ राशि-राशि विस्फोटक सामग्री इकट्ठी कर ली गयी है, जो एक छोटी-सी चिनगारी के गिरते ही अनेक मुँह वाले भीषण ज्वालामुखी पहाड़ का रूप धारण कर लेगी। इसके सिवा शत्रु पर आक्रमण करने के साधन भी उसने पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा लिये हैं और बराबर बढ़ाता जा रहा है। उसका हवाई जहाज़ों का बेड़ा आज संसार-भर में अपना सानी नहीं रखता। इसी तरह उसने विनाशक जहाज़ों का परिमाण भी बढ़ा लिया है। सन् १६१४ में उसके पास कुल ३५ हज़ार टन के ही विध्वंसक पोत थे, पर आज १ लाख ६८ हज़ार टन के पोत हैं।

फ़्रांस की इस तैयारी से जर्मनी बहुत परेशान है। वह अपने नागरिकों को हवाई जहाज़ों द्वारा किये गये आक्रमण से रक्षा करने के उपायों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है और लुक-छिपकर अपनी सैनिक शक्ति भी बढ़ा रहा है। इसी तरह बेल्जियम, इटली और लघु-राष्ट्रमंडल भी ज़ोरों से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं।

इस संबंध में कदाचित् सबसे अधिक हलचल हम ब्रिटेन में देख रहे हैं। फ़्रांस आदि राष्ट्रों की तैयारी देखकर ब्रिटिश-अधिकारी मानों निद्रा से एकाएक जाग उठे हैं। ब्रिटिश-वायुयान-विभाग के मंत्री लार्ड लंडनडरी ने कुछ ही दिन पहले लार्ड-सभा में कहा था कि ब्रिटेन बराबर इस बात की कोशिश करता रहा है कि वायुयानों की शक्ति घटाने के संबंध में निरस्त्रीकरण-सम्मेलन में कोई समझौता हो जाय और उसने स्वयं अपनी शक्ति कुछ घटा भी दी थी, किन्तु अब वह अन्य किसी राष्ट्र से पीछे नहीं रहना चाहता। इसी से हम देखते हैं कि अब वहाँ दस हज़ार नये हवाई जहाज़ बनवाने का विचार हो रहा है।

"डेली टेलीग्राफ़" पत्र के संवाददाता ने लिखा है कि विमान द्वारा ब्रिटेन पर आक्रमण करना अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक सरल है और उससे ब्रिटेन को नुक़सान भी सबसे अधिक होने की संभावना है। इसी से ब्रिटिश-सरकार बंब-वर्षा और विषाक्त गैस से बचने के लिए ज़मीन के नीचे आश्रय-स्थान बनवाने के प्रश्न पर विचार कर रही है। इसी तरह इस बात का भी उपाय सोचा जा रहा है कि विपत्ति के समय गैस से रक्षा करने के लिए नक़ाबों से कहाँ तक सहायता ली जा सकती है, और किस तरह बात की बात में सर्वसाधारण में उनका वितरण किया जा सकता है।

इधर ब्रिटेन स्वयं भी नयी-नयी विषाक्त गैसों का आविष्कार करने के लिए अपने यहाँ के वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन दे रहा है। इस वर्ष के बजट में विविध प्रयोगों के लिए १२ लाख ८२ हज़ार पौंड की रक़म अलग रक्खी गयी है। जब से राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई है तब से आज तक उसके लिए ब्रिटेन ने जितनी रक़म दी है, उतनी वह केवल एक वर्ष में युद्ध-संबंधी रासायनिक प्रयोगों के पीछे ख़र्च कर देगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योरप के राष्ट्र एक दूसरे का अविश्वास कर अपनी-अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में जुटे हुए हैं। उनमें मानों इस बात के लिए प्रतिद्वंद्विता हो रही है कि देखें, एक दूसरे के निरीह नागरिकों का संहार करने की कौन कितनी शक्ति प्राप्त करता है। प्रकट

रूप से तो सभी शांति की उत्सुकता प्रकट करते हैं, कोई किसी को स्पष्ट शब्दों में अपना शत्रु उद्‌घोषित करने का साहस नहीं करता, फिर भी युद्धोपकरणों के संग्रह का प्रयत्न ज़ोरों से किया जा रहा है; क्योंकि 'आत्मरक्षा' के लिए तैयार तो रहना ही चाहिए! सैनिक प्रति-योगिता की यह नीति योरपीय राष्ट्रों को बड़ी शीघ्रता से विनाश की ओर लिये जा रही है, फिर भी वे नहीं चेत रहे हैं। ईश्वर ही जानें, कब उनकी आँखें खुलेंगी और वे एक दूसरे का विश्वास करना सीखेंगे।

× × ×

३—स्पेन की अशान्ति

स्पेन की पार्लिमेंट का चुनाव हो गया। जैसा कि अनुमान किया गया था, साम्यवादी दल बुरी तरह से हार गया है। राजतंत्रवादी दल तथा उसके समर्थकों को ही बहुमत प्राप्त हुआ है। निर्वाचन शुरू होने के ठीक पहले साम्यवादियों ने घोषणा की थी कि यदि हमारी हार हुई, तो स्पेन की सड़कें युद्धक्षेत्र में परिणत हो जायँगी। हम आज स्पष्ट ही देख रहे हैं कि उनकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः प्रमाणित हुई है। स्पेन में इस समय भीषण विद्रोह की ज्वाला चारों ओर फैल रही है। १० दिसम्बर के तार से विदित होता है कि साठ आदमी मारे गये, सैकड़ों घायल हुए और हज़ारों गिरफ़्तार किये जा चुके हैं।

विद्रोह की ज्वाला इतनी शीघ्रता के साथ बढ़ती जा रही है, इसका एक बड़ा कारण साम्यवादियों (सोश-लिस्टों) के साथ वर्गवादियों (कम्यूनिस्टों) का मिल जाना है। स्पेन में इन दोनों दलों में परस्पर काफ़ी मतभेद रहा है, किंतु राजतंत्रवादियों की जीत से स्पेन के प्रजातंत्र का भविष्य ख़तरे में देख ये दोनों दल अपना मतभेद भुलाकर साथ-साथ काम कर रहे हैं और क्रमशः सारे देश में विद्रोह की आग फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अनेक स्थानों में सार्वजनिक हड़ताल की घोषणा हो गयी है। लोगों ने अपना काम-काज बन्द कर दिया है। सड़कों पर जहाँ-तहाँ मारकाट शुरू हो गयी है और अमीरों को लूटने या उनकी सम्पत्ति नष्ट करने की कोशिश की जा रही है।

सौभाग्य की बात यह है कि पुलिस तथा सेना पर विद्रोहियों का प्रभाव नहीं पड़ा है और वह बराबर मुस्तैदी के साथ शान्ति स्थापित करने की चेष्टा कर र[ही] हैं। पुलिस बहुत पहले से ही सतर्क हो गयी थी, इसी[से] विद्रोहियों को अभी तक उत्पात शुरू करने का मौ[क़ा] नहीं मिला था। किंतु अब उन्होंने काफ़ी ज़ोर पक[ड़] लिया है और पुलिस को उन्हें क़ाबू में करना कठि[न] हो रहा है।

स्पेन में इस समय फ़ासिस्टों का भी ज़ोर है। स्पे[न] के भूतपूर्व डिक्टेटर (अधिनायक) प्रिमो डि० रेवेरा [के] पुत्र इस दल के नेता हैं। ये भी साम्यवादियों के विरो[धी] और राजतंत्रवादियों के समर्थक हैं। इसी तरह कैथलि[क] सम्प्रदाय के पादरी भी साम्यवादियों के विरुद्ध है[ं]; क्योंकि सीनर अजाना के मंत्रिमंडल ने इन लोगों [की] सम्पत्ति ज़ब्त कर सरकार के अधिकार में कर ली थी। इस प्रकार स्पेन में इस समय दोनों ही पक्ष प्रबल हैं। यही कारण है कि विद्रोह ने इतने कम समय के भीत[र] ऐसा उग्र रूप धारण कर लिया है। लक्षणों से मालू[म] होता है कि यह अशान्ति और उपद्रव अभी कुछ सम[य] तक बराबर जारी रहेगा। इसके बाद वहाँ की रा[ज]-नीतिक स्थिति क्या होगी, कहना कठिन है।

× × ×

४—रूस और इटली

रूस के परराष्ट्र-मंत्री श्रीलिटविनाफ़ अभी हाल ही अमेरिका से लौटकर इटली गये थे। यह बात फ्रां[स] को अच्छी नहीं लगी थी और वह तरह-तरह की शंका करने लगा था। इटली की गति-विधि से वह पहले ही सशंक है, अतः मुसोलिनी को सोवियट के परराष्ट्र-मंत्री से परामर्श करते देखकर उसके मन में खलब[ली] पैदा हो जाना स्वाभाविक है। किंतु वस्तुतः फ्रांस [के] लिए इन दोनों के मिलन से भयभीत होने का को[ई] कारण नहीं मालूम होता; क्योंकि रूस के साथ [वह] पहले ही घनिष्ठता स्थापित कर चुका है।

रूस इस समय अपनी आन्तरिक उन्नति करने [में] लगा हुआ है, इसी से वह अपने पड़ोसियों के सा[थ] शान्तिपूर्वक रहना चाहता है। यद्यपि उसने बिलकु[ल] आधुनिक ढंग से अपना सैनिक संघटन कर लिया [है] और वह किसी भी आक्रमणकारी से लोहा लेने [को] तैयार है, फिर भी वह यथासंभव युद्ध से बचना चाह[ता] है। पूर्वी सीमा पर जापानी आक्रमण की संभावना

...प्रयास कर उसने अमेरिका से मित्रता स्थापित करने की ...था और इसमें वह सफल भी हुआ। इसका ...कारण यही था कि जापान खुद ही परिस्थिति का ...प्रभाव कर रूस पर आक्रमण करने का विचार त्याग दे और युद्ध का मौक़ा न आने पावे।

मुसोलिनी के पास लिटविनाफ़ के जाने का उद्देश्य ...भी यही अर्थात् युद्ध की संभावना को दूर करना मालूम है। हिटलर के शासनारूढ़ होने के बाद से जर्मनी ...वादियों के साथ जैसा अत्याचार होता रहा है और ...यों द्वारा जर्मनी का पूर्वी सीमा बढ़ाने का जो ...प्रकट किया गया है, उससे रूस वर्तमान जर्मनी ...बहुत दिनों से शङ्का की दृष्टि से देखता रहा है। यही ...है कि उसने पोलैंड आदि पड़ोसी राज्यों से अना-...की संधियाँ कर ली हैं और यह जानकर कि ...र पर मुसोलिनी का प्रभाव पड़ सकता है, उसने ...विनाफ़ को रोम जाने का आदेश दे दिया। लिट-...फ़ की यात्रा का परिणाम सन्तोषजनक हुआ है ...अब वह हिटलर से भी बातचीत करने के लिए ...गये हुए हैं। उनकी यह यात्रा भी सफल होगी, ...में सन्देह नहीं; क्योंकि वह प्रथम श्रेणी के एवं बहुत चतुर कूटनीतिज्ञ हैं।

× × ×

५—न्यूफ़ाउण्डलैण्ड का शासन-संकट

...नाडा के पूर्व में यह ब्रिटेन का एक छोटा-सा उप-...वेश है। इसकी आबादी २ लाख ७७ हज़ार और ...फल ४२ हज़ार ७३४ वर्गमील है। सन् १७१३ में ...वहाँ ब्रिटेन का प्रभुत्व स्थापित हुआ था। इधर कुछ ...समय से यहाँ के शासन में अनेक ख़राबियाँ उत्पन्न हो ...गयी थीं। चारों ओर घूसख़ोरी और पक्षपात का बाज़ार ...गर्म था। आर्थिक संकट उपस्थित होने पर ब्रिटेन से ...सहायता की प्रार्थना की गयी, तब उसने वहाँ की ...अवस्था की जाँच करने के लिए एक रायल कमीशन ...नियुक्त कर दिया।

...कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार वहाँ का शासन-...विधान कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया है। ...ब्रिटेन ने छः लाख पौंड की वार्षिक सहायता देना ...स्वीकार किया है। जब तक अवस्था सुधर नहीं जाती, ...तब तक वहाँ का शासन एक कमीशन या शासन-...समिति की सहायता से गवर्नर स्वयं करेंगे। इस कमी-...शन में छः सदस्य रहेंगे—तीन न्यूफ़ाउण्डलैण्ड के और ...तीन ब्रिटेन के, और इनकी नियुक्ति मंत्रिमण्डल की ...सलाह से ब्रिटिश-सम्राट् ही करेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ का शासन-संकट माल्टा के शासन-संकट से, जिसकी चर्चा गत मास में की जा चुकी है, भिन्न प्रकार का है। न्यूफ़ाउण्डलैण्ड का संकट साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद के संघर्ष का नहीं, वरन् आर्थिक एवं शासन-संबंधी दुरवस्था का परिणाम है। भारत में जिस तरह आर्थिक गड़बड़ी आदि होने पर म्यूनिसिपैलिटियों पर प्रान्तीय सरकारें कब्ज़ा कर लेती हैं, कुछ-कुछ उसी तरह की बात है। इस संबंध में यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि वहाँ की व्यवस्थापक सभा भी शासन-विधान के स्थगित किये जाने के पक्ष में थी।

× × ×

६—चीन में विद्रोह

चीन में पुनः गृहयुद्ध आरंभ हो गया है। फ़ूकीन प्रांत ने हाल ही में नैनकिंग-सरकार के विरुद्ध बलवा कर दिया है। विद्रोहियों के नेता जनरल ताई तिंग-काई हैं, जिन्होंने गत वर्ष शंघाई के युद्ध में कैण्टन की १९ वीं सेना को लेकर बड़ी वीरता के साथ जापानी सैनिकों का सामना किया था और उनके छक्के छुड़ा दिये थे। विद्रोह का कारण नैनकिंग-सरकार के अध्यक्ष चियांग-काई शेक की नीति मालूम होती है। अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखने के ख़याल से यह महाशय विदेशियों की सहायता लेना चाहते हैं, यहाँ तक कि यह जापान से भी मेल करने को तैयार हैं। इसी से चीन में इनके विरुद्ध असंतोष बढ़ रहा है, जो सामूहिक विद्रोह के रूप में प्रकट हो रहा है। इधर तिब्बत भी चीन के कई ज़िलों को हड़प लेने की धमकी दे रहा है। मालूम नहीं, चीन के भाग्य में अभी क्या-क्या बदा है और उसके अंग-भंग की क्रिया कब समाप्त होती है!

—क ख ग

१—भारत और रंग का व्यवसाय

आज से पचास वर्ष पूर्व शायद यह सोचा भी न गया होगा कि भारत को अपनी दैनिक आवश्यकता के लिए विदेशी रंग का मुँह ताकना पड़ेगा। उन दिनों समस्त संसार अपनी रंग-सम्बन्धी ज़रूरत भारतीय रंगों से पूरी करता था। यहाँ के फूलों, पत्तियों, पेड़ों की छालों और नील आदि से नाना प्रकार के रंग तैयार होते थे। अब भी कहीं-कहीं कुसुम, हरसिंगार, टेसू आदि के फूल रँगने के काम में लाये जाते हैं; परन्तु बहुत कम। जब बाज़ार में बने-बनाये रंग तैयार मिलते हैं जिन्हें पानी में घोलने-मात्र से मनचाहा रंग तैयार हो जाता है, तो देशी जड़ी-बूटियों से रंग बनाने का खटराग कौन करे! जर्मनी में हेनरी परकिन द्वारा कोलतार-रंगों का आविष्कार हो चुकने के कुछ ही वर्षों के बाद भारत की नील की खेती चौपट हो गयी। जहाँ भारत जर्मनी आदि योरपीय देशों को रंग दिया करता था, वहाँ अब उलटे उसे उनका मुँह ताकना पड़ा। कुछ समय तक योरप और अमेरिका की रंग की समस्त आवश्यकताएँ जर्मनी द्वारा पूरी होती रहीं। वे रंग कुछ अधिक आकर्षक, सस्ते और देशी होने के कारण खूब लोकप्रिय हुए। थोड़े दिन तक तो यही दशा रही, परन्तु अमेरिका और अन्य योरपीय देश इस बात को अधिक दिन तक न सहन कर सके कि संसार-भर के रंग का बाज़ार जर्मनी के हाथ में रहे—जर्मनी ही उसका एकमात्र अधिकारी बना रहे। उन देशों ने मौक़ा मिलते ही अपने यहाँ रंग के कारख़ाने खोल दिये और अपने देश की ज़रूरियात पूरी करने के साथ ही साथ भारत-जैसे पर-[ा]श्रित देशों को भी माल भेजकर अपना पेट भरना शु[रू] कर दिया। भारत को इतने पर भी अपना भला-बु[रा] न सूझा। महायुद्ध के ज़माने में जब जर्मनी ब्रिटि[श] मित्र-राष्ट्रों का विरोधी हो गया और जर्मनी का मा[ल] भारत आने में अड़चनें पड़ने लगीं, तब इंडि[यन] इंस्टिट्यूट आफ़ साइंस (बँगलोर) में देशी रंग बना[ने] के लिए कुछ प्रयत्न किये गये थे, परन्तु उनमें विशे[ष] सफलता नहीं मिली। महायुद्ध समाप्त होने के बा[द] जर्मनी का माल फिर बिना किसी अड़चन के भारत [में] आने लगा और देशी रंग बनाने की बात वहीं [पर] ख़त्म हो गयी। यदि देशी जड़ी-बूटियों और पेड़ों [की] छालों वग़ैरह का वैज्ञानिक निरीक्षण किया जाय [तो] बहुत संभव है, सस्ते और टिकाऊ रंग बन सकें। परन्तु इसमें काफ़ी देर लगने की सम्भावना है और नयी बात में भारतीय पूँजीपति रुपया लगाने [के] लिए भी तैयार नहीं हो सकते। लेकिन वे लोग कम कम इतना तो कर ही सकते हैं कि योरप आ[दि] पाश्चात्य देशों में रंग के बारे में की गयी खोजों [का] पूरा-पूरा लाभ उठाकर पाश्चात्य पद्धतियों ही [से] अपने देश में भी रंग के कारख़ाने खोलें। आजक[ल] विदेशों में प्रायः सभी रंग कोलतार से बनते हैं। कोलतार कोयले से मिलता है। भारत में कोय[ले] का अभाव नहीं है। आवश्यकता है पूँजी लगानेवा[लों] की। हाँ, इस तरह के कारख़ानों में मशीनें अवश्य विदेशों से मँगानी होंगी; लेकिन कच्चा माल, मज़[दूर,] कर्मचारी और पूँजी आदि सब भारतीय ही होंगी।

× × ×

२—बिना पटरी की रेल

रेल और मोटर की प्रतियोगिता के बारे में पाठकों ने अवश्य ही सुना होगा। यह प्रतियोगिता नित्यप्रति बढ़ती ही जा रही है। थोड़ी बहुत दूर जाने के लिए मोटरें सस्ती और सुविधाजनक होती हैं। कई स्थानों में तो मोटरों के मारे रेलवे-कम्पनियों को ज़बरदस्त घाटा तक उठाना पड़ा है। भारतीय असेम्बली में भी इस विषय में काफ़ी चख-चख हो चुकी है। यह प्रतियोगिता केवल भारतवर्ष ही में नहीं है; योरप और इँगलैंड में तो इसका हमारे यहाँ से कहीं अधिक ज़ोर है।

अस्तु, रेलवे-कम्पनियों के भी कान खड़े हो गये हैं और वे मुसाफ़िरों को सुविधा पहुँचाने, अपना ख़र्च कम करने और ऐसी मशीनें तैयार करने में लग गयी हैं कि मुसाफ़िरों को अधिक से अधिक आराम पहुँचाया जा सके और कम्पनियों को अधिक से अधिक लाभ भी हो। विलायत में तो इस तरह की कई एक चीज़ें बन भी गयी हैं। उनका व्यवहार भी हो रहा है। वहाँ मोटरों का मुक़ाबिला करने के लिए चलते-फिरते प्लेटफ़ार्म, एक पटरी की रेल, खम्भों पर बँधी हुई एक तार पर चलनेवाली रेलों का आविष्कार हो चुका है। इनमें से कई एक तो काम में भी लायी जाने लगी हैं।

हाल ही में भारतवर्ष में भी ऐसी ही एक बिना पटरी की रेलगाड़ी तैयार हुई है। इसके बनानेवाले रेलवे के एक भूतपूर्व इंजीनियर मिस्टर सी० स्केल्टन हैं। उन्होंने यह रेल, छोटे-छोटे स्थानों से रेलवे के बड़े स्टेशनों तक सवारी लाने के लिए तैयार की है। बीजापुर-ज़िले के अलमट्टी-नामक स्थान पर इसका सफल प्रदर्शन किया जा चुका है।

यह नवीन रेल शक्ल-सूरत और अनेक दूसरी बातों में साधारण रेलगाड़ियों की ही भाँति है। इसको छोटी रेल कहा जा सकता है। अन्तर केवल इतना है कि इसे चलाने के लिए पटरियाँ बिछाने की ज़रूरत नहीं। इसे साधारण कंकड़ या तारकोल की सड़कों पर चलाया जा सकता है। हाँ, गाड़ी को ठीक रास्ते पर रखने के लिए सड़क के बीचोंबीच एक उठी हुई पटरी बनाना आवश्यक है।

इस नवीन रेलगाड़ी को बहुत सस्ते में चालू किया जा सकता है। बम्बई-सरकार ने इसे अपने प्रान्त में व्यवहार में लाने की आज्ञा भी दे दी है। सरकारी इंजीनियरों ने इस नवीन पद्धति की प्रशंसा की है। उन्होंने इसे रेलवे की श्रेणी में नहीं स्वीकार किया, वरन् ट्रामवे की श्रेणी में रक्खा है। ट्रामवे ही के आधार पर इस नवीन रेल का नाम गाइड वे (Guide-way) रक्खा है। छोटी-छोटी कम्पनियाँ भी इसे चला सकेंगी।

× × ×

३—ईर्ष्या रोग है

ईर्ष्या का कोई इलाज नहीं। बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य और हकीम हमेशा से ईर्ष्या को चरित्र का दोष बतलाते आये हैं। वह भी साधारण नहीं—असाध्य। परन्तु अब मनोविज्ञान के विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ईर्ष्या भी एक रोग है और अन्य रोगों की ही भाँति इसके भी अपने विशिष्ट लक्षण होते हैं।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार ईर्ष्या—द्वेष, भय, सन्देह, विश्वास की कमी अथवा अविश्वास और मानसिक कमज़ोरी का मिश्रण है। मनोविज्ञान के विद्वानों का मत है कि ईर्ष्या पर—प्रेम ही की भाँति—नियंत्रण नहीं किया जा सकता। बिना किसी ख़्वाहिश के ही ईर्ष्या की भावना पैदा होती है और विलीन हो जाती है।

उन लोगों के मतानुसार प्रेम और ईर्ष्या में केवल इतना ही अन्तर है कि प्रेम तो बिलकुल असाध्य है, परन्तु ईर्ष्या का इलाज किया जा सकता है। वास्तव में कुछ लोगों ने साइकोथेरापी (Psychotherapy—मानसिक उपचार की एक पद्धति) द्वारा ईर्ष्या का इलाज शुरू भी कर दिया है।

× × ×

४—बैलगाड़ियों के लिए रबड़ के टायर

सन् १८८८ ई० में जे० बी० डनलप ने सर्वप्रथम काम में लाये जाने योग्य रबड़ के टायरों का आविष्कार किया था। ये टायर धीरे-धीरे करके साइकिल, कार, मोटर-साइकिल तथा अन्य सवारियों के काम में लाये जाने लगे। अब डनलप-कंपनी की बंबई-स्थित भारतीय शाखा ने हाल ही में बैलगाड़ियों के लायक़ रबड़ के टायर बनाये हैं। कंपनी ने इस संबंध में एक बुलेटिन भी प्रकाशित किया है। उसमें इन टायरों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। कंपनी

अधिकारियों का कहना है कि इन टायरों के इस्तेमाल से बैलगाड़ियों की उपयोगिता कहीं अधिक बढ़ जायगी। उनमें अधिक माल लादा जा सकेगा, बैलों को आराम मिलेगा, उनकी रफ़्तार तेज़ हो जायगी और सड़कें कम ख़राब होंगी। गाड़ियाँ अच्छी-बुरी सभी तरह की सड़कों पर बख़ूबी चल सकेंगी। कंपनी का कहना है कि बैलगाड़ियों के लायक़ टायर विशेष प्रकार की रबड़ से तैयार किये गये हैं, उनमें छेद आदि होने का भय अधिक नहीं है। इन टायरों के व्यवहार के लिए कंपनी द्वारा बनाये गये विशेष प्रकार के लोहे के पहिये, धुरे, ब्रेक और आधार आदि व्यवहार में लाने पड़ेंगे।

विदेशी कंपनियों की यह एक विशेषता है कि वे विदेशों में रहकर भी हमारे देश की परिस्थितियों के अनुकूल माल तैयार करना ख़ूब जानती हैं। स्वदेशी की आवाज़ उठने पर वे अपने प्रधान कार्यालय की शाखाएँ भारतवर्ष में खोलकर भारतीयों की स्वदेशी की माँग को भी पूरा करने की चेष्टा करती हैं। परंतु हमारे देश के पूँजीपतियों को मानों इन सब बातों से कोई मतलब ही नहीं है। यहाँ की दशा ही विचित्र है। कोई भी पूँजीपति किसी नवीन खोज आदि में अपनी पूँजी लगाने के लिए तैयार नहीं। हाँ, देखा-देखी देशभर में सैकड़ों शक्कर की मिलें ज़रूर खुल सकती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम इन शक्कर-मिलों के विरुद्ध हैं। देश में सैकड़ों नवीन उद्योग-धंधों के सुगमतापूर्वक चलने की गुंजाइश है। परंतु हमारी ही उदासीनता के कारण विदेशी कंपनियाँ देश की परिस्थिति का लाभ उठाती और भारत का रुपया खींचकर विदेशों को पहुँचा देने में सफल होती रही हैं।

श्यामनारायण कपूर (बी० एस्-सी०)

× × ×

५—दाँतों में धातु का जड़ाव

यह प्रसिद्ध है कि जब भिन्न-भिन्न प्रकार की धातुएँ दाँतों के स्थान पर काम में लायी जाती हैं, तो उनमें ठीक वैसे ही विद्युत्-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, जैसे विद्युत्-यंत्र में। इधर अमेरिका की चिकित्सा-परिषद् ने अभी कुछ प्रमाण एकत्रित किये हैं, जिनसे विदित होता है कि उक्त धातुओं के विद्युत्-प्रवाह के कारण दाँतों में क्षत उत्पन्न हो गये थे।

बहुत वर्ष हुए, डाक्टर लेन ने प्रमाणित किया था कि मनुष्य के मुख की लार विद्युत्-उत्पादक होती है इस प्रकार प्रत्येक मुख—जिसमें धातु के दाँत अथवा पत्र आदि हों—विद्युत्-यंत्र का काम करता है। यदि तमाम पत्र दाँत आदि एक ही धातु के बने हों या ऐसी धातुओं के जिनकी विद्युत्-उत्पादक शक्ति (Electro-motive force) एक-सी ही हो, तो किसी प्रकार के क्षत नहीं उत्पन्न होते। सोने, चाँदी, ताँबे की विद्युत्-उत्पादक शक्ति एक-सी ही होती है, अतएव जब इनके विद्युत्-कण विभाजित होते हैं तो कोई विद्युत् प्रवाह नहीं देखा जाता। परंतु दाँत बनानेवाले इन धातुओं के अतिरिक्त अल्यूमिनियम जस्ते आदि का भी प्रयोग करते हैं जिनकी विद्युत्-उत्पादक शक्ति बहुत भिन्न रहती है। जब दो ऐसी भिन्न धातुएँ एक ही मुख में लगायी जाती हैं, तो वह विद्युत्-यंत्र के दो भिन्न सिरों का काम करती हैं और हानिकारक हो सकती हैं।

दाँतसाज़ों ने बहुत काल पहले दो एक-सी विद्युत् शक्तिवाली धातुओं से होनेवाली हानि देख ली थी। ऐसी संभावनाओं को दूर करने के लिए उन्होंने एक धातु के पत्र को घिसकर दूसरे से छोटा करना प्रारंभ कर दिया था; क्योंकि ऐसी हालत में विद्युत्-प्रवाह उत्पन्न नहीं होता। अब यह प्रयत्न भी हो रहा है कि दाँतों के बनानेवाले एक ही विद्युत्-उत्पादक शक्ति की धातुओं को सस्ता पा सकें।

× × ×

६—वैज्ञानिक पेय

पाश्चात्य देशों में विज्ञान की उन्नति इस सीमा तक हो गयी है कि मनुष्य के कार्य और विचार तक विज्ञान के अधीन हो गये हैं। अन्वेषणों ने मनुष्य की शक्ति को अनिश्चित सीमा तक बढ़ा दिया है। अमेरिका में पापियों को उन्हीं के मुँह से सत्य कहलवाने के लिए एक अद्भुत पेय का प्रयोग होता है। यह पेय जिह्वा के मज्जा-तंतु को ढीला करता एवं विचार और स्मृति पर गहरा प्रभाव डालता है। अमेरिका की पुलिस इस पेय की अद्भुत शक्ति के कारण सत्य की खोज में बहुत नाम पैदा कर रही है। परंतु एक दूसरा

सकती है जो दुर्बल हृदय को बलवान् और झगड़ालू बना सकता है, अथवा बलवान् को दुर्बल हृदय।

इसकी एक मात्रा शांति-प्रिय मनुष्य को अपने मित्र पर आक्रमण करने को उत्तेजित कर सकती है। वही मात्रा क्रोधी मनुष्य को विचारशील भी बना देती है। परंतु एक बात निश्चित है कि पेय के पीने से ही मनुष्य के भावों में अत्यधिक अंतर प्रकट होता है।

मधुमेह की बीमारी में शकर को मनुष्य के बदन में रोकने के लिए Insulin दी जाती है। इसके अधिक मात्रा में प्रयोग से इसके सेवन करनेवाले को एक प्रकार की अकारण चिंता अथवा भय सताने लगता है। यदि उसी मात्रा में शकर दी जाय, तो खोया हुआ पुरुषत्व फिर लौट आता है। इसका कारण ख़ून में ग्लूकोज़ (घुली हुई शकर) की मात्रा है; एक प्रतिशत मात्रा मनुष्य को दुर्बल या बलवान् बना सकती है।

एक प्रकार का पेय मनुष्य को (Turilight Sleep) संध्या की झपकी लाने के लिए दिया जाता था। एक समय एक डाक्टर को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ था कि सोयी जान पड़नेवाली स्त्री ने कमरे का सब सच-सच हाल बता दिया एवं वस्तु-निर्णय की आज्ञा का ठीक-ठीक पालन किया। दूसरे प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि जिन मनुष्यों ने झूठ कहने का व्रत कर लिया था, वह इस पेय के प्रयोग से सत्य कहने को बाध्य हुए। यही नहीं, वर्षों की भूली बात निद्रावस्था में इस पेय के प्रयोग से स्मृति में आ जाती है।

× × ×

७—दाँतों की श्रवण-शक्ति

बाहर की वायु में तरंगित लहरें जब कान के परदे पर पड़ती हैं, तो उसमें एक प्रकार का संयत कम्पन उत्पन्न होता है जो कान की हड्डियों द्वारा मनन-केंद्र तक पहुँचता है। इसी कंपन का रूपांतर वह वस्तु है, जिसे हम श्रवण-शक्ति कहते हैं। परंतु यदि कानों को बंद भी कर लिया जाय और दाँतों में घड़ी दबाकर सुनने की चेष्टा की जाय, तब भी ध्वनि 'टिक-टिक' करती स्पष्ट सुन पड़ती है। वैज्ञानिकों ने इस दूसरे मार्ग को बहरों के लिए लाभदायी बनाने का प्रयत्न किया है। अमेरिकन अन्वेषकों ने बहरे लोगों को दाँतों के द्वारा सुनने के योग्य बना दिया है।

ध्वनि उत्पन्न करनेवाले यंत्र या रेडियो से एक तार कम्पन-यंत्र तक जाता है। इस तार में एक लकड़ी लगी होती है, जिसे सुननेवाला अपने दाँतों में दबा लेता है। स्वर-कम्पन लकड़ी से दाँतों में होकर हड्डियों द्वारा श्रवण-शिराओं में जाता है, और प्रतिक्रिया स्पष्ट सुन पड़ती है।

× × ×

८—विचित्र पंखा

हाल ही में अमेरिका की एक बिजली-कंपनी ने एक विद्युत्-चालित पंखा निकाला है, जिसमें पंखे की हवा को घुमाने की शक्ति के साथ-साथ विद्युत्-मोटर की घरघर की आवाज़ नहीं सुनायी पड़ती। यह पंखा अपने पहले के समस्त पंखों से बनावट में भी भिन्न है।

इस पंखे में तीन पंख हैं जो इतने चौड़े हैं और इतने घूमे हुए हैं कि उनके बीच की ख़ाली जगह बिलकुल ही नहीं दिखायी पड़ती। उनके घुमाव के कारण हवा का झटके के साथ द्रुतगति से घूमना नहीं होता, प्रत्युत वह नियमित रूप से निःशब्द प्रवाहित होती रहती है।

रामरतन भटनागर 'हसरत'
(बी० एस्-सी० फ़ाइनल)
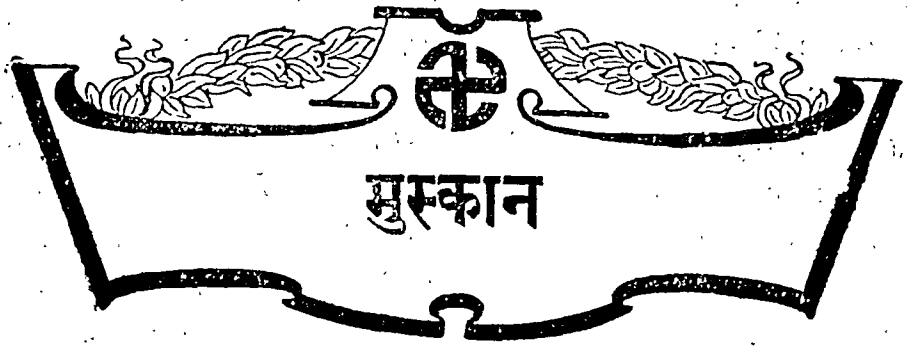
१—गुरु-शिष्य-संवाद (दोअंकी)

(प्रथम दृश्य)

[गुरु महराज बौखलाहट में वस्त्र नोचते हुए]

वत्स कुछ लिखो व्यंग्य की लरी,
हमारी बुद्धि गयी सब हरी।
नहीं सूझता कोई चारा हूँ अंधा या पागल
काँप रहा हूँ भय से जैसे वारवधू का छागल
कहाँ गये सब मेरे चेले उनको शीघ्र बुलाओ
लिखो-लिखाओ नाक बचाओ हिम्मत जरा बँधाओ
खूब गाली दो उनको खरी
पोल खोलें जो मेरी बरी
मेरा है अब अंत मरूँगा मैं साहित्यिक जग में
मेरी रचनाओं के चिथड़े बिखरेंगे मग-मग में
मेरी कविताओं से अब बनिये पुड़िया बाँधेंगे
मेरे उपन्यास गल्पों को सब ठुकरा त्यागेंगे
व्यंग का ही आश्रय है जरी
हमारी बुद्धि गयी सब हरी
मेरी बाजारू रचनाएँ यहाँ न टिक पायेंगी
इक्का—तरकारीवालों में भी न क़दर पायेंगी
हिंदी के नवयुवक मुझे खटमल-सा मल डालेंगे
अब मेरा रँग गया—तूल-सा मुझको धुन डालेंगे।

(दूसरा दृश्य)

[गुरु भगवान् बीच में ताड़ी की बोतल लिये उदासी से सिप कर रहे हैं। चेले चारों ओर से घेरे खड़े हैं। बाहर चार-पाँच गुंडे लट्ठ लिये हुए गुरुजी की फ़िक्र में घूम रहे हैं]

चेलों का गीत

(गधों के गीत का दूसरा रूप)

धन्य तुम कविता के अवतार
सुधा का गहे हाथ भंडार
तुम 'दर्शन' की दाल पूज्य गीता के गोबर
तुम हिंदी की हींग सड़ी या मलिन सरोवर
यदि खटमल-सा तुम्हें पीस डालेंगे वे सब
निज बदबू में फैल छकाना उन्हें खूब तब
हम तो निपट गँवार, न लिखना-पढ़ना जाने
लिख-लिख दो तुम लेख प्रशंसा के मनमाने
आर्य शिखंडी की सुआड़ ले वीर पार्थ ने
मारे थे बहु सुभट निरत हो महास्वार्थ में
तुम हम सबकी ओट खड़े हो सबको मारो
क्षुद्र हृदय की उज्जड्डता से सृष्टि सँहारो।
निराला रूप लखे संसार
करारा हो साहित्य प्रचार

—कैलिब[illegible]

× × ×

२—कोरस-गान

(गुर्गे और गुरुदेव जंबुकगान का नया राग अलापते हैं)

दूर देखी वह 'कला' मलिन
जुगाली करती है निशिदिन।
बैठ 'अप्सरी' सी स्वनीड़ में
थर-थर पुलकित ग्राम चीड़ में
हम चमगादड़ से स्वप्रीति में
घेरे मसृण-मसृण।
जल्दी पागुर करती इस भय
हम न चबा जायें वे किसलय

हमें घूरती फैला संशय
दाँत दिखा अमिलन।
हम खिसियाकर कहते गिनके
सजनि, हमें दो कुछ ही तिनके
हुआ हुआ मधुरव में किनके
देती बीट नलिन।

—पुलिन

× × ×

३—एक उद्धृत कविता

...से कविवर (?) कुकरायलजी ममीरा-आफ़िस में ...एप्रेंटिस हो गये, तब से क्या पूछना। दुलत्तियाँ ... तो आसमान हिल जाता है। किसी के टीप ... हैं, किसी की तरफ़ मुँह फाड़कर दौड़ते हैं और ...ले आदमी को लोफ़री का शस्त्र ले ललकारते ...का के संपादकजी भले आदमी हैं। एक दफ़ा हज़- ...संपादकजी की ग़ैरहाज़िरी में एक संपादकीय नोट ...जिसमें अपनी ही एक बाँगड़ू, ऊटपटाँग, अर्थशून्य ...तुकबंदी उद्धृत कर डाली और उसकी जी खोल- ...शंसा की। संपादकजी जब लौटे तो उन्होंने हज़रत ...व डाट बतलायी। और, जनाब ने दाँत निपोर ...माफ़ी माँगी, तब कहीं जान में जान आयी। तब से ...करने की हिम्मत नहीं पड़ती। परंतु पहले पेज ...विता छपाने, अपनी प्रशंसा में लेख आदि भरने ...चित्र का रंग जमाने के लिए हज़रत बड़े लालायित ...हैं। हाँ, तो ज़रा उस टकियल कविता का मुला- ...हज़ा फ़रमाइए जिसे आपने बड़ी शान से उद्धृत किया ...और उन बड़े-बड़े कवियों में अपने को गिनवाया था ...के पैरों की धूल भी हज़रत इस ज़िंदगी में न पायेंगे—

(गीत)

...ंत हो अंडे की मछली
सजा हृदय के छिछड़े माखन
काँपे मेरा पेटू तन-मन
नाच उठे सब शिष्य रुनाझुन
पंगु ललाँग भरी।
बुदबुद उठा हृदय तब मेरा
भों-भों-भों गानों ने घेरा
हुआ न कुछ पैसों का फेरा
गीत गंध उगली।
चिरकुट गीतों का गोबर ले
सजा कल्पना की लघुपलकें
ले गंदी गल्पों के छिलके
पीकदान उछली
खिली नाली की आत्मकली

—अनोखे पंडित

× × ×

४—दोहाई

आओ चेलो, आओ
मेरे प्राण बचाओ

मुझे उठाओ अवलंबन दे, मेरा रंग जमाओ
नहीं सहारा मेरा, रचनाओं की जान बचाओ
अपनी तारीफ़ लिख दूँ तुम पत्रों में छपवाओ
मेरी चिरकुट कविताओं को आसमान पहुँचाओ।

आओ गुर्गो आओ
मेरी जान बचाओ

जिनके पिता रहें संपादक उन्हें सहारा उनका
मेरे बाबा-पिता तुम्हीं हो—मुझे सहारा किनका!
तुम हो मेरी कलम सियाही और कल्पना के धन
तुम विहीन हो जाऊँगा साहित्यिक भिक्षुक निर्धन

आओ भाई, आओ
चित्र-चरित्र छपाओ

मैं संपादकगण से कर-कर कोरी निरी प्रशंसा
तुम्हें बना दूँ वज्र मूर्ख—उजबकसे भावुक कवि-सा
प्रथम पेज पर छपे तुम्हारी कविता मेरे बल से
निपट गँवार दिहाती तुम, दीखोगे साहित्यिक-से

मेरी गीता गाओ
परिमल खूब उड़ाओ

मैं बेपढ़ हूँ मिडिल फ़ेल, पर चंट बड़ा हूँ जानो
मुझको तुम गर्दभ न समझना—जंबुकवर पहचानो
भाषा-ज्ञान नहीं तो क्या, गाली तो बक सकता हूँ
सड़े मांस की सुरभिधार-सा मैं न कभी रुकता हूँ

दौड़ो, आओ आओ
मेरी बात बचाओ

—करेलानी

× × ×

५—दुरंगी दुनिया

भला आपने कभी दोमुँही देखी है—वही जिसके एक मुँह इधर होता है और एक उधर—दोमुँही नागिन? तो आइए, त्रिवेणी-तट पर चलिए। माघस्नान का पुण्य घाते में।

× × ×

एक मुँह से तो अपने यह खुद 'घृणा' का ज़हर उगलती है और दूसरे मुँह से दूसरों को 'घृणा का प्रचारक' बताकर उस ज़हर को मारती है! घृणा का ज़हर खुद ही तो फैलाती है और खुद ही फ़तवा भी देती है। कैसी अजीब दोमुँही है!

× × ×

कौवे तो आपने देखे होंगे—वही जो घृणित वस्तु खाते फिरते हैं। "विष्ठा खानेवाले को आनंद उसी घृणित वस्तु में मिलता है"—भई, क्या खूब कही है पं० वेंकटेशनारायण तिवारीजी ने। सारे व्रजभाषा-साहित्य में आपको अपनी पसंद की कैसी बढ़िया और मज़ेदार चीज़ ढूँढ़े मिली है। कमाल की खोज है!

× × ×

संतरामजी की पंजाबी खोपड़ी में रानी का नक्शा बैठ गया है, तो अब राजा की तलाश में हैरान होने की ज़रूरत नहीं है। दुलारेलालजी तो कहा करते हैं कि बस राजा तो 'युगांतर' ही है। मालूम नहीं, यह बात कहाँ तक ठीक है। मगर भार्गवजी की यह राय है और उन्होंने संतरामजी को देख-सुनकर यह राय क़ायम की है, ग़लत कैसे मान ली जाय।

× × ×

"स्वयं इन पंक्तियों के लेखक ने एक गाँव में एक चमार के दरवाज़े पर खाना खाया। खाना बूढ़ी चमारिन ने पकाया था।"—वाह, क्या कमाल है! ठकुराई इसी में है। कलियुग को आपने त्रेता बना दिया। भई, बस अवतार घोषित होने भर की देर है।

× × ×

"हमने देहात में एक भी ऐसा पंडित नहीं देखा जो चमारों से घृणा करता हो।"—तो न देखा होगा आपने, आपकी अभी उमर ही क्या है। हमने तो देखा है। पं० बनारसीदासजी देहात ही के पंडित हैं। उनको तो आपने देखा है कि कैसे उन्होंने 'वर्तमान धर्म घृणा की! फिर यह सफ़ेद झूठ क्यों?

× × ×

"भैया अकिल बहादुर कलकत्ते में!"—यह तो अख़बार पढ़नेवालों को बहुत पहले मालूम हो थी जब आँजनाब कलकत्ते के किसी सम्मेलन में होकर क़दमरंजा फ़र्माने गये थे! इट इज़ टू लेट न

× × ×

ऐसे-ऐसे दिग्गज समालोचक हमारे यहाँ हिंदी-स में पड़े हैं जो हैं शो, कि 'उपन्यास-सम्राट्' का अर्थ बड़ा जिल्द बँधा हुआ निर्जीव पोथा लगाते हैं। क पं० किशोरीदास वाजपेयी? ज़रा मध्यम-पदलोप अर्थ तो समझा दें, या फिर कोई लक्षणा ही।

× × ×

और 'औपन्यासिक सम्राट्' का अर्थ आप अब न जानते रहे होंगे—सुनिए—'कल्पना का राजा ख़याली पुलाव पकानेवाला।' यदि इसके आगे 'इत्यमरः' कह दिया जाया करे—या न सही, 'नागरीप्रचारिणीसभा-कोपः' कह दिया जाया करे, तो चौबे पं० जगन्नाथप्रसाद एक बड़ी उलझन से बच ज

× × ×

"व्रजभाषा के नामी-नामी कवियों ने अपनी-अ रचनाओं में स्त्री-पुरुष के एक संबंध-विशेष पर ही ज़ोर दिया है"—जीहाँ, और करते क्या? उन यही चाल थी। आपके ज़माने की तरह 'पुरुष-पुरु एक संबंध-विशेष' की बात उन दिनों प्रचलित थी। यह तो आजकल की रचनाओं में पाया है जहाँ 'अल्यूमिनियम' की प्याली में ठर्रा ढाल बहकाया जाता है। हटाइए उस दक़ियानूसी ज़ की बातें। इस 'कोफ़्ते' वाले ज़माने की बात कीजि

× × ×

कहाँ सो रहा है वह व्रजभाषा-कोप तैयार करनेवा धुरंधरों का मंडल—जो गोरखपुर में शायद बना था कि तिवारीजी को 'श्रृंगाररस' का सही-सही अर्थ बतला दे। नहीं तो उनके लड़के—बच्चे कहीं सिंगार क सामने आ खड़े होंगे तो उत्पात खड़ा हो जायगा अभी ख़ैरियत है।

× × ×

भाई मान गया, ब्रजभाषा की अधिकांश कविता आत्मा का नाश और पुरुषत्व का ह्रास करती है। अब ख़बरदार! कोई सूरसागर वग़ैरह किसी को—ख़ासकर कुमारियों को उपहार में न दे, और दे भी तो ऐसे-ऐसे गुदगुदाते छंदों को ख़ास तौर पर पहले छँटवा ले।

× × ×

पंडित रामचंद्र शुक्ल ऐसे कवियों को तुच्छ वृत्तिवाला कहते हैं जो अपने आश्रयदाताओं की स्वार्थवश झूठी प्रशंसा और ख़ुशामद करके वाणी का दुरुपयोग और सरस्वती का गला घोंटते रहे हैं, लेकिन भला शुक्लजी उनको क्या कहेंगे जो अधेली पेज पर कलकत्ता-लखनऊ एक कर चुके हैं और ख़ुशामद-खाते में पुस्तक समर्पित करके झूठी दोस्ती का भुलावा देते हैं?

× × ×

पद्माकर के एक छंद के इस—मेरे जान मेरे तुम कान्ह हिम्मतसिंह, तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं—पर एक स्वयंसिद्ध महाकवि (!) ने उन्हें टुकड़ख़ोर कहा था। यह महाकवि-पुंगव बेचारे कविता बेचकर दिन गुज़ारते हैं। भला शुक्लजी इन्हें क्या कहेंगे—तुच्छ वृत्ति वाला और सरस्वती को संजीवनी देनेवाला, कि और कुछ? इनकी अभिरुचि और परख कैसी है, शुक्लजी!

× × ×

"हमारा ख़याल है—'ज़ुराफ़ा पक्षी' कल्पना-जगत् की एक चिड़िया है"।—जी नहीं, आपका यह ख़याल भी 'मकर परेई संग' की तरह ही सोलहो आने ग़लत है। अनुमान की ज़रूरत ही नहीं, जब प्रमाण मौजूद है। ज़ुराफ़ा कल्पना-जगत् का नहीं वरन् प्रकृत जगत् का ही एक पक्षी है जो है शो। व्यर्थ ही आप ब्रजभाषा-साहित्य-प्रेमियों को कष्ट दे रहे हैं। अरे, यह तो पं० श्रीराम शर्मा ही बतला सकते थे।

× × ×

"आचारक रामचंद्र शुक्ल और कवि० मैथिलीशरण ... के लिए सर्वथा योग्य हैं और दोनों में ... यह शक्ति भी विद्यमान है जिससे वे कितने ... तक शासन और संचालन भी कर सकते हैं—" ... कहा है मौक़े की। वंश और स्वभाव से ... होने पर लोग ऐसे ही ऊटपटाँग बका करते हैं। मगर भई, शासनवाले दिन तो डिक्टेटर पं० पद्मसिंहजी के साथ ही लद गये। और, अब राजा लोग भी ख़ुशामदाना बातों में नहीं आते। इसलिए यह सब अरण्यरोदन ही है, का कही।

× × ×

सुनते हैं, एक कथावाचकजी कहानियाँ लिखने की सोच रहे हैं, नौटंकीवाले नत्थारामजी ने उपन्यास लिखना शुरू कर दिया है। क्रांति का युग है भई। जो न हो जाय सो थोड़ा।

× × ×

सुना था, पंडित कृष्णकांतजी औरों का एक लेख लिख रहे हैं कि ब्रजभाषा के कवियों ने ईश्वर के नाम को उस ज़माने में बरक़रार रक्खा है और स्त्रियों का सादर सत्कार किया है। मगर यह क्या, आप तो प्रेमचंदजी की कला खोजने निकल पड़े। अच्छा है भई, दोनों पलड़े बिना ठीक रक्खे काम भी तो नहीं चलता!

× × ×

सुनते हैं, श्री० पारसनाथसिंह बी०ए० ने 'पक्षीविलास' नाम की एक पुस्तक लिखी है। तो उसमें पक्षियों को 'शफ़्फ़' कराया गया है, या नहीं? भई, न कराया गया हो तो अभी करा दीजिए। कारण, ज़िंदगी का कोई ठिकाना नहीं।

× × ×

पंडित जवाहरलाल नेहरू को साम्राज्यवाद पसंद नहीं है और हिंदुस्थान के लोगों को साम्यवाद पसंद नहीं है। अब बड़ी मुश्किल है। हमारी समझ में कोई निरालावाद ढूँढ़ा जाय। इसमें कुछ न होकर भी सब कुछ होने का रंग तो दिखता ही रहेगा, का कही।

× × ×

जर्मनी के नाज़ी-शासन में लड़कियों को यह उपदेश दिया जाता है कि ऐसे को अपना पति न चुनो जो बड़ा हँसमुख और मृदुभाषी हो। मगर हमारे यहाँ 'को-एजुकेशन' में तो ये गुण ख़ासकर कूट-कूटकर भरे जाते हैं भई। लड़कियाँ और लड़के, दोनों ही क्या नाज़ुक ढाँचे में ढलकर निकलते हैं जैसे पतझड़ के चुरमुराते पत्ते। जान पड़ता है, जर्मनी महात्मा गांधी और मालवीय-जैसे लोगों को न पसंद करके जवाहरलाल और वल्लभभाई पटेल चाहता है।
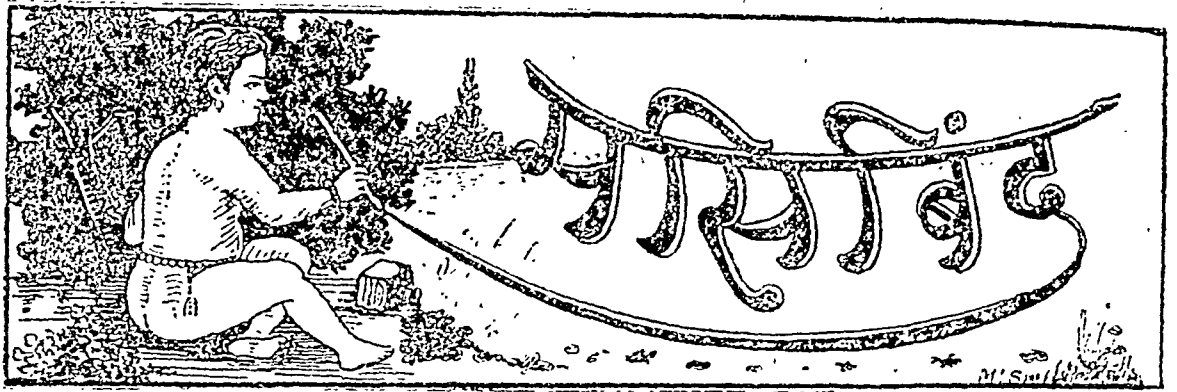
१—ट्रेजेडी का लोकोत्तर-स्वरूप

अँगरेज़ी के एक कवि (टामस हुड) ने एक शोक-गीत लिखा है जो 'आहों का पुल' (Bridge of Sighs) शीर्षक से प्रसिद्ध है। उसमें एक अज्ञात अपरिचित बालिका के दुःखपूर्ण अंत का कसकभरा चित्रण है। कवि कहता है—"उसके अंतर्विद्रोह का विश्लेषण न करो। वह उग्र और कर्त्तव्यहीन सब कुछ थी, पर अब—अब तो सब अपमानों से परे है; मृत्यु ने केवल सौंदर्य ही उसमें छोड़ रक्खा है*।" इन पंक्तियों को पढ़कर पाठकों का हृदय आत्मशुद्धि और विशुद्धतम पवित्रता के जिन आवेगों से तरंगित होने लगता है, वह अनुभव की वस्तु है। मृत्यु ने उसके जीवन के सारे कलुष, मालिन्य और कर्दम को धोकर ज्योत्स्ना की भाँति धवल कर दिया है, और वह विशुद्धि की देवी-सी बन गयी है। इस प्रकार मृत्यु-जैसी दुःखमूलक कष्टकर घटना के भीतर से कवि की भावना जिस शिव सौंदर्य का प्रस्फुरण कर रही है, वह हृदय को कितना प्रियतम और मंगलमय मालूम होता है। इस उच्चतम अंतर्वेग में कितनी मोहकता और शान्ति है!

दुःख का यही लोकोत्तर-स्वरूप है। दार्शनिकों और सन्तों की बात जाने दीजिए, साधारण मनुष्य के लिए मृत्यु एक ऐसी घटना है जिसकी कल्पनामात्र से वह थर्रा कर काँपने लगता है और उसका हृदय रो पड़ता है। उसी प्रकार दुःख की कल्पना से मानव-हृदय एक विचित्र भय से अभिभूत होकर सिहर उठता है। कवि और निराशावादी कलाकार भले ही दुःख में एक रसमय आनन्द की—सुख के एक गुलाबी आलोड़न की कल्पना करें, परन्तु साधारण दुनियादार के लिए वह अशान्ति-मूलक और भयंकर ही होगी। किंतु जब उन्हीं कल्पनाओं के भीतर एक, चैतन्य के शिव साम्राज्य का—सौन्दर्यपूर्ण नवीनतम स्वर्गोदित इन्द्रजाल का निर्माण किया जाता है तो वे ही सुखद और प्रिय लगने लगती हैं।

ट्रेजेडी का यहीं पर लोकोत्तर-स्वरूपाभास है। वह मनुष्य के विशुद्धतम परम पावन अंतर्वेग की परिचायिका है। वह सम्पूर्ण मानव-हृदय को मथकर जो उज्ज्वल शुभ्र फेनराशि निकालती है, उसमें अन्तस्तल का सारा अमृत और तरल प्रकाश निःसृत होकर बह उठता है। यह उस आध्यात्मिक यज्ञ की हविर्धारिणी की पुण्यमय जल्पना है जिसमें जीवन का सारा विष, सारा पाप, सारा अन्धकार और सारा मनोविकार धूधूकर जल उठता है और जीवन कुन्दन की नाईं तप कर एक गुलाबी आभा से मुस्कराता हुआ निकल आता है।

आस्करवाइल्ड ने एक स्थान पर लिखा है कि दुःख में साक्षात् सत्य का निवास है—वह संसार का निर्माता है। शिशु तथा संसार की उत्पत्ति पीड़ा से ही आरम्भ होती है। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु में दुःख छिपा रहता है। पति के संभोगजनित रति-विलसित सुख में पुलक-विह्वल बालिका यह नहीं सोच पाती कि इसका परिणाम जितना मंगलमय और स्वर्गीय होगा, उस मातृत्व में कितनी वेदना है। परन्तु यह दुःख कितना अनूठा, विचित्र और रहस्यपूर्ण है। ट्रेजे

---

* Make no Scrutiny
Into her mutiny
Rash and undutiful
Past all dishonour
Death has left on her
Only the beautiful.

दुःख के इस मांगलिक प्रवाह में, वेदना की इसी चाँदनी—विषाद की चन्द्ररेखा में कुमुदिनी की भाँति विकसित होती है। आत्मा की अन्तकुंटी में चीत्कारों की जो सम्मोहन-रागिनी बजती है, लोलुप लालसाओं की अंतःप्रिया का जो एकांत रुदन होता है और नवोदित किरणों को उसी समय तारों की भाँति टूट-टूटकर—और उन्मत्त सागर की छाती में लुंठित होकर विलीन हो जाना पड़ता है—इस सबको देखकर कौन भावोन्मेष से उन्मत्त न हो उठेगा। परन्तु इसी में आत्मविकास और आत्मा की विशुद्धि की जो प्रेरणा और प्रोत्साहन छिपा रहता है, उससे भी कोई सहृदय पाठक अपरिचित रह सकेगा। अरिस्टाटल ने इसीलिए अपने 'पोयटिक्स' में लिखा है कि करुणा और त्रास के द्वारा यह हमारे समस्त मनोवेगों को संस्कृत एवं विशुद्ध कर देती है। यही ट्रेजेडी का लोकोत्तर-स्वरूप है—यही रस का लोकोत्तर परिपाक और करुणा का विश्वजनीन उद्रेक है जब मनुष्य या पाठक उस ट्रेजेडी की वेदना को अपनी वेदना समझकर व्याकुल हो उठता है। यद्यपि अरिस्टाटल ने ट्रेजेडी के विषय में जो यह लिखा है उसे लेकर आलोचक और तत्त्ववेत्ता कुछ भ्रम में पड़ जाते हैं, तथापि इसी में ट्रेजेडी की वह कल्याणमूलक भावना है जो मनुष्य को देवत्व से समन्वित करती है। हमारी करुणा तो हमारे हृदय में इसलिए उत्पन्न होती है कि उनके नायकों का हम एक क्षत-विक्षत और दुःख के कांटों से छिदा हुआ रूप देखते हैं, और भय इस लिए कि हम अपने हृदय के भी दुर्बल स्थलों पर दृष्टि-पात करते हैं। जब हम नायक या नायिका को अपने अज्ञान में किये गये अपराध से—जो आकस्मिक था, वरन् स्वभाव का एक विशेष उद्दीपन बन गया था—भ्रान्ति-उद्भ्रान्ति के महाचक्र में पिसते हुए देखते हैं और फिर उसे आत्मग्लानि और पश्चात्ताप की उस विभीषिका में झुलसते हुए पाते हैं, तो हमारा हृदय करुणा से विगलित होकर बह चलता है। परन्तु एक नैतिक ट्रेजेडी का क्षेत्र इससे भी अधिक विस्तृत होता है। वह केवल हमारी करुणा को ही नहीं उद्दीप्त करती है, वरन् एक दूसरे मनोवेग को भी जगा देती है जो किसी सीमा तक व्यक्तिगत और स्वार्थमूलक तो होता है, परन्तु उसका स्थान इस मानवीय करुणा और प्रेम से कम नहीं है। हमारा संकेत यहाँ भय की ओर है। जब पाठक या दर्शक यह देखता अथवा पढ़ता है कि नायक के जीवन में यह दुःख का घटाटोप उसके स्वभाव की किसी दुर्बलता या अपूर्णता के स्वाभाविक फलस्वरूप हुआ है, और वह स्वयं अपने अन्दर की ऐसी कमज़ोरी से अवगत है, तो वह सजग होकर विचलित-सा हो जाता है और वैसी ही विपत्तियों में पड़ने की आशंका से काँप उठता है। बस, उसके विवेक को एक जागृतिगान मिल जाता है और वह वासना और मोह के उन आघातों और विशृंखलाओं से अपने को बचाने का प्रयास करता है एवं यही भय का उद्रेक उसे आत्मचिन्तन में रत कर देता है। "इस प्रकार ट्रेजेडी विश्वशक्ति और अंतःशक्ति का तादात्म्य स्थापित कर जीवन में भेद और अभेद के गोपन को खोलती है"। जीवन में उत्थानपतन का जो शाश्वत उत्पीड़न और दंशन होता है, वह जब विश्व के निर्घोष और उद्दामता—प्रवृत्ति और निवृत्ति के अंधड़ के झोकों में लय हो जाता है, तभी हमारी वेदना विश्व की हो जाती है और वह नियति चंडी के अकांड तांडव की भाँति लोकोत्तरता को प्राप्त हो जाती है।

अरिस्टाटल ने ट्रेजेडी की इतिहास से तुलना करते हुए उसका यही लोकोत्तर-स्वरूप आभासित किया है—कवि का काम यह नहीं है कि जो कुछ बीत चुका है उसका वर्णन करे, वरन् संभावनाओं और आवश्यकताओं के अनुसार जो कुछ हो सकता है, उसका वर्णन करे। इसीलिए काव्य, इतिहास की अपेक्षा, अधिक दार्शनिक और उच्च है। काव्य विश्वजनीन है, इतिहास व्यष्टिजनीन। इसी भाँति महाकाव्य और ट्रेजेडी दोनों में से ट्रेजेडी में ही अधिक प्रभावसाम्य रहता है और वही ऊँची कला है।

फ्रांस के भयंकर उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'नाइंटी थ्री' (जिसका अनुवाद श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी ने बलिदान नाम से किया है) में एक स्थान पर कैसा भीषण चित्र खींचा है। माता—दुखिया माता सामने खड़ी देख रही है; उसके बच्चे एक धूधूकर जलते हुए मकान में बंद हैं। वह उन्हें बचा नहीं सकती और वे जलकर—कुछ ही मिनटों में राख हो जायँगे! उस दृश्य का जो वर्णन उसने किया है, उसे

पढ़कर शायद पाषाण भी पिघलकर बह चलेगा, उस नारी के विलाप को सुनकर दिग्वधुएँ भी आँसू बहाने लगेंगी और यह आकाश टूटकर—फटकर टुकड़े-टुकड़े होकर उसके चरणों पर लोटने लगेगा। उसके उस विलाप की और दयनीय मूर्ति की कल्पना ह्यूगो इस प्रकार करता है—

"वह वेदना से कराह रही थी। वह ग्राम्य युवती एक देवोपम उत्तेजना बन गयी थी। प्रतीत होता था जैसे विश्व का सारा मातृत्व वहाँ खड़ा रो रहा हो—विश्व की सारी करुणा और वेदना को अपने में समेटकर! वह एक वन्य जन्तु की भाँति कराह रही थी, परंतु उसके मुख पर देवोपम आभा थी। उन जलती हुई आँखों से अधिक आततायी और कौन वस्तु संसार में हो सकती है, जिनके अश्रुओं में रह-रहकर बिजली चमक जाती थी! उसकी निगाह अग्नि की ज्वालाओं की ओर रह-रहकर गरज उठती थी।" वास्तव में जिस समय यह ग्राम्य युवती अपने बच्चों को मृत्यु के मुख में, ज्वाला की भयंकर लपटों में झुलसते देखकर कहती है—देवताओं ने ये बच्चे मुझे दिये थे और आज शैतान राक्षस उन्हें मुझसे छीने ले रहे हैं; फिर कहती है—रक्षा करो, मेरे बच्चों को बचाओ! क्या तुम मेरी आवाज़ नहीं सुनते हो—लोग तो एक कुत्ते पर भी दया दिखाते हैं, उसकी रक्षा करते हैं; ये तो हाड़-मांसयुक्त और तुम्हारे-जैसे दिलवाले ही हैं। फिर वह चीख़ती है—अरे, ये इस तरह मिट गये, तो मैं ईश्वर का गला घोट दूँगी!—उस समय तो मानों साकार मातृत्व सामने खड़ा होकर छाती पीट-पीटकर ख़ून के आँसू बहाने लगता है। मालूम होता है, संसार की सारी कोमलता और करुणा इस प्रचंड अग्नि में जली जा रही है। विश्व-स्वरूप को इसी प्रकार सामने खड़ा कर लेखक ट्रेजेडी के भीतर विश्व-शक्ति का रूप दिखाता है और करुणा और भय के लक़वे से लुंठित होकर हृदय तड़पने लगता है—मानों वात्सल्य का सारा समुद्र, विश्व का सारा करुणस्रोत इस एक बूँद में आकर उमड़ पड़ा हो! यही ट्रेजेडी का लोकोत्तर-स्वरूप है जो साहित्य में संजीवनी भरकर उसे झकझोर देता है। ऐसे ही कलाकारों की कृतियाँ हृदय की धड़कन में घुसकर जीवन के शाश्वत तत्त्व का रूप धारण कर लेती हैं। यही उनकी विश्व और युग-जनीनता तथा लोकोत्तरता का दाक्षिण्य है।

शेक्सपियर की ट्रेजेडियों में हमें यही लोकोत्तर-स्वरूप स्थान-स्थान पर पूर्ण प्रकाशित और आलोड़ित मिलता है। स्वभाव की विभिन्नताओं और दो पहलुओं के संघर्ष का जो चित्र उसने 'किंग लियर' और 'ऑथेलो' और 'हैमलेट' में खींचा है, वह मानव-जीवन और संसार की चिरंतन समस्याओं का स्पष्टीकरण करता है। उसने मानव-जीवन की सभी परिस्थितियों को—भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और सुषुप्ति या जागृति को समझा है जिनसे ट्रेजेडी का उद्भव होता है। उसका प्रत्येक नाटक जीवन के एक विचित्र नवीन संघर्षण को—एक नवीन समस्या को सामने रखता है जो जीवन के सरल-तम तत्त्वों की भाँति विश्वव्यापी होती है—युग, काल, देश, जाति और सभ्यता सबके परे।

ट्रेजेडी उस अनन्त महाविराट् का व्यंग्य है जो मानों हमारी असामर्थ्य और अस्थिरता को घोषित करता है। "लगे हैं ज़ख़्म तड़पने का इन्तज़ाम नहीं"—वाला मज़मून जब सामने आता है तब अपनी अपूर्णता, निरी-हता और लाचारी पर किसकी छाती नहीं फटने लगती। युग-युग से मनुष्य ऐसे ही संघर्षों का शिकार रहा है। हम मरना चाहते हैं, मगर सुखपूर्वक मर नहीं सकते; जीना चाहते हैं, मगर जी भी नहीं सकते। दो विरोधी शक्तियाँ अपने पूरे वेग से हमारे अन्दर जूझ रही हैं! जो मूढ़ है—जगद्गति से उदासीन है, वही सुखी है; परंतु जिन्हें इस प्रतिस्पर्द्धा का तनिक भी ज्ञान है, उनके दिलों में तो प्रलय की-सी अशांति मची रहती है। सन्ताप की इस धूम्रावृत दावाग्नि में पड़कर न-जाने कितने जलकर भस्म हो गये, कितने अधजले झुलसे पड़े तड़प रहे हैं और कितने अभी इसकी बलि चढ़ेंगे—यह कौन जानता है। इन दुःखांत व्यंग्यों (ट्रेजेडीज़) का अन्त भी कदाचित् तब तक न होगा, जब तक मनुष्यजाति का अस्तित्व ही न मिट जाय। और, साहित्य में आज उसकी कैसी व्यंजना हो रही है और वह किस सीमा तक साहित्यकला को अपने में अवसित कर रही है, यह छिपा नहीं है। श्रीयुत जे० ए० के० टामसन् ने अपने 'Irony' नामक ग्रंथ में लिखा है—दुःखांत व्यंग्य ने आधुनिक संसार में प्रवेश पा लिया है।

मनुष्य के हृदय में गुप्त रूप से उद्वेलित हुआ है ; यदि वह साहित्य की तह पर उमड़नेवाली किसी धारा से अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाता जीवन और मृत्यु के विषय में मनुष्य के विचार, उसकी रणाएँ बदल सकती हैं या किसी नवीन आशा से प्रसन्न हो सकते हैं; परंतु जीवन और मृत्यु का हस्य तो बना ही है, और जब तक वे हैं तब तक वे नाना अनुभूति की राशि भरते ही रहेंगे । पाप और दुःख की समस्या हमारे साथ भी उतनी ही है जो हमारे पूर्वजों के साथ थी। उसके मुख पर अब भी मुस्कराहट है, जो व्यंग्य कहलाती है। उसे किस में अपनाना चाहिए, यह दर्शन और शायद का काम है। परंतु उसे कैसे व्यंजित करना चाहिए, यह कला का दृष्टिकोण है ।

× × ×

२—देश की गति-विधि

हमारे देश की गति-विधि इस समय बड़ी नाज़ुक स्थितियों से गुज़र रही है। कांग्रेस, हिंदू-महासभा, मुस्लिम-लीग—प्रायः जितनी भी सार्वजनिक और राजनैतिक दृष्टि से आंदोलन करनेवाली संस्थाएँ हैं, वे अपने-अपने मार्ग पर इस दृष्टिकोण से चल रही मानों एक दूसरे के हिताहित का किसी को ध्यान ही नहीं रहा। एक समय वह था जब राष्ट्रीयता के नाम पर सबके सामने कोई लक्ष्य था, किंतु सन् १९३२ के [illegible] ने सबको जैसे आठ वर्ष पीछे ढकेल दिया । श्वेत-पत्र में मुसलमानों को कुछ विशेष अधिकार मिलने की आशा हो रही है, इसलिए वे तो उसके पक्ष या विपक्ष में दबी ज़बान से भी ननुनच करने से रहे। फलतः हिंदुओं की हितरक्षा के नाम पर हिंदू-महासभा सामने दिखायी पड़ रही है। और, इसको जब संप्रदायवादी होने के लिए दोषी ठहराया जाता है तो अन्य संप्रदायवाले भी इस दोष से बरी नहीं हो सकते । इधर अछूतोद्धार की प्रवृत्ति के कारण वर्णाश्रम-धर्मियों का मतभेद भी कांग्रेस से बहुत बढ़ गया है। अतएव हम स्पष्ट देख रहे हैं कि कांग्रेस, हिंदू-महासभा, मुस्लिम-लीग, वर्णाश्रमधर्मी [illegible] सभी एक निश्चित दिशा से दूर जा रहे हैं और अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार अपने भविष्य का मार्ग निर्द्धारित करने में दत्तचित्त हैं। यह सब एक प्रकार की प्रतिक्रिया है । प्रत्येक क्रिया की कुछ-न-कुछ प्रतिक्रिया होती ही है। सर्वप्रथम असहयोग-आंदोलन के समय भी, चौरी-चौराकांड के बाद, प्रतिक्रिया आरंभ हो गयी थी । यह कोई अनहोनी बात नहीं, वरन् एक मनोवैज्ञानिक सत्य है । इसलिए अब देखने की बात यह है कि भविष्य में इन प्रतिक्रियाओं को कौन-सा मोड़ दिया जाता है। यह निश्चित है कि शासन-सुधार में अभी कुछ थोड़ा विलंब तो है ही, और इतना समय प्रतिक्रियाओं को अपना मैदान चुनने के लिए काफ़ी है। उस दिन लार्ड विलिंगडन ने मदरास में एक भाषण में कहा था कि देश को सुव्यवस्थित रखने के लिए सरकार ने जो कुछ किया है उसी का परिणाम शांति के रूप में हम आज देख रहे हैं । यह ठीक है। परंतु साथ ही हमें संसार की गति-विधि को भी न भूल जाना चाहिए । व्यवस्था और अव्यवस्था, दोनों में प्रतिक्रिया के बीज विद्यमान हैं। यदि मानवकल्याण के लिए वे फल-फूल सकते हैं तो अच्छा है ; अन्यथा शासन-संस्था हो चाहे शासित वर्ग, संप्रदायवादी हों चाहे राष्ट्रवादी—कोई भी उसके प्रभाव से बच नहीं सकते।

× × ×

३—प्रांतीय कौंसिल में पंचवर्षीय आयोजन

भारत की भिन्न-भिन्न कौंसिलों में कदाचित् संयुक्त-प्रांतीय कौंसिल ही ऐसी है जिसमें पिछले दिनों एक पंचवर्षीय योजना पेश की गयी थी, और इसे पेश किया था श्रीयुत सी० वाई० चिंतामणि ने। श्री० चिंतामणि संयुक्तप्रांत के मंत्री रह चुके हैं ; प्रांत की दशा का उन्हें ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । संयुक्तप्रांतीय पंचवर्षीय योजना का अभिप्राय यह है कि प्रांत की गिरी हुई आर्थिक दशा का सुधार आवश्यक है । जो लोग यह जानते हैं कि सोवियट रूस की पंचवर्षीय और दशवर्षीय योजनाएँ वहाँ के लिए हितकर हुईं अथवा हो सकती हैं, वे उक्त योजना में होनेवाले प्रांत के हितों से सहसा इनकार नहीं कर सकते। परंतु सत्य ही रूस और संयुक्तप्रांत में अंतर भी है। साथ ही संयुक्तप्रांत की आर्थिक दशा कितनी गिरी हुई है, यह भी लुकीछिपी बात नहीं है। इसीलिए प्रस्तावकों ने

अपने भाषण में विशेषतः घरेलू व्यवसाय को उन्नत करने की ओर ध्यान आकर्षित किया था। पर कौंसिल में सरकारी पक्ष की ओर से जो कुछ कहा गया, उससे स्पष्ट ही दो निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) सरकार अकेले इसी प्रांत में ऐसी आयोजना को कार्यान्वित करना ठीक नहीं समझती; क्योंकि अर्थ-संकट विश्वव्यापी है, अकेला एक प्रांत उसे दूर नहीं कर सकता। (२) नया शासन-विधान आरंभ होनेवाला है, उस समय ऐसे लंबे कार्यक्रम पेश करना उचित होगा।

हमारी समझ में किसी भी योजना की सफलता अथवा असफलता पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कोई भी कार्य सफलता की ही आशा से आरंभ किया जाता है और सफलता की प्रेरणा मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर भी करती रहती है। यदि अच्छी नियत से कार्य किया जा रहा है, तो उसको सफल बनाने में उचित उपायों का भी आश्रय लिया जा सकता है। इसलिए लोकहित की दृष्टि से किसी भी ऐसे आयोजन को हाथ में लेना प्रशंसनीय ही होगा।

× × ×

४—दीक्षांत भाषण

लखनऊ, प्रयाग और काशी के विश्वविद्यालयों में इस वर्ष क्रमशः सर वी० एस्० शिवस्वामी अय्यर, सर पी० सी० राय और सर तेजबहादुर सप्रू के दीक्षांत भाषण हुए। विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकलते हैं, उन्हें कार्यक्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है; अतएव किन दृष्टिकोणों को सामने रखकर उन्हें कार्यक्षेत्र में—जीवन-संग्राम में—इस विस्तृत संसार में प्रवेश करना चाहिए—यही इन दीक्षांत भाषणों का उद्देश्य रहता है। और, जिस दीक्षांत भाषण में जीवन को पथ प्रदर्शित करने वाली जितनी ही व्यावहारिक लोककल्याणकारी बातें रहती हैं, उतना ही महत्त्वपूर्ण वह कहा जा सकता है। इस कसौटी पर जब हम इन भाषणों को कसते हैं, तो हमें जान पड़ता है कि प्रयाग-विश्वविद्यालय का दीक्षांत भाषण स्नातकों को प्रायः जीवन का कोई संदेश नहीं देता है। काशी-विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में प्रायः पिष्टपेषण है; सर पी० सी० राय महोदय यदि उन बातों को न दुहराते तो विशेष हानि नहीं थी। हम तो ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर जीवन के लिए कुछ अंतिम दीक्षा—अंतिम संदेश पाने की आशा करते हैं। इस दृष्टि से बहुधा गुरुकुल और ऋषिकुल-विश्वविद्यालयों के दीक्षांत भाषण कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण हुआ करते हैं। विदेशों के विश्वविद्यालयों में भी दीक्षांत भाषण दिये जाते हैं, पर वे वहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल होते हैं। हमारे देश के स्नातकों के लिए भी वे अनुकरणीय हो सकते हैं, पर बहुत अधिक अंशों में नहीं। जीवन संघर्ष के लिए कुछ संदेश देनेवाला भाषण हमें श्री शिवस्वामी अय्यर का मिलता है। आपने अपने भाषण में जीवन की सफलता और उद्देश्यों पर सूत्र रूप में अच्छा प्रकाश डाला है। सार्वजनिक जीवन के दो दोषों की ओर आपने विशेष रूप से संकेत किया है—'एक तो संप्रदायवाद की जो भावना पिछले बीस वर्षों में पैठ चुकी है; दूसरा चुनाव के मौक़ों पर घूसखोरी या रुपये के लोभ से मतदाताओं को बरग़लाना।' और हम तो कह सकते हैं कि वस्तुतः दोनों की उत्पत्ति में विश्वविद्यालयों का भी हाथ है। तब विश्वविद्यालय इस ओर क्यों न ध्यान दें कि इनका क्रमशः मूलोच्छेद होता जाय। सत्य यह है कि हमारे विश्वविद्यालयों पर स्वयं योग्य नागरिक, और योग्य नागरिक बनानेवाले स्नातक, तैयार करने का भार है। इसी दिशा में उनकी प्रगति देश के लिए कल्याणकर सिद्ध होगी।

× × ×

५—नोबेल-पुरस्कार विजेता इवान बुनिन

पाठकों को विदित होगा गत वर्ष का नोबेल-पुरस्कार स्व० जान गाल्सवर्दी को उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'फ़ार्सेट सागा' पर दिया गया था। इस बार सन् १९३३ के पुरस्कारविजेता रूसी लेखक 'इवान बुनिन' हैं। इवान बुनिन का जन्म सन् १८७० में वोरोनेझ (रूस) में हुआ था। उनकी लिखी पुस्तकों में से कुछ के अनुवाद—दी विलेज, दी ब्रदर्स, दी जेंटिलमैन आफ़ सान फ़्रांसिस्को नाम से हो चुके हैं। सन् १९३३ में अंग्रेज़ी से 'वेल आफ़ डेज़' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, और इसी पर नोबेलपुरस्कार उन्हें दिया गया है। इवान बुनिन की कला पर हम सुविधानुसार आगामी किसी संख्या में प्रकाश डालेंगे।

× × ×

६—व्याकरणवाद की लीपापोती

ता० ४ नवंबर के भारत में पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीजी का 'व्याकरणवाद' शीर्षक से एक नोट छपा है। इसमें माधुरी-संपादक का भी ज़िक्र आया था। मई (सन् १९३३) की माधुरी में 'हिंदी-भाषा और व्याकरण' शीर्षक एक लेख रायबहादुर पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए० का छपा था। इस विवादात्मक विषय पर यही लेख मिश्रजी का माधुरी में छपा है। इधर चौबेजी लिखते हैं कि "अक्टूबर बीत रहा है और अब तक जुलाई की माधुरी मेरे पास नहीं आयी"। चतुर्वेदीजी के लिखने से इतना तो स्पष्ट ही है कि मई की माधुरी के न पहुँचने की शिकायत आपको नहीं है। अब यह संभव नहीं कि आपने अपने प्रति-द्वंद्वी लेखक का लेख ही उस अंक में न पढ़ा हो। फिर, हिंदी के पाठक इस तथ्य से भली भाँति परिचित हैं कि उत्तर-प्रत्युत्तर की भावना से आप कितने ज़्यादा प्रभावित रहते हैं। किंतु मिश्रजी के लेख पर आपकी किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी पढ़ने में नहीं आयी। इससे दो निष्कर्ष निकल सकते हैं—(१) या तो आप मिश्रजी के तर्कों का उत्तर देने में असमर्थ हैं, (२) या फिर देना नहीं चाहते। अतएव स्पष्ट है कि चौबेजी का यह लिखना सरासर झूठ है और हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों को धोखा दे रहा है कि यदि "माधुरी संपादक अब भी वह अंक, जिसमें मिश्रजी का लेख छपा है, भेज दें तो रायबहादुर मिश्रजी का उपदेशपूर्ण उत्तर पढ़ लूँ!" ... साहब, अब पढ़ चुके होंगे; क्योंकि आपके ... पर दुबारा वह संख्या भेज दी गयी है।

चतुर्वेदीजी महाराज को एक शिकायत है और वह माधुरी-संपादक से है—ऐसा जान पड़ता है। आप लिखते हैं—"पर साश्चर्य खेद है कि अक्टूबर बीत रहा है और आज तक जुलाई की माधुरी मेरे पास नहीं आयी, हालाँकि वह पहले बराबर मेरे पास आती थी, और ... आती थी। पर जुलाई से बिलकुल नहीं आती। इसका रहस्य भगवान् ही जानें"।

चौबेजी महाराज अपनी प्रकृति के अनुसार दही के ... ... रहे हैं। वस्तुतः रहस्य वहस्य इसमें ... है। भला भगवान् को इतनी फ़ुर्सत कहाँ कि माधुरी आपके पास क्यों नहीं पहुँच रही है, इसका रहस्य ढूँढ़ते फिरें—साथ ही आपके दरेदौलत पर जाकर दस्तबस्ता अर्ज़ भी करें! सत्य तो यह है कि अपने संबंध की प्रत्येक बात का रहस्य मनुष्य ख़ुद जानता है। जिस कारण से आपके नाम पर माधुरी का भेजा जाना रोक दिया गया है, वह आपके पूछने पर स्पष्ट शब्दों में बताया जा चुका है—यह कि माधुरी उन्हीं विद्वान् लेखकों और कवियों की सेवा में अमूल्य भेजी जाती है जिनका बहुमूल्य सहयोग माधुरी को प्राप्त है। माधुरी कोई चैरिटेबुल (दानखाते की) संस्था तो है नहीं कि चाहे जो अपना पुश्तैनी हक़ बताकर पुश्त-दर-पुश्त उसके पाने का हक़ पेश करता फिरे। यहाँ तो पारस्परिक सहयोग की बात है। खेद है, ऐसे थोथे 'गुरुडम' का रंग यहाँ न जमेगा। मेरी नज़रों में उसका ज़रा भी महत्त्व नहीं है। और, संतोष की बात है कि हिंदी के पाठक भी उसकी निःसारता से अब बहुत कुछ परिचित हो चुके हैं तथा दिन-प्रतिदिन होते जा रहे हैं।

× × ×

७—अभाव का रहस्य

अभाव का अर्थ कमी, अनुपस्थिति अथवा किसी वस्तु का न होना ही हम जानते हैं, पर इसका रहस्य बहुधा मनुष्य के मानसिक भावों में छिपा रहता है। जो वस्तु हमें प्राप्त है, जिसका हम अपनी इच्छानुसार उपभोग कर सकते हैं, वह हमारी न होकर भी हमें अपनी ही जान पड़ती है; परंतु जिस वस्तु को हम अपनी समझते हैं, अपना अधिकार जिस पर समझते हैं—उसका उपभोग अथवा उपयोग यदि हम अपनी इच्छानुसार स्वतंत्रतापूर्वक नहीं कर सकते, तो वह हमारी होकर भी वस्तुतः हमारी नहीं रहती। अतएव उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का प्रश्न अभाव के ज्ञान में गौण है; मूल प्रश्न उसके उपभोग का आ जाता है। तब यदि यह कहा जाय कि अभाव का रहस्य मानसिक भावों का वह अंतर्द्वंद्व है जो किसी वस्तु पर हमारा अधिकार घोषित करता है, तो क्या असंगति है? हम बहुधा देखते हैं कि मनुष्य को जो कुछ प्राप्त नहीं है, उसी को वह पाना चाहता है। यह भी देखते हैं कि जिस पर मनुष्य का अधिकार नहीं, उसके प्रति वह किसी भी हालत में उदासीन ही रहता है। ऐसी स्थिति में कल्पना भ

के रहस्य का उद्‌घाटन करती है—अर्थात् अक्षम होने ही के कारण मनुष्य किसी वस्तु को या तो त्याज्य समझता है, या फिर उसका तिरस्कार करता है। इसलिए कोई वस्तु वस्तुतः त्याज्य अथवा तिरस्करणीय है—यह कोई निष्कर्ष नहीं है। इसी प्रकार जब आप ऐसे लोगों को देखें जो दूसरों की बुराई करते हों—दूसरे के ग्रंथों की अवहेलना करते हों, तो आपको यह निश्चय करना पड़ेगा कि उनके ग्रहण करने की शक्ति का ह्रास उनमें है। त्याज्य अथवा तिरस्करणीय होना मनुष्य के भावों पर निर्भर है। बहुधा देखते हैं कि कोई व्यक्ति अथवा कोई कृति किसी विशेष समय में ग्राह्य रहती है, तो वही किसी अन्य अवसर पर अग्राह्य निंदनीय अथवा आलोच्य बन जाती है। बस, ऐसे ही उदाहरणों में अभाव का रहस्य प्रतिलक्षित होता है। यही रहस्य जीवन की प्रत्येक दिशा में—प्रत्येक क्षेत्र में अभाव की संज्ञा स्थिर करता है और मनुष्य उससे प्रभावित भी होता है। अपवादों की बात हम नहीं कहते; पर मूल प्रतिक्रिया अभाव की यही होती है कि हम उसकी प्रेरणा से बहुधा भाव को भी अभाव मान लेते हैं और तब हम बिना कुछ सोचे-विचारे कह बैठते हैं कि अमुक मनुष्य अथवा अमुक वस्तु गुण-विहीन है। इस गुणविहीनता का मापदंड हमारा अभाव स्वयं बनता है और फलतः हमें अभाव की ही ओर प्रेरित करता रहता है। इस अभाव से बचने के लिए—इस लिए कि उसे हम महसूस ही न करें—हमें सद्‌भाव उत्पन्न करने की ज़रूरत रहती है। कारण, सद्‌भाव ही एक ऐसी वस्तु है जिसमें अभाव का लोप हो जाता है, और जो कुछ हमारा नहीं है वह भी हमें अपना भासित होने लगता है। अभाव के रहस्य का यही विश्वजनीन दृष्टिकोण है जो व्यवहारवाद में भी आदर्शवाद की स्थापना कर सकता है।

× × ×

८—अंतरराष्ट्रीय बौद्ध-विश्वविद्यालय

भगवान् बुद्ध भारतवर्ष की विभूति हैं; भारतमाता उन्हें पाकर धन्य हुई है। आज भारत में भले ही बौद्धधर्म के अनुयायी उतने न हों, किंतु जापान-चीन आदि विदेशों में अभी बौद्धधर्म का झंडा उसी शान से फहरा रहा है। और, समय की गति तो देखिए कि हम अपने भगवान् बुद्ध का संदेश आज विदेशों से प्राप्त करते हैं। स्व० अनागारिक देवमित्त धम्मपाल ने इस देश में बौद्ध-संदेशों का प्रचार करने में बहुत काम किया है। सारनाथ का मूलगंधकुटी विहार (काशी) उनकी भक्ति और बौद्धधर्म के प्रति उनकी आस्था का जीवित प्रमाण है। उन्होंने तन मन धन—अपना सर्वस्व बौद्धधर्म की प्रतिष्ठा और प्रचार में दे दिया। बौद्ध संसार में वह सबसे महान् व्यक्ति कदाचित् हों। उनकी स्मृति में अंतरराष्ट्रीय बौद्ध-विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रयत्न स्तुत्य है। ख़ासकर वर्तमान समय में तो इसकी कितनी आवश्यकता है—यह समझने की बात है। आज वस्तुतः भारतवर्ष को अंतरराष्ट्रीय संबंध की ज़रूरत है। विभिन्न देशों से ज्ञान-विज्ञान में भारत का आदान-प्रदान हो, भारत उनकी भौतिकता को अपने अध्यात्मज्ञान से निखारकर विश्वबंधुत्व का पाठ पढ़ावे। और, यह कार्य अंतरराष्ट्रीय बौद्ध-विश्वविद्यालय समय आने पर बहुत सफलता से कर सकेगा। अमेरिका, इँगलैंड, चीन, जापान प्रायः सभी देशों की सहानुभूति इसके साथ होगी। हम ऐसे अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की आयोजना का अभिनंदन करते हैं।

× × ×

९—'भारतमित्र' की स्वर्णजयंती

हिंदी-प्रेमियों के लिए सचमुच बड़े गर्व की बात है कि उन्हें अपने जीवन में एक हिंदी-पत्र की स्वर्णजयंती देखने का अवसर तो प्राप्त हुआ। अवश्य ही 'भारतमित्र' के अध्यवसायशील संचालकों का धैर्य प्रशंसनीय है, जिनकी बदौलत हिंदी-भाषा का मस्तक ऊँचा होगा। पिछले ५६ वर्ष से यह पत्र प्रकाशित हो रहा है और कदाचित् किसी समय का सर्वप्रथम साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र है। उमर में हमसे ख़ुद ही यह १८–२० वर्ष बड़ा है, तब हमारे लिए यह संभव नहीं कि इसकी सेवाओं के संबंध में समुचित प्रकाश डाल सकें। हाँ, भावी साहित्यकारों और पत्रकारों के लिए इसने जो पथ प्रदर्शित किया, यदि वह इतना श्लाघ्य न होता तो अवश्य ही यह इतना भाग्यशाली भी न होता कि आज हिंदी को इस प्रकार फूलते-फलते और इतने पत्रों एवं प्रेमियों को उसकी सेवा में निरत देखता। स्व० बालमुकुंद गुप्त, पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, पं० बाबूराव पराड़कर आदि-आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठ पत्रकारों ने अपनी कठिन साधना और जीवनरस से पाल-पोसकर इसे इस अवस्था तक पहुँचाया है, अतएव उनकी साधना को हम धन्य कहते हैं और पत्र के वर्तमान संचालक पं० मोतीलाल मिश्र एम्० ए० को इस स्वर्णजयंती के आयोजन पर भूरि-भूरि बधाई देते हैं। हमें विश्वास है, भारतमित्र की स्वर्णजयंती मनानेवालों के सामने लोकमान्य तिलक के 'केसरी' की जयंती का आदर्श होगा, और वे इस अवसर को अधिक से अधिक सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे!

मृगनयनी

[कविवर बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" की कृपा से]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू ।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष ३ खंड १ | श्रावण, ३०७ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)— अगस्त, १९२९ | संख्या १ पूर्ण संख्या २५

उत्सुक

[श्रीसियारामशरण गुप्त]

साथ में कर दे कुछ पाथेय ।
जाने दे, निदेश दे, मातः,
प्राप्त करूँ कुछ श्रेय ।
पड़ा रहूँ घर-भीतर कब तक;
कर ही सका यहाँ क्या अब तक ;
निकलूँगा न यहाँ से जब तक
पाऊँगा क्या ज्ञेय ?
साथ में कर दे कुछ पाथेय !
तेरा दूध पिया जी भरकर,
रख सकूँगा उसे न घर पर ।
बाहर अच्छी तरह विचरकर
पाऊँ नव बल प्रेय ;
साथ में कर दे कुछ पाथेय !
जाकर देखूँ मुक्त भुवन में,
पथ, प्रांतर, पुर, निर्जन वन में,
वास कर रहा है मन मन में
तेरा ही गुण गेय ;
साथ में कर दे कुछ पाथेय !
तेरा वरद पाणि ले सिर पर ,
घूमूँ शुभाशीष ले घिरकर ;
नवोल्लास-पूर्वक घर फिरकर
पूजूँ ये पद ध्येय ;
साथ में कर दे कुछ पाथेय !

महाकवि रवींद्रनाथ की कविता

[पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"]
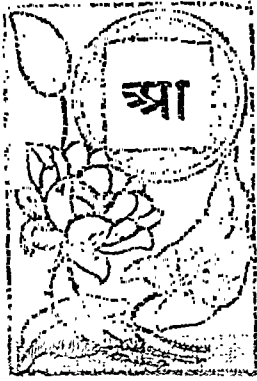
आज वाणी के विशाल मंदिर में कविता-शिल्प के सर्वोत्तम कलाकार महाकवि रवींद्रनाथ ही समझे जाते हैं। संसार के बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वानों ने उनकी अनुवादित कविताओं के भाव देखे हैं, और मर्म समझकर एक स्वर से उनकी प्रतिभा की प्रशंसा की है। बंगाल में कुछ ऐसे भी विद्वान् बंगालियों का एक समुदाय है, जो रवींद्रनाथ को भारत के अब तक के पैदा हुए कवियों में सर्वश्रेष्ठ समझता है। देशबंधु दास के समान ऐसे भी बंगाली बहुत-से हैं, जिनके कथनानुसार रवींद्रनाथ की ५० पंक्तियों में कहीं चार ही छः पंक्तियाँ कवित्व-पूर्ण तथा प्रांजल हैं। मैं इतनी छान-बीन में यहाँ नहीं पड़ूँगा। मेरा उद्देश इस प्रबंध में रवींद्रनाथ की कविता का रसास्वादन कराना ही है, न कि उनकी निर्विवाद-सिद्ध प्रतिभा पर विचार करना। हाँ, उनके एक पाठक की हैसियत से मैं यह ज़रूर कहूँगा कि वह एक प्रतिभाशाली महाकवि अवश्य हैं।

मौन भाषा—

"थाक, थाक, काज नाइ, बोलियो ना कोनो कथा।
चेये देखी, चले जाइ, मने-मने गान गाइ,
मने-मने रचि बोसे कतो सुख कतो व्यथा।
विरही पाखीर प्राय अजाना कानन छाय
उड़िया बेड़ाक सदा हृदयेर कातरता;
तारे बाँधियो ना धरे बोलियो ना कोनो कथा।"

"रहने दो, अब कोई ज़रूरत नहीं, कोई बात न बोलो। आँखें खोलकर देखता हूँ, मन-ही-मन गाना गाता हूँ, मन-ही-मन न-जाने कितने सुख और कितने दुःख की रचना कर डालता हूँ। विरही पक्षी की तरह अज्ञात अरण्य की छाया में हृदय की कातरता उड़ती फिरे। उसे पकड़कर बाँधो मत, कुछ बोलो मत।"

रवींद्रनाथ को संसार की चहल-पहल बिलकुल ही पसंद नहीं। वह मौन में ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं; वहीं उन्हें भाषा, भाव तथा संसार के ज्ञान की तमाम बातें संचित हुई-सी देख पड़ती हैं। वह मौन में ही सहृदय मुखरता की सृष्टि प्रत्यक्ष करते हैं, इसीलिये उसका उल्लेख किया है। दूसरी भावना में जो विरही पक्षी की उपमा दी गई है, वहाँ यह दिखलाया गया है कि हृदय की आकुलता यदि प्रबंधकार हृदय की छाया में वन के विहंग की तरह अबाध उड़ती रहे, तो उसका इसी में कल्याण है, इसी में उसकी मुक्ति है, उस वेदना को किसी तरह की सांत्वना से बाँधने का प्रयत्न कोई न करे, वही उस वेदना की मुक्ति है।

"एकदा बोसे छिनु विजने चाहि,
तोमार हात निये हाते।
दोहाँर कारो मुखे कथाटी नाहीं,
निमेष नाहीं आँखि-पाते।
से दिन बुझेछिनु प्राणे,
भाषार सीमा कोन खाने,
विश्व- हृदयेर माझे
वाणीर वीणा कोथा बाजे।
किसेर वेदना से वनेर बुके
कुसुमे फोटे दिन-यामी,
बुझिनु जबे दोहें व्याकुल सुखे
काँदिनु तुमि आर आमी।"

"एक दिन जब एकांत में हेरता हुआ तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेकर मैं बैठा था, और हम दोनों में किसी के भी मुँह से बात नहीं निकलती थी, पलक नहीं पड़ते थे, उस दिन मैंने अपने हृदय में अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि भाषा की सीमा कहाँ तक है, वाणी की वीणा-झंकार विश्व के हृदय में कहाँ तक पहुँचती है। वह कौन-सी और कैसी वेदना है, जो दिन-रात अरण्य के हृदय में पुष्प के रूप से सुखकी

है। जब मैं यह समझा, तब तुम और मैं, दोनो व्याकुल सुख से रो दिए थे।"

यह मूक भाषा की विशद वर्णना संसार की अन्य भाषाओं को निस्सार सिद्ध कर रही है। प्रियतम अपनी प्रिया से कहता है कि उस रोज़, जब मैंने एकांत में तुम्हारा हाथ अपने हाथ में ले लिया था, मैंने देखा कि आप-ही-आप मेरी ज़बान बंद हो गई, अर्थात् सुख की अधिकता होने पर भाषा ने जवाब दे दिया; अथवा दूसरे शब्दों में यह मौन ही शिव और सुंदर की उस समय यथार्थ भाषा ठहरी थी। उसी दिन, नायक कहता है, मेरी समझ में आ गया कि संसार के हृदय में वाणी की वीणा जो बजती है, उसकी पहुँच कहाँ तक है, यानी वह सत्य शिव और सुंदर को व्यक्त नहीं कर सकती, वहाँ वह अक्षम है। इधर दर्शन-शास्त्र भी उस मौन-रूपी सत्य-शिव को "अवाङ्मनसोऽगोचरम्" कहते हैं। इस पद्य में मौन को ही व्यक्त करने में कवि ने इतने शब्द-जाल की सृष्टि की है, यह उपमा दिखाई है, फिर भी मौन मौन ही है।

'उच्छृंखल' को चित्रित करते हुए महाकवि रवींद्रनाथ ने अपने ही हृदय का चित्र रक्खा है, अपने ही उच्छृंखल रूप में रंगीन कल्पना द्वारा जीवन की ज्योति भर दी है—

"ए सुखेर पाने चाहिया रयेछ
केनो गो अमन कोरे ?
तुमी चिनिते नारिबे बुझिते नारिबे मोरे !
आमी केंदेछि हेसेछि भालो जे वेसछि
एसेछि जेतेछि सरे
कि जानि किसेर घोरे !
कोथा होते एता वेदना बहिया
एसेछे पराण मम,
विधातार एक अर्थ-विहीन
प्रलाप-वचन सम !
❀ ❀ ❀
जगत बेड़िया नियमेर पाश
अनियम शुधू आमी।
बासा बेंधे आछे काछे काछे सबे
कतो काज करे कतो कलरबे,
चिरकाल धरे दिवस चलिछे
दिवसेर अनुगामी।
शुधू आमी निज वेग सामालिते नारि
छुटेछि दिवस-यामी।
❀ ❀ ❀
प्रतिदिन वहे मृदु समीरण,
प्रति दिन फुटे फूल।
झड़ शुधू आसे क्षणेकेर तरे
सृजनेर एक भूल।
दुरंत साध कातर वेदना
फुकारिया उभराय,
आँधार होइते आँधारे छुटिया जाय।
ए आवेग निये कार काछे जाव,
निते के पारिवे मोरे !
के आमारे पारे आँकड़ि राखिते
दू खानि बाहुर डोरे !
आमी केवल कातर गीत !
केह बा सुनिया घुमाय निशीथे,
केह जागे चमकित।
कतो जे वेदना से केह बोझे ना,
कतो जे आकुल आशा,
कतो जे तीव्र पिपासा-कातर भाषा !
❀ ❀ ❀
अधिक समय नाइ
झड़ेर जीवन छुटे चले जाय
शुधू केंदे "नाइ" "नाइ" !
जार काछे आसि तार काछे शुधू
हाहाकार रेखे जाइ !
❀ ❀ ❀
कोथाकार एइ शृंखल-छेंड़ा
छुटिछाड़ा ए व्यथा
कांदिया-कांदिया, गाहिया-गाहिया,
अजाना आंधार सागर बाहिया,
मिशाए जाइबे कोथा !
एक रजनीर प्रहरेर माझे
फुराबे सकल कथा !"

क्यों जी, इस दुख की ओर क्यों इस तरह दर

रहे हो ? तुम मुझे पहचान नहीं सकोगे, समझ नहीं सकोगे ! मैं रोया हूँ, हँसा हूँ और मैंने प्यार भी किया है। आया हूँ और फिर चला जाऊँगा। न-जाने किस एक आवेश में मैं इस तरह आया-जाया करता हूँ ! नहीं मालूम, कहाँ से इतनी व्यथा का बोझ लादकर मेरे प्राण आए हैं—यह जैसे विधाता का एक बिना अर्थ का कोई प्रलाप हो ! ××× तमाम संसार को नियमों के पाश घेरे हुए हैं; सिर्फ़ मैं ही एक अनियम हूँ ! पास-ही-पास सभी लोग तो अपना-अपना वास-स्थल घेरे हुए हैं; कितने कलरव के साथ कितना काम वे करते हैं; चिरकाल से दिवस-दिवस का अनुगमन करता हुआ चल रहा है । ×××प्रतिदिन मंद-मंद समीर बहती है, फूल खिलते हैं। परंतु आँधी एक क्षण के लिये ही आती है, जैसे सृष्टि की कोई एक भूल हो। दुस्तर साध, कातर वेदनाएँ रोती हुई उमड़ पड़ती, अँधेरे से और अँधेरे की ओर चली जाती हैं। यह वेग लेकर मैं किसके पास जाऊँ, कौन मुझे सँभाल सकेगा ! सिर्फ़ दो बाहुओं की डोर से कौन मुझे पकड़ रख सकेगा ! मैं सिर्फ़ एक व्याकुल संगीत हूँ ! कोई उसे सुनकर रात्रि को सो जाता है, कोई सुनकर चौंक उठता है। कितनी इसमें वेदना है, कितनी व्याकुल आशा भरी हुई है, यह कोई नहीं समझता, इसमें कितनी तीव्र प्यास से व्याकुल भाषा भरी हुई है ! ××× अब अधिक समय नहीं, आँधी की ज़िंदगी दौड़ती हुई समाप्त होती है, "चाहिए, चाहिए" सिर्फ़ रोती हुई ! जिसके पास भी मैं जाता हूँ, उसके पास सिर्फ़ हाहाकार रख जाता हूँ। कहाँ की यह श्रृंखला तोड़नेवाली सृष्टि से अलग की एक वेदना है ! रोती हुई, गाती हुई, अज्ञात अंधकार-सागर पार करती हुई, न-जाने कहाँ मिल जायगी ! रात के सिर्फ़ एक ही पहर में तमाम बातें समाप्त हो जायँगी !"

इस पद्य में कवि के हृदय की सिर्फ़ व्याकुलता एक लक्ष्य करने का विषय है। उन्होंने उच्छृंखलता को जो रूप यहाँ दिया है, वह उनकी पंक्तियों में वेदना का इतना गुरु भार लेकर पाठकों के सामने आता है कि कवि के साथ पाठकों की पूरी सहानुभूति हो जाती है, वे उस वेदनायुक्त उच्छृंखलता को प्यार करने लगते हैं। कवि की वर्णना में ऐसी ही शक्ति प्रकट हुई है बँगला के "चाइ-चाइ"-शब्द में आँधी की "साँय साँय" की ध्वनि है, उधर "चाइ-चाइ" की अर्थ द्युति व्याकुल प्रार्थना को सजीव कर देती है। दूसरी ओर, जिसके पास भी वह आँधी जाती है, हाहाकार रख जाती है; इस "हाहाकार" में भी आँधी का यथार्थ शब्द और उच्छृंखलता का अर्थ-गौरव भरा हुआ है। पद्य की तमाम लड़ियाँ उच्छृंखलता को जीवन दे रही हैं। यह ऐसी उच्छृंखलता है, जो सबको प्रिय है, सबकी सहानुभूति खींच लेती है। कारण यहाँ शिव और सुंदर का समावेश हो गया है।

श्रृंगार—

"ओगो, तुमी एमनि संध्यार मतो होव।
सुदूर पश्चिमाचले कनक आकाशतले
एमनि निस्तब्ध चेये रव।
एमनि सुंदर शांत एमनि करुण कांत
एमनि नीरव उदासिनी,
ओइ मतो धीरे-धीरे आमार जीवन-तीरे
बारेक दाँड़ाव एकाकिनी।
जगतेर पर पारे निए जाव आपनारे
दिवस-निशार प्रांत देशे।
थाक् हास्य-उत्सव, ना आसुक कलरव
संसारेर जनहीन शेषे।
एसो तुमी चुपे-चुपे श्रांतिरूपे निद्रारूपे,
एसो तुमी नयन आनत,
एसो तुमी म्लान हेसे दिवादग्ध आयुशेषे
मरणेर आश्वासेर मत।
आमी शुधू चेये थाकी अश्रुहीन श्रांत आँखी,
पड़े थाकी पृथिवीर परे;
खुले दाव केशभार, घन स्निग्ध अंधकार
मोरे ढेके दिक स्तरे स्तरे।
राखो ए कपाले मम निद्रार आवेश सम
हिम-स्निग्ध करतलखानि।
वाक्य-हीन स्नेह-भरे अवश देहेर परे
अंचलेर प्रांत दाव टानी।
तार परे पले-पले करुणार अश्रुजले
भरे जाक् नयन-पल्लव।

सेइ स्तब्ध आकुलता गभीर विदाय-व्यथा
कायमने करि अनुभव ।"

"सुनो, तुम इसी तरह संध्या की तरह होओ ! दूर अस्ताचल में, सुनहले आकाश के नीचे, इसी तरह चुपचाप हेरती रहो । इसी तरह सुंदर, शांत, इसी तरह करुण, क्लांत, इसी तरह नीरव, उदासिनी, इसी तरह धीरे-धीरे मेरे जीवन के तट पर एक बार अकेली खड़ी हो जाओ ! संसार के दूसरे पार, दिवस और रात्रि के अंत देश में, अपने को ले जाओ । यह हास्य और उत्सव पड़े रहें, संसार के उस निर्जन अंत में कोई कलरव भी न सुनाई दे, तुम म्लान हँसकर आओ—दिवादग्ध आयु के अंत होने पर, मृत्यु के आश्वासन की तरह । मैं पृथ्वी पर पड़ा हुआ केवल अश्रु-हीन शांत आँखों से हेरता रहूँ । अपने केश-भार खोल दो, स्निग्ध घनांधकार मुझे स्तर-स्तर से ढक दे । मेरे मस्तक पर निद्रा के आवेश की तरह अपना हिम-स्निग्ध कर-तल रख दो । निःशब्द स्नेह से मेरे अवश अंगों पर अपने अंचल का प्रांत खोलकर डाल दो । इसके बाद क्रमशः करुणा के अश्रु-बिंदुओं से मेरी पलकें भी भर जायँ । इसी स्तब्ध व्याकुलता के साथ बिदाई की गहन व्यथा का मैं काय-मन से अनुभव करूँ ।

संध्या की प्रकृति के साथ ही कविवर रवींद्रनाथ ने इस करुण-शृंगार की सृष्टि की है, जो सब तरह से मौजूँ हुआ है । संध्या की प्रकृति में संहार की जो भावना मिली हुई है, उसकी सार्थकता कवि ने बड़ी ही सफलता के साथ प्रदर्शित की है । संध्या-सुंदरी के काल्पनिक चित्र में परिशांत नायक की उक्ति और भावनाएँ बिलकुल मिल जाती हैं ।

"तबे पराणे भालोवासा केनो गो, दिले
रूप ना दिले यदि विधि हे !
पूजार तरे हिया उठे जे व्याकुलिया
पूजिब तारे गिया कि दिए !
❀ ❀ ❀
भालो बासिले जारे भालो देखिते होय
से जेनो पारे भालोबासिते !
मधुर हासी तार दिक से उपहार
माधुरी फोटे आर हासिते !
जार नवनि-सुकुमार कपोल, तल
कि शोभा पाय प्रेम-लाजे गो !
जाहार ढल-ढल नयन-शतदल
तारेइ आँखीजल साजे गो !
ताइ लुकाये थाकि सदा पाछे से देखे,
भालोवासिते मरी सरमे ।
रुधिया मनोद्वार प्रेमेर कारागार
रचेछि आपनार मरमे ।
आहा ए तनु-आवरण श्रीहीन म्लान
झरिया पड़े यदि शुकाए,
हृदय माझे मम देवता मनोरम
माधुरी निरुपम लुकाए ।
जतो गोपने भालोवासी पराण भरि,
पराण भरि उठे शोभाते ।
जेमन कालो मेघे अरुण आलो लेगे
माधुरी उठे जेगे प्रभाते ।
देख, वनेर भालवासा आँधारे वसि
कुसुमे आपनारे विकासे ।
तारका निज हिया तुलिछे उजलिया
आपन आलो दिया लिखा से ।
❀ ❀ ❀
आमी रूपसी नहीं तवू आमारो मने
प्रेमेर रूप से तो सुमधुर ।
धन से जतनेर शयन-सपनेर
करे से जीवनेर तमो दूर ।"

"तो प्राणों को फिर प्यार ही क्यों दिया, हे विधि, यदि तुमने मुझे रूप ही नहीं दिया है । पूजा के लिये मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है; परंतु मैं क्या देकर उसे पूजूँ ? × × × प्यार करने पर जिसे प्यार किया जाता है, वह भी जैसे प्यार कर सके—वह अपनी मधुर मंद मुसकान का उपहार दे, जिसकी हँसी में माधुरी फूट पड़ती है । जिसके वे कपोल मक्खन-से सुकुमार हैं, अहा, प्रेम और लज्जा में उनकी कैसी शोभा बन जाती है । और, आँसू भी बस, उसे ही सजते हैं, जिस-की कमल-सी आँखें खुली हुई डोल रही हों । इसलिये मैं सदा छिपी रहती हूँ कि कहीं वह देख न ले । प्यार करती हुई मारे शर्म के मरी रहती हूँ । अपने मन के

द्वार बंद कर अपने ही मन में मैंने प्रेम का कारागार बना लिया है। आह! इस शरीर का श्री-हीन, म्लान आवरण यदि सूखकर झड़ जाय, तो भी हृदय में मेरे मनोरम देवता उस अनुपम माधुरी को छिपाए रहेंगे। मैं एकांत में जितना ही जी भरकर प्यार करती हूँ, उतना ही मेरे प्राण शोभा से भर जाते हैं, जैसे काले मेघ में प्रभात के अरुण आलोक-स्पर्श से माधुरी जग जाती है। देखो, अरण्य का प्यार अंधकार में बैठा हुआ पुष्पों में अपना विकास करता है। तारकाएँ अपने हृदय को उज्ज्वल करती जा रही हैं। यह उन्हीं के आलोक से लिखा हुआ है। मैं रूपवती नहीं हूँ; किंतु मेरे मन में भी जो प्रेम का रूप है, वह मधुर तो है। वह शयन और स्वप्न का सयत्न-संचित धन है, जीवन के अंधकार को दूर कर देता है।"

यहाँ महाकवि रवींद्रनाथ ने एक कुरूपा नायिका के हृदय-भावों का परिचय दिया है। प्रेम एक ऐसा अव-लंब है, जो जीव-मात्र के लिये आवश्यक है; नहीं तो उस जीवन का कोई अर्थ ही नहीं। यहाँ कवि की नायिका प्यार करती है; पर अपने प्रिय के सामने नहीं जाती। कारण, जिस रूप को देकर प्रेमिकाएँ अपने प्रिय जनों की पूजा-अर्चा करती हैं, वह रूप उसमें नहीं। मनो-भावों का कितना सुंदर विकास दिखलाया है कि प्रेम करके नायिका अपने-ही-आप में संतुष्ट रहती है, वह अपनी आत्मा में प्रेम के कारण अपार सौंदर्य प्रत्यक्ष करती है, जैसे साधक को इष्ट की प्राप्ति हो गई हो, जैसे काले मेघ में प्रभात की लालिमा से स्वर्णाभा आ गई हो।

व्यंग्य—

रवींद्रनाथ व्यंग्य लिखने में भी बड़े पटु हैं। दूसरों के व्यंग्य में कटुता प्रायः रहती ही है, कितना ही कोई बचकर लिखे। पर रवींद्रनाथ में यह बात नहीं। ऐसी कुशल लेखनी है कि मन मुग्ध हो जाता है। जैसी सरल कवित्व-पूर्ण उक्ति, वैसा ही प्रसन्न मर्मवेधी व्यंग्य। पाठकों के मनोरंजन के लिये मैं यहाँ "नव-वंग-दंपती का प्रेमालाप" उद्धृत करता हूँ। यह व्यंग्य बाल-विवाह पर किया गया है। वर जवान है, वधू बालिका।

वर—

"जीवने जीवने प्रथम मिलन,
से सुखेर आर तुला नाइ।
एसो सब भूले आजि आँखी तूले
शुधु दुँहूँ दोँहाँ मुख चाइ।
मरमे मरमे सरमे भरमे
जोड़ा लागियाछे एक ठाँइ;
जेनो एक मोहे भूले आछि देँहे
जेनो एक फूले मधु खाइ।
जनम अवधि विरहे दगधि
ए पराण होयेछिल छाइ,
तोमार अपार प्रेम-पारावार
जुड़ाइते आमी एतु ताइ।
बलो एक बार "आमिओ तोमार
तोमा छाड़ा कारे नाहीं चाइ!"
उठो, केन, ओकि, कोथा जाव सखि,

वधू—(सरोदन) आइ मार काछे शुते जाइ!"

वर—"आज जीवन के साथ जीवन का पहले-ही-पहल मिलन हुआ है, इस सुख की तुलना नहीं हो सकती। आज सब कुछ भूलकर, आँखें उठा दोनो दोनो के मुख की ओर देखें। हम दोनो के मर्मस्थल अब एक दूसरे से जुड़ गए हैं, जैसे हम दोनो एक ही मोह में भूले हुए हों—जैसे एक ही फूल में मधु-पान कर रहे हों। जन्म से लेकर अब तक विरह की आग से झुलस रहा था, मेरे प्राण ख़ाक हो रहे थे, तुम्हारा प्रेम अपार पारावार है, मैं इसीलिये वहाँ शीतल होने के विचार से आया हूँ। एक बार तो कहो कि मैं तुम्हारी ही हूँ, तुम्हें छोड़ और किसी को भी नहीं चाहती। उठो सखि, यह क्या? कहाँ जाती हो?"

वधू—"दीदी के पास सोने जा रही हूँ।"

वर—"कि करिछ बने श्यामल शयने
आलो कोरे वसे तरुमूल?
कोमल कपोले जेनो नाना छले!
उड़े एसे पड़े एलो चूल!
पदतल दिया काँदिया काँदिया
बहे जाय नदी कुलुकुल।

सारा दिनमान सुनि सेइ गान
ताइ बुझि आँखीं ढुलुढुल !
कानन निराला आँखी हासीढाला
मन सुखस्मृति समाकुल !
कि करिछ वने कुंज भवने”

वधू—“खेतेछि बोसिया टोपाकुल।”

वर—“वन्य श्यामल शयन में बैठी, तरु मूल को प्रकाश से भरती हुई क्या कर रही हो ? कोमल कपोल पर मानो अनेकानेक छल से खुले हुए तुम्हारे बाल आ-आकर गिर रहे हैं। पैरों के नीचे कुल-कुल रोती हुई नदी बही जा रही है। तमाम दिन लगातार यह संगीत सुन रही हो, शायद इसी लिये तुम्हारी आँखों में निद्रा का आवेश छा गया है ? एकांत वाटिका में तुम्हारी ये हँसती हुई आँखें, सुख की स्मृतियों से भरा हुआ मन कितना सुंदर है ! वाटिका के इस लता-वितान के नीचे क्या कर रही हो ?”

वधू—“बैठी हुई बेर खा रही हूँ।”

वर—‘आजि प्राण खुले मालती-मुकुले
वायु करे जाय अनुनय।
जेनो आँखी दुटी मोर पाने फुटी
आशा भरा दुटी कथा कय।
जगत छानिया कि दिव आनिया
जीवन यौवन करि क्षय ?
तोमा तरे सखि बोलो करिव कि ?”

वधू—“आरो कुल पाड़ो गोटा छय !”

वर—“आज प्राणों को मुक्त कर मालती के मुकुलों से वायु विनय कर रही है, जैसे दोनो आँखें मेरी ओर मुड़कर आशा से भरी हुई बातें कर रही हैं। संसार छानकर मैं तुम्हें क्या ला दूँ, अपने जीवन और यौवन का क्षय करके ? कहो, ऐ सखि, तुम्हारे लिये मैं क्या करूँ ?”

वधू—“और भी चार-छः बेर तोड़ दो।”

बालिका को बहुत कुछ प्रेम समझाया गया; पर उसकी समझ में वे बातें नहीं आईं। वह अपने ही काम की बातें करती गई। इससे नायक निराश होकर प्रेम की आग भड़काए हुए चले आते हैं !

प्रतिभा—

“आमी ढालिव करुणा-धारा,
आमी भाँगिव पाषाण-कारा,
आमी जगत् प्लाविया वेड़ाव गाहिया
आकुल पागल पारा।
केश एलाइया, फूल कुड़ाइया,
रामधनु-आँका पाखा उड़ाइया,
रविर किरणे हासी छड़ाइया,
दिव रे पराण ढाली।
शिखर होइते शिखरे छुटिव,
भूधर होइते भूधरे लुटिव,
हेसे खलखल गेये कलकल,
ताले-ताले दिव ताली।
तटिनी होइया जाइव वहिया—
जाइव वहिया—जाइव वहिया—
हृदयेर कथा कहिया-कहिया
गाहिया-गाहिया गान,
जतो देवो प्राण वहे जावे प्राण,
फुरावे ना आर प्राण।
एतो कथा आछे, एतो गान आछे,
एतो प्राण आछे मोर;
एतो सुख आछे, एतो साध आछे,
प्राण होये आछे भोर।
रवि-शशि भाँगि गाँथिव हार,
आकाश आँकिया परिव वास।
साँझेर आकाशे करे गलागली,
अलस कनक जलद राश,
अभिभूत होये कनक-किरणे
राखिते पारे ना देहेर भार
जेनरे विवशा होयेछे गोधूली,
पूरव आँधार वेणी पड़े खुली,
पश्चिमेते पड़े खसिया-खसिया
सोनार आँचल तार।

* * *

एतो सुख कोथा, एतो रूप कोथा,
एतो खेला कोथा आछे,
यौवनेर वेगे बहिया

के जाने काहार काछे ।
(ओरे) अगाध वासना असीम आशा,
जगत देखिते चाइ !
जागियाछे साध चराचरमय
प्लाविया बहिया जाइ !
जतो प्राण आछे ढालिते पारी,
जतो काल आछे वहिते पारी,
जतो देश आछे डुबाते पारी,
तवे आर किबा चाइ,
पराणेर साध ताइ !
कि जानि कि होलो आजि जागिया उठिल प्राण,
दूर होते सुनि जेनो महासागरेर गान ।
सेइ सागरेर पाने हृदय छुटिते चाय,
तारी पद-प्रांते गिये जीवन लुटिते चाय ।
अहो ! कि महान् सुख अनंते होइते हारा,
मिशाते अनंत प्राणे अनंत प्राणेर धारा ! '

"मैं करुणा की धारा ढालूँगा, पाषाण-खंडों की बनी कारा तोड़ दूँगा। मैं व्याकुल पागल की तरह संसार को प्लावित कर गाता हुआ घूमूँगा । अपने बड़े-बड़े बालों को खोलकर, फूल चुनता हुआ, इंद्र-धनुष-जैसे रंगीन पंखों से उड़कर, रवि की किरणों में अपनी हँसी बिखेर-कर अपने प्राणों को ढाल दूँगा। एक शिखर से दूसरे शिखर पर दौड़ूँगा ; एक भूधर से दूसरे भूधर पर लोटूँगा ; खल-खल हँसता हुआ, कल-कल गाता हुआ, ताल-ताल पर तालियों के ताल दूँगा । तटिनी होकर हृदय की बातें कह-कहकर गाने गाता-गाता हुआ बह जाऊँगा । जितना ही मैं प्राण दूँगा, मेरे प्राण बहते जायँगे, प्राणों का फिर अंत न होगा । इतनी बातें हैं, इतना गान है, इतना प्राण मुझमें है, इतना सुख है, इतनी साधें हैं कि प्राण मतवाले हो रहे हैं । सूर्य और चंद्र को चूर कर मैं हार गूँथूँगा । आकाश खींचकर वास पहनूँगा । संध्या के आकाश में राशि-राशि अलस कनक-वर्णी जलद परस्पर आलिंगन करेंगे, जैसे स्वर्ण-किरणों से अभिभूत होकर वे अपने देह का भार न सँभाल सकते हों । मानो गोधूलि विवश हो गई है, पूर्व की ओर उसका अंधकार वेणी-सा खुलकर गिर रहा हो, और पश्चिम में उसका सोने का अंचल । ××× इतना सुख, इतना रूप, इतनी क्रीड़ाएँ और कहाँ हैं ? यौवन के वेग से न-जाने मैं किसके पास वह जाऊँगा ! मेरे अंदर अगाध वासना, असीम आशा उमड़ आई है। मैं तमाम संसार देखना चाहता हूँ । ऐसी साध जग गई है कि इस चराचर को प्लावित कर मैं बह जाऊँ। मेरे अंदर जितना प्राण है, मैं पूर्णतः ढाल सकूँ, जितना काल है, सब व्याप्त कर वहन कर सकूँ, जितने देश हैं, डुबा सकूँ, तो और मुझे क्या चाहिए ?—मेरे प्राणों की यही साध है ।"

यह तरुण रवींद्रनाथ की रचना है । जिस समय उनकी किशोरता धीरे-धीरे उनके पुष्ट यौवन के साथ मिल रही थी, जब पहले-पहल उनके अंदर प्रतिभा का प्रवाह आया था । वंग-भाषा के मर्मज्ञों ने इस कविता की सहस्रों कंठ से प्रशंसा की है । इसमें इतनी शक्ति है, जो महाकवि के भविष्य रूप को स्पष्ट कर देती है । इतना अच्छा निर्वाह, इतना प्रखर प्रवाह, इतनी दमदार भाषा आजतक बहुत कम कवियों में देख पड़ी है । इस दुर्जेय शक्ति का स्फुरण कवि प्रत्यक्ष करता है, तभी वह इतनी बड़ी-बड़ी बातें, इतनी बड़ी-बड़ी आशाओं को लेकर, कह डालता है । भाषा में बनावट कहीं भी नहीं मिलती, जैसे कोई मुक्त प्रवाह हो । इस शक्ति का ही प्रवाह है कि आज रवींद्रनाथ कविता के शीर्ष-स्थान के अधिकारी हो सके हैं ।

संगीत—

महाकवि रवींद्रनाथ ने अब तक दो हज़ार से अधिक संगीत लिखे हैं । पहले-पहल इनके संगीतों में हिंदोस्तानी यानी हिंदी के संगीतों का असर ज़्यादा रहा है । अब इधर बंगाल के प्रचलित 'बाउल' के स्वर में यह बिलकुल बँगला के ही उच्चारण और लय के विचार से संगीतों की रचना कर रहे हैं। रवींद्रनाथ के अपर समालोचकों की जो यह सम्मति है कि यदि रवींद्रनाथ अपर कविताओं की रचना न करके केवल इतने ये संगीत ही छोड़ जाते, तो भी वह संसार के एक श्रेष्ठ कवि रहते, इस कथन के साथ मैं पूर्णतया सहमत हूँ । संगीत-काव्य में भी रवींद्रनाथ की अद्भुत कवि-प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है—

"अयि भुवन मनोमोहिनी ।
निर्मल सूर्य-करोज्ज्वल धरणी

जनक-जननी-जननी ।
नील सिंधु-जल-धौत चरण-तल,
अनिल-विकम्पित श्यामल अंचल,
अंबर-चुंबित-भाल हिमाचल,
शुभ्र-तुषार-किरीटिनी ।
चिर-कल्याण-मयी तुमि धन्य,
देश-विदेशे वितरिछ अन्न,
जाह्नवी-यमुना विगलित-करुणा,
पुण्य-पीयूष-स्तन्य-दायिनी ।
प्रथम प्रभात उदय तव गगने,
प्रथम साम-रव तव तपोवने,
प्रथम प्रचारित तव वन-भवने
ज्ञान-धर्म कत पुण्य-काहिनी ।"

यह रवींद्रनाथ का प्रसिद्ध संगीत है । इसकी रचना [illegible]ही के अनुसार हुई है । भाव स्पष्ट हैं और उनकी [illegible]ति और सौंदर्य का कहना ही क्या ?

"यामिनी ना जेते जागाले ना केन
बेला होलो मरि लाजे ।
सरमे जड़ित चरणे केमने
चलिब पथेरि माझे ॥
आलोक-परशे मरमे मरिया,
हेरो लो शेफाली पड़िछे झरिया,
कोनो मते आछे पराण धरिया,
कामिनी शिथिल साजे ।
निबिया बाँचिल निशार प्रदीप
ऊषार बातास लागी;
रजनीर शशि गगनेर कोने
लुकाय शरण मागी !
पाखी डाकि बोले, गेला विभावरी,
वधू चले जले लइया गागरी,
आमिओ आकुल कबरी आबरी,
केमने जाइबो काजे !"

"रात बीतने से पहले ही तुमने मुझे क्यों नहीं जगा दिया ? दिन चढ़ आया है, मुझे लाज लग रही है । लाज से जकड़े हुए पैर, मैं राह कैसे चलूँगी ? आलोक के स्पर्श से अपने ही आप में मुरझाई हुई, देखो, शेफालिकाएँ झड़ी जा रही हैं । कामिनी इस शिथिल सज्जा में किसी तरह अपने प्राणों को सँभाले हुए है । ऊषा की वायु के लगने पर निशा का प्रदीप गुल होकर बचा, रात का चंद्र आकाश के कोने में शरण लेकर छिप रहा है ; चिड़ियाँ पुकारकर कहती हैं—रात गई; वधुएँ घड़े लेकर जल भरने जा रही हैं ; मैं भी खुली हुई अपनी वेणी सँभाल रही हूँ ; अब काम पर कैसे जाऊँ ?"

यह एक युवती गृहस्थ-वधू की वाणी है । प्रभात हो गया है, सूर्य निकल आया है, वह अपने प्रिय की सेज पर सोती ही रह गई, रात को शायद उसे देर तक जगना पड़ा था । अब उठकर वह अपने प्रियतम से कहती है कि तुमने मुझे रात रहते ही क्यों नहीं जगा दिया, अब मुझे बाहर निकलते हुए लाज लगती है । यह वर्णना अलंकारों के साथ ऐसी सुंदर हुई है जो रवींद्रनाथ की ही लेखनी कर सकती थी । भाषा की विभूति तो वही समझ सकते हैं, जिन्हें बंग-भाषा का थोड़ा-बहुत ज्ञान है ।

कविता में जिस किसी विषय पर रवींद्रनाथ ने लेखनी चलाई है, वहीं उन्होंने अद्भुत चमत्कार पैदा कर दिया है ।

श्रीनगर की सैर

[श्रीपृथ्वीपालसिंह]

A land of streams! some like a downward smoke,
Slow-dropping veils of thinnmost lawn do go.
——Tennyson.

And all the place is peopled with sweet airs.
The light clear element which the place wears,
Is heavy with the scent of blooming flowers,
Which floats like mist laden with unseen showers.
——Shelley.

श्रीनगर कश्मीर की राजधानी है, संसार में 'वेनिस ऑफ़् दी ईस्ट' (Venice of the East) के नाम से प्रसिद्ध है। झेलम नदी ने श्रीनगर को वेनिस बना दिया है। ५२०० फ़िट की ऊँचाई पर नगर बसा है, जन-संख्या लगभग डेढ़ लाख के है। श्रीनगर कश्मीर के वक्षःस्थल पर जगमगाता हुआ मोती है।

श्रीनगर के चारो ओर गगनस्पर्शी पर्वतों की पंक्तियाँ प्रकृति का गौरव-गान कर रही हैं। श्रीनगर के हृदय-पटल पर मंद-गति से झेलम नदी प्रवाहित हो रही है। पहाड़ी सरिताएँ चंचल होती हैं, बड़ी तेज़ी से बहती हैं; पर्वत-शिलाएँ, लकड़ी के लट्ठे आपस में टकराते हुए सरिता के भीषण नाद को और भी भयंकर बनाते हुए सरिता की गोद में उछलते-कूदते, बहते दृष्टिगोचर होते हैं। परंतु श्रीनगर में झेलम गहरी और गंभीर है, उसकी चाल में वह उतावलापन और तेज़ी नहीं, उसके स्वर में माधुर्य है, गुंजन है, वह भीषणता और कर्कशता नहीं जो अन्य पहाड़ी नदियों में होती है।

श्रीनगर का सारा सौंदर्य झेलम के वक्षःस्थल और लोल तरंगों पर तैरा करता है। श्रीनगर में सरिता की शांत गोद में पर्वत-शिलाएँ और विशाल लट्ठे नहीं
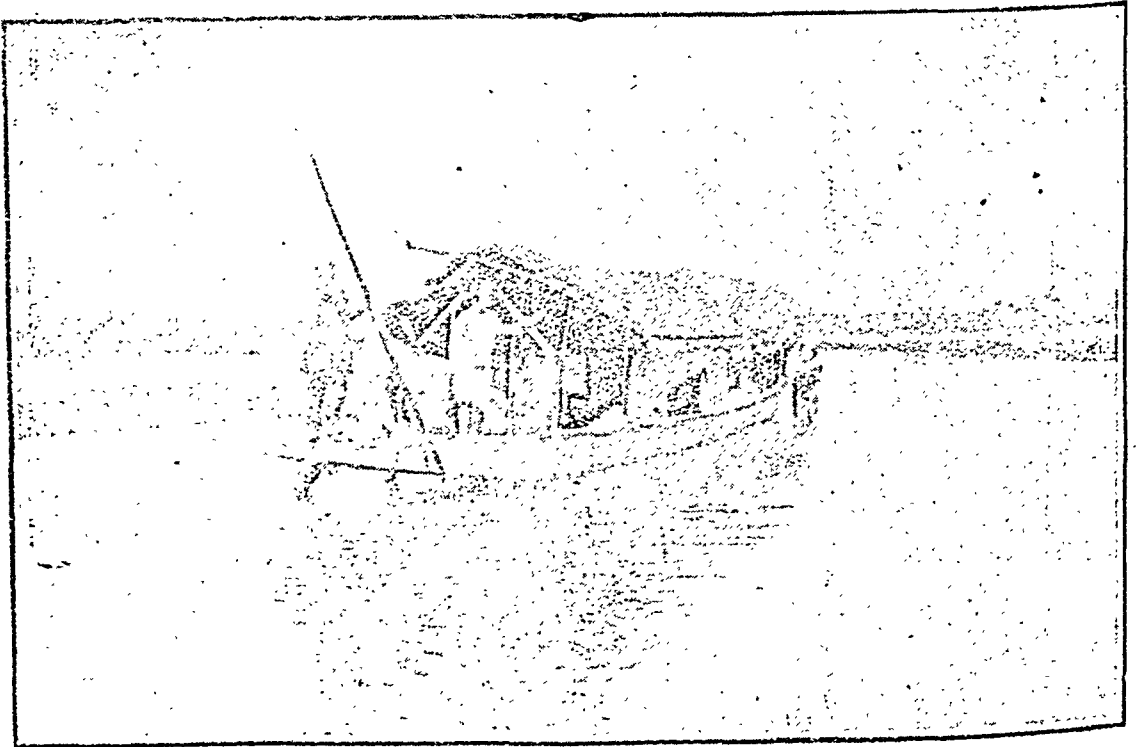
झेलम में 'डोंगे' पर जल-विहार हो रहा है

हैं, उनके स्थान पर सुंदर काठ के बने हुए हाउस-बोट, डोंगे और शिकारे क्रीड़ा करते हैं। हाउसबोट झेलम के लिये एक नई चीज़ है। हाउसबोट नदी में तैरते हुए काठ के बने हुए मकान को कहते हैं—चार-पाँच कमरे होते हैं, कमरे क़ालीन, मेज़, कुरसी आदि से प्रायः सजे होते हैं। प्रत्येक हाउसबोट के साथ एक डोंगा भी होता है, दूर से डोंगा सरिता पर तैरती हुई झोंपड़ी-सी लगती है। यह डोंगा रसोईघर के काम में लाया जाता है। ग़रीब यात्री बहुधा डोंगों को रहने-सहने के काम में भी लाते हैं। हाउसबोट के साथ में एक हलकी नाव भी होती है जिसे वहाँ के लोग 'शिकारा' कहते हैं। इन शिकारों द्वारा मनुष्य एक तट से दूसरे तट तक आता-जाता है।

कहा जाता है कि हाउसबोट के जन्मदाता केनार्ड साहब हैं और १८८८ ई० में उन्हीं का पहला हाउस-बोट झेलम पर तैरा था। इसके पहले डोंगों और शिकारों पर ही जल-विहार होता था। अब तो झेलम नदी में हाउसबोट-ही-हाउसबोट दृष्टिगोचर होते हैं—इनका एक उपनिवेश-सा बस गया है।

रात्रि के समय जब निर्मल आकाश में चाँद अपनी सोलहों कला से निकलता है, उस समय श्रीनगर की छटा अद्वितीय होती है। नगर के चारो ओर पर्वतमाला और शुभ्र चाँदनी में चमकता हुआ रजत-मुकुट-सा हिमागार, झेलम के कंचन-से नीर में डगमगाता हुआ चाँद का प्रतिबिंब, हाउसबोटों और तट पर बसे हुए मकानों की प्रतिच्छाया, सरिता की स्निग्ध तरंगों का अलौकिक गान हृदय को पागल बना देता है।

अँधेरी रात में श्रीनगर की शोभा दूसरी ही होती है। चारो ओर अंधकार का साम्राज्य होता है। इस घोर अंधकार में एक ऊँचे टीले पर बिजली से प्रदीप्त एक कुटीर दिखाई पड़ती है। इस पहाड़ी टीले को 'तख़्ते सुलेमान' कहते हैं। कुटीर शंकराचार्य का मंदिर है। कश्मीर राज्य की ओर से प्रकाश आदि का प्रबंध होता है। सुनते हैं, यह मंदिर बड़ा पुराना है, समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। इसकी छत तो आधुनिक नए ढंग की बनी हुई है—परंतु इसके अन्य भाग पुरातन हैं।

तख़्ते-सुलेमान के शिखर पर चढ़कर देखने से कश्मीर की वादी का अति रम्य दृश्य दिखाई देता है। चित्रकार यहीं से नगर का पूरा चित्र उतारते हैं। जिस समय देखिए, कोई-न-कोई मनुष्य कैमरा लिए चित्र उतारने की तैयारी कर रहा है। तख़्ते-सुलेमान वादी से एक हज़ार फ़िट की ऊँचाई पर है। शंकराचार्य के मंदिर ने इसके गौरव को और भी बढ़ा दिया है।

×　　　×　　　×

श्रीनगर झेलम के दोनो ओर बसा है। एक ओर से दूसरी ओर जाने के लिये झेलम में सात पुल बँधे हैं। ये पुल प्रायः लकड़ी के ही हैं। पुलों के नीचे शिकारे तैरा करते हैं। एक तट से दूसरे तट तक पहुँचाने के लिये शिकारेवाले एक पैसा प्रति मनुष्य लेते हैं।

सबसे पहला पुल अमीर कदल है। इस पुल के नीचे एक ओर दो-मंज़िल हाउसबोट पर कश्मीरी होटल है। इसमें धनी, सेठ-साहूकार ठहरते हैं। नगर के मुख्य भाग में होने के कारण इसका कारबार अधिक है। यहाँ से हाट-बाज़ार, होटल आदि सभी निकट हैं।

तीसरे और चौथे पुल के बीच में विशाल अट्टालि-काएँ तथा सेठ-साहूकारों और भारी व्यापारियों की दूकाने हैं। कश्मीरी शिल्पकारी की चीज़ों, शाल-दुशालों, रेशम की साड़ियों और चाँदी के सुंदर बर्तनों से दुकानें पटी पड़ी हैं।

तीसरे पुल के निकट ही दाहिनी ओर प्रसिद्ध शाह हमदम मसजिद है। मसजिद पुराने ढंग की एक विचित्र ही वस्तु है। समस्त मसजिद काठ की बनी है। मसजिद के छज्जों और खिड़कियों में लकड़ी का बारीक काम है, जिसे देखकर कश्मीर की पुरानी कारीगरी का आभास मिल जाता है। मसजिद की छत पर मिट्टी छाई होने के कारण गुल-लुआदि के गमलों में हरी-हरी घास उग आती है। शाह हमदम मसजिद और उसके पीछे श्रीनगर के पुराने क़िले का सिलसिलेवार हुआ दृश्य नदी के उस तट से बड़ा सुहावना लगता है।

इस पुल के बाद ही मंदिरों का सिलसिला शुरू होता है। जो पुल देवालयों और मसजिदों का मार्ग दिखाता है, वही नगर के सबसे श्रेष्ठ भाग में प्रवेश कराता है।
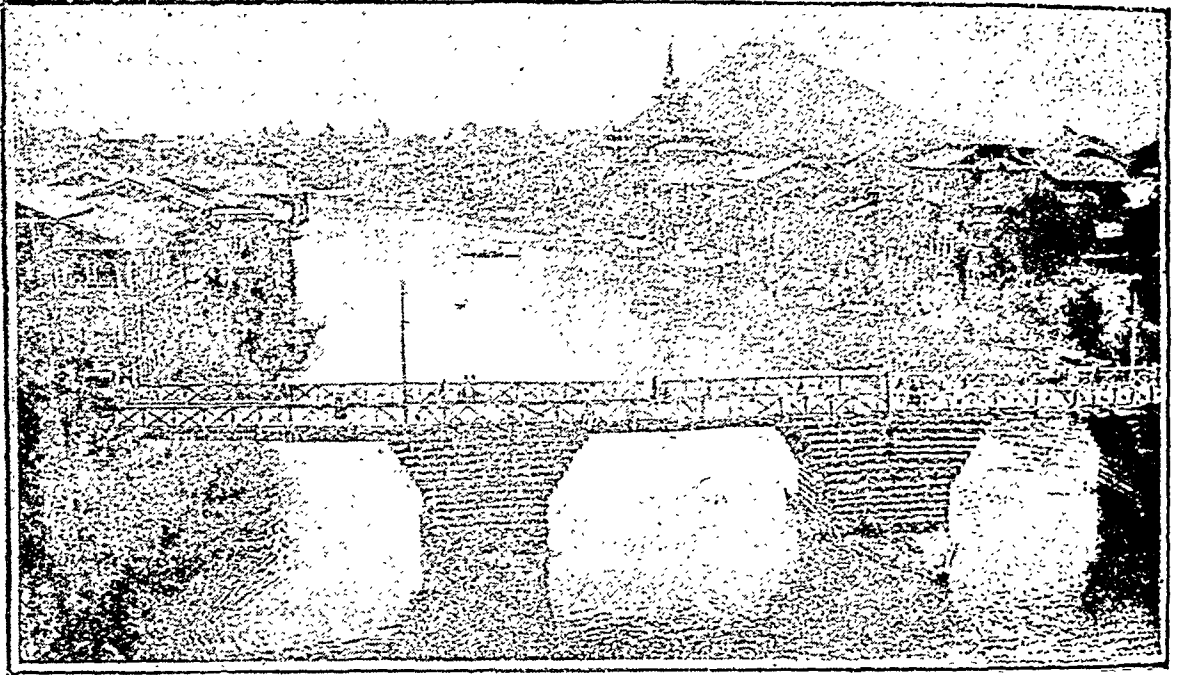
श्रीनगर में झेलम का तीसरा पुल और शाह हमदम मसजिद तथा उसके पीछे हरी पर्वत पर पुराने क़िले का दृश्य

इस स्वर्ग में भी नराधमों ने अपने लिये नरक बना रक्खा है। तीसरे पुल से कुछ दूर पर 'ताशवान्'-नामक मुहल्ला है, श्रीनगर के मुख की कालिमा और भूस्वर्ग का नरक यही है। यहाँ वार-वनिताएँ तथा किन्नरियाँ रहती हैं।

सातवें पुल के उस पार मध्य एशिया-निवासी यार-कंदियों की बस्ती है, और इसी के बराबर ही कश्मीर का प्रसिद्ध स्त्रियों का चिकित्सालय है। चिकित्सालय की बागडोर कश्मीर-राज्य के हाथ में है। इसके द्वारा प्रतिवर्ष सहस्रों प्राणियों का उपकार होता है।

प्रथम पुल के एक ओर अजायबघर और स्टेट का मुख्य चिकित्सालय है। बंद (बाँध) के किनारे-किनारे सरिता के तट से लगे हुए तमाम विशाल भवन हैं, चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, असिस्टेंट रेज़ीडेंट आदि तथा विदेशियों के बँगले हैं।

× × ×

नगर अति रम्य है, काठ के मकानों के साथ-ही-साथ ईंट और पत्थर की बड़ी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ हैं। चौड़ी-चौड़ी 'माल रोड' की तरह सड़कें देखकर लखनऊ, लाहौर की याद आ जाती है। नगर के भीतर गली-कूचों में जाने से जी घबराता है। गलियाँ गंदी और सकरी हैं। मौसम भी कभी-कभी जून-जुलाई के दिनों में असह्य-सा हो जाता है, परंतु काले श्यामले मेघों के दर्शन-मात्र ही से इस अवस्था में एकदम घोर परिवर्तन हो जाता है। शीतल समीर के दो ही झोकों में शरीर का ताप और वह व्याकुल कर देनेवाली गर्मी दूर हो जाती है, मनुष्य काँपने लगता है, ऊपर से एक शाल और ओढ़ लेने की इच्छा होती है।

श्रीनगर की वास्तविक सुंदरता का अनुभव, प्राकृतिक माधुर्य का ज्ञान किसी स्वच्छ सड़क पर निकल जाने पर लगता है। गुलमर्ग या खानबल को जानेवाले पथों पर दोनो ओर सफ़ेदा (Poplar) के सुंदर सुडौल वृक्षों की मनोमुग्धकारी पंक्तियाँ मीलों चली गई हैं। कश्मीर की प्रसिद्ध वादी में प्रवेश करते ही पथों पर एक-से रूप, रंग और क़द के वृक्षों की क़तार देखकर मनुष्य मुग्ध हो जाता है।

नगर विशेष में प्रकृति की सुंदरता का सच्चा परिचय देनेवाली कोई विशेष सामग्री नहीं। यहाँ न तो काली चट्टानों पर चाँदी की तरह झरते हुए झरने हैं और न मीलों लंबे हीरे की तरह चमकते हुए बर्फ़ के मैदान।
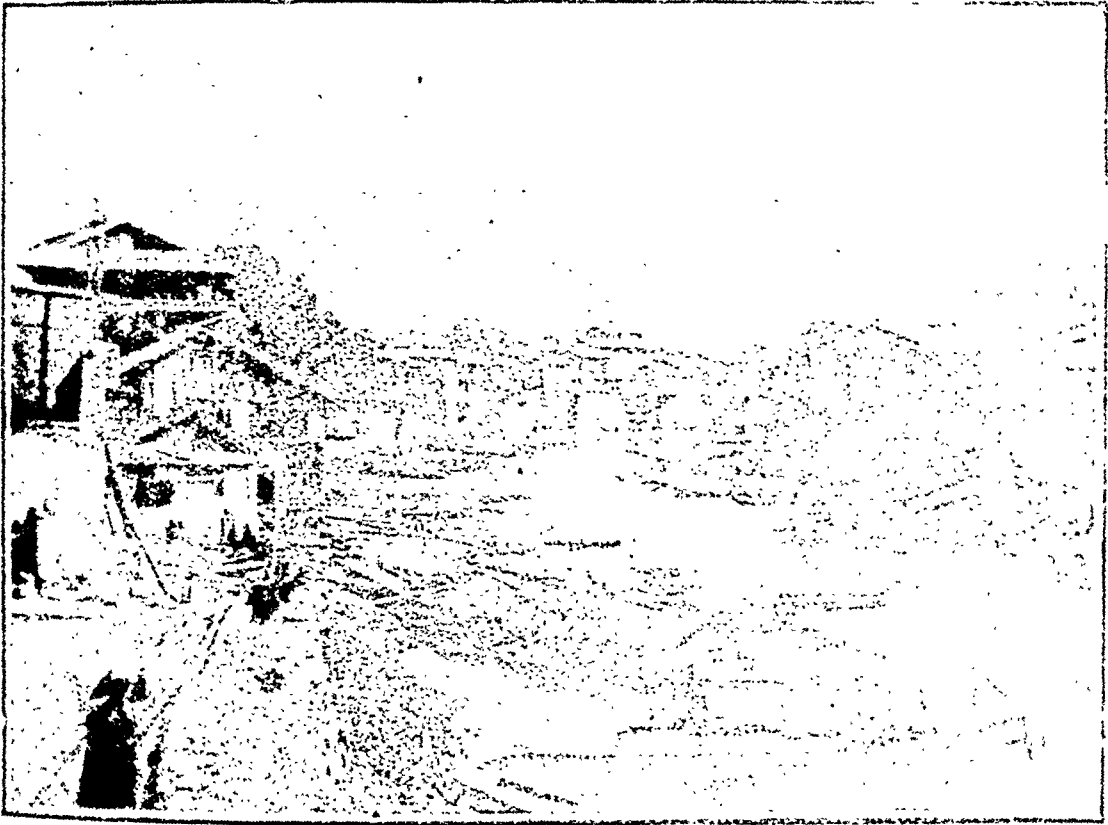
श्रीनगर या 'वेनिस ऑफ़् दी इस्ट' की एक झलक

हाँ, यह प्रकृति की सुंदर सृष्टि की छटा का दिग्दर्शन कराने के लिये मुख्य द्वार है। यहीं से यात्री गुलमर्ग, पहलगाम, अमरनाथ, सोनमर्ग, लिदरवैली, कोलाहाय पर्वत, वुलर झील आदि देखने जाते हैं।

श्रीनगर विशेष में—अजायबघर, रेशम का कारख़ाना, राजभवन, अमरसिंह टेकनिकल इंस्टीट्यूट आदि स्थान दर्शनीय हैं। शेख़बाग़ के उस ओर महाराजा कश्मीर का बनवाया हुआ एक भवन है। यह उनके अतिथियों के रहने-सहने के लिये बनाया गया था, परंतु आजकल उसमें अजायबघर है। अजायबघर में तीन विभाग हैं, किसी में जंगली पशु-पक्षियों के मृत शरीर हैं, किसी में पुराने समय के सिक्के और साँचे हैं तो किसी में पुराने समय की मूर्तियाँ आदि। अजायबघर में सुरक्षित और संग्रह की हुई वस्तुएँ इतिहासकारों के काम की हैं।

यहाँ से थोड़ी-सी दूर पर सरकारी रेशम का कारख़ाना है। यह संसार का सब से बड़ा रेशम का कारख़ाना है, कश्मीर राज्य-कोष को इससे बड़ी आय होती हैं। इस कारख़ाने में लगभग चार हज़ार मनुष्य काम करते हैं। लगभग डेढ़ लाख स्त्री-पुरुष यहाँ से रेशम के कीड़े ले जाते हैं, और रेशम की खेती करते हैं तथा इस धंधे से पाँच-छः लाख रुपए पैदा कर लेते हैं। कारख़ाने में अधिकतर रेशम का सूत ही तैयार किया जाता है और उसी का व्यापार होता है, वह भी विदेशी मुल्कों से। रेशम का सिल्क-विभाग कारख़ाना दर्शनीय है—कोई भी बे-रोक-टोक सुविधा से देख सकता है।

राज-भवन तो बिलकुल झेलम के तट पर ही है। झेलम राज-भवन के प्राकार से टकराती हुई बहती है। अमीर कदल पुल से शिकारे के रास्ते यहाँ तक मनुष्य सीधा ही पहुँच सकता है। राज-भवन की सुंदर अट्टालिका अति विशाल और आकर्षक है। प्राकार के चारों ओर फैली हुई वाटिका, [illegible] और [illegible] की [illegible], [illegible] ही बहती हुई सुंदर [illegible] का [illegible] दृश्य देखकर ऐसा [illegible] होता है कि [illegible] भवन में ही [illegible]। इस प्राकार में [illegible]

के लिये कई बड़े-बड़े कमरे हैं। जिस कमरे में दरबार लगता है, वह कमरा अति मनोहर है। पूर्व कश्मीर-नरेशों के चित्र भी यहाँ देखने में आते हैं। राज-भवन के अंदर एक मंदिर है। मंदिर छोटा है, परंतु सुंदर है। भवन में सँभलकर चलना पड़ता है, कहीं-कहीं फ़र्श इतना चिकना है कि मालूम होता है, मनुष्य काई पर चल रहा है। राज-भवन का भीतरी भाग देखने के लिये राज्य के किसी उच्च पदाधिकारी से परिचय होना अति आवश्यक है। साधारणतया बाहर ही से देखकर दर्शक संतोष कर लेते हैं।
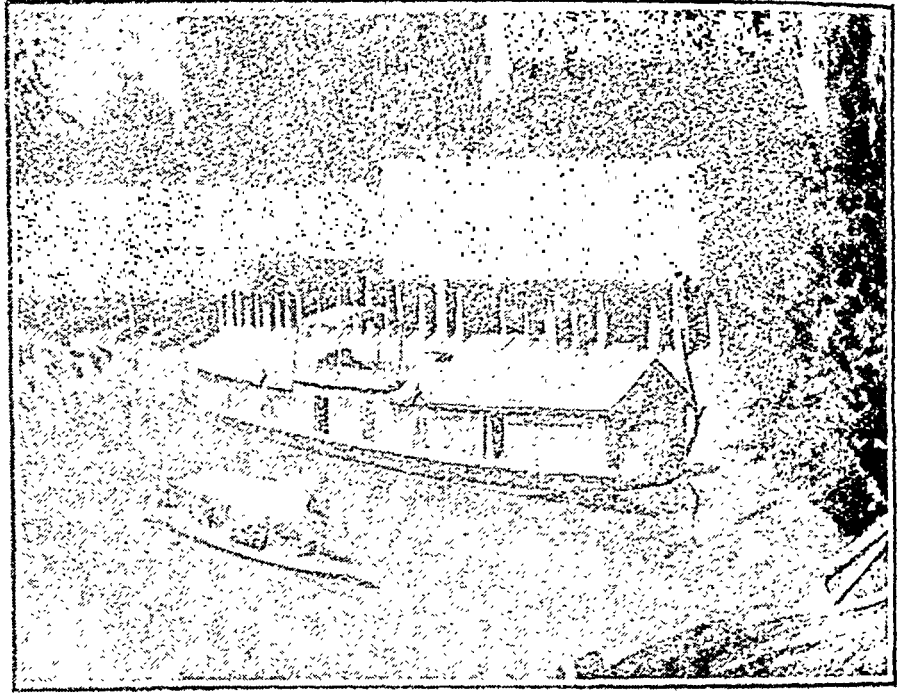
झेलम में हाउसबोट और किनारे लगे हुए सफ़ेदा के वृक्षों की मनोहर क़तार

अमरसिंह टेकनिकल इंस्टीच्यूट हुज़ूरीबाग़ से लगा हुआ है। यहाँ शिल्पकारी, चित्रकारी तथा कश्मीर की पुरानी कला और कारीगरी की शिक्षा दी जाती है। रेशम, ऊन आदि के वस्त्रों पर हाथ ही से सुई के सहारे सुंदर चित्र बना देना इस इंस्टीच्यूट के कारीगरों के बाएँ हाथ का खेल है। वस्त्रों पर बने हुए डल झील तथा पर्वतों और वनों के चित्र देखकर ऐसा विश्वास होने लगता है कि हम वास्तव में ही डल के तट पर या पर्वतों के निकट खड़े उन स्थानों को देख रहे हैं। इंस्टीच्यूट देखने के लिये वहाँ के प्रिंसिपल महोदय की आज्ञा लेनी पड़ती है।

श्रीनगर से जब जी उचटता है, तो लोग डल लेक, निशात बाग़, शालामार बाग़ आदि देखने चले जाते हैं। झेलम से एक नहर कट गई है। इसी नहर के रास्ते लोग डल झील की सैर करने जाते हैं। डल झील में जल-क्रीड़ा करते हुए, लोग उतरकर कुछ दूर पैदल चलकर निशात बाग़ और शालामार बाग़ की अलौकिक माधुरी का भी पान किए बिना नहीं रहते। मुग़ल-नरेशों के इन उद्यानों के बहते हुए जल-स्रोत और हँसते हुए फ़व्वारे देख मनुष्य अपने को भूल जाता है।

× × ×

श्रीनगर शीत-काल में बर्फ़ से ढक जाता है। वृक्षों पर हिम रुई-सा लदा हुआ दिखाई देता है, सड़कें बर्फ़ से पट जाती हैं, हाउसबोटों की छतों पर बर्फ़ का ढेर लग जाता है। श्रीनगर का चित्र ही बदल जाता है। जून-जुलाई के महीनों में बर्फ़ का नाम नहीं रहता। जिस समय बर्फ़ पिघलना प्रारंभ होता है, झेलम का पानी बढ़ने लगता है—बाढ़ आ जाती है, परंतु बाँध बँधे होने के कारण कोई हानि नहीं होती। हाल ही में एक असाधारण बाढ़ आ गई थी, श्रीनगर जलमय हो गया था।

जून-जुलाई के महीनों में ही, ग्रीष्म के ताप से व्याकुल होकर, इधर के लोग श्रीनगर-यात्रा को चल खड़े होते हैं। सभी यही सोचकर श्रीनगर में प्रवेश करते हैं कि फल-फूलों से बाज़ार भरी होगी, अंगूर जामुन के भाव लुट रहे होंगे, अनार अमरूद के भाव बिक रहे होंगे, ख़ूब जी-भरकर खायँगे। परंतु वहाँ पहुँचकर भारी निराशा होती है। इन दिनों केवल

शीत-काल में बर्फ़ से ढकी हुई श्रीनगर की एक सड़क

[illegible] के रूप-रंग के स्वादिष्ट 'गलास', 'चेरी', 'स्ट्राबेरी' [illegible] और ख़ूबानी आदि फल मिलते हैं। इन दिनों बाज़ार में गोभी के फूल भी बिकते दिखाई देते हैं। यहाँ आम नहीं होते, नीचे से आए हुए आम बड़े तेज़ बिकते हैं। श्रीनगर में सेब की खेती-सी होती है, बड़े-बड़े बाग़ हैं। अगस्त-सितंबर के महीनों में वृक्ष लाल-लाल सेबों से लद जाते हैं, इन्हीं दिनों सभी फलों की भरमार होती है। बाज़ार कश्मीर के प्रसिद्ध फलों से पट जाता है और फल मिट्टी के मोल बिकते हैं। जून-जुलाई के [illegible] को 'गलास' और 'शहतूत' ही मयस्सर होते हैं।

श्रीनगर में जो देवजी की 'कश्मीर-किशोरी' का वर्णन पढ़कर प्रवेश करते हैं और समझ बैठते हैं कि कश्मीर सौंदर्य की खान है, वहाँ की प्रत्येक रमणी रति-सी रूपवती है, उनके हृदय को भी निराशा की गहरी चोट सहनी पड़ती है। श्रीनगर में अनेकों देवियों के दर्शन हुए, ठंडा प्रांत होने के कारण रंग प्रायः सभी का साफ़ था परंतु अधिकतर देवियाँ भोंडी और भद्दी मुखाकृति की थीं। दो-चार इधर-उधर गौर-वर्ण सर्वांगसुंदरी देवियाँ भी दिखाई दीं; परंतु केवल उन्हीं दो-एक के सहारे यह कह देना कि कश्मीर सौंदर्य की खान है, अतिशयोक्ति नहीं तो और क्या है।

× × ×

श्रीनगर में कश्मीरी पंडितों और मुसलमानों की बस्ती है। लगभग ७८ फ़ी सदी मनुष्य मुसलमान हैं। कश्मीरी पंडित रूप-रंग के साफ़ होते हैं, उनकी मुखाकृति से ही उनकी प्रवृत्ति का अनुमान लग जाता है। वे बढ़ई, केवट और कारीगर आदि का काम करना हेय तथा धर्म और प्रकृति के विरुद्ध समझते हैं; रसोई बनाने, पूजा-पाठ कराने तथा मुंशीगीरी करने के लिये सदैव तैयार रहते हैं। मुसलमानों ने सभी पेशों और व्यवसायों का ठेका अपने सिर ले रक्खा है, मोचीगीरी से चुंगीघर की बाबूगीरी तक उनकी पहुँच है। श्रीनगर तथा अन्य स्थानों का भ्रमण करने पर मुझे एक बात बहुत खटकी—वह थी कश्मीरियों की गंदगी। कश्मीरी बड़े गंदे होते हैं, उनके शरीर में मनों मिट्टी थोपी होती है, शायद वे जुमा-जुमा भी नहीं नहाते। कश्मीरियों के घरों के आगे कीचड़, गोबर और कूड़े का ढेर होना कोई अचंभे की बात नहीं, यह उनके स्वभाव का दूर से ही परिचय देते हैं।

कश्मीर में पहनावा यहाँ से भिन्न होता [illegible] कश्मीरी स्त्रियाँ गले से लेकर पैर तक का एक लंबा ढीला-ढाला चोग़ा-सा पहनती हैं, जिसे वहाँ के लोग

'फिरन' कहते हैं। सर पर एक छोटा-सा दुपट्टा डाले रहती हैं, कानों में चाँदी के बीस के लगभग 'ईयरिंग' पहने रहती हैं, और हाथ कड़ों से लदे रहते हैं। मनुष्य भी फिरन ही से शरीर ढकते हैं, और एक विचित्र टोपी पहनते हैं, जो उनके सिर पर बिल्कुल चिपक जाती है, अँगरेज़ी में उसे 'स्कल कैप' (Skull cap) कहते हैं। वे घुटने तक के शलवार, पैरों में मूँज के जूते और हाथ में एक डंडा तथा कंधे पर एक कम्मल डाले दिखाई देते हैं। कश्मीरी स्त्री-पुरुष हृष्ट-पुष्ट होते हैं।

कश्मीरी रोटी नहीं खाते, दोनो वक्त चावल और 'करम' का साग या 'मुंडी' की तरकारी खाकर निर्वाह करते हैं। रोटी-दाल महीने-भर में एक ही दो बार खाते हैं, और कभी-कभी महीनों रोटी का मुँह नहीं देखते। ठंडक अधिक होने के कारण चाय का यहाँ ख़ूब प्रचार है, शायद ही कोई ऐसा घर बचा हो जहाँ 'लिपटन', 'ब्रुकबांड' या 'भट्टाचार्यजी' ने अपना सिक्का न जमा लिया हो।

कश्मीरियों को 'काँगड़ी' बड़ी प्रिय होती है। 'काँगड़ी' मिट्टी की अँगीठी-सी होती है, इस पर बेंत की बिनावट होती है, जिससे हाथ जलने का भय नहीं रहता। शीत-काल में जब उँगलियाँ ठिठुरने लगती हैं, तब यह दुअन्नी की काँगड़ी बड़ा आराम देती है।

कश्मीरियों की आर्थिक अवस्था शोचनीय है। ग़रीबी के कारण वे अपनी मान-मर्यादा तक से हाथ धो बैठते हैं। कुछ घटनाएँ याद करके आँखों में आँसू आ जाते हैं। मुझे ख़ूब याद है, जिस समय मैं मटन से पहलगाम ताँगे पर जा रहा था, रास्ते में एक गाँव पड़ा, वहाँ अखरोट के वृक्षों की भरमार थी। मन में विचार आया ही था कि यहाँ उतरकर अखरोट ख़रीदा जाय कि सामने से कई बालक कपड़ों में अखरोट लिए हुए दौड़कर आ गए और बोले—"सेठ साहब, अखरोट बड़ा सस्ता है, दो आने में सौ ले लो।" ताँगेवाले से भाव पहले ही मालूम हो गया था कि पाँच पैसे के सौ अखरोट मिलते हैं। हमने सौ अखरोट लेकर पाँच पैसे दे दिए और ताँगा हँकवा दिया। हमारे ताँगे के चारो ओर अखरोट बेचनेवाले बालकों की भीड़ लग गई थी,
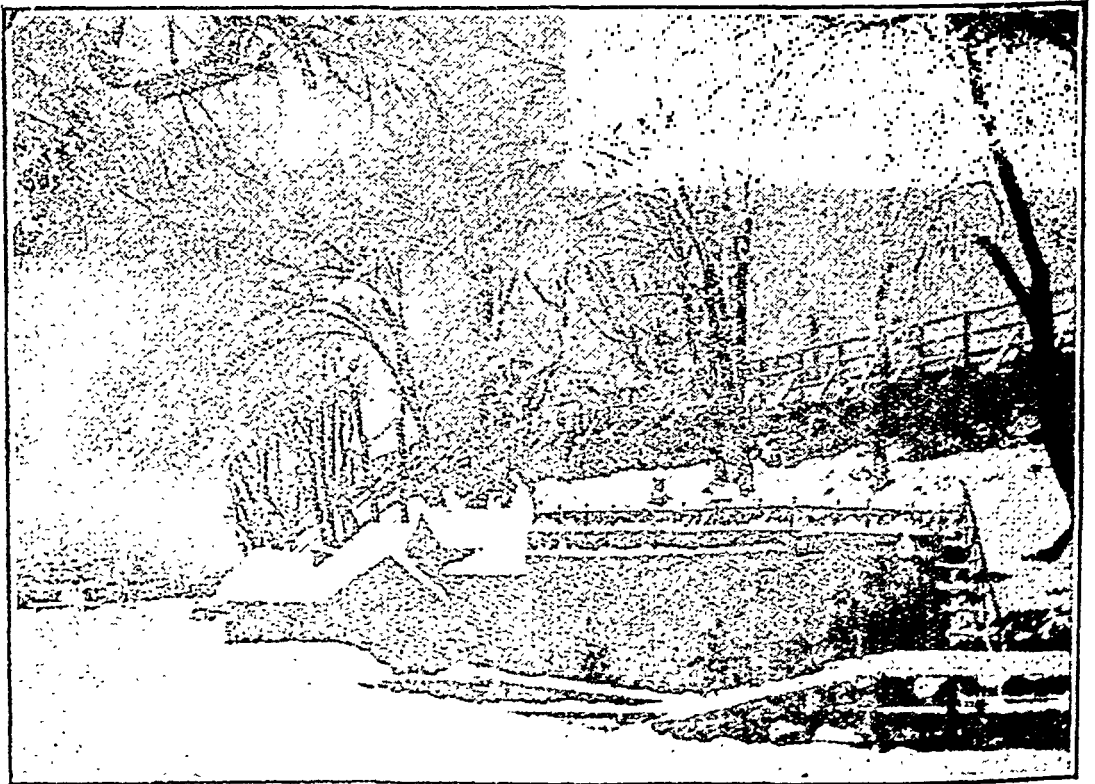
शीत-काल में हिमाच्छादित हाउसबोट का एक दृश्य

सभी हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहे थे कि "सेठ साहब, हम से ले लो—सेठ साहब, हम से ले लो।" बड़ी मुश्किल से इन ग़रीब बालकों के झुंड से निकलकर ताँगे पर बैठ पाए थे, परंतु उन बालकों ने लगभग एक मील तक हमारा पीछा किया। "सेठ साहब, हमारा अखरोट भी ले लो, बड़ा अच्छा है।"—यही कहते हुए बराबर ताँगे के साथ दौड़ते चले गए। हा! लाख मना करने पर भी उनकी आशा का तार न टूटा, हमारा पीछा करते ही गए। यह ग़रीबी का एक बड़ा करुण दृश्य था!

कश्मीर में जहाँ ऊँची चढ़ाई है वहाँ बहुधा घोड़े का आश्रय लेना पड़ता है। घोड़े के साथ ही उस घोड़े का स्वामी भी रहता है। मैले-कुचैले वस्त्रों से आभूषित, दरिद्रता और दीनता का अवतार बना हुआ वह दस-बारह मील चढ़ाई घोड़े के पीछे दौड़ता हुआ तै कर देता है। पहले से ही चुकता भाड़ा छः आने पैसे पा जाने पर माथे का पसीना पोछता हुआ ग़रीब घोड़ावाला हाथ-पैर जोड़ता है, ख़ुशामदें करता है। 'हुज़ूर, बख़्शीश'—'हुज़ूर, बख़्शीश' की ध्वनि से कान बहरे कर देता है। यदि आप 'बख़्शीश'-स्वरूप दो पैसे भी उसे दे देंगे, तो वह इतना प्रसन्न और संतुष्ट हो जायगा, मानो उसे कुवेर की संपत्ति ही मिल गई हो। दो पैसे के लिये वे अपना कलेजा निकालकर सामने रख देते हैं। अपनी जीविका उपार्जन के लिये वे कितना अनवरत परिश्रम करते हैं, कितनी यातनाएँ सहते हैं।

[...]की चरम सीमा को पहुँच गई है, सुनकर आप [...]। हाउसबोटों के स्वामी जो हाँजी या माँझी कहलाते हैं, हाउसबोट में ठहरे हुए यात्री के रंग-ढंग [...] उसके स्वभाव से ख़ूब परिचित हो जाने पर [...] घुमा-फिराकर किसी दिवस उपस्थित [...] देते हैं—"हुज़ूर, कश्मीर में क्या है? हम [...] के [...] तक [...] मेम साहब भी न हो, तब तक क्या लुत्फ़। हुज़ूर, हमारा लड़की बड़ा अच्छा है, आपके माफ़िक़ है ......।" मनुष्य-समाज के अधःपतन का कैसा वीभत्स दृश्य है! पिता अपनी पुत्री को अपने हाथों व्यभिचारिणी बनाने का प्रस्ताव करता है। क्यों? बेचारों को पेट-भर भोजन नहीं मिलता, इसी कारण।

कश्मीर में व्यभिचार की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ रही है, उसका मुख्य कारण है, ग़रीबी। कश्मीरी बालाओं का व्यापार-सा होने लगा है। कश्मीर में स्त्रियों का
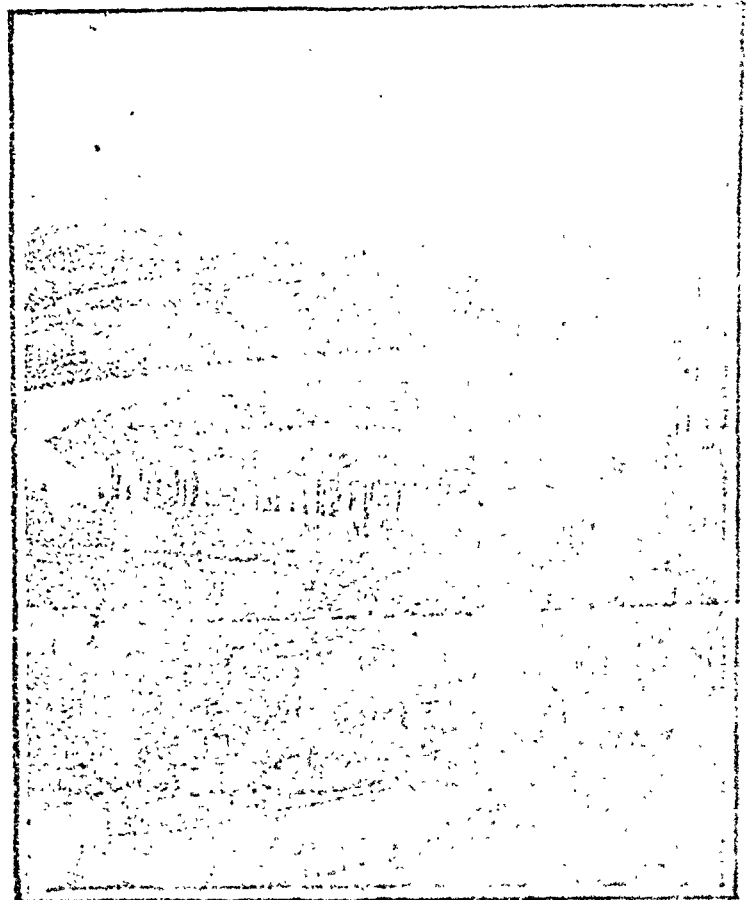
भू-स्वर्ग की मनोरम घाटी में [...]

उड़ा ले जाना और उनका व्यापार करना बंद हुआ [...] से बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा था; हाल ही में [...] की ओर से एक लोग [...] हुई है और [...] हुए व्यभिचार को रोकने के लिये [...] स्त्रियों [...], अपराधियों के लिये कड़े [...] की योजना, की गई है।

× × ×

श्रीनगर या कश्मीर की यात्रा करनेवालों को आने-जाने के लिये दो मार्ग हैं, एक जम्मू से और दूसरा रावलपिंडी से। रावलपिंडी या जम्मू दोनो ही से श्रीनगर लगभग दो सौ मील है। लारीवाले आगे की 'सीट' के लिये आठ रुपए प्रति मनुष्य लेते हैं। रावलपिंडी से श्रीनगर का किराया भी इतना ही है। श्रीनगर से रावलपिंडी या जम्मू को वापस आते समय लारीवाले को चार ही रुपए देने पड़ते हैं। लारीवालों का उतरते समय ढाल में 'पेटरोल' (मोटर लारी में डालनेवाला तेल) कम ख़र्च होता है, इसी कारण वे किराया भी कम लेते हैं। लारीवालों से किराया तै करने में बड़ी झिकझिक करनी पड़ती है, वे भी मोल-तोल करना ख़ूब जानते हैं, नवागत यात्रियों को बुद्धू समझकर ठगने के फेर में रहते हैं।

लारी में सदैव अगली 'सीट' का ही भाड़ा चुकाना चाहिए, आगे बैठने से मार्ग का मनोहर दृश्य साफ़ दिखाई देता है तथा धूल आदि से मनुष्य बच जाता है। यात्री जब जम्मू से लारी पर चढ़ते हैं, तो ख़ाली पेट या एक आधी ही रोटी खाकर चलते हैं, क्योंकि मोटर के लंबे सफ़र में पेट भरा होने कारण बेचैनी-सी मालूम होने लगती है; और जो अधिक भोजन किए होते हैं वे वमन तक कर देते हैं। अपने साथ 'अमृतधारा' या 'पोदीने के अर्क़' की एक शीशी होना अच्छा ही है, ऐसे समय में बड़ा काम देती है।

जम्मू से श्रीनगर तक का मार्ग बड़ा रमणीक है, जो आनंद इस मार्ग में आता है, वह रावलपिंड के रास्ते में स्वप्न हो जाता है। लारी में ग्यारह बजे दुपहर में चढ़कर रास्ते में अंधकार होते ही किसी बड़े 'पड़ाव' पर डेरा डाल देना पड़ता है। हर बीस-पचीस मील के बाद छोटे-छोटे 'पड़ाव' मिलते हैं, वहाँ साधारण जल-पान करने की चीज़ें मिल जाती हैं। मार्ग में खाने-पीने की चीज़ें सभी सुलभ हैं, अपने साथ पाथेय बाँधकर ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं। जिस स्थान पर रात्रि को डेरा डाला जाता है, वहाँ कच्चा भोजन 'ढाबे' में बना-बनाया मिल जाता है। तंदूर की रोटी दो पैसे की एक देते हैं, साथ में दो तरकारी और दाल मुफ़्त में देते हैं। घी आप अपनी इच्छानुसार चाहे जितने का लेकर दाल-तरकारी में डाल सकते हैं। भोजन साधारण होता है। छुआछूत के माननेवालों को बर्तन किराए पर मिल जाते हैं, वे ठोंक-पीटकर बड़े आराम से बना-खा सकते हैं। रात में रहने के लिये कच्चे मकानों में जगह मिल जाती है। एक आना प्रति खाट और एक आना प्रति मनुष्य कमरे का भाड़ा देना होता है। रात को काफ़ी ठंढक होती है। यदि मौसम साफ़ है, तो दो ही कम्मल पर्याप्त होंगे; यदि पानी बरस गया और ओले भी पड़ गए, तो फिर जाड़े का क्या कहना है। तीन-चार कम्मल से कम में जाड़ा नहीं जा सकता। प्रत्येक यात्री को अपनी जाड़े की रज़ाई और एक कम्मल रखना आवश्यक है। साथ में एक बरसाती होना भी अच्छा ही है, क्या मालूम किस समय इंद्रदेव से युद्ध छिड़ जाय। बिना बरसाती के तो बौछार की मार से आदमी तर हो जायगा, श्रीनगर पहुँचते-पहुँचते ही स्टेट औषधालय देखने की ज़रूरत पड़ जायगी। मोमबत्ती और दियासलाई होना भी हितकर है। यात्रियों के पास दूरबीन (Binocular) होना भी उचित है। जो स्थान आँखों की शक्ति से नहीं देखे जा सकते वहाँ का दृश्य दूरबीन दिखा देता है। लारी हमें पड़ाव पर सूर्यास्त हो जाने पर पहुँचाती है। यदि चाँदनी रात हुई तो फिर रात्रि में भोजन आदि करके मीलों सैर के लिये निकल जाते हैं। अँधेरी रात में भी बिना टहले हुए जी नहीं मानता। ऐसे समय में बिजली का लैम्प (Electric Torch) मार्ग दिखाने का कार्य बड़ी ख़ूबी से संपादन करता है। यदि हो सके, तो बिजली का लैंप भी साथ रखना चाहिए।

दिन-भर के थके खाट पर लेटते ही सो जाते हैं। पौ फटते ही लारी तैयार मिलती है, चाय-पानी करके यात्री मोटर पर जा बैठते हैं। 'हा-हा' करती प्रकृति-माधुरी का पान कराती हुई लारी दूसरे ही दिन संध्या को श्रीनगर पहुँचा देती है। मार्ग में ही कश्मीर क्या है, सब अच्छी तरह जान जाते हैं।

लारी मोटर एजेंसी पर जाकर खड़ी हो जाती है। यहाँ से कश्मीरी होटल, ख़ालसा होटल निकट ही हैं। जिनकी जेबें रुपयों से भरी होती हैं, वे तो होटलों में

इनके रहने-सहने का तुरंत प्रबंध कर लेते हैं। साधारणतया लोग 'प्रताप धर्मशाला' में ही ठहरते हैं। यह धर्मशाला कश्मीर के पूर्व-नरेश महाराजा सर प्रतापसिंह का बनवाया हुआ है। ईंट-पत्थर की बनी हुई सुदृढ़ दुर्मंज़िला अट्टालिका है। कमरे काफ़ी विस्तृत हैं, फ़र्श पत्थर का है, कमरों में बिजली की रोशनी है। इस धर्मशाले में मनुष्य तीन दिन ठहर सकता है। साधारण स्थिति के मनुष्यों के लिये दो-तीन दिन ठहरने के लिये इससे बढ़कर श्रीनगर में कोई स्थान अच्छा नहीं। जिन्हें दो-तीन मास रहने की इच्छा हो वे श्रीनगर आर्यसमाज के मंत्री से बातचीत करके नगर में मामूली किराए का मकान ले सकते हैं। लोग हाउसबोट या डोंगे पर भी रहने का प्रबंध कर लेते हैं। डोंगे में अधिक बाह्य आडंबर नहीं होता, परंतु अंदर का भाग साफ़-सुथरा होता है, चार-पाँच आदमियों के रहने के लिये तीस-चालीस रुपए मासिक किराए का डोंगा अच्छा होता है। चार-पाँच साधारण कमरों का मेज़-कुर्सी से सुसज्जित हाउसबोट डेढ़ सौ रुपए मासिक पर मिल जाता है, इसमें आठ मनुष्य सुविधा से रह सकते हैं। आठ रुपए मासिक पर नौकर भी मिल जाते हैं। प्रत्येक डोंगे के स्वामी और उनका परिवार सेवकों का कार्य करते हैं और किराए के अतिरिक्त अपनी मज़दूरी भी लेते हैं। खाने की चीज़ें गर्मी के दिनों में तेज़ हो जाती हैं। दूध श्रीनगर विशेष में रुपए का छः सेर तथा गाँवों से रुपए का दस सेर मिलता है, आटा छः सेर, दाल पाँच सेर और घी बारह-तेरह छटाँक का मिलता है, तरकारी आदि का भाव भी साधारण ही है। श्रीनगर में अमीराकदल पुल के निकट ही कच्चे भोजन की दूकानें हैं, खाना वहाँ भी उसी भाव जिस भाव लाहौर में पड़ाव पर मिलता है। ढाई आने में पेट भर जाता है। ये कच्चे भोजन की दूकानें प्रायः गंदी होती हैं, परंतु दो-एक दूकानें बड़ी साफ़ हैं, वहाँ भोजन भी बढ़िया और अच्छा मिलता है। जो लोग छुआछूत के भ्रम से दूर हैं, उनके लिये खाने-पीने की आसानी होती है।

कश्मीर में यात्रियों को सचेत रहना चाहिए। यहाँ के दूकानदार इधर के लोगों को कुबेर का नाती ही समझते हैं, सभी को 'सेठ साहब, सेठ साहब' कहकर संबोधित करते हैं। चीज़ों के दाम एक के दस सुनाते हैं, पचीस रुपए के शाल का मूल्य पैंतीस से कम नहीं बताते। दिन-दहाड़े आँखों में से काजल निकाल लेना उनके बाएँ हाथ का खेल है।

जो सज्जन कश्मीर-यात्रा एक मास में ही समाप्त कर वापस आने की बात निश्चय करके जाते हैं, उन्हें कम-से-कम दो-सौ रुपए लेकर जाना चाहिए। यदि कोई महाशय सकुटुंब जाना चाहते हैं, तो प्रति मनुष्य ख़र्चा कुछ कम ही पड़ेगा, यह तो साधारण अनुमान की बात है। चार आदमियों की टोली में एक मास में छः सौ रुपए में बड़ी अच्छी तरह से निर्वाह हो जायगा। यों तो ख़र्च करना अपने हाथ में है, जिन पर लक्ष्मी की कृपा है, वे कश्मीर में लाखों के वारे-न्यारे कर आएँ, वह भी थोड़ा है। और, जिनके पास सौ रुपए की पूँजी है, वे भी कश्मीर-यात्रा कर आ सकते हैं। मगर ऐसी अवस्था में यही संभव है कि मनुष्य प्रत्येक स्थान का दर्शन कर तुरंत उसी लारी से वापस हो जाय, क्योंकि जम कर रहने के लिये होटल या तंबू आदि का किराया जहाँ से निकलेगा, सौ रुपए की बिसात ही क्या है। जो महानुभाव दो-तीन मास बिताना चाहते हैं, वे कम-से-कम चार सौ रुपए प्रति मनुष्य के हिसाब से साथ ले जायँ। यात्रियों को अधिक रुपया गाँठ में बाँधकर न ले जाना चाहिए, खो जाने या चोरी जाने का भय रहता है। उचित है कि डाकख़ाने के सेविंग बैंक हिसाब में रुपया जमा करा 'पास-बुक' को श्रीनगर (कश्मीर) तबादिला करा दें और वहाँ आवश्यकतानुसार धन जब चाहें निकाल लिया करें।

साधारण वृत्ति के मनुष्यों को श्रीनगर में हाउसबोट कभी किराए पर न लेना चाहिए, क्योंकि [illegible] में श्रीनगर में दो-तीन दिन से अधिक रहने का जी नहीं करता, और न लोग रहते ही हैं। हाउसबोट छोड़कर लोग गुलमर्ग, पहलगाम, [illegible] आदि स्थानों में अपना समय अधिक बिताते हैं। [illegible] और प्रकृति-सौंदर्य-निरीक्षण के लिये लोग श्रीनगर को छोड़कर अन्य स्थानों को ही [illegible] हैं। यात्रियों को चाहिए कि दो-तीन दिन श्रीनगर में [illegible]

शाला' में रहकर और स्थानीय दर्शनीय स्थानों को देखकर अधिक समय कश्मीर के आंतरिक स्थानों में ही बिताएँ।

श्रीनगर कश्मीर की राजधानी है, परंतु सर्वश्रेष्ठ स्थान नहीं है। प्रकृति-सौंदर्य के उपासक को उचित है कि कश्मीर की महानता और मधुरता का सच्चा अनुभव करने के लिये एक बार गुलमर्ग, गंधरबाल, लिदरवैली, कोलहाय पर्वत, अमरनाथ आदि स्थानों का अवश्य भ्रमण करें। जिन्होंने उन सब स्थानों को इन नेत्रों से देख लिया है, उनके हृदयों से पूछिए, सभी एक स्वर से कहते हैं, 'कश्मीर स्वर्ग है'। श्रीनगर इसी स्वर्ग का एक अनूठा रत्न है।

महर्षि कपिल और उनके सिद्धांत

[श्रीचतुरसेन शास्त्री]

महर्षि कपिल और उनके सिद्धांत अत्यंत प्राचीन हैं। यह बात श्रुति *, स्मृति †, महाभारत ‡, और पुराणों § से प्रमाणित होती है।

प्रसिद्ध दीर्घायु और योगिराज गौड़पाद स्वामी, जो कि महर्षि शुकदेव के शिष्य§ थे, और जो सांख्य के सर्व-प्रथम और प्राचीनतम टीकाकार हो गए हैं, जिन्होंने वेदांत और सांख्य पर 'माण्डूक्योपनिषद् मुख्य' और सांख्य पर 'सांख्य सप्तति मूल' ये दो प्रख्यात ग्रंथ लिखे हैं, उन्होंने कपिल को ब्रह्मा का पुत्र¶ माना है। भागवत में कपिल के जन्म की कथा विस्तार से लिखी है, जिसका सारांश यह है—

"ब्रह्मा ने प्रजापति कर्दम को प्रजा-निर्माण करने की आज्ञा दी। कर्दम नदी के तीर गए। वहाँ उन्होंने दस हज़ार वर्ष तपश्चर्या की। विष्णु ने प्रसन्न होकर वर दिया कि शीघ्र ही यहाँ सार्वभौम मनु सपरिवार आवेंगे। उनके साथ उनकी कन्या देवहूति है। उसे तुम अपने लिये माँगना। मैं उसके गर्भ में ज्ञानोपदेश के लिये जन्म लूँगा। वैसा ही किया गया। कपिल का जन्म सरस्वती के तीर पर कर्दम ऋषि के आश्रम में हुआ। यह अत्यंत प्राचीन बात है; क्योंकि सरस्वती गंगा से भी प्राचीन है। इन्हीं कपिल ने सगर के ६० हज़ार पुत्रों को भस्म किया था। तब सगर के पुत्र भगीरथ ने तप करके गंगा का अवतरण कराया।" ऐसी कथा मिलती है। आजकल सरस्वती नदी का पता नहीं लगता। पर प्राचीन काल में वह प्रयाग में गंगा में मिल गई थी, यह प्रसिद्ध है। कर्दम ऋषि अपनी पुत्रियों को मरीचि, अंगिरस वशिष्ठ, अत्रि आदि प्रसिद्ध ऋषियों को ब्याहकर तपश्चर्या को चले गए। पाठक देखते हैं, ये वही ऋग्वेद के प्राचीन ऋषि हैं।

पीछे कपिल स्वयं एक महासिद्ध पुरुष हुए। और इन्होंने अपनी माता देवहूति को ज्ञानोपदेश दिया, जिससे देवहूति को सिद्धि प्राप्त हुई। जिस स्थान पर यह उपदेश दिया गया था, वह सिद्धपुर के नाम से गुजरात में प्रसिद्ध है, और यहाँ से बंबई जाते समय बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे पर स्टेशन है। यहाँ कपिल-ऋषि का एक आश्रम भी है। माता को ज्ञानोपदेश देकर कपिल ऋषि ईशान-दिशा में तपश्चर्या करने को चले गए।

इस आधार से कपिल-ऋषि अंगिरस आदि ऋषियों के साले, कश्यप, अगस्त्य, दत्तात्रेय, दुर्वासा आदि इनके मामा, प्रियव्रत उत्तानपाद के भांजे, [illegible] भाई व [illegible] के भाई सिद्ध होते हैं।

ऐसा मालूम होता है, कपिल यहाँ कुछ दिनों यहाँ रहे थे। माता को उपदेश देने के पीछे उनकी आज्ञा लेकर ईशान दिशा (हिमालय की ओर) चले गए थे। यह भागवत से प्रकट होता है। पीछे [illegible]

* ऋषि प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभार्ति जायमानञ्च पश्येत्। श्वेताश्वतर उप० (श्रुतिः)

† आदौ यो जायमानञ्च कपिलं जनयेदृषिम् ;
[illegible] प्रख्यात ज्ञानैस्तं पश्येत्पारमेश्वरम्। (स्मृति)

‡ सनकश्च सनंदश्च तृतीयश्च सनातनः ;
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
सप्तैते मानसाः पुत्राः ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। (पुराण)

§ नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिञ्च तत्पुत्र पराशरञ्च ;
व्यासं शुकं गौड़पदं महांतं गोविंद योगीन्द्र मथास्य शिष्यम्।

¶ "अथ भगवान् [illegible] कर्म-वासना समुद्र पतितान् [illegible] उद्दिधीर्षुः परमकृपालुः स्वतःसिद्धज्ञानो महर्षि[illegible] कपिलो ब्रह्मसुतो [illegible] सूत्राण्युपादिक्षत्। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

के अश्वमेध-यज्ञ के समय ये गंगासागर के निकट, जो वर्तमान कलकत्ते से लगभग ४५ कोस है, कहीं तपश्चर्या कर रहे थे । यहाँ एक टट्टी के उसारे को कपिल का आश्रम बताया जाता है । यहाँ एक बहुत पुरानी घिसी हुई कपिल की मूर्ति है । इसके दाहिनी ओर राजा भगीरथ और बाईं ओर रामानंद स्वामी हैं । ये मूर्तियाँ भी वैसी ही पुरानी और घिसी हुई हैं । इन्हीं रामानंद स्वामी ने फिर से उस आश्रम का पता लगाया था । इस मूर्ति पर जो चढ़ावा चढ़ता है उसे अयोध्या के साधु लेते हैं ।

जहाँ इंद्र ने घोड़ा चुराकर बाँधा था, वह स्थान दक्षिण-पूर्व समुद्र के किनारे कहीं मिला था । यह स्थान बंगाल की खाड़ी के निकट कहीं समझना चाहिए । वहाँ पहुँचकर जब सगर के ६० हज़ार पुत्रों ने (सेना ने ?) कोलाहल किया, तो उन्होंने उसे क्रोध-नेत्र से भस्म कर दिया । कदाचित् उसी दिन से इनका नाम वैश्वानर-अवतार (अग्नि-पुत्र) पड़ा । इसके बाद सगर का पौत्र अंशुमान गया और ऋषि को प्रसन्न किया, और उन्हीं की सम्मति से सगर ने गंगा लाने का प्रयत्न किया, जो उसके पुत्र भगीरथ के समय में संपूर्ण हुआ । इसी से गंगा का नाम भागीरथी पड़ा ।

सुप्रसिद्ध राजा उपरिचर वसु ने बृहस्पति की आज्ञा से जो अश्वमेध-यज्ञ किया था, उसमें कपिल उपस्थित थे । और श्रीरामचंद्रजी ने जो सरयू-तट पर अश्वमेध-यज्ञ रावण-वध के कारण किया था, उसमें भी कपिल हाज़िर थे । विख्यात पृथु राजा ने जो अश्वमेध-यज्ञ किया था, उसमें भी कपिल हाज़िर थे । इसके सिवाय प्राचीन राजा बर्हि कपिल के आश्रम में तपश्चर्या के लिये गया था । ये बातें हरिवंश, रामायण, महाभारत, भागवत आदि से प्रतीत होती हैं । अब, इस बात पर विचार करना है कि "कपिलवस्तु नगर", जो बुद्ध के पिता की राजधानी था, उसका कपिलाचार्य से क्या संबंध हो सकता है ।

विंसेंट स्मिथ ने अपने इतिहास में लिखा है कि "यह नगर 'शाक्य राजा' ने बसाया था । यह काशी से ईशाण-कोण में १०० मील दूर था । अशोक और हर्ष के राज्य का विस्तार दिखाते हुए मानचित्र में जो कपिलवस्तु-नगर का स्थान दिया है, वह काशी से उत्तर १५०-१७५ मील पर हिमालय की तराई में कौशलनगर की राजधानी श्रावस्ती व कुशनगर की मध्यवर्तिनी गंडकी नदी के पश्चिम भाग में है ।......"

गौतमबुद्ध के समय तक अर्थात् ईस्वी सन् से ५४३ वर्ष प्रथम इस नगर में ख़ूब चहल-पहल थी । इसके ५३ वर्ष बाद अर्थात् सन् ईस्वी से ४६० में कौशल-देश के राजा 'विरुद्धक' ने चढ़ाई करके इस प्राचीन नगर का विध्वंस किया और अनेक बौद्धों को क़तल किया । इसी कपिलवस्तु के निकट 'लुंबिनी'-नामक वन में, जहाँ गौतमबुद्ध का जन्म हुआ था, सम्राट् अशोक ने एक स्थान निर्माण किया था, जो अभी तक है । प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़हियान ने, जो कि ईस्वी सन् ४०० में अर्थात् बुद्ध से ६०० वर्ष बाद आया था, कपिलवस्तु को उजाड़ अवस्था में देखा था । तब भी वहाँ १०-५ बौद्ध-भिक्षु रहते थे । इसके ३०० वर्ष बाद ईस्वी सन् ७०० में जब ह्युएनसंग चीनी यात्री आया, तब कपिलवस्तु का नाम-निशान भी न था । केवल वह अशोक का स्तंभ ही था । इस प्रकार यह नगर अब से कोई १३०० वर्ष पूर्व से ही नष्ट हो चुका है ।

मि० मुकर्जी व विंसेंट स्मिथ ने सन् १८९७ में बस्ती और गोरखपुर ज़िले में उत्तर हिमालय की तराई में 'पिपरावा'-नामक स्थान की जाँच की थी । वहाँ बुद्ध-समय के स्तूप पाए गए हैं । उनका कथन है कि यह पिपरावा-गाँव अथवा ह्युएनसंग के कथनानुसार उसके निकट का तिलोराकोट-नामक स्थान ही 'कपिलवस्तु' है ।

शाक्य-राजा ने इस नगर का नाम कपिलवस्तु क्यों रक्खा और शाक्य-राजा कौन था, अब इस पर विचार करना चाहिए ।

'सैंटस ऑफ़् इंडिया' में लिखा है कि अयोध्या के सिंहासन पर इक्ष्वाकु के अनंतर जो सूर्यवंशी राजा बैठे, उनमें 'सुजात'-नाम का राजा सब से अंतिम था ।

विष्णुपुराण में लिखा है कि सुमित्रा नाम का राजा अंतिम इक्ष्वाकु-वंश में हुआ था । इसने अयोध्या से

राजधानी उठाकर 'श्रावस्ती-'नगरी बसाकर नई राजधानी बनाई।

भागवत में लिखा है कि श्रीरामचंद्रजी के अनंतर हिरण्यनाभा पर्यंत १६ राजा हुए। इसके बाद ३५ राजा और हुए। अंत का राजा 'संजय' था। इसका पुत्र शाक्य था। इसी ने शाक्य-वंश की स्थापना की। ये 'सुजात', 'सुमित्र' और 'संजय' एक ही राजा मालूम पड़ते हैं।

सुजात के पाँच पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हुईं। इसके सिवाय दासी से एक पुत्र और हुआ। बड़े पुत्र का नाम 'धौपुर' था। एक बार दासी ने अवसर पा कैकेयी का अनुकरण किया। राजा से वचन लेकर अपने पुत्र को राज्य और रानी के पाँचो पुत्रों को वनवास दिलाया। राजा ने दशरथ की तरह वचन पाला। और पाँचो पुत्रों ने राम की तरह पिता की आज्ञा पाली। पर ये पाँचो राजकुमार रामचंद्र की तरह दक्षिण की तरफ़ न जाकर उत्तर के वनों में चले गए। उत्तर-पूर्व कोण को ईशान-कोण कहते हैं। जाते-जाते ये नेपाल की तराई के 'शाकट-वन' में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि इसी वन में 'लुंबिनी-अरण्य' में निकट ही कपिल का आश्रम है। पाठक स्मरण रक्खें कि यह वही लुंबिनी-अरण्य है जहाँ गौतम बुद्ध का जन्म होना लिख आए हैं। और भागवत से यह प्रथम ही लिख चुके हैं कि कपिल माता की आज्ञा लेकर ईशान-कोण को चले आए थे। आश्रम में ऋषि ने राजकुमारों का पूरा-पूरा सत्कार किया और राजकुमार ऋषि की आज्ञा से वहाँ बस गए।

[illegible] श्रावस्ती-नगरी में पहुँचे और अनेक [illegible] राजपुरुष और व्यापारी तथा प्रजाजन, जो राजकुमारों से प्रेम करते थे और राजा के इस अन्याय [illegible] स्वभावतः विरुद्ध थे, धीरे-धीरे कुमारों के पास [illegible] और बसने लगे। अनंतर राजकुमारों ने ऋषि से वहीं एक नगर बसाने की आज्ञा माँगी। आज्ञा दे दी [illegible] और कपिलदेव के ही हाथों से नगर की नींव [illegible] नगर का नाम कपिल के प्रति आदर प्रकट करने के लिये 'कपिलवस्तु' पड़ा, और 'धौपुर' 'शाक्य' नाम [illegible] वहाँ का राजा बना। यह शाक्य नाम बहुत करके 'सांख्य' पर से ही लिया गया मालूम होता है।

यह स्पष्ट है कि बुद्ध का बौद्ध मत 'सांख्य-तत्त्व' का ही विस्तृत रूप है। यह संभव है कि शाक्य-कुल में प्रारंभ से ही कपिल के सांख्य-सिद्धांतों पर श्रद्धा और अनुशीलन हो। और बुद्ध ने बाल-काल में उन्हें पढ़ा और मनन किया हो, जिसके फल-स्वरूप उन्होंने नवीन धर्म चलाया। कपिल और बुद्ध दोनो इस बात में एक मत हैं कि प्राणी दुःख से छूटें, यज्ञों से घृणा, ज्ञान से मुक्ति और पुनर्जन्म। परंतु सांख्य का सिद्धांत केवल दर्शन है। बड़े बड़े विद्वान् उस पर विवाद कर सकते हैं। उनकी मनुष्य-जाति से कोई सहानुभूति नहीं, उपदेश भी नहीं। पर बुद्ध के सिद्धांतों में इसके विपरीत दीनों पर दया, प्रेम और सहानुभूति है।

पुराणों में लिखा है कि शिव-पार्वती शर-वन में रहते थे। बहुत करके यही 'शाकट-वन' वह शर-वन था। इसका एक तो प्रमाण यह है कि शिवजी सांख्य-सिद्धांत और कपिल से अच्छी तरह परिचित थे। पद्म-पुराण में शिवजी ने स्पष्ट-रूप से सांख्य-मत की प्रशंसा की है। इसके सिवाय नेपाल के गोरखे शंकर के अखंड भक्त हैं और नेपाल में प्रख्यात पशुपतिनाथ का मंदिर भी इस बात का साक्षी है।

अब एक बड़ी कठिन समस्या समझने को रह गई है कि कपिल का समय कितना अनुमान करना चाहिए।

कपिल ने यज्ञ-प्रथा के विरोध में आवाज़ उठाई और उन्होंने ज्ञान-कांड को प्रधान बनाया। ऐसा अनुमान होता है कि ऋग्वेद के अंतिम दिनों में कपिल की प्रसिद्धि हो गई थी। १०वें मंडल में कपिल के विषय में एक ऋचा पाई जाती है [illegible] कपिल-ऋषि ज्ञान-कांड के आचार्य और [illegible] हैं। इसके अनंतर उपनिषदों का [illegible] और उपनिषदों में भी कपिल की स्तुति की गई है। आगे रामायण, भगवद्गीता है, महाभारत सबमें कपिल का ज़िक्र आता है। [illegible]

[illegible]

आदि और सम्राट् उत्तानपाद-ध्रुव आदि कपिल के रिश्तेदार थे ही। यह बात भी बताई जा चुकी है। इसके बाद मान्धाता के जामाता 'सौमद'-ऋषि का भी उन्होंने वर्णन किया है जो इक्ष्वाकु-वंश की १६वीं पीढ़ी में था। पीछे इक्ष्वाकु-वंश के ३६वें राजा सगर के पुत्रों को भस्म करके कपिल ने 'अग्नि-पुत्र' की उपाधि पाई। फिर राजा उपरिचरवस्तु के यज्ञ में जहाँ बृहस्पति, तैत्तिरि, धौम्य, रैभ्य, धनुष्य, कण्व आदि ऋषियों का समागम हुआ था, कपिल हाज़िर थे। इन्हीं तित्तर ऋषि ने तैत्तिरेयोपनिषद् निर्माण किया था। यह उपचरि राजा सतयुग के अंत में हुआ था। इसके कोई ६०० वर्ष बाद इक्ष्वाकु की ५६वीं पीढ़ी में रामचंद्र-जी के सरयू-तीरवाले अश्वमेध में भी कपिल उपस्थित थे। इसके बाद इक्ष्वाकु-वंश के अंतिम राजा सुजात के पुत्र 'औपर' (शाक्य) के समय में जो रामचंद्रजी से ४१ पीढ़ी के लगभग पीछे हुआ, कपिल नेपाल की तराई में शकट-वन में आश्रम बनाकर रहते थे। इस प्रकार पश्चिमोत्तर-सीमा पर सरस्वती नदी के निकट जन्म लेकर गुजरात के निकट सिद्धिपुर में माता को ज्ञानोपदेश दिया। फिर गंगासागर (बंगाल की खाड़ी) के निकट किसी भूगर्भ या स्थान पर सगर-पुत्रों को भस्म किया और गंगा-अवतरण की सम्मति दी, पीछे शकट-वन में कपिलवस्तु को बसाया। इन सब पुराणों से दो बातों का पता लगता है कि या तो कपिल अतिशय दीर्घजीवी परमायु-सिद्ध योगी थे, और उनकी अवस्था कम-से-कम १५ सौ वर्ष तो अवश्य अनुमान की जा सकती है। उनकी मृत्यु के कोई समाचार नहीं हैं। परंतु फिर कहीं उनकी उपस्थिति का पता नहीं चलता। सांख्य-दर्शन ६ अध्याय और ५२६ सूत्रों का ग्रंथ है। प्रथम अध्याय में हेय, हेय-हेतु, हान, हान-हेतु और उसका विवेचन है। दूसरे अध्याय में प्रकृति के सूक्ष्म कार्य। तीसरे अध्याय में प्रकृति के स्थूल कार्य, लिंग-शरीर, स्थूल-शरीर, अपर वैराग्य, पर वैराग्य और उसका निरूपण है। चौथे अध्याय में शास्त्र-प्रसिद्ध आख्यायिका देकर विवेक से ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, इसका कथन है। पाँचवें अध्याय में वह विषय है जो भगवद्गीता में वर्णित है। इसी अध्याय में विरोधी पक्ष का खंडन और सांख्य-मत का श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया गया है। छठे अध्याय में शास्त्र के मुख्य विषय की व्याख्या करके अपने सिद्धांत को प्रस्थापित करने के उत्तमोत्तम सूत्र हैं। और अंत में उपसंहार है।

सांख्य-शास्त्र का विषय

कपिल ने सांख्य में २४ तत्त्वों का निरूपण किया है। इन २४ तत्त्वों से जगत् बना है और एक २५वाँ तत्त्व आत्मा माना है। ये २४ तत्त्व इस प्रकार हैं—

१ मूल प्रकृति, २ महत्, ३ अहंकार, ४ रूप तन्मात्र (तेज के परमाणु), ५ रस तन्मात्रा (जल के परमाणु) ६ गंध-तन्मात्रा (पृथ्वी के परमाणु), ७ स्पर्श-तन्मात्र (वायु के परमाणु), ८ शब्द-तन्मात्रा (आकाश के परमाणु), ये कुल आठ हुए। तेज, जल, पृथ्वी, वायु तथा आकाश ये ५ महाभूत। ५ ज्ञानेंद्रिय, ५ कर्मेंद्रिय, १ मन, कुल ११ हुए। इस प्रकार ८+५+११ = २४ हुए। पचीसवाँ तत्त्व आत्मा है।

तत्त्व-शब्द का अर्थ मूल अर्थात् उत्पत्ति-स्थान है। विज्ञान की भाषा में तत्त्व को मूल और बौद्ध-शास्त्र में धातु कहा है। तत्त्वों के ज्ञान को तत्त्वज्ञान कहते हैं। और तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति बिना मुक्ति नहीं। अर्थात् जगत् और आत्मा इनका वास्तविक रूप जाने बिना जन्म-मरण से मुक्ति नहीं होती।

प्रकृति का लक्षण सांख्य में लिखा है—

"सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः"

अर्थात्—सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। यह अव्यक्त है अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं है। यह प्रकृति जब व्यक्त अर्थात् प्रत्यक्ष होने लगती है, तब इसका प्रथम रूप महत्तत्त्व, दूसरा अहंकार, तीसरा परमाणु, चौथा जगत् होते हैं। वैकारिक सर्ग में जो कुछ है उसका मूल स्थूल-भूत है और स्थूल-भूत का मूल सूक्ष्म-भूत है। सूक्ष्म-भूत का मूल अहं-तत्त्व है, अहं-तत्त्व का महत्तत्त्व और महत्तत्त्व का मूल वही प्रकृति है।

इस प्रकार जगत् की अव्यक्त अवस्था प्रकृति और प्रकृति की व्यक्तावस्था जगत् है।

एक-एक तत्त्व को जानने के लिये मनुष्य-शरीर में एक-एक स्वतंत्र इंद्रिय है। तत्त्वों के संयोग से इंद्रियों में जो विशेष-विशेष स्पंदन उत्पन्न होते हैं, वे ही क्रमशः

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध कहाते हैं। इन पाँचो तत्त्वों के उपादान-परमाणु को परिभाषा में 'तन्मात्रा' नाम दिया गया है। पृथ्वी के परमाणु को गंध-तन्मात्रा, जल के परमाणु को रस-तन्मात्रा, तेज के परमाणु को रूप-तन्मात्रा, वायु के परमाणु को स्पर्श-तन्मात्रा और आकाश के परमाणु को शब्द-तन्मात्रा कहा है। इनमें प्रकृति से लेकर महत्तत्त्व, अहंकार पर्यंत तत्त्व महा दुर्विज्ञेय हैं, जो केवल योगि-गम्य हैं। यही सांख्य का गंभीर विषय है।

अब एक महत्त्व-पूर्ण बात की तरफ़ हम अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। वह बात यह है कि हमें इस बात पर बहुत कुछ संदेह है कि वर्तमान 'सांख्य-सूत्र-दर्शन' कपिल-कृत या अति प्राचीन ग्रंथ है। हमारे इस संदेह के पुष्ट कारण हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि यह दर्शन उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्ष-ग्रंथों में गिनकर उसका महत्त्व बढ़ाया है। परंतु नीचे-लिखे कारणों पर विचार करने से वह आर्ष प्रतीत नहीं होता।

१—१२वीं शताब्दि से पूर्व उसका कुछ पता नहीं चलता। न किसी भाष्यकार ने उसकी चर्चा की है। न उसका भाष्य ही किया है। इसके विपरीत आचार्यों ने सांख्य-कारिका पर भाष्य किए हैं, जो ईश्वरकृष्ण की बनाई है, जिसका ज़िक्र हम आगे करेंगे। जैनाचार्यों और शंकराचार्य ने सांख्य-कारिकाओं को ही सम्मुख रखकर उनका खंडन किया है। यदि उनके सम्मुख यह दर्शन होता, तो संभव न था कि इस प्रधान और मूल ग्रंथ के होते कारिका पर आक्रमण किया जाता। केवल गौड़पाद स्वामी ने २२ सूत्रों के एक सांख्य का ज़िक्र किया है। पर अपना ग्रंथ उस सिद्धांत पर स्वतंत्र लिखा है। हर हालत में गौड़पाद स्वामी ने इस दर्शन को नहीं देखा।

२—यह बात सभी विद्वान् मानते हैं कि सांख्य-दर्शन सर्व-प्राचीन दर्शन है; परंतु वर्तमान सांख्य-दर्शन में इसके विपरीत प्रमाण मिलते हैं। देखिए—

(क) अनेक सूत्रों में वेदांत-सूत्रों का निर्देश किया गया है।

(ख) अध्याय १ सू० २५ और अ० ५ सू० ८५ में 'वैशेषिक' का उल्लेख है।

(ग) अध्याय ५ सू० २७ और ८३ में 'न्याय' का उल्लेख है।

(घ) अ० ३ सू० ८० में 'योग' का उल्लेख है।

(ङ) अ० ५ सू० ३२ में और अ० ६ सू० ६८ में पंचशिखाचार्य का नाम दिया हुआ है, जो बहुत आधुनिक सांख्य मतवाले हैं।

(च) अ० ६ सू० ३६ में सनंदनाचार्य का वर्णन है।

(छ) अ० १ सू० २१ में पाटलिपुत्र (पटना) और 'श्रुघ्न' (आगरे) का नाम है। उपर्युक्त प्रमाण और ख़ासकर १२वीं शताब्दि तक किसी भी आचार्य के द्वारा उसका नाम न लिया जाना यह प्रमाणित करता है कि यह दर्शन प्राचीन नहीं। १२वीं शताब्दी में अनिरुद्ध ने उस पर भाष्य किया है। परंतु अनिरुद्ध का समय प्रतीत नहीं होता। पर वह विज्ञान-भिक्षु का समकालीन या बाद का आचार्य प्रतीत होता है; क्योंकि विज्ञान-भिक्षु यह बात कहता है कि उसने सांख्य-सूत्रों को छिन्न-भिन्न पाया था। वह लिखता है—

> कालार्कभक्षितं सांख्यशास्त्रं ज्ञानसुधाकरम्।
> कलावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः।

अर्थात्—ज्ञान-रूपी अमृत का ख़ज़ाना, यह सांख्य-शास्त्र काल ने खा लिया था, और उसका थोड़ा अंश (कला-मात्र) मिलता है। उसे मैं अपने वचनामृत से पूर्ण करता हूँ।

यह बहुत कुछ संभव हो सकता है कि विज्ञान-भिक्षु ने ही ईश्वरकृष्ण की कारिकाओं को उनमें ईश्वर-वाद बढ़ाकर इन सूत्रों को रचा है। [illegible] सूत्र मिलाकर संपूर्ण वर्तमान सांख्य-दर्शन तैयार कर दिया है। पीछे उसी पर अनिरुद्ध ने भाष्य किया है।

तब कपिल के असली सूत्र [illegible] थे, यह [illegible] विचार उत्पन्न होता है। [illegible] दर्शन प्राचीन [illegible] सिद्ध है। हमारा विश्वास है कि [illegible] २२ सूत्र हैं, जिनका ज़िक्र गौड़पाद स्वामी ने किया है [illegible] में ठीक २२ हैं। दूसरी [illegible] इन सूत्रों [illegible] यह है कि इनमें [illegible] है [illegible] इन दोनों का नाम [illegible] रख गया होगा [illegible] है।

अथ कपिलसांख्यसूत्राण्यारभ्यन्ते

अथातस्तत्त्वे समासः ॥१॥ कथयामि अष्टौ प्रकृतयः ॥ २ ॥ षोडशस्तु विकारः ॥ ३ ॥ पुरुषः ॥४॥ त्रैगुण्यम् ॥ ५ ॥ सञ्चरप्रतिसञ्चरः ॥ ६ ॥ अध्यात्ममधिभूतमधिदैवञ्च ॥ ७ ॥ पञ्चाभिवुद्धयः ॥८॥ पञ्च कर्मयोनयः ॥ ९ ॥ पञ्च वायवः ॥ १० ॥ पञ्च कर्मात्मानः ॥ ११ ॥ पञ्च पर्वा अविद्याः ॥ १२ ॥ अष्टाविंशतिधा अशक्तिः ॥ १३ ॥ नवधा तुष्टिः ॥ १४ ॥ अष्टधा सिद्धिः ॥ १५ ॥ दश मूलिकार्था ॥ १६ ॥ अनुग्रहः सर्गः ॥ १७ ॥ चतुर्दशविधो भूतसर्गः ॥१८॥ त्रिविधो बंधः ॥ १९ त्रिविधो मोक्षः ॥ २० ॥ त्रितियांप्रमाणलक्षणम् ॥ २१ ॥ एतत्सम्यग् ज्ञात्वा कृतकृत्यः स्यान्न पुनस्त्रिविधेन दुःखेनानुभूयते ॥ २२ ॥

इति कपिलसांख्यसूत्राणि समाप्तानि

सांख्य के सिद्धांतों का उपनिषदों में कई स्थानों पर उल्लेख है। तैत्तिरीय और अथर्वण उपनिषद् निरुक्ति के चौदहवें अध्याय और भगवद्गीता में सांख्य-वाद का पर्याप्त वर्णन आता है। शतपथ-ब्राह्मण में कपिल आसुरी और पंचशिखा का नाम कई स्थानों पर आता है, जिससे इन लोगों का उस ब्राह्मण-काल में होना स्वयं ही सिद्ध है। बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-कांड (तृतीय अध्याय के सातवें ब्राह्मण) में काप्य पतंचल का उल्लेख मिलता है कि कपि-वंशवाले किसी पतंचल को किसी कबंध अथर्वण नाम के गंधर्व ने उपदेश दिया था। इस उपदेश का सार याज्ञवल्क्य ने यह दिया है।

वायु वह सूत्र है, जिसके द्वारा यह लोक, परलोक और सब प्राणी बँधे हुए हैं। पुरुष के सब अंग भी इस वायु के द्वारा बँधे हुए हैं, और उसी वायु के निकल जाने पर पुरुष ढीला हो जाता और मर जाता है।

आत्मा ऐसा अंतर्यामी है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, अंतरिक्ष, वायु, द्यौः, आदित्य, दिशा, चंद्रमा, तारों, आकाश, अंधकार, तेज, सब प्राणी, प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान और वीर्य में बैठा हुआ भी उन-उन वस्तुओं के देखने में नहीं आता। सभी वस्तुएँ उसका शरीर हैं, और उसके कारण ये सभी वस्तुएँ नियम में रहती हैं। इस प्रकार वह आत्मा अंतर्यामी अमृत है × × × देखा हुआ न होने पर भी देखनेवाला, सुना हुआ न होने पर भी सुननेवाला, मनन किया हुआ न होने पर भी मनन करनेवाला और जाना हुआ न होने पर भी जाननेवाला है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला और जाननेवाला नहीं है। इस प्रकार वह आत्मा अंतर्यामी और अमृत है। उस आत्मा के अतिरिक्त अन्य सब कुछ दुःख-रूप है। ऊपर दिए हुए सिद्धांत अक्षरशः सांख्य के सिद्धांतों और कपिल के उपदेश से मिलते हैं। अतः बृहदारण्यक का उपर्युक्त अंश सांख्य का सबसे प्राचीन साहित्य है। संभव है पतंचल और कबंध आथर्वण दोनो ही कोई सांख्य-शास्त्र के आचार्य हों। यह प्रतीत होता है कि कपिल के पंथ पर चलने के कारण पतंचल का गोत्र कपिल के नाम पर कहा जाता हो, और शोधनेवालों अथवा लिखनेवालों की अशुद्धि के कारण उसका गोत्र कपिल के स्थान में केवल कपि (लकार निकालकर) ही रह गया हो। जिससे उसको कपिल के स्थान में काप्य ही कहा गया।

पाठकों की सुविधा के लिये उन सूत्रों को नीचे लिखा जाता है—

बृहदारण्यक के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी सांख्य के सिद्धांतों का वर्णन आता है।

कठ-उपनिषद् तीसरी वल्ली के १०वें तथा ११वें मंत्र में कहा गया है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ;
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ;
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

इंद्रियों से उनके विषय उत्कृष्ट हैं, विषयों से मन दूर है, मन से बुद्धि दूर है, बुद्धि से महत्तत्त्व-रूप आत्मा दूर है, महत्तत्त्व से अव्यक्त दूर है, और अव्यक्त से पुरुष दूर है, और वही सबसे उत्कृष्ट अवस्था है।

पाँचवीं वल्ली के सातवें मंत्र में कहा है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।

एक प्रकार के लोग कहते हैं कि इस देही जीवात्मा को एक जन्म के पश्चात् शरीर धारण करने के लिये दूसरी

जन्म में आना पड़ता है। किंतु दूसरे कहते हैं कि यह अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कूटस्थ नित्य ही हो जाता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के चौथे अध्याय के ५वें मंत्र में तो सारा सांख्य-शास्त्र ही कूट-कूटकर भर दिया है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ;
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

यह कभी उत्पन्न न होनेवाली एक प्रकृति (अपने त्रिगुण के कारण से) रक्त, शुक्ल और कृष्ण वर्ण (क्रम से रज, सत्त्व और तम गुण रूप)-वाली है। बहुत-सी प्रजाओं की सृष्टि करना इसका स्वरूप है। कभी उत्पन्न न होनेवाला एक पुरुष इसकी सेवा करता हुआ (मोह अथवा अज्ञान से) सोता रहता है, और इसके भोग भोग चुकने पर इसको छोड़ देता है।

इसी के पाँचवें अध्याय के मंत्र ७ और ८ में प्रकृति-रूप शरीर का क्या सुंदर वर्णन किया है—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता
कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ;
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा
प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥
अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः
संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ;
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥ ८ ॥

इसमें सूक्ष्म-शरीर को ही प्रकृति-शरीर कहा है। क्योंकि यह सब प्रकृति के ही विकारों से बनता है। उपर्युक्त श्लोकों में कहा है कि यह प्रकृति-शरीर गुणों से युक्त रहता हुआ पहले फल के कर्म को और फिर उसके किए हुए को भोगा करता है। वह विश्वरूप, त्रिगुण-रूप, तीन मार्गवाला प्राणों का स्वामी अपने कर्मों से ही घूमता रहता है। ७।

यह अंगुष्ठमात्र है, सूर्य के समान रूपवाला जो संकल्प और अहंकार से युक्त है। बुद्धि और आत्मा के गुणों से आरे के अग्रभाग के समान सूक्ष्म होने पर भी आत्मा देखा गया है। ८।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के पाँचवें अध्याय के दूसरे मंत्र में कपिल मुनि को आरंभ से ही ऋषि बतलाया है।

इसी के छठे अध्याय के १३वें मंत्र में तो सांख्य और योग, दोनो दर्शनों का नाम भी आया है।

उपनिषदों के इन अवतरणों से इस बात का पता चलता है कि सांख्य-दर्शन के सिद्धांत उपनिषदों से सर्वथा अनुकूल हैं।

एक प्राचीन सांख्य-संप्रदाय

सांख्य-दर्शन के सिद्धांतों का चरक द्वारा किया हुआ वर्णन दार्शनिक इतिहास की एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। चरक के अनुसार संसार में ये धातुएँ हैं—पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व और चेतन, जिसको पुरुष भी कहते हैं। एक दूसरी अपेक्षा की दृष्टि से २४ तत्त्व कहे जा सकते हैं—दश इंद्रियाँ (पाँच ज्ञान-इंद्रियाँ, पाँच कर्म-इंद्रियाँ), मन, पाँच इंद्रियों के विषय, और आठ प्रकार की प्रकृति (प्रकृति, महत्, अहंकार और पंच-भूत)। (नोट—इस सूची में पुरुष का नाम नहीं है। चरक के टीकाकार चक्रपाणि का कहना है कि प्रकृति और पुरुष, दोनो के अशक्त होने के कारण दोनो को एक करके ही गिना गया है।) मन इंद्रियों के द्वारा कार्य करता है। व्यवसायात्मिका बुद्धि के उत्पन्न होने के पूर्व मन के दो कार्य होते हैं, एक ऊह, दूसरा विचार। पाँचो इंद्रियाँ अपने-अपने तत्त्व से उत्पन्न होती हैं। चरक ने तन्मात्राओं का नाम भी नहीं लिया। (नोट—किंतु उसने स्थूल भूतों से भिन्न एक प्रकार के सूक्ष्म भूतों का उल्लेख किया कि वह प्रकृति का भाग होता है, जिसमें आठ तत्त्व समझे जाते हैं, 'प्रकृतिरष्टधातुकी' और वे आठ धातुएँ अव्यक्त, महत्, अहंकार और पाँच दूसरे तत्त्व हैं)। प्रकृति के साथ के इन भागों के अतिरिक्त इंद्रियार्थों का भी वर्णन है। जो कि प्रकृति से ही प्रकट होते हैं। महत् और अहंकार सब रजस् के द्वारा एकत्रित होकर मनुष्य को बनाते हैं; उस मनुष्य का विकास अधिक-से-अधिक होता है, तो वह बुद्धि बंद हो जाती है। सब कर्म, कर्म-फल, अनुभव, सुख, दुःख, मोह, जीवन और मरण का इसी सृष्टि से संबंध है। किंतु एक पुरुष भी है, क्योंकि यदि वह न होता, तो जन्म, मरण, मोक्ष अथवा मुक्ति ही न होती। यदि आत्मा को कारण न माना जाता, तो अनुभव के सभी कार्य बिना कारण होते। यदि एक [illegible]

माना जाता, तो दूसरे के कर्म का दूसरा ही उत्तरदायी हो जाता। यह पुरुष तो परमात्मा भी कहलाता है। अनादि और अकारण है। आत्मा अपने ही अंदर चेतना-रहित है। चेतना उसमें केवल इंद्रियों और मन के संयोग से उत्पन्न होती है। पुरुष की यह सृष्टि और दूसरे तत्त्वों की उत्पत्ति मोह, इच्छा और कार्य के द्वारा होती है। सभी रचनात्मक कार्य कारण-समूह से होते हैं। किसी एक कारण से नहीं होते, किंतु विनाश स्वाभाविक और बिना कारण होता है। नित्य वस्तु का कुछ भी कारण नहीं हुआ करता। चरक ने प्रकृति के अव्यक्त भाग और पुरुष को मिलाकर एक ही पदार्थ माना है। प्रकृति के विकार-क्षेत्र और उसका अव्यक्त भाग क्षेत्रज्ञ कहलाता है। यह अव्यक्त और चेतन एक ही वस्तु है। इस अप्रकट प्रकृति या चेतन से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, तथा अहंकार से पाँच तत्त्व और इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इन सबके उत्पन्न होने पर हम कहते हैं कि सृष्टि हो गई। प्रलय के समय सब प्रकट हुई वस्तुएँ फिर प्रकृति में ही लय हो जाती हैं, और दूसरी सृष्टि में सब-की-सब अव्यक्त पुरुष से फिर प्रकट हो जाती हैं। जो लोग इन दोनों से छूट जाते हैं, वह संसार-चक्र से भी छूट जाते हैं। मन ही आत्मा के साथ मिलकर सब कुछ कार्य करता है। आत्मा अपनी इच्छा के अनुसार ही सब प्रकार के जन्म लेता है। यह अपनी इच्छा के अनुसार ही कर्म करता है और उनका फल भोगता है। यद्यपि सभी आत्मा व्यापक हैं, किंतु वह फल का अनुभव उसी स्थान पर करते हैं, जहाँ उनका शरीर है। सुख और दुःख राशि को होते हैं, आत्मा को नहीं। सुख और दुःख के भोग से तृष्णा उत्पन्न होती है, और तृष्णा से फिर सुख और दुःख होते हैं, सुख और दुःख के पूर्णतया बंद हो जाने को मोक्ष कहते हैं। यह आत्मा के मन, इंद्रियों और इंद्रियों के साथ एक होने से प्राप्त होती है। यदि मन आत्मा में निश्चल रूप से स्थित हो जाय, तो उस अवस्था को योग कहते हैं। जिसमें न सुख है और न दुःख ही। सत्य ज्ञान के होने पर आत्मा के किसी विशेष अस्तित्व के चिह्न नहीं रहते, उस समय आत्मा को नहीं पाया जा सकता, और यह अवस्था ब्रह्म की अवस्था होती है। यह अवस्था नित्य है। सांख्य और योग का उद्देश्य इसी अवस्था की प्राप्ति है। जब रज और तम नष्ट हो जाते हैं, संचित कर्मों का भोग समाप्त हो चुकता है, नए कर्म तथा नया जन्म नहीं होता, तो उस समय मोक्षावस्था होती है। सत्य की प्राप्ति करके उसको बार-बार स्मरण करना चाहिए और इसी के द्वारा शरीर और आत्मा पृथक्-पृथक् हो जावेंगे, इस अवस्था को मोक्ष, निर्वृति या निःशेष कहते हैं।

चरक के द्वारा दिए हुए सांख्य के वर्णन को इस प्रकार संक्षेप में रक्खा जा सकता है—

१—अव्यक्त दशा का नाम पुरुष है।

२—इस अव्यक्त के विकास से उत्पन्न हुई वस्तुओं से प्राणी बनते हैं।

३—तन्मात्राओं का उल्लेख नहीं किया गया।

४—रज और तम मस्तिष्क की बुरी दशा और सत्त्व अच्छी दशा है।

५—निर्गुण-पूर्ण अस्तित्व का नाम मोक्ष है और उसको ब्रह्मावस्था भी कहते हैं।

६—इंद्रियाँ भौतिक हैं।

सांख्य का यह वर्णन पंचशिखा (जो कपिल के शिष्य आसुरी का शिष्य था) के उपदेश दिए हुए उस वर्णन से पूरा-पूरा मिलता है, जो महाभारत के १२वें पर्व के २१६वें अध्याय में दिया गया है। यद्यपि पंचशिखा का वर्णन चरक के समान स्पष्ट नहीं है, किंतु उसके थोड़े-से वर्णन से भी यह स्पष्ट हो जाता है। उसके सिद्धांत चरक से पूर्णतया मिलते-जुलते हैं।

षड्दर्शनसमुच्चय के टीकाकार गुणरत्न (चौदहवीं सदी) ने सांख्य के दो संप्रदायों का वर्णन किया है, एक मौलिक्य (आरंभिक), दूसरा उत्तर (बाद का)। मौलिक्यों के विषय में कहा गया है कि वह प्रत्येक आत्मा के लिये पृथक्-पृथक् प्रधान मानते हैं।

महाभारत १२ वें पर्व ३१८ वें अध्याय में सांख्य के तीन संप्रदायों का वर्णन है। एक चौबीस पदार्थों के माननेवाले (इनका वर्णन हो चुका है), दूसरे पच्चीस पदार्थों के माननेवाले (ईश्वरकृष्ण का सांख्य), और तीसरे छब्बीस पदार्थों के माननेवाले। यह अंतिम संप्रदाय

पुरुष के अतिरिक्त एक परमात्मा भी मानता था, और वही छब्बीसवाँ पदार्थ था। हमारे वर्णन किए हुए संप्रदाय का वर्णन इसी पर्व के २०३ और २०४ अध्यायों में भी आया है।

कपिल-मतवादी आसुरी के विषय में हमको कुछ भी विदित नहीं। किंतु यह प्रतीत होता है कि आसुरी के भी वही सिद्धांत थे, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। गुणरत्न के मौलिक्यों के वर्णन के अतिरिक्त ईश्वर-कृष्ण के सांख्य का चरक में वर्णन न होने से भी यह सिद्ध होता है कि या तो इसका उस समय अस्तित्व ही नहीं था अथवा यह कुछ भी महत्त्वशाली नहीं गिना जाता था।

ईश्वरकृष्ण ईस्वी १०० के लगभग हुए हैं। वह सांख्य-कारिकाओं के रचयिता हैं। ईश्वरकृष्ण के सांख्य का वर्णन पतंजलि के योग-सूत्रों और महाभारत में परस्परहन आता है। किंतु योग-सूत्र १-१६ में चरक के सांख्य का भी उल्लेख पाया जाता है।

सांख्य-कारिका अहिर्बुध्न्यसंहिता तथा दूसरे ग्रंथों में पंचशिखाचार्य के ग्रंथ षष्टि-तंत्रशास्त्र का वर्णन आता है। अहिर्बुध्न्यसंहिता में लिखा है कि इसके दो भाग थे। प्रथम भाग में बत्तीस और द्वितीय में अट्टाइस अध्याय थे। सांख्य-कारिका ७२ पर वाचस्पति मिश्र की टीका सांख्य-तत्त्वकौमुदी में राजवार्तिक का एक उद्धरण दिया है, जिससे प्रकट होता है कि उस ग्रंथ के षष्टि-तंत्र-कहलाने का कारण यह था कि उसमें प्रकृति के अस्तित्व, उसका एकत्व, पुरुष से उसकी भिन्नता, पुरुष के लिये उसकी उपयोगिता, पुरुषों का बहुत्व, पुरुषों से संबंध और पार्थक्य, पदार्थों का विकास, पुरुषों का अकर्तृत्व और पाँच विपर्यय, नौ तुष्टि, इंद्रियों के अट्ठाइस विपर्यय, नौ तुष्टि, इंद्रियों के [illegible] प्रकार के दोष और अष्ट सिद्धियों का वर्णन था।

किंतु अहिर्बुध्न्यसंहिता में षष्टि-तंत्र का विषय इससे [illegible] भिन्न बतलाया गया है। उससे यह भी पता चलता है कि षष्टि-तंत्र का सांख्य वैष्णव-पंचरात्र के समान [illegible] हो गया था। अहिर्बुध्न्यसंहिता में कहा गया है कि कपिल का सांख्य वैष्णव था। सांख्य-सूत्रों के

भाष्यकार विज्ञान-भिक्षु ने अपने विज्ञानामृत भाष्य में कई स्थलों पर कहा है कि सांख्य-मत पहले आस्तिक था। षष्टि-तंत्र के इन दो वर्णनों से प्रकट है कि मूल षष्टि-तंत्र में बहुत-से परिवर्तन कर दिए गए थे। ईश्वर-कृष्ण मूल षष्टि-तंत्र को देखने की गवाही देता है। किंतु वाचस्पति मिश्र की सांख्य-तत्त्वकौमुदी से पता चलता है कि उसके समय में षष्टि-तंत्र नष्ट हो चुका था। गुण-रत्न षष्टि-तंत्र का उल्लेख न करके षष्टि-तंत्रोद्धार का उल्लेख करता है, जो कि स्पष्टतः षष्टि-तंत्र का परिवर्तित रूप प्रतीत होता है।

यह प्रतीत होता है कि कपिल के सांख्य का अनुयायी आसुरी ही था। सांख्य-कारिका ७० से पता चलता है कि आसुरी के शिष्य पंचशिखाचार्य ने प्राचीन सांख्य में अनेक परिवर्तन किए। यह प्रतीत होता है कि उपनिषदों का सांख्य कपिल के सिद्धांतों के अनुसार है, और चरक का सांख्य पंचशिखा के सिद्धांतों के अनुसार। क्योंकि उपनिषदों के सांख्य में कुछ अधिक नास्तिकता है। आगे चलकर ईश्वर-कृष्ण ने तो सांख्य को निरीश्वरवादी बना दिया है।

ईश्वरकृष्ण की यह छोटी-सी महत्त्व-पूर्ण प्रसिद्ध पुस्तक 'सांख्य-कारिका' के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें केवल ७० आर्या छंद हैं, और कहा जाता है कि यह पंचशिखाचार्य षष्टि-तंत्र के आधार पर बनी है। शंकर और कई टीकाकारों ने एक दर्शन पर भाष्य न करके इसी पर टीकाएँ और भाष्य किए हैं। गौड़पाद और वाचस्पति के भाष्य भी इसी पर हैं। इसका अँगरेज़ी-अनुवाद कोलब्रुक साहब ने, जर्मन-अनुवाद [illegible] ने और [illegible] साहब ने, फ्रेंच-अनुवाद [illegible] साहब ने तथा सेंट हिलेयर साहब ने तथा अँगरेज़ी में [illegible] साहब ने तथा विल्सन साहब ने किया है। इसका तथा अँगरेज़ी-अनुवाद डेविस साहब ने किया है, जिस पर उन्होंने महत्त्व-पूर्ण टिप्पणियाँ दी हैं।

इससे हमें इन सिद्धांतों का पता चलता है—

१—[illegible] का [illegible] दैहिक, [illegible] और दैविक क्लेशों से मनुष्य को छुटकारा [illegible] दिलाना है।

२—वेद [illegible] निष्फल हैं [illegible] मुक्ति ज्ञान से होती है।

३—प्रकृति पुरुष अनादि हैं। सत्त्व रज तम की साम्यावस्था प्रकृति है, गुणों की विषमता से सृष्टि तथा समता से प्रलय होती है। विषमता होने से प्रकृति से महत्तत्त्व (ज्ञान), महत्तत्त्व से अंहकार (चेतना), अहंकार से पंचतन्मात्रा, मन, पंचज्ञानेंद्रियाँ, पंचकर्मेंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार पुरुष-सहित ये २५ पदार्थ हैं।

४—पुरुष से किसी की उत्पत्ति नहीं होती। पर वह मोक्ष होने तक शरीर के साथ रहता है। आत्मा परमेश्वर का अंश नहीं। वह भिन्न है और प्रकृति के बंधनों से मुक्त होने तक पृथक् रहती है। वह द्रष्टा, अकर्ता और भोक्ता, नित्य कूटस्थ है, प्रकृति......है।

इन सिद्धांतों से हम देखते हैं कि एक तो ईश्वरकृष्ण प्राचीन उपनिषदों के इस सिद्धांत का विरोध करता है कि आत्मा-परमात्मा एक है। दूसरे वह वर्तमान वेदांतियों के इस सिद्धांत के भी विपरीत है जो यह कहते हैं कि आत्मा भौतिक पदार्थों से भिन्न और अनादि है, यद्यपि वह कुछ समय तक भौतिक पदार्थों में मिला रहता है। ईश्वरकृष्ण कहता है कि उस आत्मा को छोड़कर शेष सब कुछ प्रकृति से उत्पन्न हैं, और इसलिये भौतिक हैं। केवल तत्त्व, इंद्रियज्ञान और इंद्रियाँ ही नहीं प्रत्युत चेतना, मन और बुद्धि भी भौतिक पदार्थों के फूल हैं।

ईश्वरकृष्ण के मानसिक दर्शन-शास्त्र को स्पष्ट समझने के लिये इंद्रिय-ज्ञान, इंद्रियाँ, मन, चेतना, बुद्धि, तत्त्वों और आत्मा के भेदों को अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।

पाँचो ज्ञानेंद्रियाँ केवल देखती हैं। अर्थात् 'ज्ञान' को ग्रहण करती हैं। पाँचो कर्मेंद्रियाँ अपना कार्य करती हैं। मन केवल ज्ञानेंद्रिय है। वह केवल ज्ञान को क्रमानुसार चेतना के निकट लाती है। चेतना उस ज्ञान को 'मेरा' बोध करती है। और बुद्धि उसमें भेद-प्रभेद समझती है तथा विचारों को बनाती है। इस प्रकार यह देखा जायगा कि इंद्रिय-ज्ञान, मन, चेतना और बुद्धि में जो भेद किए गए हैं, वे वास्तव में 'मन' के कार्यों के भेद हैं। योरप के दर्शन-शास्त्र की भाषा में इसे यों कहेंगे कि मनस इंद्रियों के ज्ञान को ग्रहण करता है और उसे 'अनुभव' बनाता है। चेतना इन्हें 'मेरा' ऐसा विचारती है, और बुद्धि उनको ध्यान में लाती है।

भाष्यकार वाचस्पति इस मानसिक क्रिया को इस प्रकार वर्णन करते हैं—"जैसे गाँव का मुखिया उस गाँव के लोगों से कर उगाहकर उसको ज़िले के हाकिम के पास ले जाता है, और जैसे ज़िले का हाकिम उस धन को राजमंत्री के पास भेज देता है और राजमंत्री उसे राजा के काम के लिये लेता है, उसी प्रकार 'मनस' या इंद्रियों के द्वारा विचार ग्रहण करता है। उन विचारों को चेतना के हवाले करता है और चेतना उन्हें बुद्धि को देती है। जो कि उसे राजा 'आत्मा' के काम के लिये लेती है।"

हम यह बता देना चाहते हैं कि इसी सिद्धांत को योरप को दर्शनकार भी स्वीकार कर चुके हैं। मारब साहब अपनी 'एलीमैंटस ऑफ़ साइकलोजी'-नामक पुस्तक में कहते हैं कि "वास्तव में इंद्रिय-ज्ञान शुद्ध निष्कर्म अवस्था नहीं है—वरन् उसमें मन भी थोड़ा कुछ काम करता है।"

कपिल-सिद्धांत का इतना सूक्ष्म विवेचन उस अत्यं प्राचीन काल में आश्चर्यजनक है। मनस, अहंका और बुद्धि को भौतिक समझना, और तत्त्वों की उत्पत्ति अहंकार से होने का सिद्धांत समझना, योरप ने अब बर्कले और ह्यूम साहब के मुख से सुना है।

पंच-महाभूत पृथ्वी जल तेज आकाश और वायु तथा पंच सूक्ष्म भूत रूप रस गंध स्पर्श और शब्द का वर्णन करने पर ईश्वरकृष्ण कहते हैं कि सूक्ष्म भूत तंत्र हैं! इस गंभीर बात का क्या अर्थ है? वह निःसंदेह उस सूक्ष्म सिद्धांत को स्पष्ट करता है कि जैसे सुनने का काम केवल कान तथा शब्द-उत्पत्ति-स्थल के बीच परस्पर संभाषण का कोई तारतम्य होने ही से नहीं होता परंतु इस कार्य के होने से उस तत्त्व में कुछ परिवर्तन भी होता है।

ईश्वरकृष्ण केवल तीन प्रमाण मानते हैं। अनुभव, अनुमान और साक्षी। न्याय चार प्रमाण मानता है—उसने अनुभव के अनुमान और उपमान दो भाग कर दिए हैं। वेदांत में एक और प्रमाण बढ़ा दिया गया है

अर्थात् 'अर्थापत्ति', जो कि अनुमान का एक भेद है। जैसे "रामचंद्र दिन में नहीं खाता, फिर भी वह पुष्ट है—अतः रात को खाता है।"

ईश्वरकृष्ण उपर्युक्त तीनो प्रमाणों को छोड़कर और किसी बात को स्वीकार नहीं करते। परंतु अनुमान, अनुभव और साक्षी से ईश्वर जो जगत् निर्माण करता है, सिद्ध नहीं होता, इसलिये वे ईश्वर को नहीं मानते।

परंतु वे कार्य के कारण को अवश्य मानते हैं। पर वे कारण और प्रयोजन को एक बात कहते हैं।

स्वभाव के तीनो गुण सत्त्व, रज, तम, सभी दर्शन-कारों ने स्वीकार किए हैं। ये एक आनुमानिक वर्णन है, जिससे जीवन की सब वर्तमान अवस्थाओं के भेद का कारण विदित होता है।

ईश्वरकृष्ण समस्त जगत् को प्रकृति से उत्पन्न मानते हैं। इसमें उनके ५ कारण हैं—

१—विशेष वस्तुओं का स्वभाव परिमित होता है। और उनका हेतु भी अवश्य होना चाहिए।

२—भिन्न-भिन्न वस्तुओं के साधारण गुण होते हैं और वे एक ही मूल जाति के भिन्न-भिन्न भाग होते हैं।

३—सब वस्तुएँ निरंतर उन्नति की अवस्था में होती हैं और उनमें प्रसार की क्रिया-शक्ति होती है। जो कि अवश्य एक ही आदिकारण से उत्पन्न हुई होगी।

४—यह वर्तमान संसार फल है और इसका कोई आदिकारण अवश्य होना चाहिए।

५—समस्त सृष्टि में एक प्रकार का एकत्व है, जिससे कि इसका किसी एक ही वस्तु से उत्पन्न होना सिद्ध होता है।

इन पाँच कारणों के आधार पर ईश्वरकृष्ण का कहना है कि सभी स्थूल अस्तित्व प्रकृति से ही उपजे हैं।

परंतु 'पुरुष' एक भिन्न वस्तु है, और वह उनसे उत्पन्न नहीं हुई है। उसके कारण भी उससे भिन्न हैं, जो वर्तमान वस्तुस्थितियों से भिन्न हैं। सभी वस्तुएँ इस [illegible] हैं। परंतु आत्मा उनसे पृथक् है। ईश्वरकृष्ण यह नहीं स्वीकार करते, वे यह कहते हैं कि आत्मा वह चीज़ है जिसके लिये ये सब चीज़ें बनी हैं। गौड़पाद स्वामी उदाहरण देकर कहते हैं कि बिछौना, गद्दा, तकिया आदि स्वयं उन पर नहीं सोता—सोने-वाला और कोई है। और वही पुरुष है। ईश्वरकृष्ण प्लेटो के इस सिद्धांत को स्वीकार करता है कि उत्तम जीवन प्राप्त करने की अभिलाषा से प्रकट होता है कि उन्हें प्राप्त करने की संभावना भी है। ईश्वरकृष्ण भिन्न-भिन्न शरीर में भिन्न-भिन्न आत्मा मानते हैं, और उनका यह मत वेद और उपनिषदों से गहरा मतभेद कर देता है।

ईश्वरकृष्ण का पुनर्जन्म का सिद्धांत उपनिषदों का है, परंतु उसमें कुछ परिवर्तन उन्होंने किया है। वे कहते हैं कि आत्मा कूटस्थ है। मन, बुद्धि और अहंकार भौतिक हैं। इनका निर्मित एक सूक्ष्म-शरीर आत्मा के साथ रहता है। और प्राणियों के व्यक्तित्व से संबंध रखता है। और शरीर छूटने पर भी आत्मा के साथ पाप-पुण्य के अनुसार उच्च और नीच लोकों में जाता है, जिनमें ८ उच्च और ५ नीच हैं। पर जब आत्मा लिंग-शरीर से पृथक् हो जाती है, तब वह मुक्त हो जाती है। यह मुक्ति सदा को होती है। तथा ज्ञान-प्राप्ति से होती है। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर भी आत्मा कुछ दिन शरीर में रहती है। अंत में वह भौतिक पदार्थों से पृथक् हो जाती है। उस समय प्रकृति का कार्य समाप्त हो जाता है। और वह अपना कार्य बंद कर देती है। और वह सदा के लिये पृथक् हो जाती है।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेनहार और वान हार्टमैन के सिद्धांत इन्हीं से मिलते-जुलते हैं। पर वे आत्मा की सफाई करते हैं, और कहते हैं, भौतिक भावों का पूर्ण विकास हो उस दशा में नाश हो जाता है।

यह बात हम कह चुके हैं कि ईश्वरकृष्ण की यह सांख्य-कारिका ही वर्तमान काल में सांख्यशास्त्र के या सांख्य-सिद्धांतों के नाम से विख्यात होती रही है। इसी के आधार पर कपिल के दार्शनिक सिद्धांतों को नास्तिक कहा गया है। पर यदि [illegible] पर विचार किया जाय, तो हमें कपिल के ईश्वरवादी होने में ज़रा भी संदेह नहीं रहता। सांख्य-शास्त्र के कर्ता-

कांड ने कितना ज़ोर पकड़ा था, यह पाठक देख ही चुके हैं। सांख्य उसका पूर्ण विरोधी था, अतः उन्होंने उसे ख़ूब कटु-भाषा में निरीश्वरवादी, नास्तिक, पाखंडी और भैवादिक नाम दिया है।

सांख्य-शास्त्र के 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र को उसके नास्तिक-वाद में प्रमाण दिया जाता है। परंतु पाँचवें अध्याय में स्पष्ट प्रकृति-पुरुष के अतिरिक्त ईश्वर की उपपत्ति स्वीकार की गई है। ईश्वर को आप्तकाय कहा गया है, जो कि सांख्य-दर्शन के आस्तिक होने का पूरा प्रमाण है। महाभारत में भीष्म पितामह ने स्वयं कहा है कि सब ज्ञानों का 'भंडार' सांख्य है। शांतिपर्व में सांख्य-सिद्धांतों का बड़ा सुंदर वर्णन है, गीता में 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' कहा गया है। अन्य स्थलों में भी कपिल की बड़ी प्रतिष्ठा है। महाभारत में जो कपिल-संवाद, कपिल-स्यूत्र-राशी-संवाद, और अनेक दूसरे स्थानों पर भी सांख्य-मार्ग की प्रशंसा की गई है। तथा भागवत में उनका अपनी माता को ज्ञानोपदेश देना लिखा गया है। ये सारी बातें कपिल और उनके-सिद्धांतों को ईश्वरवादी सिद्ध करती हैं।

रामायण में शिव पार्वती से कहते हैं कि सांख्य आस्तिक शास्त्र है। उसमें जो एकात्मता का भेद है, उसमें सांख्य ही प्रमाण है। सांख्य का द्वैत-वाद उत्तम है।

पीछे कहा गया है कि उपरिचर, वसु, पृथु, श्रीरामचंद्र ने अपने-अपने यज्ञों में कपिल को निमंत्रित किया था। यदि वे ईश्वरवादी नहीं थे, तो आर्य-संस्कृति में उनका इतना आदर न होता।

'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र पर प्रसिद्ध विज्ञानभिक्षु का कथन है कि सबसे अधिक यही सूत्र उनका ईश्वरवादित्व सिद्ध करता है। यदि वे अनीश्वरवादी होते, तो 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र के स्थान पर 'ईश्वराभावात्' ऐसा कहते। इस सूत्र का तो केवल यही अर्थ है कि ईश्वर को छोड़कर सब तत्त्व सिद्ध किए जा सकते हैं, और ईश्वर तर्क से या विवेचना से सिद्ध होने योग्य नहीं, वह 'आप्तकाय' है। विज्ञानभिक्षु का कथन है कि यह दर्शन श्रुति के अनुकूल आपत्ति व युक्ति-वाद-पूर्ण है।

दर्शन की अभिलाषा *

[श्रीरत्नांबरदत्त चंदोला]

(१)

रुककर सहसा अंतिम बार,
टूट पड़े वीणा के तार !
करके प्रियतम का शृंगार,
बिखर पड़ा फूलों का हार !
सूना छोड़ मन-मंदिर द्वार,
जीवन-रथ पर हुई सवार—
रोता छोड़ विपुल संसार,
क्षण में पहुँच गई उस पार !
विकल हुए हैं युगल विलोचन,
देवि, करूँगा तेरा दर्शन ।

(२)

मिलन-काल का बीता क्षण-सा,
चिर-वियुक्त के उर का व्रण-सा,
विधवा का उतरा कंकण-सा,
राग-विराग बीच चिर-रण-सा,
[illegible] का आकर्षण-सा,
शरद जलद का परिवर्षण-सा,
वायु-वेग में बहता तृण-सा,
मरुस्थलों में जल के कण-सा,
व्यर्थ न होवेगा यह अर्पन,
देवि, करूँगा तेरा दर्शन !

(३)

उन चरणों के चिह्न निहार,
देख रहा हूँ दृग विस्फार ;
पुतली पर तसवीर उतार,
छोड़ रहा हूँ आँसू-धार,
धोता हूँ फिर उसी प्रकार,
जैसे कोई प्रतिछविकार !
चित्र-कला का ले आधार
जी जाऊँगा दिन दो चार !
करके विकलित विश्व-विसर्जन,
देवि, करूँगा तेरा दर्शन !

(४)

सरिता-तट पर घोर मसान,
है जो मृतकों का उद्यान ;
जहाँ सभी हैं एक समान,
दीन, धनी, या नीच, महान ।
रूप, कुरूप, शील, अभिमान,
भस्मित होते जहाँ निदान !
वहाँ पहुँचकर तब अनजान,
गाऊँगा मैं नीरव गान !
राख बना आँखों का अंजन,
देवि, करूँगा तेरा दर्शन !

* अप्रकाशित 'मधुकोष'-काव्य से

मिस देहात-सुधार

इस्तीफ़ा

[श्रीविश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक"]

(१)

वर्षा ऋतु की संध्या थी—आकाश पर घने बादल छाए थे। शोभापुर के तहसीलदार तहसील के एक कोने में लगे हुए छोटे-से बग़ीचे में मेज़ कुर्सी लगाए मित्रों-सहित बैठे थे। मेज़ पर दो शराब की बोतलें रक्खी हुई थीं तथा प्रत्येक आदमी के सामने एक-एक शीशे का ग्लास और एक-एक चीनी की प्लेट रक्खी हुई थी। एक महाशय कह रहे थे—"भई, ईमान की बात तो यह है कि शराब का लुत्फ़ इसी मौसम में है।"

"बिलकुल सच्ची बात है।" दूसरे ने झूमते हुए कहा। "सब्ज़ा हो, कुंज बाग़ हो, अब्रे सियाह हो।"

तहसीलदार साहब झूमते हुए बोले—"ख़ूब-ख़ूब, क्या इसलाह दी—'साक़ी हो माहवश' के बजाय 'अब्रे सियाह' बहुत अच्छा रहा।"

"औक़ात की बात है न! माहवश साक़ी कहाँ धरा है।"

एक मिर्ज़ा साहब शराब की चुस्की लगाकर बोले—"ख़ुदा की क़सम, तहसीलदार साहब-सा ज़िंदा-दिल [illegible] मैंने तो आज तक देखा नहीं। अजीब तबीयत [illegible] है—सुभान अल्लाह!"

तहसीलदार साहब बोले—"शेख़ साहब! मेरा तो [illegible] है कि इस चंद-रोज़ा ज़िंदगी को जहाँ तक [illegible] हो, ऐशो-इशरत में बसर करें।"

"[illegible], क्या ख़ूब कहा है।"

[illegible] तहसीलदार साहब बोले—"अरे भई [illegible]!"

"[illegible]" कहकर हसनअली सामने आया।

"[illegible] हो गए।"

"[illegible] है—दो मिनिट का अमर है।"

"[illegible] में तो ज़िंदगी ख़त्म हो जाती है।"

एक महाशय बोले—"क्या सच्ची बात कही है आपने। वाक़ई, यह ज़िंदगी दो ही मिनिट में ख़त्म हो जाती है।" यह कहकर उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी।

अन्य सबों ने भी इस बात का समर्थन किया। कुछ क्षणों के लिये सब लोग ज्ञान-वायु में आ गए। एक तो नशे में, दूसरे तहसीलदार साहब की प्रत्येक औंधी-सीधी बात का समर्थन करना आवश्यक।

दो मिनिट पश्चात् कबाब आ गए। हसनअली ने सब की प्लेटों में कबाब परोसे। शेख़जी कबाब का टुकड़ा खाकर बोले—"सुभान अल्लाह! क्या नफ़ीस कबाब बने हैं।"

दूसरे महाशय बोले—"कबाब क्या हैं, न्यामत की मा का कलेजा हैं। भई हसनअली, क्या कहूँ, मजबूर हूँ कि मैं एक ग़रीब आदमी हूँ, वरना तुम तो इस क़ाबिल हो कि तुम्हें आँखों की पुतली बनाकर रक्खे। हाँ, समझे भैया हसनअली? मैं बादशाह होता, तो तुम्हें वज़ीर बनाता।"

हसनअली बोला—"तहसीलदार साहब की दुनिया के तुफ़ैल से मुझे क्या कमी है।"

"बेशक-बेशक—तुम भी अपने फ़न के बादशाह हो।" एक अन्य व्यक्ति झूमता हुआ बोला।

तहसीलदार साहब बोले—"हसनअली को मैं नौकर थोड़ा ही समझता हूँ।"

"क़द्रदानी इसी का नाम है"—शेख़ साहब बोले।

"मैंने तो हसनअली से [illegible] है कि जब मैं पेंशन लूँगा, तो तुम्हें अपने साथ [illegible]—क्यों मिर्ज़ा हसनअली!"

"मैं हुज़ूर का ग़ुलाम हूँ—जहाँ [illegible], मैं आपके साथ रहूँगा।"

"[illegible]! [illegible] इसी [illegible] कहते हैं।"

[illegible]

[illegible]—"[illegible] भई [illegible], [illegible]!"

रामप्रसाद चौंककर बोला—"मैं यह सोच रहा हूँ कि बकरी भी कितनी क़ुर्बानी करती है। ख़ुद अपनी जान देती है—जिस्म की खाल खिंचवाती है, बोटियाँ कटवाती है—जलती है, भुनती है और हम लोगों को लज़्ज़त पहुँचाती है।"

"बेशक! कबाब ऐसी ही चीज़ है। कहा भी तो है—

आप हो सोख़्त ग़ैर को लज़्ज़त ;
यह मज़ा है कबाब में देखा।"

"ख़ूब-ख़ूब। बहुत अच्छा कहा है।" रामप्रसाद ने सिर हिलाते हुए कहा।

शेख़ साहब बोले—"तुम्हारा सर अच्छा कहा है।—

ऐश के वक़्त ग़मज़दा होना ;
यह हिमाक़त जनाब में देखा।"

तहसीलदार साहब बोल उठे—"देखी कहो म्याँ, हिमाक़त मौन्नस (स्त्री-लिंग) है, मुज़क्कर (पुल्लिंग) नहीं।"

शेख़ साहब बोले—"हिमाक़त कभी-कभी मुज़क्कर भी हो जाती है।"

"कब हो जाती है ?"

"जब मर्द करता है।"

"ख़ूब—यह आपसे किसने कहा ?"

"ऐ हुज़ूर, जाफ़र ज़टल्ली कहा करता था।"

"जाफ़र ज़टल्ली ? वह आपका कौन था ?"

"वह मेरे ससुरे की जोरू की सौत का सौतेला लड़का था।"

इस पर सबने क़हक़हा लगाया।

इसी समय एक ओर पपीहा चिल्ला उठा—"पी कहाँ ! पी कहाँ !"

रामप्रसाद चिल्लाकर गाने लगा—"पपहिया को डारो मरवाय, इसने मेरी नींदा हरी—वाहवा, क्या कहा है—पपहिया को डारो मरवाय—यानी पपीहे को मरवा डालो—ज़रा इस बात पर ग़ौर कीजिएगा—मरवा डालो ! इतना ग़ुस्सा ! अगर कोई कहे भी कि रहम करो, तब भी यही हुक्म हो कि—ऊँहूँ ! बस मरवा ही डालो। ज़िंदा न छोड़ा। हिज्र (वियोग) की आग भी क्या बुरी होती है। किसको मारवा डालो ? पपीहे को—क्यों ? यह कमबख़्त 'पी कहाँ, पी कहाँ' चिल्लाता है, और इस आवाज़ से कलेजे में हूक उठती है। सच बात तो यह है कि पपीहा भी अजीब चिड़िया है।"

शेख़ साहब शराब का घूँट पीकर बोले—"मुझे तो यह किसी चिड़ीमार का लौंडा मालूम होता है।"

रामप्रसाद बोला—"ज़रा सुनिए, क़साई का भतीजा क्या कहता है।"

"होशियार रहना—किसी रोज़ तुम्हारा भी क़ीमा बनाऊँगा।"

"अबे जा, मरे कुत्तों का क़ीमा बना जाकर। कल बस्सू जल्लाद पूछता फिरता था कि शेख़जी कहाँ गए—दो आने के हिसाब से मरे कुत्ते ख़रीद लेते हैं।"

एक अन्य व्यक्ति तहसीलदार साहब से बोला—"ठाकुर साहब, अब इन्हें न मिले—इन दोनो की ख़बर आ गई। समझे ठाकुर, इन दोनो की ख़बर आ गई।"

तहसीलदार साहब बोले—"हाँ समझ गए।"

वह कुर्सी कुछ और आगे बढ़ाकर बोला—"आप नहीं समझे। अच्छा बताइए तो क्या समझे ? आपको हमारे सर की क़सम है, सच-सच बताइएगा।"

"बस समझ गए।"

"नहीं समझे—नाक-नाक बदता हूँ, आप ख़ाक नहीं समझे। हमारी बात समझना बड़ी टेढ़ी खीर है—आसान नहीं है। (गाते हुए) नहीं आसान है ठाकुर हमारी बात समझना—अरे हाँ बात समझना। (चुटकी बजाते हुए) अजी वा—बात समझना।"

तहसीलदार साहब भी स्वर में स्वर मिलाकर बोले—"बहुत आसान है बाबू, तुम्हारी बात समझना—अरे हाँ बात समझना। ओफ़् ओह, कितना अँधेरा है। अरे यारो ज़रा लैंप तो मँगवाओ।"

हसनअली बोला—"हुज़ूर लैंप में पतंगे आवेंगे।"

शेख़ साहब बोले—"आने आने दो—मत रोको। शमा (दीपक) पर परवाने (पतंग) को जान क़ुर्बान करने दो। अगर इस समय यहाँ कोई शमा-रुख़ (दीपक-मुखी) होती, तो ईंजानिब भी जलकर भसम हो जाते। राख हो जाते, ख़ाक हो जाते—और क्या हो जाते ! ज़रा बताना तो।"

हठात् तहसीलदार साहब ने पुकारा—"हसनअली!"

हसनअली "हुज़ूर" कहकर सामने आया।

"यह सब सामान हटाओ। खाना तैयार है ?"

"हाँ तैयार है।" (धीमे स्वर में) और वह भी आ गई है।"

तहसीलदार भी धीमे स्वर में बोले—"तो उन्हें कमरे में बिठाओ। खाना खायँ, तो खाना खिला दो। कोई तो नहीं है?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं।"

"पूछ लेना—मैं खाना खाकर और इन लोगों को रुख़सत करके आऊँगा।"

एक व्यक्ति बोल उठा—"क्यों उस्ताद, यह चुपके-चुपके क्या सलाह हो रही है।"

"आपसे मतलब?"

"उस्ताद, यह तनहाख़ोरी अच्छी नहीं।"

"नहीं, हर्गिज़ नहीं—हसनअली, इनके लिये भी खाना लाओ।"

"वाह, क्या टाला है। खाना चाहे तुम मेरे हिस्से का भी खा लो—खाने की परवा किसे है।"

इसी प्रकार थोड़ी देर हँसी-मज़ाक़ होता रहा, इसके पश्चात् खाना आया। सबने खाना खाया और विदा हुए। तहसीलदार साहब झूमते हुए उठे और मकान के अंदर चले गए।

(२)

ठाकुर साहबसिंह एक बड़े कुलीन के वंश के वंशज हैं। इनके परिवार में उनके वृद्ध पिता, माता, पत्नी तथा एक द्वादश-वर्षीय पुत्र को मिलाकर चार प्राणी हैं। ठाकुर साहब मुरादाबाद ज़िले के एक बड़े क़स्बे के रईस हैं। वहाँ उनका एक बड़ा विशाल भवन तथा ज़मींदारी है। ठाकुर साहब के पिता की यह महत्त्वाकांक्षा थी कि उनका पुत्र किसी सरकारी पद पर हो। अतएव अपनी इसी महत्त्वाकांक्षा के अनुसार उन्होंने बड़ी चेष्टा करके पुत्र को तहसीलदारी दिलवा दी थी। आरंभ में ठाकुर साहबसिंह बड़े सदाचारी तथा धर्म-परायण आदमी थे; परंतु तहसीलदारी का पद पाते ही इनका पतन आरंभ हुआ, और क्रमशः वह [illegible] हो गए।

जिस साहबसिंह का हृदय पहले किसी को कष्ट में देखकर द्रवित हो जाता था, उन्हीं साहबसिंह का हृदय अब इतना कठोर हो गया था कि अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को हानि पहुँचाना उनके लिये उतना ही साधारण काम हो गई जितना कि किसी के लिये नित्य-क्रिया होती है। जो साहबसिंह पहले दूसरों का एहसान लेना भी बुरा समझते थे, वही साहबसिंह अब धड़ाधड़ रिश्वतें लेते हैं। जो साहबसिंह पहले तंबाकू तक नहीं पीते थे, वही अब बोतल-पर-बोतल ख़ाली कर जाते हैं। जो साहबसिंह पहले पराई स्त्री की ओर देखने तक का साहस न करते थे, वही अब पराई बहू-बेटी का सतीत्व हरण करने की ताक में रहते हैं। जो साहबसिंह पहले किसी की ख़ुशामद करना हेय कर्म समझते थे, वही साहबसिंह अब अपने अफ़सरों के जूते तक साफ़ करने को तैयार रहते हैं। एक मनुष्य का जितना नैतिक पतन हो सकता है, उतना नैतिक पतन साहबसिंह का हो चुका था। परंतु फिर भी उनके पिता-माता उनसे पूर्ण-रूपेण संतुष्ट थे। क्यों? इसलिये कि उनकी आर्थिक स्थिति प्रतिदिन उन्नत हो रही थी। उनके नैतिक पतन से उनके परिवार में यदि किसी को हार्दिक पीड़ा पहुँच रही थी, तो वह उनकी पत्नी थी। वह बेचारी उनके इस परिवर्तन पर मन-ही-मन कुढ़ा करती थी। उनके पर-स्त्री-लोलुपता तथा मदिरा-सेवन के कारण उसने उनके साथ रहना छोड़ दिया था। साहबसिंह चाहे जहाँ रहें; पर वह सदैव अपने सास-ससुर के पास ही रहती थी। साहबसिंह भी पत्नी की इस उदासीनता से संतुष्ट थे; क्योंकि पत्नी की अनुपस्थिति में उन्हें मौज उड़ाने का अच्छा अवसर मिलता था।

विजयादशमी की छुट्टियों में तहसीलदार साहब घर आए। उन्हें देखते ही पिता प्रसन्नता के मारे गद्गद हो गए। माता ने [illegible]।

रात में साहबसिंह खाना खाकर शराब के नशे में झूमते हुए पत्नी के पास पहुँचे।

पत्नी के पास बैठकर बोले—"कहो, क्या हाल-चाल है?"

"[illegible] किसी प्रकार कट रहा है।" उसने उत्तर दिया।

"अब मैं घर आता हूँ, तो तुम्हें कुछ ख़ुशी नहीं होती।"

"जब तुम्हें ही मेरे पास आने में ख़ुशी नहीं होती, तो मुझे कैसे हो सकती है?"

"मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा [illegible]

इतना क्यों बदल गया ? अब तुम पहले-जैसी नहीं रहीं।"

"तुम भी तो पहले-जैसे नहीं रहे।"

साहबसिंह हँसकर बोले—"यह तुम्हारा भ्रम है। मैं तो वैसा ही बना हूँ।"

पत्नी ने एक दीर्घ श्वास लेकर कहा—"दुनिया के लिये होंगे—मेरे लिये तो नहीं हो।"

"तो इसमें मेरा क्या दोष ?"

"कुछ नहीं, दोष मेरे भाग्य का है।"

"यह तुम्हारे व्यवहार का दोष है। यदि तुम मेरे साथ रहो, तो...... ।"

साहबसिंह की बात पूरी होने के पूर्व ही उनकी पत्नी बोल उठी—"माफ़ करो। वहाँ रहकर सिवाय जलने-कुढ़ने के और क्या धरा है। मुझसे तो यह नहीं हो सकता कि तुम मेरी छाती पर मूँग दलो और मैं चुपचाप देखा करूँ। और मेरे वहाँ रहने से तुम्हें भी कौन सुख पहुँचता। मैं तो पुरानी हो गई—तुम्हें नित-नई चाहिए।"

"राम ! राम ! इतना झूठ क्यों बोलती हो।"

"झूठ और सच का देखनेवाला भगवान् है।"

"बात यह है कि तहसीलदारी का काम ऐसा है कि उसके कारण हमारे पास सभी तरह के आदमी आते-जाते हैं। तुम उसके कुछ-के-कुछ अर्थ लगाती हो।"

"ऐसी तहसीलदारी से तो तुम क्लर्क होते, तो मुझे सुख था। तुम्हारी आदतें तो न बिगड़तीं।"

"तो तुम्हारी समझ में मेरी आदतें बिगड़ गई हैं ?"

"और नहीं तो क्या सुधर गई हैं ? क्या पहले भी तुम शराब पीते थे—पहले भी तुम पराई बहू-बेटियों को बिगाड़ने की ताक में रहते थे ?"

"अरे शराब तो आजकल सभी पीते हैं, इससे क्या हुआ ? पिताजी कोई मूर्ख तो हैं नहीं। उन्होंने आज तक कभी कोई शिकायत नहीं की ?"

"उन्हें क्या, उन्हें तो रुपए से मतलब है। उन्हें कमा-कमाकर दिए जाओ—बस फिर चाहे जो करो, उनकी बला से। उन्हें तो खुशी होती है।"

"और तुम्हें दुःख होता है ?"

"हाँ दुःख होता है। मुझे तो खुशी उस दिन होगी जिस दिन तुम तहसीलदार न रहोगे।"

"चमार के कोसे ढोर नहीं मरते।" तहसीलदार साहब घृणा-पूर्वक हँसकर बोले।

पत्नी ने इसका कुछ उत्तर न दिया, एक दीर्घ निश्वास छोड़कर रह गई।

तहसीलदार साहब बड़े प्रेम-पूर्वक बोले—"इस दफ़ा तुम मेरे साथ चलो, लड़के को भी ले चलो। हवा-पानी बदल जायगा। महीना-दो-महीना रहकर चली आना।"

"न मैं जाऊँगी न लड़के को भेजूँगी। तुम तो बिगड़े ही हो—तुम्हें देखकर वह भी किसी काम का न रहेगा। तुम उसके सामने भी शराब पियोगे—औरतें बुलाओगे। अब वह इतना ना-समझ नहीं रहा, जो इन बातों को न समझे।"

"अच्छी बात है—तुम उसे यहाँ रखकर धर्मात्मा बनाओ।"

"यहाँ रहकर वह चाहे धर्मात्मा हो चाहे पापी—उसका भाग्य। पर आँखों देखते तो आग में नहीं ढकेला जाता।"

"न ढकेलो।"

थोड़ी देर तक दोनो मौन बैठे रहे। हठात् तहसीलदार साहब ने पूछा—"पिछले महीने मैंने तुम्हारे लिये रुपए भेजे थे, वह मिले थे ?"

"मुझे रुपए करने क्या हैं, मुझे तो बस रोटी-कपड़ा चाहिए। तुम्हारे रुपए मैं लेकर क्या करूँ। भगवान् जाने किस-किसकी गर्दन काटकर वह रुपया लिया होगा।"

तहसीलदार साहब कर्कश स्वर में बोले—"हाँ, मैं तो रात-दिन सबकी गर्दनें ही काटता रहता हूँ।"

पत्नी मौन रही। तहसीलदार साहब थोड़ी देर बैठे ओंठ चबाते रहे। तत्पश्चात् बोले—"तुम्हारा यह व्यवहार ठीक नहीं है—किसी दिन तुम्हें इसके लिये पछताना पड़ेगा।"

"यदि तुम कभी अपने व्यवहार पर पछताओगे, तो मैं भी पछता लूँगी।"

तहसीलदार साहब बड़बड़ाते हुए अपने पलँग पर जा लेटे और नशे में होने के कारण थोड़ी ही देर में सो गए।

(२)

छः मास पश्चात्!

एक ज़मींदार के विरुद्ध एक काश्तकार ने इस्तग़ासा दायर किया। इस्तग़ासे में बयान किया गया था कि ज़मींदार ने मुस्तग़ीस को पिटवाया और दो दिन तक बंद रक्खा। तहसीलदार साहब ने दौराने-मुक़द्दमा में अपना व्यवहार इस ढंग का रक्खा जिससे ज़मींदार को यह संदेह हुआ कि तहसीलदार साहब उसे सज़ा दे देंगे। ज़मींदार ने एक दूसरे ज़मींदार को सिफ़ारिश के लिये भेजा। तहसीलदार साहब से भेंट होने पर उन्होंने पूछा—"मुस्तग़ीस ने जो बातें इस्तग़ासे में लिखी हैं, क्या वह वाक़ई सच्ची हैं?"

ज़मींदार ने कहा—"किसी हद तक तो ज़ुरूर सच्ची हैं। आप तो जानते हैं, इन काश्तकारों को बिना दबाए इनसे पैसा वसूल नहीं होता।"

तहसीलदार साहब मुँह बनाकर बोले—"तब तो उसका बरी होना मुश्किल है।"

"मुश्किल मालूम हुआ, तभी तो मैं आपके पास दौड़ा आया। अब इस दफ़ा तो माफ़ कर ही दीजिए। काश्तकार के ख़िलाफ़ अगर ज़मींदार सज़ा पा गया, तो बड़ी बदनामी की बात होगी।"

"तो भई, ख़ाली-ख़ूली सिफ़ारिश से तो काम चलेगा नहीं।"

"तो और जो हुक्म हो, उसकी तामील की जाय।"

"अब समझ आओ।"

"बहुत अच्छी बात है। कितना?"

"कम से कम पाँच।"

"पाँच! पाँच तो बहुत है।"

"आपके क्या थोड़ा है?"

"नहीं, आपके तो लाखों का है।"

"तब फिर समझ लो।"

"[illegible] तो कुछ कम हो जाय।"

"[illegible] कम कर दो।"

"हद होगई, आप भी ग़ज़ब करते हैं।" ज़मींदार ने हँसकर कहा।

"तो इससे ज़्यादा की तो गुंजाइश नहीं।"

"अच्छी बात है—कोशिश करूँगा।"

यह कहकर ज़मींदार चला गया। दूसरे दिन पुनः तहसीलदार साहब के पास आया। और बोला—"तीन सौ देने को तैयार हैं।"

"ऊँहूँ—तीन सौ कम हैं।"

"अब इतने ही ले लीजिए।"

"कम हैं।"

"अब इतना कहना हमारा भी मानिए।"

"कुछ और दिलवाओ।"

"और का तो ठौर नहीं है।"

तहसीलदार साहब सोचकर बोले—"अच्छी बात है, तुम्हारे कहने से इतना मंज़ूर किए लेते हैं।"

"बड़ी मेहरबानी है आपकी।"

"रुपए कब भिजवाओगे?"

"कल आ जायँगे।"

"अच्छी बात है।"

दूसरे दिन तीन सौ रुपए तहसीलदार साहब के पास पहुँच गए।

निश्चित समय पर तहसीलदार साहब ने मुक़दमा ख़ारिज कर दिया।

इधर उस काश्तकार को भी पता लग गया कि तहसीलदार साहब रिश्वत पा गए हैं और मुक़दमा ख़ारिज कर देंगे। उसने भी तहसीलदार साहब के पास उठने-बैठनेवाले एक व्यक्ति द्वारा संदेशा भेजा कि "जितना ज़मींदार ने दिया हो या देने को कहते हों उससे सवाया-डेवढ़ा मैं दूँगा—मगर इस मामले में इंसाफ़ किया जाय।"

तहसीलदार ने संदेश लानेवाले से पूछा—"उसे कैसे पता लग गया?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं, और न शायद वह बतावे।"

"उससे कह देना कि इंसाफ़ किया जायगा।"

"मगर एक बार रुपए ले चुके हैं, तो फिर इंसाफ़ कैसे कीजिएगा?"

"[illegible] हों, फिर वह कह ही क्या सकता है।"

"[illegible] कह दें कि [illegible] [illegible] इस मामले में [illegible] [illegible]"

कुछ मामूली आदमी नहीं है। सौ सवा सौ बीघे की खेती करता है। उसकी आबरू ज़मींदार ने मिट्टी कर दी। तो अब आपको चाहिए कि न्याय कीजिए। उसकी ओर से सुबूत भी बड़ा अच्छा है।"

"भई मैं मजबूर हूँ—इस मामले में मैं कुछ नहीं कर सकता।"

"आख़िर उसने दिया क्या ?"

"कुछ नहीं, मैंने कुछ लिया-दिया नहीं।"

"अब मुझसे ऐसी बातें न कीजिए, मैं आपके पास का उठने-बैठनेवाला हूँ, इतना एतबार तो कीजिए।"

"सच बताऊँ ?" तहसीलदार साहब मुसकिराकर बोले।

"हाँ सच ही बताइए।"

"चार सौ लिए हैं।"

"तो मुस्तग़ीस से मैं पाँच सौ दिला सकता हूँ।"

"अजी ये सब बातें हैं।"

"बातें! आप 'हाँ'-भर कह दीजिए—फिर देख लीजिए कि बातें हैं या क्या है।"

"अब तो उससे इक़रार हो चुका है।"

"अजी गोली मारिए इक़रार-मदार को।"

"नहीं, यह ठीक नहीं, जो हो चुका वह हो चुका।"

"आप उसके रुपए लौटा दीजिए।"

"लौटा दूँ ?"

"हाँ लौटा दीजिए। चार सौ अच्छे कि पाँच सौ।"

"अच्छे तो पाँच सौ ही हैं; पर अब तो जो होना था हो चुका।"

"हो क्या चुका, कोई दस्तावेज़ लिख दी है क्या ?"

"ज़बान दस्तावेज़ से ज़्यादा है।"

"बस, यह डपोलशंखी बातें रहने दीजिए। आप उसे सज़ा कर देंगे, मामला समाप्त है।"

"हाँ यह तो ठीक है—मगर..."

"बस अब अगर-मगर को पास न फटकने दीजिए। आज शाम को आपके पास पाँच सौ आ जायँगे।"

"तुम मानोगे नहीं ?"

"हम तो आपके शुभचिंतक हैं। जिसमें आपका भला होगा, वही करेंगे। हमें न तो ज़मींदार से मतलब है न काश्तकार से। हम तो केवल यह देखते हैं कि आपको सौ रुपए अधिक मिलते हैं। पाँच सौ लेकर न्याय करना अच्छा या चार सौ लेकर अन्याय! इस का उत्तर दीजिए!"

"बात तो ठीक कहते हो।"

"मैं बे-ठीक कभी कहता ही नहीं।"

"अच्छी बात है—जैसा तुम कहोगे, वैसा ही होगा।"

उसी दिन शाम को तहसीलदार साहब के पास पाँच सौ पहुँचा दिए गए। तहसीलदार साहब का तबादला शीघ्र ही होनेवाला था। इसलिये उन्होंने सोचा कि ज़मींदार के रुपए भी डकार जाओ। हम यहाँ से बदल ही जायँगे—फिर कौन पूछता है। यह सोचकर उन्होंने ज़मींदार के रुपए नहीं लौटाए।

निश्चित समय पर तहसीलदार साहब ने हुक्म सुनाया। ज़मींदार को उन्होंने छः महीने की सज़ा दे दी।

(४)

उपर्युक्त घटना के एक मास पश्चात् तहसीलदार साहब का तबादला एक ऐसी तहसील में हो गया जो शोभापुर से डेढ़ सौ मील की दूरी पर थी।

जिस ज़मींदार को उन्होंने सज़ा दी थी उसने अपील दायर की और ज़मानत देकर वह छूट आया। छूटकर उसने तहसीलदार साहब से भेंट करना चाही; पर तहसीलदार साहब ने उससे भेंट करना अस्वीकार कर दिया। जिसकी मार्फ़त उसने तहसीलदार साहब को रिश्वत दी थी, उससे भी तहसीलदार साहब ने भेंट नहीं की।

इस बात से रुष्ट होकर उसने तहसीलदार साहब पर रिश्वत का मुक़द्दमा दायर करवा दिया। उसने मैजिस्ट्रेट को यह दरख़्वास्त दी कि साहबसिंह तहसीलदार ने उसे छोड़ देने का लालच दिखाकर तथा सज़ा देने की धमकी देकर तीन सौ रुपए वसूलकर लिए हैं, और फिर भी सज़ा दे दी। साहबसिंह अपने आचरणों के कारण बदनाम थे ही, अतएव ज़िला मैजिस्ट्रेट ने इस बात की तहक़ीक़ात के लिये एक डिप्टी कलेक्टर को नियुक्त किया। डिप्टी कलेक्टर ने

छूटकर घर आते ही उन्होंने पत्नी को हृदय से लगाकर कहा—"तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से मेरी रक्षा हुई है। अब मैं आजीवन कभी तुम्हारे परामर्श के विरुद्ध कोई कार्य न करूँगा।"

पत्नी ने कहा—"तो मेरा पहला परामर्श यह है कि तुम इस्तीफ़ा दे दो। वह पद ऐसा है कि उसमें बुरे कामों के लिये बड़े प्रलोभन हैं। थोड़े ही दिनों में तुम यह सब भूलकर फिर जैसे-के-तैसे हो जाओगे। ईश्वर की दया से अब भी हमारे पास इतना रुपया है कि यहाँ कोई अच्छा रोज़गार करके गुज़ारे के लायक़ आमदनी हो सकती है।"

"अच्छी बात है, मैं आज ही इस्तीफ़ा लिखकर भेजे देता हूँ। साथ ही मैं तुमसे यह आशा करता हूँ कि तुम मेरे पिछले व्यवहारों को भूल जाओगी।"

"और तुम भी मेरे व्यवहारों को क्षमा करो।"

"तुम्हारे वह व्यवहार! ओह—यदि मैं उन पर ज़रा भी ध्यान देता, तो आज यह नौबत ही न आती।"

पत्नी ने मुसकिराकर कहा—"ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है। सुबह का भूला यदि शाम को घर आ जाय, तो उसे भूला न समझना चाहिए।"

साहबसिंह पत्नी के अधरों का चुंबन करते हुए बोले—"सच कहती हो।"

का-त्यों बना रहता है ; पर सरिताओं में पूर्ववाली स्वच्छता या निर्मलता शेष नहीं रहती। अनेक भाषाएँ अनेक जातियों तथा सभ्यताओं को उत्पन्न करती हैं। उपर्युक्त शासन में परिवर्तन होता है, और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार जातियों का चारित्र्य-निर्माण भी। फिर प्रतिक्रिया की रीति पर साहित्य भी वैसा ही बनता जाता है।

पर यह स्मरण रखना चाहिए कि वाणी की स्वाभाविक निर्मलता किसी दशा में भी बिलकुल नष्ट नहीं होती। प्रत्येक भाषा में आदि-भाषा का न्यूनाधिक अंश तदंतर्गत आध्यात्मिकता के रूप में शेष रहता है। उसी अनुमान से भाषा-भाषी जनता में भी वही गुण कमोबेश मौजूद रहता है। फिर विशेष आत्माएँ विशेष रीति पर प्रभावित होती हैं। ऐसी आत्माएँ जाति-सुधार के निमित्त प्रयत्न करती हैं। विचारशीलता के कारण उनमें उपर्युक्त गुण का उत्तरोत्तर विकास होता है। वे तदनुसार ही साहित्य की रचना करती हैं। भाषा उनकी अपनी होती है, पर उसमें वाणी की मौलिकता का अत्यंताभाव नहीं होता। यद्यपि यह स्पष्ट है कि इस नव-निर्मित साहित्य में आदि-साहित्य की सर्वांगीण सुंदरता नहीं आ सकती, फिर भी वह उस सीमा तक सराहनीय है, जिस सीमा तक उससे वैसी सुंदरता का प्रस्फुटन होता है, अथवा जिस सीमा तक उससे वैसी सुंदरता की ओर प्रेरणा होने में सहायता मिलती है। संप्रति भाषा-वैभिन्न्य की अनिवार्यता का ख़याल रखते हुए वैसे साहित्य से भी तत्संबंधी उद्देश्य की आंशिक पूर्ति तो अवश्य ही हो सकती है। फिर कौन जाने कि अपूर्णता ही द्वारा शनैः-शनैः मूर्खता की प्राप्ति भी हो सके ? विकासवाद से तो हमारे इस विचार की पुष्टि ही होती है।

आध्यात्मिकता का आधार है "सत्य"। उपर्युक्त विवेचना का परिणाम यह निकलता है कि सर्वोत्तम साहित्य वही है, जिसमें सत्य का समावेश हो, और जिससे मनुष्यों को सत्य का यथार्थ ज्ञान होकर अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो सके। यह ठीक है कि संप्रदायों की दृष्टि से सत्य के भी अनेक रूप भासित हो सकते हैं। पर कुछ बातें ऐसी भी हैं, जो सर्व-मान्य हैं या हो सकती हैं। अधिकतर ऐसी ही बातों का प्रतिपादित करना श्रेयस्कर है। ऐसी दशा में अन्य बातों का आ जाना भी नितांत स्वाभाविक है, और सर्वथा निरर्थक भी नहीं है। उनसे भी अंततः ज्ञानोपलब्धि ही होती है। उनसे भी तनिक प्रयत्न द्वारा मनुष्य सत्य पर पहुँच सकता है, और यह प्रयत्न उसे सत्यता पर अधिक दृढ़ता से आरूढ़ करता है। पर इसके लिये बुद्धि के जाग्रत् होते रहने की आवश्यकता है, अतः केवल भ्रामक कृतियों को न तो हम साहित्य-सेवा कह सकते हैं, और न वैसी सेवा का कोई मूल्य है। आदि-वाणी के आशय से सर्वथा शून्य होने के कारण उनका प्रभाव भी अत्यंत अनिश्चित तथा अनित्य होता है, निश्चित तथा नित्य होने का दारोमदार तो सत्य पर है। सत्य अमिट और अटल है; और उससे ओत-प्रोत होती हुई साहित्यिक रचनाएँ भी अमिट एवं अटल हो जाती हैं। आकार नष्ट हो सकता है, पर भाव तो अविनश्वर वाणी से संयुक्त होकर, घनत्व प्राप्त करते हुए, मनुष्यों पर अपना उत्तम प्रभाव सदैव डालते ही रहते हैं—उन्हें शासित कर उनके जीवन को सर्वथा सार्थक बनाते ही रहते हैं।

संक्षेप में जब हम यह देखते हैं कि साहित्य का मुख्य कार्य मनुष्यों को पाप से बचाकर पुण्य-पथ पर अग्रसर करते हुए आध्यात्मिकता की ओर ले जाना है, तो यह बात सहज ही समझ में आती है कि यह कार्य कितना दायित्व-पूर्ण है। और कितने कम मनुष्यों को उसके करने का नैतिक अधिकार हो सकता है। हर "ऐरा-ग़ैरा नत्थू-ख़ैरा" साहित्य-सेवी नहीं बन सकता। कार्य को भलीभाँति संचालित करने के लिये जितनी आवश्यकता सत्साहित्य के अध्ययन की है, उतनी ही उस पर मनन करने की। फिर स्वतंत्र-रूप से विचार करना पड़ता है ; और विचारों को व्यक्त करते समय यह नितांत आवश्यक है कि साहित्य-सेवा के उद्देश्य पर तीव्र दृष्टि रक्खी जाय। सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक नीटशे (Nietzsche) कहता है कि "Of all that is written, I love only what a person hath written with his blood. Write with blood, and thou wilt find that blood is spirit"—अर्थात्

वस्तुओं में से जिन्हें मनुष्य इहलोक में बना सकता है, सबसे अधिक प्रभाव-पूर्ण, आश्चर्यजनक और समुचित वह वस्तुएँ हैं जिन्हें हम 'पुस्तक' कहते हैं !" वही और भी कहता है कि "In books lies the Soul of the whole past time, the articulate, audible voice of the past, when the body and material substances of it has altogether vanished like a dream." अर्थात् "पुस्तकों में भूत-काल की आत्मा अथवा भूत-काल की सुस्पष्ट तथा कर्ण-गोचर वाणी का निवास होता है, जब कि उसका शरीर और भौतिक तत्त्व स्वप्न की तरह बिल्कुल ग़ायब हो जाता है।" यही आत्मा वा वाणी भविष्य-काल को भी प्रभावित करती रहती है। साहित्य-संचय द्वारा भाव-साम्य उत्पन्न होता रहता है, यहाँ तक कि किसी समय मनुष्यों में साधारणतया आदि-वाणी की उपासना की पर्याप्त क्षमता उत्पन्न होकर, उनमें ऐक्य-भाव का संचार हो जाता है। फिर जीवनोद्देश्य की पूर्ति में अधिक विलंब नहीं लगता और यह पूर्ति सत्साहित्य की सहायता से होती है।

स्वाभाविकतया उसी भाषा द्वारा सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सेवा हो सकती है, जिसमें आदि-वाणी के अधिकतम गुण विद्यमान हों, जिसका उस वाणी से निकटतम संबंध हो। हमारे विचारानुसार समस्त संसार में यह सौभाग्य केवल हिंदी-भाषा को ही प्राप्त है। हम जानते हैं कि मनुष्य अल्पज्ञ है। अतः यह संभव है कि लगातार प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए उस भाषा में उपर्युक्त गुणों का लोप-सा होता हुआ दिखाई दे, और इस प्रकार उपर्युक्त संबंध में भी शिथिलता प्रतीत होने लगे। संप्रति कुछ ऐसी ही बात है। ऐसी दशा में अन्य उन्नत भाषाओं के भावों से भी स्वसाहित्य के निर्माण में सहायता ली जा सकती है। पर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि किसी विदेशी भाषा के भावों को अपनाने में जो प्रचुर परिश्रम करना पड़ता है, उसका अल्पांश भी यदि अपने ही साहित्य-भांडार में खोज के निमित्त व्यय किया जाय, तो निस्संदेह ऐसे रत्न हाथ लगेंगे, जिनकी ज्योति से केवल हमारा ही देश नहीं, प्रत्युत संपूर्ण जगत् जगमगा उठेगा, और हमारे ही अनुपम भावों को अपनाकर अभीष्ट साहित्य-सेवा के युग को शीघ्रतर समीप लाने का प्रयत्न करेगा। इस ओर अभी तक जो थोड़ा-बहुत कार्य हुआ है, उससे हमारे कथन की पुष्टि होती है। पर हमें यह कहते दुःख होता है कि वह कार्य अधिकतर विदेशी विद्या-प्रेमियों द्वारा ही संपन्न हुआ है। हमारी भाषा का हमारी प्राचीन साहित्यिक भाषा से बहुत-कुछ सादृश्य है, अतः यह हमारा काम होना चाहिए कि हम अध्ययन एवं मनन द्वारा उस प्राचीन भाषा के अप्रकट भावों को हिंदी-भाषा में ही प्रकट करते हुए अपनी वास्तविक साहित्य-सेवा का परिचय दें। यह तो निश्चित है कि इस पुण्य-कार्य में हमीं सबसे अधिक सफल होंगे।

गद्य तथा पद्य दोनो के द्वारा साहित्य-निर्माण का कार्य किया जाता है। गद्य की अपेक्षा पद्य का लिखना अधिक कष्ट-साध्य है। यही कारण है कि लेखकों की अपेक्षा कवियों की संख्या प्रायः न्यून ही हुआ करती है। पद्य में सूक्ष्मता तथा संक्षिप्तता है और इसके अतिरिक्त संगीत भी। आत्मा भी सूक्ष्म एवं अणु-स्वरूप है, और उसमें संगीत-प्रियता भी है। अतः साधर्म्य के कारण पद्य का आत्मा पर विशेष प्रभाव पड़ता है, और वह सहसा उल्लसित हो जाता है। पद्य का अभौतिक आवेश उसे इस पार्थिव जगत् से सर्वथा पृथक् कर एक ऐसे अवर्णनीय स्थान में पहुँचा देता है, जहाँ उसे अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। अतः यह प्रकट है कि पद्य-साहित्य गद्य-साहित्य की अपेक्षा अधिक वांछनीय है। पर सभी साहित्य-सेवी कवि तो नहीं हो सकते, अतः गद्य-लेखन का कार्य भी अपनी विशेष आवश्यकता रखता है। उसका अपना गुण भी है। कभी-कभी बातों को विस्तृत रूप में रखने की ज़रूरत होती है। वैसा विस्तार कविता को प्रायः नीरव (prosaic) बना देता है। इसी कारण लेखन-शक्ति रखनेवाले कवि को भी उपर्युक्त अवसरों पर गद्य का ही आश्रय लेना पड़ता है। मानो गद्य साहित्य का शरीर और पद्य उसका हृदय है। दोनो का अस्तित्व पारस्परिक सापेक्षता रखता है, पर यह निश्चित है कि हृदय का-सा उच्च पद शरीर को नहीं प्राप्त हो सकता।

का दिग्दर्शन करा चुके। साथ ही यह भी दिखला चुके कि वर्तमान हिंदी गद्य-पद्य में उस सेवा के निमित्त किस प्रकार उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। अब हम साहित्य-सेवियों के प्रति कुछ विशेष निवेदन करके इस लेख को समाप्त कर देंगे। भारत के वर्तमान साहित्य-सेवियों का यह दुर्भाग्य है कि देश इस समय परतंत्र है। विदेशी शासकों को न तो एतद्देशीय भाषाओं से कोई हार्दिक सहानुभूति हो सकती है और न उनसे किसी विशेष प्रोत्साहन की आशा। स्वयं देश-वासियों में उतना सामर्थ्य वा ज्ञान नहीं। ऐसी दशा में उपर्युक्त सेवा केवल कर्तव्य समझकर करनी होगी तथा यह समझकर कि हमारे साहित्य में और तद्द्वारा हमारी जाति का उद्धार केवल हमारे ही प्रयत्नों द्वारा होगा। इसके लिये हृदय में अनुराग होना चाहिए और विराग भी—अनुराग साहित्य से और विराग साहित्येतर वस्तुओं से। और फिर साहित्य-सेवियों में ये दोनो गुण स्वाभाविकतया रहते ही हैं। कार्लाइल (Carlyle) महोदय कहते हैं—"There ought to be literary men poor—to show whether they are genuine or not." अर्थात् "साहित्यानुरागी मनुष्यों को निर्धन ही होना चाहिए—यह दिखलाने के लिये कि उनमें वास्तविक साहित्यानुराग है वा नहीं।" यद्यपि अब समृद्धिवान् योरप के लिये, जहाँ प्रति शब्द पर एक पौंड पुरस्कार दिया जा सकता * है, यह कथन लागू नहीं होता, पर भारतीय साहित्यिकों के विचार से तो ऐसा कहना आज भी सत्य है। पर इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि ऐसी निर्धनता सर्वथा गौरवास्पद है—ऐसी निर्धनता पर तो असंख्य धन-कुबेरों को ईर्ष्या हो सकती है!†

* लायड जार्ज (Lloyd George) महोदय को योरपीय महासमर का इतिहास लिखने के लिये किसी आँग्ल प्रकाशक ने प्रति-शब्द पर १ पौंड के हिसाब से पुरस्कार देना निश्चित किया था।

† इस लेख में कार्लाइल महोदय के जो वाक्य दर्ज हैं, वे सब उनकी प्रसिद्ध पुस्तक के "Hero and Hero worship" से उद्धृत किए गए हैं। लेखक

उन दिनों ज़मीन पर क़ानूनन् अधिकार (जो सिर्फ़ काग़ज़ पर लिखे-भर रहने के लिये कहा जा सकता है) उन्हीं का होता था, जो ज़मीन को स्वयं जोतते-बोते और अन्न पैदा करते थे; पर वास्तव में अन्न पैदा करनेवाले ग़ुलाम थे तथा स्वार्थांध मालदार लोग मालिक बन मौजें मारते थे। फिर भी बेचारे किसान (?) बहुत दिनों तक इतना कहकर कि "हम तुम्हारे हैं, परंतु ज़मीन हमारी है" (We are yours but the land is ours), अपने मन को झूठ-मूठ संतोष देते रहे।

१९वीं सदी के शुरू तक इन किसानों—ग़ुलामों—का इतना अधिकार समझा जाता था कि वे स्वतंत्रता-पूर्वक जहाँ चाहें, आ-जा सकते थे, परंतु घरेलू नौकर दर-असल पूरे ग़ुलाम ही समझे जाते थे, तथा जानवरों की तरह ख़रीदे और बेंचे भी जाते थे। आगे चलकर, सन् १८२८ ई० में, यह ग़ुलामी (Serfdom), सरकार द्वारा बाक़ायदे क़ानूनी (Legal) क़रार दे दी गई। फिर तो ये लोग जहाँ होते, वहीं रहने के लिये मजबूर किए जाने लगे। वे अब ज़मींदारों की जायदाद समझे जाने लगे, तथा ज़मींदारों को न केवल उनसे काम लेने, बल्कि कर वसूल करने का भी अधिकार प्राप्त हो गया। अब घरेलू नौकर तथा खेतों पर काम करनेवाले किसानों की स्थिति में कोई अंतर नहीं रहा। अब वे समान-रूप से ख़रीदे या बेंचे जाते, अथवा मालिक जिसे चाहते, उसे दूसरे के सिपुर्द कर देते थे। पीटर-दि-ग्रेट के समय में दासत्व की यह प्रथा और अधिक बढ़ी, तथा कैथराइन-दि-ग्रेट के समय (१७६२ ई०) में तो चरम सीमा को पहुँच गई। कहते हैं, उस (कैथराइन) ने अपने राजत्व-काल में राज्य की निजी ज़मीनों पर काम करनेवाले आठ लाख व्यक्तियों को अपने सगे-संबंधियों तथा प्रिय-पात्रों को उपहार में दे डाला था। पर आख़िर यह कहाँ तक सहा जाता; किसी भी बात की एक हद होती है! फल-स्वरूप किसी प्रकार १८६१ ई० में रूस से ग़ुलामी की प्रथा का अंत होने की घोषणा हुई। उस समय ग़ुलाम किसानों की संख्या इस प्रकार थी—

रूस की कुल जन-संख्या— ६,०१,०९,३०१

राज्य के किसान (State peasants) अर्थात् जो राज्य की ख़ास ज़मीनों में काम करते थे— २,३१,३८,१९१

राजघराने के खेतों में काम करनेवाले—३३,२६,०८४

ज़मींदारों के खेतों में काम करनेवाले— २,३०,०१,३१०

तात्पर्य यह कि क़रीब ६ करोड़ की आबादी में लगभग ५ करोड़ आदमी ऐसे थे, जो किसी-न-किसी रूप में ग़ुलाम थे और मुट्ठी-भर आदमियों के सुख, शौक़ तथा ऐश-आराम का साधन बना दिए गए थे। २ करोड़ ३० लाख किसान सिर्फ़ एक लाख ज़मींदारों की संपत्ति और उनके ग़ुलाम थे। इनमें एक-एक ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार के पास दस-दस, बीस-बीस हज़ार तक किसान भेड़-बकरियों की तरह रहते और दिन-भर मालिक की मर्ज़ी के माफ़िक़ जानवरों की तरह ही मरते-खपते रहते थे। वैलेस-नामक लेखक ने तो लिखा है कि एक बड़े ताल्लुक़ेदार के पास तो क़रीब तीन लाख ग़ुलाम थे!

सारी अच्छी और उपजाऊ ज़मीन इन्हीं मालिकों तथा राज-परिवारवालों के अधिकार में थी। इन दिनों वहाँ मालिकों को ग़ुलामों पर हर तरह का क़ानूनी अधिकार प्राप्त था। वे उनसे मनमाना काम ले सकते थे, तथा कोड़ों, घूसों, डंडों से उन्हें पीटकर सज़ा दे सकते थे। मालिक, आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले ग़ुलामों को साइबेरिया (एक भीषण बर्फ़ीले तथा जंगली प्रदेश) में निर्वासित भी कर सकते थे। ग़ुलामों से अधिक-से-अधिक काम लेने तथा उन्हें इस प्रकार सज़ा देने का मालिकों को क़ानूनी अधिकार प्राप्त था, तथा इसमें कोई बाधा नहीं डालता था। परंतु यही नहीं कि ग़ुलामों को क़ानून द्वारा निर्धारित हद तक ही सज़ा दी जाती थी, बल्कि उनपर घोर-से-घोर अत्याचार होते थे, जिनसे बेचारों का जीवन दूभर हो जाता, वे काम करने के लायक़ नहीं रह जाते और कितने ही इस संसार को भी छोड़कर चल देते थे। १८२५ ई० की बात है, एक अमेरिकन यात्री रूस में भ्रमण करने गए थे। उन्हें एक रूसी ने वहाँ एक जगह बतलाते हुए कहा था कि यह वही जगह है, जहाँ इस ज़माने में एक ज़मींदार अपने बग़ीचे की

ऊँचे मीनार (Tower) पर बैठकर आस-पास के अपने खेतों में काम करनेवाले ग़ुलामों को देखता तथा ग्राम के ओवरसियरों (ग़ुलामों के कामों की विशेष-रूप से देख-भाल करनेवाले) को काम में ज़रा भी ढील डालने या नाम-मात्र की कोई ग़लती करनेवाले व्यक्ति को सज़ा देने को कहता था। इस प्रकार [illegible] ग्राम को बड़ी निर्दयता-पूर्वक अनेक आदमियों पर पशुओं की तरह लात-घूसों और कोड़ों की [illegible] मार पड़ती थी। उनमें कितने अपनी पीठ से

हुआ, क्योंकि उन्हें बड़ी निश्चिन्तता के साथ नक़द रुपए प्राप्त होने लगे। तात्पर्य यह कि किसानों की दशा में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ, और वे पूर्ववत् ही अत्याचार-पीड़ित एवं दरिद्र बने रहे। इस समय देश में विदेशी-पूँजीपतियों का भी काफ़ी प्रभुत्व हो गया था, और वे भी इन दीन व्यक्तियों का ख़ून ख़ूब चूसते थे। देशभक्त और समझदार लोगों के लिये इन अत्याचारों को अभी और अधिक दिनों तक सहना अशक्य हो गया। उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज़

के कारण ये लोग दबा दिए गए। परंतु उनकी जाग्रत् आत्मा भला कैसे कुचली जा सकती थी ? फल-स्वरूप किसानों का थोड़ा-बहुत आंदोलन किसी-न-किसी रूप में चलता ही रहा। आगे चलकर उन्होंने 'किसान-संघ' और 'जम्सार्ट ओस'-नामक संस्थाओं को संगठित किया, और वे "ज़मीन पर काम करनेवाले और उसे जोत-बोकर अन्न उपजानेवाले ही ज़मीन के मालिक हैं" को सिद्धांत और आदर्श बनाकर इसकी प्राप्ति के लिये कोशिश करने लगे। इनके इस आंदोलन में ग्राम की पुरानी प्रथा के अनुसार प्रचलित पंचायतों—मीरों—से उन्हें काफ़ी मदद मिली। ये 'मीर' प्रजातंत्र के सिद्धांतों के अनुसार स्थापित पंचायतें थीं, जो अपने अधिवेशनों द्वारा ग्राम-समस्याओं को सुलझाया करती थीं। धीरे-धीरे १९१४ ई० का ज़माना आया, और संसार के अनेक राष्ट्रों को योरप के महासमर में जूझना पड़ा। रूस योरप में होकर भला इससे अछूता कैसे बच सकता था ? देश के किसानों को युद्ध में भाग लेना पड़ा, और कहते हैं, रूस के सत्तर लाख बड़े अच्छे और चुने-चुनाए आदमी इस महा-समर में मारे गए तथा घायल होकर काम करने से बेकार हो गए। ज़ारशाही की निरंकुशता और पूँजीपतियों तथा ज़मींदारों के अत्याचारों से जनता में पहले से काफ़ी असंतोष था ही, लड़ाई के इस भीषण परिणाम तथा तात्कालिक अकाल की भयंकरता ने ज्वालामुखी का विस्फोट कर दिया। फिर क्या था, चारो ओर भीषण क्रांति, भयंकर कुहराम, महा अव्यवस्था और अत्यंत अशांति मच गई। सर्वत्र "शांति, ज़मीन और रोटी" के नारे बलंद होने लगे। महात्मा लेनिन की आत्मा सारे रूस में बिजली की नाईं काम करने लगी। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि क्रांति के आरंभ में नगर के मज़दूरों ने ही उसमें विशेष रूप से भाग लिया, ग्रामीण किसान अलग ही-से रहे। परंतु बाद को वे भी उसमें पड़े, और ऐसा पड़े कि ज़ारशाही, निरंकुशता, संपत्तिवाद आदि का नाश करके ही उन्होंने दम लिया ; और यह निश्चित था कि अगर किसान लोग क्रांति में ज़ोर-शोर से भाग नहीं लेते, तो बोलशेविकों को शायद ही सफलता मिलती। उसके फल-स्वरूप ज़मींदारों और बड़े-बड़े भू-स्वामियों से ज़मीनें छिन गईं, उन पर किसानों ने अपना अधिकार जमा लिया, और वे लोग भागने लगे। परंतु इसके बाद रूस पर योरप के अनेक स्वार्थांध राष्ट्रों ने चढ़ाई कर दी, और उसे जी-भरके तंग किया। साथ ही वहाँ गृह-कलह भी फैला दी। बेचारे किसान बहुत परेशान हुए। उन्हें इसका बहुत भय हुआ कि इतनी भयंकर जाँफ़िशानी के बाद प्राप्त की हुई ज़मीन हमारे हाथों से फिर कहीं यों ही बात-की-बात में न निकल जाय ! इस भय से उन्होंने हृदय से बोलशेविकों का साथ दिया, जिसके फल-स्वरूप सोवियट सरकार की विजय हुई। परंतु इस समय रूस की अत्यंत ही शोचनीय स्थिति थी। अकाल, शिथिलता और अनेक प्रकार के रोगों का भयंकर प्रकोप था। साधारण लोगों का जीवन निरुत्साह और निराशा से प्रगति-शून्य हो रहा था। किंतु इन सबको देखते हुए भी वहाँ एक ऐसी आत्मा थी, जिसे इस अव्यवस्था, अकाल और महामारी में एक बहुत ही उज्ज्वल भविष्य छिपा हुआ दीख रहा था। उसका यह ध्रुव विश्वास था कि भीषण तूफ़ान के बाद अवश्य शांति स्थापित होगी। वह व्यक्ति और कोई नहीं, लेनिन था। अपने घर—देश—की ऐसी ही स्थिति और संसार के सब राष्ट्रों से बहिष्कृत होने की अवस्था में महात्मा लेनिन ने सोवियट रूस को एक विश्व-विचित्र, निराली रीति से संगठित करने का कार्य आरंभ कर दिया। पर १९२० ई० के पहले रूस की हालत नहीं सुधरी, और निश्चिंतता-पूर्वक तो उसका काम १९२३ ई० से होना आरंभ हुआ।

महात्मा लेनिन को इस नवीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के संगठित करने और मानव-जीवन को अधिक-से-अधिक सुखमय एवं शांति-पूर्ण बनाने में कहाँ तक सफलता मिली, वह सोवियट रूस के गत १०-११ वर्ष के कार्यों द्वारा संसार पर भली भाँति विदित है। पाठक इसका भी अनुमान कर सकते हैं कि अगर उसके सामने घरेलू तथा बाहरी अनेक उलझनें न होतीं, अगर देश में संपन्नता और शांति होती, साथ ही उसे संसार के प्रमुख राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त हुआ होता, तो आज

इस महात्मा की कृति-स्वरूप रूस और भी कितना अधिक उन्नत होता! आज रूस में महात्मा लेनिन नहीं हैं, परंतु उनकी आत्मा हरएक रूसी रूह में बड़ी जागरूकता के साथ काम कर रही है, और रूस में इस व्यक्ति की, प्रत्येक शख़्स, अपने इष्टदेव की नाईं, पूजा किया करता है।

किसान और ज़मीन

क्रांति के बाद देश की सारी ज़मीन नई सरकार के अधीन करके, उसके राष्ट्रीयकरण के संबंध में आज्ञाएँ प्रकाशित की गईं। ज़मीन के संबंध में यह क़ानून बना कि "ज़मीन न तो ख़रीदी, बेंची और लगान पर उठाई जा सकती है और न ज़मानत के रूप में बंधक रक्खी या किसी से छीनी जा सकती है। लिंग-भेद (स्त्री-पुरुष) का ख़याल न रखते हुए ज़मीन के उपभोग का अधिकार राष्ट्र के उन सब व्यक्तियों को दिया जाता है, जो या तो ख़ुद या अपने परिवारवालों की सहायता से, या किसी संघ अथवा समिति में शामिल होकर, ज़मीन पर काम करना चाहते हैं; और जब तक वे इस प्रकार काम करने में समर्थ रहेंगे, तभी तक उन्हें यह अधिकार प्राप्त रहेगा। दूसरों से, किराए पर—मज़दूरी देकर—काम कराना ग़ैर-क़ानूनी है*।" इस तरह सैकड़ों वर्षों के बाद किसानों को ज़मीन पर ऐसा अधिकार प्राप्त हुआ। वे ज़मीन पर के क़र्ज़ों से मुक्त तथा प्रतिवर्ष ज़मींदारों को भारी लगान देने से बरी हो गए।

देश की सभी ज़मीन तीन हिस्सों में विभाजित कर दी गई। पहले के ज़मींदारों के जो बहुत बड़े-बड़े तथा farms) बनाकर स्वयं खेती करवाना शुरू किया। उससे छोटे-छोटे खेत (Small holdings) संघों तथा संयुक्त रूप से काम करनेवाले व्यक्तियों को दिए गए तथा कुछ ज़मीन—सरकारी रक्षित ज़मीन (State reserve land)—के रूप में बचाकर शेष ज़मीन किसानों को बाँट दी गई।

यह पहले बताया जा चुका है कि शुरू-शुरू में ज़मीन के उपभोग का अधिकार, किसानों को हस्तांतरित करने को नहीं दिया गया था; परंतु इस व्यवस्था के कार्य-रूप में परिणत होने में दिक़्क़तें पेश होने लगीं; लोग ग़ैर-क़ानूनी तौर पर ज़मीन किराए पर—लगान पर—देने लगे। इस कारण १९२२ में विभिन्न जगहों के जल-वायु के अनुसार कहीं ३ वर्षों और कहीं ४ वर्षों के लिये ज़मीन को लगान पर देना विहित मान लिया गया; परंतु दूसरों से काम लेना फिर भी ग़ैर-क़ानूनी रहा। अस्तु, इस सुधार का भी कोई लाभ-दायक फल नहीं निकला; क्योंकि अधिकांश व्यक्तियों के पास खेती करने के अपने घोड़े, बैल तथा दूसरे सामान तक न थे। फल-स्वरूप १९२६ ई० में ज़मीन-क़ानून में फिर संशोधन हुआ। इस बार ज़मीन लगान पर देने की अवधि पहले से दूनी (६ और ८ वर्ष) कर दी गई, साथ ही कुछ ख़ास-ख़ास शर्तों के साथ ज़मीन पर काम कराने के लिये मज़दूरी देकर मज़दूर रखना भी विहित कर दिया गया। ये शर्तें निम्न-लिखित हैं — लगान पर दी जानेवाली सब ज़मीनों की व्यवस्था सोवियट

के कारण ये लोग दबा दिए गए। परंतु उनकी जाग्रत् आत्मा भला कैसे कुचली जा सकती थी ? फल-स्वरूप किसानों का थोड़ा-बहुत आंदोलन किसी-न-किसी रूप में चलता ही रहा। आगे चलकर उन्होंने 'किसान-संघ' और 'जम्सार्ट ओस'-नामक संस्थाओं को संगठित किया, और वे "ज़मीन पर काम करनेवाले और उसे जोत-बोकर अन्न उपजानेवाले ही ज़मीन के मालिक हैं" को सिद्धांत और आदर्श बनाकर इसकी प्राप्ति के लिये कोशिश करने लगे। इनके इस आंदोलन में ग्राम की पुरानी प्रथा के अनुसार प्रचलित पंचायतों—मीरों—से उन्हें काफ़ी मदद मिली। ये 'मीर' प्रजातंत्र के सिद्धांतों के अनुसार स्थापित पंचायतें थीं, जो अपने अधिवेशनों द्वारा ग्राम-समस्याओं को सुलझाया करती थीं। धीरे-धीरे १९१४ ई० का ज़माना आया, और संसार के अनेक राष्ट्रों को योरप के महा-समर में जूझना पड़ा। रूस योरप में होकर भला इससे अछूता कैसे बच सकता था ? देश के किसानों को युद्ध में भाग लेना पड़ा, और कहते हैं, रूस के सत्तर लाख बड़े अच्छे और चुने-चुनाए आदमी इस महा-समर में मारे गए तथा घायल होकर काम करने से बेकार हो गए। ज़ारशाही की निरंकुशता और पूँजीपतियों तथा ज़मींदारों के अत्याचारों से जनता में पहले से काफ़ी असंतोष था ही, लड़ाई के इस भीषण परिणाम तथा तात्कालिक अकाल की भयंकरता ने ज्वालामुखी का विस्फोट कर दिया। फिर क्या था, चारो ओर भीषण क्रांति, भयंकर कुहराम, महा अव्यवस्था और अत्यंत अशांति मच गई। सर्वत्र "शांति, ज़मीन और रोटी" के नारे बलंद होने लगे। महात्मा लेनिन की आत्मा सारे रूस में बिजली की नाईं काम करने लगी। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि क्रांति के आरंभ में नगर के मज़दूरों ने ही उसमें विशेष रूप से भाग लिया, ग्रामीण किसान अलग ही-से रहे। परंतु बाद को वे भी उसमें पड़े, और ऐसा पड़े कि ज़ारशाही, निरंकुशता, संपत्तिवाद आदि का नाश करके ही उन्होंने दम लिया ; और यह निश्चित था कि अगर किसान लोग क्रांति में ज़ोर-शोर से भाग नहीं लेते, तो बोलशेविकों को शायद ही सफलता मिलती। उसके फल-स्वरूप ज़मींदारों और बड़े-बड़े भू-स्वामियों से ज़मीनें छिन गईं, उन पर किसानों ने अपना अधिकार जमा लिया, और वे लोग भागने लगे। परंतु इसके बाद रूस पर योरप के अनेक स्वार्थांध राष्ट्रों ने चढ़ाई कर दी, और उसे जी-भरके तंग किया। साथ ही वहाँ गृह-कलह भी फैला दी। बेचारे किसान बहुत परेशान हुए। उन्हें इसका बहुत भय हुआ कि इतनी भयंकर जाँ-फ़िशानी के बाद प्राप्त की हुई ज़मीन हमारे हाथों से फिर कहीं यों ही बात-की-बात में न निकल जाय ! इस भय से उन्होंने हृदय से बोलशेविकों का साथ दिया, जिसके फल-स्वरूप सोवियट सरकार की विजय ; परंतु इस समय रूस की अत्यंत ही शोचनीय ि थी। अकाल, शिथिलता और अनेक प्रकार के का भयंकर प्रकोप था। साधारण लोगों का जं निरुत्साह और निराशा से प्रगति-शून्य हो रहा किंतु इन सबको देखते हुए भी वहाँ एक ऐसी आ थी, जिसे इस अव्यवस्था, अकाल और महामारी एक बहुत ही उज्ज्वल भविष्य छिपा हुआ दीख र था। उसका यह ध्रुव विश्वास था कि भीषण तूफ़ा के बाद अवश्य शांति स्थापित होगी। वह व्यक्ति औ कोई नहीं, लेनिन था। अपने घर—देश—की ऐसी ह स्थिति और संसार के सब राष्ट्रों से बहिष्कृत होने क अवस्था में महात्मा लेनिन ने सोवियट रूस को एक विश्व-विचित्र, निराली रीति से संगठित करने का कार्य आरंभ कर दिया। पर १९२० ई० के पहले रूस की हालत नहीं सुधरी, और निश्चितता-पूर्वक तो उसका काम १९२३ ई० से होना आरंभ हुआ।

महात्मा लेनिन को इस नवीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के संगठित करने और मानव-जीवन को अधिक-से-अधिक सुखमय एवं शांति-पूर्ण बनाने में कहाँ तक सफलता मिली, वह सोवियट रूस के गत १०-११ वर्ष के कार्यों द्वारा संसार पर भली भाँति विदित है। पाठक इसका भी अनुमान कर सकते हैं कि अगर उसके सामने घरेलू तथा बाहरी अनेक उलझनें न होतीं, अगर देश में संपन्नता और शांति होती, साथ ही उसे संसार के प्रमुख राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त हुआ होता, तो आज

इस महात्मा की कृति-स्वरूप रूस और भी कितना अधिक आगे होता ! आज रूस में महात्मा लेनिन नहीं हैं, परंतु उनकी आत्मा हरएक रूसी रूह में बड़ी जागरूकता के साथ काम कर रही है, और रूस में इस व्यक्ति की, हरएक शख़्स, अपने इष्टदेव की नाईं, पूजा किया करता है ।

किसान और ज़मीन

क्रांति के बाद देश की सारी ज़मीन नई सरकार के अधीन करके, उसके राष्ट्रीयकरण के संबंध में आज्ञाएँ घोषित की गईं । ज़मीन के संबंध में यह क़ानून बना कि "ज़मीन न तो ख़रीदी, बेंची और लगान पर उठाई जा सकती है और न ज़मानत के रूप में बंधक रक्खी या किसी से छीनी जा सकती है । लिंग-भेद (स्त्री-पुरुष) का ख़याल न रखते हुए ज़मीन के उपभोग का अधिकार राष्ट्र के उन सब व्यक्तियों को दिया जाता है, जो या तो ख़ुद या अपने परिवारवालों की सहायता से, या किसी संघ अथवा समिति में शामिल होकर, ज़मीन से काम करना चाहते हैं; और जब तक वे इस प्रकार काम करने में समर्थ रहेंगे, तभी तक उन्हें यह अधिकार भी प्राप्त रहेगा । दूसरों से, किराए पर—मज़दूरी देकर—काम कराना ग़ैर-क़ानूनी है* ।" इस तरह सैकड़ों वर्षों के बाद किसानों को ज़मीन पर ऐसा अधिकार प्राप्त हुआ । वे ज़मीन पर के क़र्ज़ से मुक्त तथा प्रतिवर्ष ज़मींदारों को भारी लगान देने से बरी हो गए ।

देश की सभी ज़मीन तीन हिस्सों में विभाजित कर दी गई । पहले के ज़मींदारों के जो बहुत बड़े-बड़े तथा अच्छे खेत—जिरात—थे, उन्हें सरकार ने सरकारी आदर्श कृषि-फ़ार्म (State Model Agricultural farms) बनाकर स्वयं खेती करवाना शुरू किया । उससे छोटे-छोटे खेत (Small holdings) संघों तथा संयुक्त रूप से काम करनेवाले व्यक्तियों को दिए गए तथा कुछ ज़मीन—सरकारी रक्षित ज़मीन (State reserve land)—के रूप में बचाकर शेष ज़मीन किसानों को बाँट दी गई ।

यह पहले बताया जा चुका है कि शुरू-शुरू में ज़मीन के उपभोग का अधिकार, किसानों को हस्तांतरित करने को नहीं दिया गया था ; परंतु इस व्यवस्था के कार्य-रूप में परिणत होने में दिक़्क़तें पेश होने लगीं; लोग ग़ैर-क़ानूनी तौर पर ज़मीन किराए पर—लगान पर—देने लगे । इस कारण १९२२ में विभिन्न जगहों के जल-वायु के अनुसार कहीं ३ वर्षों और कहीं ४ वर्षों के लिये ज़मीन को लगान पर देना विहित मान लिया गया; परंतु दूसरों से काम लेना फिर भी ग़ैर-क़ानूनी रहा । अस्तु, इस सुधार का भी कोई लाभ-दायक फल नहीं निकला ; क्योंकि अधिकांश व्यक्तियों के पास खेती करने के अपने घोड़े, बैल अथवा दूसरे जानवर न थे । फल-स्वरूप १९२९ ई० में ज़मीन-क़ानून में फिर संशोधन हुआ । इस बार ज़मीन लगान पर देने की अवधि पहले से दूनी (६ और ८ वर्ष) कर दी गई, साथ ही कुछ ख़ास-ख़ास शर्तों के साथ ज़मीन पर काम कराने के लिये मज़दूरी देकर मज़दूर रखना भी विहित कर दिया गया । शर्तें निम्न-लिखित हैं—लगान पर दी जानेवाली सब ज़मीनों की स्थानीय सोवियट (सरकारी) अधिकारियों के यहाँ रजिस्ट्री होनी चाहिए ।

हरेक किसान के कुटुंब के सब काम कर सकनेवाले व्यक्तियों को लगान पर ली हुई ज़मीन पर मज़दूरों के साथ काम करना चाहिए । भोजन और निवास-स्थान के संबंध में मज़दूरों के साथ कुटुंबियों के समान ही व्यवहार होना चाहिए । बीमारी की अवस्था में मालिक को मज़दूर के लिये रहने की जगह और भोजन देना अनिवार्य होगा, साथ ही परिस्थिति और उसकी सेवा के अनुसार १८ दिन से एक मास तक उसकी जगह पर दूसरे को मालिक नियुक्त नहीं कर सकेगा । मज़दूर एक वर्ष से अधिक के लिये नहीं रक्खा जायगा । मज़दूरी या तनख़्वाह काम के वज़न और स्थानीय दशा के अनु-

---

* "Land could not be bought, sold, rented, given as security or enpropriated by any means whatever." And further (Paragraph 6) "The right to enjoy the land is accorded without distinction of sex to all citizens of the State, who wish to work the land either with their own families or in other forms of association, and only as long as they are capable of working. Hiring of labour is prohibited. The right to use the land is not transferable."—Land Code of 1918, Para 1?

सार निर्धारित, पर तत्स्थानीय मज़दूर-अधिकारी द्वारा निश्चित दर से कम न होगी। काम करने का दैनिक समय साधारणतः ७ घंटे होगा, परंतु फ़सल के दिनों में मालिक और मज़दूर के आपसी समझौते से अधिक देर भी काम लिया जा सकेगा। पर उतने अधिक समय की भी मज़दूरी देनी पड़ेगी। १२ वर्ष की उम्र से कम के लड़कों से कोई भी शख़्स मज़दूरी नहीं करा सकता और १२ से १४ के दर्मियान के लड़कों से सिर्फ़ ऐसा ही हलका काम लिया जा सकता है, जिससे उनके स्वास्थ्य को कुछ भी धक्का न पहुँचता हो। स्त्रियों से कोई भी सख़्त काम नहीं लिया जायगा।

यहाँ पर अमूमन किसानों के घर से उनकी ज़मीन और खेत बहुत दूर पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो उनके घरों से उनके खेत सोलह-सोलह मील तक दूर होते हैं। इससे किसानों को तकलीफ़ होती है। परंतु इस कठिनाई को दूर करने के लिये, किसानों को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह बसाने, उन्हें खेतों के आस-पास ही रहने, कुछ ज़मीन उनके घर के पास और कुछ दूर देने आदि विधियों द्वारा कोशिश की जा रही है। पर अभी ऐसी व्यवस्था थोड़ी ही हो पाई है, इस लिये इस समय फ़सल के दिनों में नौजवान तथा काम कर सकनेवाले स्त्री-पुरुष अपनी दूर की ज़मीनों पर चले जाते, वहीं पर झोपड़ों में रहते तथा फ़सल कट-कर अन्न तैयार होने तक वहीं डटे रहते हैं। घर पर बड़े-बूढ़े रहते हैं, जो घर की रखवाली करते तथा पास की ज़मीन में खेती करते हैं।

रूस में खेती करनेवाले जानवरों की कमी है। घोड़े और बैल मुख्य जानवर हैं, जिनसे खेती का काम लिया जाता है। बैलों की कमी के कारण आम-तौर से दुधार गायों से भी बोझ ढोने का काम लिया जाता है, तथा बच्चे घोड़े (बछेड़े) भी कामों में लगा दिए जाते हैं। देहात के ग़रीब किसान जाड़ों में (इन दिनों खेती करने का मौसिम नहीं होता) शहरों में काम की तलाश में जाते हैं, और वहाँ बेकारी दूर करनेवाली संस्थाओं तथा मज़दूर-संघों द्वारा उन्हें काम दिलाने का यत्न किया जाता है। परंतु स्त्रियाँ सिलाई, बुनाई, कताई आदि के कामों में अपने जाड़े के समय का भी सदुपयोग करती हैं। स्त्रियाँ काम करने में बड़ी तेज़ और मेहनती होती हैं।

जाड़ों में देहात के थोड़े-से पुरुष जो शहरों में चले जाते हैं, उनके सिवा शेष पुरुष-समाज अब तक अपना जाड़े का समय यों ही बिता देता था ; परंतु अब वहाँ की सरकार तथा किसान और मज़दूर-संस्थाओं द्वारा देहातों में भी छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-धंधों के प्रचार और उन्नति के लिये कोशिश की जा रही है, ताकि उनका समय व्यर्थ न जाने पावे।

लगान की व्यवस्था

किसानों को सिर्फ़ एक प्रकार का कर (स्वेच्छा-कर को छोड़कर; क्योंकि इसे तो वे लोग अमूमन अपनी ही इच्छा से देते हैं), जिसे कृषि-कर कहते हैं, सरकार को देना पड़ता है। इस कर की ऐसी व्यवस्था की गई है कि धनी किसानों को न केवल अनुपात के अनुसार अधिक कर देना पड़ता है, बल्कि उनकी आय की बढ़ती के अनुसार उनके कर की दर में भी बढ़ती का नियम लागू होता है, जैसा कि क़रीब-क़रीब हिंदुस्तान में आय-कर (Income Tax) की व्यवस्था है। इसके साथ ही यहाँ एक क़ानून ऐसा भी है, जैसा संसार के शायद ही किसी देश में हो ! वह यह कि बहुत-से ग़रीब किसानों को कृषि-कर से सर्वथा मुक्त कर दिया गया है ; क्योंकि उनकी आय इतनी थोड़ी है कि उससे जीविका-निर्वाह-मात्र हो सकता है। उनकी इस अल्प आय में से कर के रूप में कुछ लेकर उनको पामाल करना उचित नहीं समझा जाता। १९२७ ई० तक कृषि-योग्य खेतों की एक-चौथाई ज़मीन के जोतनेवाले ग़रीब लोग इस नियम के अनुसार कृषि-कर से मुक्त थे, और सोवि-यट सरकार ने अपने दसवें वार्षिकोत्सव के समय इस में १० फ़ीसदी और बढ़ाने की घोषणा की थी। इस अवसर पर एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास हुआ था कि काम करने में असमर्थ और वृद्ध किसानों को सरकार की ओर से पेंशन देने की भी व्यवस्था की जाय।

१९२४-२५ ई० में औसतन प्रत्येक किसान-परिवार को १४०२) रूबल* लगान देना पड़ता था ; यह

* १ रूबल क़रीब २ शिलिंग अथवा १॥~)॥ के बराबर होता है। लेखक

१९२५-२६ में ६·३, और १९२६-२७ में ११·६ रूबल हो गया था। इस प्रकार परिस्थिति के अनुसार यहाँ के भूमि-कर में घटती-बढ़ती होती चली आ रही है, और उसे अभी तक स्थायित्व नहीं प्राप्त हो सका।

लगान का आधार अन्न पैदा कर सकनेवाली ज़मीन का क्षेत्र-फल होता है। परिवार के सदस्यों के अनुसार भी लगान कम-ज़्यादा होता रहता है। लगान की दृष्टि से खेती के जानवर, ज़मीन की इकाई के अंग माने जाते हैं। लगान का विभाजन (श्रेणियाँ) असमान—विषम—है। उदाहरणार्थ—१२० रूबल तक की आमदनी पर पौने पाँच फ़ीसदी, २०० रूबल तक सवा पाँच फ़ीसदी, ३०० रूबल तक पौने छः फ़ीसदी, ४०० रूबल तक ८ फ़ीसदी, ६०० रूबल तक साढ़े दस और ६०० रूबल से ऊपर की आमदनी पर १४ फ़ीसदी लगान (कर) वसूल किया जाता है।

कृषि-कर का उपयोग स्थानीय और केंद्रीय, दोनो सरकारों के कामों में होता है। १९२५-२६ ई० में कृषि-कर से ११ करोड़ ५० लाख रूबल की आय हुई थी, जिसमें लगभग १० करोड़ रूबल स्थानीय सरकार द्वारा स्थानीय कामों में ही ख़र्च हुए थे। यहाँ की एक बड़ी मज़ेदार और अनोखी बात यह भी है कि इस देश के बहुत-से गाँवों के किसान अपनी स्थानीय ज़रूरतें पूरी करने के लिये कभी-कभी स्वेच्छा-कर (Self imposed or Voluntary taxes) देते हैं। यह स्वेच्छा-कर कभी-कभी कृषि-कर के २५ फ़ीसदी तक के बराबर होता है, और कहते हैं, एक बार तो वह कृषि-कर के ५० फ़ीसदी तक पहुँच गया था।

कृषि-कार्य में सरकारी मदद और कृषि-स्कूल

रूस की सारी शिक्षा 'प्रोजेक्ट मेथडिया' (Project [illegible]) पर अवलंबित है। लड़कों को उनकी तथा देश की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त कराते हुए विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार गाँव के एक छोटे-से छोटे लड़के को भी यह बतलाया जाता है कि उसके आस-पास, चारो तरफ़, ऋतु-परिवर्तन के साथ सांसारिक और प्राकृतिक रूप से क्या हो रहा है, तथा इन परिवर्तनों के होते रहने के कारण क्या हैं? किसान का लड़का ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, उसे वैसे-ही वैसे कृषि तथा बग़ीचे के कामों को अधिक उत्तमता से करने के तरीक़े बतलाए जाते हैं। १९२५ ई० में तमाम देश में किसान-युवक-स्कूल (School for peasant youth) खोले गए। स्कीम थी कि प्रत्येक ज़िलों, नगरों तथा क़स्बों में ऐसे स्कूल खोले जायँगे। १२ वर्ष की उम्र के लड़के और लड़कियाँ, जो ग्रामीण पाठशालाओं के चार वर्ष कोर्स को समाप्त कर चुकी होती हैं, इस स्कूल में भर्ती की जाती हैं। इस विद्यालय का पाठ्य-क्रम तीन वर्ष का होता है, तथा इसमें गृह-अर्थशास्त्र (Home Economics) पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। ज़िले और तहसील (सब-डिविज़न) के सभी कृषि-सलाहकार (Agranoms) भी इन स्कूलों में, इनके निश्चित शिक्षकों के अलावा, शिक्षा देने में हाथ बँटाते हैं। ज़िले के प्रधान कृषिविद् (Chief Agriculturist) को रोज़ाना दो घंटे तथा सर्वेयर (पैमाइश-आफ़िसर) और पशु-चिकित्सक को रोज़ एक घंटा इस विद्यालय में काम करना पड़ता है। प्रत्येक विद्यालय को कृषि-कार्य सिखाने तथा अनुभव प्राप्त करने के लिये ३५ एकड़ ज़मीन प्राप्त होती है। इस कोटि के स्कूलों के सिवा कुछ ऐसे अन्य टेक्निकल स्कूल भी खुले हुए हैं, जिनमें इन स्कूलों से निकले हुए (उत्तीर्ण) १५-१६ वर्ष के नौजवान और नव-युवतियाँ भर्ती होकर कृषि के ख़ास-ख़ास विषयों, फ़सलों तथा जिस प्रदेश में ऐसे विद्यालय स्थित होते हैं, वहाँ की ख़ास फ़सल के संबंध में विशेष अध्ययन करके अपनी योग्यता और व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करती हैं। इन स्कूलों के विद्यार्थियों को व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक निश्चित प्रोग्राम और कोर्स के साथ कुछ दिनों के लिये सरकारी कृषि-फ़ार्मों तथा कारख़ानों में भेज दिया जाता है। उन्हें उस प्रोग्राम की पूर्ति की रिपोर्ट विद्यालय में देनी पड़ती है, और जब तक वे व्यावहारिक शिक्षा के कोर्स में अच्छी तरह दक्षता प्राप्त नहीं कर लेते, उन्हें उत्तीर्ण होने का सार्टिफ़िकेट नहीं दिया जाता।

सरकारी फ़ार्म

रूस में सरकार की ओर से जगह-जगह आदर्श कृषि-फ़ार्म (Model agricultural farm) खुले

हुए हैं। उन्हें वहाँ 'सावहोज़' (Sovhoz) कहते हैं। हिंदुस्तान में जिस प्रकार बहुत-से ज़िलों में एक-एक सरकारी कृषि-फ़ार्म हैं, उन्हीं के ढंग का इन्हें भी समझना चाहिए। परंतु इनमें और उनमें इतना अंतर अवश्य है कि यहाँ के सरकारी कृषि-फ़ार्मों से वे बहुत अधिक उन्नत और आदर्श होते हैं। साथ ही यहाँ के फ़ार्मों से किसानों को कोई लाभ नहीं होता, पर वहाँ के फ़ार्मों से किसान-वर्ग ख़ूब फ़ायदा उठाता है। वहाँ के फ़ार्मों पर खेती की नई-से-नई मशीनों का प्रयोग तथा पशुओं की नस्ल सुधारने आदि का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया और कराया जाता है, तथा इन्हें भरसक इस आदर्श रूप में चलाया जाता है कि किसान उससे अच्छी तरह लाभ उठा सकें।

कृषि-सलाहकार

उपर्युक्त उच्च कृषि (टेकनिकल)-विद्यालयों का एक मुख्य कृषि-सलाहकार (Agranoms) तैयार करना भी है। कृषि-सलाहकारों का काम किसानों को कृषि-संबंधी बातों में उचित परामर्श देना तथा खेती की पैदावार को साधारण अवस्था से अधिक-से-अधिक ऊपर उठाना और उन्नत करना है। रूस-ख़ास (रशन-सोशलिस्ट फ़ेडरल सेवियट रिपब्लिक (R. S. F. S. R.) में क्रांति के पहले १०७५ कृषि-सलाहकार थे; पर १९२६ ई० में इनकी संख्या बढ़कर २,७०० हो गई। आजकल प्रायः सभी कृषि-शालाओं और फ़ार्मों के साथ एक-एक कृषि-सलाहकार रहता है। रूस में आजकल ख़ास-ख़ास फ़सलों की खेती बढ़ाने, अच्छे जानवरों की तरक़्क़ी करने, अच्छे बीज तथा खेती से अधिक-से-अधिक उपयोगी साधनों और तरीक़ों का प्रचार करने, कृषि को व्यावसायिक बनाने, ग़रीब किसानों में सहयोग-समितियाँ स्थापित कर उनकी पर्याप्त सहायता करने आदि का काम बड़े अच्छे ढंग से हो रहा है, और सरकार के कृषि-सलाहकार-विभाग द्वारा ही मुख्यतः ये सब काम चलाए जाते हैं। कृषि-सलाहकार-भवन में खेती के सब सामान रक्खे जाते तथा पशुओं के जनने के मौसिम में किसान लोग अपने ऐसे जानवरों को यहाँ रखते तथा नाम-मात्र के ख़र्चे पर वहाँ के साधनों से लाभ उठाते हैं। इस विभाग द्वारा समय-समय पर पशुओं के मेले तथा कृषि-प्रदर्शिनियाँ भी कराई जाती हैं।

कृषि-संबंधी साहित्य

रूस में खेती की उन्नति के लिये जहाँ अन्य अनेक साधनों और तरीक़ों से काम लिया जा रहा है, वहाँ साहित्य के द्वारा उसकी उन्नति का सराहनीय उद्योग भी जारी है। कृषि-संबंधी इतनी पुस्तक-पुस्तिकाएँ और पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, जितनी शायद ही किसी कृषि-प्रधान देश में निकलती हों। उदाहरण लिये सिर्फ़ एक मास्को नगर के कृषि-विभा द्वारा प्रकाशित पुस्तक-पुस्तिकाओं की संख्या बतल देना पर्याप्त होगा। इसके द्वारा १९२६ ई० सिर्फ़ जून में कथा-कहानी, संगीत, बालोपयोग आदि पुस्तकों के अलावा केवल कृषि-संबंधी ७२० से भी अधिक पुस्तकें और पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई ये पुस्तकें अच्छे काग़ज़, अच्छी छपाई, अच्छी जिल्द और तस्वीरों से ख़ूब सज-धजकर बड़े आकर्षित रूप में निकलती हैं, ताकि नीरस विषय समझकर लोग इन्हें पढ़ना छोड़ न दें। साथ ही प्रचार की दृष्टि से क़ीमत भी कम ही रक्खी जाती है। ये पुस्तक-पुस्तिकाएँ ग्रामीण वाचनालयों तथा पुस्तकालयों में बाँटी जातीं, और बड़े-बड़े शहरों के दूकानदारों तथा सहयोग-समितियों द्वारा बेची जाती हैं। अभी कुछ दिन हुए, वहाँ के एक प्रजा-तंत्र के सहयोग-समित यूनियन ने, ग्रामीण सहयोग-समितियों को प्रचार की दृष्टि से ५० रूबल क़ीमत की पुस्तकें १८ महीने के वादे पर उधार देने की प्रथा चलाई और एक ही वर्ष में वहाँ ४०० ऐसे पुस्तक-भवन खुल गए, जिनमें से अधिकांश ने तीन ही चार महीने के अंदर पाँच-पाँच सौ पुस्तिकाएँ बेचीं। कृषि और किसानों के संबंध में अनेक साप्ताहिक, दैनिक तथा मासिक पत्र निकलते हैं, और इनके लेखक अधिकांशतः किसान ही होते हैं। कम्यूनिस्ट पार्टी की ओर से निकलनेवाला 'दी पीज़ेन्ट्स गज़ट' इनमें सबसे अधिक प्रधान और विख्यात है। इसके दस लाख से भी अधिक ग्राहक हैं। इसमें चित्र ख़ूब दिए जाते हैं और कृषि-विषयक विविध लेखों के साथ अन्य विषयों के भी लेख रहते हैं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी कृषि के

[illegible] तथा ख़ास-ख़ास पहलुओं पर भली भाँति [illegible] डाला जाता है।

रूस के प्रत्येक नौजवान को आठ महीने से लेकर दो [illegible] तक सैनिक शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। इस [illegible] किसानों को भी सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी ही [illegible] है। इसके सिवा यों भी अनिवार्य काल के [illegible] साधारण और नियमित सेना में नागरिकों की [illegible] ग्रामीण (किसान) लोग ही अधिक संख्या में [illegible] हैं। फल-स्वरूप वे लोग इस ज़रिए भी अपने देश और संसार की स्थिति से अच्छी तरह परिचित हो जाते [illegible] निरे निरक्षर सिपाही नहीं, बल्कि पूरे बुद्धि-[illegible], दक्ष और विवेकशील सैनिक बन जाते हैं। [illegible] सेना का यह नियम है कि कोई भी आदमी [illegible] निरक्षर नहीं रहता। वह न केवल साधारण लिखना-पढ़ना ही जानता है, बल्कि उसे इतिहास, [illegible] के साधारण ज्ञान के साथ-साथ, जहाँ वह रहता है, वहाँ की स्थिति और जीवन से पूरा वाक़िफ़ कराया जाता है। साथ ही यह यत्न भी किया जाता है कि [illegible] द्वारा नगर और ग्राम में परस्पर अधिक संबंध स्थापित हो। सैनिकों के बैरेकों में भी पुस्तकालय तथा [illegible] होते हैं, जिनमें विविध विषयों की पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाओं की भरमार रहती है, और सैनिक [illegible] उनके द्वारा अपनी ज्ञान-पिपासा शांत करता है।

साख-समितियाँ और कृषक बैंक

रूस में साख-समितियाँ (Credit Societies) और कृषक बैंकों (Peasants' Banks) का भी [illegible] बड़ी तेज़ी और बड़े अच्छे ढंग से हो रहा है। सरकार द्वारा इन समितियों और बैंकों का संघटन तथा [illegible] होता है, तथा क़िस्तबंदी-प्रथा पर किसानों [illegible] की मशीन के रूप में, बीज के रूप में [illegible] सिक्के की पूँजी के रूप में इन समितियों द्वारा क़र्ज़ दिया जाता है। इस संबंध में यह [illegible] की बात है कि १९२३ ई० तक रूस में [illegible] नहीं हो पाया था, और उसके बाद स्थिर [illegible] इसमें अनेक दिक़्क़तें पेश आती गईं। साथ [illegible] न तो कहीं से क़र्ज़ ही मिलता था, और न कृषि आदि संबंधी सामान ही उधार कोई देने को तैयार था। ऐसी विपरीत स्थिति में भी वहाँ की कृषि-क़र्ज़-प्रथा (Agricultural Credit System) को जो सफलता मिली है, वह दर-असल उल्लेखनीय है। १९२४ ई० में इस प्रथा का श्रीगणेश हुआ, और जून, १९२६ ई० तक ही स्थानीय साख-समितियों (Local Credit Organs) की संख्या बढ़कर ६,२०० तथा उसके मेंबरों की संख्या ४५ लाख तक पहुँच गई। पूँजी पाँचगुनी से भी अधिक हो गई। १९२६ ई० में इनके द्वारा किसानों को ११,७५,००,००० रूबल क़र्ज़ दिया गया।

मशीनें जो उधार दी जाती हैं, उसका यह क़ायदा रक्खा गया है कि ४५ रूबल क़ीमत की सब घरेलू मशीनें तथा औज़ारों के लिये नक़द दाम देना पड़ता है; ४५ से १०० रूबल तक वाली की आधी क़ीमत तत्काल और आधी प्रथम फ़सल के बाद। १०० से अधिक मूल्यवाली मशीनों का दाम तीन बराबर भागों में बाँटा जाता है, जिनमें पहला भाग तो नक़द देना पड़ता है, परंतु शेष दोनों भाग दो क़िस्तों में दो फ़सलों के बाद देने पड़ते हैं। १९२८-२९ ई० में १४० लाख रूबल तथा ११० लाख पुशल विभिन्न प्रकार के बीज, किसानों को सिर्फ़ ३ फ़ीसदी सूद पर फ़सल के बाद अदा करने के वादे पर दिए गए थे। इनके सिवा, उपयोगी ख़रीदार तथा कृषि से संबंध रखनेवाली और भी कई प्रकार की सहकार-समितियाँ और बैंकें हैं, जिनसे किसानों को लाभ पहुँचता है।

किसान-संघ

कृषि-सुधार-संघ (League for agrarian reform) की रिपोर्ट से पता चलता है कि १९१८ ई० में एकसाथ काम करनेवाले किसान कम्यून—संघ—(Communes) की संख्या सिर्फ़ ९५० थी, जो १९१९ ई० में अर्थात् सिर्फ़ एक वर्ष के अंदर बढ़कर २,०१७ तक पहुँच गई। इस प्रकार की संस्थाएँ एकसाथ रहकर बड़े पैमाने पर खेती करने की दृष्टि से संघटित हुई। इस संघटन में बहुत-से आदमी एकसाथ रहते, और काम करते थे [illegible] उनकी मेहनत और पूँजी के अनुसार [illegible]

जाती थी। एकसाथ ही सब लोग खाते-पीते; बच्चों का एकसाथ ही पालन-पोषण होता तथा व्यक्तियों के आवश्यक ख़र्च के लिये उन्हें अलग से ख़र्च दिया जाता था। परंतु सैद्धांतिक तथा मूल बातों में मतभेद न होते हुए भी तफ़सील की साधारण बातों में संघर्षण होने के कारण इस प्रकार के संघों की दिन-दिन अवनति होती गई, और इनकी जगह आजकल 'आर्टेल' (मौसिमी किसान-संघ) तथा 'कलेक्टिव्ज़' (Collectives)-नामक संघों का ज़ोर है। 'आर्टेल' में ऐसा होता है कि बहुत-से आदमी एक फ़सल-भर के लिये एक-साथ मिलकर काम करते हैं, और फ़सल समाप्त होने पर इनका संघटन टूट जाता है। इस प्रकार हर फ़सल के वक्त ऐसे अनेक संघ बनते और फ़सल के बाद तोड़ दिए जाते हैं। 'कलेक्टिव्ज़' के सदस्यों का संघटन स्थायी होता है, और शुरू के कम्यून्स से इसमें इतना अंतर है कि इसके सदस्य एकसाथ रहते तो हैं, परंतु खाने-पीने, बच्चों के पालन-पोषण आदि मामूली बातों का समवाय रूप से नहीं, बल्कि व्यक्तिगत रूप से अपनी-अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार अलग-अलग प्रबंध करते हैं। यह एक प्रकार की कंपनी के रूप में रहता है। काम करनेवालों को मज़दूरी दी जाती है, खेतों में काम करनेवाले जानवर; मशीनें आदि संघ (Collectives) की ही ओर से ख़रीदी जाती हैं। ऐसा एक-एक संघ १०००, १५००, २०००, ३००० एकड़ तक ज़मीन जोतता-बोता है, और ये सब अलग-अलग नामों से विख्यात होते हैं। कृषि की इस सामूहिक या संघमय पद्धति से सबसे बड़ा फ़ायदा यह होता है कि किसान उन बड़ी-बड़ी मशीनों, ट्रैक्टर (हलों) आदि खेती के बहुमूल्य साधनों का उपयोग आसानी से करके लाभान्वित होते हैं। व्यक्तिगत रूप से इन बेश-क़ीमती चीज़ों का इस्तेमाल सिवा चंद मालदार व्यक्तियों के और कोई नहीं कर सकता। इसके फ़ायदे को महसूस करने के कारण लोगों का झुकाव दिनोदिन इधर अधिक होता जाता है, और इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। १९२९ ई० में २२००० संघों में दस लाख किसान, ३० लाख डिसेनटाइन्स (१ डिसेनटाइन क़रीब पौने तीन एकड़ के बराबर होता है) ज़मीन जोतते और उसमें अन्न उपजाते थे।

ट्रैक्टर (हल)

ट्रैक्टर उन बड़े-बड़े हलों को कहते हैं, जो बड़े-बड़े खेतों को थोड़े समय में जोतने के काम में आते हैं। इनके द्वारा दो-तीन घंटों अथवा एक दिन में इतना काम हो जाता है, जितना कई आदमी हफ़्तों जुटे रहने पर भी नहीं कर पावेंगे। किसान-संघों की अभिवृद्धि तथा बड़े पैमाने पर खेती करने की प्रगतिशील मनोवृत्ति के साथ-साथ रूस में ट्रैक्टरों—मोटर-हलों—की संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है, और अगर यह कहा जाय कि रूसी किसानों के लिये ये मोटर-हल देवता हो रहे हैं, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। और यही नहीं कि सिर्फ़ खेत जोतनेवाली ऐसी कलों का ही प्रचार हो रहा है, बल्कि नाज और भूसे को अलग करनेवाली, फ़सल काटनेवाली, बोझ बाँधनेवाली, आदि सभी प्रकार की कलों का इस्तेमाल बढ़ रहा है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि रूस के कोने-कोने में इन मोटर-हलों तथा अन्य मशीनों का प्रचार हो गया है। रूस भी एक विशाल भू-खंड है और किसान-समूह एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ है। साथ ही अभी यह आंदोलन एक प्रकार से आरंभिक अवस्था में है। इसलिये सब कहीं इन चीज़ों का प्रचार अभी नहीं हो पाया है, परंतु इस वेगवती प्रगति को देखकर इसमें ज़रा भी संदेह नहीं होता कि बहुत जल्दी रूस के कोने-कोने के किसान इन साधनों के फ़ायदों से लाभ उठावेंगे। यह सब उन्नति केवल इसलिये संभव हो रही है कि देश की समस्त भूमि और संपत्ति पर सरकार का एकाधिपत्य है, और वह सरकार ऐसी कि जिसका एक-मात्र उद्देश्य अपनी प्रजा की अधिक-से-अधिक उन्नति करना है। इसलिये जितनी बातें की जाती हैं, वे जन-साधारण—किसानों-मज़दूरों—के लाभ को दृष्टि में रखकर की जाती हैं। किसी व्यक्ति या समुदाय-विशेष के लाभ या स्वार्थ-साधन की वहाँ गंध भी नहीं आती।

ख़ाली जगहों में किसानों को बसाना

यहाँ के अनेक नगरों तथा गाँवों में ख़ूब घनी

[illegible] हैं, और जितने आदमी वहाँ बसने चाहिए, उससे अधिक बस गए हैं। फल-स्वरूप वहाँ बेकारी का रोग खूब ज़ोर मारता है। साथ ही देश के दूसरे भागों में इतनी काफ़ी ज़मीन बेकार पड़ी हुई है कि उसका उपयोग करनेवाला नहीं मिलता। अस्तु, लोगों की बेकारी दूर करने, साथ ही फ़ालतू पड़ी हुई ज़मीनों के उपयोग के लिये रूस-सरकार ने लोगों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने (Transplantation Scheme) को काम में लाना शुरू किया है। इस योजना के अनुसार वह रूस-ख़ास *, यूक्रेराइन तथा ह्वाइट (सफ़ेद) रूस से ५० लाख आदमियों को रूस के दक्षिणी हिस्से में ले जाना चाहती है, और इन भू-भागों से लोगों का दक्षिणी भाग में आकर बसना आरंभ भी हो गया है। ऐसे लोगों को स्थानीय कृषि-विभाग के अधिकारियों से अपनी अभीष्ट नई जगह पर जाने के लिये मंज़ूरी लेनी पड़ती है। ऐसे लोगों (अपना निवास-स्थान बदलनेवाले) के परिवार में ढाई काम करनेवाले व्यक्ति तथा ६०० से ९०० रूबल तक की संपत्ति का होना आवश्यक है। सरकार की ओर से इन लोगों को कई प्रकार की सहूलियतें दी जाती हैं, ताकि उनको पुरानी जगह से नई जगह में जाना अधिक न अखरे, बल्कि वह जगह अधिक पसंद आवे। ऐसे लोगों के परिवार के १० वर्ष तक के बच्चों का रेल-भाड़ा तो क़तई माफ़ होता है, साथ ही बड़ों से भी निश्चित भाड़े का एक-चौथाई-मात्र लेने का नियम है। इसके अलावा उनके मवेशियों और सामानों का भाड़ा भी बहुत कम लिया जाता है, एवं नए स्थान पर चले जाने पर उस व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार १५० से ३०० रूबल तक का क़र्ज़ भी दिया जाता है। साथ ही ३ से ५ वर्ष तक की अवधि के लिये वह सब प्रकार के करों (Taxes) से बरी कर दिया जाता है। घर बनाने के लिये उसे लकड़ियाँ तथा ऐसी और चीज़ें भी मुफ़्त दी जाती हैं। परंतु ये सब सुविधाएँ उन्हीं को प्राप्त होती हैं, जो सरकारी क़ानून की पाबंदी से ही एक जगह से दूसरी जगह बसने के लिये जाते हैं। १९२५-२६ ई० में इस विभाग-संबंधी कार्य के लिये केंद्रीय सरकार के बजट में ३२० लाख रूबल रक्खे गए थे। परंतु इतने पर भी किसान-पक्ष के पत्र इसका रोना रोते थे कि इस विभाग के लिये बजट में बहुत छोटी रकम रक्खी गई है।

* [illegible]

ग्रामों और नगरों में सहयोगिता का प्रयत्न

यहाँ के ग्रामवालों तथा नगर-निवासियों में अधिक-से-अधिक सहयोग और परस्पर प्रेम बढ़ाने के लिये भी उद्योग जारी है। सरकार इन दोनो के अन्योन्याश्रय संबंध की महत्ता को अच्छी तरह समझती है, और इस कारण वह इनके बीच सहयोगिता बढ़ाने की सतत चेष्टा करती आ रही है। नगर में रहनेवालों को क्रांति के बाद से अब तक बराबर ग्रामीणों—किसानों—से बड़ी मदद मिलती आई है, और आगे के लिये भी, अपने वाणिज्य-व्यवसाय को उन्नत करने और पक्का माल तैयार करने के लिये कच्चा माल प्राप्त करने आदि बातों के लिये, वे ग्रामीणों का सहयोग प्राप्त करना बहुत ज़रूरी समझते हैं। उधर ग्रामवाले भी अपने कच्चे माल की खपत, नई-से-नई खेती आदि संबंधी वैज्ञानिक सहूलियतें प्राप्त करने, घरेलू उद्योग-धंधों में उनकी मदद से तरक़्क़ी करने आदि दृष्टि से नागरिकों का सहयोग वांछनीय और लाभप्रद समझते हैं। इसलिये दोनो एक दूसरे की तरफ़ झुककर सहयोग पैदा करने और बढ़ाने की चेष्टा करते हैं। इसके अलावा यहाँ की सरकार यह नहीं चाहती कि वह अपनी प्रजा को ग्रामीण और शहरवाली, दो प्रकार के खंडों में विभाजित कर प्राचीनता उनके बीच एक दीवाल-सी खड़ी कर दे—नागरिकों को शिक्षित और योग्य बनावे तथा गाँववालों को मूढ़ ही बनाए रक्खे, बल्कि इसके विपरीत वह तो यह चाहती है कि उनकी ग्रामीण प्रजा के आचार-विचार, [illegible], सभ्यता आदि नगर में रहनेवाली प्रजा से किसी प्रकार कम न हो। वह बड़े-बड़े नगरों में प्राप्त होनेवाली सारी सुविधाओं और साधनों से गाँववालों को भी लैस करना चाहती है। वह अपने राष्ट्र के एक-एक व्यक्ति को, चाहे वह शहर-वासी हो अथवा ग्रामीण, [illegible]

रूप से कार्य-कुशल, शिक्षित, मुस्तैद, देशभक्त और परोपकारी बनाना चाहती है। इसी उद्देश्य से अपने और सब आंदोलनों और कार्यों के साथ नगरों और ग्रामों में रहनेवालों में अधिक-से-अधिक सहयोग पैदा कर उन्हें एक साँचे में ढालने के लिये भी वह सचेष्ट हो कार्य कर रही है।

रूस में आजकल ग्रामों तथा नगरों में सहयोग बढ़ानेवाले इस आंदोलन को 'स्मिच्का' (Smichka) कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ मिलाव या बंधन है। इसे कार्य-रूप में परिणत करने के लिये गाँवों में अनेक प्रकार के उद्योग-धंधों, कल-पुर्ज़ों आदि के प्रसार का प्रयत्न किया जा रहा है। पत्र-पत्रिकाएँ इस बात की उपयोगिता पर प्रकाश डालती तथा इसके साधनों को आकर्षक तस्वीरों आदि के रूप में जनता के सामने पेश कर उनका ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट करती हैं।

ग्राम-नगर-सहयोग कर्मचारी-मंडल

इस कार्य के लिये छोटे-मोटे अन्य साधनों के सिवा दो मुख्य साधन काम में लाए जाते हैं। इनमें पहले को 'ग्राम-नगर सहयोग कर्मचारी-मंडल' (Worker's Society for the Union of City with Village अथवा संक्षेप में Smichka) कहते हैं। यह संस्था सरकार अथवा किसी और के दबाव से नहीं, बल्कि लोगों ने अपनी इच्छा से क़ायम की है। १९२३ ई० में लेनिनग्राड के कारख़ाने में ६० कर्मचारियों द्वारा इसकी शुरुआत हुई थी, परंतु इस समय इसका विस्तार इतना बढ़ गया है कि प्रत्येक व्यवसाय-केंद्र में इसकी शाखाएँ स्थापित हो गई हैं, तथा सदस्यों की संख्या कई लाख तक पहुँच गई है। सिर्फ़ लेनिनग्राड की शाखा-सभा में इस समय ३,२४,०१२ से भी अधिक सदस्य हैं। इस संस्था के चंदे से जो धन आता है, वह गाँववालों के लाभ के विभिन्न कामों—जैसे सिनेमा दिखाने, क़र्ज़ देने, धाय-डॉक्टर रखने, कृषि-शाला बनवाने—में लगाया जाता है। इस संस्था द्वारा इसके मेंबरों तथा अन्य कर्मचारियों (Workers) से अनुरोध किया जाता है कि वे अपनी छुट्टियाँ देहातों में जाकर ही बिताया करें। छुट्टियों में देहातों में जाकर वे क्या किया करें, इसे समझाने-बताने के लिये ख़ास तौर पर सभाएँ की जाती हैं। १९२५ ई० में सिर्फ़ लेनिनग्राड के दस हज़ार श्रमिक देहातों में जाने के पूर्व इस उद्देश्य से की गई सभा में शामिल हुए थे। ये लोग देहातियों के उपयोगी लाखों पुस्तक-पुस्तिकाएँ अपने साथ ले जाकर वहाँ बाँटते, ग्रामीणों की सभाओं में शामिल होते, सहयोग के सिद्धांत का प्रचार करते तथा देहात की स्वयं (शहरवालों के लिये) जानने लायक़ बातें सीखते हैं। शहर के स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों को भी ग्रामों की विभिन्न कामों की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक निश्चित कार्य-क्रम के साथ देहात में जाना पड़ता है। इसी प्रकार गाँव के विद्यार्थी भी मौक़े-मौक़े पर अपने शिक्षकों के साथ शहरों में आते तथा वहाँ के रहन-सहन, आचार-व्यवहार, नई-नई पाई हुई वस्तुएँ आदि जानने लायक़ बातों की जानकारी प्राप्त करते हैं।

किसान-भवन

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित दूसरी संस्था 'किसान-भवन' (House of the peasant—Dam Krestyanina) है। ये किसान-भवन देश-भर में हज़ारों की तादाद में फैले हुए हैं, और दिन-दिन इनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। ये 'किसान-भवन' तहसील, ज़िला या प्रांत के प्रमुख नगर में स्थापित हैं। यहाँ अमूमन प्रति दिन और ख़ासकर हफ़्ते में एक निश्चित दिन को देहात में रहनेवाले किसान आते, यहीं रहते तथा कृषि और मवेशियों की उन्नति, उनके रोगों के निदान, क़ानूनी बातों आदि के संबंध में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछकर अपनी जानकारी बढ़ाते तथा अपने सामने पेश दिक़्क़तों को दूर करते हैं। इन किसान-भवनों में कृषि-सलाहकार, डॉक्टर, वकील आदि कई प्रकार के विशेषज्ञ रहते हैं, जिनसे उनके विभाग से संबंध रखनेवाले प्रश्न पूछे जाते हैं। कृषि-विशेषज्ञ से जौ, गेहूँ, रुई, चना आदि की फ़सल में अमुक बुराई कैसे आई, इनकी पैदावार बढ़ाने के लिये कौन-सी खाद अधिक उपयोगी होती है, इनके दाने और बड़े-बड़े होने के लिये किन उपायों का अवलंबन करना चाहिए, आदि बातें किसान पूछता

और वह इन बातों का माक़ूल उत्तर तथा उचित परामर्श देता है। इसी प्रकार डॉक्टर तथा क़ानून-विशेषज्ञ भी किसानों को मवेशियों तथा क़ानूनी बातों के संबंध में सलाह देता है।

यहाँ पर बहुत ही साफ़-सुथरे शयनागारों और भोजनालयों का भी प्रबंध रहता है, जो सिर्फ़ किसान-भाइयों के ही उपयोग के लिये होते हैं, और नाम-मात्र का ख़र्च देकर किसानों को उन्हें इस्तेमाल करने का हक़ प्राप्त होता है। किसान स्त्रियाँ अगर शहर में घूमने अथवा कुछ ख़रीदने के लिये जाना चाहें, तो उनके लिये ऐसा प्रबंध किया गया है कि वे अपने बच्चों को वहीं कर्मचारियों के निरीक्षण में छोड़कर निर्द्वंद्वता-पूर्वक अपना काम कर आवें। नगर की स्थिति-विशेष के अनुसार एक छोटा-मोटा कृषि-प्रदर्शिनी-गृह, वाचनालय तथा मनोरंजन के सामानों की भी व्यवस्था रहती है। साथ ही जो नहीं पढ़ सकते (यद्यपि ऐसे आदमियों की संख्या बहुत ही कम है), उनको पढ़कर सुनाने का भी ख़ास-ख़ास स्थानों में प्रबंध किया गया है। समय-समय पर यहाँ लेक्चर, वाद-विवाद आदि भी होता रहता है। एक नियम यह भी है कि ज़िला-सरकार के कृषि-विभाग के किसी भी अधिकारी को इन किसान-भवनों में किसी भी समय किसानों की कोई शंका समाधान करने, व्याख्यान देने, किसी बात की रिपोर्ट पेश करने आदि के लिये बुलाया जा सकता है। लेनिनग्राड के किसान-भवन में रोज़ सैकड़ों किसान आते हैं। यहाँ पर रेडियो, कंसर्ट, लेक्चर, सिनेमा, प्रश्नों का उत्तर देने आदि के सिवा किसानों के रहने का भी बहुत ही सुंदर प्रबंध है। यहाँ पर प्रति दिन ६०० आदमियों के रहने और सोने का प्रबंध है। साथ ही २० ऐसे छोटे-छोटे कमरे भी हैं, जहाँ नवयुवतियाँ प्यानो बजाने का अभ्यास करती हैं। १९२९ ई० की मध्य गर्मी के तीन महीनों—जब किसान लोग मुश्किल से अपना घर छोड़ कहीं जाते हैं—की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि यहाँ के किसान-निवास-गृह से ६,००० किसानों ने लाभ उठाया। केंद्रीय और सर्वश्रेष्ठ किसान-भवन मास्को का है। यहाँ पर भोजनालय, वाचनालय, निवास-गृह, प्रदर्शिनी, व्याख्यान-भवन आदि—जितनी भी किसानों के लिये मनोरंजक और ज्ञान-वृद्धि की बातें हो सकती हैं—का अलग-अलग प्रबंध किया गया है। प्रदर्शिनी-गृह में सैकड़ों प्रकार के अन्न और फल तथा खेती करनेवाली पुरानी से लेकर नई-से-नई चीज़ें (मशीनें, हल, कुदाल, खुरपी आदि) रक्खी गई हैं। इसके साथ ही आदर्श कृषिशाला तथा सफ़ाई-गृह के नमूने भी वहाँ बनाए गए हैं। एक मकान में सिर्फ़ स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी चित्र तथा पोस्टर आदि लगे हुए हैं, जिनके द्वारा विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होने तथा उनके निदान के उपाय बतलाए गए हैं। एक बहुत बड़े दालान (हाल) में बिजली का कारख़ाना है, जिसके द्वारा रोशनी तथा खेती के काम के लिये उसका उपयोग बतलाया गया है। यहाँ पर, रूस में, बिजली का किस तेज़ी से प्रचार हो रहा है, खेत सींचनेवाले जल-कल बिजली द्वारा कैसे चलाए जाते हैं, बिजली के उपयोग से थोड़े ख़र्चे में कितना अधिक लाभ होता है आदि बातें ऐसे साफ़ और आकर्षक ढंग से बतलाई जाती हैं कि किसानों पर उसका बहुत गहरा असर पड़ता है। यहाँ के तथा कुछ और ख़ास स्थानों के किसान-भवनों के द्वारा किसानों को इस बात के लिये भी उत्साहित किया जाता है कि वे सिर्फ़ एक बार आकर देख जाने की अपेक्षा वहाँ दो महीने रह जायँ, और सब बातों की साधारण जानकारी प्राप्त कर लें। बहुत-से किसान अब ऐसा करने भी लगे हैं। इसका ऐसा कोर्स बनाया गया है कि दो महीने में कृषि-संबंधी सब बातों की उन्हें मामूली जानकारी प्राप्त हो जाती है, जिन्हें वे अपने व्यवहार में लाकर और अधिक प्रवीण हो जाते हैं। उपर्युक्त विवरण से अनुमान किया जा सकता है कि सिर्फ़ एक इस 'किसान-भवन' से भी किसानों का कितना अधिक हित हो सकता है। परंतु ख़ूबी तो यह है कि ऐसे किसान-भवनों की स्थापना तमाम रूस में की जा रही है। मास्को में ही इस केंद्रीय भवन के अलावा मास्को ज़िले के किसानों के लिये एक और किसान-भवन है। यहाँ के इंस्पेक्टर स्मिर्नोव (Smirnov) ने १९२९ ई० में, एक पत्र में, इन संस्थाओं के संबंध में प्रकाश डालते हुए लिखा था कि सर्व-प्रथम किसान-भवन की स्थापना १९१८ ई० में हुई थी, और इसके बाद से इनकी तादाद बराबर बढ़ती रही

गई, जिसके फल-स्वरूप १९१३ ई० में सिर्फ़ रूस-ख़ास में इनकी संख्या ४७ और १९२७-ई० में ३४६३ तक पहुँच गई। दूसरे प्रदेशों में सैकड़ों की तादाद में खुल चुके हैं और खुल रहे हैं, सो अलग। कृषि-सचिव के लेख से यह भी पता चलता है कि १९२५-२६ ई० में ३७ लाख से भी अधिक किसान, किसान-भवन के शयनागारों में ठहरे, १० लाख से अधिक व्याख्यानों, वाद-विवादों आदि में शामिल हुए, १५ लाख व्यक्तियों ने पुस्तकालयों का उपयोग किया और ५ लाख सिर्फ़ ऐसे प्रश्नों के जवाब दिए गए, जो खेती और जंगलात के क़ानून के संबंध में थे।

इन किसान-भवनों को चलाने का ख़र्च कुछ तो संयुक्त सरकारों (Federated unions) के कुल जमा से, कुछ कृषि तथा शिक्षा-विभागों से और कुछ सहयोग-समितियों से मिलता है। अभी तक यह विभाग कृषि-सचिव के अधीन नहीं है ; परंतु इस विभाग को और भी उन्नत बनाने तथा अधिक विस्तृत करने के उद्देश्य से वह पूर्ण-रूप से इसे अपने अधीन कर लेना चाहते हैं। इससे स्पष्ट है कि थोड़े ही दिनों के प्रयत्न से सिर्फ़ एक इसी विभाग द्वारा किसानों को कितना अधिक लाभ होगा।

लोक-सदन (Narodni Dom)

प्रत्येक गाँव में एक मुख्य स्थान चुनकर वहीं गाँव-भर के लोगों के हितार्थ पुस्तकालय, वाचनालय, सिनेमा, क्लब, थिएटर, युवक-संस्थाएँ आदि केंद्रीभूत कर दी जाती हैं। इन सबों के समवाय रूप को नरोदनी डोम या पीपुल्स हाउस (लोक-सदन) कहते हैं। यह साधारणतः पुराने गिर्जाघरों में स्थापित किए जाते हैं। बड़े-बड़े नगरों में ऐसी बड़ी-बड़ी प्रमुख और केंद्रीय संस्थाएँ हैं ; परंतु उनसे सब आदमी सब समय सहूलियत के साथ लाभ नहीं उठा सकते, इसलिये प्रत्येक प्रमुख गाँव में या प्रत्येक तीन-चार छोटे-छोटे गाँव के बीच एक गाँव में स्थानीय जनता के उद्योग से 'लोक-सदन' की स्थापना कर दी जाती है, और उसके विभिन्न भागों से लोग लाभ उठाते हैं। रूस की इन सभी संस्थाओं में और साधारण चीज़ों के साथ, एक कोने में महात्मा लेनिन की एक मूर्ति अथवा एक बड़ा-सा चित्र ज़रूर रहता है। तथा वहाँ दीवार पर "लेनिन का देहावसान हो गया, परंतु लेनिन के सिद्धांत जीवित हैं" (Lenin is dead, but Leninism lives) आदि वाक्य तथा महात्मा लेनिन के कथन, लेख आदि के आदर्श-वाक्य (Mottoes) उद्धरण और उनके जीवन-संबंधी चित्र लगे रहते हैं। शेष दीवारों पर मार्क्स (marx), इंजिल्स (Engels) आदि की तस्वीरें तथा उक्तियाँ लगाई हुई रहती हैं। कुछ बड़े नगरों में 'लोक-सदन' की दो-दो तीन-तीन शाखाएँ तथा भ्रमणकारी पुस्तकालय (Moving Libraries) भी होते हैं। किसान लोग बड़ी-बड़ी पुस्तकों को पढ़ना पसंद नहीं करते। फिर भी छोटी और बड़ी सब प्रकार की पुस्तकों की उन पर ऐसी गोलेबारी की जाती है, जैसा कि रूस में किसी ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा।

इसके अलावा प्रत्येक गाँव और क़स्बे में स्त्रियों का क्लब तथा पारस्परिक सहायता समिति (Mutual-Aid Society) अलग होती हैं। पारस्परिक सहायता समिति द्वारा ग़रीब, वृद्ध, लूले, लँगड़े, अनाथ आदि निस्सहाय व्यक्तियों को मदद दी जाती है। ऐसे असमर्थ लोगों की रक्षा और सहायता के लिये उक्त समिति के अलावा सरकार की ओर से भी प्रबंध किया रहता है।

उपसंहार

संक्षेप में सोवियट रूस के किसानों की स्थिति तथा उसमें सरकार की ओर से दी जानेवाली मददों का यही विवरण है। पाठकों को इस विवरण द्वारा वहाँ की स्थिति का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जायगा। उन्हें पता लगेगा कि रूस की वर्तमान सरकार सचमुच संसार में एक निराली सरकार है, और वह अपनी प्रजा की उन्नति और सुख-शांति के लिये जो कुछ कर रही है, उसकी दूसरी मिसाल इस समय मिलना असंभवप्राय है। पाठकों को पता लगेगा कि यों तो वहाँ का एक-एक आदमी और हरएक समुदाय अपनी और अपनी श्रेणी, संघ या समुदाय की हित-चिंता में दत्तचित्त रहता है। इसके साथ ही सरकार की ओर से उसे इतना अधिक बढ़ावा, और इतनी मदद मिलती रहती है कि उसका उत्साह दूना बढ़

जाता है। वह बड़ी उमंग और स्फूर्ति के साथ आगे बढ़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि लेनिन तो मर गए, परंतु उनकी आत्मा (रूह) रूस के ज़र्रे-ज़र्रे में व्याप्त है, जो उनके सिद्धांतों का बड़े वेग से प्रचार कर रही है।

इस लेख में जहाँ तक मिल सका है, ताज़े-से-ताज़े विवरण और आँकड़े देने की चेष्टा की गई है, फिर भी १९२८-२९ ई० की बहुत कम बातें दी जा सकी हैं। कारण सबों पर विदित है। ब्रिटिश सरकार रूस के एक-एक समाचार और एक-एक बात को हौआ समझती है, और इसलिये जहाँ तक उससे बन पड़ता है, वह रूस की वास्तविक स्थिति की जानकारी से भारत-वासियों को पूर्णतः अछूता रखना चाहती है। इस-लिये रूस-संबंधी पुस्तकें तथा वहाँ की पत्र-पत्रिकाएँ हिंदुस्तान में बहुत कम आ पाती हैं, और इसी कारण ताज़ी बातें देने में कोई भी व्यक्ति असमर्थ है।

इस लेख में किसानों की दशा का जो वर्णन दिया गया है, उससे कुछ लोगों को यह शंका हो सकती है कि वास्तव में रूसी किसानों की दशा ऐसी नहीं होगी, और यह अतिरंजित विवरण है। परंतु अपने पाठकों को मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इसमें एक भी बात अतिशयोक्ति-पूर्ण, ग़लत और निराधार नहीं कही गई है। अच्छी तरह पढ़ने और देखने-भालने के बाद ही मैंने इन बातों पर प्रकाश डाला है। इतना मैं ज़रूर मानता हूँ कि लेखन-शैली प्रशंसात्मक है, परंतु इसके लिये कोई दोष नहीं दे सकता; क्योंकि रूस के किसानों की उन्नति के लिये वहाँ पर जो कुछ आंदोलन चल रहे हैं और सोवियट सरकार किसानों के लिये जो कुछ कर रही है, वह इतना स्तुत्य और प्रशंसनीय है कि उसकी तारीफ़ किए बिना कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति रह नहीं सकता।

हिंदुस्तान भी एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के किसानों की अवस्था, बहुत कुछ रूस के अतीत काल (ज़ारशाही ज़माने) के किसानों से मिलती-जुलती है। महाजनों, ज़मींदारों और नौकरशाही द्वारा उसका एक-एक बूँद रक्त चूस लिया जाता है। प्रच-लित लगान-नीति के कारण दिनों-दिन वह पिसता ही जा रहा है। भारत-सरकार इन सब बातों को भली भाँति जानती है। पर जानकर भी अंधी बनी हुई है। यही नहीं, वह किसानों की जागृति और संगठन को बड़ी शंका और भय की दृष्टि से देखती और अपनी शक्ति-भर उसे कुचल डालने की कोशिश करती है। उदाहरण के लिये बारडोली का आंदोलन बहुत ताज़ा है। किसानों और किसानी की उन्नति के लिये वह जो कुछ कर रही है, वह सब फुसलाने-भर के लिये है, उससे किसानों का रत्ती-भर भी कोई लाभ होता नहीं दीखता। मिलान कीजिए इस अंतर को, और सोचिए विदेशी और स्वदेशी (निजी) सरकार की मनोवृत्ति के कारण प्रजा को होनेवाली घोर हानि और भारी फ़ायदे को! क्या अगर हमारी अपनी हुकूमत होती, तो हमारे देश के करोड़ों किसान-भाई दिन-भर मरने-खपने पर भी इसी प्रकार क्षुधातुर हो त्राहि-त्राहि पुकारते? कदापि नहीं। और, यही क्यों, हमारी अपनी सरकार होती, तो वह क्या चीज़ है, न-मालूम हम अपने आदमियों के लिये और क्या-क्या करते? पर भारत के किसानों के सिर पर दिन-रात नंगी तलवार लटकाए रहनेवालों तथा उन्हें शांति की नींद सोने तक न देनेवालों को इस बात को अभी से भली भाँति समझ-बूझ लेना चाहिए कि हिंदुस्तान के किसान अब और अधिक दिनों तक इस प्रकार पिसते नहीं रहेंगे, उनके दिन भी पलटेंगे और शीघ्र पलटेंगे। दुनिया की प्रगति और राष्ट्र की अंतरात्मा पुकार-पुकार आज यह बात कह रही है। प्रश्न सिर्फ़ यह है कि उनकी वर्तमान दशा के सुधारने के साधन और उपाय क्या होंगे। सो तो बहुत कुछ कां-ग्रेस के सत्याग्रह-संग्राम द्वारा संसार पर प्रकट हो चुका है। मौक़ा पड़ने पर उनके सिवा और दूसरा कौन-सा मार्ग ग्रहण करेंगे, यह भविष्य के गर्भ में है।

नए व्यापार के लिये पूँजी

[श्रीयुत जी० एस० पथिक बी० कॉम०]

यः प्रत्येक मनुष्य, जिसने आज अपना व्यापार सफलता-पूर्वक जमा लिया है, अपने आरंभ के युद्ध की ओर अभिमान-पूर्वक निहारता है।

अनेक व्यापारियों ने एक लड़का ही रखकर व्यापार चलाया था। उनकी पूँजी भी बहुत थोड़ी थी। आजकल के बड़े-बड़े महाजनों और ठेकेदारों ने कुछ सौ रुपयों की पूँजी से काम शुरू किया था।

पर फिर भी आजकल छोटा-मोटा कारख़ाना खोलने या और कोई व्यवसाय करने के लिये इतनी पूँजी होना तो आवश्यक है, जिससे वास्तविक रूप में काम आरंभ हो सके। दौड़ने के पहले हरएक को चलना सीखना पड़ता है। बाइसिकिल पर अच्छी तरह चढ़ना आने के पहले उस पर चढ़कर धीरे-धीरे चलना आरंभ करना पड़ता है। बाद में सब कोई तेज़ी से चल सकता है। इतना कहने का तात्पर्य यह कि व्यापार का आरंभ मज़बूती से करना चाहिए। बहुत-से ऐसे व्यवसाय हैं, जिन्हें थोड़ी पूँजी से नहीं चलाया जा सकता। उनके लिये आरंभ से ही उपयुक्त पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। पर यह पूँजी कहाँ से आवे? एक नवयुवक, जो कोई कारख़ाना चला सकता है, अथवा और कोई व्यापार कर सकता है, पर उसके पास पूँजी नहीं है, वह बेचारा पूँजी कहाँ से लावे? उसके लिये पूँजी का प्रश्न ही अत्यंत कठिन है। पर दृष्टि दौड़ाने पर पूँजी के लिये ये मार्ग दिखाई पड़ते हैं—

(१) किसी आदमी की अपनी जायदाद, कोई मकान या ज़मीन, हिस्सा, बीमा की पालिसी, बचाया हुआ रुपया।

(२) उसके मित्रों से।

(३) पूँजीवाले नए आदमियों को हिस्सेदार बनाकर।

बैंक

(४) बैंक।

पहले नीचे के मार्ग से ही विचार आरंभ करें। अगर कोई बैंक से नए व्यवसाय के लिये पूँजी लेना सोचता हो, तो उसे अपनी माँग के लिये बैंक के मैनेजर का साधारण व्यवहार पहले अच्छी तरह से जान लेना चाहिए। बैंक के पास जाने पर अपनी माँग के साथ-साथ नए व्यवसाय की पूरी योजना भी उसे ले जानी चाहिए।

यह तो हरएक को मालूम है कि आजकल के बैंक रुपया जमा करनेवालों के ट्रस्टी हैं। उनके पास रुपया उधार देने को कहाँ रक्खा है। लोग जो रुपया जमा करते हैं, उसी में से तो बैंक उधार देते हैं। और, तब यह, बात भी दुरुस्त है कि वे बड़ी सावधानी और किफ़ायत से रुपया उधार देते हैं। वे उसी संपत्ति पर रुपया उधार देते हैं, जो मौजूद होती है, और आवश्यकता पड़ने पर थोड़े समय में उससे रुपया निकल आवे।

पर ऐसे नए कामों में बैंक कैसे सहायता पहुँचा सकते हैं? बैंक हों या महाजन, रुपया उधार लेनेवालों से वे यह आशा करते हैं कि उनके पास कोई संपत्ति अवश्य है, जिसे बंधक रखकर वे रुपया उधार लेंगे।

बैंक हमेशा ज़मीन-जायदाद पर रुपया देने के लिये तैयार रहते हैं। वे उसकी क़ीमत अपने आदमियों से जँचवा लेते हैं। कंपनियों के हिस्से वग़ैरह पर भी बैंक रुपया उधार देते हैं। बीमा पालिसी पर बैंक विशेषतः रुपया देते हैं। पर आपके शहर का बैंक रुपया देने के लिये तभी तैयार होगा, जब उसे अपने हेड ऑफ़िस से स्वीकृति मिल जायगी। इसलिये बिना संपत्तिवाले का बैंक के पास जाना सर्वथा निरर्थक है। वहाँ उससे कौन बात करेगा? पर जिसके पास कोई जायदाद है, उस पर भी बैंक केवल काग़ज़ देखकर ही रुपया नहीं देगा। चाहे मकान हो, या मशीन या और कोई सामान, पहले उनका अस्तित्व होना चाहिए, तब बैंक कहीं रुपया उधार देगा। बैंक के पास जाने पर अपनी
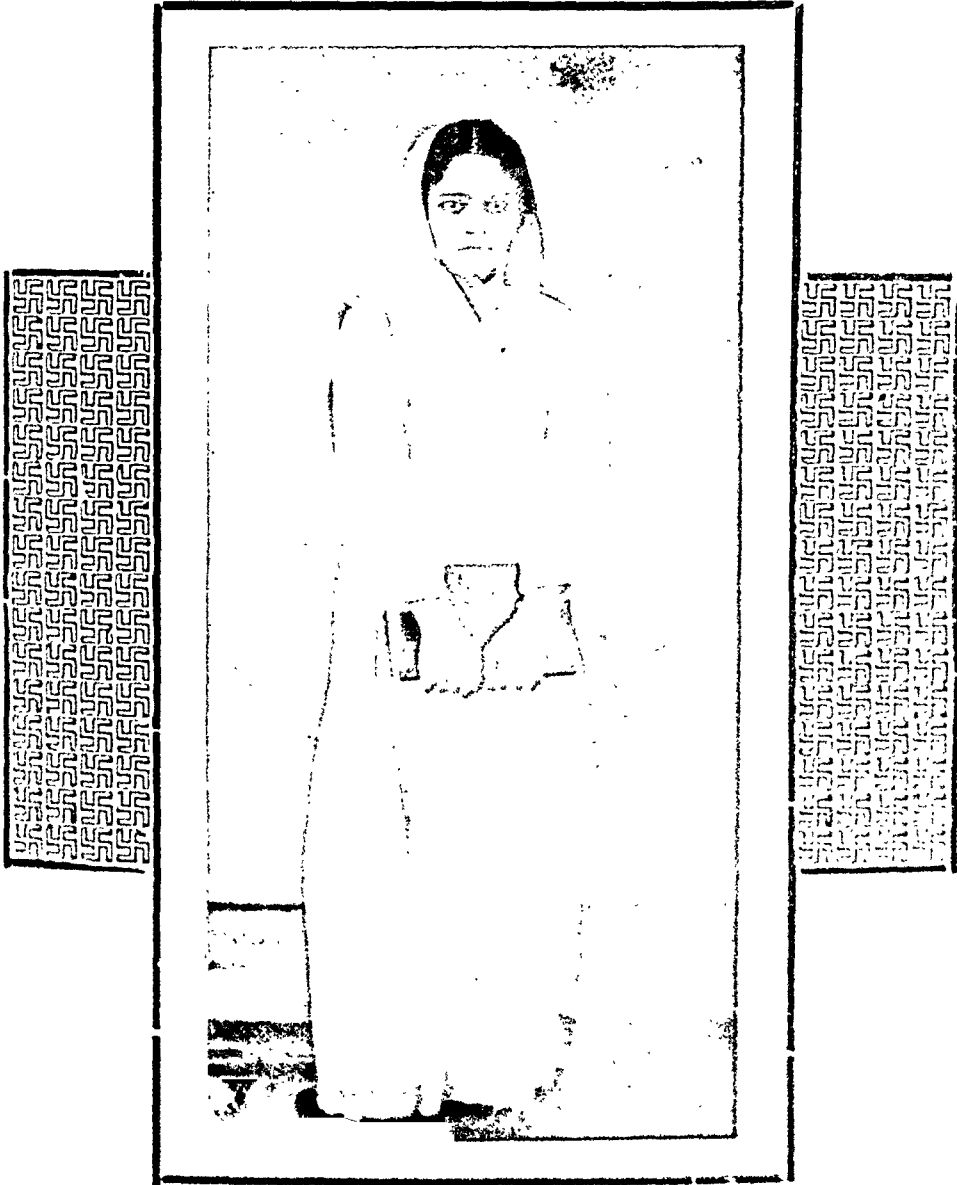
भृगुवंश की सर्वप्रथम
महिला-ग्रैजुएट
कुमारी शकुंतला भार्गव बी० ए०
[आपने हिंदू-विश्व-विद्यालय से इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास की है और
अब संस्कृत लेकर एम्० ए० पढ़ रही हैं]

[illegible] जायदाद के काग़ज़ ले जाने चाहिए। फिर यह [illegible] जायदाद पहले कहीं बंधक नहीं हो। बैंक दुबारा बंधक [illegible] रखते हैं; पर बहुत कम। दुबारा बंधक रखने की वे [illegible] नहीं करते।

किसी के हिस्से या कंपनी काग़ज़ आदि की सिक्यो[illegible] पर भी बहुत समय के लिये रुपया माँगने पर बैंक इन्कार कर देते हैं। कारण, बैंक से तो प्रतिदिन रुपया [illegible] माँगा जाता है। इसलिये वह भली भाँति सोचता है कि किसको रुपया उधार दिया जाय, और किसको नहीं। और, सो भी, किस जायदाद पर कितना, इसका निर्णय वह अपने व्यवसाय के अनुसार करता है। जब बैंक में रक़म ज़्यादा होती है, तब वह सभी अच्छी जायदादों पर रुपया उधार दे सकता है। पर जब बाज़ार में रुपए का तोड़ा होता है, तब जिन जायदादों पर उसने रुपया उधार दिया है, उनपर से वह वापस लेने के लिये मजबूर होता है। बैंक को यह अधिकार है कि वह किसी भी उधार दी हुई रक़म को माँग ले। ऐसे अवसर पर बैंक इस बात पर विचार करता है कि कौन उसके अच्छे ग्राहक हैं, और कौन नहीं—किन ग्राहकों की जायदाद से उधार दिया रुपया तुरंत मिल सकता है।

बैंक के लिये अच्छे ग्राहक वे हैं, जिनकी ईमानदारी, सचाई और साधारण योग्यता में बैंक को विश्वास है। [illegible] रुपया, जो बैंक देता है, रुपया लेनेवालों की सचाई पर। इसी से बैंक इस बात पर अधिक ध्यान देते हैं कि वे किस ग्राहक की सचाई पर विश्वास कर सकते हैं। इसकी परीक्षा वे कई प्रकार से करते हैं। [illegible] यदि किसी ने अपने काम-काज से अपनी सचाई [illegible] आयन पर रक्खा है, या अपनी व्यापारिक [illegible] से बाज़ार में उसका ऐसा प्रभाव है कि वह [illegible] है, तो बैंक पर उसका निश्चय ही प्रभाव [illegible] है। यदि बैंक से पहले पहल जायदाद पर रुपया [illegible] हो, तो यह अत्यंत आवश्यक है कि बैंक से काम-[illegible] में कोई बात छिपाई न जाय। बैंक का [illegible] यह चाहता है कि उसके नए और पुराने ग्राहक [illegible]। बैंक का मैनेजर अपने ग्राहक के [illegible] या [illegible] से केवल इस बात पर ही ध्यान नहीं देता कि ग्राहक की कैसी जायदाद है, और उस पर कितना रुपया देना ठीक है, बल्कि वह अपने ग्राहक की बात-चीत से इस बात को सोचता है कि वह आगे के लिये ग्राहक अच्छा है या नहीं।

बैंक के पूछने पर अपने व्यवसाय और अपनी परिस्थिति के संबंध में सब बातें साफ़-साफ़ और पूर्ण रूप से कह देनी चाहिए। बैंक इस संबंध में पूछ-ताछ करने का अधिकार रखता है। कारण, उसे तो यह विश्वास होना चाहिए कि उसके ग्राहक की सचाई और व्यापारिक योग्यता कैसी है। यदि सवाल के जवाब देने में कोई हिचकिचाहट और टालमटूल मैनेजर को मालूम पड़ी, तो वह अपने मन में तुरंत उस व्यक्ति के संबंध में बुरा ख़याल कर लेता है। यदि ऐसा ग्राहक आगे रुपया उधार माँगता है, तो वह उसके पत्र को बैंक की इस संबंध की लोन कमेटी के पास भेज देता है। इससे वह यह चाहता है कि अनियमित रूप से उसे रुपया उधार न दिया जाय।

विदेशी बैंक इस निरीक्षण में बड़े ख़बरदार होते हैं। देशी बैंकों ने इस पर ध्यान न देकर इस [illegible] का बड़ा अहित किया है। पर अब देशी बैंक [illegible] यार हो चले हैं, और वे भी इस संबंध में पूरा [illegible] रखने लगे हैं। निस्संदेह इस संबंध में बैंकों को अपना पूर्ण बचाव और सावधानी रखने की अत्यंत आवश्यकता है। जो बैंक-मैनेजर पूर्ण बचाव और सावधानी से प्रत्येक माँग के संबंध में व्यवहार करता है, उसके काम को बैंक का कोई अधिकारी नहीं टाल सकता।

मित्रों से पूँजी

दूसरा उपाय मित्रों से पूँजी पाने का है। पर यह भी बड़ा कठिन है। जो आदमी नया व्यापार करना चाहता है, उसे उसकी सफलता में पूर्ण विश्वास होना चाहिए। [illegible] कारण, उसके व्यापारी मित्र उससे यह [illegible] में पूछेंगे कि कैसे वह काम चलेगा, किस प्रकार [illegible] [illegible] होगी और [illegible] में [illegible] [illegible] मिलेगा। ऐसे प्रश्न उनके [illegible] [illegible] व्यापारी हों या नहीं।

दो आदमी [illegible] [illegible] की दूकान में [illegible]

अँगरेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे, बड़े सिद्ध-हस्त लेखक थे। पर बदनसीबी से दूकान में उन्हें जो भी काम करने को कहा जाता, उसे वे करते थे। उनमें से एक को दूकान का काम देखना पड़ता और दूसरा बाहर भ्रमण करता था। एक दिन ऐसी घटना हुई कि दोनो अपने मालिक से लड़ पड़े, और काम छोड़ दिया। पर ऐसा संयोग हुआ कि उन्हें तुरंत ही दूसरे प्रकाशक के यहाँ काम मिल गया। यहाँ के मालिक और भी बिगड़े दिल के थे। कुछ दिनों यहाँ भी काम किया, पर अंत में नहीं निभी। उसे भी छोड़ दिया। कई वर्षों तक इन दो प्रसिद्ध दूकानों में उन्होंने काम किया था। पुस्तक लिखने और प्रकाशन-कला में वे सिद्ध-हस्त हो गए थे। उनकी लिखी हुई अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं, पर लोगों को पता न था कि इनके लेखक वे ही हैं। किंतु अंत में साहस-पूर्वक उन्होंने यह निश्चय किया कि अब स्वयं पुस्तक-प्रकाशन और विक्रय का व्यवसाय आरंभ करें। पर कठिनाई पूँजी की थी। पाँच सौ रुपए से अच्छी दूकान कैसे चल सकती थी। इसके अलावा दोनो को अपना घर भी चलाना पड़ता था। उन्हें मित्रों से रुपया मिलने की कोई आशा नहीं थी। वे संभवतः विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने सोचा, इनके खोले भी क्या दूकान चलेगी। रुपया बरबाद हो जायगा। फ़ालतू रुपया कहाँ रक्खा है, जो इनको दिया जाय। ऐसी असहाय अवस्था में उन्होंने अपने एक सहृदय व्यापारी मित्र से प्रार्थना की। उसने यह उत्तर दिया कि "एक वर्ष का अनुमान-पत्र तैयार करो कि क्या ख़र्च पड़ेगा, कितनी बिक्री होगी, और अंत में कितना माल बच रहेगा। इसके साथ एक पत्र हो, जिसमें इस व्यवसाय की उन्नति का पूर्ण-रूप से दिग्दर्शन हो और लोगों से सहयोग देने की प्रार्थना हो। इस प्रकार, दोनो पत्रों की, सौ-सौ प्रतियाँ मेरे पास भेज दीजिए। मैं उसे देखकर अपने मित्रों से सिफ़ारिश करूँगा कि यह काम अच्छा है। इसके बाद मैं एक मीटिंग बुलाकर उसमें तुम्हें भी बुलवाऊँगा, और ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हें जितनी पूँजी की ज़रूरत हो, उतनी इकट्ठी हो जायगी।"

मीटिंग हुई। मित्र ने प्रस्ताव उपस्थित कर कहा—

"हम इन दोनो सज्जनों को जानते हैं। इनकी ईमानदारी और सचाई में किसी को भी संदेह नहीं हो सकता। फिर ये जिस व्यवसाय को करना चाहते हैं, उसका पूर्ण ज्ञान रखते हैं। कई वर्षों तक दो प्रसिद्ध दूकानों में काम करके व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर चुके हैं। इन्हें सिर्फ़ पाँच हज़ार रुपए की ज़रूरत है। इतने में ही बड़ी सफलता प्राप्त कर लेंगे। इनके पास पाँच सौ रुपए हैं। बाक़ी धन ये हम लोगों से चाहते हैं। यह यह अनुमान-पत्र है, जिसमें ख़र्च और बिक्री का पूरा पूरा ब्योरा दिया हुआ है। आप जानते हैं, मैं वर्ष में कई हज़ार रुपए की पुस्तकें बाँटने के लिये ख़रीदता हूँ। वह सब ऑर्डर भी इन्हें ही मिलेगा। इसके अलावा मुफ़स्सिल के कई व्यापारी स्थायी रूप से माल मँगाने का वादा कर रहे हैं। इससे आरंभ से ही यह दूकान बड़े रूप में काम करेगी। इसलिये इस व्यवसाय में रुपया लगाना मुझे बड़े फ़ायदे का दिखता है। इन्हें बाक़ी का रुपया उधार दिया जाय। इससे ये जो माल ख़रीदेंगे, उस पर अपनी देख-भाल रहेगी, और असली नफ़े में से इतने सैकड़ा मुनाफ़ा भी मिलेगा।"

मीटिंग में रुपया इकट्ठा हो गया, और दो साथियों ने अनेक वर्षों तक अपना व्यापार सफलता-पूर्वक चलाया।

हमने एक व्यवसाय का उदाहरण दिया है। पर इस प्रकार किसी भी व्यवसाय के लिये इस रूप में उद्योग किया जा सकता है।

इस संबंध में एक बात यह विचारने की है, यदि इन दोनो के व्यवसाय में किसी को व्यावहारिक रूप में विक्रय-कला का ज्ञान नहीं होता, तो उनकी योजना पूर्ण नहीं होती। उस अवस्था में उनके ब्यौरे में पूँजी की रक़म बहुत थोड़ी होती है और नफ़ा अधिक बतलाया जाता। पर जो व्यापारी अनुभवी विक्रेता है, वह इन दोनो को ठीक-ठीक छाँट देता है।

वह दस प्रति सैकड़ा आकस्माती ख़र्च के लिये और संभवतः दस प्रति सैकड़ा बाज़ार की प्रतिद्वंद्विता के लिये ख़र्च में जोड़ता है। जिसका नया काम होता है, और सो भी पूरा-पूरा जमा नहीं होता है, वह वर्ष-दो-वर्ष तक वर्षों से चले हुए व्यवसाय से मोर्चा लेने के लिये कुछ-न-कुछ नुक़सान उठाता ही है। इसी

[illegible] विक्रेता दस प्रति सैकड़ा रक़म प्रतिद्वंद्विता के [illegible] ख़र्च में रखते हैं।

निश्चय ही उसका सौभाग्य है, जिसके मित्र इस प्रकार उद्योग कर उधार रुपया दिलवा दें। पर बहुतों को यह भी नसीब नहीं है। न उनके पास पूँजी है, और न ऐसे मित्र। तब वे क्या करें? किस प्रकार अपने नए व्यवसाय के लिये पूँजी प्राप्त करें?

हम अख़बारों में अक्सर पढ़ते हैं कि अमुक आदमी को अपने व्यवसाय के लिये एक हिस्सेदार की ज़रूरत है, जो इतना रुपया लगा सके। अँगरेज़ी के कई देशी अख़बार—विशेषतः विदेशी अख़बार—ऐसी सूचना प्रकाशित करने के अच्छे साधन हैं।

पर ऐसी अवस्था में यह बात सोचने की है कि क्या किसी नए आदमी को बिना कोई जान-पहचान के अपने नए व्यवसाय में हिस्सेदार बनाना उचित है?

व्यापारिक क्षेत्र में यह बात छिपी हुई नहीं है कि अनेक अवसरों पर ऐसे हिस्सेदार मिल जाते हैं, जिनसे पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है, और अंत में व्यवसाय ही नष्ट हो जाता है। कौन सोच सकता है कि नया हिस्सेदार किस ख़याल का आदमी होगा। कभी किसी काम में नुक़्स निकाले, कभी कहे यह करो; कभी कहे यह मत करो। किसी समय पाई-पाई पर ध्यान दे और कभी बेहद ख़र्च हो जाय, तो ध्यान ही न दे।

इसलिये नए हिस्सेदार के लेने की जोखिम बहुत भारी है। जो हिस्सेदार साझे में काम करता है, उसे नौकर की तरह, थोड़े ही किसी समय निकाला जा सकता है। वह तो व्यवसाय का एक संचालक हो जाता है। इसलिये जहाँ संभव हो, वहाँ ऐसा हिस्सेदार लेना चाहिए, जो पूँजी तो लगावे, पर काम-काज से अलग रहे। अगर ऐसा हिस्सेदार न मिले, तो यह ज़्यादा अच्छा है कि वह बड़ी रक़म कई लोगों से इकट्ठी करे। तब यह प्रश्न होता है कि वह इतने अधिक हिस्सेदारों की साझेदारी के रूप में काम खोले, जिसमें सब-के-सब साझेदार नुक़सान होने पर लोगों का पूरा देना चुकाने के लिये ज़िम्मेदार होते हैं, और या लिमिटेड कंपनी खोले, जिसमें प्रत्येक हिस्सेदार की उतनी ही ज़िम्मेदारी होती है, जितने रुपए के वह हिस्से ख़रीदता है। नीचे की योजना आसान और सुबीते की है। इसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। सभी लोग थोड़े समय में व्यवसाय से परिचित हो जाते हैं। पर एक कठिनाई साख—माल उधार पाने—के संबंध में पड़ती है। साझेदारी के काम-काज में थोक माल के व्यापारी को माल पर रुपया उधार देने में बैंक हिचकते नहीं, पर किसी नई कंपनी को माल उधार देने के लिये वे तैयार नहीं होते। कारण, कंपनी के डाइरेक्टर ख़ुद ज़िम्मेदार नहीं होते। यदि डाइरेक्टर सम्मिलित और व्यक्तिगत रूप से ज़िम्मेदारी लेना मंज़ूर करें, तो बैंक से सहायता [illegible] सकती है।*

* सर्वाधिकार सुरक्षित है।

मिटना या मर मिटना

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"]

चौपदे

(१)

रंग-बू फूल नहीं रखता । धूल में जब मिल जाता है।
सूख जाने पर पत्ते खो। फूल नहीं पौधा लाता है।
गँवाते हैं अपना पानी । बिखर जब बादल जाते हैं।
गल गए दल, रस के निचुड़े। कमल पर भौंर न आते हैं।
नहीं जब सर में जल होता। कहाँ तब वह लहराता है।
चाँद खोकर अपनी किरणें । नहीं रस बरसा पाता है।
जोत किसने उसमें पाई। आँख जब अंधी है होती।
दिये की बुझी हुई बत्ती । अँधेरा कभी नहीं खोती ।
नहीं उसकी आँखें खुलतीं । सूझ जिसकी सब दिन सोई
रखा क्या मिट जाने में है। किसलिये मिटता है कोई ।

(२)

सदा जल-जल करके दीया। उजाला करता रहता है।
भला औरों का करने को । फूल छिदता सब सहता है।
बीज मिट्टी में मिल-मिलकर। अन्न कितने उपजाते हैं।
पेट लोगों का भरता है। मगर फल कटते जाते हैं।
किसे तब नहीं पिलाती रस। ऊख जब पेरी जाती है।
क्या नहीं देती है किसको। ठोकरें धरती खाती है।
खिंचे-बँधे ताने-टाँगे । चाँदनी करती है साया।
सुख नहीं किसको पहुँचाती। पाँव के नीचे पड़ छाया।
भलाई अगर नहीं भाती । काम क्या आई तो काया।
नहीं उसको मरते देखा । जिसे है मर मिटना आया।

मध्य-भारत में प्रागैतिहासिक चित्रण

[राय हीरालाल बहादुर बी० ए०]

कोई सवा तीन सौ वर्ष पूर्व तुलसीदासजी ने लिखा था— "अपने-अपने कर थपें लिख पूजत तिय भीति।" यह चाल आज भी स्थिर है, और यह 'लिखना' प्रायः उसी कोटि का रहता है, जो कहीं-कहीं चट्टानों पर अंकित पाया जाता है, और जिसकी प्राचीनता कभी-कभी बीस सहस्र वर्ष अथवा इससे भी अधिक बतलाई जाती है। स्त्रियों का 'लिखना' बहुधा गेरू से किया जाता था, जैसा कि अब भी देहातों में होता है। नगरों में विविध प्रकार के रंगों के मिलने के कारण और स्कूलों में ड्राइंग-शिक्षा के प्रभाव से चित्र-लेखन या चित्रण में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। परंतु ग्रामीण स्त्रियाँ मनुष्य का चित्र एक दूसरे के बीच में काटती हुई दो तिरछी रेखाओं द्वारा अब भी प्रदर्शित करती हैं। इनमें कटनों के ऊपर के दो भाग मनुष्य के दो हाथ हो जाते हैं, और नीचे के दो पैर। कटन से एक सीधी रेखा खींचकर उसकी ऊपरी नोक कुछ मुटियाकर गोल कर दी जाती है, जो मनुष्य के सिर और पेट से ऊपर का ढंग दिखाती है, यथा—

इसी को पोड़ा कर देने से कई प्रकार के रूप बन जाते हैं। जैसे—
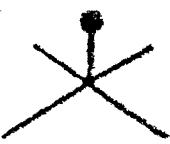
इत्यादि। इस प्रकार के चित्रण मध्य-भारत की अनेक खोहों के भीतर चट्टानों पर अंकित मिलते हैं, जो प्रागैतिहासिक कहे जाते हैं, और जिनकी आयु बहुत प्राचीन समझी जाती है, जैसा कि ऊपर बतला चुके हैं। ग्रामीण इस प्रकार की चित्रावलि को 'लिखना' कहते हैं। पुरातत्त्व के अन्वेषक लेखों की खोज में बहुत रहते हैं, और जब वे ग्रामीणों से पूछ बैठते हैं कि कहीं कुछ लिखा हो, तो बतलाओ, तो वे अक्षर-लिपि के सिवा इस 'लिखने' को भी दिखलाते हैं। मुझे इस का स्वयं अनुभव है; क्योंकि जब कभी मैंने शिलालेखों के विषय में पूछ-ताछ की, तो मैं भी कभी-कभी इसी प्रकार के चित्रण के सामने खड़ा कर दिया गया। लगभग पचास वर्ष पूर्व जब ऐसा प्रसंग पुरातत्त्व-विभाग के सुपरिंटेंडेंट कार्लाइल साहब के सामने आया, तो उन्होंने इसे अपनी रिपोर्ट में अंकित तो कर दिया, परंतु उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब मैंने 'मध्य-भारत के शिला और ताम्रलेख'-नामक पुस्तक, सन् १९१६ में, लिखी, तब मैंने भी ऐसा ही किया, और उस पुस्तक में एक स्थल पर यह लिख दिया— "In Mauzas Visvanatha pali and Batakdah of the Raigadh State there are primitive paintings on the rocks rudely representing men and animals in red ochre. These are locally known as inscriptions. They are believed to be of great antiquity."

कहीं। [illegible]
[illegible]

आदमी और जानवरों के भद्दे प्राचीन चित्र हैं, जिनको स्थानीय लोग 'लिखना' कहते हैं, और उन्हें बहुत पुराने बतलाते हैं। रायगढ़ मध्य-प्रदेश में एक रियासत है, यहाँ के इस प्रकार के चित्रण की खबर बाल्डिंग और अंडरसन-नामक दो साहबों को लगी। उनको सुझाया गया कि इस रियासत में एक बड़ी भारी गुफा है, जिसमें बहुत-से चित्र हैं। ये लोग खोज करने को निकल पड़े। यद्यपि इन्हें वह गुफा नहीं मिली, तथापि उनका परिश्रम विफल नहीं गया। उसी प्रकार की अन्य गुफाएँ मिल गईं। बंगाल-नागपुर रेलवे रायगढ़-रियासत के भीतर से गई है। इस पर नाहरयाली-नामक स्टेशन है। वहाँ से चार मील पर सिंगनपुर-नामक एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ माँद नदी के किनारे पर्वत पर कुछ अनगढ़ गुफाएँ हैं। इनमें मनुष्य और जानवरों के भद्दे चित्र बने हैं, और कहीं-कहीं आखेट का दृश्य दिखलाया गया है। शिकार सुअर का किया गया है, जिसका मांस जंगली लोगों को बहुत प्रिय होता है। इनके अतिरिक्त कई अन्य चित्र भी हैं। अंडरसन ने इन गुफाओं का अवलोकन कई बार जा-जाकर किया, और इन चित्रों का मनन और मिलान करते रहे। पश्चात् पटना-म्यूज़ियम के क्यूरेटर का भी यहाँ महीनों तक मोरचा जमा। कई दिनों तक अन्वेषण कर उसके भीतर के चित्रों की नक़ल की गई, उनकी विचित्रता पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया। अनेक पत्रों में इसकी चर्चा हुई, जिससे देशी-विदेशी अनेक पुरातत्त्व खोजनेवालों की दृष्टि उस ओर झुकी, और सिंगनपुर का नाम समस्त संसार में फैल गया।

प्राचीनता की ओर इस समय घुड़दौड़ मची है। इस देश में पहले यदि कोई वस्तु सहस्र-दो-सहस्र वर्ष की पुरानी स्थिर की जाती थी, तो बड़े महत्त्व की समझी जाती थी। जब प्रिंसेप साहब ने पाली-अक्षरों की कुंजी पा ली, तब तीन सहस्र वर्ष पुरानी चीज़ों का विशेष मान होने लगा। परंतु इन सबों को अब हड़प्पा हड़प कर गया है। अब सिंगनपुर ने सींगी बजा दी कि आगे बढ़ने का समय आ गया। विद्या-विशारद सोल्लास साहब ने सोल्लास बीस हज़ार बरस की खबर का डंका पीट दिया। कहा जाता है, इसी प्रकार के चित्र योरप और अमेरिका की खोहों में भी मिले हैं, जो उस समय की सूचना करते हैं, जब मनुष्य जंगली अवस्था में शिकार से पेट भरता था, और कंदराओं तथा गुफाओं में निवास करता था। पृथ्वी-भर में यही दशा थी। भूगर्भ-विशारद कहते हैं कि विंध्य-पर्वत की चट्टानों से अधिक पुरानी चट्टानें अन्यत्र नहीं हैं। इसी पर्वत की चट्टानों पर प्रागैतिहासिक चित्रों की बहुलता जान पड़ती है। हमने स्वयं रायगढ़ की खोहों के अतिरिक्त दमोह और होशंगाबाद-ज़िलों में भी खोहें देखी हैं। दमोह-ज़िले के फ़तेह-पुर-नामक गाँव की सीमा पर एक गहरा नाला है, जिसे पटार कहते हैं। यहाँ एक चट्टान है, जिसकी छत पर लाल रंग के चित्र बने हैं, और कुछ चौक-से पुरे हैं। (देखो दमोह-दीपक पृ० ६३) इस प्रकार का एक चौक सिंगनपुर की शिला पर भी एक जगह बना है। बघेलखंड में लेंबथर-तहसील के गिंजा पहाड़ पर १०० फ़ुट लंबी, ५० फ़ुट चौड़ी और २० फ़ुट ऊँची एक गुफा है, जिसके मध्य में चट्टान पर जानवरों और आदमियों के भद्दे चित्र बने हैं। परंतु विशेषता यह है कि गेरू से लिखा हुआ गुप्त अक्षरों में एक लेख भी है, जिसमें महा-

गुप्त भीमसेन का नाम है, और गुप्त संवत् ५२ लिखा है, जो ३७१ ईस्वी में पड़ता है। ऐसे ही केदरी कुंड की अनगढ़ चट्टान पर चित्र हैं, जहाँ ईसा से २०० वर्ष पूर्व का एक लेख है।

यह चर्चा उड़ीसा के उदयगिरि-खंडगिरि-नामक पर्वतों के हाथी गुंफा के लेख का स्मरण कराती है, जिसको कालिंग चक्रवर्ती जैन-महाराजाधिराज खारवेल ने खुदवाया था, और जिसका पूर्ण महत्त्व विद्या-महोदधि, पंडित-प्रवर श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल साहब ने बड़े परिश्रम के साथ प्रकट किया है। इस लेख को इतिहास-संशोधक सौ बरस से जानते आए हैं। परंतु सन् १९१७ के पूर्व किसी ने इसे पूरा नहीं पढ़ पाया था। पाठक समझ सकते हैं कि जब महाशय काशीप्रसाद के समान धुरंधर पुरातत्त्वज्ञ को इसके हल करने में कोई दस वर्ष लगे, तब प्रागैतिहासिक 'लिखनों' के व्यक्त करने में क्या दशा होगी। जो हो, एक बात तो स्पष्ट है कि मध्य-भारत में सामग्री की कमी नहीं है, उसका उपयोग करना लोग जानें या न जानें। वर्तमान समय उद्योग का है। क्या हम आशा करें कि मध्य-भारतीय अपने माल-मसाले की ओर ध्यान देंगे, और उसका यथोचित उपयोग करेंगे। मध्य-भारतीयों के लिये विदेशी अंडरसन का उदाहरण अनुकरणीय है। उन्होंने अपरिचित रायगढ़ की गुफाओं में जा-जाकर बड़े परिश्रम और कष्ट से उनकी भद्दी तसवीरों की, लगन लगाकर, बरसों जाँच की, और संसार के विद्वानों का चित्त उस ओर झुका दिया। अंडरसन ने कभी परवा नहीं की कि उन भयावह चट्टानों पर से तनिक भी पैर फिसल गया, तो नितांत अदर्शन हो जायगा, पता भी न चलेगा कि कहाँ समा गए।

भूषण और मतिराम

[पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित]

भारतीय इतिहास में सहस्रों बातें भ्रम-पूर्ण भरी हुई थीं, और समाज उन्हीं पर विश्वास किए हुए तब तक अटल रूप में स्थित रहा, जब तक अन्वेषकों ने अपनी खोज के प्रबल धक्के से उन्हें छिन्न-भिन्न नहीं कर दिया। भूषण और मतिराम के संबंध में भी यही दशा है; इनके संबंध की बीसियों क़िवदंतियाँ सुनी और पढ़ी गई हैं। उनमें से कई तो अशुद्ध प्रमाणित हो चुकी हैं। अनेकों अब भी संदेहात्मक दशा में बनी हुई हैं। अतः इनको दूर करने की अत्यंत आवश्यकता है। साथ ही नीर-क्षीर-विवेचन से विशुद्ध रूप प्रकट करना अत्यंत कष्टसाध्य है। फिर भी विद्वानों के समक्ष अपने विचार रखने की धृष्टता करता हूँ। आशा है, विद्वन्मंडली गंभीरता से, पक्षपात-रहित होकर, विचार करेगी, तथा उसमें से सार वस्तु, यदि हो, तो ग्रहण करने की कृपा करती हुई अपनी शुभ सम्मतियों से अनुगृहीत करेगी।

माघ, सं० ८९ वि० की माधुरी में मेरी 'भूषण-मतिराम'-संबंधी विचार-धारा को सम्मुख रखते हुए माधुरी-संपादक पं० कृष्णविहारीजी मिश्र ने मतिराम के वंश और समय पर अपनी संपादकीय टिप्पणी देने का कष्ट उठाया है। आप लिखते हैं—

"फूल-मंजरी का अंतिम दोहा इस प्रकार है—

हुकुम पाय जहँगीर को नगर आगरे धाम;
फूलन की माला करी मति सों कवि मतिराम।

इस दोहे से प्रकट होता है कि फूल-मंजरी की रचना आगरे में, जहाँगीर की आज्ञा से, हुई। जहाँगीर का देहांत संवत् १७८४ वि० में हुआ। यदि फूल-मंजरी उनकी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व बनी हो, और उस समय मतिराम की अवस्था २२ वर्ष की हो, तो उनका जन्म संवत् १७६० वि० ठहरता है × × ×।"

इस टिप्पणी में मिश्रजी ने आदि से ही भूल की है, और अंत तक भूलों की भरमार है। जहाँगीर की मृत्यु सं० १७८४ वि० में नहीं, सं० १६८४ वि० में हुई थी। फिर आपने जहाँगीर की मृत्यु से २ वर्ष पूर्व फूल-मंजरी का रचना-काल माना है, और उस समय मतिराम की अवस्था २२ वर्ष की मानी है, जिनका कोई आधार नहीं। यदि हम इसका रचना-काल जहाँगीर के राज्यारोहण सं० १६६२ वि० से ५ वर्ष पीछे मानें, और उस समय मतिराम की अवस्था ३७ वर्ष लें, तो उनका जन्म-संवत् १६३० वि० ठहरता है। मिश्रजी ने मतिराम की कम-से-कम अवस्था लेकर जहाँगीर के अंतिम समय से अपने अनुमान का निष्कर्ष निकाला है, जो कि शुद्ध नहीं माना जा सकता। इस में अधिक-से-अधिक भूल की संभावना हो सकती है। इसके विरुद्ध मेरा अनुमान माध्यमिक रूप में है। अतः पाठकों को यह अनुमान अधिक शुद्ध जँचेगा, तथा इसमें यदि भूल होगी, तो कम-से-कम।

परंतु इन दोनो अनुमानों में इस बात की ओर कदापि ध्यान नहीं दिया गया कि मतिराम के आश्रय-दाता जहाँगीर बादशाह ही थे, अथवा इनसे भिन्न कोई सरदार, जागीरदार अथवा साधारण ज़मींदार; क्योंकि कवि ने समय और बादशाह का उल्लेख क्या, संकेत तक नहीं किया। ऐसी दशा में मतिराम की अवस्था का अनुमान लगाना नितांत असंगत होगा। कवियों में बहुधा देखा जाता है कि प्रारंभिक अवस्था में वे अपने आश्रय-दाताओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। तिस पर यदि जहाँगीर-जैसे सम्राट् का आश्रय पावें, तो कहना ही क्या! परंतु फूल-मंजरी में बादशाह की कोई चर्चा नहीं, और न कहीं यह भाव प्रदर्शित होता है कि यह ग्रंथ बादशाह के लिये लिखा गया है। अतः यह ग्रंथ भिन्न समय में, भिन्न जहाँगीर के लिये रचा गया प्रतीत होता है। मेरा अनुमान है कि फूल-मंजरी प्रसिद्ध मतिराम की प्रारंभिक रचना

दूसरा प्रमाण यह दिया है कि "वृत्त-कौमुदी (छंद-सार पिंगल)-वाले मतिराम वनपुर-वासी वत्स-गोत्रीय विश्वनाथ के पुत्र थे, और दूसरे मतिराम कश्यप-गोत्रीय (नहीं कश्यप जातीय) त्रिपाठी-गोत्रीय (देखो विहारीलाल-कृत रस-चंद्रिका टीका—'कश्यप-वंश कनौजिया विदित त्रिपाठी-गोत ।') तिकमापुर-निवासी रत्नाकर के पुत्र थे । उनके वंशज भी वहीं रहते हैं।" परंतु आपका यह दूसरा तर्क भ्रमात्मक और धोके में डालनेवाला है । चूँकि मिश्रजी स्वयं कभी तिकमापुर नहीं गए, अतः सुनी-सुनाई बातों पर केवल अनुमान का आश्रय लेकर यह सारी कल्पना कर डाली है । मतिराम का कोई वंशज तिकमापुर में नहीं रहता । मतिराम के वंशज बाँद तथा अजोरी में रहते हैं । कुछ अन्य स्थानों में भी उनके वंशज निवास करते हैं । वे सब अपने को 'बछई' के तिवारी कहते हैं, जिसका शुद्ध रूप 'वत्स' होता है । बाँद के पं० दुर्गाप्रसाद तिवारी (जो मतिराम के वंशज हैं) के यहाँ से एक वंशावली मिली है, जिसमें कश्यप-गोत्र का विवरण है । उसमें 'बछई व कन्हई' के तिवारियों का स्पष्ट उल्लेख है । मतिराम के वंशज विहारीलाल तथा रामदीन के नाम की जयपुर तथा अजयगढ़ आदि राज्यों से मिली हुई कई सनदें उनके वंशजों के पास हैं, जिनमें समय आदि का स्पष्ट उल्लेख है ।

विहारीलाल का अपने को त्रिपाठी-गोत बतलाना बछई (वत्स)-गोत्र की ओर ही संकेत करता है ; क्योंकि बछई के त्रिपाठी को ही मतिराम ने त्रिपाठी वत्स-गोत्र लिखा है । ये लोग कान्यकुब्ज माने जाते हैं, और उन्हीं में विवाह-संबंध करते हैं । परंतु मिश्रजी स्वार्थ-सिद्धि के लिये उन्हें कान्यकुब्ज मानने को भी तैयार नहीं ।

मतिराम के वंशज तिकमापुर से बहुत काल पूर्व ही चले गए थे । विहारीलाल ने अपना निवास-स्थान तिकमापुर ही लिखा है। परंतु मतिराम ने अपना निवास-स्थान 'वनपुर' बतलाया है । तिकमापुर से बहुत ही समीप ½ मील पर रनपुर और वनपुर दो ग्राम थे। उक्त दोनो ग्रामों में केवल १०० गज़ का अंतर होगा। अब ये दोनो ग्राम उजाड़ दशा में हैं । इन दोनो ग्रामों के बीच एक देवी का मंदिर अच्छी दशा में वर्तमान है, और रन-वन की देवी (भुइयाँ) के नाम से प्रसिद्ध है । यहीं भूषण और मतिराम के पूर्वज अपनी इष्टदेवी की पूजा किया करते थे, जिसका उल्लेख शिवसिंह-सरोज तथा अन्य ग्रंथों में भी आया है । रनपुर और वनपुर में केवल देवी के मंदिर को छोड़कर कोई घर अथवा स्थान शेष नहीं है, और न कोई मनुष्य ही वहाँ रहता है । प्राचीन स्थानों के भग्नावशेष मात्र रह गए हैं । परंतु सं० १७५८ वि० तक वनपुर अच्छी दशा में था । उसके पश्चात् भूषण, चिंतामणि और मतिराम तिकमापुर में आ बसे थे, जैसा कि विहारीलाल ने अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है । इसी कारण भूषन ने 'भूषण-ग्रंथावली' में अपने को तिकमापुर-निवासी बतलाया है । इससे मेरा यह अनुमान भी युक्ति-युक्त प्रतीत होता है कि महाकवि भूषण ने 'शिवराजभूषण' सं० १७६४ वि० के लगभग रचा होगा । इसके पश्चात् ही कभी अकाल या महामारी के कारण रनपुर और वनपुर उजाड़ हो गए होंगे ।

जो सज्जन 'शिवराजभूषण' का निर्माण-काल सं० १७३० वि० में मानते हैं, उन्हें अन्य विरुद्ध प्रमाणों के साथ उक्त विवेचन पर भी विचार कर लेना चाहिए ।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट विदित होता है कि मतिराम ने वृत्त-कौमुदी में जो वर्णन दिया है, वह बिलकुल शुद्ध है, और भूषण रत्नाकर के पुत्र तथा मतिराम विश्वनाथ के पुत्र होने से सहोदर बंधु कदापि नहीं माने जा सकते ।

अजयगढ़-नरेश महाराज बख़्तसिंह ने सं० १८७८ वि० में कविवर विहारीलाल को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्हें बुलाने का उल्लेख है । परंतु मिश्रजी विहारीलाल को सं० १८७५ वि० में ही स्वर्ग-धाम पहुँचाए देते हैं । मेरा अनुमान है कि इस समय के भी ८-१० वर्ष पीछे तक कविवरजी विद्यमान थे । इन्हीं कविवर विहारीलाल से ३ पीढ़ी पूर्व मतिराम महाकवि हुए थे । अतः मतिराम का समय इससे १०० वर्ष पूर्व सं० १७७८ वि० ही हो सकता है, सं० १६५० वि० कदापि नहीं, जिसमें २३० वर्ष का अंतर है। मिश्रजी ने अपने निश्चित समय का मिलान करने के लिये ८५-८५

बाघ ज्यों बबक्का त्यों ही पंचम रवक्का जाइ,
ठौर ही ठनक्का गज माते जो दवक्का है ;
सोई खोज बक्का अब लरेन सों थक्का,
जब लागा रन पक्का धुरमंगद को धक्का है ।
(प्रथम उद्योत छंद ४७)

फ़तेह-प्रकाश में केवल यही छंद फ़तेहशाह से भिन्न राजा की प्रशंसा में है । धुरमंगद बुँदेला चत्रिय था । शिवसिंह सेंगर ने भूल से इस छंद को फ़तेहशाह की प्रशंसा में समझ लिया है । भूषण और लाल कवि ने भी धुरमंगद का उल्लेख तथा प्रशंसात्मक वर्णन किया है ।

यहाँ पर फ़तेह-प्रकाश-ग्रंथ से वे उद्धरण देना उचित प्रतीत होता है, जिनसे फ़तेहशाह की स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है । इस ग्रंथ के प्रथम उद्योत की समाप्ति पर "श्रीनगर-वासी राजा फतेसाहि मेदिनीसाहि आत्मजेन आज्ञप्त ।" वाक्य दिया हुआ है । इससे विदित होता है कि श्रीनगर-नरेश फ़तेहशाह मेदिनीशाह का पुत्र था, जिसके लिये यह ग्रंथ रचा गया । गढ़वाल-गजेटियर में स्पष्ट लिखा है कि मेदिनीशाह सन् १६८४ ई० (सं० १७४१ वि०) में मर गया, और उसका पुत्र फ़तेहशाह श्रीनगर (गढ़वाल) की गद्दी पर बैठा, जो संवत् १७७३ वि० तक राज्य करता रहा । इससे स्पष्ट हो जाता है कि फ़तेहशाह श्रीनगर (गढ़वाल) का राजा था ; बुँदेला नहीं, और न बुँदेलखंड-वासी था । आज भी उसके वंशज गढ़वाल-राज्य पर अधिकृत हैं, जो टेहरी-राज्य के नाम से विख्यात है ।

दूसरा उदाहरण भी देखिए । फ़तेह-प्रकाश के दूसरे उद्योत में अद्भुत-रस का उदाहरण देते हुए रतन कवि ने अंतिम चरण में लिखा है—

"गढ़वार नाह फ़तेशाह शैलगाह तोहिं
जग माहिं जोहि ऐसे ज्ञान गुनियत है ।"
(फ़तेह-प्रकाश, द्वितीय उद्योत, छंद ४१)

अब एक उदाहरण और लीजिए । महाकवि भूषण ने भी अपने एक छंद में फ़तेहशाह की प्रशंसा करते हुए गढ़वाल-राज्य का उल्लेख किया है । इसी छंद को रतन कवि ने फ़तेह-प्रकाश में उद्धृत किया है । उसका छंदांश यह है—

"सुजस ते चलौ मुख भूषण भनैगो बाढ़ि
गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो ।"
(फ़तेह-प्रकाश, चतुर्थ उद्योत, छंद ६०)

इस ग्रंथ में अधिकांश छंद रतन कवि के रचे हुए हैं । यहाँ पर उक्त ग्रंथ से उद्धृत उदाहरणों से स्पष्ट विदित होता है कि रतन कवि का आश्रय-दाता श्रीनगर (गढ़वाल)-नरेश फ़तेहशाह ही था, बुँदेला फ़तेहशाह कदापि नहीं । और, न बुँदेलखंड के किसी श्रीनगर में किसी राजा फ़तेहशाह का पता चलता है । शिवसिंह सेंगर ने भी अन्य किसी रतन कवि का उल्लेख नहीं किया, जो फ़तेहशाह के आश्रित तथा फ़तेह-प्रकाश का रचयिता हो । अतः निश्चित है कि शिवसिंह सेंगर से अनजान में भूल हुई है, और उसी भूल को गोविंद गिल्ला भाई तथा मिश्रजी ने दुहरा दिया है । अन्य भी कई उदाहरण फ़तेह-प्रकाश से दिए जा सकते हैं, जिनसे मेरे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है । इस प्रकार की भूलें किसी एक व्यक्ति की नहीं मानी जा सकतीं । इसलिये किसी को इन भूलों के लिये दोष देना व्यर्थ है ।

हिंदी-जगत् एक विचित्र मार्ग पर जा रहा है, जिसमें पक्षपात, धड़ेबंदी और अपूर्ण ज्ञान की अधिकता है । जो अधिक लिखे, फिर चाहे वह नितांत अशुद्ध हो, उसी की ओर जनता आकर्षित हो जाती है । गंभीरता से ठोस लेखों पर विवेचना करनेवाले बहुत थोड़े व्यक्ति हैं । जिनके हाथ में पत्र होते हैं, वे चाहे जैसी बातें मनवा सकते हैं । इस प्रकार मैंने कई विद्वानों का अपमान होते देखा है, जिनके पैरों का धोवन भी अन्य व्यक्ति हिंदी-जगत् में दृष्टिगोचर नहीं होता । इसका यह अर्थ नहीं कि मैं अपने को भी अधिक विद्वान् समझता हूँ । कदापि नहीं, जो ऐसा समझेंगे, वे भूल करेंगे । परंतु साधारण स्थिति ऐसी ही है, जिसका उल्लेख मैंने किया है । अंत में हिंदी के अन्वेषक विद्वानों और समालोचकों से निवेदन है कि वे सत्यासत्य का निर्णय करने का प्रयत्न करें, और भूषण-मतिराम-संबंधी विवेचन पर विचार प्रकट कर अनुगृहीत करें ।

खोल !

[श्रीयुत बा० जयशंकरप्रसाद]

खोल तू, अब भी आँखें खोल !
जीवन-उदधि हिलोरें लेता
उठती लहरें लोल ।
छवि की किरनों से खिल जा तू
अमृत-झड़ी सुख से झिल जा तू
इस अनंत स्वर से मिल जा तू

वाणी में मधु घोल ।
जिससे जाना जाना
उसे जानने का यत्न !
भूल अरे अपने को,
जकड़ा, बंधन खोल ।

बादल

[श्रीभगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)

किस उमंग से प्रेरित होकर शून्य अधर पर
घिर आई हो सघन घटा तुम गरज-घुमड़कर ?
भीम तुम्हारा नाद धीर, गंभीर, भयंकर—
हिल उठते हैं मेरु, काँप उठता है अंबर !
ऐ झंझा के प्रबल झकोरे, ऐ झंझा के नाद !
प्रकृति के व्यंग्य-युक्त अवसाद ।
रुको, बरसो-बरसो दिन-रात,
लोप कर दो निर्दय आकाश !
रुको, बन जाओ अंधाकार—
मिटा दो पल में सकल प्रकाश !
रुको, हो आज भैरवी-नृत्य
इधर हो नाश, उधर हो नाश !
इस विनाश के महा गर्त में डूब जाय संसार,
और लोप हो जावे उसमें कलुषित हाहाकार ।
जल-ही-जल हो, उथल-पुथल हो, बनो काल साकार;
बरसो-बरसो अरे सघन घन महाप्रलय की धार !

(२)

ऐ अशांति के वेग, उदधि के उर से उठकर
कहाँ चले तुम आज प्रकृति के प्रबल बवंडर ?
उठते हैं नद-ताल और झुकते हैं तरुवर,
हो जाता निस्तब्ध विश्व भावी भय से भर ।
ऐ उद्भ्रांत-प्रवाह उदधि के उच्छ्ृंखल उद्गार !
कालिमा के काले अभिसार !
रुको पल भर, सुन लो तुम आज
धधकती हुई धरा की बात—
यहाँ है सदा भ्रांत का राज
यहाँ है अपने ही का घात;
यहाँ नीचे-नीचे प्रतिकाल
रुदन-ही-रुदन यहाँ दिन-रात ।
भरे हुए हो अरे स्वयं ही तुम विप्लव साकार;
पर असत्य है कायर जग को अपने दुख का भार ।
तुम विरोध की मूर्ति और हम करुणा के आगार -
रो सकना यदि, तो रो लेना तुम आँसू दो-चार ।

(३)

किस विरोध की आग लिए पानी के उर में
चले जा रहे हो पागल-से तुम सुर-पुर में ?
ज़रा ठहरकर, उतर पड़ो तुम विश्व विधुर में,
भर दो अपना वेग हमारे हृदय निठुर में ।
अरे क्रांति की मूर्ति, क्रांति की दीप्त शिखा की ज्वाल!
धर्म के तेज, कर्म की चाल !
हमारा सूखा-सा संसार—
एक तंद्रा का कल्प अपार,
मोह की परिधि, स्वप्न का जाल
शून्य-सा शून्य, पतन का सार,
जलधि के वक्षःस्थल में व्याप्त
बुलबुले का यह क्षणिक उभार—
इसमें मिलकर तड़प उठो तुम विप्लव के भू-चाल;
हिल जावे आकाश, पलक में पलट जाय पताल ।
उठो गगन पर अरे सघन घन, बन विभ्राट विशाल;
फैल-फैलकर अखिल शून्य में, बनो विजय के भाल !

(४)

"और ! और !" प्यासा चातक रटता है अविकल
"पीउ !-पीउ !" पपिहा पुकारता तुमको प्रतिपल;
रुको, अरे ओ रुको पवन के झोंके चंचल !
झुको, झूमकर झुको भूमि पर काले बादल !

म० म०, साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्मा एम्० ए०

[कुमारी वसुमती शर्मा (रामावतारजी की पुत्री)]

डेयजी का शुभ-जन्म (१८७७) बिहार के अंतर्गत छपरा-ज़िले में हुआ था। आपके पूज्य पिता का नाम पं० देवनारायण शर्मा था। वह साधारण संपत्तिवाले तथा संस्कृत के विद्वान् थे। बड़े ही विद्या-व्यसनी व्यक्ति थे। जीविकोपार्जन से जो समय बचता, उसे वह विद्याध्ययन ही में बिताते थे। वह केवल संस्कृतज्ञ ही थे। कारण, उस समय बिहार में, सो भी ब्राह्मण-कुल में अँगरेज़ी पढ़ने की प्रथा अत्यल्प थी। आप बड़े ही आचारवान् व्यक्ति थे। आपके ६ पुत्र तथा १ पुत्री थी, जिनमें पिताजी (रामावतारजी) द्वितीय पुत्र थे। आपके मृत्यु-काल में केवल चार पुत्र थे। शेष लड़के बहुत अल्पावस्था ही में स्वर्गवासी हो गए थे। आपके तीन अनुज, आजकल भिन्न-भिन्न ज़िलों में स्कूलों के अध्यापक हैं। आपकी माता, जिनका नाम श्रीमती गोविंददेवी था, शिक्षिता महिला थीं। आपको भी विद्याध्ययन का बहुत शौक़ रहता था। आप उस समय की सामाजिक कुरीति (जो लड़कियों की शिक्षा न देने की थी) के विरुद्ध थीं। आप लड़कियों को पढ़ाना उचित समझती थीं। यह गृह-कार्य में, ख़ासकर पाक शास्त्र में, बहुत ही निपुण थीं। पिताजी अक्सर कहा करते थे कि जबसे माताजी का स्वर्गवास हुआ, तबसे आज तक उनका-जैसा भोजन बनानेवाली कोई महिला मेरे घर में नहीं आई। आप कहते थे, उनकी बनाई हुई पूरी तथा रोटी में भेद बताना साधारण मनुष्य के लिये एक कठिन समस्या थी, और भी कई तरह की मिठाइयाँ इत्यादि वह बड़ी ही उत्तम बनाती थीं। पिताजी को माता-पिता में अपार भक्ति थी। यद्यपि आप—

"जलं मावय पुत्रेति पितुराज्ञा विधेद्रुतम्;
वाराणसी हिमद्रावी त्यपरीक्ष्य न मन्यते।"

के अनुसार इनके सभी सिद्धांतों का (जो कि ठीक नहीं थे) अंध-भक्त के सदृश अनुसरण नहीं करते थे, तो भी आप उनको पूज्य-दृष्टि से तथा भक्ति से देखते थे। आपने दरिद्र-अवस्था में भी, तथा अपने सिद्धांत के विरुद्ध भी, नाम-मात्र को ही पिता-माता की श्राद्ध-क्रिया इत्यादि कर ही दी। आपकी मातृ-भक्ति इसी से प्रकट होती है कि आप अपनी माता की अभिलाषा पूर्ण करने के अभिप्राय से उन्हें काशी लाए, जब कि वह मृत्यु-शय्या पर अशक्त पड़ी थीं।

म० म०, साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्मा एम्० ए०

सन् १८८२ में, केवल छः वर्ष की अल्प अवस्था ही में, आपके पिताजी ने आपकी पढ़ाई अपनी ही देख-रेख में शुरू की। तब से १८८६ तक आप पिताजी से ही पढ़ते रहे। आपको पिताजी ने केवल ४ सर्ग रघुवंश तथा लघु कौमुदी पढ़ाई। उसके उपरांत आप आरा-ज़िले के प्रसिद्ध पं० रामदवर ओझा (जो छपरे ही में रहते थे) के यहाँ पढ़ने को भेजे गए। ओझाजी के यहाँ पढ़ने के समय आपको अपने घर से क़रीब चार मील रोज़ शाम को जाना पड़ता था। जितने विद्यार्थी

स्व० पं० रामावतार शर्मा व उनके पुत्र

अंबिकाप्रसाद उपाध्यायजी की कनिष्ठा कन्या श्रीमती श्यामादेवी से हुआ, पर आप अत्यंत कठिन रोग से ग्रस्त थीं, अतएव एक वर्ष के बाद ही स्वर्गारोही हुईं। इनकी ज़िंदगी ही में, उसी वर्ष, आपकी तीसरी शादी छपरा-ज़िला-निवासी पं० महावीरप्रसाद उपाध्याय की लड़की श्रीमती रत्नावती देवी से हुआ। इस वक़्त तीनो पत्नियाँ जीवित थीं। इसके बाद दूसरी पत्नी एक वर्ष के बाद मरी तथा आपकी पहली पत्नी उसके ११ वर्ष उपरांत तथा, आपकी तीसरी पत्नी अभी जीवित ही हैं। १९०१ में एम्० ए० पास करने के उपरांत आपको सेंट्रल हिंदू-कॉलेज में १००) मासिक वेतन पर अध्यापक का काम मिला। इसके बाद क्रमशः वेतन बढ़ते-बढ़ते अंत को १०००) तक हुआ था। इसके बाद आप १९०६ में, पटना कॉलेज में, प्रधान अध्यापक हुए। यहाँ आप मृत्यु-काल तक रहे। सन् १९०६-७ में आप कोई नौकरी नहीं करते थे। ऑफ़िसर लोगों के कुछ बखेड़ा उठाने पर शांति-प्रिय पंडितजी घर चले गए। उस वक़्त दो-तीन नौकरियाँ ख़ाली थीं। पिताजी से कई प्रिंसिपलों ने दरख़्वास्त देने को कहा। पर पिताजी ने एक भी जगह दरख़्वास्त नहीं दी। आपने सब छोड़-छाड़कर घर पर ही रहना ठीक समझा। आपने अपने पिता की जगह पर कथा बाँचना शुरू कर दिया। आपका कहना था कि कथा बाँचने में ज़्यादा फ़ायदा था, बनिस्बत नौकरी करने के। परंतु एक वर्ष के बाद पटने की गवर्नमेंट को इन्हें विवश होकर बुलाना पड़ा; क्योंकि उसने विहार, यू० पी० आदि सभी जगह ऐसे व्यक्ति की खोज की, जो साहित्याचार्य तथा फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट एम्० ए० हो, पर बिहार में क्या, समूचे भारत में, आप ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने ये दोनो उपाधियाँ धारण की थीं। इससे आप ही यहाँ नियुक्त हुए। आपने कभी शायद ही कॉलेज से पूरे एक मास की छुट्टी ली हो। आप रात को चार डिगरी ज्वर रहते हुए भी, सवेरे कॉलेज जाते थे। आप सरकारी काम को अपनी जान से भी बढ़कर समझते थे। बीच में क़रीब १९१९ से २२ तक आप काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में प्राच्य-विद्या-विभाग कॉलेज के प्रिंसिपल भी रह चुके थे। इधर १९२७ से आपको पटना-कॉलेज ने सुपीरियर सर्विस का भी पद दिया था; पर शोक कि आप इस पद पर बहुत ही अल्प काल तक रहे। आप पहले-पहल प्रयाग विश्वविद्यालय के परीक्षक हुए। तबसे आज तक बहुतेरी युनिवर्सिटियों के परीक्षक होते रहे। समस्त भारत में शायद ही कोई विश्वविद्यालय हो, जिसके आप परीक्षक न रहे हों। पहले, जब कि आपने अपने बृहत् कोष की रचना प्रारंभ नहीं की थी, आप अनेकों परीक्षाओं के परीक्षक होते थे। पर जबसे आपने इस बृहत् तथा कठोरतम कार्य का भार लिया, तबसे समयाभाव के कारण संस्कृत-विभाग में एम्० ए० के ही परीक्षक होते थे। केवल अपने कॉलेज में बी० ए० (आनर्स) के परीक्षक बनते थे, और परीक्षाओं के परीक्षक बनने का आग्रह किए जाने पर भी समयाभाव के कारण असमर्थ थे। आप कई बार कलकत्ता-युनिवर्सिटी में पी-एच्० डी०-परीक्षा के परीक्षक हुए थे।

आप अपने विद्या-व्यसनी छात्रों पर बहुत ही प्रेम रखते थे। अपने छात्रों को कॉलेज के सिवा घर पर

भी खाते थे; पर आजकल उन्होंने मिठाई खाना एक-दम छोड़ दिया था। इसका कारण घी, चीनी तथा आटे की अशुद्धता थी। काशी की मिठाई आप बहुत पसंद करते थे। पर इधर वहाँ भी वही हालत थी। आप तो घर में भी बाज़ार का ख़रीदा घी नहीं खाते थे। अपने घर ही में भैंस का दूध लेते तथा उसी से घी बनवाते थे। इसमें दुगना ख़र्च पड़ता था। १) रुपए के दूध में शायद हीचार आने का घी निकलता था। एक दूसरे व्यय का व्यसन भी आप में था। वह था मकान बनवाना। अपने शरीर को विद्याध्ययन में लगाना तथा रुपए को मकान में लगाना, दो ही काम वह जानते थे, और किसी भी तरह का आपका ख़र्च नहीं था। आपने इस व्यसन में अपनी कमाई का तीन हिस्सा व्यय किया है। १९०९ से लेकर १९२१ तक आप छपरे में मकान बनवाते रहे। महीने में जो रुपए बचे, उसी में लगाते रहे। यहाँ तक कि आपने वहाँ क़रीब चालीस हज़ार रुपया लागत का मकान बनवा डाला, सो भी गँवई-गाँव में, जहाँ उसका दस रुपए किराया आना कठिन है। ख़ैर, वह उनके परिवार के रहने के लिये काफ़ी है। उसके बाद क़रीब सन् १९२५ तक आप पटने में किराए के मकान में रहा करते थे। अब उनको किराए में व्यय करना बहुत खटका। आपको यहाँ पर मकान बनवाने की सूझी। आपने यहाँ पर तीन जगहें ख़रीद डालीं। उनमें आपको स्थानीय एग्ज़ीबिशन रोड की ज़मीन ही अधिक पसंद आई, शेष दो को आपने बेच दिया। अब आपने उसी जगह सर्वप्रथम लकड़ी का मकान बनवाया, और उसी में सपरिवार रहना शुरू किया। क्रमशः मकान बनवाना भी शुरू कर दिया। आप ठेके पर मकान बनवाना नहीं पसंद करते थे। इससे ख़ुद अपने मज़दूरों को रखकर आप ही इंजीनियर का काम करते थे। आपके मकान बनवाने का ढंग देखकर बड़े-बड़े इंजीनियर दंग रह जाते। आपकी शुरू की हुई चीज़ बनकर किस रूप में परिणत होगी, यह उस राज को भी नहीं विदित रहता था, जिसे बनाना होता था। सिर्फ़ वह कहते और वह बनाता जाता। आपने इस ज़मीन में तीन कोठियों की नींव दी, जिसमें एक तो पूर्ण बन चुकी है; दूसरी, जिसे आपने सरस्वती की मूर्ति स्थापित करने तथा पुस्तकालय बनाने के अभिप्राय से बनवाया था, वह भी तैयार है। पर तीसरी, जिसे आपने उसी की बग़ल में सरस्वती-सेवाश्रम बनाना चाहा था, नहीं बन सकी। अब कोई ऐसा समर्थ नहीं, जो उसे इनके आदर्श का बनावे, और बनावे कैसे? किसी को अगर उसका प्लैन मालूम हो, तब तो। आपने अपनी सारी ज़िंदगी की कमाई मकान बनवाने में लगाई, यह जो सुनेगा, वह कल्पना करेगा कि वह मकान अवश्य ही दर्शनीय होगा। परंतु बात इसके प्रतिकूल है। आप ऊपरी तड़क-भड़क को नहीं पसंद करते थे। आप जड़ को ख़ूब पक्का बनाना चाहते थे। इसकी परवा नहीं कि वह सुंदर है या नहीं। इस कारण आपने ज़ितनी दीवारें बनवाई हैं, ख़ूब मज़बूत, तथा जोड़ाई लोहे की छड़ देकर सीमेंट से करवाते थे। आप इतने पर भी संतुष्ट नहीं थे। कहा करते थे, मेरे पास रुपए कहाँ, जो मैं ख़ूब मज़बूत मकान बनवाऊँ। यह तो मेरे आदर्श का शतांश भी नहीं है।

इस समय आपके परिवार में आपकी एक पत्नी, सात पुत्रियाँ, तीन पुत्र, दो जामाता, एक लड़की का पुत्र तथा तीन लड़कियों की लड़कियाँ हैं। आपकी ज्येष्ठ पत्नी से एक पुत्री हुई, जिसके एक पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। आपकी दूसरी पत्नी तो विवाह के १ वर्ष के अंदर ही स्वर्गवास कर गई। तीसरी पत्नी श्रीमती रत्नावतीदेवी जीवित हैं। आपके ४ लड़के और ६ लड़कियाँ हुई। आपका द्वितीय पुत्र सन् १९२७ में स्वर्गवासी हुआ। उसकी मृत्यु का असह्य दुःख पिताजी सह नहीं सके। आपके हृदय में इस शोक ने ऐसा घर किया कि आप उसके मरणोपरांत से लेकर अपनी मृत्यु तक कभी नहीं हँसे। उसी समय से आपने अपने स्वास्थ्य की फ़िक्र छोड़ दी। प्रायः कहा करते थे कि एक बच्चा हमारा चला गया, अब जो जीते हैं, उन्हीं के सामने मैं मर जाऊँ, तो अच्छा हो। आप उसे बहुत ही प्यार करते थे। वह बड़ा ही तेज़ लड़का था। उसकी उम्र मृत्यु के समय केवल चार वर्ष की थी, तब भी उसकी बुद्धि ऐसी तीव्र थी कि अँगरेज़ी के सभी अक्षरों को बहुत आसानी से पिताजी से पूछकर उसने 'स्टेट्समैन' पत्र द्वारा पहचान

श्रीमती रत्नावती देवी
(स्वर्गीय पं० रामावतार शर्मा की धर्मपत्नी)

मृत्यु से बहुत खेद हुआ है। पिताजी की शेष पाँचों पुत्रियाँ कुमारी हैं। पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र १३ वर्ष का, दूसरा पुत्र ४ वर्ष का तथा सबसे छोटा पुत्र आप की मृत्यु के समय केवल ६ महीने का था। आपके बड़े पुत्र का नाम श्रीनलिनविलोचन, दूसरे का श्रीविजयसुंदर तथा सबसे छोटे का श्रीपन्ना है। आपने अपने स्वर्गवासी पुत्र का नाम श्रीश्यामसुकुल रक्खा था।

आप अपने पुत्र-पुत्रियों को ख़ुद ही पढ़ाया करते थे। आप स्कूल में पढ़ाना उचित नहीं समझते थे। पर इधर कार्य की अधिकता से छोटी-छोटी लड़कियों को स्कूल में भेजा करते थे। लड़कियों को पुरुष-टीचरों से पढ़ाना आपके सिद्धांत के विरुद्ध था। आप अपना उदाहरण देकर यह कहते थे कि पढ़ना सिर्फ़ अपनी मिहनत से प्राप्त होता है, उसमें टीचर की ज़रूरत नहीं। आपकी बड़ी लड़की ने, जो आई० ए० और मध्यमा में पढ़ रही है, कभी किसी टीचर से नहीं पढ़ा। आपको पिताजी ही ने ख़ुद पढ़ाया है। अब यह प्राइवेट ही परीक्षाएँ देती हैं, और देंगी। आपके और और छोटे भाई-बहन अभी मैट्रिक के नीचे ही अध्ययन कर रहे हैं।

पिताजी के तीन और भाई हैं। उनमें बड़े का नाम पं० श्रीकांत शर्मा है। आप गया के ज़िला-स्कूल में हेड पंडित हैं। आपके दो लड़के तथा एक लड़की है। आपके बड़े लड़के ने इसी साल मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास किया है। इसका नाम श्रीरमाकांत है। यह लड़का बहुत ही तेज़ है। हम लोग आशा करते हैं कि यह जिस विषय में जायगा, उसमें पूरी उन्नति करेगा। यह बड़ा ही सादा-सीधा, आडंबर-रहित है। सारांश यह कि इसमें पिताजी के अनेक गुण दिखाई पड़ते हैं। इसके छोटे भाई का नाम श्रीइंदिराकांत है। पिताजी के द्वितीय भ्राता का नाम पं० श्रीबलदेव शर्मा है। आप पटने में रिसर्च-सोसाइटी में काम करते हैं। आपके चार पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। सबसे बड़े लड़के का नाम श्रीरामेंद्र शर्मा है। इसकी उम्र इस समय १७ वर्ष की है। इसने इसी वर्ष आई० एस्-सी० पास किया है तथा मेडिकल में जाने का विचार है। पिताजी की मृत्यु के समय यही सबसे बड़ा लड़का घर में था। इसको पिताजी बहुत ही प्यार करते थे तथा अपने पुत्र-पुत्रियों को बराबर इसकी भक्ति करने का ही उपदेश करते थे। आप इससे बड़ी-बड़ी आशाएँ करते थे। सबसे छोटे भ्राता का नाम लक्ष्मीनारायण है। आप गया ही में स्कूल के टीचर हैं। आपके दो लड़कियाँ तथा एक पुत्र है। पुत्र अभी केवल पाँच वर्ष का है। आपकी सबसे बड़ी लड़की की शादी हो गई है। आपके जामाता इंजीनियरिंग में पढ़ रहे हैं।

प्रायः दिसंबर के शुरू में पिताजी को शूल हुआ। पहले आपने अपने अभ्यासानुसार चार रोज़ तक उपवास किया, तथा अपना रोग किसी से नहीं कहा। पर जब पीड़ा असह्य हो गई, तब आप बहुत ही व्याकुल रहने लगे। सैकड़ों दस्त होने शुरू हुए, और आप दिन-दिन अशक्त होने लगे। घर में सभी लोग बहुत घबराते थे। कारण, आपको ज़िंदगी में कभी पेट-ख़राब होने की बीमारी नहीं हुई थी। फिर आपको भी अपने कष्टों से जीवन की आशा नहीं रही। आपने कहा, मैं बचूँगा नहीं; क्योंकि जो बीमारी ज़िंदगी में कभी

भारतीय सभ्यता में 'जीवन' का स्थान

[पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०]

असार संसार', 'नश्वर शरीर', 'स्वप्नवत् जगत्' अथवा 'क्षणिक जीवन' ऐसे पद हैं, जिनसे प्राच्य लोगों की मानसिक वृत्ति का पता लग सकता है। इन पदों का प्रचार बड़े-बड़े दार्शनिकों से लेकर ग्रामीण पुरुषों तक में पाया जाता है। यह प्रतीत होता है कि जीवन की समस्त जटिल समस्याओं का सार निकालकर इन छोटे-छोटे सूत्रों में समाविष्ट कर दिया गया है। पूर्वी देशों की बड़ी-से-बड़ी संस्थाएँ, उनके धार्मिक सिद्धांत, उनकी नित्य की दिन-चर्या, उनकी सामाजिक प्रथाएँ, उनके नैमित्तिक उत्सव, उनकी भाषा की कहावतें, उनके आचार्यों के उपदेश, उनके जपने के मंत्र, सभी इन सूत्रों के व्याख्यान-रूप हैं। हमारे कानों में नित्य-प्रति यही ठूँसा जाता है कि संसार मिथ्या है। इस जीवन का क्या ठिकाना? सभी को एक-न-एक दिन यहाँ से जाना है, अतः संसार से प्रेम करना नहीं चाहिए। यदि हम खाना खाते हैं, तो इसलिये नहीं कि अपने जीवन के मूल्य को समझते हैं, किंतु इसलिये कि हमको भूख सताती है, और उस समय हम 'जीवन की क्षणिकता' के उपदेश को भूल जाते हैं। इसी प्रकार मकान बनाना, शादी-ब्याह करना, व्यवसाय से धनोपार्जन करना तथा सैकड़ों अन्य काम, जो पूर्व देशों था नगरों में होते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिये हो रहे हैं कि प्राकृतिक नियम हमको वैसा करने के लिये बाधित करते हैं, और हम वैसा करने में, अपने मनः-सम्मानित सिद्धांतों को भूल जाते हैं। यदि प्रत्येक के वश में होता, तो वह उपदेश तो यही देता कि सब लोग संसार को त्याग कर संन्यासी बन जायँ।

शरीर नश्वर अवश्य है, परंतु इतना नश्वर नहीं कि उसको ठीक रखने के लिये यत्न न किया जाय! जीवन के अस्थायी होने में संदेह नहीं। परंतु क्या अस्थायी वस्तुओं का कोई मूल्य नहीं होता? हम बाज़ार में दो घंटे के लिये जाते हैं; परंतु क्या केवल इसलिये कि दो ही घंटे रहना है, हम उन दो घंटों के मूल्य को त्याग दें? रेल-गाड़ी से थोड़ी देर में अवश्य उतरना पड़ेगा, इसलिये क्या जितनी देर रेल में रहें, सुबीते से न बैठें? यदि गाड़ी में बैठते समय ही उतरने को सोचने लग जायँगे, तो शायद यात्रा करना भी कठिन हो जायगा। इसी प्रकार यदि एक बच्चे को यही सिखाया जायगा कि तुझे मरना है, तो वह मौत के डर से इतना भयभीत हो जायगा कि अपना अभ्युदय न कर सकेगा। पूर्वी जातियाँ वस्तुतः इसी मनोवृत्ति का शिकार हो रही हैं। इसीलिये इनके अभ्युदय की उन्नति नहीं होती। प्रत्येक विचारशील पुरुष अपनी दृष्टि मोक्ष-पद पर ही लगाए हुए हैं। उसे मोक्ष से इस ओर की चीज़ दिखाई ही नहीं पड़ती। साधारण जनता भी, यद्यपि उसे "मोक्ष क्या वस्तु है?" इसका ज्ञान नहीं, अपने आदर्श पुरुषों की लकीर की फ़क़ीर बनी हुई है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'मीर' का यह कथन उन पर ठीक लागू होता है—

> अंजुम-शनाश को भी खलल है दमाग़ का;
> पूछो अगर ज़मीं की, कहे आसमाँ की बात।

क्या पूर्व की मनोवृत्ति सदा ऐसी ही रही है? मुझे इसमें पूर्ण संदेह है। यदि सदा से ऐसी मनोवृत्ति होती, तो पूर्व के लोग प्राचीन काल में इतना वैभव कभी न प्राप्त कर सकते, जितना पुरातत्त्व-वेत्ताओं की खोजों से ज्ञात होता है। इनके विस्तृत साम्राज्य, इनके प्रसिद्ध नगर, इनके विशाल भवन, इनका उच्च कोटि का सामाजिक जीवन, इनके अर्थ-संचय-संबंधी अपूर्व सिद्धांत, प्रकट करते हैं कि इन्होंने किसी समय जीवन के यथार्थ मूल्य को समझा था, और ये अपने जीवन को दीर्घ, सुखमय तथा उपयुक्त बनाने के लिये घोर प्रयत्न करते थे।

भारतवर्ष का प्राचीनतम ग्रंथ वेद है। देखें, इसमें क्या उपदेश है? यजुर्वेद का एक प्रसिद्ध मंत्र है—

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।"

(यजुर्वेद अ० ३६ मंत्र २४)

अर्थात् सब देखनेवाले, अर्थात् ईश्वर, ने पहले से ही मनुष्य के हित के लिये बीज-रूपी शक्ति दी है। हम सौ वर्ष तक ज्ञान प्राप्त करें, सौ वर्ष तक जिएँ, सौ वर्ष तक उपदेश सुनें, सौ वर्ष तक दूसरों को उपदेश दें, सौ वर्ष तक स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करें, और सौ वर्ष से अधिक भी।

यहाँ जीवन को नश्वर, क्षणिक, धोखा, छल या स्वप्न नहीं बतलाया। यहाँ स्पष्ट उपदेश है कि मनुष्य में, अव्यक्त रूप से, जो शक्ति उपस्थित है, उसका विकास किया जाय। अव्यक्त अपूर्ण तथा बीज-रूपी शक्ति को विकसित, व्यक्त, पूर्ण तथा वृक्ष-रूप करना ही जीवन का उद्देश्य है। यहाँ संसार को असार कहकर उससे घृणा नहीं दिखाई गई। "स्त्री द्वार तक और मित्र श्मशान तक साथ जाते हैं", ऐसा कहकर विरक्त होने का उपदेश नहीं है।

अथर्ववेद के १९वें कांड के ६७वें सूक्त में इसी प्रकार का उपदेश है—

"पश्येम शरदः शतम् ।" हम सौ वर्ष तक बुद्धि-
[illegible]

इन चार पदार्थों में सभी संसार-संबंधी पदार्थों का समावेश हो जाता है। अभ्युदय के लिये इनसे अधिक की आवश्यकता नहीं। एक सांसारिक संतुष्टि पानेवाला मनुष्य इससे अधिक की कामना नहीं कर सकता।

ऋग्वेद का एक मंत्र है—

"तत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।"

(ऋग्वेद १० । १२१ । १०)

"जिन कामनाओं की हम आपसे प्रार्थना करें, वे हमारी हों। हम धनों के पति हों।"

इस वेद-मंत्र में धनवान् तथा श्रीमान् होने की प्रार्थना की गई है—अर्थात् हे ईश्वर, हमको किसी बात की कमी न रहे।

आँखों की वृद्धि के लिये प्रार्थना—

"चक्षुर्धाता दधातु नः ।" (ऋग्वेद १० । १५८ । ३)

ईश्वर हमको आँख दे।

"चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । [illegible] पश्येम ।" (ऋ० १० । १५८ । ४)

अर्थात् हमारी आँखों में देखने की शक्ति दीजिए। हमारे शरीर में देखने की शक्ति दीजिए, जिससे हम इस संसार का निरीक्षण कर सकें।

स्वस्थ जीवन की आर्य लोग कितना प्रिय समझते थे, इसको स्वच्छ नीचे के मंत्र में लिखते हैं—

[illegible]

सकें, जब हमारे पुत्र पिता हो जाते हैं, अर्थात् हमको पुत्रों, पौत्रों, प्रपौत्रों से संपन्न कीजिए।

ऐसी प्रार्थना करनेवालों की मनोवृत्ति कभी इस प्रकार की नहीं हो सकती कि इस संसार से हमको क्या लेना है। इसमें तो दुःख-ही-दुःख है। जितना शीघ्र इससे छुटकारा मिले, उतना ही अच्छा।

आजकल मौत की सबसे बड़ी इच्छा हिंदुस्थान की स्त्रियों को होती है। प्रत्येक स्त्री यही मनाया करती है कि जितना शीघ्र मैं मर जाऊँ, उतना ही अच्छा, जिससे कहीं ऐसा न हो कि पति की मृत्यु तथा वैधव्य का दुःख सहना पड़े। मानो ईश्वर ने स्त्रियों को मरने के लिये ही बनाया है। ऋग्वेद में इससे सर्वथा विपरीत प्रार्थना है। देखिए, १०वें मंडल का १५६वाँ सूक्त। स्त्री कहती है—

"उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ;
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥ १ ॥

अर्थात् यह देखो सूर्य आकाश में चढ़ गया। ऐसा ही मेरा भाग्य भी चमका! बलवाली मैंने यह जानकर अपने पति को जीत लिया है।

यहाँ स्त्री को अबला नहीं कहा। स्त्री समझती है कि मैं अबला नहीं हूँ। इसीलिये "बला" अर्थात् "बलयुक्ता" शब्द अपने लिये प्रयुक्त करती है। जिस समय की शिक्षा ऐसी थी कि स्त्रियाँ अपने को बलवती समझती थीं, उस समय ही सांसारिक वैभव की प्राप्ति हो सकती थी।

"अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥ २ ॥"

स्त्री कहती है कि मैं ध्वजा हूँ। मैं सिर हूँ (पैर की जूती नहीं, जैसा कि आजकल भारतीय स्त्रियाँ समझी जाती हैं)। मैं तीव्र फ़ैसला करनेवाली हूँ। मैं विजय पानेवाली हूँ। मेरा पति मेरे अनुकूल चलेगा।

इससे अगला मंत्र कितना ज़ोरदार और उत्साह-वर्द्धक है—

"मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ;
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥ ३ ॥"

मेरे पुत्र दुश्मन को नाश करनेवाले हों। मेरी लड़की रानी हो। मैं विजय प्राप्त करनेवाली हूँ। मेरी उत्तम वाणी मेरे पति को वश में करनेवाली है।

जब भारतीय स्त्रियों के मन में ऐसी शुभ कामनाएँ उठती थीं, उसी समय वे ऐसी संतान उत्पन्न कर सकती थीं, जो स्वयं स्वतंत्र होकर संसार को स्वतंत्र कर सके।

वेदों में शिक्षा है कि जीवन के किसी विभाग की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सबसे पहला जीविका का प्रश्न है। उसके लिये प्रार्थना देखिए—

"इन्द्रमृकमह्यं जीवातुमिच्छ चोदाय धियम अय धाराम्। यत् कञ्चि अहं त्वायुरिदं वदामि तज् कृधि मा देववन्तम्।" (ऋग्वेद ६। ४७।

हे ईश्वर, कृपा कर। मुझे जीविका दे। मेरी बु[द्धि] लोहे की धार के समान तेज़ कर। जो कुछ मैं, प्रेम करता हुआ, प्रार्थना करूँ, उसे स्वीकार मुझको दिव्य गुणों से संपन्न कर।

यहाँ धन को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा की गई, किंतु धन को सफल जीवन का साधन [समझ] कर उसके उपार्जन की इच्छा की गई है। भारत [आज]कल रोटी की उपेक्षा करता है। इसीलिये रोटी [रोटी] चिल्लाता है। इसने उपेक्षा करके रोटी को फेंक [दिया] आज रोटी भारत से रूठी हुई है। वैदिक क[ाल के] आर्यों ने रोटी के मूल्य को समझा था, अतः वे [उस]के लिये प्रयत्न करते थे—

"स नः स्तवानः आभर गायत्रेण नवीयसा रयिं वीरवतीमिषम्।" (ऋग्वेद १। १२।

हे ईश्वर, हम तेरी स्तुति करते हैं। तू हमारे [लिये] नए विचार और नई उमंगें उत्पन्न कर, जिससे धन, भोजन और संतान की प्राप्ति हो।

जब तक मनुष्य नए-नए विचारों को सोच[ता नहीं,] तब तक वह अभ्युदय के योग्य नहीं हो सकता।

जब मैं वेदों की प्रार्थनाएँ पढ़ता हूँ, तो ह[दय में] स्फूर्ति आ जाती है, उत्साह बढ़ जाता है, और [आश्चर्य] होता है कि जिस भारत-भूमि में इस प्रकार की [उत्साह-] वर्द्धक प्रार्थनाएँ की जाती थीं, वहाँ के लोग संसार को स्वप्नवत् असार समझकर सुषुप्त-अवस्था कैसे प्राप्त हो गए?

यह राष्ट्र का युद्ध है

[पं० संतराम बी० ए०]

वर्तमान युग अतीत युगों से अनेक बातों में भिन्न है। पिछले युगों में सारी शक्ति प्रायः एक ही व्यक्ति के हाथ में हुआ करती थी। वह जैसे चाहता था, जनता को चलाता था। एक ऋषि के सामने हज़ारों-लाखों नर-नारियों का कुछ भी मूल्य नहीं था। पोप की धर्म-व्यवस्था के सामने सारा ईसाई-जगत् नत-मस्तक हो जाता था। टर्की का ख़लीफ़ा सारे इसलामी जगत् पर शासन करता था। लोग भेड़-बकरियों की तरह उसके इशारे पर चलते थे। पर आज वह अवस्था नहीं है। आज की जनता अपनी बुद्धि से काम लेना चाहती है। जो बात धार्मिक जगत् की है, वही राजनीतिक संसार की भी। प्राचीन इतिहासों को देखने से जान पड़ता है कि उन युगों में राष्ट्रीय भावना का अस्तित्व ही न था। सारी शक्ति एक व्यक्ति—राजा—में ही केंद्रीभूत रहती थी। वह जो चाहता था, करता था। उसकी आज्ञा को टालने का साहस किसी को न होता था। एक व्यक्ति—राजा—की जीत और हार लाखों-करोड़ों नर-नारियों की जीत और हार समझी जाती थी। कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि दो देशों के राजा अपनी सेनाओं को लड़ाने के स्थान में आप ही एक दूसरे से मल्ल-युद्ध या गदा युद्ध करते थे। उनमें से जो जीत जाता था, पराजित की सारी प्रजा भेड़-बकरियों के सदृश उसके अधीन हो जाती थी। रामचंद्र ने रावण को हरा दिया। बस, लंका उनके अधीन हो गई! पृथ्वीराज मुहम्मद ग़ोरी से हार गया, सारा भारत मुसलमानों के अधीन हो गया। राजपूतों का सेनापति मारा गया, सारी सेना भाग गई, बच्चा-सक़ा ने अमानुल्ला को भगा दिया, सारा अफ़ग़ानिस्तान उसके अधीन हो गया। पर पाश्चात्य-जगत् में आज वह बात नहीं है। वहाँ आज एक राजा से दूसरे राजा की लड़ाई नहीं होती, वहाँ एक जरनैल के मर जाने से उसकी सारी सेना शत्रु के सामने हथियार नहीं डाल देती। वहाँ आज एक राष्ट्र का युद्ध दूसरे राष्ट्र से होता है। फ्रांस के राष्ट्रपति को मारने या अँगरेज़ी सेनापति को क़ैद कर लेने से ही कोई व्यक्ति फ्रांस या इँगलैंड पर शासन नहीं कर सकता। एक राष्ट्रपति (President) के मरते ही झट दूसरा मनुष्य राष्ट्रपति बना दिया जाता है। एक जरनैल के गिरते ही झट दूसरा सिपाही उसका स्थान लेने को जा खड़ा होता है। जो राज-सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में होती थी, वह आज राष्ट्र के करोड़ों नर-नारियों में से प्रत्येक के हाथ में है। आज भारत में केवल सम्राट् जार्ज पंचम या मिस्टर रैमज़े मेकडोनल्ड का राज्य नहीं है। प्रत्येक हैरी, टॉम और जैक उस राज-सत्ता को धारण किए हुए है, और ब्रिटिश-साम्राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर समझता है। आज महात्मा गांधी और मिस्टर मेकडोनल्ड का युद्ध नहीं। आज पंडित मोतीलाल नेहरू अँगरेज़ प्रधान-मंत्री को हराकर भारत का अँगरेज़ों के पंजों से उद्धार नहीं कर सकते। आज भारत की स्वतंत्रता के लिये, प्रत्येक भारतीय को, प्रत्येक अँगरेज़ को पराजित करने की आवश्यकता है। यह एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से युद्ध है। दो-एक भारतीय नेताओं के राजनीतिक विचारों में बहुत ऊँचा हो जाने से या दस-पाँच भारतीय युवकों के रिवाल्वर या बम से दो-चार अँगरेज़-अफ़सरों को मार डालने से स्वराज्य की प्राप्ति असंभव है। सारांश यह कि अँगरेज़ों से भारत का उद्धार कराने से पहले समस्त भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना का जाग्रत् होना परमावश्यक है।

अब देखना यह है कि क्या भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हो चुकी है, या कम-से-कम क्या वे अवस्थाएँ पैदा हो चुकी हैं, जिनका राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति से पहले होना आवश्यक है। इस समय स्वराज्य-प्राप्ति के लिये सबसे अधिक चेष्टा

हिंदुओं की ओर से ही देख पड़ती है। कांग्रेस में १०० में ९५ हिंदू हैं। लाहौर, मेरठ और देहली के षड्-यंत्रों में पकड़े जानेवाले अभियुक्त प्रायः सब-के-सब हिंदू हैं। राष्ट्रीय भावों और देश-भक्ति के प्रचार का ठेका भी प्रायः हिंदू-समाचार-पत्रों ने ही ले रक्खा है। साइमन कमीशन के बहिष्कार (boycott) में भी हिंदू ही अग्रसर थे। पर क्या हिंदू-समाज में भी वे अवस्थाएँ उपस्थित हैं, जिनके भरोसे स्वतंत्रता के युद्ध की घोषणा की जा सकती है? बाईस करोड़ हिंदुओं में से ७ करोड़ अछूत स्वराज्य की अपेक्षा ब्रिटिश-राज्य को कई गुना अच्छा समझते हैं। उनके विचार में स्वराज्य का अर्थ ब्राह्मण-राज्य है। इसका नमूना वे ट्रावनकोर और नेपाल के हिंदू-राज्यों में देख रहे हैं, जहाँ इन ग़रीबों को मंदिर में प्रवेश करने, सार्वजनिक सड़कों पर चलने और सरकारी नौकरियाँ पाने का अधिकार नहीं; जहाँ वे, मनुस्मृति में निषेध होने के कारण, दूध पीने पर दंडित किए जाते हैं। दक्षिण में केवल दो जातियाँ हैं—एक ब्राह्मण और दूसरी शूद्र। शूद्रों की संख्या १०० में ९७ है। इन ब्राह्मणेतर लोगों ने परमेश्वर के मुख से उत्पन्न हुए जन्माभिमानी लोगों के अत्याचारों से बचने के लिये आत्म-सम्मान के नाम से एक आंदोलन जारी कर रक्खा है। इनके कई पत्र भी निकलते हैं। हाल में उनके रीवोल्ट-नामक पत्र ने लिखा था कि "जब तक जात-पाँति है और ब्राह्मण लोग अपनी जन्म की उच्चता को बनाए रखने पर आग्रह कर रहे हैं, तब तक हम स्वराज्य की कामना नहीं कर सकते! इन सनातनियों की सरकार से तो हमें, जिसे स्वराजी लोग शैतानी सरकार कहते हैं, वह अँगरेज़ी-सरकार भी कहीं अच्छी है, जिसके राज्य में हमें लिखने-पढ़ने, धन कमाने और अच्छा खाने-पहनने की स्वतंत्रता है!" जिस प्रकार [illegible] में हिंदू-मुसलिम वैमनस्य बढ़ रहा है, [illegible] दक्षिण में ब्राह्मण और अब्राह्मण का [illegible] [illegible] सिद्ध हो रहा है। [illegible] देश के [illegible] [illegible] [illegible] की अपेक्षा [illegible] लिये [illegible] [illegible] समझते हैं, और [illegible] ही देश [illegible]

सामाजिक अत्याचारों से पशुओं से भी बदतर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वहाँ अँगरेज़ों के अत्याचारों से देश को छुड़ाने की दुहाई देना क्या अर्थ रख सकता है?

अछूतों को जाने दीजिए। स्वर्ण हिंदुओं को ही लीजिए। इनमें असंख्य छोटी-छोटी जातियाँ हैं, जिनका आपस में रोटी-बेटी का कुछ भी संबंध नहीं। ब्राह्मण के लिये क्षत्रिय और क्षत्रिय के लिये वैश्य वास्तविक रूप में हिंदू ही नहीं। हाल में, लाहौर के जाति-पाँति-तोड़क मंडल के सदस्य डॉक्टर कृष्णगोपाल ने अपनी बहन का विवाह जाति-पाँति तोड़कर [illegible]दास टेलर-मास्टर के साथ किया है। लड़की की जाति कपूर खत्री और वर की अरोड़ा थी। खत्रियों ने डॉक्टर कृष्णगोपाल का घोर विरोध करते हुए कहा कि तुम अपनी बहन का विवाह हिंदुओं में चाहे कहीं कर दो, मगर अरोड़ों में मत करो। मानो खत्रियों की दृष्टि में केवल खत्री और उनकी उपजातियाँ ही हिंदू हैं। शेष अरोड़ा आदि सब लोग हिंदू नहीं। हिंदुओं के सबसे बड़े नेता पंडित मालवीयजी की दृष्टि में कदाचित् मालवीय ब्राह्मणों के अतिरिक्त शेष सभी लोग अहिंदू हैं। एक [illegible] ने एक बार कहा था कि [illegible] हुआ, [illegible] हाईकोर्ट के [illegible] पतित हो। हिंदुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के सिवा और कोई भी मनुष्य [illegible] जीवन नहीं व्यतीत कर सकता। [illegible] [illegible]

नहीं, जब वे एक दूसरे के साथ खान-पान और ब्याह-शादी नहीं कर सकते, जब वे एक दूसरे के दुःख-सुख में धर्म का बहाना करके सम्मिलित होने को तैयार नहीं, तो उनमें राष्ट्रीय भावना की जागृति कैसे हो सकती है? जन्माभिमानी हिंदू, रक्त की पवित्रता का बहाना करके, जाति-पाँति तोड़कर विवाह करने का विरोध करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि जब तक जन्म-मूलक जाति-पाँति है, तब तक उनमें समता और भ्रातृ-भाव उत्पन्न होना कदापि संभव नहीं, और इन दो दिव्य गुणों के अभाव में राष्ट्र का निर्माण कभी नहीं हो सकता। चूना, पानी, रेत, बजरी, सीमेंट और लोहा इन सबको मिलाने से ही विशाल और दृढ़ भवन बनाया जाता है। जो मनुष्य मूर्खता से इनको मिलाने का इसलिये विरोध करता है कि इनके मिलने से इनकी शुद्धता नष्ट हो जायगी, वह कभी सुंदर अट्टालिका खड़ी नहीं कर सकता। परंतु पंडित मालवीयजी-जैसे हिंदू-नेता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अंतरजातीय विवाह का घोर विरोध करते हुए भी हिंदू-संगठन और हिंदू-राष्ट्र के सुख-स्वप्न देखते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि जाति-पाँति और छूत-छात आदि छोटी-छोटी बातों पर झगड़ना निष्फल है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद ये दोष आप दूर हो जायँगे। परंतु हमारा निवेदन है कि यदि इन दोषों के होते हुए भी स्वराज्य प्राप्त हो सकता है, तो ये दोष दोष ही नहीं। हम पूछते हैं, भारतवासियों ने अपना स्वराज्य क्यों खोया? क्या इसका कारण जाति-पाँति और छूत-छात न थी? हिंदुओं का सबसे बड़ा साम्राज्य महाराज अशोक के समय में था। यह वह समय था, जब बुद्ध-धर्म के प्रताप से वर्ण-व्यवस्था का नाश हो चुका था! इस समय भी जितने स्वतंत्र देश हैं, उनमें से किसी में भी जाति-पाँति मौजूद न थी। इससे सिद्ध होता है कि भारत की परतंत्रता का कारण भी यही जाति-पाँति है। सनातनी लोग और उनके नेता मालवीयजी अछूतों के साथ समझौता करना चाहते हैं। कहते हैं, जब तुम लिख-पढ़कर साफ़-सुथरे रहने लगोगे, तो हम तुम्हें सामाजिक अधिकार दे देंगे। परंतु जब अँगरेज़ लोग इन्हीं मालवीयजी से यह कहते हैं कि आप अभी स्वराज्य के लायक़ नहीं; लायक़ हो जाने पर हम तुम्हें स्वराज्य दे देंगे, तो अँगरेज़ों को कोसते हुए यह महाशय आकाश-पाताल एक कर देते हैं! सच है, दूसरे की आँख का तिनका भी शहतीर मालूम होता है।

इसलिये हमारा भारतीय नेताओं—विशेषतः भारतीय नवयुवकों—से नम्र निवेदन है कि राजनीतिक क्रांति लाने के लिये वे जन्म-मूलक जाति-पाँति का विध्वंस कर दें। इसके विनाश से जब भारतीय जनता में समता और भ्रातृ-भाव उत्पन्न होगा, तभी भारत-माता के प्रत्येक पुत्र और पुत्री के हृदय में राजनीतिक स्वतंत्रता की सच्ची लगन उत्पन्न हो सकेगी। उसी समय राजनीतिक हुत आत्माओं (martyres) के बलिदान देश को स्वाधीन बना सकेंगे। जाति-पाँति को रखते हुए राजनीतिक स्वतंत्रता के लिये यत्न करना रेत की दीवारें बनाने के समान निष्फल है।

एक बात है ! तुम्हारे पत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारे वह दिन-पर-दिन तुम्हारे प्रति नीरस होते जा रहे हैं। मैं समझती हूँ, इसका मुख्य कारण यही है कि जरूरत से ज्यादा तुम नम्र हो जाती हो। यदि कुछ वह खिंचें, तो कुछ तुम भी खिंचो। स्त्रियों पर आधिपत्य जमाकर अपराधी मनुष्य शासन की लालसा में अपने को कैसा भाग्यशाली।समझने लगता है ? हो सके, तो उत्तर देना।

तुम्हारी—

मालती

पत्र लिखकर मालती बार-बार उसे पढ़ने लगी। उसे अपने काल्पनिक पति की प्रशंसा करने में बड़ा मज़ा आया, वह हँस पड़ी।

× × ×

मालती का पत्र पढ़कर चंपा कई दिनों तक विचार में पड़ी थी। अंत में उसने उत्तर लिखा—

मेरी भाग्यवती बहन,

तुम्हारे उस सुहाग की साड़ी के आँचल का चुंबन ! तुम्हारा पत्र पढ़कर मेरा हृदय तो उतावला-सा हो गया है। तुम्हारे भाग्य से ईर्षा होती है ! तुम्हारी बातें मेरे लिये बड़ी कठिन हैं। भला उनसे खिंचने से कै दिन चल सकेगा ? अभी तो भूले-भटके कभी वह बात भी कर लेते हैं। नहीं तो, वह घर का आना भी एकदम छोड़ देंगे। तुम्हीं कहो, उनसे लड़ाई करके ईश्वर भी मेरा सहायक न होगा। मेरे तो वही धर्म हैं, वही ईश्वर हैं और वही पार लगानेवाले हैं। राम-राम ! ऐसी बातें भूल कर भी नहीं सोचना चाहती। हृदय काँप उठता है !

सुना है, वह एक दूसरी स्त्री पर रीझे हैं, एक वेश्या के यहाँ जाते हैं ! हो सकता है। उनके लिये बहुत हैं ; मगर मेरे लिये वह एक ही हैं। इसीलिये, तीर की तरह यह बात दिल में चुभी है। मेरा क्या वश है। मैं क्या कर सकती हूँ ? न-जाने कौन-सा अपराध हो गया है ? उनकी आँखों में अपने प्रति नफ़रत देखकर डूब मरने की इच्छा होती है।

एक दिन था, जब मैं अपने से बढ़कर भाग्यवती दुनिया में किसी को न समझती थी, फूली न समाती थी। वे दिन हँसते-हँसते कट जाते थे। जीवन में कितना उत्साह था। उनकी एक प्रेम-भरी दृष्टि पर मैं मर-मिटने को तैयार थी। लेकिन, आज मुझसे बढ़कर दुखिया कौन होगा ?

देखती हूँ, मनुष्य का स्वभाव रंगीन बादलों की तरह क्षण-भर में ही बदल जाता है। जिसको एक दिन वह दोनो हाथों को फैलाकर गले से लगाता है, उसी को क्रोध की लाल आँखें चढ़ाकर पैरों ठुकरा भी सकता है। किसी के मन की बात कौन समझ सकता है ?

ओह ! उनका दिल मुझसे फट गया है। अकेले अपने कमरे में बैठे न-जाने क्या सोचा करते हैं। मुझे देखते ही उनकी आँखें चढ़ जाती हैं। बोलो, ऐसी स्थिति में मेरे जीने से क्या लाभ ?

उस दिन तुम्हारा पत्र डाकिया से लेकर जब नन्ही आई, तो पूछने लगे, किसका पत्र है ? तुम्हारी बात मैं छिपा गई। मैंने कहा—"मेरी बहन का है।" फिर उन्होंने कुछ न पूछा। मैं समझती हूँ कि इसमें मैं उनसे झूठ नहीं बोली, क्योंकि तुम भी तो मेरी बहन हो !

अब मैं क्या करूँ ? कोई उपाय यदि बता सकतीं, तो जीवन-भर तुम्हारी ऋणी रहती, तुम्हारे नाम की माला जपती। मेरी दशा पर विचार करो और लिखो कि मेरी सुख की फुल-

घड़ी में आठ बजा था। बड़ी कड़ाके की धूप निकली थी। श्यामलाल कपड़ा पहन रहे थे। चंपा उनके सामने खड़ी थी। उसने पूछा—"आज इतने सबेरे कहाँ जा रहे हैं? भोजन कर लीजिए, तब जाइएगा।"

"मेरे एक मित्र परदेस जा रहे हैं। उन्हें स्टेशन तक पहुँचाना है।" कहते हुए श्यामलाल कुर्ते का बटन लगा रहे थे।

ठीक उसी समय द्वार पर गाड़ी के रुकने की खड़खड़ाहट हुई। चंपा अपने पति के कमरे से हटना चाहती थी। उसने समझा, उनके कोई मित्र आए हैं। श्यामलाल भी ध्यान से द्वार की ओर देखने लगे।

यह क्या? यह तो स्त्री है! कौन है—मालती? चंपा ने पहचान लिया। वह वहीं खड़ी हो गई।

श्यामलाल थरथर काँप रहे थे। मालती आगे बढ़ी। चंपा ने बड़े कौतूहल से दोनो हाथ फैलाकर उसका स्वागत किया। मालती, श्यामलाल की ओर देखती हुई, उनके कमरे की ओर बढ़ी।

चंपा ने कहा—"उधर कहाँ? चलो घर में।"

"नहीं, उन्हीं के यहाँ, तुम भी साथ आओ।" बड़े साहस से मालती ने कहा।

चंपा बड़े आश्चर्य से उसके साथ कमरे में गई। आज मालती ने श्यामलाल को देखकर घूँघट नहीं काढ़ा था।

श्यामलाल का चेहरा अपराधी की तरह पीला पड़ गया था। वह चुपचाप देखने लगे।

श्यामलाल से आँखें मिलाकर, मालती ने मुसकिराते हुए कहा—"बड़ी देर कर दी! मैं प्रतीक्षा में थी। इसीलिये स्वयं चली आई।"

श्यामलाल एक शब्द भी न बोल सके। वह चंपा की ओर देखने लगे।

मालती ने कुछ आभूषणों को देते हुए चंपा से कहा—"लो, इसे सहेज लो, इतनी बहुमूल्य चीज़ मेरे भाग्य में नहीं है। यह सब तुम्हारा है।"

"मेरा!—नहीं, तुम यह क्या कह रही हो मालती बहन? पागल तो नहीं हो गई हो?" चंपा ने पूछा।

"मैंने तुम्हें लिखा कि मैं एक पहेली हूँ, तुम्हें नहीं मालूम, मैं वही वेश्या हूँ, जिस पर तुम्हारे पति रीझे हैं। मैं अब परदेस जा रही हूँ बहन! मुझे क्षमा करो।" मालती ने बड़ी नम्रता से कहा।

चंपा एक बार मालती और श्यामलाल की ओर देखने लगी।

श्यामलाल ने घबराकर कहा—"ओह! मैं नहीं जानता था।......तुम बड़ी विचित्र हो।"

"बहन, अब तुम सुखी रहोगी। अंतिम बार तुमसे मिलने आई थी। आज ही जा रही हूँ, इसी दस बजे की गाड़ी से।" कहते हुए मालती जाने लगी।

चंपा की आँखों में लाली दौड़ रही थी। उसने तीखे स्वर में कहा—"तुम बड़ी छलिया हो!"

मालती चली गई थी। श्यामलाल ने कपड़े उतार दिए, वह मालती को स्टेशन तक पहुँचाने नहीं गए।

साम्राज्यवाद और साम्यवाद
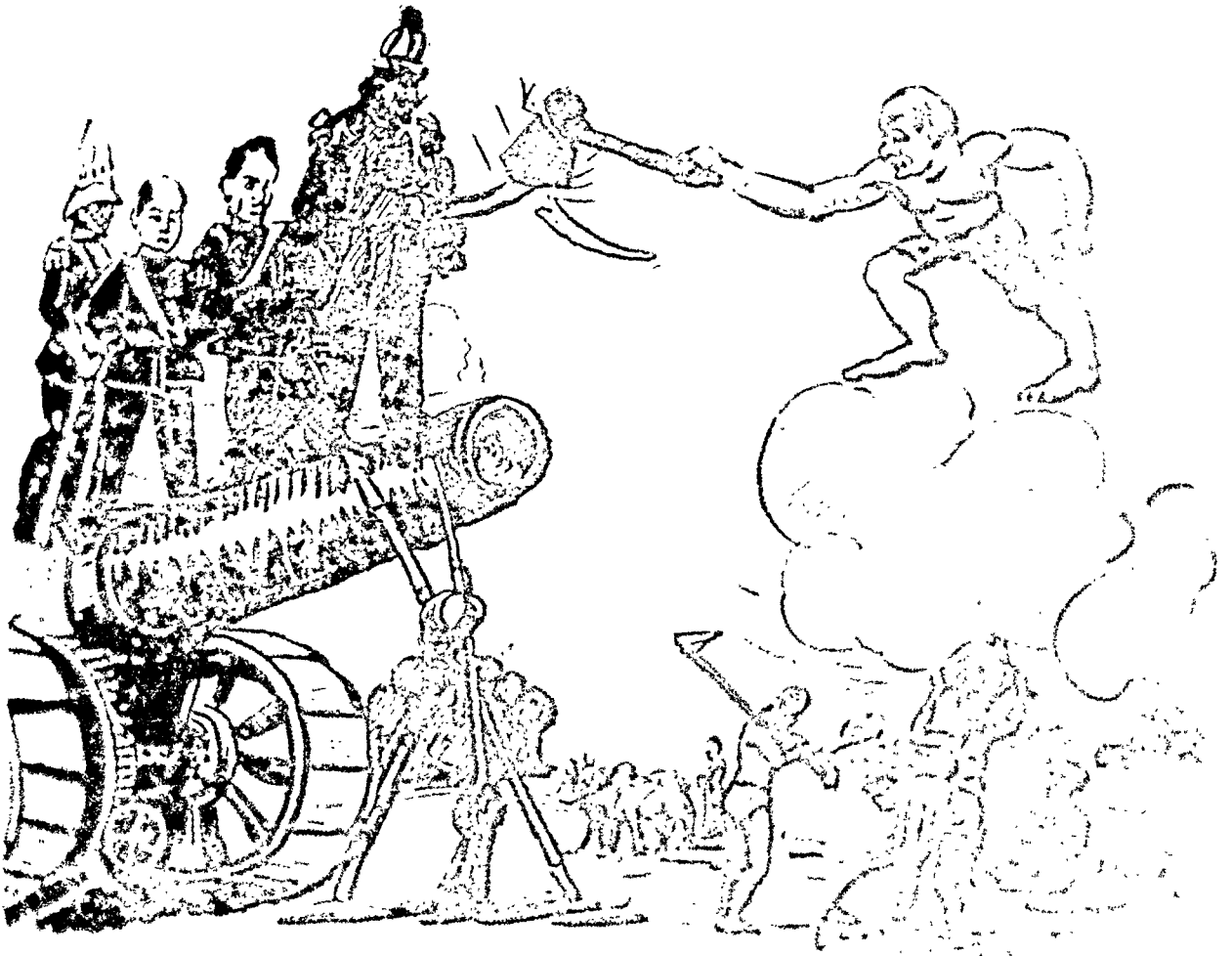
शब्दकार—श्यामदास] [स्वरकार—लक्ष्मणदास मुनीम

[गौड़ मल्लार—तीन ताल]

गरज-गरज आवें बदरवा
बिजुरी चमकै जिय मोरा डरपै
निस अँधियारी कारी रैन सखी
पिक मोर पपैया बोलन लागे
अजहूँ न आए श्याम धाम मोरे
छिन-छिन उन बिन मन मेरो तड़पै

स्थायी

०				३				× (ग)				२			
सं	सं	ध	प	म	म	रेस	रे	म	—	—	प	म	रे	स	—
ग	र	ज	ग	र	ज	आऽ	ऽ	वें	ऽ	ऽ	व	द	र	वा	ऽ

०				३				×				२			
स	रे	म	—	प	प	म	प	ध	सं	ध	प	म	प	म	ग
वि	जु	री	ऽ	च	म	कै	ऽ	जि	य	मो	रा	ड	र	पै	ऽ

अंतरा

०				३				×				२			
म	म	प	प	नी	नी	नी	नी	सं	—	सं	सं	सं	सं	सं	सं
नि	स	अँ	धि	या	री	का	री	रै	ऽ	न	स	खी	ऽ	पि	क

१. कृष्ण-धर्म

रत के प्राचीन धर्मों की खोज करनेवालों का कहना है कि श्रीकृष्ण महाराज ने एक धर्म की स्थापना की थी, और वही धर्म वासुदेव-धर्म कहाता था। मालूम पड़ता है, किसी समय, भारत में, इस धर्म का बहुत प्रचार था। बौद्ध पुस्तक 'निद्देस' में उस समय के जिन धर्मों को गिनाया गया है, उनमें वासुदेव-धर्म का भी नाम है। इस धर्म का ज़िक्र पाणिनि और पतंजलि महाराज की अष्टाध्यायी और महाभाष्य में भी पाया जाता है। राजपूताने के घोसुंडी-स्थान पर एक शिला-लेख पाया गया है, जिसमें वासुदेव की पूजा का ज़िक्र है। इसी प्रकार ग्वालियर-रियासत में भेलसा के पास बेसनगर में एक शिला लेख मिला है, जिस पर लिखा है कि इसे हेलियोडोरस ने वासुदेव की पूजा के लिये बनवाया। यह हेलियोडोरस तच-शिला के यूनानी राजा एंटीएल्काइडस का दूत था, और इसी काम के लिये उसे भेलसा भेजा गया था। पहला शिला-लेख ईसा से दो सदी पहले का, और दूसरा ईसा से डेढ़ सौ साल पहले का है। नानाघाट की एक लंबी-चौड़ी गुफा में एक तीसरे शिला-लेख में भी वासुदेव की पूजा का ज़िक्र है, और यह शिला-लेख भी ईसा से एक सदी पुराना तो है ही। इन शिला-लेखों से मालूम पड़ता है कि श्रीकृष्ण महाराज ने जिस धर्म की स्थापना की, उसे ग्रीक लोगों ने भी स्वीकार कर लिया था, और कृष्णजी के नाम पर बुर्ज़ तक बनवाने शुरू कर दिए थे। डॉ० भांडारकर का कहना है कि जिस समय भारतवर्ष में जैन तथा बौद्ध-धर्म का उदय हुआ, उसी समय वासुदेव-धर्म का भी उदय हुआ। पूर्वीय भारत में जैन तथा बौद्ध-धर्म उठ रहे थे और पश्चिमी भारत में वासुदेव-धर्म सिर उठा रहा था। ये तीनो धर्म अपने समय के ब्राह्मण-धर्म की गिरावट का प्रतिकार करने के लिये उत्पन्न हुए थे। वह युग भारत में धार्मिक जागृति का युग था। पुरानी रूढ़ियों के ख़िलाफ़ लहरें चल रही थीं। यहाँ तक कि लोग वेद तथा परमेश्वर के नाम पर किए गए ब्राह्मणों और पुरोहितों के अनर्थों से इतने तंग आ चुके थे कि उन्होंने इन दोनो की हस्ती से इनकार कर दिया। इन लहरों को चलानेवाले मुखिया महात्मा बुद्ध और महावीर थे। कृष्ण महाराज ने भी प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने

की इस प्रकार की उदारता किसी धर्म में नहीं पाई जाती कृष्ण महाराज के इन विचारों के प्रचार का ही परिणाम है कि हिंदू-समाज में विचारों की उदारता बहुत पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। सत्य ही से तो सब कुछ स्थित है। संसार में यदि कहीं असत्य भी टिका हुआ दिखाई देता है, तो उसका कारण भी सत्य ही है, ये विचार गीता से ही फैले प्रतीत होते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि वासुदेव-धर्म भी इस समय रूढ़ियों, प्रथाओं तथा आडंबरों का शिकार हो चुका है, उसमें भी असहिष्णुता आ चुकी है। परंतु संसार के अन्य धर्मों की तरह इस धर्म का प्रारंभ भी इन्हीं चीज़ों पर प्रहार करने के लिये हुआ था। इस दृष्टि से जो श्रीकृष्ण महाराज के जीवन का स्वाध्याय करेंगे, और इसी दृष्टि से उनके महान् उपदेश गीता का पाठ करेंगे, उन्हें श्रीकृष्ण महाराज तथा गीता नई रोशनी में दीखने लगेंगे।

प्रो० सत्यव्रत (सिद्धांतालंकार)

× × ×

२. मन का सौदा

भोला था, जग की माया का,
कुछ भी ज्ञान नहीं था ;
सौदे में धोखा खाऊँगा,
यह अवधान नहीं था ।
रूप-हाट में पहुँचा, सोचा,
मैं सौदा कर लूँगा ;
'मन की वस्तु' मोल लेकर मैं
मन अर्पण कर दूँगा ।
उसके बदले में जो लूँगा,
उसको मैं पाऊँगा ;
ज्ञात नहीं था, इस सौदे में
मैं ही बिक जाऊँगा ।
सब तो गया, मिला क्या मुझको—
उसका होकर रहना ;
भूल हुई, चूके 'कुसुमाकर',
किससे अब क्या कहना !

देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

३. चेतना

चेतना ठीक से सो न सकी। उसने किसी प्रकार करवटें बदलते रात्रि व्यतीत कर दी। सो रहने में उसे सुख का अनुभव न हुआ। वह व्यग्र होकर प्रातःकाल की आशा में आँखें खोले पड़ी रही। परंतु उसके नव-विवाहित पति—विलास—की अवस्था कुछ दूसरी ही थी। उसे सुषुप्ति की ही अवस्था सुखदायिनी थी। वह चेतना के हृदय-स्पंदन का अंदाज़ न लगा सका। उसे इसकी न चिंता थी, न अवकाश ही। उसका संसार सोने में था, और वह भी उसे अत्यंत रमणीय प्रतीत होता था।

चेतना ने देखा, उसका पति शांति के सागर में निमग्न है! उसे उसी में शांति है। उसकी तन्मयता को वह भंग नहीं करना चाहती थी। परंतु अपने लिये वह व्याकुल थी। उस प्रमाद-भवन में उसका दम घुटा जाता था। वहाँ उसका क्षण-भर भी रुकना उसे अप्रिय ज्ञात होता था। सहसा उसने सुना, ब्राह्म-मुहूर्त की मंद मलयानिल ने पक्षियों में कोलाहल मचा दिया। अब वह एक क्षण न रुक सकी। विलास पड़ा रह गया!

❀ ❀ ❀

चेतना मंदाकिनी की शांत जल-राशि की ओर एक-टक देख रही थी। चारो ओर उसे शांति का ही साम्राज्य स्थापित दिखाई पड़ता था। उसने एक बार आकाश की ओर निहारा। वहाँ उसने देखा, परिवर्तन हँस रहा है, तारक-मंडली की करुण दशा है, और सुधाकर की ज्योति-राशि क्रमशः क्षीण हो रही है। परंतु उस हास में सुंदरता है, कोमलता है, और है वैचित्र्य। धीरे-धीरे गगनांगण में प्रकाश बढ़ने लगा। और चंद्रदेव का प्रकाश मलिन पड़ता गया। चेतना इस परिवर्तन की ओर असंतुष्ट भाव से एकटक देखती

हिंदी-अँगरेज़ी-छपाई

रंगीन तिरंगे चित्र | सर्वश्रेष्ठ जिल्द-बँधाई

सोने की छपाई, चिट्ठी के काग़ज़, लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड,
विज़िटिंग-कार्ड, बिल, मिमो, रसीद-बुक, कैलेंडर,
नोटिस, निमंत्रण-पत्र, अभिनंदन-पत्र, पुस्तक आदि—

सब प्रकार की छपाई का काम

हमारे यहाँ सुंदर और सस्ता

साथ ही

ठीक वक़्त पर किया जाता है।

काम संतोष-प्रद होने की गैरंटी !

आपको छोटा-मोटा, सुंदर, सस्ता, किसी प्रकार का भी छपाई का
कोई काम कराना हो, तो उसे तुरंत हमारे पास भेजिए।

अब इधर-उधर भटकने की ज़रूरत नहीं !

सब प्रकार की छपाई के
काम के लिये सुविधा-
जनक स्थान

धनुष-यज्ञ

[श्रीदुलारेलाल भार्गव के चित्र-संग्रह से]

चेतना खिलखिलाकर हँसने लगी !! प्रतिध्वनि ने मंद स्वर में कहा—"चेतना वहाँ रहेगी और तुम यहाँ!!!"

"रसिकेंद्र"

× × ×

४. मुसकान

मनमोहन के मुख लसी, मंद-मंद मुसकान ;
मनहु मयूष मयंक के, छनि छिति पै छितिरान ।
किधौं चंद्र की जोत है, किधौं स्वर्ग की जोत ;
कुंद-कलिन की जोत कै, कै मुसकान उदोत ।
अधर, दसन, मुसकन कवन, सुंदर सरस सुवास ;
मनु गुलाब-दल ह्वै कढ़ो, चमकत रजत-प्रकास ।
मुख-छवि लखि मुसकान-युत, मन अति होत निहाल ;
कोटि-कोटि कामहिं करौं, न्योछावर नँदलाल ।
सुरपुर, नरपुर, नागपुर, वैभव विपुल विधान ;
हरि तेरी मुसकान पै, वारौं तन मन प्रान ।

श्रीदामोदरसहायसिंह (एल्० टी०)

× × ×

५. मासिक पत्रों की छपाई का नया ढंग

सुधा के गत फाल्गुन ८४ के अंक में पृष्ठ १६८ पर श्रीयुत लक्ष्मीनारायणजी पचीसिया का "एक नवीन प्रस्ताव"-शीर्षक निबंध मैंने पढ़ा । वास्तव में पचीसियाजी की कई बातें कार्य में परिणत करने योग्य हैं । मुझे पत्रों के संपादन तथा मुद्रण-संबंधी बातों का कुछ ज्ञान है । उसी के आधार पर कह सकता हूँ कि पचीसियाजी के प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत करने से अधिक परिश्रम तथा धन-व्यय की आवश्यकता न पड़ेगी । हिंदी-भाषा में अब वह समय आ गया है, जब इस बात की आवश्यकता को लोग अनुभव करने लगे हैं । मैं स्वयं लेखक हूँ, और कविता भी करता हूँ । लगभग १ दर्जन वर्षों से मेरा यह हिंदी-साहित्य-सेवा का कार्य जारी है । इस बीच में मेरी सैकड़ों कविताएँ तथा अनेकों लेख हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए । मैं स्वयं अपने लेखों तथा कविताओं की उनके विषय आदि के अनुसार उनकी पृथक् सूचियाँ सदैव तैयार रखता हूँ । इससे मुझे बड़ी सुविधा रहती है, और किसी भी समय किसी लेख या कविता-विशेष के संबंध में कोई भी बात शीघ्रातिशीघ्र मालूम कर लेता हूँ । जब 'सरस्वती' निकली, उस समय तो मेरी साहित्यिक भावनाओं का उदय भी नहीं हुआ था । हाँ, जिस समय माधुरी का जन्म हुआ, उस समय मैं हिंदी-संसार में कवि तथा लेखक के रूप में साहित्य-सेवा कर रहा था । उसी समय से मैं माधुरी के लेखों एवं कविताओं की, उनके विषयानुसार, सूची बनाता आया हूँ । प्रति-मास उसी में और बढ़ा दिया करता हूँ । कारण, आज तक मैंने सैकड़ों बातें, सैकड़ों-हज़ारों लेख-कविताएँ पढ़ीं । किसी भी मनुष्य को यह क्या स्मरण रह सकता है कि उसने अमुक बात कहाँ पढ़ी । हम लेखकों को तो समय-समय पर इस प्रकार की आवश्यकता पड़ती ही रहती है । मैं समझता हूँ, हिंदी के बहुत-से अध्ययनशील प्रेमी पाठक भी ऐसा ही करते होंगे । यदि सुधा पचीसियाजी के इस नवीन प्रस्ताव की बातों को ध्यान में रखकर निकाली जायगी, तो हिंदी-संसार में वह एक नई चीज़ होगी, और इस दिशा में सबसे पहले आगे बढ़ने का श्रेय उसी को प्राप्त रहेगा । मुझे याद पड़ता है कि जिस समय "स्वार्थ" निकला था, उस समय उसमें भी ऐसे ही लेख रहते थे, जिनका आरंभ पृथक् पृष्ठ से किया जाता था । और, यदि वे पृष्ठ के बीच में समाप्त हो जाते थे, तो फिर वह पृष्ठ कोरा ही छोड़ दिया जाता था । फिर उसमें अन्य कुछ भी बात न रहती थी । मुझे स्वार्थ का यह ढंग बहुत पसंद आया था । यह अवश्य है कि इस प्रकार की रीति का आविष्कारक हिंदी-पत्रों में स्वार्थ ही था ; पर इस समय वह बंद है, और यदि सुधा ने इस विचार को कार्य-रूप में परिणत किया, तो हिंदी के जीवित पत्रों में वही इस दिशा में सबसे पहले आगे बढ़नेवाली पत्रिका होगी । ऐसा होने से हिंदी-पाठकों की एक बड़ी अड़चन दूर हो जायगी । मासिक पत्रिका का रसास्वादन करने के साथ ही वे उसके लेखादि को स्थायी साहित्य पुस्तक-रूप में एकत्रित कर सकेंगे, और यह रीति उनके अध्ययन में बड़ी सहायक होगी । किसी विषय-विशेष से संबंध रखनेवाले लेख के लिये उन्हें किसी पत्रिका के सभी अंक न खखोल मारने

रखते थे, जिनका सब ख़र्च साम्राज्य की ओर से मिला करता था।

महाराज मानसिंह क्रम-क्रम से बढ़े थे। वह साधारण श्रेणी के ज़िलाधीश होकर डेढ़ करोड़ रुपए वार्षिक आयवाले देशों तक के अधीश्वर अथवा गवर्नर हुए थे। और, पँचहज़ारी मनसबदारी से लेकर सातहज़ारी मनसबदार तक रहे थे। इसी प्रकार उनके सहगामी शूर-सामंतों को भी प्रत्येक प्रांत के बड़े-बड़े आंशिक भू-भागों के अधीश्वर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ करता था, और वे भी अपने-अपने आंशिक अधिकारों का उपभोग किया करते थे।

उक्त प्रकार के साधनों और अधिकारों में संपन्न रहकर मानसिंह लाहौर के गवर्नर हुए। आमेर-नरेश महाराज मानसिंह को अभी थोड़े ही दिन हुए थे। उनके सुमिष्ट शासन का सुख उठाते हुए लाहौरवालों को अभी बहुत कम समय हुआ था। बिहार-प्रांत के विद्रोह का शमन हुए भी अभी बहुत ही कम समय बीता था। इसी अवसर में बंगाल, बिहार, उड़ीसा और काबुल में फिर विद्रोह मच गया। थोड़े दिनों पहले ही जिस काबुल को क़ाबू में किया था, वही काबुल अब फिर मचल गया। और उसने शाही साम्राज्य पर फिर धावा बोल दिया।

इस दशा को देखकर सम्राट् अकबर ने महाराज मानसिंह को संवत् १६४१ में काबुल का गवर्नर नियत किया। शासन-संबंधी सब अधिकार देकर उन्होंने उनको काबुल भेज दिया। सम्राट् के अनुरोध से महाराज मानसिंह ने अपने सजातीय कछवाहों, वीर-नाथावतों और शाही सेना को साथ लेकर काबुल में प्रवेश किया, और उद्दंड काबुलियों पर साम-दाम-दंड-भेद के द्वारा शासन करने लगे।

इस बार उनको भैंसों के सींग जलाकर लीला रचने की आवश्यकता नहीं थी। अब की बार उनके पास यथेच्छ राजपूत साथ गए थे। उद्दंड काबुलियों का विध्वंस कर देने के लिये वे पहले ही से दाँत पीस रहे थे। अतः महाराज मानसिंह ने अपने वीर राजपूतों को यथायोग्य विभाजित करके उनको यथोचित स्थानों में सर्वाधिकार-सहित नियत किया, और उग्र क्रूर काबुलियों को शक्ति-हीन करने का समयोचित आयोजन किया। इस प्रकार शाही सेना शत्रु-देशों पर यथाक्रम आक्रमण करने लगी और उद्दंड बाग़ियों को अनेक प्रकार से बारंबार सताने लगी।

इस विषय में इस देश के एक परम अनुभवी और फ़ारसी ग्रंथों के प्रवीण इतिहास-वेत्ता ने लिखा है कि "मानसिंह के शूर-सामंतों अथवा उनके वीर नाथावतों ने उद्दंड काबुलियों को दंडित करने के लिये अनेक प्रकार के अखंडनीय आयोजन उपस्थित किए थे, जिनसे घबराकर वे लोग भयभीत हो गए। और देश छोड़-छोड़कर चले गए।"

मान के कुछ अखरैत नाथावतों ने अपने अधिनायकों की अनुमति से काबुलियों के जीवन-निर्वाह की खेती-बारी आदि से उनको विहीन बना दिया। उनके घर, गाँव, झोपड़े और सामान आदि को जला दिया। भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर हज़ारों पठानों को मार डाला, और सैकड़ों को जीवित दशा में ही भस्मीभूत कर दिया। इस प्रकार उन्होंने प्रायः काबुल के कई एक पृथक्-पृथक् राज्यों में भयंकर स्थिति उपस्थित कर दी।

सर्व-प्रथम उन्होंने बुनेर का बुरा हाल किया। युद्ध-स्थल में बारंबार विजयी होकर वहाँ अपने प्रभाव की धाक जमा दी। बहुत-से स्थल अपने अधीन कर लिए। वीर राजपूतों के लगातार बारबार आक्रमण होते रहने से काबुलियों के छक्के छूट गए। वे हार मानकर भाग गए। उस समय राजपूतों के किए हुए उत्पातों से काबुली इतने अधिक उत्पीड़ित हो गए कि उन्होंने अपने देश के वेश-भूषा तक का विसर्जन कर दिया। धोती तथा पगड़ी पहनकर झाड़साई हिंदू बने रहने में अपना सौभाग्य समझा।

गोपालराम गहलोत के प्राचीन संग्रह से विदित होता है कि महाराज मानसिंह के प्रधान सामंत मनोहरदास ने उस समय एक बड़ा ही अद्भुत और अपूर्व काम किया था, जिसकी स्मृति का मनोहर चिह्न सैकड़ों वर्षों से आमेर-राज्य की शत्रुंजय वायु में आज भी प्रबल वेग से प्रवाहित हो रहा है, और उसको देखकर शायद आज भी कुछ सज्जन उस रहस्य को जान सकते हैं।
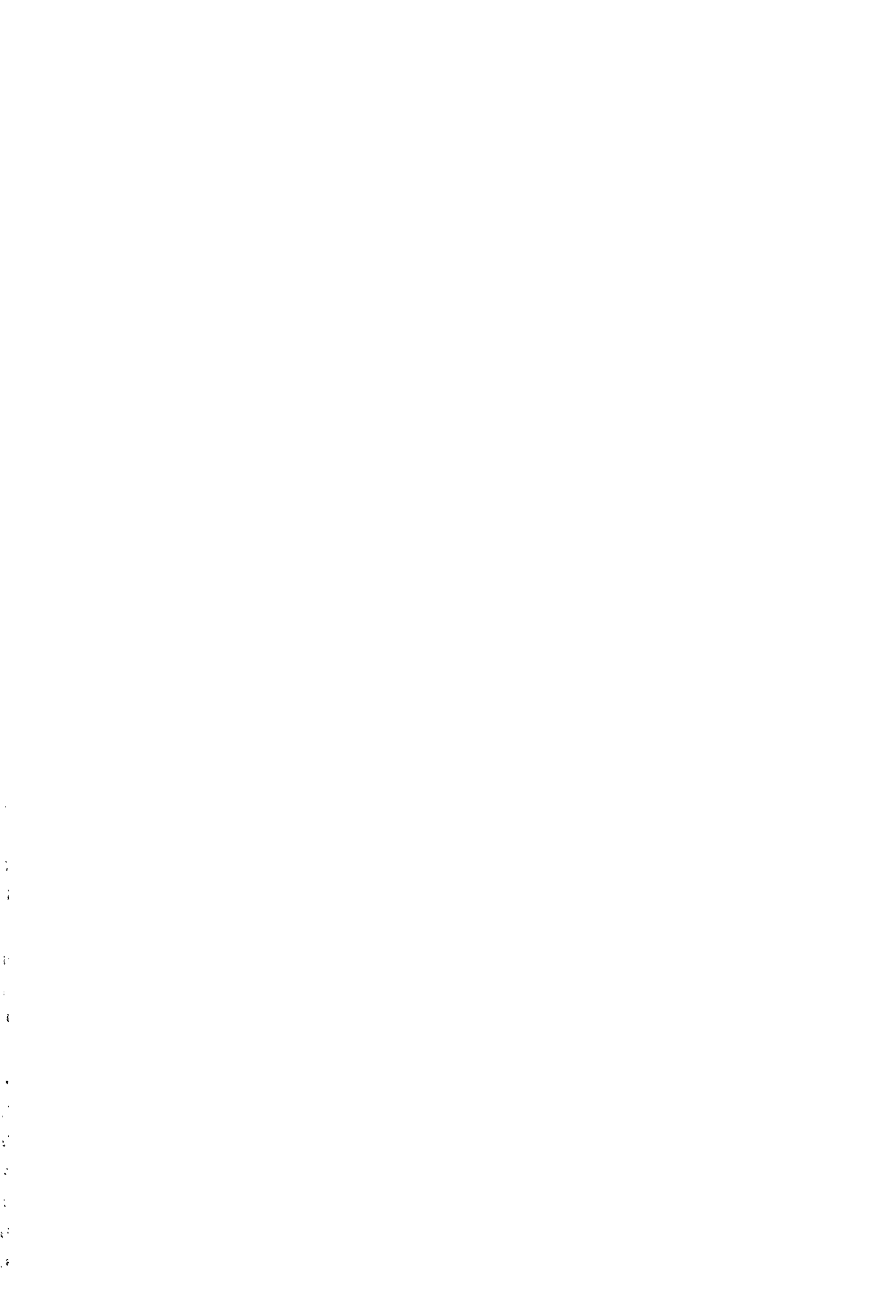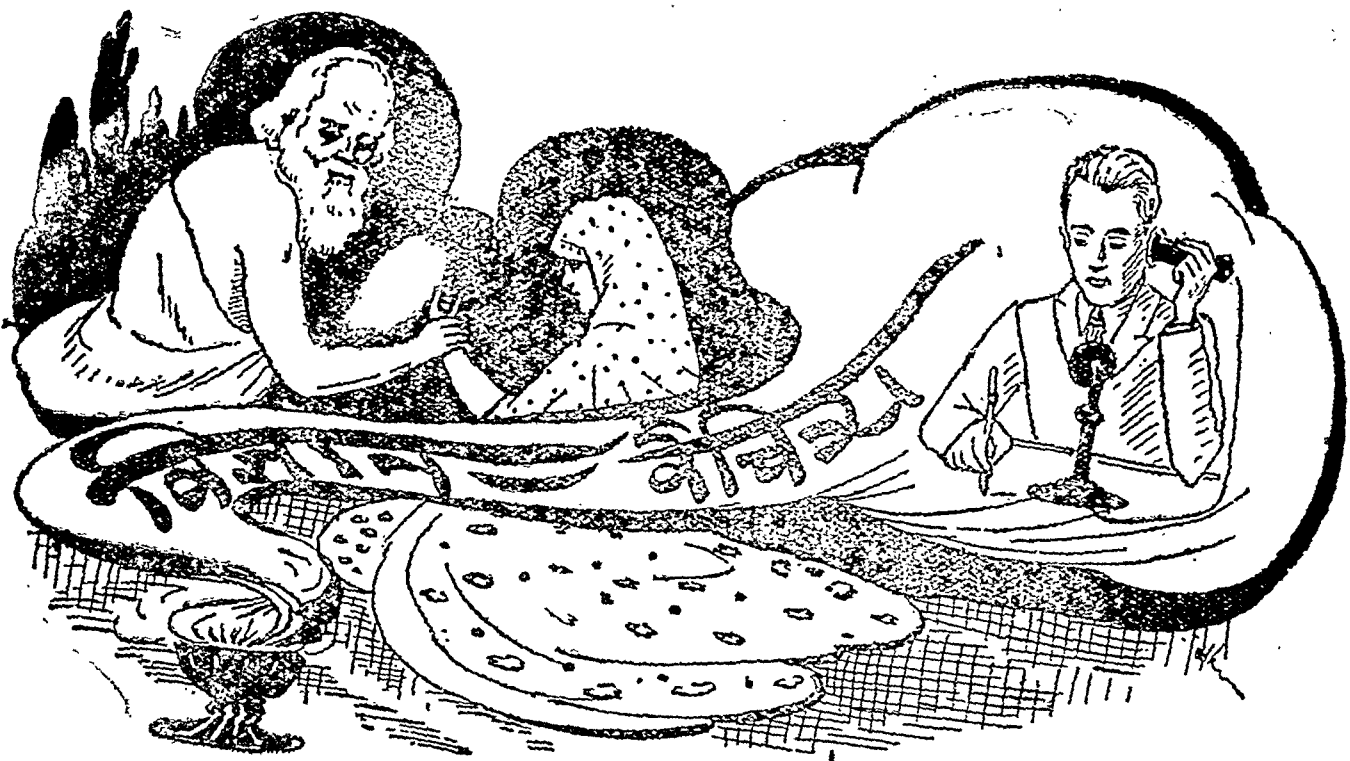
१. चालीस हज़ार फ़ीट की उँचाई पर

एक ओर वायुयानों की गति बढ़ाने की चेष्टा हो रही है, और दूसरी ओर उन्हें आकाश में अधिक-से-अधिक उँचाई पर पहुँचाने की । दोनो काम कठिनाई और ख़तरे से ख़ाली नहीं हैं। आकाश में कुछ ही दूर ऊपर जाने पर हवा पतली हो जाती है, और उड़ाके साँस लेने में कठिनाई का अनुभव करने लगते हैं। ठंड तो और जान मारे डालती है। किंतु तो भी अपनी धुन के पक्के वैज्ञानिक, ऐसा जान पड़ता है कि, सूर्य तक पहुँचने का स्वप्न देखते हैं। हाल ही में वाशिंगटन के लेफ़्टिनेंट एपोलो सासेक एक छोटे वायुयान में बैठकर आकाश की उँचाई नापने चले थे। प्रायः ७९ फ़ीट की दौड़ लगाकर वायुयान नेवेल एयर स्टेशन के ऊपर उड़ा। पंद्रह मिनट में वह एक धब्बे में परिणत हो गया, और इसके बाद वह आँखों से ओझल हो गया। सासेक ने एक ही दृष्टि में सारे अमेरिका को देख लिया, वह इतना ऊँचे पर था।
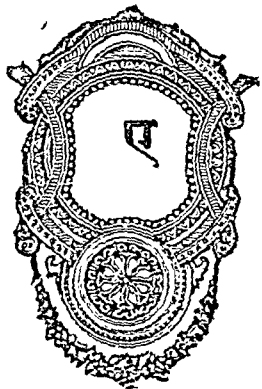
लेफ़्टिनेंट एपोलो सासेक

हमने छपरे में देखा है, आप यहाँ कैसे आए ?" मैंने उत्तर दिया—"माफ़ कीजिएगा, मैं छपरे कभी गया भी नहीं।" सहमकर वह चला गया। इसी प्रकार मुझे कई ऐसे मनुष्य मिले हैं, जिन्होंने मुझे कहीं-न-कहीं देखा है, या बातें की हैं, जिन्हें मैं जानता तक नहीं। ऐसी ही घटना एक अमेरिका में भी हुई। एक दिन एक राजनीतिक नेता फिलाडेल्फ़िया के रास्ते में चले जा रहे थे। उन्होंने एक पतले मनुष्य को विपरीत दिशा से आते हुए देखा। वह न तो लंबा ही था और नाटा ही। उसके शरीर पर एक काला ओवरकोट था। नेता ने हाथ बढ़ाकर कहा—"अहा! मि० कूलिज, आप फिलाडेल्फ़िया में किधर से भटक आए?" काले ओवरकोटवाले ने मुसकिराते हुए उत्तर दिया—"महाशय, क्षमा करेंगे, मैं मि० कूलिज नहीं हूँ।" वह मनुष्य चार्ल्स हॉज था, जो फिलाडेल्फ़िया के होटल का एक ख़ानसामा है। वह मि० कूलिज, अमेरिका के भूतपूर्व सभापति से इतना मिलता-जुलता है कि लोगों ने कई बार धोका खाया।

भूतपूर्व प्रेसिडेंट कूलिज और चार्ल्स हॉज
मुसोलिनी कौन ? उनका जोड़ा फ्रैंके वैलेरियो

विज्ञान का कहना है कि सभी मनुष्यों के जोड़े हैं। इन जोड़ों में इतना अधिक सादृश्य होता है कि यह कहना मुश्किल हो जाता है कि कौन कौन है। वे इस सादृश्य का कारण ढूँढने में व्यस्त हो रहे हैं। जब तक वे अपने काम में लगे हुए हैं, तब तक हम लोग संसार के कुछ प्रसिद्ध लोगों के जोड़ों से मनोरंजन करें।

न्यूयार्क में एक नाई है, जिसकी शकल हू-ब-हू मुसोलिनी से मिलती-जुलती है। चित्र में देखकर आप ही बतलाइए, कौन मुसोलिनी है और कौन नाई।

सम्राट् जॉर्ज और उनके जोड़े सर हेनरी ह्वाइट हेड
लॉयड जॉर्ज और उनके जोड़े जज एस० एच० किंग
(ये दो मनुष्यों के चित्र हैं, किंतु देखने में कैसे एक-से जान पड़ते हैं।)
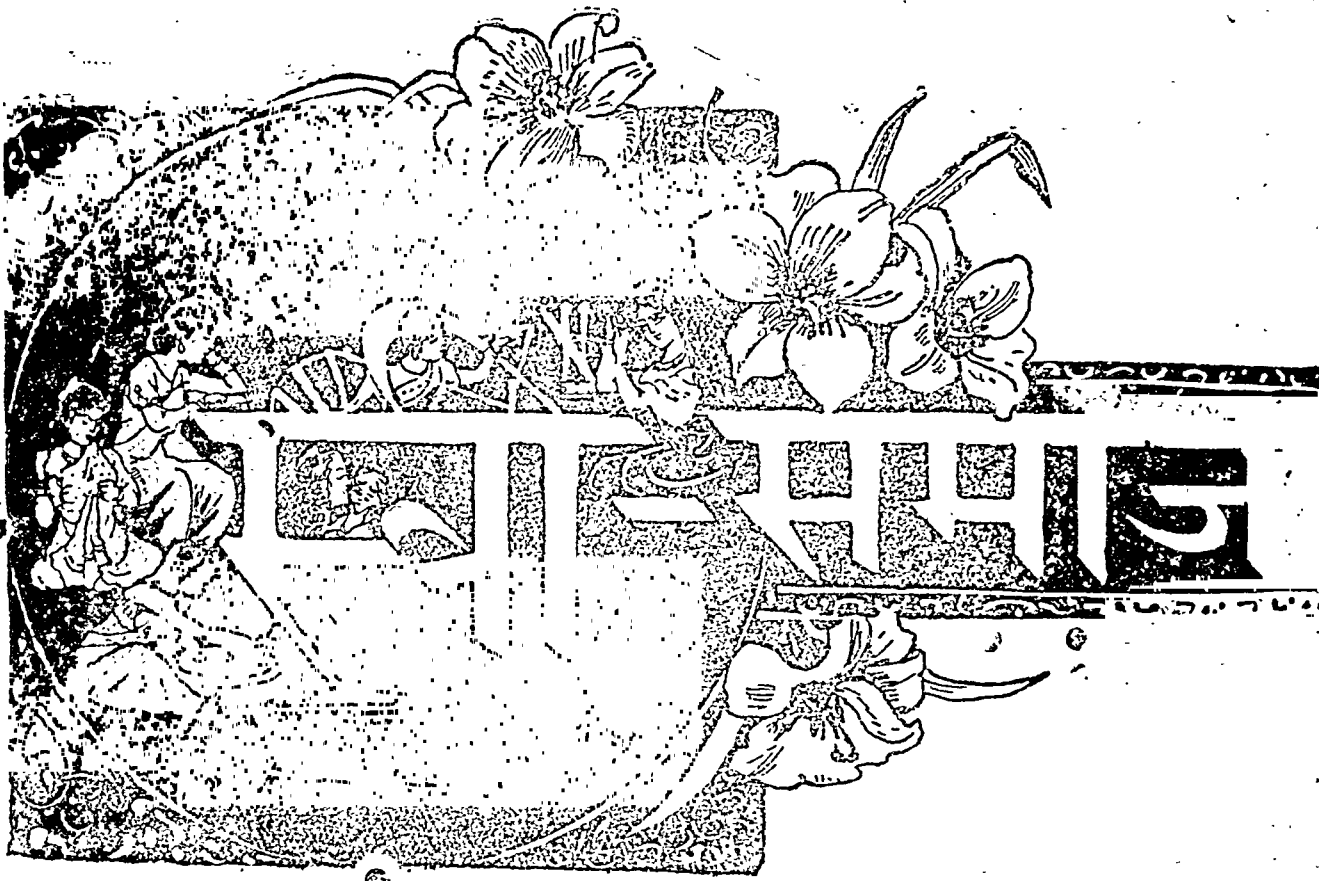
भारतीय स्त्रियों का स्वास्थ्य

इस विषय पर मैं बहुत दिनों से कुछ लिखना चाहता था; परंतु डर के मारे लेखनी नहीं उठती थी। डर दो बातों का था—एक तो यह कि मैं कोई डॉक्टर या वैद्य नहीं, समाज-सुधारक नहीं, नेता नहीं, और ज़बरदस्त लिक्खाड़ भी नहीं। फिर मुझे दूसरों को उपदेश देने का क्या अधिकार, और मेरी बातों में प्रामाणिकता कहाँ से आवे। दूसरा डर यह था कि इस विषय में मेरे विचार कुछ पुराने-से हैं जो आधुनिक शिक्षा-दीक्षा, सभ्यता, व्यवहार आदि के कुछ विरुद्ध-से प्रतीत होते हैं। अतः उनका लिखना किसी पत्र-पत्रिका के दो-चार पन्ने व्यर्थ ही नष्ट करना होगा। परंतु आज माघ-मास की 'सुधा' में श्रीमती चंद्रावती 'विभव' का "स्त्री-जाति की कुछ महान् समस्याएँ"-शीर्षक लेख पढ़कर मेरी उत्साह-शक्ति भी बढ़ गई। इन देवीजी का मुख्य आशय यह है कि स्त्रियों की दुर्दशा का मुख्य कारण पर्दा-प्रथा है, अतः उसे शीघ्रातिशीघ्र उठा देना चाहिए। यद्यपि देवीजी की कई युक्तियाँ ऐसी हैं, जिनके विरुद्ध भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। तथापि चूँकि मेरा उद्देश्य उनकी बातों का खंडन करना नहीं, किंतु उनके उद्देश्य में यथाशक्ति सहायता करना है, इसलिये मैं उन्हें धन्यवाद देकर अपने विषय पर आता हूँ।

× × ×

पर्दा-प्रथा को मैं भी कुप्रथा समझता हूँ। उससे जो हानियाँ हो रही हैं, उन्हें दूर करने में मैं भी सहमत हूँ। परंतु मैं इस बात में श्रीमती चंद्रावती से सहमत नहीं कि स्त्रियों की दुर्दशा का एक-मात्र कारण या मुख्य कारण पर्दा-प्रथा है। आजकल, जिधर देखो उधर, पर्दा उठा देने की चर्चा है। पत्र-पत्रिकाओं में, पुस्तकों में, व्याख्यानों में कुछ लोगों की, विशेषतः नवयुवकों और नवयुवतियों की, यही एक धुन है। मैं भी कहता हूँ, अच्छी धुन है। अवश्य उद्योग कीजिए। परंतु राई का पर्वत न बनाइए। यदि आपको वस्तुतः स्त्री-जाति का उद्धार करना है, तो किसी एक नेता या नेत्री की एक बात लेकर उसी की पुनरुक्ति तथा टीका-टिप्पणी करने में अपनी सारी शक्ति न गँवा दीजिए, और न

मैं इसे मानने के लिये तैयार हूँ कि अँगरेज़ियत में भी कुछ अच्छे तत्त्व हैं, अँगरेज़ों के रहन-सहन में भी कुछ अमूल्य चीज़ें हैं। परंतु मुझसे यह नहीं माना जाता कि बिना देश-काल का विचार किए हुए सभी अँगरेज़ियत के ढंग हिंदुस्तानियों के लिये उपयोगी हो सकते हैं। दीन-हीन भारतीय की झोपड़ी के कच्चे आँगन के लिये ताज़ा गोबर वही काम करता है, जो अमीर अँगरेज़ या अँगरेज़ियत-प्रिय हिंदुस्तानी के लिये फ़िनाइल। भारतवर्ष के समान उष्ण देश की महिला के लिये साड़ी वही काम देती है, जो शीत-देश-निवासिनी देवी के लिये मोज़े, साया, फ़र आदि। आपसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए यह भी कहता हूँ कि हमारी ललनाओं के लिये चक्की और मूसल उससे अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं, जो विदेशी विलास-प्रिय महिलाओं को टेनिस और बैडमिंटन आदि से मिलता है। एक क्षण के लिये भी मेरा यह अभिप्राय नहीं कि जो भारतीय स्त्रियाँ उपर्युक्त खेल खेलना चाहें, वे न खेलें। अवश्य खेलें, बल्कि अपने नए-नए खेल निकालें। मेरा तात्पर्य केवल यह है कि जिन भारतीय महिलाओं के पास इतना धन नहीं, इतनी स्वतंत्रता नहीं, वे पलँग तोड़-तोड़कर अपना स्वास्थ्य क्यों बिगाड़ें?

× × ×

इतना लिख चुकने पर फिर मेरी लेखनी इस संकोच में पड़ गई है कि कहाँ तो चारो ओर स्त्रियों और पुरुषों के समान अधिकार की चर्चा हो रही है, और कहाँ मैं स्त्रियों से कुटौनी-पिसौनी कराना चाहता हूँ। मेरा यह राग बेसुरा प्रतीत होता है। फिर भी यदि आप मेरे सच्चे भाव पर विचार करेंगे, तो मुझे इस धृष्टता पर क्षमा करेंगे। अब तो पर्दे का रूप कुछ अनिवार्य-सा हो गया है, और गृह-कार्य न करने की एक बीमारी-सी स्त्रियों में फैलती जाती है। इसलिये उन्हें घर कारागार-सा दिखाई देता है। पहले भी पर्दे की प्रथा थी, परंतु स्त्रियाँ अपने घर के कार-बार में इस प्रकार संलग्न रहती थीं कि उन्हें बाहर निकलने का अवकाश ही न मिलता था। परिश्रम का फल उन्हें यह मिलता था कि वे नीरोग रहती थीं।

× × ×

केवल किसी के कह देने से कोई बात सच्ची नहीं हो जाती। शहर की तो बात ही नहीं, आप किसी भी ऐसे गाँव में चले जाइए, जिसके कोस-दो-कोस के अंदर कहीं आटे की कल हो। अनुसंधान कीजिए कि दो सौ घरों के उस गाँव में कै घरों में जाँते का प्रयोग होता है। बस, आपको स्वयं ही मेरी बात का प्रमाण मिल जायगा। यह भी बात नहीं कि उस परिश्रम के बदले स्त्रियों ने किसी नए परिश्रम में हाथ डाला हो। पीसना छूटा, कूटना छूटा, चर्खा चलाना छूटा, सीना-बुनना, काढ़ना छूटा; इन सब के बदले में आया क्या? सास-ननद से लड़ना और पतिदेव को श्वशुरदेव से पृथक् करने की चेष्टा करना। सास कुछ पुराने ज़माने की है, कार्य-कुशल है, परिश्रम करती है; उससे नहीं देखा जाता कि बहू बैठे-बैठे मक्खी मारे और रोगिणी हो जाय. यदि वह बहू को शारीरिक परिश्रम के लिये उपदेश देती है, तो क्या बेजा करती है।

× × ×

एक दृष्टि कुछ अमीर घरों पर भी डालिए। वहाँ तो चक्की और मूसल का शब्द सुनना भी पाप है। सामान बाज़ार से आता है। हर काम के लिये नौकर मौजूद हैं। खाना खिलाने के लिये भी तो नौकर हैं, क्योंकि देवीजी को चौके तक जाने में कहीं धुआँ न लग जाय। बाबू साहब तो नौकरी-चाकरी, रोज़गार, वकालत, डॉक्टरी, रियासत के प्रबंध आदि के सिलसिले में कुछ-न-कुछ परिश्रम करते भी हैं, परंतु बहुआइनजी को परमात्मा ने इन सब झगड़ों से फ़ुरसत दे दी। स्वास्थ्य को भी इन्हीं झगड़ों में से एक समझना चाहिए।

× × ×

मुझे कई आपसी अमीर घरों की स्त्रियों के प्रायः कष्ट-साध्य रोगों में चिकित्सा करने का भी अवसर मिला है। जब डॉक्टरों, वैद्यों की चिकित्सा से कुछ लाभ न हुआ, और उन पर धन-लोलुपता का संदेह होने लगा, तो हितैषी चिकित्सक की हैसियत से मैं बुलाया गया। मैंने एक पूजा के द्वारा उन देवियों को नीरोग कर दिया। पूजा यह थी कि रोगिणी अपने हाथ से पिसे आटे से स्वयं रोटी तैयार करे

मैं इसे मानने के लिये तैयार हूँ कि अँगरेज़ियत में भी कुछ अच्छे तत्व हैं, अँगरेज़ों के रहन-सहन में भी कुछ अमूल्य चीज़ें हैं। परंतु मुझसे यह नहीं माना जाता कि बिना देश-काल का विचार किए हुए सभी अँगरेज़ियत के ढंग हिंदुस्तानियों के लिये उपयोगी हो सकते हैं। दीन-हीन भारतीय की झोपड़ी के कच्चे आँगन के लिये ताज़ा गोबर वही काम करता है, जो अमीर अँगरेज़ या अँगरेज़ियत-प्रिय हिंदुस्तानी के लिये फ़िनाइल। भारतवर्ष के समान उष्ण देश की महिला के लिये साड़ी वही काम देती है, जो शीत-देश-निवासिनी देवी के लिये मोज़े, साया, फ़र आदि। आपसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए यह भी कहता हूँ कि हमारी ललनाओं के लिये चक्की और मूसल उससे अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं, जो विदेशी विलास-प्रिय महिलाओं को टेनिस और बैडमिंटन आदि से मिलता है। एक क्षण के लिये भी मेरा यह अभिप्राय नहीं कि जो भारतीय स्त्रियाँ उपर्युक्त खेल खेलना चाहें, वे न खेलें। अवश्य खेलें, बल्कि अपने नए-नए खेल निकालें। मेरा तात्पर्य केवल यह है कि जिन भारतीय महिलाओं के पास इतना धन नहीं, इतनी स्वतंत्रता नहीं, वे पलँग तोड़-तोड़कर अपना स्वास्थ्य क्यों बिगाड़ें?

× × ×

इतना लिख चुकने पर फिर मेरी लेखनी इस संकोच में पड़ गई है कि कहाँ तो चारो ओर स्त्रियों और पुरुषों के समान अधिकार की चर्चा हो रही है, और कहाँ मैं स्त्रियों से कुटौनी-पिसौनी कराना चाहता हूँ। मेरा यह राग बेसुरा प्रतीत होता है। फिर भी यदि आप मेरे सच्चे भाव पर विचार करेंगे, तो मुझे इस धृष्टता पर क्षमा करेंगे। अब तो पर्दे का रूप कुछ अनिवार्य-सा हो गया है, और गृह-कार्य न करने की एक बीमारी-सी स्त्रियों में फैलती जाती है। इसलिये उन्हें घर कारागार-सा दिखाई देता है। पहले भी पर्दे की प्रथा थी, परंतु स्त्रियाँ अपने घर के कार-बार में इस प्रकार संलग्न रहती थीं कि उन्हें बाहर निकलने का अवकाश ही न मिलता था। परिश्रम का फल उन्हें यह मिलता था कि वे नीरोग रहती थीं।

× × ×

केवल किसी के कह देने से कोई बात सच्ची नहीं हो जाती। शहर की तो बात ही नहीं, आप किसी भी ऐसे गाँव में चले जाइए, जिसके कोस-दो-कोस के अंदर कहीं आटे की कल हो। अनुसंधान कीजिए कि दो सौ घरों के उस गाँव में कै घरों में जाँते का प्रयोग होता है। बस, आपको स्वयं ही मेरी बात का प्रमाण मिल जायगा। यह भी बात नहीं कि उस परिश्रम के बदले स्त्रियों ने किसी नए परिश्रम में हाथ डाला हो। पीसना छूटा, कूटना छूटा, चर्खा चलाना छूटा, सीना-बुनना, काढ़ना छूटा; इन सब के बदले में आया क्या? सास-ननद से लड़ना और पतिदेव को श्वशुरदेव से पृथक् करने की चेष्टा करना। सास कुछ पुराने ज़माने की है, कार्य-कुशल है, परिश्रम करती है; उससे नहीं देखा जा[ता] कि बहू बैठे-बैठे मक्खी मारे और रोगिणी हो जाय। यदि वह बहू को शारीरिक परिश्रम के लिये उपदे[श] देती है, तो क्या बेजा करती है।

× × ×

एक दृष्टि कुछ अमीर घरों पर भी डालिए। वहाँ [तो] चक्की और मूसल का शब्द सुनना भी पाप है। सामान बाज़ार से आता है। हर काम के लिये नौक[र] मौजूद हैं। खाना खिलाने के लिये भी तो नौकर [है], क्योंकि देवीजी को चौके तक जाने में कहीं धुआँ लग जाय। बाबू साहब तो नौकरी-चाकरी, रोज़गा[र], वकालत, डॉक्टरी, रियासत के प्रबंध आदि के सिलसि[ले] में कुछ-न-कुछ परिश्रम करते भी हैं, परंतु बहुआइन[ों] को परमात्मा ने इन सब झगड़ों से फ़ुरसत दे दी। स्वास्थ्य को भी इन्हीं झगड़ों में से एक समझना चाहिए।

× × ×

मुझे कई आपसी अमीर घरों की स्त्रियों के प्राय[ः] कष्ट-साध्य रोगों में चिकित्सा करने का भी अवसर मिला है। जब डॉक्टरों, वैद्यों की चिकित्सा से कु[छ] लाभ न हुआ, और उन पर धन-लोलुपता का संदे[ह] होने लगा, तो हितैषी चिकित्सक की हैसियत से [मुझे] बुलाया गया। मैंने एक पूजा के द्वारा उन देवि[यों] को नीरोग कर दिया। पूजा यह थी कि रोगिणी अपने हाथ से पिसे आटे से स्वयं रोटी तैयार क[रे]

समाज-सुधार

हमारा पतन

कहाँ से कहाँ आ गिरे, कितनी जल्दी हमारा पतन हो गया। एक समय था, जब सारे संसार पर हमारा आतंक छाया हुआ था—हमारी प्रभुता सभी मानते थे—सारे देश हमें मस्तक झुकाते थे, आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। आज हमें सभी घृणा की दृष्टि से देखते हैं, हमारी वर्तमान स्थिति पर सभी थू-थू करते हैं, पराधीन भारत को अपने बराबर आसन देना अपना अपमान समझते हैं, हमें असभ्य और गुलाम कहकर हमारा तिरस्कार करते हैं, हमें ठुकरा देते हैं। वास्तव में देश और समाज की दशा इतनी शोचनीय हो गई है कि ध्यान आते ही हृदय काँप उठता है।

जिस समय सारा संसार आगे बढ़ रहा है, उस समय हमारा समाज अवनति कर रहा है। हमारी बुद्धि पर ऐसा तुपार-पात-सा हो गया है कि हमारी समझ में साधारण बातें भी नहीं आतीं। हम भूत-प्रेतों में विश्वास करते हैं, कीड़े-मकोड़ों की आराधना करते हैं। हम अब भी यही समझते हैं कि वृक्षों पर जल चढ़ाने से, पत्थरों पर पुष्प-वर्षा करने से, भगवान् हमारे लिये स्वर्ग में एक सुंदर स्थान निर्दिष्ट कर देंगे। हमारा अब भी यही विश्वास है कि लक्ष्मी की टकेवाली मिट्टी की मूर्ति के पूजन से हम कुबेर हो जायँगे, सरस्वती की चीनी की प्रतिमा के सामने नाक रगड़ने से बृहस्पति बन जायँगे, और विष्णु के काल्पनिक चित्र को सिर नवाने और बताशे चढ़ाने से हम अमर हो जायँगे। जब कि वैज्ञानिकों ने बिलकुल सिद्ध कर दिया है, और सर्व-साधारण के सामने स्पष्ट कर दिया है कि सूर्य-ग्रहण और चंद्र-ग्रहण किस प्रकार पड़ते हैं, तब भी हम अपने पुराने विश्वास पर अड़े हुए हैं—राहु-केतुवाली कहानी को उसी श्रद्धा से मानते हैं। वैज्ञानिकों ने हमें अपनी खोजों द्वारा बता दिया है कि सागर का जल क्यों खारी है, परंतु अब भी हम यही मानते हैं कि अगस्त्यजी ने लघुशंका कर दी थी, इसी कारण सागर का जल खारी है। कैसा वैज्ञानिक कारण भारतवर्ष संसार के सामने उपस्थित कर रहा है! दिन को रात और रात को दिन बताना तथा जान-बूझकर आम को इमली कहना हमारी बुद्धि और भविष्य के परिचायक हैं। हम निकृष्ट-से-निकृष्ट

काम, बुरे-से-बुरे पाप करते हैं, और अब भी गंगा में दो डुबकियाँ लगाकर अपने को पाप-रहित समझने लगते हैं। यह अंध-विश्वास, यह बुद्धि-हीनता, यह जड़ता, यह अज्ञानता कब दूर होगी, मालूम नहीं।

हमारे समाज में जाति-पाँति के प्रश्न ने भी एक जटिल समस्या उपस्थित कर रक्खी है। देश के सभी नेता एकस्वर से कह रहे हैं कि भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध में जाति-भेद के कारण बड़ी बाधाएँ पड़ती रही हैं, और अब भी यह जाति-पाँति का प्रश्न रोड़े अटकाता है। ऐसी दशा में हमारा क्या कर्तव्य है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

कैथालिक हिंदुओं का कहना है कि नहीं, वर्ण-व्यवस्था नहीं मिट सकती—धर्म इसी के सहारे टिका है। वर्णों की उत्पत्ति कहाँ से हुई? इसका उत्तर भी अद्भुत ही मिलता है। धर्म-धुरंधरों का कहना है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ब्रह्माजी की खोपड़ी, कंधे, जंघा और चरणों से निकले हैं! कौन जाने, निकले होंगे। भारतवर्ष के लिये यह कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं। जब सीताजी का जन्म पृथ्वी फोड़कर और कर्ण महाराज का प्रसव कर्ण-कुहर से हुआ, तो धर्म-धुरंधरों का यह कहना कि ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि का जन्म ब्रह्मा की खोपड़ी-कंधों आदि से हुआ, कोई नई तथा अविश्वसनीय बात नहीं। हम तो उन धर्म-धुरंधरों की बुद्धि की सराहना करते हैं, उनके इस अलौकिक उत्तर पर बधाई देते हैं। इस मिथ्या विश्वास ने धीरे-धीरे हमारा सर्वनाश कर डाला है। चारो वर्णों का क़ीमा-सा बन गया है। किसी समय भारतवर्ष में समाज के केवल चार अंग थे, आज उन्हीं चार वर्णों के बीच २,३०० जातियाँ हो गई हैं।

जो हमारे सिरमौर थे, ज्ञान और शिक्षा देते थे, आज वे इक्के हाँकते हैं, हमारे घरों में रोटियाँ सेकते हैं। जो हमारी रक्षा करते थे, हमारे लिये प्राणों की बाज़ी लगा देने को हर समय तैयार रहते थे, आज वे और ही मद में चूर हैं। देश का सर्वनाश करने पर तुले हैं। सभी जातियाँ अकर्मण्य हो रही हैं। धार्मिक अंधेर ने हमारे समाज पर एक गहरी कालिख लगा दी है। इस जाति-भेद ने ही छः कोटि से अधिक नर-नारियों का जीवन पशुओं से भी अधिक हेय बना रक्खा है। छः कोटि मनुष्यों को हम अछूत और पराया कहकर अपने से दूर ही रखते हैं। हमारे ही-जैसे हाड़-चामवाले, हमारी ही तरह आशाओं, इच्छाओं और बुद्धि-बल रखनेवाले मनुष्यों को हम अस्पृश्य बना निकट नहीं फटकने देते। वे धर्म-ग्रंथों के पढ़ने के अधिकारी नहीं, तब भी उनसे यह आशा की जाती है कि वे धर्मानुकूल चलें। वे पाठशालाओं और देव-स्थानों में प्रवेश नहीं कर सकते, वे हमारे कुएँ से जल नहीं भर सकते, वे हमारी सड़कों पर चल नहीं सकते—कैसा अन्याय है!

दक्षिण-प्रांतों में अछूत कहानेवाले जीवों का जीवन दुस्सह हो उठा है। हमारा अन्याय और अत्याचार चरम सीमा को पहुँच चुका है। अछूतों की श्रेणी में वहाँ क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी की गिनती है। वहाँ ब्राह्मण और शूद्र, केवल दो ही जातियाँ समझी जाती हैं। ब्राह्मण दक्षिण में राजा हैं, देवता हैं, महात्मा हैं, सिद्ध हैं, साक्षात् भगवान् हैं; और अन्य जातियाँ शूद्र हैं, याचक हैं, पापी हैं, नीच तथा अधम हैं, साक्षात् चांडाल-मूर्ति हैं। शूद्र की दृष्टि पड़ने से भोजन अपवित्र समझा जाता है, वह भोजन दूषित तथा अखाद्य हो जाता है। शूद्रों को अधिकार नहीं कि ब्राह्मणों के मुहल्लों की पवित्र गलियों में पैर रख सकें, या उनकी बाज़ार में सौदा कर सकें। दक्षिण-प्रांतों में शूद्र को प्लेग के चूहे से अधिक अस्पृश्य तथा अपवित्र समझते हैं। एक समय मदरास के डाक-विभाग में बाहर से एक नया अफ़सर नियुक्त होकर आया था। उस बेचारे को इधर के आचार-व्यवहार, छुआ-छूत आदि के झगड़ों का पता न था। उसने एक शूद्र पोस्टमैन को ब्राह्मणों के मुहल्ले में चिट्ठी बाँटने पर नियुक्त कर दिया। वह पोस्टमैन बेचारा घबराया हुआ पहुँचा, और उसने साहब से बड़ी अनुनय-विनय की। कहा—"हुज़ूर, मार डाला जाऊँगा, मैं ज़िंदा न बचूँगा!" यही शब्द बार-बार दुहराता रहा। साहब ने यह कहकर कि "नहीं, हुक्म की तामील करनी पड़ेगी," उस पोस्टमैन को विदा कर दिया। क्या करता, बेचारा रोता-झीकता चल दिया। न जाता, तो आज्ञा की अवहेलना करने के अपराध पर ग़रीब की नौकरी तक

पर आ बनती। जाने को तो गया, मगर ब्राह्मणों को ख़बर लग चुकी थी कि आज उनके मुहल्ले में शूद्र पोस्टमैन प्रवेश करेगा। पोस्टमैन बड़ा साहस करके मुहल्ले में घुसा, उसके हाथ-पैर काँप रहे थे, एक क़दम चलना उसके लिये भारू हो रहा था। अभी दो ही एक पत्र बाँट पाया था कि ब्राह्मणों के एक जत्थे ने घेर लिया। निस्सहाय डाकिया चिल्ला उठा। उसकी आँखों के सामने मौत का भयंकर दृश्य नाच गया। बात-की-बात में उसके ऊपर लात-घूँसों और खड़ाउओं की वर्षा होने लग गई। चीख़ा, चिल्लाया, लाख मिन्नतें कीं, मगर उन नर-पिशाच ब्राह्मणों का पाषाण-हृदय न पिघला। घड़ी-भर में मार-पीटकर सब अपने-अपने घर में जा घुसे। घटना-स्थल पर रक्त के अथाह-सागर में आहत डाकिया अचेत पड़ा था। कुछ देर में उसे होश आया। उसने अपने को अस्पताल में एक खाट पर पड़ा हुआ पाया। पुलीस के हाथ में मामला पहुँच चुका था। डाक-विभाग के बड़े अफ़सर, जिन्होंने यह नियुक्ति की थी, यह ख़बर पाकर चौंक उठे। पोस्टमैन के अनुनय-विनय और 'हुज़ूर मार डाला जाऊँगा' आदि वाक्यों का अभिप्राय क्या था, वह ख़ूब समझ गए।

जाति-भेद के कारण, ऊँच-नीच के विचार के कारण, नित्य ही दक्षिण-प्रांतों में ऐसी रोमांचकारी घटनाएँ हुआ करती हैं। पाठक सुनेंगे, और सुनकर क्रोध से काँप उठेंगे। उस दिन की बात है कि स्वर्गीय लाला लाजपतराय मदरास-प्रांत के एक नगर के सुप्रसिद्ध होटल में जाकर ठहर गए। तुरंत ही होटल का अध्यक्ष दौड़ा हुआ आया, और लाला लाजपतराय से प्रश्न किया कि आपकी जाति क्या है। यह सुनकर कि एक वैश्य ने उनके होटल में आसन जमा दिया है, उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसने तुरंत लालाजी से कह दिया कि इस होटल में शूद्रों को खाट नहीं दी जाती। यदि आप ठीक समझें, तो अमुक होटल में चले जायँ। होटल के मैनेजर ने कैसे अपमान-जनक शब्दों से देश के एक पूज्य नेता का स्वागत किया! पंजाब-केसरी यह अपमान सहन न कर सके। तुरंत उस होटल को ठुकराकर चल दिए।

ऐसी एक घटना हो, तो सुनाऊँ। पाठक सुनते-सुनते रो उठेंगे, हृदय भर आवेगा, परंतु इन कहानियों का क्रम न बंद होगा। छः कोटि नर-नारियों की ऐसी अवस्था होने का अपराध धर्म के ठेकेदारों के मस्तक पर है। हिंदू-समाज के लिये ही नहीं, वरन् सारे देश के लिये यह एक भारी कलंक है। क्या अधिकार है कि हम किसी को अपने से नीच समझें? ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को समान बनाया है, समाज को क्या हक़ है कि किसी को हेय दृष्टि से देखे? जिन अछूतों को हम पतित समझते हैं, उन्हें यदि हम अवसर दें, तो वे हम पर शासन करके दिखा सकते हैं, वे अपनी प्रतिभा से हमारी आँखें चकाचौंध कर सकते हैं, वे क्षण-भर में अपनी शक्ति और बुद्धि-बल से संसार से अपना लोहा मनवा सकते हैं। हमारा मिथ्या अभिमान, हमारा झूठा गर्व क्षण-भर में वे चूर-चूर कर सकते हैं। परंतु हम उन्हें मस्तक ऊपर उठाने का अवसर तो दें।

पृथ्वीपालसिंह

---

१. काव्य

त्रिवेणी—लेखक, श्रीपद्मकांतजी मालवीय ; प्रकाशक, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग; मूल्य २)

'त्रिवेणी' 'पद्म'जी की कविताओं का संग्रह है। हिंदी के आधुनिक कविता-काल में पद्मजी का समावेश होता है। छायावाद, रहस्यवाद, मायावाद, कायावाद आदि सैकड़ों 'वादों' की गड़बड़ में हिंदी-काव्य का जो कचूमड़ निकल रहा है, पद्मजी की कविताएँ उस कचूमड़-वाद से काफ़ी दूर हैं। अव्यक्त, अलौकिक और अनंत आनंद का उपभोग करनेवाली अनंत-वादिनी कवि-मंडली के उस व्यर्थ तथा वितंडात्मक शब्द-जाल में पड़कर भाव तथा अर्थ-हीन हिंदी-कविता जल-हीन मीन के समान तड़प रही है। परंतु नवीनता पर मर मिटनेवाला कवि-समाज औचित्य-अनौचित्य, समय-कुसमय, सार्थ और निरर्थ तथा सार-असार का विचार किए बिना ही शब्दों का एक विचित्र वितान बनाए चला जा रहा है। भोला-भाला पाठक सुंदर शब्दों की दूकान में कविता-माधुर्य की खोज में जाकर ऐसा बेवक़ूफ़ बनता है कि उसे हिंदी-कविता से एकदम अरुचि-सी हो जाती है। पद्मजी ने अपने को इस आधुनिक भेड़-चाल से दूर रखकर ये रचनाएँ की हैं। उनमें एक रस है, एक भाव है, एक अर्थ है। वे छायावादी उद्देश्य-हीन उड़ान नहीं हैं। वे हैं एक युवक-हृदय के—उस हृदय के, जिसमें उष्ण रक्त का संचार होता है—स्वाभाविक उद्गार। वे कामी पुरुषों के प्रणय-प्रकाशन के समान कृत्रिम शब्दों और अर्थों की कविता-नामक दिखावटी संग्रह नहीं हैं। पद्मजी की कविता की यही एक बड़ी तारीफ़ है। 'त्रिवेणी' में अनेक ढंग की, अनेक विषय पर और विभिन्न भाषाबद्ध कविताएँ संगृहीत हैं। उनमें यद्यपि उच्च कोटि की प्रतिभा का स्वाद नहीं मिलता, यद्यपि वहाँ भावमयी कल्पना की उड़ान उतनी ऊँची नहीं है तथापि वे हृदयग्राहिणी और स्तुत्य हैं। संगीत, भाषा तथा छंद की कुछ अशुद्धियाँ, जो संभव है कवि महोदय की उपेक्षा के कारण, पुस्तक में विद्यमान हैं—आशा है, अगले संस्करण में दूर कर दी जायँगी। छपाई की भी कुछ ग़लतियाँ रह गई हैं। वैसे पुस्तक सुंदर छपी है तथा चित्रों के कारण उसमें और भी शोभा आ गई है। इसीलिये शायद मूल्य इतना अधिक है।

× × ×

२. फुटकल

हिंदू-राज्य तंत्र (पहला खंड)—मूल लेखक, श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ; अनुवादक, श्रीरामचंद्र वर्मा ; प्रकाशक, नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग ; मूल्य ३॥)

यह पुस्तक सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला की नवीं मणि है और जायसवालजी की अँगरेज़ी की 'Hindu Polity'-नामक प्रसिद्ध पुस्तक के प्रथम खंड का अनुवाद है । जायसवालजी की गवेषणा और ऐतिहासिक खोज जगत्-प्रसिद्ध है । उसके लिये परिचय की आवश्यकता नहीं । प्राचीन भारत के गौरव को विदेशियों के सामने रखने में आपने बड़ी योग्यता प्रदर्शित की है । हिंदू-राज्य-तंत्र भी आपकी उसी योग्यता और गवेषणा का परिणाम है । हिंदू-राज्य-तंत्र दो भागों में विभक्त है । प्रथम खंड में वैदिक समितियों और गणों का और दूसरे में एक-राज तथा साम्राज्य-शासन-प्रणालियों का वर्णन है । यह प्रथम खंड वैदिक काल की आधुनिक स्विट्ज़रलैंड की-सी समिति-शासन-प्रणाली महाभारत, पाणिनि तथा तदनंतर काल की गण-तंत्र-प्रणाली, यूनानियों द्वारा वर्णित हिंदू वैध-शासन-प्रथा, मौर्य और शुंग-कालीन प्रजातंत्र-रीति, गुप्त-कालीन प्रजातंत्र प्रणाली तथा विविध प्रजातंत्रों के ऐतिहासिक विवरण, न्याय-व्यवस्था, मानव-विज्ञान आदि प्राचीन राजनीतिक समस्याओं पर बड़ा ही तीव्र प्रकाश डालता है । हिंदुओं की महान् राज्य-कल्पना का एक विशद चित्र सामने रख देता और संसार के सामने असभ्य समझे जानेवाले हम हिंदुओं का अवनत मस्तक गौरव से समुन्नत कर देता है । वैषयिक उत्तमता की दृष्टि से पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है । परंतु अनुवाद के विषय में हमें दो-चार शब्द कहना है । अनुवादक महाशय अन्य कई ग्रंथों का सफल अनुवाद कर चुके हैं । उनके उन अनुवादों की भाषा और इस अनुवाद की भाषा में कुछ भिन्नता है । हिंदू-राज्य-तंत्र की भाषा कुछ अधिक क्लिष्ट हो गई है । वह साधारण जनता के समझने योग्य नहीं रही है । पारिभाषिक शब्दों की बहुलता ने उसे ऐसा नीरस बना दिया है कि वर्माजी की रसमयी लेखनी का उसमें स्वाद ही नहीं मिलता । परंतु वर्माजी भी क्या करते ? विषय ही ऐसा वैज्ञानिक है कि उसमें उन शब्दों का आना अनिवार्य-सा था । उसका शायद एक ही उपाय था । वैज्ञानिक शब्दों का उपयोग—अधिक उपयोग—किए बिना ही यदि किसी तरह काम चलाया जाता, तो साधारण जनता के लिये पुस्तक शायद इतनी क्लिष्ट न हुई होती । बोलचाल की भाषा का बायकाट भी कुछ खटकता है, किंतु अनुवादक के मार्ग की कठिनाइयों का ध्यान रखते हुए यह भी ग़नीमत है । नागरीप्रचारिणी सभा जब तक बाबू श्यामसुंदरदासजी की कृत्रिम भाषा-शैली का अनुकरण करेगी, तब तक उसकी देख-रेख में निकली हुई पुस्तकें कभी बोलचाल की भाषा में नहीं निकल सकतीं, क्योंकि विद्वत्ता-पूर्ण संपादन पर ही अधिक ध्यान रखने की सभा ने क़सम-सी खा ली है । आज तक सर्व-साधारण के समझने योग्य भाषा में बहुत कम पुस्तकें सभा ने प्रकाशित की हैं । इसीलिये सभा की पुस्तकों का जनता में इतना आदर नहीं है । अनुवादों के विषय में तो सभा की यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई है कि उसके द्वारा प्रकाशित अनुवाद-ग्रंथ केवल संस्कृतज्ञ हिंदी-विद्वानों के ही समझने की वस्तु होते हैं । इतर जनता उन अनुवादों की उपयोगिता से वंचित रहती है । हमारी समझ में नहीं आता कि अधिकतर अँगरेज़ी, बँगला आदि जाननेवाले हिंदी-विद्वानों के लिये अँगरेज़ी और बँगला-पुस्तकों के हिंदी-संस्कृत-अनुवाद प्रकाशित करने में सभा ने क्या उपयोगिता समझी है । अनुवाद ही यदि कराना था, तो ऐसी भाषा में कराया जाता जिसे सब लोग अच्छी तरह समझ तो सकते । वह अनुवाद ही क्या, जिसे पढ़ने के लिये सभा का वह हिंदी शब्द-सागर—जिसमें रहीम-जैसे प्रसिद्ध हिंदी-कवि की कविता का एक भी कठिन शब्द ढूँढ़े न मिले—ख़रीदना पड़े । अस्तु, वर्माजी का यह अनुवाद भी बाबू-शैली के दोषों से नहीं बचा है । पर यह अनिवार्य दोष वर्माजी का नहीं है, यह तो उस दूषित वायुमंडल का ही परिणाम है, जिसकी देख-रेख में वह प्रकाशित हुआ है । पुस्तक की छपाई-सफ़ाई बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है । अनुवाद की कठिनता और पुस्तक का

उपादेयता को देखते हुए मूल्य १॥) भी बहुत नहीं है।

सुधींद्र वर्मा (बी० ए०)

× × ×

मध्य-कालीन भारतीय संस्कृति—रचयिता, महा-महोपाध्याय, रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ; साइज डिमाई अठपेजी ; पृष्ठ-संख्या २२५ ; चित्र-संख्या १४ ; प्रकाशक, हिंदुस्थान एकेडेमी, प्रयाग ।

यह पुस्तक श्रद्धेय पं० गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा महोदय के तीन व्याख्यानों का संग्रह है, जो हिंदुस्थान एकेडेमी के तत्त्वावधान में, प्रयाग में, हुए थे । इसमें सन् ६०० ई० से १२०० ई० तक की भारतीय संस्कृति पर अत्यंत गंभीरता से, मार्मिक रीति पर, विवेचन किया गया है। ये तीनो व्याख्यान निम्न-लिखित विषयों पर दिए गए है—

(१) धर्म और समाज, (२) साहित्य, (३) शासन, शिल्प और कला ।

उक्त तीनो विषयों पर ऐसा पांडित्य-पूर्ण और विवेचनात्मक वर्णन हिंदी में तो क्या, अन्य भाषाओं में भी देखने में नहीं आया । ओझाजी का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखलाना है। आप हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति और मंगलाप्रसाद-पारितोषिक से पुरस्कृत हो चुके हैं। सोलंकियों का इतिहास, प्राचीन लिपिमाला और राजपूताने के इतिहास द्वारा आपका यशःसौरभ दिगंतव्यापी हो चुका है। उक्त तीनो विषयों में आपका ज्ञान अत्यंत गंभीर और बढ़ा-चढ़ा है। "धर्म और समाज" के संबंध में आपके ये विचार बहुत परिष्कृत और सुधार की ओर ढले हुए हैं। आपके ये विचार एक गंभीर अध्ययन और मनन के पश्चात् निर्धारित हुए हैं। अतः उन संस्कृत-पंडितों को इन पर गंभीरता से विचार करना चाहिए, जो सदैव प्राचीनता की दुहाई देते रहते हैं। ओझाजी का कथन है—(१) मूर्ति-पूजा का प्रचार बौद्ध-काल के पीछे हुआ। प्रारंभ में ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी की पूजा का क्रम विकसित हुआ, फिर अनेकानेक देवों की पूजा का प्रचार समस्त भारत में हो गया। (२) प्राचीन व माध्यमिक काल में पर्दा-प्रथा नाम-मात्र को न थी। (३) बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का प्रचार न था। (४) हिंदू-जाति में धार्मिक सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती थी। (५) जाति-बंधन इतने कड़े न थे, जितने इस समय पाए जाते हैं। और न इतनी अधिक जातियाँ ही थीं। (६) छूत-छात का प्रचार न था, यद्यपि शुद्धता और स्वच्छता का विशेष ध्यान रक्खा जाता था।

साहित्य-विषय पर भी आपने सर्वोत्तम विवेचन किया है। इसमें प्रथम संस्कृत-काव्य, नाटक, चंपू, अलंकार, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, संगीत, धर्म-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र पर विश्लेषणात्मक विचार प्रकट करते हुए अत्यंत विशद वर्णन किया है, जिससे भारतीय प्राचीन संस्कृति का महान् स्वरूप पाठकों के हृदय में एक अपूर्व आनंद का स्रोत प्रवाहित कर देता है। यह साहित्यिक सामग्री हमें उस समय और भी आश्चर्यान्वित कर देती है जब हम विचारते हैं कि यह तो उस महान् भंडार का अवशेष-मात्र है, जो वर्षों के हम्माम गर्म करने, पुस्तकालयों के जलाने तथा अन्य अनेक प्रकारों से नष्ट होकर बच रहने से उपलब्ध हुई है। इसके पश्चात् प्राकृत तथा द्रविड़-साहित्य पर भी विकास-क्रम दिखलाते हुए विचार किया है। अंत में तत्कालीन शिक्षा-पद्धति पर विचार करते हुए आपने साहित्य-विषय को समाप्त किया है। इसके अध्ययन से अनेकानेक नवीन बातें ज्ञात हो जाती हैं, जिनका हम लोगों को पूर्व में बहुत साधारण ज्ञान था।

तीसरे अंतिम व्याख्यान में शासन, शिल्प और कला का विवेचन किया है। माध्यमिक काल में भारतीय शासन की क्या दशा थी ? इसका ओझाजी ने अत्यंत हृदयाकर्षक वर्णन किया है। आपने बताया कि उस समय मंत्री-सभा की सहायता और प्रजा की अनुमति से राज्य का संचालन होता था। ग्राम-पंचायतों का सर्वत्र भारत-भर में प्रचार था, इसी कारण ग्राम-संगठन अत्यंत सुदृढ़ और आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी। स्वल्प ही परिश्रम से भोजनादि के लिये पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था। कृषि, सिंचाई और व्यापार सब उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए थे।

विदेशों को बड़े-बड़े जहाज़ जाते और आते थे,

जिनके द्वारा व्यापार खूब होता था। स्थल और जल-मार्ग दोनो सुरक्षित थे, जिनके द्वारा गमनागमन बहुत होता था। मेले और व्यवसाय की महत्ता आपने भली प्रकार प्रदर्शित कर दी है।

चित्र-कला तो ऐसी परा काष्ठा को पहुँची हुई थी कि आज भी विदेशी दंग हैं। उसका विदेशी चित्र-कला पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता था। वाद्य और गायन के साधन वैज्ञानिक रीति पर निर्धारित किए गए थे। इत्यादि बातों का ओझाजी महोदय ने बहुत ही उत्तमता और मनोहारिणी प्रणाली से विशद वर्णन किया है। इन व्याख्यानों के लिये एकेडेमी बधाई की पात्र है। हम इस संबंध में एकेडेमी को एक यह भी सलाह देने की धृष्टता करते हैं कि उक्त तीनो विषयों पर ओझाजी द्वारा अथवा भिन्न-भिन्न विद्वानों से स्वतंत्र और वृहत् ग्रंथ लिखवाने का आयोजन करे, तो बहुत अच्छा हो।

अंत में, हम श्रीमान् ओझाजी महोदय के प्रति हिंदी-संसार की ओर से आदर के साथ कृतज्ञता प्रकट करते और आशा करते हैं कि भविष्य में और भी उत्तम ग्रंथों का निर्माण कर हिंदी-भाषियों को अनुगृहीत करेंगे।

भगीरथप्रसाद दीक्षित

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) 'सरल भारतीय शासन' (भारतीय शासन-पद्धति का साधारण ज्ञान)—रचयिता, भगवानदास केला ; मूल्य ।।)

(२) 'नागरिक शिक्षा' (सरकार और उसके कामों का साधारण परिचय)—रचयिता, भगवानदास केला ; मूल्य ।।)

(३) 'भावना'—लेखक, स्वामी आनंदभिक्षु सरस्वती ; मूल्य ।।।=)

(४) 'प्रथमा-साहित्य-दर्पण' (हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथम परीक्षा के साहित्य-विषय के प्रश्नोत्तर)—संपादक, पं० बाबूराम बित्थरिया साहित्य-रत्न ; मूल्य १)

(५) 'मुसकान' (सरस सामाजिक उपन्यास)—लेखक, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी ; मूल्य १=)

(६) 'मृत्यु और परलोक'—लेखक, श्रीनारायण स्वामीजी महाराज ; मूल्य ।।=)

(७) 'सुखमय जीवन' (स्वास्थ्य-रक्षा की सर्वोपयोगी पुस्तक)—लेखक, डॉ० कुंदनलाल एम्० आर० ए० एस्० ; मूल्य ।)

(८) 'दिल्ली का व्यभिचार'—लेखक, विद्रोही ; मूल्य १)

(९) 'बिखरे मोती' (मौलिक कहानियाँ)—लेखक, श्रीयुत ऋषभचरण ; मूल्य ।।।)

(१०) 'नौ आँसू' (नौ मौलिक गल्पों का संग्रह)—लेखक, श्रीआत्मारामजी देवकर ; मूल्य १।)

(११) 'पैसे का साथी' (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत ऋषभचरण ; मूल्य १।।)

(१२) 'वेश्या-पुत्र' (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत ऋषभचरण ; मूल्य २।।)

(१३) 'सत्य-कथा-संग्रह' (पाश्चात्य खंड) (ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह)—लेखक, श्रीमान् राजा खलक्कसिंहजू देव ; मूल्य ।=)

(१४) 'टार्ज़न या जंगल का राजा' (दो भाग)—अनुवादक, बा० मथुराप्रसाद खत्री ; मूल्य प्रति-भाग १।।)

(१५) 'सती सुलोचना' (सचित्र नाटक)—रचयिता, श्रीयुत बा० किशनचंदजी ज़ेबा ; मूल्य ।।।)

संपादकीय

१. मज़दूर-दल क्या करेगा ?

ब्रिटिश-शासन में इस समय मज़दूर-दल का बोलबाला होने से भारत के कई भाग्य-हीन नेताओं के दिलों की मुरझाई हुई कलियाँ खिल उठी हैं । हमारे अनेक उदारचेता नेता अपने को मज़दूर और किसान बतलाते हैं, और फलतः मज़दूर-शासन से वे लोग बड़ी-बड़ी आशाएँ रखते हैं । पर साधारणतः मज़दूर-दल का उल्लेख होते ही लोगों के मन में साम्य-वाद, विश्व-प्रेम, शांति, नम्रता तथा राम-राज्य की हवाई कल्पनाएँ उड़ने लगती हैं । यह कैसी भयंकर भूल है, इस बात को लोग नहीं समझना चाहते ।

यह सोचना अत्यंत भ्रमात्मक है कि मज़दूर-दल की सत्ता पूर्णतया प्रतिष्ठित होने से संसार के राजनीतिक क्षेत्र से युद्ध, दमन, अन्याय तथा अत्याचार का नाम भी न रहेगा । असल बात यह है कि दलबंदी किसी भी रूप में हो, वह उपद्रव मचाए बिना न रहेगी । क्या मज़दूर-दल और क्या पूँजी-पतियों का दल, दोनो अपनी-अपनी घात में लगे हैं । धनाधिपतियों का पक्ष प्रबल होने से मज़दूर-दल के ऊपर अत्याचार होगा और मज़दूर-दल का आधिपत्य होने से पूँजीपति लोग हाय-हाय करेंगे । ग़रज़ यह कि दोनो पक्ष अपने-अपने स्वार्थ की धुन में मस्त रहा करते हैं । संसार की शांति के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि कोई विशेष दल प्रबलता प्राप्त करे । इससे राजनीतिक तुला-दंड अवश्य असम रहकर एक तरफ़ को लदा ही रहेगा । या तो मज़दूर-दल लादेगा या उनका प्रतिद्वंद्वी दल । विज्ञ पाठक स्वीकार करेंगे कि यह भिन्नता केवल बाह्य रूप की है । शासन की बागडोर हाथों में आने से प्रत्येक दल अपने पक्ष के स्वार्थ का ख़याल करके उग्र रूप धारण करेगा और इस हालत में मज़दूर-नेता साम्य-वाद का चाहे कैसा ही ढोंग क्यों न रचें, Despotism ही उनका मुख्य धर्म रहेगा । प्रकृति का यही नियम है । मज़दूर-दल संसार के दीन-हीन, क्षुधा-पीड़ित, आर्त श्रम-जीवियों तथा कृषकों के घरों में सुख, शांति तथा समृद्धि की प्रतिष्ठा करने नहीं चला है, यह बात नगाड़ों की चोट से भारत के कोने-कोने में प्रचारित की जानी चाहिए । इस दल-विशेष का उद्देश्य संसार में प्रेम, सौजन्य, करुणा, मैत्री तथा श्री का सुशीतल जल सिंचन करने का नहीं है, यह बात विशेष-रूप से मालूम होनी चाहिए । हमारा तो यह विश्वास है कि

इस दल की प्रबलता होने से संसार में अधिक क्रूर-प्रभावी होगी, स्वार्थ-वृत्तियों का संचार अधिक प्रचंड गति से सकेगा, और Imperialism का तिरोभाव हो भी जायगा, तो Labourism के प्रताप से त्राहि-त्राहि का आर्त-स्वर राजनीतिक वायुमंडल में गूँज उठेगा ; यह राजनीतिक "ism" किसी भी रूप में हो, नाशकारी ही सिद्ध होता है।

मज़दूर सरकार के शासन से यदि किसी को लाभ पहुँच सकता है, तो वह फ़ैक्टरियों, मिलों और खानों में काम करनेवाले विलायती मज़दूरों को। यह आशा अवश्य की जाती है कि विलायत के मज़दूरों की बेकारी के निराकरण के लिये वर्तमान ब्रिटिश-सरकार अवश्य जी-तोड़ परिश्रम करेगी। पर इससे यह नहीं समझा जा सकता कि यह उपाय संसार के दीन-हीन प्राणियों की दुरवस्था के निवारण का श्रीगणेश सिद्ध होगा। कदापि नहीं। और तो क्या, हम तो स्पष्ट ही यह देखते हैं कि स्वयं ब्रिटेन के कृषकों की हालत मज़दूर-शासन में बदतर होती चली जायगी। मज़दूर-दल जब अपने ही देश के कृषकों के दुःखों के प्रति दृष्टिपात नहीं करना चाहता, तो अन्य देशों के संबंध में क्या कहा जाय ! विलायत का यह मज़दूर-दल एक अत्यंत रहस्यमय संस्था है। उसका मुख्य Ambition (चरमाकांक्षा) केवल यह है कि विलायत के पूँजीपतियों के विरुद्ध संग्राम करके फ़ैक्टरियों, मिलों तथा खानों में मज़दूरों का एकाधिपत्य जमाया जाय—मज़दूर ही उनके मालिक हों, और मज़दूर ही उनमें काम करें। यदि यह स्कीम कभी सफल हो जाय, तो दुनिया देखेगी कि 'कैपिटेलिज़्म' का भूत दूसरे रूप में विकटाकार लेकर खड़ा है। वह इन स्वार्थ-जनित उपायों से कभी हट नहीं सकता।

फ़्रांस की प्रसिद्ध ऐतिहासिक क्रांति के समय लोक-सत्ता का स्वप्नमय आदर्श लोगों के मस्तिष्क-पटल में अंकित हुआ था, उसने कैसा अजब धोखा दिया ! फल यह हुआ कि लोक-सत्ता के अत्याचारों तथा अनीतियों के निवारण के लिये अंत को नेपोलियन को Autocracy (एकतंत्र शासन) की प्रतिष्ठा करनी पड़ी। आश्चर्य यह कि लोक-सत्ता के पीछे पागल हुए लोगों ने नेपोलियन के इस Despotism को पसंद किया ! फ़्रांस तथा अमेरिका का वर्तमान 'लोक-सत्तात्मक शासन' कैसे घोर अर्थवाद तथा संकीर्ण राष्ट्रीयवाद द्वारा पंकिल हो रहा है, यह सभी को विदित है। इसके बाद रूस की रक्तोत्तेजक, सर्वनाशी राज्यक्रांति का प्रलय मचा। संसार की दीन-हीन, पतित तथा दलित जातियों ने समझा कि संसार में अब साम्य-वाद तथा राम-राज्य की प्रतिष्ठा का श्रीगणेश हुआ। पर देखा गया कि इस क्रांति से रूस के दीन-हीन कृषक तथा जन-साधारण क्षुधा से अधिक-अधिक पीड़ित होते जाते हैं और ज़ार की व्यक्तिगत नादिरशाही के तिरोभाव के बाद एक दल-विशेष के ज़ुल्म से त्रस्त हैं। सोवियट सरकार capitalism के नाश के लिये आविर्भूत हुई थी, पर अब उसी के साथ मैत्री के लिये लालायित है। ऐसा होना अनिवार्य था। प्रकृति का यह अटल सिद्धांत है।

जो लोग कोरे राजनीतिक उपायों द्वारा संसार में सुख तथा शांति स्थापित करने का स्वप्न देखते हैं, वे घोर अज्ञान के अंधकार में डूबे हैं और बाहर में उज्ज्वल सत्य के प्रकाश में आकर आँख खोलना नहीं चाहते। जब तक वैयक्तिक तथा आत्मा-संबंधी आभ्यंतरिक धर्म मानव-समाज के अंतरतम मर्म में प्रवेश लाभ नहीं करता, तब तक किसी मज़दूर-दल, किसी League of Nation से कुछ भी आशा नहीं की जा सकती। पर ऐसा होना अभी संभव नहीं है—अभी युग बीतेंगे।

मज़दूर-दल हमारे पुरुष-पुंगव नेताओं का भयंकर आस्फालन देखकर, उनकी सिंहोपयुक्त गर्जना सुनकर तथा उनके Ultimatum भयभीत होकर डर के मारे उनके हाथों में स्वराज्य कभी नहीं सौंप देगा। बक़ौल हमारे श्रीमान् अग्रगण्य महोदयों के स्वराज्य तो हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है ! उसे कौन छीन सकता है और कौन दे सकता है ! जिस दिन उस जन्म-गत अधिकार को हम लोग अपनी निजी योग्यता द्वारा आत्मसात करके अपनी आत्मा के उज्ज्वल प्रतिबिंब में उसका सही अनुभव कर लेंगे, उस दिन विश्व की कोई भी शक्ति हमें उससे वंचित नहीं कर सकेगी। तब तक हम लोग कितना ही दहाड़ें, लाख सिर पटकें, कितनी ही मिन्नतें करें, भिक्षा माँगें, लाल आँखें दिखावें, मज़दूर-दल की जयंती मनावें अथवा साइमन कमीशन का बायकॉट

करें, कुछ भी करें, तृण-परिमाण भी उपकार हमारे देश का नहीं हो सकता।

विलायत के मज़दूरों की उन्नति से हमारे देश को या संसार को किसी प्रकार कोई लाभ पहुँचेगा, जिन लोगों के मन में यह आशा बनी है, उन्हें पहले ही सचेत हो जाना चाहिए, हम अंत में केवल यही प्रार्थना करते हैं।

× × ×

२. "अंकल शाम"

मिस मेयो के महत् प्रलाप से भारतवासी अपरिचित नहीं हैं। भारत के जले दिल पर उसने जो नमक छिड़का है, उसके कारण बड़े-बड़े विकट फफोलों की सृष्टि हुई है। इन फफोलों में से दो-एक फफोले बड़ी बुरी तरह से फूट निकले हैं। "Uncle Sham"-नामक सद्यः-प्रकाशित ग्रंथ उनमें से एक है। इसके लेखक हैं, श्रीयुत कन्हैयालाल गोवा। लेखक महाशय ने दिखलाया है कि अमेरिका का वर्तमान शासन घोर कुचक्र-पूर्ण है; वहाँ की सामाजिक स्थिति बंधन-हीन, संयम-रहित तथा जघन्य पाप के कर्दम से पंकिल है; वहाँ कुलांगनाओं और वारांगनाओं में प्रभेद नहीं है; वहाँ के निवासियों की प्रवृत्तियाँ अमानुषिक, निष्ठुर तथा नीच हैं; वहाँ अर्थ और काम की ज्वलंत अग्नि में मनुष्यता की आहुति दी जा रही है।

यह पुस्तक नीति-मूलक है या अनीति-पूर्ण, यह प्रश्न ही दूसरा है। इसके लेखक की प्रवृत्ति प्रतिहिंसा-परायण है या नहीं, यह बात भी इस समय विचारणीय नहीं है। जिस बात से हमारे मस्तिष्क में प्रबल आघात पहुँचा है, जिस भावना ने हमारे हृदय को तीव्र वेग से आंदोलित किया है, वह यह है कि वर्तमान सभ्यता का गार्गन (Gorgon) के समान सम्मोहक पर साथ-ही-साथ सर्पमय विकट रूप दिन-दिन किस अवस्था को प्राप्त होता जा रहा है। प्रदीप्त वासना की किस प्रज्वलाग्नि—जिसे अँगरेज़ी में हम Lurid light कह सकते हैं—द्वारा यह महामाया सभ्यता जगत् की आँखों में चकाचौंध लगाकर क्रूरा सर्पिणी की तरह नग्न नृत्य कर रही है! इसकी अंतिम परिणति कहाँ पर है! किस विलोल-विह्वल महासागर की विस्फूर्जना-फूत्कृत लहरियों के साथ एकप्राण होकर इसकी उद्दाम गति मिलित होगी! मानव-बुद्धि यह बात सोच-सोचकर भँवर में पड़ रही है।

हम इस सभ्यता को गालियाँ दें या मुक्तकंठ से इसकी प्रशंसा करें, अथवा अवाक् होकर मुग्ध नयनों से इसका सकाम रूप निहारते रहें, कुछ समझ में नहीं आता। किस अलौकिक माया के बल से वह इस देव-विमोहक विहार में निमग्न है! भगवान्! मानव जाति को प्रकृति के किस गूढ़ रहस्य के मर्मोद्घाटन में सहायता पहुँचाने के लिये आपने उसे यह किस घोर पैशाचिक, पर साथ ही देव-विनिंदित, माया-जाल में बाँध दिया है!

लेखक ने अमेरिका के नैतिक जीवन का जो ख़ाका खींचा है, वह दिल को दहलानेवाला अवश्य है, पर अतिरंजित किसी प्रकार नहीं है। वहाँ के जीवन के संबंध में अनेकानेक प्रामाणिक पुस्तकें, जो वहीं के लेखकों ने लिखी हैं, उन्हें पढ़ने पर हमारे वर्तमान लेखक की बातें बिलकुल साधारण जँचती हैं। पर फिर भी उन्हें एक बार पढ़ने से हृदय प्रकंपित हो उठता है। मन में यह विचार उत्पन्न होते हैं कि शिक्षा तथा संस्कृति क्या वास्तव में मनुष्य को पतन की इस सीमा को पहुँचा देती है? "आदर्श की उन्नति" के दर्प से स्फीत जाति क्या सचमुच निम्नतम श्रेणी के पशुओं की कोटि को प्राप्त हो सकती है?

बेबिलोनिया की सभ्यता से कभी-कभी वर्तमान सभ्यता की तुलना की जाती है। इसमें संदेह नहीं कि बेबिलोनिया की प्राचीनतम सभ्यता से आधुनिक सभ्यता का कई विषयों में साम्य पाया जाता है। पर इन दोनों में एक मुख्य प्रभेद यह है कि बेबिलोनिया के प्राचीन निवासी कैसे ही नीति-भ्रष्ट क्यों न हों, ख़ुदा का ख़ौफ़ अवश्य रखते थे। पर (Americanism) में The Almighty ख़ुदा के लिये बिलकुल स्थान नहीं है। Dollar (सर्वशक्तिमान डॉलर) ही वहाँ एकमेवाद्वितीयम् परब्रह्म का स्थान अधिकृत किए बैठा है। इसमें संदेह नहीं कि Church के साथ वहाँ के अधिकांश निवासियों का विशेष संबंध रहता है। पर इस संबंध का न होना ही अच्छा था! 'चर्च'-चर्चा की आड़ में जैसी वीभत्स तथा नारकीय पाप-वासनाओं का विलास वहाँ चला करता है, उसका

थांन नहीं हो सकता। इस धर्म-संघ में ईश्वर के नाम पर Mammon की पूजा होती है। उसकी दौलत कोई माल पैदा करता है, तो कोई कामाग्नि में अपनी आत्मा का हवन करता है। इस "आध्यात्मिक संस्था" में अर्थवाद का जो उग्र-रूप पाया जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वहाँ के ब्रह्मचारी 'मिशनरियों' में जो व्यभिचार दृष्टिगोचर होता है, वहाँ की कुमारी 'भिक्षुणी-गण' अपनी जिस 'सच्चरित्रता' का परिचय देती हैं, उसका वर्णन करने से हमारे देश की देव-दासियाँ (यदि वास्तव में अभी तक कहीं उनका अस्तित्व है, तो) लज्जा से सिर झुका लेंगी। Uncle Sham में इन सब बातों का विशेष उल्लेख नहीं है, पर मिस मेयो की विष-भरी बातों का ख़याल करके हमें दुर्भाग्य-वश इनका उल्लेख करना पड़ता है।

निग्रो लोगों पर होनेवाले अत्याचारों तथा 'कू-क्लक्स-क्लान'-जैसी राक्षसी संस्थाओं के अमानुषिक कृत्यों का उल्लेख करना ही वृथा है, जब इस प्रचंड भौतिक शक्ति के मद से उन्मत्त देश के निवासी अपने-अपने स्वार्थ का ख़याल रखकर आपस में ही रात-दिन ख़ून, व्यभिचार, डायवोर्स, डकैती, जालसाज़ी तथा अन्यान्य जघन्य दुराचरणों के कारण सिर-फुटौवल में व्यस्त रहते हैं। हम यह बात मानते हैं कि ऐसे दुराचरण संसार में थोड़ी-बहुत मात्रा में सर्वत्र पाए जाते हैं। तथापि इस अर्थ-काम से पूर्ण देश में इनका ऐसा प्राबल्य है कि देखकर आश्चर्य होता है। अपने स्वार्थ के लिये वहाँ बाप बेटे की नालिश अदालत में करता है, भाई बहन के कुकृत्यों को सिद्ध करने की व्यग्रता दिखलाता है। वहाँ असंख्य माताएँ अपना हृदय कठोर करके असंख्य सद्योजात शिशुओं को त्याग देती हैं और संतान-निग्रह का व्रत ग्रहण कर लेती हैं।

ये सब बातें प्रख्यात और विश्व-विदित हैं। तथापि इन सब घोर अनाचारों के होते हुए भी अमेरिका का सिर वहाँ के विशाल Sky-Scrapers (गगन-चुंबी भवन) की तरह आज धरातल में ऊँचा क्यों है ? इस घोर वास्तविक सत्य की अवज्ञा किसी प्रकार नहीं की जा सकती। इस सत्य का मूल कहाँ पर है, हमें इस बात की खोज करनी होगी। यह बात हँसी में टाल देने या गाली में उड़ा देने लायक़ नहीं है। यह रहस्य अत्यंत विकट है।

हम इस अनंत सृष्टि के मूल में केवल दो शक्तियों की प्रधानता मानते हैं—एक शैतान, दूसरा भगवान्। ये दोनो शक्तियाँ परस्पर-विरोधी होने पर भी प्रायः समान बलशाली हैं। अमेरिका के निवासी शैतान की महिमा से भली भाँति अवगत हो चुके हैं। मय-दानव की उस अलौकिक माया-शक्ति को उन्होंने पूर्ण रूप में अपना लिया है। उस घोर राक्षसी निष्ठुर लीला की नई-नई करामातें वे प्रतिदिन दिखलाते जाते हैं। उन्हें देखकर विश्व विभ्रम में पड़ा है, और अवाक् हो-कर स्तब्ध-भाव से भौचक्का-सा स्थित है।

पर क्या भगवान् की शक्ति के अंश का कुछ भी लेश इस भौतिक सभ्यता में नहीं पाया जाता ? ऐसा कहना अन्यायोचित होगा। शैतान दुष्ट होने पर भी वीर है। वह ख़ुदा का दुश्मन होने पर भी उसके साथ वीरोचित व्यवहार करता है। ख़ुदा की बातों से सह-मत न होने पर भी वह अत्यंत उदारता के साथ उसके विचारों को ग्रहण तथा मनन करता है। इस महत् गुण से आँखों को फिरा लेने से हमारी प्रकृति की संकीर्णता का परिचय मिलेगा। शैतान भगवान् की महत्ता से परिचित है, इसीलिये उसका इतना विद्रोही है! शैतान प्रतिहिंसा-परायण तथा भोग-लिप्सु होने पर भी उसकी भैरव-शक्ति में एक ऐसी उन्मत्तता वर्तमान है, जो हृदय को बेबस अपनी ओर आकर्षित करती है। इस उन्मत्तता को यदि संयम के बंधन में बाँधकर उसका उचित उपयोग किया जाय, तो भगवान् और शैतान के उद्देश्य की एकता होकर शक्ति की दो भिन्न-भिन्न धाराएँ एक रूप में आकर मिलित हो जायँ। विश्व की शांति के लिये इस समय इसी बात की परम आवश्यकता है।

कुछ भी हो, हमारे Uncle S(h)am इस समय गीतगोविंद के श्याम की तरह भोग की नाना उमंगों में बहे जा रहे हैं। जिस दिन वह 'साम' का मर्म समझकर साम्यावस्था अथवा शमावस्था को प्राप्त होंगे, उस दिन महाभारत के कृष्ण उनके गले मिलेंगे। तब तक नहीं।

× × ×

३. मुस्लिम राष्ट्रीय दल

सांप्रदायिक तथा धार्मिक विरोध हिंदू-मुसलमानों में दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। इससे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को कैसी घोर हानि पहुँच रही है, यह बात समझकर भी हमारे अनेक प्रतिष्ठित मुसलमान-भाई अपने उत्कट उद्गारों द्वारा इस विरोधाग्नि में प्रतिदिन घृताहुति डालते जा रहे हैं। इसका परिणाम क्या होगा, देश की संकट-संकुल स्थिति में इन बातों का क्या प्रभाव पड़ेगा, इन बातों पर विचार करने की दूरदृष्टि उन लोगों में नहीं है। स्वामी श्रद्धानंद की पाशविक हत्या से देश का राजनीतिक वायुमंडल विषैला हो ही गया था, महाशय राजपाल की हत्या से पंजाब-प्रांत में यह विष और भी अधिक बढ़ गया। इन दो विख्यात व्यक्तियों की हत्या से कोई बड़ी भारी हानि देश को नहीं हुई। पर इससे हमारे मुस्लिम भाइयों के भीतर दबी हुई उत्कट प्रतिहिंसाग्नि का पता चलता है, जो किसी भी समय उग्र-रूप में बाहर को फूट निकलेगी और रही-सही शांति तथा एकता में भी विध्वंस मचा देगी।

इन सब परिणामों को सोचते हुए, कुछ महीने हुए, महामान्य अंसारी महाशय ने देहली में राष्ट्रीय मुस्लिम नेताओं की एक सभा की। सभा का यह उद्देश्य था कि सांप्रदायिक विरोधों को दूर करने की चेष्टा करके समग्र राष्ट्र के स्वार्थ की सिद्धि पर ध्यान दिया जाय। अंसारी साहब ने अपने भाषण में कई बातें बड़े महत्त्व की कहीं, जिनका उल्लेख हम इस समय स्थानाभाव के कारण नहीं कर सकते। आपने मुसलमानों की धर्मांधता का विरोध बड़े ज़ोरों से किया। हिंदुओं पर भी आपने छींटे कसे, पर बड़ी नम्रता तथा शिष्टता के साथ। कुछ भी हो, राष्ट्रीय दल के मुस्लिम नेताओं की यह सभा महत्त्व-पूर्ण थी। पर खेद है कि इस सभा के उद्देश्य को कार्य-रूप में लाने के लिये कोई चेष्टा अब तक नहीं की गई। हाल में बंबई के प्रधान-प्रधान मुस्लिम-नेताओं ने फिर से यह काम उठाने के लिये समस्त देश के मुसलमान-नेताओं से अपील की है। यह हर्ष का विषय है।

मुसलमानों के राष्ट्रीय दल के विरोधी कई ऐसे-ऐसे प्रभावशाली मुस्लिम-नेता वर्तमान हैं, जिनकी संकीर्ण-हृदयता तथा हठधर्मी से देश को बड़ी भारी हानि पहुँच रही है।

मिस्टर जिन्ना कुछ ही समय पहले कट्टर राष्ट्रीय थे और नेहरू-रिपोर्ट के समर्थक तथा सांप्रदायिकता के विरोधी थे। पर इधर कुछ समय से वह भी सांप्रदायिकता के दलदल में फँस गए हैं। अली-बंधु तो सांप्रदायिक वैमनस्य को बढ़ाकर ही अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रखना चाहते हैं। आता-ह्य हाथ धोकर महासभा के पीछे पड़ गए हैं। वे दोनो किसी तरह भी समझौते के लिये तैयार नहीं हैं। उनकी यह प्रवृत्ति अत्यंत आत्मघाती तथा विनाश मूलक है। सांप्रदायिक वैमनस्य की आग को अधिक भड़काने से कभी मुस्लिम-संप्रदाय लाभवान् तथा विजयी नहीं हो सकता। जब तक दोनो संप्रदाय राष्ट्र के उच्च स्वार्थ पर अपनी दूरदृष्टि स्थापित नहीं करेंगे, तब तक केवल सिर-फुटौवल ही लाभ के अंश में पड़ेगा। इस घृणित सांप्रदायिकता के कारण राष्ट्र के सामग्रिक हित पर धैर्य तथा शांति के साथ विचार करने का अवकाश ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं को प्राप्त नहीं हो रहा है। इसके लिये मुस्लिम राष्ट्रीय दल की एकांत कर्म-निष्ठा तथा सहायता की परम आवश्यकता है।

अली-बंधु तथा जिन्ना साहब आख़िर क्या समझे बैठे हैं? क्या वे लोग वास्तव में अल्प-संख्यकों के अधिकारों के लिये चिंतित हैं? पर उनके अधिकारों को दबाता कौन है? अभी तो मुख्य प्रश्न अधिकारों को प्राप्त करने का है। किसे अधिक अधिकार मिलेंगे और किसे कम, इन बातों पर झगड़ने से उस मुख्य तथा आवश्यकीय राष्ट्रीय प्रश्न का समाधान कदापि नहीं हो सकता, जो सभी संप्रदायों के लिये महत्त्व-पूर्ण है। बड़े आश्चर्य की बात है कि विज्ञ राजनीतिज्ञ होने पर भी अली-बंधु तथा मिस्टर जिन्ना अपने व्यावहारिक ज्ञान की संकीर्णता का परिचय दे रहे हैं। हम आशा करते हैं कि मुस्लिम राष्ट्रीय आंदोलन में देश के अधिकांश मुसलमान नेता सम्मिलित होकर उसे अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

× × ×

४. मेरठ का मामला

राष्ट्रीय पक्ष से इस बात के लिये काफ़ी ज़ोर दिया

गया था कि मेरठ के अभियुक्तों का मामला इलाहाबाद या अन्य किसी बड़े शहर को स्थानांतरित किया जाय। मेरठ के संबंध में कई शिकायतें पेश की गईं। वहाँ राजनीतिक क़ैदियों के पक्ष के वकील-बैरिस्टरों तथा उनके स्वपक्षी गवाहों व संबंधियों के रहने के लिये उपयुक्त मकान नहीं मिल सकते, वहाँ इस मामले के संबंध में नाना तथ्यों तथा तत्वों की जानकारी के लिये उपयुक्त पुस्तकें प्राप्त नहीं हो सकतीं, विज्ञ तथा अनुभवी लोगों से अदालती बातों पर सलाह लेने का सुबीता वहाँ नहीं है, वहाँ की अदालत का कमरा संकीर्ण है और उसमें लोग काफ़ी तादाद में नहीं आ सकते, इत्यादि आपत्तियाँ प्रकट की गई थीं, और प्रार्थना-पत्र में यह निवेदन किया गया था कि मामला मेरठ से स्थानांतरित किया जाय। इलाहाबाद के चीफ़ जस्टिस महोदय ने यह अर्ज़ी बरख़ास्त कर दी। फ़ैसले में आपने कहा कि मेरठ में किसी प्रकार की भी असुविधा नहीं है और ये सब आपत्तियाँ काल्पनिक हैं।

क्यों राष्ट्रीय पक्ष मेरठ में मामले की पैरवी होने के ख़िलाफ़ है और क्यों अधिकारी-वर्ग वहीं होने के लिये ज़िद कर रहा है, ये दोनो बातें हमारी बुद्धि के अतीत और रहस्यमय हैं। राष्ट्रीय पक्ष की आपत्तियाँ यद्यपि बहुत कुछ अंश में हास्य-जनक हैं, तथापि किसी अंश में वे न्यायोचित भी हैं। पर अधिकारी-वर्ग की हठकारिता का कारण हमारी समझ में नहीं आया। शायद इसका कारण यह हो कि इलाहाबाद में गण्य-मान्य नेताओं तथा विज्ञ वकील-बैरिस्टरों की सहायता से सरकार को मामले के ढीला पड़ जाने का डर है। पर हमें पूरा विश्वास है कि राष्ट्रीय पक्ष के हस्तक्षेप से कोई लाभ किसी प्रकार अभियुक्तों को नहीं पहुँच सकता। सरकार का जो विचार है उसे वह कार्य-रूप में परिणत करके छोड़ेगी, यह निश्चित है। फलतः साधारण नीति हमें यह शिक्षा देती है कि इस मामले में किसी प्रकार के विरोध अथवा प्रतिरोध से काम न लेकर संपूर्ण आत्म-समर्पण द्वारा अवज्ञा तथा उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया जाना चाहिए। अभियुक्तों की तरफ़ से न तो कोई सफ़ाई ही दी जाय, न कोई गवाह पेश किया जाय और न कोई मौखिक अथवा लिखित बयान ही दिया जाय। संपूर्ण असहयोग की नीति बरती जानी चाहिए। जो अभियुक्त वास्तव में सरकार द्वारा अपराधी समझे जायँ, उन्हें सरकार सज़ा दे और जिन्हें निरपराध समझे, उन्हें छोड़ दे। इन दोनो दशाओं के प्रति उपेक्षा प्रकट करके उन्हें बिलकुल महत्त्व न दिया जाय। दमन-नीति के प्रति सरकार के उत्साह को ठंडा करने का यही एक-मात्र व्यावहारिक उपाय है। मेरठ के मामले पर आवश्यकता से अधिक महत्त्व आरोपित करके राष्ट्रीय पक्ष ने सरकार को दमन-नीति के प्रति अधिक उत्साहित कर दिया है। सरकार देख रही है कि जब इस प्रकार दमन के आरंभ से ही राष्ट्रीय पक्ष इतना विचलित और हौलदिल हो उठा है, तो यह दवा अचूक जान पड़ती है। इसलिये उचित यह है कि घोर दमन के अवसर पर भी शांत, निश्चल तथा निर्विकार भाव द्वारा सरकार के ज़ुल्म के प्रति अवज्ञा दिखलाकर उसे दिल्लगी में उड़ा दिया जाय। देश की तरफ़ से जो यह उत्कट इच्छा प्रकट की गई है कि मेरठ के अभियुक्त साम, दाम, दंड, भेद—इनमें से किसी भी उपाय से छूट ही जायँ, और इस इच्छा के फल-स्वरूप मामले को मेरठ से स्थानांतरित करने के संबंध में जो प्रार्थना-पत्र दिया गया तथा मज़दूर-सरकार से उद्धार के लिये गिड़गिड़ाकर जो प्रार्थनाएँ की जा रही हैं, इन सब बातों से हमारी निपट नामर्दी, असहायावस्था तथा पुरुषार्थ-हीनता का परिचय मिल रहा है। यही कारण है कि अधिकारी-वर्ग इस मामले को लेकर अभियुक्तों के पक्ष को मदारी के-से नाच नचा रहा है। अतएव हमारे नेताओं की यह दैन्य-वृत्ति अत्यंत घृणित है। सरकार की क्रूर दमन-वृत्ति का विरोध करने के लिये वकालत, अख़बारों के लेख तथा लेक्चरबाज़ी से काम न लेकर वैराग्य, विवेक तथा पुरुषार्थ के उपयोग द्वारा अवज्ञा की नीति बरतनी होगी।

× × ×

५. श्रीयुत रामानंद चटर्जी की गिरफ़्तारी

संडर लैंड महोदय की 'India in Bondage' नाम की पुस्तक प्रकाशित करने के अपराध में राजद्रोह के अभियोग में 'प्रवासी' तथा 'माडर्न रिव्यू' के वयोवृद्ध तथा सुयोग्य संपादक श्रीयुत रामानंद चटर्जी

गिरफ़्तार किए गए हैं। इस बात से स्पष्ट ही विदित होता है कि इस बार सरकार की दमन-नीति का चक्र कैसे जटिल तथा कुटिल-रूप में चल रहा है। रामानंद बाबू-जैसे शांति-प्रिय व्यक्ति को गिरफ़्तार करके सरकार अपना क्या गूढ़ अभिप्राय सिद्ध करना चाहती है, हम कह नहीं सकते। तथापि यह बात सुबुद्धि-परिचायक नहीं जँचती।

संडर लैंड महाशय की बातों में क्या अनोखा विष भरा है, कुछ मालूम नहीं होता। हमें तो उनकी बातों में आज तक गांभीर्य तथा युक्ति-पूर्णता का ही परिचय मिलता था। पर आज मालूम हुआ कि उनके विचारों का प्रचार करके रामानंद बाबू ने भारत में राजद्रोह फैलाने की चेष्टा की है। आजतक चटर्जी महाशय 'माडर्न रिव्यू' में जो नोट लिखते आए थे, उनसे शायद राज-भक्ति झलकती होगी। अन्यथा क्या वह नोटों को लिखने के अपराध में न पकड़ लिए जाते? अतएव उनका सारा अपराध 'India in Bondage' को प्रकाशित करने का ही है। पर यह पुस्तक भी आज की छपी नहीं है। आज अचानक क्या अनोखा ख़्वाब देखा गया?

रामानंद बाबू की गिरफ़्तारी का फल यह होगा कि जो लोग आज तक राजनीतिक क्षेत्र में दूर ही से शांति तथा युक्तिपूर्वक अपने विचार प्रकट कर रहे थे, वे भी अब सचेष्ट रूप से उसके कर्म-चक्र में फाँद पड़ेंगे। आगामी सत्याग्रह-आंदोलन में जिस तरह लोगों का जोश और उत्साह अधिक-अधिक वृद्धि को प्राप्त हो, सरकार अभी से इस उपाय में लगी है।

इस बार सरकार की नीति में एक विशेष बात यह पाई जाती है कि जो लोग मनसा, वाचा के अतिरिक्त कर्मणा भी उसके विरुद्ध युद्ध-कार्य में लगे हैं, उन्हें वह अभी से गिरफ़्तार नहीं करना चाहती। कारण कुछ भी हो, पर बात यही है। जो लोग पूर्ण-रूपेण अपने को कम्यूनिस्ट बतलाते हैं, जिन्होंने 'कम्यूनिज़्म' पर एक-आध पुस्तकें भी लिखी हैं, ट्रेड-यूनियनों में जिनका विशेष प्रभाव रहता है, उन्हें गिरफ़्तार न करके मेरठ षड्यंत्र के मामले में ऐसे-ऐसे नगण्य, कर्महीन तथा तुच्छ व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया है, जो कम्यूनिज़्म के वास्तविक उद्देश्यों से ही भली भाँति परिचित नहीं हैं। इसी तरह ऐसे-ऐसे संपादक तथा लेखकों के ऊपर दमन-चक्र चलाया जा रहा है, जिन्होंने कभी सचेष्ट रूप से राजनीतिक मामलों में भाग नहीं लिया। हम सरकार को इस क़दर बेवक़ूफ़ नहीं समझते कि वह इन बातों को नहीं समझ रही है। वह जान-बूझकर इस रहस्यमय नीति के अनुसार चल रही है। अतएव......!

× × ×

६. अफ़ग़ानिस्तान की वर्तमान स्थिति

अमानुल्ला गए, इनायतुल्ला गए, नादिरख़ाँ भी विशेष सफलता लाभ नहीं कर रहे हैं। आख़िर बच्चाजी अपनी ही स्थिति पर डटे रहे। संसार के इतिहास में ऐसी अद्भुत घटनाएँ बहुत कम देखी जाती हैं। क्या-क्या हवाई कल्पनाएँ अमानुल्ला के मानस-गगन में उड़ रही थीं, जब वह विलायत से लौटकर आए थे! अपने जटिल प्रदेश-रूप दुर्गम पथ-पूर्ण तथा असभ्य प्रजा-पुंज-समाकुल देश के सुधार के संबंध में कैसी-कैसी आशाएँ उनके हृदय में हिलोरें मार रही होंगी! पर भगवान् की इच्छा ही दूसरी थी। अमानुल्ला पूर्व-जन्म के कर्म-चक्र के फेर से अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह होकर पैदा हुए थे, पर वह उस देश के योग्य कदापि नहीं थे। कुछ भी हो, उनके लिये अब दुःख प्रकाश करना वृथा है। वह गए।

नादिरख़ाँ ने अभी पूरी तरह से हार नहीं मानी है। वह अभी अपने चक्रों में सचेष्ट हैं। वह अभी तक भीतर-ही-भीतर नाना प्रयत्नों में लगे हैं। निश्चित-रूप से कुछ कहा नहीं जाता कि उनकी विजय होगी या नहीं। बच्चा-शक़ा दिन-दिन अपनी स्थिति को दृढ़ करता जाता है। उसकी नादिरशाही से सारा देश त्रस्त है। पर प्रकृति का यह नियम है कि ऐसे Upstart (आकस्मिक-उच्च-पद को प्राप्त होनेवाले) जीव कभी अधिक काल तक एक ही स्थिति में स्थिर नहीं रह सकते। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, एक दिन शीघ्र ही बच्चाजी को अपनी पूर्व स्थिति पर आना ही पड़ेगा। पर उसके बाद क्या होगा, इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

नादिरख़ाँ की दशा भी आशा-हीन जान पड़ती है। क्योंकि इस समय अफ़ग़ानिस्तान में उनसे भी शक्ति

मन प्रतिद्वंद्वी वर्तमान हैं। ये प्रतिद्वंद्वी यद्यपि इस समय इनके पक्ष-समर्थक जान पड़ते हैं, तथापि दूर दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि समय आने पर प्रत्येक व्यक्ति अपने को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करेगा। ऐसे उम्मेदवारों में मुख्यतः शेर आग़ा है। इस समय अफ़ग़ानिस्तान के विशेष भाग में उसकी यथेष्ट धाक है। यह कहा जाता है कि वह पहले तो अपने लिये चेष्टा करेगा, और जब अपने संबंध में वह असफल होगा, तो नादिरख़ाँ के भाइयों में से किसी एक के लिये चेष्टा करेगा। इस प्रकार और भी अनेकानेक छोटे-बड़े उम्मेदवार अपनी-अपनी घात में बैठे हैं। जैसी स्थिति इस समय देखी जाती है, उससे यही अनुमान करना पड़ता है कि बच्चा-शक़्क़ा एक दिन ज़रूर हटाया जायगा (समय चाहे कितना ही लगे), पर उसके हटने पर शांति स्थापित हो जायगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। संभव है, एक के बाद दूसरा तख़्त पर बैठेगा, दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के बाद चौथा। इसी प्रकार कुछ वर्षों तक 'धाँधागर्दी' रहेगी। अंत को एक प्रबलतम व्यक्ति की अधीनता सबको स्वीकार करनी पड़ेगी, तब जाकर कहीं शांति स्थापित होगी। और कौन कह सकता है कि भविष्य में जब एक अंतर्राष्ट्रीय महायुद्ध का प्रलय मच उठे (जिसकी यथेष्ट संभावना है), तो कौन-सा गुल खिले! अभी तमाशा देखते चले जाइए।

× × ×

७. हिंदी-साहित्य तथा विगत रूसी-साहित्य

हिंदी-साहित्य-संसार में इस समय हम जिस प्रकार की संकीर्णता, जैसे अनुदार आचार-विचार तथा लौकिकता पाते हैं, एक समय रूसी-साहित्य में भी वही हाल था। वहाँ भी हमारे वर्तमान साहित्य की तरह, लौकिकता के कठिन नियमों के बंधन से अत्यंत जटिलता के साथ जकड़ा हुआ था। किसी साहित्य की स्वतंत्र गति को बाधा-हीन अवस्था में प्रवाहित न होने देने से साहित्य की क्या हालत होती है, इसका उदाहरण हम प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख रहे हैं। हमारे साहित्य की हालत इस समय ऐसी है कि यदि कोई भी लेखक लौकिकता का बंधन न मानकर अपनी प्रतिभा के आवेग द्वारा चालित होकर एक स्वतंत्र मार्ग से चले, तो पग-पग में, बात-बात में, उसे विरोधों का सामना करना पड़ता है। छायावाद की कविता को कैसे प्रबल विरोध की तीक्ष्ण-धार से होकर चलना पड़ा है, यह सभी को विदित है। उसी प्रकार श्लीलता तथा अश्लीलता के झगड़े, कला के उद्देश्य-संबंधी विवाद, संपादकीय रीति-नीति के प्रश्नों की बाढ़ से सारा साहित्यिक वायु-मंडल तबाह है। साहित्य के ठेकेदार जिन सुनिश्चित नियमों को प्रतिष्ठित किए बैठे हैं, उनकी सीमा के बाहर पाँव बढ़ाने की हिम्मत किसी को नहीं होती।

विगत रूसी-साहित्य के संबंध में लिखता हुआ एक अँगरेज़ लेखक Reviewaf Reviews की सन् १८९१ की जुलाई की संख्या में लिखता है—"रूस में एक सुनिश्चित साहित्यिक शासन प्रचलित है, जिसके अनुसार साहित्य-संबंधी कुछ नियमित रीति-नीति तथा आचार-विचार निर्धारित किए गए हैं—लेखक को बिना किसी विवाद के इन्हीं निर्धारित नियमों को लेकर क़लम चलाने को बाध्य होना पड़ता है।"

प्रसिद्ध रूसी कहानी-लेखक एंटन चेख़ाव की एक कहानी में कहानी का नायक एक प्रोफ़ेसर कहता है—"वर्तमान रूसी लेखकों में जिस विशेष गुण का अभाव है, वह है विचार-स्वातंत्र्य। मैं एक भी ऐसी पुस्तक से परिचित नहीं हूँ, जिसमें लेखक ने पहले पृष्ठ से ही अपने को सब प्रकार के लौकिक तथा प्रचलित आचार-विचारों के बंधन में न बाँध लिया हो। कोई लेखक आरंभ से ही मानो इस बात का प्रण कर लेता है कि वह मनुष्य के शरीर की नग्नता का कोई उल्लेख ही कदापि नहीं करेगा; कोई केवल 'मानसिक विश्लेषण' को ही अपना मुख्य ध्येय बना लेता है; तीसरा इस बात पर दृढ़ रहता है कि वह मानव-जाति के हित को लेकर ही अपने विषय की चर्चा करेगा; कोई लेखक सारी पुस्तक केवल प्राकृतिक वर्णन में ही समाप्त कर देता है, जिससे कोई आलोचक यह न समझे कि वह किसी 'उद्देश्य' से लिख रहा है। × × × किसी में भी आत्म-स्वातंत्र्य की वृत्ति तथा इच्छानुसार लिखने का साहस नहीं पाया जाता।"

ठीक यही हाल हमारे साहित्य का है। हमारे लेखक

यदि कोई भी बात लिखने बैठते हैं, तो उन्हें हर वक्त आलोचकों का भय बना रहता है और लौकिक मत का ख़याल रहता है। वे लोग सोचते हैं कि यदि इस प्रकार की बात लिखी जाय, तो अमुक आलोचक बिगड़ेगा और यदि उस प्रकार की लिखी जाय, तो अमुक आलोचक विरोध करेगा। आलोचकों की परवा न कर अपने हृदय की स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार चलनेवाले लेखकों का कैसा विकट अभाव हमारे यहाँ पाया जाता है। लेखक बेचारे करें क्या, उनके ऊपर साहित्य के ठेकेदारों का जो भयंकर पाषाण का भार पड़ा है, उससे उनकी मौलिक शक्ति ही काफ़ूर हो गई है।

हमारे साहित्य में विशेष-विशेष पत्र-पत्रिकाओं के विशेष-विशेष नियम होते हैं। उनके लेखकों को भी उन्हीं नीतियों के अनुसार लेख भेजने को बाध्य किया जाता है। उदाहरणतः यदि कोई पत्र 'घासलेट' के विपक्ष में है, तो वह घासलेट के पक्षवाले लेखक का लेख नहीं छापेगा, और यदि कोई पत्र या पत्रिका स्त्रियों का पक्षपाती हो, तो वह स्त्रियों के ख़िलाफ़ कोई बात नहीं छापना चाहेगा। यही हाल रूस के पत्र-पत्रिकाओं का भी था। Review of Reviews के जिस लेखक की बात हम पहले उद्धृत कर चुके हैं, उसने तात्कालिक रूसी पत्रों के संबंध में एक दूसरे लेखक की बात उद्धृत की है। वह इस प्रकार है—

"One Review Compels its writers to eulagise the young generation and to anathematise the old ; another refuses to print a single word that is unfavouralbe to the peasant; a third obliges its writers to pose as Liberals."

अर्थात् "एक पत्र अपने लेखकों को इस बात के लिये बाध्य करता है कि वे नवीन युवकों की प्रशंसा करें और प्राचीनों को गालियाँ दें; दूसरा पत्र किसानों के विरुद्ध एक शब्द भी छापना नहीं चाहता; तीसरा अपने लेखकों को 'लिबरल' होने के लिये विवश करता है।"

क्या हमारे साहित्य-संसार में यही बात नहीं पाई जाती? हम अपने सहयोगी संपादकों से प्रार्थना करेंगे कि वे लोग युक्ति से काम लें और लेखकों के विचार-स्वातंत्र्य पर ध्यान देकर अधिक उदारता की नीति बरतें।

यह बात अनेक पाठकों को विदित होगी कि टालस्टाय ने जब किसी रूसी पत्र में अपना 'अन्नाकेरेनिन' क्रमशः छपाया था, तो उस पत्र के संपादक ने उसका दो-तिहाई हिस्सा छापने के बाद अंतिम अंश छापने से साफ़ इनकार कर दिया। इसका कारण यह था कि उस अंतिम अंश में किसी राजनीतिक विषय पर संपादक जगत्-विख्यात लेखक से एकमत नहीं था! कैसे घोर अनर्थ की बात है! इसी प्रकार रूस में ऐसे संपादक भी वर्तमान थे जो ऐसे लेखकों का लेख नहीं छापते थे, जिनके लेखों में बाइबिल या अन्य किसी धर्म-पुस्तक से तथ्य उद्धृत किए गए हों; कोई इसलिये अपने लेखक से बिगड़ बैठता था कि वह यहूदियों का पक्षपाती है। ग़रज़ यह कि बात-बात में लेखकों की स्वतंत्रता पर दबाव डाला जाता था। हिंदी में भी यही शिकायत की जाती है। इसलिये हमने अपने सहयोगियों से अधिक उदार होने की प्रार्थना की है।

जब तक लेखकों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिलती, तब तक कभी साहित्यिक उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। जिस साहित्य में कवियों की बुद्धि को सीमा-बद्ध तथा उनके आभ्यंतरिक आवेगों को airlight करने के लिये कवि-सम्मेलनों में समस्या-पूर्ति की धूम मची रहती है, वहाँ कैसे कोई श्रेष्ठ, प्राकृतिक कवि उत्पन्न हो सकता है। उसी प्रकार कहानी-लेखकों तथा औपन्यासिकों की भी यही हालत है। उन्हें अपनी स्वतंत्रता पर विश्वास नहीं है, और जो कुछ थोड़ा-बहुत है भी, वह लोकमत द्वारा संकुचित तथा विकृत किया जा रहा है। हिंदी-साहित्य की यह स्थिति किसी प्रकार भी उल्लास-पूर्ण नहीं कही जा सकती।

× × ×

८. चीन और रूस

समाचार आ रहे हैं कि चीन और रूस के बीच में तनातनी बढ़ती जा रही है। यहाँ तक कि युद्ध के प्राथमिक चिह्न भी प्रकट होने लगे हैं। समाचार स्पष्ट तथा ठीक-ठीक नहीं मिल रहे हैं। पर उनसे यही अनुमान होता है कि स्थिति विकट-से-विकटतर होती चली जा रही है।

कारण कोई निश्चित नहीं है। कहा जाता है कि चीन की राष्ट्रीय सरकार ने सीमा-प्रांतों के रूसियों पर ज़्यादती की। इस पर रूसी सरकार ने उसे 'अल्टिमेटम' दिया। चीनी सरकार ने उसे 'अल्टिमेटम' दिया। चीनी सरकार ने उत्तर में कुछ टाल-मटोल की बातें लिखीं और किसी-किसी बात का उत्तर ही नहीं दिया। इसका फल यह हुआ कि मंचूरिया के सीमा-प्रांत पर रूसियों ने हमला कर दिया। चीनियों ने स्थान-स्थान पर प्रतिरोध करना आरंभ किया। समाचार दिन-दिन बदलते जा रहे हैं।

हमें तो वास्तविक कारण यह जँचता है कि रूसी सरकार बहुत पहले से चीन में गड़बड़ मचाने का इरादा किए बैठी थी। चीन की राष्ट्रीय सरकार को वह हटाना चाहती है। वहाँ की वर्तमान अनिश्चित स्थिति का लाभ उठाकर वहाँ बोल्शेविज़्म का प्रकोप फैलाना चाहती है। अब प्रश्न यह है कि यदि चीन में किसी दिन रूस की संपूर्ण विजय हो जाय, और वहाँ वास्तव में बोल्शेविज़्म ज़ोर पकड़ ले, तो चीन को उससे लाभ पहुँचेगा या हानि! बहुत लोगों का ख़याल है कि चीन में सोवियट का अधिकार होने से वहाँ की दीन-हीन जनता का बड़ा उपकार होगा। पर हमारा यह विश्वास है कि चीन में इस समय तक विदेशियों के कारण जो कुछ भी हानि पहुँची थी, वहाँ रूसी सरकार का क़ब्ज़ा होने पर उससे कई गुना अधिक हानि पहुँचेगी। चीन की समस्त महत्त्वाकांक्षाएँ मटियामेट हो जायँगी। बोल्शेविज़्म का साम्यवाद काल्पनिक रूप में चाहे हृदय को कैसी ही ठंडक पहुँचाए, पर वास्तविक रूप में वह उसी पूर्व Russian Bear का विकृत स्वरूप है। उसके पंजे में जो कोई भी राष्ट्र फँसा, उसके निजी स्वार्थ, सुधार, उन्नति, उत्कर्ष-साधन के स्वप्न सब साम्यवाद की भौतिक माया में एकाकार हुए। चीन को इस समय भौतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष की परमावश्यकता है। इतने युगों से वह दासता, आलस्य तथा मोह के गह्वर में आँखें मूँदकर पड़ा रहा है। अब जब उसकी आँखें खुली हैं, तो ऐसी भीषण कठिनाइयाँ उसके सामने खड़ी हैं। राष्ट्रीय सरकार का एकाधिपत्य ही चीन के पक्ष में इस समय परम हितकर है। किसी भी अन्य राष्ट्र के हस्तक्षेप से (चाहे वह हस्त साम्यवाद की माया से कैसा ही स्नेह-पूर्ण क्यों न हो) उसका सर्वनाश हो जायगा। इसलिये रूस और चीन के बीच जिस युद्ध का डंका बजने लगा है, वह शुभ नहीं है। देखा चाहिए, जापान का रुख़ क्या रहता है और पाश्चात्य राष्ट्र किस ढंग से पेश आते हैं। इस समय तो अमेरिका युद्ध के विपक्ष में है और फ्रांस भी वह भाव दिखला रहा है कि चीन और रूस के बीच में शांतिपूर्वक समझौता हो जाय। पर आगे क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता।

गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहकों से निवेदन

कृपया एक बार आदि से अंत तक अवश्य पढ़िए।

गंगा-पुस्तकमाला के अनुग्राहक **स्थायी ग्राहकों की सेवा में** निम्न-लिखित चार पुस्तकें लेकर उपस्थित होना चाहते हैं। ये सब ग्राहकों को १९ सितंबर को ४।–) (६।=) मूल्य में से १॥–)॥ कमीशन काटकर तथा ॥)॥ डाक-व्यय जोड़कर) की वी० पी० से भेजी जायँगी। इनमें से जिन पुस्तकों को ग्राहक न लेना चाहें, उनके बारे में लौटती डाक से कृपा कर सूचना दे दें, जिसमें वी० पी० के पैकेट में उन्हें हम शामिल न करें। और, यदि किसी कारण कोई भी पुस्तक इस समय न लेना चाहें, तो भी सूचित करें। **किंतु पुस्तकों की वी० पी० पहुँच जाने पर उसे कदापि न लौटावें।** कारण, इसमें व्यर्थ हानि होगी। अनुग्राहक ग्राहकों को हमारी हानि अपनी ही हानि समझनी चाहिए—

मा—लेखक, श्रीविश्वंभरनाथजी शर्मा 'कौशिक'। हिंदी-संसार में भला ऐसा कौन है, जो कौशिकजी की क़लम का क़ायल न हो। आपकी लिखी कहानियों का एक बृहत् संग्रह हमने प्रकाशित कर हिंदी-भाषा-प्रेमियों को भेंट किया था। उसकी लोगों ने काफ़ी क़दर की। उन्हीं प्रतिभाशाली लेखक का लिखा हुआ यह उपन्यास है। यह उपन्यास कैसा है, यह बताने की ज़रूरत नहीं। स्वयं पढ़कर देखिए। मूल्य २), सजिल्द २॥)

भार्गव-चित्रावली—रचयिता, भिन्न-भिन्न चित्रकार। सुधा में जो तिरंगे चित्र अब तक प्रकाशित हु हैं, हिंदी-संसार में उनकी धूम है। हज़ारों पाठक-पाठिकाओं के अनुरोध से हमने इन चित्रों में से छाँटक उत्कृष्ट चित्रों का एक संग्रह इस चित्रावली में प्रकाशित किया है। इसमें कुल सोलह चित्र हैं। चित्र देखने लायक़ ही हैं। छपाई-सफ़ाई, जिल्द-बँधाई के संबंध में कुछ कहना वृथा है। शुरू में चित्रकला के संबंध मे एक विस्तृत भूमिका है, जो हिंदी में एक नई चीज़ है। शादी-विवाह के अवसर पर बहू-बेटियों को उपहार देने योग्य चीज़ है। मूल्य केवल २)

परिमल—लेखक, हिंदी-संसार के प्रसिद्ध, युग-परिवर्तनकारी कवि श्रीयुत पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" आपकी युगांतरकारिणी कविताओं का मज़ा समय-समय पर हिंदी-पाठकों को मिलता रहता है। इसमें इनकी लिखी हुई उत्कृष्ट कविताओं का अनुपम संग्रह है। इसमें छंदोबद्ध कविताएँ, मुक्त संगीत तथा स्वच्छंद छंद तीनों प्रकार की कविताएँ संगृहीत हैं। 'यमुना', 'स्मृति', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'गीत' आदि एक-से-एक बढ़ कर कविताएँ इसमें छपी हैं। रहस्यवाद की भावपूर्ण कविताओं का रसास्वादन करना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। लेखक ने प्रारंभ में एक सारगर्भित भूमिका भी लिखी है। काग़ज़ और छपाई-सफ़ाई देखने ही लायक़ है। मूल्य सादी १॥), सजिल्द २)

मर्यादाराम की कहानियाँ—लेखक, वि० रामनाथ अय्यर बी० ए०, बी० एल्०। दक्षिण-भारत की बड़ी पुरानी द्राविड़-भाषाओं में तामिल-भाषा भी एक है। अन्य भाषाओं की तरह इसमें भी बहुत-सी दंत-कहानियाँ हैं, जो सर्वसाधारण अनपढ़े लोगों तक को मालूम हैं, और वे प्राय: लोकोक्ति, मुहाविरे, बातचीत व लेखों में लाई जाती हैं। इसके अलावा पंचतंत्र, हितोपदेश, बीरबल की कहानियाँ व ईसप की कहानियों की तरह ये तामिल-भाषा की कहानियाँ भी मनोरंजन तथा शिक्षा के लिये बाल-बच्चों को उनके बुज़ुर्गों द्वारा सुनाई जाती हैं। मर्यादारामजी एक देशी न्यायाधीश थे। लोगों के वाद-विवाद व फ़र्यादों का फ़ैसला करते हुए उन्होंने अपूर्व सूक्ष्म बुद्धि और विचित्र तरकीबों से दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर दिया! इस छोटी-सी पुस्तक में इन्हीं मर्यादाराम की कई कहानियाँ संगृहीत हैं। पुस्तक दो रंग में, कई चित्रों-सहित बड़ी सुंदरता के साथ छपी है। मूल्य ॥=), राजसंस्करण १=)

भवदीय—

प्रबंधक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

श्री जगन्नाथो नमः

वाणिज्य-संख्या

व्यवसाय-वाणिज्य, कला-कौशल, सुनार विज्ञान विषयक

एक मात्र मासिक पत्र ।

वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः, तदर्द्धं कृषि कर्मणि ।
तदर्द्धं राज सेवायां, भिक्षायां नैव नैवच ॥
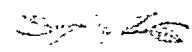
भाग ७ | जनवरी सन् १९३० | संख्या १

मङ्गलाशंसनम्

रचयिता—श्रीयुत पं० ब्रह्मदेवजी शास्त्री, काव्यतीर्थ, सम्पादक—"ब्राह्मणसर्वस्व"
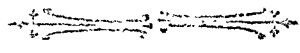
यस्य प्रसाद् अधिगम्य सुराः समस्ता, भुञ्जन्ति भोगनिवहान् सुरलोकमध्ये ।
यत्पादपङ्कजरजःप्रसरात् शिलाऽपि, नारीशरीर समगात् तमिहाद्य वन्दे ॥ १ ॥

अर्थ—जिसकी कृपा से तमाम देवता स्वर्ग में, तरह तरह के भोगों को भोगते हैं और जिसकी चरण-रज के स्पर्श से शिला भी स्त्री होगई थी, उस (ईश्वर) को मैं आज प्रणाम करता हूँ।

लीलावतार ! पुरुषोत्तम ! हे शरण्य !
त्वत्तः परं न पुरुषं परमेश ! जाने ।
शीघ्रं दयां वितर भारतदेशमध्ये,
येनोन्नतिः पुनरिहाऽस्तु जगत्सरण्याम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे लीलावतार ! हे पुरुषोत्तम ! हे अशरण को शरण देने वाले परमेश्वर ! मैं आपके सिवा और किसीको भी (देशकी उन्नति करने में समर्थ) नहीं जानता, अतः आप भारत वर्ष पर शीघ्र दया कीजिये, जिससे यह देश फिर से उन्नति के शिखर पर आसीन हो।

आसीत् स कोऽपि समयः खलु भारतेऽस्मिन्,
यस्मिञ्जनाः कुशलिनः सुकलासु दक्षाः ।
द्वीपान्तरेषु कृतिसौष्ठव मादर्श्य,
कीर्त्तिं वितेनु रतुला मपि भारतस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—वह भी एक समय था जब कि इस भारत के सभी लोग सुखी और कला-विज्ञान-निपुण थे और जिन्ने दूसरे द्वीपों में अपनी कारीगरी दिखा कर भारतवर्ष की खूब कीर्ति फैलाई थी।

सम्पादकैः पत्ररसायनस्य,
'वाणिज्य-संख्या' ह्युपढौक्यते या ।
तया भवेद् भारतभूमिकीर्त्ति—
र्व्यापारचर्चा पुन रेतु लोके ॥ ४ ॥

अर्थ—सिद्धहस्त सम्पादकों से, जो यह 'रसायन' का वाणिज्य अङ्क निकाला जा रहा है, इससे भारतभूमि की कीर्त्ति हो एवं संसार में फिर से व्यापारसम्बन्धी काम धन्धों की चर्चा फैले।

(खास " रसायन " की वाणिज्य संस्था के लिये)

भारत दरिद्र कैसे हुआ ?

(ले०—श्री० कविराज पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री "श्रीहरि" साहित्याचार्य, आयुर्वेदवाचस्पति)

प्रकृति सुन्दरी की सुरम्य रंगस्थली, सुख और शांति की चिर सहचरी, भगवती भारत वसुन्धरा की अतीत कीर्ति को स्मरण करके आज इस अधः पतन तथा पराधीनता की दशामें भी हमभारतियों [का] मस्तक गर्व और गौरव से ऊंचा हो जाता [है।] कुछ ही शताब्दियों के पहले धन-धान्य से [परिपूर्ण] हुई समस्त कला-कौशलों को आश्रय देने वाली, शस्यश्यामला इस स्वर्णभूमि की क्या दशा थी और आज क्या हो रही है, इस बात की ओर तनिक भी ध्यान देने से हृदय दुःख और रोष से भर जाता है। जिस पुण्य भूमि ने अपने ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल्य, और व्यवसाय-वाणिज्य के द्वारा समस्त संसार को ऋणी ही नहीं किंतु चकित कर रखा था, उसी पुण्यभूमि के निवासी आज अपने तन के कपड़े और उदर पोषणार्थ मुट्ठी भर अन्न के लिए विदेशों का मुख झांक रहे हैं। जिस देश के निवासी अपने द्वार पर आए हुए भिक्षुकों को रत्न और मणि-माणिक की भिक्षा दिया करते थे, उन्हीं की सन्तानें आज दो २ दानों के लिए दर दर की भिखारी बन रही हैं। जो देश किसी समय स्वर्ग से भी अधिक शांति पूर्ण, सुखमय और सुखदायक था, वही देश आज रोग-शोक, दुःख दारिद्र्य, दुर्भिक्ष और दासता के पंजे में पड़कर रौरव नरक से भी अधिक कष्टप्रद हो रहा है। जिस देश के वायु मण्डल की प्रत्येक लहरी में सुख और शान्ति की मधुर ध्वनि गूंजती रहती थी, वहीं आज चारों ओर से करुण क्रन्दन तथा हाहाकार मचा हुआ है। जिस देश के दिव्य गुणों का गान देवगण स्वर्ग में भी किया करते थे, वही देश आज दीन-हीन असभ्य, कङ्गाल और गुलाम भारत के नाम से पुकारा जाता है। जहां की शिक्षा-दीक्षा केवल भारतवासियों को ही नहीं किन्तु समस्त संसार को शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक आदि त्रिविध उन्नतियों का पथ-प्रदर्शन करती रहती थी, उसी पुण्य देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली आज भारत में हृदय और मस्तिष्क से हीन, लाखों गुलाम बनाने की मशीन का काम दे रही है। इस स्वर्ण भूमि

भारत के मरु-भूमि में परिणत होने का कारण है, भारतीयों के दुर्भाग्य के सिवाय, सात समुद्र पार से आकर हमारा हित चाहने वाले, इन गोरे महाप्रभुओं का सर्वस्वापहारी शासन।

वाणिज्य-व्यवसाय और भारत।

प्राचीन भारत के वाणिज्य-व्यवसाय कला-कौशल तथा अन्न धन की तुलना संसार का कोई भी प्रदेश न कर सकता था। इतिहास-कारों का मत है कि महाभारत-युद्ध के आरम्भ के साथ ही साथ भारत का पतन होना आरम्भ होगया था किन्तु उन हजारों वर्षों में भारत का उतना पतन नहीं हुआ था, जितना कि इन गोरे महा प्रभुओं के १५० वर्ष के शासन काल में हुआ है। गृह कलह के भीषण पापों के परिणाम स्वरूप मुहम्मदगज़नवी आदि धन लोलुप भारत के शत्रुओं से अनेक वार इस सम्पत्ति शाली देश के लूटे जाने एवं सैंकड़ों वर्षों तक मुसलमानी साम्राज्य रहने पर भी भारत का ऐसा सर्वाङ्गीण पतन नहीं हुआ था, जैसा कि विदेशी सरकार की वर्तमान सभ्य लूट से हो रहा है। कारण, उस समय के लुटेरों तथा शासकों ने केवल भारत का धन ही लूटा था किन्तु भारत के व्यवसाय-वाणिज्य, कला-कौशल तथा ज्ञान-विज्ञान को किसी ने भी नष्ट नहीं किया था। भारतवर्ष के उस महापतन के समय भी भारतवासी सुखी थे, स्वतन्त्र थे एवं धन धान्य-सम्पन्न थे। कारण, उस समय तक सम्पत्ति के मूलस्रोत, भारत के व्यापार को नष्ट करने की चेष्टा किसी भी शासक ने नहीं की थी। "इस्ट इण्डिया कम्पनी" के बनियों के शासनकाल के कुछ ही पहले भारतवर्ष के बने हुए सुन्दर २ सूती तथा रेशमी वस्त्रों से ही नहीं किन्तु अन्यान्य बहु मूल्य पदार्थों से एशिया तथा योरोप के कितने ही बाजार गौरवान्वित होते थे। उस समय ढाके की मलमल और मुर्शिदाबाद आदि नगरों की सुन्दर रंग-विरंगी छींटों को देख कर कितनी ही गोरी बीबियों की आंखों में चकाचौंध और मुख में पानी आ जाता था। हिन्दू साम्राज्य के उस भीषण पतन काल के समय में भी भारत के व्यापारिक उत्कर्ष का पतन नहीं हुआ था। इसी प्रकार भारतीय कला कौशल तथा ज्ञान-विज्ञान का भी उस समय तक सर्वनाश नहीं हुआ था, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण, दक्षिण भारत के अनेक आश्चर्य जनक सुन्दर मन्दिर, आगरे का ताजमहल एवं सोम-नाथजी की वह प्रसिद्ध मूर्ति है, जिसे लुटेरे मह-मूद ने बड़ी कठिनाई तथा खोज के बाद तोड़ पाया था।

भारत का व्यापारिक पतन।

संसार परिवर्तनशील है। संसार की कोई भी वस्तु सदा एक दशा में नहीं रह सकती है। सुख-दुःख, उत्थान-पतन एवं विकास-विनाश आदि का चक्र यहां रात दिन चला करता है। काल ही इस महाचक्र का नियामक है। महा महिमा शाली रोमसाम्राज्य एवं देवभूमि भारत का उत्थान-पतन ही इस बात के ज्वलन्त उदा-हरण हैं। मैं पहले ही बतला चुका हूं कि "इस्ट इण्डिया कम्पनी" के शासन के पहले गृह कलह

के कारण भारत का आत्मिक या नैतिक पतन भले ही हुआ हो, पर व्यापारिक पतन नहीं हुआ था। भारत के उस अधः पतन के समय में भी भारत का वाणिज्य व्यवसाय अच्छी दशा में था। भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण अन्नकी कमी तो थीही नहीं। सभी छोटे बड़ों के घर-बाहर अन्न की बड़ी २ राशियां लगी रहती थीं। उस समय अन्न के खरीदने वालों का सर्वथा अभाव था। परम्परागत एक-दूसरे से जानकारी प्राप्त करने वाले पूर्व पुरुषों काकहना है कि अङ्गरेजी राज्य के आरम्भ काल तकभारत में १) का ५ मन गेहूं, ३ मन चावल, ४ मन दाल, १० सेर घी, २५ सेर तेल एवं २० सेर चीनी मिला करती थी। वह कैसा सुनहला समय था। जब भारत का बच्चा २ "चाहे वह गरीब का हो या अमीर का" दूध तथा घी की नदियों में न्हाया करता था। आज इस सभ्य राज्य की छत्र छाया में दूध-घी आदि दिव्य पदार्थों के पाने की कौन कहे, भारत के करोड़ों लाल भूख की ज्वाला में जलकर बड़ी बेबसी के साथ अपनी इहलीला को समाप्त कर रहे हैं। जिन लोगों को इन पंक्तियों के ऊपर तनिक भी संदेह हो, वे ग्रामों में जाकर दो २ दानों के लिये तड़फते हुए गरीब किसानों के दुधमुहें बच्चों को अपनी आंखों से देख आएं। प्रत्येक प्राणी के लिये अन्न और वस्त्र ये ही दो सब से आवश्यक पदार्थ हैं। अन्न के उपज की कमी एवं भारत के गरीब किसानों के ऊपर दिन दूने रात चौगुने बढ़ने वाले कर ने कृषि प्रधान भारत की जीवनी शक्ति कृषि को तो नष्ट ही कर दिया।

रह गई वस्त्र व्यवसाय की बात, उसे तो प्रत्येक इतिहास प्रेमी जानता है कि गोरी कम्पनी के लुटेरे बनियों ने भारत के वस्त्र व्यापारको किस निर्दयता के साथ नष्ट किया। केवल अन्न और वस्त्र के व्यवसाय को ही नहीं पराधीन भारत के एक २ व्यापार को चुन २ कर हमारे महमानों ने अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए नष्ट कर डाला। आज भारत के वाणिज्य-व्यवसाय की जो शोचनीय दशा है, उसे देखकर प्रत्येक देश-भक्त का हृदय दुःख से कातर हो जाता है। भारत की बाजारें आज विदेशी वस्तुओं से भरी पड़ी हैं। बच्चों के खिलौनों से लेकर गृह देवियों की चूड़ियों तक के लिए यह परतन्त्र भारत विदेशों का मुखापेक्षी बना हुआ है। एक ओर मुसोलिनी जैसा दूरदर्शी राष्ट्रपति आवश्यक खाद्य पदार्थ केला को भी विदेशों से अपने देश में नहीं आने देता है, दूसरी ओर पराधीन भारतवासियों के गले में करोड़ों रुपयों की विदेशी (अंगरेजी) दवाइयां जबरदस्ती घुसेड़ी जाती हैं। हम भारतियों के धन-धर्म दोनों को ही एक साथ सत्यानाश किया जाता है। यदि गम्भीरता के साथ विचार किया जाय तो भारत में आज कोई भी ऐसा व्यवसाय नहीं रह गया है, जिसके सहारे भारतवासी अपनी जिन्दगी को आराम के साथ बिता सकें। भारत के दरिद्र होने का सबसे बड़ा कारण है, भारत का व्यापारिक पतन। अनेक प्रकार के कपटाचार और कुटिल व्यापारिक नीति के द्वारा जिस प्रबल वेग के साथ भारत का बचा-खुचा हुआ धन विदेशों को खिंचा हुआ जा रहा है, यदि कुछ

दिनों तक यह सभ्य लूट इसी प्रकार जारी रही तो इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि थोड़े दिनों में ही यह दरिद्र और कङ्गाल भारत उस पतन के गढ़े में गिर जायगा, जहां से इसके उठने और निकलने की कोई भी आशा नहीं रह जायगी उस समय यह पतित भारत किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र को अपना मुख दिखाने के योग्य नहीं रह जायगा।

हमारा कर्तव्य।

हम भारतियों का इस समय सबसे बड़ा कर्तव्य यही है कि अपने वाणिज्य-व्यवसाय को प्रोत्साहन देने के लिए यथा सम्भव छोटी से लेकर बड़ी तक सभी प्रकार की विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए शीघ्र ही स्वराज्य-सरकार की स्थापना का प्रयत्न करें। जब तक हम भारतियों की अपनी सरकार न होगी तब तक भारत के वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति न हो सकेगी। यदि आज अपनी सरकार होती तो क्या इटली के राष्ट्रपति मुसोलिनी के समान ही भारत के देशभक्त राष्ट्रपति भी विदेशी वस्तुओं के इस बढ़ते हुए आयात को रोक कर देश की सम्पत्ति देश में ही रखने का प्रयत्न न करते?

मंगलमय भगवान् हम लोगों को शीघ्र ही यह सौभाग्य प्रदान करें जिससे द्वारा हम भारतीय एकबार पुनः भगवती स्वतन्त्रतादेवी के चरण कमलों में बैठकर 'स्वर्गादपि गरीयसी' अपनी मातृभूमि के गौरव की रक्षा के निमित्त अपना तन, मन, धन सर्वस्व निछावर करने की दिव्यशक्ति को प्राप्त कर सकें।
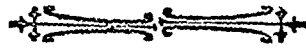
(खास "रसायन" की वाणिज्य संख्या के लिये)

हम और व्यवसायी व्यक्ति

(ले० श्रीयुत लक्ष्मीप्रशाद जी मिस्त्री, "रमा")

मनुष्य स्वभाव विषमताओं और विचित्रताओं से भरा पड़ा है, हम सब सुख चाहते हैं, परन्तु बहुधा ऐसा कार्य नहीं करते जिनके परिणाम स्वरूप सुख प्राप्त हो। सामाजिक मनुष्यों में ऐसा कौन है जिसे धन की अभिलाषा न हो, परन्तु हजारों क्या लाखों में से कुछ इने गिने महानुभाव ही ऐसे होंगे जो मनुष्यों के धन सम्बन्धी प्रयत्नों की विद्या, "अर्थशास्त्र" का समुचित रूप से चिन्तन व मनन करते हों।

हमारा भारतवर्ष धन की खान है इसमें नाना प्रकार के, खेती खनिज और उद्योग के लिये प्राकृतिक सामान हैं, उत्तम कोयला है, उमदा मिट्टी का तेल है, लोहे और लकड़ी की उत्तमता से इंगलैंड वालों के मुख में पानी आ जाता है सोना, चांदी, तांबा, टीन तथा अनेकों रत्नों की भी कमी नहीं, भारतवर्ष खनिज के कामों में लाभकारी उद्योग का अपरिमित स्थान है। प्रकृति ने इस देश को सब कुछ दिया है, यहां के पदार्थ केवल इस देश के लिये ही काफ़ी नहीं हैं, बल्कि संसार भर के बाजारों में सुविधा और लाभ के साथ बेचे जा सकते हैं। पर जब तक हम ऐसे उच्च भाव के नव युवक रत्न न पैदा करें जो वकालत और नौकरी के पेशे की तरह इस उद्योग में भी तन्मय हों, तब तक यह भारत का असीम धन गुप्त ही रहेगा।

यदि भारतवर्ष संसार के अन्य देशों से अलग कर दिया जाय, या इसकी उपज की रक्षा की जाय तो यह निश्चित बात है कि एक सुशिक्षित सभ्य जाति की सर्व आवश्यकताओं को भारत अपने ही अन्दर की उपज से पूर्ण कर सकता है।

कभी भारत के भी दिन थे जब इसका शिल्प, सामान रोम, यूनान, मिश्र, ईरान, अरब, जापान, चीन और इंगलिस्तान में धड़ाधड़ जाया करता था, उस समय इस देश में दुर्भिक्ष की अधिकता नहीं थी, यह देश लक्ष्मी से परिपूर्ण था, किन्तु भारत ने समय पहिचान कर काम नहीं किया। आत्म रक्षा में ढीला होने से मुसल्मानी राज्य में ही इसके व्यापार को धक्का लगा, और अङ्गरेजों के पधारते ही, इनकी सत्ता का सूत्र पात होते ही, भारत के व्यापार में भयंकर परिवर्तन होना आरम्भ हुआ।

विदेशी हुकूमत, कूट-नीतिज्ञों की पॉलीसी और अभागे भारत की अन्धकारमय मूर्खता से इस देश के व्यापार की जड़ में कुठारा घात होता गया। कला कौशल और उद्योग धन्धों के साथ साथ लक्ष्मी भी खिसक कर इङ्गलैंड पहुँच गई, बृटेन ने भारतीय व्यापार को हर लिया, इस देश को कला, कौशल्य तथा संपत्ति हीन कर डाला।

सच तो यह है कि भारत का कुल व्यापार विदेशियों के हाथ में है भारत के व्यापार का लाभ विदेश जाता है रेल, तार, ट्राम्वे, सोना, चांदी आदि की खानें, मिट्टी के तेल के कारखानें, कोयला, सन, ऊन, नील, चाय, कागज़ आदि सभी कारखानों के मालिक अङ्गरेज़ हैं, भारतवासी या तो एजेन्ट हैं या दलाल, आटा पीसना, रूई दबाना हमारा काम है। और उससे लाभ उठाना अङ्गरेजों का। भारतवर्ष कंपनियों के लिहाज से सब देशों से बहुत पीछे है सब व्यापार विदेशियों के हाथ में होते हुए भी अन्य देशों के सन्मुख यहां का व्यापार गया गुज़रा है।

भारत के अयोग्य व्यवसायपतियों की मृत्यु सिर पर नाच रही है, यूरोप के सुयोग्य व्यवसायपति सस्ते माल बनाकर यहां धड़ाधड़ भेजते हैं और हम अपने को सारे संसार से अधिक अनुभवी, साहसी, बुद्धिमान, शासन में निपुण, सत्यवादी और सबके ऊपर धनवान व्यापारी समझे हुए मस्त सो रहे हैं।

ज़रा आप विचार तो करें, कि जब भारत में कलाओं से पदार्थ उत्पन्न करने की रीति नहीं, जब भारत के श्रमी कारीगर, सेठ साहूकार अपठित हैं तब वे ऐसे देशों का क्या मुकाबला कर सकते हैं, जिनके एक एक कारखानें में पांच पांच लाख श्रमी काम कर रहे हों। जो दो दो लाख घोड़ों की कल वाले इञ्जन चलाते हों? जो १५० रसायन वेत्ता एक कारखानें में परीक्षाओं के लिये रखते हों? जो एक दिन में १००० टन गंधक तैयार कर सकते हों। क्या ऐसी जातियों के जीवन सँघर्ष के मुकाबले के लिये हम तैयार हो रहे हैं और अपने देश के बच्चों को तैयार कर रहे हैं? खूब याद रहे कि यह मुकाबला जिन्दगी और मौत का है, यदि अब भी हम कारण को सुधार कर कार्य सिद्धि करने में कमर नहीं कसते तो हमारी मृत्यु निश्चित है।

'व्यवसाय' शब्द के कई अर्थों में से एक अर्थ उद्योग करना भी है 'व्यापार' शब्द का भी प्रायः यही अर्थ होता है, पर हिन्दी में यह शब्द 'वाणिज्य' अर्थ में ही अधिक प्रयुक्त होता है। व्यापारी आदमी व्यवसाई हो सकता है और व्यवसाई आदमी व्यापारी हो सकता है, परन्तु दोनों बातें एक दूसरे से जुदा हैं। डाक्टरी इञ्जिनियरी, ऐडीटरी सभी व्यवसाय हैं, परन्तु व्यापार नहीं, डाक्टरी करके यदि कोई दवायें बनावे या कहीं से मोल मंगावे और उन्हें बेचे या और जगहों को चालान करे, तो वह व्यवसायी होकर व्यापारी भी हो सकता है, इसी तरह यदि कोई कपड़े का व्यापार करके कपड़ा बनाने का एक कारखाना खोलदे तो वह व्यापारी होकर व्यवसायी भी हो सकता है, कोई २ लोग व्यवसाय शब्द का व्यापार के अर्थ

में भी प्रयोग करते हैं, पर व्यवसाय का अर्थ रोजगार या कारोबार होना ही चाहिये, जिसमें व्यापार और व्यवसाय का भेद सुनने के साथ ही ध्यान में आजाय, कभी २ एक आदमी अकेले ही व्यवसाय करता है, कभी दो चार आदमी मिलकर करते हैं, कभी दस बीस, सौ दो सौ, या इससे भी अधिक मिलकर करते हैं, जो आदमी किसी काम को अकेले नहीं कर सकता वह किसी समय और आदमियों को भी अपने कारोबार में साझी कर लेता है, अथवा पहिले ही से कई आदमी मिलकर काम शुरू करते हैं। इस तरह काम करने वालों को साझेदार व्यवसायी कहते हैं। जिन व्यवसायों में इतनी अधिक पूञ्जी दरकार होती है कि एक आदमी अकेले नहीं लगा सकता, या देख भाल या प्रबन्ध करने के लिये एक से अधिक आदमियों की जरूरत होती है उन्हीं व्यवसायों को कई आदमी साझे में करते हैं। प्रबंध आदि का काम नोकरों से भी हो सकता है पर जितना सोच समझ कर और जी लगाकर किफ़ायत के साथ मालिक काम करता है उतना नौकर बहुधा नहीं करते। किसी २ कारोबार में भिन्न भिन्न प्रकार की योग्यता दरकार होती है, पर एक ही आदमी में सब प्रकार की योग्यताओं और गुणों का होना प्रायः कम देखा जाता है, इसीसे यदि भिन्न २ गुण और योग्यता वाले दो चार आदमी साझे में काम करते हैं तो काम भी अच्छी तरह चलता है और लाभ भी होता है।

बहुत दिन तक कोई काम करते रहने से आदमी उसमें दक्ष हो जाता है, उसके विषय की सब बातें उसे मालूम होजाती हैं वह उसके सब भेदों और सब रहस्यों से जानकार हो जाता है, बड़े २ व्यवसाय अकेले एक आदमी नहीं कर सकता उसे अपनी मदद के लिये नौकर रखने पड़ते हैं, ये नौकर धीरे २ जब उस व्यवसाय में खूब प्रवीण हो जाते हैं तब अधिक तनख्वाह पाने पर भी उन्हें संतोष नहीं होता। इससे नौकरी छोड़कर वे खुद ही उस व्यवसाय को करना चाहते हैं यदि वे ऐसा करें तो उस व्यवसाय में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ जाय, चढ़ा ऊपरी अधिक होने लगे, इस दशा में पहले व्यवसायी को जरूर ही हानि पहुँचे, इसी हानि को बचाने के लिये बहुधा लोग अपने पुराने नौकरों को अपने कारोबार में साझी कर लेते हैं, ऐसा करना बुरा नहीं, इससे दोनों को लाभ होता है।

साझे के रोजगार में साझेदारों के बीच अनबन का होना अच्छा नहीं, इससे हमेशा हानि होती है क्योंकि व्यवसाय में भी एकता की ज़रूरत है, एकता बहुत बड़ा बल है, एकता की बदौलत बड़े २ काम सहज में हो जाते हैं, साझेदारों में अनैक्य और मत भेद न होना चाहिये, कभी २ ऐसा होता है कि व्यवसाय शुरू करते समय तो साझेदार हिलमिल कर काम करते हैं और परस्पर एक दूसरे का विश्वास भी करते हैं, परन्तु कुछ दिन बाद उनको चालाकी सूझती है उनमें अविश्वास

आ घुसता है, इससे काम बिगड़ जाता है और बहुत दिन तक नहीं चलता। कोई काम जारी करने के पहिले मनुष्य को चाहिये कि साझेदारों के शील स्वभाव का हाल अच्छी तरह जानले और जो लोग सच्चरित्र, समझदार, विश्वासपात्र और सरल स्वभाव हों उन्हीं को साझेदार बनावे। काम शुरू होने पर यदि किसी के स्वभाव या काम में कोई त्रुटि देख पड़े तो प्रीति पूर्वक उसे उसको समझादे और जहां तक हो सके विरोध की जड़ न जमने दें। परस्पर एक दूसरे का विश्वास करने और उनकी त्रुटियों पर विशेष ध्यान न देने ही से व्यवसाय में सफलता होती है अन्यथा थोड़े ही समय में सब तीन तेरह होजाते हैं।

जिन बड़े २ व्यवसायों के लिये बहुत पूञ्जी दरकार होती हैं वे साझेदारी से भी नहीं चल सकते, उनके लिये कम्पनी खड़ी करनी पड़ती है बहुत से आदमियों के मिलकर कम्पनी के रूप में कारोबार करने का नाम सम्भूय समुत्थान है, यदि कहीं रेल निकालनी हो, या ट्रामगाड़ी चलाना हो, या कोयले की खान का काम करना हो या बैंक खोलना हो, या और कोई बहुत बड़ा कारोबार करने का इरादा हो तो बिना कम्पनी खड़ी किये दो चार साझेदारों से काम नहीं चल सकता क्योंकि ऐसे काम के लिये लाखों रुपये की पूञ्जी दरकार होती है।

जो लोग किसी व्यवसाय के लिये कम्पनी खड़ी करना चाहते हैं वे पहिले इस बात का अन्दाज लगाते हैं कि इस काम में कितनी पूञ्जी लगेगी, फिर उस पूञ्जी को पूञ्जीदारों की एक निर्दिष्ट संख्या में विभक्त करते हैं और यह बतलाते हैं कि इस काम में वार्षिक इतने लाभ की संभावना है। कल्पना कीजिये कि कुछ आदमियों ने मिलकर एक बैंक खोलने का विचार किया और निश्चय किया कि दस लाख रुपये की पूञ्जी इस के लिये दरकार होगी, इस पूञ्जी को उन्होंने दसहज़ार आदमियों में बांट कर एक एक आदमी का हिस्सा सौ सौ रुपये निश्चित किया और अनुमान किया की प्रति सौ रुपये पर एक वर्ष में दस रुपये लाभ होगा यही सब बातें एक अनुष्ठान पत्र किंवा कार्य-विवरण में प्रकाशित करके उसे दूर दूर तक बांट दिया इस विवरण में यह भी उन्होंने लिख दिया जो कोई इस कम्पनी में हिस्सा लेगा उसे अपने हिस्से का अमुक अन्श पहिले ही देना होगा और शेष अमुक २ मुद्दत के बाद, या जब जरूरत होगी तब जहां मतलब भर के लिये हिस्से बिके और काफी रुपया आगया तहां बैंक का काम शुरू कर दिया गया इस तरह कम्पनी खड़ी करके काम करने से जिनके पास थोड़ी भी पूञ्जी होती है वे भी अपनी पूञ्जी लगा सकते हैं और उससे लाभ उठा सकते हैं जिस देश में कम्पनी खड़ी करके रोजगार करने की ओर लोगों का अधिक ध्यान है वहां पूञ्जी बेकार नहीं पड़ी रहती। विलायत में यही होता है, इसी से वहां का व्यापार, व्यवसाय इतनी उन्नति पर है, लाखों करोड़ों की पूञ्जी से नित नई कम्पनियां खुलती जाती हैं और उनके द्वारा देश की संपत्ति दिनों दिन बढ़ती जाती है।

मिल जुलकर काम करने में बड़ी शक्ति है जिस काम को अकेला आदमी नहीं कर सकता कई आदमी मिलकर सुगमता से कर लेते हैं। विचार पूर्वक देखा जाय तो हिन्दुस्थान में, शहरों को जाने दीजिये, हजारों गांव ऐसे मिलेंगे जहां व्यापार व्यवसाय और शिल्प की उन्नति सहज में हो सकती है। परन्तु एक आदमी अकेले किसी बड़े काम को नहीं कर सकता, और न एक आदमी के पास इतना रुपया ही होता है कि वह बिना किसी मदद के खुद ही उसे चला सके, ऐसे अवसर पर हमें कम्पनियां खड़ी करके काम करना चाहिये।

व्यापार की बदौलत मनुष्य बहुत जल्द धनवान हो सकता है, जितने अमीर आदमी दुनियां में हैं उनमें से अधिकांश व्यापार ही की कृपा से अमीर हुए हैं। व्यापार वह व्यवसाय है जिस में लाभ की सीमा नहीं। ऐसे कितने ही उदाहरण वर्तमान हैं जिनमें एक टका लेकर घर से निकलने वाले आदमी व्यापार करके थोड़े ही दिनों में लखपती होगये हैं। इस से यह न समझना चाहिये कि व्यापारी आदमी अनुचित मार्ग से धन संग्रह करते हैं, नहीं, बिना जरा भी अन्याय और अनौचित्य का अवलंबन किये ही व्यापारी आदमी, व्यापार को बढ़ाकर अनन्त धन पैदा कर सकते हैं। यदि रुपये पीछे एक पैसा मुनाफा लिया जाय तो सौ रुपये में एक रुपया नौ आना मुनाफा हो सकता है। अब यदि एक सौ की जगह एक हजार या एक लाख रुपये का माल खरीद कर के रुपये पीछे एक पैसा मुनाफा लेकर बेचा जाय, तो बतलाइये कितना लाभ होगा?

व्यापारी आदमियों के लिये व्यापार का अच्छा ज्ञान होना चाहिये, उन्हें दुनियां भर की खबर रखनी चाहिए, कौन चीज़ कहां पैदा होती है, कहां सस्ती मिलती है, कहां लेजाने से महँगी बिकेगी, किस रास्ते किस तरह लाने से खर्च कम पड़ेगा इन सब बातों का उन्हें यथेष्ठ ज्ञान होना चाहिए, उन्हें यह भी मालूम होना चाहिये कि माल खरीद करके किस समय अथवा कितनी मुद्दत के भीतर बेचना चाहिये— तभी उन्हें मुनाफ़ा होगा, अन्यथा उनके मुनाफे की मात्रा बहुत कम हो जायेगी, या बिलकुल ही नष्ट हो जायगी, यहां तक कि मुनाफे के बदले उन्हें घाटा उठाना पड़ेगा, जो व्यापारी आलसी अथवा अज्ञान या अल्पज्ञ हैं उनको बहुत कम मुनाफा होता है—

व्यापार की विद्या बहुत व्यापक है, परन्तु यह विद्या सिखलाने का न तो यहां कोई अच्छा स्कूल ही है और न कोई अध्यापक ही है, जितने व्यापारी हैं सब अपने से बड़े व्यापारियों के शिष्य और छोटे व्यापारियों के गुरु या अध्यापक हैं। जहां माल का क्रय या लेन देन होता है, चाहे वह जगह घर हो, बन्दर स्थान हो, गोदाम हो, दुकान हो, बाजार हो, या जंगल हो वही व्यापार विद्या सीखने का स्कूल या कालेज है, व्यापार विद्या का स्थूल सिद्धान्त यद्यपि माल सस्ता लेना और मँहगा बेचना है, तथापि उसका यथेष्ट ज्ञान बिना अनुभव के नहीं होता। उसके लिये तजुरबा चाहिये, व्यापारियों का सहवास चाहिये, जो लोग

अनुभव से व्यापार विद्या सीख लेते हैं और प्रामाणिकता पूर्वक व्यापार करते हैं, उनको ज़रूर लाभ होता है।

व्यापारियों को अपनी 'साख' रखना बहुत ज़रूरी बात है, जिस की 'साख' जितनी ही अधिक होती है उसे उतना ही कम व्याज पर उधार मिलता है। जैसे आदमियों को उधार लेना पड़ता है वैसे ही राजाओं या देश को भी लेना पड़ता है। यद्यपि इंग्लेण्ड इतना प्रबल राज्य है और वहां अनन्त धन है तथापि उसे भी राजकीय कामों के लिये कभी २ रुपया 'उधार लेना पड़ता है। देशों का भी हाल व्यक्तियों का ऐसा है, किसी देश की 'साख' कम है किसी की अधिक आजकल जापान और अमेरिका की चढ़ती कला है, जो आदमी अपनी 'साख' के बल पर माल खरीद करता है उसकी माल खरीदने की शक्ति बढ़ जाती है। सब चीज़ों का क्रय विक्रय यदि नक़द रुपये से ही हो तो व्यापार व्यवसाय का विस्तार बहुत कम हो [illegible] इसलिए व्यवसाइयों को अपनी 'साख' [illegible] चाहिये—मसल मशहूर है कि, "लाख जाय, पर 'साख' न जाय" जिस देशमें जितना ही [illegible] व्यापार होता है वह देश उतना ही [illegible] समृद्धि शाली हो जाता है, क्योंकि [illegible] होने का सब से बड़ा साधन व्यापार ही [illegible] इंग्लेण्ड को देखिये, व्यापार ही की [illegible] उसके ऐश्वर्य की वृद्धि हुई है, व्यापार ही [illegible] साधना से उसे हिन्दुस्तान का राज्य प्राप्त हुआ है, व्यापार ही की कृपा से अन्यान्य [illegible] कर्ज देकर उन्हें अपने अनुग्रह का पात्र [illegible] में वह समर्थ हुआ है। और व्यापार [illegible] न करने ही से हिन्दुस्तान की अधोगति [illegible] लेख बढ़ जाने के भयसे अब इसे मैं यहीं [illegible] करता हूं।
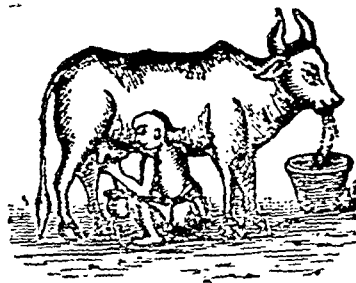
है दुनियां दौलत वालों की ?

(रचयिता—श्रीयुत हरिशरणजी श्रीवास्तव्य 'मराल' बी० ए० एल० एल० बी)
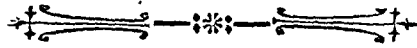
निर्धन को जग ठुकराता है,
है दुनियां दौलत वालों की ।

धनवान बड़ा गुणवान सदा,
धीमान सदा, विद्वान सदा,
यदि दोष करे ढक जाता है,
है दुनियां दौलत वालों की ।

रत्नाकर सागर खारी है,
पर जग में गौरव भारी है,
नदियों का नाथ कहाता है,
है दुनियां दौलत वालों की ।

धन है तो सब कुछ तेरा है,
वैसे बस मेरा मेरा है,
धन हीनों से क्या नाता है ?
है दुनियां दौलत वालों की ।

सम्पति वाला जग-पाल बने,
बक सा भट मञ्जु 'मराल' बने,
जो चाहे सब मिल जाता है,
है दुनियां दौलत वालों की ।

सेलिंग एजेन्सी ।

माल उत्पन्न करना और माल विक्रय करना यह दोनों बिलकुल विभिन्न प्रकार के कार्य हैं। जो माल उत्पन्न कर सकता है—उसमें माल विक्रय करने की सामर्थ्य नहीं होती, इसीप्रकार जिसमें माल खपाने और बेचने की सामर्थ्य है, वह माल तैयार करने का कौशल भली भांति नहीं जानता। इसीलिये यह दोनों प्रकार के काम एक ही आदमी के करने से कभी २ विषम अनर्थ की सृष्टि होजाती है। अतः सब देशों में मनुष्यों ने सार्वत्रिक रूप से प्रत्येक व्यवसाय को मुख्यतया दो भागों में विभक्त कर लिया है। एक दल माल की तैय्यारी करने में व्यस्त है और एक दल उसी माल को बेचने और खपाने में लगा हुवा है। माल तैय्यार करने के लिये फेक्टरी समूह का जन्म है और माल की कटती के लिये सेलिंग एजेन्सियों की सृष्टि है। यद्यपि फेक्टरी और सेलिंग एजेन्सी परस्पर निरपेक्ष नहीं है। एक ही व्यवसाय की दो दिशायें हैं—एक ही पक्षी के दो पक्ष हैं। अस्तु।

किसी एक कार्य के लिये एकाग्री होकर सौ बातों में मस्तिष्क घुमाने से वह सुसम्पन्न नहीं हो सकता—यह सहज सत्य लोगों ने बहुत प्राचीन युग से ही आविष्कृत कर लिया है। संसार में कोई ऐसा भी युग था जब साधारण चरवाहे (गौ चराने वाले) स्वयं पूजा पाठ करते थे, इसके सिवाय प्रयोजन होने पर, उन्हीं को तीर धनुष लेकर शत्रु के साथ युद्ध करने जाना पड़ता था। हमारे कहने का तात्पर्य यह कि जूता बनाने से लेकर पूजा-पाठ पर्यन्त संसार के यावतीय कार्य एक ही मनुष्य को अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को करने होते थे। किंतु इससे विषम असुविधा की उत्पत्ति होती हुई देखकर मनुष्य ने अपने बीच में कर्मों का विभाग कर लिया। उसी कर्म विभाग से तो हिन्दुओं में इस जाति भेद की सृष्टि हुई।

वह जो कुछ भी हो, किन्तु, हम देखते हैं कि हमारे देश में वर्ण-वैषम्य पूर्ण मात्रा में प्रचलित

होते हुये भी अन्ततः व्यवसाय क्षेत्र में कर्म विभाग का प्रचलन आज पर्यन्त नहीं है। और पाश्चात्य देश समूह में वर्ण भेद न रहने पर भी वहां के निवासियों ने अपने बीच में अत्यन्त चमत्कार के साथ कर्मों का विभाग कर लिया है।

भारतवर्ष में विशेषतया बंगाल, मद्रास जैसे उन्नति शील प्रांतों में प्रायः देखा जाता है कि आधुनिक फेक्टरी समूह दिनो दिन उठता जा रहा है। देश में यथेष्ठ संख्यक सेलिंग एजेन्सी न होना ही इसका प्रधान कारण है। कारखाने के मालिक को माल खपाने और हिसाव-किताब की ही झंझटों में उलझे रहने से, उसके पक्ष में माल उत्पन्न करने की तरफ अखण्ड मनोयोग देना असम्भव हो उठता है; और इस ओर अखण्ड मनोयोग न दे सकने से अच्छी तरह, प्रचुर परिमाण में माल उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

जिसके ऊपर उत्पादन कार्य का गुरुभार निर्भर करता है, उसको अन्य सब बातों से एकान्त निश्चिन्त करके रखने की आवश्यक्ता है। इस बात को भली भांति समझने के लिये नर मधुमक्खी का उदाहरण सर्वथा उपयुक्त है। नर मधुमक्खा अपनी मक्खी रानी को कोई भी काम नहीं करने देता—उसका काम केवल संतान प्रसव करना होता है। शत्रु से युद्ध करना घर बनाना यह सब कार्य दूसरे नर मक्खे करते हैं और प्रधान नर मक्खा सब की देख रेख रखता है। अस्तु,

एक मक्खी रानी के लिये गृह निर्माण करने, भोज्य पदार्थ जुटाने और दूसरे नर मक्खों के कार्य का निरीक्षण करने को जिस प्रकार एक निरीक्षक—कर्मी मक्खे की आवश्यक्ता होती है, ठीक उसी प्रकार एक कारखाने का माल बेंचने और खपाने के लिये एक माल विक्रेता का प्रयोजन है। बहुत से विश्रृङ्खल विक्रेताओं की अपेक्षा संघबद्ध विक्रेताओं के एक दल की पुकार कहीं अधिक काम कर सकती है। इसी लिये वर्तमान युग में संघबद्ध विक्रेता दलों का अधिक आदर है। इन संघबद्ध विक्रेता दलों का ही नाम सेलिंग एजेन्टस है।

माल विक्रय करने और मांग बढ़ाने में सहायता पहुंचाने के लिये सुयोग्य एजेन्ट मिलजाने से कारखाने वाले को कई दिशाओं से सुविधा मिलने लग जाती है। प्रथमतः कारखाने का मालिक अपनी समस्त शक्ति और बुद्धि माल उत्पन्न करने में नियोजित कर सकता है। द्वितीयतः; यही सबसे बड़ी बात है, इससे कारखाने के मालिक को आर्थिक निश्चिन्तता हो जाती है।

कल्पना कीजिये कि आप ही एक कारखाने के मालिक हैं। आपने दो लाख रुपया मूल धन लेकर अपना व्यवसाय शुरु किया है। आपको समस्त मूल धन के प्रायः आधे रुपया मकान खरीदने, कल-यन्त्र लगाने आदि साज सरञ्जाम में व्यय करना पड़े।

यह रुपया तो सदैव के लिये अटक गया। अब बाकी रहे एक लाख रुपये, इनसे आपको कच्चा माल खरीदना है, आदमियों को मजूरी देना है इत्यादि। अब सोच लीजिये कि आपने मजदूरी प्रभृति व्यवसाय संक्रान्त अन्य सब खर्चों के लिये पचास हजार रुपया अल-

रख कर शेष पचास हजार रुपया कच्चा माल खरीद करने में वियोग किये। आपके कारखाने में कल-यन्त्र की सहायता से पचास हजार रुपये का माल एक मास में एक लाख रुपये के माल में परिणित हुआ। परन्तु उस समय यदि आपका माल नगद रुपये में नहीं बिके तो आप कारखाना किस तरह चलाएंगे? और कच्चा माल खरीदने के लिये रुपया कहां से आएगा। यद्यपि आपके कारखाने में एक लाख रुपये का तयार माल मौजूद है, परन्तु उससे कुछ जाता आता नहीं। कच्चा माल खरीदने को नगद रुपया चाहिये। नगद रुपये के अभाव में आपको अपना कारखाना बन्द रखना पड़ेगा। इस समय आपके कारखाने का माल उधार विक्रय करने से भी नहीं चल सकता। ऐसे समय में यदि कोई एक इस प्रकार का व्यक्ति या संघ रहे जो आपके कारखाने का एकसमय का समस्त या अधिकांश माल खरीद कर नगद रुपया दे सके, तो इससे आपको और रुपये के लिए इधर उधर दौड़ धूप करने की आवश्यका नहीं रह जाती। आप अपना कारखाना स्वच्छन्दता पूर्वक चला सकते हैं और आपका Working Capital पचास हजार रुपया दो, तीन लाख रुपये का काम कर सकता है।

इसी प्रकार की सब सुविधायें रहने से ही वर्तमान जगत में प्रायः समस्त कारखानों का माल सेलिंग-एजेन्ट लोगों के हाथ में देकर बेचा जाता है।

एजेन्ट लोग कारखाने वालों से माल खपाने और बेचने का सब भार बिलकुल निःस्वार्थ भाव से लेलेते हैं सो बात नहीं है। इस गुरुतर कार्य के लिये बहुत ऊंचा कमीशन पाते हैं।

किसी एक कारखाने का समस्त माल यदि एक व्यक्ति अथवा संघ बद्ध लोगों का एक दल खरीद करले तो उसको और उन लोगों को उस माल का सोल एजेन्ट कहते हैं। किन्तु सोल एजेन्ट सीधे Consumer के पास माल नहीं भेज देता, सोल एजेन्ट के आधीन और भी अनेक सब-एजेन्टस रहते हैं। जो और भी दूसरे २ लोगों को एजेन्सी देते हैं। इस प्रकार एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे के पास खिच कर अन्त में सब माल असल खरीदार अर्थात् Consumer के पास आपहुंचता है।

बहुत से Mechanism काम इसी तरह से होते हैं यहां हम केवल Mechanism का ही सम्बन्ध लेकर कहेंगे। क्योंकि स्थिर विषय की मूल नीति को समझाना ही हमारा एक मात्र उद्देश है।

वह सोल एजेन्ट जो किसी कारखाने का समस्त माल खरीद लेता है, उससे एक मास के भीतर दाम चुका देने का करार होता है। इसके बाद वह उस माल को अपने सब-एजेन्ट लोगों में हरएक की योग्यता के अनुसार वितिरण कर देता है। उनके साथ १५, २० दिन में रुपया चुका देने का करार ठहरता है। ऐसा करने का उद्देश यह कि यदि सब-एजेन्ट किसी कारण नियत समय पर रुपयों की अदायगी न कर सके; तो सोल एजेन्ट को कारखाने वाले का पावन चुक्ता कर देने के लिये उसकी जमानत का रुपया मिटा देना होता है। कहने की आवश्यका नहीं कि एजेन्सी लेने के लिये हरएक

को ही अपने २ ऊपर रहने वाले व्यक्तियों के पास एक खासी रकम अमानत वा (Deposit) रखना पड़ती है।

सब देश के लिये किसी एक वस्तु का, कोई एक व्यक्ति ही सोल एजेन्ट हो सका है। फिर प्रत्येक प्रदेश के लिये भी एक, एक व्यक्ति उसी वस्तु के सोल एजेन्ट होते हैं। इस शेषोक्त सोल एजेन्सी का अर्थ यह कि जिस प्रान्त में जितने भी माल की कटती हो, वह सब का सब सीधा उसी प्रान्त के प्रमुख एजेन्ट के हाथ में दिया जावे। उदाहरण स्वरुप भेजिटेबल प्रोडाकृ के व्यवसाय की बात रखीगई। मान लीजिये, हालेन्ड के किसी कारखाने में राशि २ भेजिटेबल प्रोडाकृ प्रस्तुत होता है। उस समस्त माल को बेचने के लिये प्रत्येक देश में एक एक एजेन्ट है। जैसे भारतवर्ष में एक एजेन्ट, चीन में एक एजेन्ट इत्यादि। भारतवर्ष का एजेन्ट जो व्यक्ति था जो कम्पनी है उसने भी अपना माल बेचने के लिये प्रत्येक प्रान्त में एक २ एजेन्ट खड़ा किया॥—बंगाल, बिहार, बम्बई, मद्रास, सब जगह एक २ एजेन्ट व कभी २ बंगाल में ५,६ व्यक्ति, बिहार में ५, ६, व्यक्ति, बम्बई में ५, ६, व्यक्ति इत्यादि।

हम पहिले ही कह आये हैं कि एजेन्ट लोगों को माल खपाने और बेचने की ओर यथेष्ठ झुकाव देना पड़ता है और इसके लिये वे खूब ऊंचा कमीशन पाते हैं। किन्तु, एजेन्ट माल किस प्रकार बेचते हैं? एकजुटि में एजेन्ट लोगों का (function) वा काम क्या है?

यहां यह लिख देना उचित होगा कि एजेन्सी और कोई दूसरी वस्तु नहीं, एक विशेष प्रकार की दलाली मात्र है। उसमें फर्क केवल यह है कि कोई भी साधारण दलाल माल बेच देने पर कमीशन पाता है, माल न बेच सकने पर कमीशन नहीं पाता; किन्तु, वह माल विक्रय कर देने के लिये बाध्य नहीं होता और सेलिंग एजेन्ट एक नियमित परिमाण में माल बेच देने को बाध्य होते हैं। वे लोग सब माल किस प्रकार विक्रय करते हैं यहां उसी का थोड़ा सा आभास दिया जाता है।

मान लीजिये कि मेनचेस्टर के किसी कपड़े के कारखाने के मद्रास प्रान्तीय एजेन्ट हुये रेली ब्रादर्स। कारखाने में एक बिलकुल नये नम्बर का कपड़ा तैय्यार हुआ। और रेली-ब्रादर्स के पास उसका Sample वा नमूना आया। अब प्रत्येक सौदागरी आफिस में एक२ व्यक्ति Banyan वा मुत्सद्दी है। यह मुत्सद्दी प्रकृत रुप से माल खपाने का सब दायित्व ग्रहण करते हैं। रेली ब्रादर्स ने कपड़े का नमूना पाते ही उसे माल मुत्सद्दी को दिखलाया। मुत्सद्दी के आधीन असंख्य बड़े २ दलाल हैं जो व्यवसायी व दूकानदार लोगों को माल जुटाते हैं। अतः दलाल लोगों ने मुत्सद्दी के पास से उस नये नम्बर के कपड़े का नमूना लेकर व्यापारियों को दिखाया और कहा—"देखो! यह कपड़ा बहुत अच्छा है। इस प्रकार का कपड़ा बाजार में खूब चलेगा। इसे तुम अपनी दुकान में रखो इत्यादि।" व्यवसायी लोग अपने फन में पूरे उस्ताद होते हैं। खरीददार वास्तव में—ठीक क्या चाहता है—यह वे बड़ी निपुणता से जान लेते हैं। यदि वे समझ गये कि इस माल की बिक्री होने की सम्भावना है तो

वे दलाल से तुरन्त कह देते हैं—"बहुत अच्छा इस माल के बिकने की उम्मेद है। हम इतनी गांठ खरीदना चाहते हैं" प्रत्येक दूकानदार अपने दलाल से यही बात कहता है। तब दलाल लोग—मुत्सद्दी के पास जाकर बोलते हैं। "हां" हम लोग माल खरीद करने को राजी हैं। एक कहता है "हमको २१ गांठ चाहिये" दूसरा कहता है—"हमको १५ गांठ दो" इत्यादि। तब मुत्सद्दी ऐसी आदर्स से उस नये नम्बर के कपड़े को बेच देने का भार लेता है।

सौदागरी आफिस के मकान में मुत्सद्दी का एक निजस्व कमरा है। मुत्सद्दी वहां बैठ कर कहां २ कितना माल भेजना है सब सिलसिले वार कह देता है। उसकी आज्ञा बिना एक टुकड़ा भी गोदाम से बाहर नहीं किया जा सकता।

यह तो ऊँचे ठिकाने की बात हुई, क्योंकि यथेष्ट पूंजी और यथेष्ट अभिज्ञता न रहने से किसी भी व्यक्ति के लिये Banyan या मुत्सद्दी होना कठिन है। इसलिये अब छोटे मोटे कामों के सम्बन्ध में उल्लेख करते हैं।

उच्च आशा रखना अच्छी बात है। परन्तु अत्युच्च आशा लेकर कार्य क्षेत्र में उतरने से अनेक समय ठगना पड़ता है। फिर कभी २ मन ही मन अतिरिक्त उच्च आशा पोषण करके कार्यारम्भ करने से दाव भी लग जाता है। अतः अलीक कल्पना की भूल भुलैयां में न पड़कर कार्य्य की कठिनता को स्वीकार न करते हुये ही कर्म क्षेत्र में प्रवेश करना बुद्धिमानी है।

जो व्यवसाय ५० हजार रुपया लेकर प्रारंभ किया जाता है—वही व्यवसाय ५० रुपया लेकर भी आरम्भ कर सकते हैं। माना कि बड़ी सेलिंग एजेन्सी खोलने के लिये अधिक रुपयों की आवश्यक्ता है, परन्तु, इस देश में जिसप्रकार बहुत सी विज्ञापन की एजेन्सी हैं वैसी छोटी २ सेलिंग एजेन्सी खोलने के लिये विशेष पूञ्जी की आवश्यक्ता नहीं। यदि प्रत्येक एजेन्सी के लिये ४-५ परिश्रमी युवक एकत्र मिलकर, एक एक एजेन्सी खोलदें, और वे जिस वस्तु की एजेन्सी लें, उसकी बिक्री करने के लिये प्राण-पण से परिश्रम करें तो उनको साफल्य लाभ की विशेष सम्भावना है।

पहिले पहल कुछ कष्ट अवश्य होगा। परन्तु ऐसा कौन कार्य है जिसमें प्रारम्भिक काठनाइयां नहीं झेलनी पड़तीं ? कुछ दिन सत्यता पूर्वक काम कर सकने से बाजार में उनके सुनाम की प्रसिद्धि हो उठेगी और तब उनके लिये कोई भी नई वस्तु की एजेन्सी संग्रह करना बिलकुल सहज हो जायगा। विशेषतया माल की बिक्री के लिए सभी सुभीते बढ़ जायेंगे। व्यवसाय-क्षेत्र में सुनाम की शक्ति अपरिसीम होती है। एक बार बाजार में अच्छे नाम की प्रसिद्धि हो जाने पर सब लोग उसी कम्पनी से माल खरीदने लगते हैं। बहुत से ऐसे अपरिणामदर्शी व्यवसायी होते हैं जो एक बार बाजार में नाम बन जाने पर फिर आगे खरीदार के स्वार्थ की ओर तनिक भी लक्ष्य नहीं रखते। ऐसे लोगों को व्यवसायी न कहकर अव्यवसायी कहना ही युक्ति संगत है। क्योंकि इन लोगों के इस व्यवहार के फल स्वरूप व्यवसाय का सर्वनाश हो जाता है। अतः जो लोग नवीन एजेन्सी खोलना चाहते हैं उनको लोगों की आंख में धूल

डालकर रुपया कमाने की इच्छा परित्याग कर देना चाहिए।

प्रसंगावशात् हम यहां इस व्यवसाय के नूतन व्रती लोगों को ऐसी और भी बहुत सी जानने योग्य बातें स्मरण करा देना चाहते हैं।

छोटी व बड़ी किसी प्रकार की एजेन्सी क्यों न खोली जाय, जिसके पास से एजेन्सी ली जाती है, उसके समीप अग्राभल के तौर पर कुछ रुपया अवश्य रखना होता है। इस रुपये का परिमाण माल के परिमाण और उसके मूल्य के तारतम्य के अनुसार स्थिर होता है। प्रारम्भ में बहुत रुपया अमानत रखकर, अधिक परिमाण के माल से कारबार करना विशेष बुद्धिमानी का काम नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

किस वस्तु की एजेन्सी लेना चाहिये, इस विषय पर यथेष्ट विचार करने की आवश्यकता है। वास्तव में एजेन्सी की सफलता मुख्यतः एजेन्ट की माल निर्वाचिनी शक्ति पर निर्भर करती है। यह पहिले ही देखना चाहिए कि हम जिस वस्तु की एजेन्सी लेने जा रहे हैं, देश में उस वस्तु की यथेष्ट आवश्यकता है अथवा नहीं? द्वितीयतः वह वस्तु अपने जाति की वस्तुओं के बीच में सुलभ और सर्वाङ्ग सुन्दर है कि नहीं? वर्तमान क्षेत्र में अर्थात् एजेन्सियों की वैवस्था में सुलभ और उत्कृष्ट माल संग्रह करने की ओर ही सबसे अधिक झुकाव देना आवश्यक है। इसमें देशी और विलायती का फेर करने से नहीं चल सकता। यहां विलायती अर्थ में सभी विदेशी वस्तुओं की धारणा आ रही है। इसके कहने का कारण यह है कि क्रेता लोग अपने कष्टार्जित पैसे के बदले में उत्कृष्ट वस्तु ही लेना चाहते हैं। एवम् क्रेता लोग जैसी वस्तु खरीदने की इच्छा रखते हैं, विक्रेता को वही संग्रह करना होता है। इस स्थान पर यह कह देना भी आवश्यक है— कि विक्रेता लोगों को क्या खरीदना उचित है, इस सम्बन्ध में हमने अपना कोई मन्तव्य प्रकाश नहीं किया, केवल, क्रेता लोग क्या खरीदना चाहते हैं उसी का उल्लेख किया गया है।

जो भी हो सेलिंग एजेन्सी खोलने पर और भी बहुत से हिसाब किताब की ओर दृष्टि रखनी पड़ती है। परन्तु वह सब Technical deffioulties की बातें कोई भी एक बाहिरी व्यक्ति सम्यक रूप से नहीं समझा सकता। जो लोग इस व्यवसाय के व्रती होकर आगे बढ़ते हैं, उन्हें इन विषयों में अपने आप कष्ट सहकर सोचना समझना होता है। और इतने पर भी, यदि कोई प्रति बन्धक कारण सामने हुये तो उन सबका अपने अध्यवसाय और साहसिकता के बल पर अतिक्रम करना होता है।

व्यवसाय-वाणिज्य एक आर्ट विशेष है, और किसी भी आर्ट में पूर्ण रूप से पारदर्शी होने के लिये विधिवत साधना की आवश्यकता होती है। अनन्य कर्मा होकर कोई एक वस्तु को लेते हुए न बैठने से किसी भी साधना में सिद्धि लाभ नहीं की जा सकती। इसलिए जो लोग पहिले पहल सेलिंग एजेन्सी खोलें, उनको एक बार ही अधिक वस्तुओं की एजेन्सी लेकर भरती

शक्ति को चारों ओर नहीं छोड़ देना चाहिए। यह उपदेश केवल प्रारम्भिक अवस्था के लिए दिया गया है। व्यवसाय क्षेत्र में खूब सुपरिचित होजाने पर फिर विभिन्न वस्तुओं की भी एजेंसी ली जा सकती है।

सम्प्रति इस देश में असंख्य शिक्षित युवक नौकरी के अभाव में बेकार बैठे हैं। उनमें से अनेक ही १००, ५०, रुपया मूल धन जोड़ने की सामर्थ्य रखते हैं। इस प्रकार चार २ पांच पांच व्यक्ति दल बद्ध होकर अनायास ही एक २ सेलिंग एजेन्सी खोल सकते हैं। ऐसी एजेन्सियों में हानि की विशेष सम्भावना नहीं होती बल्कि कुछ परिश्रम और बुद्धिमत्ता के साथ काम करते जाने से यथेष्ठ लाभवान होने की आशा रहती है। उद्यमशील युवकों को इस ओर अवश्य लक्ष देना चाहिये।

देश में सेलिंग एजेन्सी खुलने से केवल एजेन्ट लोग ही लाभान्वित होंगे—सो नहीं, इससे स्वदेश का भी परम कल्याण साधित होगा। स्वाधीनता कहो या स्वराज्य कहो, व्यवसाय-वाणिज्य की उन्नति न करने से कुछ भी होने का नहीं। हमारे देश में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का विदेशी माल आता है। कपड़ा, साबुन, इत्र, तैल—सभी कुछ तो विदेश से आने वाली वस्तुएं हैं। आवश्यक्ता है कि यह सब वस्तुएं इसी देश में तैयार की जावें और इस देश में तैयार करके बिक्री के लिए विदेश भेजी जावें। परन्तु उन वस्तुओं को यहां से बिक्री के लिए भेजने का काम कौन करेगा? कारखाने वालों में तो यह सामर्थ्य और शक्ति नहीं है। हां, यदि गांव गांव और नगर नगर में सेलिंग एजेन्सी खोल दी जावें तो स्वदेशी कारखानों का माल देश विदेश में सब जगह प्रचुर परिमाण में बेचा जा सकता है। क्योंकि देशी कारखानों का माल अपेक्षाकृत खराब होवेगा ही, एवम् एक मात्र सुप्रतिष्ठित सुनाम सम्पन्न सेलिंग एजेन्सी ही उस अपेक्षाकृत खराब माल को क्यानभासिंग के ज़ोर से बाज़ार में चला सकती हैं। पृथ्वी के अन्य सब देशों में माल खपाने की यही व्यवस्था है। हम अपनी आंखों के सामने ही देखते हैं कि ऐसी कितनी ही तृतिय श्रेणी की वस्तुयें क्यानभासिंग के ज़ोर से और विज्ञापन के आडम्बर से प्रथम श्रेणी की वस्तुओं के रूप में धड़ल्ले के साथ बेची जारही हैं।

इससे यह स्पष्ट होगया कि सेलिंग एजेंसी की स्थापना द्वारा अपने लिए अर्थोपार्जन का मार्ग सुगम बना लेने से, केवल इसी कार्य के द्वारा प्रकारान्तर से देश का भी उपकार किया जा सकता है। आशा है युवकगण आलस्य और अकर्मण्यता त्याग कर अपने अन्नवस्त्र का संस्थान कर लेने और देश को यथोचित लाभ पहुंचाने के पवित्र विचार से प्रेरित होकर इस क्षेत्र में अवश्य ही अग्रसर होंगे, इत्यलम्।

(खास "रसायन" की वाणिज्य संख्या के लिये)

'सच्चा—स्वराज्य'

ले० श्री० प्रो० पं० लौटूसिंह गौतम, एम. ए., एल. टी. काव्यतीर्थ
एम. आर. ए. एस.

आज संसार में एक नई चहलपहल है। जबसे यूरोपमें १९१४-१९ वाला 'महान-युद्ध' हुआ, तब से संसार की अधीनस्थ जातियों में जागृति के भाव द्रुतवेग से होने लगे। अमेरिका, अफ्रीका और एशिया महाद्वीपों में इस [जा]गृति से जनता में जीवन आने लगा। यहां [प]र हम मिश्र, टर्की, फारस, अफगानिस्तान [आ]दि-आदि की बात न कह दो चार शब्द [भा]रतवर्ष के ही विषय में लिखकर यह दिखाने [क]ी चेष्टा करेंगे कि भारतवर्ष की जागृति को [कि]स मार्ग का अवलम्बन करना श्रेयस्कर है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि विदेशियों के भारतवर्ष की विजय में भारतवर्ष की ही राजनीतिक मूर्खता का अधिक हाथ है। आज १९३० में अनेक भारतवासी ही 'मत' के आवेश में आकर भारत के भविष्य को अन्धकार में फेंकना चाहते हैं। हमें और विजेताओं की चर्चा करने का समय और स्थान नहीं है। १७५७ में प्लासी के युद्ध से सन् १८५७ के ग़दर तक १०० वर्षों में कहा जाता है अङ्गरेजी कम्पनी ने अपना आधिपत्य भारतवर्ष पर जमा लिया और उसकी जड़ इतनी गहरी चली गई थी कि १८५७ के ग़दर में हिल तो गई पर हिल कर और दृढ़ हो गई। सर लेपिल ग्रिफिन (Sir Lepel Griffin) ने बड़े शान से लिखा है:—"Perhaps a more fortunate occurrence than the Mutiny of 1857 never occurred in India" अर्थात् कदाचित् १८५७ के ग़दर से बढ़कर और कोई भी सौभाग्यशाली घटना भारत में न हुई। देखिये (Oxford History of India by V. A. Smith page 725.)! १८५७ के ग़दर में यदि पञ्जाब नेपाल ने भारी सहायता न की होती, यदि बम्बई मद्रास शांत न होते और यदि १८५७ के गदर करने वालों ने बुद्धि न खोई होती, यदि उनका उद्देश्य अच्छा होता तो सर लेपिल ग्रेफिन को इतनी शान से "गदर" के विषय में लिखने का अवसर न मिलता।

आज १९३० में हम देखते हैं कि अनेक नवयुवक उत्तेजित होकर बुद्धि और तर्क को फेंक कर खून-खराबी करने के लिये तय्यार हो जाते हैं और यह सब होता है, भारत में स्वराज्य

लाने के लिये ! भारत में 'सच्चा स्वराज्य' तभी स्थापन हो सकता है जब हम भारत के भयङ्कर रोग का सच्चा निदान करलें। भारत का भयङ्कर रोग पोसने वाली दरिद्रता है। जब तक यह दरिद्रता न जायगी तब तक सच्चा स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता। इस बात को खूब समझ कर संसार-भूषण महात्मा गांधी ने साम्पत्तिक अवस्था ठीक करने के लिए चर्खे का प्रचार किया है। हम मानते हैं कि यह चर्खा आज वैज्ञानिक युग में सब के लिये उपयुक्त नहीं हो सकता है, परन्तु इस समय के लिए तो जब कि हमारे भारतीय ८० प्रतिशत भाई देहातों में रहते हैं, जहां वे ४-६ घण्टे बेकाम रहते हैं, उनके लिए २ आने ४ आने का सूत कातना बहुत है और उनकी अवस्था बहुत गिरी हुई है कि जब तक उन्हें अच्छा उदाहरण न मिले वे टस-से-मस न होंगे। अतः यदि सब लोग थोड़े समय के लिए चर्खा कातने लगेंगे तो वे भी विवश हो इस अव्यवसाय का कार्य करेंगे और भारत का भला होगा। महात्मा गांधी जी इस कार्य को 'कर्मयोग' अथवा 'निष्काम कर्म' कहते हैं। जिसके विषय में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है:—

> नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
> स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

लिखने का सारांश यह है कि भारत का सच्चा स्वराज्य साम्पत्तिक उन्नति से प्राप्त होगा। घोर परिश्रम और घर की बातों पर पूरा ध्यान देकर अपनी भौतिक उन्नति करके हम मनुष्य बन सकते हैं। और तभी हम सच्चे स्वराज्य के अधिकारी होंगे। "यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" ऐसा वैशेषिक दर्शन का भी वाक्य है अतः भौतिक उन्नति पर ही निःश्रेयस का प्रासाद खड़ा करना पड़ेगा इससे बढ़कर हास्यास्पद और मूर्खता की बात न होगी जब हम लोग समझ लें कि भारत को कोई देश स्वराज्य ऐसे ही दे देगा जैसे मूर्ख दरिद्र को सदय हिंदू भाई लड्डू पचाते हैं। जो लोग आज संसार की साम्पत्तिक युद्ध का ज्ञान रखते हैं उन्हें मालूम है कि आज जो १८-१९ से यह युद्ध चल रहा है उसमें वही देश अपनी स्थिति सम्भाले रह सकता है जिसने अपनी साम्पत्तिक दशा संभाल रखी है। आज युद्ध इस बात का है कि कौन सा देश वाणिज्य में बाज़ी मार सकेगा। इस वाणिज्य-युद्ध में इङ्गलैण्ड अपनी स्थिति निश्चित किये रहना चाहता है। किसी समय में इङ्गलैंड ने 'फ्री-ट्रेड' अथवा 'स्वतन्त्र वाणिज्य' का उदार सिद्धांत स्थिर किया था। आज वही इङ्गलैंड "Imperial preference" अर्थात् बृटिश साम्राज्य की वस्तुओं के लिये पूर्व रुचि रखने वाला स्वार्थमय सिद्धांत अपने लिये श्रेयस्कर समझता है। अतः आज इङ्गलैंड अपनी वाणिज्य स्थिति को ख़तरे में जान कर अपने साम्राज्य के अन्तर्गत देशों से कह रहा है। आइयो ! भाई-चारा निभाओ। पहले अपनी ही बृटिश साम्राज्य की वस्तुओं को खरीदो। जब ये वस्तुएं अपने साम्राज्य में न मिलें तो अन्य देश का द्वार खटखटाओ। इसमें इङ्गलैंड की चतुराई है। वणिक्जन अपना काम निकालना खूब जानते हैं। वणिक्

शिरोमणि इङ्गलैंड चार शताब्दियों से संसार के बाजार पर अपनी धाक जमाये था। जर्मनी ने उस पर दांत लगाना चाहा। १९१४ के युद्ध में लार्ड ग्रे ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए महान् युद्ध में भाग लिया था। जानने वाले जानते हैं कि वास्तविक रहस्य था वाणिज्य रक्षा का करना। यदि जर्मनी संसार में अपना वाणिज्य जमा लेता तो "बनियों की जाति" "Nation of Shopkeepers" की नाक कट जाती। ये बातें इतनी स्पष्ट हैं कि इन्हें सबको जानना चाहिये।

यह सब समझकर वाणिक श्रेष्ठ महात्मा गांधी ने वणिक अस्त्र शस्त्र का प्रयोग करना चाहा है। अपने घर की बनी हुई वस्तुओं से अपना कार्य चलाओ। वणिक की बुरी बान का अनुकरण न करो परन्तु स्वयं वणिक के स्वार्थ का शिकार भी न बनो। खून खराबी की आवश्यकता नहीं है। 'अहिंसात्मक अस्त्र' चर्खा रूपी सुदर्शन चक्र से सच्चा स्वराज्य मिल सकता है। हम मानते हैं चर्खा हमारे स्वराज्य का अन्तिम अस्त्र न होगा क्योंकि इस वैज्ञानिक युग में हम केवल चर्खे से अपनी स्थिति नहीं संभाल सकते। परन्तु इस समय के लिए वह आवश्यक है। और अत्यावश्यक है।

हम कह आये हैं कि भारतवर्ष हमारी राजनीतिक मूर्खता से हमारे हाथों से गया। किंतु साधन अङ्गरेजों का था वाणिज्य। ये बनिये हमें आलसी बनाकर हमारा धन ले गये। हमने आपस ही में लड़-लड़ कर बारी-बारी इनकी सहायता से अपना ही रुधिर बहाया। १०० वर्ष के भारत विजय के इतिहास का सारांश यही है। आज अनेक देश द्रोही भाई इस महायज्ञ रूपी साम्पतिक सुधार के निशाचर बन रहे हैं यदि हम में थोड़ी भी बुद्धि रह गई है तो हम हिन्दू मुसलमान प्रभृति भारतवासियों को समझ लेना चाहिए कि आज देश और संसार की परिस्थिति के अनुसार हमें सच्चा स्वराज्य प्राप्त करना है तो हमें अपनी साम्पत्तिक दशा सुधारनी होगी। राजनीतिक आन्दोलन से लाभ हो सकता है होता है और होगा परन्तु सच्ची उन्नति तब होगी जब भारत अपना व्यवसाय, अपना वाणिज्य उन्नत कर संसार में अपनी स्थिति संभाल सके। सच्चे स्वराज्य प्राप्त करने का प्रधान साधन यही है।
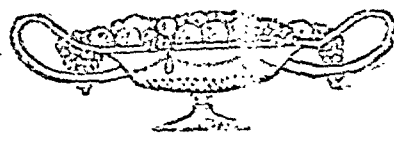
वर्द्धतां रसायनम्

(ले०—हनुमद्दुर्गस्थो रामचन्द्र शर्म्मा, शास्त्री)

कवित्तम्

व्यापारपाटवं प्रदाय, नीतिकलाकौशलं
वितीर्य, येन दर्शितं समुद्यमाना ञ्चाऽयनं ।
मनस्विनां महन्नृणा ञ्च जीवनोपवर्णनेन
साहसप्रियत्वरूपं दत्त मीड्योपायनम् ॥
तथाऽर्थसंग्रहस्य कुञ्जिकां प्रदर्श्य भारतीय—
मानवानां मानसे निवेशित ञ्चाऽऽऽऽह्लायनं
'वाणिज्यसंख्यया' तदेतदाप्रविश्य हायनं
'श्रीरामचन्द्र' ? तुर्य संवर्द्धतां 'रसायनम्'॥१॥

अर्थ—जिस ' रसायन ' ने व्यापार, नीति, कला-विज्ञान के चातुर्य का प्रचार करने में अत्यन्त ख्याति प्राप्त की, एवं जिसने, उद्योग करने के तरह तरह के तरीके बतलाये, तथा बड़े २ व्यवसायी महापुरुषों की जीवनी लिखकर लोगों के मुर्दा दिलों में भी उत्साह का सञ्चार किया, और धन कमाने की कुञ्जी बतलाकर धन प्राप्ति के लिए लालायित रहने वाले भारतियों के हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न की।

परमात्मा करे, वही ' रसायन ' (मासिकपत्र) अपने तीन सालों को समाप्त कर, इस 'वाणिज्यसंख्या' से चौथे वर्ष में पदार्पण करता हुआ खूब उन्नति करे।

अग्नि ज्वाला में।

रचयिता—श्रीयुत पं० रामलाल जी पाण्डेय 'लाल'

चरखा को चलाओ नित्य सूत को निकाला करो,
खादी का दुशाला करो, शीत के कसालामें।
खादी की रज़ाई, मिरजाई पुष्ट-खद्दर की,
पन्हो, ओढ़ सोओ पैर तानें ऐन पालामें॥
त्याग के अपूत-सूत, पावन स्वदेशी तागा,
लेकर जनऊ करो, डालो "लाल" मालामें।
लेना हो स्वराज्य जो, तो सजलो स्वदेशी वस्त्र,
आज ही विदेशी वस्त्र झोंको अग्नि ज्वालामें॥

(खास 'रसायन' को वार्षिक-संख्या के लिये)

भारतीय-व्यापार प्रगति

(ले०-श्री० पं० रमाकांत जी त्रिपाठी 'प्रकाश' सम्पादक-"पूर्णेन्दु")

जिस विषय को लेकर मेरी लेखनी रसायन के पाठकों की सेवा करने के लिए उद्यत हुई है, वह विषय मेरे लिए दुःस्साध्य होते हुए भी मित्रवर सम्पादक जी की आज्ञा न उल्लंघन करने का फल है कि मैं निम्न पंक्तियों में अपने निजी अनुभव तथा विचारों को प्रकट करने में सफल हुआ हूं।

पाठक गण! आप इन पंक्तियों में जो कुछ पढ़ेंगे वह मेरे चार वर्ष के व्यापारिक जीवन के अनुभव हैं। अस्तु इन पंक्तियों के लिखने का दायित्व भी मेरे ही ऊपर है, क्योंकि अपने विचारों को प्रकट कर देना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है इससे दो लाभ हैं यदि वे विचार वास्तव में न्यायसंगत और उपादेय हैं तो सर्व साधारण को हितकर हैं, अन्यथा लोगों के विचार प्रकट होने पर उन पर जो समालोचनायें हुआ करती हैं उससे वह अपनी भूलों से परिचित होजाता है, जिससे भविष्य के लिए वह ऐसी भूल नहीं करता। मैं आधुनिक भारतीय व्यापार को निम्न लिखित विभागों में विभाजित करके पृथक पृथक संक्षेपतः आलोचनात्मक दृष्टि से अपने विचार प्रकट करूंगा।

(१) शिक्षित व्यापार मण्डल। इस मंडल में भी कई उप विभाग हैं, यथा—

(क) मिल, कारखाने, प्रेस-पुस्तकालय, पत्र आदि चलाने वाले।

(ख) औषधालय, तेल, सोप, आदि के व्यापारी।

(ग) अच्छे २ स्टोर जौहार बेचने वाले, बैंक, लेन देन करके उन्नति करने वाले इत्यादि।

(२) अर्द्ध शिक्षित व्यापार मण्डल (३) मूर्ख किन्तु चतुर व्यापार मण्डल (४) निर्धन व्यापार मण्डल।

(१) शिक्षित व्यापार मण्डल में यदि हम बड़ी २ मिल मालिकों को भी लेलेते हैं तो हमारे विभाग क्रम में कुछ त्रुटि तो अवश्य आजाती है किन्तु परिस्थित ही हमें इन्हें भी इसी विभाग में रखने के लिए विवश करती है। वास्तव में इनमें बहु संख्यक ऐसे भी मालिक हैं जो [illegible] के बल पर अपना कार्यालय तो चला रहे हैं किन्तु वे हैं अर्द्धशिक्षित ही, ऐसे व्यापारी बड़े चतुर होते हैं। इन्हें सदा अपने लाभ की तो [illegible]

रहती है किन्तु अपने कर्मचारियों के प्रति उनका व्योहार ऐसा नहीं होता जैसा चाहिये। इसका परिणाम यह होता है कि उनके अधिकांश कर्मचारी कामचोर और लोभी हो जाते हैं। जिस का बुरा परिणाम, स्वामी और सेवक दोनों पर पड़ता है। यदि हम ऐसे स्वामियों की तुलना आधुनिक देशी नरेशों से करें तो अत्युक्ति न होगी। इन पंक्तियों के लेखक को भी बहुधा रियासतों में जाने का अवसर पड़ा करता है, यदि वहां के स्वामियों और सेवकों के आपस के व्योहार का वर्णन किया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ तैयार हो सकता है। रियासत में व्याह पड़ा है बेगार में मजदूर बुलाये जाते हैं, वे दिल लगाकर काम नहीं करते, दिल से कुढ़ते रहते हैं और कितने ही अनुचित कार्य भी कर बैठते हैं। कहां तक कहूँ, इस एक ही विषय को लेकर फिर कभी रसायन के पाठकों की सेवा में उपस्थित हूंगा। इस विभाग वालों का अन्तिम परिणाम बुरा ही होना है।

(अ) प्रेस, पत्र, पुस्तकालय आदि चलाने वालों में भी दो भाग हो सकते हैं, एक तो वे संचालक जो अपने नाम, दाम, काम के अतिरिक्त लोक लाभ का भी ध्यान रखते हैं और इन्हीं का कार्यस्तुत्य भी होता है, और ये स्वयम् सरल हृदय होते हैं और अपने कर्मचारियों के प्रति भी उनका पुत्रवत् व्योहार होता है। कर्मचारी गण भी उनकी हार्दिक सेवा करने में त्रुटि नहीं रखते हैं। उदाहरणार्थ श्री वेंकटेश्वर प्रेस के संचालक, नवलकिशोर प्रेस, इण्डियन प्रेस आदि २ इसका परिणाम भी सब देख रहे हैं इनके यहां बचपन से नौकरी कर २ लोग वृद्ध होगये हैं। पुस्तकालय और पत्र चलाने वालों में भी इसी प्रकार दो दल हैं। एक सत्यव्योहार के बल ख्याति प्राप्त कर उन्नति करते हैं, दूसरे कुछ दिन लोगों की आंख में धूल डाल कर रुपया वसूल कर लेने पर जनता की दृष्टि से सदा के लिए गिर जाते हैं। इसमें पहिले के उदाहरण बहुत हो सकते हैं, यथा प्रताप, अभ्युदय, भारत, कर्मवीर, माधुरी, सुधा, सरस्वती, चांद, हिन्दूपञ्च आदि तथा हिन्दी मन्दिर, आर्यपुस्तकालय, गंगापुस्तमाला आदि २ दूसरे का उदाहरण देना अपने सर बला लेना है।

(ब) औषधालय सोप आदि २ के व्यापारी-पूर्व कथनानुसार इस में भी सत्य ही का बोलबाला रहता है, उदाहरण के लिये सुखसंचारक कम्पनी, वर्धमन, अमृतधारा, डोंगरे का बालामृत, अमृताञ्जन आदि २ नकली बरसात के जुगुनू की भांति चमक कर रह जाते हैं।

(स) स्टोर संचालकोंमें भी दो का झगड़ा है एक सदा एक दाम खरा काम जानते हैं। वास्तव में आज की परिस्थिति देखते हुए उन्हें आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ती है, क्योंकि जिन्हे मोलचाल करने की जन्म से आदत पड़ी है वे बिना खटपट किये, कुछ कम कराये बिना सौदा करते ही नहीं, यहां तो एक दाम खरा काम का अड़ंगा है क्या करें। दूसरे वे महाशय हैं जो जैसा ग्राहक देखते हैं वैसा कर गुजरते हैं, उन्हें बात की परवाह करना कौनसी बड़ी बात है।

(२) अर्द्ध शिक्षित व्यापार मण्डल—ये बहुधा धनी होते हैं किन्तु रुपया किस प्रकार कमाया जाता है और उसका कैसा सदव्यवहार करना चाहिए यह इन्हें ज्ञान नहीं रहता है। वही पुराना ढंग, वही लेन देन, आगे किस प्रकार उन्नति की जाय यह वे नहीं जानते। ऐसे महानुभावों के पास यदा कदा कोई उत्साही नव-युवक आकर व्यापार के ढंग बताते हैं और भारत में कोई नया कार्यालय खोलना चाहते हैं तो सहायता देने के बदले इन्हें बातों का धक्का देकर अपने सर से बला टालते हैं।

(३) मूर्ख किन्तु चतुर मण्डल में अधिकांश वे बनिये होते हैं जो पढ़े लिखे तो कुछ नहीं होते किन्तु हिसाब लाखों का उनकी अंगुलियों पर होता है। देखने में मैले कुचैले होते हैं कोई देखे तो एक भिखमंगा ही अनुमान करे किन्तु, लाखों रुपया धरे रहते हैं। ऐसे व्योपारी न तो स्वयं खाते हैं न अपने परिवार ही को भरपूर सुख पहुँचाते हैं। रुपया संग्रह करना ही इनका परम धर्म है ऐसे व्योपारी का होना न होना बराबर ही है।

(४) निर्धन व्यापार मण्डल—इस मण्डल के सदस्य निर्धन किन्तु पर्याप्त पारिवारिक व्यय का बोझ लादे रहते हैं, फेरी, खोमचा, नीलाम आदि धन्धा करके पेट पालते हैं. इन में एक अधम जाति भी होती है, जो दूसरों की आंख में धूल झोंक कर पैसा ऐंठने में अपना दूसरा उदाहरण नहीं रखते, ये हैं, कचहरियों में लेक्चर देकर दवा आदि बेचने वाले या झूठी एजेन्सी करके रु० लेकर चम्पत हो जाने वाले। कहना नहीं होगा कि इस मण्डल में भी बहुत से सभ्य और सज्जन भी होते हैं, जो थोड़े पैसे से कुछ वस्तुयें बना कर या खरीद कर बेचते हुए अपना जीवन निर्वाह करते हैं। न ऊधो का लेना न माधो का देना, किन्तु इन्हीं में कुछ ऐसे भी होते हैं जो आज हमसे सौदा उधार लाये बेचने पर घर के खर्च भर का पैसा पागये अपना काम चलाये कल दूसरे के यहां से माल लाये इसी प्रकार इधर उधर कर अन्त में अपने को झंझटों के जाल में बुरी तरह फँसा लेते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि या तो वे छिप कर उस स्थान से सदा के लिये विदा हो जाते हैं या कलंक और तिरस्कार के प्रत्यक्ष स्वरूप बने किसी प्रकार कालयापन करते हैं। इसमें उनका भी कुछ अधिक अपराध नहीं होता परिस्थिति ही उन्हे ऐसा करने के लिए बाध्य करती है। पारिवारिक झगड़े उन्हें इस प्रकार निकम्मा करदेते हैं और उन्हे इस समस्या के सुलझाने के लिए क्षमता भी नहीं होती।

अब हम परिभाषा प्रकरण छोड़कर आगे बढ़ते हैं, और निम्न पंक्तियों में हम यह प्रकट करना चाहते हैं कि आधुनिक व्यापार मण्डल में आकर हमारा क्या कर्तव्य है।

जहां तक देखाजाता है भारतियों का दूसरे लोगों की नकल करना पुश्तैनी स्वभाव है। एक फैशन ही को ले लीजिए सचमुच कोई फैशन रह ही नहीं गया वर्ष भर में कितने नए फैशन प्रकट हुआ करते हैं। एक दृष्टांत यहां कह देना युक्ति युक्त होगा, किसी अङ्गरेजी स्कूल में एक अङ्गरेज इन्सपेक्टर निरीक्षणार्थ गया। संयोग

के उसका पतलून जांघ पर फटा था कुछ फैशनेबिल लड़के ताड़ गये कि जांघ पर फटा पतलून इङ्गलिश सभ्यता है जो अभी तक हम लोगों को ज्ञात ही नहीं, दूसरे दिन अधिकांश लोग अपने पतलून उसी स्थान पर फाड़ कर पहने हुए स्कूल में प्रवेश किये, अध्यापक के प्रश्न करने पर जो उनका सिद्धांत प्रकट हुआ तो अध्यापकगण पेट हँसकर लोट गये। बिलकुल यही हाल हमारे आधुनिक व्यापार मंडल का है। एक तो कभी किसी को कोई नया रोजगार सूझेगा नहीं, यदि कोई व्यक्ति का पहला कोई नया व्यापार आरम्भ करेगा और आंख के अन्धे गांठ के पूरे इससे लाभ उठाते देखेंगे तो तत्काल वही व्यापार उसी स्थान पर उससे अधिक रुपया लगाकर आरम्भ करके अपने आरम्भिक गुरु ही को रसातल भेज देने का प्रयत्न करने लगेंगे। यही नहीं तत्पश्चात उनके कई और भाई भी प्रकट हो उठेंगे। हमारे शहर में पहले एक मोटर लारी चली, उसे अच्छा लाभ हुआ उसके बाद दो मंगाई गईं। फिर क्या था धड़ाधड़ मोटरें आने लगीं। इस समय पच्चीसों लारियां चल रही हैं। एक २ सड़क पर दस २ लारियां चलने लगीं उसका परिणाम यह हुआ कि अब सस्ता उतार (कम्पटीशन) में केवल पैट्रोल का खर्च लेकर चलाने लगे घाटा होने लगा। कम्पनी का मूल्य न चुकता होने पर मोटरें नीलाम होने लगीं, मेरे कहने का सारांश यह है कि दूसरे की नकल करने से व्यापार न करना अच्छा है क्योंकि इससे व्यापार शब्द की मिट्टी पलीद होती है। कोई सुधासिन्धु की बिक्री देखकर अमृत सुधासिन्धु बेचने फिरते हैं तो कोई अमृतधारा के स्थान पर नवीन या अपूर्व अमृत धारा बेचते हैं। इनकी अन्त में वही दशा होती है जो चोरों की। अपने मस्तिष्क से कोई वस्तु निर्माण कर प्रसिद्ध करना तो जानते ही नहीं सनलाइट सोप के पीछे इतने पड़े की स्वान लाइट, सीतल लाइट, मून लाइट, आदि २ कितने सोप रच डाले किंतु न तो किसी ने उसका मुकाबला ही कर पाया न उन्नति ही कर सका। हां वे उन्नति अवश्य कर सकते थे जब कि कुछ बुद्धि से काम लेते और ऐसी वस्तु निर्माण करते जो सर्वोत्तम होती और अपने आप अपने प्रतिद्वन्दी को पिछाड़ देती।

विज्ञापन भी व्यापार की जड़ है इसे अब कुछ २ भारतीय भी जानने लग गये हैं और उससे अच्छा लाभ भी उठा रहे हैं किन्तु फटे पतलून की भांति बहुत से व्यापारी विज्ञापन संसार में भी कलंक पैदा कर रहे हैं, और विज्ञापन का बुरी तरह दुरुपयोग कर रहे हैं। वे विज्ञापन का महत्व तो जानने लग गये हैं। किन्तु उपयोग करना उन्हें ज्ञात नहीं है। इसी कारण उनका विज्ञापन, कागज़ की नाव की तरह चिर स्थायी नहीं होता। और उन्हें भी माल सहित ले डूबना है। भारत में भी अब आकर्षक विज्ञापन बनने लग गये हैं और उनका प्रचार भी अच्छा हो रहा है किंतु अधिकतर गड़बड़ घुटाला ही है।

अश्लील विज्ञापनों की भी भारत में खूब भरमार है, कोक शास्त्र और धातु पुष्ट औषधि के व्यापारियों ने तो अपने विज्ञापनों द्वारा भारतीय जनता को उलटे उस्तरे से मूंडा है और मूंड रहे हैं। इन पंक्तियों के लेखक को कई

देसे प्रसाद लुध्याना आदि स्थानों के मिले हैं जो तीन २ रु० में भड़कीले विज्ञापन और असली सचित्र ८४ आसनों का ढोंग रचकर ।-) लागत की रद्दी की टोकरी में डालने लायक पुस्तकें भेजते हैं। मेरे मित्र गण कई बार ऐसी शिकायत करते देखे गये हैं। और उनकी शिकायत ठीक भी निकली है। विज्ञापन बाज सभी पत्रों में विज्ञापन देते रहते हैं। ।) की लागत की पुस्तकों के जब तीन रु० प्राप्त होते हैं तब क्यों न विज्ञापन में खर्च करें लाखों पढ़ने वालों में से कुछ तो फंस ही जांयगे यही उनका सिद्धांत रहता है। वास्तव में यह विज्ञापन शब्द को कलंकित करना है। कितने विज्ञापन बाज नाममात्र का कोई पत्र निकालकर सरकारसे पत्र के बहाने रजिस्टर्ड करा लेते हैं फिर क्या)॥ पैसे में उनके विज्ञापन का पोथा ग्राहकों के पास जाने लगता है। इनको लाभ मात्र द्वाम होते हैं जो एक बार कुछ औषधि या वस्तु खरीद लेने पर वर्ष भर मुफ्त ही देते रहते हैं। इनके विज्ञापन बाजी से अवश्य कुछ लाभ हो ही जाता है किन्तु अधिकांश रद्दी की टोकरी की सैर करते हुए ये विज्ञापनी पुलिन्दे दवा फरोशों और पंसारियों के यहां ही विश्राम पाते हैं। जहां पाश्चात्य देशों में लाखों रु० विज्ञापन में व्यय होते हैं और नित्य विज्ञापनार्थ नए २ आविष्कार होते हैं, मनोरंजक चित्र कलेन्डर छापे जाते हैं वहां भारतीय विज्ञापन संसार में कुछ को छोड़कर प्रायः सभी रद्दी कागज का जो कठिनता से पढ़ा जाय व्योहार करते हैं, विज्ञापनों में जहां तक हो सके सत्य की मात्रा ही अधिक होनी चाहिए. जब सत्य और विज्ञापन दोनों बराबर मात्रा में होंगे तब व्यापारिक उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होगी।

अनेक औषधि तैल आदि २ के व्यापारी भी झूठे विज्ञापन का इतना उपयोग करते हैं कि जिससे धीरे २ सभ्य संसार का विज्ञापन से विश्वास ही उठता चला जा रहा है किसी भी विज्ञापन के सोलहों आने सच्चे होने की नितान्त आवश्यकता है। विज्ञापन की भाषा भी सरल सुबोध और सभ्यता के साथ होनी चाहिये। जैसा कि बहुत कम देखने में आता है। कि विज्ञापन नेत्र रंजक अक्षरों द्वारा संक्षेप में ही होना चाहिए। विज्ञापन के शीर्षक बनाने में भी कम बुद्धि की आवश्यक्ता नहीं है। शीर्षक (हेडिंग) ऐसा होना चाहिये कि पाठक बिना आद्यन्त पढ़े रहे ही नहीं। लेख बढ़ने के भय से इस विषय को यहीं पर छोड़ता हूं यदि सम्पादकजी की इच्छा हुई तो कभी विज्ञापन शीर्षक पर ही कुछ लिखने का प्रयत्न करूंगा।

व्यापारिक व्योहार।

ग्राहकों के प्रति व्यापारी का क्या कर्तव्य है इसके जानने की भी विशेष आवश्यक्ता है। बहुत से व्यापारी ऐसे होते हैं कि उनके बरे पन के कारण ग्राहक बहुधा रुष्ट हो जाते हैं। यदि व्यापारी किसी वस्तु का मूल्य १) बतलाया है तो यदि ग्राहक ॥) या ॥।) कहे तो उसके प्रत्युत्तर में रूखे शब्दों का प्रयोग करना व्यापारी के लिए हानिकर है। व्यापारी को चाहिए कि उससे कहे या तो आप यह माल न पावेंगे अथवा और कोई माल होगा किन्तु मेरे यहां इसका सस्ता नहीं रहा अतः क्षमा-

देना कष्ट तो हुआ। साथ ही इस बात का भी ध्यान रहे कि आपका दाम बिल्कुल बाजार भाव पर रहे जिससे यदि ग्राहक असत्य भाषण करता है तो वह झेंपेगा और आपकी सत्यता का रोब उसके ऊपर छा जाएगा यदि उस दिन लौट भी जायगा तो फिर दूसरी बार दौड़ा आयेगा।

व्यापार में उधार।

व्यापार में उधार देना अपने लिये घाटा बुलाना है, लेखक का यह अनुभूत अनुभव है। थोड़ी देर के लिए रुखाई धारण कर लेना ही इस रोग से बचने का सरल उपाय है। किंतु व्यापार मण्डल में आपस में बिना लेन देन के भी कार्य नहीं चलता। एक कहावत है कि "बाजार किसका, जो लेय देय उसका" यदि आप बात के पक्के हैं तो आप बिना रु० लगाए ही लाखों रु० का रोजगार कर सकते हैं। किसी के यहां से कुछ नकदी माल लाइए कुछ उधार कर दीजिए बेचकर उसे ठीक समय पर चुकता कर आइए। इसी प्रकार बाजार भर में अपने सत्यपरायणता की धाक जमा दीजिए किंतु अन्त में आप का सत्यव्यापार अधिक ही होना चाहिए न्यून न पड़े।

'एक दाम' का नियम रखना व्यापार के लिए विशेष लाभदायक है। पहिले अवश्य कुछ झंझट उठाने पड़ते हैं। एक दाम के नियम पालने वाले को सदा यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसका सौदा यदि बाजार से सस्ता नहीं है तो घट बढ़ करके खरीदने वाले ग्राहक जितने दाम में दूसरी जगह माल पाते हों आप वही दाम एक दाम में रखिए. एक बार जो ग्राहक लौटेगा अनुभव प्राप्त कर लेने पर वह पुनः आपके यहां ही आयेगा।

किस स्थान में कैसा व्यापार होना चाहिए

इस बात के ज्ञान प्राप्ति के लिए भी अधिक अनुभव की आवश्यक्ता है। यदि कोई नवा उन्नति शील नगर है जहां अब नई २ दुकानें खुल रही हैं, जन संख्या की वृद्धि हो रही है वहां भेड़िया धसान व्यापार ठीक नहीं है। जैसे मिठाई कपड़े आदि २ की दुकान, वहां आपको चाहिए की कोई नई दुकान खोलो जिसका कि आप के नगर में अभाव है, इससे दो लाभ होते हैं एक तो शीघ्र ही अपने व्यापार की उन्नति होती है दूसरे एक अभाव की पूर्ती का श्रेय भी मिल जाता है किन्तु कुछ दिनों तक कोरे हाथ बैठे २ दिन भी बिताने पड़ते हैं तब कहीं नगद नारायण के दर्शन होते हैं।

उद्योग धन्धे।

इससे व्यापार का घनिष्ट सम्बन्ध है किंतु भारतीय भाई वही लकीर के फकीर बने रहते हैं खोज और आविष्कार से कोसों दूर रहते हैं। आप देखते हैं जापान और अन्य पाश्चात्य देशों से प्रतिवर्ष प्रायः सैंकड़ों नई वस्तुएं आविष्कृत होकर हम लोगों का पैसा ऐंठती हैं, पश्चात को उन्हीं के पद चिन्ह पर हम भी चलते फिरते दृष्टिगोचर होते हैं। जूते में देखिए कैसे २ तले लग २ कर आने लगे, हमारे यहां

के कारीगर कुछ न कर पाए वही धमरौधा जूता वही टट्टू, बैलगाड़ियां भी वही ८ सदी की रह गई। कहां तक कहें जहां पाश्चात्य देश अनेकों प्रकार के स्टोव, आदि बना २ कर भारत से लाखों रु० खींच रहे हैं तहां हम मिट्टी और लोहे की अंगीठी के अतिरिक्त और कुछ उन्नति न कर पाये।

एक बड़ी भूल हम लोगों में यह भी पाई जाती है कि जिस हुन्नर को हम जानते हैं उसे किसी दूसरों को बताते नहीं, इससे भी कितने भारतीय उद्योग धन्धों का आज केवल ग्रंथों में नाम मात्र ही रह गया है।

निर्धन-व्यापार मण्डल को चाहिए कि वे ऐसे हुन्नर सीखें जिससे थोड़ी लागत में अपना कुटुम्ब जीवन निर्वाह कर सकें और जो सीखें हों वे उन्हें अपने दूसरे निर्धन भाइयों को बतायें वे इस बात की कदापि चिन्ता न करें कि हमारे धन्धे के अनुगामी और लोग भी हो जायगे। तो हमारा रोजगार मारा जायेगा। और अब मैं कुछ ऐसे ही सीखने योग्य हुन्नरों का उल्लेख करते हुए लेख को समाप्त करता हूं। यदि हो सका तो अन्य अंकों में एक २ हुन्नर पर उदि-स्तार (बनाने की विधियां) लिखूंगा।

निम्न लिखित धन्धों को सीखकर कार्य रूप में परिणित करने में कम धन और अधिक आय की सम्भावना रहती है।

(१) मिठाई के खिलौने इसमें ॥१।-) की शक्कर से कोई भी १।) पैदा कर सकता है, जनता बिना खटखट खरीदती है ॥२ के बेच लेने पर २) की नहीं तो १॥।) की अवश्य ही बचत हो सकती है। आगामी अङ्क में इसकी विधि एक मित्र की लेखनी द्वारा लिखीजायेगी (२) स्याही बनाना, (३) रबर स्टाम्प, चूरन चटनी, आचार बनाना, पेंटिंग, फ्रेम वर्क, गिल्टसाजी, साबुन साजी। गंधक के गिलास बनाना, अगर बत्ती, हवन सामग्री आदि २ इन वस्तुओं के बनाने वालों को चाहिए कि उनकी वस्तुएं बाजारू वस्तुओं से सस्ती और काम में अच्छी हों, धीरे २ विज्ञापन बाजी आरम्भ कर दीजिए सत्य को न छोड़िये दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती जायेगी॥ ओ३म् शान्ति ३॥

(खास "रसायन" की वाणिज्य संख्या के लिये)

भारत में विदेशी-वस्तु-प्रचार के कुछ साधन ।

लेखक—श्रयुत पं० कन्हैया लाल जी मिश्र, "प्रभाकर" विद्यालंकार।
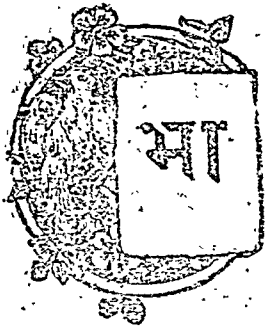
भारत में "व्यापारे वसते-लक्ष्मी" की कहावत पर्याप्त प्रसिद्ध है । वास्तव में किसी भी देशकी समृद्धि-सम्पन्नता एक मात्र उसके व्यापार की प्रगति पर अवलंबित है । यही कारण है कि प्रत्येक स्वतंत्र और बुद्धिमान देश, अपने देश की व्यापारिक दशा को व्यवस्थित और समुन्नत करने में अहर्निश दत्त चित्त है ।

विदेशी राष्ट्रों के इस उद्योग की सिद्धि का साधन है—पददलित और परतंत्र भारत ! प्रत्येक देश अपनी २ चीजों की भारत के बाजार में अधिकाधिक खपत बढ़ाने में प्रयत्न शील है। उनकी वस्तुओं के प्रचार का भारत पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है इसके जानने का न उन्हें अवकाश है और न आवश्यकता ही ।

भारतीय जनता सुदीर्घ पारतन्त्र्य के फल स्वरूप अज्ञान में ग्रस्त होने के कारण इन बातों पर विचार करने में अक्षम है ही । अब रह गये, हमारे गोरे महाप्रभु सो स्वयं तो वे इधर ध्यान देना अनावश्यक ही समझते हैं और यदि कभी भारतीय नेता खोते से जागकर "वानस्पतिक घी" आदि स्वास्थ्यनाशकारी वस्तु की ओर कौन्सिलों द्वारा उनका ध्यान आकर्षित भी करते हैं, तो "पारस्परिक सन्धियों के कारण हम इसका आना बन्द करने में असमर्थ हैं" का रूखा सा जवाब दिया जाता है । परन्तु दुःख है कि फिर भी भारत का एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय दल कौन्सिलों की उपयोगिता में विश्वास करता है। अस्तु. इस प्रकार भारत में 'अच्छी बुरी' विदेशी वस्तु धड़ाधड़ बिक रही हैं।

भारत के बाजार में अधिक से अधिक अपनी वस्तु के प्रचारार्थ, विदेशी व्यापारी नित्य नये उपायों का अवलम्बन करते हैं । उनमें से कुछ का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना ही इन पंक्तियों के लिखने का उद्देश्य है ।

जब कोई विदेशी कारखाना, कोई नई चीज या डिजाइन तैयार करता है तो उस कारखाने के प्रतिनिधि भारत में आकर, बम्बई, कलकत्ता आदि सामुद्रिक नगरों के वैदेशिक व्यापारियों से उसी वस्तु को मांगते हैं ।

व्यापारी जब कहता है—यह चीज़ हम नहीं मंगाते। तब प्रतिनिधि कहता है—वाह, ऐसी उत्तम चीज़ भी आप नहीं मंगाते। यदि अमुक अवधि के भीतर आप इसे मंगायें तो हजारों रुपये की तो हमीं खरीदें। और हमारा विश्वास है कि इसकी बहुत खपत हो सकती है।

प्रतिनिधि पेशगी रुपया जमा कर देते हैं और लाभ के लोभ से भारतीय व्यापारी द्वारा मंगाये जाने पर उस सामान को स्वयं खरीदते और इसी शैली से उसका देश भर में प्रचार करते हैं।

इस प्रकार एक नई विदेशी वस्तु, अल्पकाल में ही भारत में अपना आधिपत्य जमा, हमें निर्धनता की ओर एक कदम और ढ़केल देती है। जिन लोगों ने नवीन विदेशी वस्तुओं की प्रचार-शीघ्रता पर ध्यान दिया है, वे उपर्युक्त विवरण का अनुभव कर सकते हैं।

× × × ×

भारतीय त्यौहारों के अवसर पर, विदेशी कारखानों के प्रतिनिधि भारत में आते और इस बात की जांच करते हैं कि इस पर्व पर भारतीय विशेषता से किन किन वस्तुओं का उपयोग करते हैं और उनका क्या मूल्य है?

दूसरे वर्ष वही वस्तुएं सुन्दर और सस्ते रूप में, भारत में दृष्टिगत होने लगती हैं और सुन्दरता एवं सस्ते पन के कारण उनका प्रचार भी हो जाता है।

जिन लोगों ने जापानी कण्डील (Lantern) आदि वस्तुओं के प्रचार पर ध्यान दिया है, वे इस बात की स्वयं साक्षी दे सकते हैं।

× × × ×

यदि भारत में किसी वस्तु का निर्माण आरम्भ होने से विदेशी कारखानों की उसी वस्तु के आयात में कमी होती है, तो विदेशी कारखानों के प्रतिनिधि भारत में आकर भारतीय कारबार का सूक्ष्म निरीक्षण करते और अपने मालकों को आवश्यक परामर्श देते हैं। मालिक लोग अपने माल को अपेक्षित सस्ता कर भारतीय कारबार का विकास विनिष्ट कर देते हैं। इसका फल यह होता है कि भारतीय कारखानों के मालिक, आपस में संगठन का अभाव एवं विपक्षियों जैसी व्यापारिक निपुणता न होने के कारण, उनका सामना तो दूर रहा, उलटे अपनी आर्थिक क्षति को पूरा करने के लिए उनके माल की एजेन्सी लेकर स्वयं उसका प्रचार करने लगते हैं।

इस प्रकार एक उदीयमान भारतीय उद्योग अपने जीवन के प्रारम्भ काल ही में विनिष्ट हो जाता है—कम से कम अपने विकास को खो बैठता है।

जिन लोगों ने पिछले पन्द्रह, बीस वर्षों की देशी-विदेशी चूड़ियों के संघर्ष का अध्ययन किया है, वे उपर्युक्त विवरण का तत्व भली भांति समझ सकते हैं।

× × × ×

इस प्रकार भारत में विदेशी वस्तु प्रचार के साधन तो थे ही, पर आजकल एक नवीन, पर सबसे भयंकर उपाय का आविष्कार हुआ है—वह है—भारत के नगर नगर में सिनेमों का प्रचार।

आप नगर की, बिजली लगाने से पूर्व की दशा से वर्तमान दशा का मिलान कीजिए और देखिए कि 'नगर पर बिजली गिरने से' विदेशी वस्तुओं की बड़ी २ कितनी दुकानें नई खुल गई हैं।

बात यह है कि प्रत्येक विदेशी वस्तु अपने साथ कई अन्य विदेशी वस्तुओं का विज्ञापन करती है।

यदि आप टेनिश शू खरीदते हैं तो उसका फीता और पालिश खरीदना ही होगा न!

अभी कुछ दिन हुए हमने एक औषधि की विज्ञापन पुस्तक देखी! कहने को तो उसमें केवल एक औषधि (जीवन बिन्दु) का ही विज्ञापन था। यदि अमुक रोग है, तो जीवन बिन्दु के साथ अमुक औषधि, जो कि हमारे यहां से इस भाव पर मिलेगी, संयुक्त कर सेवन करो इत्यादि। बस यही हाल प्रायः विदेशी वस्तुओं का है।

यदि हम अपने देश की समृद्धि चाहते हैं तो, हमारा यह अनिवार्य कर्तव्य है कि हम विदेशी वस्तुओं का मोह त्याग, स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहन दें। भारतीय कला-कौशल और वाणिज्य को समुन्नत करने में अपनी शक्तियों का सदुपयोग करें।

जगन्मातृ-स्तव

(रचयिता—श्रीयुत पं० ब्रह्मदत्त जी शर्मा 'शिशु'।)

हे भव-तरणि तू दे तार!
निशि अँधेरी अति घिरी है, अन्धकार अपार।
प्रलय तुल्य गिरा रहा है, मेघ हा! जल धार॥
वह न हो दुष्काल वायु सुफल-वृक्ष उर वार।
ले चला अब नाँव मेरी मध्य में निरधार॥
अगम जल में कर रहीं अब हैं तरङ्ग-प्रहार।
कौन मां! बिन आपके अब दे लगा पतवार॥
पतित-पावनि नाम सुनकर, तक रहा तव-द्वार।
सुर प्रिये! टुक ओर मेरी एक वार निहार॥
कर चुकी हैं पूर्व लाखों, मात! दीनोद्धार।
अब रुकी किस ध्यान से है, छोड़ आतम विचार॥
विफल-जीवन चल दिया जो हाथ खाली-मार।
"जयति सफला" कह मुझे फिर कौन दे सुपुकार॥
क्या वही प्राचीन "शिशु" अब हो रहा है भार।
पूर्व जिसको अङ्क में ले कर चुकी है प्यार॥

(खास "रसायन" की वाणिज्य-संख्या के लिये).

मुसलमान निवासियों में हिंदू व्यापारी

लेखक—श्रीयुत प्रोफेसर महेश प्रशाद जी मौलवी-आलिम-फाजिल।

काबुली, पठान, या बिलोची लोग जैसे डील डौल के होते हैं वह स्पष्ट ही है। मैंने अनेक बार देखा है कि रेलगाड़ी के जिस डिब्बेमें यह लोग बैठे होते हैं उसमें बहुतेरे हिन्दुस्तानी बैठने में झिझिकते हैं अथवा डरते हैं। परन्तु जहां कहीं पठान बसे हैं अथवा मुसलमान ही मुसलमान हैं उस भूमि में भी जो हिन्दू व्यापारी हैं मैं उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

मैं पिछले दिनों ईरान में अधिक रहा। किंतु मुझे अरब की भूमि के भी दर्शन मिले। मैं बिलोचिस्तान को भी कुछ देख सका और अफ्गानिस्तान की सीमा के निकट तक पहुंचा। ऐसी दशा में मुझे अनेक हिंदू ऐसे मिले जिनका कार बार अरब, ईरान, बिलोचिस्तान तथा अफगानिस्तान में है। उपरोक्त देशों के सिवा कई ऐसे अन्य स्थानों में भी हिन्दू हैं जहां मुसलमान ही मुसलमान बसे हैं। परन्तु उनके विषय में बहुत अधिक बातें मालूम नहीं हुई हैं इस कारण मैं केवल उन्हीं लोगों की बाबत कुछ कहना चाहता हूं जिनके विषय में मुझे कुछ मालूम हो सका है।

अरब के मसकत व दुबाई नामी स्थानों में हिन्दू हैं। व्यापार करते हैं। अरबी बोलते हैं किन्तु अरबी लिख या पढ़ नहीं सकते।

ईरान के बन्दर अब्बास करमान, रफ्सनजान, ज़ुज़दाब, बीरजन्द, मशहद, और तेहरान में हिंदू हैं। यह लोग फारसी बोलते हैं। कई स्थानों में इन लोगों ने अपने देवालय बना रखे हैं। दक्षिणी ईरान में सिंध शिकारपुर के लोग अधिक हैं। पूर्वीय व उत्तरी भागों में पञ्जाबी तथा सिक्ख हैं। इन में से बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो अपनी भाषा के सिवा अङ्गरेजी या फारसी में कुछ लिख पढ़ सकते हैं।

कोयटा बिलोचिस्तान से ईरान की भूमि में थोड़ी दूर तक रेल है। इस लाइन में काम करने वाले बाबू लोग अधिकांश हिन्दू हैं इनके सिवा स्टेशनों पर अनेक दुकानें हिन्दुओं की हैं। चमन अफगानिस्तान की सीमा के पास है वहां भी बहुत सा काम-काज हिन्दुओं के हाथ में है

कन्धार, गज़नी, काबुल तथा अफ़गानिस्तान के अन्य कई स्थानों में हिन्दू हैं। आजकल भी हैं। उनकी दशा क्या है। ठीक नहीं कहा जा सकता किंतु अफ़गानिस्तान के घरेलू युद्ध से पूर्व अच्छे थे।

हमारे बहुतेरे भाई जो बड़े संकीर्ण विचार के हैं उनके विचार से उक्त स्थानों के हिन्दू करीब २ मुसलमान ही हैं। वे धर्म से पतित हैं परन्तु उक्त देशों के अनेक हिन्दुओं से मैं स्वयं मिला हूं। उनसे बहुत कुछ बातें हुई हैं। छुआ छूत के दास नहीं पर धर्म के बड़े प्रे हैं। यहां साधारणतया हिन्दू दब्बू हैं पर हिन्दू साहसी निर्भिक मिले। वह कायर नहीं उन्होंने वहां काफ़ी धन भी कमाया है। बहु ने अकेले ही यात्रा की है।

अब अन्त में यह कहना है कि लोग का रपन को छोड़ें। बाहर निकलें। सजीव बनें इसी में कल्याण है।

Agriculture is being so keenly looked after that the poor cultivators are now well contented and florishing. With the coming in of the new canal at Ganga Nagar wide scope for cultivation has been opened & for bringing the barran lands under irrigation

With all the drawbacks and vast areas of lands lying barren from ancient times Bikaner has held its own in various lines of trade. Though one does not see much of the modern factory life in the state still the old manufactures are keeping pace with the needs of the times and these lines of trade and industries are thriving. Foreign imports have not yet captured the markets with a result that the foodstuffs and fodder are sufficiently cheap compared with the rates prevailing in the other parts of India The policy of protection has had a marvellous effect and has made the state self contained.

The high reputation of the courts of law and Justice has been well maintained and His Highness takes a special care to draw from the outside parts of India the best of the intellects for the adminsitration of the various departments of the State. The revenues of the state are steadily increasing and the finances are in a sound condition.

The press of late has begun to paly a stimulating part in the administration. Newspapers and Magazines are being started for the benefit of the general public. The RASAYAN has also been the receipant of the state's best support and patronage.

In course of time under the benign rule of the present MAHARAJA BAHADUR the state is bound to make rapid strides of progress. Every subject of His Highness prays for the long life and prosperity of the ruler and for the glorious name of the *HOUSE OF BIKANER.*

Ganpati Singh.

माधव मोहन कुछ दिनों तक एक साथ रहे थे। किन्तु इस अवकाश विहीन कारबार में फसे रहने के कारण मोहन को माधव से मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। इस बार जब उसने सुना कि उसका पुराना सहपाठी माधव सम्मान सहित दर्शन शास्त्र की उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण हो घर लौटा है। तबसे उससे मिलने की उत्कंठा दिनों दिन तीव्र होरही थी।

किन्तु जब २ उसने जाना चाहा तब तब कोई न कोई बाधा उपस्थित होती ही रही। इस बार जबकि उसके पिता ने गोरखपुर जैसे सुन्दर देश में एक शाखा स्थापित कर दी थी। माधव के परामर्श से लाभ उठाने की मोहन की कामना प्रबल होगई थी। किन्तु माधव सरीखे बहुश्रुत विद्वान को अपने पुराने सहयोगी की स्मृति को सुरक्षित रहने का अवकाश मिला होगा। यह संशयपूर्ण जिज्ञासा उसे डांवाडोल कर देती थी। इसी से साहस कर भी वह माधव के पास न जासका था।

(२)

खुली हुई छत पर बैठी हुई दुर्गा ने कहा—ओ लक्ष्मी बहू! जरा इधर सुन देख तेरे माधव ही पर तो सारा कुटुम्ब आंख लगाये बैठा है। उसका पढ़ा लिखा कब काम आयेगा। उसका पढ़ा लिखा कब काम आयगा, तुम्हारे बूढ़े ससुर तो दो दिन के महमान है, उनका क्या भरोसा। फिर भी तो कुछ करना ही पड़ेगा, उनके जीते जी यदि माधव कुछ करने लगे तो उनका अंतिम समय संतोष से बीत जायगा।

लक्ष्मी पर से घड़ों पानी ढल गया। सास की कटूक्तियें तीर की तरह उसका हृदय वेधने लगीं उसकी आंखें छल [illegible] आईं। उसने कहा—मैं कब मना करती हूं कि अम्मा जी! तुम कोई काम न करो।

गुस्सा न करो बहु रानी-दुर्गा ने कहा-तुम उस पिता के कष्ट को जान [illegible] हो, जिसने जीवन भर पेट काटकर, भोजा [illegible] कर, अपने पुत्र को सुखी बनाने [illegible] प्राण लगा दिये हों और फिर उ[illegible] अंतिम समय में समर्थ होकर भी वह आलसी बना, घर में दुबक कर पुस्तकों के पन्ने [illegible] रहे, और उसका वह पिता पेट की पीड़ा से दर दर भटकता फिरे।

लक्ष्मी की आंखें [illegible]। [illegible] २ उसने कहा—अम्मा जी? मैं तो [illegible] हूं आपकी बातें सुनने के [illegible] में [illegible]।

दुर्गा बोली—[illegible] बेटी, तुम्हारा क्या दोष? यह तो [illegible] ही भाग्य का फल है।

दुर्गा चली गई, लक्ष्मी बहू [illegible] छत के ऊपर फैली हुई [illegible] पर दृष्टि गड़ाकर सोचने लगी।

माधव ने [illegible] देखा, [illegible] रानी [illegible] में [illegible] पड़ी है। [illegible]

[illegible] दिया। [illegible]

कोमल कर भी उसकी सीमित उरस्थली पर सटाकर छोड़ दिये ।

वहू रानी मानो आज थी ही नहीं । माधव की मौन साधना टूटी दीवार सी ढह पड़ी ।

उसने कहा—उफ ? इतना मान........

वहू रानी को आज यह अच्छा न लग रहा था । उसने कहा—जाने दो, तुम्हें सब समय ऐसे ही उत्पात की बात सूझती है ।

—क्या अच्छा नहीं हुआ ?

नहीं !—इस सत्य और स्पष्टोक्ति पर अपराधी की नाईं माधव ने कहा—क्या कहूं वहू रानी बहुत सोचता हूं तुम्हारी ही तरह मैं भी मुख फुलाकर सुदूर एकान्त में जा बैठूं पर उसमें भी तो सफल नहीं होता ।

—तुम जैसे आलसियों से क्या कुछ हो सकेगा, बहू रानी ने कहा—

—इसमें भी तो रानी, तुम्हीं बाधक हो। तुम्हें देखकर ही तो भय के मारे मेरा सारा संयम, सारा मान, अतीत बनकर आंखों से दूर होजाता है और वर्तमान—बस आगे नहीं कहता—नाराज हो जाओगी।

जिसने दूसरों के सन्मुख हाथ पसार कर भी, अपना गौरव अक्षुण्ण समझा हो, या जिसे पढ़ लिखकर भी अपने आत्म सन्मान का तथा अपने माता पिताओं की दीन दशा का ध्यान न आता हो उसे दूसरों की नाराजगी की इतनी चिन्ता ?

—वहू . रानी ! मामला बेढब है, क्या अम्माजी ने कुछ बुरा भला कहा है ?

—यदि कहा हो तो क्या तुम उसका प्रतिकार करोगे ?

यदि कर सका—

—तो मनोभिलाषित वरदान—

यदि न कर सका ?

तो तुम्हारा यह घर बार छोड़ कर चली जाऊंगी ।

कहां पर ?

जहां पर तुम्हारे जैसे अकर्मण्यों का वास न होगा—कह कर बहू रानी को अपनी सीमा उलंघन करने का ध्यान हो आया ।

माधव ढीठ बहू का मुख देखने लगा—किंतु उस कटूवचन में जो सत्यता थी वह उसके सामने आकर कहने लगी, वहू जो कुछ कह रही है वह ठीक है तुमने इतना जानकर भी माता पिता तथा स्त्री की आवश्यकताओं को न समझा ।

(४)

जिन्हें कभी गृह स्वामिनि की अप्रसन्नता से वास्ता पड़ा हो, और साथ ही साथ धन हीन परवार के आर्थिक संकटों की सतत चिन्ता में निरत रहने का अवसर मिला हो उन्हें अभाव की वेबसी का परिचय होगा । घर, वालों की दृष्टि में वह आलसी था और अकर्मण्य ! किन्तु सचमुच ऐसा न था । लीडर (Leader) के मुख पृष्ठ पर छपी हुई कम से कम वेतन की वान्ट (Want) पर वह अविलम्ब जाने को तैयार रहता था किन्तु दुर्भाग्य को कुछ सुहाता न था ! इन दिनों

कितने घरों में बड़ी २ आशायें हृदय में भरकर उसे जाना पड़ा था, और न जाने कितने धनियों के सन्मुख याञ्चा का अकरुण नीरव रोदन हृदय में भरकर उपस्थित होना पड़ा, कितने दफ्तरों में, कितनी अदालतों में, कितने विद्यालयों में अपनी दरिद्र परिस्थिति का वर्णन करते करते उसकी आंखों से पानी बह चला, किन्तु कहीं भी एक कुर्सी भर जगह उसे शांति से बैठने के लिये नसीब नहीं हुई! अभाग्य का अवाञ्छनीय दया भाव सब जगह ही शिष्ट निषेध के साथ उपस्थित होता रहा।

घोर चिन्ता और आहार विहार की अव्यवस्था ने उसके स्वास्थ्य को और भी डांवा डोल कर दिया था। अब विशेष प्रतीक्षा या सन्धान करने की शक्ति उसमें शेष न रह गयी थी·········मोहन की डेयरी का नाम उससे छिपा हुआ न था—उस उद्योग की सफलता पर "लीडर" के कालम के कालम रंगे जा रहे थे। अन्ततः हारकर उसे डेयरी में ही क्लर्की करने में ही उसने सौभाग्य समझा। दूसरे ही दिन वह गोरखपुर को रवाना होगया। स्टेशन पर ही स्वागत को सभी कर्मचारी गण उपस्थित थे। एक अवयतनिक प्रधान कर्मचारी ने यह कहते हुए उस डेयरी का कार्य भार सौंप दिया कि—यद्यपि आपकी दरखवास्त एक क्लर्क पद के लिये प्राप्त हुई थी, किन्तु डेयरी ने यही उचित समझा कि उस पद पर आप रह कर डेयरी की उन्नति में विशेष सहाय्य न दे सकेंगे अतः इस शाखा का सारा प्रबन्ध आपके सुपर्द किया जाता है। आज से आप इसके प्रधान या मैनेजर नियुक्त हुए। इस कार्य को उत्तरोत्तर उन्नत करना ही आपका ध्येय चाहिए। वेतन यद्यपि बहुत कम है तथापि इसे स्वीकार कीजिए—पेशगी देदेने की हमारी विशेष प्रथा है। यह कहकर ११०) एक सौ दस रुपये के नोट माधव के हाथ में पकड़ा दिए गये।

लगभग माधव इस अद्भुत व्यापार और आश्चर्यजनक नियुक्ति पर चकित होकर रह गया!

(५)

माधव को डेयरी का कार्य सम्हाले लगभग दो वर्ष होगये। उसने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया। उसके रहते डेयरी के सभी काम उन्नत होगए। पशुओं के स्वास्थ्य का उसने विशेष प्रबन्ध किया। विदेशी वैज्ञानिक उपायों से दूध के विभिन्न लाभप्रद मिश्रण निर्माण कर उसने आशा से अधिक मुनाफा कर दिखाया था—उसके नम्र व्यवहार से सभी कर्मचारी प्रसन्न थे और पशु जिन पर उसे अगाध ममता होगई थी उससे स्नेह रखने लगे थे।

दोनों समय वह स्वयं अपने सामने उनके चारे और दाने की देख भाल किया करता था—वह भी अत्यन्त प्रसन्न था, किन्तु इतने लंबे समय में भी वह सज्जन जिन्होंने उसके आर्थिक सङ्कट का निराकरण कर असीम उदारता का परिचय दिया था, फिर कभी उसके पास न आये न उसे बुलाया। उसने कितनी ही बार उनसे मिलने की चेष्टाएं कीं। किन्तु सब विफल!

कोमल कर भी उसको सीमित उरस्थली पर सटाकर छोड़ दिये।

बहू रानी मानों आज थी ही नहीं। माधव की मौन साधना टूटी दीवार सी ढह पड़ी।

उसने कहा—उफ ? इतना मान.........

बहू रानी को आज यह अच्छा न लग रहा था। उसने कहा—जाने दो, तुम्हें सब समय ऐसे ही उत्पात की बात सूझती है।

—क्या अच्छा नहीं हुआ ?

नहीं!—इस सत्य और स्पष्टोक्ति पर अपराधी की नाईं माधव ने कहा—क्या कहूं बहू रानी बहुत सोचता हूं तुम्हारी ही तरह मैं भी इस फुलाकर सुदूर एकान्त में जा बैठूं पर उसमें भी तो सफल नहीं होता।

—तुम जैसे आलसियों से क्या कुछ हो सकेगा, बहू रानी ने कहा—

—इसमें भी तो रानी, तुम्हीं बाधक हो। तुम्हें देखकर ही तो भय के मारे मेरा सारा संयम, त्याग मान, अतीत बनकर आंखों से दूर होजाता है और वर्तमान—बस आगे नहीं कहता—नाराज हो जाओगी।

जिसने दूसरों के सम्मुख हाथ पसार कर भी, अपना गौरव अक्षुण समझा हो, या जिसे पढ़ लिखकर भी अपने आत्म सन्मान का तथा अपने माता पिताओं की दीन दशा का ध्यान न आता हो उसे दूसरों की नाराजगी की इतनी चिन्ता ?

—बहू, रानी! मामला बेढब है, क्या अम्माजी ने कुछ बुरा भला कहा है ?

—यदि कहा हो तो क्या तुम उसका प्रतिकार करोगे ?

यदि कर सका—

—तो मनोभिलाषित वरदान—

यदि न कर सका ?

तो तुम्हारा यह घर बार छोड़ कर चली जाऊंगी।

कहां पर ?

जहां पर तुम्हारे जैसे अकर्मण्यों का वा न होगा—कह कर बहू रानी को अपनी सी उलंघन करने का ध्यान हो आया।

माधव ढीठ बहू का मुख देखने लगा—किंतु उस कटूवचन में जो सत्यता थी वह उसके सामने आकर कहने लगी, बहू जो कुछ कह रही है वह ठीक है तुमने इतना जानकर भी माता पिता तथा स्त्री की आवश्यकताओं को न समझा।

(४)

जिन्हें कभी गृह स्वामिनि की अप्रसन्नता से वास्ता पड़ा हो, और साथ ही साथ धन हीन परिवार के आर्थिक संकटों की सतत् चिन्ता में निरत रहने का अवसर मिला हो उन्हें अभाव की बेबसी का परिचय होगा। घर, वालों की दृष्टि में वह आलसी था और अकर्मण्य! किन्तु सचमुच ऐसा न था। लीडर (Leader) के मुख पृष्ठ पर छपी हुई कम से कम वेतन की वान्ट (Want) पर वह अविलम्ब जाने को तैयार रहता था किन्तु दुर्भाग्य को कुछ सुहाता न था! इन दिनों

कितने घरों में बड़ी २ आशायें हृदय में भरकर उसे जाना पड़ा था, और न जाने कितने धनियों के सन्मुख याञ्चा का अकरुण नीरव रोदन हृदय में भरकर उपस्थित होना पड़ा, कितने दफ्तरों में, कितनी अदालतों में, कितने विद्यालयों में अपनी दरिद्र परिस्थिति का वर्णन करते करते उसकी आंखों से पानी बह चला, किन्तु कहीं भी एक कुर्सी भर जगह उसे शांति से बैठने के लिये नसीब नहीं हुई ! अभाग्य का अवाञ्छनीय दया भाव सब जगह ही शिष्ट निषेध के साथ उपस्थित होता रहा।

घोर चिन्ता और आहार विहार की अव्यवस्था ने उसके स्वास्थ्य को और भी डांवा डोल कर दिया था। अब विशेष प्रतीक्षा या सन्धान करने की शक्ति उसमें शेष न रह गयी थी.........मोहन की डेयरी का नाम उससे छिपा हुआ न था—उस उद्योग की सफलता पर "लीडर" के कालम के कालम रंगे जा रहे थे। अन्ततः हारकर उसे डेयरी में ही क्लर्की करने में ही उसने सौभाग्य समझा। दूसरे ही दिन वह गोरखपुर को रवाना होगया। स्टेशन पर ही स्वागत को सभी कर्मचारी गण उपस्थित थे। एक अवयतनिक प्रधान कर्मचारी ने यह कहते हुए उस डेयरी का कार्य भार सौंप दिया कि—यद्यपि आपकी दरख्वास्त एक क्लर्क पद के लिये प्राप्त हुई थी, किन्तु डेयरी ने यही उचित समझा कि उस पद पर आप रह कर डेयरी की उन्नति में विशेष सहाय्य न दे सकेंगे अतः इस शाखा का सारा प्रबन्ध आपके सुपर्द किया जाता है। आज से आप इसके प्रधान या मैनेजर नियुक्त हुए। इस कार्य को उत्तरोत्तर उन्नत करना ही आपका ध्येय चाहिए। वेतन यद्यपि बहुत कम है तथापि इसे स्वीकार कीजिए—पेशगी देदेने की हमारी विशेष प्रथा है। यह कहकर ११०) एक सौ दस रुपये के नोट माधव के हाथ में पकड़ा दिए गये।

क्षणभर माधव इस अद्भुत व्यापार और आश्चर्यजनक नियुक्ति पर चकित होकर रह गया !

(५)

माधव को डेयरी का कार्य सम्हाले लगभग दो वर्ष होगये। उसने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया। उसके रहते डेयरी के सभी काम उन्नत होगए। पशुओं के स्वास्थ्य का उसने विशेष प्रबन्ध किया। विदेशी वैज्ञानिक उपायों से दूध के विभिन्न लाभप्रद मिश्रण निर्माण कर उसने आशा से अधिक मुनाफा कर दिखाया था—उसके नम्र व्यवहार से सभी कर्मचारी प्रसन्न थे और पशु जिन पर उसे अगाध ममता होगई थी उससे स्नेह रखने लगे थे।

दोनों समय वह स्वयं अपने सामने उनके चारे और दाने की देख भाल किया करता था—वह भी अत्यन्त प्रसन्न था, किन्तु इतने लंबे समय में भी वह सज्जन जिन्होंने उसके आर्थिक संकट का निराकरण कर असीम उदारता का परिचय दिया था, फिर कभी उसके पास न आये न उसे बुलाया। उसने कितनी ही बार उनसे मिलने की चेष्टाएं कीं। किन्तु सब विफल !

भारी उपकार से उसकी आत्मा दबी हुई थी। मोहन से साक्षात कर धन्यवाद देने की अभिलाषा इसी से दिन दिन बढ़ी जा रही थी। मोहन की इस उपेक्षा का उसकी समझ में कोई अर्थ न लगता था यह आकांक्षा कभी २ इतनी तीव्रता से जाग उठती थी कि उसे अपने इस सम्माननीय पद से घृणा होने लगती थी। वह मोहन की इस विरक्ति का अर्थ कभी अलौकिक उदारता और कभी अकारण निस्पृहता लगाने के लिए बाध्य होजाया करता था। माधव के सभी विचारात्मक प्रश्न जो डेयरी से सम्बन्ध रखते थे पत्र द्वारा तय हो जाते थे। कितनी बार जब उसने आग्रह पूर्वक लिखा कि मालिक को अपने कारबार को एकदम किसी अनजान हाथों में छोड़ कर निश्चिन्त होजाना कभी २ भयानक विपत्ति ला देता है। अतः मेरा साग्रह अनुरोध है कि एक बार मेरे सामने आकर डेयरी का निरीक्षण कर डालिये।

किन्तु इस विशेष आग्रह को मोहन यह कह कर कि तुम जैसे कुशल पण्डित को पाकर भी डेयरी को यदि मेरी आवश्यकता रही तो इससे विशेष मेरे दुःख का कारण और क्या हो सकता है, टाल देता।

माधव से मोहन की कृपा का प्रतिदान स्वरूप स्नेहमय धन्यवाद देने का अवकाश ज्यों २ दूर होता रहा, त्यों २ उसकी उद्विग्नता बढ़ती ही रही। अन्ततः एक दिन ऐसा आगया कि वह उस आकांक्षा को किसी तरह भी दबा न सका और उसी आवेश में उसने कुछ सोचकर मैनेजर के पद से त्याग पत्र देदिया। माधव ने सोचा था कि त्याग पत्र के पाते ही मोहन दौड़ आयेगा। किन्तु यह देखकर उसके दुख की सीमा न रही कि त्याग पत्र स्वीकृत होगया और मोहन से मिलने की भविष्य में आशा भी न रही।

आज उसे डेयरी छोड़ते हुए कठोर मानसिक पीड़ा उत्पन्न होगई। नीचे के कर्मचारी और डेयरी के मूक पशुओं में उसका स्नेह पाश बिखरा पड़ा था। उनको समेट कर चले जाना उसे दुःख जनक ही नहीं किन्तु अपमान जनक भी प्रतीत होने लगा। क्या उसके दो वर्ष के कठिन परिश्रम का यही मूल्य था? एक बार क्या यह भी जानने की अभिलाषा निर्मोही मोहन के अन्तःकरण में नहीं उपजी कि इस त्याग पत्र का मूल कारण क्या है?

× × × ×

गाड़ी का समय निकट आने लगा, किन्तु मोहन के आने की कोई आशा न रही। माधव निराश चित्त से घर चला गया। सप्ताह पर सप्ताह बीतने लगे। किन्तु मोहन से मिलने की अभिलाषा अभी भी बनी हुई थी। डेयरी का ध्यान रह रहकर उसे सताने लगा। उन मूक पशुओं की स्नेह स्मृतियां अन्तर के प्रदेश से उछल उछल कर कभी २ उसे बेचैन कर देती थीं।

मोहन की डेयरी में रहकर उसने वाणिज्य की महिमा जान ली थी। उस व्यवसाय में उसका मन भी खूब लगा था इसी लिए शिक्षा प्रदत्त ज्ञान की शक्तियें अपना सदुपयोग कर डेयरी के जीवन संग्राम में विजय उल्लास से

संकेत ।

(रचयिता—श्रीयुत पं० गंगासहाय जी पाराशरी "कमल" सम्पादक "कमल")

किस पर करुणा दृष्टि फिरी है जो मचली हो वाले !
किस के तड़पाने को तुमने लोचन—वाण संभाले ॥
किस को चकमा देने को यह केश—पाश उलझाया ।
किस के लिए कठिन तप करने को यह वेष वनाया ॥

मौन निमंत्रण किसे दे रही हो श्वासों के द्वारा ।
किसका मन अपहृत करने को तुमने आज विचारा ॥
किन गम्भीर विचारों में तुम पड़ी हुइ हो बोलो ।
अपने अंतस्थल की गाठें एक एक कर खोलो ॥

किसको रण के लिये बुलाती हो यह तो वतलाओ ।
किसे चुनौती देदे कर हैं नैन बुलाते "आओ!" ॥
अधरों द्वारा कुछ कह कह कर अहो ! मौन हो जाती ।
किसके नामों की तुम उल्टी माला जपती जाती ॥

करतीं कोइ वशीकरण जप, सुन्दरी ! मन ही मन में ।
या कि मौन हो अलख जगाती, कसक होरही तन में ॥
सुलग रही है आग इसी से सव कुछ आज जलेगा ।
प्रलय कारिणी सिसकी से सखि ! किसका भाग्य फलेगा ॥

कैसी होती सुमुखि ! तुम्हारे प्राणों में हलचल सी ।
काँप रहा जग, वसुन्धरा पर होती उथल पुथल सी ॥
किस अजान रिपु से महिमामयि ! मचल मचल लड़ती हो ।
किस वीभत्स काण्ड का करने उद्घाटन वैठी हो ॥

निशाकाल के अन्धकार में वैठी क्या करती हो ?
ऐसा कौन कठिन तप है जो तनिक नहीं डरती हो ॥
थपकी देदे कर करती हो तुम किसका आवाहन ?
क्या अव ही से लुटा रही हो हाथों हाथ तन मन ?

इसी अवस्था में जव एसी करती हो तुम वातें ।
कालान्तर में भला करोगी सुकुमारी ! क्या घातें ॥
मत मुरझाने दो कलिका को अभी और खिलने दो ।
यौवन—मदिरा के प्यालों को छलक छलक मिलने दो ॥

फिर कर लेना चाहे जितना जिस पर अत्याचार ।
करने लगें मधुप जव आ आ कर तुम पर गुंजार ॥
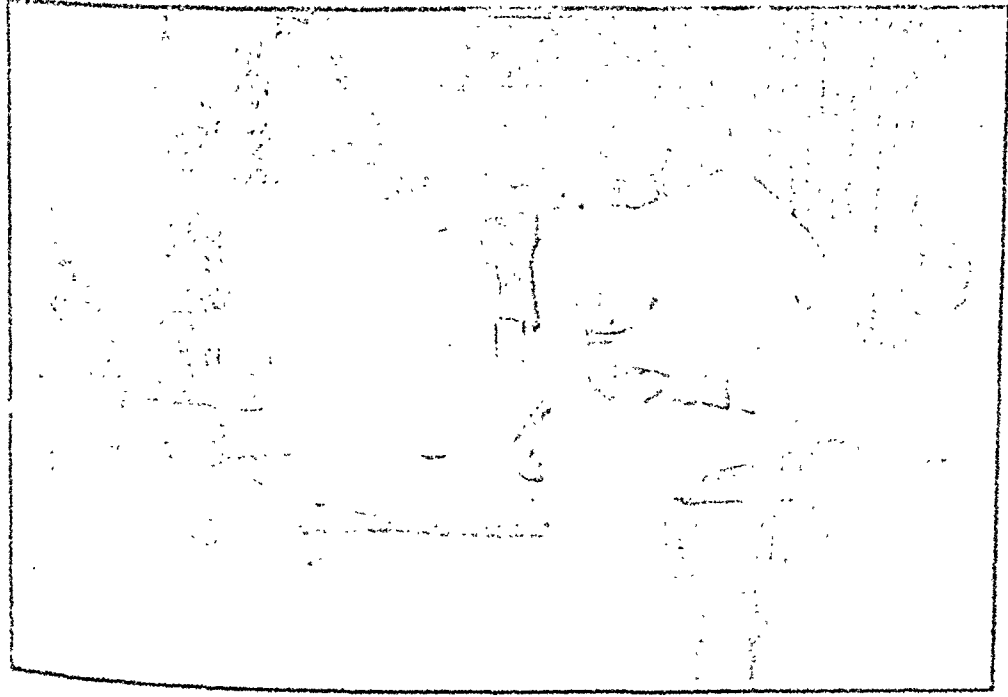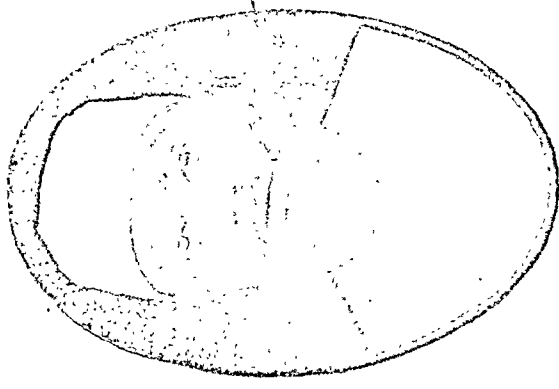
(खास 'रसायन' की वाणिज्य संख्या के लिये)

रसायनिक आग।

लेखक—श्रीयुत प्रोफेसर रामकृष्ण जी वर्मा बी० ए०, बी० एस०
सी०, एल० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य।

यद्यपि उड़ा बैठे कमाई बाप दादों की सभी, पर ऐंठ हम अपनी भला क्या छोड़ सक्ते हैं कभी !
भूषण बिकें ऋण भी बढ़े पर धन्य सब कोई कहै; होली जले भीतर न क्यों बाहर दिवाली ही रहै !!

कवि ने जो कुछ भी कहा है वह इस भारत देश के लिए बिल्कुल यथार्थ है। इस समय इस देश की अधोगति होते हुए भी यह खेल तमाशों का केन्द्र स्थल समझा जाता है। इस हतभाग्य देश के सुधारने को कैसा भी धुरन्धर व्यक्ति ठेका लेने पर वह इसके उद्धार में कभी कृतकार्य नहीं हो सकता है और उसका सम्पूर्ण कार्य आडम्बर समझा जाता है। इसीसे कपिल, गौतम, कणाद का यह शिष्य आज सम्यक प्रकार के बन्धनों से जकड़ दिया गया है। जिस देश में १०२१ केवल मत मतान्तर फैले हुए अपना प्रचार कर रहे हैं, वहां पर किसी का प्रकाश कब सम्भव हो सकता है ? ऐसा विशालकाय देश पृथ्वी में अन्य कोई नहीं है। परन्तु यहां पर व्यक्ति २ के आहार विहार बिल्कुल भिन्न होरहे हैं। कर्तव्य क्षेत्र में यदि पिता कुछ करता है तो पुत्र कुछ करता है। परन्तु यह नवीन विषय नहीं है—प्राचीन समय में भी ऐसा ही प्रचार था, जिसका साक्षी महाभारत है। इन्हीं सब विलक्षण भावों की उत्पत्ति से यह सत्यानाश होता गया है। इसी कारण से आज लुटेरों का गोल बढ़ता जाता है और सब इसी बूढ़े भारतवर्ष को लूटने की कोशिश कर रहे हैं। नाटक, नौटंकी, थियेटर, सिनेमा आदि भन्ति २ के जाल रचे जा रहे हैं। जिनमें प्रायः कमसिन लड़के ही स्त्री का पार्ट प्राप्त करके दर्शन करने वाले व्यक्तियों के चित्त में क्षोभ पैदा करके कामेच्छा प्रबल कर बल वीर्य का सत्यानाश कर रहे हैं। वैसे व्यापार नीति और नाट्यकला की दृष्टि से आधुनिक सभ्यता के अनुसार हम इनकी उपयोगिता और आवश्यकता को मानते हैं. परन्तु कामुक भावनाओं को जगाने वाले जघन्य प्रदर्शन और नीचता पूर्ण अभिनयों से देश का धन धर्म मिट्टी में मिल रहा है। यह दशा यहां तक बढ़ गई है कि विवाह उत्सव समारम्भ आदि अवसरों पर अपने नीच प्रद-

शंन से लोगों की बुरी प्रवृत्तियों को भड़काने वाली और जन समाज की गाढ़ी कमाई को चूसने वाली इन कम्पनियों को अवश्य निमंत्रित किया जाता है। यदि लल्ला की शादी में यह न आवें तो मालिक-मालकिन की नाक ही जड़ से कट जाय और लोग निन्दा करें। इस प्रकार की झूठी प्रतिष्ठा और थोथी बुद्धि की विलक्षणता से धीरे २ सब नष्ट होता जाता है। शादी-विवाहोत्सव आदि में नाच रंग के लिये तो फिजूल खर्ची होती ही है परन्तु उसके साथ २ अगवानी में भी जिसे आतिशबाजी कहते हैं, हजारों रुपया नष्ट किया जाता है। केवल इसी चट्ट-पट्ट में प्रति वर्ष करोड़ों रुपया स्वाहा किया जाता है। यह आतिशबाजी बनाने वाले गांव, नगर और शहर में सर्वत्र निवास करते हैं। लगभग ४, ५ लाख व्यक्ति इसी के द्वारा अपना निर्वाह कर रहे हैं। इन सबकी जाति मुसलमान है और यह लोग केवल यही धन्धा करते हैं। अब इन दिनों आतिशबाजी अथवा अगवानी का प्रचार बहुत बढ़ गया है। प्रतिवर्ष विदेश से भी काफी तादाद में आतिशबाजी आती है जिससे लक्ष्मी रूठकर समुद्र पार जा रही है। जिस शहर में जाओ सायंकाल के समय अवश्य ही चट्ट-पट्ट की आवाजें सुनाई देंगी, यही इसकी बढ़ती का प्रमाण है। शहर में दुकानों की अपेक्षा इधर उधर घूमकर माल वेचने वाले अवश्य कुछ इसका सामान लिये रहते हैं। दिवाली के समय पर बम्बई में, दुर्गा-पूजा पर कलकत्ता में तथा मुसलमानों के ईद मुहर्रम आदि त्यौहारों में तो एक २ दिन में लाखों रुपया सफाया होजाता है। बनाने वालों को हवाई गीर कहते हैं। यह उसके ठेकेदार गिने जाते हैं। अन्य लोग इसका बनाना अनुचित समझते हैं इसी से एक पेशा वाले निकल आये हैं और बना २ कर देश के धन का सत्यानाश कर रहे हैं।

यद्यपि इसकी आज काया पलट होगई है और दिखावा मात्र समझा जाता है परन्तु यह हमारा रसायन ज्ञान है जिसे हम भूल गये हैं और दूसरे व्यक्ति अपनाये हुये हैं। जिस व्यक्ति के घर में बंदूक तमञ्चा मौजूद है यदि वह उसका उपयोग करना चाहे तो इसकी सामग्री किसी ठेकेदार से मोल लेगा तब काम चलना सम्भव है। स्वयं इतनी शक्ति नहीं कि वह इस सामग्री को तैयार कर सके। जिस विद्या का आचार्य नागार्जुन था और अनेकों ऋषियों करके पूजित होकर राजा महाराजाओं के शिविर में वास किया तथा समय २ पर उनको आपदाओं से बचाया उस विद्या की आज ऐसी दुर्दशा होरही है कि भारतीय लोग उसको केवल खेल, तमाशों, में ही उपयोग करना जानते हैं। आयुर्वेद के ज्ञाता सबको आयुर्वेद में लेते जाते हैं। परन्तु उनकी असलियत और महत्व को बिलकुल भूल बैठे हैं। वस्तुतः यह वे बिलकुल नहीं जानते कि हमारा इससे क्या कार्य निकलता है और प्राचीन हस्त लिखित भाव प्रकाश रसार्णव आदि में क्यों वर्णन किया गया है? आधुनिक समय में विदेशीय वणिक इसका उपयोग किस प्रकार कर रहे हैं। और समय २ पर युद्ध क्षेत्र में

कैसा कौशल दिखाते हैं? हम भारतवासी स्वराज्य लेना चाहते हैं। पर शक्ति से नहीं। केवल मचलाई करके! यदि हम शक्ति सम्पन्न होते और इसकी उपयोगिता या महत्व को पूर्वजों जैसा समझते होते तो कभी इससे वञ्चित न होसकते थे। अन्य देशों की भान्ति कृतकार्य होगये होते। पर हम तो कर्तव्य विमूढ़ हैं—पग २ पर परमुखापेक्षण और परावलम्बन तकना हमारा काम है। गुलामी के चक्र में निरंतर घूमते रहने से हमारे ऊपर उसके कुसंस्कारों की छाप गहरी पड़ गई है। यद्यपि हम दासानुदास बन चुके हैं पर उसमें भी हमारे कार्य श्वानवत हैं। अविश्वास, कायरता, मक्कारता झूठ, छल छिद्र, अभिमान, अत्याचार, व्यभिचार, और मूर्खता आदि दुर्गुणों के सहचर हैं। इन्हीं बातों को विचार करके लोक पूज्य महात्मा गांधी ने शान्तता पूर्वक अहिंसात्मक आन्दोलन के बल पर स्वराज्य लेना चाहा है। क्योंकि उन्हों ने अपनी दिव्य दृष्टि से यह अच्छी तरह देख लिया कि देश में ऐसे कुछ ही व्यक्ति है जो सच्ची लगन के साथ देश भक्ति में तत्पर हैं। जिसमें तरुणवीर पं० जवाहर लाल का नाम सर्व प्रथम उल्लेखनीय है। इस के अतिरिक्त और लोग भी इसमें सम्मिलित अवश्य हैं किन्तु उनका हृदय उतना शुद्ध नहीं है। इसीलिये थोड़े से मनुष्य और एक स्थिर प्रज्ञ महात्मा जी शीघ्रतापूर्वक सफलता लाभ नहीं कर सके। जिसके फल स्वरूप उपरोक्त विचारों वाले व्यक्ति समय २ पर उनके ऊपर नाना अपवाद मढ़ते रहते हैं। अस्तुः

हमारा प्रस्तुत विषय रसायनिक है। आयुर्वेद से इसका पूर्णतया सम्बन्ध है। हमारे आलस्य, अज्ञान, आदि दुर्गुणों से दूसरे इसके मालिक बन बैठे हैं। और हमारी गाढ़ी कमाई को सुख से खींच रहे हैं। हमें एकदम शक्ति हीन और निस्तेज बना दिया है। यह एक ऐसी वस्तु है कि इसके बिना इस कर्मक्षेत्र में कार्य नहीं चल सकता है। राजा महाराजा भी इसके बिना शक्तिहीन निर्बल गिना जाता है। परन्तु असल में वह एक गहन विषय है। जिसका वर्णन समय २ पर आगे चलकर करेंगे। प्रथमतः जिस चट्ट पट्ट और पटाखेबाजी में लाखों रुपया स्वाहा हो रहे हैं उसी का उल्लेख करते हैं। इसे व्यापार दृष्टि से लेने में कितनी आमदनी की जा सकती है? आयुर्वेद कार्य में किन उपायों से व्यवहार होगा? भविष्य में इसे बढ़ाकर कैसे उपयोग किया जायेगा? इनके सम्बन्ध में हम यहां जो विवेचना कर रहे हैं उसेसम्यकरीत्या समझ कर कार्य रूप में परिणत करने से अधिक लाभ की सम्भावना है। इस विद्या के कर्त्तव्य कर्त्ता द्रव्य केवल तीन हैं—जिनसे गोली, बारुद, तोप, आदि सब युद्ध यंत्र और आतिशबाजी का काम लिया जाता है। आयुर्वेद में इनके अनेकों वर्णन किये गये हैं। यह तीनों द्रव्य एक २ अपनी अपूर्व सामर्थ्य रखते [illegible] जिसका पूरा २ वर्णन अवश्य है [illegible] द्रव्य निम्न प्रकार हैं।

(१) कोयला (Carban) (२) गंधक (Sulphur) (३) शोरा (Nitric) इन तीनों के कार्य इस स्थान पर भिन्न २ हैं। कोयला का कार्य चिनगारी पैदा करना है ? और गन्धक लौ उत्पन्न करता है। शोरा बारुद की तेजी पैदा कर देता है। परन्तु आतिशबाजी में फूल उत्पन्न करने के लिये और चमक के लिये ताम्र (Coppar) का बुरादा और पीतल (Brass) का बुरादा मिलाया जाता है अथवा कपूर (Camphor) वा राल मिलाया करते हैं। आतिशबाजी बनाने के लिये सबसे प्रथम बारुद का बनाना अति आवश्यक है। तब आगामी कार्य चला सकते हैं। अतएव उपरोक्त तीनों वस्तुओं की उत्पति—स्वच्छता आदि का जानना उत्तम है। (१) कोयला, यह लकड़िओं से उत्पन्न किया जाता है। किन्तु सब प्रकार की लकड़ियों से नहीं ! देशी मतानुसार केवल आक, ढांक, कपास, वलूत, अङ्गर और पीपल का ही प्रयोग उपयुक्त है। इनको आग में जलाकर कोयला बना लेने पर उसको पानी में अच्छी तरह धोना चाहिये जिससे राख का हिस्सा निकल जाय और कोयला स्वच्छ हो जाय फिर धूप में सुखा कर कूट करके कपड़छान कर लेना चाहिये इसके बाद उसे स्वच्छ पात्रमें भर कर रखना उत्तम है।

(२) गंधक, यह एक खनिज वस्तु है— बाजारों में लैसेंन्सदारों के यहां प्राप्त होती है। (३) शोरा, यह पृथ्वी में सर्वत्र प्रत्येक-गांव और कस्वे में पैदा किया जा सकता है। पूर्व काल में यह अधिकता से तैयार होता था। किन्तु अब गव्हर्नमेएट से रोक होने के कारण बिना आर्डर कोई भी नहीं बना सकता। इसलिये या तो खरीदकर व्यवहार में लावें अथवा आर्डर लेकर बनाया जाय। बनाने का उपाय इस प्रकार से है—नमकीन जमीन की मिट्टी या जो घरों में नोना आदि लग जाता है, उसे लेकर एक घड़ा में भरकर खूब पानी मिलाकर घोल देवें, कि नमक का भाग सब पानी में आ जाय, एक रात भर इसी तरह रहने दें। बाद में उसका निथरा पानी निकाल करके घड़े में भर देवें। यह जम जायगा या आग पर पका कर निकाल लें। बस यही शोरा है। यदि इसे कलमी बनाना हो तो इसको लेकर पानी में घोल दो, और पानी निथर जाने पर उसे फिर पानी में पकाओ। जो झाग उस पर आते जांय उसे बराबर निकालते रहो। साफ होजाने पर उस पानी को भर कर रख दो। रात भर वैसा ही रख छोड़ो। जमने पर कलमी शोरा निकल आवेगा। इसी प्रकार से दुबारा तिबारा भी साफ किया जाता है। परन्तु इसकी, सफाई विशेषकर मुर्गे के अण्डे की सफेदी डालने से होती है। यदि उबालते समय थोड़ी सी डाल दी जावे तो वह इसे एकदम साफ उज्वलवर्ण बना देती है। अथवा इस प्रकार से भी साफ होता है कि शोरा को पानी में घोल देवें, जब मिल जाय तब ऊपर से साफ पानी निथार करके मिट्टी आदि छानकर फेंक दें और साफ पानी लेकर आग पर पकावें। सूख जाने पर शोरा जम जाएगा—यही साफ शोरा है। इसी के द्वारा बारूद बनाई जाती है।

इन तीनों वस्तुओं को खूब बारीक अलग अलग पीस करके कपड़छान करके रखना चाहिये। आवश्यक्ता होने पर अच्छी प्रकार से तोल २ कर मिलाना चाहिए। तीनों वस्तुयें सूखी और सामान मिली न पीसना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक ही जाति के वर्तन में पीसना भी वर्जित है। अतएव भिन्न जाति का सामान हो जैसे लोहे का खरल तो लकड़ी का वहने वाला—उसमें भी पानी का छींटा देना उचित है नहीं तो आग लग जाने और जल जाने का भय रहता है।

आतिशबाजी में छछूंदर बनाना हो तो उस के ऊपर बारीक जवली लपेट देवें। फूल के लिए पीतल का उपयोग करें। यदि बुरादा महीन हुआ तो छोटे फूल प्रगट होंगे और इससे भिन्न हुआ तो फूल भी भिन्न २ प्रकार के होंगे। जिस प्रकार साफ बुरादा लिया जावगा उसी प्रकार साफ और अच्छे फूल निकलेंगे। प्रत्येक धातु का बुरादा अपना आला रङ्ग प्रकट करता है। ताम्र से हरा रङ्ग, पीतल से पीला रङ्ग और सल्फेड आफ एन्टीमोनी (Sulphate of antimony) जिसे सुरमा कहते हैं, इसका नीला रङ्ग होगा। और नमक से पीला रङ्ग प्रगट होता है। काजल मिश्रित करने से लाल रङ्ग आता है। शोरा का कागज मिलाने से हरा रङ्ग और कपूर से सफेद रङ्ग के फूल प्रगट होते रहते हैं।

(१) पटाखों के लिये बारूद—शोरा ७५ हिस्सा, गन्धक १० हिस्सा, कोयला १५ हिस्सा सब चीजें पृथक २ पीस करके फिर नमी देकर सबको मिलादो। और गुड़ की भेली जैसी बना डालो। फिर बालों की चलनी में किसी तरह कोई वजनी चीज रखकर मिलाओ। पत्थर (वजनी चीज) के दबाव में आकर बारूद दाना के रूप में चलनी से नीचे की तरफ गिरेगी। उसको सुखाकर रखदो। जैसे बढ़िया दाना तैयार होंगे वैसी ही बढ़िया बारूद भी होगी। यह बारूद बन्दूक के भी काम आती है।

(२) बारूद—शोरा कलमी ७५ हिस्सा, गंधक १० हिस्सा, कोयला ११ हिस्सा, सबको मिलाकर तैयार करो। इसको और नीचे प्रयोगों के अनुसार पाश्चात्य देशवासी युद्ध और शिकार के काम में लेते हैं।

(३) शोरा ७५॥ हिस्सा, गंधक १० हिस्सा कोयला, ६॥ हिस्सा. मिला दो शोरा ७५ हिस्सा, गंधक १०॥ हिस्सा, कोयला १२॥ हिस्सा मिलाओ। बारूद बनाने का निम्नांकित प्रयोग शिकार के लिये व्यवहार किया जाता है।

(४) शोरा ७५॥ हिस्सा, गन्धक ६॥ हिस्सा कोयला १२॥ हिस्सा एकत्र मिलाओ।

(५) शोरा ५ हिस्सा, गंधक १ हिस्सा, कोयला १ हिस्सा इसको मिलाकर तैयार करो। इसे विशेषतया [illegible] व्यवहार करता है। यद्यपि यूरोप, फ्रांस, ब्रिटिश, और [illegible] की बारूदों में फर्क है। इसलिये बनाने वाले भिन्न २ प्रकार से बनाया करते हैं। [illegible] की तौल ठीक होना चाहिये।

पहिले गन्धक को शोरा के साथ नरम कूट करके कपड़े में छान लेना चाहिये। फिर साफ कोयला मिलाकर पत्थर के खरल में नमीं देकर खूब कूटें। जब सूख जाय तब निकाल करके फिर अच्छी तरह से मिला देवें। इसके बाद पानी डालकर गूंदे और टिकिया बना डालें। तथा चाकू की नोंक से छोटे २ टुकड़े करके तार की चलनी में छान लें। फिर किसी बरतन में डालकर घुमावें जिससे दाने गोल हो जावें। तदुपरान्त सूख जाने दें--यही बारूद काम देती है।

(६) शोरा २५ हिस्सा, गंधक १० हिस्सा कोयला ४ हिस्सा, बुरादा फौलाद ६ हिस्सा मिलाकर तैयार करें। यह आखेटादि में व्यवहार की जाती हैं।

(७) शोरा ७५ हिस्सा गंधक १० हिस्सा, कोयला १४ हिस्सा प्रत्येक को आपस में मिलाकर प्रथम क्रियानुकूल बारुद बनालो। यह बारुद बन्दूक और पटाखों के लिये काम देती है।

(८) शोरा ७५ हिस्सा, गन्धक १० हिस्सा कोयला १३॥ हिस्सा, मिलाओ। यह बारूद फ्रान्स के युद्ध में बहुत काम आइ थी।

(९) शोरा ६६२ हिस्सा, गन्धक ३० हिस्सा कोयला १९ हिस्सा, मिश्रित करो। यह फ्रांस में सुगन्ध उडाने के लिये व्यवहृत होती है।

(१०) पारा चांदी की बारूद—एक बड़ी मजबूत शीशी में जिसमें एक पाव पानी आसके २ तोला शोरा का तेजाब डालदो और २ माशा बुरादा चांदी उसमें डालकर शीशी की गरदन को चिमटा से पकड़ कर दूर से नरम आंच पर रखो। जब अग्नि के उत्ताप से चांदी गल जावे तब तेजाब के बराबर स्प्रिट आफ़ वाइन (Spirit of vine) डालदो। जिसके पड़ते ही उसमें जोश उठेगा। जब जोश ठण्डा होजावे तब शीशी उतार करके ब्लाटिंग पेपर से छान लो जो कुछ कागज में रह जावे वही बारूद है। यह बारूद बन्दूक की टोपी भरने के काम आती है, और बड़ी तेज़ होती है। यदि इस प्रकार तेजाब से चांदी न गले तो और अधिक डाल देना चाहिये। पारद की बारूद इसी तरह से बनती है।

११—क्लोरटे आफ पोटाश

(Chlorate of potass) १ हिस्सा, गंधक २ हिस्सा, अलग २ पीस कर मिलालो। बहुत से इसमें आधा भाग मैनसिल भी मिला देते हैं—इससे रगड़ पाते ही आवाज पैदा होजाती है। इन सबके अतिरिक्त भिन्न २ प्रकार की बहुत सी बारूदें हैं। जिनका प्रत्येक सामान प्रस्तुत करने की क्रिया के साथ ही वर्णन करते जायेंगे।

१-दीवार पर मारने के पटाखा बनाना।

पुटाश क्लोरेट २॥ तोला, मैनसिल २॥ तोला पहिले मैनसिल को बारीक पीसकर पुटास में होशियारी के साथ मिला देवें। और २॥ माशा के करीब लेकर कागज पर रखकर कुछ कंकड़ों समेत लपेट लो और उसपर कपड़ा आदि की

हिफ़ाज़त करदो। बस पटाखा तैयार होगया। किन्तु इसके बनाने में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। मुख और हाथ अलग रखना चाहिए क्योंकि यह बनाने में ही रगड़ लगकर छूट जाता है। इन सबके बनाने में इन नियमों पर पहिले ध्यान दिया जाय तब कार्यारम्भ करना उत्तम है। सन्यात के अन्तिम हिस्से में पकड़ने के स्थान को मिट्टी से भर देवें फिर उसके बाद मसाला भरे जिससे हाथ जलने का भय उत्पन्न न हो सके।

(२) मोटे और चिकने कागज का गोलाकार खोल तैयार करो। उसके मुख में विलायती सुतली लगाकर अन्दर बारूद भरदो। सुतली के बीच में छिद्र करके फतीला भी लगादो। जब बारूद भरने का कार्य पूरा होजाय तब पहिले हवाई का मुख सूखी मिट्टी से बन्द करदो। और फिर निम्नांकित मिश्रित बारूद भरो—कोयला [illegible] भाग, स्टार्च १ औंस, मैल पौडर ६ भाग, शोरा १६ भाग, गन्धक, ८ भाग, सल्फेट एन्टीमनी ४ भाग, । इन समस्त वस्तुओं को पीस कर कीकर की गोंद २ औंस लो और उसे एक [illegible] गरम पानी में मिलाकर उपरोक्त वस्तुओं को जस्ते के बरतन में रखदो और गोंद के पानी में मिलाओ। अधिक तर न करो। फिर इस बारूद के उसी बर्तन में चौखूटे तख्ते काटलो। फिर चाकू से छोटे छोटे टुकड़े बनाकर बारूद में डालो और हवाई में भरदो बढ़िया हवाई तैयार होजावेगी।

३—फूल झड़ी बनाना।

शोरा १२ तोला, बुरादा ताम्र ५ तोला, गन्धक २ तोला, अञ्जीर की लकड़ी का कोयला २ तोला, पहिले तीनों वस्तुओं को बारीक पीस कर उसमें लौह चूर्ण मिलादो। और कागज में फुलझड़ी बनाकर ऊपर से लाल या हरा कागज लगाकर मुख पर बत्ती आदि लगाओ जिससे खूबसूरत तैयार हो।

(४) शोरा ६ तोला, गन्धक ५ तोला, कपूर २ तोला, कोयला १ तोला, सबको बारीक पीसकर मोटे कागज पर भरकर सफेद महताब बनालो।

५—महताब—शोरा ३० तोला, गन्धक ५ तोला, हरताल गोवरिया ५ तोला, खूब बारीक पीस लो। इससे भी बढ़िया महताब बनती है।

(६) शोरा १३ भाग, गन्धक ५ भाग, आक की जड़ का कोयला १०॥ माशा बुरादा लोहे १॥ माशा सबको पीस डालो। इससे छोटे छोटे अनार तैयार करलो।

(७) शोरा १० भाग, गन्धक [illegible] भाग, कोयला २ माशा, बुरादा [illegible] ६ माशा, सब को कूट पीस कर [illegible] तैयार कर [illegible]।

(८) शोरा १६ भाग [illegible] भाग, कोयला १॥ माशा [illegible] माशा [illegible] कर [illegible] तैयार [illegible]।

(९) [illegible] भाग, गन्धक २ भाग, कोयला [illegible] [illegible]

देकर पृथक २ पीसकर बारूद बनाओ और पूर्वोक्त क्रिया से भरकर फिर पटाख़ा तैयार करलो।

(६) पटाखा का फतीला—बारूद को लहसन के अर्क में सान करके फिर उसमें सूत लपेट कर सुखालो। इसे पटाखों में लगाना चाहिए।

११—छछून्दर का प्रयोग।

शोरा २ सेर, गन्धक आधसेर, कोयला १ सेर सबको अलग २ पीसकरके आपस में मिलाकर फिर उसे कागज की बनी हुई छछून्दर में भर करके ठीक करदो। कागज़ की नली एक किनारे पर इस लिए दाव दीजाती है कि वह पकड़ने के काम में आवे और हाथ न जले।

(१२) महताबी पटाखा—शोरा कलमी ११ तोला ८ माशा, गन्धक १६ तोला ५ माशा, हरताल २ तोला, मैनसिल १४ माशा, नीलबरी ७ माशा, कपूर ७ माशा, मिश्री ३॥ माशा, राल २ माशा, ५ रत्ती, इन सबको अलग अलग पीस कर मिलावें और कागज़ का खोल बना कर उसमें भर देवें। यदि वत्ती बनाना हो या किसी नली में भरना हो तो अरण्डी के बीज और राल सात सात माशा मिला देवे। अगर रङ्गीन बनाना हो तो उसीरङ्ग की पोटास मिला देवें।

(१३) आवाजदार गोला—शोरा ३॥ सेर गन्धक १ सेर, कोयला ७॥ तोला मिलाकर तैयार करें। इससे अधिक आवाज होगी, या शोरा ४२० तोला, गन्धक ८७ तोला ४ माशा कोयला १६ तोला ४ माशा मिलाकर तैयार करें।

१४—लाल रंग की बारूद।

सल्फेट एन्टी मोनी (Sulphate antimony) १ भाग, नाइट्रेट इस्ट्रिकनिया (Nitrate strychninae) ५ भाग, गन्धक १; भाग अलग २ पीस करके मिलादो। इसका लाल रंग होगा।

(१५) नीले रंग की बारूद—सल्फेट एन्टी मोनी १ हिस्सा, गन्धक २ हिस्सा, शोरा ६ हिस्सा, अलग २ पीस करके मिलादो यह नीला रंग देती है।

(१६) हरे रंग की बारूद—गंधक १७ हिस्सा, बोरिक एसिड १० हिस्सा, पोटाश क्लोराइड (Potass chlorid) ७३ हिस्सा, अलग २ पीस कर मिश्रित करो।

१७—पीले रंग की बारूद।

गंधक १६ हिस्सा, कारबोनेट आफ सोड़ा (Carbonate of soda) २३ हिस्सा, पुटास क्लोराइड ६ हिस्सा, अलग २ पीसकर एकत्र करो।

अंग्रेजी आतिशबाजी।

प्रथम कागज के खोल फुल झड़ी की तरह से तैयार करना चाहिये। और इस क्रिया के लिये ३-बटा-१६ इञ्च मोटी सलाई पीतल की जो ६ इञ्च लम्बी हो और खोल का एक शिरा बन्द कर दिया जाता है। फिर उसमें बारूद भर कर काट डालते हैं। इसके बाद बराबर के दो

तीन टुकड़ों में जितने फासले पर उनका मुंह आसानी से रह सके बांध करके ऐसा रखो कि तागा सबके मुंह पर होकर जावे। इसी तागा को आग दी जाती है जिसमें भिन्न २ मसाले लगे रहते हैं। जो आगे वर्णन करेंगे। शहरों में इस प्रकार की आतिशबाजी अधिक बनती है जो बिलकुल मालानुमा होती है।

महताब की रोशनी खूब स्वच्छ होना चाहिये और धूआं न होना चाहिये। उसका खोल आवश्यक्तानुसार तैयार किया जाता है। फिर नीचे के हिस्से में मिट्टी भरदो जिससे हाथ जलनेका भय न रहे। और जब बारूद भरो उस के पहिले नम देदो। फिर खूब ठोंक २ कर भरो परन्तु इसका खोल छोटे की अपेक्षा बड़ा तैयार करो नहीं तो बारूद के टुकड़े २ फैल जायेंगे और वह बात नहीं रहेगी जो टुकड़े में होती है। अब नीचे वह प्रयोग लिखे जाते हैं जिन्हें कभी २ थालियों में जलाते हैं। जैसे सूरज के रंग का महताब उसका योग निम्न प्रकार हैं।

(१८) शोरा २०० तोला, गन्धक ५ तोला हरताल गोवरिया ५ तोला खूब बारीक पीस कर ऊपरोक्त नियमानुसार महताब बनाओ।

१९—महताब सफेद रङ्ग।

गन्धक २ भाग, मैल पौडर २ भाग, शोरा १ भाग मिश्रित करके तैयार करो।

२०—लाल रङ्ग—केलोमेल (Calomel) २० हिस्सा, लाख १२ हिस्सा, बुरादा ताम्र ४ हिस्सा, कोयला १ हिस्सा, क्लोरेट पुटास १२ हिस्सा, नाइट्रेट आफ इस्ट्रोसिया ४८ हिस्सा, सबको मिलाकर एकत्र करो।

(२१) शोरा २५ तोला, गन्धक ५ तोला, कपूर २ तोला, चूना सूखा १ तोला सब चीजों को बारीक पीस करके मोटे कागज की २, ३ तह में लपेट करके महताब बनालो।

२२—कारतूस बनाना।

शोरा ४ हिस्सा, गन्धक १ हिस्सा, कोयला १ हिस्सा यह मसाला पीसकर कागज के खोल में भरकर फिर बन्द करदो। इसमें पीतल की टोपी लगाकर आवश्यक्तानुसार धूप में सुखादो यह मसाला जिस दिन तैयार होता है उसी दिन व्यवहार में लाना चाहिए। साथ ही गोली भी भर सकते हो।

२३—गोलियाँ और छर्रा बन्दूक।

सीसा ४६ भाग, संखिया १ भाग, पहिले सीसा गलाकर संखिया मिलादो। फिर एक तश्तरी में पानी डालकर ऊंचाई से उसमें शीशा डालते जाओ—इस क्रिया से छर्रा बनने लग जाते हैं और पास से डाला जावे तो गोलियां बनती हैं। तश्तरी में १५, १६ अंगुल पानी होना चाहिये। इन्हीं को उपरोक्त बारूद के साथ व्यवहार किया जाता है।

२४—बारूद का सांप।

कोयला ४ तोला, शोरा ३२ तोला, बन्दूक की बारूद ८ तोला, गन्धक ८ तोला, बुरादा फौलाद २ तोला, मिलाकर तैयार करलो।

(२५) पटकने से आवाज देने वाला पटाखा—बारूद क्लोरियट पोटास १ हिस्सा गन्धक २ हिस्सा, फलग २ पीसकर मिलादो।

इसे कागज में लपेट करके और ऊपर से डोरी या कपड़ा खूब लपेट कर मिट्टी लगा कर सुखादो।

२६—बारूद की रूई बनाना।

गन्धक और शोरा के तेजाब को परस्पर खूब मिश्रत करो। और पानी में मिलाकर जोश दो। जब जोश खा चुके तब रूई डालकर तर कर डालो। और धूप में सुखाओ। फिर साफ पानी में इस रूई को इतना धोओ कि उसका तेजाबी असर जाता रहे। फिर निकाल कर खालिस शोरा के तेजाब में डुबा करके सुखाकर रखलो। इसे विशेष सावधानी से रखने की आवश्यक्ता है। क्योंकि वह बारूद की अपेक्षा अधिक तेज हो जाती है।

२७—अनार की कली।

शोरा एक सेर, गन्धक १॥ छंटाक कोयला १॥ छंटाक, और लोह चूर्ण पाव भर मिला कर तैयार कर लेवें।

२८-चमेली की कली।

शोरा १ भाग, लोह चूर्ण १ भाग, गंधक $\frac{1}{2}$ भाग, कोयला $\frac{1}{2}$ भाग मिला करके तैयार करें।

२६--मोतीया अनार।

शोरा ७५ भाग, गंधक १। भाग, कोयला १ भाग, लोह चूर्ण ५ भाग, मिलाकर तैय्यार करलें।

३०-साधारण अनार।

शोरा १॥ सेर, कोयला १ सेर, गन्धक ५ छंटाक, लोह चूर्ण १ सेर मिला कर तैयार करो।

३१-छछून्दरी--शोरा १ सेर, गन्धक $\frac{1}{4}$ सेर, कोयला २ सेर सबको अलग अलग करके बारीक पीस कर मिला डालो और काम में लाओ।

३२-नीले सितारे-क्लोरियट आफ पोटास ५ भाग, सोडा बाई कार्ब ५ भाग, गंधक २॥ भाग मस्तंगी $\frac{1}{2}$ हिस्सा मिलाकर एकत्र करो।

३३-दूसरा प्रयोग-क्लोरियट पोटास २० भाग, सज्जी १२ भाग, गन्धक ८ भाग, मिला डालो।

३४-नारंगी सितारे-क्लोरियट आफ पोटास ६ हिस्सा तूतिया ६ हिस्सा, बुरादा ताम्र ६ हिस्सा, गंधक ४ हिस्सा मिलाकर प्रस्तुनत करो।

आतिशबाजी का शौक वास्तव में भयानक होता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को इसमें पहिले खूब अभ्यास कर लेना चाहिए। तभी उसके बनाने का प्रयत्न करना उचित है। इसमें जितना लाभ होना सम्भव है उतना अन्य किसी वस्तु में नहीं है। हां परिश्रम अवश्य पड़ता है पर ८ गुने लाभ तक की सम्भावना रहती है।

(असमाप्त)

लगा रहता है, उसी से उद्योगियों के उद्योग की कल्पना का हम लोगों को अनुमान होता है। महात्मा तुलसीदास, भक्त शिरोमणि सूरदास और महर्षि वेद व्यास ने जिन ग्रन्थों का निर्माण किया है, उनसे उक्त कवियों की प्रतिभा का पता लगता है और हम इन पुस्तकीय ग्रंथों का स्वाध्याय करके पवित्र जीवन धारण करते हैं। आश्चर्य में डालने वाली इमारतों और उनमें किये हुए नक्काशीदार कामों को जब हम देखते हैं तब हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती, हमें तत्काल इमारतें बनाने वाले कारीगरों का, और उन कार्यों में सहायता पहुंचाने वाले श्रीमानों का स्मरण हो आता है और हम प्राचीन काल की स्थिति से आधुनिक काल की स्थिति की तुलना कर सकते हैं। आलस्य पंक में लोटने वाले मनुष्य से कोई काम नहीं हो सकता हमारा जीवन समय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भागों में बटा हुआ है। इसी समय का सदुपयोग करके हम अपना उत्तम जीवन संगठित कर सकते हैं और उसका फल भी न केवल अपने लिये प्रत्युत सन्तानों को भी दे सकते हैं। श्रीमान् अथवा दरिद्र कोई भी क्यों न हो उसे उद्योग करना ही चाहिए। दरिद्र मनुष्यों को पेट भरने के लिए शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है, श्रीमानों को ऐसा परिश्रम नहीं करना पड़ता। तो भी उन्हें घर के नौकरों चाकरों पर देख रेख रखनी पड़ती है, नहीं तो उनकी लक्ष्मी कपूर के समान उड़ जा सकती है। भगवान् ने कृपालु होकर जो यह सुन्दर नर-देह प्रदान की है वह योंही नष्ट करने के लिए नहीं दी है। उसने यह सुन्दर शरीर सदुपयोग करने के लिए ही दिया है। हमें उद्योग करके अपनी ज्ञान शक्ति बढ़ाना चाहिये और द्रव्य भी पैदा करना चाहिए और उस द्रव्य की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जिससे अन्य लोग भी उससे लाभ उठा सकें ऐसी कार्यवाही करने से भगवान् भी हम पर सदय हो जावेंगे।

जिसे पेट पूजा के लिए उद्योग करना पड़ता है, उसकी बात निराली है, किन्तु जिसे पेट के लिए उद्योग नहीं करना पड़ता है, उसका कर्तव्य है कि वह दूसरों की भलाई के लिए भरपूर प्रयत्न करे और इस प्रकार अपने देश भाइयों के काम में आकर ईश्वरीय कृपा संपादित करे। अपने लिए उद्योग करने की अपेक्षा दूसरों के लिए उद्योग करना अत्यन्त महत्व पूर्ण बड़ाई की बात है। स्वयं अपने लिए उद्योग करने से मनुष्य का जीवन सार्थक नहीं हो सकता। मार्कस आरीलियस का कथन है—

कि मनुष्य केवल अपने सुख के लिये पैदा नहीं हुए हैं। वरन् वे संसार में एक दूसरे को सुख पहुंचाने के लिये ही आते हैं। दूसरों के दुख देखकर दुखीभूत होना मनुष्य का मुख्य लक्षण है। आपत्ति ग्रसित व्यक्तियों को देख कर जिसे दया नहीं आती, और जो मनुष्य उक्त दीन हीनों की सहायता के लिये आगे नहीं बढ़ते उनका मानव जीवन पशुवत जीवन है। वे सींग और पूंछ वाले चौपायों में और उनमें कोई भेद नहीं है। अतएव जिन्हें भगवान की कृपा से पेट पूजा की चिन्ता नहीं है। उनका मुख्य कर्तव्य है कि वे दूसरों की भलाई के लिये

बिना देश की उन्नति कदापि नहीं हो सकती। इंग्लैंड देश में क्लार्कसन नामक एक विद्यार्थी था। एकबार उसने जबरदस्ती गुलामी की प्रथा पर एक निबंध बनाया, वह निबंध अच्छा समझा गया। आगे उसने इसी एक बात पर तन, मन, धन, अर्पण करदिया। इसका ऐसा परिणाम हुआ कि इस विषय की ओर समस्त इंग्लैंड का ध्यान आकर्षित हुवा और अन्त में इंग्लैंड से गुलामी की प्रथा एकदम बंद होगई और गुलाम लोग स्वाधीन कर दिये गये। इस स्वाधीनता के बदले में इंग्लैंड को गुलामों के मालिकों के लिए २० करोड़ रुपया देना पड़े। अमेरिका की गुलामीगरी अब्राहिम लिंकन के दीर्घोद्योग से नष्ट करदी गई। इन बातों से उद्योग का महत्व भली भांति ध्यान में आ सकता है।

९—सब लोगों को यह बात भली भांति ध्यान में रखना चाहिये कि मनुष्य की प्रकृति आप ही आप आलस्य की ओर प्रवृत्त होती है। किन्तु एक बार आलस्य की आदत पड़ जाने पर उसकी वह आदत उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और वह आलस्य पंक में धस जाता है। और इस प्रकार उसकी दशा अत्यन्त खराब होजाती है। थोड़ा सा भी पैसा होजाने से मनुष्य को काम करने में शर्म मालूम पड़ती है। किन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यह शर्म हमारा विनाश करने वाली है। बहुत सा पैसा केवल खर्च कर देने ही से काम नहीं चल सकता। संचित पानी कितने दिनों के लिये हो सकता है? हमारे पास जो द्रव्य हो उसमें कुछ न कुछ वृद्धि होती ही रहनी चाहिये यह बात उद्योग के बिना नहीं होसकती। प्रामाणिकता से किये हुए उद्योग में शर्म की कोई बात नहीं है। ऐसे कुटुम्बों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जो थोड़े से पैसे से श्रीमान् होगये और अंत में उद्योग विहीन हो कर दरिद्रता राक्षसी के पंजे में फंस गये।

जिसे कोई भी धंधा नहीं सूझ पड़ता उसे प्रत्येक काम हलका जान पड़ता है। बड़े बाप के बेटे होने पर यदि दरिद्रता आजावे तो इस में शर्म की कौनसी बात है? यदि पिता ने किसी बड़े राज्य की वजीरी का काम किया है और पुत्र को सामान्य नौकरी अथवा दुकानदारी करनी पड़ी तो इसमें कौनसी हानि है। अनेक लोग श्रीमान् न होने पर भी बड़े ठाट बाट से रहते और कर्जदार होने में कुछ भी संकोच नहीं करते, उनकी यह पद्धति अनुकरणीय नहीं होसकती। यदि हम गरीब हैं तो हमें गरीबी से ही रहना चाहिए, और जो धंधा हम कर सकते हैं उसे निश्शंक होकर करना चाहिये। दूसरों पर अवलंबित रहने की अपेक्षा स्वावलंबन पूर्वक रहना कई गुना अच्छा है। इतना ही नहीं वरन् श्रीमान् होने पर भी सादगी से रहना अच्छा है। हमारे कथन का कुछ यह मतलब नहीं है कि प्राप्त वैभव का बिलकुल उपयोग न किया जावे अपितु हमारा संकेत केवल व्यर्थ आडम्बर की ओर है। उद्योगी बनने की कोशिश न छोड़ी जावे। किसी भी कुटुम्ब समाज अथवा देश की उन्नति वहां के उद्योग धन्धों पर ही अवलम्बित रहती है।

है। हमारा देश कृषि प्रधान होने के कारण हम अपना पेट अभी तक किसी प्रकार भर सके, अब आगे इस प्रकार काम नहीं चल सकता। हमारे देश में लागत के लिये पैसे का अभाव पड़ा हुआ है, और आपसी नुकताचीनी भी बहुत बढ़ गई है, जिससे बिना घोर परिश्रम किये हम अब कार्य सफल नहीं हो सकते। निराश होकर बैठे रहने से कोई लाभ नहीं हो सकता। अतएव आशावादी होकर प्रयत्न करना चाहिए, और मौके को हाथ से कभी न गंवाना चाहिए। कहने का मतलब यह है कि हमें उद्योग की चाह होना चाहिये यह बात सभी जानते हैं कि उद्योग से कभी हानि नहीं होती।

४—हमें जो उद्योग करना है उसका अनुभव भली भांति प्राप्त करने के लिए, उसमें यश प्राप्त करने के लिए, उसके द्वारा अपने कुटुम्ब का भली भांति निर्वाह करने के लिए, दूसरों को उपयोगी बनाने के लिए और बहुत सा धन पैदा करके उसके द्वारा गरीबों को सहायता पहुंचाने के लिए किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए अब इन्हीं बातों पर विचार करना है। अतएव उद्योगी पुरुष को निम्न बातों पर भली भांति मनन करना चाहिए।

१—उद्योगी पुरुष को अपनी आत्मा पर विश्वास रखना चाहिए।

२—जिस उद्योग में हाथ डालना है पहिले उसका पूरा२ ज्ञान प्राप्त करलेना अत्यंत आवश्यक है।

३—अपना आचरण सर्वदा पवित्र रखना।

४—ठीक व्यवस्थानुसार उद्योग करना चाहिए।

५—उद्योग करते समय चित्त को शांत रखना भला है।

६—सदा मन में सम्पूर्ण उत्साह जागृत रहे।

७—सच्चा प्रयत्न करना।

८—समय पर काम करने की आदत डालना।

ऊपर लिखी हुई इन बातों ध्यान में रख कर यदि उद्योग किया जावे तो उसमें सफलता प्राप्त हुए बिना नहीं रह सकती। अब हम इन बातों में से प्रत्येक बात पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

१—हमें इस बात का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हम जिस काम में हाथ डालेंगे उसे पूरा ही करके छोड़ेंगे। जिस काम के लिए हम ऐसा निश्चय न कर सकें उस काम में हाथ ही न डालना चाहिए। एक बार हाथ में काम लेने पर उस सम्बन्ध की सफलता निष्फलता का भार सिर पर ले लेना चाहिए। उस काम में अपना मन, तन, धन अर्पण कर देना चाहिए। विघ्नों से डरना ठीक नहीं, किंतु उनका स्वागत करना ही सफलता की कुंजी है यदि हमें स्वयं अपना ही विश्वास न हो तो कोई भी काम हम से यथार्थ रूप से नहीं हो सकता। दूसरों की सहायता का भरोसा रखने से काम नहीं चल सकता। जब हम कोई काम करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो जावेंगे तो हमें सहायता पहुंचाने वाले बहुत साथी मिल जावेंगे। साधनों के अनुकूल होने की बाट-जोहा करने से कोई लाभ नहीं हो सकता हमें साधन स्वयं प्राप्त कर लेना चाहिए। और

यदि हम काश्तकार होना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम काश्तकारी से सम्बन्ध रखने वाली बातों के जानने की चेष्टा करें यथा किस ऋतु में कौनसा अनाज बोना चाहिये, बोने के लिये बीज किस प्रकार चुनना चाहिये, खाद किस प्रकार डालना चाहिए, कौनसे बीज के लिये किस प्रकार की जमीन उत्तम होगी, खेती के औजार किस प्रकार के होना चाहिये, वे किस पद्धति द्वारा काम में लाये जाना चाहिये, जंगली जानवरों से फसल की रक्षा किस प्रकार हो सकती है इत्यादि २ बातों का ज्ञान होना अत्यान्तावश्यक है। यदि हम व्यापारी होना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहिले ऐसे व्यक्ति से भेट करना चाहिए जिसने व्यवसायिक जीवन व्यतीत किया हो तथा जो ठोकर खाकर होशियार हुआ हो, भेंट होने पर उससे इन बातों पर परामर्श करना चाहिये कि उसे अमुक व्यापार में हानि क्यों उठाना पड़ी, फिर उसका प्रतिकार किस प्रकार हुआ ? आदि बातों की जानकारी के बाद हम व्यापार क्षेत्र में अवतीर्ण होने का साहस कर सकते हैं तथा व्यापारी बन सकते हैं और फिर हमें व्यापार में जोखिम उठाने का अवसर भी नहीं आसकता। कहने का मतलब यह कि कोई भी व्यापार क्यों न हो जब हम तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तब हम उस व्यापार में अवश्य ही यश प्राप्त करेंगे।

(क्रमशः)

व्यापार हमारा।

(रचयिता श्री० अवध बिहारी जी माथुर, 'अवध' कविरत्न)
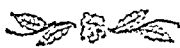
दुनियां थी चकित ऐसा था आचार हमारा।
सब लोग भला कहते थे व्यवहार हमारा॥
पाता न था कोई भी कहीं पार हमारा।
इस ओर से उस तक था चला कार हमारा॥

दुनियां में चला नाम था हरबार हमारा।
खबरें भी पहुंचती थीं वो था तार हमारा॥
पाता था दवाई यहीं बीमार हमारा।
आता था जहाज़ों पे लदा भार हमारा॥

चक्कर में था जहान वो था कार हमारा।
दुनियां में था फैला हुआ व्यापार हमारा॥

बटनों का कारखाना

लेखक—श्रीयुत डाक्टर गणपतिसिंह जी वर्मा,

M. D. H. & M. S M इत्यादि—

देश में बटनों की भी दिन प्रति दिन मांग बढ़ती जाती है. जिसे यूरोप ही पूरी करता है। यद्यपि भारतवर्ष में भी कतिपय कारखाने बटन बनाने के खुले हैं। कलकत्ता में ऐसा एक कारखाना है जिसमें हर प्रकार के बटन बनते हैं। इस कारखाने के स्वत्वाधिकारी एक बंगाली महाशय हैं। यह बहुत से ऐसे देशों में, जहां बटनों के कारखाने हैं, यात्रा कर चुके हैं। और जापान की इम्पीरियल बटन फैक्टरी में भी काम करते रहे हैं सींग, हड्डी, ताड़, नारियल, पीरु की सुपारी, पशुओं के खुर, घोंघे, सीप, और मोतियासीप से बटन तैयार हो सकते हैं। और यह मसाला भारतवर्ष में अधिकता से मिल सकता है। साथ ही अन्य देशों की अपेक्षा सस्ता भी मिल सकता है। केवल सीप के बटनों पर अधिक कारीगरी करना पड़ती है बाकी दूसरे २ बटनों का बनाना उतना कठिन नहीं है। बटनों के कारखाने में मशीनों की अपेक्षा हाथसे काम अधिक करना पड़ता है।

बटन बनाने के लिये जितने प्रकार की मशीनों की आवश्यकता होती है वह इंगलैण्ड के प्रसिद्ध नगर बरमिंगहाम से प्राप्त हो सकती हैं। मुल्क पीरू की सुपारी से जो बटन बनाये जाते हैं। उनका रंग बड़ा सुन्दर तथा चित्ताकर्षक होता है। बिना अधिक परिश्रम के उन पर अत्यंत सुन्दरता और स्वच्छता आती है। वह हिम के सादृश श्वेत वर्ण और पत्थर जैसे कठोर होते हैं।

यूरोप में बटनों के जितने कारखाने हैं, उन में अधिकतर स्त्रियां और बच्चे काम करते हैं। स्त्रियां ही मशीनें चलाती हैं और बच्चे उनके पास खड़े होकर मशीन में बटन छोड़ते जाते हैं। भारतवर्ष में यह काम [illegible] से चल सकता है। यदि देश में जहां तहां बटनों के कारखाने खोल दिए जावेंगे तो स्त्रियां और बच्चे बेकार नहीं रहेंगे। और देश का दारिद्र दूर करने में [illegible] दूसरों को भी सुखी बनावेंगे। यहां [illegible] मसाला बहुत परिमाण में मिल सकता है। [illegible] इस समय तो [illegible]

मकदार सीप अधिक मिलता है । यदि
रतवर्ष में इस कार्य को प्रारम्भ किया जावे
कारखाने शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त हो सकते
। कारण आस्ट्रेलिया और जापान के मुका-
ले में कच्चा माल यहां बढ़िया से बढ़िया
र सस्ता मिल जाता है । इसके अतिरिक्त
परोक्त देशों में मजदूरी मंहगी है । वह दशा
हां पर नहीं है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि
म चल निकले तो हम प्रति योगिता में बढ़
कते हैं । सीप के बटन का कारखाना केवल
००) रु० की पूञ्जी से चल सकता है ।
सका ब्योरेवार हिसाब निम्न प्रकार है—

मशीनों का मूल्य	रुपया	५००)
औजार आदि	”	१००)
लगाने का खर्च	”	१००)
अन्य सामान	”	१००)
कागज कलम इत्यादि	”	१०)
विविध खर्च	”	३५)
	योग—	८३५)

यह तो प्रारम्भिक खर्च हुआ, इसके आगे ३
स का आजमायशी खर्च ६७७) रु० होता है ।
म् २४७८ रु० रहे जिनसे कारखाने का काम
लेगा ।

एक मास का आवश्कीय खर्च ।

किराया मकान	५०)
कारीगर का वेतन	२७५)
कच्चा माल	१४०)
पत्थर का कोयला दवाई आदि	३०)
ताश वक्स आदि	२८७)
विज्ञापन आदि	१२५)
योग—	९०७)
दुकानदारों को कमीशन	१७६)
रुपया का ब्याज	५०॥)
मशीन की घिसाई ६) प्रतिशत और काम करने की पूञ्जी का ब्याज (सूद)	१२४)
कुल खर्च	१२५८)

एक मास में जिस कदर भांति २ के बटन बनेंगे उनकी संख्या ३७५० गुरस होगी । और यदि इन गुरसों का मूल्य ॥) प्रति गुरस ही रखें तो १८७५) रु० होते हैं। खर्च एक मास में जो हुआ यदि उसमें २००) खर्च और गिन लें तो भी ४१७) रु० नफा होता है । यहां तक कि सावधानी से काम करने में पांच छः सौ रुपया मासिक भली भांति कमा सकते हैं। इतनी पूञ्जी से शायद ही अन्य किसी व्यापार में लाभ हो। उचित है कि लोग इस ओर आकृष्ट होकर अपने लिये अर्थोपार्जन का प्रशस्त मार्ग बनालें और देश की डूबी हुई समृद्धि को फिर से बटोर लें। पाठक कहेंगे कि यदि अधिक फेक्टरी खुल गई तो फिर उनके अपरिमित माल की खपत कहां होगी ? इसका सहज उत्तर है कि जो लोग इस तरह की फेक्टरी खोलें उन्हें अपने यहां का तैयार माल केवल देश में बेचकर ही संतोष लाभ नहीं करना चाहिये, वरन सात समुद्र पार विदेशों में भी अपने माल की बिक्री बढ़ाना उचित है। परन्तु अभी तो भारतवर्ष में ही ऐसे बहुत से कारखानों की आवश्यक्ता है।

धैर्य, सच्चरित्रता, आदि की अपूर्व शिक्षा मिलेगी।

१८७८ ई० में बम्बई के आम रास्ते पर एक बारह वर्ष का एक लड़का अपने सिर पर टोकरी रखे हुए आ रहा था। टोकरी में ५, ६ तरबूज थे। उस बालक का मूल धन तथा सर्वस्व वे तरबूजे ही थे। सिर पर बोझा रखे हुए घूमते घूमते उसके पैर दुःख आते थे बीच बीच में "तरबूजे लो तरबूजे"। यह ललकार भी शुरु थी, जिससे उसका गला भी सूखा जाता था।

इस बालक की अवस्था वास्तव में अत्यन्त कष्टमय थी इतना विशाल बम्बई नगर, परन्तु उस सम्पूर्ण नगरी में उसको अपनाने वाला या आश्रय देने वाला एक भी प्रेमी मनुष्य न था। उसके पिता को स्वर्गवासी हुए एक वर्ष बीता था। इसी बीच में केवल ग्यारह वर्ष की अवस्था में उसको अपना गांव विजयदुर्ग छोड़ पेट पालने के लिए बम्बई की राह लेनी पड़ी।

उस समय बम्बई यात्रा वर्तमान समय के अनुसार सहज न थी। आजकल जहाज द्वारा केवल १२ घंटों की सफर से विजय दुर्ग पहुंच सकते हैं। पर उन दिनों छोटी नाव में से १४ चौदह दिन सफर करनी पड़ती थी। जिसकी आपत्तियों का क्या कहना। उस बालक का नाम 'बाबाजी' था। इसके पूर्व उसने अपना प्यारा घर कभी नहीं छोड़ा था। यह संसार कैसा है, कितना विशाल है इन बातों का उसको बिलकुल ज्ञान न था। माता पिता के सुख साम्राज्य में रहने, तथा पाटी पुस्तक लेकर पाठशाला जाने और गिल्ली डंडा खेलने के वे उसके दिन थे। पर इतनी छोटी अवस्था में ही पेट पूजा के लिए संसार के तीव्र जीवन कलह में प्रविष्ट होना उसके भाग्य में अनिवार्य होकर पड़ा।

विजय दुर्ग कोकन किनारे का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। शिवाजी महाराज का यह एक नौसेना निवास स्थान था। यहां उनका बांधा हुआ किला आज भी मराठों के शौर्य की साक्षी दे रहा है। महाराज के प्रसिद्ध नौसेनापति धुलप और दामाजी कुबलकर भी विजय दुर्ग निवासी थे। विजय दुर्ग में जो भंडारी घराने हैं, उनमें तारकर घराना पुराना है। इसी तारकर कुल में बाबाजी का जन्म हुआ था।

बाबाजी का ज्येष्ठ भ्राता हरिभाऊ बम्बई में "कासी दे बम्बई" नाम के गुजराती मुद्रणालय में टाइप के कीले जमाने का काम करते थे। उन्होंने बाबाजी को इस छापाखाने में २॥) मासिक वेतन पर नौकर करवाया। किन्तु, योगायोग कुछ विचित्र था। उनके ज्येष्ठ भ्राता थोड़े दिनों बाद ही बीमार होकर कोकन लौटे, और उधर ही उनका देहांत होगया। जिससे बाबाजी की नौकरी भी गई और आश्रय भी न रहा।

बाबा जी के पास केवल एक रुपया था। उस के खर्च होते ही उनका सब कुछ नष्ट होने वाला था। फिर आगे भीख मांगकर या उपवास कर के दिन बिताने की नौबत आती। बाबाजी का जन्म अवश्यमेव गरीबी में हुआ था, परन्तु उन के शरीर में उद्योगी, स्वाभिमानी तथा स्वावलंबी पूर्वजों का खून बहता था। अपने लिए रूखी सूखी नमक रोटी स्वयं कमाके खाने की

नाम आंखों के सामने आता है, उसी प्रकार भजनीक लोगों में भी झांझ कहते ही स्वनामधन्य तारकरजी की स्मृति सामने नाचने लगती है। तारकरजी की झांझों ने इतना विलक्षण यश प्राप्त किया है। अब, झांझों में क्या धरा है—ऐसा कौन कहेगा ?

तारकरजी के बम्बई वाले कारखाने में १२२६ मजदूर काम करते हैं। और वहां का काम आधुनिक यंत्र सामग्री से चलता है। इस कारखाने में सर्व साधारण के लिए विविध भांति के नित्योपयोगी बर्तन थाली, कटोरी, लोटे, प्रवासी लोटे, भोजन सामग्री रखने के डिब्बे (Tiffincarriers) पानी तपाने के बर्तन देव पूजा का सामान तथा उपरोक्त झांझें आदि तांबा, पीतल और जर्मन सिलवर इन धातुओं का माल बड़े परिमाण में बनता है। इनके कारखाने ने तो भारतवर्ष में अच्छा नाम पाया ही है वरन् बेम्ले की प्रदर्शनी में भारत सरकार ने भारतीय कौशल्य के नमूने के रूप में तारकरजी का माल रक्खा था। वहां भी उसकी बड़ी प्रशंसा हुई और इसके लिए तारकर जी को एक प्रशंसा पत्र मिला। अपना माल ग्राहक पहिचान सकें इस हेतु उन्होंने अपने माल पर "ॐ" का सिक्का रक्खा है।

तारकरजी की मुख्य दुकान और आफिस मुम्बादेवी में है। इसके सिवाय ठाकुरद्वार गिरगांव, लालबाग, और दादर इन स्थानों में भी बिक्री के लिए चार शाखायें हैं। जिन सब में मिलकर प्रतिवर्ष लाखों रुपयों का व्यापार चलता है। रास्ते पर तरबूजे बेचने वाला निराश्रित बाबाजी, आज भण्डारी जाति के भूषण समाज के उत्कृष्ट मार्ग दर्शक, महाराष्ट्र के श्रीमान् तथा यशस्वी उद्योग संस्थापक बने हैं।

इस अद्भुत चरित्र को पढ़कर वाचकों को तारकर जी के प्राप्त किये हुए महान् उत्कर्ष के विषय में अवश्य आश्चर्य होगा। अपने समाज में देखा जाय तो अधिकांश मनुष्य नौकरी के लिये नाना प्रकार की चेष्टायें कर रहे हैं। अच्छे २ पढ़े लिखों का और अपने कुटुम्ब की अच्छी अवस्था वालों का भी यही हाल है। स्वतन्त्र धन्धा करने की कहते ही उनके शरीर में रोमांच खड़े हो जाते हैं। धन्धे में यश पाना सामान्य पुरुष का काम नहीं है। उसके लिए बहुत बड़ा मूल धन चाहिए। लोगों की सहायता नाना प्रकार की साधन सामग्री, और अनेक प्रकार की अनुकूलता हो तो कोई स्वतन्त्र धन्धा हो सकता है। ऐसा लोगों का निश्चिन्त मत बना हुआ देखने में आता है। तारकरजी के पास तो इन में से एक भी बात न थी—फिर उनका यह महान् उत्कर्ष कैसे हुआ।

इस प्रश्न का तारकरजी तो यही उत्तर देंगे कि मैंने अपने मस्तिष्क बल का सम्यक रूप से उपयोग किया, अपनी मानसिक सामर्थ्य प्राप्त की, इसी कारण मुझे आज जैसी स्थिति प्राप्त हुई है। उन्होंने अपने मस्तिष्क का किस प्रकार उपयोग किया इसका ठीक अर्थ जानने के लिए भी उनके चरित्र का ही पुनश्च अवलोकन करना पड़ेगा। अस्तु !

ग्रीष्मकाल की कड़कड़ाती हुई धूप में तर-बूजे बेचने के काम करने से उन्हें स्वावलम्बन और सहिष्णुता की भली भांति शिक्षा मिली थी अपना पेट किसी भी प्रकार भर सकेंगे, यह विश्वास उनके मन में अच्छी तरह होगया था। पर ग्रीष्म ऋतु की समाप्ती होने पर तरबूजों की बिक्री बन्द होगी सोचकर वे अपनी भावी आपत्तियों से बचने का उपाय खोजने लगे।

बाबाजी को अपने हाथों से काम करना बहुत पसंद था। उन्होंने एक दिन तरबूजे लेकर [illegible] हुए लोहार गली में कै० अनन्त शिवाजी [illegible] का अर्जुन लिलव्हर की चूड़ियों का कारखाना देखा। वहां अपने को अपनी इच्छा-नुसार काम मिलेगा ऐसा सोचकर उन्होंने उस कारखाने में २॥) मासिक की नौकरी स्वीकार की। कारखाने में नौकर होजाने पर उन्होंने [illegible] से चूड़ियों पर नक्शी करने के काम में [illegible] प्राप्त किया, और कारखाने के दूसरे [illegible] का भी बहुत कुछ ज्ञान सम्पादन कर [illegible]।

किसी भी कार्य में पूरा ध्यान देकर ज्ञान [illegible] करने वाले व्यक्ति की आप ही आप [illegible] होती है। उक्त कारखाने में भली भांति [illegible] होने के बाद बाबाजी ने मुम्बादेवी [illegible] सेठ चुन्नीलाल हरिकिशनदास फासार [illegible] वाले) के बर्तनों के कारखाने में, उनके ४) [illegible] वेतन कबूल करने पर पहिले कारखाने [illegible] छोड़कर इनके यहां नौकरी करली। [illegible] बर्तनों के धन्धे का भी अच्छी तरह [illegible] कर लिया।

बाबाजी अपनी सौंदर्य प्रियता और हस्त कौशल्य गुणों से उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त करने लगे। उनके निर्माण किये हुए सुभग और सुन्दरा-कार पात्रों को ग्राहकों ने बहुत ही पसंद किया और ऐसे कार्य कुशल तथा कर्तव्य निष्ठ नौकर को पाकर सेठ चुन्नीलाल अत्यंत प्रसन्न हुए। आगे आकर सेठजी की इनके प्रति विशेष कृपा रहने लगी। बाबाजी का वेतन बढ़ता गया और योग्य काल आते ही सेठजी ने अपनी व्यवस्था से बाबाजी का विवाह कर दिया। इसके पश्चात् बाबाजी की महत्वाकांक्षा और उनका प्राप्त किया हुआ उद्योग विषयक सम्यक ज्ञान देखकर चुन्नीलाल सेठ ने बाबाजी को एक छोटा सा निज का स्वतन्त्र कारखाना निकालने में सहायता दी। इस छोटे से ही कारखाने को, नारकरजी की कर्तृत्व शक्ति से वृद्धि होते हुए उसको साम्प्रत विस्तृत स्वरूप प्राप्त हुआ।

उद्योग करने वाले व्यक्ति के लिए बीच २ में संकट तो आने वाले ही हैं, फिर भला नारकर जी इनसे किस प्रकार अछूते रह सकते थे। उन के इस छोटे से कारखाने को शुरू हुए कुछ ही दिन बीते थे, कि उनके ऊपर एक महान आपत्ति आई। आजकल बम्बई में जो हिन्दू मुसलमानों के दंगे होते हैं उनकी पहली [illegible] सन् १८६४ ई० में हुई। बाबाजी सेठ [illegible] ही व्यायाम का अभ्यास [illegible] [illegible] में आते थे। [illegible] मुसलमान [illegible] [illegible] [illegible] और वे [illegible] अवस्था में ही [illegible]

चाया गया। घर में उनकी पत्नी यमुनादेवी उसी समय प्रसूता हुई थीं। उनको यह दुःख समाचार ज्ञात होते ही जोरों से ज्वर हो आया! दस्त का लगना शुरू होगये और इसके आठवें ही दिन वह इस लोक से चल बसीं।

इस प्रकार आरम्भ में तथा इसके अनन्तर भी उनको अनेकानेक विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ा। परन्तु उनसे भयभीत न होकर अपना अंगीकृत कार्य बराबर जारी रखा। कारखाने की वृद्धि किस प्रकार से होगी, यही एक विचार उनके मस्तिष्क में सदैव घूमा करता था। अपने व्यापार का क्षेत्र आजमाने के लिए, किस स्थान पर कौन कौनसा माल होता है, किस माल की बिक्री अधिक है इत्यादि की देख भाल के निमित्त उन्होंने भारतवर्ष में दूर २ तक प्रवास किया। गुजराती भाषा पढ़ना लिखना भली भांति सीखे। इस प्रकार के प्रयत्नों से उनका कारखाना शनैः२ बढ़ता रहा। भजनी झांझ बनाने की उनकी कल्पना बहुत ही यशस्वी होने वाली प्रतीत हुई। इसके अतिरिक्त नासिक, पूना, इंदौर, अहमदाबाद, कलकत्ता, नागपुर आदि स्थानों से उनके दूसरे दूसरे माल की मांग बढ़ने लगी। अतएव सन् १९०३ ई० में तारकरजी ने बर्तन बनाने का हायड्रालिक प्रेस आदि आधुनिक यंत्र सामग्री और उसके चलाने के लिए एक ऑयल एंजिन लेकर एक बड़े परिमाण में माल की पैदायश आरम्भ करदी। आज तारकरजी के कारखाने की कीमत कितने ही हजार रुपये होगी।

श्री तारकरजी ने सन् १९२३ में बम्बई के बन्दरगाह में फ्लोटिंग वर्कशाप अर्थात् जहाज दुरुस्त करने का तैरता हुआ कारखाना ५००००) में मोल लिया। उनको, इस कारखाने में पीतल के प्याले (पत्रे) बनाने का काम आरम्भ करने की इच्छा थी, और उस कार्य का आधुनिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र कृष्णचन्द्र जी को परदेश भेजने का निश्चय किया था। इतने में एकाएक क्रूर काल ने कृष्णचन्द्र पर अपना आक्रमण किया और इस संसार से उनको सदा के लिए उठा लिया। सेठ तारकरजी और उनकी सुशील धर्मपत्नी सौभाग्यवती आनन्दीबाई के मन को अपने इस प्रिय पुत्र के निधन से जबरदस्त धक्का बैठा। अपने पुत्र के स्मरणार्थ १९२८ ई० में सेठ तारकरजी ने मढ़ाले गांव (राजपुर तालुका) की पाठशाला को १५००) दान देकर उसका नाम कृष्णचन्द्र विद्यालय रखा। दूसरे पुत्र काशीनाथ पंत अब अपने पिता के व्यवसाय में उनको सहायता पहुंचाते हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में श्री बाबाजी ने जिस प्रकार स्वप्रयत्न से श्रेष्ठ पद प्राप्त किया, उसी प्रकार उन्होंने अपना श्रेष्ठ आध्यात्मिक विकास भी किया है। मन को उन्नत बनाने तथा मनुष्य को ऐहिक और पारलौकिक सुख का मार्ग बताने के, इस जगत में सच्चे आर्यधर्म के समान दूसरा साधन नहीं—इस सद्विचार से प्रेरित होकर उन्होंने महर्षि दयानन्द का अनुयायित्व स्वीकार किया और वह आर्य समाजी सिद्धांतों

सच पूछो तो लौकिक सौख्य का सौभाग्य पैसे पर अवलम्बित है। पैसे के पलटते ही भाग्य पलट जाते हैं, राज्य उलट जाते हैं। वैभव पैसे के ढेर का नाम है। दरिद्रता पैसे का 'न आम' है। पैसा पास है तो पूछ है। पैसा नहीं तो सब छूंछ है।

पैसे का पाँसा उच्चता तथा नीचता का निर्णायक है। यदि सीधा पड़ा तो मनुष्य के दैव सीधे हैं, नहीं तो उलटते ही मनुष्य चित्त हो जाता है, और पैसे वाले 'धड़ मारा' कहकर चिल्ला उठते हैं।

× × × ×

पैसा बड़ा प्रबल है! पैसे के पास आते ही उसका पाने वाला सर्व-गुण सम्पन्न हो जाता है। गुणों का अधिष्ठाता पैसा है। भाग्य का निर्माता पैसा है। सत्कार्यों का कर्त्ता पैसा है दोषों का अपहरता पैसा है। वैभव का विधाता है, तो पैसा। दुःख का संहर्ता है, तो पैसा। पैसे की बड़ी सामर्थ्य है। अतः पैसा सबल है।

× × × ×

पैसा निर्बल है। किन्तु, ये दूर की सूझ है। अन-बूझे की बूझ है। कारण प्रत्यक्ष है। पैसे के फेर में मनुष्य का आत्मिक बल घट जाता है। सत्साहस क्षीण होजाता है। उसका मन पैसे का दास है। यदि पैसा पास है, उल्लास है। अन्यथा पैसा पास नहीं तो जी उदास है। पैसे की भूख कभी न सूखने वाला अक्षय वट का रूप है। पैसे के प्रेमी का पैसा-पराङमुख होना असम्भव है। इस लिये पैसा पोच है।

× × × ×

पैसे के प्रतिरूप अनन्त हैं। पैसे का सामुदायिक नाम धन है अथवा यों कहिये कि धन समष्टि का पैसा एक व्यष्टि है। पैसे की श्री का समूह सम्पत्ति है, जिसकी पैसे से प्रतिपत्ति है पैसे की मन मोहिनी मूर्त्ति पद्मासनस्थ है। अतएव पैसे का प्रभाव स्वस्थ है। क्योंकि पैसे का प्रकाश पूषण के समान पोषण करता है।

× × × ×

पैसे की गति चञ्चल है, इसी कारण पैसे की प्रतिष्ठित देवी चपला है। कहते हैं लक्ष्मी क्षीर सागर से उत्पन्न हुई थी। वास्तव में जन्म हुआ हो या नहीं। किन्तु इतना तो ठीक है कि दूध में श्री का वास है। श्री-शोभा है, श्री सम्पत्ति है। सम्पत्ति स्रोत का उद्गमस्थान क्षीर है, तथा उससे ही शोभायुत शरीर है। पद्मा-प्रसूति विषयक में पौराणिक-आख्यायिका कृषि प्रधान देश के लिए गो-कुल-सँरक्षण की सार्थक समर्थक है।

× × × ×

लक्ष्मी का स्वभाव चञ्चल है। कारण। पैसे की प्रकृति रचनात्मक है। पैसे वाले का चाल चलन भी बहुत करके पैसे के चलन पर निर्भर है। एक का सङ्ग पैसे की पूनरी को रुचिकर नहीं। इसलिए यह इधर से उधर दुर्वृत्त अज्ञात के समान चलती फिरती रहती है। स्वच्छन्द-विहार और वह भी प्रगति अनुसार ही उसे सुहाता है। यह स्वभाव भी जगत के क्रम

पूर्व उन्नति की थी और व्यापार वृद्धि की लालसा के कारण ही गत यूरोपीय महा-समर का बीजारोपण हुआ था और उसी से जर्मनी पिट गया पर फिर भी अपनी व्यापार शक्ति से ही वह फिर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। भारत पर अंग्रेज़ों ने व्यापार से ही विजय पाई!

आज भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, आज हमारी दशा अन्य सब देशों से गिरी हुई है, हमारी सन्तान दाने २ को तरसती है यह क्यों? इसलिये कि हमने अपना व्यापार खो दिया, हमने अपना व्यापार विदेशियों के हाथों में दे दिया। हम केवल उनके एजेण्ट अथवा दलाल रह गये। हमारे भारतमें हमारे ही हाथों से कपड़ा बनना ११५५२२१०१८) शक्कर १९१६५०५३०) दवायें ७५०६५०००) बिस्कुट ५५४८६११) ओजार का मसाला १६०६-२१६०) फल तथा तरकारी १५३५२२३१) शराब ३५२८५८३८) तम्बाकू व सिगरेट २५६१०६६०) स्टेशनरी कागज केमिकल आदि ४५८१२६७०) तेल सेण्ट आदि ७७५१०६७०) खिलौने ६२११२७८) बटन ३७६०२६०) फर्नीचर २६६८३७५) मोटर साइकिल आदि ६१६४६३४५) लोहे का सामान और औजार ६१२४७३१६८) रेलवे का सामान ४४७२८२२२०) वगैरह करोड़ों रुपयों का माल लिया। हमने विलायती व्यापारियों के एजेण्ट बनकर यह सब रुपया विदेशों को भेज दिया। हमारा स्वतंत्र व्यापार तो है ही नहीं! बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास आदि में हमारे मारवाड़ी भाई करोड़ों रुपये लगा कर व्यापार करते हैं पर वे सब हैं केवल विलायतियों के दल्ल ही! यही कारण है कि भारत की दशा दिन पर दिन खराब होती जारही है और अधोग को प्राप्त हो रहे हैं।

ज़माने की रफ्तार के साथ चलने में उन्नति हो सकती है। यह व्यापार युग है इस युग में यदि अन्य राष्ट्रों के समान बन चाहते हैं, यदि हम अपने को उन्नतिशील बना चाहते हैं, यदि हम उन्नति की दोड में अन्य राष्ट्रों का साथ पकड़ना चाहते हैं तो हमें अपना व्यापार चलाना होगा, हमें भी स्वतं व्यापारी बनना होगा, हमें भी भारतीय माल विदेशों को बाजार भर देने होंगे।

बहुत से लोग यह बात असम्भव मानते पर फ्रांस के विजयी वीर नेपोलियन का कह है कि:—'Nothing is impossible in th world' अर्थात् संसार में असम्भव कुछ नह है। यदि भारत स्वतन्त्र व्यापारी बनने के लि कमर कस ले तो यह असम्भव बात सम्भ होने में देर नहीं लग सकती।

अंग्रेज़ विद्वान् मि० ओलसवर्थ ने लिखा कि 'भारत भूमि धन की खान है। इस में उत्त कोयला, बढ़िया मिट्टी का तेल, उत्तम लोह एवं लकड़ी है जिसे देखकर विदेशियों के मुं में पानी भर आता है। सोना, चांदी, तांबा टीन तथा अन्य अनेक रत्नों की भी कमी नहं है।' मि० टी० एच० हालेण्ड लिखते हैं "भारत खनिज कार्यों में लाभकारी एवं उद्योग के लिये अपरिमित स्थान है। प्रकृति ने इस देश को सब कुछ दिया है। ये पदार्थ केवल भारत के

लिये ही पर्याप्त नहीं है बल्कि संसार भर के बाज़ारों में सुविधा के साथ अच्छे मुनाफे पर बेचे जा सकते हैं।" फिर भारत स्वतन्त्र व्यापारी क्यों नहीं बन सकता ?

मारवाड़ी भाइयो ! देशके व्यापारी बन्धुओ ! उठो और भारतीय उद्योग तथा व्यवसाय को उत्तेजना दो। जो धन विदेशी व्यापारियों का माल खरीदने में लगाते हो वही भारतीय वस्तुओं में लगाओ, भारत की वस्तुओं को विदेशी बाजारों में जाकर बेचो। दलाल बनकर मत रहो, स्वतन्त्र व्यापारी बनो, तुम्हारी इज्जत, तुम्हारा मान विदेशी बाजारों में बढ़ेगा, भारत के लालों को खाने को मिलेगा, तुम्हारे बन्धुओं के पेट भरेंगे। उस समय-आप देखेंगे कि—भारत संसार के अन्य राष्ट्रों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा है। उसकी पराधीनता की बेड़ियां कटेंगी और हम उन्नति शिखर पर पहुँचेंगे।
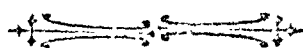
वाणिज्य ।

(खास "रसायन" की वाणिज्य संख्या के लिये)

खेती और घरु धन्धे ।

लेखक—श्रीयुत पं० रामकृष्णजी तिवारी ।

भारत वर्ष को औद्योगिक संसार में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए पाश्चात्य तरीकों का उपयोग करके अधिक मात्रा में माल तैयार करने की कोशिश करना चाहिए । यूरोप निवासियों के अनुसार भारत वासियों को लोह, फौलाद, कलयंत्र, तेजाब तथा बुनाई सम्बन्धी वस्तुयें तैयार करने के साथ २ घरु धन्धों के कार्य भी जारी करना उचित है । यह घरु धन्धे ऐसे स्थानों में खोले जावें, जहां कोई हद् तक नमूने की मांग रहती हो और जहां पर उन वस्तुओं की स्थायी रूप से मांग बनी रहे तथा जिन स्थानों में कारीगर लोगों को अपना जुदा २ हुनर बताने का मौका मिलता रहे। देश का कल्याण ज्यादा कारखानों की अपेक्षा प्रत्येक काम करनें वाले की भलाई और सुखी रहने पर निर्भर है । उद्योगी भारत का उद्धार पश्चात्य तरीकों की नकल करने से नहीं हो सकता; भारत का उद्धार भारतीय तरीकों को व्यवहार में लाने से ही हो सकता है । कुम्हार, वढ़ई, लुहार, कोष्टी, जुलाहे, अपने बाप दादों का व्यवसाय तथा अपने पड़ोसियों और रिश्तेदारों का मोह छोड़कर खुशी से कारखानों में काम करना पसंद नहीं करते हैं; न वे कारखानों के नियमों के वन्धन में रहना चाहते हैं । क्योंकि वे स्वतंत्र रहकर काम करने के आदी हो रहे हैं । कारखानों में काम करने से वे अपने कुटुम्बियों के साथ स्वतंत्रता पूर्वक रहकर अपनी जमीन नहीं जोत सकते । वे लोग कारखानों में लगातार घन्टों तक नियमों का पालन करते हुए काम करना पसंद नहीं करते हैं । कारखानों में काम करने से उनके आचरण दूषित हो जाते हैं । काम सीखने पर भी उनको कलों के साथ काम करने की दक्षता नहीं आती है । और जिससे उनको नुकसान होने का भय बना रहता है ।

जाति भेद के डर से वे पुश्तैनी पेशों के सिवाय अन्य पेशा नहीं करना चाहते । औरतें परदे की भयङ्कर कुप्रथा के कारण बाहिर काम नहीं कर सकती हैं । मजदूरों को कारखानों में कम तनख्वाह मिलने से वे शहर में रहकर अपना जीवन सुभीते के साथ निर्वाह नहीं कर सकते हैं । इसलिए वे शहर में रहना पसंद नहीं करते ।

उनमें बुद्धि कम होने से वे कलों के काम नई उन्नति नहीं बना सकते हैं। जिसके कारण नकी आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती है। श्रम वियों को अच्छे भोजन न मिलने, शहरों की लवायु अनुकूल न होने तथा शारीरिक संपत्ति राब होने से उन्हें कारखानों में काम करने में ी मेहनत होती है। जिससे उनके मन में मारी होने का अन्देशा बुरी तरह समाया ता है।

घरु धन्धा करने वाले श्रमजीवियों में से गिने श्रम जीवी कारखानों में काम करते हैं। से साफ सबूत होता है कि देश में घरु धंधों तरक्की करने के लिए काफी मौके हैं। न की जनता बहुत अधिक संख्या में देहात ों बसती है, देहाती कारीगरों को देहात में भी ग्राहक मिल सकते हैं और वे अपनी चना के अनुसार तथा उपभोक्ताओं की रुची के मुताबिक माल तैयार कर सकते हैं। ती जनता आर्थिक कठिनाईयों से तंग र अवश्य देहात छोड़कर कारखानों में ूरी करने को आती है। देहाती जनता पैसे बहुत तङ्ग रहती है। घरु धन्धे ाले देहाती लोगों में बात चीत करने की ा और व्यवहारिक ज्ञान की कमी होने के तथा जानकारी न होने से वे अपनी का को बेचते हैं। उन्हें अपने लड़कों को के नये तरीके सिखाने तथा उचित शिक्षा का अवसर नहीं मिलता है। इसके अति- बाजार भाव की जानकारी न होने तथा पूंजी का प्रबन्ध न रहने के कारण उन्हें बहुधा महाजनों की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता है। मालगुजार या आसूदा किसानों के देहात छोड़कर शहर में अपना निवास स्थान बना लेने से देहाती कारीगरों को उपभोक्ता लोगों से खुद मिलने का बहुत कम मौका मिलता है और इसलिए कारीगरों को अपने ग्राहकों की पसंदगी का हाल नहीं मालूम हो पाता। फलतः वे अपने काम में कोई नये नमूने की वस्तुएं तैयार नहीं कर सकते हैं।

देहाती कारीगरों को कच्चा माल खरीद करने तथा तैयार माल की बिक्री करने के लिए देहाती साहूकार पर निर्भर रहना पड़ता है। इस कार्य में औद्योगिक सहकारिता बड़ा काम कर सकती है। पुराने जमे हुए धन्धों में जहां चीजों की मांग का पूरा भरोसा है और जहां पर रोजगार की नई रीतियां सिखाने के लिये क्षेत्र है; वहां पर यदि सहकारी समितियों द्वारा निपुणता तथा ईमानदारी के साथ कार्य चलाया जाय तो सफलता मिलने की पूरी आशा है। कारीगरों को नई पूंजी बनाने तथा पुराने कर्ज का परिशोध करने के लिये, फिर से कर्ज लेने में माल तैयार करने की असमर्थता होने के सिवाय और कुछ नहीं रहता है। देहाती औद्योगिक जनता में सहकारी आन्दोलन तथा शिक्षा का प्रचार जैसे २ होता जायगा, उसी प्रकार घरु धन्धे करने वालों की सहकारी समितियों का काम भी सुधरता जायगा।

देहात तथा शहरों में शिक्षा का प्रचार ऐसे ढंग से होना चाहिये जिससे देहात को

उद्योगी जनता, उस शिक्षा को कार्य रूप में परिणत कर अपने जीवन निर्वाह की आवश्यक वस्तुएं जुटा सके। एवम् अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण अच्छी तरह कर सके। पाठशालाओं में पढ़ने-लिखने की शिक्षा के साथ २ औद्योगिक शिक्षा भी दीजानी चाहिये। विद्यार्थियों को उनके अपने बाप दादों के परम्परागत-पुरातनी धन्धे सीखने के लिये हर तरह से मौके देना और उत्साहित करना चाहिये। इस प्रकार की शिक्षा मिलने से वे अपने बापदादों के धन्धों में कई नई रीतियां सीख सकेंगे। और वे अपने बाल्य काल तथा यौवनावस्था के बहुमूल्य समय का भली भांति सदुपयोग कर सकेंगे। जिससे उनकी आर्थिक उन्नति होने में विशेष विलम्ब नहीं होगा।

पाठशालाएं ऐसे देहाती केन्द्रों में खोली जानी चाहियें कि जहां पर आस पास घरू धन्धे करने वाले लोग अधिक संख्या में बसते हों। तथा जहां पर दस्तकारी के कारखानों या दूसरे २ धन्धों की अधिक आवश्यकता हो। इन पाठशालाओं में सुदक्ष और अपने विषय के पूरे अनुभवी अध्यापक नियुक्त किये जाएं जो औद्योगिक कार्य अच्छी तरह सिखा सकें। पाठशाला एक वर्क-शाप (Work shop) जैसी होना चाहिये। जिसमें लोगों के काश्तकारी औजारों और हथियारों की मरम्मत भी की जावे। पाठशाला तथा वर्क-शाप का कार्य सुचारु रुप से चलने पर उससे पाठशाला के खर्च का बहुतसा भाग वसूल होने की आशा की जा सकती है। देहात में नीचे लिखे घरू धन्धे सुभीते के साथ किये जा सकते हैं:—सूत की कताई, कपड़े की बुनाई, रंगाई, ठिकाई, मोजे, गुलनन्द, आदि बुनना, चिकन काढ़ना बेलबूटे निकालना, गोटा बनाना, जेजम, गलीचे आसन आदि बनाना, तांबा, पीतल, एलुमिनियाम आदि के बर्तन तैयार करना, साधारण मिट्टी, चीनी मिट्टी, गोरा पत्थर, संगमर्मर आदि से खिलौने बनाना, लोहे के चाकू, कतरनी, छूरी, ताले, जन्जीर, आदि बनाना, लकड़ी से कुर्सी, टेबिल, अलमारी, बैंच, तिपाई, चौखटे, संदूक, खिलौने इत्यादि बनाना बेत का सामान बनाना, केनवास की चीजें बनाना, हड्डी, सींग, और सीप के बटन तैयार करना, कंघी बनाना, स्लेट, पेन्सिल, स्याही निब, होल्डर, आदि बनाना, चमड़े के सन्दूक, बेग तथा जूते बनाना, नारियल की जटा, सन या अम्बाड़ी से रस्से बनाना, खजूर के पत्तों की चटाई बिनना, बांस का सामान जैसे टोकरी वगैरह बनाना, साबुन बनाना, टाट पट्टी बनाना, रबर की मुहरें तैयार करना, देशी वाद्य यन्त्र बनाना, मोमबत्ती, ऊदबत्ती, बीड़ी, हाथ में लेने की छड़ी, लाख के खिलौने तथा कार्डबोर्ड की सन्दूकें बनाना, आदि २ धन्धे बड़ी सुगमता से किये जा सकते हैं।

दुर्भिक्ष कमीशन ने सलाह दी थी कि खेतीहर लोगों को केवल खेती पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिये। वरन उनको अपनी जीविका के लिये दूसरे २ धन्धों को अपनाना भी उचित है। जिससे अकाल के समय वे दुखी और दरिद्र न होने पावेंगे। उद्योग-धन्धों के साथ २

खेती की भी उन्नति होना परम आवश्यक है। जिससे कपास तथा अनाज प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हो सकें। कपास तथा अनाज की अच्छी उपज होने से किसान मजदूरों को कपड़ा बुनने के लिये कपास तथा खाने के लिये अनाज उनकी आवश्यकता के अनुसार दे सकते हैं और उन्हें अपनी उपज की अच्छी कीमत मिल सकती है। उपज की अच्छी आमदनी मिलने से किसान लोग अपने जीवन निर्वाह की वस्तुयें सरलता से खरीद कर सकते हैं। और जब चीजों की अधिक मांग होगी तब उद्योग धन्धे भी ज्यादा बढ़ेंगे। यदि किसान गरीब और दुखी रहें तो धन्धा करने वालों का तैयार माल वे लोग खरीद नहीं कर सकेंगे। फलतः माल की मांग कम होजायेगी। सब धन्धे वाले इच्छानुसार अधिक माल तैयार नहीं करेंगे और न उनको काफी आमदनी ही होगी। खेती की उन्नति होने पर औजारों या कलों की ज्यादा मांग होगी। और तभी औजारों की मरम्मत करने वालों की आवश्यकता पड़ेगी, जिससे उद्योग धन्धे और भी बढ़ेंगे।

(घेरलू उद्यम)
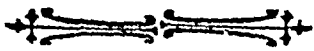
(१)

बर्फ तैयार करने की सरल प्रक्रिया—

किसी भी एक टीन या लकड़ी की बाल्टी में दो तृतीयांश पानी भर कर उसमें तीन औंस वजन का ग्लावर्स साल्ट (Glaubers sault or sodium sulphate) डालकर बाद में दो एक औंस हाईड्रोक्लोरिक एसिड मिश्रित करो, तदुपरान्त एक दूसरी छोटी बालटी पानी से भरकर उसका मुंह ढांप दो और उसे उपरोक्त बड़ी बाल्टी के बीच में डुबाकर रखो एवं दोनों बाल्टियों को कम्बल या पुरानी पश्मी अलवान अथवा कारपैट से मजबूती के साथ कसकर बांध दो कई मिनिट बाद छोटी बाल्टी में पानी जमकर कठिन बर्फ के रूप में परिणत हो जायगा।

(२)

पुस्तकों से कीटाणु निवारण करना—

कुछ न्यापथालिन कपूर मिश्रित तारपीन के तेल में भिगोकर पुस्तकों के पीछे रखकर अलमारी बन्द कर देने से कीटाणुओं का उपद्रव सहज ही में निवारण हो जाता है। प्रति दो मास या तीन मास बाद इसी प्रकार नया न्यापथालिन और कपूर मिश्रित तारपीन देना चाहिये। इस प्रयोग से किताबों में कीड़े नहीं लगने पाते।

(३)

कपड़े धोने का सहज उपाय—

डेढ़ पाव साबुन और कच्चा सुहागा इन दोनों को मिला कर धोने से सूती कपड़ा अत्यन्त स्वच्छ निकलता है और इससे आधा साबुन खर्च होता है।

(४)

दीर्घकाल तक दूध की रक्षा करना—

दूध को शक्कर के साथ गरम करके ठीक खीर के समान ढेला तैयार हो जाने पर उसे एयर टाईट (Air tight) करके रखने से वह प्राय एक वर्ष तक ठीक रहता है। व्यवहार करते समय उसमें थोड़ा पानी मिला देने से वह बिलकुल दुग्ध के तादृश हो जाता है।

(५)

पुराना स्क्रू खोलने के लिये—

अनेक समय स्क्रू में मोरचा लग जाने से वह लकड़ी में इतनी दृढ़ता के साथ बैठ जाता है कि हजार चेष्टा करने पर भी वह स्क्रू ड्राइवर

से किसी भी तरह नहीं खुलता ऐसे समय में यदि कार्क के चारों तरफ थोड़ा प्यारा फिन् तेल या औषधार्थ व्यवहृत लिक्विड प्यारा फिन् लगा दिया जावे तो १०—१५ मिनट की अपेक्षा के बाद वह सहज ही में खोला जा सकता है

(६)

खटाई दार फलों से खटाई, अलग करने की विधि—

जिस फल से खटाई निकालना हो उसे चूने के पानी में डालदें । बाद दो घंटे के निकाल डालें, तो उस से खटाई बिलकुल निकल जायगी और उसको फिर फिटकरी के पानी में धोडालने से बिलकुल साफ हो जाती है ।

(७)

दूध से पानी पृथक करना—

एक औंस या ढाई तोला दूध में १०, १५ बून्द नाइट्रिक एसिड डालने से दूध में से पानी छूट कर अलग हो जायगा ।

(८)

लोहे की वस्तुओं की चमक कायम रखना

लोहे की चीजों की चमक कायम रखना हो तो उन पर अंग्रेजी मोमी वार्निश का एक पुचाड़ा दे देने से वे महीनों मैली न होंगी ।

(९)

पानी ठंडा करने की विधि ।

नौसादर और शोरा बराबर बराबर लेकर एक कमोरे में थोड़े पानी में मिलाओ । उस में भरी हुई सुराही या बोतल खूब कड़ी डाट लगाकर पानी वाले कमोरे में डालदो और कमोरे का मुँह कम्बल से ढांक दो बस सुराही वाला पानी खूब ठंडा हो जायगा ।

(१०)

मोती स्वच्छ करने की विधि ।

मोतियों को चौथाई घण्टे तक गाय के दूध में जिस में कुछ पानी (Cheese) अथवा साबुन मिलाई गई हो उबालो और निकाल कर ताज़े पानी से धो डालो बाद में स्वच्छ सफेद कपड़े से सुखा लो ।

(११)

दूसरी विधि—मोतियों को लगभग दो मिनिट तक गर्म तेज शराब के सिरके (Wine Vinegar) या अधिक पतले किये हुए तेजाब (Sulphuric acid) में डालदो, और दो मिनिट बाद पानी से साफ करो । मोती तेजाब में अधिक देर तक न रहें ।

(१२)

स्टील का परिष्कार करने की ।

तीन भाग (Vinegar) में एक भाग [illegible] का रस मिलाकर इसके द्वारा [illegible] स्टील साफ किया जाता है । [illegible] स्टील को [illegible] बाद [illegible] कुछ [illegible] बाद में पालिश करना उचित है ।

(१३)

मोरचा उठानें का उपाय ।

जिस स्थान पर मोरचा लग गया हो वहां पर नमक और मौम एकत्र करके कुछ क्षण तक घिसते रहने से मोरचा उठ जाता है ।

(१४)

रंग को हुई जगह से दुर्गन्ध हटाना ।

नये रंग किये हुए घर में रंग की खूब दुर्गन्ध रहती है प्याज के कुछ टुकड़े लेकर उनको चीर कर कुछ घंटे रखने से दुर्गन्ध चली जाती है ।

(१५)

स्याही का दाग छुड़ाना ।

स्याही का दाग अगर ताजा है, तो कपड़े से छुटाने के लिये यह तरकीब बहुत अच्छी है । किसी चौड़े मुंह के बर्तन के ऊपर उस स्थान को जहां पर स्याही लगी है खूब कसकर बांध देना चाहिये और तब एक टमाटर (विलायती बैंगन) का टुकड़ा उस जगह धीरे २ इस तरह रगड़ना चाहिये कि उसका रस वहां अच्छी तरह लग जाय। कुछ देर लगा रहने देकर गरम पानी उस जगह डालने से दाग छूट जायगा । दाग अगर बहुत पुराना हो, तो खूब गरम पानी में थोड़ा ओग्जालिक एसिड मिला कर डालने से दाग छूट जायगा । कभी २ ऐसा करने से अगर रंगीन कपड़ा है तो उस का रंग उड़ जाता है । पानी में थोड़ा सिरका मिलाकर उसमें धोने से प्रायः रंग पुनः ठीक हो जाता है ।

(१६)

रेशमी कपड़े से दाग उठाना ।

एक शीशी में एक औंस तारपीन का तेल और दो अंश एसेंस आफ लैमन (नीबू का स्वरस) एकत्र मिलाकर रखे रेशम में जहां दाग लगा हो उस स्थान में इसे लगा देवे और बाद में नरम कपड़े के टुकड़े से धीरे २ साफ करे बस दाग उठ जायगा ।

(१७)

दाग छुड़ाना ।

सादे कपड़े पर किसी भी किसम का दाग लग जाने से उसका उठाना कठिन हो जाता है दाग निकालने के लिये सहज उपाय यह है कि दाग के ऊपर किंचित ब्लेचिंग पाउडर मलकर कुछ दिन रख दिया जाय और बाद में दाग को नीबू के टुकड़े से मलने पर कठिन से कठिन दाग भी धीरे धीरे साफ निकल जाता है ।

(१८)

कांच के ऊपर लिखनें की प्रणाली ।

कांच पर कुछ भी लिखने और अंकि[illegible] करने के लिये हाइड्रोक्लोरिक एसिड व्यवहा[illegible] करना अति उत्तम है । जिस कांचके ऊ[illegible] लिखा जावे पहिले उसको गरम करके मौम [illegible] एक पतली तह अथवा प्याराफिन से पथ दे[illegible] चाहिए ठण्डा होने पर और कड़ा होजाने [illegible] किसी मजबूत पैने कांटे से मौम काट कर [illegible] कुछ लिखना हो लिख डालें और उस पर [illegible] ड्रोक्लोरिक एसिड डालदें. चार पांच मि[illegible]

बाद मोम को काटकर निकाल देने से कांच पर लिखा हुआ साफ दिखाई देने लगता है।

(१६)

कांच पर रंग से लिखने की प्रणाली।

कांच पर रंग से लिखने के लिये तीसी के तेल (Linseed oil) में इच्छानुसार कोई भी रङ्ग मिलाकर लिखें। तीन चार दिन वैसा ही लिखकर रख छोड़ने से लिखा हुआ पक्का हो जायगा फिर कुछ ज्यादा तेल में रङ्ग को हलका करके लिखने से कांच स्वच्छ होजाता है। हाईड्रोक्लोरिक एसिड से कांच के ऊपर लिखने में कांच की स्वच्छता बिन्दुमात्र भी नष्ट नहीं होती। कांच की जिस वस्तु पर लिखना हो पहिले उस पर मोम का प्रलेप करो इसके बाद किसी लोह यंत्र के द्वारा जो कुछ लिखना हो लिख डालो इस बात पर लक्ष रखो कि मोम कहीं उठ न जाय इसके बाद उसके ऊपर हाईड्रोक्लोरिक एसिड आस्ते २ लगाते जाओ। एसिड देने मात्र से ही कांच पर क्रिया आरम्भ हो जायगी तत्पश्चात् जल के द्वारा एसिड धो डालने से मोम उठाते ही लिखा हुआ दिखने लगेगा यह लिखावट स्थायी (Permanent) होगा।

(२०)

लोहे की वस्तुओं के ऊपर नाम खोदने का उपाय

—पहिले जिस स्थान में नाम खोदना हो उस स्थान को मोम की तह से आवृत करदो। इसके बाद सूई या निब [illegible] जातीय किसी वस्तु के सूक्ष्म अग्रभाग द्वारा जो कुछ लिखना हो वह सतर्कता से मोम के ऊपर खोद दो सूई या निब चलाते समय लिखी हुई जगह पर किसी तरह मोम न उठ जाय इस पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। इसके बाद खूब तीव्र नाइट्रिक एसिड थोड़ी सी लेकर खोदी हुई जगह पर डालो। फिर कुछ थोड़ा नमक इस एसिड के ऊपर छिड़क कर पन्द्रह मिनट पर्यन्त अपेक्षा करो उपरान्त लोहे की वस्तु पर से मोम का आवरण अलग करदो इसके साथ ही साथ देखोगे कि आप का नाम अथवा चाही हुई छाप उसमें साफ निकल आई है।

(२१)

पांच मिनट में दही जमाना।

दूध में कुछ नींबू का रस मिलाने से दूध पांच मिनट में जम कर दही [illegible] जाता है।

(२२)

दूध बढ़ाने का उपाय।

[illegible]

(२३)

गाय का दूध बढ़ाने के लिये।

[illegible]

सबको मिलाकर सन्ध्या समय रोज खिलाने से दूध बढ़ता है।

(२४)

घूंघर वाले बाल बनाने का उपाय।

चौदह औंस पानी में तीन ड्राम गम ट्रेगाकौंथत, चौबीस घण्टा तक भिगोवो फिर कपड़ा से छानकर उसमें ६ औंस ओवर प्रूफ स्प्रिट मिलावें और कागवाली बोतल में रखें इसे बालों में लगाने से बाल घूंघराले रहते हैं।

(२५)

पत्थर पर लिखने की स्याही।

ट्रिनिडाड स्कारम और तारपीन का तेल सम भाग मिश्रित करके उपयोग में लावें।

(२६)

काली रोशनाई बनाना।

इसके बनाने की सबसे अच्छी और सीधी तरकीब यह है कि माजूफल के काढ़े में थोड़ी गोंद और कसीस मिलादो जरासा कारबोलिक एसिड भी मिला देने से रोशनाई बदबू न करेगी और उसमें गुट्टल भी न पड़ेंगे।

(२७)

कांच और चीनी के बर्तन पर लिखनें को काली स्याही—दस तोले काजल, चालीस तोले मोम और दस तोले चर्बी सबको मिलाकर किसी भारी चीज से दबाकर पेन्सिल के रूप में बनालो; बर्तनों पर जोर से दबाव देकर लिखना चाहिए।

(२८)

दीमक और चींटियां नष्ट करने का उपाय—अलोज़ आधा पौंड, पुटासियम कार्बोनेट एक औंस, क्रियोसोट एक औंस, पानी एक गैलन इन सब द्रव्यों को एकत्रित कर दीमक और चींटियों की जगह पर छींटे मारें बस इस प्रयोग से दीमक और चींटियों का उत्पात नष्ट होजाता है।

(२९)

खटमल की धूणी।

भांग के धूएं से खटमल बेहोश हो जाते हैं। तूतिया के पानी से दूर भागते हैं। मिट्टी के तेल से भी दूर भागते हैं। फिटकरी मिले हुए गरम पानी को खटमलों वाली चारपाई पर विलेप करने से सब मर जांयगे।

(३०)

मक्खीमार कागज बनाना।

तारपीन के तेल को लोहे की कढ़ाई में रखकर आग पर उसको इतना उत्तप्त करें कि वह गाढ़ा होजाय तदुपरान्त नीचे निकाल कर बुरुश या कूची से 'मनीला' कागज पर पोत दें और उसे कई टुकड़ों में विभाजित करलें यह टुकड़े जहां मक्खियों का ज्यादा आतंक हो लटका देने से मक्खियां उस पर बैठते ही फंस जाती हैं। यह कागज़ कई महीनों तक उपयोग में लाया जा सकता है।

(३१)

चूहों का उपद्रव निवारण करना।

घर में जिस स्थान पर चूहों की अधिक दौड़ धूप हो उस स्थान पर कास्टिक को पानी में भिगोकर छिड़क देने से वे पास तक नहीं फटकेंगे यदि आये भी तो उनके पैरों में जलन होने लग जायगी।

(३२)

साल भर तक आलू रखने का उपाय।

एक मिट्टी की नांद को गरम पानी से भर कर उसमें अच्छे ताजे आलू जितने डूब सकें डुबादो थोड़ी देर उपरांत उन्हें निकाल कर सुखालो और किसी ठण्डे स्थान में रखदो ऐसा करने से आलू साल भर तक रक्खे रहेंगे और खराब नहीं होंगे।

(३३)

नींबू से अधिक रस निकालने की विधि

नींबू निचोड़ने के पूर्व उसे आग पर रख कर गरम कर डालो बस केवल इसी क्रिया से रस की दुगुनी मात्रा हो जायगी।

(३४)

असली शहद की परीक्षा।

शहद की एक बूंद को सिआही से बने हुए [illegible] में [illegible] यदि बूंद [illegible] [illegible] [illegible] फूटे नहीं तो समझो कि वह [illegible] है।

उद्योग धन्धे।

कपड़ा धोने का साबुन बनाना।

सम्प्रति गांवों खेड़ों में कपड़े धोने के साबुन का बहुत व्यवहार देखा जाता है। प्रायः १०-१५ वर्ष पूर्व इसका इतना अधिक प्रचार नहीं था। पहिले कपड़े धोने की आवश्यकता होने पर लोग सोडा और सज्जी मिट्टी लेकर साफ कर डालते थे। परन्तु जबसे साबुन का प्रचार वर्धित हुआ तबसे गरीब से गरीब मनुष्य और साधारण से साधारण लोग भी साबुन व्यवहार करने लगे। अब आज कल गांवों खेड़ों में भी शहरों की भांति साबुन की मांग बहुत बढ़ती जाती है। यद्यपि यह [illegible]

सोडा और सज्जी मिट्टी का व्यवहार।

कपड़े धोने का कम कीमती सावुन बनाने के लिये सजी मिट्टी उपयोग में लाई जाती है और उत्तम सावुन की तैयारी में काष्टिक सोडा व्यवहृत होता है। यह सोडा अनेक कम्पनियों के यहां से कई तरह का आता है। परन्तु हम कपड़े धोने का उत्तम सावुन बनाने के लिये "ब्रूणार मंड" कंपनी का "चांद मार" का सोडा सबसे अच्छा समझते हैं। यह सोडा पानी में पड़ते ही गर्मी उत्पन्न करता है। अतएव इसको पानी में फोड़ते समय हाथों का बचाव रखना चाहिये; नहीं तो इसके स्पर्श से चमड़े पर फुन्सियां निकल आती हैं। सोडा पानी में मिश्रित करते ही उसमें उत्ताप बढ़ने लग जाता है इस लिये उसका तुरन्त व्यवहार करना निशिद्ध है इस मिश्रण को जिसे हम "काष्टिक मिक्चर" नाम दे सकते हैं कम से कम छः घन्टे के लिये वैसा ही रख छोड़ना चाहिये।

विशेष द्रष्टव्य—काष्टिक सोडा वा उपरोक्त सोडा मिश्रित जल यदि दैवयोग से हाथ पांव में लग जाय तो उन स्थानों पर तत्क्षणात् नारियल का तैल लगा देने से यन्त्रणा दूर हो जाती है इस का एक मात्र यही उपाय है।

अनुष्ठानिक द्रव्य तालिका।

(१) एक सेर काष्टिक मिक्चर, (२) एक सेर पानी और (३) दो सेर महुवा का तेल।

बनाने की रीति—उपरोक्त सब चीजें एक लोहे की कढ़ाई में एकत्रित कर अग्नि से उत्ताप देने और एक कर्छु से चलाते जाने पर सावुन जम जायगा। इस समय यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उपरोक्त द्रव्यों के मिश्रण को उत्ताप देते समय हलकी और मंदी आंच देना चाहिये नहीं तो सावुन ईंट के समान कड़ा और मजबूत हो जाता है इसलिये सावुन गाढ़ा होते ही कढ़ाही आग पर से नीचे निकाल कर सावुन को किसी दूसरे ठंडे पात्र में ढाल रखना आवश्यक है। अग्नि पर से उतार कर रखने और शीतल हो जाने पर देखा जायगा कि सावुन जम गया है।

खर्च।

एक सेर काष्टिक मिक्चर	॥
दो सेर महुवा का तेल	१)
लकड़ी कोयला और अन्य चीजों के लिये	‌-)
योग	१॥-)

इसमें यही १॥-) एक रुपया नौ आने का खर्च पड़ता है और इसने अल्प व्यय से ५ सेर सावुन तैयार होगा। लोग कपड़े धोने का जो सावुन एक आना या दो आना के हिसाब से खरीद करते हैं उस में एक सेर सावुन के लिये ॥) से ॥।-) तक खर्च पड़ता है और इस हिसाब से देखा जाय तो एक सेर सावुन के लिये केवल मात्र ।-) का खर्च होता है। वैसे अनुष्ठानिक द्रव्य आदि फुटकर खरीद करने से मूल्य कुछ

ज्यादा लगता है नहीं तो उक्त द्रव्यादि सुविधा के साथ अधिक परिमाण में खरीदी जांय तो प्रत्येक सेर साबुन के लिये ।) से ज्यादा खर्च नहीं पड़ सकता ।

जो लोग कास्टिक सोडा और महुवा का तेल कीमती होने के कारण नहीं खरीद सकते अथवा इसमें कुछ असुविधा समझते हैं उनके लिये नीचे साबुन बनाने की एक दूसरी विधि लिखी जाती है:—

अनुष्ठानिक द्रव्य तालिका ।

(१) आधसेर सज्जी मिट्टी (२) एक पाव नारियल का तेल (३) ढाई सेर पानी और (४) कली (चूना) एक छटांक ।

बनाने की रीति ।

उपरोक्त द्रव्यादि एकत्रित करके एक पात्र में रख कर क्रमानुसार सिद्ध करना चाहिये । पात्र लोहा, पीतल अथवा तांबे का होना आवश्यक है पात्र को आग पर रखते ही उसे भलीभांति ढक्कन से बन्द कर दें, जब " खड़ खड़ खड़ " शब्द होने लगे तब पात्र को आग पर से निकाल लें और ढक्कन खोलकर पात्र में क्रम २ से पानी डालता जाय यहां तक कि पात्र पानी से परिपूर्ण हो जाय और उससे पानी बाहिर निकलने लगे । इस क्रिया से साबुन के ऊपर आया हुआ झाग और अनावश्यकीय अंश उसके साथ बाहिर निकल जायगा बाद में ठंडा होने पर छुरी से [illegible] आकार में काट लेवें ।

साबुन तैयार करने के लिये उपयोग में लाया हुआ बर्तन भोजनादि बनाने के लिये व्यवहार में लाना वर्जित है क्योंकि वह अच्छी तरह परिष्कृत नहीं किया जा सकता और उसका परिष्कार न होने से खाद्य द्रव्य के विषाक्त हो जाने की सम्भावना रहती है ।

खर्च——

आध सेर सज्जी मिट्टी =)
एक पाव नारियल का तेल ≡)
लकड़ी कोयला कलई इत्यादि =)

योग ।=)

इसमें यहां केवल ।=) पांच आना खर्च होंगे परन्तु इतना कम मूल्य होने पर भी प्रायः डेढ़ सेर साबुन तैयार हो जायगा । सज्जी माटी स्थान भेद से कहीं कहीं =) दो आने सेर से लेकर ≡) तीन आने सेर तक बिकती है । अतएव मोटे हिसाब से आध सेर सज्जी मिट्टी की कीमत =) दो आना भी रक्खी जाय तो पांच आना की जगह ।=) [illegible] आने पड़ता है परन्तु ।=) में डेढ़ सेर साबुन तैयार होना क्या किसी प्रकार कम खुशी की बात है !

थोड़ा कठिन परिश्रम और ध्यान करने से हमारे ग्रामीण भाइयों का काम बहुत कुछ [illegible] हो जायगा । आशा है कि पाठक इन [illegible] उपायों से लाभ उठाने की चेष्टा करेंगे ।

स्वच्छ साबुन प्रस्तुत करने का उपाय ।

[illegible]

वा Spirit) शक्कर का पानी (Sugar-solution), सोडा का पानी Solution of Sodium carbonate), इत्यादि द्रव्यों की आवश्यक्ता होती है। तथापि शक्कर और सोडा मिश्रित स्वच्छ साबुन (Transparent soap) काल क्रम से खराब होजाता है। बहुधा बरसात के दिनों में इसमें गीलापन आने लगता है, इसलिए उत्तम ट्रान्सपोरेंट साबुन बनाने के निमित्त केवल ग्लिसरिन और स्प्रिट का व्यौहार करना ही उचित है।

स्वच्छ साबुन प्रस्तुत करने को निम्नलिखित बातों के ऊपर विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(१) तेल, चर्बी और काष्टिक सोडा खूब स्वच्छ करने के बाद काम में लाया जावे। तेल और चर्बी ठीक तरह से गरम करके दो तीन बार छान ले। इसी तरह काष्टिक सोडा को भी गरम करने के बाद शीघ्रता से किसी पतले कपड़े की सहायता से छान लेने की आवश्यक्ता है। कपड़े के द्वारा काम न होने पर खूब महीन Glass wool द्वारा सोडा साफ कर लेना युक्ति युक्त है।

(२) सब तेल और अन्य द्रव्य जिससे पूर्णतः साबुन में परिणित हो जांय इसके प्रति लक्ष्य रक्खे, यदि स्वच्छ साबुन में तेल का भाग ज्यादा रहा तो उससे साबुन की स्वच्छता म्लान हो जायगी।

(३) ट्रान्सपारेंट साबुन बनाने को एक water bath का भी प्रबन्ध कर लिया जावे। साधारण खुले हुए चूल्हे पर साबुन बनाने से स्प्रिट का भाग हवा में उड़ जाता है।

(४) स्वच्छ साबुन तैयार करते समय उसमें काष्टिक सोडा का भाग कुछ अधिक रक्खे बीच २ में ढक्कन निकालकर काष्टिक सोडे के तारतम्य की भी परीक्षा करता जाय। परिपक्व साबुन में सदैव काष्टिक सोडा की गर्मी Burning and biting taste of caustic soda रहना आवश्यक है।

(५) साबुन पक जाने पर उसे शीघ्रता से जमा लेवे। स्वच्छ साबुन जमाने के लिए कारखानों में एक प्रकार के टीन की चुंगी रहती है उसमें चारों तरफ पानी के बहाव का प्रबन्ध रहता है जिससे साबुन को जल्दी जमाने में कठिनाई नहीं पड़ती।

(६) स्वच्छ साबुन को रंगीन करने के लिए उसमें "क्योरामल" का प्रयोग करना उचित है। यदि क्योरामल न मिले तो "ब्राउन-सोप" नामक साबुन का रंग थोड़े पानी के साथ मिलाकर साबुन में छोड़ देवे। स्प्रिट के साथ रंग मिलकर साबुन में प्रयोग करना भी अनुचित नहीं है।

स्वच्छ साबुन तैयार करने के नियम

समस्त तेल आदि को ५० भाग काष्टिक सोडा द्वारा पाक करे। इसके लिये ३४-३५ डिग्री की तेजी तक का सोडा साल्यूशन व्यवहार में ला सकते हैं। दो तीन घंटा बाद जब तेल समूह साबुन में परिणित हो जाय तब साबुन से पूर्ण पात्र को 'वाटर बाथ' के ऊपर दवा कर उसमें फीसदी २० भाग स्पिरिट और फी सदी ७ भाग ग्लिसरिन डालदे। और पात्र

वा Spirit) शक्कर का पानी (Sugar-solution),सोडा का पानी Solution of Sodium carbonate), इत्यादि द्रव्यों की आवश्यक्ता होती है। तथापि शक्कर और सोडा मिश्रित स्वच्छ साबुन (*Transparent soap*) काल क्रम से खराब होजाता है। बहुधा बरसात के दिनों में इसमें गीलापन आने लगता है, इसलिए उत्तम ट्रान्सपोरेंट साबुन बनाने के निमित्त केवल ग्लिसरिन और स्प्रिट का व्यौहार करना ही उचित है।

स्वच्छ साबुन प्रस्तुत करने को निम्नलिखित बातों के ऊपर विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(१) तेल, चर्बी और काष्टिक सोडा खूब स्वच्छ करने के बाद काम में लाया जावे। तेल और चर्बी ठीक तरह से गरम करके दो तीन बार छान ले। इसी तरह काष्टिक सोडा को भी गरम करने के बाद शीघ्रता से किसी पतले कपड़े की सहायता से छान लेने की आवश्यक्ता है। कपड़े के द्वारा काम न होने पर खूब महीन Glass wool द्वारा सोडा साफ कर लेना युक्ति युक्त है।

(२) सब तेल और अन्य द्रव्य जिससे पूर्णतः साबुन में परिणित हो जांय इसके प्रति लक्ष्य रक्खे, यदि स्वच्छ साबुन में तेल का भाग ज्यादा रहा तो उससे साबुन की स्वच्छता म्लान् हो जायगी।

(३) ट्रान्सपारेण्ट साबुन बनाने को एक water bath का भी प्रवन्ध कर लिया जावे। साधारण खुले हुए चूल्हे पर साबुन बनाने से स्प्रिट का भाग हवा में उड़ जाता है।

(४) स्वच्छ साबुन तैयार करते समय उसमें काष्टिक सोडा का भाग कुछ अधिक रक्खे बीच २ में ढक्कन निकालकर काष्टिक सोडे के तारतम्य की भी परीक्षा करता जाय। परिपक्व साबुन में सदैव काष्टिक सोडा की गर्मी Burning and biting taste of caustic soda रहना आवश्यक है।

(५) साबुन पक जाने पर उसे शीघ्रता से जमा लेवे। स्वच्छ साबुन जमाने के लिए कारखानों में एक प्रकार के टीन की चुंगी रहती है उसमें चारों तरफ पानी के बहाव का प्रवन्ध रहता है जिससे साबुन को जल्दी जमाने में कठिनाई नहीं पड़ती।

(६) स्वच्छ साबुन को रंगीन करने के लिए उसमें "क्योरामल" का प्रयोग करना उचित है। यदि क्योरामल न मिले तो "ब्राउन-सोप" नामक साबुन का रंग थोड़े पानी के साथ मिलाकर साबुन में छोड़ देवे। स्प्रिट के साथ रंग मिलकर साबुन में प्रयोग करना भी अनुचित नहीं है।

स्वच्छ साबुन तैयार करने के नियम

समस्त तेल आदि को ५० भाग काष्टिक सोडा द्वारा पाक करे। इसके लिये ३४-३५ डिग्री की तेजी तक का सोडा साल्यूशन व्यवहार में ला सकते हैं। दो तीन घंटा बाद जब तेल समूह साबुन में परिणित हो जाय तब साबुन से पूर्ण पात्र को 'वाटर बाथ' के ऊपर दबा कर उसमें फीसदी २० भाग स्पिरिट और फी सदी ७ भाग ग्लिसरिन डालदे। और पात्र

लेवेण्डर— २० सि, सि,
दालचिनी का तेल— ५ ,, ,,
कारवे का तेल— १० ,, ,,
आरवेना तेल— १० ,, ,,
मुश्क टिंचर— ५ ,, ,,
यूनोन रेशिडियू—
[Ionone Reeidue] ५ ,, ,,
[३० सि, सि,=१ औंस]

पात्र को वाटर बाथ पर से निकालकर कुछ देर ठण्डा करने के बाद उसमें २ औंस सुगन्ध मिलावे।

सस्ता ट्रान्सपारेण्ट साबुन बनाने के लिए ग्लिसरिन को एक बार ही छोड़ देना पड़ेगा। और शुद्ध स्पिरिट के बदले में मिथिलीटेड स्पिरिट व्यवहार करना पड़ेगी। फी सैंकड़ा ३० भाग शक्कर और सोडा का पानी सामान्य जल में ब्राउन रङ्ग और प्रायः दो औंस सुगन्ध मिलाकर पहिले की भांति ५, ६ घंटा तक गरम करे और २४ घंटे के लिए ढांक कर रख दे। स्वच्छ और उत्तम साबुन बनाने की यही विधियां हैं। यद्यपि इनमें खर्चे की अधिकता होने से जनसाधारण इन्हें प्रयोग में नहीं ला सकते; परन्तु कारखानेदार और व्यापारियों के लिए यह रीतियां विशेष उपयोगी हैं।

लोम नाशक साबुन तैयार करने की विधि।

सर्व साधारण के लाभ के लिये ऊपर साधारण साबुन और उत्तम स्वच्छ साबुन बनाने की विधियों का उल्लेख किया गया है; अब हम नीचे लोम नाशक साबुन बनाने का सरल से सरल उपाय लिखते हैं। हमारा विश्वास है कि इस साबुन के द्वारा सुदूर ग्रामों में रहते हुए भी निकटवर्ती नगरों के व्यापरियों से लेन देन का प्रबन्ध कर लेने पर कोई भी व्यक्ति तीस, चालीस रुपया मासिक का रोजगार सहज में कर सकता है।

साबुन के कतरन अर्थात् साबुन के छोटे २ टुकड़ों से लोमनाशक साबुन तैयार किया जाता है। इसके लिए कल यन्त्र न होने पर भी काम चला सकते हैं। इसकी तैयारी के लिए जो वस्तुएं आवश्यक हैं वे प्रायः सब जगह सुभीते के साथ मिलती हैं।

साबुन का कतरन सोप फेक्टरियों एवं देशी कारखानों में फी सेर पांच आना से लेकर आठ आना सेर तक बिकता है। अनुमान से ५) मूल धन लेकर इसका व्यवसाय उठाया जा सकता है। इस व्यवसाय को आरम्भ करने के लिए जिन २ वस्तुओं की आवश्यका है वे निम्न प्रकार हैं—

साबुन का कतरन—एक छटांक
ष्टार्च पाउडर—तीन ,,
वेरियम सल्फाइड—दो ,,

प्रयोजन होने पर इस तोल को छटांक के बदले में सेर २ के हिसाब से लेते हैं।

बनाने की विधि—पहिले सामान्य जल में साबुन के कतरन को घोलकर एक स्वच्छ कढ़ाई में आग के ऊपर चढ़ावे। और जिसमें कतरन उफान आने पर बाहिर न निकल

ही उठ जायगा। तब प्रचुर परिमाण में पानी लेकर उस को अच्छे प्रकार से धो डालना चाहिये।

(२) संगमर्मर पत्थर के ऊपर दाग लग जाने पर, उसके जिस अन्श में दाग पड़ गया हो उस के समस्त अन्श को प्लास्टर आफ प्यारिस से मथ देना चाहिए। कुछ क्षण उपरान्त वह आपसे सूख जायगा। तब बुरुश की सहायता से प्लास्टर आफ प्यारिस को निकाल देवे। इस क्रिया से दाग साफ उठ जाते हैं।

(३) दो भाग सोडा, एक भाग प्यूमिस-स्टोन का चूर्ण और एक भाग चाक मिट्टी का चूर्ण इन सबको एकत्र मिश्रत करके संगमर्मर पत्थर पर लगे हुए विभिन्न प्रकार के दागों पर लगाने से दाग निकल जाते हैं। पहिले उपरोक्त वस्तुएं किसी सूक्ष्म छलनी द्वारा अच्छी तरह छान लेना चाहिए। बाद में उनको परिमित पानी में घोलकर रख देवे। इस मिश्रण को जहां तक हो सके गाढ़ा रखे और एक ब्रुश लेकर इस मिश्रण को पत्थर पर घिसे। थोड़ी देर बाद में सब दाग आसानी से निकल जांयगे। फिर पत्थर को सावुन और पानी से धोकर सूखने को रख देवे।

(४) सूक्ष्म प्यूमिस स्टोन चूर्ण, चाक मिट्टी का चूर्ण, (Soft soap) सावुन के साथ मिलाकर संगमर्मर पत्थर साफ करने के लिए उत्तम 'पेण्ट" तैयार किया जाता है। एक टुकड़ा पशमी कपड़े का लेकर उसको उक्त मिश्रण में डुबो लेवे और उसको सावधानी के साथ पत्थर पर घिसे। दाग उठ जाने पर संगमर्मर पत्थर को सावुन के पानी से धो डाले। कहने की आवश्यक्ता नहीं कि एक बार समस्त दाग न उठने पर पुनर्वार इसी पद्धति का अवलम्बन करना उचित है।

(५) पत्थर में जिन २ स्थानों पर दाग लगे हों, उन स्थानों पर थोड़ा सलफ्यूरिक एसिड लगादो। बाद में एक नरम कपड़े के टुकड़े से उस पर धीरे २ घिसो। कई मिनिट बाद में सब दाग उठ जायेंगे।

(६) संगमर्मर पत्थर के ऊपर से लोहे का कलंक छुड़ाना—एक नींबू काट कर उसका रस कलङ्क युक्त स्थान पर घिसने से लोहे का दाग सहज ही में छूट जाता है।

इसके सिवाय अन्य सब प्रकार के दागों को छुड़ाने के निमित्त पूर्व वर्णित पद्धतियों का अवलम्बन करना उचित है। तो भी उपरोक्त पद्धतियों में तीन नम्बर की पद्धति सर्व श्रेष्ठ है तीन नम्बर की पद्धति के अनुसार पत्थर साफ होजाने और सूख जाने पर उसे कोमल चमड़े से मांज लेना चाहिए इससे पत्थर की चमक बढ़ जाती है।

(७) कृत्रिम संगमर्मर बनाना—फटकरी के पानी (Solution of Alum के साथ प्लास्टर आफ प्यारिस मिलाकर उसके द्वारा अत्यन्त सुन्दर कृत्रिम संगमर्मर पत्थर बनाया जाता है। उल्लिखित दोनों द्रव्यों को मिलाकर आग पर चढ़ावे और जब उसका समस्त पानी

…ो प्रकार की मनो-वृतियां

पराधीन नौकर
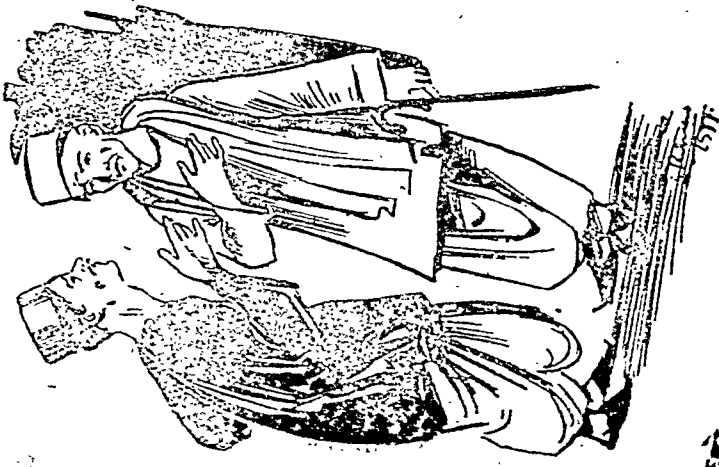
कहो भय्या अच्छे तो हो ?
हां किसी तरह चला जाता है।

स्वतन्त्र व्यापारी
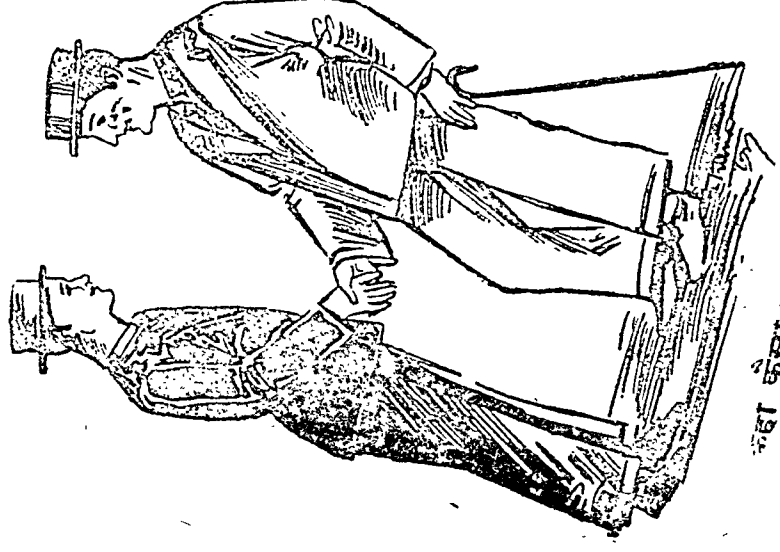
कहो कैसा हाल है ?
अच्छा।

तैयार होता है उसका भी कुछ आभास उन्होंने उसी समय दे दिया था। इसके बाद मि० बर्थे-लोट (Bertholot) की प्रमुखता में कुछ विज्ञानियों ने नकली रेशम बनाना शुरू किया, लेकिन उनको पूरी २ कामयाबी हासिल नहीं हुई। इसके बाद १९ वीं शताब्दी के शेष भाग में चार्डनट (Chardonnct) नामके फांसी शिल्पी ने इस काम में हाथ डाला और उन्हें वास्तविक सफलता मिली। पहले पहल नकली रेशम के वस्त्र व्यवसायिक रूप में इन्हीं महाशय के द्वारा तय्यार हुए। जब यह चीज़ नूतन प्रचार की अवस्था में लोगों के सामने आई, तब वे बड़ी ही कौतुहल दृष्टि से इसको देखने लगे। उनका इसके भविष्य के ऊपर विश्वास नहीं था। परन्तु इस चीज़ ने अपनी उत्कर्षता और अनुकूल अवस्था से थोड़े ही समय में इतना प्रचार पालिया कि जिसे देख कर आश्चर्य होता है।

नक़ली रेशम का व्यवसाय।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फ्रान्स और इंग्लैण्ड में कुछ नकली रेशम बनाया गया था। इसके बाद दूसरे देशों में भी इसके कारखाने स्थापित हुए। परन्तु गत महायुद्ध के समय से ही इसकी उन्नति तेज़ी के साथ हो रही है। १० वर्ष के भीतर ही इस क़िस्म के रेशम की उपज प्रायः पांच गुणी बढ़ गई है। सारे जगत में नक़ली रेशम किस २ सन् में कितना २ पैदा हुआ है, उसके अङ्क नीचे दिये जाते हैं इससे सहजही में साफ़ तौर पर हिसाब मालूम हो जायगा।

सन् १९१४ में नकली रेशम कुल पैदा हुआ २ करोड़ ८० लाख पाउंड।

सन १९२४ में नकली रेशम कुल पैदा हुआ १२ करोड़ ६० लाख पाउंड।

सन १९२५ में नकली रेशम कुल पैदा हुआ १५ करोड़ ५० लाख पाउंड।

इन आंकड़ों में सन् १९२५ का आंक अंदाज़न है। कुछ भी हो लेकिन अगर गत वर्षों में असली रेशम की पैदावार कम नहीं होजाती और दूसरी चीजों की तरह रेशम का मूल्य भी अधिक नहीं बढ़ जाता तो नकली रेशम का व्यवसाय इतना नहीं बढ़ने पाता। परन्तु आज कल तो यह हालत है कि पृथ्वी के अधिकांश वाणिज्य प्रधान देशों में नकली रेशम बनाने की अच्छी व्यवस्था है। इस प्रकार के देशों में फ्रांस, बेलजियम, स्विट्ज़रलैंड, इटली, जर्मनी और मार्किन संयुक्त राष्ट्र ही विशेष उल्लेख योग्य हैं और इन्हीं में नकली रेशम ज्यादा तैयार होता है।

हम पहिले ही कह आये हैं कि फ्रांस ही ने सबसे पहले नकली रेशम की सृष्टि की है। इस समय फ्रांस में कमसे कम ५० कारखाने नकली रेशम बनाने के हैं। लाइन्स [Lyons] शहर इस शिल्प का प्रधान केन्द्र है। किन्तु सारे प्रधान कारखानों का कार्यालय राजधानी पेरिस में बना हुआ है। फ्रांस में नकली रेशम से भांति २ के ऐशो-आराम की चीजें बनाई जाती हैं और उनकी मात्रा इतनी अधिक है कि देश में तैयार हुआ रेशम बहुत कुछ उन्हीं में लग जाता है, बाहर बहुत कम जाता है; बल्कि विदेश से बहुत सा रेशम प्रतिवर्ष मंगाया जाता है। इस जगह

फीते से लेकर जामा, गंजी फराग, मौजे, साटन आदि वस्त्र नकली रेशम से बनाये जाते हैं। इसमें कुछ मिलावट भी दी जाती है। किसी भी तरह के तन्तु के साथ यह सहज ही में मिल जाता है। इसी से वस्त्र बनाने वाले इसे बहुत पसंद करते हैं। मूल्यवान वस्त्रादि बनाने के लिए समस्त तन्तुओं के जितने दाम बढ़ गए हैं, उतने दाम नकली रेशम के नहीं बढ़े हैं। इसीसे इसके द्वारा वस्त्र बनाने वालों को बड़ा लाभ होता है। विलायत की विलासिनी स्त्रियां नकली रेशम से बहुत अनुराग रखती हैं और उसका कारण यह है कि उनके यहां "फैशन" थोड़े समय में ही बदल दी जाती है प्रत्येक बार नई फैशन के कपड़े तैयार किये जाते हैं। वे यदि असली रेशम से तैयार किए जांय तो खर्च अधिक पड़े इसलिए नकली रेशम से ही वे कपड़े तैयार किए जाते हैं क्योंकि यह सस्ता पड़ता है।

उत्पन्न करने की प्रणाली

इस समय जिन रीतियों से नकली रेशम तैयार किया जाता है, उनमें चार रीतियां प्रधान हैं। प्रयुक्त उपादान के नामानुसार उनको इन नामों से पुकारा जाता है (१) सेलूलोज एसेटेट (Cellulose acetate) [२] कूपर एमोनीएट [Copper ammoniate] (३) नाईट्रो सेलूलोज [Nitro cellulose] (४) विस्कोज़ प्रोसेस (Viscose proces] इनमें से अलग २ प्रणाली की विशेषता का वर्णन करने के पहले एक मूल विषय का उल्लेख करना जरूरी है। वह यह है कि चाहे जिस रीति से नकली रेशम क्यों न बनाया जाय, उसकी आदि सामग्री सेलूलोज़ है। यह सेलूलोज़ ही सब प्रकार के तन्तुओं की जड़ है। यह रुई, सन, पाट, घास और काष्ठपिंड इत्यादि से विशेष २ उद्देश्य के लिए ली जाती है, किन्तु उद्भिद कोष का यह कंकाल स्वरूप है। रेशम उत्पन्न करने के लिये सेलूलोज को किसी प्रकार द्रावण में गला लिया जाता है। इस समय देखना चाहिये कि गलित सेलूलोज के साथ किसी प्रकार का मैल अथवा अद्रवीभूत पदार्थ तो नहीं है। पिघला हुआ (द्रव्य) सेलूलोज थोड़ा बहुत चट चट शब्द करता है। जब सेलूलोज पिघल जाता है, तब इस साफ़ सेलूलोज को एक बहुत ही बारीक छेदों वाले पात्र में रखकर हवा का दबाव देते हैं। उस समय सेलूलोज पिचकारी की धारा की तरह बाहर निकला करता है। छिद्र के हिसाब से धारा मोटी और पतली होती रहती है। फिर प्रणाली के अनुसार यह धारा किसी विशेष प्रकार के तरल पदार्थ में चलाई जाती है और उस तरल पदार्थ के संयोग में आने से यह सूत होकर जम जाती है। तब २। ३ बारीक सूतों को इकट्ठा करके जरूरत के अनुसार मोटा सूत बनाते और उसे पक्का लेते हैं इसके बाद इस पके हुए सूत को साफ जल या किसी रसायनिक पदार्थ के घोल से धोया जाता है। धोने के बाद सूत को कांच के या रबर के नल पर इस तरह लपेट देते हैं कि जिससे सूत के ऊपर पूरा खिंचाव रहे। जब सूत बिलकुल सूख जाता है, तब यह मालूम करना कठिन होजाता है कि असली रेशम में और इसमें क्या फर्क है। सब रीतियों में सूत पकाने का नियम एक ही तरह का होता है, परन्तु सेलूलोज़ को घोलने की और जमाने की प्रथा जुदी २ होती है।

(क्रमशः)

१९२५-२६	× × ×	× × ×	५,३२,६२,०९१
१९२६-२७	× × ×	× × ×	४,९२,३३,९१२
१९२७-२८	× × ×	× × ×	३,३१,८२,८२१

अन्तिम ३ वर्षों (जिनमें दो दो सन् लगे हुए हैं) के आंकड़े उस वर्ष की जुलाई की तारीख १ से दूसरे वर्ष के जून मास की ३० तारीख तक के हैं। इन तीनों वर्षों में खरीद या बिक्री नहीं हुइ, केवल व्यापारिक अङ्क ही दिए गए हैं।

इस अङ्क योग को देखते हुए स्पष्ट (प्रकट) है कि सन् १९२१ से लगाकर कन्झर्वेटिव दल के शासन आरम्भ होने तक अंग्लो रशियन व्यापार किस प्रकार धड़ाके से बढ़ता जारहा था, पर ज्योंही साम्राज्य वादियों का सब्ज़कदम इंग्लैंड के शासन की ओर बढ़ा, त्योंही उसके सिर में रुस के भय का भूत घुसगया, और ब्रिटेन रूस के व्यापार में ह्रास होने लगा। इस बातके प्रमाण में ऊपर के अङ्क हैं। संकुचित विचार वाले इन कन्झर्वेटियों ने कुछ समझ कर ही (यही समझा था कि रूस से इंग्लैन्ड के व्यापारिक सम्बन्ध टूट जाने से रूस का मुंह उठाना कठिन होगा) क्यों न सम्बन्ध तोड़ा हो, परन्तु इन का यह कार्य हानि कारक ही सिद्ध हुआ—बेकारी बहुत बढगई, लाभ कुछ नहीं। इधर अमेरिका और जर्मनी इस ताक में ही बैठे थे, अवसर पाते ही इन्होंने रूस से लाभ उठाना आरम्भ किया।

ब्रिटेन के साथ ज्यों २ व्यापार घटता गया, वैसे २ जर्मनी के साथ रूस के व्यवसाय में कितनी वृद्धि हुई देखिए:—

सन्	—रूस से आया माल	—रूस में आया माल	—कुल व्यापार
	मार्कस,	मार्कस,	मार्कस,
१९२५	—२५, १९, ८९, ०००	—२५१११५०००	—५०३१०४०००
१९२६	—३६५८३००००	—२६५५६३०००	—६३१३९३०००
१९२७	—४७६२३५०००	—३२९५६४०००	—८०५७९९०००

मेरे दो शब्द

यह बदले का ज़माना है। विनिमय ही इस युग का मुख्य-तम विषय है। हरएक कम देकर अधिक लेने की इच्छा रखता है। प्रत्येक वर्तमान से भविष्य को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहता है। परीवर्तन की इस इच्छा में—क्रान्ति की इस उथल-पुथल में, कोई समय के प्रवाह में बह जाते हैं और कोई समय के प्रवाह को अपने साथ बहाना चाहते हैं। सभ्यता के इस युग ने बीसवीं सदी के इस विकासकाल ने अनेकों साधनों के साथ पत्र-पत्रिकाओं का अमूल्य साधन, इस परिवर्तन के लिये शिक्षित संसार के सामने रखा है। संसार में पैसे का प्रश्न रोटी की समस्या इस समय सबसे भीषण; सबसे गुरुतर और सबसे अधिक विश्वव्यापी है? विद्वाना की जो दलीलें—बुद्धिमानों के जो प्रयत्न—उपदेशकों के जो उपदेश इस समस्या को हल करने में सहायक होते हैं; वे लोगों के सामने टिके रह सकते हैं। और शेष अच्छे से अच्छे योग्य से योग्य विचार भी समय की चपेट खाकर हमेशा के लिये विस्मृति के विशाल गर्भ में विलीन होते जाते हैं। धार्मिक से धार्मिक एवम् विद्वान से विद्वान भी खाने को न मिलने पर दुष्कर्म करते देखे गये हैं, और देखे जाते हैं। मनुष्य की तो बात ही दूर है, ईश्वर भी खाने की समस्या को हल करने में अद्यावधि असफल रहा है। अतएव यह आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत अनिवार्य है कि अपने अभियुत्थान के लिए, हम अपनी आर्थिक उन्नति में अग्रसर हों। कहना नहीं होगा कि इसका एक मुख्य साधन—वृहत कार्यक्षेत्र 'वाणिज्य' है।

आज भारत के मान चित्र को पूर्णतः लाल रङ्ग से रंग देने वाले अङ्गरेज कुछ टोकनियों में सौदा लेकर ही, यहां व्यवसाय करने आये थे। ईष्टइण्डिया कम्पनी की धर पकड़ वाणिज्य के लिए ही हुई थी। वारनहेस्टिंग्ज़ का बदनाम, भारतीय वाणिज्य को ध्वंस करने के लिए ही हुआ था! डाक्टर बाउटन की सनद, अङ्गरेज जाति को वाणिज्य के साधन दिलाने को ही हुई थी। यह वाणिज्य का ही प्रताप था कि अकेले जर्मनी ने समग्र संसार को एक बार चिन्तित कर दिया था। यह वाणिज्य की ही महिमा है,कि मुट्ठी भर जापान, संसार की महा शक्तियों में गिना जा रहा है। और यह वाणिज्य ही का अधःपतन है कि भारतवर्ष संसार के पैरों के नीचे पड़ा हुआ भी सुख की नींद नहीं सो

स्थान पाही लेगा। फिर भी जो मेरा अपरिहार्य परम-पावन कर्त्तव्य है—वह मैं कर रहा हूं। पाठकों का कर्त्तव्य उनके ऊपर है। हां, मैं अत्यन्त विनम्र भाव से इतना कह सक्ता हूँ कि इस संख्या से ही 'रसायन' के आकार प्रकार, पृष्ठ संख्या आदि में अभिलषित ढंगसे परिवर्त्तन कर दिया गया है—यदि भविष्यत में पाठकों की बराबर सहानुभूति रही तो यह पत्र फिर किसी के मारे नहीं मर सकेगा। ऐसी प्रत्याशा है।

प्रस्तुत संख्या का यद्धा तद्धा करके जैसा कुछ सम्पादन हो सका है, वह सामने है। इसके सुलेखकों और अपने शुभचिन्तकों के साथ बड़ा अन्याय होगा, यदि मैं उनके सम्बन्ध में कुछ न कह कर चुप हो जाऊं? कहना न होगा कि इस संख्या में जितनी कुछ विशेषता या हृदय ग्राहकता है—अगर कुछ है, तो वह इसके सुयोग्य लेखकों के समय पर किये हुये कष्ट-साध्य परिश्रम का ही फल है। यदि वे मेरी अनुनय-विनय को स्वीकार कर समय पर लेख लिखकर न भेज देते तो इस संख्या का सम्पादन कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता। सुतराम्, मैं अपने सुलेखक सज्जनों, हितैषी मित्रों और बन्धु-बान्धवों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं।—मैं कह नहीं सक्ता कि उनके इस आभार का बदला मैं पठा भी सकूंगा या नहीं? विज्ञेषु किमधिकम्।

वसन्त-पञ्चमी
माघ-शुक्लपक्ष, संवत्सर १९८६

विनयावनत—
[signature]

विदेशी तम्बाकू सिगरेट आदिकी आयात ।

सन्	आयात का मूल्य	आयात कर	तम्बाकू आदिका मू० उपभोक्ताओं को	परिमाण
१९२५-२६	२१३ लाख रु०	१५६ लाख रु०	३६९ लाख रु०	८७ लाख पौण्ड
१९२६-२७	२५६ " "	१९१ " "	४४७ " "	१०२ " "
१९२७-२८	२९१ " "	२१७ " "	५०८ " "	९९ " "

पाठक ! यह तो हुए सम्मिलित अङ्क । जरा केवल विदेशी सिगरेट के आयात पर भी ध्यान दीजिये—

केवल विदेशी सिगरेट का आयात

सन्	विदेशी सिगरेट का आयात	प्रतिवर्ष प्रति शत वृद्धि
१९२५—२६	३४ लाख पौंड	—
१९२६—२७	४२ " "	२३
१९२७—२८	५६ " "	३३

इन कोष्ठकों को ध्यान पूर्वक देखने से इन पदार्थों के आयात की वृद्धि स्पष्ट हो जाती है ।

साधना सदन
देवचन्द्र } पं० कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" (विद्यालंकार)

(२) एलुमिनियम ।

एलुमिनियम पदार्थ का परिचय देना निष्प्रयोजनीय जैसा प्रतीत होगा, परन्तु जहां तक हमारा ध्यान है इसके सम्बन्ध में पूरी २ अभिज्ञता बहुत कम लोगों को है । सम्प्रति प्रत्येक घर में इस भांति कि शहरों के बड़े २ मकानों से लेकर सुदूर गावों तक के झोपड़ों में एलुमिनियम की मनोरम वस्तुओं का बहुत व्यवहार देखा जाता है ।

आज से प्रायः १०० वर्ष पूर्व सन १८२७ ईस्वी में फ्रेडरिक ऑलार नामक एक जर्मन युवक ने पहिले पहल मिट्टी से एलुमिनियम

प्रकार उन्नति नहीं कर सकते । अन्यान्य देशों के साथ तुलना करने से देखा जाता है, कि भारतवर्ष शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही पीछे हैं । नीचे भारत के साथ अन्यान्य देशों के शिक्षितों का एक तुलनामूलक हिसाब दिया जाता है ।

फी सैंकड़ा शिक्षितों की संख्या ।

देश	पुरुष	स्त्री
इंग्लैंड	९३·४	९१·५
अमेरिका	९५·५	९३
डेनमार्क	१००	१००
जर्मनी	१००	१००
जापान	९८	९६
भारतवर्ष	५·२	१·५

भारतीयों की कितनी शोचनीय अवस्था है ! शिक्षा के क्षेत्र में भारतीयों का कितना गहरा अधःपतन है ! इस दुरावस्था और अधःपतन का इतने से ही शेष नहीं होजाता—हम नीचे भारत और अन्यान्य देशों के अध्ययनरत छात्रों की तालिका देते हैं; जिससे वाचकों को स्पष्टतया समझ में आजायेगा कि भारत की भाग्य तरणी के भावी कर्णधारगण शिक्षा क्षेत्र में किस प्रकार अग्रसर हो रहे हैं ।

फी सैंकड़ा शिक्षार्थियों की संख्या—

जर्मनी	३९·५
इग्लैंड	२९·२
अमेरिका	३७·५
फ्रांस	२८·५
डेनमार्क	३५·४
जापान	३७·५
बृटिश भारत	३·२

भारत के भावी वंशधरों की शिक्षा-क्षेत्र में इस प्रकार मन्थर गति देखने से सचमुच ही हताश होना पड़ता है । जगत में जहां अन्यान्य जातियों की सन्तानें प्रतिशत आधे से अधिक शिक्षित होरही हैं, वहां भारतवर्ष की सन्तान में फी सैंकड़ा केवलमात्र तीन को ही शिक्षित होते हुए देखकर दारुण निराश से चित्त सिहिर उठता है । भारत में स्त्री शिक्षा भी जितनी पीछे पड़ी हुई है, उससे अन्य देशों के साथ तुलना करने में लज्जा से सिर नीचा हो जाता है ।

नीचे इस देश के शिक्षित स्त्री पुरुषों का एक मोटा हिसाब देते हैं ।

भारत के पुरुषवर्ग में फी सदी ४ मनुष्य शिक्षित हैं ।

भारत में पुरुषों की संख्या १६३९९५५५९ ।

भारत में शिक्षित पुरुषों की संख्या १९७०२७३५

भारत के स्त्री वर्ग में फी सदी १·५७ स्त्रियां शिक्षिता हैं ।

भारत में. स्त्रियों की संख्या १५३००००००

भारत में शिक्षिता स्त्रियों की संख्या २३४५९०४ ।

भारतवर्ष के स्त्री पुरुषों की मोटे हिसाब से लीहुई संख्या में फी सैकड़ा ७ भाग शिक्षित हैं । और उसमें ऐसे शिक्षित भी सम्मिलित हैं जो नाम मात्र को वर्णपरिचय करा सकते हैं दूसरे देशों में वे अशिक्षितों की ही संख्या में लिये जायेंगे। भारतवर्ष के स्त्री पुरुषों में मोटे हिसाब से २२०४८६३९ शिक्षित हैं ।

(Horse pawer) की आवश्यकता होती है, और इसके कागज को बनाने के लिये प्रचुर जल भी आवश्यक है।

उपरिलिखित कागज को तैयार करने के लिये जिन सब आवश्यकीय वस्तुओं का प्रयोजन है, उन सब वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से अधिकारी हैं—यूनाईटेड स्टेटस, नारवे, फिनलैंड, कनाडा, स्वीडन और जर्मनी का कुछेक पश्चिमी अंश ?

कोमल वृक्ष के गूदे के परिमाण के अनुसार पाठकों की जानकारी के लिए उपरोक्त देशों के नाम ठीक तरतीबवार दिये गये हैं।

युक्त राज्य में जितना कागज उत्पन्न होता है, वह सबका सब उसी देश में खप जाता है, तदुपरान्त कनाडा में उत्पन्न होने वाले ५ भाग कागज में से ४ भाग कागज अमेरिका अपने व्यवहार के लिए और भी खरीद लेता है।

इसके अतिरिक्त और जिन देशों के नाम लिये गये हैं—स्वीडन, नारवे, फिनलैण्ड और जर्मनी यह सब मिलकर भी सम्पूर्ण यूरोप को कागज व प्रयोजनीय कोमल लकड़ी का गूदा किसी प्रकार नहीं जुटा सकते। यहां तक कि आज वे जितना कागज उत्पन्न कर रहे हैं, भविष्यत में इसके लिये और भी असमर्थ हो जायेंगे।

जापान अपने यहां केवल थोड़ा सा कम कीमती कागज तैयार करता है, शेष उच्च श्रेणी का कागज बाहिर ही से आता है। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका यह दोनों कागज के लिये सम्पूर्ण रूप से दूसरे देशों पर निर्भर है। दक्षिण अमेरिका के बिल्कुल दक्षिण में कागज के लिए उपयुक्त वृक्ष बहुत सामान्य परिमाण में उत्पन्न होते हैं। एक मात्र साईबेरिया में ही इस प्रकार के वृक्षों का अत्यन्त समूह विस्तृत रूप से पाया जाता है, किन्तु देश देश में कागज तैयार करने के लिए उपयोगी सुविधाओं का वर्तमान समय में एकान्त अभाव है।

सुतराम् उपरोक्त सब तथ्य पढ़ने से यह स्पष्ट ही ज्ञात होजाता है, कि भविष्यत में कागज का अभाव और इसकी महर्घता मूर्तिमान रूप से दिखाई देवेगी।

५—गंधक।

हम अपने घर के कीटाणु ध्वंस करने के लिये गन्धक का उपयोग करते हैं, डाक्टर लोग खाज या मलहम बनाने के लिये गन्धक व्योहार में लाते हैं—बस गृहस्थ जीवन में इसका गन्धक के साथ यही सम्बन्ध है। परन्तु रसायनिक जगत में गन्धक ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गन्धक और लोह गन्धक सलफ्युरिक एसिड (Sulphuric acid) बनाने के लिये मुख्य वस्तुयें हैं और सालफ्युरिक एसिड का रसायनिक लोगों के नजदीक विशेष महत्व है। यहां तक कि इसको रसायनिक शिल्प की जननी कहते हैं। किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे देश में गन्धक की खानें नहीं के बराबर हैं। दूसरे शब्दों में गन्धक की खानों का एकान्त अभाव है, जिससे देश में सालफ्युरिक एसिड के अभा-

सलफियूरिक एसिड में से आधे के करीब खर्च करता है।

मुख्यतः सलफियूरिक एसिड बनाने को तो गन्धक का व्यवहार प्रसिद्ध ही है, किन्तु इसके अतिरिक्त गन्धक और भी नाना प्रकार से व्यवहार में लाई जाती है। अंगूर वृक्ष की कीड़ों से रक्षा करने के लिये लोग अंगूर वृक्ष पर गन्धक डालते हैं केवल इसी कार्य में समग्र यूरोप प्रति वर्ष १ लाख टन गन्धक खर्च करता है। कागज शिल्प में कागज का पल्प तैयार करने के अर्थ बाइसलफाईट की आवश्यका होती है, और अनुमानसे १ टन कागज तैयार करनेमें २८ पौंड गन्धक लग जाती है। दियासलाई [Match-box] निर्माण करने केनिमित्त गन्धक अनिवार्यतः आवश्यक है। बारूद [Gunpowder] तैयार करने के लिये गन्धक का यथेष्ठ व्यवहार होता है। सोडियम थायोसलफेट, कारबनडाईसलफाईड आदि कुछेक रसायनिक द्रव्यों की तैयारी करने में भी गन्धक का व्यवहार अपरिहार्य है।

लौह गन्धक और दस्ता गन्धक के अतिरिक्त और भी कई गन्धक युक्त द्रव्य खनिज अवस्था में पाये जाते हैं। उनमें से केलशियम सलफेट [Calcium sulphate] और यॉन हाइड्राईड (Anhydride) इन दो द्रव्यों द्वारा सलफियूरिक एसिड बनाने का कई स्थानों पर उद्योग किया गया है।

पृथ्वी में जहां २ ज्वालामुखी पर्वत हैं उन सब स्थानों पर शोध करने से गन्धक पाई जाती है।

(६) पुराने समाचार पत्रों का कागज।

हमारे देश में प्रतिवर्ष समुद्र पार देशों से पुराने संवाद पत्रों की हजारों गांठें आती हैं। इन पुराने संवादपत्रों का कागज देश में दुकानदार लोग रद्दी के रूप में व्यवहार करते हैं, और वही कागज दुकानों से खरीदे गये माल के साथ हरएक ग्राहक के घर में पहुंचता है। इसके अतिरिक्त इस कागज से देश में नाना प्रकार के खिलौने आदि भी बनाये जाते हैं। जिनके धन्धे से हमारे अनेक गरीब भाइयों का पेट चलता है। सुतराम, इनके विरुद्ध किसी प्रकार का मत प्रकाश करना, अपने गरीब भाइयों की रोटी छीनना है, परन्तु आंखों से देखते हुए सर्वसाधारण के स्वास्थ्य और धर्म की हानि होने देना भी तो धर्म सङ्गत प्रतीत नहीं होता।

इन पुराने संवादपत्रों के कागज पर थोड़ा लक्ष्य करने से ही जगह २ खराब दाग और साफ तौर पर विष्ठा लगा हुआ दिखाई देता है। यह खाली सुनने सुनाने की बात नहीं-हम इस सम्बन्ध में खूब देख समझकर जांच पड़ताल के बाद ही अपना मत प्रकाश करने का साहस कर रहे हैं। फिर इसकी सचाई के प्रमाण भी पूरे २ मिलते हैं जिससे संदेह की कोई जगह नहीं रह जाती। अभी हाल में इंग्लैंड से प्रकाशित होने वाले "मार्केन्टाइल गार्जियन" नामक एक वाणिज्य विषयक सामयिक पत्र ने अमेरिका से आने वाले पुराने संवादपत्रों के कागज का सब भीतरी रहस्य प्रकाशित कर दिया है। उसमें दूसरी २ बातोंके

उपदेश को लेकर कलकत्ता में "इंडियन सेमल काटन प्लानटेशन लिमिटेड" नाम की एक संस्था संगठित हुई है। इस प्रकार की संस्थायें जितनी भी स्थापित हों देश का उतना ही उपकार होना संभव है।

यथार्थ में सेमल बहुत ही उपयोगी वृक्ष है और उद्योग किये जाने पर भारत में इसकी काफी तादाद में पैदायश हो सकती है। इसका कपास अनेक प्रकार से काम में आता है। ओढ़ने बिछाने के कपड़े भरने, आसन, गद्दी, तकिये बनाने, शफाखानों में पट्टी बांधने, औषधि लगाने इत्यादि २ कार्यों के लिए लोग इसका विशेष रूप से व्यवहार करते हैं। इसके अतिरिक्त जहाज की "जीवनतरी" निर्माण करने के लिये भी यह कपास विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें पानी के ऊपर अधिक काल स्थिर रहने की एक खास बात पाई जाती है। किसी भी "जीवनतरी" के ट्यूब (tube) के भीतर दो पौंएड अर्थात् एक सेर सेमल का कपास भरती कर देने से वह ५० पौण्ड अर्थात् २५ सेर वजन लेकर पानी के ऊपर तैर सकती है।

इसके बाद सेमल वृक्ष की लकड़ी का भी कुछ कम मूल्य नहीं है। आज कल दियासलाई की काड़ियां बनाने के लिये सेमल वृक्ष की लकड़ी प्रचुर परिमाण में व्यवहार की जारही है। भारत में दियासलाई के कारखानों की उत्तरोत्तर वृद्धि होते हुये देखकर कहना पड़ता है कि निकट भविष्य में इस लकड़ी की मांग और भी अधिक बढ़ जायेगी।

सेमल की जड़ भी औषधियों के लिये एक बड़े परिमाण में देश विदेश सब जगह भेजी जाती है! स्नायु-दौर्बल्य रोगों के लिये सेमल की जड़ ने आयुर्वेद शास्त्र में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। सेमल के बीज भी नाना प्रकार के उपयोग में लाये जाते हैं। इसके बीजों का तेल बाजार में १४. १५ रुपया मन के हिसाब से बिकता है। साबुन बनाने वाले इस तेल को साबुन तैयार करने के लिये प्रचुर मात्रा में व्यवहार करते हैं। इसके सिवाय सेमल के बीज से तेल बाहिर निकालने पर जो खली (Oil-cakes) अवशिष्ट रहती है, वह भी अत्यन्त मूल्यवान सामग्री है। यह सब की सब खली विशेषतः यूरोप और आस्ट्रेलिया को भेजी जाती है। लोग इस खली को दुग्धवती गायों के लिये खाद्य रूप में व्यवहार करते हैं। इसके खिलाने से गायों के दूध की वृद्धि होती है। अस्तु, इन सब बातों के विवेचन से अब सेमल की असीम कार्यकारिता के सम्बन्ध में पाठकों को किसी प्रकार भी इनकार नहीं हो सक्ता।

परीक्षा करने से देखा गया है, कि इसकी विज्ञान सम्मत प्रणाली से खेती किये जाने पर एक बीघा जमीन में प्रायः १०० वृक्षों की पैदावार होती है। यदि इतनी जमीन में कम से कम ५० वृक्ष भी उत्पन्न हों तो उनसे प्रति वर्ष २० मन कपास सहज ही निकाल सक्ते हैं। २० मन कपास का मूल्य फी मन २०) रुपया के हिसाब से ४००) रुपया होता है। इसके सिवाय बीज तेल और खली आदि से होने वाले लाभ की बात अलग है।

उपदेश को लेकर कलकत्ता में "इंडियन सेमल काटन प्लानटेशन लिमिटेड" नाम की एक संस्था संगठित हुई है। इस प्रकार की संस्थायें जितनी भी स्थापित हों देश का उतना ही उपकार होना संभव है।

यथार्थ में सेमल बहुत ही उपयोगी वृक्ष है और उद्योग किये जाने पर भारत में इसकी काफी तादाद में पैदायश हो सकती है। इसका कपास अनेक प्रकार से काम में आता है। ओढ़ने बिछाने के कपड़े भरने, आसन, गद्दी, तकिये बनाने, शफाखानों में पट्टी बांधने, औषधि लगाने इत्यादि २ कार्यों के लिए लोग इसका विशेष रूप से व्यवहार करते हैं। इसके अतिरिक्त जहाज की "जीवनतरी" निर्माण करने के लिये भी यह कपास विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें पानी के ऊपर अधिक काल स्थिर रहने की एक खास बात पाई जाती है। किसी भी "जीवनतरी" के ट्यूब (tube) के भीतर दो पौंण्ड अर्थात् एक सेर सेमल का कपास भरती कर देने से वह ५० पौण्ड अर्थात् २५ सेर वजन लेकर पानी के ऊपर तैर सकती है।

इसके बाद सेमल वृक्ष की लकड़ी का भी कुछ कम मूल्य नहीं है। आज कल दियासलाई की काड़ियां बनाने के लिये सेमल वृक्ष की लकड़ी प्रचुर परिमाण में व्यवहार की जारही है। भारत में दियासलाई के कारखानों की उत्तरोत्तर वृद्धि होते हुये देखकर कहना पड़ता है कि निकट भविष्य में इस लकड़ी की मांग और भी अधिक बढ़ जायेगी।

सेमल की जड़ भी औषधियों के लिये एक बड़े परिमाण में देश विदेश सब जगह भेजी जाती है। स्नायु-दौर्बल्य रोगों के लिये सेमल की जड़ ने आयुर्वेद शास्त्र में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। सेमल के बीज भी नाना प्रकार के उपयोग में लाये जाते हैं। इसके बीजों का तेल बाजार में १४. १५ रुपया मन के हिसाब से बिकता है। साबुन बनाने वाले इस तेल को साबुन तैयार करने के लिये प्रचुर मात्रा में व्यवहार करते हैं। इसके सिवाय सेमल के बीज से तेल बाहिर निकालने पर जो खली (Oil-cakes) अवशिष्ट रहती है, वह भी अत्यन्त मूल्यवान सामग्री है। यह सब की सब खली विशेषतः यूरोप और आस्ट्रेलिया को भेजी जाती है। लोग इस खली को दुग्धवती गायों के लिये खाद्य रूप में व्यवहार करते हैं। इसके खिलाने से गायों के दूध की वृद्धि होती है। अस्तु, इन सब बातों के विवेचन से अब सेमल की असीम कार्यकारिता के सम्बन्ध में पाठकों को किसी प्रकार भी इनकार नहीं हो सकता।

परीक्षा करने से देखा गया है, कि इसकी विज्ञान सम्मत प्रणाली से खेती किये जाने पर एक बीघा जमीन में प्रायः १०० वृक्षों की पैदायश होती है। यदि इतनी जमीन में कम से कम ५० वृक्ष भी उत्पन्न हों तो उनसे प्रति वर्ष २० मन कपास सहज ही निकाल सकते हैं। २० मन कपास का मूल्य फी मन २०) रुपया के हिसाब से ४००) रुपया होता है। इसके सिवाय बीज तेल और खली आदि से होने वाले लाभ की बात अलग है।

देश में मिलावट के लिये और भी कई वस्तुयें तैयार होती हैं—माइट आयल को छोड़कर मरे हुए पशु-पक्षी, सूअर और सांप की चर्बी तक घी और तेल में मिली हुई देखी गई है। इससे स्पष्ट है कि यह मिलावट का रोग अब सहज ही में निवारण नहीं किया जा सकता।

औषधियों की अवस्था देखिये।

एक बोतल Clove oil में फी सैंकड़ा ८५ भाग Eugenol होना चाहिए यह तेल जर्मनी से आता है। परीक्षा करने पर देखा गया कि इसमें Eugenol बिलकुल नहीं है। बसबाजारों में यही Clove oil के नाम से बेचा जाता है। सेन्टोनिन (Santonin) कितनी आवश्यक चीज है, परन्तु इसमें भी फी सैंकड़ा ८५ भाग बोरिक एसिड (Boric acid) मिला हुवा रहता है। असली सेन्टोनिन का दाम एक औंस का ३० रुपया है और कृत्रिम सेन्टोनिन २५ रुपया मूल्य पर बिकती है। कुनाइन और कोकीन को लीजिए, वह भी मिलावट से खाली नहीं एक दो औषधियां हों तो गिनाया भी जाय, परन्तु यहां तो सभी में धोखे धड़ी और मिलावट की बात मौजूद है। भारत में प्रतिवर्ष ५०० पौंड औषधियां खर्च होती हैं—जिसमें विदेशों से आने वाली औषधियों का बारह आना अंश मिलावटी रहता है। इस सम्बन्ध में किसी प्रसिद्ध औषधि व्यवसायी ने कहा है—

Unscrupulous manufacturers in Japan, England, Germany Amrica & other Countries are flooding Indian Bazars with spurious oil and drugs, secure in the knowledge that the law as it obtains in India is practically powerless to check the evil.

हम व्यवस्थापक सभा के सदस्यों से सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वे इस बढ़ते हुये मिलावट के धोखे धन्धे को बन्द कराने के लिये जल्दी से जल्दी प्रयत्न करें। जब मनुष्य का चरित्र यहां तक बिकृत हो गया है, तो उसे चैतन्य लाभ कराने के लिये कठोर शासन दण्ड की विधि-व्यवस्था ही सर्वोत्तम साधन है। आवश्यका है कि देश के समाचार-पत्रों में इस विषय की जोरों से चर्चा छेड़ी जाय, लोग जहां तहां मिलावटी खाद्य वस्तुओं के बाहिष्कार का आन्दोलन आरम्भ करदें। फिर तो गवर्नमेन्ट को बाध्य होकर इस मिलावट की समस्या को सुलझाने और लोगों की बढ़ती हुई परेशानी दूर करने का कोई उपाय करना ही पड़ेगा।
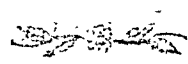
(१) भारतीय मजदूरों का जीवन ।

भारतवर्ष के मजदूरों की दुरावस्था की बात भाषा में व्यक्त नहीं हो सक्ती ! देश में ऐसे बहुत से उद्योग-धन्धे और कल-कारखाने प्रतिष्ठित हैं जहां पुरुष मजदूर केवल ॥) आना या ॥=) दश आना के लिये रोजीना १० घण्टा जी तोड़ मिहनत करते हैं और स्त्री मजदूर ।=) छः आना या ।≡) सात आना के लिये पुरुष मजदूरों से भी ज्यादा समय तक परिश्रम करती हैं। भारतीय मजदूरोंकी मासिक आमदनी बहुत ही कम है। और उनके जीवन यापन करने की प्रणाली अत्यन्त भीषण है ! इधर विद्या-शिक्षा की ओर से भी यह वर्ग बहुत गहरे अन्धकार में है। यद्यपि मजदूर संघ के आन्दोलन ने कुछेक स्थानों पर लोगों में सुधार और संगठन के भाव जगा दिये हैं, परन्तु इस आन्दोलन ने अभी व्यापक रूप धारण नहीं किया। आज से ३०, ४० वर्ष पूर्व विलायत में मजदूर लोगों की जैसी दुर्दशा थी, इस समय भारत का मजदूर वर्ग ठीक वैसी ही दुरावस्था का अनुभव कर रहा है। जब तक मजदूर लोगों की यह दुरावस्था सोलह आने दूर न की जायगी तब तक भारतीय शिल्प और वाणिज्य की यथेष्ट उन्नति होना बिलकुल असम्भव है।

(२) भारत मे कैरोसिन तैल की उत्पत्ति ।

समग्र पृथ्वी में जितना तैल उत्पन्न होता है उसमें भारतवर्ष का अंश दिनोदिन कम हो रहा है। सन् १९१२ में जितना तैल संसार में उत्पन्न हुआ था, भारत में उस उत्पत्ति का अंश २·०९ फी सैंकड़ा था परन्तु सन् १९२० से १९२८ के बीच में वह अंश फी सैकड़ा ०·७ भाग नीचे उतर आया है। इतने दिनों तक लोगों की यह धारणा बनी हुई थी कि भारत में तैल सम्पद अब भी गुप्त है; परन्तु यह धारणा सत्य होती हुई नहीं दिखाई देती। यद्यपि आजकल जिन खदानों में काम चल रहा है उनमें यथेष्ठ तैल मौजूद है, परन्तु अब आगे उनके समान बड़ी २ दूसरी नई खदानों का पता नहीं पाया जाता।

—०—

(३) जाली नोट और रुपया ।

सन् १९२५ से लेकर सन १९२८ तक कारेन्सी आफिसमें कितने जाली नोट आये—उनका हिसाब नीचे देखियेः—

सन् १९२५—२६···११,४४५
सन् १९२६—२७···९,५४१
सन् १९२७—२८···६,९५६

सन् १९२७—से १९२८ तक १) रुपया के १०६, २॥) रुपया के ९, ५) रुपया के १५८३, १०) रुपया के ४६५४, ५०) रुपया के १६, १००) रु० के ५८६ और १०००) रुपया के २ नोट जाली हुये थे।

ट्रेजरी, रेलवे स्टेशन और टकसाल में जाली मुद्रा (रुपया) आयेः—

सन्	रुपया	अठन्नी	चवन्नी	दुअन्नी
१६२७-२८-	१०१,६६४	४८७२	४३८०	१७२६
१६२६-२७-	१०२,७६८	५३१६	५६१८	२५४३

[४] मद्रास मे चीनी बादाम की पैदायश ।

मद्रास प्रान्त में इस वर्ष ६१,५०० एकड़ जमीन में चीनी बादाम की खेती की गई है। पिछले वर्ष ५२,५०० एकड़ जमीन में खेती की गई थी। इस वर्ष अनुमान से ५५ हजार टन चीनी बादाम उत्पन्न होने की आशा की जाती है। गत वर्ष ४४६०० टन बादाम निकली थी। इसके सिवाय इस वर्ष दूसरी जाति की बादाम भी बोई गई है। ३१ जुलाई पर्यन्त १ लाख ३३ हजार एकड़ जमीन में दूसरी जाति की बादाम की खेती कीगई थी। इसमें अनुमान से ६६५०० टन दूसरी नई बादाम निकलने की आशा पाई जाती है।

[५] शक्कर के आंकडे ।

भारतवर्ष में सन् १६२० से लेकर अगले ६ वर्षों में इक्षु (गन्ना) से और गुड़ से कितने परिमाण में शक्कर तैयार की गई, उसके आंकड़े नीचे दिये जाते हैं:—

	गन्ना से	गुड़ से
प्रथम वर्ष में—	६२८६२० मन	१२११२७४ मन
द्वितीय ,,	६६६२६१ मन	१३२४६४५ मन
तृतीय ,,	७५३६६३८ मन	१३००४३३ मन
चतुर्थ ,,	६५१४१५ मन	१६६८१२६ मन
पञ्चम ,,	१०००८५१ मन	१५३८३०६ मन
षष्ठम ,,	६२१६५० मन	६१६१२२१ मन
सप्तम ,,	१४४५०६१ मन	१०४७४२० मन
अष्टम ,,	१७१६४२७ मन	१५६१६६७ मन
नवम ,,	१८४५७५२ मन	१४१६६२६ मन

(६) टाटा कम्पनी का नया कारखाना।

जमसेदपुर की टाटा कम्पनी केवल भारतवर्ष के लिये ही नहीं वरन समस्त एशिया के लिये गौरव की सामग्री है। हमें यह जान कर महती प्रसन्नता हुई कि इस स्थान पर लोहे का एक और भी नया कारखाना खोला गया है। इस नये कारखाने में प्राय २००० मजदूर काम करेंगे और प्रतिमास २००० टन इस्पात की पैदायश होगी।

इतने दिनों तक रेलगाड़ी के चाक विदेश से बुलाये जाते थे। इस विषय में भारत को स्वावलम्बी बनाने के लिये ही इस नये कारखाने की स्थापना की गई है। इसका नाम "दी टाटा नगर फाऊन्ड्री कम्पनी" (THE TATA NAGAR FAUNDRY CO,) रखा गया है। यह कम्पनी ताता कम्पनी के आधीनस्थ होकर काम की परिचालना करेगी।

भारत वर्ष के लौह-शिल्प का भविष्य अत्यन्त उज्वल प्रतीत होता है! क्योंकि देश की जमीन में कच्चा माल इतने परिमाण में मौजूद है जो किसी भी प्रकार शीघ्र समाप्त नहीं किया जा सक्ता। देश में लोहे की मांग भी खूब है। और वह भविष्यत में बढ़ती ही जायेगी। यदि भारत

जैन ज्ञान-प्रकाश

पढमं नाणं तओदया—दशवैकालिक

वर्ष १ | आश्विन वीर सम्वत् २४५४ | अङ्क १

राग केदार तीन ताल

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥ राम० ॥ १ ॥

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पनारोपित, आप अखण्ड स्वरूप री ॥ राम० ॥ २ ॥

निजपद रमे राम सो कहिये, रहीम करे रहमान री।
कर्षे करम कानसो कहिये, महादेव निर्वाणरी ॥ राम० ॥ ३ ॥

परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप आनन्दघन, चेतनमय निकर्म री ॥ राम० ॥ ४ ॥

सम्पादकीय वक्तव्य

जैन ज्ञान-प्रकाश

उदयपुर, आश्विन

जैन धर्म का प्रकाश

आज जब कि संसार में चारों ओर उन्नति उन्नति ही का शब्द सुनाई दे रहा है, संसार के सभी राष्ट्र और प्रायः सभी जातियां अपनी चिरकाल की निद्रा को छोड़ कर उन्नति की दौड़ में अग्रसर हो रही हैं, भगवान् महावीर आदि तीर्थंकरों के दिव्य उपदेशामृत से सींचा हुआ यह जैन समाज रूपी वृक्ष दिनों दिन सूखता ही जाता है।

जैन धर्म आत्मा का धर्म है। यह वह धर्म है, जिसके सिद्धान्त वैज्ञानिक एवं प्राकृतिक होने के कारण विश्वधर्म कहलाने के योग्य है। यह सत्य धर्म वह है जो प्राणी मात्र की उन्नति में सहायक होता है। यह वह धर्म है, जिसने सारे संसार को सुख और शान्ति का पाठ पढ़ाया और कल्याण का मार्ग बतलाया।

यह वह धर्म है, जिसके मूल सिद्धान्त 'अहिंसा परमोधर्मः' की गहरी छाप संसार के प्रत्येक धर्म पर पड़ी हुई है।

यह वह धर्म है, जो किसी समय सम्पूर्ण भारतवर्ष के अतिरिक्त सुदूर देशों में भी फैला था, जिसके प्रमाण स्वरूप सामग्री अमेरिका जैसे पाताल देश में अभी भी पाई जाती है।

यह वह धर्म है, जो पिछले समय में नंगा पर्वत से लेकर कन्याकुमारी और दक्षिण के द्वीपों तक और आसाम से सुदूर वर्ती मध्यदेश से भी आगे तक राजधर्म बना हुआ था।

यह वह धर्म है, जिसका साहित्य महान् गम्भीर एवं विशाल माना गया है। यह वह धर्म है जिसका जबरदस्त प्रभाव भिन्न संस्कृति वाले विधर्मी बादशाहों तक पर पड़ा है।

यह वह धर्म है, जिसके स्यादवाद एवं कर्म सिद्धान्त के सभी दार्शनिक कायल हैं।

पाश्चात्य विद्वान् रैवरैण्ड जे० स्टीवन्सन के शब्दों में यह वह धर्म है, जिसके सिद्धान्त की भारतवर्ष में जब तक प्रधानता रही, तब तक ही भारत का इतिहास संसार के इतिहासों में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

सर्वज्ञ भाषित इस धर्म एवं अनुयायियों की आज क्या दशा है, वह हमारे पाठकों से छिपी नहीं है। आज इस जाति के सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक पतन को देखकर ऐसा

कौन सुहृदय बन्धु होगा जिसको इस शोचनीय दशा कर दुख न हो।

बन्धुओं! केवल दुख प्रदर्शित करने से काम नहीं चलेगा, समय कार्य करने का है, यह कर्म युग है। जो समाज इस पतित अवस्था में भी पूज्य जवाहिरलालजी महाराज जैसे युग प्रवर्तक धार्मिक नेता और पूज्य सोहनलालजी, पण्डित-रत्न रत्नचन्द्रजी, गणेशलालजी, घासीलालजी, चौथमलजी, युवराज काशीराम-जी महाराज जैसे महान् पुरुषों को पैदा कर सकती है, उस समाज के लिए तो निराशा एवं दुख का कोई कारण ही नहीं हो सकता। केवल आवश्यकता है कर्मवीरों की।

पूज्य महाराज का विशेष परिचय देना सूर्य को दीपक से दिखाना है। आपसे केवल जैन समाज ही गौरवान्वित् नहीं है किन्तु सारे भारत को और खासकर धार्मिक एवं राष्ट्रीय भारत को तो आप पर अवश्य ही मान हो सकता है। यदि ऐसे मार्तण्ड के प्रकाश में भी हम लोग नहीं जगे तो, इससे बढ़कर हमारे लिए क्या शोचनीय दशा हो सकती है।

मेरी अवस्था आप से छिपी नहीं है, किन्तु पक्का आशावादी हूं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि संसार एक दिन फिर इसी दयामय मार्ग पर चलकर ही शान्ति को प्राप्त होगा। संसार में अटल चिरस्थायी शान्ति स्थापित करने के लिए अहिंसात्मक प्रयोग ही अमोघ अस्त्र सिद्ध होगा जिसका आभास भी महा पुरुषों के जीवन एवं वाणी में प्रत्यक्ष सफल रूप से दीख पड़ रहा है।

संसार में फिर से अहिंसा का नाद होना हमारे लिए सुनहरा प्रभात है। अतएव समाज के वीरों! आलस्य और विलासिता को छोड़ो, उठो! काम में लगो! और अपने त्याग और तप के बल से जैन धर्म का झंडा सारे संसार में फिरसे फहरा दो।

जीवन और जागृति के भावों को फैलाने के लिए समाज में अनेक पत्र पत्रिकाओं की आवश्यकता है; क्यों कि आधुनिक काल में यही एक अच्छा साधन माना जाता है। इसी उद्देश्य को लेकर इस पत्र को जन्म दिया, गया है।

मेरी योग्यता एवं प्रारम्भिक जीवन आप लोगों से छिपा नहीं है। अतएव ऐसे महान् पवित्र एवं गुरुतर कार्य में हाथ डालना केवल मात्र दुराग्रह है। समाज में एक भी ऐसी पत्रिका नहीं है जो धार्मिक जीवन, जागृति एवं बल का संचार करे।

अच्छा होता कोई महानुभाव इस अभाव की पूर्ति करते किन्तु उनकी इस मौन के कारण ही, मैंने अपनी शक्ति के ऊपर यह बोझा लिया है। मूर्खता से कहिये अथवा सेवा के मोह से, गुरुदेव की कृपा में विश्वास कर समाज के महानुभावों के बल पर ही इस कार्य क्षेत्र में उतर रहा हूं।

मेरे पास भाषा नहीं है, केवल भाव हैं सो भी आज कल की पाश्चिमीय सभ्यता में बहे हुए ग्रेज्युएटों के नहीं किन्तु त्यागी महात्माओं के और वे भी मेरी टूटी फूटी जबान में अतएव स्पष्ट रूप से निवेदन कर देना चाहता हूं कि वे भाई जो केवल मनोविनोद के लिये ही इसे अपनावेंगे, उन्हें निराश होना पड़ेगा।

अन्त में यह निवेदन है कि यदि किसी भी अंश में आपने इसे अपनाया तो इस तुच्छ समाज सेवी का उत्साह बढ़ जावेगा और धीरे धीरे त्रुटियों को दूर करता हुआ किसी दिन गुरुदेव की कृपा से यह पत्र समाज का अच्छा सेवक बन जायगा।

धार्मिक विषय

सब जीव सुख चाहते हैं

जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के 'व्याख्यान सारसंग्रह' से उद्धृत।

मनुष्य संसार के तमाम जीवों से महा-बुद्धिशाली माना गया है। यह प्राणी स्व-पर का जितना ज्ञान कर सकता है उतना और कोई भी प्राणी नहीं कर सकता। जिस प्रकार यह अपने सुख दुःख का ज्ञानी होता है, उसी प्रकार उस में यह भी ताकत है कि यह दूसरे प्राणियों के सुख दुःख का ज्ञान प्राप्त कर सके।

वैसे तो हर एक मनुष्य को यह ज्ञान किसी अवस्था तक प्राप्त है पर सर्वांश से उसी महा-पुरुषों को होता है जो तीर्थंकर तथा सर्वज्ञ कहे जाते हैं। साधारण मनुष्य ज्यादह से ज्यादह अपनी चक्षू इन्द्रिय आदि की स्थूल शक्ति जहां तक काम कर सकती है, वहीं तक किसी वस्तु के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकता है, पर तीर्थंकर या सर्वज्ञ कहे जाने वाले महा पुरुषों में वह शक्ति होती है कि दृष्ट-अदृष्ट तमाम वस्तुओं की अर्थात् जीव अजीव की अन्त तक की असलियत का ज्ञान रखते हैं।

यह तो आप जान ही गये होंगे कि जीव अजीव कहने से संसार की तमाम वस्तुओं का ग्रहण हो जाता है। तीर्थंकर प्रमुख सर्वज्ञों ने हमें ज्ञान कराया है कि समस्त जीव सुख के अभिलाषी हैं, कोई भी दुःख को पसन्द नहीं करता।

संसार के जीवों की इतनी प्रकार की जातियें हैं कि हम उनकी गिन्ती नहीं कर सकते। अतएव प्रभू ने हमें इन तमाम जीवों के मोटे पांच भाग कर सब का बोध करा दिया है। वे भाग ये हैं:—

एकेन्द्रि, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय अर्थात् एकेन्द्रिय वाले जीव, दो

इन्द्रिय वाले जीव, तीन इन्द्रिय वाले जीव, चार इन्द्रिय वाले जीव और पांच इन्द्रिय वाले जीव।

पृथ्वी कायिक, अपकायिक, तेजसकायिक, वायु कायिक और बनस्पति आदि की जिनके केवल स्पर्श इन्द्रिय होती है उनकी एकेन्द्रिय जीवों में गिनती है। जिनके स्पर्श और रसेन्द्रिय हो उनकी वेइन्द्रिय जीवों में गिन्ती है जैसे कृमि आदि।

जिनके स्पर्श, रस, घ्राण इन्द्रिय हो उन की तेन्द्रिय जीवों में गिन्ती है। जैसे चींटी आदि।

स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु इन्द्रिय हो उनकी चोरेन्द्रिय जीवों में गिन्ती है जैसे मक्खी आदि।

मनुष्य योनि, तिर्यंच, और देव योनि जिनके स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत हो उनकी पंचेन्द्रिय जीवों में गिनती है।

जल में जीव है यह बात आज के साइन्स ने पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया है। हम आंखों से नहीं देख सकते पर वैज्ञानिकों ने यन्त्रों के द्वारा जल में लाखों हिलते चलते जीव बतलाये हैं। वैसे ही खास स्थावर योनि में जीवों का पिण्ड है। इस से निश्चय हो गया कि जैन का सिद्धान्त सत्य ही है।

जिस प्रकार कई लोग जल में जीव नहीं मानते वैसे ही वनस्पति में भी नहीं मानते। पर विज्ञान के बल से अब यह सन्देह मिट गया है। वैज्ञानिकों ने इन में जीव होना सिद्ध कर दिया है। विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस का नाम आप लोगों ने सुना होगा। ये संसार के बहुत बड़े वैज्ञानिकों में गिने जाते हैं। इन का यूरोप अमेरिका आदि देशों में बड़ा मान किया जाता है। संसार के कई धुरंधर वैज्ञानिक इनको अपना गुरू मानने में सौभाग्य समझते हैं। इन्होंने एक बार 'बनस्पति में जीव है' इसका प्रयोग बम्बई में बतलाया था। दर्शकों की फीस ४०) रु० थी। लोकमान्य तिलक उस जलसे के प्रेसीडेन्ट थे। लोगों की भीड़ बहुत ज्यादह थी। ४०) रु० टिकिट के देने पर भी लोगों को जगह नहीं मिलती थी। जगदीश बाबू जिस समय अपना प्रयोग दिखाने लगे उस समय सामने की लाईन में पौधों के गमले रक्खे। उन गमलों के आगे की तरफ कांच के बड़े २ तख्ते लगाये। फिर सूक्ष्म दर्शक यन्त्र को योग्य स्थान पर सजाकर उपस्थित जन समुदाय से कहा कि आप लोग सामने देखिये, मैं इन पौधों को खुश करता हूं। इतना कह कर बोस बाबू पौधों को हर्षोत्पादक शब्दों में सम्बोधन कर उनकी तारीफ करने लगे। ज्यों २ तारीफ़ करते गये त्यों २ वे पौधे, जैसे किसी आदमी की स्तुति करने पर वह आदमी खुश होता है उसी प्रकार खुश होकर फूलने लगे। पर जब इन्होंने उनकी निन्दा करनी शुरू की, खराब शब्द उनके लिये प्रयोग करने लगे तो वे पौधे मुरझाने लगे। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ उनको विश्वास हो गया कि वृक्षों में जीव होता है।

बोस बाबू इतना ही कर के न रह गये पर उन्होंने वृक्षों में स्नायु जाल है और वह मनुष्यों की तरह स्पन्दित होता है, इसको भी सिद्ध कर बतलाया।

ये एक-दो प्रयोग ४०) रु० खर्च करने पर मालूम पड़े, पर आप जैन सिद्धान्त के लघु दण्डक नामक एक थोकड़े को सीख कर साइन्स का कितना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इन वैज्ञानिकों ने जिस प्रकार वनस्पति में जीव सिद्ध किया है इसी प्रकार धातुओं में भी सिद्ध किया है।

इनका साइन्स अभी अपूर्ण है। पर हमारे आरिहन्तों का साइन्स बहुत बढ़ चढ़ा है। यहां तक पहुंचने में न जाने इनको कितना समय लगेगा इन्होंने अभी एक अंश की खोज की है पर हमारे शास्त्रों ने इनके शरीर अवगाहना आदि का भी वर्णन कर दिया है। ये शास्त्र आज कल के प्रयोगों को देख कर नहीं लिखे गये पर हजारों वर्ष पूर्व के लिखे हुए हैं।

वनस्पति में एक इन्द्रिय मानी जाती है। यहां पर कोई नई शंका कर सकते हैं कि जब इन में एकेन्द्रिय है, कान आदि तो है ही नहीं, फिर निन्दा स्तुति का ज्ञान किस प्रकार से करते होंगे।

जैन शास्त्र के 'आचाराङ्ग' 'विशेष आवश्यक सूत्र' तथा 'ठाणाङ्ग सूत्र' की टीका में इसका बहुत खुलासा किया गया है, वहां देखना चाहिये।

हाल के विज्ञान ने वनस्पति, जल आदि में जीवों की सत्यता प्रकट की, पर अग्नि वायु आदि में अभी तक नहीं कर सका इससे हमको निराश न हो जाना चाहिये। कारण हम पहले ही कह चुके हैं कि यह अभी तक अपूर्ण है। संभव है यह अपनी इसी प्रकार की कोशिश के बल से किसी दिन इस सत्य तक भी पहुंच जाय।

प्यारे मित्रों! जब वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीव भी सुख दुःख का अनुभव करते हैं और दुःख को न चाह कर सुख को पसन्द करते हैं तब अन्य प्राणी भी यही चाहते होंगे, क्या आपको अब भी इस बात में शंका रह सकती है।

नोट—यह लेख श्री साधु मार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम (मालवा) से श्रावक का 'अहिंसा व्रत' 'नामक' पुस्तक से उद्धृत किया, जो उक्त पते से ॥) में मिलती है।

भावना ।

लेखक—श्रीमान् उपाध्याय आत्मारामजी महाराज पंजाबी

हे श्री जिनेन्द्र भगवान् ! अनादि संसार क्र में हम अज्ञान वश परिभ्रमण करते चले पाए हैं। नाना प्रकार के जन्मों में हम शारीरिक और मानसिक दुःखों का अनुभव कर चुके हैं। अतः अब हम आपकी पवित्र शिक्षाओं द्वारा प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखने की इच्छा करते हैं।

हे भगवन् ! हमारे अन्तःकरण की यह भावना है कि हमारा किसी प्राणी से भी द्वेष न हो; अपितु हमारी आत्मा में उनकी रक्षा करने की शक्ति उत्पन्न हो।

हे स्वामिन् ! हमारी यह सदा इच्छा रहती है कि हमारी आत्मा में इस प्रकार का बल और साहस उत्पन्न हो, जिससे हम द्वेष करने वालों की भी भली प्रकार सदा रक्षा कर सकें, और घोर अन्धकार में रहने वाले प्राणियों को आपकी पवित्र शिक्षाओं द्वारा निर्मल बना सकें। हे परमात्मन् ! हम यह भावना करते हैं कि हम आपके समान सर्व जीवों पर दया भाव रखने के योग्य हों तथा इसी प्रकार जगत्-वासी सर्व जीवों को अहिंसक (दयालु) बनाने की योग्यता प्राप्त करें। हमारे मन में सदा इस प्रकार के ही भाव उत्पन्न होते रहें कि जिससे गुणवान पुरुषों को देखते ही हमारा हृदय विकसित व प्रफुल्लित होजावे और उनकी ही संगति में हम लीन रहें तथा दूसरों के प्रति जो ईर्षा भाव उत्पन्न होते हैं वे आपकी पवित्र शिक्षाओं द्वारा अन्तःकरण से सर्वथा नष्ट हो जावें और उनके स्थान में प्रेम के भाव उत्पन्न होते रहें।

हे अनन्त शक्तिवान् ! मैं यह चाहता हूं कि आपके पवित्र जीवन का अनुकरण करूं। निर्गुणों से पृथक् रह कर गुणियों के प्रेम पाश में बंधा रहूं। दुखित जीवों का आश्रय बनूं, उनके दुःख निवारण करने में सदा तत्पर रहूं। दुखियों के आर्तनाद को सुन कर मेरा हृदय करुणा भाव से आर्द्र हो जावे जिससे उनकी यथा शक्ति सहायता व सेवा करने के लिये उद्यत हो सकूं। हे प्रभो ! मेरी यह आकांक्षा है कि प्रत्येक संसारी जीव से मैत्री बनी रहे। दया के बीज मेरे हृदय में अंकुरित हो जावें। जिससे मैं प्राणी मात्र के साथ सहानुभूति कर सकूं। मेरे अन्तःकरण की यह उत्कृष्ट भावना है कि आपकी पवित्र शिक्षाओं के वशीभूत होकर मैं स्वयं प्रेम मूर्ति बनूं और जगत् वासी अन्य जीवों को भी प्रेममूर्ति बनाने में समर्थ हो जाऊं।

हे भगवन् ! निन्दा स्तुति संसार का स्वभाव ही है, मेरे में इस प्रकार की सहन शक्ति हो जिससे मैं निन्दा व स्तुति कर्ताओं पर

बोस बाबू इतना ही कर के न रह गये पर उन्होंने वृक्षों में स्नायु जाल है और वह मनुष्यों की तरह स्पन्दित होता है, इसको भी सिद्ध कर बतलाया।

ये एक-दो प्रयोग ४०) रु० खर्च करने पर मालूम पड़े, पर आप जैन सिद्धान्त के लघु दण्डक नामक एक थोकड़े को सीख कर सा-इन्स का कितना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इन वैज्ञानिकों ने जिस प्रकार वनस्पति में जीव सिद्ध किया है इसी प्रकार धातुओं में भी सिद्ध किया है।

इनका साइन्स अभी अपूर्ण है। पर हमारे आरिहन्तों का साइन्स बहुत बढ़ चढ़ा है। यहां तक पहुंचने में न जाने इनको कितना समय लगेगा इन्होंने अभी एक अंश की खोज की है पर हमारे शास्त्रों ने इनके शरीर अवगाहना आदि का भी वर्णन कर दिया है। ये शास्त्र आज कल के प्रयोगों को देख कर नहीं लिखे गये पर हजारों वर्ष पूर्व के लिखे हुए हैं।

वनस्पति में एक इन्द्रिय मानी जाती है। यहां पर कोई नई शंका कर सकते हैं कि जब इन में एकेन्द्रिय है, कान आदि तो है ही नहीं, फिर निन्दा स्तुति का ज्ञान किस प्रकार से करते होंगे।

जैन शास्त्र के 'आचाराङ्ग' 'विशेष आवश्यक सूत्र' तथा 'ठाणाङ्ग सूत्र' की टीका में इसका बहुत खुलासा किया गया है, वहां देखना चाहिये।

हाल के विज्ञान ने वनस्पति, जल आ.. में जीवों की सत्यता प्रकट की, पर अग्नि वायु आदि में अभी तक नहीं कर सका इससे हमको निराश न हो जाना चाहिये। कारण हम पहले ही कह चुके हैं कि यह अभी तक अपूर्ण है। संभव है यह अपनी इसी प्रकार की कोशिश के बल से किसी दिन इस सत्य तक भी पहुंच जाय।

प्यारे मित्रों! जब वनस्पति आदि एके-न्द्रिय जीव भी सुख दुःख का अनुभव करते हैं और दुःख को न चाह कर सुख को पसन्द करते हैं तब अन्य प्राणी भी यही चाहते होंगे क्या आपको अब भी इस बात में शंका हो सकती है।

नोट—यह लेख श्री साधु मार्गी जैन पूज्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम (मालवा) से श्रावक का 'अहिंसा व्रत' 'नामक' पुस्तक से उद्धृत किया, जो उक्त पते से ॥) में मिलती है।

शिक्षा का उद्देश्य ।

लेखक—प्रो० केसरीलालजी बोरदा एम.ए., एल-एल-बी., प्रोफेसर इन्दौर कालेज

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को सभ्य बनाना है। असभ्य मनुष्य निरा जानवर है। वह प्रकृति के आधीन है और उस पर बहुत ही थोड़ी विजय पासका है। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती है मनुष्य अपनी शक्तियों से प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करता जाता है। अब तो उसने पृथ्वी, भूगर्भ, जल और आकाश सब को वश में कर लिये हैं और उनसे वह अपना कार्य निकालता है, थोड़े ही दिनों में हम कराची से लंदन पहुंच सकते हैं, बात की बात में हजारों मीलों पर संदेश पंहुचा सकते हैं इतना ही नहीं संदेशदाता की आकृति भी देख सकते हैं।

यह सब मनुष्य की शक्तियों के विकास से ही हो सका है, ज्यों ज्यों मनुष्य को अपनी आंतरिक शक्तियों का ज्ञान होता गया मनुष्य जाति अधिक सभ्य अथवा शिक्षित होती गई और प्रकृति की आधीनता से स्वतन्त्र होती गई। शिक्षित होना अथवा सभ्य होना अपनी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का केवल विकास करना है।

यद्यपि शारीरिक शक्तियों का विकास अपेक्षा कृत कम महत्व का है। तथापि यह भी सभ्यता सूचक है असभ्य दशा में मनुष्य ने यह सब देवताओं पर छोड़ रक्खा था, महामारी और चेचक आदि व्याधियों को देवी प्रकोप मानते थे, आजकल भी कई लोग बीमारी को केवल भाग्य-जनित समझ कर उसे रोकने का प्रयत्न नहीं करते, अंतिम कारण तो अवश्य भाग्य ही है पर स्वास्थ्य के (Ultimate) नियमों का उल्लंघन करना प्रथम (Immediate) कारण है, अब तो मनुष्य जाति ने लगभग प्रत्येक बीमारी का कारण ढूंढ निकाला है और स्वास्थ्य के कुछ नियम ऐसे बना लिये हैं जिन पर चलने से व्याधि की संभावना बहुत ही कम हो जाती है शिक्षित मनुष्य इन नियमों पर चल कर अपने स्वास्थ्य को बनाये रखता है, वह भोजन स्वास्थ्य के लिये करता है न कि स्वाद के लिये, इसी प्रकार स्वास्थ्यदायक कपड़े पहिनता है हवादार मकान में रहता है और हर प्रकार से विचार रखता है कि उसकी शारिरिक शक्तियों का ह्रास न हो।

मनुष्य की शारीरिक शक्तियों का विकास करने में उसकी मानसिक शक्तियों ने बड़ा भाग लिया है, हर विषय में शोध कर ज्ञान प्राप्त करना मानव जाति की सभ्यता का मुख्य कारण है, किसी भी बात के कारण जानने की उत्सुकता वैज्ञानिक शोध की जड़ है और शिक्षा का चिन्ह भी है, शिक्षित पुरुष स्वयं विचार कर अपनी राय कायम करता है और लोगों की राय बिना जांच किये मान नहीं लेता, जो

सदा काल सम दृष्टि रक्खूं । निन्दा करने वाले पर घृणा अथवा स्तुति करने वाले पर प्रसन्नता प्रकट नहीं करूं । अपितु मेरी इच्छा है कि मेरे में ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जिससे मैं निन्दक को भी सत्पथ पर लाकर आपकी ही स्तुति में प्रस्तुत कर सकूं ।

हे वीतराग प्रभो ! जो अनभिज्ञ आत्माएं आपके पवित्र शासन की निन्दा करती हैं उनको सत्पथ में लाने के लिये मेरी आत्मा में अनन्त बल उत्पन्न हो । मेरे यह भाव सदा बने रहने चाहिये कि निन्दक आत्माओं में माध्यस्थ भाव रखते हुए भी मैं उनके उद्धार में रहूं । हे नाथ ! मैं धन्य हूंगा यदि मेरी आपके शासन में अत्यन्त दृढ़ता बनी रहे, मुझे यदि भयंकर से भी भयंकर कष्टों का सामना करना पड़े तो भी मैं अपनी दृढ़ता से विचलित न हो सकूं । मेरी श्रद्धा और भक्ति आपके ही शासन में परम प्रबल हो, क्योंकि इसी श्रद्धा और भक्ति से मेरा संसार समुद्र से पार होना निश्चित् है । हे शासनदेव ! मेरी आत्मा आठों प्रकार के कर्मों से रहित होकर सिद्ध गति को शीघ्र से शीघ्र प्राप्त हो यही मेरे भाव सदा रहते हैं । आपकी शिक्षाओं से विभूषित होते हुए प्रत्येक प्राणी को मैं सदाचारी बना सकूं । यही भावना सदा चिन्तन करता रहूं ।

हे परम रक्षक ! मेरी आत्मा हिंसा झूंठ चोरी मैथुन और परिग्रह से रहित होकर सदा परोपकार में ही लगी रहे । मेरा जीवन सद्गुणों से अलंकृत होकर जगत् वासी जीवों के लिये आदर्श रूप बने यही अन्तःकरण में मेरे भाव रहते हैं । अतएव हे जिनेन्द्र ! आप संसार समुद्र से जीवों को पार करने वाले हैं । अतः मेरे पर भी कृपा कीजिये । जिस प्रकार गोप एक दण्ड से सर्व गोवर्ग की रक्षा करता है । उसी प्रकार आप हमारी भी धर्म दण्ड से रक्षा कीजिये । तथा जिस प्रकार गोप दण्ड से गोवर्ग की रक्षा करता हुआ उस वर्ग को बाड़े में पहुंचाता है, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करते हुए हमें मोक्ष द्वार में प्रविष्ट कीजिये ।

हे जिनेन्द्र ! हमें निर्मल ज्ञान (सद्विद्या) प्राप्त हो जिससे अन्य प्राणियों में भी हम उस ज्ञान द्वारा प्रकाश कर सकें । हमें परम समाधी दीजिये जिससे हम अक्षय सुख को उपलब्ध कर सकें । तथा हे परमात्मन् आप हमारे हृदय में ज्ञान द्वारा व्यापक होते हुए हमारी आत्मा में प्रकाश मान हूजिये, जिससे हमको सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति हो, और प्रत्येक प्राणी के हित करने में हम समर्थ हो जावें । हमें सद्विद्या का दान दीजिये जिसके बल से फिर हम प्रत्येक प्राणी के दुःख निवृत करने में समर्थ हो जावें ।

इन्द्रिय धर्म की पालना कर रहे हैं, परन्तु सम्राट प्रजा को एक सूत्र में बांधकर न्याय मार्ग का दर्शन करा रहा है। जिस प्रकार सूत्र की माला मणियें द्वारा अपने इष्ट के पास पहुंचा देती है ठीक उसी प्रकार सम्राट् प्रजा को न्याय के दर्शन करा रहा है।

प्रजा और राजा का सूर्य और किरणों वाला परस्पर सम्बन्ध है। जिससे राज्य में सर्वत्र कान्ति विस्तृत हो रही है। आज श्रावण मास अपनी कृष्णवर्ण वाली मेघ मालाओं को लेकर नगर पर धावा कर रहा है। नागरिक दत्तचित्त होकर नाना प्रकार के आनन्द मना रहे हैं। नगर के चारों ओर मेघ माला ने अपने गुण (जल) से पृथ्वी जलमयी कर दी है, नाना प्रकार की वनस्पति और पुष्प वाटिकाएं स्वयं खिलकर लोगों के चित्त को आह्लाद उत्पन्न कर रही है।

जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर किरणें दृष्टिगोचर होती हैं ठीक उसी प्रकार प्रजा चारों ओर से सुखी ही दीख रही है। क्योंकि राजा की न्याय शीलता से प्रजा के धन और परिवार की सर्व प्रकार से वृद्धि हो रही है, वहीं पर एक पुष्प वाटिका में संगमरमर की शिला पर जैनेन्द्र-कुमार और आर्य-कुमार नाम के दो मित्र बैठे हुए धर्म कथा कर रहे हैं और इस बात का विचार और चर्चा वार २ हो रही है कि धर्म कितने प्रकार से वर्णन किया गया है और धर्ममार्ग कितने हैं, क्योंकि जिस प्रकार पुष्प वाटिकाओं के सौंदर्य का मूल कारण जल है। ठीक उसी प्रकार स्वर्ग और मोक्ष के सुखों का अनुभव करने वाला एक धर्म है। तथा यावत्मात्र मनुष्य जन्म के सुखों को देखा जाता है वह सब धर्म का ही फल है। जिस प्रकार पथ्य जल वायु रोग की निवृत्ति कराकर आरोग्यता प्रदान करता है। ठीक उसी प्रकार दुःखों से विमुक्त कर धर्म जीव को सुगति पथ में स्थापन करता है। परन्तु प्रत्येक प्राणी ने धर्म की व्याख्या अपने मन्तव्यानुसार भिन्न २ प्रकार से की है। अतएव धर्म विषय में बहुत से लोगों का मत भेद हो गया है। इतना ही नहीं किन्तु अब वह धर्म वाद विवाद के रूप को धारण कर गया है। जिसके कारण से लाखों जीव अपने प्रिय प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। अर्थात् धर्म के नाम पर लाखों जीव मारे जा रहे हैं सो उनको कारण धर्म के भेदों को न जाना ही है।

इस बात के निर्णय के लिये जैनेन्द्र-कुमार से आर्य-कुमार अपने मन में उत्पन्न हुए संशयों को निम्न प्रकार से कहने लगा। मित्र जैनेन्द्र-कुमार! धर्म के मार्ग कितने वर्णन किये गये हैं क्योंकि यावत्काल मार्ग का बोध नहीं होता तावत्काल पर्यन्त आत्मा अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। अतः लक्ष्य अवश्य ही होना चाहिये।

इस प्रकार के प्रश्न किये जाने पर जैनेन्द्र कुमार अपने प्रिय सुहृद आर्य-कुमार से कहने लगा कि हे वत्स्य! श्री भगवान् ने धर्म के चार मार्ग प्रतिपादन किये हैं। क्षमाभाव, मुक्तभाव, आर्जवभाव, मार्दवभाव, क्योंकि क्षमावान आत्मा ही धर्म पथ में आरूढ़ हो सकता है। इसी प्रकार निर्लोभी आत्मा वा ऋजु तथा सकोमल वृत्तिवाला आत्मा धर्म पंथ में चल सकता है। अतएव संसार मार्ग से विमुक्त होने के लिये धर्म द्वारों का अवश्यमेव अवलम्बन करना चाहिये।

आर्य कुमार—प्रिय! श्री भगवान् ने धर्म को कितने प्रकार से प्रति पादन किया है।

जैनेन्द्र-कुमार—मित्र तीन प्रकार से।

आर्य-कुमार—सुहृद्वर्य! वे तीन प्रकार कौन कौन से हैं।

जैनेन्द्र-कुमार—वयस्य! भली प्रकार से पठन करना, फिर ध्यान करना, फिर तप करना।

केवल पुस्तकें पढ़ कर परीक्षा के समय उगल सके वह शिक्षित नहीं कहा जा सकता, कोई एम. ए., अथवा एल-एल. बी., भी पास कर ले पर स्वयं विचार न कर सके तो वह शिक्षित नहीं।

नैतिक (Moral) अथवा आत्मिक शक्तियों का विकास शिक्षा में और भी अधिक महत्व का है, कोई चाहे कितनी ही किताबें पढ़ले, कितनी ही शारीरिक शक्ति उपार्जन करले जब तक उसका आत्मिक शक्तियों का विकास नहीं होगा वह पूर्ण शिक्षित नहीं कहा जा सकता। जितना ही इन शक्तियों का विकास आप में अधिक होगा उतना ही आप में अन्य प्राणियों से प्रेम अधिक होगा, जो पुरुष अपने देश व समाज की सेवा में जीवन लगा देता है वह चाहे पुस्तक ज्ञान से बिलकुल ही कोरा क्यों न हो अवश्य शिक्षित है, जो अपना जीवन जन सेवा में लगावेंगे उनमें क्षमा, सहनशीलता, सादगी, निस्वार्थता और निर्भयता अवश्य होगी अन्यथा आप जन सेवा भली भांति कर ही नहीं सकते, आपके सेवा मार्ग में चाहे कितने ही विघ्न आवें आपको तो अपने कर्त्तव्य पथ पर डटे ही रहना होगा, समाजसुधार में चाहे वह समाज भी आपकी बातों पर क्रुद्ध हो जावे आपको टलना नहीं होगा, तब ही आप शिक्षित एवं समाज सेवक हैं। और यही आत्मिक शक्तियों के विकास का चिन्ह है।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को सभ्य बनाना अथवा मनुष्य की शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का बिकास करना है, इन शक्तियों के विकास करने में चाहे कितनी ही कठिनाइयां क्यों न आवें शिक्षित मनुष्य उनकी परवाह नहीं करता और सत्यमार्ग पर हमेशा अड़ा रहता है, वह स्वतंत्र है, समाज के अनुचित बंधनों से जकड़ा नहीं रहता।

शिक्षित मनुष्य के चिन्ह नैसर्गिक जीवन, कारण जानने की उत्सुकता, विचार शक्ति, जन सेवा में स्वार्थ-बलिदान, निर्भयता और स्वतंत्रता है।

धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता।

लेखक—श्रीमान् उपाध्याय जैन मुनि श्री आत्मारामजी महाराज पंजाबी

भारत वर्ष के जम्बूद्वीप में एक अचलपुर नामक नगर बसता है। जो नागरिक गुणों से युक्त होने से अलकापुरी का उपहास कर रहा है। उसके बाजारों की श्रेणियें पथिक और दर्शक जनों के चित्त को आकर्षण कर रही हैं। व्यापारी सब व्यापार करने में दत्त चित्त होकर व्यापार के पथ में लगे हुए हैं। राज्य कर्मचारीगण न्याय मार्ग की खोज कर रहे हैं। धर्मात्मा जन धर्म की ओर लगकर लोगों को धर्म पथ में चला रहे हैं। कामी जन भोग विलास की सामग्री प्राप्त कर

नया रोग ।

(लेखक—श्रीमान् महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी)

आज कल कहते हैं कि एक नया रोग फैलने लगा है, रोग नया है कि पुराना इसकी तो ईश्वर ही जाने परन्तु है वह बहुत भयानक।

कहते हैं बूढ़े मनुष्यों को और ग्रामीण लोगों को यह इतना नहीं होता है। परन्तु यदि बूढे मनुष्यों को आघेरता है तो फिर उनकी बहुत ही मिट्टी पलीद करता है।

इस रोग के रोगियों को देखकर खेद भी होता है और हँसी भी आती है।

पूर्व रूप—इस रोग में पहले २ नेत्रों पर कांच आने लगते हैं। फिर रोगी को उन्माद दशा घेर लेती है। किसी को भी असली रूप में देखने का भाव नहीं रहता।

निदान—पीछे जाते इसमें जीभ तुतलाने लगती जाती है। हाथों से भोजन नहीं किया जाता। रोगी आबदस्त भी नहीं लेता। खड़ा २ ही मूत्र त्याग करता है और सीधी धरती पर उससे नहीं बैठा जाता और बैठे भी तो पांव लम्बे करके बैठता है और बैल मूतनी कैसे रंगीटे करता है और निरन्तर हाथ में कुछ लम्बा सा पदार्थ लेकर उसे चूंसा करता है और उसे खौलता हुआ पानी भी ज्यादह अच्छा लगता है। घास उबाल कर भी पीता है। मुर्गी के अण्डे खाने के लिये बहुत ही विकल रहता है। पद्दी ऊंची रखकर चलता है। तालियें पीटता है। मुख के महावर लगाता है और वह रोग जब असाध्य हो जाता है तब इसका रोगी दूसरे मनुष्यों को फूल कहता है। डुरटिएं देने लग जाता है। इस रोग के लिये ऐसा भी कहते हैं कि यह संक्रामक (छूने से लग जाने वाला) है विशेष कर यह मस्तक की निर्वलता (दिमागी कमज़ोरी) वाले को जल्द लगता है और लोगों की ऐसी राय है कि यह रोग हुए पीछे मिटता मुश्किल से है। इस रोग वाले से दूर रहना ही श्रेयस्कर है कितने ही लोग इसको कंठमाला की भांति कोई गले की व्याधि भी कहते हैं।

क्योंकि रोगी प्रायः गले पर पाटा बांधे करते कोई इसे सिर शूल की भांति मस्तक की व्याधि बताते हैं क्योंकि रोगी माथे पर औंधी टोकरी रखता है। कितनों ही का मत है कि यह कोई मानसिक व्याधि है और रोगी अपने खयालातों का शिकार हो जाता है जिसे देशी भाषा में डोलो उथल जाना कहते हैं इससे रोगी की छाती पर और कलाई पर लोह की सूइयों वाला एक यन्त्र बांधा जाता है। इस रोग में हाथ पैर ठंडे पड़ जाने की बात भी कही जाती है क्योंकि रोगी हाथों को और पैरों को प्रायः थैलियों में डाले रहता है।

इस रोग में जीभ कड़वी हो जाती है चित्त विभ्रम हो जाता है। इस रोग वाला अगर डरे तो बिल्ली की छांह से ही डर जाता है और नहीं डरे तो राम से भी नहीं डरता। इससे बहुत से लोग इसे प्रेत बाधा बताते हैं, क्योंकि इसमें रोगी की आंखें फट जाती हैं, सीटी देने लगता है। उंगलियों के आघात द्वारा बर्तन बजाने लगता है। पिछली सब बातें भूल कर नई नई अभूत पूर्व बातें बकने लग जाता है। ईश्वर जाने यह क्या व्याधि है और क्यों होती है।

कितने ही लोगों का कथन है कि रोग पाश्चात्य देशों से आया है। परन्तु पाश्चात्य लोगों से पूछा और उन्हें देखे तो विदित हुआ कि वहां पर इसकी कोई चर्चा नहीं है। इस रोग को 'नवीन

आर्य-कुमार—सखे ! आप तो एक नूतन बात ही सुनाते हो, क्योंकि मैंने तो यह सुना था कि श्री भगवान् ने, अहिंसा में धर्म प्रतिपादन किया है।

जैनेन्द्र-कुमार—मित्र ! भला विचारने की बात है कि, विना पठन किये अहिंसा किस प्रकार पल सकती है अतएव ! अहिंसा धर्म पालन के लिये प्रथम ज्ञान की परमावश्यकता है।

आर्य-कुमार—सुहृद्वर्य ! जब अहिंसा धर्म ग्रहण किया गया तब जीवों का ज्ञान स्वयमेव ही हो जाता है, अतः पठन करने की फिर आवश्यकता ही क्या है।

जैनेन्द्र-कुमार—प्रियवर, जब तक जीवों को ज्ञान नहीं होगा तब तक उन जीवों की दया किस प्रकार पल सकती है अतः श्री भगवान् ने प्रथम स्थान ज्ञान को ही दिया है किन्तु चरित्र धर्म को तृतीय अङ्क में रक्खा है।

आर्य-कुमार—मित्र ! वे तीन अङ्क कौन २ से हैं।

जैनेन्द्र-कुमार—सखे ! सम्यगज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चरित्र, यह तीनों ही मोक्ष के मार्ग हैं।

आर्य-कुमार—क्या बिना ज्ञान अहिंसा धर्म सर्वथा पल नहीं सकता।

जैनेन्द्र-कुमार—नहीं, क्योंकि ज्ञान कारण है, और दया कार्य है।

आर्य-कुमार—ज्ञान को दया का कारण किस स्थान पर वर्णन किया है।

जैनेन्द्र-कुमार—मित्रवर ! दशवैं कालिकसूत्र के चतुर्थ अध्ययन की १०वीं गाथा में लिखा है कि—

पढ मं नाणं त ओ दया एवं
चिट्ठक सं व सं जए
अन्नाणी किं काही किं वा
नाहिक छेय पावे गं ॥ १० ॥

इस गाथा में यह भाव वर्णन किया गया है कि प्रथम ज्ञान है तदनु दया है इस प्रकार सब संयत् जन मानते हैं अज्ञानी जन क्या करेगा। अतएव प्रथम धर्म श्री भगवान् ने पठन करना ही प्रतिपादन किया है।

आर्य-कुमार—इससे तो यह सिद्ध हुआ कि जो पढ़ नहीं सकता वह अहिंसा धर्म भी पालन नहीं कर सकता।

जैनेन्द्र-कुमार—सखे ! ऐसे मत कहो ! क्योंकि जैन धर्म अनेकान्त (स्याद्वाद) वाद है अतः इस में उत्सर्ग और अपवाद दोनों मार्ग मानने पड़ते हैं सो अपवाद मार्ग के आश्रित होकर सूत्र में वर्णन किया है कि जो पढ़ नहीं सकता वो धर्म को योग्य व्यक्तियों से श्रवण करे। जैसे कि—

सोच्चा जाणक कल्लाणं
सोच्चा जाणक पावगं
उभयं पि जाणक सोच्चा
जं सेयं (छेयं) तं समायरे
(दशवै कालिक अ० ४० गा० ॥ ११ ॥)

इस गाथा का यह भाव है कि कल्याण के मार्ग को सुनकर जानता है। और सुनकर ही पाप के मार्ग को जानता है, दोनों मार्गों को सुनकर जानता है जो श्रेयस्कर हो वह समाचरण करे। सो इस गाथा में इसी बात का प्रकाश किया गया है कि यदि पठनादि क्रियाओं का संयोग उपलब्ध न हो सके तब प्रत्येक व्यक्ति को योग्य है कि वह सुनकर पुण्य और पाप के मार्ग को जान लेवें।

क्रमशः

विदेशी खांड खाना पाप है।

(लेखक—श्रीमान् पुष्करलालजी अध्यापक जैन दिगम्बर पाठशाला)

मनका दुखड़ा किसे सुनावें, नहीं कोई सुनना चाहता है।
कौन सुनेगा किसे सुनावें, धर्म भाव नहीं रुचता है॥
भारत में जब अन्न नहीं मिलता, मोरिशही को जाते हैं।
दश दश घन्टे सांटे काटे, रोते रोते जाते हैं॥

महावीर के भक्त कहावें, दया धर्म सब भूले हैं।
सिर्फ बैठ का बगल दबाये, धर्म स्थानक में हम जाते हैं॥
खान पान सब मलिन हुवा है, राग द्वेष हम करते हैं।
खांड विदेशी सब कोई खाते, चेतो हम क्या करते हैं॥

खांड विदेशी जितनी आती, हड्डियां उन में पड़ती है।
पाप सरासर क्यों हम खाते, सस्ती सस्ती पड़ती है॥
तब मनुष्य नहीं हम पशू तुल्य हैं, बाजी हमने हारी है।
हड्डियां खाते मजे उड़ाते, तब तो बातें कोरी हैं॥

जर्मन, जावा, कूबा यह सब, चीनी हमको देते हैं।
शश्य श्यामला भूमी अपनी, तो भी पर को तकते हैं॥
रत्नलालजी वैश्य जाति में, येह सब बातें ठानी हैं।
धर्म भाव से प्रेरित होकर, जाती सेवा ठानी है॥

देशी खावें देशी पहिनें, देशी चाल चलें भाई।
मरना होवे स्वदेश भूमि में, जन्मे फिर भी यहां आई॥
प्रण करते हैं कृष्ण नहीं हम, खांड विदेशी खावेंगे।
मर जावेंगे डटे रहेंगे, धर्म टेक नहीं छोड़ेंगे॥

गन्ने की पवित्र शक्कर या गुड़ काम में लाया जाय तो तन्दुरुस्ती के लिये लाभ दायक है। यह मोरस शक्कर स्वास्थ्य, धर्म और धन की रक्षा के लिये सर्वथा त्याज्य है। जिह्वा इन्द्रिय को वश में करना तथा इन्द्रिय दमन तो हम भारत वासियों के लिये एक बड़ा भारी तप माना गया है। जो अपनी एक इन्द्रिय को मोरस खांड खाने के विषय में लगा देता है उस मनुष्य की तन्दुरुस्ती का नाश हो जाता है। जो तप व त्याग को धर्म समझ मोरस खांड नहीं खाता है वह अनेक बीमारियों से बचकर तन्दुरस्त रहता है।

सभ्यता' भी कहते हैं और अंग्रेजी में इसका नाम 'न्यू फेशन' है अपने इधर इसको देखा देखी का रोग कहा करते हैं और इसकी एक कहावत भी है:—

देखादेखी साजे जोग। छीजे काया बधे रोग।

इसका नाम श्रीमद्‌भागवतगीता में परम धर्म लिखा है और यह भी लिखा है कि मरजाना तो अच्छा परन्तु यह रोग होना बहुत बुरा है (स्वधर्मेनिधनं श्रेयः परधर्मोभयावहः) परमात्मा भारत वासियों को इस रोग से मुक्त करे।

'मस्तक पुरके वाग्विलास यन्त्रालय' द्वारा छप कर प्रकाशित होने वाले 'रचना' नामक दैनिक पत्र से उद्धृत।

(प्रभा से उद्धृत)

विदेशी शक्कर से हानि।

लेखक—श्रीमान डाक्टर नारायणदत्तजी आयुर्वेद भूषण म्युनिसिपिल कमिश्नर उदयपुर

मोरस शक्कर, बम्बई की शक्कर, दानेदार शक्कर आदि नामों से प्रसिद्ध है। जो एक प्रकार की सफेद शक्कर बाजार में मिलती है उसे खाने वाले बदहज़मी संग्रहणी, पेचिश, स्वप्नदोष, गर्मी, सुज़ाक, नेत्ररोग, खून विकार, आधाशीशी, सिर दर्द, थाईसेस, विषम ज्वर, ताव तेजरा आदि अनेक प्रकार के भयंकर रोगों से कदापि नहीं बच सकते, शक्कर की तासीर ठंडक व रक्त को शुद्ध करती है लेकिन यह शक्कर गरम व खून को बिगाड़ने वाली है, यह गन्ने की नहीं होती बल्कि चुकन्दर, ताड़ खजूर आदि अनेक वृक्षों से निकाली जाती है। इसके अतिरिक्त इसे तैयार करने का व्यापारिक ढंग है जिससे उसके थोड़े बहुत गुण भी नष्ट हो जाता हैं, सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब से इसको काम में लाने लगे तब से तन्दुरुस्ती में बहुत हानि पहुंची है। क्योंकि इसके बनाने में हड्डियों का प्रयोग खूब किया जाता है। यानि (Animal Charcoal) से शुद्ध करते हैं जिस तरह नशेबाज आदमी अपने २ नशे को निर्दोषी साबित करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार मोरस शक्कर के खाने वालों ने भी झूठी २ बातें गढ़ कर लोगों का धर्म भ्रष्ट कर भारत को रोग का घर बना दिया है और हमारे नवयुवक समाज को अनेक रोगों के मुंह में डाल दिया। सैकड़ों मरीजों को निरीक्षण करने, मुझे जाना पड़ता है तो अकसर ज्यादह तादाद में इस मोरस खांड को काम में लाने वाले ही बीमार मिलते हैं, इसलिये मोरस खांड को खाकर बीमार होने वाले भाइयों से मेरा निवेदन है।

हमारा भारतवर्ष गरम देश है, यहां खून को गर्मी पहुंचाने वाले पदार्थों का सेवन, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। ठंडे देश के निवासी इस मोरस शक्कर को काम में लाकर स्वस्थ रह सकते हैं क्योंकि वे शीत प्रकृति के मनुष्य हैं, साथ ही खून, हड्डी, मांस आदि उनका भक्षण है यदि उनके लिये वह अमृत है तो हमारे लिये विष है, क्योंकि दोनों देशों का जल वायु एक दूसरे से विपरीत है, हमारे देश बन्धुओं को यह ध्यान में रख लेना चाहिये कि विदेशी निकम्मो शक्कर की जगह देशी

विदेशी खांड खाना पाप है।

(लेखक—श्रीमान् पुष्करलालजी अध्यापक जैन दिगम्बर पाठशाला)

मनका दुखड़ा किसे सुनावें, नहीं कोई सुनना चाहता है।
कौन सुनेगा किसे सुनावें, धर्म भाव नहीं रुचता है॥
भारत में जब अन्न नहीं मिलता, मोरिशही को जाते हैं।
दश दश घन्टे सांटे काटे, रोते रोते जाते हैं॥

महावीर के भक्त कहावें, दया धर्म सब भूले हैं।
सिर्फ बैठ का बगल दबाये, धर्म स्थानक में हम जाते हैं॥
खान पान सब मलिन हुवा है, राग द्वेष हम करते हैं।
खांड विदेशी सब कोई खाते, चेतो हम क्या करते हैं॥

खांड विदेशी जितनी आती, हड्डियां उन में पड़ती है।
पाप सरासर क्यों हम खाते, सस्ती सस्ती पड़ती है॥
तब मनुष्य नहीं हम पशू तुल्य हैं, बाजी हमने हारी है।
हड्डियां खाते मजे उड़ाते, तब तो बातें कोरी हैं॥

ान, जावा, कूवा यह सब, चीनी हमको देते हैं।
स्य श्यामला भूमी अपनी, तो भी पर को तकते हैं॥
नलालजी वैश्य जाति में, येह सब बातें ठानी हैं।
र्म भाव से प्रेरित होकर, जाती सेवा ठानी है॥

देशी खावें देशी पहिनें, देशी चाल चलें भाई।
मरना होवे स्वदेश भूमि में, जन्मे फिर भी यहां आई॥
प्रण करते हैं कृष्ण नहीं हम, खांड विदेशी खावेंगे।
मर जावेंगे डटे रहेंगे, धर्म टेक नहीं छोड़ेंगे॥

गन्ने की पवित्र शक्कर या गुड़ काम में लाया जाय तो तन्दुरुस्ती के लिये लाभ दायक है। यह मोरस शक्कर स्वास्थ्य, धर्म और धन की रक्षा के लिये सर्वथा त्याज्य है। जिह्वा इन्द्रिय को वश में करना तथा इन्द्रिय दमन तो हम भारत वासियों के लिये एक बड़ा भारी तप माना गया है। जो अपनी एक इन्द्रिय को मोरस खांड खाने के विषय में लगा देता है उस मनुष्य की तन्दुरुस्ती का नाश हो जाता है। जो तप व त्याग को धर्म समझ मोरस खांड नहीं खाता है वह अनेक बीमारियों से बचकर तन्दुरस्त रहता है।

जैन धर्म और अजैन संसार ।

जैन धर्म अनादि है यह विषय निर्विवाद तथा मत भेद रहित है ।

लोकमान्य महात्मा तिलक.

मनुष्यों की तरक्की के लिये जैन धर्म का चरित्र बहुत लाभकारी है । यह धर्म बहुत ही असली, स्वतन्त्र, सादा और बहुत मूल्यवान है ।

डाक्टर ए० गिरनाट पेरिस.

कैसे उत्तम नियम और ऊँचे विचार जैन धर्म और जैन आचार्यों में हैं ।

डाक्टर जोहन्नेस हल्टर जर्मनी.

जैन धर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है कि जिस की उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है ।

लाला कन्नूमलजी धोलपुर ।

निस्सन्देह जैन धर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यह ही मनुष्य मात्र का एक आदि धर्म है ।

मि० आवे जे० ए० डवाई मिश्नरी ।

जैन निरामिष भोजी (मांस त्यागी) क्षत्रियों का धर्म है ।

वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम. ए., बंगला ।

प्राचीन काल में जैनियों ने उत्कृष्ट पराक्रम वा राज्य भार का परिचालन किया है ।

रा. रा. वामन गोविन्द आपटे बी. ए. इन्दौर.

जैन धर्म सर्वथा स्वतन्त्र धर्म है ।

सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ प्रोफेसर डा. हर्मन जेकोबी एम. ए. पी. एच. डी. बोन जर्मनी ।

मैं जैन सिद्धान्तों के सूक्ष्म तत्त्वों से गहरा प्रेम करता हूं ।

मुहम्मद हाफ़िज सैयद बी. एल. टी. थियोसोफिकल हाई स्कूल, कानपुर ।

व्यवहारिक योगाभ्यास के लिये यह साहित्य सब से प्राचीन है ।

रायबहादुर पूर्णेन्दु नारायणसिंह, एम. ए. बांकीपुर ।

जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा, जैन सिद्धान्त पर खंडन को पढ़ा है, तब से मुझे विश्वास हुआ कि, इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है, जिसको वेदान्त के आचार्य ने नहीं समझा और जो कुछ अब तक मैं जैन धर्म को जान सका हूं उस से मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यदि वह जैन धर्म को उसके असली ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाता तो उनको जैन धर्म के विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती ।

महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा एम. ए. एल. एल. डी. इलाहबाद.

मुझको जैन तीर्थंकरों की शिक्षा पर अतिशय भक्ति है ।

नैपालचन्द्र अधिष्ठाता ब्रह्मचर्याश्रम, शान्ति निकेतन (बोलपुर).

मुझे जैन सिद्धान्त का बहुत शौक है क्योंकि कर्मसिद्धान्त का इस में सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है ।

एम. डी. पाण्डे थियोसोफिकल सोसायटी, बनारस.

महावीर ने डीडींमनाद से हिन्द में ऐसा सन्देश फैलाया कि—धर्म यह मात्र सामाजिक रूढ़ी नहीं है परन्तु वास्तविक सत्य है, मोक्ष यह बाहरी क्रिया काण्ड पालने से नहीं मिलता, परन्तु सत्य स्वरूप धर्म में आश्रय लेने से ही मिलता है और धर्म और मनुष्य में कोई स्थाई भेद नहीं रह सकता । कहते आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षा ने समाज के हृदय में जड़ कर के बैठी हुई

भावना रूपी विघ्नों को त्वरा से भेद दिये और देश को वशीभूत कर लिया, इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकों के प्रभाव बल से ब्राह्मणों की सत्ता अभिच्युत हो गई थी।

रविन्द्रनाथ टागोर.

ईर्षा द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुए जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी ही होता रहा है। इस प्रकार जिसका वर्णन है वह अर्हन् देव साक्षात् परमेश्वर (विष्णु) स्वरूप है। इसके प्रमाण भी आर्य ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

स्वामी विरूपाक्ष वडीयर धर्म भूषण

भारतवर्ष में जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसके अनुयायी (साधुओं मुनियों) और आचार्यों में से अनेक जनों ने धर्मोपदेशक के साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थ-रचना और ग्रन्थ संग्रह में खर्च कर दिया है।

महावीरप्रसादजी द्विवेदी.

जैन धर्म की उपयोगिता को सार्वरूप से पश्चिमीय विद्वानों को स्वीकार करना चाहिये।

डाक्टर जौली प्रोफेसर.

संस्कृत वृज वर्ग युनिवर सिटी जर्मनी।

साफ प्रकट है कि भारत वर्ष का अधः पतन जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था बल्कि जब तक भारत वर्ष में जैन धर्म की प्रधानता रही थी तब तक उसका इतिहास स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाने योग्य है और भारत वर्ष का ह्रास का मुख्य कारण आपसी प्रतिस्पर्धामय अनैक्यता है।

पाश्चात्य विद्वान् रेवरेन्ड जे. स्टीवेसन्स.

—क्रमशः

स्वर्गीय संगीत

(श्रीमान् श्रद्धेयमहाराज साहब श्री चतुरसिंहजी)

या मनखां मोटी बात मरणों जाणणों ॥ स्थायी ॥

मरणो २ शारा ही केवे, मरे सवी नर नारी रे।
मरवा पेली जो मर जाणे, तो वलिहारी रे ॥ १ ॥

जीवा सूं सगळो जग राजी, मरणो मन नी भावे रे।
राजा रंक शरीखो सवरे तोपण आवे रे ॥ २ ॥

दूजा भूप डरप म्लेच्छां री कीदी तावेदारी रे।
वीर प्रताप जाणने मरणों, टेक न टाली रे ॥ ३ ॥

गुरू गोविन्द रो वामण भूल्यो, वालक दो चुणवाया रे।
मामाशाह धणघाने धन दे, जाता लाया रे ॥ ४ ॥

मरवाने बनवीर वीसरयो, धाय याद करलीदो रे ।
चूंखायां रे शाटे जायो, जातो कीदो रे ॥ ५ ॥

मरवाने जो जाणे वींसूं, पाप करमनी व्हेवेरे ।
सुख दुखरी परवानी राखे, प्रभुने शेवे रे ॥ ६ ॥

मरने जाव रामने देणों, या जीरे मन लागी रे ।
'चातुर' चरण वणीरे लागे, वो वड़ भागी रे ॥ ७ ॥

पालीवाल प्रभा—

श्रद्धेय महाराज साहब चतुरसिंहजी ।

माताओं के प्रति

बेना आंपाँ ओछी नी हां ।

ओछी मतरे कणी कियो के, नीच जात नारी हां ।
नारी हांतो कई वीयो म्हे, म्हारां री नारी हां ॥ बेना०

सुख में सदा पछाड़ी री हां, दुःख में आगे ही हां ।
माथो काट हाथ शूँ मेल्यो, प्रीतम पेली गी हां ॥ बेना०

हातां पेट फाड़ पाप्या सूं, म्हे ललकार लड़ी हां ।
हंसती धसी धधकती में, म्हे अब पण वीरी वी हां ॥ बेना०

सुवरण पुरी शीश दश ऊपर म्हें थूंकण वाली हां ।
सत्यवान रो प्राण बचायो जम सूं पण जीती हां ॥ बेना०
सिद्धराज रो शाप न लागो, कियो कई बुगली हां ।

कोडयो खोडयो पति उंचायने वैश्या रे लेगी हां ॥ बेना०
शूरांरे जनमी हां आंपा शूरांरे परणी हां ।
शूरां री जननी हां आपां, पोतेई शूरी हां ॥ बेना०

—त्याग भूमि से.

गौ धन की रक्षा करो ।

भगवान् महावीर स्वामी ने अहिंसाधर्म का झंडा इस भारत भूमि में फहराया था उस समय इस देश में लाखों व्रतधारी श्रावक व करोड़ों उनके अनुयायी मनुष्य थे और उस समय यह देव दुर्लभ भूमि घी दूध का उद्भव स्थान बनी हुई थी तत्कालीन भारत में गौएं कितनी थीं इस का अनुमान नीचे की संक्षिप्त तालिका से सहजही हो सकता है जो कि उपासक दशाङ्ग सूत्र से उद्धृत की जाती है

१ श्रावक	आनन्दजी	४००००
२ ,,	कामदेवजी	४००००
३ ,,	चुल्लनि पिताजी	८००००
४ ,,	सुरादेवजी	६००००
५ ,,	चूलशतकजी	६००००
६ ,,	कुंडकोलीकजी	६००००
७ ,,	सद्दालपुत्रजी	१००००
८ ,,	महाशतकजी	८००००
९ ,,	नन्दिनीपिताजी	४००००

कहने की आवश्यक्ता नहीं कि जब दस श्रावकों के पास ५,६०,००० गायें थीं तो भारत के अन्य लाखों करोड़ों मनुष्यों के पास कितनी गायें होंगी ?

भगवान् महावीर के निर्वाण काल के पीछे गौ रक्षा के प्रति मनुष्यों की ज्यों २ उदासीनता होती गई त्यों २ दूध दही और घृत आदि पौष्टिक पदार्थों की दिन २ कमी होती गई ।

आर्य्य कला का वहिष्कार करके भारतीयों ने आसुरी कला को अपनाया और द्वीपान्तर के अपवित्र चटकीले वस्त्रों को पसंद किया और कलप की चर्बी के लिए भारतीय गायों को कसाई लोग खरीद २ कर मीलों के हवाले करने लगे तब ही से दूध दही और घृत के फाके पड़ने लगे । चर्बी मिला हुआ घृत लोग खाने लगे हैं ।

उपासक दशाङ्ग सूत्र में भगवान् महावीर ने दस श्रावकों के गोधन का वर्णन किया उसके मुकाबले में भारत की तैंतीस करोड़ जनता में आज एक भी ऐसा मनुष्य नहीं है कि जिसके पास इतनी गौएं हों । गोधन की वृद्धि करना तो दूर किन्तु गौओं को बूचर खाने में बेचने से भी नहीं शरमाते । हा विलासिते ! तुझ पर वज्रपात हो।

भारत के दयालु हिन्दुओं ! कामदेव की पूजा से अब तो विरत हो !! आपकी क्रीड़ा और विलासिता में भारत की प्राण स्वरूपा गौ माता रोज लाखों की संख्या में बलिवेदी पर चढ़ कर छट पटाती हैं फिर भी आप अपने को हिन्दू पुकारते हो ।

नीचे लिखे नकशे से आप को विदित होगा कि आज सारे भारत के गौधन की संख्या भगवान् महावीर के समय की एक नगरी के गौ धन के बराबर भी नहीं है ।

देश वासियों ! अब भी चेतो !! निन्द्रा भङ्ग करो !!! यदि आप इसी तरह सोये रहे तो याद रहे आपको घी दूध के दर्शन ही दुर्लभ हो जाएंगे और उस समय न जाने आपको क्या २ खाना पड़ेगा ।

आज प्रति दिन लाखों गौएं कटती हैं । उस पाप के जिम्मेदार कसाई नहीं पर आप हम चटकीले वस्त्र पहिनने वाले हैं । यदि हम विदेशी अपवित्र वस्त्रों को त्यागकर स्वदेशी पवित्र वस्त्र धारण कर लें तो न तो गौएं कटेंगी और न हमारा चटकीले वस्त्रों में व्यर्थ का धन ही बरबाद होगा ।

आज मैं इतना ही निवेदन करता हूं फिर कभी इस पर विशेष रूप से प्रकाश डालूंगा ।

रतनलाल महता.

मरबाने बनवीर वीसरयो, धाय धाव करलीदो रे ।
चूंखायो रे शाटे जायो, जातो कीदो रे ॥ ५ ॥

मरवाने जो जाखे वींहूं, पाप करमनी व्हेवेरे ।
सुख दुखरी परवानी राखे, प्रभुने शेवे रे ॥ ६ ॥

मरने जाव रामने देणों, या जीरे मन लागी रे ।
'चातुर' चरण वर्णीरे लागे, वो बड़ भागी रे ॥ ७ ॥

पालीवाल प्रभा—

श्रद्धेय महाराज साहब चतुरसिंहजी ।

माताओं के प्रति

बेना आपाँ ओछी नी हां ।

ओछी मतरे कणी कियो के, नीच जात नारी हां ।
नारी हांतो कई वीयो म्हे, म्हारां री नारी हां ॥ बेना०
सुख में सदा पछाड़ी री हां, दुःख में आगे ही हां ।
माथो काट हाथ शूँ मेल्यो, प्रीतम पेली गी हां ॥ बेना०
हातां पेटं फाड़ पाप्या सूं, म्हे ललकार लड़ी हां ।
हंसती धसी धधकती में, म्हे अब पण वीरी वी हां ॥ बेना०
सुवरण पुरी शीश दश ऊपर म्हें थूंकण वाली हां ।
सत्यवान रो प्राण बचायो जम सूं पण जीती हां ॥ बेना०
सिद्धराज रो शाप न लागो, कियो कई बुगली हां ।
कोढ्यो खोड्यो पति उंचायने वैश्या रे लेगी हां ॥ बेना०
शूरांरे जनमी हां आंपा शूरांरे परणी हां ।
शूरां री जननी हां आपां, पोतेई शूरी हां ॥ बेना०

—त्याग भूमि से.

गौ धन की रक्षा करो ।

भगवान् महावीर स्वामी ने अहिंसाधर्म का झंडा इस भारत भूमि में फहराया था उस समय इस देश में लाखों व्रतधारी श्रावक व करोड़ों उनके अनुयायी मनुष्य थे और उस समय यह देव दुर्लभ भूमि घी दूध का उद्भव स्थान बनी हुई थी तत्कालीन भारत में गौएं कितनी थीं इस का अनुमान नीचे की संक्षिप्त तालिका से सहजही हो सकता है जो कि उपासक दशाङ्ग सूत्र से उद्धृत की जाती है

१	श्रावक	आनन्दजी	४००००
२	,,	कामदेवजी	४००००
३	,,	चुल्लनि पिताजी	९००००
४	,,	सुरादेवजी	६००००
५	,,	चूलशतकजी	६००००
६	,,	कुंडकोलीकजी	६००००
७	,,	सद्दालपुत्रजी	९००००
८	,,	महाशतकजी	९००००
९	,,	नन्दिनीपिताजी	४००००

कहने की आवश्यक्ता नहीं कि जब दस श्रावकों के पास ५,९०,००० गायें थीं तो भारत के अन्य लाखों करोड़ों मनुष्यों के पास कितनी गायें होंगी ?

भगवान् महावीर के निर्वाण काल के पीछे गौ रक्षा के प्रति मनुष्यों की ज्यों २ उदासीनता होती गई त्यों २ दूध दही और घृत आदि पौष्टिक पदार्थों की दिन २ कमी होती गई ।

आर्य्य कला का बहिष्कार करके भारतीयों ने आसुरी कला को अपनाया और द्वीपान्तर के अपवित्र चटकीले वस्त्रों को पसंद किया और कलप की चर्बी के लिए भारतीय गायों को कसाई लोग खरीद २ कर मोलों के हवाले करने लगे तब ही से दूध दही और घृत के फाके पड़ने लगे । चर्बी मिला हुआ घृत लोग खाने लगे हैं ।

उपासक दशाङ्ग सूत्र में भगवान् महावीर दस श्रावकों के गौधन का वर्णन किया उस मुकाबले में भारत की तैंतीस करोड़ जनता आज एक भी ऐसा मनुष्य नहीं है कि जिस पास इतनी गौएं हों । गौधन की वृद्धि करना दूर किन्तु गौओं को बूचड़ खाने में बेचने से नहीं शरमाते । हा विलासिते ! तुझ पर वज्रपात हो

भारत के दयालु हिन्दुओं ! कामदेव की पू से अब तो विरत हो !! आपकी क्रीड़ा औ विलासिता में भारत की प्राण स्वरूपा गौ मा रोज लाखों की संख्या में बलिवेदी पर चढ़ छट पटाती हैं फिर भी आप अपने को हिन्दू पुक रते हो ।

नीचे लिखे नकशे से आप को विदित हो कि आज सारे भारत के गौधन की संख्या भगव महावीर के समय की एक नगरी के गौ धन बराबर भी नहीं है ।

देश वासियों ! अब भी चेतो !! निन्द्रा भ करो !!! यदि आप इसी तरह सोये रहे तो य रहे आपको घी दूध के दर्शन ही दुर्लभ हो जाये और उस समय न जाने आपको क्या २ खा पड़ेगा ।

आज प्रति दिन लाखों गौएं कटती हैं । उ पाप के जिम्मेदार कसाई नहीं. पर आप ह चटकीले वस्त्र पहिनने वाले हैं । यदि हम विदेश अपवित्र वस्त्रों को त्यागकर स्वदेशी पवित्र वस धारण कर लें तो न तो गौएं कटेंगी और न हमा चटकीले वस्त्रों में व्यर्थ का धन ही बरबाद होगा

आज मैं इतना ही निवेदन करता हूं कि कभी इस पर विशेष रूप से प्रकाश डालूंगा ।

रतनलाल महता.

❀ भारत के हाल के दुधारू पशुओं की संख्या का नकशा ❀

विशाल भारत से उद्धृत

	बैल	गौएँ	बछड़े-बछड़ी	भैंसा	भैंस	पाड़े-पड़ी-बच्चे	कुल जोड़
ब्रिटिश-भारत (सन् १९२३-२४)	४६४१४६२८	३७२१६३७०	३०८५५६०५	५४२७५१२	१३५३५४५५	१००४५२८२	१४६४६८२३२
देशी-राज्य सन् १९२२-२३)	१०५१८६२०	९७८८६६५	५६०५४००	११०१२५६	४०२५३२५	१९०३१४२	३२१५०४११
जोड़	५६६३३५४८	४७००८०३५	३६४६१००५	६५३६८५१	१७५६०७८०	११९४८४२४	१७९४४८६४३

समस्त भारत में गौ-वंश की संख्या १४३४०२५८८। समस्त भारत के भैंसा और भैंस की संख्या २९०४६०५५।

❀ चारा चरनेवाले पशुओं की संख्या का नकशा ❀

	भेड़	बकरे-बकरी	घोड़े-घोड़ी	ऊँट	खच्चर	गधे	कुल जोड़
ब्रिटिश-भारत (सन् १९२३-२४)	२२३३१९६१	२६०१७४०८	१६७१४६४	४३९१५८	७५५१८	१३७९४२०	५१९२२९२९
देशी-राज्य (सन् १९२२-२३)	१११९९३०३	८३९८६१५	४९२७६२	१२१७०४	५१६८	३५४९३१	२०५७२४८३
जोड़	३३५३१२६४	३४४१६०२३	२१६४२२६	५६०८६२	८०६८६	१४३४३५१	७२४९५४१२

अथ जैन रत्न शिक्षावली।

लेखक—श्रीमान् पं० काशीनाथजी संस्कृत मुख्याध्यापक महाराणा मिडिल स्कूल, उदयपुर।

१—जननी जनक गुरूणां महताञ्च विनयो विधेयः।
अर्थ—मां, बाप, गुरू और बड़े आदमियों का विनय करना चाहिये।

२—माता पित्रोः शासनं नोल्लंघनीयम्।
अर्थ—माता, पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करना चाहिये।

३—माता पित्रोः सेवा सुचित्तेन कार्या।
अर्थ—माता, पिता की सेवा शुद्ध मन से करनी चाहिये।

४—गुरो माता पित्रोश्च नित्यं पादौ निपीड्यौ
अर्थ—गुरू और माता पिता के चरणों को नित्य दाबना चाहिये।

५—मातापित्रोः पुरतोऽनृतं न ब्रूयात्।
अर्थ—माता पिता के सामने झूंठ नहीं बोलना चाहिये।

६—पित्रौः धर्म कर्मणि पूर्णाशाविधेया
अर्थ—धर्म के काम में माता पिता की आशा पूर्ण करनी चाहिये।

७—यवीयान् भ्राता पितृवन्मान्यः
अर्थ—बड़े भाई को पिता के समान मानना चाहिये।

८—भ्रातुर्दुर्दशाऽपने या कुमार्गान्निवार्यश्च।
अर्थ—भाई की दुर्दशा दूर करनी व कुमार्ग से बचाना चाहिये।

९—कस्मिनप्युत्तमे कार्ये भ्राता-न विस्मर्त्तव्यः।
अर्थ—किसी भी उत्तम कार्य में भाई को न भूलना चाहिये।

१०—स्व मुखात् स्वकीया प्रशंसा न कार्या।
अर्थ—अपने मुंह से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

११—पराक्रम सत्वे निरूद्योगेन न भाव्यम्
अर्थ—पराक्रम होने पर आलसी न हो जाना चाहिये।

१२—केनाऽपि सत्कार्यंकुर्वता विलम्वो न विधेयः
अर्थ—किसी को अच्छे काम करते हुए विलम्ब न करना चाहिये।

१३—प्रयोजन मन्तरा लापो न कार्यः।
अर्थ—बिना मतलब के बात चीत न करना चाहिये।

१४—गृहंरहस्यं कस्याप्यग्रेन प्रकाश्यम्।
अर्थ—घर का भेद किसी के आगे प्रकट नहीं करना चाहिये।

१५—मित्रैः सह किमपि रहस्यं न गोपनीयम्।
अर्थ—दोस्तों के साथ कोई गुप्त बात छुपाना न चाहिये।

१६—कुमित्रस्य विश्वासो न कार्यः।
अर्थ—बुरे मित्रों का विश्वास न करना चाहिये।

१७—किमपि कार्यं विचार्येव कार्यम्।
अर्थ—कोई भी काम सोचकर करना चाहिये।

१८—विद्योपार्जने सन्तोषो नाव लम्बनीयः।
अर्थ—विद्या के उपार्जन करने में सन्तोष न करना चाहिये।

१९—दुर्वृत्तवो निवृत्ति विधेया।
अर्थ—दुराचार से बचना चाहिये।

२०—आपत्काले धैर्यं न हेध्यम् ।

अर्थ—दुख में धीरज नहीं छोड़ना चाहिये।

२१—कुक्कुटवत् प्रातः काले सर्वेषामपेक्षया शीघ्रमुत्थातव्यम् ।

अर्थ—मुर्गे की तरह प्रातःकाल में सबों के पहिले उठना चाहिये ।

२२—शरीरादलस्यमपनेयम्ः ।

अर्थ—शरीर से आलस्य को दूर करना चाहिये ।

२३—क्लेशा न्मौनं वरम् ।

अर्थ—क्लेश करने से चुप रहना अच्छा है।

२४—महद्भि सह वैरं न कर्तव्यम् ।

अर्थ—बड़े आदमियों के साथ दुश्मनी न करनी चाहिये ।

२५—आयं विलोक्य व्यय कार्यः ।

अर्थ—आमदनी देखकर खर्च करना चाहिये ।

देश की दशा और शिक्षा ।

लेखक—विद्यार्थी-चुन्नीलाल, स्थानक वासी, जैन ब्रह्मचर्याश्रम, उदयपुर.

मैं इस पत्र के पाठकों के समक्ष छोटे मुंह बड़ी बात निवेदन करनी चाहता हूं । क्षमा करें । जब हम भारत की तरफ दृष्टि पात करते हैं, तो नाना प्रकार के दृश्य देखते हैं । एक तरफ जब हम नजर फेंकते हैं तो क्या देखते हैं कि हमारे नवशिक्षित भाइयों के मुंह में बीड़ी, आंख पर चश्मा, सिर पर हैट, गले में नेकटाई, बदन पर कोट पातलून और पैरों में बूंट हैं, वे इस बड़ी सज धज से सज्जित होकर के अपने को बड़ा भारी स्टूडेन्ट, स्कालर, ग्रेज्युएट रिफार्मर, देशभक्त भारत का सर्व सम्मान वे अपनी माता व स्त्री को गुलाम मानते हैं । फल यह होता है कि न तो वे पूरे बाबू साहेब और मिस्टर ही बनते हैं न पूरे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही रहते हैं । दूसरी तरफ जब हम नजर फेंकते हैं, तो क्या देखते हैं कि हमारे भाई पैसे २ के लिये झूठ बोल रहे हैं, पैसे २ के लिए चोरी कर रहे हैं, पसे २ के लिए खून खराबियाँ कर रहे हैं, झूंठे मुकद्दमे झूंठी फरियाद की तो उन्हें कुछ परवाह ही नहीं, किन्तु अफसोस सद-अफसोस महा दुःख महा परिताप हाय! हाय!! जिह्वा कांपती है पर दावे मुकद्दमे चलाते हैं । हाय भारत ! हाय !! हाय !!! पुण्य भूमि ! मां हाय मदरलैन्ड ! तू क्या कर रही है ? क्या तू हम को पाठ दे रही है ? या तू हम को अभ्यास करा रही है ? हाय पैसा ! हाय पैसा !! हाय पैसा !!! तेरी लीला को, तेरी महिमा को, तेरी करतूत को, कौन जान सकता है, बतलाइए अब इस से भी अधः-पतन का, अब इस से भी नीचा गिरने का. अब इस से भी मटियामेट हो जाने का, आकाश पाताल में कहीं कोई भी स्थान बाकी है तो फिर क्या कारण है कि हम अपने देश का, अपनी जाति का, अपनी आत्मा का ऐसा नाश कर रहे हैं, ऐसा संहार कर रहे हैं, ऐसा बिगाड़ कर रहे हैं, सूक्ष्म विचार की शरण में जाने से कारण स्पष्ट विदित होता है कि प्रथम तो शिक्षा प्रचार का, अभाव दूसरी थोड़ी बहुत शिक्षा है वह भी यथार्थ नहीं उस का होना नहीं के बराबर है ।

व्यभिचार बनाम सदाचार

लेखक—शोभालाल मेहता ।

आज मैं पाठकों के समक्ष एक ऐसे रोग का ज़िक्र करूंगा जो हमारे सदाचार के लिए महान् घातक है, वह है 'व्यभिचार' । साहबान जिस प्रकार भयंकर विस्फोटक चारों ओर से फूट निकलता है और शरीर का सत्यानाश कर डालता है उसी प्रकार यह व्यभिचार भी हमारे चरित्र में धूंआंधार फूट निकलता है और शरीर को नष्ट भृष्ट कर डालता है । रावण को व्यभिचार ने पतन किया इतिहास के वीरों के चरित्र मेरी इस बात को पुष्टि करेंगे । हमें वैश्याओं को देख कर रोना आता है, हमारी न सही हमारे किसी अभागे भाई की मां बहिन व बेटी होगी ही । हे भगवन् ! कब हमारे हृदय में ऐसे उच्च भाव पैदा होंगे कि हम समस्त स्त्रियों को अपनी माता बहिन व बेटी समझेंगे । अगर हम इतिहास के पन्ने उलट कर देखें तो मालूम होगा कि सदाचारी ब्रह्मचारियों ने ही विजय कीर्ति (लक्ष्मी) सम्पादन की है वीर्य्य हीन पुरुष हमेशा इन मामलात में असमर्थ रहें हैं, धर्म शास्त्रों में ऐसा माना गया है कि व्यभिचार अक्षम्य अपराध है, चोर डाकू यहां तक कि हत्यारा सुधर कर महान् पुरुष बन सकता है मगर व्यभिचारी किसी काम का नहीं बन सकता व्यभिचार में जो गिरा वह सड़ गया, गल गया, नष्ट होगया । साहबान एक बात जो मैं पहिले आप से अर्ज़ करना भूल गया वह यह है कि स्व स्त्री की दशा में भी संयमी न होना अक्षम्य अपराध और गुप्त व्यभिचार है, इस लिए स्व स्त्री की दशा में भी संयमी होना चाहिए । हमारी आयु आरोग्यता सौन्दर्य्य और ऐश्वर्य्य, और हमारी सारी भावी कामनाओं का मूल ब्रह्मचर्य्य है । एक मात्र इसही का अनुष्ठान करने से हमारी धार्मिक व नैतिक सारी कामनाएं पूर्ण होंगी अगर हम चाहते हैं कि हमारा भवन दृढ़ बने । अगर हम चाहते हैं कि उद्देश्य हमारा वृक्ष बड़े २ आंधी के झोंके से भी न उखड़े तो हमें चाहिये कि पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करके कृत कृत्य हो जायं ।

अब जरा इतिहास के पन्ने उलट कर देखिये कैसा चरित्र है एक ओर प्रबल पराक्रमी दुर्जन रावण खड़ा है, दूसरी ओर लंकासी कोट समुद्रसी खाई बड़े २ शूरवीर जिनके रक्षक, जिनका काम ही हिंसा और कुटिलता है, कुम्भकर्ण जैसा भाई, इन्द्रजीत जैसा पुत्र, जिनके सहायक हैं । दूसरी ओर क्या है, अकेले राम हैं, नंगे सिर हैं, नंगे पैर हैं, केवल हाथ में एक विशाल धनुष बाण है, मगर हृदय में अपूर्व साहस और आत्मिक बल है, ऐसी दशा में भी विजय का मुकट रामचन्द्र के ही सिर पर शोभायमान हुआ, सच है, ब्रह्मचर्य्य की महिमा बड़ी है । ज़रा और सुनिये, एक ओर धन हीन और जन हीन प्रताप है दूसरी ओर विशाल राज्य का स्वामी अकबर इसके उपरान्त विषय भोग के कीड़े धर्म विहीन स्वजातीय बन्धु भी यहां तक के सहोदर भाई भी उस प्रचन्ड शत्रु की शत्रुतार्थ बढ़ाने के लिए सेवकाई इख्तियार कर लेते हैं, पर क्या इस भयंकर प्रतिकूल परस्थिति ने प्रताप के निश्चय को जरा भी हिलाया नहीं, २—ब्रह्मचर्य से युक्त प्रतापी प्रताप मेरु पर्वत के शिखर की तरह अडोल व अकम्प खड़ा रहा और अकबर सी कई आंधियाँ टकरा टकरा कर चली गई ।

अब जरा धार्मिक शास्त्रों की तरफ आइए, देखिये बालवयस्क गजसुकमालु स्मशान में ध्याना रूढ़ हैं, सौमल नामा ब्राह्मण पूर्व वैरभाव के कारण मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बांधता है और उसमें जलते हुए अंगारे रख देता है मुनि की खोपड़ी खीचड़ी की तरह खदबद खदबद करती है, मगर उस वीर को जो शुं कहिये कि स्वयं ब्रह्मचर्य की मूर्ति था यह भी नहीं मालुम कि क्या हो रहा है और अपने ध्यान में मस्त खड़ा रहा और सुनिये भगवान् महावीर के अन्तिम सम्राट् जम्बू स्वामी के एक तरफ रम्भा सी आठ स्त्रियां हैं दूसरी ओर अतुल सम्पत्ति है, ये सब जम्बू स्वामी के हृदय पर विजय प्राप्त करने के लिए यथाशक्ति बल प्रयोग कर रहे हैं, मगर उस वीर के वीर शुद्ध हृदय पर इन अस्त्र शस्त्रों का जरा भी असर नहीं हुआ यह उनके ब्रह्मचारी होने का कारण था। हमारे परम पुज्य महाराज श्री हुकमीचन्दजी जिनके नाम से वाइस सम्प्रदाय में एक मुख्य सम्प्रदाय गिनी जा रही है, आज उनका त्याग व तप, आज उनके शिष्यों पर बिजली का काम कर रहा है, यह किसका कारण है। मैं आपको अर्ज करूंगा ये उनके बाल ब्रह्मचारी होने का उन्हीं घोर त्यागी तपस्वी की गद्दी को सुशोभित करने वाले मौजूदा पुज्य श्री की तरफ निगाह डालिए आज वे अपने त्याग व तप के बल से जैन व जैनेतर लोगों के ऊपर कैसी छाप डाल रहे हैं आज थलियों की धरती पर सैकड़ों भूले हुए अबोध प्राणियों के लिए मार्ग दर्शक हो रहे हैं, यह किसका कारण है, मैं आपसे अर्ज करूंगा ये उनके ब्रह्मचारी होने का ब्रह्मचारियों की महिमा में मैंने बहुत कुछ कहा, कहां तक कहा जाय उसका अन्त ही नहीं अब मैं अपने व्याख्यान को यहीं समाप्त करना चाहता हूं। अस्तु

❦ ❦ ❦

महावीर जयन्ती और हमारी स्थानीय सहयोगिनी प्रभा

हमारे प्रेमी पाठकों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि गत 'महावीर जयन्ती' जो यहां श्री जैन शिक्षण संस्था की ओर से मनाई गई थी बड़ी ही सफल रही। हमारे प्रायः सभी समस्त बन्धुओं के अतिरिक्त कतिपय अन्य जैनेतर महानुभाव भी पधारे थे, जिन में अधिकांश राज्य के गण्य मान्य प्रतिष्ठित सज्जन एवं विद्वान् थे। जहां तक हमारा खयाल है कि उदयपुर में यह पहिला ही अवसर था कि जैन एवं जैनेतर इतनी बड़ी संख्या में महावीर स्वामी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने को कभी पधारे हों।

महावीर स्वामी के जीवन पर अनेक उद्भट विद्वानों की खोज एवं इतिहास के द्वारा अच्छा प्रकाश डाला गया था।

जैन धर्म क्या है? इसके मूल सिद्धान्त कैसे हैं? तथा उन सिद्धान्तों का प्रभाव भारत तथा संसार के अन्य धर्मों पर क्या हुआ? आदि पर ऐसे २ भारतीय एवं योरोपीय प्रकाण्ड विद्वानों की गवेषणा पूर्ण सम्मतियाँ पढ़ी गई थीं जिन्होंने अपना सारा जीवन भारतीय संस्कृति को अध्ययन करने में बिताया।

स्थानीय 'जैन पाठशाला' के मुख्याध्यापक बाबू बलवन्तसिंहजी महता ने जो भाषण दिया वह सभी महानुभावों के और खासकर हमारे उन

जैनेतर बन्धुओं के लिये विशेष मनन करने योग्य है, जिनको जैन धर्म में विशेष गति नहीं है अथवा जिनकी बिलकुल ही अनभिज्ञता है।

स्थानाभाव के कारण हम आपका पूरा व्याख्यान न देकर सार रूप में यहां उद्धृत करते हैं। आपने प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्वनामधन्य 'बाबू रमेशचन्द्रदत्त' के इतिहास से उस समय का दिग्दर्शन कराते हुए यह बतलाया कि भारत के इतिहास काल में वह समय बहुत ही नाजुक था। लोग अनेक प्रकार की धर्म-भ्रमणाओं में पड़े हुए थे। धर्म के नाम पर अनेक मूक पशु बलिदान किये जाते थे। धर्म के मूल तत्व लुप्त से मालूम पड़ते थे। इस प्रकार धर्म परायण भारतवर्ष में चारों ओर अशान्ति और हिंसा का साम्राज्य फैल रहा था। जब धर्मप्रधान, भारतवर्ष की यह दशा थी तो संसार के दूसरे विभागों का तो कहना ही क्या था। इतिहासकारों का तो यहां तक कहना है कि यह समय संसार के धार्मिक इतिहास में इतना नाजुक था कि 'बुद्ध' और 'महावीर' नामक संसार की सर्व श्रेष्ठ दो आत्माओं को एक साथ एक ही उद्देश्य को लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरना पड़ा। अस्तु।

फिर आपने बतलाया कि जैन धर्म का सिद्धांत हिन्दू-धर्म से मिलता जुलता है 'अहिंसा परमोधर्मः' हिन्दू-धर्म के गौरव को बढ़ाने वाला है। यह वीरों का धर्म है न कि कायरों का।

जैन-धर्म ने इस सिद्धान्त की बड़ी ही सुन्दर एवम् वैज्ञानिक व्याख्या की है।

जब एक जाति व देश दूसरी जाति व देश के संसर्ग में आते हैं तो एक दूसरे की संस्कृति का आपस में प्रभाव पड़ना अनिवार्य होता है।

जैनधर्म ने मोक्ष के तीन मार्ग माने हैं—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र। अहिंसा परमोधर्मः' मूल सिद्धान्त है। इस धर्म तत्व एवं सिद्धान्त का ब्राह्मण धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा, इसको वेदान्त केसरी 'लोक मान्य तिलक' के शब्दों में उन्होंने बतलाया। जैसा कि लोक मान्य ने महाराज बड़ौदा की अध्यक्षता में दिये हुए व्याख्यान में कहा थाः—

(१) 'अहिंसा परमोधर्मः' इस उदार, सिद्धांत ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी, इसके प्रमाण मेघदूत काव्य आदि अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं······परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय (पुण्य) जैन-धर्म के हिस्से में है।

(२) ब्राह्मण धर्म को जैन-धर्म ही ने अहिंसा धर्म बनाया है।

(३) ब्राह्मण व हिन्दू-धर्म में जैन-धर्म के ही प्रताप से मांस भक्षण व मदिरा पान बन्द हो गया है।

(४) ब्राह्मण धर्म पर जो जैन धर्म ने अक्षुण्ण छाप मारी है उसका यश जैन-धर्म ही के योग्य है। जैन-धर्म में अहिंसा का सिद्धान्त प्रारम्भ से है और इस तत्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्ध-धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्व भक्षी होगया है।

(५) पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण जैन पण्डित और जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् हो गये हैं।

(६) जैन-धर्म तथा ब्राह्मण धर्म का पीछे से इतना निकट सम्बन्ध हुआ है कि ज्योतिष शास्त्री भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में ज्ञान, दर्शन

और चारित्र (जैन शास्त्र विहित रत्नत्रय धर्म) को धर्म तत्व बतलाये हैं।

इसके अनन्तर जैन-धर्म क्या है और कैसा है? इस पर अनेक भारतीय एवम् योरोपीय महा पुरुषों की सम्मतियां पढ़कर अपने व्याख्यान को समाप्त किया, जो अन्यत्र पाठकों के ज्ञान के लिए दीगई हैं।

हमारी स्थानीय सहयोगिनी 'पालीवाल प्रभा' में एक दर्शक ने उपर्युक्त बातों को अपनी बिना दलील के ही निराधार बतलाई है।

जहांतक हमारा खयाल है, यह टिप्पणी दर्शक की आड़ में सम्पादक महोदय की है। अन्यथा वे उस व्यक्ति का नाम अवश्य ही प्रगट करते। क्योंकि सम्पादक महोदय व्याख्यान के आरम्भ में ही उस रोज पधार गये थे। अस्तु।

हमारा किसी से द्वेष नहीं और न इस पत्र का जन्म ही जातिगत या व्यक्तिगत विद्वेषों को फैलाने के लिये ही हुआ है। हम तो इस नीति के पालक हैं कि यदि हमें कोई गालियां देता है तो वह दयनीय है अतएव क्षम्य है क्योंकि वह केवल अपनी अज्ञानता के कारण ही ऐसा करता है।

जैन-धर्म के साथ हमारा सम्बन्ध होने से तथा जनता में गलतफैमी न हो इसी कारण यह हमको कार्य्यवश टिप्पणी लिखनी पड़ी है। अन्यथा हमारा वाद विवाद करने का अभिप्राय नहीं है।

यदि आपकी मान्यता उपर्युक्त महानुभावों की सम्मतियों से भिन्न थी अथवा आपकी निजी ऐतिहासिक एवम् धार्मिक खोज से विपरीत मालूम पड़ती थी तो आपको अपना प्रमाण व अनुभव प्रकट करना चाहिये था न कि केवल निराधार बतलाकर चुप्पी साध जाना।

कवि ही संसार में परमात्मा की विभूतियों को ठीक प्रकार से देखता है और सम्पादक उन कवीश्वरों के सत्य-अनुभवों को संग्रह कर जनता के समक्ष रखता है। यदि ऐसे महान् पदों पर एक साथ कोई व्यक्ति आरूढ़ होकर सत्य का गला घोंट दे और अपने ही निराधार मन्तव्य का जनता में डिंगनाद करे तो अहिंसा व्रतियों के समक्ष वह शायद क्षम्य हो सकता है किन्तु गीता की भाषा में तो वह अवश्य ही आततायी समझा जायगा। हम दर्शक महोदय का ध्यान अन्यत्र दी गई संसार के उन महानुभावों की सम्मतियों की ओर आकर्षित करते हैं; जिन्होंने अपना सारा जीवन भारतीय संस्कृति को अध्ययन करने में लगाया है।

महान् व्यक्ति सत्य को अपनाने में कभी नहीं हिचकते चाहे वह किसी भी स्थान में अथवा किसी भी रूप में क्यों न हो। मुसलमानी संस्कृति तक का प्रभाव इस देश पर प्रत्यक्ष देखा जाता है तब जैन सिद्धान्तों एवम् जैन संस्कृति का जो बहुत ही प्राचीन माने गये हैं, प्रभाव न मानना केवल दुराग्रह नहीं तो क्या हो सकता है?

—सम्पादक

मेदपाटेश्वरों का अहिंसा-प्रेम

यह राज्य-वंश क्षत्रियों में सब से ऊँचा है। यह घराना सूर्य वंशियों में श्रेष्ठ है, क्योंकि इस ही में श्री भगवान् ऋषभदेव, सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र, श्री रामचन्द्र, बुद्धदेव आदि संसार की सर्व श्रेष्ठ आत्माओं ने इस पवित्र वंश में जन्म धारण किया और इस समय भी भारत के सब ही राजा यहां के महाराणा को शिरोमणि समझते हैं। उनके इस महत्व के कई कारण हैं। जिनमें मुख्य यहां के नरेशों की स्वातन्त्र्य प्रियता तथा हिन्दू-धर्म की रक्षा करना है और यही भाव यहां के राज्य-चिन्ह "जो दृढ़ राखै धर्म को तिहि राखै करतार" से पाया जाता है। भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु सारे संसार में इसके समान एक ही प्रदेश पर इतने वर्षों तक राज्य करने वाला प्राचीन एवं गौरव शाली राज्य, अन्यत्र कहीं नहीं है। गत् १४०० वर्षों में कई प्राचीन राज्य लुप्त हो गये, अनेक नये राज्य स्थापित हुए। भारतभूमि के भाग्य ने अनेक पलटे खाये मुसलमानी राज्य की प्रबल शक्ति के आगे सैकड़ों हिन्दू राजाओं ने सिर झुकाकर अपने वंश परम्परा की मान-मर्यादा को उनके चरणों में समर्पित करदी; किन्तु यही एक ऐसा राज्य वंश है जो संसार के समस्त राज्य वंशों में सब से प्राचीन है और नाना प्रकार की आपत्तियां सहकर भी अपनी मान मर्यादा, कुल गौरव, धर्म और स्वतन्त्रता की इसने रक्षा की और अपने अटल पद से विचलित नहीं हुआ इसी कारण समस्त भारतवासी इसे आज भी पूज्य दृष्टि से देखते हैं, और हिन्दू सूर्य आर्यकुल कमल दिवाकर आदि उपाधियों से सम्बोधित करते हैं। महाराणा हमीर, कुम्भा, सांगा, प्रताप, राजसिंह आदि अद्वितीय वीर एवं परम प्रतापी नरेश, प्रातः स्मरणीय मीरी बाई, पद्मिनी जवाहर बाई कर्मवती आदि ऐसी २, वीरांगनाओं ने इस वंश को अलंकृत किया है, जिनकी कीर्ति सारे संसार में फैली हुई है। यहां के नरेशों का प्रजा पर सदा से पुत्रवत् प्रेम रहा है। वर्तमान महाराणा साहब तथा महाराज कुमार साहब भी प्रजा पालक, धर्मात्मा, एवं प्रतापी नरेश हैं, इस वंश की सदा से सब धर्मों पर समान दृष्टि ही नहीं रही है किन्तु प्रत्येक धर्म और उन के आचार्यों का बड़ा मान रहा है। फलतः जैन धर्म पालने वालों के लिये बड़ी २ सुविधाएं आपके राज्य में प्राप्त हैं। आपका अहिंसा प्रेम, अन्य राजा महाराजाओं को बड़ा ही अनुकरणीय है। हाल में आपने सरकारी गजट में हुक्म जारी किया जिसकी नकल यहां दी जाती है जिससे हमारे पाठकों को पता लगेगा कि आपका अहिंसा धर्म के प्रति कितना अनुराग है।

इश्तिहारात ।

अज राज्य श्री महक्मह खास श्री दरबार उदयपुर मेवाड़ मवर्खा श्रावण कृष्णा १४ सं० १९८४ वि० तदनुसार तारीख २६ जौलाई सन् १९२८ ई०, नम्बर २४१०

प्रथम श्रावण कृष्णा १ से चैत्र कृष्णा ३० तक अखते पलाये जाने की फहरिस्त बिनाबर मुश्तहिर गजट हमराह रिपोर्ट धर्म-सभा नम्बर ४५ वाकै आषाढ़ शुक्ला १४ संवत् १९८४, पेश होकर नकल फहरिस्त वास्ते आगाही हर खास व आम मुश्तहिर गजट कीजाती है । नकल फेहरिस्त संवत् १९८५ प्रथम श्रावण कृष्णा १ से चैत्र कृष्णा ३० तक के अखते की फहरिस्त—

नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण	नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण
१	प्र. श्रा. कृ. ७	सोम	९-७	...	१०	श्रा.शु. ८	बुध	२५-७	बुधाष्टमी
२	श्रा.कृ.११	शुक्र	१३-७	एकादशी व्रत	११	,, ११	शनि	२८-७	एकादशी व्रत
३	,, १२	शनि	१४-७	शनि प्रदोष	१२	,, १३	चन्द्र	३०-७	सोम प्रदोष
४	,, १४	सोम	१६-७	...	१३	,, १५	बुध	१-८	सत्यनारायण व्रत
५	,, ३०	मङ्गल	१७-७	हरियाली अमावास्या	१४	द्वि. श्रा. कृ. ५	चन्द्र	६-८	...
६	श्रा.शु.१	बुध	१८-७	पुरुषोत्तम मास प्रारम्भ	१५	,, ११	शनि	११-८	एकादशी व्रत
७	,, २	गुरु	१९-७	व्यतीपात	१६	,, १२	रवि	१२-८	द्वि० एकादशी व्रत
८	,, ४	शुक्र	२०-७	,,	१७	,, १३	चन्द्र	१३-८	सोम प्रदोष
९	,, ६	चन्द्र	२३-७	...	१८	,, १४	मङ्गल	१४-८	व्यतीपात

नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण
१९	द्वि. श्रा. कृ. ३०	बुध	१५–८	पुरुषोत्तम मास समाप्त
२०	द्वि. श्रा.शु.५	चन्द्र	२०–८	नरकँवर बापजी की संवत्सरी
२१	,, ११	रवि	२६–८	एकादशी व्रत
२२	,, द्वि ११	चन्द्र	२७–८	द्वि० एकादशी व्रत
२३	,, १२	मङ्गल	२८–८	प्रदोष
२४	,, १५	शुक्र	३१–८	सत्य-व्रत रक्षाबन्धन
२५	भा. शु. ५	मङ्गल	४–९	नाग पञ्चमी
२६	,, ७	गुरु	६–९	कृष्ण जयन्ति
२७	,, ८	शुक्र	७–९	,,
२८	,, ९	शनि	८–९	व्यतिपात
२९	,, १०	रवि	९–९	,,
३०	,, ११	सोम	१०–९	एकादशी व्रत
३१	,, १२	मङ्गल	११–९	वत्सद्वादशी-पर्युषण झालीजी साहब की संवत्सरी
३२	,, १३	बुध	१२–९	पवित्रा चतुर्दशी
३३	,, ३०	गुरु	१३–९	कुशग्रहणी, नन्दकुंवर बायजी की संवत्सरी
३४	भा.शु.३	चन्द्र	१७–९	गणेश चतुर्थी
३५	,, ४	मङ्गल	१८–९	ऋषि पञ्चमी, पर्युषण समाप्त
३६	,, ७	शुक्र	२१–९	नागणीचाजी की सातम
३७	,, ८	शनि	२२–९	राधाष्टमी, दुर्गाष्टमी
३८	,, ११	मङ्गल	२५–९	एकादशी व्रत देव-झूलनी
३९	,, १२	बुध	२६–९	वामन द्वादशी
४०	,, १४	शुक्र	२८–९	अनन्त चतुर्दशी
४१	,, १५	शनि	२९–९	सत्यव्रत
४२	आ.कृ.१	रवि	३०–९	श्राद्धपक्ष प्रारम्भ
४३	,, ४	बुध	३–१०	कुंवारड़ा की पञ्चमी
४४	,, ५	गुरु	४–१०	श्रीजी बड़ा हजूर का श्राद्ध
४५	,, ८	शनि	६–१०	महाराज साहब श्री दलसिंहजी का श्राद्ध
४६	,, ९	रवि	७–१०	मातृ नवमी
४७	,, ११	मङ्गल	९–१०	एकादशी व्रत, बड़ा राणीजी साहब का श्राद्ध
४८	,, १२	बुध	१०–१०	श्री बावाजी साहब श्री गजसिंहजी का श्राद्ध
४९	,, १३	गुरु	११–१०	श्री बड़ा हजूर श्री शम्भूसिंहजी का श्राद्ध व संवत्सरी

नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण	नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण
८१	पौ.शु.१२	मंगल	२२–१	प्रदोष व्रत	९३	फा० कृ. ११	गुरु	७–३	एकादशी व्रत श्री कंवरजी बावजी का जन्म दिन
८२	,, १५	शुक्र	२५–१	सत्यनारायण व्रत	९४	,, १३	शनि	९–३	महा शिवरात्रि, बड़जी साहब की संवत्सरी
८३	मा. कृ. ११	मंगल	५–२	एकादशी व्रत	९५	,, ३०	चन्द्र	११–३	सोमवती अमावस्या
८४	,, १३	गुरु	७–२	व्यतिपात	९६	फा.शु.७	रवि	१७–३	भानु सप्तमी
८५	,, १४	शुक्र	८–२	,,	९७	,, ११	गुरु	२१–३	एकादशी व्रत
८६	,, ३०	शनि	९–२	अमावस्या व्रत	९८	,, १५	चन्द्र	२५–३	सत्यनारायण व्रत
८७	मा.शु.७	शनि	१६–२	नागणीजी की पूजा	९९	चै.कृ.५	शनि	३०–३	व्यतिपात
८८	,, १०	मंगल	१९–२	एकादशी व्रत	१००	,, ६	रवि	३१–३	,,
८९	,, १२	बुध	२०–२	,,	१०१	,, ८	मंगल	२–४	शीतलाष्टमी
९०	,, १५	शनि	२३–२	सत्यनारायण व्रत	१०२	,, १०	गुरु	४–४	दशामाता पूजन
९१	फा.कृ.६	मंगल	५–३	व्यतिपात	१०३	,, ११	शुक्र	५–४	एकादशी व्रत
९२	,, १०	बुध	६–३	,,	१०४	,, ३०	मंगल	९–४	अमावस्या व्रत

नोट—इसके अतिरिक्त जब कभी श्रावण दो आजाते हैं, उस समय दोनों ही मासों में अगते पलाये जाते हैं।

सम्पादक.

—क्रमश

नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण
५०	आ. कृ. ३०	शनि	१३–१०	सर्वपितृ श्री नन्दकुंवर बाबजी का श्राद्ध
५१	आ.शु.७	रवि	२१–१०	भानु सप्तमी
५२	,, ११	गुरु	२५–१०	एकादशी व्रत
५३	,, १५	रवि	२८–१०	सत्यनारायण व्रत
५४	का.कृ.१	चन्द्र	२९–१०	व्यतिपात
५५	,, २	मंगल	३०–१०	,,
५६	,, ११	गुरु	८–११	एकादशी व्रत
५७	,, १४	रवि	११–११	दीपोत्सव
५८	,, ३०	चन्द्र	१२–११	सोमवती अमावस्या सूर्य ग्रहण
५९	का.शु.८	मंगल	२०–११	गोपाष्टमी
६०	,, ९	बुध	२१–११	अक्षय नवमी
६१	,, ११	शुक्र	२३–११	एकादशी व्रत बड़ा राणीजी साहब की संवत्सरी।
६२	,, १२	शनि	२४–११	व्यतिपात
६३	,, १५	मंगल	२७–११	सत्यनारायण व्रत
६४	मा. कृ. ११	शुक्र	७–१२	एकादशी व्रत
६५	,, ३०	बुध	१२–१२	अमावस्या

नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण
६६	मा.शु.७	बुध	१९–१२	व्यतिपात
६७	,, ८	गुरु	२०–१२	व्यतिपात श्री म. दलसिंहजी की संवत्सरी
६८	,, ११	रवि	२३–१२	एकादशी व्रत
६९	,, १२	चन्द्र	२४–१२	सोम प्रदोष
७०	,, १५	बुध	२६–१२	सत्यनारायण व्रत
७१	पौ. कृ. १०	शनि	५–१	जैनमतेन पार्श्वनाथ जयन्ति
७२	,, ११	रवि	६–१	एकादशी व्रत
७३	,, १२	चन्द्र	७–१	बाबाजी साहब श्री गजसिंहजी की संवत्सरी
७४	,, १४	बुध	९–१	श्री छोटा कंवरजी बापजी की संवत्सरी
७५	,, ३०	गुरु	१०–१	अमावस्या
७६	पौ.शु.२	शनि	१२–१	श्रीजी हजूर का जन्म दिन
७७	,, द्वि.२	रवि	१३–१	व्यतिपात मकर सक्रान्ति
७८	,, ३	चन्द्र	१४–१	,,
७९	,, ६	बुध	१६–१	श्रीजी बड़ा हजूर की संवत्सरी
८०	,, ११	चन्द्र	२१–१	एकादशी व्रत

नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण	नं०	महीना	वार	तारीख	अखते का कारण
८१	पौ.शु.१२	मंगल	२२–१	प्रदोष व्रत	९३	फा० कृ. ११	गुरु	७–३	एकादशी व्रत श्री कंवरजी बावजी का जन्म दिन
८२	,, १५	शुक्र	२५–१	सत्यनारायण व्रत	९४	,, १३	शनि	१–३	महा शिवरात्रि, बड़जी साहब की संवत्सरी
८३	मा. कृ. ११	मगल	५–२	एकादशी व्रत	९५	,, ३०	चन्द्र	११–३	सोमवती अमावस्या
८४	,, १३	गुरु	७–२	व्यतिपात	९६	फा.शु.७	रवि	१७–३	भानु सप्तमी
८५	,, १४	शुक्र	८–२	,,	९७	,, ११	गुरु	२१–३	एकादशी व्रत
८६	,, ३०	शनि	९–२	अमावस्या व्रत	९८	,, १५	चन्द्र	२५–३	सत्यनारायण व्रत
८७	मा.शु.७	शनि	१६–२	नागणीजी की पूजा	९९	चै.कृ.५	शनि	३०–३	व्यतिपात
८८	,, १०	मंगल	१९–२	एकादशी व्रत	१००	,, ६	रवि	३१–३	,,
८९	,, १२	बुध	२०–२	,,	१०१	,, ८	मंगल	२–४	शीतलाष्टमी
९०	,, १५	शनि	२३–२	सत्यनारायण व्रत	१०२	,, १०	गुरु	४–४	दशामाता पूजन
९१	फा.कृ.६	मंगल	५–३	व्यतिपात	१०३	,, ११	शुक्र	५–४	एकादशी व्रत
९२	,, १०	बुध	६–३	,,	१०४	,, ३०	मंगल	९–४	अमावस्या व्रत

नोट—इसके अतिरिक्त जब कभी श्रावण दो आजाते हैं, उस समय दोनों ही मासों में अगते पलाये जाते हैं।

सम्पादक.

—क्रमश

नीति विचार रत्न माला।

(गुजराती से हिन्दी अनुवाद)

प्रथम माला

१—काम काज बहुत है और समय कम है जीवन थोड़ा है, प्रयोग निश्चित् नहीं है और निर्णय कठिन है। भूतकाल गया और वर्तमान जा रहा है जो अपने हाथ में है। अतएव यदि भविष्य सुधारना होतो वर्तमान ही को सुधारने का प्रयत्न करो। प्रिय बन्धुओं जागृत हो, समझ बूझ कर कर्तव्य परायण हो जाओ।

२—राजा हो चाहे रङ्क हो, युवा हो चाहे वृद्ध हो, सबोंका मार्ग अन्त में एक ही है। मृत्यु हर घड़ी अपनी ओर टकटकी लगाए रहती है, इस हेतु से अभी ही कर्तव्य करने लग जाओ, और आध्यात्मिक उन्नति करो, अपने आपको पहचानों तथा शान्तचित्त होकर और निर्दोषता से मृत्यु को आलङ्गिन करने को उद्यत् होजाओ।

३—संसार में सब से मूल्यवान् वस्तु 'समय' है। गया हुआ समय फिर प्रयत्न करने पर भी हाथ आता नहीं, इसलिये एक पल भर भी व्यर्थ न गुमाओ और जितना समय मिले उतना सत्कार्य अथवा सत्संगति में व्यतीत करो।

४—सब धर्मों का रहस्य एक ही है और एक ही स्थल पर पहुंचने के सब जुदे २ मार्ग हैं। सब धर्मों का उद्देश्य एक ही है केवल समझ और तरीके में ही भिन्नता है। अतएव सब धर्मों के सिद्धान्तों को समझो, उन सबों के सामान्य उद्देश्य प्राप्त करने के निमित्त, ज्ञान का सुमार्ग खोजो और उसे श्रद्धा पूर्वक स्वीकार करो।

५—सम्यक्ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र। चारित्र से उत्तम जीवन बनेगा और उत्तमता ही जीवन का फल होना चाहिये।

६—ऊँचे आशयों पर लक्ष रख, उनका चितवन करने से बहुत कुछ हो सकता है। सद्‌गुणों में अनेक विघ्न बाधाएँ डालते हैं, पर वे पराजित नहीं होते। दिव्य प्रकाश के कारण विघ्न उन के पास टिक नहीं सकते।

७—वस्तु-सत्ता के लिये हम सर्व शक्तिमान् हैं परन्तु माया के आवरण से हमारी अनन्त शक्तियें आच्छादित हो गई हैं। हृदय में ज्ञान प्रकाश पड़ने दो, आत्मा में छिपी हुई शक्तियों का अवलोकन करो और फिर उसका अपने और दूसरों के लिये दिव्य सदुपयोग करो।

८—प्राकृतिक नियमों को भङ्ग न करो अन्यथा प्रकृति शिक्षा दिये बिना न रहेगी। प्रकृति हमारी स-स्नेही माता है। उस माता ने हमें बुद्धि, तर्क शक्ति कर्तव्य समझने की तथा करने की समझ दी है; अतएव उसके नियमों का उल्लंघन नहीं करना।

९—वातावर्ण में अनेक प्रकार के परणामों का आन्दोलन हुआ करता है। मानसिक शक्ति चाहे जिसका आकर्षण कर सकती है। आत्मा और आत्मा के बीच व्यवहारिक आकर्षण शक्ति होती है और उससे चाहो जैसे स्थान पर अपने विचारों का प्रतिबिम्ब डाल सकते हो।

१०—किसी भी प्राणी को सताना तथा मारना नहीं चाहिये। प्रत्येक प्राणी को अपने ही समान मानने वाला मनुष्य विद्वान् है।

द्वितीय माला

१—हम यदि क्षमा की याचना करते हुए उसे प्राप्त करने की इच्छा रखते हों तो फिर हमें भी दूसरों को क्षमा करने के लिये तत्पर रहना चाहिये।

२—सुख दुःख देने में मनुष्य यदि निमित्त कारण है तो सच्चे कारण तो अपने शुभाशुभ कर्म हैं। सुखी बनने के लिये उन कर्मों को ही सुधारने चाहिये। प्रकृति, भावना के अनुसार होती है; इसलिये उत्तम प्रकार की पारमार्थिक भावना उत्पन्न करने का अभ्यास करना चाहिये।

३—अज्ञानी धिक्कार के योग्य नहीं, दया के योग्य है, वैसे अज्ञानियों पर क्रोध न करते हुए दयार्द्र होकर उन्हें शुद्ध मार्ग पर लगाना चाहिये कारण कि क्रोध से वे अपने सदुपदेशों से विमुख होते हैं और दया रखने से वे उन सदुपदेशों को स्वीकार करते हैं।

४—सम्पत्ति के समय आत्म संयम न खोना, उसी तरह विपत्ति के समय निराश बनकर पुरुषार्थ भी नहीं छोड़ना चाहिये, कारण कि जय पराजय, सुख, दुख, मान, अपमान, हर्ष, शोक आदि कोई पैर जमा कर टिकने वाले नहीं हैं।

५—जिस मनुष्य को अपनी शक्ति में (अपने आप में) विश्वास नहीं, वह मनुष्य धर्म की ऊंची सीढ़ीयां चढ़ने के योग्य नहीं है। आत्म शक्ति अनन्त है—एक क्षण भर में अनन्त कर्मों का नाश कर सकती है; इसलिये चाहे जैसी आफत या विघ्न क्यों न आवे, उसके द्वारा सबों को दूर किया जा सकता है। जिसको आत्म सामर्थ्य में विश्वास नहीं है वह कदापि कोई महत्व का कार्य कर सकने का नहीं।

६—धीरे २ बड़े पर्वत भी लांगे जा सकते हैं। जो ऊंचे चढ़े वे भी अपने जैसे ही मनुष्य थे; किन्तु उनको अपने आप में विश्वास था।

७—आत्मा के लिये कुछ भी असाध्य नहीं आज कल की धीमी प्रवृत्ति देख, तुम भले ही उक्त वाक्य का उपहास करो; किन्तु समय आने पर तुम ही उसकी प्रशंसा करते हुए सम्मान करोगे।

८—"पहले ही प्रयत्न में तुम अपने कार्य पर विजय पालोगे" ऐसा नहीं कहा जा सकता। तुम अपने पहले प्रयत्न में कदाचित निष्फल भी हो जाओ, तथापि आरंभ किए हुए कार्य को छोड़ न देना; फिर उस कार्य का नया आरम्भ करना। इसी तरह एक बार ही नहीं यदि हजार वार भी निराश होना पड़े तो भी घबराकर कभी हिम्मत न हारना। यद्यपि तुम्हें अभी अपनी विजय नजर नहीं आती, पर वास्तव में तुम प्रयत्न २ पर विजय के समीप पहुंचते जाते हो। अन्त में तुम्हारी पवित्र आत्मा विजयी ही निकलेगी।

९—जब तक मनुष्य में आत्म श्रद्धा है तब तक चाहे सारा संसार ही उसका त्याग करदे, उसके घबराने का कोई कारण है ही नहीं। क्योंकि आत्म बल से मनुष्य अखिल ब्रह्माण्ड को स्वाधीन करने की शक्ति रखता है।

१०—पापात्मा और महात्माओं में इतना ही अन्तर है कि महात्मा तो अपनी शक्ति पर काबू रखते हैं और पापात्मा जड़ वस्तुओं के काबू में हो पराधीन पड़ जाते हैं।

पुज्यप्रवर श्री जवाहिरलालजी महाराज के प्रति मेरी श्रद्धा

लें०—उमाशंकर द्विवेदी सम्पादक 'पालीवाल प्रभा, उदयपुर (मेवाड़)

जवाहिरलालजी महाराज भारत की महिमा मयी विभूति हैं। उनके उपदेशों में सत्य का सुन्दर आलोक देश की दयनीय दशा का स्पष्ट चित्र, और भारतवासियों की सहानुभूति का उमड़ता हुआ शुद्ध सरोवर, दिखाई देता है। मैं कहूंगा कि जैनी एवम् जैनेतर भाईयों के हृदय में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में युगान्तर उपस्थित करने वाले आप पहिले साधु हैं। आप प्रत्येक विषय को धार्मिक रंग में रंग कर उसकी बड़ी ही मार्मिक विवेचना करते हैं। आपने स्वदेशी के प्रचार पर राजनैतिक रंग नहीं चढ़ाया, धार्मिक दृष्टि से उस में कई प्रकार के पाप बतलाए इस से लोगों की समझ में जल्दी आगया। देश पुज्य प्रवर का ऋणि और आभारी है, उदयपुर में आप का स्पष्ट और निर्भीक भाषण सुनने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। मुझे जवाहिरलालजी महाराज पर बड़ी ही श्रद्धा है। यदि भारत के अन्य साधु महाराजजी का अनुकरण करें तो बात की बात में देश का सुधार हो सकता है।

स्वस्थ्य शरीर से उद्धृत

१—एक पुरानी और बिलकुल सच कहावत का अर्थ है 'श्रम' जिन्दगी को सुखी बनाता है, और 'आलस्य' सब दुःखों की जड़ है।

२—आलस्य ही मनुष्य का बड़ा वैरी है, शुभ कर्म करते हुए सौ वर्ष तक अच्छी तरह जीओ।

३—शारीरिक या मानसिक परिश्रमों का बदलते रहना अधिक उपयोगी है।

४—मस्तिष्क शरीर का अङ्ग है।

५—पुराने जमाने में यूनान और रूम वालों में में शरीर की शक्ति और सुडौलपन की सब से अधिक कदर थी।

६—किसी जमाने में भारत में स्वस्थ्य और सबल मनुष्यों का प्राधान्य था। किन्तु आज कल उसी देश में स्वस्थ्य और सबल मनुष्यों का अभाव है।

७—शारीरिक परिश्रम या व्यायाम न करने से मस्तिष्क हृदय फुप्फुस तथा पचनेन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं।

८—जिससे शरीर के सब अङ्गों को श्रम पड़े उसी कर्म को व्यायाम कहते हैं।

९—मांस पोशियों को उचित रीति से काम में लगाने से कन्धों की गोलाई, छाती का चपटा पन, कमर का टेढ़ा पन आदि शारीरिक कुरूपता दूर हो जाती है।

१०—मांस पोशियों से परिश्रम लेने पर हृदय और फेफड़ों के काम बढ़ जाते हैं।

११—वह मनुष्य जिसे व्यायाम या परिश्रम करने की आदत नहीं है, यदि थोड़ा भी व्यायाम करता है तो उसे हृदय अधिक धड़कता हुआ मालूम होता है।

१२—जिस मनुष्य को अधिक परिश्रम या व्यायाम करने की आदत न हो और जो शान्त बैठा हो उसकी नाड़ी देखो और उसकी गति की गणना करो।

१३—व्यायाम से शरीर अपने वश में रहता है।

१४—व्यायाम नित्य करना चाहिये।

१५—सरल व्यायाम से जितना शरीर बढ़ता है उतना कठिन व्यायाम से नहीं।

१६—मानसिक या शारीरिक परिश्रम करने वालों को सप्ताह में एक दिन अवश्य ही काम से विश्राम लेना चाहिये।

श्री जैन शिक्षण संस्था के विद्यार्थियों के साथ मेरा भ्रमण

पहिले इसके कि मैं अपने भ्रमण का वर्णन करूं संस्था का परिचय देना बहुत आवश्यक होगा। अतएव पाठकों के जानने के लिए संक्षेप में यहां दिया जाता है। आगामी अङ्क में इसका पूरा परिचय दिया जायगा।

इस संस्था को सम्वत् १९७२ में पूज्य स्वर्गीय जैनाचार्य श्रीलालजी म्हाराज के उपदेश के फलज स्वरूप स्थापित स्थानीय शिक्षा प्रेमियों ने स्थापित की।

इस संस्था के सभापति श्रीमान् मान्यवर कोठारी साहब बलवन्तसिंहजी भूतपूर्व दीवान रियासत मेवाड़ व श्रीमान् नगर सेठ साहब नन्दलालजी साहब हैं।

सेक्रेटरी श्रीमान् कुंवर गणेशीलालजी साहिब वायणा बी. ए., एल-एल., बी., हाकिम साहब सहाड़ा हैं।

यह संस्था अपने कई विभागों में कार्य कर रही है जिसका वर्णन संस्था के अन्यत्र दिये हुए प्रसंशा पत्रों से विदित होगा।

यह युग आर्थिक है। अतएव धनाभाव के ही कारण प्रायः यहां के विद्यार्थियों व कार्य कर्ताओं को बाहर जाना पड़ता है।

भ्रमण वृत्तान्त

आश्विन कृष्णा १० सम्वत् १९८४ को ६ विद्यार्थियों को लेकर मारवाड़ साधु महात्माओं के दर्शन करने को जाता था कि जलगांव निवासी सेठ साहब लक्ष्मणदासजी का संस्था का निरीक्षण करने के लिये पधारना हुआ। आपने निरीक्षण कर जो प्रशंसा-पत्र दिया उसकी नकल नीचे दर्ज है।

प्रशंसा-पत्र

आज मैंने जैन शिक्षण संस्था के आठों विभागों (१) जैन ज्ञान-पाठशाला (२) ब्रह्मचर्याश्रम (३) हुनरशाला (४) पुस्तकालय (५) कन्या पाठशाला (६) साहित्य प्रकाशक मण्डल (७) सार्वजनिक पाठशाला (८) शुद्ध वस्त्रालय आदि आठों विभागों का अच्छी तरह से निरीक्षण किया। संस्था के बालक बालिकाओं को धार्मिक, व्यवहारिक पढ़ाई तथा कला कौशल में बहुत अच्छे पाये। मैंने साधुमार्गी समाज में जैसा इस संस्था का काम देखा वैसा अन्य जगह नजर नहीं आया।

इसलिये मैं ता-जिन्दगी इस संस्था को जो ५००) रुपये वार्षिक जैसा कि संवत् १९८१ से देता हूं, देता रहूंगा और सब स्वधर्मी स्थानकवासी भाइयों से निवेदन है कि इस संस्था को तन, मन, धन, से सहायता देंगे तो यह संस्था समाज के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

इस संस्था के प्रेसिडेण्ट कोठारीजी सा॰ब बलवन्तसिंहजी तथा नगर सेठ साहब नन्दलालजी सेक्रेटरी कुं० गणेशीलालजी बी. ए. एल-एल. बी., संचालक महता रतनलालजी व नन्दलालजी साहब कार्यकर्त्ता व अध्यापकों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं। संवत् १९८४ का भादवा सुद १३।

लक्ष्मणदास सुलतानमल
जलगांव
जी० पूर्व खान्देश.

बाद में सब विद्यार्थी रवाने होकर अजमेर, फलोदी, खीचन, लोहावट, तिंवरी, मत्थाणी, जोधपुर, देसनोट, बीकानेर सब सन्त महात्माओं के दर्शन करते हुवे, व सब गांवों में शिक्षा प्रचार करते हुवे, भीनासर पूज्य महाराज साहब व तपस्वीजी के दर्शन किए। कुछ अर्से तक सेवा का लाभ लियां बाद में पंजाब रवाने हुवे, अब पंजाब का हाल व वहां के जज कमीश्नर व अङ्गरेजों ने विद्यार्थियों को प्रशंसा पत्र व जैन धर्म के विषय में लिख कर दिये, वे आगामी अङ्क में क्रमशः निकलेंगे, और विद्यार्थियों को सहायता व इनाम मिला जिसका हाल आगामी रिपोर्ट में दर्ज नामवार होवेंगे यहां सिर्फ सहायता इस साल में भ्रमण द्वारा व उदयपुर में जमा हुवे जिसकी तादाद पाठकों के वकफियत के लिए दी जाती है, व मारवाड़ के कुछ प्रशंसा पत्र विद्वानों के दिए जाते हैं।

संचालक महता रतनलालजी के साथ आये हुए 'जैन उद्योग शाला उदयपुर मेवाड़' के विद्यार्थियों के संवाद, व्याख्यान, वार्तालाप और कई किस्म के कार्य देखे व सुने। मैंने उनको हर विषय में प्रवीण पूर्ण और प्रशंसा के योग्य पाये। यह कार्य एेसा है जिससे वास्तव में मातृभूमि की सेवा और स्वदेशी उद्योगों का उत्थान है, मेरे पास इनकी योग्यता को वर्णन करने के लिये कोई शब्द नहीं है। मैं इनकी सफलता चाहता हूं।

स्टेशन मास्टर
जोधपुर रेल्वे,
मथानिया (मारवाड़)

कॉन्फरेन्स सब्जेक्ट कमेटी

बीकानेर
ता० १२-१०-२७.

मुझे संस्था के करीब आध दर्जन विद्यार्थियों की परीक्षा लेने का अवसर मिला। वे मुझे तेज़ व सुशिक्षित मालुम पड़े। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि संस्था में सार्वदेशीय शिक्षा देने के प्रयत्न किये जाते हैं।

मुझे संस्था के बने हुए बुनाई के उत्तम नमूने भी दिखलाये गये। विद्यार्थियों के आपस के संवाद

२५) जोधपुर से गोविन्दरामजी अग्रवाल ।
२००) राय साहब चनणमलजी बरेली वाला
३५।-) इन्दौर मील से सट्टे के ।
३०) श्रीयुत् नन्दलालजी माणकलालजी वरण गांव वाला
३१५-॥।) श्रावक मण्डल हुकमीचन्द्रजी महाराज की संप्रदाय के सज्जनों की ओर से ।
२५) श्रीयुत् पूनमचन्दजी सैंसमलजी फतहपुर वाला खान्देश
५१) श्रीयुत् मोतीलालजी लालचन्दजी मलकापुर (खानदेश)
१००) श्रीयुत् सूरजमलजी कन्हैयालालजी छुजाणी (जैतारण)
५०) श्रीयुत् चुन्नीलालजी गुलाबचन्दजी गुगला पोस्ट पनवेल जिला (कुलाब)
५२०) श्रीयुत् सेठ साहब गंगारामजी बलुंदा वाला
६५१) श्रीयुत् जलगांव निवासी सेठ साहब लछमणदासजी मुलतानमलजी ।
११) श्रीयुत् कंवरूमलजी रतलाम ।
५०) श्रीयुत् सेक्रेटरी साहब कॉन्फ्रेंस वेलजी लखमजी (बम्बई)
२१) कपूरथला पंजाब निवासी त्रिभुवननाथजी
२५) बम्बई घाटकोपर निवासी सेठ नगीनदासजी ।
१२०) सदापेठ मद्रास निवासी श्रीयुत् पूनमचन्दजी ताराचन्दजी
३०) साहूकार पेठ मद्रास के श्रीयुत् दीपचन्द्रजी
३०) साहूकार पेठ मद्रास के श्रीयुत् पेमराजजी
१५) श्रीयुत् पूनमचन्दजी भूसावल (खानदेश)
११) श्रीयुत् वृखभानजी साहब पीतल्या सालियाना ४८) व पुत्र जन्म के मौके पर
१५) श्रीयुत् लाभूरामजी तुलसीरामजी फीरोजपुर
२५) श्रीयुत् मूलचन्दजी मोतीलालजी कोठेचा
१००) श्रीयुत् भैरूंदानजी साहिब की मारफत बेवा श्रीमती राजरूपजी वेगाणी ने भेजे
४०) इन्दौर भंडारी मिल में श्रीयुत् नथमलजी चोरड़िया ने १०००) संस्था के नाम से जमा कराए जिनके व्याज के भंडारीजी साहिब ने भेजे ।
२५) श्रीयुत् चनणलालजी नत्थूमलजी गोटा वाला पटियाला निवासी ने भेजे ।
११) श्रीयुत् कन्हैयालालजी पटियाला निवासी ने भेजे ।
१३०) श्रीयुत् सेठ साहिब चन्दनमलजी मोतीलालजी मूथा सतारा निवासी
५०) श्रीयुत् हजारीमलजी मुलतानमलजी कुपल निवासी ने अपनी धर्मपत्नी के स्मरणार्थ भेजे ।
१०) श्रीयुत् जैसिंह अर्जुनली भाई अहमदावाद
५) ,, चन्दुलाल छगनलाल अहमदाबाद
१०) ,, कालीदास मोतीलाल पालनपुर
१५) ,, कुनणमलजी हंसराजजी मलकापुर ५) १०)
७५) ,, पन्नालालजी भेरूंदानजी तोड़ापुर (खानदेश) सं० ८२ ८३ ८४
२५) २५) २५)

नोट—इनाम व उदयपुर के सज्जनों के चन्दे का हाल रिपोर्ट में छपेगा ।

—रतनलाल महता.

देशी विदेशी समाचार

(१) अगरी बाजार गोरखपुर के मुसलमानों ने गौ-मांस न खाने की प्रतिज्ञा की है।

(२) चीन के राष्ट्र मन्त्री ने आज्ञा जारी की है कि बीस वर्ष से कम उम्र का कोई चीनी लड़का शराब या धूम्र पान न करे।

(३) काश्मीर की सरकार ने अपने राज्य में १४ वर्ष से कम उम्र की लड़कियों का और १८ वर्ष से कम उम्र के लड़कों का विवाह गैर क़ानूनी क़रार दिया है।

(४) बंगाल के मुर्शिदाबाद बांकुरा खुलना बालूरघाट में दुर्भिक्ष के कारण हज़ारों आदमी मर रहे हैं। लोग वृक्षों की पत्तियां उबाल २ कर खाते हैं परन्तु वे भी नहीं मिलतीं।

(५) पश्चिमी जापान में भयंकर जल बाढ़ के कारण ७०००० एकड़ भूमि जल में डूबी हुई है। १५०० घर नष्ट हुए हैं १०० मनुष्य मरे हैं।

(६) रावलपिण्डी में गत निर्जला एकादशी के दिन एक ब्राह्मण दूकानदार ने अपनी सब सम्पत्ति दान करदी। दान लेनेवाले ने कहा, कुछ दक्षिणा भी मिलना चाहिये। दाता ने ५)रु० उधार लेकर वह भी दिया।

(७) मालेर कोटला के नवाब ने अपनी रियासत में गौ-वध करने की सख़्त मनाई की है। बाहिर से भी गौ-मांस लानेवाले दण्डनीय होंगे। अन्य मुसलमान क्या इससे कुछ शिक्षा लेवेंगे।

(८) जालन्धर महाविद्यालय की प्रधानाध्यापिका श्रीमती लज्जावती ने स्त्री शिक्षा के लिये एक लाख रुपया जमा करने की प्रतिज्ञा की है।

(९) कलकत्ता में ३० मारवाड़ी जुआ खेलने के मामले में पकड़े गये। उन पर मुकद्दमा चलेगा।

(१०) कलकत्ते के मारकिस मैदान में एक गाय के मरा हुआ शेर का बच्चा पैदा हुआ है।

(११) ब्रटेन में बेकारी बढ़ती जाती है। १३ अगस्त को १३,१४,२०० आदमी बेकारों की सूची में थे एक वर्ष पहिले दो लाख नव्वे हज़ार कम बेकार थे।

(१२) इस वर्ष भारतवर्ष में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये ७० क्रोड़ का बजट बनाया गया है।

(१३) घाटकोपर जीवदया खाते नाम की प्रसिद्ध जीव रक्षक संस्था के महामन्त्री श्रीमान् सेठ नगीनदासजी अमोलखरायजी ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार के लिये एक लाख रुपये निकाले हैं। इन्हीं सेठ साहिब की तरफ से घाटकोपर में ५०—६० हज़ार की लागत से जीव रक्षा के लिये एक रमणीक स्थान बनाया गया है। स्थानकवासी समाज में ऐसे दानवीर मौजूद हैं।

प्रशंसा पत्र एवं विद्या दान में सहायता

श्री जैन शिक्षण संस्था उदयपुर (मेवाड़) जो स्थानकवासी समाज में कार्य कर रही है। उसको संवत् १९८२ से देखने की उत्कृष्ट इच्छा थी वह आज पूर्ण हुई। इस संस्था का निरीक्षण करने से विदित हुआ कि साधुमार्गी समाज की सहायता से उपर्युक्त संस्था के अन्तर्गत 'जैन ज्ञान पाठशाला' कन्या पाठशाला, ब्रह्मचर्य्याश्रम, सार्वजनिक पाठशाला में लगभग १५० बालक बालि-

काएं विद्याभ्यास कर रहे हैं। इनकी पढ़ाई का कोर्स, तकली वगैरा से सूत कातने के प्रयोग, व्यायाम, आसन, भोजन व रहने का प्रबन्ध तथा बालिकाओं की गृहस्थ धर्मोपयोगी धार्मिक शिक्षा, खादी पर क़सीदा वगैरा का काम मुझको दिखलाया गया तो मैंने बहुत ही संतोषजनक पाया। विद्यार्थियों के संस्कृत व हिन्दी के संवाद बहुत रोचक प्रतीत हुए। इस के अतिरिक्त विद्यार्थियों द्वारा बनाई हुई घाव, चोट, पेटदर्द, दाद, खुजली, सिर दर्द वगैरह रोगों की साधारण दवाइयों को देखकर बहुत खुशी हुई। यहां से एक खुराक सभी को व गरीबों को मुफ़्त दवाई वितरण की जाती है। यह एक ऐसी विशेषता है जो हमारी अन्य संस्थाओं के लिये आदर्श है।

मैंने व मुनीमजी ने संस्था के हिसाब के रजिस्टर की जांच की तो सब काम सन्तोषजनक मिला। मुझको इस संस्था के देखने से खुशी हुई व आतरी मिली। इसलिये मैं ९०१) नौ सौ एक रुपयों की हुंडी जलगांव से भेजूंगा और यह संस्था चलेगी जब तक मेरी दूकान से १०१) रु० सालियाना भेजता रहूंगा।

इस संस्था का काम अध्यक्ष श्रीमान् कोठारीजी साहिब बलवन्तसिंहजी नगर सेठ साहिब नन्दलाल जी, मन्त्री कुंवर साहिब गणेशलालजी बी. ए., एल-एल. बी., संचालक रत्नलालजी साहिब महता की निरीक्षता में भली भांति सम्पादित होता है। इसके अतिरिक्त उक्त संचालक महोदय के सुयोग्य भाई नन्दलालजी, बख्तावरलालजी, भतीज दौलतसिंहजी, कर्णसिंहजी व शोभाललाजी महता भी अपना अवैतनिक संस्था के कार्य में आत्म भोग देते रहते हैं।

रत्नलालजी साहिब ने संस्था के कार्य के सिवाय चार संस्थायें अपनी घरू केवल मात्र-देशोपकार के विचार से खोल रखी हैं।

(१) श्री धर्म पुस्तकालय—इस में लगभग २०००पुस्तकें हैं।

(२) श्री जैन उत्तम साहित्य प्रकाश मण्डल—इस में धार्मिक व्यवहारिक बहुत सी पुस्तकें छप चुकी हैं व 'जैन ज्ञान प्रकाश' नामक मासिक पत्र निकलता है।

(३) श्रीजैन हुनर शाला—इस में सूत कातना कपड़े बुनना, दरी, नवार, फीते, बटन और सीने वगैरा का बहुत सा काम सिखलाया जाता है। जो विद्यार्थी बुद्धि के मन्द हैं वे जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है उनको साधारण धार्मिक व्यवहारिक पढ़ाई के साथ हुनर के काम की उत्तम प्रकार से शिक्षा दी जाती है जिससे आर्थिक कष्ट दूर होकर उनका जीवन सुधरे।

(४) व्योपार के लिये स्वदेशी दूकान व वस्त्रालय भण्डार है जिस में प्रायः सभी तरह की देशी वस्तुएं मिलती हैं। व्यापारिक लाइन का काम भी सिखलाया जाता है।

साधु मार्गी समाज में इस ढङ्ग की संस्था मैंने नहीं देखी। मैं ऐसी संस्था के चलाने वाले व आत्म भोग देने वाले रत्नलालजी महता की तारीफ किये बिना नहीं रह सकता।

इस संस्था के कार्य कर्त्ता व सहायता देने वाले महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं और स्वधर्मी बन्धुओं से अपील करता हूं कि इस संस्था में सहायता भेज इसको बहुत बड़े रूप में देखें।
सं० १९८५ का माखवा सुद ५

जीतमल किशनचन्द जलगांव वाला।

२५) जोधपुर से गोविन्दरामजी अग्रवाल ।
२००) राय साहब चनणमलजी बरेली वाला
३५।-) इन्दौर मील से सट्टे के ।
३०) श्रीयुत् नन्दलालजी माणकलालजी वरण गांव वाला
३१५-।।।) श्रावक मण्डल हुकमीचन्द्रजी महाराज की संप्रदाय के सज्जनों की ओर से ।
२५) श्रीयुत् पूनमचन्दजी सैंसमलजी फतह-पुर वाला खान्देश
५१) श्रीयुत् मोतीलालजी लालचन्दजी मल-कापुर (खानदेश)
१००) श्रीयुत् सूरजमलजी कन्हैयालालजी छजाणी (जैतारण)
५०) श्रीयुत् चुन्नीलालजी गुलाबचन्दजी गुगला पोस्ट पनवेल जिला (कुलाब)
५२०) श्रीयुत् सेठ साहब गंगारामजी बलूंदा वाला
६५१) श्रीयुत् जलगांव निवासी सेठ साहब लछमणदासजी मुलतानमलजी ।
११) श्रीयुत् कचरूमलजी रतलाम ।
५०) श्रीयुत् सेक्रेटरी साहब कॉन्फ्रेंस वेलजी लखमजी (बम्बई)
२१) कपूरथला पंजाब निवासी त्रिभुवननाथजी
२५) बम्बई घाटकोपर निवासी सेठ नगीन-दासजी ।
१२०) सदापेठ मद्रास निवासी श्रीयुत् पूनम-चन्दजी ताराचन्दजी
३०) साहूकार पेठ मद्रास के श्रीयुत् दीप-चन्दजी
३०) साहूकार पेठ मद्रास के श्रीयुत् पेमराजजी
१५) श्रीयुत् पूनमचन्दजी भूसावल (खानदेश)
११) श्रीयुत् वृखभानजी साहब पीतल्या सालियाना ४८) व पुत्र जन्म के मौके पर
१५) श्रीयुत् लाभूरामजी तुलसीरामजी फीरो-जपुर
२५) श्रीयुत् मूलचन्दजी मोतीलालजी कोठेचा
१००) श्रीयुत् भैरूंदानजी साहिब की मारफत बेवा श्रीमती राजरूपजी वेगाणी ने भेजे
४०) इन्दौर भंडारी मिल में श्रीयुत् नथमलजी चोरड़िया ने १०००) संस्था के नाम से जमा कराए जिनके व्याज के भंडारीजी साहिब ने भेजे ।
२५) श्रीयुत् चनणलालजी नत्थूमलजी गोटा वाला पटियाला निवासी ने भेजे ।
११) श्रीयुत् कन्हैयालालजी पटियाल निवासी ने भेजे ।
१२०) श्रीयुत् सेठ साहिब चन्दनमलजी मोती लालजी मूथा सतारा निवासी
५०) श्रीयुत् हजारीमलजी मुलतानमलजी कुपल निवासी ने अपनी धर्मपत्नी के स्मरणार्थ भेजे ।
१०) श्रीयुत् जैसिंह अर्जुनसी भाई अहमदा वाद
५) ,, चन्दुलाल छगनलाल अहमदाबाद
१०) ,, कालीदास मोतीलाल पालनपुर
१५) ,, कुनणमलजी हंसराजजी मलका-पुर ५) १०)
७५) ,, पन्नालालजी भेरूंदानजी तोड़ापुर (खानदेश) सं० ८२ ८३ ८४ २५) २५) २५)

नोट—इनाम व उदयपुर के सज्जनों के चन्दे का हाल रिपोर्ट में छपेगा ।

—रतनलाल महता.